कमलकोश था वह कहां गिर गया ?॥ २८ ॥ हे वरोरु ! तू पूर्वोक्त स्त्रियोंमेंसे तो नहीं है; क्योंकि ये सब देवांगना हैं. उनके पृथ्वीका स्पर्श करना संभवे नहीं. अतएव लक्ष्मी जैसे विष्णु भगवान्के साथ रहकर, वैकुंठ लोकको शोभित करती है, ऐसे मैं कि– जो महावीर और अनेक कर्म करताहूं. उसके साथ रहकर, तू इस नगरीको सुशोभित कर ॥ २९ ॥ हे सुंदरी ! तेरे लाजभरे प्रेमपूर्वक हँसनेसे घूमतीहुई भ्रुकुटीसे प्रेरित यह कामदेव, तेरी दृष्टिकी पैनी अनीसे खंडितचित्त मुझको दुख देता है. इसलिये मुझपर कृपा कर ॥ ३० ॥ हे सुंदर मंदहास्यवाली ! तेरा मुख कि– जो सुंदर भौंह और सुंदर पुतलियेंवाले नेत्रोंसे शोभायमान और

नासां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ॥ अर्हस्यलंकर्तुमदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥ २९ ॥ यदेष माऽपांगविखंडितेंद्रियं सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा ॥ त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥ ३० ॥ तदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं व्यालंबिनीलालकवृंदसंवृतम् ॥ उन्नीय मे दर्शय वल्गु वाचकं यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं पुरंजनं नारी याचमानमधीरवत् ॥ अभ्यनंदत तं वीरं हसंती वीरमोहिता ॥ ३२ ॥ न विदाम वयं सम्यक्कर्त्तारं पुरुषर्षभ ॥ आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ॥ ३३ ॥ इहाद्य संतमात्मानं विदाम न ततः परम् ॥ येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥ ३४ ॥ एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद ॥ सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ॥ ३५ ॥

लंबे और नील केशपाशसे विराहुआ व मधुर भाषणवाला और लाजके मारे जिसे तू मेरे सन्मुख नहीं करती उसे ऊंचा उठाकर, मुझे दिखा ॥ ३१ ॥ नारदजीने कहा कि–हे वीर ! इस प्रकार अधीरकी तरह प्रार्थना करते इस पुरंजन राजाकी ओर देखकर, वहभी मोहित हो गयी. सो हँसकर सत्कारपूर्वक उसका कहना स्वीकार करके, बोली कि–॥ ३२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! हम उसे अच्छीतरह नहीं जानते, कि–जिसने हमको और आपको पैदा किया है. तथा हमारा और आपका नाम व गोत्र नियत किया है ॥ ३३ ॥ हे वीर ! मुझे तो केवल इतनीही खबर है, कि– अभी मैं यहां हूं. अब इससे अधिक बातकी हमें खबर नहीं है. मैं यहभी तो नहीं जानती कि– मेरे रहनेकी यह पुरी किसने बनायी है ॥ ३४ ॥ हे मानदेनेवाले महाराज ! ये पुरुष तो मेरे सखा

हैं. और ये स्त्रियां जो हैं वे मेरी सखियां हैं. और जब मैं सो जाती हूं तब यह नाग मेरी पुरीका पालन करता जागता रहता है ॥ ३५ ॥ हे शत्रुदमन! आप यहां आये. यह बहुत अच्छा हुआ. आपका भला हो. जो आप सांसारिक विषयभोगकी इच्छा रखते हो तो मेरे बंधुजनोंके साथ वे सब मैं आपको प्राप्त करूंगी ॥ ३६ ॥ हे विभु! इस नव दरवाजेकी अपनी पुरीमें आप विराजो. और सौ १०० वर्षपर्यंत जो मैं कामभोग प्राप्त करूं उन्हें सेवन करो (सौ वर्ष कहनेका तात्पर्य यह है कि– मनुष्यकी आयुका प्रमाण सौ वर्षका है) ॥ ३७ ॥ आपके शिवाय दूसरे किसपुरुषको मैं रमण कराऊं? कि– जो न तो रतिसुखको जानता है व न इस बातमें निपुण है, यानी अनिषिद्ध विषयसुखको त्याग बैठा है. और न परलोककी चिंता करता है. तथा न इस

दिष्ट्याऽऽगतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे॥ उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबंधुभिररिंदम॥३६॥ इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो॥ मयोपनीतान्गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥ ३७॥ कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम्॥ असंपरायाभिमुखमश्वस्तनविदं पशुम्॥ ३८॥ धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानंदोऽमृतं यशः॥ लोका विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः॥ ३९॥ पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह॥ क्षेम्यं वदंति शरणं भवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः॥४०॥ का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम्॥ न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम्॥ ४१॥ कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज॥ योऽनाथवर्गाधिमलं घृणोद्धतस्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम्॥ ४२॥

लोककी चिंता करता है, अर्थात् पशुतुल्य है (नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्त्रीसंबंधी सुख नहीं जानते, संन्यासी विषयसुखको त्याग बैठे हैं, कामीलागोंको परलोककी चिंता नहीं रहती. वैराग्यवान्को इस लोककी चिंता नहीं रहती और मूर्ख जो हैं वे पशुके तुल्य हैं) ॥ ३८ ॥ इस गृहस्थाश्रममें धर्म, अर्थ, काम, प्रजानंद, मोक्ष, यश और शोक व रजोगुण रहित लोक ये सब मिलते हैं कि– जिन्हें संन्यासी लोग कथमपि नहीं जानते, ॥ ३९ ॥ इस जगत्में गृहस्थाश्रमही पित्रीश्वर, देवता, ऋषि, मनुष्य, जीवजंतु और अपने आत्माका परम कल्याणकारी आश्रय कहते हैं ॥ ४० ॥ हे वीर! विख्यात, उदार, रूपवान् और प्रिय आपजैसे पति मिलें, फिर मेरेजैसी कौन स्त्री आपको पतिरूपसे न वरे? ॥ ४१ ॥ हे महाभुज! आप जो दयासे वृद्धिगत मंदहास्यपूर्वक

का फलरूप है. ॥ ४० ॥ देवता व ऋषिआदि सात्विक योनि हैं. मनुष्य राजस योनि हैं और नारकी शरीर तामस योनि हैं. महाराज! सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंमें जब एक एक गुणके साथ दूसरे दो दो गुण मिल जाते हैं. तब प्रत्येक कर्म फलरूप गतिके तीन तीन भेद होते हैं. यानी रजोगुणमिश्रित सात्विकयोनि, तमोगुणमिश्रित सात्विक योनि तथा शुद्ध सात्विक योनि इसी प्रकारसे राजस और तामस योनियोंमेंभी कल्पना कर लेनी चाहिये ॥ ४१ ॥ वेही जगत्के पैदा करनेवाले भगवान्, पशु, मनुष्य और देवता आदिके स्वरूपसे अवतार ले, जगत्के पालनके साथ धर्मका रूप धारण कर, उसका पोषणभी करते हैं. ॥ ४२ ॥ फिर काल,

सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुर नृनारकाः॥ तत्राप्येकैकशो राजन् भिद्यंते गतयस्त्रिधा॥ यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते॥४१॥ स एवेदं जगद्धाता भगवान् धर्मरूपधृक्॥ पुष्णाति स्थापयन्विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः ॥ ४२॥ ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः॥ सन्नियच्छति कालेन घनानीकमिवानिलः॥ ४३ ॥ इत्थं भावेन कथितो भगवान् भगवत्तमः॥ नेत्थं भावेन हि परं द्रष्टुमर्हंति सूरयः ॥४४॥ नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते॥ कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययारोपितं हि तत्॥४५॥ अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः॥ विधिः साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृतवैकृताः॥ ४६ ॥ परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम्॥ यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु॥ ४७॥

अग्नि और रुद्ररूपसे अपने रचेहुए इस जगत्का जैसे वायु बादलका नाश करता है. वैसे समयपर संहार करते हैं ॥ ४३ ॥ निरतिशय ऐश्वर्यसंपन्न भगवान्का मैंने जगत्के स्रष्टा, रक्षणकर्ता तथा संहारकर्तारूपसे वर्णन किया; परंतु विवेकी पुरुषोंको चाहिये कि--शुद्ध परमात्माके स्वरूपको केवल इसी प्रकारसे न देखें ॥ ४४ ॥ इस जगत्के जन्म आदि कर्मके निमित्त जो इस प्रकारसे वर्णन किया गया है. वह ईश्वरके कर्तृत्वके प्रतिषेधके लिये नहीं है; क्योंकि वह ईश्वरकीही माया शक्तिसे आरोपित है ॥ ४५ ॥ यह अवांतर कल्पसहित ब्रह्माजीका महाकल्प मैंने कहा- महाकल्पमें महत्तत्व आदि सृष्टिका प्रकार और अवांतर कल्पमें स्थावरजंगम सृष्टिका प्रकार समान है ॥ ४६ ॥ कालका स्थूल-सूक्ष्म परिमाण और कल्पका लक्षण व अवांतरकल्प तथा मन्वंतरा-

आवरणोंकरके बाहिरसे आवृत (ढका हुआ) यह ब्रह्मांडरूप भगवान्का स्थूलस्वरूप आपको मैंने कहा ॥ ३३ ॥ इस स्थूल-शरीरका कारणभूत, अतींद्रिय, अव्यक्त, निर्धर्मक, उत्पत्ति स्थिति और लयशून्य, सदा एक रस, मन वाणीके अगोचर ऐसा दूसरा सूक्ष्म स्वरूप है ॥ ३४ ॥ भगवान्के इन दोनों स्थूल-सूक्ष्म स्वरूपोंका मैंने आपसे वर्णन किया. परंतु विद्वान् लोग तो इन दोनों स्वरूपोंको मायाशक्तिसे सरजेहुए होनेके कारण भगवान्के वास्तविक स्वरूप नहीं मानते ॥ ३५ ॥ वस्तुतः निष्क्रिय होनेपरभी मायाकरके सक्रिय ऐसे परमात्मावाचकरूपसे शब्दजालको तथा वाच्यरूपसे रूप व क्रियाको सरजते हैं

अतःपरं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ॥ अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥ ३४ ॥
अमुनी भगवद्रूपे मया ते अनुवर्णिते ॥ उभे अपि न गृह्णंति मायासृष्टे विपश्चितः ३५ ॥ स वाच्यवा-
चकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक् ॥ नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माकर्मकः परः ॥ ३६ ॥ प्रजापतीन्मनून्दे-
वानृषीन्पितृगणान्पृथक् ॥ सिद्धचारणगंधर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७ ॥ किन्नराप्सरसोनागान्सर्पा-
न्किंपुरुषोरगान् ॥ मातृ रक्षः पिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥ ३८ ॥ कूष्मांडोन्मादवेतालान्यातुधा-
नान् ग्रहानपि ॥ खगान्मृगान्पशून् वृक्षान् गिरीन्नृपसरीसृपान् ॥ ३९ ॥ द्विविधाश्चतुर्विधा येऽन्ये ज-
लस्थलनभौकसः ॥ कुशलाऽकुशलामिश्राः कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥ ४० ॥

॥ ३६ ॥ प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि, पितृगण, सिद्ध, चारण, विद्याधर, गंधर्व, दैत्य, यक्ष, ॥ ३७ ॥ किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, किंपुरुष, उरग, मातृका, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, ॥ ३८ ॥ कूष्मांड, उन्माद, वेताल, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, पेटसे चलनेवाले जंतु ॥ ३९ ॥ औरभी दूसरे जलचर, स्थलचर और नभचर प्राणी, कि जो स्थावर जंगम भेदसे दोप्रकारके और जरायुज, अंडज उद्भिज और स्वेदज भेदसे चार प्रकारके हैं उन प्राणियोंको हे राजा ! प्रभु रचते हैं. इन सर्वयोनियोंमें देव आदि उत्तम योनि केवल पुण्यकर्मके फलरूप हैं मनुष्यआदि मध्यमयोनि पुण्य-पापके फलरूप हैं. नारकी अधमयोनि केवल पाप-

ब्राह्मी माहेश्वरी चण्डी वाराही वैष्णवी तथा । कौमारी चैव चामुण्डा चर्चिकेत्यष्टमातरः ॥ १ ॥ अर्थ–ब्राह्मी, माहेश्वरी, चण्डी, वाराही, वैष्णवी तथा कौमारी और चामुण्डा, चर्चिका यही आठ मातृका हैं ॥ १ ॥

सक्त और कामी व ठगायाहुआ यह मूर्ख राजा पुरंजन (जीव) अपनी स्त्री (बुद्धि) की इच्छाके अनुसार बरतने लगता है ॥ ५६ ॥ ५५ ॥ यह स्त्री जब मद्यपान करती है तब आपभी मद्यपान करता है और उसके मदसे विव्हल हो, जाता है. जब वो खाती और भोजन करती है. तब आपभी खाता है. और भोजन करता है ॥ ५७ ॥ जब वह गाने लगती है तब आपभी गाने लग जाता है. और कभी वो रोती है तब आपभी रुदन करने लगता है. कभीवो हँसती है तब आपभी हँसता है. और कभी वह बोलती है तब आपभी बोलता है ॥ ५८ ॥ जब वो दौड़ने लगती है. तब आपभी दौड़ने लगता है. और वो ठहर जाती है तब आपभी ठहर जाता है. जब वो सो जाती है तब आपभी सो जाता

क्वचित्पिबंत्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः ॥ अश्नंत्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति ॥ ५७ ॥ क्वचिद्गायति गायंत्यां रुदत्यां रुदति क्वचित् ॥ क्वचिद्धसंत्यां हसति जल्पंत्यामनुजल्पति ॥ ५७ ॥ क्वचिद्धावति धावंत्यां तिष्ठंत्यामनुतिष्ठति ॥ अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥ ५९ ॥ क्वचिच्छृणोति शृण्वंत्यां पश्यंत्यामनुपश्यति ॥ क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रंत्यां स्पृशंतिस्पृशति क्वचित् ॥ ६० ॥ क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ॥ अनुहृष्यति हृष्यंत्यां मुदितामनुमोदति ॥ ६१ ॥ विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवंचितः ॥ नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥ ६२ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे पुरंजनोपाख्याने पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥

है. वो बैठती है तब आपभी उसके पीछे बैठ जाता है ॥ ५९ ॥ वो सुनती है तो आपभी सुनता है, कभी वो देखती है तो आपभी देखता है. कभी वो सूंघती है तब आपभी सूंघता है. और वो स्पर्श करती है तो आपभी छूता है ॥ ६० ॥ कभी वो शोक करती है तो आपभी दीनकी नाई शोक करता है, वो हर्ष करती है तो आपभी हर्ष करता है और जब वो प्रफुल्लित होती है तो आपभी प्रफुल्लित होता है ॥ ६१ ॥ इसप्रकार स्त्रीसे ठगायाहुआ और अपने असंगत्वादि स्वभावोंको खो बैठाहुआ वह अज्ञानी पुरंजन स्त्रीके परवश होकर, अपनी इच्छा न होनेपरभी क्रीड़ामृगके समान स्त्रीके अनुसार चलता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥

छब्वीसवें अध्यायमें मृगयाके रूपकसे स्वप्नअवस्था तथा जाग्रत अवस्थाका वर्णन कर कर उत्तम बुद्धिके त्याग और योगसे पुरंजनके संसारकी स्थितिका वर्णन होगा ॥ १ ॥ स्वप्नअवस्थाको मृगयाके रूपसे वर्णन करते हैं. नारदजीने कहा कि–यह पुरंजनराजा एक दिन सुवर्णका कवच (रजोगुण) पहन, कंचनकी सामग्रीवाले रथ–(स्वप्नअवस्था संबंधी देह) में बैठ, अखूट भाथे (अनंत वासनानसे भरा अहंकार) साथ ले पंचप्रस्थ नाम (पांचविषय) वनमें गया, इस रथका वेग अतीव शीघ्र है (स्वप्नका देह जाग्रत्के देहके समान बहुत देरतक नहीं रहता इसलिये वेगवाला कहा). पांच उसमें घोड़े जोड़े हैं (पांच ज्ञानेंद्रिय). दो इसमें डांड़ियां हैं (अहंता और ममता). दो पहिये हैं (पुण्य व पाप). एक धुरी है (माया अथवा अज्ञान). तीन बांस हैं

नारद उवाच ॥ स एकदा महेष्वासो रथं पंचाश्वमाशुगम् ॥ द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पंचबंधुरम् ॥ १ ॥ एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् ॥ पंचप्रहरणं सप्तवरूथं पंचविक्रमम् ॥ २ ॥ हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माक्षयेषुधिः ॥ एकादशचमूनाथः पंचप्रस्थमगाद्वनम् ॥ ३ ॥ चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः ॥ विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥ ४ ॥ आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ॥ न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥ ५ ॥

(सत्व, रज व तम). पांच बांधनेके रस्से हैं (पंच प्राण). एक बागडोर है (मन). एक सारथी है (बुद्धि), रथीके बैठनेका एकही स्थान है (हृदय). दो जुएँ हैं (शोक और मोह). पांच प्रकारकी सामग्री प्रक्षेप करनेके योग्य है (पांच विषय). सात खोलियां हैं (सात धांतु[१]). इस रथकी पांच प्रकारकी गति है (पांच कर्मइंद्रिय). उस समय पुरंजन राजाने बड़ासा एक धनुष (‘ मैंही कर्ता और मैंही भोक्ता हूं ’ ऐसा अभिनिवेश) धारण किया. और दश सिपाही (इंद्रिय दश) और एक उनका जमादार (मन) ऐसे ग्यारह जनोंको साथ लिया. ॥१॥ २ ॥ ३ ॥ वह अभिमानी राजा पुरंजन धनुष (विषयभोगमें अभिनिवेश) बाण (रागद्वेषादिक) हाथमें ले, अपनी रानी कि– जो त्याग करनेके योग्य नहीं थी उसे त्यागकर, मृगों (विषयों) को मारने (भोगने) की अभिलाषासे वनमें जा, आखेट करने लगा (विषय भोगने लगा). ॥ ४ ॥ क्रूरचित्त और नि-

१ रस, रुधिर, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र (वीर्य)

को इस देहमें " मैं हूं " ऐसे स्नेहपाशसे और इसके पुत्र–आदिमें " ये मेरेही " ऐसे स्नेहपाशसे बांध रक्खा है ॥ १७ ॥ आप हमारे पुत्र नहीं हो. किंतु प्रधान पुरुषके ईश्वर हो और पृथ्वीके भाररूप क्षत्रियोंका संहार करनेको आप अवतरे हो; क्योंकि आप ऐसेही हो ॥ १८ ॥ हे दीनबंधु ! इसीलिये शरणागतोंके संसाररूप भयके निवर्त्तक आपके चरणारविंदके आज मैं शरण आया हूं. बस, विषयलालसा इतनीही बहुत है, कि–जिससे मेरे शरीरमें आत्मबुद्धि और परब्रह्म आपमें पुत्रबुद्धि हुई ॥ १९ ॥ आपने सूतिकागृहहीमें हमें कहा था कि– " जब तुम सुतपा और पृश्नि व कश्यप और अदितिरूप दंपती हुए, तब और अभी

युवां न नः सुतौ साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरौ ॥ भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथाऽऽत्थ ह ॥ १८ ॥ तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविंदमापन्नसंसृतिभयापहमार्त्तबंधो ॥ एतावताऽलमलमिंद्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥ सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ॥ नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ प्रत्याह प्रश्रया नम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ॥ यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥ २२ ॥ अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ॥ सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥

वसुदेव और देवकीरूप दंपती हो, मैं अजन्मा होतेभी पहले अपने धर्मकी रक्षाके निमित्त आपसे प्रगट हुआ और अबभी प्रगट हुआ हूं " आप असंग रहकरभी अनेक अवतार धारण करते हो. और छोड़ते हो, सर्वव्यापक आपकी विभूतिरूप मायाको कौन जान सकता है ? ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– यदुश्रेष्ठ व विनयसे नम्र भगवान्ने इसप्रकार पिताका वचन सुन, हँसकर, मधुर वाणीसे कहा ॥ २१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे तात ! हम पुत्रोंके विषयमें आपने जो तत्त्वसमूहका भलीभांति निरूपण किया. सो आपके वचनको हम यथार्थ मानते हैं ॥ २२ ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! मैं ये बड़ेभाई और ये द्वारकावासी व सब स्थावर जंगम जो हैं, इन सबके विषयमेंभी आपको ऐसाही विचारना चाहिये. यानी सबको ब्रह्मरूप जानना चाहिये ॥ २३ ॥

आकाश व उसका आश्रय शब्द, तन्मात्रा यानी परा, पश्यंती, मध्यमा व स्पष्ट अक्षररूप, होकर, आकृतियोंको भिन्न भिन्न कहनेवाली वैखरी वाणीभी आपही हो ॥ ९ ॥ इंद्रियोंमें प्रकाश करनेकी शक्ति, इंद्रियोंके देवता और उनकी अधिष्ठानशक्ति व बुद्धिकी निश्चयशक्ति और अंतःकरणकी उत्तम अनुसंधानशक्ति, आपही हो ॥ १० ॥ पंचभूतका कारण तामसाहंकार, इंद्रियोंके देवतानका कारण सात्विकाहंकार, इंद्रियोंका कारण राजसाहंकार और जीवोंके संसारका कारण प्रधान ये सब आपही हो ॥ ११ ॥ जैसे विनाशी घटकुंडलादि पदार्थोंमें मृत्तिका और सुवर्ण–आदि पदार्थ अविनाशी हैं. तैसे ऊपर कहे हुए सब विनाशी पदार्थोंमें जो अविनश्वर पदार्थ हैं. वे आपही हो ॥ १२ ॥ सत्त्व, रज व तमोगुण और उनके परिणामरूप महत्तत्त्वादिक पदार्थ, साक्षात्

इंद्रियं त्विंद्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ॥ अवबोधो भवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥ भूतानामसि भूतादिरिंद्रियाणां च तैजसः ॥ वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥ ११ ॥ नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ॥ यथाद्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ॥ त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥ तस्मान्न संत्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ॥ त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदा व्यावहारिकः ॥ १४ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ॥ गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरंतीह कर्मभिः ॥ १५ ॥ यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ॥ स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥ १६ ॥ असावहं ममैवैते देहे चास्यन्वयादिषु ॥ स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥

परब्रह्मरूप आपमें मायाकल्पित हैं ॥ १३ ॥ इसीलिये ये पदार्थ आपसे भिन्न नहीं हैं. जब ये पदार्थ कल्पन किये जाते हैं. तभी प्रतीतिमात्रसे आपमें हैं. और आप कारणतासे उनमें अनुगत हो ऐसे भासता है. और जब कल्पना नहीं किये जाते तब निर्विकल्प आपही अवशेष रहते हो ॥ १४ ॥ इस गुणोंके प्रवाहरूप संसारमें सर्वके आत्मा आपकी सूक्ष्मगति नहीं जाननेवाले लोक देहाभिमानसे किये कर्मोंके वश हो जन्म–मरणको प्राप्त हुआ करते हैं ॥ १५ ॥ हे ईश्वर ! दैवयोगसे अतिचतुर इंद्रिय व दुर्लभ मनुष्यदेह पाकरभी, मैंने आपकी मायासे असावधान रहकर, सब उमर वृथा गँवायदी ॥ १६ ॥ आपने इस सब जगत-

कहा ॥ १ ॥ पुत्रोंके प्रभावसूचक मुनिलोगोंके वचन सुन, पुत्रोंके पराक्रम देखनेसे प्रतीतिवाले वसुदेवजीने संबोधन देकर, कहा ॥ २ ॥ कि-हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे संकर्षण ! हे सनातन ! आप जगत्के कारण प्रधान पुरुष और उनकेभी ईश्वर हो. ऐसे मैं जानता हूं ॥ ३ ॥ जिसमें, जिस साधनसे, जिससे, जिस कारणसे, जिसका, जिसके लिये, जिसको, जो, जिसप्रकार और जब यह जगत स्थित है और स्थित कियाजाता है, उस सब भोग्य और भोक्ताके नियंता साक्षात् आपही हो ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज ! हे आत्मरूप ! आप जो अजन्मा हो, वे अपने रचेहुए इस अनेक प्रकारके जगत्में अपने रूपसे प्रवेश

मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ॥ तद्वीर्यैर्जातविश्रंभः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्संकर्षण सनातन ॥ जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥ यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ॥ स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ॥ आत्मनाऽनुप्रविश्याऽऽत्मन्प्राणो जीवो बिभर्ष्यजः ॥ ५ ॥ प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ॥ पारतंत्र्याद्वैसादृश्याद्द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥ कांतिस्तेजः प्रभा सत्ता चंद्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् ॥ यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गंधोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥ तर्पणं प्राणनमपां देव त्वं ताश्च तद्रसः ॥ ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥ दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ॥ नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥

कर, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिरूप होकर, उसका पोषण और भरण करते हो ॥ ५ ॥ जगतके कारणरूप प्राणादिककी जो शक्तियां हैं, वे सब आप ईश्वरकीही हैं. प्राणादिकोंकी नहीं हैं; क्योंकि चेष्टा करनेवाले प्राणादिक पदार्थ परतंत्र व जड़ हैं. ये केवल चेष्टावान् हैं. पर शक्तिवाले नहीं हैं. जैसे तृण-आदि पदार्थोंमें चलनशक्ति है सो केवल वायुकी शक्तिसे है. स्वतः नहीं ॥ ६ ॥ चंद्रकी कांति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र व बिजुलियोंकी स्फुरणसत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता और पृथ्वीकी आधारता तथा गंध, ये सब आपहीकी शक्तियां हैं ॥ ७ ॥ हे देव ! जल, उसकी तृप्त करनेकी शक्ति, जिलानेकी शक्ति व उसका रस ये सब आपही हो. हे ईश्वर ! वायुके जो ओज, सह, बल, चेष्टा और गति हैं ये सब आपहीके हैं ॥ ८ ॥ दिशा, दिशाओंके अवकाश,

करके, रुदन करने लगे ॥ ६५ ॥ नंदरायजी यादवोंसे मान पाकर, अपने मित्र वसुदेवजीको प्रसन्न करते रामकृष्णके प्रेमसे आज कल आज कल ऐसे करते तीन महीनेपर्यंत वहीं रहे ॥ ६६ ॥ फिर अमूल्य आभूषण, रेशमी वस्त्र और अनेक प्रकारके सरसामान व मनवांछित कामनासे परिपूर्यमाण नंदरायजी व्रज व बांधवोंको संग ले, ॥ ६७॥ वसुदेवजी, उग्रसेनजी, राम, कृष्ण, उद्धवजी—आदि यादवोंका दियाहुआ पारिबर्ह (पहेरावनी) ले, रवाना हुए. उसकाल यादवोंने इनके साथ बड़ी सेना पठायी ॥६८॥ श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविंदमें लगे हुए मनको पीछा हटानेमें असमर्थ, नंदरायजी व गोप, गोपियां मथुराको चले ॥ ६९ ॥ बंधु लोगोंके जानेपर

नंदस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविंदरामयोः ॥ अद्य श्व इति मासांस्त्रीन्यदुभिर्मानितोऽवसत्॥ ६६ ॥ ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबांधवः ॥ परार्ध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ॥ दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥ ६८ ॥ नंदो गोपाश्च गोप्यश्च गोविंदचरणांबुजे ॥ मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥ ६९ ॥ बंधुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ वीक्ष्य प्रावृषमासन्ना ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥ ७० ॥ जनेभ्यः कथयां चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥ यदाऽऽसीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्द्धे तीर्थयात्रानुवर्णनंनाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ अथैकदाऽऽत्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवंदनौ ॥ वसुदेवोऽभिनंद्याऽऽह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचंद्रको इष्टदेव माननेवाले यादव वर्षाऋतु निकट आयी देख, पीछे द्वारका गये ॥ ७० ॥ उन्होंने तीर्थयात्रामें वसुदेवजीके यज्ञका महोत्सव और संबंधी लोगोंका समागम—आदि जो हुआ. वह सब लोगोंको कह, सुनाया ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ पच्चासीवें अध्यायमें प्रार्थना किये हुए बलरामजी और श्रीकृष्णने पिताको ज्ञान और माताको मरेहुए पुत्र दिये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—फिर एकदिन निकट आकर, प्रणाम करतेहुए अपने पुत्र रामकृष्णको वसुदेवजीने प्रीतिसे सत्कार करके,

व्यासजी, मित्र, संबंधी और बांधव कि-जिनका चित्त स्नेहसे द्रवीभूत हो रहा था. वे अपने संबंधी यादवोंसे मिल, बिछुरनेका कष्ट न सहन करते बड़ी कठिनतासे अपने अपने देश गये, तद दूसरे लोगभी वहांसे रवाना हुए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ राम-कृष्ण व उग्रसेन-आदि यादवोंसे बड़ा सत्कार पाय, बंधुवत्सल नंदरायजी तौ ग्वालोंके साथ कितने एक दिवस वहीं रहे ॥ ५९ ॥ अनायाससे मनोरथरूप महासागरको पार उतर, प्रसन्नचित्त और संबंधी लोगोंसे आवृत वसुदेवजीने हाथ पकड़कर, नंदरायजीसे कहा ॥ ६० ॥ वसुदेवजी बोले कि-हे भाई ! मनुष्योंपर, स्नेहनाम जो जाल ईश्वरने डाल रक्खा है. वह जाल वीरपुरुष और

बंधून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाऽक्लिन्नचेतसः ॥ ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरेजनाः ॥ ५८ ॥ नंदस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयाऽर्चितः ॥ कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्बंधुवत्सलः ॥ ५९ ॥ वसुदेवोंऽजसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ॥ सुहृद्वृतः प्रीतमना नंदमाह करे स्पृशन् ॥ ६० ॥ वसुदेव उवाच ॥ भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ॥ तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताऽज्ञेषु सत्तमैः ॥ मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥ ६२ ॥ प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचरामहि ॥ अधुना श्रीमदांधाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ॥ ६३ ॥ मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ॥ स्वजनानुत बंधून्वा न पश्यति ययांऽधदृक् ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुंदुभिः ॥ रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥

योगीजनोंकोभी छुड़ाना कठिन है. ऐसे मैं मानता हूं ॥ ६१ ॥ अकृतज्ञ हम लोगोंके साथ आप महात्मा लोगोंने जो मैत्री की है. उसका पलटा हम कभी नहीं दे सक्ते, तौभी वह सदा वैसीही बनी रहती है. कभी निवृत्त नहीं होती. इससे हम जानते हैं, कि-यह ईश्वरने आपपै जाल डाल रक्खा है ॥ ६२ ॥ हे भाई ! पहले तौ हम असमर्थ थे. इसलिये आपका कुछभी भला नहीं कर सके और अब लक्ष्मीसे मदांध होकर, सामने खड़े महात्माओंको देखतेभी नहीं ॥ ६३ ॥ हे मानद ! कल्याणकी इच्छावाले पुरुषको राज्यलक्ष्मी मत प्राप्त होवे; क्योंकि इससे अंधा होकर, आदमी अपने आश्रित और बंधुजनोंकोभी नहीं देखता ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इस प्रकार स्नेहसे शिथिलचित्त वसुदेवजी नेत्रोंमें अश्रु भरकर, नंदरायजीके किये उपकारका स्मरण

लगते थे. वैसे वसुदेवजीके यज्ञमेंभी रत्न व रेशमी वस्त्र धारण किये ऋत्विज और सभासद शोभा देने लगे ॥ ४९ ॥ उस समय सब जीवोंके स्वामी श्रीकृष्ण व बलभद्रभी अपने अपने बंधुओंके साथ स्त्री, पुत्र और विभूतियोंसे शोभायमान हो रहे थे ॥५०॥ प्रत्येक यज्ञमें विधिसहित अग्निहोत्रादिक प्रकृति और विकृतिरूप यज्ञोंसे, द्रव्य, मंत्र व कर्मोंके ईश्वर विष्णुका यजन होने लगा ॥ ५१ ॥ फिर शास्त्रविहित विधिके अनुसार भलीभांति सिंगार कराय, ऋत्विज व ब्राह्मणलोगोंको समयपर उत्तम धनवाली दक्षिणाके साथ गौ, पृथ्वी व कन्यादान दिये ॥ ५२ ॥ 'पत्नीसंयाज' और 'आवभृथ' नाम क्रिया करवायके, उन महर्षि और

तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बंधुभिरन्वितौ ॥ रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ईजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः ॥ प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥ अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं सदक्षिणाः ॥ स्वलंकृतेभ्योऽलंकृत्य गोभूकन्यामहाधनाः ॥ ५२ ॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ॥ सस्नू रामन्हदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥ ५३ ॥ स्नातोऽलंकारवासांसि बंदिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ॥ ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥ ५४ ॥ बंधून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा ॥ विदर्भकोसलकुरून्काशिकैकेयसृंजयान् ॥ ५५ ॥ सदस्यर्त्विक्सुरगणान्नृभूतपितृचारणान् ॥ श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसंतः प्रययुः क्रतुम् ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ॥ नारदो भगवान्व्यासः सुहृत्संबंधिबांधवाः ॥ ५७ ॥

ब्राह्मणोंने यजमानको आगे ले, परशुरामजीके ह्रदमें स्नान करवाया ॥ ५३ ॥ स्नानकर, सुंदर सिंगार कर, वसुदेवजी और उनकी स्त्रियोंने बंदीजनोंको अलंकार व वस्त्र दिये, सब वर्णोंका व श्वानपर्यंत सब जीवोंकोभी अन्न दे, सत्कार किया ॥ ५४ ॥ बंधु उनकी स्त्रियां, उनके पुत्र, सभासद, ऋत्विज, देवगण, मनुष्य, भूत, पितृ, चारण व विदर्भ, कोसल, कुरु, काशि, केकय तथा सृंजयवंशी क्षत्रियोंको बहुतसा पारितोषिक दे, उनका सत्कार किया, ये लोगभी भगवान्‌से आज्ञा ले, यज्ञकी प्रशंसा करते वहांसे रवाना हुए ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, द्रोण, कुंती, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, महात्मा नारदजी,

जी ! आपने अवश्य जगदीश्वर विष्णु भगवान्‌का परमभक्तिसे पूजन किया है. क्योंकि– ये विष्णु भगवान् आपके घर पुत्ररूपसे, प्रगट हुए हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजीबोले कि– उदारचित्त वसुदेवजी उनका ऐसा वचन सुन, उन ऋषियोंको शिरसे प्रणाम कर, प्रसन्न करके, ऋत्विजका काम करनेको उनका वरण किया ॥ ४२ ॥ महाराज ! धर्मकी रीतिसे वरेहुए वे ऋषिलोग कुरुक्षेत्रमें धर्मात्मा वसुदेवजीको उत्तम कल्पयुक्त यज्ञोंसे यजन कराने लगे ॥ ४३ ॥ महाराज ! जब वसुदेवजीने यज्ञकी दीक्षा ली. तब यादव और राजालोग न्हाय, सुंदर वस्त्र पहन, कमलोंकी माला धारण कर, आभूषण धरे शोभा देने लगे ॥ ४४ ॥ और वसुदे-

श्रीशुक उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः ॥ तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ त एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् ॥ तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः ॥ स्नाताः सुवाससो राजन्राजानः सुष्ठ्वलंकृताः॥ ४४॥ तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥ ४५ ॥ नेदुर्मृदंगपटहशंखभेर्यानकादयः ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ॥ जगुः सुकंठ्यो गंधर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिंचन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ॥ पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुंडलैः ॥ स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥ तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ॥ ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥

वजीकी स्त्रियांभी चंदन– आदि चरचे, कंठमें आभूषण धारण किये, सुथरे वस्त्र पहने, पूजनके पदार्थ हाथमें लिये, प्रसन्न हो, दीक्षाशालामें आयीं ॥ ४५ ॥ मृदंग, पटह, शंख, भेरी, आनक– आदि बाजे बजने लगे, नट और नर्तक नृत्य करने लगे, सूत और मागध स्तुति करने लगे सुस्वर कंठवाली गंधर्वोंकी स्त्रियां पतियोंके साथ गान करने लगीं ॥ ४६ ॥ चंद्रमाका जैसे तारानके साथ अभिषेक किया गया था, वैसे वसुदेवजीकाभी उनके नेत्रोंमें अंजन आंज, शरीरमें माखन मल, अठारह स्त्रियोंके साथ ऋत्विजोंने अभिषेक किया ॥ ४७ ॥ दीक्षा धारण किये, मृगचर्म ओढ़े, वसुदेवजी, वस्त्र, कंकण, हार, झांझर और कुंडलआदि अलंकारोंसे अलंकृत स्त्रियोंके साथ शोभा देने लगे ॥ ४८ ॥ महाराज ! जैसे इंद्रके यज्ञमें ऋत्विज और सभासद शोभायमान

कहा ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण बोले कि– सब यज्ञोंके ईश्वर विष्णु भगवानका यज्ञोंसे श्रद्धापूर्वक यजन करना यही सर्वोत्कृष्ट कर्मसे कर्म मिटानेका उपाय कहा है ॥ ३५ ॥ विद्वान लोगोंने शास्त्ररूप दृष्टिसे चित्तोपशम और मोक्षका उपाय व धीरे धीरे अंतःकरणको शुद्ध करनेवाला सुगम स्वधर्मभी यही दिखलाया है ॥ ३६ ॥ न्यायप्राप्त धनसे श्रद्धापूर्वक ईश्वरका यजन करना. यही गृहस्थी द्विजलोगोंके कल्याणका मार्ग है ॥ ३७ ॥ हे वसुदेवजी ! बुद्धिवानको चाहिये कि– धनके फलरूप यज्ञ और दानकरके

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधुनिरूपितः ॥ यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥ चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा ॥ दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चाऽऽत्ममुदावहः ॥ ३६ ॥ अयं स्वस्त्ययनः पंथा द्विजातेर्गृहमेधिनः ॥ यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३७ ॥ वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ॥ आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद्बुधः ॥ ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ३८ ॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो ॥ यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत् ॥ ३९ ॥ त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ॥ यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणो शरणो भव ॥ ४० ॥ वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् ॥ जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥

धनकी इच्छा छोंड़े घरके भोग भोगकर , स्त्री–पुत्रकी तृष्णा छोड़े. और जगतको नाशवान जानकर, अपनी प्रतिष्ठा और स्वर्गादिककी तृष्णा छोड़ें ॥ ३८ ॥ सब धीरपुरुष गाँवकी सब तृष्णा छोड़कर तपोवनमें गये हैं. हे वसुदेवजी ! द्विजलोग जन्मते हैं. तब देव, ऋषि व पितृ इन तीनोंके ऋण इनके साथ पैदा होते हैं, सो यज्ञसे देवऋण, वेदाध्ययनसे ऋषिऋण, पुत्र पैदा करनेसे पितृऋण उतारे विना जो संसारका त्याग करें. वे पतित हो जाय ॥ ३९ ॥ हे महामति ! आप अभी पितृ और ऋषिऋणसे तो उरिण हो चुके हो, सो, अब यज्ञ करके देवऋणसे उरिण हो, फिर घरमेंसे चल निकलो ॥ ४० ॥ हे वसुदेव-

१ ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ अनपाकृत्य तान्वींस्तु मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः ॥ १ ॥ अर्थ–तीन ऋणों अर्थात् देवऋण, ऋषिऋण पितृऋणको काटके, मोक्षमें मन लगावे. जो तिन तीनऋणोंको विना काटेही मोक्ष चाहे वह नीचे गिरता है ॥ १ ॥ ऐसा स्मृतिका वचन है.

उनका ऐसा विचार देखकर, महायशवाले वसुदेवजी उनके निकट आ, प्रणाम कर, पांव पकड़, सावधानीसे यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ २८ ॥ वसुदेवजी बोले कि-हे ऋषियो ! सब देवतानके निवासरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं, मेरी विनती सुननी चाहिये, जिन कर्मोंके जिस भांति करनेसे कर्मोंका नाश होजाय वह हमें कहो ॥ २९ ॥ वसुदेवजीका प्रश्न सुन, ऋषिलोग आश्चर्य करने लगे. कि-यह क्या ? श्रीकृष्णको छोड़, हमें पूंछते हैं. तद नारदजी बोले कि-हे ब्राह्मणो ! श्रीकृष्णको अपना बालक समझ कर, वसुदेवजी अपने कल्याणके साधनकी जिज्ञासासे आपनसे प्रश्न करते हैं. सो यह कोई बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है ॥

तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ॥ प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयंत्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच ॥ नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ॥ कृष्णं मत्वाऽर्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥ सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् ॥ गांगं हित्वा यथाऽन्यांभस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥ ३१ ॥ यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनाऽस्य वै ॥ स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥ तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ॥ प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥ अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुंदुभिम् ॥ सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥

॥ ३० ॥ इस जगतमें निकट रहना यह अनादरका कारण है. देखो, गंगाके तीरपर रहनेवाले पुरुष गंगाजलको तजकर, अपनी शुद्धिके वास्ते दूसरे तीर्थपर जाते हैं ॥ ३१ ॥ जिनका ज्ञान किसी कालसे, इस जगतकी उत्पत्ति और प्रलय-आदिसे, आपसे, दूसरेसे और रूपांतरादिक होनेसेभी नाश नहीं होता ॥ ३२ ॥ वे श्रीकृष्ण कि-जो अद्वितीय, ईश्वर, अखंडित ज्ञानस्वरूप हैं. उन्हें दूसरे लोग, जैसे सूर्यको बादल, हिम व राहुसे आच्छादित माने; वैसे क्लेश, कर्म, सुख, दुःख, गुणोंके प्रवाह और अपने कार्यरूप प्राणादिकोंसे आच्छादित माने; यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! तब इन मुनिलोगोंने सब राजाओंके और रामकृष्णके सुनते वसुदेवजीको संबोधन देकर,

हो ॥ २१ ॥ तिन अपनी योगमायासे गूढ़महिमावाले अकुंठबुद्धि परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान् आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ॥ २२ ॥ आपके साथ एकही ठौर रहनेवाले राजा और यादवभी मायारूप पर्देसे ढंकेहुए ईश्वर, परमात्मा व कालरूप आपके स्वरूपको नहीं जानते ॥ २३ ॥ जैसे सोताहुआ पुरुष स्वप्नमें स्वप्नके पदार्थोंको सत्य मानता हुआ मनसे प्रकाशित व्याघ्र-आदि रूपहीको आत्मा करके मानता है. पर अपने जाग्रत अवस्थाके देवदत्त-आदि रूपको नहीं जानता ॥ २४ ॥ तैसे नाममात्र और मनसेही प्रकाशमान जाग्रत अवस्थाके विषयोंमें इंद्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायासे भ्रांतचित्त पुरुष विवेकका नाश हो-

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥ २२ ॥ न यं विंदंत्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम् ॥ २३ ॥ यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ॥ नाममात्रेंद्रियाभातं न वेदरहितं परम् ॥ २४ ॥ एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विंद्रियेहया ॥ मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्य ते ददृशिमांघ्रिमघौघमर्ष तीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ॥ उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ॥ राजर्षे स्वाश्रमान् गंतुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥

नेसे आपके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानता ॥ २५ ॥ पापपटलके मिटानेवाले, गंगाजीके आश्रयरूप, परिपक्व योगवाले योगीजनभी जिसका केवल हृदयमें चिंतन करते हैं, उस आपके चरणारविंदके बहुत पुण्योंके प्रतापसे आज प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं. सो हमें भक्त जानकर, अनुग्रह करो. भक्तिविना आपके चरणकी प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि वृद्धिगत भक्तिसे जिनके लिंगशरीरका नाश होगया है, वेही आपको प्राप्त हुए हैं. दूसरे कभी नहीं ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! इस प्रकार स्तुति कर, श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिरकी आज्ञा ले, मुनिलोगोंने अपने अपने आश्रम जानेका विचार किया ॥ २७ ॥

---

१ मलापकर्षणं पूर्वं शुद्ध्यादिगुणयोजनम् ॥ ततश्च फलरूपं च योगसाधनभावितम् ॥ १ ॥ अर्थ-पहले मलका जो छुटाना है सो शुद्धि-आदि गुणोंको युक्त करनेवाला है फिर योगसाधनभावना फलरूप है ॥ १ ॥

वे भगवान्, मौन रखकर, उस बड़ी सभाके श्रवण करते सुखपूर्वक बैठे हुए मुनिलोगोंसे कहने लगे ॥ ८ ॥ भगवानने कहा कि–अहो ! आज हमारा जन्म सफल हुआ और पूर्णतासे हमको जन्मका फल मिला, क्योंकि देवतानकोभी दुर्लभ ऐसे आप योगेश्वरोंके दर्शन हुए ॥ ९ ॥ केवल तीर्थस्नानादिकको तप माननेवाले और प्रतिमाहीमें देवदृष्टि रखनेवाले मनुष्योंको आपके दर्शन, स्पर्शन, प्रश्न, नमस्कार व चरणपूजन–आदिकी प्राप्ति हो सक्ती है ? कदापि नहीं ॥ १० ॥ तीर्थ केवल जलरूप ही नहीं हैं. देवता केवल मृत्तिका और पाषाणमयही नहीं हैं. पर वे चिरकालसे पवित्र करते हैं. औरसाधुलोग तौ केवल दर्शनहीसे पवित्र करते हैं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, चंद्र

श्रीभगवानुवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् ॥ देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥ किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ॥ ११ ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चंद्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ॥ उपासिता भेदकृतो हरंत्यघं विपश्चितो घ्नंति मुहूर्तसेवया ॥ १२ ॥ यस्याऽत्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ॥ यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुंठमेधसः ॥ वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः ॥ १४ ॥ चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ॥ जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयंतस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥

तारा, पृथ्वी, जल आकाश, वायु, वाणी, मन इनकी उपासना की जाय, तौभी ये भेदबुद्धिके कर्त्ता होनेसे अज्ञानताका हरण नहीं करते. पर ज्ञानी लोग भेदबुद्धिके निवर्त्तक होनेसे क्षणमात्रकी सेवाहीसे अज्ञान निवृत्त करते हैं ॥ १२ ॥ जो लोग वात–पित्त–कफमय शरीरकोही आत्मरूप जानते हैं. स्त्री इत्यादिकहीको अपने जानते हैं. मूर्तिको पूज्य समझते हैं. और जलहीको तीर्थ समझते हैं. पर तत्त्ववेत्ता पुरुषोंको आत्मरूप, अपने, पूज्य व तीर्थ नहीं समझते वे मनुष्य बैलसेभी अधिक अज्ञानी हैं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–अकुंठबुद्धि व ईश्वर भगवानके ऐसे दीनताभरे वचन सुन, चकितबुद्धि हो, वे ब्राह्मण चुप हो गये ॥ ॥ १४ ॥ फिर इन मुनिलोगोंने भगवानकी दिखायी दीनताविषे बहुत बेरतक विचार करके, हँसते हँसते कहा कि–यह आपकी

दीनता केवल लोकमर्यादाके रक्षणार्थ है ॥ १५ ॥ क्योंकि जिस मायासे आप मनुष्यलीला करनेको गूढ़ रहकर, अनीश्वरके समान चेष्टा करते हो, उस मायासे तत्त्ववेत्तानमें उत्तम हम और प्रजापतिभी मोहित हो रहे हैं. वे आप मायाके अधिपति होकरभी मोहित पुरुषोंके समान आचरण करते हो. इसलिये हम कहते हैं कि–अहो ! आपकी लीला बड़ी अतर्क्य है ॥ १६ ॥ आप क्रियारहित और एक होतेभी, जैसे पृथ्वी घटादिक विकारोंसे अनेक नाम रूपवाली होय है. वैसे अपने स्वरूपमात्र-हीसे जगतकी सृष्टि, स्थिति, संहार करते बहुत नाम, रूप धारण करते हो. अहो ! परिपूर्णस्वरूप आपके जन्म–आदि धारण

मुनय ऊचुः ॥ यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ॥ यदीशितव्यायति-गूढईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥ अनीह एतद्बहुधैकआत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ॥ भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडंबनम् ॥ १७ ॥ अथापि का-ले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ॥ स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥ १८ ॥ ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥ १९ ॥ तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ॥ सभाजयसि सद्धाम तद्ब्रह्म-ण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ॥ त्वया संगम्य सद्गत्या यदंतःश्रेयसां परः ॥ २१ ॥

करनेरूप चरित्र केवल विडंबनामात्र हैं. वस्तुतः नहीं ॥ १७ ॥ आप परपुरुष हो. तौभी समयपर भक्तरक्षणार्थ व दुष्टोंका निग्रह करनेके लिये वर्ण व आश्रमरूपसे शुद्ध सत्वमय अवतार धारण कर, अपने आचरणसे सनातन वेदमार्गकी रक्षा करते हो ॥ ॥ १८ ॥ वेद आपका शुद्ध अंतरंगस्वरूप है, जिस वेदमें तप, स्वाध्याय व संयमोंसे कार्यकारणरूप व उनसे भिन्नभी सन्मात्र परब्रह्म उपलब्ध होता है ॥ १९ ॥ हे परब्रह्म ! अतएव वेदके प्रवर्तक ब्राह्मणकुलका, कि जो वेदसे उपलब्ध होते हुए आपकी उपलब्धिका, आश्रय है, सत्कार करते हो, इसीसे आप ब्रह्मण्य लोकोंमें मुख्य होकर, कर्म करते हो ॥ २० ॥ सत्पुरुषोंके गतिरूप आपके समागमसे आज हमारे जन्म, विद्या, तप और ज्ञानकी सफलता हुई. क्योंकि आप कल्याणोंके परमअवधिरूप

ध्यायः ॥ ८३ ॥ चौरासीवें अध्यायमें मुनिलोगोंका समागम होनेपर वसुदेवजीका यज्ञोत्सव और संबंधी लोगोंके विदा करने आदिकी कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– कुंती, द्रौपदी, गांधारी, सुभद्रा, राजाओंकी स्त्रियां और भक्त, गोपिया, ये सब इस प्रकार भगवान्‌की स्त्रियोंकी सर्वके आत्मा भगवान श्रीकृष्णचंद्रमें स्नेहसंबंधकी बात सुन, बहुत विस्मित हुई. और उनके अश्रुकी कलासे नेत्र व्याकुल हो गये ॥ १ ॥ इस प्रकार स्त्रियोंके साथ स्त्रियां और पुरुषोंके साथ पुरुष बातें कररहे थे. वहां राम– कृष्णके

श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥ कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबंधं सर्वाविसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥ इति संभाषमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ॥ आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥ द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ॥ विश्वामित्रः शतानंदो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥ रामः सशिष्यो भगवान्वासिष्ठो गालवो भृगुः ॥ पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कंडेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥ द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथांऽगिराः ॥ अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ॥ पांडवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववंदितान् ॥ ६ ॥ तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ॥ स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥ उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः ॥ सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥

दर्शनार्थ, वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानंद, भरद्वाज, गौतम, शिष्यसहित महात्मा परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कंडेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्मपुत्र, अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और दूसरेभी वामदेव–आदि ऋषि कुरुक्षेत्रमें आये ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ पांडव, राम–कृष्ण और पहले बैठे हुए राजा–आदि सब लोगोंने जगद्वंदित उन ऋषिलोगोंके दर्शन कर, तुर्त उठ कर, प्रणाम किया ॥ ६ ॥ सब लोग और भगवानने स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, धूप और चंदनसे उनका यथायोग्य पूजन किया ॥ ७ ॥ धर्मरक्षार्थ जिन्होंने देहधारण किया है

श्रीकृष्णचंद्र स्वयं पूर्ण हैं तौभी दासियां, सकल संपदा, योधा, हाथी, रथ, घोड़े और सर्व प्रकारके आयुध भक्तिके हेतु (मेरे पिताने) उनके अर्पण किये ॥ ३८ ॥ ये हम आठोंही सर्व संगकी निवृत्त और तपके प्रभावसे उन आत्माराम साक्षात् श्रीकृष्ण भगवानके घरकी दासियां हुई हैं ॥ ३९ ॥ सोलह हजार एकसौ रानियां बोलीं कि–नरकासुरने दिग्विजयमें जिन हम राजकन्याओंको जीत, रोंक रक्खा था, उन्हें भवसागरसे छुड़ानेवाले अपने चरणारविंदका स्मरण करतीं जान, श्रीकृष्ण

दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटेभरथवाजिभिः ॥ आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ३८ ॥ आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ॥ सर्वसंगनिवृत्त्याऽद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥ महिष्य ऊचुः ॥ भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ॥ निर्मुच्य संसृतिविमोक्षमनुस्मरंतीः पादांबुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥ ४० ॥ न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ॥ वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनंत्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ॥ कुचकुंकुमगंधाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥ ४२ ॥ व्रजस्त्रियो यद्वांछंति पुलिंद्यस्तृणवीरुधः ॥ गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

भगवानने स्वयं पूर्णकाम होतेभी समरमें नरकासुर और उसके परिवारको मार, हमारा पाणिग्रहण किया ॥ ४० ॥ हे द्रौपदी ! हम न तो चक्रवर्तिता, न इंद्रपद और न दोनों प्रकारके वैभव, न अणिमा–आदि सिद्धियां न ब्रह्मपद, न सालोक्यादि मुक्ति और न कैवल्यमोक्ष चाहती हैं ॥ ४१ ॥ किंतु लक्ष्मीजीके स्तनकी केसरकी सुगंधियुक्त, भगवान्‌के सर्वोत्तम चरणरजको शिरसे धारण करना चाहती हैं ॥ ४२ ॥ महात्मा होतेभी गौ चराते हुए भगवान्‌के चरणरजको जैसे गोप, गोपियां भीलनियां, तृण और लतायें चाहती हैं, वैसे हमभी उसे चाहती हैं ॥४३॥ इति श्रीभा॰म॰दश॰ उ॰ रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटी॰ त्र्यशीतितमोऽ

नाचने लगीं, गानेवाले गान करने लगे, ॥ ३० ॥ हे द्रौपदी ! इस प्रकार मैंने भगवानका वरण किया. तद ईर्षालु और कामदेवके परवश बड़े बड़े राजा उस बातका सहन नहीं कर सके ॥ ३१ ॥ भगवान तो उसी क्षण रत्नरूप चार घोड़ोंसे युक्त, रथमें मुझे बैठाय, चारभुजा धारण कर, दो भुजाओंसे मेरा आलिंगन कर, दूसरे दो हाथोंमें धनुषबाण ले, आप युद्धमें तयार हुए ॥ ३२ ॥ हे द्रौपदी ! दारुक सारथीने सुवर्णसे मँढ़े रथको चलाया. तब जैसे हिरणोंके देखते सिंह चलाजाय वैसे राजाओंके

एवं वृते भगवति मयेशे नृपयूथपाः ॥ न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धंतो हृच्छयातुराः ॥ ३१ ॥ मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् ॥ शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥ ३२ ॥ दारुकश्चोदयामास कांचनोपस्करं रथम् ॥ मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥ ३३ ॥ तेऽन्वसज्जंत राजन्या निषेद्धुं पथि केचन ॥ संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥ ३४ ॥ ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वंघ्रिकंधराः ॥ निपेतुः प्रधने केचिदेके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ॥ कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभिसंस्तुतां समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥ पिता मे पूजयामास सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ महार्हवासोलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥

देखते भगवान चले ॥ ३३ ॥ कितनेएक राजा धनुष उठाकर, जैसे श्वान सिंहके पीछे दौड़े, वैसे भगवानको रोकनेके वास्ते उनके पश्चात् दौड़े और कितने एक आगे जाकर, सज्ज हुए ॥ ३४ ॥ शार्ङ्गधनुषसे निकले जो बाणसमूह तिनसे उनके हाथ, पांव और गर्दनें कट गयीं. तद कितनेएक रण छोड़ भाग गये ॥ ३५ ॥ फिर जैसे सूर्य अस्ताचल पर जाय, तैसे भगवान द्वारकापुरी पधारे जो सूर्यको आच्छादन करतीं ध्वजा और विचित्र तोरणोंसे अतिअलंकृत व पृथ्वी तथा स्वर्गकी प्रशंसाकी पात्र है ॥ ३६ ॥ मेरे पिताने अमूल्य वस्त्र, अलंकार, शय्या, आसन व और और उपस्करोंसे मित्र, संबंधी व बांधवोंका सत्कार किया ॥ ३७ ॥

१ स्यमंतकः कौस्तुभश्च स्पर्शश्चिंतामणिस्तथा ॥ चत्वारो मणयः प्रोक्तास्तत्तुल्याः कृष्णवाजिनः ॥ अर्थ- स्यमंतक, कौस्तुभ, स्पर्श और चिंतामणि ये चार मणियां कहीं हैं तिनकी तुल्य कृष्णजीके घोड़े थे ॥ १ ॥

भीम, दुर्योधन और कर्ण इन दूसरे वीरपुरुषोंने डोरी तो धनुषकी चढ़ाली. पर किसीको उसकी स्थितिका हाल मालूम नहीं हुआ ॥ २३ ॥ अनंतर अर्जुनने जलमें मत्स्यका प्रतिबिंब देख, उसकी स्थितिको जान, सावधानीसे बाण चलाया. और उस बाणने उस मत्स्यको छूभी लिया. पर कटा नहीं ॥ २४ ॥ इसतरह उन अभिमानी क्षत्रियोंका मानभंग होते वे सब निवृत्त होगये. तद श्रीकृष्णचंद्रने धनुष ले, पनच चढ़ाय, उसमें लीलापूर्वक बाणका संधान कर, मध्यान्हसमयके अभिजित मुहूर्तमें एक वार जलमें मत्स्यको देखकर, बाणसे उसे काट गिराया ॥ २५ ॥ २६ ॥ उस समय स्वर्ग और पृथ्वीमें दुंदुभि बाजने लगे; जय

मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ॥ पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशे परम् ॥ २४॥ राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ॥ भगवान्धनुरादाय सज्यं कृत्वाऽथ लीलया ॥ २५ ॥ तस्मिन्संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ॥ छित्त्वेषुणा पातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥ २६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ॥ देवाश्च कुसुमासारान्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥ तद्रंगमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वलरत्नमालाम् ॥ नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कबरी धृतस्रक् ॥ २८ ॥ उन्नीय वक्त्रमुरुकुंतलकुंडलत्विड्गंडस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ॥ राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥ २९ ॥ तावन्मृदंगपटहाः शंखभेर्यानकादयः ॥ निनेदुर्नटनर्तक्यो नन्तृतुर्गायका जगुः ॥ ३० ॥

जय शब्द होने लगे, हर्षसे विव्हल देवता पुष्पोंकी बर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ फिर नवीन व उत्तम रेशमी वस्त्र धारण कर, चोटीमें पुष्पमाला गुथाये, लज्जासहित हासयुक्त मुखवाली मैं कंचनसे उज्वल रत्नोंकी माला हाथमें ले, सुंदर झांझर झमकाते पांवोंसे उस सभामंडपमें आयी ॥ २८ ॥ जिसमें केशभार व कुंडलकी कांतिसे गंडस्थल (कपोल) चमक रहे हैं, उस मुखको उठाय, संताप हरनेवाले हासयुक्त कटाक्षके विलासोंसे चारों ओर शनैः शनैः सब राजाओंको देखकर, अनुरक्तचित्त मैंने श्रीकृष्णचंद्रके गलेमें वह माला पहरायी ॥ २९ ॥ इतनेमें मृदंग, पटह, शंख, भेरी, आनक-आदि बाजे बजने लगे, नट नटिनियां

भ्रमण करती रहूं. पर जन्मजन्ममें मुझे भगवच्चरणका स्पर्श मिलाकरे, क्योंकि–जीनेका यही मुख्य पुरुषार्थ है ॥ १६ ॥ लक्ष्मणा बोली कि–हे द्रौपदी ! वारंवार नारदजीके गायेहुए भगवान्‌के जन्मकर्म सुन, अहो ! लक्ष्मीजीनेभी लोकपालोंको छोड़कर, भगवानका वरण किया है ऐसा विचार कर, मेरा चित्तभी भगवानमें लगगया ॥ १७ ॥ हे साध्वी ! पुत्रीवत्सल बृहत्सेन नाम मेरे पिताने मेरा अभिप्राय जानकर, श्रीकृष्णकी प्राप्तिके वास्ते यह उपाय किया ॥ १८ ॥ हे द्रौपदी ! जैसे तुम्हारे स्वयंवरमें अर्जुनको देनेकी इच्छासे मत्स्य किया गया था. वैसे मेरे स्वयंवरमेंभी मत्स्य किया गया. पर तुह्मारा मत्स्य तौ केवल बाहि-

लक्ष्मणोवाच ॥ ममापि राज्ञ्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ॥ चित्तं मुकुंदे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥ ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ॥ बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥ यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ॥ अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जलेपरम् ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ॥ सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रा संपूजिताः सर्वे यथा वीर्यं यथा वयः ॥ आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥ २१ ॥ आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यंकर्तुमनीश्वराः ॥ आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥ २२ ॥ सज्यं कृत्वापरे वीरा मागधांबष्ठचेदिपाः ॥ भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविंदंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥

रसे ढका हुआ रहा. इसलिये खंभेमें लगी हुई दृष्टिसे नजर आजाता, लेकिन यह तौ खंभेके पास धरेहुए कलशके जलहीमें दीखे वैसा रहा. अतएव दृष्टि नीचे और लक्ष्य ऊपर रहनेसे यह मत्स्य श्रीकृष्णचंद्रके सिवाय दूसरेसे बेधा जाय इसकदर नहीं था ॥ १९ ॥ यह बात सुन, सब शस्त्र अस्त्रके तत्त्ववेत्ता हजारोंराजालोग अपने २ उपाध्यायोंके साथ चारोंओरसे मेरे पिताके पुरमें आये ॥ २० ॥ सबका पराक्रम और अवस्थानुसार मेरे पिताने सत्कार किया, पर मन मुझमें लग रहनेसे किसीसे बेधा न गया ॥ २१ ॥ कितने एक राजाओंने तौ धनुषबाण हाथमें ले पीछा रख दिया, कितने एक धनुषकी डोरीही नहीं चढ़ा सके और कितने एक राजाओंने हाथके पहुँचेतक डोरी खैंची. पर धनुषके झटकारेसे गिरपड़े ॥ २२ ॥ जरासंध. अंबष्ठ, शिशुपाल,

किया, फिर ' ये साक्षात् रामचंद्र हैं ' ऐसा निश्चय होनेपर मेरे पिताने चरणोंमें गिरकर, भेंटकी तौरपर मणिके साथ मुझेभी अर्पण की. यह मैं श्रीकृष्णकी दासी हूं ॥ १० ॥ कालिंदी बोली कि– मुझे अपने चरणस्पर्शकी इच्छासे तप करती जानकर, प्रथम अपने मित्र अर्जुनद्वारा मिलकर, जिन्होंने मेरा पाणिग्रहण किया. उन भगवानके घरमें बुहारा देनेवाली दासी मैं हूं ॥ ॥ ११ ॥ मित्रविंदा बोली कि–लक्ष्मीनिवास भगवान स्वयंवरमें आकर, राजाओंको तथा अपकार करते मेरे भाइयोंकोभी जीत, सिंह जैसे श्वानके झुंडमेंसे अपना भाग ले जाय तैसे मुझे द्वारका लेगये. उनके चरण पखारनेवाली दासी मैं जन्मजन्ममें होऊं

कालिंद्युवाच ॥ तपश्चरंतीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया ॥ सख्योपेत्याऽग्रहीत्पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥ भद्रोवाच ॥ यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्निन्ये श्वयूथगमिवाऽऽत्मबलिं द्विपारिः ॥ भ्रातृंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्यास्तु मेऽनुभवमंघ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥ सत्योवाच ॥ सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृंगान्पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय ॥ तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबंध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥ य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरंगिणीम् ॥ पथि निर्जित्य राजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥ मित्रविंदोवाच ॥ पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् ॥ कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥ १५ ॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥

॥ १२ ॥ नाग्नजिती बोली कि–मेरे पिताने राजाओंके बलकी परीक्षा करनेके लिये अतितीक्ष्णशृंग व अतिबल और पराक्रमवाले व वीरपुरुषोंके दुरभिमान उतारनेवाले जो सात बैल अंकितकर छोड़ रक्खे थे उन्हें बालक जैसे बकरीके बच्चोंको बांध ले, वैसे भगवानने खेलही खेलमें बांधलिये ॥ १३ ॥ इसप्रकार पराक्रमही जिसका मूल्य है उस मुझ दासीका पाणिग्रहण कर, पधारते थे. वहां मार्गमें जो राजा आये उन्हें जीत, मेरे पिताकी दीहुई दासियां और चतुरंगिणी सेनाको संग ले, मुझे द्वारका लेगये उनकी मैं सदा दासी बनी रहूं ॥ १४ ॥ भद्रा बोली कि–मेरे पिताने मेरा चित्त भगवानमें आसक्त जानकर, मामाके पुत्र श्रीकृष्णको बुलाकर, एक अक्षौहिणी सेना और सखियोंके साथ मुझे भगवानके अर्पण की ॥ १५ ॥ चाहो मैं कर्मोंसे हर कहीं

जाती गोविंद भगवान्‌की कथासंबंधी जो परस्पर बातें करतीं थीं. वह सब मैं तुमसे वर्णन करता हूं सो सुनो ॥ ५ ॥ द्रौपदीने कहा कि–हे रुक्मिणी ! हे अच्युते ! हे भद्रे ! हे जांबवती ! हे सत्यभामा ! सत्या ! हे कालिंदी ! हे मित्रविंदा ! हे रोहिणी ! हे लक्ष्मणा ! हे और श्रीकृष्णकी रानियां ! यह हमें कहो कि–अपनी मायासे लोकका अनुकरण करतेहुए स्वयं हरि भगवान्‌ने तुम्हारा पाणिग्रहण किस प्रकार किया ?॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणीने कहा कि–मुझे शिशुपालको प्राप्त करनेके वास्ते जरासंध–आदि राजा धनुष तैय्यार करके, आ, उपस्थित हुए. उस समय अजेय सुभट लोगोंके शिरपर जिनके चरणोंकी रज मुकुटके समान

द्रौपद्युवाच ॥ हे वैदर्भ्यच्युते भद्रे हे जांबवति कौसले ॥ हे सत्यभामे कालिंदि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान्स्वयम् ॥ उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ॥ ७ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरितांघ्रिरेणुः ॥ निन्ये मृगेंद्र इव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥ सत्यभामोवाच ॥ यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ॥ जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात्स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥ जांबवत्युवाच ॥ प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदैवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्ययुध्यत् ॥ ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी ॥ १० ॥

विद्यमान है, ऐसे हरि जैसे सिंह बकरियोंके टोलेमेंसे अपने भागको ले जाय, ऐसे अपने भागरूप मुझको ले आये. उन लक्ष्मीको निवासरूप हरिके चरणकी मैं पूजा किया करूं ॥ ८ ॥ सत्यभामा बोली कि– भ्रातृवधके परितापसे संतप्त, मेरे पिताने जो कलंक लगाया. उसे निवृत्त करनेको भगवान्‌ने ऋक्षराज (जांबवान्) को जीत, मणि लाकर, मेरे पिताको दी, तद उस अपराधसे भयभीत मेरे पितानें मेरा वाग्दान होनेपरभी मुझे श्रीकृष्णके अर्पण की ॥ ९ ॥ जांबवती बोली कि– मेरे पिता (ऋक्षराज जांबवान्) ने इन भगवान्‌को 'ये अपने इष्टदेव व स्वामी रामचंद्र हैं' ऐसे न पहिचाँनकर, इनसे सत्ताईस दिनतक युद्ध

धे उत्तरार्धे रामस्थामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ॥ तिरासीवें अध्यायमें स्त्रियोंके किये हुए भगवत्कथारूप उत्सवमें भगवानकी रानियोंने श्रीकृष्णचंद्रने जिस प्रकार अपना पाणिग्रहण किया था. वह द्रौपदीसे कह, सुनाया यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–गोपीजनोंके परमगुरु और शरणरूप हरि भगवान् उनपर इस प्रकार अनुग्रह करके फिर युधिष्ठिरसे और सब सुहृद जनोंसे कुशल पूंछने लगे ॥ १ ॥ लोकपति हरिने इस प्रकार अतिआदर करके प्रश्न किया. तब भगवान्‌के चरणारविंदके दर्शनसे निष्पाप भये हुए उन लोगोंने प्रसन्नमन होकर, पीछा कहा कि– ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ ॥ तथाऽनुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥ युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥ त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ॥ प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ ॥ २ ॥ कुतोऽशिवं त्वच्चरणांबुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ॥ पिबंति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥ हि त्वात्मधामविधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानंदसंप्लवमखंडमकुंठबोधम् ॥ कालोपसृष्टनिगमावनआत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ॥४॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वंधककौरवस्त्रियः ॥ समेत्य गोविंदकथा मिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥

'हे प्रभु ! आपके चरणारविंदका रस कि–जो कभी महात्मा पुरुषोंके मनद्वारा उनके मुखसे प्रगट हुआ है. और जो देहधारियोंके देहाभिमान करनेवाली अविद्याका काटनेवाला है, उसे जो कर्णरूप दोनोंसे पीते हैं इनके अमंगल कहांसे ? ॥ ३ ॥ अपने स्वरूपप्रकाशसे बुद्धिके हेतु भयी हुई तीनों अवस्था जिससे निवृत्त होगयी हैं ऐसे, अतएव सर्वआनंदके कदंबरूप, अपरिच्छिन्न, अकुंठित चैतन्य शक्तिवाले और कालसे नाशप्राय भयेहुए वेदोंकी रक्षाके निमित्त योगमायासे मनुष्यमूर्ति धारण करनहारे, परमहंसोंके गतिरूप आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥' श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इसप्रकार पवित्रकीर्ति पुरुषोंके मुकुटमणि हरिकी लोक स्तुति कर रहे थे. तहां अंधक (यादवोंकी एक जाति) और कौरवोंकी स्त्रियां एकत्र हो, त्रिलोकीमें गायीं

मिलाता है. और वही बिछुरादेता है ॥ ४२ ॥ जैसे पवन मेघपटल, तृण, रुई और रजको मिलाकर, पीछे जुदे कर देती है. वैसे दैव प्राणियोंको मिलाकर, बिछुरा देता है ॥ ४३ ॥ मेरी भक्ति करनेवाला मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है. अतएव यह बहुत अच्छा हुआ. जो मेरी प्राप्ति करनेवाला मेरा स्नेह तुम्हें प्राप्त हुआ ॥ ४४ ॥ हे स्त्रियो ! जैसे आकाश, जल, पृथ्वी, वायु और तेज ये पंचमहाभूतही घटादिक पदार्थोंके आदि, अंत, बाह्य और आभ्यंतररूप हैं. तैसे मैंभी सब पदार्थोंका, आदि अंत, आभ्यंतर और बाह्यरूप हूं ॥ ४५ ॥ इसीतरह जरायुज, अंडज, स्वेदज उद्भिज ये चार प्रकारके प्राणी अपने कारणरूप पंचमहाभूतोंमें रहते

वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ॥ संयोज्याऽऽक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४३ ॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४४ ॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरंतोऽतरं बहिः ॥ भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरंगनाः ॥ ४५ ॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्माऽऽत्मना ततः ॥ उभयं मय्यथ परे पश्यताऽऽभातमक्षरे ॥ ४६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ॥ तदनु स्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्वगन् ॥ ४७ ॥ आहुश्च ते नलिननाभपदारविंदं योगेश्वरैर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दश० उत्तरार्धे वृष्णिगोपसंगमोनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

हैं. पर आत्मा जो भोक्ता है, उसमें नहीं रहते, आत्मा तौ उन भूतोंमें भोक्तापनसे व्याप्त है. पर कारणतासे व्याप्त नहीं. भूत, भौतिक, भोग्य और भोक्ता इन सबको परिपूर्णरूप मुझमें भ्रांतिसे प्रकाशित जानो ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—इसप्रकार श्रीकृष्ण भगवान्ने उन्हें स्वरूपके उपदेशसे शिक्षा की. तद उसके स्मरणसे उनका लिंगदेह छूट गया. और उन्हींको प्राप्त हुईं ॥४७॥ और बोलीं कि—हे पद्मनाभ! अगाधबोध योगेश्वरोंके चिंतन करने योग्य और संसाररूप कूपमें पड़े हुए पुरुषोंके आलंबनरूप आपका चरणारविंद यदपि हम घरका सेवन करें, तौभी सदा हमारे मनमें प्रगट रहा करे॥ ४८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कं-

'हे व्रजेश्वरी ! सदा सरीखी वर्तमान आपकी मैत्री कि–जिसका इंद्रका ऐश्वर्य पानेपरभी बदला नहीं दिया जासकता, उसे कौन भूले ? ॥ ॥ ३७ ॥ जिन्होंने माता–पिताको आंखोंसेभी नहीं देखा था ऐसे ये हमारे पुत्र, जैसे पलकसे नेत्र रक्षा पाते हैं वैसे, आपहीसे रक्षित हो, माता–पितारूप आपके हाथसे लालन, पालन, अभ्युदय व पोषण पाकर, निर्भय रीतिसे रहे. ठीक है सत्पुरुषोंके 'यह मेरा और यह पराया' ऐसी भेदबुद्धि नहीं होती ॥ ३८ ॥ जिनके दर्शनमें पलकोंकी आड़ पड़नेसे पलकोंके रचनेवाले विधाताको गालियां देतीं हैं, वे प्यारे श्रीकृष्ण बहुत दिनोंसे नजर आये, अतएव नेत्रद्वारा उन्हें हृदयमें स्थापित कर, समाधि-

का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ॥ अवाप्याप्यैंद्रमैश्वर्यं यस्यानेह प्रतिक्रिया ॥ ३७ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ॥ प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्रचभयौ न सतां परस्वः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपंति ॥ दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ३९ ॥ भगवांस्तास्तथाभूतान् विविक्त उपसंगतः ॥ आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४० ॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ॥ गतांश्चिरायितान्शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४१ ॥ अप्यवध्यायथास्मान् स्विदकृतज्ञाविशंकया ॥ नूनं भूतानि भगवान्युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४२ ॥

निष्ठ योगियोंकोभी जिसकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है उस तद्रूप्यभावको प्राप्त हुईं ॥ ३९ ॥ जो गोपियां उनसे एकांतमें मिल, आलिंगन कर, आरोग्य पूंछ, हँसकर, भगवानने यह कहा ॥ ४० ॥ श्रीभगवानने कहा कि–हे सखियो ! हम अपने बंधुओंका कार्य करनेकी इच्छासे गये रहे. और वहां शत्रुओंके पक्षका नाश करनेमें लग गये. जिससे बहुत दिनोंतक रुक रहे, सो कभी हमेंभी तुम याद करती हो ? ॥ ४१ ॥ 'ये अकृतज्ञ हैं' क्या इस प्रकार तुमको हमपै कुछ क्रोध तो नहीं आता है ? हां, हमको छोड़कर, आप चले गये, इससे यह बात सत्य है. इसतरह गोपियोंकी तरफसे संभावना करके, कहते हैं कि–दैवही तो प्राणियोंको

है ॥ २९ ॥ उन भगवानके साथ दर्शन, स्पर्शन, अनुसरण, आसन, गोष्ठी, शय्या, भोजन, विवाह और सपिंडताके संबंधसे बँधेहुए हो, तुम यदपि नरकके पंथरूप घरमें रहते हो. तौभी तुम्हारे घरमें स्वर्ग व मोक्षकी तृष्णा निवृत्त करनेवाले विष्णु भगवान् स्वयं प्रगट हुए हैं. अतएव तुम्हारा जन्म सफल हुआ है" ॥ ३० ॥ महाराज ! श्रीकृष्ण-आदि यादवोंको यहां आये जानकर, नंदरायजी सब गोपोंको संग ले, सर समान गाड़ोंमें भर, भगवान्‌के दर्शनकी इच्छासे कुरुक्षेत्र आये ॥ ३१ ॥ नंदरायजीको देखकर, यादव बहुत प्रसन्न हुए. और जैसे प्राणके आनेसे इंद्रियां उठकर, सन्मुख जाती हैं. वैसे सन्मुख जा कर, बहुत

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसापिंडबंधः॥ येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदस्तत्र यदून्प्राप्तान्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ॥ तत्राऽऽगमद्वृतो गोपैरनस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३१ ॥ तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ॥ परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३२ ॥ वसुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः ॥ स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासं च गोकुले ॥ ३३ ॥ कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ॥ न किंचनोचतुः प्रेम्णा सांश्रुकंठौ कुरुद्वह ॥ ३४ ॥ तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ॥ यशोदा च महाभागा सुता विजहतुः शुचः ॥ ३५ ॥ रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ॥ स्मरंत्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकंठ्यौ समूचतुः ॥ ३६ ॥

दिनोंसे दर्शन होनेके कारण संभ्रमके साथ उनसे मिले ॥ ३२ ॥ वसुदेवजी कंसके दिये हुए दुःखोंका और अपने पुत्रोंको जो गोकुलमें छोड़ रक्खा था, उस बातका स्मरण कर प्रेमसे विव्हल हो, मिलकर, बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३३ ॥ महाराज ! रामकृष्ण अपने माता-पिता यशोदा और नंदरायजीसे मिल, प्रणाम कर, प्रेमाश्रु कंठमें आ जानेसे कुछभी न बोले ॥ ३४ ॥ वे महाभाग नंद और यशोदा इन दोनों पुत्रोंको अपने आसनोंपर बैठाय, दोनों हाथोंसे मिल, आंसू छोंड़ने लगे ॥ ३५ ॥ यशोदाकी की हुई मैत्रीका स्मरण करतीं रोहिणी व देवकी कंठमें अश्रु भर, आलिंगन कर, यशोदासे कहने लगीं कि-॥ ३६ ॥

पीछे दैव-इच्छासे अभी अपने ठौरपर आये हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-वसुदेव व उग्रसेन-आदि यादवोंसे अर्चित वे राजा लोग भगवान्के दर्शन कर, परमानंदमें मग्न हो गये थे ॥ २२ ॥ भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, गांधारीके पुत्र, स्त्रीसहित पांडव, कुंती, संजय, विदुर, कृपाचार्य, कुंतिभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित, पुरुजित, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिलाका राजा, मद्रदेशका राजा, केकयदेशका राजा, युधामन्यु, सुशर्मा, बाल्हीक-आदि, उनके पुत्र व युधिष्ठिरका अनुसरण करनेवाले जो दूसरेभी राजालोग वे लक्ष्मीके निवास भगवानके शरीरको और उनकी स्त्रियोंको देखकर,

श्रीशुक उवाच ॥ वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ॥ आसन्नच्युतसंदर्शपरमानंदनिर्वृताः ॥ २२ ॥
भीष्मो द्रोणोंऽबिकापुत्रो गांधारी ससुता तथा ॥ सदाराः पांडवाः कुंती सृंजयो विदुरः कृपः ॥ २३ ॥
कुंतिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ॥ पुरुजिद्द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः सकाशिराट् ॥ २४ ॥
दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो भद्रकैकयौ ॥ युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥ २५ ॥
राजानो ये च राजेंद्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ॥ श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २६ ॥
अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः ॥ प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥ २७ ॥
अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ॥ यत्पश्यथासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २८ ॥
यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ॥ भूः कालभर्जितभगाऽपि यदंघ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ २९ ॥

विस्मित हुए ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ जिनका बलदेवजी और श्रीकृष्णने भलीभांति सत्कार किया है, ऐसे वे लोग प्रसन्न हो, भगवानके अंगीकृत यादवोंकी प्रशंसा करने लगे कि-॥ २७ ॥ " अहो ! महाराज ! उग्रसेन ! यहां मनुष्योंमें जन्म तो आपहीका सफल है; क्योंकि-जिनके दर्शन योगिजनोंको दुर्लभ हैं, उन भगवान्के आप वारंवार दर्शन करते हो ॥ २८ ॥ वेदसे प्रशंसित जिनकी कीर्ति व जिनके चरणावनेजनका जल (गंगा) और जिनके वचनरूप वेद, इस जगत्को अतिपवित्र करते हैं और यह पृथ्वी कालकी गतिसे शक्तिरहित होनेपरभी जिनके चरणारविंदके स्पर्शसे उत्तम शक्ति पाकर, हमें सब पदार्थ देती

शोभायमान, पुलकितगात, और प्रेमके कारण जिनकी वाणी रुक रही थी ऐसे सब लोक, नेत्रोंसे जल छोंड़ते परस्पर गाढ़ आलिंगन कर, आनंदमग्न होते थे ॥ १४ ॥ जिनके नेत्रोंमें प्रेमके कारण अश्रु बह रहे हैं ऐसी और अतिप्रेमसे उत्पन्न हुआ जो मंदहास उससे निर्मल हैं कटाक्ष और दृष्टि जिनकी ऐसी वे स्त्रियां परस्पर देख कर, केसर लगाये स्तनोंको परस्परके स्तनोंसे मिलाती हाथोंसे आलिंगन कर, रहींथीं ॥ १५ ॥ फिर जब छोटी वयवाले आपको वंदनकर चुके. तब वे वृद्ध पुरुषोंको वंदन कर, स्वागत और कुशलका प्रश्न कर, आपसमें श्रीकृष्णकी बातें करने लगे ॥ १६ ॥ कुंती भाई, बहन, इनके पुत्र, माता, पिता,

स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापांगदृशोऽभिरेभिरे ॥ स्तनैः स्तनान्कुंकुमपंकरूषिता-न्निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १५ ॥ ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान्यविष्ठैरभिवादिताः ॥ स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः ॥ १६ ॥ पृथा भ्रातॄन्स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि ॥ भ्रातृपत्नी-र्मुकुंदं च जहौ संकथया शुचः ॥ १७ ॥ कुंत्युवाच ॥ आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ॥ यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १८ ॥ सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि ॥ ना-नुस्मरंति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ १९ ॥ वसुदेव उवाच ॥ अंब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडन-कान्नरान् ॥ ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥ २० ॥ कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशम् ॥ एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनाऽऽसादिताः स्वसः ॥ २१ ॥

भावजें और भगवानको देखकर, परस्पर प्रेमकी बातोंसे शोक भूल गया ॥ १७ ॥ कुंतीने कहा कि—हे आर्य ! हे भाई ! मैं मेरे आत्माको अकृतार्थ मानती हूं; क्योंकि तुम समर्थ होकर, मुझपर विपत आती है, उससमय मेरी सुध नहीं लेते ॥ ॥ १८ ॥ जिससे दैव रूठ जाता है, उसकी कोईभी संबंधी यानी ज्ञातिवाले, पुत्र, भाई, माता, पिता, येभी सुध नहीं लेते ॥ ॥ १९ ॥ वसुदेवजी बोले कि—हे अंब ! दैवके खिलौने जो हम मनुष्य हैं, तिनपै दोष मत लगावे, क्योंकि—जगतमें करना और करवाना ईश्वरके आधीन है ॥ २० ॥ हे बहन ! पहले तौ हम सब कंससे दुःखी हो, दशोंदिशाओंमें भाग निकले थे, अब

रहे ॥ ५ ॥ ६ ॥ विमानोंके समान रथ, तरंगोंके समान चंचल घोड़े, बादलके समान गर्जना करते हाथी व विद्याधरोंके समान कांतिमान मनुष्योंकेसे वे बड़े तेजस्वी पुरुष कंचनकी माला धारण किये और दिव्य वस्त्र, माला व कवच पहने, अपनी स्त्रियोंके साथ पंथमें जाते देवतानके समान शोभ रहे थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन भाग्यशाली लोगोंने व्रत कर, सावधान अंतःकरण हो, कुरुक्षेत्रमें न्हाय, ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्पमाला व कंचनकी मालावाली गायें दान दीं ॥ ९ ॥ फिर यादवोंने परशुरामजीके न्हदमें विधिवत् मोक्षस्नान करके 'हमें भगवान्‌की भक्ति मिले' ऐसा संकल्प कर, उत्तम ब्राह्मणोंके

ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥ गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥ ७ ॥ व्यरोचंत महातेजाः पथि कांचनमालिनः ॥ दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ ८ ॥ तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ॥ ९ ॥ रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥ ददुः स्वन्नं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥ १० ॥ स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायांघ्रिपांघ्रिषु ॥ ११ ॥ तत्राऽऽगतांस्ते ददृशुः सुहृत्संबंधिनो नृपान् ॥ मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृंजयान् ॥ कांबोजकैकयान्मद्रान्कुंतीनानर्तकेरलान् ॥ १२ ॥ अन्यांश्चैवाऽऽत्मपक्षीयान्परांश्च शतशो नृप ॥ नंदादीन्सुहृदो गोपान्गोपींश्चोत्कंठिताश्चिरम् ॥ १३ ॥ अन्योन्यसंदर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ॥ आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १४ ॥

अच्छा मिष्टान्न दिया ॥ १० ॥ श्रीकृष्णकोही इष्टदेव माननेवाले यादव आपभी ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले, भोजन कर, शीतल छायावाले वृक्षोंके पेड़ोंमें इच्छानुसार बैठ गये ॥ ११ ॥ महाराज ! वहां मत्स्य, उशीनर, कौशल्य, विदर्भ, कुरु, संजय, कांबोज, कैकय, मद्र, कुंती, आनर्त व केरलदेशके रहनेवाले अपने मित्र बंधु व राजा और दूसरेभी अपने पक्षके और परपक्षके सैकड़ों लोग और नंदआदि अपने प्रिय स्नेही ग्वाल, व बहुतदिनोंसे उत्कंठावाली गोपियांप्रभृति जो आये, उन सबको देखा ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ परस्पर दर्शनसे उत्पन्नहुआ जो आनंद उसके वेगसे प्रफुल्लितहृदय व मुखकमलसे

ब्रह्मण्यदेव भगवान्‌की ब्रह्मण्यताविषयक यह कथा जो सुने, वह भगवद्भक्तिको प्राप्त होकर, कर्मबंधनसे मुक्त हो जाय ॥ ४१ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥
बयासीवें अध्यायमें राजालोग सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्र आये. वहां यादवोंको देखकर, आपसमें आनंदसे भगवत्संबंधी कथा करने-लगे यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– श्रीकृष्ण और बलदेवजीके द्वारकामें विराजते एकदिन जैसे प्रलय काlमें होवे, ऐसा बड़ा भारी सूर्यग्रहण हुआ ॥ १ ॥ महाराज ! इस बातका ज्योतिषियोंद्वारा निश्चयकर, पुण्य करनेकी अभिला-

एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥ लब्धभावो भगवति कर्मबंधाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे पृथुकोपाख्यानंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥ सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥ तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः ॥ स्यमंतपंचकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ ॥ २ ॥ निःक्षत्रियां महीं कुर्वन्रामः शस्त्रभृतां वरः ॥ नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ॥ ३ ॥ ईजे च भगवान्रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥ लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योघापनुत्तये ॥ ॥ ४ ॥ महत्यां तीर्थयात्रायां तत्राऽगन्भारतीः प्रजाः ॥ वृष्णयश्च तथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ॥ गदप्रद्युम्नसांबाद्याः सुचंद्रशुकसारणैः ॥ आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥

षासे सब देशोंके लोग पहलेहीसे कुरुक्षेत्र पहुँचे ॥ २ ॥ जहां शस्त्र धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीने इक्कीसबार पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर, राजाओंके लोहूके समूहसे बड़े ह्रद बनाये थे ॥ ३ ॥ भगवान् परशुरामजीने पापका स्पर्श न होने परभी लोगोंको धर्ममर्यादा सिखलानेके लिये दूसरे प्राकृतपुरुषके समान पापनिवृत्तिके निमित्त यज्ञ किये ॥ ४ ॥ इस बड़ी तीर्थयात्रामें भरतखंडकी सब प्रजा आयी. महाराज ! अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन, गद, प्रद्युम्न, सांब–आदि सब यादवभी अपने पापोंको क्षीण करनेके वास्ते वहां आये, अनिरुद्ध और कृतवर्मा ये दोनों सुचंद्र, शुक व सारणके साथ द्वारका पुरीकी रक्षाके निमित्त वहीं

कर, समक्षमें न कहतेहुए सकल संपदा देते हैं ॥ ३४ ॥ भगवान आपके अधिक दियेहुएकोभी अल्प करके मानते हैं. और भक्तके थोड़े कियेकोभी अधिक कर, मानते हैं. मेरी अर्पण कीहुई एक तंदुलकी मुट्ठीभी महात्मा भगवान्‌ने कैसी प्रीतिके साथ ग्रहण की ? ॥ ३५ ॥ मुझे जन्म-जन्ममें उन्हींके विषयमें प्रेम, हितेच्छुता, मैत्री व दासभाव प्राप्त होवे और महानुभाव व गुणोंके धाम, भगवान्‌में आसक्ति होते उनके भक्तोंका सत्संग मिला करे. यही उनसे प्रार्थना है ॥ ३६ ॥ धनी पुरुषोंके धनके मदसे नीचजन्म होते देखकर, विचक्षण भगवान अपने अज्ञानी भक्तको विचित्र संपदा, राज वा विभूतियां नहीं देते हैं. अपितु दृढ़भ-

किंचित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारि ॥ मयोपनीतं पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥ तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात ॥ महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसंगः ॥ ३६ ॥ भक्ताय चित्रा भगवान्हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समर्धयत्यजः ॥ अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥ ३७ ॥ इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने ॥ विषयान्जाययात्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलंपटः ॥ ३८ ॥ तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ॥ ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥ ३९ ॥ एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ॥ तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबंधनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥

क्तिही देते हैं. मेरे तो भक्ति नहीं रही. इसीसे यह संपदाहीका सुख मिला, सो अब तो भक्तिही मांगता हूं ॥ ३७ ॥ भगवान्‌का परमभक्त वह ब्राह्मण ऐसा बुद्धिसे निश्चय कर, विषयोंका शनैःशनैः त्याग करता अतिआसक्त न होकर, स्त्रीके साथ विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ३८ ॥ देवदेव व यज्ञपति इन प्रभु भगवान्‌के ब्राह्मणही प्रभु और इष्ट दैवत हैं. इनसे बढ़कर, और कुछभी माननीय नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भगवान्‌का मित्र वह ब्राह्मण उस समय अजित भगवान्‌कोभी भक्तोंके सामने पराजित होते देखकर, उनके ध्यानके वेगसे देहाभिमान छोड़, थोड़े अर्सेमें सत्पुरुषोंके शरणरूप इनके धामको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥

देवांगनाके समान देदीप्यमान, कंठभूषण धारण किये, दासियोंके बीच भासमान अपनी स्त्रीको देखकर. उस ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २७ ॥ वह प्रसन्न हो, अपनी स्त्रीके साथ अपने घरमें गया. जहां इंद्रके घरके समान सैकड़ों मणियोंके खंभे लगरहे थे ॥ २८ ॥ दूधके फेनके समान शय्या, सुवर्णसे मढ़ेहुए हाथीदांतके पलँग, कंचनकी डांड़ीवाले चमर और पंखे ॥ २९ ॥ कोमल कोमल बिछौनोंवाले सोनेके सिंहासन और मोतियोंकी झालरीदार देदीप्यमान चँदवे शोभ रहे थे ॥ ३० ॥ और स्वच्छ स्फटिकमणियोंकी भीतोंमें और मरकत मणियोंके स्थलोंमें रत्नके दीप देदीप्यमान हो रहे थे और स्त्रीरत्न शोभ रहे

प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमंदिरम् ॥ मणिस्तंभशतोपेतं महेंद्रभवनं यथा ॥ २८ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दांता रुक्मपरिच्छदाः ॥ पर्यंका हेमदंडानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥ आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ॥ मुक्तादामविलंबीनि वितानानि द्युमंति च ॥ ३० ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नदीपान् भ्राजमानाँल्ललनारत्नसंयुतान् ॥ ३१ ॥ विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसंपदाम् ॥ तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥ ३२ ॥ नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ॥ महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥ ॥ ३३ ॥ नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ॥ पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥

थे ॥ ३१ ॥ इस घरमें अचानक कारणविना प्राप्त सकल संपदाओंकी समृद्धि देखकर, यह ब्राह्मण स्थिरचित्त हो, विचार करने लगा ॥ ३२ कि- जरूर मंदभाग्य और जन्मदरिद्री मुझको ऐसी संपदा मिलनेका कारण, महाविभूति भगवान्की कृपादृष्टिविना दूसरा कुछभी संभवे नहीं ॥ ३३ ॥ जैसे समुद्रको पूर्ण करनेवाला महाउदार मेघ किसी समय अधिकतर वृष्टिकोभी अल्प जान कर, मानों शर्माता हो, ऐसे समक्षमें न बरसता, रातमें बस्तीके लोगोंके सो जानेपर उनके खेतोंको जलसे पूर्ण कर देता है. तैसे मेरे सखा पूर्ण काम भगवान् श्रीकृष्णभी भक्तको देनेके लिये इंद्रादिक पदकोभी तुच्छ और उसके किये भजनको अधिक मान

पृथ्वीकी संपदा व सब सिद्धियोंकी कारण है, तौभी ॥ १९ ॥ भगवानने मुझे इस हेतुसे धन नहीं दिया कि–जो इस निर्धनको धन मिल जायगा, तौ बहुत मदोन्मत्त होकर, मेरा स्मरण भूल जायगा. इसीसे दयालु भगवानने थोड़ाभी धन नहीं दिया ॥ ॥ २० ॥ इस तरह मनमें विचार करताहुआ वह ब्राह्मण अपने घरके पास आया, जो वहां देखता है तौ सूर्य, अग्नि और चंद्रमाके समान प्रकाशमान विमान चारोंतर्फ शोभ रहे हैं ॥ २१ ॥ विचित्र बाग और बगीचोंमें पक्षियोंके झुंड शब्द कर रहे हैं, जलाशयोंके जलमें कुमुद, उत्पल, कल्हार व अंभोज डहडहा रहे हैं ॥ २२ ॥ सिंगार किये पुरुष व मृगनयनी नारियां शोभा-

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ॥ इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥ २० ॥ इति तच्चिंतयन्नंतः प्राप्तो निजगृहांतिकम् ॥ सूर्यानलेंदुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥ विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ॥ प्रोत्फुल्लकुमुदांभोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥ जुष्टं स्वलंकृतैः पुंभिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ॥ किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः ॥ प्रत्यगृह्णन्महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥ २४ ॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा ॥ निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कंठाऽश्रुलोचना ॥ मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरंतीं देवीं वैमानिकीमिव ॥ दासीनां निष्ककंठीनां मध्ये भांतीं स विस्मितः २७ ॥

यमान हो रही हैं. उन्हें देख, अचंभित हुआ कि– ‘ यह क्या ? यह स्थान किसका है ? यह ऐसा कैसे हो गया ? ’ ॥ २३ ॥ इसतरह वह ब्राह्मण विचार कर रहा था, इतनेमें देवतानके समान कांतिवाले नर नारी सघन गाजोंबाजोंके साथ धामधूमके साथ उस भाग्यशाली ब्राह्मणकी अगवाणी लेने आये ॥ २४ ॥ पति आनेके समाचार सुन, उसकी स्त्री अतिआनंदित हो, बड़े संभ्रमके साथ मूर्तिमान लक्ष्मीके समान तुर्त घरसे बाहिर निकली ॥ २५ ॥ पतिके दर्शन करतेही उस पतिव्रता स्त्रीके नेत्रोंमें प्रेम और उत्कंठासे अश्रु आगये, फिर उसने आंखें मूंदकर, दृढ़ भावसे प्रणाम कर, मनसे आलिंगन किया ॥ २६ ॥ विमानमें विराजमान

खाकर, क्या मुझेभी इसके आधीन करोगे ? ॥ ११ ॥ ब्राह्मण उस रात्रिको भगवान्‌के मंदिरमें रहा. वहा खा, पी, मानों वह स्वर्गमें आया हो वैसे सुख मानने लगा ॥ १२ ॥ महाराज ! दूसरे दिन सूर्योदय होतेही जगतरक्षक व स्वरूपानंदसे पूर्णरूप भगवान् प्रणाम कर. रस्तेमें कितनी एक दूर पहुंचानेको साथ जा, विनयके वचनोंसे उसे प्रसन्न कर, पीछे लौट आये. और वह ब्राह्मणभी अपने घरको पीछा लौट गया ॥ १३ ॥ न तो भगवानने उसे धन दिया और न उसने लाजके मारे मांगा. भगवानके दर्शनसे आनंदयुक्त हो, अपने घरको चला ॥ १४ ॥ जाते समय मनमें विचार करने लगा कि– अहो ! ब्रह्मण्यदेव भगवा-

ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमंदिरे ॥ भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वो भूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवंदितः ॥ जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नंदितः ॥ १३ ॥ स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्नतु याचितवान्स्वयम् ॥ स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ॥ यद्दरिद्रतमोलक्ष्मीमाश्लिष्टोबिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ॥ ब्रह्मबंधुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरंभितः ॥ १६ ॥ निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यंके भ्रातरो यथा ॥ महिष्या वीजितः श्रांतो वालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ॥ पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥

न्‌की ब्रह्मण्यता मैंने देखी. जो वक्षःस्थलमें लक्ष्मीको धारण करनेवाले भगवान मुझ महादरिद्रीसे मिले ॥ १५ ॥ दरिद्र और महापापी मैं तो कहां ? और लक्ष्मीके निवास भगवान् कहां ? मुझे केवल ब्राह्मणजाति जानकर, आप दोनों हाथ डालकर मुझसे मिले ॥ १६ ॥ प्रियाके सेवन करने योग्य पलँगपर जैसे भाइयोंको बैठावें, वैसे मुझे बैठाया. और मार्गका श्रम निवृत्त होनेको भगवान्‌की रानीने हाथमें चमर लेकर, मुझे पवन की ॥ १७ ॥ और देवदेव व ब्राह्मणदेव भगवानने उत्तम सेवा व पांव दाबने–आदिसे देवतानके समान मेरी पूजा की ॥ १८ ॥ यदपि भगवानके चरणकी सेवा, मनुष्योंके स्वर्ग, मोक्ष, पाताल व

॥ २ ॥ ३ ॥ शांतचित्त पुरुष भक्तिपूर्वक जो पत्र, पुष्प, फल, जल मुझे अर्पण करता है. वह भक्तिसे अर्पण करनेके कारण मैं स्वीकार करता हूं ॥ ४ ॥ महाराज ! इसप्रकार भगवान्ने कहा. तौभी लाजके मारे नीचा मुख कर, बैठेहुए सुदामाने लज्जासे लक्ष्मीके पति भगवान्को तंदुल नहीं दिये ॥ ५ ॥ आप तौ सब जीवोंके घट घटके साक्षी हैं. सो भगवान्ने उसके आनेका कारण जानकर, विचार किया कि– ‘ इस मेरे मित्रने प्रथम लक्ष्मीकी इच्छासे भजन नहीं किया, पर अभी अपनी पतिव्रता स्त्रीको प्रसन्न रखनेके लिये मेरे पास आया है, तौ देवतानको दुर्लभ ऐसी संपदा इसे मैं देऊंगा ’ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऐसा विचार कर,

पत्रं पुष्पं फलं तोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ॥ पृथुकप्रसृतिं राजन्नप्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥ सर्वभूतात्मदृक्साक्षात्तस्याऽऽगमनकारणम् ॥ विज्ञायाचिंतयन्नायं श्रीकामो माऽभजत्पुरा ॥ ६ ॥ पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ॥ प्राप्तो मामस्य दास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥ इत्थं विचिंत्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ॥ स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतंडुलान् ॥ ८ ॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ॥ तर्पयंत्यंग मां विश्वमेते पृथुकतंडुलाः ॥ ९ ॥ इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ॥ तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये ॥ अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥

उस ब्राह्मणसे चीथडेमें बंधेहुए तंदुल ‘ यह क्या है ? ’ ऐसे कहकर, भगवान्ने अपने हाथसे उसके वस्त्रमेंसे ले लिये. और बोले कि– ॥ ८ ॥ ‘ हे सखा ! यह तौ आप ऐसी चीज लाये हो, जो मुझे बड़ी प्यारी है. हे मित्र ! ये तंदुल तौ जगदात्मा मुझको बड़े प्रसन्न करते हैं ’ ॥ ९ ॥ ऐसे कहकर, तंदुलोंकी एक मुठ्ठी तौ आरोग गये. और दूसरी आरोगने लगे. तद भगवत्परायण श्री यानी लक्ष्मीकी अंशभूत लक्ष्मीने भगवान्का हाथ पकड़ा. और बोली कि– ॥ १० ॥ हे जगदात्मा ! इस लोक और परलोकमें भक्तकी जिस संपदाको देखकर, आप प्रसन्न होओ उस समृद्धिके लिये तौ इतनाही बहुत है. अब दूसरी मुठ्ठी

वृत्तांत हुए. वे आपको स्मरण हैं ? गुरुके अनुग्रहहीसे मनुष्य परिपूर्णरीतिसे शांतिको प्राप्त हो सक्ता है ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोला कि-हे देवदेव ! हे जगत्गुरु ! सत्यसंकल्प जो आप, उनके साथ हम गुरुके घरमें रहे, फिर हमारे किसीबातकी अपूर्णता क्यों रहे ? ॥ ४४ ॥ हे विभु ! कल्याणोंके उत्पत्तिक्षेत्र, वेदब्रह्म जिनकी मूर्ति हैं ऐसे आप गुरुके घर रहे, यह तो बिलकुल मनुष्यलीलाका अनुकरणमात्र है ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिका-

ब्राह्मण उवाच ॥ किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ॥ भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥ ४४ ॥ यस्य च्छंदोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो ॥ श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यंतविडंबनम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे श्रीदामचरितेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः ॥ सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ॥ प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन्खलु सतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् ॥ अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥

नाम भाषाटीकायां अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ इक्यासीवें अध्यायमें भगवान्‌ने सुदामाके तंदुल खाकर, उनके आश्रममें इंद्रकोभी दुर्लभ ऐसी लक्ष्मी रची, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- इसतरह उस द्विजोत्तमके साथ बातें करते सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् हँसकर, उस ब्राह्मणसे कहने लगे ॥ १ ॥ हँसी करते प्रेमभरी दृष्टिसे देखते सत्पुरुषोंके शरण, ब्राह्मणोंके भक्त भगवान बोले कि- हे ब्रह्मन् ! आप मेरेवास्ते घरसे क्या भेंट लाये हो ? भक्तलोग प्रेमसे जो किंचित् मात्रभी अर्पण करें, तौ उसे मैं बहुत करके मानता हूं. और अभक्तपुरुष बहुत अर्पण करे, तौभी मैं उसपै प्रसन्न नहीं होता

केवल फलहीके लिये अवलोकन किये गये वेद यातयाम यानी निःसार हो जाते हैं. प्रतिकूल ज्ञानरूप और दुसरे अर्थसे जाने गये ॥ २ ॥ तथा विना नियमोंसे शूद्रके समीपमें और पतितादिकोंसे व्याप्त स्थानमें पढे गये वेद निःसन्देह यातयाम यानी निःसार हो जाते हैं ॥ ३ ॥

इतनेमें सूर्य अस्त होगया, दिशाओंमें अंधेरा फैलगया, सब जलमय हो गया. इससे ऊंचा के नीचा कोई स्थल जान नहीं पड़ता था ॥ ३७ ॥ जलमय उस वनमें तेज पवन और वर्षासे आपन पीड़ायमान हो गये, दिशाओंकी बिलकुल खबर नहीं रही तद आतुर हो, परस्पर हाथ पकड़, शिरपर लकड़ियोंकी भारियां उठाये फिरते थे ॥ ३८ ॥ जद गुरुको इसबातकी खबर हुई, तद सूर्योदय होते-ही सांदीपनि गुरु आपनको हेरते हेरते आये और आतुर आपन शिष्योंको देखा ॥ ३९ ॥ और बोले कि– अहो ! हे पुत्रो !

सूर्यश्चास्तं गतस्तावत्तमसा चावृता दिशः ॥ निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ३७ ॥ वयं भृशं तत्र महानिलांबुभिर्निहन्यमाना मुहुरंबुसंप्लवे ॥ दिशो ऽविदंतोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥ एतद्विदित्वा उदिते रवौ सांदीपनिर्गुरुः ॥ अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥ अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ॥ आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ॥ यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥ ४१ ॥ तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः संतु मनोरथाः ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४२ ॥ इत्थं विधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ॥ गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णः प्रशातये ॥ ४३ ॥

मेरेवास्ते तुम बहुत दुःख पाये, देहधारियोंको आत्मा सबसे प्यारा है. पर तुमने उसकाभी अनादर करके, मेरी सेवा की ॥ ४० ॥ यह देह कि–जिससे सब पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं, उसको शुद्धभावसे गुरुके अर्पण करना, यही उत्तम शिष्योंके लिये कर्तव्य गुरुका प्रत्युपकार है ॥ ४१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, इस लोकमें तथा परलोकमें तुम्हारे मनोरथ सफल होवें. और मुझसे जो तुमने वेद पढ़े हैं, वे अयातयाम यानी सार भरे होवें ॥ ४२ ॥ आपन गुरुके घर रहते थे, वहां ऐसे ऐसे कई

---

१ अम्नायात्तु विनिर्मुक्ता अनध्याये तथा स्मृताः । अयाज्ये याजिताश्चैव निषिद्धाय च पाठिताः ॥ १ ॥ फलार्थं योजिता दृष्टा यातयामा भवंति हि ॥ अन्यथा ज्ञानरूपाश्च अन्यार्थप्रतिबोधिताः ॥ २ ॥ अव्रतैः शूद्रसंकाशे पातित्याद्याकुले स्थले ॥ अधीता सर्वथैवैते यातमाया भवंति हि ॥ ३ ॥ अर्थ–आम्नाय यानी गुरुपरंपरागत समुपदेशसे, छूटे हुए तथा अनध्यायमें स्मरण किये हुये और अयाज्य यानी जो यज्ञकरानेलायक नहीं उसको यज्ञ कराये गये तथा जो निषिद्ध है उसे पढ़ाये गये ॥ १ ॥ और

लंपट नहीं होता होगा ? और वस्त्रआदि भोग्य वस्तुपरभी आपकी अधिकतर रुचि न होगी ? विद्वानोंको ऐसाही रखना चाहिये ॥ २९ ॥ ईश्वरकी मायासे रचित विषयवासनाओंका त्याग करतेहुए कितनेएक लोग मेरे समान लोकमर्यादाके वास्ते विषयोंमें आसक्त न होनेपरभी कर्म करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! आपन गुरुके घरमें सामिल रहे, सो आपको स्मरण है ? जहां रहनेसे द्विजलोग आत्मतत्त्वको जानकर, संसारसे पार हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ इस जगतमें तीन गुरु हैं, एक तौ जन्म देनेवाला, दूसरा उपनयन संस्कार करके वेद पढानेवाला, तीसरा आश्रमवासियोंको ब्रह्मविद्या देनेवाला इन तीनोंमेंसे पहला गुरु तौ पूज्य है.

केचित्कुर्वंति कर्माणि कामैरहतचेतसः ॥ त्यजंतः प्रकृतीर्दैवीर्यथाऽहं लोकसंग्रहम् ॥ ३० ॥ कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन्स्मरसि नौ यतः ॥ द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥ ३१ ॥ स वै सत्कर्मणां साक्षाद्विजातेरिह संभवः ॥ अद्योऽग यात्राऽऽश्रमिणां यथाऽहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२ ॥ नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन्वर्णाश्रमवतामिह ॥ ये मया गुरुणा वाचा तरंत्यंजो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ॥ तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥ अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन्वृत्तं निवसतां गुरौ ॥ गुरुदारैश्चोदितानामिंधनानयने क्वचित् ॥ ३५ ॥ प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद्द्विज ॥ वातवर्षमभूत्तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥

दूसरा मेरे बराबर पूज्य है, तीसरा तौ मेराही स्वरूप है ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस मनुष्यजन्ममें वर्णाश्रमवाले जो पुरुष साक्षात् मेरे स्वरूप ज्ञानप्रद गुरुके उपदेशसे अनायासपूर्वक संसाररूप समुद्रको तिर जाते हैं. उन्हें अपना अर्थसाधन करनेमें चतुर समझना चाहिये ॥ ३३ ॥ सब भूतोंका आत्मा मैं जैसा गुरुसेवासे संतुष्ट होता हूं, ऐसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वानप्रस्थ और संन्यासधर्मसे प्रसन्न नहीं होता ॥ ३४ ॥ हे द्विज ! आपन गुरुके घरमें रहते थे. उस समय गुरुस्त्रीने आपनको लकड़ी लेनेको वनमें भेजा. वहां दैवगतिसे जो कुछ हुआ, वह आपको याद है ? ॥ ३५ ॥ हे द्विज ! लकड़ी लेनेको आपन बड़े जंगलमें घुसे. वहां वर्षाऋतु नहीं थी, पर महातीव्र वायुके साथ बरसा होने लगी. और बड़ी कठोर गर्जना होने लगी ॥ ३६ ॥

चरणोंका जल शिरपर चढ़ाया. महाराज! फिर दिव्य गंध, चंदन, अगरु व केशर इनका अरगजा लगाय, ॥ २० ॥ २१ ॥ सुगंधि धूप और दीप मालासे प्रीतिपूर्वक उसका पूजन कर, तांबूल तथा गौ निवेदन कर, स्वागत वचन कहे ॥ २२ ॥ जीर्णवस्त्र पहने, मलिन, दुर्बल, नसोंसे व्याप्तशरीर उस ब्राह्मणको शैब्या नाम रानी चमरसे पवन करनेलगी ॥ २३ ॥ अमलकीर्ति श्रीकृष्णभगवान्ने उस मलिन ब्राह्मणका अतिप्रीतिपूर्वक सत्कार किया. सो देखकर, अंतःपुरके लोग विस्मय करने लगे ॥ २४ ॥ कि-निर्धन

धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ॥ अर्चित्वाऽऽवेद्य तांबूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ॥ देवी पर्यचरच्छैब्या चामरव्यजेनन वै ॥ २३ ॥ अंतःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना ॥ विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥ किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ॥ श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ॥ २५ ॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः ॥ पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥ २६ ॥ कथयांचक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ॥ आत्मनोर्ललिता राजन्करौ गृह्य परस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अपि ब्रह्मन्गुरुकुलाद्भवता लब्धदक्षिणात् ॥ समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ २८ ॥ प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा ॥ नैवातिप्रीयसे विद्वन्धनेषु विदितं हि मे ॥ २९ ॥

अधम, निंदित, लक्ष्मीहीन इस मलिन भिखारीने इसलोकमें ऐसा क्या पुण्य किया होगा ? जिससे लक्ष्मीनिवास, त्रिलोकीके गुरु भगवान्ने इसका आदर किया. और पलँगपर बैठेहुए लक्ष्मीजीको छोड़कर, जैसे ज्येष्ठभाईसे मिलें, वैसे इससे मिले ॥ २५ ॥ २६ ॥ महाराज आपसमें हाथ पकड़, वे दोनों प्रथम स्वयं गुरुके घरमें रहे उस संबंधी अपनी सुंदर बातें करने लगे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! हे धर्मज्ञ ! आपने गुरुको गुरुदक्षिणा दे, गुरुके घरसे आकर, आपके योग्य स्त्रीके साथ व्याह किया के हहीं ? ॥ २८ ॥ हे विद्वान् ! मैं अनुमानसे जानता हूं कि-घरमेंभी बहुतकरके आपका चित्त विषयोंमें

---

१ चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाऽद्यं गुरौ द्विजः ॥ द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥ अर्थ-आयुका पहला चौथा भाग यानी पचीस बरसतक गुरुके पास रहके, ब्राह्मण आयुके दूसरे भागमें यानी पचीस बरसकी उमरके ऊपर विवाह करके, घरमें रहे ॥ १ ॥

करते हैं. तासों आपकोभी देंगे' इसतरह स्त्रीने कोमलतासे बहुत बेर प्रार्थना की. तद 'अच्छा, भगवान्के दर्शन तौ होंगे यही बड़ा लाभ होगा' ॥ १२ ॥ ऐसे मनमें विचार कर, उसने जानेका विचार किया. और अपनी स्त्रीसे कहा कि- 'हे कल्याणि ! घरमें कुछभी भेंटके लायक पदार्थ हो तो दे' ॥ १३ ॥ इस ब्राह्मणीने ब्राह्मणोंसे चार मुठ्ठी तंडुल मांग, चीथड़ेमें बांधकर, अपने स्वामीको भेंट दी ॥ १४ ॥ वह उत्तम ब्राह्मण तंडुल ले, मुझे भगवान्के दर्शन किस तरह होंगे ? इसतरह विचार करता करता द्वारका पहुँचा ॥ १५ ॥ धर्मधारी व अगम्य जो अंधक और वृष्णि उनके घरोंके बीचमें हो, तीन चौकी और तीन डेवढ़ी

इति संचिंत्य मनसा गमनाय मतिं दधे ॥ अप्यस्त्युपायनं किंचिद्गृहे कल्याणि दीयताम् ॥ १३ ॥ याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतंडुलान् ॥ चैलखंडेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥ स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल ॥ कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिंतयन् ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ॥ विप्रोऽगम्यांधकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥ गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ॥ विवेशैकतमं श्रीमद्ब्रह्मानंदं गतो यथा ॥ १७ ॥ तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः ॥ सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरंगसंगातिनिर्वृतः ॥ प्रीतो व्यमुंचदब्बिंदून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥ १९ ॥ अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणम् ॥ उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥ अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः ॥ व्यलिंपद्दिव्यगंधेन चंदनागुरुकुंकुमैः ॥ २१ ॥

उल्लंघन कर, वह ब्राह्मण सोलह हजार स्त्रियोंमेंसे एक स्त्रीके सुंदर घरमें प्रविष्ट हुआ वहां उसे ऐसा अनुभव हुआ कि-मानों मैं ब्रह्मानंदको प्राप्त हुआ हूं ॥ १६ ॥ १७ ॥ प्यारीके पलँगपर विराजमान भगवान् दूरसे उस ब्राह्मणको देख, पलँगसे उठ, त्वरित सन्मुख आये और प्रेमसे दोनों बांह पसार, उससे मिले ॥ १८ ॥ अपने प्रियमित्र विप्रके अंगस्पर्शसे अतिआनंदयुक्त कमलनयन भगवान्के नेत्रोंमेंसे प्रेमके कारण अश्रुके जलबिंदु गिरने लगे ॥ १९ ॥ फिर उस प्रियमित्र ब्राह्मणको पलँगपर बैठाय, उसकी पूजाके निमित्त सब सामग्री अपने हाथसे लाकर, भगवानने उसके चरण धोये. और आप स्वयं लोकपावन हैं, तौभी आपने उसके

वन करें वे अंग सफल हैं ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि–इसतरह परीक्षितने प्रश्न किया. तद भगवान्‌में निमग्नचित्त होकर, शुकदेवजी बोले ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–श्रीकृष्णका कोई एक ब्राह्मण सखा था. जो बड़ा ब्रह्मवेत्ता, इंद्रियोंके विषयोंमें विरक्त, शांतचित्त, जितेंद्रिय गृहस्थाश्रममें रहनेपरभी दैवइच्छासे प्राप्त पदार्थसे अपना निर्वाह करता था, उस चीथड़े पहरनेवाले ब्राह्मणकी स्त्रीभी वैसीही भूखके मारे दुबली थी ॥ ६ ॥ ७ ॥ पतिव्रता, दरिद्र व सीदायमान वह स्त्री कुम्हलाते मुखसे कांपती-

सूत उवाच ॥ विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः ॥ वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्याऽऽसीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ विरक्त इंद्रियार्थेषु प्रशांतात्मा जितेंद्रियः ॥ ६ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ॥ तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा ॥ ७ ॥ पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ॥ दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाऽभिगम्य च ॥ ८ ॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियःपतिः ॥ ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥ तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् ॥ दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुंबिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ किन्न्वर्थकामान्भजतो नात्यभीष्टान् जगद्गुरुः ॥ ११ ॥ स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु ॥ अयं हि परमोलाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ १२ ॥

हुई पतिके पास आकर, बोली ॥ ८ ॥ कि– ‘ हे ब्रह्मन्! साक्षात् लक्ष्मीके पति ब्राह्मणोंके भक्त, शरणागतवत्सल, भगवान् यदुश्रेष्ठ आपके मित्र हैं सो ॥ ९ ॥ हे महाभाग ! सत्पुरुषोंके शरण श्रीकृष्णके पास जाओ. मैं जानती हूं कि,–यदि आप जाओगे तौ सीदायमान और कुटुंबी आपको देखकर, प्रभु बहुत धन देंगे ॥ १० ॥ अभी वे यदुपति भगवान् द्वारकामें विराजे हैं. सो उनके आदर करनेसे औरभी यादव आपको धन देंगे और भगवान् आपको धन न देंगे ऐसा संकोच मत करो; क्योंकि जो उनके चरणकमलका स्मरण करता है. उसे वे अपना स्वरूपभी दे देते हैं ॥ ११ ॥ अभी जगतरूप भगवान् आपभी, अतिइष्ट नहीं ऐसे, विषय और अर्थका सेवन

शोभायान होवे, तैसे अपनी स्त्रीके साथ शोभा देते थे ॥ ३२ ॥ महाबल, अनंत, अप्रमेय, मायासे मनुष्यरूप बलदेवजीके ऐसे ऐसे असंख्यात चरित्र हैं ॥ ३३ ॥ अद्भुतचरित बलदेवजीके चरितोंका जो पुरुष सांझ और प्रातः स्मरण करे, वह भगवान्का प्यारा हो जाय ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ अस्सीवें अध्यायमें, धनके लोभसे घर आये श्रीदामाका पूजन कर, आनंदपूर्वक उनसे गुरुके घर रहनेकी बातें पूंछीं, यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि-हे भगवन् ! हे प्रभु ! अनंतपराक्रम और महानुभाव भग-

ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य संति हि ॥ ३३ ॥ योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥ सायं प्रातरनंतस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्यानि चान्यानि मुकुंदस्य महात्मनः ॥ वीर्याण्यनंतवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥ कोनु श्रुत्वा सकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ॥ विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥ सा वाग्यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ॥ स्मरेद्वसंतं स्थिरजंगमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥ शिरस्तु तस्योभयलिंगमानमेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ॥ अंगानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजंति नित्यम् ॥ ४ ॥

वान्के औरभी चरित्र मैं सुनना चाहता हूं ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! भगवान्की मनोहर कथायें एकवारभी सुन कर, कौन सारग्राही पुरुष, कि-जो कामदेवके बाणोंसे खेदित है, उनसे विराम पावें ? ॥ २ ॥ जो भगवान्के गुण गावे वही वाणी सफल है, जो भगवान्की सेवा करें वे हाथ सफल हैं, जो स्थावर जंगममें रहे हुए भगवान्का स्मरण करे वह मन सफल है. जो पवित्र कथा सुनें वे कान सफल हैं ॥ ३ ॥ जो स्थावरजंगमरूप भगवत्मूर्तिको प्रणाम करे वह शिर सफल है, जो भगवान्के दर्शन करें वे नेत्र सफल हैं, जो भगवान्के और भगवद्भक्तोंके चरणोदकका नित्य से-

व, श्रीकृष्ण, अर्जुन व युधिष्ठिर ये सब उन्हें प्रणाम कर, 'बलदेवजी यहां क्यों आये हैं ? और क्या कहेंगे ?' ऐसे डरतेहुए चुप हो गये ॥ २४ ॥ क्रोधयुक्त, जयकी इच्छावाले, गदा हाथमें लिये, विचित्र दावँ करते भीमसेन और दुर्योधनको देखकर, बलदेवजी बोले कि- ॥ २५ ॥ हे राजा दुर्योधन ! हे भीमसेन ! तुम दोनों समानबल वीर हो. मैं जानता हूं कि-एकतो बलमें अधिक है और दूसरा शिक्षामें अधिक है ॥ २६ ॥ इसवास्ते समबल तुम दोनोंमेंसे किसीका जय पराजय तो होता दीखे नहीं. फिर निष्फल यह युद्ध बंद रहना चाहिये ॥ २७ ॥ महाराज ! एक दूसरेके दुर्वचन और कुकृत्यका स्मरण करते बद्धवैर उन

गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ॥ मंडलानि विचित्राणि चरंताविदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन्हेवृकोदर ॥ एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाऽधिकम् ॥ २६ ॥ तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ॥ न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥ २७ ॥ न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् ॥ अनुस्मरंतावन्योऽन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥ २८ ॥ दिष्टं तदनु मन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ॥ उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥ तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा ॥ क्रत्वंगं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान्व्यतरद्विभुः ॥ येनैवाऽऽत्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥ ३१ ॥ स्वपत्न्याऽवभृथस्नातो ज्ञातिबंधुसुहृद्वृतः ॥ रेजे स्वज्योत्स्नयेवेंदुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ॥ ३२ ॥

दोनोंने बलदेवजीके अर्थवाले वचनपर ध्यान नहीं दिया ॥ २८ ॥ तब उन्होंने विचार किया, कि- दैवकी मरजी ऐसीही है. ऐसे विचार कर, द्वारका पधारे, उग्रसेन-आदि सब ज्ञाति प्रसन्न हुए और उनसे मिले ॥ २९ ॥ सर्व क्लेशरहित यज्ञमूर्ति बलदेवजी पीछे नैमिषारण्यवन पधारे. वहां ब्राह्मणोंने प्रीतिसे उन्हें सब यज्ञोंसे यजन करवाया ॥ ३० ॥ प्रभु बलदेवजीने उन ऋषियोंको शुद्धज्ञान दिया, जिससे आत्मारूप अधिष्ठानमें यह जगत् रहा है, और जगतमें आत्मा व्याप्त है, ऐसा निश्चय होता है ॥ ३१ ॥ अवभृथस्नान कर, ज्ञाति, बंधु और मित्रोंसे वेष्टित सुंदर वस्त्र व आभूषण धारण किये बलदेवजी चंद्रमा जैसे अपनी चंद्रिकासे

बंध वहां पधारे ॥ १५ ॥ वहां जाकर, बलदेवजीने ब्राह्मणोंको दश हजार गोदान दिये, फिर कृतमाला, ताम्रपर्णी, कुलाचल मलय-पर्वतपै पधारे. वहां अगस्त्यजी विराजते थे. उन्हें नमस्कार व अभिवंदन कर उनसे आशीर्वाद और आज्ञा ले, दक्षिणसमुद्र पधारे ॥ १६ ॥ १७ ॥ वहां कन्या नाम दुर्गाके दर्शन कर, फाल्गुन तीर्थपर आय, उत्तम पंचाप्सर नाम तीर्थपर पधारे. जहां विष्णु भगवान् सदा सन्निहित हैं. उसमें स्नान कर, दश हजार गोदान दिये ॥ १८ ॥ फिर केरल व त्रिगर्त देशमें गोकर्ण-

तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ॥ कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥ १६ ॥ तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ॥ योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ॥ दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥ १७ ॥ ततः फाल्गुनमासाद्य पंचाप्सरससुत्तमम् ॥ विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद्गवायुतम् ॥ १८ ॥ ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ॥ गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥ १९ ॥ आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः ॥ तापीं पयोष्णीं निर्विंध्यामुपस्पृश्याथ दंडकम् ॥ २० ॥ प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मतीपुरी ॥ मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपांडवसंयुगे ॥ सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥ २२ ॥ स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ॥ वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनंदनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ॥ अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥ २४ ॥

नाम तीर्थ पधारे. जिस महादेवजीके क्षेत्रमें महादेवजी सदा सन्निहित हैं ॥ १९ ॥ फिर आर्या द्वैपायनीका दर्शन कर, शूर्पारकतीर्थ पधारे, तदनंतर बलदेवजी तापी पयोष्णी व निर्विंध्या नदीमें स्नानकर, दंडकारण्य वनमें होते रेवा (नर्मदा) पर पधारे. जहां माहिष्मतीनाम पुरी है, वहां मनुतीर्थमें स्नान कर, पीछे प्रभास पधारे ॥ २० ॥ २१ ॥ वहां ब्राह्मणोंके कहनेसे कौरव पांडवोंके युद्धमें सब राजाओंका नाश हुआ यह सुनकर, उन्होंने विचार किया कि-ठीक हुआ पृथ्वीका भार उतर गया ॥ २२ ॥ भीमसेन और दुर्योधन गदायुद्ध करते हैं, ये समाचार सुन, उन्हें मना करनेको बलदेवजी कुरुक्षेत्र पधारे ॥ २३ ॥ नकुल, सहदे-

प्रहारसे टूटे हुए अरुण पर्वतके समान आर्तस्वर करता पृथ्वीपर पड़ा ॥ ६ ॥ महाभाग मुनिलोगोंने बलदेवजीकी स्तुति कर, सत्य आशीर्वाद दे, देवता जैसे इंद्रका अभिषेक करें वैसे उनका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ लक्ष्मीकी धाम और जिसके कमल कुह्मलावें नहीं ऐसी वैजयंतीनाम माला, दिव्य वस्त्र व दिव्य आभूषण दिये ॥ ८ ॥ फिर मुनिलोगोंसे आज्ञा ले, ब्राह्मणोंके साथ कौशिकीनाम नदीपै आय, स्नान कर, जिससे सरयू नदी निकली है उस सरोवरपै आये ॥ ९ ॥ फिर सरयूके तीर तीर, प्रयागमें आ, स्नान कर, देवा-

संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः ॥ अभ्यषिंचन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥ ७ ॥ वैजयंतीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपंकजाम् ॥ रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानिच ॥ ८ ॥ अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ॥ स्नात्वा सरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥ अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ॥ स्नात्वा संतर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमम् ॥ १० ॥ गोमतीं गंडकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः ॥ गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गंगासागरसंगमे ॥ ११ ॥ उपस्पृश्य महेंद्राद्रौ रामं दृष्ट्वाऽभिवाद्य च ॥ सप्तगोदावरीं वेणां पंपां भीमरथीं ततः ॥ १२ ॥ स्कंदं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ॥ द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाऽद्रिं वेंकटं प्रभुः ॥ १३ ॥ कामकोष्णीं पुरीं कांचीं कावेरीं च सरिद्वराम् ॥ श्रीरंगाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ॥ सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥

दिकनका तर्पण कर, हरिद्वार आये ॥ १० ॥ गोमती, गंडकी और विपाशामें स्नान कर, शोणनदमें न्हाये, फिर गयामें जा, पितृतर्पण कर, गंगासागरमें स्नान किया ॥ ११ ॥ महेंद्रपर्वतपर परशुरामजीके दर्शन व प्रणाम कर, सप्तगोदावरी, वेणा पंपा और भीमरथीमें न्हाय, स्वामीकार्तिकके दर्शन कर, महादेवजीके निवास श्रीशैल पर्वतपर जाय, द्रविड़देशमें महापवित्र वेंकटाचलका दर्शन किया ॥ १२ ॥ १३ ॥ फिर कामकोष्णी, कांचीपुरी, उत्तमनदी कावेरी, जाकर, महापवित्र श्रीरंगक्षेत्र पधारे. जहां हरि भगवान् सन्निहित विराजे हैं ॥ १४ ॥ हरिका क्षेत्र ऋषभाचल व दक्षिण मथुरा जाकर, महापातकोंका नाश करनहारा जो सेतु-

फिर अच्छीतरह सावधान हो बर्षतक भारतवर्षकी प्रदक्षिणा कर. तीर्थस्नान करो जिससे आप पवित्र हो जाओगे ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ उन्हत्तरवें अध्यायमें ब्राह्मणोंका प्रिय करनेको बलदेवजीने बल्वलका वध किया. और तीर्थयात्रासे सूतकी हत्याका प्रायश्चित्त किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! फिर पर्व आयी. तो उसदिन भयंकर और प्रचंड पवन चलने लगी, धूल बरसने. लगी और चारोंओर पूयकी बदबू फैल गयी ॥ १ ॥ फिर यज्ञशालामें बल्वलकी बरसायी अप-

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥ चरित्वा द्वादशमासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ३९ ॥ इ० भा० म० द० उ० बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचंडः पांसुवर्षणः ॥ भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगंधस्तुसर्वशः ॥ १ ॥ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ॥ अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नांजनचयोपमम् ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रूकुटीमुखम् ॥ ३ ॥ सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ॥ हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ॥ मुसलेनाहनत्क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥ सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक्समुत्सृजन् ॥ मुंचन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥

वित्र पदार्थोंकी वर्षा होने लगी और त्रिशूल धारण किये वह दैत्यभी दीखपड़ा ॥ २ ॥ टूटे हुए अंजनके पुंजके समान, महाकाय, तपेहुए तांबेकीसी लाल शिखा और दाढ़ी मूंछवाले, दाढ़ें और भृकुटीसे भयंकरमुख, उस दैत्यको देख, शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेवाले मुसल, और दैत्योंका दमन करनेवाले हलका बलदेवजीने स्मरण किया, वे दोनों हल, मुसल तुर्त आ, उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥ बलदेवजीने क्रोधमें आ, आकाशमें विचरते उस ब्रह्मद्रोही बल्वल दैत्यको हलके अग्रसे खींचकर, उसके शिरमें मुसलका प्रहार किया ॥ ५ ॥ जिससे ललाट फूटगया. और रुधिरकी धारा बहने लगी और रुधिरसे रक्त वह दैत्य वज्रके

बलदेवजी बोले कि-जगतमर्यादाके रक्षार्थ मैं प्रायश्चित्त करूंगा, सो मुख्यपक्षमें जो नियम होवे सो मुझे बताओ ॥ ३२ ॥ इस रोमहर्षणकी दीर्घ आयुष्य, बल, इंद्रिय सामर्थ्य होनेमें जो आपकी इच्छा होवे सो कहो, जो आप आज्ञा करें, वैसाही मेरी योगमायाके प्रभावसे करूं ॥ ३३ ॥ मुनि बोले कि-हे बलदाऊ ! जिसतरह आपके अस्त्रकी, पराक्रमकी और मृत्युकी सत्यता होवे और आपने जो वचन हमसे कहा है, वहभी सत्य हो जाय, वैसे करो ॥ ३४ ॥ बलदेवजीने कहा कि-

श्रीभगवानुवाच ॥ करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम् ॥ ३२ ॥ दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिंद्रियमेव च ॥ आशासितं यत्तद्ब्रूत साधये योगमायया ॥ ३३ ॥ ऋषय उचुः ॥ अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ॥ यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ॥ तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिंद्रियसत्त्ववान् ॥ ३५ ॥ किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ॥ अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिंत्यतां बुधाः ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलोनाम दानवः ॥ स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥ ३७ ॥ तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ॥ पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३८ ॥

'पिताही पुत्ररूप उत्पन्न होता है' ऐसी वेदकी आज्ञा है सो इसका पुत्र उग्रश्रवा तुम्हें पुराण सुनावेगा. और आयुष्य, इंद्रियशक्ति व शरीरके बलसे संपन्न होगा, ॥ ३५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! आपके दूसरी किस बातकी इच्छा है ! सो हमें कहो, आप जो कहेंगे सो मैं करूंगा. हे बुधलोगो ! मैं प्रायश्चित्त नहीं जानता इसलिये उसकाभी विचार करो ॥ ३६ ॥ ऋषि बोले कि-इल्वलका पुत्र बल्वल नाम घोर दैत्य प्रत्येक पर्वमें आकर, हमारे यज्ञको दूषित करता है ॥ ३७ ॥ हे दाशार्ह ! इस पापी दैत्यको मारो. जो हमारे यज्ञको पूय, रुधिर, विष्ठा, मूत्र मद्य, मांसकी वर्षा करके, भ्रष्ट करदेता है यह हमारी बड़ी सेवा होगी ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणों और धर्मपालक हमसेभी ऊंचे आसनपर क्यों बैठा है ? इस अपराधसे यह दुर्बुद्धि वधके योग्य है ॥ २४ ॥ भगवान् वेदव्यासजीका शिष्य हो, इतिहास व पुराणसहित सब धर्मशास्त्र पढ़करभी, यह सूत ऐसा आचरण रखता है ॥ २५ ॥ सत्य है जो नटकी तरह वेष धरनेवाले, अजितेंद्रिय, अजितचित्त, विनयरहित, वृथा पंडिताभिमानी पुरुष हैं उनके शास्त्राभ्यासभी गुणकारक नहीं होता ॥ २६ ॥ इस लोकमें मैंने इसीवास्ते अवतार धारण किया है. कि-धर्मध्वजी पुरुषोंको मारना; क्योंकि वे सबसे बढ़के, पापी होते हैं ॥ २७ ॥ यद्यपि उन्होंने दुष्टोंका वध करना त्यागदिया था तौभी भावी ऐसाही था' इसलिये इतना

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ॥ सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ अदांतस्याविनीतस्य वृथा पंडितमानिनः ॥ न गुणाय भवंति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥ २६ ॥ एतदर्थो हि लोकेस्मिन्नवतारो मया कृतः ॥ वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि ॥ भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हाहेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ॥ ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥ अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनंदन ॥ आयुश्चात्माक्लमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ॥ अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ॥ ३० ॥ योगेश्वरस्य भवतो नाम्ना योपि नियामकः ॥ यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ॥ चरिष्यति भवाँल्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३१ ॥

कहकर, उन्होंने हाथमें रहे हुए दाभके अग्रसे उसे मार दिया ॥ २८ ॥ तद सब मुनिलोग हाहाकार करने लगे. और खिन्नचित्त हो, बलदाऊजीसे बोले कि-हे प्रभु ! आपने अधर्म किया ॥ २९ ॥ हे यदुनंदन ! यज्ञ समाप्त होवे तबतक हमारे पास पुराणोंकी कथा कहनेके लिये हमने इस सूतको ब्रह्मासन दिया था, और शरीर खेदित न होवे ऐसी आयुष्यभी दी थी. आपने अनजानमें यह ब्रह्महत्याकासा काम किया ॥ ३० ॥ हे लोकपावन ! आप योगेश्वर हो इसलिये आपको वेदमें कहा हुआ ब्रह्महत्याका निषेध नहीं लगता, तौभी आप स्वयं इस ब्रह्महत्याके समान पापका प्रायश्चित्त करोगे तभी जगतकी मर्यादा रहेगी ॥ ३१ ॥

यादवोंको साथ ले, शोभायमान कीहुई पुरीमें प्रभुने प्रवेश किया ॥ १४ ॥ १५ ॥ इस तरह योगेश्वर व जगदीश्वर श्रीकृष्ण-भगवान् सदा जयही पाते हैं. पर किसी समय पशुबुद्धियोंको जरासंधादिकसे हार गये ऐसेभी प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ (अब कुछ बलदेवजीके चरित कहते हैं) कौरव व पांडवोंके युद्धका उद्यम सुन, बलदेवजी निरपेक्ष होनेसे तीर्थयात्राका मिस कर, द्वारकामेंसे निकल गये ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंको संग ले, बलदेवजी प्रभासमें स्नान कर, देव, ऋषि, पितर व मनुष्योंको तृप्त कर, सरस्वती नदीके सन्मुख चले ॥ १८ ॥ महाराज ! पृथूदक, बिंदुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाल, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, प्राची

एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवान् जगदीश्वरः ॥ ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥ १६ ॥ श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पांडवैः ॥ तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥ १७ ॥ स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ॥ सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥ १८ ॥ पृथूदकं बिंदुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ॥ विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९ ॥ यमुनामनु यान्येव गंगामनु च भारत ॥ जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥ २० ॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ॥ अभिनंद्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥ २१ ॥ सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ॥ रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥ २२ ॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणांजलिम् ॥ अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३ ॥ तस्मादसाविमान्विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ॥ धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४ ॥

(पश्चिमवाहिनी) सरस्वती, यमुना व गंगाके अनुसरते तीर्थोंमें होते हुए नैमिषारण्यवन पधारे. जहां ऋषिलोग सत्र (याग) कर रहे थे ॥ १९ ॥ २० ॥ दीर्घ सत्रवाले वे मुनिलोग उन्हें पहचानकर, प्रत्युत्थान, प्रणाम व न्यायपूर्वक अभिवंदन कर, पूजा करने लगे ॥ २१ ॥ परिवारसहित बलदेवजी आदर पाय, आसन स्वीकार कर, विराजे. वहां वेदव्यासजीका शिष्य रोमहर्षण आपकी दृष्टिमें आया ॥ २२ ॥ यह सूतजाति होकर, उन सब ब्राह्मणोंसे ऊंचे आसनपर बैठाहुआ था. न तो इसने प्रत्युत्थान किया. न नम्रता की. और न हाथ जोड़े, तद उसे देखकर, उन्हें क्रोध हुआ ॥ २३ ॥ ' यह प्रतिलोमजाति होकर, इन

मेरे मित्रोंके ऋणसे उरिण होऊंगा ' ॥ ६ ॥ जैसे अंकुशोंसे हाथीको पीडित करें, वैसे ऐसे रूखे वचनोंसे श्रीकृष्णको पीड़ायमान करते दंतवक्रने श्रीकृष्णचंद्रके शिरपर गदाका प्रहार किया. और सिंहके समान गर्जना की॥ ७॥ गदा लगनेपरभी भगवान युद्धमें कंपित नहीं हुए. और अपनी कौमोदकी नाम भारी गदा भगवानने उसकी छातीमें मारी ॥ ८ ॥ गदाके लगतेही उसका हृदय फटगया. और मुंहमेंसे लोहू उगलता वह दैत्य, पृथ्वीपर केश व हाथ पांव पसार, प्राणरहित होकर, गिर गया ॥ ९ ॥ महाराज ! शिशुपालका तेज जैसे भगवान्‌में प्रवेश हुआ. तैसे दंतवक्रका अतिसूक्ष्म तेजभी सब लोगोंके देखते भ-

एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् ॥ गदयाऽताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥ गदयाऽभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ॥ कृष्णोऽपि तमहन्गुर्व्या कौमोदक्या स्तनांतरे ॥ ८ ॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रुधिरं मुखात् ॥ प्रसार्य केशबाह्वंघ्रीन्धरण्यां न्यपतद्व्यसुः ॥ ९ ॥ ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥ ॥ १० ॥ विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ॥ आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥ तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ शिरो जहार राजेंद्र सकिरीटं सकुंडलम् ॥ १२ ॥ एवं सौभं च शाल्वं च दंतवक्रं सहानुजम् ॥ हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥ मुनिभिः सिद्धगंधर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ॥ अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥ १४ ॥ उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ॥ वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतां पुरीम् ॥ १५ ॥

गवान्‌में प्रवेश हुआ ॥ १० ॥ भाईके शोचसे व्याप्त दंतवक्रका भाई विदूरथ भगवान्‌को मारनेका विचार कर, हँफता हँफता ढाल तलवार लेकर, आया ॥ ११ ॥ महाराज ! यह विदूरथ आ रहा था. इतनेमें भगवान्‌ने छूरेसी धारवाले चक्रसे उसका किरीटकुंडलसहित शिर उड़ा दिया ॥ १२ ॥ इस तरह सौभविमान, शाल्व, दंतवक्र और उसका छोटा भाई विदूरथ कि—जो ये सब अन्य पुरुषोंसे अजेय थे उनके मारनेसे देवता और मनुष्य भगवानकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ मुनि, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, बड़े बड़े नाग, अप्सरा, पितृगण, यक्ष, किन्नर, चारण, ये सब उनके विजयका चरित्र गाय गाय, फूल बरसा रहे थे. तद

महाराज ! इस पापी शाल्वके मरने और सौभ विमानके गदासे टूटनेपर आकाशमें देवताओंके दुंदुभि बजने लगे, फिर मित्रोंका बदला लेनेको क्रोध करके, दंतवक्र आया ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ अठत्तरवें अध्यायमें दंतवक्र और विदूरथको मार, भगवान द्वारकामें रमण करने लगे. तदनंतर बलदेवजीने रोमहर्षणका बध किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! शिशुपाल, शाल्व व पौंड्रक इनके मर जानेपर परोक्षमें स्नेह दिखलाता, इकला, प्यादल, महाबलिष्ठ, हाथमें गदा

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥ नेदुर्दुंदुभयोराजन्दिवि देवगणेरिताः ॥ सखीनामपचितिं कुर्वन्दंतवक्रो रुषाऽभ्यगात ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे सौभवधो- नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिशुपालस्य शाल्वस्य पौंड्रकस्यापि दु- र्मतिः ॥ परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकंपय- न् ॥ पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥ तं तथायांतमालोक्य गदामादाय सत्वरः ॥ अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिंधुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्य कारूषो मुकुंदं प्राह दुर्मदः ॥ दि- ष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥ त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्मां जिघांससि ॥ अतस्त्वां गदया मंद हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥ तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ॥ बंधु- रूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

धारण किये, पांवोंसे पृथ्वीको कंपायमान करता, महाक्रोधयुक्त, दुर्मति दंतवक्र देखनेमें आया ॥ १ ॥ २ ॥ इसतरह आतेहुए उस दंतवक्रको देख, भगवान् तुर्त रथसे नीचे उतरे और गदा ले, वेला जैसे समुद्रको रोकती है, वैसे उसे रोंक दिया ॥ ३ ॥ मदो- न्मत्त दंतवक्र गदा उठाकर, भगवान्से कहने लगा कि– ‘ तू आज मेरी दृष्टिमें आया. यह बहुतही अच्छा हुआ ॥ ४ ॥ हे कृष्ण ! तू हमारे मामाका पुत्र और मित्रद्रोही है. फिर मुझे मारना चाहता है. इसलिये हे मूर्ख ! वज्रके समान गदासे तुझे मारूंगा ॥ ५ ॥ हे मूर्ख ! देहमें रहे रोगका जैसे नाश करते हैं. वैसे बंधुरूप शत्रु जो तू है, उसे मारूंगा, तब मित्रवत्सल मैं

असंडित हैं वे कहा ? ॥ ३१ ॥ इससेभी भगवान्‌के मोहका होना संभवे नहीं. जिनके चरणकी सेवासे वृद्धिंगत आत्मविद्याके प्रभावसे सत्पुरुष लोग अनादिकालकी देहात्मबुद्धिको त्याग कर, अनंत और ईश्वरसंबंधी पद आत्माको प्राप्त होते हैं. उन सर्वोत्कृष्ट व सत्पुरुषोंके शरणरूप भगवान्‌के मोह होना संभवे नहीं ॥ ३२ ॥ इसलिये सत्य तो यह है कि- अमोघपराक्रम भगवान्‌ने अनेक शस्त्रोंसे प्रहार करते शाल्वको अपने सामर्थ्यसे बाणोंसे वेधकर, उसके कवच, धनुष व मस्तकके मणिको काटकर, शत्रुके सौभ विमानकोभी गदासे तोड़ दिया ॥ ३३ ॥ भगवान्‌के हाथसे प्रेरी हुई गदासे वह विमान अनेक प्रकारसे चूर्णित हो-

यत्पादसेवोर्जितयाऽऽत्मविद्यया हिन्वंत्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ॥ लभंत आत्मीयमनंतमैश्वरं कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतेः ॥ ३२॥ तं शस्त्रपूगैः प्रहरंतमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ॥ विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोजह ॥ ३३॥ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा ॥ विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद्द्रुतम् ॥ ३४ ॥ आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाऽथ रथांगमद्भुतम् ॥ वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ३५ ॥ जहार तेनैव शिरः सकुंडलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ॥ वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरंदरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥ ३६ ॥

कर, जलमें गिरपड़ा, तब विमानको छोड़, पृथ्वीपै खड़ा वह शाल्व गदा उठाकर, जल्दी भगवान्‌के सन्मुख दौड़ा ॥ ३४ ॥ दौड़ते आते शाल्वका गदासहित हाथ भालासे काटकर, उसके बधके वास्ते प्रलयकालके सूर्यके समान सुदर्शनचक्र धारण करतेहुए भगवान सूर्यसहित उदयाचलके समान शोभा देने लगे ॥ ३५ ॥ इंद्रने जैसे वज्रसे वृत्रासुरका शिर उड़ाया था; वैसे भगवान्‌ने अनेक माया करनेवाले शाल्वका किरीट व कुंडलसहित शिर उस चक्रसे उड़ा दिया. उस समय लोगोंमें बड़ा हाहाकार-शब्द हुआ ॥ ३६ ॥

मायाके वसुदेवजीको ले, शाल्व आया. और भगवान्से कहने लगा कि- हे मूर्ख ! तेरा जन्म देनेवाला यह तेरा पिता है, जिसके वास्ते तू जीता है. सो तेरे देखते २ अभी इसे मार डालूंगा, जो तेरी शक्ति हो तो इसे बचाव ॥ २५ ॥ २६ ॥ मायावी शाल्वने इसप्रकार भगवान्का तिरस्कार कर, खड्गसे वसुदेवजीका शिर उड़ा दिया. और उस शिरको ले, आकाशमें रहे सौभविमानमें पहुँचा ॥ २७ ॥ भगवान् स्वतःसिद्ध ज्ञानमान हैं, तौभी कुछ देरतक स्वजनस्नेहसे मनुष्यस्वभावमें मग्न रहे, फिर महानुभाव भगवान चेते कि- ' यह तौ मय दैत्यकी दीहुई शाल्वने आसुरी माया चलायी है ' ॥ २८ ॥ ऐसे चेते तौ, जैसे जाग्रत

एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ॥ वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ २६ ॥ एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनाऽऽनकदुंदुभेः ॥ उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥ ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्वजनानुषंगतः ॥ महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥ न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ॥ स्वाप्नं यथा चांबरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहंतुमुद्यतः ॥ २९ ॥ एवं वदंति राजर्षे ऋषयः केचनान्विताः ॥ यः स्ववाचो विरुध्येत नूनं ते न स्मरंत्युत ॥ ३० ॥ क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः ॥ क्व चाखंडितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखंडितः ॥ ३१ ॥

पुरुष स्वप्नके पदार्थको न देखे, वैसे वहां रणमें भगवान्ने न तौ दूतको देखा और न पिताके शरीरको देखा, सौभविमानमें बैठकर, आकाशमें फिरतेहुए शत्रुको देख कर, उसे मारनेको तय्यार हुए ॥ २९ ॥ महाराज ! पूर्वापरका अनुसंधान न रखनेवाले कितनेएक ऋषिलोग यह कहते हैं. पर वे अपने बचनमें जो विरोध आता है, उसका स्मरण नहीं करते. उन्होंने प्रथम कहा है कि- ' बलरामजीसे आज्ञा ले, उन्हें पुरीमें छोड़, आप इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) पधारे ' पीछेसे कहते हैं कि- ' इंद्रप्रस्थसे आ, शाल्वको युद्ध करता देख, बलदेवजीको द्वारकाकी रक्षाको भेजा ' यह उनके वचनमेंही विरोध आता है ॥ ३० ॥ शोक, मोह, स्नेह और भय, ये सब जो कि- अज्ञानी मनुष्योंहीके संभवे, सो ये तौ कहां ? और पूर्ण व जिनके ज्ञान विज्ञान व ऐश्वर्य येभी

इसलिये अजितपनका अभिमान रखनेवाला तू यदि मेरे सौंहीं खड़ा रहेगा. तौ आजही मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे तुझे यमराजके घर पहुँचा दूंगा ॥ १८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-हे नीच ! तू वृथा बकवाद करता है. समीपमें जो मौत ठाढ़ी है, उसे नहीं देखता. शूर वीर बहुत बकते नहीं. पराक्रमही दिखला देते हैं ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-ऐसे कहकर, भगवान्‌ने क्रुधित हो, भीमवेगवाली गदासे शाल्वके हँसियोंपर प्रहार किया, जिससे वह लोहू उगलता कांपने लगा ॥ २० ॥ गदा पीछी लौटगयी.

तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ॥ नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृथा त्वं कत्थसे मंद न पश्यस्यंतिकेंऽतकम् ॥ पौरुषं दर्शयंति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥ १९ ॥ इत्युक्त्वा भगवाञ्शाल्वं गदया भीमवेगया ॥ तताड जत्रौ संरब्धः स चकंपे वमन्नसृक् ॥ २० ॥ गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वंतरधीयत ॥ ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः शिरसाऽच्युतम् ॥ देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ॥ २१ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल ॥ बद्ध्वाऽपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥ २२ ॥ निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ॥ विमनस्को घृणी स्नेहाद्बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥ कथं राममसंभ्रांतं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः ॥ शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान्विधिः ॥ २४ ॥ इति ब्रुवाणे गोविंदे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ॥ वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥ २५ ॥

तद शाल्व अंतर्द्धान हुआ, फिर थोड़ी देरीके बाद एक पुरुष आकर, भगवान्‌को शिरसे प्रणाम कर, मुझे देवकीने भेजा है, ऐसे कह, रोता रोता बोला कि-॥ २१ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहु ! हे पितृवत्सल ! कसाई जैसे पशुको लेजाय, वैसे शाल्वराजा आपके पिताको बांधकर, लेगया है ॥ २२ ॥ यह अप्रिय समाचार सुन, मनुष्यप्रकृतिको प्राप्त दयालु भगवान मनमें उदास हो, प्राकृत पुरुषके समान स्नेहसे बोले कि- ॥ २३ ॥ संभ्रमरहित व देव और दैत्योंसे अजेय बलदेवजीको जीतकर, नीच व तुच्छ शाल्व मेरे पिताको किस तरह ले गया होगा ? अहो ! दैव बड़ा बलवान् है ॥ २४ ॥ भगवान ऐसे कहते थे, इतनेमें

पुरीकी रक्षाका प्रबंध कर, उन्होंनें दारुक सारथीसे कहा कि- ॥ ९ ॥ हे सूत ! मेरा रथ शाल्वके समीप शीघ्र लगा दे, यह बड़ा मायावी है; सो तू घबराना मत ॥ १० ॥ ऐसे आज्ञा होतेही बैठकर, दारुकने रथ चलाया. अपने (यादव) और दूसरे (शाल्वकी तरफ) सब लोगोंने ध्वजापर विराजे गरुडजीको संग्राममें देखा ॥ ११ ॥ शाल्वकी बहुतसी सेना मरगयी. उस समय श्रीकृष्णचंद्रको युद्धमें आये देख कर, शाल्वने भगवान्‌के सारथीपर भयंकर वेगवाली शक्ति चलायी ॥ १२ ॥ उल्काके समान वेगसे आतीहुई उस शक्तिके जो दिशाओंको प्रकाशित कर रही थी, आकाशमेंही भगवान्‌ने बाणोंसे सैकड़ों टुकड़े कर दिये ॥

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यांतिकमाशु वै ॥ संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥ १० ॥ इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः ॥ विशंतं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ॥ प्राहरत्कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥ १२ ॥ तामापतंतीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ॥ भासयंती दिशः शौरिः सायकैः शतधाच्छिनत् ॥ १३ ॥ तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् ॥ अविध्यच्छरसंदोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥ १४ ॥ शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ॥ बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥ १५ ॥ हाहाकारो महानासीद्भूतानां तत्र पश्यताम् ॥ विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥ यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ॥ प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥ १७ ॥

॥ १३ ॥ सोलह बाण शाल्वके लगाये और आकाशमें घूमते सौभनाम विमानको बाणोंसे ऐसा वेधित किया, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे आकाशको वेधित करते हैं ॥ १४ ॥ शाल्वने भगवान्‌का हस्तलाघव देख, भगवान्‌के शार्ङ्ग धनुषपै प्रहार किया, जिससे वह हाथमेंसे छूटकर, पड़ गया. यह बड़ी अद्भुत बात हुई ॥ १५ ॥ वहां जो देखते थे उन्होंने बड़ा हाहाकार शब्द किया, उसकाल शाल्व बड़ी ऊंची गर्जना करके, भगवान्‌से यह वक्ष्यमाण वचन बोला ॥ १६ ॥ कि-हे मूर्ख ! जो तू हमारे भाई व सखा शिशुपालकी स्त्रीको हमारे देखते हर लेगया और सभाके बीच असावधान बैठे हुए हमारे मित्रको तूने मारा ॥ १७ ॥

सतत्तरवें अध्यायमें अनेक माया जाननेवाले शाल्वको मार, भगवान्ने सौभ विमानको चूर्णित किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- प्रद्युम्नने कवच पहन, धनुष धारण कर, आचमन ले, सारथीसे कहा कि- 'मुझे वीर द्युमान्के निकट ले चल' ॥ १ ॥ अपनी सेनाका संहार करते द्युमान्को रोंक कर प्रद्युम्नने उसके आठ बाण लगाये ॥ २ ॥ चार बाणोंसे चार घोड़े व एक बाणसे सारथीको मारा. एकसे धनुष, एकसे ध्वजा और एक बाणसे उसका शिर काट दिया ॥ ॥ ३ ॥ गद, सात्यकि व सांब-आदि ज्यों ज्यों शाल्वकी सेनाको मारते हैं, त्यों त्यों वे सब शिर कट कट कर, समुद्रमें गिरते हैं

श्रीशुक उवाच ॥ स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥ नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥ विधमंतं स्वसैन्यानि द्युमंतं रुक्मिणीसुतः ॥ प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्मयन् ॥ २ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्सूतमेकेन चाहनत् ॥ द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसांबाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ॥ पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकंधराः ॥ ४ ॥ एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥ इंद्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ॥ राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥ कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ॥ निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन्द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥ आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसंगतः ॥ राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥ वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ॥ सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥

॥ ४ ॥ इसतरह यादव और शाल्वके लोग आपसमें युद्ध कर रहे थे सो उनको सत्ताईस दिनतक घोर तुमुल युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण तौ युधिष्ठिरके बुलानेसे इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) पधारे, सो वहीं विराजते थे, जब राजसूय यज्ञ हो चुका और शिशुपाल मर गया ॥ ६ ॥ तब कुरुवृद्ध, मुनिलोग व पुत्रोंसहित कुंतीसे आज्ञा ले, मार्गमें अतिभयानक उत्पात देखते हुए भगवान् द्वारकापुरी पधारे ॥ ७ ॥ तब मार्गमें आप कहने लगे कि-मैं तो बलदाऊजीके साथ यहां आगया हूं, सो अवश्य शिशुपालके पक्षवाले राजा मेरी पुरीका नाश करते होंगे ॥ ८ ॥ आतेही दूरहीसे अपने लोगोंका नाश करते, सौभविमानमें बैठे शाल्वको देख,

निकल आया ॥ २७ ॥ एक मुहूर्त यानी दो घड़ीसे प्रद्युम्न सचेत हुए. तौ सारथीसे कहनेलगे कि– हे सूत ! तैंने बहुत बुरा काम किया; जो मुझे रणभूमिसे हटा ले आया ॥ २८ ॥ आजतक यदुवंशियोंमें ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ; जो रण छोड़कर, भाग जाय. अर्थात् ' यदुवंशी रण छोड़कर, भागा ' यह बात कभी नहीं सुनी केवल मैंही ऐसा कायरचित्त हुआ. मुझविना दूसरा कोई नहीं, मेराभी इसमें क्या दोष है ? यह कलंक तौ केवल सारथीने मुझपै लगाया ॥ २९ ॥ पिता राम–कृष्णसे मिलूंगा, तब क्या कहूंगा ? वे पूंछेंगे तब युद्धमेंसे भागकर, निकला हुआ मैं अपनी योग्यताके विषयमें किसतरह बोल सकूंगा ? ॥ ३० ॥

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ॥ अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥ न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः ॥ विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥ २९ ॥ किं नु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ ॥ युद्धात्सम्यगपक्रांतः पृष्टस्तत्राऽऽत्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥ व्यक्तं मे कथयिष्यंति हसंत्यो भ्रातृजामयः ॥ क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ॥ ३१ ॥ सारथिरुवाच ॥ धर्मं विजानताऽयुष्मन्कृतमेतन्मया विभो ॥ सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥ एतद्विदित्वा तु भवान्मयाऽपोवाहितो रणात् ॥ उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे शाल्वयुद्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ॥

मेरी भावियां अवश्य हँसतीं २ कहेंगीं कि– ' हे वीर ! आप दूसरोंसे युद्धकरते थे, उस समय आपके कैसे कैसे हुआ ? सो हमें कहो ' और मुझे नपुंसक ठहरावेंगी ॥ ३१ ॥ सारथी बोला कि– हे आयुष्मन् ! हे विभु ! मैंने तो मेरा धर्म जानकर, यह काम किया है; क्योंकि सारथी तौ कष्टमें रथीकी रक्षा करे और रथी सारथीको बचावे ॥ ३२ ॥ यह जानकर, मैं आपको युद्धसे हटा ले आया हूं. आपके शत्रुके हाथकी गदा लगी, तद आप पीड़ित होकर, मूर्छित हो गये. तद मैं आपको बाहर ले आया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटी० षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥

तीर बाहनोंके लगाये ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्नका यह अद्भुत चरित देखकर, अपनी और शत्रुकी सेनाके सबलोग धन्यवाद देने लगे ॥ २० ॥ मयदैत्यका बनाया वह मायामय विमान कभी तो अनेकरूपसे और कभी एक रूपसे दृष्टिमें आता था और कभी बिलकुल दीखताही नहीं अतएव शत्रु जो यादव तिनको उसका तर्क करना बड़ा कठिन पड़ गया था ॥ २१ ॥ वह विमान कभी तो पृथ्वीपर, कभी आकाशमें, कभी पर्वतके शिखरपर और कभी जलमें, अलातचक्रके समान भ्रमण कर रहा था अतएव उसकी व्यवस्थाका ठिकाना लगना बड़ा कठिन हो गया ॥ २२ ॥ सेनाके लोगोंके साथ सौभविमानमें बैठाहुआ वह शाल्व

तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥ दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥ २० ॥ बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते ॥ मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥ २१ ॥ क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ॥ अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम् ॥ २२ ॥ यत्र यत्रोपलक्ष्येत स सौभः सहसैनिकः ॥ शाल्वस्ततस्ततोऽमुंचन् शरान्सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ॥ पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥ २४ ॥ शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः ॥ न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥ २५ ॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक् प्रपीडितः ॥ आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्बली ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षस्थलमरिंदमम् ॥ अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥

जिधर जिधर दृष्टिगोचर होता, उधरही वे यूथपति यादव बाण चलाते थे ॥ २३ ॥ अग्नि और सूर्यके समान स्पर्शवाले, सर्पसे दुःसह, शत्रुओंके चलाये तीरोंसे जब उसकी सेनाके लोग पीड़ायमान हुए. तब शाल्वभी घबरागया ॥ २४ ॥ शाल्वके सेनापतियोंके चलाये हुए शस्त्रसमूहोंसे यद्यपि यदुवीर बहुत पीड़ित हुए. पर दोनों लोकोंके जिगीषु यानी इस लोकमें यश और परलोकमें सुखकी इच्छावाले यादव अपनी अपनी युद्धभूमिसे पीछे न मुड़े ॥ २५ ॥ शाल्वका अमात्य द्युमान्नाम जो पहले प्रद्युम्नसे पीड़ित किया गया था उस बलवान् पुरुषने लोहमयी गदाका प्रद्युम्नपर प्रहार कर, सिंहनाद किया ॥ २६ ॥ शत्रुको शांत करनहारे प्रद्युम्नका वक्षःस्थल गदासे विदारित होगया. तब धर्मवेत्ता दारुकका पुत्र सारथी उन्हें ले, संग्रामभूमिसे बाहिर

ड़रस्थान तोड़ने लगा. और उस उत्तम विमानसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥ १० ॥ शिला, वृक्ष, अशनि, सांप व ओले बरसने लगे, तेज बौंड़र उठने लगे और अंधकारसे दिशायें छा गयीं ॥ ११ ॥ महाराज ! इसतरह सौभनाम विमानसे पीड़ायमान वह पुरी जैसे त्रिपुरासुरसे पृथ्वी दुःखी हुई. वैसे दुःखी होगयी. कहीं सुखका लेश न रहा ॥ १२ ॥ तद भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजाको पीड़ायमान देख कर, बोले कि– ' तुम मत डरो ' ऐसे कहकर, वे बड़े यशस्वी प्रद्युम्न वीर रथपै चढ़े ॥ १३ ॥ सात्यकी, चारुदेष्ण, सांब, छोटे भाइयोंके साथ अक्रूरजी, हार्दिक्य, भानुविंद, गद, शुक, सारण और दूसरेभी बड़े बड़े धनुषधारी

शिलाद्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ॥ प्रचंडश्चक्रवातोभूद्रजसाच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥ इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ॥ नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥ १२ ॥ प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः ॥ मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥ १३ ॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्च सांबोऽक्रूरः सहानुजः ॥ हार्दिक्यो भानुविंदश्च गदश्च शुकसारणौ ॥ १४ ॥ अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ॥ निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥ १५ ॥ ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ॥ यथा सुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ॥ क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥ विव्याध पंचविंशत्या स्वर्णपुंखैरयोमुखैः ॥ शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥ शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् ॥ दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥

महारथियोंके अधिपति कवच सनाह, पहन, रक्षित हो, रथ, हाथी, घोड़े व प्यादोंकी फौज ले, बाहिर निकले ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ फिर शाल्वके लोगोंके और यादवोंके बीच जैसा दैत्य और देवताओंके बीच भयंकर तुमुल युद्ध हुआ था, वैसा युद्ध होने लगा ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नने अपनें दिव्य अस्त्रोंसे शाल्वकी सब माया जैसे सूर्य रात्रिके अंधकारको बिलवाय देते हैं, वैसे क्षणभरमें बिलवाय दी ॥ १७ ॥ और शाल्वका जो सेनापति था, उसके सुवर्णकी पंखवाले, लोहेके फलवाले और छोटी छोटी संधिवाले पचीस बाण लगाये ॥ १८ ॥ फिर सौ बाण शाल्वके, एक एक सब सेनावालोंके, दश दश सारथियोंके व तीन तीन

शाल्वको मारा ॥ १ ॥ शिशुपालका मित्र शाल्व रुक्मिणीके विवाहमें आया था. वहा यादवोंसे जो युद्ध हुआ, उसमें शाल्व और जरासंध वगैरः सब हार गये थे ॥ २ ॥ तद सब राजाओंके सुनते शाल्वने प्रतिज्ञा की कि– ' पृथ्वीको यदुकुलरहित करूंगा. मेरा पराक्रम देखो ' ॥ ३ ॥ महाराज ! वह मूर्ख इसतरह प्रतिज्ञा कर, केवल धूलकी एक मुट्ठी फांकत हुआ महादेवजीका आराधन करने लगा ॥ ४ ॥ भोलानाथ शंकरजी तुर्त प्रसन्न होजाते हैं. इसलिये १ वर्षके अंतमें शरणागत शाल्वसे कहा

शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः ॥ यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासंधादयस्तथा ॥ २ ॥ शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥ इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् ॥ आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद्ग्रसन् ॥ ४ ॥ संवत्सरांते भगवानाशुतोष उमापतिः ॥ वरेण च्छंदयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥ ५ ॥ देवासुरमनुष्याणां गंधर्वोरगरक्षसाम् ॥ अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥ तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरंजयः ॥ पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥ स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम-दुरासदम् ॥ ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥ ८ ॥ निरुध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ ॥ पुरीं बभंजोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥ स गोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः ॥ विहारान्सविमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥

कि,–वर मांग ॥ ५ ॥ तब उसने वर मांगा कि–देवता, दैत्य, मनुष्य, गंधर्व, उरग व राक्षस ये जिसे तोड़ न सकें ऐसा स्वेच्छासे चलनेवाला यदुकुलभीषण विमान मुझे मिले ॥ ६ ॥ तब ' तथास्तु ' कह, महादेवने शत्रुओंके पुरोंको जीतनेवाले मयदैत्यको आज्ञा दी, उसनेभी लोहमय सौभनाम विमान बनाकर, शाल्वके सिपुर्द किया ॥ ७ ॥ अंधकारका धाम, दुष्प्राप व इच्छापूर्वक चलनेवाला विमान पाकर, वह शाल्व यादवकृत वैरका स्मरण करता द्वारकापर चला ॥ ८ ॥ महाराज ! शाल्व बड़ी सेना ले, चौतर्फसे पुरीको घेर, बाग और बगीचे तोड़ने लगा ॥ ९ ॥ गोपुर, दरवाजे, महल, अँटारियां, उनकी भीतें व क्री-

देता, सभामें आया ॥ ३६ ॥ वहां वह मयदैत्यकी मायासे ऐसा मोहित होगया, कि—जहां स्थल था, वहां तौ जल मानकर वस्त्र समेटने लगा. और जहां जल था वहां स्थलके भ्रमसे जलमें गिर पड़ा ॥ ३७ ॥ महाराज ! राजाने बहुत मना किया तोभी श्रीकृष्णके अनुमोदनसे उसे देखकर, प्रथम तौ भीमसेन हँसे फिर स्त्रियां और दूसरे राजाभी हँसने लगे ॥ ३८ ॥ वह लज्जित हो, मुह नीचा कर, क्रोधसे जलता हुआ सभामेंसे निकलकर, चुपचाप हस्तिनापुर पहुँचा, उस समय सत्पुरुषोंके बीच बड़ा हाहाकार शब्द हुआ और युधिष्ठिर महाराज उदाससे हो गये. जिनकी दृष्टिसे सब जगत घूमता है वे भगवान् तौ चुप ल-

स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रांतं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ॥ जले च स्थलवद्भ्रांत्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥ जहास भीमस्तंदृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ॥ निवार्यमाणा अप्यंग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३८ ॥ स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ॥ हाहेति शब्दः सुमहानभूत्सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ॥ बभूव तूष्णीं भगवान्भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥ ३९ ॥ एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे दुर्योधनमानभंगोनाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥ क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

गाकर, बैठ गये; क्योंकि उन्हें पृथ्वीका भार उतारना था ॥ ३९ ॥ महाराज ! जो आपने पूछा था; कि—बड़े भारी राजसूय यज्ञमें दुर्योधनका दुरभिप्राय क्यों रहा ? सो यह सब मैंने आपसे कह, सुनाया है ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ छिअत्तरवें अध्यायमें यादव और शाल्वके महायुद्ध होते द्युमत्के गदाप्रहारसे प्रद्युम्न युद्धमेंसे बाहिर निकल गये यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—महाराज ! अब औरभी क्रीड़ाके लिये मनुष्यशरीर श्रीकृष्णभगवान्का जो अद्भुत चरित कहता हूं सो सुनो. जिस प्रकार उन्होंने

यदुवीरोंको द्वारका बिदाकर, आप उन्हें राजी रखनेको वहीं विराजे ॥ २९ ॥ इसप्रकार महाराज धर्मपुत्र युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी कृपासे अतिदुस्तर मनोरथ महासागरके पार उतर, निश्चित हुए ॥ ३० ॥ एकसमय भगवद्भक्त महाराज युधिष्ठिरके जनानेकी लक्ष्मी व राजसूययज्ञकी महिमा दुर्योधन देखकर, संताप करने लगा ॥ ३१ ॥ महाराज ! युधिष्ठिरका अंतःपुर कि-जहां मयदैत्यरचित नरपति, दैत्यपति व देवपतियोंकी अनेक प्रकारकी विभूतियां देदीप्यमान हो रहीं थीं. और जहां उन विभूतियोंके साथ द्रौपदी अपने पतियोंकी सेवा करती थी. उसे देख, दुर्योधनका मन डोल गया. और भीतरहीभीतर जलने लगा

इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ॥ सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनाऽऽसीद्गतज्वरः ॥ ३० ॥ एकदांऽतःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ॥ अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेंद्रदितिजेंद्रसुरेंद्रलक्ष्मीर्नाना विभांति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः ॥ ताभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् ॥ मध्ये सुचारुकुचकुंकुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुंडलकुंतलाढ्यम् ॥ ३३ ॥ सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ॥ वृतोऽनुजैर्बंधुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः कांचने साक्षादासने मघवानिव ॥ पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च बंदिभिः ॥ ३५ ॥ तत्र-दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ॥ किरीटमालीन्यविशदसिहस्तः क्षिपन्रुषा ॥ ३६ ॥

॥ ३२ ॥ जहां नितंबके भारसे धीरे धीरे झमकते झांझरोंसे शोभित चरणवालीं स्तनोंकी केसरसे अरुणहार धारण किये, चंचल कुंडल व केशपाशयुक्त सुंदरमुख व अतिरमणीय कटिवाली भगवान्की हजारों रानियां इधर उधर फिरतीं थीं ॥ ३३ ॥ एक समय चक्रवर्ती धर्मपुत्र युधिष्ठिर महाराज अपने छोटे भाइयोंके और अपने नेत्ररूप श्रीकृष्णचंद्रके साथ मयदैत्यकी बनायी सभामें कंचनके सिंहासनपर इंद्रके समान विराजे थे और चक्रवर्तीपनकी लक्ष्मी दीप रही थी. व बंदीजन स्तुति करते थे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ महाराज ! वहां भाइयोंके साथ अभिमानी दुर्योधन किरीट व माला धारण किये खड्ग हाथमें लिये, पहरेदारोंको क्रोधसे धमकी

मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥ फिर राजाने नये वस्त्र पहन, सिंगार कर, ऋत्विज, सभासद और ब्राह्मण–आदि सबलोगोंका आभूषण और वस्त्रोंसे सत्कार किया ॥ २२ ॥ परमेश्वरके परमभक्त राजा युधिष्ठिरने बंधु, ज्ञाति, राजा, मित्र, सुहृद और दूसरेभी सब लोगोंका खूब अच्छीतरह सत्कार किया ॥ २३ ॥ सब लोग मणियोंके कुंडल, माला, पगड़ी, जामा, रेशमीवस्त्र व अमूल्य हार धारण किये देवताओंके समान देदीप्यमान हो रहे थे. और स्त्रियांभी कुंडलयुगल व अलकोंसे शोभितमुख हो, कंच-

अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ॥ ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणांबरैः ॥ २२ ॥ बंधुज्ञातिनृपान्मित्र सुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ॥ अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरोनृपः ॥ २३ ॥ सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुंडलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ॥ नार्यश्च कुंडलयुगालकवृंदजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४ ॥ अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ॥ ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥ देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ॥ पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ॥ नैवातृप्यन्प्रशंसंतः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ॥ २८ ॥ भगवानपि तत्रांग न्यवात्सीत्तत्प्रियंकरः ॥ प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च सांबादींश्च कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥

नकी मेखलासे शोभायमान लगतीं थीं ॥ २४ ॥ महाराज ! तदनंतर बड़े शीलवान ऋत्विज, ब्रह्मवादी सभासद, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, देवता, ऋषि, प्रमथ, पितर अनुचरोंसहित लोकपाल व राजालोग जो आये थे. वे सब राजासे सत्कार पाय, आज्ञा ले, अपने अपने घर गये ॥ २५ ॥ २६ ॥ हरिभक्त महाराज युधिष्ठिरके राजसूयके महोत्सवकी प्रशंसा करते जैसे मनुष्य अमृत पीता नहीं अघाता. वैसे तृप्त नहीं होते थे ॥ २७ ॥ फिर विरहकायर राजा युधिष्ठिरने प्रीतिपूर्वक सुहृत, संबंधी, बंधु व श्रीकृष्ण भगवान इन सबका वहीं, निवास करवाया ॥ २८ ॥ महाराज ! भगवान्भी सांब–आदि सब

व भिगोते क्रीड़ा करते थे ॥ १४ ॥ तेल, गोरस, सुगंधीजल, हरदी, सघन, केसर इन पदार्थोंसे पुरुष वेश्याओंको लीप रहे थे. और वेश्यायेंभी पीछी लीपती हुई क्रीड़ा करतीं थीं ॥ १५ ॥ यह उत्सव देखनेको जैसे देवांगना उत्तम विमानोंमें बैठकर, आयीं थीं. वैसे योधाओंसे रक्षित रानियांभी अवभृथस्नानमें न्हानेको बाहिर आयीं, वे रानिया मामाके पुत्रोंसे और सखियोंसे भिगोयी जातीं लाजभरे हास्यसे विकसितमुख होकर, शोभा देतीं थीं ॥ १६ ॥ वे अपने देवर व सखियोंको चमड़ेकी डोलचियोंसे भिगो-रहीं थीं. उसकाल उनकेभी सब वस्त्र भीग गये थे. उसीसे उनके सब अंग, कुच, उरु व मध्यभाग स्पष्ट दीख रहे थे. और उत्सु-

तैलगोरसगंधोदहरिद्रासांद्रकुंकुमैः ॥ पुंभिर्लिप्ताः प्रलिंपंत्यो विजह्रुर्वारयोषितः ॥ १५ ॥ गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ॥ ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥ १६ ॥ ता देवरानुत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नांबरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ॥ औत्सुक्यमुक्तकबराच्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥ १७ ॥ स सम्राड्रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ॥ व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥ १८ ॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ॥ आचांतं स्नापयांचक्रुर्गंगायां सहकृष्णया ॥ १९ ॥ देवदुंदुभयोनेदुर्नरदुंदुभिभिः समम् ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥ सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ॥ महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥ २१ ॥

कतासे चोटी शिथिल होनेके कारण फूल बिखर रहे थे. उस समय उनकी सुंदर लीलायें देखकर, कामीजनोंके मन क्षोभित होते थे ॥ १७ ॥ जिससमय वे चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिर अच्छे घोड़ोंसे युक्त सुवर्णकी मालावाले रथपर अपनी स्त्रियोंके साथ चढ़े उस अवसरमें ऐसे शोभा देते थे कि-मानों क्रियाओंके साथ यज्ञराज आप सवार हुए हैं ॥ १८ ॥ 'पत्नीसंयाज' और अवभृथसंबंधी कर्म करवाय, आचमन लेनेके अनंतर उन ऋत्विजोंने द्रौपदीके साथ राजा युधिष्ठिरको गंगाजीमें स्नान कराया ॥ १९ ॥ उसकाल मनुष्योंके नक्कारोंके साथ देवदुंदुभि बाजने लगे. और देवता, ऋषि, पितर व मनुष्य पुष्प बरसाने लगे ॥ २० ॥ फिर वहां सब वर्ण और आश्रमके लोगोंने स्नान किया, क्योंकि इस स्नानके करनेसे महापातकीभी शीघ्र पाप-

संतर्दन–आदि बंधु थे ॥ ६ ॥ महाराज ! वे सब अपने अपने मुकर्रर किये बड़े यज्ञसंबंधी अनेक प्रकारके कामोंमें राजाको प्रसन्न करनेकी इच्छासे लग रहे थे ॥ ७ ॥ ऋत्विज, सभासद, बहुवेत्ता बंधुवर्ग इन सबका मधुरवाणी, अलंकार व दक्षिणा–आदिसे सत्कार होनेके अनंतर, शिशुपालको भगवान्‌के चरणोंमें लीन होनेपर, गंगाजीमें अवभृथ–स्नान हुआ ॥ ८ ॥ उस अवभृथस्नानके उत्सवमें मृदंग, शंख, पणव, धुंधुरी, आनक, गोमुख–आदि विचित्र बाजे बाजते थे ॥ ९ ॥ नटिनियां नृत्य करतीं थीं. गानेवाले आनंदित होकर, यूथके यूथ मिल, गाते थे. और वीणा, बंसी व तलका ऊंचा शब्द होता था. इन सबका मिलाहुआ

निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ॥ प्रवर्तंते स्म राजेंद्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥ ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ॥ चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥ मृदंगशंखपणवधुंधुर्यानकगोमुखाः ॥ वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥ नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ॥ वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेंद्रस्यंदनार्वभिः ॥ स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥ यदुसृंजयकांबोजकुरुकेकयकोसलाः ॥ कंपयंतो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥ १२ ॥ सदस्यर्त्विक्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ देवर्षिपितृगंधर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ १३ ॥ स्वलंकृता नरा नार्यो गंधस्रग्भूषणांबरैः ॥ विलिंपंत्योऽभिषिंचंत्यो विजह्रुर्विविधै रसैः ॥ १४ ॥

शब्द आकाशतक व्याप्त हो रहा था ॥ १० ॥ कांचनकी माला पहिरेहुए राजालोग विचित्र ध्वजा व पताकानके अग्रसे सुशोभित गजेंद्र, रथ व घोड़ोंपै बैठ, सिंगार किये, भटोंके साथ बाहिर निकले ॥ ११ ॥ यदु, सृंजय, काम्बोज, कुरु, कैकय कोसलवंशी क्षत्रिय, ये सब यजमान जो युधिष्ठिर उन्हें आगे ले, सेनाओंसे पृथ्वीको कंपायमान करते चले ॥ १२ ॥ सभासद, ऋत्विज व श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग वेदका भारी घोष करते थे, देवता, ऋषि, पितर व गंधर्व ये फूल बरसाय बरसाय, स्तुति करते थे ॥ १३ ॥ नगरके नर नारी चंदन, माला, आभूषण व वस्त्रोंसे सिंगार कर कर, अनेक प्रकारके दूध दही–आदि रसोंसे आपसमें लेपन करते

छोड़, बाकी सब लोग प्रशंसा करते थे; क्योंकि यह तो बढ़ीहुई युधिष्ठिरकी राजलक्ष्मीको देखकर, सहन नहीं कर सका ॥ ५३ ॥ राजाओंका मोक्ष, यज्ञ सिद्ध करवाना और शिशुपालवध—आदि भगवानके इस चरित्रका जो कीर्तन करे, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ पछत्तरवें अध्यायमें अवभृथस्नानका उत्सव व भ्रममें पड़े दुर्योधनका क्षमा न रखनेके कारण मानभंग यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षित बोले कि–हे ब्रह्मन् ! राजा युधिष्ठिरके राजसूयका महोत्सव देखकर, जो राजालोग

य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥ राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीभा० महा० दशम० उ० शिशुपालवधोनाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥ सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ॥ इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ॥ बांधवाः परिचर्यायां तस्याऽऽसन्प्रेमबंधनाः ॥ ३ ॥ भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ॥ सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥ गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ॥ परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ॥ बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च संतर्दनादयः ॥ ६ ॥

आये थे. वे सब प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ हे भगवन् ! राजा देवता व ऋषि ये सब प्रसन्न हुए, केवल दुर्योधनही आनंदसे बचा. यह हमने आपके मुंहसे सुना. सो इसमें कारण क्या है ? सो आप कहिये ॥ २ ॥ यह सुन, श्रीशुकदेवजीने कहा कि–तुह्मारे दादे महात्मा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें प्रेमसे बँधेहुए बंधुलोग यज्ञका काम करते थे ॥ ३ ॥ भीमसेन महानस (रसोई) के अध्यक्ष (दारोगा) हुए, दुर्योधन धनाध्यक्ष (खजानची) हुआ, सहदेव पूजाके काममें थे, नकुल अनेकप्रकारके पदार्थ संपादन करते थे ॥ ४ ॥ अर्जुन गुरु लोगोंकी सेवाके काममें लग रहे थे, श्रीकृष्णचंद्र पांव पखारनेका काम करते थे. द्रौपदी परोसती थी, उदारचित्त कर्ण दानाध्यक्ष था ॥ ५ ॥ सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुरादिक, भूरि–आदि बाह्लीक राजाके पुत्र और जो

अनुयायी राजा जी बचाय, भाग गये ॥ ४४ ॥ शिशुपालके शरीरमेंसे जो तेज निकला. वह सब लोगोंके देखते जैसे आकाशसे गिरी उल्का पृथ्वीमें लीन हो जाय, वैसे भगवान्‌में लीन हुआ ॥ ४५ ॥ तीन जन्मतक वारंवार किये वैरके आवेशवाली बुद्धिसे उन्हींका ध्यान करता वह शिशुपाल भगवद्रूप हो गया; क्योंकि मनकी भावनाही जन्मका कारण है ॥ ४६ ॥ चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिरने ऋत्विज व सभासदोंको बहुत दक्षिणा दी और सब लोगोंका सत्कार करके, विधिपूर्वक अवभृथ (यज्ञके अंतका) स्नान किया ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण राजाका यज्ञ सिद्ध कराय, सुहृदोंकी प्रार्थनासे कितनेएक महीने वहीं

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ॥ पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्चुता ॥ ४५ ॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ॥ ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥ ४६ ॥ ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ॥ सर्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥ साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छंतमपीश्वरः ॥ ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥ ४९ ॥ वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ॥ वैकुंठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥ ५० ॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः॥ ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥ ५१ ॥ राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ॥ कृष्णं क्रतुं च शंसंतः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ॥ यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पांडुसुतस्य ताम् ॥ ५३ ॥

विराजे ॥ ४८ ॥ फिर सर्वेश्वर श्रीकृष्णचंद्र राजाकी बिलकुल मरजी न थी; तौभी उनसे आज्ञा ले, रानियां व अमात्योंके साथ अपनी पुरी (द्वारका) पधारे ॥ ४९ ॥ वैकुंठवासी जय विजय ब्राह्मणोंके श्रापसे वारंवार जन्मे यह कथा मैंने तुमसे बहोत विस्तारपूर्वक वर्णन की ॥ ५० ॥ राजसूयका अवभृथस्नान करके राजा, युधिष्ठिर ब्राह्मण व क्षत्रियोंकी सभाके बीच इंद्रके समान शोभा देने लगे ॥ ५१ ॥ देवता, मनुष्य व प्रमथगण राजासे सत्कार पाय, श्रीकृष्णचंद्रकी व यज्ञकी प्रशंसा करते आनंदपूर्वक अपने अपने घर गये ॥ ५२ ॥ कलियुगके अंश कुरुकुलके रोगरूप एक पापी दुर्योधनको

यह कुल किसतरह पूजाके योग्य हो सक्ता है ? ॥ ३६ ॥ ये लुटेरे डाकू लोग (यादव) ब्रह्मर्षि लोगोंसे सेवित देशोंको छोड़कर, ब्रह्मतेजसे हीन समुद्ररूप किलेका आश्रय लेकर, प्रजाको दुख देते हैं ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–उस क्षीणपुण्य शिशुपालने इत्यादिक बहुतसे बुरे वचन कहे. पर जैसे सिंह श्यारनीका शब्द सुनकर, न बोले; वैसे भगवान् कुछभी न बोले ॥ ३८ ॥ सभासदलोग भगवान्‌की वह दुःसह निंदा सुन, कान बंद करके, क्रोधसे शिशुपालको गाली देते सभामेंसे चले गये ॥ ३९ ॥ भगवान्‌की वा भगवद्भक्तकी निंदा सुनकर, जो मनुष्य वहांसे न सरक जाय, तौ वहभी पुण्यहीन होकर, नरकमें

ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान् हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ॥ समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधंते दस्यवः प्रजाः ॥ ३७ ॥ एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमंगलः ॥ नोवाच किंचिद्भगवान्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥ ३८ ॥ भगवन्निंदनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ॥ कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपंतश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥ निंदां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ॥ ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥ ततः पांडुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृंजयाः ॥ उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥ ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रांतो जगृहे खड्गचर्मणी ॥ भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान्राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य स्वयं रुषा ॥ शिरः क्षुरांतचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥ ४३ ॥ शब्दः कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् ॥ तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥ ४४ ॥

पड़ता है ॥ ४० ॥ फिर पांडुपुत्र, मत्स्य, कैकय व सृंजय क्रोध कर, शस्त्र उठाय, शिशुपालको मार डालनेकी इच्छासे उठे ॥ ४१ ॥ महाराज ! तब शिशुपालभी निडर हो, ढाल तलवार हाथमें ले, श्रीकृष्णके पक्षवाले राजाओंको सभाके अंदर झिड़की बतलाने लगा ॥ ४२ ॥ इतनेमें भगवान्‌ने विचार किया, कि–यह मेरा पार्षद मेरे समान बलवाला है. सो जो मैं न मारूंगा, तौ यह सबको मारडालेगा. इस अभिप्रायसे आप उठे और क्रोध कर, अपने बंधुनको हटाय, छूरेके समान धारवाले चक्रसे आते हुए शत्रुका शिर स्वयं भगवान्‌ने काट दिया ॥ ४३ ॥ शिशुपालके मरनेपर भारी कोलाहल शब्दभी हुआ और उसके

हाथ जोड़, 'नमो जय' ऐसा शब्द उच्चारण करते प्रणाम करते थे. तब फूलोंकी बर्षा हुई ॥ २९ ॥ दमघोषका पुत्र शिशुपाल इसप्रकार शब्द सुन, अपने आसनसे उठकर, भगवान्‌के गुणवर्णनसे क्रोधयुक्त हो, बांह उठाय, निर्भय होकर, सभाके बीच असहनतासे भगवान्‌को कठोर वचन सुनाता यह वक्ष्यमाण वचन बोला ॥ ३० ॥ शिशुपालने कहा कि–जगतमें कहते हैं, कि–काल अलंघ्य और समर्थ है. सो यह बात सत्य है; क्योंकि समयपर बालकके वचनोंसे वृद्ध पुरुषोंकीभी बुद्धि फिर जाती है ॥ ३१ ॥ हे सभासदो ! तुम सब पात्रको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हो, सो इस बालकका कहना मत मानो. भला यह कृष्ण अग्र-

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः ॥ उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन्भगवते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥ ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ॥ वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥ यूयं पात्रविदांश्रेष्ठा मामन्ध्वं बालभाषितम् ॥ सदस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्संमतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥ तपोविद्याव्रतधरान्ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ॥ परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठान्लोकपालैश्च पूजितान् ॥ ३३ ॥ सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ॥ यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥ ३४ ॥ वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥ ३५ ॥ ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ॥ वृथा पानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति ॥ ३६ ॥

पूजाके योग्य है ? नहीं ॥ ३२ ॥ तप विद्या व व्रतधारी, ज्ञानके प्रतापसे कल्मष (दोष) रहित, ब्रह्मनिष्ठ व लोकपालोंसे पूजित बड़े बड़े जो सभापति ऋषिलोग विराजे हैं. उनका अतिक्रमण करके, गोपाल व कुलमें कांटारूप यह कृष्ण अग्रपूजाके योग्य कैसे गिनाजाता है ? भला काकभी कहीं पुरोडाश खानेके योग्य होता है ? ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वर्ण आश्रम व कुलसे भ्रष्ट, सर्व धर्मोंसे बहिष्कृत, स्वच्छंद आचरण करनेवाला, गुणहीन, यह कृष्ण किसतरह अग्रपूजाके योग्य है ? ॥ ३५ ॥ ययाति राजाने इनके कुलको श्राप दिया था. अतएव इनका कुल सत्पुरुषोंसे बहिष्कृत है और निरंतर वृथा मद्यपानमें रत है. भला

हैं ॥ २० ॥ ये कृष्ण एकही अद्धितीयरूप हैं और इस जगतके आत्मा श्रीकृष्णही हैं. हे सभासदो ! अजन्मा और स्वाश्रय ये भगवान् आपही जगतको रचे हैं. पाले हैं और संहार करे हैं ॥ २१ ॥ ये सब लोग श्रीकृष्णचंद्रके अनुग्रहहीसे अनेक प्रकारके सत्कर्म करके, धर्मादिक पुरुषार्थ सिद्ध करते हैं ॥ २२ ॥ इसलिये महात्मा श्रीकृष्णचंद्रहीको यह उत्तम अग्रपूजा देनी चाहिये, यदि ऐसा करोगे तौ सब जीवोंकी और अपनीभी पूजा होगी ॥ २३ ॥ जो मनुष्य दानका अनंतफल चाहे, उसे चाहिये, कि-सब जीवोंके अंतर्यामी, भेदबुद्धि मिटानेहारे शांत व पूर्ण श्रीकृष्ण भगवान्‌के अर्पण करे ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-

एकएवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् ॥ आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हंत्यजः ॥ २१ ॥ विविधानीहकर्माणि जनयन्यदवेक्षया ॥ ईयते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२॥ तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ॥ एवंचेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥ सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ॥ देयं शांताय पूर्णाय दत्तस्यानंत्यमिच्छता ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ॥ तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ॥ समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥ तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ॥ सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुंबो वहन्मुदा ॥ २७ ॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ॥ अर्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्रांजलयो जनाः ॥ नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥

श्रीकृष्ण भगवान्‌का प्रभाव जाननेवाले सहदेव इतने वचन कहकर, चुप रह गये. ये वचन सुनकर, सब उत्तम पुरुष वाह ! वाह !! ऐसे प्रशंसा करने लगे ॥ २५ ॥ ब्राह्मणोंके वचन सुन व सभापतियोंका अभिप्राय जान, प्रसन्न व प्रेमविव्हल राजाने भगवान्‌की पूजा करी ॥ २६ ॥ भगवान्‌के चरण पखार जगतको पावन करनेवाला चरणोंका जल राजाने स्त्रियां, छोटे भाई, अमात्य व कुटुंबके लोगोंके साथ आनंदपूर्वक शिरपर चढाया ॥ २७ ॥ पीले रेशमीवस्त्र व अमूल्य आभूषणोंसे पूजन करतेही राजाके नेत्र आनंदके अश्रुओंसे भर गये. और देखभी न सके ॥ २८ ॥ इसप्रकार भगवान्‌का सत्कार हुवा देख, सबलोग

शुद्ध कर, वहां वैदिक रीतिसे राजा युधिष्ठिरको दीक्षा धारण करवायी ॥ १२ ॥ इस यज्ञमें जैसे पहले वरुणके यज्ञमें सब सामग्री सुवर्णमय थी वैसे सुवर्णकी करायी गयी. और इंद्र–आदि लोकपाल, ब्रह्माजी, महादेवजी, गणसहित गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, बड़े बड़े नाग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण, राजा व रानियां ये सब राजाके बुलानेसे महाराज युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें आये ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ये सब विस्मय न करते ऐसे मानते थे, कि–भगवान्के भक्तके सब बात भली भांति बन सकी है, जैसे देवतानने वरुणको यज्ञ करवाया था, ऐसे देवताओंके समान तेजस्वी ऋत्विजोंने महाराज युधिष्ठिरको विधि-

हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ॥ इंद्रादयो लोकपाला विरिंचभवसंयुताः ॥ १३ ॥ सगणाः सिद्धगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥ १४॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ॥ राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पांडुसुतस्य वै ॥ १५ ॥ मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ॥ राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः ॥ १६ ॥ सुत्येहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् ॥ अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥ सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशंतः सभासदः ॥ नाध्यगच्छन्ननैकांत्यात्सहदेवस्तदाऽब्रवीत् ॥ ॥ १८ ॥ अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतांपतिः ॥ एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥ यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ॥ अग्निराहुतयो मंत्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥ २० ॥

पूर्वक राजसूयनाम यज्ञ करवाया ॥ १६ ॥ सब प्रकारसे सावधान राजा युधिष्ठिरने सोमवल्लीकंडनके दिन महाभाग ऋत्विज और सभापतियोंके पूजनका प्रारंभ किया ॥ १७ ॥ यहां सभासदोंमेंसे किसकी अग्रपूजा होनी चाहिये, ऐसे वे सभासदलोग विचार करते थे, पर वहां तो कई बड़े बड़े योग्य पुरुष अग्रपूजाके योग्य बैठे थे. इसलिये निर्णय नहीं हो सका. तद सहदेव बोले ॥ १८ ॥ सहदेवने कहा कि–यदुपति भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अग्रपूजाके योग्य हैं, क्योंकि देवता, देश, काल व धन–आदि सब इन्हींका स्वरूप है ॥ १९ ॥ यह जगत् और यज्ञ सब इन्हींका स्वरूप है, अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान व उपासना ये सब इन्हींकी प्राप्तिके साधन

नामात्र है. वस्तुतः आपके यह बात संभवे नहीं ॥ २ ॥ ३ ॥ एक, अद्वितीय, ब्रह्म परमात्मा जो आप हो उनका तेज कर्मोंसे जैसे सूर्यका तेज नहीं घटे वैसे नहीं घटता ॥ ४ ॥ हे माधव ! अजित ! अज्ञानी लोगोंके जैसी शरीरसंबंधमें तू और तेरा, मैं और मेरा, ऐसी भेदबुद्धि है, ऐसी आपके भक्तोंके भी नहीं होती, तद आपके तो संभवे ही कैसे ? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-राजा युधिष्ठिर इस प्रकार कह, भगवानसे संमति मिलाय यज्ञ करनेके उचित समयमें योग्य ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंका, होता

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥ न वै तेऽजितभक्तानां ममाहमिति माधव ॥ त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा याज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः ॥ कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमंतुर्गौतमोऽसितः ॥ वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ॥ ७ ॥ विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ॥ पैलः पराशरो गर्गो वैशंपायन एव च ॥ ८ ॥ अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ॥ वीतिहोत्रो मधुच्छंदा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ॥ धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ॥ तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥ ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलांगलैः ॥ कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयांचक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥

आदि ऋत्विज बनानेको वरण किया ॥ ६ ॥ वेदव्यासजी, भरद्वाज, सुमंतु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कच, मैत्रेय, कवष, त्रित, ॥ ७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशंपायन, ॥ ८ ॥ अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुरामजी, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छंदा, वीरसेन, अकृतव्रण ॥ ९ ॥ वैसेही औरभी बहुतसे लोग बुलाये गये. जैसे द्रोणाचार्य भीष्म, कृपाचार्य, आदि, पुत्रसहित, धृतराष्ट्र, महामति विदुर, ॥ १० ॥ महाराज ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सब राजा और राजाओंकी प्रजा ये सब यज्ञ देखनेकी अभिलाषासे वहां आये ॥ ११ ॥ तद उन ब्राह्मणोंने सुवर्णके हलोंसे यज्ञभूमिको

सत्कार पाय. भीमसेन और अर्जुनके साथ इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) पीछे आये ॥ ३१ ॥ शत्रुको जीतकर, आये हैं, इसलिये उन्होंने अपने मित्रोंको आनंदित करने और शत्रुओंको दुख देनेके लिये इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) में आकर, शंखनाद किया ॥ ३२ ॥ इंद्रप्रस्थके रहनेवालोंने यह शंखनाद सुनकर, जान लिया कि-जरासंध मरगया और उनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ व युधिष्ठिर-काभी मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥ फिर भीमसेन, अर्जुन व श्रीकृष्ण इन तीनोंने राजाको प्रणाम करके आपने जो कुछ वहां किया था. वह सब कह, सुनाया ॥ ३४ ॥ भगवानकी अनुकंपाके ये समाचार सुन, राजाकी आखोंमेंसे अश्रूके बिंदु गिरने लगे

गत्वा ते खांडवप्रस्थं शंखान्दध्मुर्जितारयः ॥ हर्षयंतः स्वसुहृदो दुर्हृदांचासुखावहाः ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इंद्रप्रस्थनिवासिनः ॥ मेनिरे मागधं शांतं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥ अभिवंद्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ॥ सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥ निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकंपितम् ॥ आनंदाश्रुकलां मुंचन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महा० दशम० उ० कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं युधिष्ठिरो राजा जरासंधवधं विभोः ॥ कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ॥ वहंति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ स भवानरविंदाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ॥ धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यंतविडंबनम् ॥ ३ ॥

और प्रेमके मारे बोला न गया ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ चौहत्तरवें अध्यायमें युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंकरके राजसूय यज्ञ किया और अग्रपूजाके प्रसंगमें शिशुपालका वध हुआ. इत्यादि कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इस प्रकार राजा युधिष्ठिरने जरासंधका वध और प्रभु श्रीकृष्णचंद्रका प्रभाव व आज्ञाकारीपन सुन, प्रसन्न हो, श्रीकृष्णसे कहा ॥ १ ॥ युधिष्ठिर बोले कि-हे प्रभु ! त्रिलोकीके गुरु जो सनकादिक और सब लोक व लोकपालभी जिनकी आज्ञाको दुर्लभ मानकर, शिरपर चढ़ाते हैं, वे कमलनयन आप, दीन समर्थपनका मिथ्याभिमान रखनेवाले जो हम हैं, उनकी आज्ञा शिरपर धारण करते हो, यह केवल विडंब-

तुम देह-आदि सब पदार्थोंमें उदासीन व आत्माराम होकर, नियमसहित रहोगे. और मुझमें भलीभांति चित्त लगाओगे, तौ अंतमें परब्रह्मरूप मुझे प्राप्त होओगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-लोकनाथ भगवान श्रीकृष्णचंद्रने राजाओंको इसप्रकार आज्ञा कर, उन्हें स्नान-आदि करवानेको कितनेएक पुरुष व स्त्रियोंको आज्ञा की ॥ २४ ॥ महाराज ! सहदेवके हाथ उनका, राजाओंके योग्य वस्त्र, आभूषण, माला व चंदन इनसे सत्कार करवाया ॥ २५ ॥ उन्हें उत्तम अन्नसे भोजन करवाय, न्हिलाय, सिंगार कराय, अनेक प्रकारके भोग अर्पण कर, राजाओंके योग्य पान-आदि पदार्थ दे ॥ २६ ॥ भगवानने उन राजाओंका

उदासीनाश्च देहादावात्मारामाधृतव्रताः ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यङ् मामंते ब्रह्म यास्यथ ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान्भुवनेश्वरः॥ तेषां न्ययुंक्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥ सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ॥ नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥ २५ ॥ भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलंकृतान् ॥ भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्तांबूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥ ते पूजिता मुकुंदेन राजानो मृष्टकुंडलाः ॥ विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडंते यथा ग्रहाः ॥ २७ ॥ रथान्सदश्वानारोप्य मणिकांचनभूषितान् ॥ प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥ त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना ॥ ययुस्तमेव ध्यायंतः कृतानि च जगत्पतेः ॥ २९ ॥ जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ॥ यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतंद्रिताः ॥ ३० ॥ जरासंधं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ॥ पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥ ३१ ॥

सत्कार किया. तद वे उज्वल कुंडल धारण किये क्लेशसे मुक्त जैसे वर्षाऋतुके अंतमें ग्रह शोभा देते हैं. वैसे शोभा देने लगे ॥ २७ ॥ श्रेष्ठ घोड़ोंवाले, रत्न व सुवर्णसे शोभायमान रथोंपर बिठाय, मधुर वचनोंसे प्रसन्न कर, अपने अपने देशको पठाया ॥ २८ ॥ इस प्रकार जगत्पति महात्मा श्रीकृष्णके छुड़ाये हुए कष्टमुक्त राजालोग भगवानका और उनके चरितोंका ध्यान करते अपने अपने देशोंको गये ॥ २९ ॥ वहां जाकर, अपनी प्रजासे भगवानका सब चरित कहा. और भगवानने जो आज्ञा फरमायी थी. उन लोगोंने आलस छोड़कर, वैसेही किया ॥ ३० ॥ भगवान इसप्रकार भीमसेनके हाथ जरासंधको मरवाय, सहदेवसे

बिलकुल नहीं चाहते. केवल राज्य नहीं चाहते, इतनाही नहीं. किंतु परलोकमें क्रियाके फलरूप कर्णप्रिय स्वर्गादिक भोगभी नहीं चाहते ॥ १४ ॥ अतएव यहां अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हम जिस उपायसे आपके चरणारविंदको विस्मृत न हो जायं, ऐसा उपाय बतलाओ ॥ १५ ॥ कृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा, प्रणत लोगोंके क्लेश मिटानेवाले, गोविंद भगवान आपको हम वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- महाराज ! बंधनसे मुक्त राजाओंने इसप्रकार भगवानकी स्तुति की. तद दयालु शरणागतवत्सल भगवानने मधुर वाणीसे उनसे कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान बोले कि-हे राजा-

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः ॥ स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ॥ १५ ॥ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ॥ प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तूयमानो भगवान्राजभिर्मुक्तबंधनैः ॥ तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्य प्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे ॥ सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥ १८ ॥ दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवंत ऋतभाषिणः ॥ श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥ १९ ॥ हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे ॥ श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥ भवंत एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमंतवत् ॥ मां यजंतोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥ २१ ॥ संतन्वंतः प्रजातंतून्सुखं दुःखं भवाभवौ ॥ प्राप्तं प्राप्तं च सेवंतो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥ २२ ॥

लोगो ! सबका ईश्वर और आत्मा जो मैं हूं, उसमें तुम जैसी भक्ति चाहते हो, वैसेही आजसे ले, तुम्हारी दृढ भक्ति होवे ॥ ॥ १८ ॥ हे राजाओ ! तुमने बहुत ठीक निश्चय किया है. और तुम सच कतहे हो, कि-लक्ष्मी और ऐश्वर्यके मदसे होता जो यथेष्टाचरण वह लोगोंको उन्मत्त कर देता है. यह बात ऐसीही देखनेमें आती है ॥ १९ ॥ सहस्रार्जुन, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर और दूसरेभी दैत्य, देवता व राजालोग लक्ष्मीके मदसे स्थानच्युत हुए हैं ॥ २० ॥ तुम इन जन्म पानेवाले देह-आदि पदार्थोंको नाशवान समझकर, यज्ञोंसे मेरा यजन करो. और धर्मसे प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ पुत्र-आदि संतति उत्पन्न करते और सुख दुःख व लाभ अलाभ जो आजाय, उसीका सेवन करते मुझमें चित्त लगाये विचरते रहो ॥ २२ ॥

जोड़, वचनोंसे प्रशंसा करने लगे ॥ ६ ॥७॥ राजा बोले कि–हे देवदेवेश! हे शरणगतार्तिहर !हे अखंडस्वरूप ! हे कृष्ण ! इस घोर संसारसे खेदयुक्त जो हम आपके शरण आये हैं, तिनकी रक्षा करो ॥ ८ ॥ ॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हम इस जरासंध-को दोष नहीं लगाते, क्योंकि हे विभु ! राजाओंका जो राजभ्रष्ट होवे, यह आपका अनुग्रह समझना चाहिये, राज्यसंबंधी ऐश्वर्यसे मदमत्त राजा आपकी मायासे मोहित होकर, अनित्यसंपदाओंको स्थिर मानता है और उसीसे कल्याणको प्राप्त नहीं होता ॥ ९ ॥ १० ॥ जैसे मूर्खलोग मृगतृष्णाको जलाशय मानते हैं, ऐसे अज्ञानीलोग अनेक विकारवाली मायाको सत्य कर-

राजान ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराऽव्यय ॥ प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोरसंसृतेः ॥ ८ ॥ नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ॥ अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥ राज्यै-श्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विंदते नृपः ॥ त्वन्मायामोहितो नित्या मन्यते संपदोऽचलाः ॥ १० ॥ मृग-तृष्णां यथा बाला मन्यंत उदकाशयम् ॥ एवं वैकारिकीं मायामयुक्तावस्तु चक्षते ॥ ११ ॥ वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः ॥ घ्नंतः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वा-विगणय्य दुर्मदाः ॥ १२ ॥ त एव कृष्णाद्यगभीररंहसा दुरंतवीर्येण विचालिताः श्रियः ॥ कालेन त-न्वा भवतोऽनुकंपया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥ १३ ॥ अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा ॥ उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥ १४ ॥

के, मानते हैं ॥ ११ ॥ हे प्रभु ! जो हम पहले लक्ष्मीके मदसे अंध हो, इस पृथ्वीको जीतलेनेकी इच्छासे एक दूसरेके साथ द्वेष करते, शिरपर रहे मृत्युरूप आपको न गिनते मदोन्मत्त हो अत्यंत निर्दयतासे अपनी प्रजाको मारते थे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! वेही हम आज आपकी कृपासे गंभीर वेगवाले आपके शरीररूप अपार बलवाले कालसे लक्ष्मी जानेके कारण गर्वरहि-त हो, आपके चरणस्मरणकी आशा रखते हैं. अतएव हम कहते हैं कि–राज्यभ्रष्ट होना, यह आपका अनुग्रहही है ॥ १३ ॥ अब तो हम निरंतर क्षीण होतेजाते और रोगोंके उत्पत्तिक्षेत्र शरीरसे सेवन करनेयोग्य व मृगतृष्णाके समान राज्यको

भाषाटीकायां द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ तिहत्तरवें अध्यायमें हरिभगवान् राजाओंको कैदसे छुड़ाय, राजाओंके योग्य भोग्य वस्तु दे, अपने अपने देशको रवाना करके, फिर पीछे आये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-बीस हजार और आठसौ राजा, जिनको लीलामात्रसे युद्धमें जीतकर, जरासंधने पर्वतकी गुफामें कैद किया था, वे गुफासे बाहिर निकले. जोकि मलिनरुप, मैले वस्त्र पहिरे थे, ॥ १ ॥ भूंखसे दुबले, शुष्कमुख और कैदमें रहनेसे बहुत कृश थे. उन्होंने मेघसे श्यामवर्ण पीले कौशेयवस्त्र धारण किये भगवानका दर्शन किया ॥ २ ॥ कैसे हैं वे भगवान् जो श्रीवत्सका चिन्ह व चार भुजा धारण किये,

श्रीशुक उवाच ॥ अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ॥ ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ॥ ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्सांकं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ चारु प्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशंखरथांगैरुपलक्षितम् ॥ किरीटहारकटककटिसूत्रांगदाचितम् ॥ ४ ॥ भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ ५ ॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां रंभंत इव बाहुभिः ॥ प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥ कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ॥ प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्रांजलयो नृपाः ॥ ७ ॥

कमलके गर्भसे अरुण जिनके नेत्र हैं, सुंदर व प्रसन्न जिनका मुख है, कानोंमें मकराकृत कुंडल जिनके झलक रहे हैं ॥ ३ ॥ कमल जिनके हाथमें है, गदा, शंख व चक्र, ये चिन्ह जिनके उपलक्षक हैं, किरीट, कड़े, कटिमेखला व भुजबंध ये आभूषण जिनके शोभ रहे हैं ॥ ४ ॥ कौस्तुभमणि जिनके कंठमें देदीप्यमान है और वनमाला धारण किये हैं, ऐसे भगवान्को मानों नेत्रोंसे पीते होवें, जीभसे चाटते होवें, नासिकासे सूंघते होवें और भुजासे मिलते होवें, इस तरह उन निष्पाप राजाओंने हरिके चरणोंमें मस्तकोंसे प्रणाम किया ॥ ५ ॥ ६ ॥ भगवान्के दर्शनके आनंदसे जिनका कैदका खेद जातारहा है, ऐसे राजा लोग हाथ

१ एकविंशतिसाहस्रे वधस्तेषां हि संमतः ॥ ततः शतद्वयं न्यूनास्तेन पूर्वं न मारिताः ॥ १ ॥ अर्थ-जरासंधने 'जब एकवीस हजार पूरे होंगे तब मारूंगा' ये संमत किया था सो उसमें दौसौ कमती थे इसीसे न मारा. इससे यह शंका नहीं करना कि- मार क्यों न डाला ? ॥ १ ॥

मैं तो युद्धमें जरासंधको नहीं जीत सक्ता ॥ ४१ ॥ तद जरासंध दो खंडोंके रूपसे प्रगट हुआ है और जरा राक्षसीने उन खंडों-को सांधकर,जिलाया है. और वह दोखंड होनेहीसे मरेगा, इस बातके ज्ञाता हरि भगवान्‌ने भीमसेनको अपने तेजसे बढ़ाया और जरासंधको चीर डालनेका विचार किया ॥ ४२ ॥ अमोघ ज्ञानमान हरि भगवान्‌ने वैरीके बधका उपाय विचार, एक वृक्ष-की टहनी हाथमें ले, उसे चीरते उसी संकेतसे वह उपाय भीमसेनको बतलाया ॥ ४३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ महाबलवान भीमसेनने वह उपाय समझकर, वैरीको पांव पकड़, पृथ्वीपै गिराया ॥ ४४ ॥ उसके एक पांवको पांवसे दाब, दूसरा पांव

शत्रोर्जन्मसृती विद्वान्जीवितं च जराकृतम् ॥ पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिंतयद्धरिः ॥ ४२ ॥ संचित्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ॥ दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४३ ॥ तद्विज्ञा-य महासत्त्वो भीमः प्रहरतांवरः ॥ गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४४ ॥ एकं पादं पदाऽऽक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ॥ गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥ ४५ ॥ एकपादो-रुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ॥ एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ॥ पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥ ४७ ॥ सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ॥ अभ्यषिंचदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ॥ मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे जरासंधवधोनाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

हाथोंसे पकड़, जैसे गजराज वृक्षकी शाखाको चीर डालता है, ऐसे उसे गुदासे चीर डाला ॥ ४५ ॥ प्रजाने उसके दोनों खंड कि–जिनमें एक एक पांव, उरु, वृषण, कमर, पीठ, स्तन, कंधा, हाथ, आंख, भौंह, कान थे. ऐसे देखे ॥ ४६ ॥ जरासंधके मरनेपर बड़ा हाहाकार हुआ और अर्जुन श्रीकृष्णचंद्रने आलिंगन करके, भीमसेनका सत्कार किया ॥ ४७ ॥ अप्रमेय स्वरूप, भूतभावन, प्रभु भगवान्‌ने उसके पुत्र सहदेवका मगधदेशमें राज्याभिषेक किया. और जरासंधने जिन राजाओंको कैद कर रक्खा था, उन्हेंभी कैदसे छुड़ा दिया ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्याम विरचितायां तत्वदीपिकानाम-

गदाओंका प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥ अखाड़ेमें पटा खेलते, रंगभूमिगत नटोंके समान बाएं दाहिने विचित्र मंडलोंमें फिरते इन दोनोंजनोंका युद्ध शोभा देने लगा ॥ ३५ ॥ महाराज ! जैसे हाथियोंके लड़ते उनके दांतोंका शब्द होता है. ऐसे आपसमें चलाईजातीं गदाओंका वज्रपातके समान चट चटशब्द होता था ॥ ३६ ॥ और उद्दीप्त क्रोधवाले हाथियोंके युद्ध करते अंगपर पड़कर, जैसे आककी टहनियां टूट पडें. ऐसे हाथके बेगसे चलाईजातीं दोनों गदायें एक दुसरेके कंधे, कमर, हाथ, पांव, साथल व हसियोंपर पड़कर चूर्ण हो गयीं ॥ ३७ ॥ इसतरह गदाओंके टूटजानेसे वे

मंडलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ॥ चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रंगिणोः ॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ॥ गदयोः क्षिप्तयो राजन्दंतयोरिव दंतिनोः ॥ ३६ ॥ ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योऽन्यतोंऽसकटिपादकरोरुजत्रून् ॥ चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्य्वोः ॥ ३७॥ इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम् ॥ शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवाऽऽसीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥ तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ॥ निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ॥ दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥ एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ॥ न शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधि माधव ॥ ४१ ॥

दोनों वीर क्रोधमें आ, लोहके समान कठोर स्पर्श मुक्कियोंसे आपसमें मुक्कंमुक्का हुए. और एक दूसरेके अंगको चूर्ण करने लगे, हाथीके समान प्रहार करते इन दोनों वीरोंके चपेट मारनेका शब्द वज्रपातके समान कठोर होता था ॥ ३८ ॥ महाराज ! अभ्यास, धैर्य और प्रभावसे समान अतएव जिनका वेग क्षीण नहीं हुआ था, ऐसे उन दोनों भीम और जरासंधके बीच एकसा युद्ध होने लगा ॥ ३९ ॥ महाराज ! इस तरह उनके युद्ध करते करते सत्ताईस दिन बीत गये. यदपि वे दिनमें तौ युद्ध करते थे पर रात्रिमें मित्रके समान रहते थे ॥ ४० ॥ महाराज ! एक समय मामाके पुत्र श्रीकृष्णसे भीमसेनने कहा कि–हे कृष्ण !

करे तौ फिर उस नाशवान शरीरका प्रयोजनही क्या है ?" ॥ २६ ॥ ऐसा विचार करके, उदारबुद्धि जरासंधने श्रीकृष्ण, अर्जुन व भीमसेनसे कहा कि- हे ब्राह्मणो ! आपकी जो इच्छा हो सो मांगो. मेरा शिर मांगोगे तौ वहभी दूंगा ॥ २७ ॥ श्रीभगवान् बोले कि-हे राजेंद्र ! यदि आपकी इच्छा हो तौ, हमें द्वंद्वयुद्ध देओ, हम क्षत्रिय हैं. युद्धकी इच्छासे आये हैं. अन्न मांगने नहीं आये ॥ २८ ॥ यह तौ कुंतीके पुत्र भीमसेन हैं. उनका भाई यह अर्जुन है. इन दोनोंके मामाके बेटा भाइ हम तुम्हारे बैरी कृष्ण हैं. सो तुम जानो ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-श्रीकृष्णके मुखसे ये समाचार सुन, राजा जरासंध ऊंचे स्वरसे

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ॥ हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धं नो देहि राजेंद्र द्वंद्वशो यदि मन्यसे ॥ युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः ॥ २८ ॥ असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् ॥ अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः ॥ आह चामर्षितो मंदा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥ ३० ॥ न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ॥ मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ ३१ ॥ अयं तु वयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ॥ अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ॥ द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥ ३३ ॥ ततः समेखले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ ॥ जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥

हँसा और क्रोधमें आकर, बोला कि-हे मूर्खो ! तब तौ मैं तुम्हें युद्ध देता हूं ॥ ३० ॥ डरपोंक और युद्धमें विकलचित्त जो तू है सो तुझसे तौ युद्ध करूंगा नहीं, क्योंकि पहलेभी तू अपनी मथुरापुरी छोड़, समुद्रके शरण चला गया था ॥ ३१ ॥ यह जो अर्जुन है सो न तौ अवस्थामें मेरे बराबर है, न बलमें अधिक है और न शरीरसे मेरे समान है, इस लिये यहभी मेरे लायक योद्धा नहीं. अलबत्ता भीमसेन मेरे समान बलवाला है ॥ ३२ ॥ ऐसे कह, भीमसेनको एक बड़ी गदा दे, दूसरी आप ले, नगरसे बाहिर निकला ॥ ३३ ॥ फिर वे रणमें मदोन्मत्त वीर युद्धभूमिमें आ, आपसमें भिड़े. और वज्रके समान

गाने योग्य अविचल यश संपादन नहीं करता. वह पुरुष निंदा व खेदका पात्र होता है ॥ २० ॥ देखो ! हरिश्चंद्र, रंतिदेव, उंछवृत्ति (मुद्गल), शिबि, बलि, कपोत, व्याध ये बहुतसे अनित्य शरीरसे अविचल पदको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-स्वर, आकृति व धनुषकी प्रत्यंचाके घातके चिन्हवाले भुजोंसे उनको क्षत्रिय जानकर, पहिले कहीं देखे हैं ऐसे शोचने लगा ॥ २२ ॥ " ये लोग क्षत्रिय हैं. पर ब्राह्मणका रूप धारण कर, आये हैं. यदि ये लोग शरीर मांगेंगे तौ दुस्त्यज

हरिश्चंद्रो रंतिदेव उंछवृत्तिः शिबिर्बलिः ॥ व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ॥ राजन्यबंधून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिंतयत् ॥ २२ ॥ राजन्यबंधवो ह्येते ब्रह्मलिंगानि बिभ्रति ॥ ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥ २३ ॥ बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्वितता दिक्ष्वकल्मषा ॥ ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियं जिहीर्षतेंद्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ॥ जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोऽपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवता-ब्राह्मणार्थाय कोऽन्वर्थः क्षत्रबंधुना ॥ देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥

शरीरभी इन्हें दे दूंगा ॥ २३ ॥ यद्यपि विष्णुने कपटसे ब्राह्मणका वेष बनाय, बलिराजाको ऐश्वर्यसे भ्रष्ट करदिया. तौभी अबतक दिशाओंमें फैली हुई बलिराजाकी निर्मलकीर्ति सुननेमें आती है ॥ २४ ॥ बलिराजाको शुक्राचार्यजीने बहुत बर्जा. व आपभी जानता था, कि-' यह विष्णु हैं. ' तौभी ब्राह्मणका वेष धरनेवाले विष्णुभगवानको पृथ्वी दान दिया. जो इंद्रको राजलक्ष्मी देनेकी इच्छासे आये थे ॥ २५ ॥ क्षत्रिय होकर, जो जीतेहुए शरीरसे ब्राह्मणका अर्थ संपादन करके, कीर्ति उपार्जन न

१ उंछवृत्ति मुद्गलकी ऐसी कथा है कि-ये छे महीने बरोबर कुटुंबके साथ भूंखे रहे सो जब आहार प्राप्त भया तबभी अतिथि आ जानेपर वह अन्न उन्होंने अतिथिको दे दिया जिससे कुटुंबसहित स्वर्गको गये.

२ इस कपोत (कबूतर) की ऐसी कथा है कि- एकदिन एक व्याध अतिथि बन, इसके पास आया तो इसने इसे अपनी कपोती (कबूतरी) के साथ अपना मांस दिया. जिससे विमानमें बैठके, स्वर्ग गया. इति-

३ व्याधकी ऐसी कथा है कि-यही जो व्याध कपोतके पास गया था सो उसने इस कपोत और कपोतीका ऐसा सत्त्व देख, अपना अतिनिर्विण्ण हुआ और दावाग्निमें जलके, निष्पाप हो, स्वर्गको गया. इति-

विष्णुके तेजसे वृद्धिंगत अपने भाइयोंको दिग्विजय करनेकी आज्ञा दी ॥ १२ ॥ सहदेवको सृंजय क्षत्रियोंके साथ दक्षिणमें भेजा, पश्चिम दिशामें केकय देशके क्षत्रियोंके साथ नकुलको भेजा, उत्तर दिशामें मद्रदेशके क्षत्रियोंके साथ अर्जुनको और पूर्वदिशामें मत्स्य देशके क्षत्रियोंके साथ भीमसेनको भेजा ॥ १३ ॥ महाराज ! इन वीरपुरुषोंने पराक्रमसे राजाओंको जीत, यज्ञ करनेकी इच्छावाले राजा युधिष्ठिरके दिशाओंसे बहुतसा द्रव्य लाकर, अर्पण किया ॥ १४ ॥ जरासंध नहीं जीता गया. ये समाचार सुन, राजा विचार करने लगे, तद भगवान्ने जो उपाय उद्धवजीने कहा था, वही उपाय बतलाया ॥ १५ ॥ महाराज ! भीमसेन, अर्जुन

सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सह सृंजयैः ॥ दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ॥ प्राच्या वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥ १३ ॥ ते विजित्य नृपान्वीरा आजह्रुर्दिग्भ्य ओजसा ॥ अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितं जरासंधं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ॥ आहोपायं तमेवाऽद्य उद्धवो यमुवाचह ॥ १५ ॥ भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिंगधरास्त्रयः ॥ जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥ ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ॥ ब्रह्मण्यं समयाचेरन्राजन्या ब्रह्मलिंगिनः ॥ १७ ॥ राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ॥ तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥ १८ ॥ किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ॥ किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ॥ नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥ २० ॥

व श्रीकृष्णचंद्र ये तीनों ब्राह्मणका रूप धर, गिरिव्रज गये; क्योंकि जरासंध उस समय वहीं था ॥ १६ ॥ ब्राह्मणके रूप बनाये इन क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंका भक्त और गृहस्थधर्म पालनेवाले जरासंधके पास अतिथिके पूजनसमयमें जाकर, प्रार्थना की ॥ १७ ॥ कि–महाराज ! हम याचना करनेको दूरसे अतिथि आये हैं. सो आपको विदित होवे, इसलिये हम जो कुछ मांगें, वह आप हमें देवें. इससे आपका कल्याण होगा ॥ १८ ॥ सहनशील पुरुषोंके कुछभी असह्य नहीं है. और नीच पुरुषोंके कुछभी अकार्य नहीं है तथा समदृष्टि पुरुषोंके शत्रु नहीं है. वैसेही उदार पुरुषोंके कुछभी वस्तु अदेय नहीं है ॥ १९ ॥ जो पुरुष समर्थ होकर, इस अनित्य शरीरसे सत्पुरुषोंके

चाहिये, हे प्रभु ये कितने एक कुरु व संजयवंशी लोग जो कर्मादिको प्रधान मानकर, आपकी भक्तिको उत्तम नहीं मानते. उनका अ-ज्ञान दूर करनेको जो आपका भजन करते हैं. और जो नहीं करते हैं. उन दोनोंकी स्थिति दिखलाओ ॥५॥ उपाधिरहित सर्वके आत्मा आप समदृष्टि और स्वरूपसुखके अनुभवरूप हो, अतएव आपके 'यह अपना है और यह पर है,' ऐसा भेद भाव नहीं होवे. तौभी कल्पवृक्षके समान आपके सेवक लोगोंकोही आपका प्रसाद प्राप्त होता है. दूसरोंको नहीं मिलता. और जो फल मिलता है. वहभी सेवाके अनुसारही मिलता है. इसमें कभी फर्क नहीं पड़ता ॥ ६ ॥ श्रीभगवान बोले कि-हे शत्रु दमन! महाराज! आपने बहुत अच्छा निश्चय किया है, जि-

न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ॥ संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवाऽनुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन ॥ कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥ ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ॥ सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं व-शे ॥ संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥ एते ते भ्रातरो राजन्लोकपालांशसंभवाः ॥ जितोस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥ १० ॥ न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रि-या ॥ विभूतिभिर्वाऽभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखांबुजः ॥ भ्रातृन्दिग्विजयेऽयुंक्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥

ससे आपकी पवित्रकीर्ति सब लोकोंमें व्याप्त हो जायगी ॥ ७ ॥ हे प्रभु! यह उत्तम यज्ञ ऋषि, पितर, देवता, सुहृद, हम और सब प्राणी-मात्रकोभी इष्ट है ॥ ८ ॥ सब राजाओंको जीत, पृथ्वीको वशमें कर, सब तैयारी करके, बड़ा यज्ञ करो ॥ ९ ॥ महाराज! आपके दिग्विजय करनेमें कुछभी कठिनता नहीं होगी; क्योंकि प्रथम तौ ये आपके भाई लोकपालोंके अंशोंसे प्रकट हुए हैं, दूसरा मैंभी जिसको अजितेंद्रिय पुरुष कभी वश नहीं कर सकते ऐसे आपके जितेंद्रियपनसे वश हूं ॥ १० ॥ जो पुरुष मेरा भक्त है. उसका तेज, यश, लक्ष्मी व सेना-आदिसे कोईभी पराभव नहीं करसक्ता. जब देवताभी नहीं करसक्ता, तौ राजाकी तौ बातही क्या? ॥ ११ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-भगवान्के वचन सुन, राजा युधिष्ठिरने प्रीतिसे प्रफुल्लमुखकमल हो

खांडववनसे अग्निको तृप्त किया, उसमें जो मय दैत्य जल रहा, था, उसे बचाया. जिसने दिव्य सभा बनाके, युधिष्ठिरको अर्पण की ॥ ४५ ॥ अर्जुनके साथ रथमें विराज, योधा लोगोंको संग ले, विहार करते भगवान् राजाको प्रसन्न रखनेके लिये कितने एक महीने इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) में विराजे ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ बहत्तरवें अध्यायमें राजाने अपना कार्य निवेदन किया. तद जरासंधको दुर्जय जान, भीमसेनसे भगवान्‌ने उसे मरवाया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–एकदिन महाराज युधिष्ठिर मुनि, ब्राह्मण,

उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभा० महा० दश० उत्तरार्धे कृष्णस्यैंद्रप्रस्थगमनंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसंबंधिबांधवैः ॥ शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ क्रतुराजेन गोविंद राजसूयेन पावनीः ॥ यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्संपादय नः प्रभो ॥ ॥ ३ ॥ त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरंति ध्यायंत्यभद्रनशने शुचयो गृणंति ॥ विंदंति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥ तद्देवदेव भवतश्चरणारविंदसेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः ॥ ये त्वां भजंति न भजंत्युत वोभयेषा निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृंजयानाम् ॥ ५ ॥

क्षत्रिय, वैश्य, भाई, आचार्य, कुलवृद्ध, ज्ञाति, संबंधी व बांधव, इनसे वेष्टित हो, सभाके बीच बैठे हुए उन सब लोगोंके सुनतेही भगवान्‌को संबोधन देकर, यह कहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि–हे गोविंद ! हे प्रभु ! सब यज्ञोंका राजा जो राजसूय नाम यज्ञ है. उससे मैं आपके अंशरूप देवतानका पूजन करना चाहता हूं सो यह काम आप सिद्ध करो ॥ ३ ॥ हे पद्मनाभ ! हे ईश ! जो लोग पवित्र हो, अकल्याणनाशक आपकी पादुकाओंका निरंतर देहसे सेवन करते हैं, मनसे ध्यान करते हैं और वाणीसे वर्णन करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं और जो उन्हें संसारके सुखकी इच्छा होवे तौ वहभी उन्हींको मिलसकता है. दूसरोंको नहीं मिलसक्ता ॥ ४ ॥ इसलिये हे देवदेव ! इन लोगोंको आपके चरणारविंदकी सेवाका प्रभाव इस विषयमें अवश्य दिखलाना

पुरुषोत्तम भगवान् अपने उदार मंदहास्य और लीलापूर्वक अवलोकनकी कलासे उत्सव देते हैं" ॥ ३६ ॥ निष्पाप पुरवासी और मुख्य मुख्य कारीगर लोग जहां तहां मांगलिक पदार्थ हाथमें लिये समीप आ आ, भगवान्‌को भेंटें अर्पण करते थे ॥ ३७ ॥ प्रीतिसे प्रफुल्लितनेत्र और बड़े संभ्रमयुक्त अंतःपुरकी स्त्रियोंने सन्मुख जाकर, जिनका सत्कार किया है, ऐसे भगवान् राजमंदिरमें पधारे ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीनाथ अपने भाईके पुत्र श्रीकृष्णको देखकर, कुंती प्रसन्न हो, पलँगसे उठ बहू जो द्रौपदी उसके साथ भगवान्‌से मिली ॥ ३९ ॥ आदरयुक्त राजा युधिष्ठिर, देवदेव जो ब्रह्मादिक उनके नाथ श्रीकृष्णचंद्रको अपने घर ले

तत्र तत्रोपसंगम्य पौरा मंगलपाणयः ॥ चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३७ ॥ अंतःपुरजनैः प्रीत्या मुकुंदः फुल्ललोचनैः ॥ ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमंदिरम् ॥ ३८ ॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ प्रीतात्मोत्थाय पर्यंकात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥ ३९ ॥ गोविंदं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः ॥ पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ४० ॥ पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् ॥ स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवंदितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः ॥ आनर्च रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जांबवतीं तथा ॥ ४२ ॥ कालिंदीं मित्रविंदां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् ॥ अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रग्मंडनादिभिः ॥ ४३ ॥ सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ॥ ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥ ४४ ॥ तर्पयित्वा खांडवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥ मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥

आये. उस समय वे प्रेमसे ऐसा विकल हो गये थे कि–पूजाकेभी कितने एक प्रकार भूल गये ॥ ४० ॥ भगवानने फूफी और दूसरी गुरुजनोंकी स्त्रियोंको प्रणाम किया, महाराज द्रौपदी और सुभद्राने उन्हें प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ सासकी प्रेरणासे द्रौपदीने, रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जांबवती, कालिंदी, मित्रविंदा, शैब्या, नाग्नजिती और दूसरीभी भगवान्‌की रानियां जो आई थीं उन सबकी वस्त्र, माला व आभूषण–आदिसे पूजा की ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ धर्मराजनेभी भगवान्‌का सेना, अनुचर, अमात्य व रानियोंके साथ प्रतिदिन नया नया हो, ऐसे सुखपूर्वक निवास करवाया ॥ ४४ ॥ उन्हें अर्जुनसे बड़ी प्रीतिथी इसलिये अर्जुनको सहायता दे,

स्तुति करते थे ॥ ३१ ॥ जहा मार्गमें हाथियोंके मद और सुगंधि जलसे छिरकाव हो रहा था, विचित्र ध्वजा, सुवर्णके तोरण व जलभरे घड़े शोभा देते थे, स्नान कर, नवीन वस्त्र, आभूषण, माला व सुगंधिपदार्थ धारण किये स्त्रीपुरुष देदीप्यमान हो रहे थे ॥ ३२ ॥ घर घर दीप और पुष्प-आदिके समूह शोभ रहे थे, जालियोंमेंसे सुंदर धूपका धूम निकलता था, पताका शोभायमान लगतीं थीं, जिनके ऊपर सोनेके कलश और सुवर्ण कलशोंके नीचे रूपके बड़े शिखर बनेहुए थे, ऐसे घरोंसे शोभायमान युधिष्ठिरका नगर देखा ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके नेत्रोंके पानपात्र अर्थात् जिनमें सदा नेत्र लगे रहें, ऐसे भगवान् पधारे,

संसिक्तवर्त्मकरिणां मदगंधतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुंभैः ॥ मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गंधैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥ ३२ ॥ उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् ॥ मूर्धन्यहेमकलशैरजतोरुशृंगैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३३ ॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबंधाः ॥ सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेंद्रमार्गे ॥ ३४ ॥ तस्मिन्सुसंकुलइभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ॥ नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥ ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुंदपत्नीस्तारायथोडुपसहाः किमकार्यमूभिः ॥ यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलाऽवलोककलयोत्सवमातनोति ॥ ३६ ॥

यह समाचार सुन, उत्साहसे जिनके केश और वस्त्रके बंधन शिथिल हो गये थे, ऐसी तरुण स्त्रियां घरका धंधा छोंड़, पतियोंको शय्यामेंही छोड़ कर, राजमार्गमें देखने आईं ॥ ३४ ॥ हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्योंकी भीड़भाड़ जिसमें बहुत थी, ऐसे राजमार्गमें अपनी रानियोंके साथ भगवान् पधारे, यह जानकर, स्त्रियां घरोंपै ऊंची चढ़ गयीं. और पुष्पोंकी बर्षा कर, मनसे मिल, उत्साहभरे कटाक्षोंहीसे आगत स्वागत करतीं थीं ॥ ३५ ॥ चंद्रमाके साथ ताराओंके समान भगवान्‌के साथ मार्गमें जातीहुई स्त्रियोंको देख कर, इंद्रप्रस्थकी स्त्रियां बातें करने लगीं कि-" अहो इन्होंने क्या पुण्य किया होगा ? कि-जिनके नेत्रोंको

ध्याय व सुहृद्वर्गको साथ ले, सन्मुख आये ॥ २३ ॥ गाजे बाजे और भारी वेदध्वनिके साथ वे भगवान्से जैसे इंद्रियां प्राणसे मिलें वैसे आदरपूर्वक मिले ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके दर्शन करतेही उनका हृदय स्नेहसे आर्द्र हो गया और चिरकालसे देखे हुए प्रियतमका वारंवार आलिंगन किया ॥ २५ ॥ लक्ष्मीका निर्मल निवास जो भगवान्का शरीर उससे राजा युधिष्ठिर बांह डालकर, मिले. उसी क्षण उनके सब अमंगल जाते रहे और ऐसे आनंदमग्न हुए कि–नेत्रोंमें अश्रु आ गये, शरीर पुलकित हो गया और लौकिक व्यवहार भूल गया ॥ २६ ॥ भीमसेन मामाके पुत्र भगवान्से हँसकर, मिले. उसकाल उनको-

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ॥ अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवाऽऽदृताः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पांडवः ॥ चिराहृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः ॥ २५ ॥ दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं मुकुंदगात्रं नृपतिर्हताशुभः ॥ लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥२६॥ तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेंद्रियः ॥ यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥२७॥ अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथाऽर्हतः ॥२८॥ मानितो मानयामास कुरुसृंजयकैकयान् ॥ सूतमागधगंधर्वा बंदिनश्चोपमंत्रिणः ॥२९॥ मृदंगशंखपटहवीणापणवगोमुखैः ॥ ब्राह्मणाश्चारविंदाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥ ॥३०॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः ॥ संस्तूयमानो भगवान्विवेशालंकृतं पुरम् ॥ ३१ ॥

भी ऐसा आनंद प्राप्त हुआ कि–प्रेमके वेगसे उनकी इंद्रियां व्याकुल हो गयीं. अर्जुन और नकुल सहदेव प्यारे श्रीकृष्णसे आनंदपूर्वक मिले तद उनकेभी अश्रुकी धारा बहने लगीं ॥ २७ ॥ अर्जुन समानवयके थे. इस लिये केवल मिलेही, नकुल, सहदेव छोटे थे इस लिये इन्होंने प्रणामभी किया. उस समय भगवान्ने ब्राह्मण और वृद्ध पुरुषोंको यथायोग्य नमस्कार कर, उनसे मान पाय, कुरु, सृंजय, कैकय, सूत, मागध, गंधर्व, बंदी व उपमंत्रियोंका सत्कार किया ॥ २८ ॥ २९ ॥ ये लोग मृदंग, शंख, पटह, वीणा, पणव, रणसींगा बजाते नृत्य व गान करते थे. और ब्राह्मण लोग उस समय स्तुति करते थे. ॥ ३० ॥ इस प्रकार पुण्यश्लोकपुरुषोंके चूड़ामणि भगवान् सुहृद लोगोंके साथ सिंगारेहुए पुरमें पधारे. उस समय सब लोक

सामान, आदमी, ऊंट, बैल, भैंसे, गधे, खच्चर, गाड़े और हथिनियोंपै लाद कर, चारोंओरसे रवाना हुए ॥ १६ ॥ तुमुल शब्द-युक्त वह भारी सेना, ध्वजा, छत्र, चमर, पट, उत्तम आयुध, आभरण, किरीट कवच व सूर्यकी किरणोंसे, जैसे समुद्र क्षोभित हुए मत्स्यों और कल्लोलोंसे शोभायमान होवे वैसे, शोभा देती थी ॥ १७ ॥ फिर नारदजी भगवान्‌से आदर पाय, भगवान्‌के दर्शनसे परमआनंदमें मग्नचित्त हो, भगवान्‌के कर्त्तव्यका निश्चय सुन, उन्हें प्रणाम कर, हृदयमें उनका स्मरण करते पूजाको स्वीकार कर, आकाशमार्गसे चले ॥ १८ ॥ भगवान्‌ने बाणीसे राजदूतको प्रसन्न करके कहा कि– " हे दूत तू राजाओंसे कह

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ॥ दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथाऽर्णवः क्षुभिततिमिंगिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥ अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा ॥ निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो मुकुंदसंदर्शननिर्वृतेंद्रियः ॥ १८ ॥ राजदूतमुवाचेदं भगवान्प्रीणयन् गिरा ॥ माभैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥ १९ ॥ इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् ॥ तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः ॥ २० ॥ आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः ॥ गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ २१ ॥ ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुंदोऽथ सरस्वतीम् ॥ पंचालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम् ॥ अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥ २३ ॥

कि–तुम मत डरो. मैं जरासंधको मार, तुम्हारा कल्याण करूंगा " ॥ १९ ॥ भगवान्‌ने ऐसे कहा. तद उस दूतने वहां आकर, राजाओंको यथावस्थित सब समाचार कह सुनाये. वेभी छुटकारा होनेकी इच्छासे भगवान्‌के दर्शनकी राह देखने लगे ॥ २० ॥ हरिभगवान्, आनर्त, सौवीर, मरुदेश (मारवाड़) को छोड़, कुरुक्षेत्र, पर्वत, नदियां, पुर, गांव, व्रज, और खानोंके प्रदेशोंको उल्लंघन कर, दृषद्वती व सरस्वतीको पार उतर, पंचाल और मत्स्य देशको छोड़, इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) पधारे ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ जिनके दर्शन मनुष्योंको बड़े दुर्लभ हैं ऐसे भगवान् पधारे यह समाचार सुन, युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए. और उपा-

पड़ जायंगे; मेरे मनमें भासता है कि–प्रायः राजाओंके पुण्यका पाककाल और जरासंध–आदिके पापका पाककाल आ जानेसे आपकी राजसूय कज्ञ करानेपर रुचि हुई है ॥ १० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! इस प्रकार सब प्रकारसे कल्याणकारक और उत्तम युक्तिभरित उद्धवजीके वचनको नारदजी, यदुवृद्ध व श्रीकृष्णभगवान्‌ने मान दिया और स्वीकार किया ॥ ११ ॥ फिर देवकीपुत्र भगवान्‌ने वसुदेवजी–आदि गुरुजनोंकी आज्ञा ले, प्रयाणके लिये दारुक व जैत्र–आदि भृत्य लोगोंको आज्ञा की ॥ १२ ॥ हे शत्रुघातक ! पुत्र, दासी, दास और सामानसहित अपनी रानियोंको रवाना कर, बलदेव-

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धववचो राजन्सर्वतो भद्रमच्युतम् ॥ देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥ अथाऽऽदिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः ॥ भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ १२ ॥ निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् ॥ संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ॥ सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥ ततो रथद्विपभटसादिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया ॥ मृदंगभेर्यानकशंखगोमुखैः प्रघोषघोषितककुभो निराक्रमत् ॥ १४ ॥ नृवाजिकांचनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ॥ वरांबराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृतान्नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५ ॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनः करेणुभिः परिजनवारयोषितः ॥ स्वलंकृताः कटकुटिकंबलांबराद्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ १६ ॥

जी और उग्रसेनजीसे आज्ञा ले, श्रीकृष्णचंद्र, सारथीके लाये अपने गरुड़ध्वज रथपर चढ़े ॥ १३ ॥ फिर रथ, हाथी, प्यादल, घोड़ेसवार और सर्दार इनसे भयंकर अपनी सेनासे आवृत हो, मृदंग, शंख, भेरी, आनक, गोमुख, इनके घोषसे घनघोर दिशासे भगवान् रवाने हुए ॥ १४ ॥ उस समय ढाल, तलवार हाथमें लिये पुरुषोंसे वेष्टित हो. उत्तम आभूषण, वस्त्र, अरगजा व माला धारण किये, पुत्रोंको संग ले, पवित्र भगवान्‌की स्त्रियां तामजाम, बग्घी, पालकी, इनमें बैठ बैठ, अपने स्वामी भगवान्‌के पीछे पीछे जाने लगीं ॥ १५ ॥ परिजनकी स्त्रियां व वेश्यागण अच्छी तरह अलंकृत हो, चटाइयोंके डेरे व कंबल, वस्त्रआदि सब

१ इससे सूचित होता है कि–अनिरुद्धआदि जो तरुण थे उनको यह ठीक नहीं लगी.

अधिक बलवालोंसेभी मारा जा सके ऐसे नहीं है. उसको तो केवल भीमसेनही मारसक्ते हैं. यद्यपि भीमसेनमेंभी उतनाही बल है. तौभी भीमसेनके हाथहीसे उसका वध सरजा हुआ है ॥ ५ ॥ जरासंधको द्वंद्वयुद्धहीमें जीतना चाहिये. परंतु अनेक अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करनेका उसे अवसर न देना चाहिये, इस तरह करनेका उपाय यह है, कि-भीमसेन ब्राह्मणका रूप धर, उसके पास जाकर, द्वंद्वयुद्ध मांगे. जरासंध ब्राह्मणोंका भक्त हैं तासों ब्राह्मण जो कुछ मांगे उसके लिये वह निषेध नहीं करता, यह बात बने और आप पास रहो, तौ भीमसेन उसे जरूर मारेगा. इसमें कुछभी संशय नहीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ निराकार कालरूप ईश्वर आपही जगतकी सृष्टि और संहार करते हो उनमें जैसे ब्रह्मा और रुद्र केवल निमित्त मात्र हैं, ऐसे समीपमें ठाढ़े आपही उस जरासंधको

द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ॥ ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥ ६ ॥ ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ॥ हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव सन्निधौ ॥ ७ ॥ निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ॥ हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥ गायंति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ॥ गोप्यश्च कुंजरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥ ९ ॥ जरासंधवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ॥ प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥ १० ॥

मारोगे, भीमसेन तौ केवल निमित्तमात्र होंगे ॥ ८ ॥ जैसे गोपियां शंखचूड़के मारने और अपने छुड़ानेरूप आपके पवित्र चरित्रको गाती हैं, जैसे शरणागत लोक ग्राहके मारने और गजराजके छुड़ानेरूप पवित्र चरित्रको गाते हैं, जैसे मुनिलोग रावणके मारने और उससे सीताके छुड़ानेरूप पवित्र चरित्रको गाते हैं, जैसे हम कंसके मारने और उससे मातापिताके छुड़ानेरूप आपके पवित्र चरित्रको गाते हैं, तैसे जरासंधके पकड़ेहुए राजाओंकी स्त्रियांभी अपने घरोंमें बच्चोंको खिलाने-आदि काम करतीं "हे पुत्र रुदन मत करे, करुणासागर श्रीकृष्णचंद्र जरासंधको मारेंगे और तेरे पिताको छुड़ावेंगे" इस तरह आपके पवित्र कर्म गातीं हैं ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! जरासंधके बधसे कई प्रयोजन सिद्ध होंगे; क्योंकि उसके बधसे शिशुपाल-आदि सब शत्रु निर्बल

त्कार कर, श्रद्धासे प्रसन्न करते भगवान्‌ने मधुर वचनोंसे यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि–भला, अभी तीनों लोक सब प्रकारसे निर्भय तो हैं ? आप सब लोकोंमें फिरते हो इससे हमको लोकोंका वृत्तांत जाननेमें बड़ा लाभ होता है ॥ ३५ ॥ ईश्वरके बनाये हुए लोकोंमें आपसे कोई बात अजानी नहीं है, इस लिये हम आपसे पूंछते हैं कि–पांडवोंका अभी क्या करनेका विचार है ? ॥ ३६ ॥ नारदजीने कहा कि–हे प्रभु ! हे भूमन् ! आप कि–जो ब्रह्माजीकोभी मोहित करनेवाले और अपनी शक्तियोंसे प्राणियोंमें अंतर्यामीरूपसे रहनेपरभी काष्ठमें रहे अग्निके समान गुप्त प्रकाशवाले हो. उनकी माया

अपिस्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् ॥ ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥ ३५ ॥ न हि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ॥ अथ पृच्छामहे युष्मान्पांडवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः ॥ भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभिर्वह्नेरिवच्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ॥ यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ॥ लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥ अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडंबनम् ॥ राज्ञः पैतृष्वस्रेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥ ४० ॥

मैंने कितनेबेर देखी हैं, अतएव यह आपका किया प्रश्नादिक मुझे अद्भुत मालूम नहीं होता ॥ ३७ ॥ यह संसार कि–जो मिथ्या होनेपरभी आपकी मायासे विद्यमानसा मालूम होता है. उसे सरजने और संहार करनहारे आपके अभिप्रायको कौन पुरुष भली भांति जान सके ? कोई नहीं जान सक्ता, उन अचिंत्यस्वरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ जिन आपने जन्म, मरण पाते और अनेक अनर्थदायी शरीरसे मुक्त होनेका उपाय न जाननेवाले, जीवोंका अज्ञानरूप अंधकार दूर करनहारा अपना यशरूप दीप लीलासे अवतार धारण करके प्रगट किया है. उनके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ ३९ ॥ महाराज ! ऐसे है, तौभी मनुष्यलोककी विडंबना करनहारे आपको फूफीका पुत्र जो आपका भक्त राजा युधिष्ठिर, उसका जो अभिप्राय है वह मैं कह-

सदृश है, तौभी हम इस शरीरसे केवल स्त्रीपुत्रादिककीही चिंता करते रहे हैं. और निष्काम लोक जिस स्वतःसिद्ध सुखको आपसे प्राप्त होते हैं उसे छोड़ कर, अतिकृपण बनेहुए आपकी मायासे यहां क्लेश पाते हैं; क्योंकि-पहलेही निष्काम होकर, आपके चरणका शरण नहीं लिया ॥ २८ ॥ इस लिये प्रणतपुरुषोंके शोकका नाश करनेवाला जिनका चरणारविंद है ऐसे आप बँधेहुए जो हम हैं उनको जरासंधनाम कर्मबंधनसे छुड़ाओ, दश हजार हाथियोंका बल धारण करनेवाले अकेले इस जरासंधने सिंह जैसे भेंड़ीको रोक रखता है वैसे, अपने घरमें हम राजाओंको रोंक रक्खा है ॥ २९ ॥ हे चक्रधर ! हे अजित ! आपके साथ अठारहबेर जो जरासंधने संग्राम किया. उसमें सत्रहबेर तौ आपने उसका पराभव किया. पर अठारहवीं बेरके संग्राममें

तन्नो भवान्प्रणतशोकहरांघ्रियुग्मो बद्धान्वियुंक्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात्॥ यो भूभुजोऽयुतमतंगजवीर्यमेको बिभ्रद्रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥ २९ ॥ यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्रभग्नो मृधे खलु भवंतमनंतवीर्यम्॥ जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥ ३० ॥ दूत उवाच ॥ इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकांक्षिणः ॥ प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ॥ बिभ्रत्पिंगजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥ तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ववंद उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥३३॥ सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम्॥ बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम्॥३४॥

आप मनुष्यलीला करके भाग गये. तद यह आपको एक वार जीतकर, बहुत गर्वसे भर गया है. और आपकी प्रजा जो हम हैं तिन्हें दुख देता है. इस लिये अब आपको जो युक्त दीखे वह करें ॥ ३० ॥ दूतने कहा कि-जरासंधके रोकेहुए, आपके दर्शनकी अभिलाषवाले राजालोक आपके चरणमूलके शरण प्राप्त हुए हैं. सो इन दीनोंका आपको कल्याण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-राजदूत इसतरह विनती कर रहा था. इतनेमें पीली जटा धारण किये परमकांतिवान नारदजी सूर्यके समान प्रगट हुए ॥ ३२ ॥ सब लोकपालोंकेभी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र, सभासद और अनुचरोंके साथ नारदजीको देखकर, आनंदसे उठ खड़े हुए. और शिरसे प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ आसनको स्वीकार कर बैठेहुए नारदजीका विधिपूर्वक स-

या, भगवान्को इत्तला करवायी. तौ द्वारपालोंने भीतर जानेकी आज्ञा दी ॥ २२ ॥ परमेश्वर जो श्रीकृष्णचंद्र तिनको उस पुरुषने हाथ जोड़, प्रणाम किया. और जरासंधने राजाओंको कैद कर रक्खा था, उनके दुःखका निवेदन किया ॥ २३ ॥ जरासंधके दिग्विजयसमयमें जो राजा शरणागत नहीं हुए. उन बीस हजार राजाओंके जरासंधने बलात्कारसे गिरिव्रजनाम किलेमें कैद कर रक्खा था. उनके लिये दूतने प्रार्थना की कि–' हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयस्वरूप ! हे शरणागतोंके भयभंजन ! हम भेदबुद्धिवाले संसारसे भयभीत होकर, आपके शरण प्राप्त हुए हैं ॥ २४ २५ ॥ निषिद्ध और सकाम कर्ममें आसक्त यह

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृतांजलिः ॥ राज्ञामावेदयद्दुःखं जरासंधनिरोधजम् ॥ २३ ॥ ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः ॥ प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे॥ २४॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभंजन ॥ वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥ २५ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे॥ यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥ लोके भवान्जगदिनः कलयाऽवतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ॥ कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किंवा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥ ॥ २७ ॥ स्वप्नायितं नृपसुखं परतंत्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ॥ हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥ २८ ॥

लोक, जोलों आपके कहे हुए अपने पवित्र धर्मरूप आपके पूजनमें प्रमाद रखता हो, इतनेमें जो बलवान काल इस लोककी जीवितकी आशाको यहां तुर्त काट डालता है. उन कालरूप आपको प्रणाम हो ॥ २६ ॥ हे ईश ! जगतके स्वामी आपने सज्जन लोगोंकी रक्षा और खल लोगोंकी शिक्षा करनेके वास्ते अंश (बलदेवजीके) साथ अवतार धारण किया है. और आपके विराजतेभी दूसरा कोई एक (जरासंधादिक) आपकी आज्ञाका उल्लंघन करता हैं. और आपके रक्षणके नीचे रहाहुआ जन अपने कर्मजनित दुखोंको प्राप्त होता है. यह किसकारणसे होता है यह हम नहीं जानते ॥ २७ ॥ हे ईश ! यह राजसंबंधी सुख विषयसाध्य है. अतएव परतंत्र है, इसीसे स्वप्नके सुखके समान है और यह शरीरभी निरंतर भयसे भराहुआ और मुर्देके

लाकर, प्रणाम कर, सामने खड़ा हो जाता ॥ १४ ॥ अपने हाथसे सारथीका हाथ पकड़, सात्यकि और उद्धवजीके साथ, जैसे सूर्य उदयाचलपर चढ़ते हैं वैसे रथपै चढ़े ॥ १५ ॥ अंतःपुरकी स्त्रियां कि-जो बड़े कष्टसे भगवान्को छोड़ सकीं, थीं, वे लाजभरी प्रेमसहित दृष्टियोंसे देख रहीं थीं और हँसकर, उनके मनका हरण करते भगवान् बाहिर निकले ॥ १६ ॥ और सब यादवोंको संग ले, सुधर्मा नाम सभामें पधारे. कैसी है वह सभा कि-जिस सभामें बैठेहुए पुरुषोंको भूंख-प्यास-आदि छह ६ ऊर्मियां बाधा नहीं कर सकीं ॥ १७ ॥ वहां उत्तम आसनपर विराजमान यदूत्तम भगवान् अपनी कांतिसे दिशाओंको प्रकाशमान

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् ॥ सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥ १५ ॥ ईक्षितोंऽतःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ॥ कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥ १६ ॥ सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ॥ प्राविशद्यन्निविष्टानां न संत्यंग षडूर्मयः ॥ १७ ॥ तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ॥ वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥ १८ ॥ तत्रोपमंत्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ॥ उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्तांडवैः पृथक् ॥ १९ ॥ मृदंगवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ॥ ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवंदिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ॥ पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥ २१ ॥ तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ॥ विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२ ॥

करते पुरुषसिंह यादवोंके संग, आकाशमें तारागणके साथ चंद्रमा शोभायमान होता है वैसे शोभायमान लगते थे ॥ १८ ॥ महाराज ! वहां उपमंत्री अनेक प्रकारके हास्यरसोंसे भगवान्को प्रसन्न करते थे और नटलोगोंके आचार्य व नृत्य करनेवाली स्त्रियां अपने समुदायके साथ आकर, नृत्यादिकसे भगवान्का सेवन करती थीं ॥ १९ ॥ सूत, मागध व बंदीजन, मृदंग, वीणा, मुरज, बंसी, ताल, शंख इनके शब्दोंके साथ नाचते थे. गाते थे. और स्तुति करते थे ॥ २० ॥ वहां कई ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणलोग बैठे हुए थे. वे पवित्रकीर्ति प्राचीन राजाओंकी कथा कहते थे ॥ २१ ॥ महाराज ! वहां एक बिलकुल अनजान आदमी आ-

सूर्योदयसे पहले अग्निमें होम कर, मौन व्रत रखकर, गायत्रीका जप करते थे. बड़े धीरजवान श्रीकृष्ण भगवान् उदित होते सूर्यका उपस्थान करके, अपनी कलारूप जो देवता, ऋषि, पितर इनका तर्पण कर. वृद्ध और ब्राह्मणोंका पूजन कर ॥ ६ ॥ ७ ॥ प्रतिदिन हरएक घरमें सुवर्णके सींगवालीं, दूधवालीं, पहले पहल ब्याई हुई, सयानीं, मोतियोंकी माला पहनीं हुई ' बछरोंसहित, सुथरे वस्त्र ओढ़ायी हुई ॥ ८ ॥ रूपेके खुरवालीं, तेरह हजार चौराशी १३०८४ गौ ब्राह्मणोंको अलंकृत कर, रेशमी वस्त्र मृगचर्म और तिलदानके साथ दान देते थे ॥ ९ ॥ अपने विभूतिरूप सब गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और सर्वप्राणियोंको

उपस्थायार्कमुद्यंतं तर्पयित्वाऽऽत्मनः कलाः ॥ देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनां रुक्मशृंगीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ॥ पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ॥ ८ ॥ ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ॥ अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने दिने ॥ ॥ ९ ॥ गोविप्रदेवतावृद्धगुरून्भूतानि सर्वशः ॥ नमस्कृत्याऽऽत्मसंभूतीर्मंगलानि समस्पृशत् ॥ ॥ १० ॥ आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ॥ वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥ अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः ॥ कामांश्च सर्ववर्णानां पौरांतःपुरचारिणाम् ॥ प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनंदत ॥ १२ ॥ संविभज्याग्रतो विप्रान्स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुंक्त ततः स्वयम् ॥ १३ ॥ तावत्सूत उपानीय स्यंदनं परमाद्भुतम् ॥ सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोग्रतः ॥ १४ ॥

नमस्कार कर, मंगलीक पदार्थको स्पर्श किया करते थे ॥ १० ॥ मनुष्यलोकके आभूषणरूप अपने शरीरको अपने वस्त्र, आभूषण और दिव्य माला व चंदनोंसे भूषित करते थे ॥ ११ ॥ घृतमें मुख देख तथा आरसी देख, गौ, बैल, ब्राह्मण व देवतानका दर्शन कर, नगरी व जनानेके सर्व वर्णके लोगोंके मनोरथ पूर्ण कर, मंत्रियोंकी कामना सिद्धि कर, उनको प्रसन्न कर, सबको मान देते थे ॥ १२ ॥ प्रथम ब्राह्मण फिर मित्र और कार्याधिकारी व स्त्रिया इनको पान, पुष्प व अरगजा दे, तदनंतर उन वस्तुनको आप अपने उपयोगमें लाते थे ॥ १३ ॥ इतनेमें दारुक सारथी सुग्रीव-आदि घोड़ोंसे जोड़ेहुए परमअद्भुत रथको

मोदन करे. उसे मोक्षका मार्ग भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होवे ॥ ४५ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ फिर सत्तरवें अध्यायमें श्रीकृष्णचंद्रके आन्हिक कर्म कहनेपर उधरसे तो दूत आया. और इधरसे नारदजी आये. तब कामका विचार किया ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-पतियोंसे गलेमें बांह डाल, आलिंगन कीहुई श्रीकृष्णचंद्रकी स्त्रियां प्रात होनेके समय मुर्गेके शब्द सुन, श्रीकृष्णचंद्र उठ जायंगे ऐसे जान कर, विरहसे आतुर हो, उन मुर्गोंको श्राप देतीं थीं ॥ १ ॥ पारिजातकी सुगंधिपवनसे भौंरे जब गान करने लगते-

श्रीशुक उवाच ॥ अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् ॥ गृहीतकंठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥ वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयंतीव बंदिनः ॥ गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मंदारवनवायुभिः ॥ २ ॥ मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ॥ परिरंभणविश्लेषात्प्रियबाह्वंतरंगता ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ॥ दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥ एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ॥ ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥ ५ ॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी ॥ चकार संध्योपगमादिसत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥

थे. तब पक्षीगण नींद छोड़कर, मानों बंदीगण श्रीकृष्णचंद्रको जगा रहे हों, ऐसे शब्द करते थे ॥ २ ॥ प्यारेके भुजांतर्गत रुक्मिणी-आदि सब स्त्रियोंको वह अतिसुंदर समय सहना अतिकठिन हो जाता था; क्योंकि वह प्यारेके आलिंगनसे बिछुरानेवाला था ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचंद्र ब्राह्ममुहूर्तमें उठ, जलका स्पर्श कर, प्रसन्नचित्त हो, प्रकृतिसे पर आत्माका ध्यान करने लगे ॥ ॥ ४ ॥ कैसा है वह आत्मा, अखंड, स्वयंप्रकाश, उपाधिरहित, नित्य, अपनी स्वरूपस्थितिसे अविद्याको दूर करनेवाला, इस जगतकी स्थिति, उत्पत्ति व प्रलयका कारण, अपनी शक्तियोंसे सत्ता और आनंदके लक्षक अर्थात् सदानंदमूर्ति परब्रह्मरूप ॥ ५ ॥ फिर निर्मल जलमें स्नान कर, दोनों वस्त्र धारण कर, विधिपूर्वक संध्योपासन-आदि कर्म किया. आप कण्वशाखाके थे. इस लिये

माया हैं, उन्हें तो हम आपके चरणारविंदकी सेवासे केवल जानते हैं पर आपके परमार्थस्वरूपको नहीं जानते ॥ ३८ ॥ हे देव मुझे आज्ञा करें कि-त्रिलोकीको पावन करनहारी आपकी लीलाका गान करता आपके यशसे व्याप्त लोकोंमें विचरा करूं॥३९॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि- हे पुत्र ! नारद ! मैंही धर्मका वक्ता, कर्ता और अनुमोदन करनेवाला हूं. अतएव मैं लोकोंको धर्मशिक्षा करता धर्मका पालन करता हूं. तुम मोहमें मत पड़ो ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- इस तरह गृहस्थियोंके पवित्र उत्तम धर्मका आचरण करते उन्हीं इकले भगवान्‌को नारदजीने सब घरोंमें देखा ॥ ४१ ॥ अनंतशक्ति भगवानकी योगमायाका महो-

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् ॥ पर्यटामि तवोद्गायन्लीलां भुवनपावनीम् ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता ॥ तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याचरंतं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् ॥ तमेव सर्वगेहेषु संतमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥ कृष्णस्यानंतवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ॥ मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥ इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ॥ सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ ॥ एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ॥ रेमेंऽग षोडशसहस्रवरांगनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ॥ यस्त्वंग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥ इति श्रीभा० महा० दशम०उ०कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनंनामैकोनसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ६९॥ ॥

दय वारंवार देखकर, नारदजीको बड़ा कौतुक हुआ- और विस्मय करने लगे ॥ ४२ ॥ अर्थ, काम, धर्म, इनमें इस प्रकार श्रद्धायुक्त श्रीकृष्णचंद्रने अच्छी तरह सत्कार किया. तद नारदजी प्रसन्न हो, उन्हीका स्मरण करते वहांसे चले ॥४३॥ महाराज ! इस प्रकार मनुष्यलीलाका अनुसरण करते, सबके कल्याणके निमित्त अनेक अवतार धारण करनेवाले. सोलह हजार उत्तम स्त्रियोंके लज्जासहित स्नेहभरित अवलोकन तथा हँसनेसे प्रीतियुक्त, श्रीमन्नारायण श्रीकृष्णचंद्र रमण करते थे ॥ ४४ ॥ महाराज ! जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयके कारणरूप भगवान्‌ने जो जो असाधारण कर्म किये हैं. उन्हें जो मनुष्य गावे, सुने वा अनु-

रहे हैं, कहीं अर्थ और कामका सेवन कर रहे हैं ॥ २९ ॥ कहीं इकले बैठ कर, प्रकृतिसे पर आत्माका चिंतवन कर रहे हैं; कहीं काम, भोग और पूजाकी सामग्रीसे गुरुनकी सेवा कर रहे हैं ॥ ३० ॥ कहीं किसीके साथ संधि कर रहे हैं और कहीं विग्रह कर रहे हैं. कहीं बलदेवजीके साथ सज्जन लोगोंके कल्याणका विचार कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ कहीं बड़ी धाम धूमके साथ पुत्रोंका योग्य स्त्रियोंके साथ और कन्याओंका योग्य वरोंके साथ समयपर व्याह कर रहे हैं ॥ ३२ ॥ कहीं अपने संतानोंके रवाना करनें और पीछा बुलानेके महोत्सवोंकी तजबीज लगा रहे हैं. जिन महोत्सवोंको देखकर, लोक विस्मय करते हैं ॥ ३३ ॥ कहीं बड़े बड़े यज्ञ

ध्यायंतमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ शुश्रूषंतं गुरून्कापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ३० ॥ कुर्वंतं विग्रहं कैश्चित्संधिं चान्यत्र केशवम् ॥ कुत्रापि सहरामेण चिंतयंतं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥ पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ॥ दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयंतं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥ प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ॥ वीक्ष्ययोगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥ यजंतं सकलान्देवान्कापि क्रतुभिरूर्जितैः ॥ पूर्तयंतं क्वचिद्धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥ ३४ ॥ चरंतं मृगयां कापि हयमारुह्य सैंधवम् ॥ घ्नंतं ततः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुंगवैः ॥ ३५ ॥ अव्यक्तलिंगं प्रकृतिष्वंतःपुरगृहादिषु ॥ क्वचिच्चरंतं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥ अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ॥ योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥ ३७ ॥ विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ॥ योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥

करके, सकल देवतानका पूजन करते हैं, कहीं कुआ, बावड़ी, बाग, मठ—आदि बनवाकर, धर्मसंबंधी पूर्त कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ कहीं सिंधुदेशके घोड़ेपर सवार हो, शिकार कर रहे हैं और यदुश्रेष्ठोंके साथ पवित्र पशुओंको मार रहे हैं ॥ ३५ ॥ कहीं मंत्री व अंतःपुर—आदिके उन उन अभिप्रायोंको जाननेंके लिये वेष बदल कर, फिर रहे हैं ॥ ३६ ॥ तब मनुष्यअवतारके लीला करते भगवान्‌की योगमायाका यह सब उदय देख, नारदजीने मानों मुसकुराते हों, ऐसे भगवान्‌से कहा ॥ ३७ ॥ नारदजी बोले कि–हे योगेश्वर ! मायावी पुरुषभी जिन्हें नहीं जान सकते ऐसी जो आपकी योग-

न वगैरः दे नारदजीकी पूजा की ॥ २० ॥ और मानों अनजान हों वैसे नारदजीसे पूंछा कि ' आप कब पधारे ? मुझसे अपूर्ण लोगोंसे आपसे पूर्ण लोगोंका क्या काम हो सक्ता है ॥ २१ ॥ तथापि ? हे ब्रह्मन् ! जो काम हो, वह कहिये और हमारे इस जन्मको पावन करें' वेतो विस्मित हो, वहांसे चुप चाप उठ दूसरे घर पधारे ॥ २२ ॥ वहांभी अपने छोटे छोटे बच्चोंको खिलाते भगवान् दृष्टि आये, फिर दूसरे घरमें भगवान् स्नानके उद्योगमें लगे देखनेमें आये ॥ २३ ॥ कहीं अग्निहोत्रका होम करते और वैश्वदेव- आदि पंचमहायज्ञ करते और कहीं ब्राह्मणभोजन कराते. और अवशेष

पृष्टश्चाविदुषेवाऽसौ कदायातो भवानिति ॥ क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन्जन्मैतच्छोभनं कुरु ॥ स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥ २२ ॥ तत्राप्यचष्ट गोविंदं लालयंतं सुतान् शिशून् ॥ ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥ जुह्वंतं च वितानाग्नीन्यजंतं पंचभिर्मखैः ॥ भोजयंतं द्विजान्क्वापि भुंजानमवशेषितम् ॥ २४ ॥ क्वापि संध्यामुपासीनं जपंतं ब्रह्म वाग्यतम् ॥ एकत्र चासिचर्मभ्यां चरंतमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥ अश्वैर्गजैरथैः क्वापि विचरंतं गदाग्रजम् ॥ क्वचिच्छयानं पर्यंके स्तूयमानं च बंदिभिः ॥ २६ ॥ मंत्रयंतं च कस्मिंश्चिन्मंत्रिभिश्चोद्धवादिभिः ॥ जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥ २७ ॥ कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः ॥ इतिहासपुराणानि शृण्वंतं मंगलानि च ॥ २८ ॥ हसंतं हास्यकथया कदाचित्प्रियया गृहे ॥ क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥

रहा जो अन्न उससे भोजन करते दीखपड़े ॥ २४ ॥ कहीं संध्योपासन करते और मौन रखकर, गायत्रीका जप करते, कहीं ढाल तलवार ले, पटा खेलते दृष्टि आये ॥ २५ ॥ कहीं हाथी, घोड़ा, रथपर बैठ, फिरते देखनेमें आये, कहीं आप पलँगपर पौढ़े हैं और बंदीजन स्तुति कर रहे हैं ॥ २६ ॥ कहीं उद्धव-आदि मंत्रियोंके साथ सलाह कर रहे हैं, कहीं वेश्याओंसे वेष्टित हो, उनके साथ जलक्रीड़ामें लग रहे हैं ॥ २७ ॥ कहीं सुपात्र ब्राह्मणोंको सिंगार कराय, कराय गोदान कर रहे हैं, कहीं मांगलिक इतिहास व पुराण सुन रहे हैं ॥ २८ ॥ कभी कहीं स्त्रीके साथ हँसीकी बातसे हँसी कर, हँस रहे हैं, कहीं धर्मका सेवन कर

का तीर्थ है ऐसे भगवान्‌ने स्वयं जगतमें सर्वोत्तम होकरभी, नारदजीके चरण पखार, उनका जल अपने शिरपर चढ़ाया. सो हे राजा ! गुणोंके द्वारा हुआ जो अपना ‘ ब्रह्मण्यदेव ’ ऐसा नाम उस नामकी योग्यताके अनुसार यह काम भगवान्‌ने योग्य ही किया ॥ १५ ॥ नरके सखा और पुराण ऋषि, नारायण भगवान्, शास्त्रविहित विधिपूर्वक नारदजीका पूजन कर, अल्प अक्षर-वाली और अमृतके समान मधुर वाणीसे बतलाकर, बोले कि–महाराज ! हमें क्या आज्ञा है ? क्या करें ? ॥ १६ ॥ नारदजी बोले कि–हे विभु ! हे सर्व लोकके नाथ ! हे उरुगाय ! आप सब सज्जनोंपर स्नेह रखते हो और दुष्टोंको दंड देते हो, यह कोई आश्चर्य

संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ॥ वाण्याऽभिभाष्य मितयामृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम् ॥१६॥ नारद उवाच ॥ नैवाऽद्भुतं त्वयि विभोखिललोकनाथे मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ॥ निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥ दृष्टं तवांघ्रियुगलं जनतापवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः ॥ संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ॥ योगेश्वरेश्वरस्यांग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥ दीव्यंतमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ॥ पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥

नहीं हैं; क्योंकि जगतका धारण, पालन और कल्याण करनेके वास्तेही यह आपका इच्छानुसार अवतार हुआ है. यह हम भली भांति जानते हैं ॥ १७ ॥ आपके चरण, कि–जो लोगोंके मोक्षरूप और अगाध बोधवाले ब्रह्मादिकोंकेभी हृदयमें ध्यान करनेयोग्य व संसाररूप कूपमें पड़े हुए पुरुषोंको बाहर निकालनेका आश्रय हैं, उनके मुझे दर्शन हुए तौ अब मुझपर ऐसा अनुग्रह करो, कि–मुझे आपका स्मरण बना रहे. और मैं आपके चरणोंका ध्यान करता विचरा करूं ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! फिर वे नारदजी भगवान्‌की योगमाया जाननेकी इच्छासे योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान्‌की दूसरी रानीके घर पधारे ॥ १९ ॥ वहांभी प्यारी और उद्धवजीके साथ चौपर खेलते भगवान्‌को देखा भगवान्‌ने परमभक्तिसे खड़े हो, आस-

उनमेंसे एक बड़ासा महल देख, नारदजी घुसे ॥ ८ ॥ कैसाहै वह महल जिसमें विद्रुममणिके खंभे लगेहुए हैं, वैडूर्य मणिके उत्तम पट्टे, इंद्रनील मणिकी भीतें, अखंड कांतिवाली इंद्रनील मणिकी पृथ्वी, ॥ ९ ॥ मोतीनकी मालायें जिनमें लटक रहीं हैं ऐसे विश्वकर्माके बनाये वितान (चँदवे) हाथी दांतके उत्तम मणियोंसे खचित आसन व पलँग ॥ १० ॥ गलेमें पदक पहिरे व सुंदर वस्त्र धारण किये दासियां और जामा, पगड़ी, सुंदर वस्त्र व मणियोंके कुंडल धारण किये पुरुषोंसे शोभायमान है ॥ ॥ ११ ॥ महाराज ! रत्नोंके अनेक दीपोंकी कांतिसे अंधकार देखनेमें बिलकुल नहीं आता था, इस महलमें जालियोंमेंसे निक-

विष्टब्धं विद्रुमस्तंभैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः ॥ इंद्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलंबिभिः ॥ दांतैरासनपर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥ दासीभिर्निष्ककंठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ॥ पुंभिः सकंचुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुंडलैः ॥ ११ ॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वांतं विचित्रवलभीषु शिखंडिनोऽंग ॥ नृत्यंति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यांतमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदंतः ॥ १२ ॥ तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ॥ विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदंडेन सात्वतपतिं परिवीजयंत्या ॥ १३ ॥ तं सन्निरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ॥ आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन सांजलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतां पतिर्हि ॥ ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनामयुक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥

लते अगरका धूप देख, उसे मेघ समझ कर, तारस्वरसे नाद करतेहुए मयूर, विचित्र छज्जोंपर नाच करते थे ॥ १२ ॥ उस घरमें सर्व काल अपने सरीखे गुण, रूप और वयवाली तथा सुथरे वेषवाली हजारों दासियोंके साथ रुक्मिणी सुवर्णदंडवाला चमर हाथमें ले, जिन्हें पवन करती थीं, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्का नारदजीने दर्शन किया ॥ १३ ॥ नारदजीको देखतेही सकल धर्मधारियोंमें परमश्रेष्ठ श्रीकृष्णचंद्र तुर्त रुक्मिणीके पलँगपरसे उठ खड़े हुए और किरीट धारण किये मस्तकसे उनके चरणोंको प्रणाम कर, हाथ जोड़, अपने आसनपर बिठलाये ॥ १४ ॥ सत्पुरुषोंके पति और जिनके चरणोंके धोनेका जल (गंगा) सब-

चितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकाया अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥ उनहत्तरवें अध्यायमें घर घरमें श्रीकृष्णचंद्रका गृहस्थापन देख, नारदजी विस्मित हो, स्तुति करते वहांसे गये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–नरकासुरको मार, इकल्ले भगवान्‌ने बहुतसी स्त्रियोंके साथ विवाह किया. यह बात सुन, देखनेकी इच्छासे नारदजी आये॥१॥ यह बड़ी आश्चर्यकी बात है. जो इकल्ले भगवान्‌ने एक शरीरसे एक साथ जुदे जुदे घरोंमें सोलह हजार स्त्रियोंका पाणिग्रहणकिया ऐसे उत्सुक हो, नारदजी देखनेको द्वारका आये कैसी है वह द्वारका, जहां फुलवाड़ी और बागोंमें पक्षी और भौंरोंके झुंड नाद कर रहे हैं ॥ ३ ॥ फूलेहुए जो इंदीवर, अंभोज, कल्हार,

श्रीशुक उवाच ॥ नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ॥ कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥ चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ॥ गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥ इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ॥ पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥ उत्फुल्लेंदीवरांभोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥ प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ॥ महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥ विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभीरुचिरां सुरालयैः ॥ संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलीं पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥ तस्यामंतःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ॥ हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥ तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् ॥ विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥

कुमुद और उत्पल इनसे व्याप्त जो सरोवर, तिनमें हंस और सारस ऊंचे स्वरसे कूज रहे हैं ॥ ४ ॥ स्फटिक मणि और रूपेके बनेहुए घर कि–जिनमें अमूल्य मरकतमणियां जगमगा रहीं थीं और सोने और रत्नोंकी सामग्री तैयार थी. ऐसे नौ लाख महल शोभायमान थे और जहां जुदी जुदी गलियां, राजमार्ग, चौहटा, दुकाने, शाला, सभा और देवतानके मंदिरोंकी शोभा बन रही थी. और मार्ग आंगन, गलियां और देहलीमें छिरकाव हो गया था व उड़ती हुई ध्वजा और पताकानसे धूपका निवारण होता था ॥ ६ ॥ वहां द्वारकामें भगवान्‌का श्रीमान् अंतःपुर कि–जिसका सब लोकपालभी पूजन करते हैं. और विश्वकर्माने जहां अपनी सब चतुराई दिखलायी है ॥ ७ ॥ और जहा भगवान्‌की सोलह हजार रानियोंके महल शोभायमान हैं.

कालमें अपने स्वरूपमें जगतका लय करके, अद्वितीय और अवशेष रहनेवाले आपही शेष नागपर पौढ़ते हो ॥ ४६ ॥ आपका कोप, द्वेष और मत्सरतासे नहीं है. किंतु सबकी शिक्षाके लिये है. हे भगवन्! अभी आपने स्थिति और पालनके तात्पर्यसे सत्वगुण धारण किया है ॥ ४७ ॥ हे सब जीवोंके आत्मा! हे सर्वशक्तिधर! हे अविनाशी! हे सर्वकृत्य! आपको हमारा प्रणाम हो. हम आपके शरण आये हैं ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इस प्रकार शरणागत, उद्वेगयुक्त और जिनका पुर कांप रहा था ऐसे कौरवोंने बिनती की. तद प्रसन्न होकर, बलदाऊजीने मत डरो, ऐसे अभयदान दिया ॥ ४९ ॥ दुर्योधनने यौतुकमें साठ

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ॥ बिभ्रतो भगवन्सत्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय ॥ विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणंगताः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ॥ प्रसादितः सुप्रसन्नो माभैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः पारिबर्हं कुंजरान्षष्टिहायनान् ॥ ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरंगमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ॥ दासीनां निष्ककंठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनंदितः ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बंधूननुरक्तचेतसः ॥ शशंस सर्वं यदुपुंगवानां मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ॥ समुन्नतं दक्षिणतो गंगायामनु दृश्यते ॥५४॥ इति श्रीभा० महा० दश० उ० हास्तिनपुरकर्षणरूपसंकर्षणविजयोनामाऽष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

साठ बरसके बारहसौ हाथी, दश हजार घोड़े, सूर्यसे प्रकाशमान तेजवान सुनहरी छह हजार रथ और पदक पहने एक हजार दासियां दीं क्योंकि उसका बेटीपै बड़ा प्यार था ॥ ५० ॥ ५१ ॥ यादवश्रेष्ठ! बलदेवजी वह सब ले, बेटे और बहूके साथ कौरवोंसे आदर पाय, रवाना हुए ॥ ५२ ॥ फिर बलदेवजीने द्वारकामें आ, अनुरक्तचित्त बंधुनसे मिल, यदुपुंगवोंकी सभाके बीच कौरवोंके साथ उन्होंनें जो बर्ताव किया वह सब कह सुनाया ॥ ५३ ॥ अबभी यह हस्तिनापुर बलदेवजीके पराक्रमको सूचन करता दक्षिणओर ऊंचा और गंगाजीकी ओर ढालू मालूम होता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविर-

अंशरूप हैं. उस परमात्माको राज्यासन कहांसे होय ? ॥ ३७ ॥ यादव तौ कौरवोंका दियाहुआ पृथ्वीका टुकड़ा भोगते हैं, हम तौ जूता हैं, कौरव तौ आप शिर हैं ॥ ३८ ॥ अहो ! मद्यपान किये हुए पुरुषके समान ऐश्वर्यसे मदोन्मत्त, अभिमानी, पुरुषों की रूक्ष और असंबद्ध वाणीका, शिक्षा देनेको समर्थ हो कर, कौन पुरुष सहन करै ? ॥ ३९ ॥ आज पृथ्वीको मैं कौरवहीन कर डालूंगा. ऐसे अमर्ष करके, मानों त्रिलोकीको जला देंगे ऐसे हल हाथमें ले, उठ खड़े हुए ॥ ४० ॥ हलके अग्रसे हस्तिनापुरको उठाय बलदेवजीने क्रोध करके, गंगाजीमें डाल देनेको दक्षिणओरसे खैंचा ॥ ४१ ॥ नावकी तरह घूमता व खैंचा जाता

भुंजते कुरुभिर्दत्तं भूखंडं वृष्णयः किल ॥ उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ३८ ॥ अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् ॥ असंबद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥ ३९ ॥ अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ॥ गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥ लांगलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ॥ विचकर्ष स गंगायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गंगायां नगरं पतत् ॥ आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः ॥ ४२ ॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुंबा जिजीषवः ॥ सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य सांबं प्रांजलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ॥ मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षंतुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ॥ लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदंति हि ॥ ४५ ॥ त्वमेव मूर्ध्नीदमनंत लीलया भूमंडलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ॥ अंते च यः स्वात्मनिरुद्धविश्वः शेषे द्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥

और गंगाजीमें गिरता नगर देख, कौरव घबराये ॥ ४२ ॥ सकुटुंब वे कौरव जीनेकी इच्छासे लक्ष्मणासहित सांबको आगे कर, हाथ जोड़, उन्हीं प्रभु बलदाऊजीके शरण गये ॥ ४३ ॥ और बोले कि–हे राम ! हे राम ! हे सबके आधार ! हम आपका प्रभाव नहीं जानते, हम कुबुद्धि मूर्खोंका अपराध आपको क्षमा करना चाहिये ॥ ४४ ॥ आप इस जगतकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके एक कारण हो, आप निराधार हो, हे ईश ! इन लोकोंको क्रीड़ा करनहारे जो आप उनका खिलौना कहते हैं ॥ ४५ ॥ हे सहस्रशिरवाले ! हे अनंत ! आपही इस भूमंडलको लीलासे अपने एक मस्तकपर धारण करते हो. और प्रलय-

बेगसे भरे अतएव जिनके सामने देखा नहीं जाय ऐसे बलदेवजी बारंवार हँस कर, बोले ॥ ३० ॥ कि– अनेक प्रकारके मदोंसे छकेहुए नीच पुरुष शांति बिलकुल नहीं चाहते, पशु जैसे लाठीसेही शांत होते हैं. तैसे ऐसे लोकभी दंडहीसे सीधे होय हैं ॥ ३१ ॥ अहो ! अत्यंत बेगभरे यादवों और कोप किये श्रीकृष्णको धीरे धीरे सांत्वना दे, मैं तौ इन लोगोंके और उनके बीच शांति चाहता यहां आया हूं ॥ ३२ ॥ और ये मंदबुद्धि, कलहप्रिय, दुष्ट, अभिमानीलोग मेरा अपमान करके, न कहनेके लायक वचन मुझे बारंवार कहने लगे हैं ॥ ३३ ॥ भोज, वृष्णि और अंधककुलके स्वामी उग्रसेन, कि– जिनकी आज्ञामें इंद्र–आदि

नूनं नानामदोन्नद्धाः शांतिं नेच्छंत्यसाधवः ॥ तेषां हि प्रशमो दंडः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥ अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः ॥ सांत्वयित्वाऽहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥ त इमे मंदमतयः कलहाभिरताः खलाः ॥ तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यंधकेश्वरः ॥ शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥ सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमरांघ्रिपः ॥ आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ॥ स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्यांघ्रिपंकजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ॥ ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ ३७ ॥

लोकपालभी बर्तते हैं. उन्हें ये लोग तौ राजाही नहीं गिनते ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णचंद्र कि–जो सुधर्मा सभाको दबाकर, विराजते हैं. और देवतानका वृक्ष जो पारिजात उसकोभी स्वर्गमेंसे लाकर, भोगते हैं. वे तौ इन लोगोंके मनमें सिंहासनके योग्यही नहीं हैं ॥ ३५ ॥ सब जगतकी ईश्वरी साक्षात् लक्ष्मीभी जिनके चरणयुगलकी सेवा करती है. वे लक्ष्मीपति राजचिन्हके योग्य नहीं हैं ॥ ३६ ॥ गंगाजीकोभी तीर्थपन देनेवाला और जिसको सब लोकपालभी उत्तम मुकुटोंसे धारण करते हैं ऐसे जिस भगवान्के चरणकमलरजको ब्रह्माजी 'महादेवजी, लक्ष्मीजी और मैं ये सब अनादिकालसे सेवन करते हैं और जिस परमात्माके अंशके

है, सो तो संबंधियोंमें संधि रखनेकी इच्छासे उस बातका मैं सहन करता हूं. अब इसे जल्दी छोड़ दो " ॥ २२ ॥ प्रभाव, उत्साह और धैर्यसे उच्छृंखल तथा उनकी शक्तिसे योग्य, बलदेवजीका वचन सुन कर, कुपित हो, कौरव बोले कि– ॥ २३ ॥ अहो! कालकी गति बड़ी दुरंत है, यह बड़ा आश्चर्य हुआ, जो मुकुटके सेवन करनेयोग्य शिरपर जूता चढ़ बैठना चाहता है ॥ २४ ॥ इन यादवोंके साथ व्याहका संबंध कर, राज्यासन दे, इनके साथ सोना, बैठना और भोजन करके, आपनने इन्हें अपने बराबर बनाये हैं ॥ २५ ॥ आपन आग्रह नहीं रखते हैं. इसीसे ये यादव चामर, व्यजन, शंख, श्वेत छत्र, आसन और

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ॥ कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥ अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ॥ आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४॥ एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः ॥ वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥ २५॥ चामरव्यजने शंखमातपत्रं च पांडुरम् ॥ किरीटमासनं शय्यां भुंजंत्यस्मदुपेक्षया ॥ २६॥ अलं यदूनां नरदेवलांछनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयंत्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७ ॥ कथमिंद्रोपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ॥ अदत्तमवरुंधीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जन्मबंधुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ॥ आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९॥ दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः ॥ अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥ ३० ॥

शय्या इन सबका भोग करते हैं ॥ २६ ॥ बड़ी खेदकी बात है कि,– अपनी कृपासे बढ़ेहुए यादव आज निर्लज्ज होकर, आपनको आज्ञा करते हैं. सांपको पिलायाहुआ दूध जैसे पिलानेवालेकाही बुरा करता है. तैसे यादवोंको जो आपनने राजचिन्ह दिये, उससे अपनाही बुरा होता है. इस लिये अब इनसे ये राजचिन्ह पीछे ले लेने चाहिये ॥ २७ ॥ भीष्म, द्रोणाचार्य और अर्जुन–आदि कौरवोंकी न दी हुई वस्तु क्या इंद्रभी ले सकता है ? कभी नहीं, जैसे सिंहकी चीज उसके दिये विना भेंड़ नहीं ले सकती ॥ २८ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि– महाराज ! जन्म, बंधु और लक्ष्मीसे मदोन्मत्त वे असभ्य कौरव बलदेवजीको ऐसे दुर्वचन सुनाकर, हस्तिनापुरमें चले गये ॥ २९ ॥ कौरवोंका दुष्ट स्वभाव देख, दुर्वचन सुन, कोपके

चढ़ाईका उद्यम किया ॥ १३ ॥ कमर कसेहुए यदुपुंगवोंको देखकर, बलदेवजीने सांत्वना दी, क्योंकि कलियुगके मल हरनहारे बलदाऊजीने चाहा कि-यादव और कौरवोंके बीच कलह न होवे तौ ठीक ॥ १४ ॥ सूर्यसे तेजवान रथमें विराज, ब्राह्मण व कुलवृद्धोंको संग ले, जैसे चंद्रमा ग्रहोंके साथ जाता हो वैसे हस्तिनापुर पधारे ॥ १५ ॥ बलरामजी हस्तिनापुर पधार, बाहिर बागमें उतर गये और उनका अभिप्राय जाननेको धृतराष्ट्रके पास उद्धवजीको भेजा ॥ १६ ॥ वे उद्धवजी वहां जाकर, धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य, बाल्हिक और दुर्योधनको विधिवत् प्रणाम कर, बोले कि-बलदेवजी पधारे हैं ॥ १७ ॥ परममित्र बलदेवजी पधारे

सांत्वयित्वा तु तान्रामः सन्नद्धान्वृष्णिपुंगवान् ॥ नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ १४ ॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनाऽऽदित्यवर्चसा ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चंद्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥ गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ॥ उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवंद्यांबिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् ॥ दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७ ॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ॥ तमर्चयित्वाऽभिययुः सर्वे मंगलपाणयः ॥ १८ ॥ तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ॥ तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥ १९ ॥ बंधून्कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् ॥ परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥ २० ॥ उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः ॥ तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं माविलंबितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ॥ अबध्नीताथ तन्मृष्ये बंधूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥

यह समाचार सुन, वे बहुत प्रसन्न हुए. और उद्धवजीका सत्कार कर, मंगलके लिये भेंटें हाथोंमें ले, सामने आये ॥ १८ ॥ उनसे यथायोग्य मिल, गौ अर्पण की. और अर्घ दिया और जो उनके प्रभावको जानते थे उन्होंने उनको शिरसे प्रणाम किया ॥ १९ ॥ परस्पर कल्याण तथा आरोग्य पूंछके, संबंधियोंको कुशली सुनकर, फिर बलदेवजीने तेजभरा यह वचन कहा ॥ २० ॥ कि- महाराजाधिराज उग्रसेनजीने तुम्हें जो आज्ञा की है, वह सावधान होकर, सुनो और जल्दी वैसेही करो ॥ २१ ॥ उग्रसेनजीने कहा है कि " तुम बहुतोंने इकट्ठे हो, अधर्मसे जो हमारे धर्मिष्ठ इकट्ठे बालकको जीत कर, कैद कर लिया

यहां आ जायंगे, तौ प्राणायाम-आदिसे दमन कीहुई इंद्रियोंके समान गर्वगंजन होनेपर शांत हो जायंगे ॥ ४ ॥ ऐसे विचार, कर्ण, शल, भूरि, यज्ञकेतु, दुर्योधन, ये सब कुरुवृद्ध भीष्मजीकी संमतिसे सांबको पकड़ने आये ॥ ५ ॥ महारथ सांबभी पीछे दौड़े चले आते धृतराष्ट्रके योधानको देख, सुंदर धनुष हाथमें ले, इकले सिंहके समान खड़ा रहा ॥ ६ ॥ उसे पकड़ने चाहते वे कर्ण-आदि कौरव धनुष धारण किये, 'ठहर ठहर' ऐसे पुकारते समीप आ, क्रोध कर, बाण चलाने लगे ॥ ७ ॥ महाराज ! कौरवोंसे बिंधाहुआ वह भगवान्का बालक यदुनंदन सांब सहन नहीं करसका. जैसे सिंह तुच्छ हिरणोंके प्रहारका सहन न करै

इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ॥ सांबमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वानुधावतः सांबो धार्तराष्ट्रान्महारथः ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥ तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ॥ आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥ सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनंदनः ॥ नामृष्यत्तदचिंत्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥ विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ॥ कर्णादीन्षड्रथान्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहानेकैकेनच सारथीन् ॥ रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥ तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ॥ एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ॥ कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजातमन्यवः ॥ कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ महाराज ! अपने सुंदर धनुषका टंकार कर, कर्ण-आदि इन छः महारथिनको एक साथ छह छह बाणोंसे जुदा जुदा बेध दिया ॥ ९ ॥ चार चार बाण घोड़ोंके लगाये. एक एक सारथीके और एक एक बड़े धनुषधारी रथियोंके लगाया. सांबके इस कामको वेभी सराहने लगे ॥ १० ॥ और सबने मिलके, उसको विरथ किया. चारजनोंने तौ चार घोड़े मारे, एकने सारथीको मारा और एकने धनुष काटा ॥ ११ ॥ कौरव संग्राममें उसे बड़े कष्टसे विरथ कर, बांध, जीतकर, कुमार व अपनी कन्याको ले, अपने नगर गये ॥ १२ ॥ महाराज ! नारदजीके मुंहसे यह बात सुन, क्रोधित हो, उग्रसेनजीकी प्रेरणासे यादवोंने कौरवोंपै

उगलता, पड़गया ॥ २४ ॥
बलदेवजीनेभी हल मुसल छोंड़. क्रोध कर, दोनों हाथोंसे हँसियोंको तोड़ डाला, जिससे वह रक्त उगलता, पड़गया ॥ २४ ॥
हे कुरुशार्दूल ! वह गिरने लगा. तद टंक और वृक्षोंके साथ रैवत पर्वत, जैसे पवनसे जलमें नाव कांपने लगती है वैसे, कांपने
लगा ॥ २५ ॥ उस समय आकाशमें देवता, सिद्ध व मुनिराज, जयजय शब्द, 'नमोनमः' ऐसा शब्द और साधु साधु ऐसा शब्द,
करने लगे. और उन्होंने पुष्प बरसाये ॥ २६ ॥ जगतको दुःख देनेवाले द्विविदको इस तरह मार, लोगोंसे स्तुति किये जाते भगवान्
बलदेवजी अपनी पुरी पधारे ॥ २७ ॥ इति श्रीभा०महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां

यादवेंद्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललांगले ॥ जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २४ ॥ चकंपे तेन पतता सटंकः सवनस्पतिः ॥ पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवांभसि ॥ २५ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चांबरे ॥ सुरसिद्धमुनींद्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २६ ॥ एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥ संस्तूयमानो भगवान्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे द्विविदवधोनाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतां राजन्लक्ष्मणां समितिंजयः ॥ स्वयंवरस्थामहरत्सांबो जांबवतीसुतः ॥ १ ॥ कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ॥ कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥ बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यंति वृष्णयः ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुंजते महीम् ॥ ३ ॥ निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यंतीह वृष्णयः ॥ भग्नदर्पाः शमं यांति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ॥ अड़सठवें अध्यायमें कौरवोंने युद्धमें सांबको जीत, कैद करदिया, तद उसे छुड़ानेको बलदेवजी हस्तिनापुर पधारे और उस पुरको खैंचा. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! युद्धमें विजय करनेवाला जांबवतीका पुत्र सांब दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाको स्वयंवरमेंसे हर ले आया ॥ १ ॥ तब कौरव कुपित होकर, बोले कि–यह बालक बड़ा अविनीत है, आपनको न गिनकर, इच्छा न करती कन्याको जबर्दस्तीसे ले जाता है ॥ २ ॥ इस दुर्विनीतको बांध देना चाहिये, यादव क्या करेंगे ? जो अपनी दी हुई पृथ्वीको अपनी कृपासे उपजाऊ करके भोगते हैं ॥ ३ ॥ जो पुत्रको कैद किया सुनकर, यादव

मदसे उद्धत हो, स्त्रियोंके वस्त्र फाड़ने लगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ उसका यह अविनय और देशोंमें उपद्रव देख, बलदेवजीने क्रोध कर, बैरीको मारनेके लिये हल, मूसल धारण किये ॥ १६ ॥ महापराक्रमी द्विविदनेभी हाथमें शालका वृक्ष उठाय, जल्दी सन्मुख आ, बलदेवजीके मस्तकपर उसका प्रहार किया ॥ १७ ॥ पर्वतसे बलवान् बलदेवजीने शिरपर पड़तेहुए उस वृक्षको रोंक लिया और उस कपिके ऊपर मूसलप्रहार किया ॥ १८ ॥ मूसलसे उसका शिर फूट गया और रुधिरकी धारा बहने लगी. उस समय वह जैसे पर्वत गेरूकी धारासे शोभा देता है वैसे शोभा देता था, पर उस कपिने प्रहारका विचार न करते ॥ १९ ॥ फिर दूसरा

तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ॥ क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥ १६ ॥ द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ॥ अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥ तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतंतमचलो यथा ॥ प्रतिजग्राह बलवान्सुनंदेनाहनच्च तम् ॥ १८ ॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ॥ गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिंतयन् ॥ १९ ॥ पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥ तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत् ॥ एवं युध्यन्भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ॥ आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ २१ ॥ ततोऽमुंचच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ॥ तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥ २२ ॥ स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ॥ आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २३ ॥

शालका वृक्ष उखाड़, पराक्रमसे उसके पत्ते तोड़, क्रोध कर, बलदेवजीपै उससे प्रहार किया. पर बलदेवजीने उसके सैकड़ों टूक कर डाले ॥ २० ॥ तद क्रोधकर दूसरा वृक्ष चलाया, उसकेभी सैकड़ों टूक कर डाले. ऐसे बलदाऊजीसे युद्ध करते समय ज्यों ज्यों वृक्ष टूटते गये, त्यों त्यों चारोंओरसे वृक्ष उखाड़ उखाड़, बनको वृक्षरहित करदिया ॥ २१ ॥ फिर अमर्षकर, बलरामजीके ऊपर शिलाकी बरसा करने लगा. मुसलधरजीने लीलासे उन सब शिलानको चूर्ण कर दिया ॥ २२ ॥ तद उस कपिराजने तालवृक्षके समान अपने हाथोंकी मुट्ठी बांध, बलदेवजीके समीप आ, उन हाथोंसे उनके वक्षःस्थलमें प्रहार किया ॥ २३ ॥

यज्ञ करनेकी अग्नियोंको दूषित कर देता ॥ ६ ॥ फिर स्त्री और पुरुषोंको पर्वतोंकी गुफा और दरारोमें डालकर, वह गर्ववाला वानर जैसी भ्रमरी कीड़ेको दरमें डालकर, रोक रखती है वैसे बड़ी शिलानसे बंदकर देता ॥ ७ ॥ ऐसे देशोंमें उपद्रव करता और कुलस्त्रियोंको दूषित करता वह वानर, सुंदर गीत सुनकर, रैवतक पर्वतपर चला आया ॥ ८ ॥ वहां कमलोंकी माला धारण किये, सुंदर जिनके सब अंग हैं ऐसे यदुपति बलदेवजीको स्त्रियोंके यूथके बीच विराजते ॥ ९ ॥ वारुणी मदिरा पीकर, गान करते, मदसे घर्णितनेत्र, मद झरते गजराजके समान शरीरसे शोभायमान देख ॥ १० ॥ दुष्ट वानर, वृक्षकी डारपर, चढ़, वृक्षोंको

पुरुषान् योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः ॥ निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ॥ श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ॥ सुदर्शनीयसर्वांगं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायंतं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ॥ विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ १० ॥ दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कंपयन्द्रुमान् ॥ चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्य धाष्टर्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ॥ हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥ ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः संमुखादिभिः ॥ दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥ १३ ॥ तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतांवरः ॥ स वंचयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन् ॥ निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् ॥ कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥ १५ ॥

कँपाता, अपना शरीर दिखलाकर, किलकारी करने लगा ॥ ११ ॥ स्वभावचपल वे तरुण स्त्रियां उस कपिकी धृष्टता देख, हँसने लगीं, कैसी हैं वे स्त्रियां, हांसी जिनको प्रिय है और बलदेवजीने जिनको स्वीकार किया है ॥ १२ ॥ वह कपि बलदेवजीके देखते अनादर कर, उन स्त्रियोंको अपनी गुदा दिखलाकर, भौंह चढ़ाने और सन्मुख आने-आदिसे अवज्ञा करने लगा ॥ १३ ॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने क्रोध करके, उसपै पत्थरसे प्रहार किया, वह धूर्त्त कपि पत्थर बचाय, मदिराका कलश ले उनको कोपायमान् करता, हँसने लगा. और बलवान् व ढीठ वह वानर, कलशको फोड़, बलदेवजीको न गिनकर,

जो मनुष्य उत्तमश्लोक भगवान्‌का यह चरित श्रवण करावे या श्रवण करे, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाय॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ॥ सड़सठवें अध्यायमें, बलदाऊजी रैवतक नाम पर्वतमें स्त्रियोंके साथ मदोन्मत्त हो इच्छापूर्वक विहार करते थे. वहां आपने दुष्ट द्विविदनाम वानरको मारा, यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि—मैं फिरभी अद्भुत हैं चरित्र जिनके ऐसे अनंत व अप्रमेय बलरामजीके चरित सुनना चाहता हूं, सो उन्होंने फिर दूसरा कौन चरित किया ? वह मुझे कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—

य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥ समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥ इति श्रीभा० महा० दशम० उत्तरार्धे पौंड्रकादिवधोनाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ॥ सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैंदस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥ सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ॥ पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥ क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् ॥ आनर्तान्सुतरामेव यत्राऽऽस्तेऽमित्रहा हरिः ॥ ४ ॥ क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ॥ देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ॥ अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः ॥ ६ ॥

भौमासुरका एक पराक्रमवाला द्विविद नाम बंदर मित्र था, जो सुग्रीवका मंत्री और मैंदका भाई था ॥ २ ॥ वह बंदर अपने मित्रका बदला लेनेको देशमें उत्पात किया करता, कहीं तौ पुर गांव, खान, घोष, इनमें आग लगा देता ॥ ३ ॥ कहीं पर्वत उठाय, उनसे देशोंको चूर्ण करदेता, तत्रापि आनर्त देशमें तौ बहुतही उपद्रव करता; क्योंकि शत्रुको मारनेवाले हरि वहीं विराजते थे॥ ४ ॥ कहीं समुद्रके बीच जाकर, दोनों हाथोंसे उसके जलको उछाल २ तीरपरके देशोंको डुबा देता; क्योंकि पराक्रमभी तौ उसमें दश हजार हाथियोंका था ॥ ५ ॥ वह दुष्ट मुख्य मुख्य मुनिलोगोंके आश्रमोंमें जाकर, वृक्ष तोड़, विष्ठा और मूत्रसे

फिर भगवान्‌ने पौंड्रकको कहा कि—अरे रे! पौंड्रक! दूतके मुखसे जो तूने मुझे कहलाया था, वे शस्त्र अब तुझपरही छोड़ता हूं ॥ १९ ॥ हे मूर्ख! जो तूने मेरा झूंठा नाम धरलिया है सो अभी छुड़ा दूंगा, यदि मैं संग्राम न चाहता होऊं तो तेरे शरण आऊं ॥ २० ॥ ऐसे तिरस्कार कर, तीक्ष्ण बाणोंसे पौंड्रकको विरथ करके, जैसे इंद्र वज्रसे पर्वतका शिखर काट देता है. तैसे भगवान्‌ने चक्रसे शिर काट दिया ॥ २१ ॥ तैसेही बाणोंसे काशिराजका धड़से शिर काटकर, काशीपुरीमें गिराया, जैसे पवन क-

अथाऽऽह पौंड्रकं शौरिर्भो भो पौंड्रक यद्भवान् ॥ दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥ त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाऽज्ञ मृषा धृतम् ॥ व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौंड्रकम् ॥ शिरोऽवृश्चद्रथांगेन वज्रेणेंद्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः ॥ व्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौंड्रकं ससखं हरिः ॥ द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥ २३ ॥ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबंधनः ॥ बिभ्राणश्च हरेराजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुंडलम् ॥ किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशयिरे जनाः ॥ २५ ॥ राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबांधवाः ॥ पौराश्च हा हता राजन्नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥ सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ॥ निहत्य पितृहंतारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥

मलकोशको गिराता है ॥ २२ ॥ इसप्रकार मत्सरतावाले पौंड्रकको मित्रके साथ मारकर, सिद्ध पुरुष जिनके कथामृतका गान करते हैं ऐसे भगवान्‌ने द्वारकामें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ महाराज! सदा भगवान्‌के ध्यानसे कटगये हैं सब बंधन जिसके ऐसा वह पौंड्रक हरिभगवान्‌का रूप धारण किये तद्रूप हो गया ॥ २४ ॥ काशीके राजद्वारपर कुंडलसहित पड़ाहुआ मस्तक देखकर, सबलोग संदेह करने लगे कि—यह क्या? यह किसका मुख है? ॥ २५ ॥ महाराज! फिर यह तो राजा काशीपतिका मुख है ऐसे निश्चय कर, रानियां, पुत्र, बंधुजन और पुरके लोग हे नाथ! हे नाथ! हम मरगये ऐसे रोने लगे ॥ २६ ॥ उसका पुत्र सुदक्षिण पिताकी

स्कारके वचन अपने स्वामी पौंड्रकसे सब कह सुनाये. श्रीकृष्णचंद्रभी रथमें विराज, काशी पधारे ॥ १० ॥ महारथ पौंड्रकभी उनका उद्योग देख, दो अक्षौहिणी सेना ले, तुर्त पुरसे बाहिर आया ॥ ११ ॥ महाराज ! उसका मित्र काशीका राजाभी सहाय करनेको तीन अक्षौहिणी सेना ले, पीछेसे आया. भगवान्‌ने पौंड्रक राजाको देखा. तौ ॥ १२ ॥ शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग, श्री-वत्स-आदि चिन्होंसे चिन्हित. कौस्तुभमणि धारण किये, वनमालासे शोभायमान ॥ १३ ॥ पीले पीतांबर पहने, गरुडध्वज, अमूल्य मुकुट व आभूषण धारण किये, मकराकृत कुंडल झलकाये ॥ १४ ॥ जैसे नट स्वांग बनाकर, रंगभूमिमें आया हो,

पौंड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ११ ॥ तस्य काशीपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ॥ अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौंड्रकं हरिः ॥ १२ ॥ शंखार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् ॥ बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ॥ अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ॥ यथा नटं रंगगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ॥ असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥ कृष्णस्तु तत्पौंड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यंदनवाजिपत्तिमत् ॥ गदासिचक्रेषुभिरार्दयद्भृशं यथा युगांते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥ १७ ॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुंजरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणावखंडितैः ॥ बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥

तैसे अपनी तुल्य वेष बनाये खडे उस कृत्रिम वासुदेवको देखकर, हरिभगवान् बहुत हँसे ॥ १५ ॥ तद शत्रुलोग भगवान्‌पर त्रिशूल, गदा, परिघ, बरछी, ऋष्टि, प्रास, भाला, खड्ग, पट्टिश व बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णचंद्रनेभी हाथी, घोडे, रथ व प्यादोंवाली चतुरंगिणी पौंड्रक और काशिराजकी सेनाका प्रलयसमयमें जैसे अग्नि सब प्रजाका संहार करता है तैसे गदा, खड्ग, चक्र व बाणोंसे अतीव संहार किया ॥ १७ ॥ चक्रसे टूक टूक कियेहुए रथ, घोडे, हाथी, प्यादे, गधे, ऊंटोंसे व्याप्त वह रणभूमि, महादेवजीकी क्रीडाभूमिके समान भयंकर लगतीभी, तौभी शूर वीर उसे देख, आनंदित होतेथे ॥ १८ ॥

समय मूर्ख करूषदेशके राजाने " मैं वासुदेव हूं " ऐसा कहकर, श्रीकृष्णके पास दूत पठाया ॥ १ ॥ ' आप जगत्पति भगवान् वासुदेव प्रगट हुए हो ' ऐसे मूर्ख लोगोंकी स्तुतिसे उत्साह दिलानेपर उसने आपनेको वासुदेवही समझ लिया ॥ २ ॥ और उस मूर्ख मंदभागीने अचिंत्य मार्गवाले श्रीकृष्णके पास द्वारकामें दूतभी भेजदिया, जैसे खेलमें बालक एक बालकको राजा बनादेते हैं वैसा खेल इसनेभी किया ॥ ३ ॥ दूत द्वारकामें आ, कमलनयन प्रभु श्रीकृष्णचंद्र सभामें विराजे थे उनसे राजाका संदेशा कहने लगा ॥ ४ ॥ जीवोंपर दया करनेको वासुदेव तौ एक मैंही प्रगट हुआ हूं- दूसरा हैही नहीं सो तूने जो झूंठा

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ॥ इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥ दूतं च प्राहिणोन्मंदः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ॥ द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥ दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसंदेशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ॥ भूतानामनुकंपार्थं त्वं तु मिथ्याऽभिधां त्यज ॥ ५ ॥ यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ॥ त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नोचेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कथनं तदुपाकर्ण्य पौंड्रकस्याल्पमेधसः ॥ उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥ उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ॥ उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखं तदपिधायाज्ञ कंकगृध्रवटैर्वृतः ॥ शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥ इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ॥ कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥

नाम अपना रख लिया है उसे तज दे ॥ ५ ॥ हे यादव ! मूर्खतासे तू जो हमारे चिन्ह धारण करता है. या तो उन्हें छोड़, या मेरे शरण आ. नहीं तौ मुझसे युद्ध कर ॥ ६ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–अल्पबुद्धि पौंड्रकका यह बकना सुनकर, उग्रसेन–आदि सब सभासद उच्च स्वरसे हँसने लगे ॥ ७ ॥ हँसीकी बात हो चुकी. तद भगवान्‌ने दूतसे कहा कि–हे मूर्ख ! जिन चिन्होंसे तू इस तरह बकता है. उन चिन्होंको मैं छुड़ाय दूंगा ॥ ८ ॥ हे मूर्ख ! उस समय मुख ढककर, कंक, गिद्ध और वटजाति पक्षीनसे घिराहुआ मरकर, सोवेगा. तहां कुत्तोंका आश्रय होवेगा ॥ ९ ॥ दूतने इस प्रकार भगवान्‌के तिर-

की, तद भगवान् बलदेवजीने उसे छोड़ दिया और जैसे गजराज हथिनियोंके साथ जलमें प्रवेश करता है तैसे उन्होंने स्त्रियोंके साथ जलमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥ अच्छीतरह जलक्रीड़ा करके, जब वे जलसे बाहिर निकले. तद कांति (लक्ष्मीजी) ने बलदेवजीको दो नीलवस्त्र,अमूल्य आभूषण और श्रेष्ठ माला दीनी ॥ २९ ॥ बलदाऊजीभी नीलवस्त्र पहन, सुवर्णकी माला धारण कर, चंदन लगाय, सुंदर सिंगार किये इंद्रके गजके समान शोभा देते थे ॥ ३० ॥ महाराज ! बलदेवजीने यमुनाजीको

कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासितांबरे ॥ भूषणानि महार्हाणि ददौ कांतिः शुभां स्रजम् ॥ २९ ॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य कांचनीम् ॥ रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेंद्र इव वारणः ॥ ३० ॥ अद्यापि दृश्यते राजन्यमुनाकृष्टवर्त्मना ॥ बलस्यानंतवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ३१ ॥ एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥ रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे बलदेवविजये यमुनाकर्षणंनाम पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥ वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

खैंचा तासों उस जगह अद्यापि अनंतपराक्रम बलदेवजीके पराक्रमको मानों सूचन करतीं हो वैसे देखनेमें आती हैं ॥ ३१ ॥ गोपियोंके विलासोंसे जिनका चित्त हरण हो गया है ऐसे बलदाऊजीके इस प्रकार क्रीड़ा करते सब रातें एकरात बीते वैसे बीत गयीं ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ॥ छांछठवें अध्यायमें भगवान्‌ने काशीमें जाकर, पौंड्रकका वध किया. और उसके मित्रको मारा. फिर सुदक्षिणका वध हुआ. इत्यादि कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– महाराज ! बलदेवजी तो नंदरायजीके व्रज पधारे थे, उस

१ अत्र कांतिर्लक्ष्मी यथोक्तं वैष्णवे–वरुणप्रहितां चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥ १ ॥ अर्थ– यहां कांतिका अर्थ लक्ष्मी लेना. जैसे विष्णुपुराणमें कहा है कि– वरुणकरके पठायी हुई और जिसके कमल म्लान न हों ऐसी माला तथा समुद्रफेनवत् सफेद और नीले ऐसे कपड़े लक्ष्मीजीने इन बलदेवजीको दिया ॥ १ ॥

पवनसे प्राप्त उस मधुधाराके सुगंधको सूंघकर, बलदेवजी स्त्रियोंको संग ले, वहा गये. और उनके साथ पान किया ॥ २० ॥ स्त्रियां जिनके चरित गाय रही हैं, और मदसे घूर्णित जिनके नेत्र हैं ऐसे बलदेवजी मत्त होकर, वनमें विचरने लगे ॥ २१ ॥ कैसे हैं बलदेवजी कि–वैजयंतीमाला पहने, एक कुंडल धारण किये, मदमत्त, पसीनेके बिंदुरूप हिमकणसे शोभायमान, मंद-हास्ययुक्त मुखकमल धारण किये ॥ २२ ॥ उन समर्थ बलदेवजीने जलक्रीड़ाके लिये यमुनाको बुलाया, पर मदमत्त समझकर उनके वचनका अनादर करके, यमुनाजी नहीं आयीं, तद बलदेवजीने क्रोधमें आ, हलके अग्रसे खैंची और कहा कि–॥ २३ ॥

तं गंधं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ॥ आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ॥ वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुंडलो मत्तो वैजयंत्या च मालया ॥ बिभ्रत्स्मितमुखांभोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ॥ निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥ २३ ॥ पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता ॥ नेष्ये त्वां लांगलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २४ ॥ एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनंदनम् ॥ उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २५ ॥ राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ॥ यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २६ ॥ परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम् ॥ मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततो व्यमुंचद्यमुनां याचितो भगवान्बलः ॥ विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥

हे पापिनि ! मैंने बुलायी तौभी तू मेरा अनादर करके नहीं आयी, इसलिये स्वंच्छद चलनेवाली जो तू है, उसके हलके अग्रसे सैकड़ों विभाग कर दूंगा ॥ २४ ॥ महाराज ! ऐसे तिरस्कार होनेपर भयभीत यमुनाजी कांपती हुई बलदेवजीके चरणोंमें पड़कर, यह वचन बोलीं कि– ॥ २५ ॥ हे राम ! हे राम ! हे महावाहु ! मैं आपका पराक्रम नहीं जानती, हे जगत्पति ! जिन आपके एक अंशसे धरती धारण की जाती है ॥ २६ ॥ हे विश्वके आत्मा ! हे भक्तवत्सल ! मैं आपके परमप्रभावको नहीं जानती, परंतु आपके शरण आयी हूं सो आप मुझे छोड़नेको योग्य हो ॥ २७ ॥ ऐसे यमुनाजीने प्रार्थना

चले गये. और स्नेह तोड़ डाला पर उनके वैसे मनोहर कहनेपर कौन स्त्री विश्वास न करै ॥ १२ ॥ हमको आश्चर्य होता है कि- कृतघ्न और जिसका चित्त स्थिर नहीं ऐसे श्रीकृष्णचंद्रके वचनोंका चतुर द्वारकाकी स्त्रियां कैसे स्वीकार करती होंगी ?पर हम कल्पना करती हैं कि- विचित्र बातें बनानेवाले श्रीकृष्णके सुंदर हास्यपूर्वक कटाक्ष चलानेसे बढ़ा जो कामदेव उससे आतुर होकर, स्वीकार करती होंगी ॥ १३ ॥ दूसरी गोपियां बोलीं कि–हे गोपियो ! अपने उनकी बातोंसे क्या प्रयोजन है ? दूसरी बातें करो, उनका समय आपन विना व्यतीत होय है तो अपना समय उन विन व्यतीत होय है. अंतर इतनाही है. कि–उनका समय सुखसे और अपना समय

कथं नु गृह्णंत्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ॥ गृह्णंति वैचित्रकथस्य सुंदरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥ किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयता पराः ॥ यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारुवीक्षितम् ॥ गतिं प्रेमपरिष्वंगं स्मरंत्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥ संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयंगमैः ॥ सांत्वयामास भगवान्नानाऽनुनयकोविदः ॥ १६ ॥ द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ॥ रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचंद्रकलामृष्टे कौमुदीगंधवायुना ॥ यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ॥ पतंती तद्वनं सर्वं स्वगंधेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥

दुःखसे व्यतीत होता है ॥ १४ ॥ महाराज ! इसप्रकार भगवान्‌का हास्य, भाषण, सुंदर कटाक्ष, गति, प्रेम, आलिंगनको स्मरण करतीं गोपियां रो पड़ीं ॥ १५ ॥ अनेक प्रकारसे दिलासा देनेमें चतुर भगवान् बलभद्रने चित्तको प्रिय लगें ऐसे भगवान्‌के संदेशोंसे उनकी सांत्वना करी ॥ १६ ॥ भगवान् बलदेवजी चैत और वैशाख दो महीने वहीं रहे. और श्रीकृष्णके रासक्रीड़ासमयमें जो उत्पन्न न हुई और जो अतिबालक थीं, उन गोपियोंको रमण कराते वहीं विराजे ॥ १७ ॥ पूर्णचंद्रमाकी किरणोंसे उज्वल, मुकुंदकी सुगंधि वायुसे सेवित, यमुनाके उपवनमें उन्होंने स्त्रीगणको संग ले, रासक्रीड़ा करी ॥ १८ ॥ उस समय वरुणकी भेजी हुई वारुणी नाम मदिरा वृक्षकी खोहसे पड़ने लगी. और उसकी सुगंधिसे वह सब वन सुगंधित हो गया ॥ १९ ॥

है; क्योंकि इसका पृथ्वीमें उपाय नहीं ॥ ३३ ॥ जहर तौ केवल खानेवालेकोही मारता है, अग्नि जलसे शांत हो जाता है, पर ब्रह्मद्रव्यरूप अरणीसे प्रगटहुआ अग्नि कुलको समूल भस्म करदेता है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणकी पूरी संमति लिये विना ब्राह्मणका धन खाया जाय तौ, तीन पुस्तको गिराता है और हठसे अथवा राजा-आदिके आश्रयबलसे खाया जाय तौ दश पहलेकी और दश पीछेकी पुस्तको नरकमें गिराता है ॥ ३५ ॥ राजकी लक्ष्मीसे अंधेहुए जो राजालोक ब्राह्मणके धनकी इच्छा करते हैं वे नरककीही इच्छा करते हैं. और मूर्खतासे अपनी हानिको नहीं देखते ॥ ३६ ॥ उदार और कुटुंबी ब्राह्मणोंकी वृत्ति हरी

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ॥ कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हंति त्रिपूरुषम् ॥ प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ३५ ॥ राजानो राजलक्ष्म्यांधा नात्मपातं विचक्षते ॥ निरयं येऽभिमन्यंते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥ गृह्णंति यावतः पांसून् क्रंदतामश्रुबिंदवः ॥ विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुंबिनाम् ॥ ३७ ॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः ॥ कुंभीपाकेषु पच्यंते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृद्ध्वाऽल्पायुषो नराः ॥ पराजिताश्च्युता राज्याद्भवंत्युद्वेजिनोऽहयः ॥ ४० ॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ॥ घ्नंतं बहु शपंतं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥

जाती है उस समय रोतेहुए उन ब्राह्मणोंकी आंखोंमेंसे जो आंसू पड़ते हैं उनसे जितने रजके कण भीगते हैं. उतने बरसोंतक राजा व राजाके आश्रित कुंभीपाक नरकमें पकाये जाते हैं. जो निरंकुश होकर, ब्राह्मणका धन हर लेते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ आपकी दी हुई अथवा दूसरेकी दी हुई जो ब्राह्मणकी जीविका ले लेता है. वह साठ हजार बरसतक विष्ठाका कीड़ा होता है ॥ ३९ ॥ मेरे घरमें ब्राह्मणका धन न आवे, जिस धनके लालचसे राजा अल्प आयुष्यवाले, पराभव पायेहुए, राज्यसे भ्रष्ट और सर्पके समान उद्वेग करनेवाले होते हैं ॥ ४० ॥ हे मेरे संबंधियो ! ब्राह्मण तुम्हारा अपराध करें, तौभी तुम उनसे द्रोह मत करो. चाहे वह मारें, या बहुत गाली दें. तौभी

वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजीने कहा कि–हे देवदेव ! हे जगद्व्यापी ! हे जगदीश ! हे जगन्मय ! आपही सब
पदार्थोंके कारण आत्मा और ईश्वर हो ॥ ४ ॥ जिससे जगत्को आदि, अंत और मध्य होता है, जिसके आदि, अंत वा मध्य
कुछभी नहीं है, जिससे द्रष्टा, दृश्य, भोक्ता के भोग्य कुछभी भिन्न नहीं है वह अव्ययरूप सत्य व चैतन्यमय परब्रह्म आपही हो
॥ ५ ॥ कल्याणकी कामनावाले निष्काम मुनिलोग ऐहलौकिक और पारलौकिक संग छोड़कर, आपहीके चरणारविंदकी भली
भांति उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ आप पूर्ण, अमृत, निर्गुण, शोकरहित, आनंदमय, निर्विकार, सर्वमय और सर्वसे भिन्न, परब्र-

श्रीमहादेव उवाच ॥ देवदेव जगद्व्यापिन्जगदीश जगन्मय ॥ सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरी-
श्वरः ॥ ४ ॥ आद्यंतावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ॥ यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भ-
वान् ॥ ५ ॥ तवैव चरणांभोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ॥ विसृज्योभयतः संगं मुनयः समुपासते ॥
॥ ६ ॥ त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानंदमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ॥ विश्वस्य हेतुरुदयस्थि-
तिसंयमानामात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥ ७ ॥ एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृत-
मिवेह न वस्तुभेदः ॥ अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद्गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥
॥ ८ ॥ त्वां ब्रह्म केचिदवयंत्युत धर्ममेक एके परं सदसतोः पुरुषं परेशं ॥ अन्येऽवयंति नवशक्ति-
युतं परं त्वां केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतंत्रं ॥ ९ ॥

ह्मरूप हो, तौभी जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, संहारके कारणरूप हो और जीवोंको वे वे जुदे२ फल देते हो, यदपि आपके किसी-
की अपेक्षा नहीं है तथापि जीवोंके सदा आपकी अपेक्षा रहती है ॥ ७ ॥ कुंडलादिक रूप बनाहुआ सुवर्ण और वैसे विशेष
आकाररहित सुवर्ण ये दोनों जैसे एकही हैं वैसे कार्य–कारणरूप द्वैत और उस द्वैतके परमकारण आप एकही हो. आपमें किसी
प्रकारका वस्तुभेद बिलकुल नहीं है, जो कुछ भेद प्रतीत होता है, वह सब लोकोंने अज्ञानसे आपमें कल्पन किया है. क्योंकि–
उपाधिरहित आपके स्वरूपमें जो भेद प्रतीत होवे है वह केवल गुणकृत है, वास्तविक नहीं ॥ ८ ॥ वेदांतीलोग आपको पर-

सेभी संपन्न हो गये हो, सो अब तुम सब युद्ध मत करो ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—मुनिका वचन मान, क्रोधके वेगको रोंककर, अनुचर लोगोंके यश गाते वे सब देवता स्वर्गको गये ॥ ४५ ॥ जो दैत्य बाकी रहे थें, वे नारदजीकी सलाहसे मरेहुए बलिदैत्यको लेकर, अस्ताचल पर्वतपर गये ॥ ४६ ॥ वहां जिनके सब अंग मौजूद थे और जिनकी गरदने मोजूद थीं, उन्हें तौ शुक्राचार्यजीने अपनी संजीविनी विद्याके प्रभावसे जिलादिया ॥४७॥ शुक्राचार्यजीके छूतेही बलिकी सब इंद्रियां पीछी चेतन हो गयीं. और पिछला सब स्मरण आगया यदपि बलि हार गया था, तौभी उसने बिलकुल खेद नहीं किया, क्योंकि—वह जगत्‌के तत्त्वको अच्छी तरह

श्रीशुक उवाच ॥ संयम्य मन्युसंरंभं मानयंतो मुनेर्वचः ॥ गीयमाना अनुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ ४५ ॥ येऽवशिष्टा रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते ॥ बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥ ४६ ॥ तत्राविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोधरान् ॥ उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया ॥ ४७ ॥ बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेंद्रियस्मृतिः ॥ पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे देवासुरसंग्रामे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीबादरायणिरुवाच ॥ वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ॥ मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥ वृषभारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ सहदेव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥ सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ॥ सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥

जानता था ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ बारहवें अध्यायमें महादेवजीको मोहिनी स्वरूपके विलास देखनेके लिये उत्सुक देख कर, उन्हें उस स्वरूपसे मोहित किया और पीछी सांत्वना की, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—महादेवजीने यह बात सुनी कि—'भगवान्‌ने स्त्रीका स्वरूप धारण कर, दैत्योंको मोहित करके, देवतोंको अमृत पिलाया, ॥ १ ॥ तब आप सब भूतगणोंको संग ले, पार्वतीके साथ नंदिकेश्वरपर सवार हो, दर्शन करनेको वहां पधारे, जहां भगवान् विराजते थे ॥ २ ॥ भगवान्‌ने पार्वतीसहित महादेवजीका बहुत आदर सत्कार किया, महादेवभी भली भांति आसनपर विराज, भगवान्‌का सत्कार कर, मंद मंद हँसते यह

उन्हें मारे ॥ ३५ ॥ उस इस वज्रको मैंने छोटेसे दैत्यपर चलाया, तिसपरभी जो रुक गया, तौ अब मैं लकड़ोंके समान इस वज्रको हाथमें लेकर, क्या करूं ? अहो ! दधीचिऋषिके सामर्थ्यनेभी कुछ नहीं किया ! ॥ ३६ ॥ इसतरह इंद्र घबराने लगे तद आकाशवाणी बोली कि-" यह दैत्य न तौ आर्द्र (गीले) पदार्थसे मरेगा और न सूखेसे ', ॥ ३७ ॥ क्योंकि-मैंने इसे वरदान दिया है कि-" तू भीगे और सूखे पदार्थसे नहीं मरेगा " हे इंद्र ! इसलिये इस शत्रुके वधके लिये कोई दूसरा उपाय सोचो ॥ ३८ ॥ इस दैवी वाणीको सुन, एकचित्त हो, इंद्र विचार करने लगे तौ सोचते २ ध्यानमें आया कि-ऐसा पदार्थ तौ समुद्रका फेन है;

सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ॥ नाहं तदाददे दंडं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥ ३६ ॥ इति शक्रं विषीदंतमाह वागशरीरिणी ॥ नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥ ३७ ॥ मयाऽस्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ॥ अतोन्यश्चिंतनीयस्ते उपायो मघवन्रिपोः ॥ ३८ ॥ तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ॥ ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥ ३९ ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः ॥ तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥ ४० ॥ गंधर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥ अन्येऽप्येवं प्रतिद्वंद्वान्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान्केसरिणो यथा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ॥ वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ॥ ४३ ॥ नारद उवाच ॥ भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः ॥ श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥ ४४ ॥

क्योंकि-यह न तौ भीगा है और न सूखा है ॥ ३९ ॥ फिर उस उभयरूप समुद्रके फेनसे नमुचिका शिर उड़ा दिया, तौ मुनिलोग लगे, स्तुति करने और फूल बरसाने ॥ ४० ॥ गंधर्वोंमें मुख्य विश्वावसु और परावसु गाने लगे, देवतोंके दुंदुभि बाजने लगे और नटिनियां प्रीतिसे नृत्य करने लगीं ॥ ४१ ॥ और दूसरेभी वायु, अग्नि, वरुण-आदि देवता अपने २ शत्रुओंका जैसे सिंह हरिणोंका संहार करते हैं वैसे अस्त्रसमूहसे संहार करने लगे ॥ ४२ ॥ महाराज ! ब्रह्माजीने दैत्योंका संहार होता देखकर, देवर्षि नारदजीको भेजकर, सब देवतावोंको मना करवाया ॥ ४३ ॥ नारदजीने कहा कि-भगवानकी भुजाके आश्रयसे तुम अमृत पाचुके हो और लक्ष्मी-

सबके भय उत्पन्न करते इंद्रने बल और पाकके शिर उड़ा दिये ॥ २८ ॥ महाराज ! उन दोनोंको मरे देखकर, शोक, अमर्ष और क्रोधसे भरेहुए नमुचिने इंद्रको मारनेके लिये बड़ा भारी उद्योग किया ॥ २९ ॥ घंटा बंधा हुआ और सुवर्णसे शोभायमान पत्थरका सारभूत त्रिशूल हाथमें ले, क्रोधकर 'मार लिया है' इस तरह इंद्रका तिरस्कार करके, वह दौड़ा और जैसे सिंह गरजता है, वैसी गर्जना कर, इंद्रपै उसने त्रिशूल चलाया ॥ ३० ॥ आकाशमें आते उस बड़े वेगवाले त्रिशूलके बाणोंसे इंद्रने हजारों टुकड़े कर दिये. महाराज ! फिर क्रोध कर इंद्रने उसका सिर काटनेके लिये कंठपर वज्र चलाया ॥ ३१ ॥ यदपि इंद्रने बड़े वेगसे वज्र

नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः ॥ जिघांसुरिंद्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥ २९ ॥ अश्मसारमयं शूलं घंटावद्धेमभूषणम् ॥ प्रगृह्याभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ॥ प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥ तदा पतद्गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ॥ तमाहनन्नृप कुलिशेन कंधरे रुषाऽन्वितः स्त्रिदशपतिः शिरो हरन् ॥ ३१ ॥ न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ॥ तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥ ३२ ॥ तस्मादिंद्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥ ३३ ॥ येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ॥ कृतो निविशतां भारैः पतत्रैः पततां भुवि ॥ ३४ ॥ तपः सारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ॥ अन्येचापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥ ३५ ॥

चलाया तथापि उस ऊर्जित वज्रसे उसकी त्वचाभी छेदन न हुई. यह बड़ा आश्चर्य हुआ ; क्योंकि–महाबलवान् वृत्रासुरको जिसने काट दिया था, उस वज्रका नमुचिदैत्यके गलेकी त्वचासे तिरस्कार हुआ ॥ ३२ ॥ जिससे वज्र रुंक गया, उस शत्रुसे इंद्रभी डर गये और सोचने लगे 'कि– जगत्को मोहित करनेवाला दैवयोगसे यह क्या चरित हुआ ?' ॥ ३३ ॥ जो पर्वत अपनी परोंसे उड़, पृथ्वीपै पड़कर, अपने भारसे प्रजाका नाश करते थे, उन पर्वतोंकी जिस वज्रसे मैंने पहले परें काटीं ॥ ३४ ॥ और त्वष्टाके तपका सारभूत वृत्रासुर जिससे विदारण किया गया औरभी बड़े २ बली दैत्य कि–जिनकी सब अस्त्रोंसे त्वचाभी नहीं कटती

बड़ी फुर्तीवाले बलि दैत्यने युद्धमें इंद्रके हजार घोड़ोंको उतनेही बाणोंसे एकदम पीड़ित किया ॥ २१ ॥ पाक दैत्यने एकदम धनुषमें दोसौ २०० बाण चढ़ाकर, रथकी जुदी जुदी सांधोंमें बाण लगाये और मातलि सारथीको पीड़ित किया, यह रणके अंदर बड़ा अचरज हुआ ॥ २२ ॥ नमुचिने सोनेके पुंखवाले पन्द्रह बड़े बाण लगाये और जैसे जलसहित बादल गरजता है, वैसे संग्राममें गरजने लगा ॥ २३ ॥ जैसे प्रावृट् (पावस) ऋतुके सूर्यको बादल घेर लेते हैं, वैसे दैत्योंने रथ और सारथीसहित

हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ॥ तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥ २१ ॥ शताभ्या मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् ॥ सकृत्संधानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥ २२ ॥ नमुचिः पंचदशभिः स्वर्णपुंखैर्महेषुभिः ॥ आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥ २३ ॥ सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् ॥ छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवांबुदाः ॥ २५ ॥ अलक्षयंतस्तमतीवविह्वला विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः ॥ अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्ननवो यथाऽर्णवे ॥ २५ ॥ ततस्तुराषाडिपुबद्धपंजराद्विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ॥ बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ॥ उदयच्छद्रिपुं हंतुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥ २७ ॥ स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः ॥ ज्ञातीनां पश्यतां राजन्जहार जनयन्भयम् ॥ २८ ॥

इंद्रको बाणजालसे चौतर्फसे घेर लिया ॥ २४ ॥ इंद्रको न देखकर, अनुचरसहित सब देवगण शत्रुके बलसे पराजित हो, जैसे समुद्रमें नाव टूट जानेपर बनिये विव्हल हो पुकारें, वैसे नाथविना अतिविव्हल हो, पुकारने लगे ॥ २५ ॥ फिर तौ तुर्तही शरपंजर (बाणोंके पींजरे)से घोड़े रथ, ध्वजा और सारथीसहित इंद्र बाहिर निकले और जैसे रात्रिके अंतमें सूर्य अपने तेजसे दिशा, आकाश और पृथ्वीको प्रकाशित करते हैं, वैसे प्रकाशित करने लगे ॥ २६ ॥ रणभूमिमें अपनी सेनाको शत्रुओंसे पीड़ित देखकर, वज्रधर इंद्रने शत्रुको मारनेके लिये क्रोधकर, वज्र उठाया ॥ २७ ॥ हे राजा ! उसी अठपहलू वज्रसे जातिवालोंके देखते २

हाथी तिरस्कार नहीं सहे, वैसे उसका किया तिरस्कार इंद्रसे नहीं सहा गया ॥ ११ ॥ शत्रुओंका मर्दन करनेवाले इंद्रने उसपै वज्र चलाया, जिससे जैसे पर कट, पर्वत गिर पड़े, वैसे विमानसहित धरतीपै गिर पड़ा ॥ १२ ॥ अपने मित्रको पड़ाहुआ देखकर, बलिराजाका मित्र जंभ मरेहुए मित्रकाभी सुहृद धर्म पालता, इंद्रके सामने आया ॥ १३ ॥ सिंहपै चढ़े उस दैत्यने तुर्त निकट आ, गदा उठाय, इंद्रके हँसियोंपै प्रहार किया और उस महाबली दैत्यने गजपरभी प्रहार किया ॥ १४ ॥ गदाके प्रहारसे वह गज दुःखी हो, अतिविव्हल होगया, जमीनपर घुटने टिक गये और महाकष्टको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ तब मातलि सारथीने

प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ॥ सयानोन्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२ ॥ सखायं पतितं दृष्ट्वा जंभो बलिसखः सुहृत् ॥ अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥ ससिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ॥ जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४ ॥ गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ॥ जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५ ॥ ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ॥ आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६ ॥ तस्य तत्पूजयन्कर्म यंतुर्दानवसत्तमः ॥ शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥ १७ ॥ सेहे रुजं सुदुर्मर्षो सत्त्वमालंब्य मातलिः ॥ इंद्रो जंभस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥ १८ ॥ जंभं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः ॥ नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः ॥ १९ ॥ वचोभिः परुषैरिंद्रमर्दयंतोऽस्य मर्मसु ॥ शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ २० ॥

एक सहस्र घोड़े जुताहुआ रथ ला, उपस्थित किया, इंद्रभी ऐरावतको छोड़, रथपै चढ़े ॥ १६ ॥ दैत्यपुंगव (जंभ) ने उस सारथीके कामकी बड़ी प्रशंसा की और हंसकर, देदीप्यमान त्रिशूलसे संग्राममें उसपै प्रहार किया ॥ १७ ॥ मातलिने धीरज धारण कर, अतिअसह्य पीड़ा सही और इंद्रनेभी क्रोधकर, जंभका शिर वज्रसे उड़ा दिया ॥ १८ ॥ उसकी जातिवाले नारदजीके मुखसे जंभका वध सुनकर, नमुचि, बल और पाक ये तीनों त्वरा (जल्दी) से उसके निकट आये ॥ १९ ॥ और परुष (कठोर) वचनोंसे इंद्रका मर्मछेदन करते, जैसे बादल धारासे पर्वतपर बरसा करते हैं वैसे बाणोंकी बरसा करने लगे ॥ २० ॥

वज्रधर इंद्रने यह वचन कहा कि- ॥ ३ ॥ 'हे मूर्ख! जैसे नट (बाजीगर) मूर्खोंकी आंखे बंद कर यानी धोखा दे, जय पा, उनका धन हर लेता है, वैसे तूभी मायाके अधिपति जो हम हैं उन्हें माया फैला कर, क्या नटकी तरह जीतना चाहता है?' ॥ ४ ॥ जो मायाके बलसे स्वर्गमें चढ़ना चाहते हैं, या स्वर्गको उल्लंघन कर, मोक्षमें जाना चाहते हैं, उन मूर्ख डांकुओंका मैं समूल नाश कर देता हूं. और उनको उनके पूर्वपदसेभी च्युत कर देता हूं ॥ ५ ॥ हे मूर्ख! मेरे सौ धारवाले वज्रसे दुष्ट माया करनेवाले तेरा शिर मैं आज उड़ाता हूं सो जो तुझसे कुछ उपाय हो सकता हो तौ तेरे जातिवालोंके साथ कर ले ॥ ६ ॥

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषसि ॥ जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम् ॥४॥ आरुरुक्षंति मायाभिरुत्सिसृप्संति ये दिवम् ॥ तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥ सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ॥ शिरो हरिष्ये मंदात्मन्घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥ बलिरुवाच ॥ संग्रामे वर्त्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ॥ कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥ तदिदं कालरशनं जनाः पश्यंति सूरयः ॥ न हृष्यंति न शोचंति तत्र यूयमपंडिताः ॥ ८ ॥ न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ॥ गिरो वः साधु शोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः ॥ १० ॥ एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ॥ नामृष्यत्तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११ ॥

बलिने कहा कि-दैव जिनके कर्मोंको प्रेर रहा है ऐसे, जो वीर संग्राममें खड़े हैं, उन सबके क्रमसे यश, हार, जीत और मृत्यु होतीही रहती है ॥ ७ ॥ विद्वान् लोग इस जगत्को दैवके आधीन जानते हैं, इसीसे न तौ वे खुशी मनाते हैं और न शोक करते हैं, पर तुम इस बातको नहीं समझते हो ॥ ८ ॥ तुम कीर्ति और जय-आदिमें अपने आत्माकोही कर्ता मानते हो अतएव तुम साधु पुरुषोंके शोचनीय हो सो तुम्हारे मर्म वेधनेवाले वचनोंका हम स्वीकार नहीं करते ॥ ९ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि-वीरपुरुषोंको मर्दन करनेवाला वह वीर बलि इसतरह इंद्रका तिरस्कार कर, वचनोंसे ताड़ित किये इंद्रपै कानतक खैंचेहुए नाराच नाम बाणोंसे प्रहार करने लगा ॥ १० ॥ सत्यवक्ता वैरी बलिने इसतरह तिरस्कार किया तौ जैसे अंकुशसे ताड़ित कियाहुआ

सब स्वप्नकी माया विलाय जाती है वैसे विलाय गयीं; क्योंकि–हरि भगवान्‌का स्मरण सब विपत्‌से छुड़ानेवाला है ॥ ५५ ॥ सिंहपर सवारहुए कालनेमि दैत्यने हरिभगवान्‌को रणभूमिमें गरुड़पै विराजे देखकर, अपना त्रिशूल चलाया, हे पृथ्वीनाथ ! वह गरुड़के शिरपर पड़ता था, इतनेमें उसे लीलाहीसे पकड़कर, त्रिलोकीनाथने उसी त्रिशूलसे उसे वाहनसहित मार दिया ॥५६॥ माली और सुमाली ये दोनों बड़े बलवान् थे सो जब इनके चक्रसे शिर कट गये और ये धरतीपर पड़गये, तब माल्यवान्‌ने तीक्ष्ण गदा हाथमें ले, गरुड़पै चलाथी, इतनेमें तौ गर्जना करतेहुए अपने शत्रुका शिर भगवान्‌ने अपने चक्रसे उड़ा दिया ॥ ५७ ॥ इति

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः ॥ तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद्गृहीत्वा तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः ॥ ५६ ॥ मालीसुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् ॥ आहत्य तिग्मगदयाऽहनदंडजेंद्रं तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाद्यः ॥ ॥ ५७ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसः परमानुकंपया ॥ जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्तांस्तान्रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥ वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः ॥ उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः ॥ २ ॥ वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरः स्थितम् ॥ मनस्विनं सुसंपन्नं विचरंतं महामृधे ॥ ३ ॥

श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ग्यारहवें अध्यायमें देवता दैत्योंको मारने लगे तब नारदजीने आकर, देवतोंको मना किया और शुक्राचार्यजीने पीछे मरेहुए दैत्योंको जिलाया, यह कथा होगी ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–भगवान्‌की परमअनुकंपासे पीछी जिनको चेतना मिली है ऐसे इंद्र और वायु–आदि देवता, जिन दैत्योंसे पहले आप घायल कियेगये थे, उन उन दैत्योंको भलीभांति मारने लगे ॥१॥ जब इंद्रने क्रोध करके, बलिराजापै वज्र उठाया, तब प्रजा हाहाकार शब्द करने लगी ॥ २ ॥ सामने खड़े, उदारचित्त, अतिसंपन्न, महारणके अंदर विचरतेहुए, बलिका तिरस्कार करके,

करने लगे ॥ ४७ ॥ हे राजा ! सैंकड़ों राक्षस और राक्षसियां त्रिशूल हाथमें लिये, नग्न हो, ' काटो काटो भेदो भेदो. ' इसतरह बकने लगीं ॥ ४८ ॥ फिर गंभीर और कठोर शब्द करते बड़े बड़े मेघ आकाशमें छा गये और पवनकी प्रेरणासे कड़कड़ाहट शब्द करते अंगारे बरसने लगे ॥ ४९ ॥ फिर बलिदैत्यने पवनकी सहायता लिये, ऐसा भारी भयंकर अग्नि प्रगट किया कि- मानों वह प्रलयकाही अग्नि है, उसने देवतोंकी सारी सेनाको भस्म कर दिया ॥ ५० ॥ फिर प्रचंड पवनसे जिसमें भारी तरंगें उठ रहीं हैं और भँवर पड़ रहे हैं, ऐसा मर्यादा तजे समुद्र चौतर्फ देखनेमें आया ॥ ५१ ॥ जिनकी गति जाननेमें नहीं आती

यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः ॥ छिंधि भिंधीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥ ४८ ॥ ततो महाघना व्योम्नि गंभीरपरुषस्वनाः ॥ अंगारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥ ४९ ॥ सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः ॥ सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥ ५० ॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ प्रचंडवातैरुद्धूततरंगावर्तभीषणः ॥ ५१ ॥ एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः ॥ सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥ ५२ ॥ न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिंद्रादयो नृप ॥ ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥ ५३ ॥ ततः सुपर्णांसकृतांघ्रिपल्लवः पिशंगवासा नवकंजलोचनः ॥ अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुंडलः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा माया विनेशुर्महिना महीयसः ॥ स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणं ॥ ५५ ॥

अतएव भयंकर और महामायावी दैत्योंने इसतरह अनेक प्रकारकी मायायें प्रकट करीं, तौ सब देवतावोंकी सेना घबरा गयी ॥ ५२ ॥ महाराज ! इंद्रादिक देवतावोंको वहां कोई उपाय नहीं दीखा, तब हरिभगवान्का स्मरण किया, स्मरण करतेही जगत्-के पालक हरि वहां प्रगट हुए ॥ ५३ ॥ गरुड़के कंधेपै चरणपल्लव धरे, पीले पीतांबर पहने, आठ भुजोंमें आठ शस्त्र धारण किये. लक्ष्मी कौस्तुभमणि, अमूल्य कुंडल व किरीटसे देदीप्यमान और नवीन कमलकेसे हैं नेत्र जिनके ऐसे, भगवान् उनके न-जर आये, ॥ ५४ ॥ भगवान्के पधारतेही भगवान्की महिमासे वे सब दैत्योंके कूट कपटसे रचीहुई मायायें जैसे जागनेके अनंतर

अतिशोभा देती थी ॥ ३९ ॥ शिरमें प्रगट हुए जो नेत्र तिनसे अपने शिरको देखतेहुए कई कबंध अपने भुजदंडसे शस्त्र उठाये युद्धमें दूसरे योधानके सामने दौड़ते उठने लगे हैं ॥ ४० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि—महाराज! उसकाल बलिने दश बाण तौ इंद्रके, तीन बाण ऐरावत हाथीके, चार बाण चार वाहनोंके और एक बाण महावतके लगाया ॥ ४१ ॥ शीघ्रपराक्रम वह इंद्र आतेहुए उन बाणोंको देखकर, उतनेही अपने तीक्ष्ण बाणोंसे हँसते हँसते पहुँचनेके पहलेही काट गिराये ॥ ४२ ॥ इंद्रका यह उत्तम कर्म देखकर,. बलिने शक्ति हाथमें ली, महाराज! वह शक्ति चिरागसी हाथमें प्रकाश रही थी,

कबंधास्तत्र चोत्पेतुः पश्यंतः स्वशिरोऽक्षिभिः ॥ उद्यतायुधदोर्दंडैराधावंतो भटान्मृधे ॥ ४० ॥ बलिर्महेंद्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहानेकेनारोहमार्छयत् ॥ ४१ ॥ स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः ॥ चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसंप्राप्तान्हसन्निव ॥ ४२ ॥ तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे ॥ तां ज्वलंतीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥ ४३ ॥ ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ॥ यद्यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद्विभुः ॥ ४४ ॥ ससर्जाथासुरीं मायामंतर्धानगतोऽसुरः ॥ ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥ ४५ ॥ ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना ॥ शिलाः सटंकशिखराश्चूर्णयंत्यो द्विषद्बलम् ॥ ४६ ॥ महोरगाः समुत्पेतुर्दंदशूकाः सवृश्चिकाः ॥ सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयंतो महागजान् ॥ ४७ ॥

इतनेमें इंद्रने उसेभी हाथकी हाथमें काट गिरायी ॥ ४३ ॥ तब बलिने त्रिशूल लिया, फिर प्रास, भाला व ऋष्टि, शस्त्र हाथमें लिया महाराज! बलिने जो जो शस्त्र हाथमें लिया इंद्रने उन सब शस्त्रोंको काट गिराया ॥ ४४ ॥ हे प्रभु! फिर बलिने अंतर्धान होकर, अपनी आसुरी माया फैलायी, जिससे देवतोंकी सेनाके ऊपर एक पर्वत प्रगट हुआ ॥ ४५ ॥ फिर दावानलसे जलतेहुए वृक्ष गिरने लगे और शत्रुओंकी सेनाको चूर्ण २ करतीं शिलायें और टांकीके जैसे तीखे जिनके अग्र हैं ऐसे, शिखर गिरने लगे ॥ ४६ ॥ बड़े बड़े सांप, बीछू, कनखजूरे, गिरने लगे और सिंह, व्याघ्र, वराह ये बड़े बड़े हाथियोंका सत्यानाश

त्रुदमन ! इल्वलसहित वातापि और ब्रह्माजीके पुत्र ॥ ३२ ॥ दुर्मर्ष और कामदेव, उत्कल और मातृगण, शुक्राचार्यजी और बृहस्पति, नरकासुर और शनैश्वर, ॥ ३३ ॥ निवातकवच और मरुद्गण, कालेय और वसु, पौलोम और विश्वेदेवा, क्रोधवश और रुद्रगण ॥ ३४ ॥ इसतरह वे देवता और दैत्य आपसमें भिड़ भिड़ कर, द्वंद्वयुद्ध करने लगे और आपसमें पिलपिलकर, जयकी अभिलाषासे तीखे बाण, खड्ग और भालोंद्वारा पराक्रम कर, प्रहार करने लगे ॥ ३५ ॥ भुशुंडी, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, परशु, खड्ग, भाले, परिघ मुद्गर और भिंदिपाल इन शस्त्रोंसे आपमसें शिर कटने लगे ॥ ३६ ॥ हाथी, घोड़े, रथ,

कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ॥ बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥ ३३ ॥ मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ॥ विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥ ३४ ॥ त एवमाजावसुराः सुरेंद्रा द्वंद्वेन संहत्य च युध्यमानाः ॥ अन्योऽन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥ ३५ ॥ भुशुंडिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि ॥ निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिंदिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥ ३६ ॥ गजास्तुरंगाः सरथाः पदातयः सारोहवाहा विविधा विखंडिताः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोधरांघ्रयश्छिन्नध्वजेष्वास तनुत्रभूषणाः ॥ ३७ ॥ तेषां पदाघातरथांगचूर्णितादायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा ॥ रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥ ३८ ॥ शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुंडलैः संरंभदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः ॥ महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥ ३९ ॥

प्यादल और सवारोंसहित दूसरेभी अनेक प्रकारके वाहन छिन्न भिन्न होने लगे. हाथ, जंघा, गर्दन और पैर कट २ कर, गिरने लगे. ध्वजा, धनुष, कवच और भूषण विखरने लगे ॥ ३७ ॥ उनके पांव पड़ने और पहियोंके फिरनेसे जो रणभूमिमेंसे रज उठी, वह एक दफे तो ऐसी भयंकर फैली कि–सब दिशायें, आकाश और सूर्य ढँक गया, परंतु लोहूके प्रवाह बहनेसे वह सब पीछी नीची बैठ गयी ॥ ३८ ॥ शिर कि–जिनके किरीट और कुंडल उड़ गये हैं, आंखें चढ़ रहीं हैं, होंठ डसे जाते हैं, बड़ी भुजायें कि–जिनमें गहने पहिने हैं और शस्त्र धारण करे हैं, हथेलीके बाहिरी भागके सदृश जांघें उनसे बिछी हुई वह रणभूमि

देवतावोंका विजय किया था, यदपि इन्हें सोमका भाग नहीं मिला और केवल क्लेशके भागी हुए थे ॥ २३ ॥ तौभी सिंहनाद करते घोर स्वरवाले शंखोंका शब्द करने लगे, इसतरह शत्रुओंको बढ़ेहुए देखकर, इंद्र अतिक्रोध करके, ऐरावतनाम दिग्गजपै चढ़े, उस समय वे इंद्र ऐसे शोभा देते थे कि-मानों, सूर्य झरने झरतेहुए उदयाचलपर चढ़े हैं॥ २४ ॥ २५ ॥ लोकपाल, वायु, अग्नि और वरुणआदि सब देवता अपने अपने गणोंको संग ले, अपने २ वाहन, ध्वजा और शस्त्र सजाये उनके चौतर्फ हो

सिंहनादान्विमुंचंतः शंखान्दध्मुर्महारवान् ॥ दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित्कुपितो भृशम् ॥ २४ ॥ ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ॥ यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥ २५ ॥ तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ॥ लोकपालाः सहगणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ २६ ॥ तेऽन्योऽन्यमभिसंसृत्य क्षिपंतो मर्मभिर्मिथः ॥ आह्वयंतो विशंतोऽग्रे युयुधुर्द्वंद्वयोधिनः ॥ २७ ॥ युयोध बलिरिंद्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ॥ वरुणो हेतिनाऽयुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥ २८ ॥ यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै ॥ शंबरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥ २९ ॥ अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ॥ सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च ॥ ३० ॥ राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ॥ निशुंभशुंभयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥ ३१ ॥ वृषाकपिस्तु जंभेन महिषेण विभावसुः ॥ इल्वलः सह वातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिंदम ॥ ३२ ॥

लिये ॥ २६ ॥ वे आपसमें भिड़ भिड़, परस्पर मर्मवचनोंसे झिड़कते और तिरस्कार करते, बुलाते और आगे बढ़ते द्वंद्वयुद्ध करने लगे ॥ २७ ॥ हे राजा ! बलि और इंद्र, तारक और स्वामिकार्तिक, हेति और वरुण, प्रहेति और मित्र ॥ २८ ॥ कालनाभ और यम, मय और विश्वकर्मा, शंबर और त्वष्टा, विरोचन और सविता ॥ २९ ॥ नमुचि और अपराजित, वृषपर्वा और अश्विनीकुमार, बाणआदि, सौ १०० बलिपुत्र और सूर्य ॥ ३० ॥ राहु और चंद्रमा, पुलोमा और पवन, निशंभु, शुंभ और बलवती भद्रकाली देवी ॥ ३१ ॥ जंभ और वृषाकपि, महिषासुर और विभावसु, हे श-

पण, सूर्यकी किरणोंसे अत्यंत जगमगाते उज्वल शस्त्रआदि शोभ रहे थे ॥ १४ ॥ हे पांडुनंदन! इनसे देवता और दैत्योंके वीरपुरुषोंकी सेनायें जैसे जलजंतुओंसे दो सागर शोभा देते हों वैसे शोभा देतीं थीं ॥ १५ ॥ दैत्योंका सेनापति विरोचनका पुत्र बलि संग्रामके अंदर मयदैत्यके बनाये, कामचारी वैहायस नाम विमान कि-जिसमें सब प्रकारकी युद्धकी सामा सजी है, सब प्रकारके आश्चर्य भरे हैं, जो न तौ तर्कना करनेमें आता है और न कहनेमें आता है, कभी तौ दीख पड़ता है और कभी दीखताही

देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पांडुनंदन ॥ रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥ १५ ॥ वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां च भूपतिः ॥ यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥ १६ ॥ सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥ १७ ॥ आस्थितस्तद्विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ॥ वालव्यजनछत्राग्र्यैरेजे चंद्र इवोदये ॥ १८ ॥ तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ॥ नमुचिः शंबरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ॥ शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥ २० ॥ हयग्रीवः शंकुशिराः कपिलो मेघदुंदुभिः ॥ तारकश्चक्रदृक्शुंभो निशुंभो जंभ उत्कलः ॥ २१ ॥ अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ॥ अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥ २२ ॥ अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥ २३ ॥ ॥

नहीं है, उस उत्तम विमानमें बैठाहुआ और सब सेनापतियोंसे घिराहुआ, चमर, पंखे और उत्तम छत्र इनसे ऐसी शोभा देता था कि-मानों उदयाचलपर चंद्रमा उदय हुआ है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ नमुचि, शंबर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसंताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शंकुशिरा, कपिल, मेघ, दुंदुभि, तारक, चक्रदृक् शुंभ, निशुंभ, जंभ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, त्रिपुरका अधिपति मय औरभी पौलोम, कालेय और निवातकवचआदि अनेक दैत्ययूथपति वाहनोंपै बैठ २ कर, उसे चारों ओरसे घेर रहे थे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ इन सबोंने कईबेर रणभूमिमें

अतिदारुण और रोमहर्षण, तुमुल युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥ वहां रणमें क्रोधसे भरे, वे शत्रु परस्पर पिल पिलके खड्ग, बाण और अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे प्रहार करते थे ॥ ६ ॥ शंख, तूर्य, मृदंग, भेरी और डमरू इनका भारी शब्द होता था और हाथी, रथ, प्यादल और घोड़े ये घोर नाद करते थे ॥ ७ ॥ रथी रथीसे, प्यादल प्यादलसे, घुड़चढ़े घुड़चढ़ोंसे और हाथी हाथियोंसे रणमें भिड़ रहे थे ॥ ८ ॥ महाराज ! कितनेएक तौ ऊंटोंपै बैठ बैठकर, युद्ध करते थे, कितनेएक गधोंपै सवार थे,

तत्रान्योऽन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ॥ समासाद्यासिभिर्बाणैर्निर्जघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥ शंखतूर्यमृदंगानां भेरीडमरुणां महान् ॥ हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निःस्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥ रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सहपत्तयः ॥ हयाहयैरिभाश्चेभैः समसज्जंत संयुगे ॥ ८ ॥ उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः ॥ केचिद्गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥ गृध्रैः कंकैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिंगिलैः ॥ शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥ १० ॥ शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैर्नरैः ॥ बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥ ११ ॥ अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ॥ सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥ १२ ॥ चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः ॥ महाधनैर्वज्रदंडैर्व्यजनैर्बार्हिचामरैः ॥ १३ ॥ वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः ॥ स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥ १४ ॥

कई हाथियोंपै चढ़े थे, कई गौरमृगोंपै, कई रीछोंपै, कई द्वीपिपै, कितनेएक भट सिंहोंपै, ॥ ९ ॥ कितनेएक गिद्ध, कंक, बगुले, श्येन (सिकरा), भास, तिमिंगल, शरभ, भैंसे, गैंड़े, बैल, रोज, अरुण, ॥ १० ॥ सियारनियां, मूषक, गिरगिट, शश, मनुष्य, बकरे, कालियहरिण, हंस, शूकर ॥ ११ ॥ और दूसरेभी अनेक प्रकारके विकृत शरीर जलस्थलमें रहनेवाले पक्षियोंपै बैठे २, आगेसे आगे दोनों सेनाओंके अंदर बढ़ रहे थे ॥ १२ ॥ महाराज ! चित्र विचित्र ध्वजानके पट और श्वेत व उज्वल छत्र, अमूल्य व हीरोंकी डांडीवाले मोरपिच्छके व्यजन व चमर ॥ १३ ॥ पवनसे उड़तेहुए उत्तरीय व पागें, चमकतेहुए कवच व आभू-

तरुप फल मिला और दैत्योंको कुछभी नहीं मिला ॥ २८ ॥ मनुष्य भेददृष्टि रखकर, देह और पुत्रादिकोंके वास्ते प्राण, कर्म, धन, मन और वचनसे जो कुछ करते हैं, वह सब व्यर्थ होता है और अभेददृष्टिसे सबको ईश्वररूप जानकर, देह तथा पुत्रादिकोंके वास्ते उन्हीं पदार्थोंसे जो कुछ करते हैं, वह महाफलदायक होता है, क्योंकि–जो जल मूलमें सींचा जाता है वह वृक्षके सब अंगोंको तृप्त करता है ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ दशवें अध्यायमें दैत्योंने मत्सरतासे युद्ध करना शुरु किया और देवता युद्धमें दैत्योंकी मायासे घबरा

यद्युज्यतेऽसुवसुकर्मवचोमनोभिर्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ॥ तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे अमृतमथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति दानवदैतेया नाविदन्नमृतं नृप ॥ युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥ साधयित्वाऽमृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥ सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनंदनाः ॥ अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥ ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ॥ प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥ तत्र देवासुरो नाम रणः परमदारुणः ॥ रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥

गये, तब हरि भगवान् प्रगट हुए, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! दैत्य और दानवोंने बहुत कुछ परिश्रम किया और वे काममें लगे रहे, परंतु भगवत्से बहिर्मुख थे इसलिये उन्हें कुछभी नहीं मिला ॥ १ ॥ महाराज ! अमृत उत्पन्न कर, अपने देवतोंको पिलाय, सब लोगोंके देखते भगवान् गरुड़पर विराजकर, पधारे ॥ २ ॥ वे दैत्य शत्रुओंकी बड़ी उन्नति देखकर, उसका सहन न करते, शस्त्र उठाकर, देवतोंपर चले ॥ ३ ॥ फिर तो देवताभी अमृत पीकर, पुष्ट हो गये थे, सो वेभी सब भगवत्के चरणका शरण ले, शस्त्रोंसे पीछा युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ हे राजा ! वहां समुद्रके तीरपर देवासुर नाम

ठग कर, दूर बैठेहुए देवतोंको जरा और मृत्यु हरनेवाला अमृत पिलाया ॥ २१ ॥ महाराज ! वे दैत्य अपने किये कौलको नि-बाहते और मोहिनीसे स्नेह कर चुके थे, इस लिये पीछा स्त्रीके साथ विवाद करना ठीक नहीं ऐसा विचार कर, चुप हो, बैठे ॥ २२ ॥ दूसरा मोहिनीके साथ अतिस्नेह बंध गया था, इसलिये पीछा स्नेह टूट जानेसे डरते और मोहिनीके अतिआदरभावसे बंधेहुए, दैत्य कुछभी अप्रिय वचन नहीं बोले ॥ २३ ॥ उस समय देवतोंका स्वरूप धर, राहु देवतोंकी सभाके अंदर छिपकर, घुसा और अमृतभी पी लिया, इतनेमें सूर्यचंद्रने भगवान्‌से सूचना की ॥ २४ ॥ सूचना करतेही विष्णु भगवान्‌ने अमृत पीते २ छूरासी धारवाले

ते पालयंतः समयमसुराः स्वकृतं नृप ॥ तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥ २२ ॥ तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ॥ बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किंचन विप्रियम् ॥ २३ ॥ देवलिंग-प्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ॥ प्रविष्टः सोममपिबच्चंद्रार्काभ्यां च सूचितः ॥ २४ ॥ चक्रेण क्षुरधारे-ण जहार पिबतः शिरः ॥ हरिस्तस्य कबंधस्तु सुधयाऽप्लावितोऽपतत् ॥ २५ ॥ शिरस्त्वमरतां नीतमजोग्रहमचीक्लृपत् ॥ यस्तु पर्वणि चंद्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥ २६ ॥ पीतप्रायेऽमृते देवैर्भग-वाँल्लोकभावनः ॥ पश्यतामसुरेंद्राणां स्वरूपं जगृहे हरिः ॥ २७ ॥ एवं सुरासुरगणाः समदेशका-लहेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः ॥ तत्रामृतं सुरगणाः फलमंजसाऽऽपुर्यत्पादपंकजरजःश्रय-णान्न दैत्याः ॥ २८ ॥

चक्रसे उसका शिर उड़ा दिया, उसकी धड़में अमृत नहीं पहुंचा इस लिये वह तो गिर गयी ॥ २५ ॥ शिर अमर हुआ. जिसे ब्रह्माजीने ग्रह बनाया, जो पर्व पर्व—(पूनम और अमावस) में बैर रखकर, अबतक सूर्य चंद्रमाके पीछे दौड़ता है॥ २६ ॥ बहुत करके देवता अमृत पी चुके, तब लोकरक्षक हरि भगवान्‌ने दैत्योंके देखते २ अपना चतुर्भुज स्वरूप धारण किया ॥ २७ ॥ इस प्रकार यदपि अमृत मथनके कार्यमें देवता और दैत्योंके देश, काल, पर्वत, लताआदि पदार्थ, परिश्रम और विचार सब कुछ बराबर थे, तौभी फल मिलनेमें अंतर पड़ा, वहां भगवान्‌के चरणारविंदके आश्रयसे देवतोंको तो जैसा चाहिये वैसा अमृ-

कर, स्नान कर, हविसे अग्निमें होम कर, गौ, ब्राह्मण और जीवोंको यथायोग्य दे, ब्राह्मणोंके हाथ स्वस्तिवाचन करवाय ॥ १४ ॥ यथायोग्य नवीन वस्त्र पहन, सिंगार कर २ पूर्वकी ओर जिनके अग्र हैं ऐसे दर्भके आसनोंपर बैठे ॥ १५ ॥ धूपसे सुगंधियुक्त और पुष्प व दीपकसे देदीप्यमान शालाके अंदर सब देवता और दैत्य पूर्वाभिमुख बैठे तदनंतर ॥ १६ ॥ हे राजा ! मोहिनी भगवान् कलश हाथमें लिये उस सभामें प्रवेश हुए. कैसी है वह स्त्री कि–जिसकी करभ (हथेलीके छेड़े) सी जंघा है, सुथरे वस्त्र धरे, नितंबके

यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते ॥ कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ॥ १५ ॥ प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च ॥ धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥ १६ ॥ तस्यां नरेंद्र करभोरुरुशदुकूलश्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी ॥ सा कूजती कनकनूपुरसिंजितेन कुंभस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ॥ १७ ॥ तां श्रीसखीं कनककुंडलचारुकर्णनासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ॥ संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकां ताम् ॥ १८ ॥ असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् ॥ मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥ १९ ॥ कल्पयित्वा पृथक्पंक्तीरुभयेषां जगत्पतिः ॥ तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पंक्तिषु ॥ २० ॥ दैत्यान् गृहीतकलशो वंचयन्नुपसंचरैः ॥ दूरस्थान्पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥ २१ ॥

भारसे मंदगति, मदसे विव्हल नेत्र, कंचनके नूपुर झमझमाती ॥ १७ ॥ कानोंमें कनकमय सुंदर कुंडल धारण किये, सुंदर कपोल, सुंदर मुख, सुंदर नासिका, परदेवता नाम, लक्ष्मीकी सखी कि–जिसके स्तनोंपरका वस्त्र वारंवार गिर पड़ता था, उसे देख, मंद मुसुकानसहित अवलोकनसे सब देवता और दैत्य मोहित हो गये ॥ १८ ॥ जातिसे क्रूर दैत्योंको अमृत देना मानों सर्पोंका दूध पिलाना है, ऐसे अयोग्य जानकर, भगवान्ने उन्हें कुछभी अमृत नहीं दिया ॥ १९ ॥ जगत्पति भगवान्ने दोनोंकी जुदी २ पंक्ति करवाय, अपनी २ पंक्तिमें उन सबको बिठला दिया ॥ २० ॥ मोहिनी भगवान्ने कलश हाथमें ले, दैत्योंको स्त्रीचरितसे

वैर बांधकर, आपसमें कट मरते हैं और ईर्षा करते हैं सो हे सुमध्यमें ! जिसतरह हमारे आपसमें सुख हो जाय, वह उपाय तू कर ॥ ६ ॥ हम कश्यपजीके पुत्र भाई हैं और हमने बराबर पुरुषार्थ किया है, सो अब हमारे जिसतरह आपसमें कलह न होवे, इसतरह ठीक ठीक यह अमृत हमें बांट दे ॥ ७ ॥ इसतरह मायासे स्त्रीस्वरूप हरिसे दैत्योंने प्रार्थना की, तब हँसकर, सुंदर कटाक्षसे उनकी ओर देखकर, यह वचन कहा ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–तुम कश्यपजीके पुत्र होकर, मुझ व्यभिचारिणीमें कैसे आसक्त हो गये हो ?. क्योंकि–बुद्धिमान् आदमी स्त्रियोंका कभी विश्वसा नहीं करता है ॥ ९ ॥ हे दैत्यो ! कुत्ते

वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः ॥ विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७ ॥ इत्युपामंत्रितो दैत्यैर्माया योषिद्वपुर्हरिः ॥ प्रहस्य रुचिरापांगैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः ॥ विश्वासं पंडितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥ ९ ॥ सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ॥ सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ॥ जहसुर्भावगंभीरं दद्ुश्चामृतभाजनम् ॥ ११ ॥ ततो गृहीत्वाऽमृतभाजनं हरिर्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा ॥ यद्यभ्युपेत क्व च साध्वसाधु वा कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ॥ १२ ॥ इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुंगवाः ॥ अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ॥ १३ ॥ अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम् ॥ दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥ १४ ॥

और छिनाल स्त्रियोंका मित्रभाव कभी स्थिर नहीं होता. क्योंकि–वे तौ हमेशा नया नयाही तलाश करते रहती हैं ॥ १० ॥ श्रीशुकमुनिने कहा कि–इसतरह उसके हँसीके वचनोंसे उनके मनमें भरोसा आ गया, तौ किसी अभिप्रायसे गंभीर रीतिसे हँसकर, अमृतका कलश सौंप दिया ॥ ११ ॥ हरि भगवान्ने वह अमृतका कलश ले, थोरी २ मंद मुसुकुरानसे शोभायमान मधुरवाणीसे कहा कि–कदाचित् मैं कहीं जाय वे जाय करूं, तौभी तुम्हे मंजूर हो तौ मैं इस अमृतको बांट सक्ती हूं ॥ १२ ॥ दैत्यपुंगवोंने ऐसे उसके वचन सुनकर, उसीतरह स्वीकार किया. क्योंकि, वे उसके प्रमाणको नहीं जानतेथे ॥ १३ ॥ फिर देवता और दैत्य, व्रत

चरणोंमें सुंदर नूपुर झमझमाये ॥ ४५ ॥ लज्जा और मंदहाससहित कंपायमान भ्रूविलास और अवलोकनसे दैत्ययूथपतियोंके चित्तमें बारंबार कामदेव उद्दीपन करता था ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्व० भा० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ नवमें अध्यायमें दैत्योंने मोहित होकर, अमृतका कलश दे दिया; तद मोहिनीने दैत्योंका वंचन करके, देवतोंको अमृत दिया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–वे दैत्य सुहृदभाव छोड़, चोरकी तरह आपसमें अमृतका कलश छीन रहे थे, और गालियां दे रहे थे. इतनेमें उन्होंने आतीहुई एक स्त्री देखी ॥ १॥ अहो ! कैसा इसका रूप है ? कैसी कांति है ? और कैसी नवीन

सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ॥ दैत्ययूथपचेतस्सु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तेन्योऽन्यतोऽसुराः पात्रं हरंतस्त्यक्तसौहृदाः ॥ क्षिपंतो दस्युधर्माण आयांतीं ददृशुः स्त्रियम् ॥ १ ॥ अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ॥ इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥ २ ॥ का त्वं कंजपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि ॥ कस्यासि वद वामोरु मथ्नंतीव मनांसि नः ॥ ३ ॥ न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगंधर्वचारणैः ॥ नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्चकुतो नृभिः ॥ ४ ॥ नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषिताऽसि शरीरिणाम् ॥ सर्वेंद्रियमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥ ५ ॥ सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि ॥ ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥

अवस्था है ? इसतरह वे कामातुर दैत्य दौड़कर, उसके निकट जाकर, पूंछने लगे ॥ २ ॥ कि– हे कमलनयनी ! तू कौन है ? कहांसे आयी है ? और तेरी क्या मरजी है ? हे वामोरु ! तू किसकी है ? हमें कह तौ सही, तू हमारे मनोंको, मानों मथन कर रही है ॥ ३॥ हम जानते हैं कि–आजतक देवता, दैत्य, सिद्ध, गंधर्व, चारण और लोकपाल किसीने तेरा स्पर्श नहीं किया तौ, फिर मनुष्य तौ तुझे कैसे छू सक्ते हैं ॥ ४ ॥ हे सुभ्रू ! क्या विधाताने हमपै कृपा करके, देहधारियोंकी सकल इंद्रियां और मनके प्रसन्न करनेके वास्ते तुझे भेजी है ? या तू यदृच्छासे चली आयी है ? नहीं नहीं उसीने भेजी है ॥ ५॥ हम भाई होकर, एक चीजके वास्ते

वाले हरि भगवान्‌ने कहा कि-तुम घबरावो मत, मैं आपनी मायासे आपसमें तुम्हारा काम बना दूंगा ॥ ३७ ॥ इतनेमें भगवान्‌की मायासे हे राजा ! अमृतके लोभी समबलवाले दैत्योंमें परस्पर कलह होनेलगा, कि-' मैं पहले मैं पहले, ' " तू नहीं तू नहीं " ॥ ३८ ॥ महाराज ! जो दुर्बल थे वे कलश लियेहुए बलवान् अपने दैत्योंको मत्सरतासे बारंबार इसतरह पुकार २ कर, मना करते थे कि-जैसे सत्र (याग) में सबको बराबर भाग मिलता है, वैसे यहांभी देवताओंको बराबर अपना भाग मिलना चाहिये, क्योंकि-इन्होंनेभी अपने बराबर परिश्रम किया है; असली धर्मकी बात तो यह है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इतनेमें सब उ-

मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थं तर्षचेतसाम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥ ३८ ॥ देवाः स्वं भागमर्हंति ये तुल्यायासहेतवः ॥ सत्रयागइवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥ ३९ ॥ इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ॥ दुर्बलाः प्रबलान्राजन्गृहीतकलशान्मुहुः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नंतरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ॥ योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥ ४१ ॥ प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुंदरम् ॥ समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननं ॥ ४२ ॥ नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरं ॥ मुखामोदानुरक्तालिझंकरोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥ बिभ्रत्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ॥ सुग्रीवकंठाभरणं सुभुजांगदभूषितम् ॥ ४४ ॥ विरजांबरसंवीतनितंबद्वीपशोभया ॥ कांच्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥ ४५ ॥

पायके जाननेवाले ईश्वर विष्णु भगवान्‌ने बड़ा अद्भुत अकथनीय स्त्रीरूप धारण किया ॥ ४१ ॥ कैसा है स्वरूप कि-जो देखने योग्य नीलकमलके समान श्यामवर्ण, सब अंग सुंदर, बराबर कानोंमें आभूषण धारण किये, सुंदर कपोल व नासिकायुक्त मुख ॥ ४२ ॥ नवीन यौवन अवस्थासे परिपूर्ण जो स्तनभार तिससे कृश उदर, मुखकी सुगंधिसे अनुरागयुक्त जो भ्रमर तिनके झंकारसे उद्विग्न नयन, ॥ ४३ ॥ अपने केशपाशके अंदर प्रफुल्लित मल्लिकाकी माला गुथाये, सुंदर गलेमें कंठाभरण धरे, सुंदर बाजूबंदसे शोभायमान ॥ ४४ ॥ द्वीपके समान शोभायमान मोटे नितंबपर विरज वस्त्र पहने, कटिमेखलासे देदीप्यमान, चलतेहुए

लक्ष्मीने दानव व दैत्योंकी उपेक्षा की तद वे निःसत्व लालची उद्योगहीन और निर्लज्ज हो गये ॥ २९ ॥ फिर कमलनयनी देवी वारुणी नाम कन्या प्रगट हुई, उसका भगवान्‌की संमतिसे दैत्योंने ग्रहण किया ॥ ३० ॥ महाराज ! फिर अ-मृतके लिये देवता और दैत्य समुद्रका मथन करने लगे तो, बड़ा अद्भुत एक पुरुष प्रगट हुआ ॥ ३१ ॥ कैसा है वह पुरुष कि-लंबी और पुष्ट जिसकी भुजा हैं, शंखसा कंठ, अरुणनेत्र, श्यामवर्ण तरुणअवस्था, माला पहिरे, सब अलंकारोंसे शो-भायमान ॥ ३२ ॥ पीतपट ओढ़े, बड़ा वक्षःस्थल, उज्ज्वल मणियोंके कुंडल झलकाये, चिकना और घूंघरवाला है केशोंका

अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना ॥ असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३० ॥ अथोदधे-र्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः ॥ उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥ दीर्घपीवरदोर्दंडः कंबुग्रीवोऽरुणेक्षणः ॥ श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥ ३२ ॥ पीतवासा महोरस्कः सु-मृष्टमणिकुंडलः ॥ स्निग्धकुंचितकेशांतः सुभगः सिंहविक्रमः ॥ ३३ ॥ अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद्वलय-भूषितः ॥ स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ॥ ३४ ॥ धन्वंतरिरितिख्यात आयुर्वेददृगिज्यभा-क् ॥ तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम् ॥ ३५ ॥ लिप्संतः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाऽहरन् ॥ नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन् कलशेऽमृतभाजने ॥ ३६ ॥ विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ॥ इति त-द्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ॥ माखिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥ ३७ ॥

प्रांतभाग जिसका ऐसा सुभग, सिंहसा पराक्रमी, ॥ ३३ ॥ कंकणसे शोभायमान हाथमें अमृतभरा कलश धारण किये जो पुरुष प्रगट हुआ, वह साक्षात् विष्णु भगवान्‌के अंशांससे प्रगट हुआ था, जो 'धन्वंतरि' इस नामसे प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने आयु-र्वेद (वैद्यक) प्रवृत्त किया है. और यज्ञमें विभाग पाया है, उनके हाथमें अमृतसे भरा कलश देखकर, सब दैत्य, ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ सबकी सब वस्तु चाहते बलात्कारसे कलश छीन ले भागे, जब दैत्य अमृतका कलश छीन कर, जाने लगे ॥ ३६ ॥ तो देवता विषण्णचित्त हो, हरि भगवान्‌के शरण आये, इसतरह उनकी दीनता देखकर, अनुचर लोगोंकी कामना पूर्ण करने-

आत्माराम होनेसे मुझे चाहता नहीं है ॥ २२ ॥ इसतरह विचार कर, अव्यभिचारी जो धर्म ज्ञानआदि श्रेष्ठ गुण तिनसे और निरपेक्ष होनेसे सर्वोत्तम व प्रकृतिके गुणोंसे पर और अणिमाआदि सकल सिद्धिसंयुक्त, अपने मनोभिलषित व निरपेक्ष हरि भगवान्‌का लक्ष्मीने वरण किया ॥ २३ ॥ मदोन्मत्त भ्रमरसमूह जिसपर मधुर स्वरसे गुंज रहे हैं, ऐसी सुंदर नवीन कमलोंकी माला भगवान्‌के गलेमें डारकर, लज्जा व हाससहित प्रफुल्लित नेत्र हो, अपने धाम भगवान्‌के वक्षःस्थलकी प्रतीक्षा करती, भग-

एवं विमृश्याव्यभिचारि सद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयतयाऽगुणाश्रयम् ॥ वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुंदं निरपेक्षमीप्सितम् ॥ २३ ॥ तस्यां स देश उशतीं नवकंजमालां माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ॥ तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयने न याता ॥ २४ ॥ तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः ॥ श्रीः स्वः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥२५॥ शंखतूर्यमृदंगानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ॥ देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥ २६ ॥ ब्रह्मरुद्रांगिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ॥ ईडिरेऽवितथैर्मंत्रैस्तल्लिंगैः पुष्पवर्षिणः ॥ २७ ॥ श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ॥ शीलादिगुणसंपन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥ २८ ॥ निःसत्त्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः ॥ यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥

वान्‌के निकट चुप हो, खड़ी रही ॥ २४ ॥ भगवान्‌ने उस जगज्जननी त्रिलोकीकी विभूतिरूप लक्ष्मीको, अपना वक्षःस्थलरूप अविचल पद दिया. कि—जहां स्थित होकर, लक्ष्मीने अपनी प्रजा और लोकपालसहित त्रिलोकीको करुणासहित दृष्टिसे बढ़ाया. उस समय शंख, तूर्य और मृदंगआदि बाद्योंका भारी शब्द होने लगा, स्त्री—सहित देवताओंके अनुचर नाचने और गाने लगे ॥ २५ ॥ २६ ॥ ब्रह्मा, रुद्र, अंगिराआदि सब प्रजापति फूल बरसाय २ विष्णुके प्रतिपादक यथार्थ मंत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ लक्ष्मीकी दृष्टि पड़तेही देवता, प्रजापति और प्रजा शीलआदि गुण पाकर, परमानंदको प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ महाराज ! जब

त सुंदर मुख धारण करती, ठमक ठमक चलने लगी ॥ १७ ॥ उस समय पतला है पेट जिसको ऐसी वह सुंदरी, बराबर और चंदन केसरसे चर्चित, अंतररहित स्तनयुगलको धारण करती, नूपुरका मधुर झंकारशब्द सुनाती, इधर उधर फिरती, सुवर्णकी बेलिके समान शोभा देने लगी ॥ १८ ॥ और सदा जामें श्रेष्ठ गुण रहे हैं, ऐसे अविचल और दूषणरहित अपने आश्रयको ढूंढ़ने लगी, परंतु कहीं गंधर्व, यक्ष, दैत्य, सिद्ध, चारण और देवताआदिमें अपने योग्य वर नहीं मिला ॥ १९ ॥ तद लक्ष्मीने विचार किया कि-दुर्वासाआदि तपस्वी तौ हैं परंतु ये क्रोधके वश हैं, गुरु और शुक्रआदि ज्ञानवान् तौ हैं, परंतु ये आसक्त है, ब्रह्माजी

स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरंतरं चंदनकुंकुमोक्षितम् ॥ ततस्ततो नूपुरवल्गुसिंजितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥ १८ ॥ विलोकयंती निरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवं चाव्यभिचारिसद्गुणम् ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रैविष्टपेयादिषु नान्वविंदत ॥ १९ ॥ नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो ज्ञानं कचित्तच्च न संगवर्जितम् ॥ कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ॥ २० ॥ धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् ॥ वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं न हि द्वितीयो गुणसंगवर्जितः ॥ २१ ॥ कचिच्चिरायुर्न हि शीलमंगलं कचित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ॥ यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमंगलः सुमंगलः कश्च न कांक्षते हि माम् ॥ २२ ॥

और चंद्रमाआदि बड़े तौ हैं परंतु कामदेवके वश हैं, दूसरेकी परवाह रखनेवाले इंद्रादिक काहेके ईश्वर ? ॥ २० ॥ परशुरामजीआदि धर्मात्मा तौ हैं परंतु ये निर्दयी हैं, शिबिआदि राजा दानी तौ हैं परंतु उनका दान मोक्षके निमित्त नहीं है, सहस्रार्जुनआदि पराक्रमी तौ हैं परंतु उनकी मृत्युका ठिकाना नहीं है और सनकादिक तौ बिलकुल समाधिनिष्ठही हैं तासों येभी वरने योग्य नहीं हैं ॥ २१ मार्कंडेयआदि चिरंजीव तौ हैं परंतु उनका स्वभाव मांगलिक नहीं है. क्योंकि-वे सदा इंद्रियोंका दमन करते रहते हैं, हिरण्यकशिपुआदिमें वह बातभी है परंतु उनकी आयुका ठिकाना नहीं है, श्रीरुद्रआदिमें ये सब बातें तौ हैं परंतु उनका चरित मांगलिक नहीं है, महाराज ! फिर विष्णु भगवान्‌की तर्फ देखकर, लक्ष्मीने कहा कि-जिसमें ये सब बातें हैं वह

रूप, उदारता, अवस्था व वर्णआदिकी महिमासे सबके चित्त विक्षिप्त हो रहे थे ॥ ९ ॥ इंद्र तौ उसके लिये बड़ा अद्भुत आसन लाया, मूर्तिमान नदियां कंचनकें कलश भर २ पवित्र जल लायीं ॥ १० ॥ पृथ्वी अभिषेकके योग्य सब औषधियां लाई, गायें पवित्र पंचगव्य लायीं वसंतऋतु चैत्र वैशाख महीने लाया ॥ ११ ॥ और ऋषिलोगोंने विधिपूर्वक अभिषेक करना शुरू किया, उस समय गंधर्व गाने लगे और नटिनियां नृत्य और गान करने लगीं ॥ १२ ॥ मेघ बड़े तुमुल शब्दवाले मृदंग, पणव,

तस्या आसनमानिन्ये महेंद्रो महदद्भुतम् ॥ मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुंभैर्जलं शुचि ॥ १० ॥ अभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः ॥ गावः पंचपवित्राणि वसंतो मधुमाधवौ ॥ ११ ॥ ऋषयः कल्पयांचक्रुरभिषेकं यथाविधि ॥ जगुर्भद्राणि गंधर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगुः ॥ १२ ॥ मेघा मृदंगपणवमुरजानकगोमुखान् ॥ व्यनादयन् शंखवेणुवीणास्तुमुलनिःस्वनान् ॥ १३ ॥ ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ॥ दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥ १४ ॥ समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ॥ वरुणः स्रजं वैजयंतीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥ ॥ १५ ॥ भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुंडले ॥ १६ ॥ ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्विरेफां परिगृह्य पाणिना ॥ चचाल वक्त्रं सुकपोलकुंडलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥ १७ ॥

मुरज, नक्कारा, गोमुख, शंख, वेणु और वीणाआदि बाजे बजाने लगे ॥ १३ ॥ फिर दिग्गज हाथियोंने कलश भर २ ब्राह्मणोंके मंत्र उच्चारण करते कमल हाथमें लिये देवी महालक्ष्मीका अभिषेक किया ॥ १४ ॥ समुद्रने पीले रेशमी वस्त्र अर्पण किये, भौंरे जिसपर गुंज रहे हैं, ऐसी वैजयंती नाम माला वरुणने दी ॥ १५ ॥ प्रजापति विश्वकर्माने बड़े विचित्र आभूषण अर्पण किये, सरस्वतीने हार दिया, ब्रह्माजीने कमल और नागोंने कुंडल दिये ॥ १६ ॥ फिर मंगलिक वस्त्र और आभूषण धारण कर, भौंरोंसे गुंजायमान कमलोंकी माला हाथमें ले, महालक्ष्मी कुंडलकी कांतिसे शोभायमान है कपोल जिसमें ऐसा लज्जा और हाससहि-

विष पी गये, तब देवता और दैत्य प्रसन्न हो फिर जोरसे समुद्रको मथने लगे, तौ उसमेंसे कामधेनु प्रगट हुई ॥ १ ॥ महाराज ! वह अग्निहोत्रकी साधनभूत गौ, ब्रह्मलोकके मार्गको प्राप्त करानेवाले यज्ञसंबंधी पवित्र हविके लिये, ब्रह्मवादी ऋषि लोगोंने लीनी ॥ २ ॥ फिर चंद्रमाके समान श्वेतबरन उच्चैःश्रवा नाम घोड़ा पैदा हुआ, उसमें बलिदैत्यकी इच्छा देखकर, भगवान्की शिक्षासे इंद्रने बिलकुल इच्छा न की ॥ ३ ॥ फिर ऐरावत नाम गजेंद्र निकला, जिसने अपने चार ४ दांतोंसे महादेवके कैलास पर्वतकी शोभा छीन लीनी थी ॥ ४ ॥ फिर समुद्रमेंसे कमलके समान अरुण (माणिक) कौस्तुभनाम रत्न

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥ तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चंद्रपांडुरः ॥ तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेंद्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥ तत ऐरावतो नाम वारणेंद्रो विनिर्गतः ॥ दंतैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४ ॥ कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः ॥ तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे मणौ ॥ ५ ॥ ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम् ॥ पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान् ॥ ६ ॥ ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलाऽवलोकनैः ॥ ७ ॥ ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्रीरमा भगवत्परा ॥ रंजयंती दिशः कांत्या विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ ८ ॥ तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ॥ रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥

निकला, उसमें हरिभगवान्ने इच्छा दिखलायी और उसे अपने वक्षःस्थलका आभूषण बनाया ॥ ५ ॥ फिर स्वर्गका आभूषणरूप कल्पवृक्ष पैदा हुआ, जो जैसे तुम पृथ्वीमें सबके मनोरथ पूर्ण करते हो, वैसे स्वर्गवासियोंके मनोरथ पूर्ण करता है ॥ ६ ॥ फिर पदक पहिने, सुथरे वस्त्र धारण किये अप्सरायें प्रगट हुई, जो अपनी सुंदर गति व लीलासहित देखनेसे स्वर्गनिवासी लोगोंको रमण कराया करती हैं ॥ ७ ॥ पीछे भगवत्परायण साक्षात् महालक्ष्मी प्रगट हुई, जो सुदामापर्वतसंबंधी बिजुलीके समान अपनी कांतिसे दिशानको प्रकाशमान कर रही थी ॥ ८ ॥ सब कोई देवता दैत्य व मनुष्य उसे चाहते थे; क्योंकि–उसके

पर चराचरसहित मैं प्रसन्न होता हूं ॥ ४० ॥ इसलिये मैं यह विष भक्षण करता हूं सो अब प्रजाका मुझसे कल्याण होना चाहिये, जगत्पालक भगवान् महादेव इसतरह पार्वतीसे सलाह मिलाय ॥ ४१ ॥ उस विषको खाने लगे, तब प्रभाव जानने-वाली पार्वती अनुमोदन करने लगीं, फिर व्यापक उस हालाहल विषको हथेलीमें ले ॥ ४२ ॥ भूतभावन महादेवजीने कृपा कर, भक्षण किया तो जलके मैलरूप उस विषने उनकोभी अपना पराक्रम दिखलाया ॥ ४३ ॥ कि–गलेमें नीलापन कर दिया, परंतु साधु जो महादेव उनके वहभी अलंकाररूपही हुआ. बहुधा साधुजन लोगोंके दुःखसे दुःखी हुआ करते हैं, यही सर्वके आत्मा

श्रीशुक उवाच ॥ एवमामंत्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञान्वमोदत ॥ ४१ ॥ ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषं ॥ अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ४२ ॥ तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ॥ यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ ४३ ॥ तप्यंते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ॥ परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥ ४४ ॥ निशम्य कर्म तच्छंभोर्देवदेवस्य मीढुषः ॥ प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुंठश्च शशंसिरे ॥ ४५ ॥ प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किंचिज्जगृहुः स्म तत् ॥ वृश्चिकाहिविषौषध्यो दंदशूकाश्च येऽपरे ॥ ५६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे अमृतमथने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पीते गरे वृषांकेन प्रीतास्तेऽमरदानवाः ॥ ममंथुस्तरसा सिंधुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

हरिभगवानका मुख्य आराधन है ॥ ४४ ॥ देवदेव व मनोरथ पूर्ण करनहारे शंभु प्रभुका यह चरित देख, प्रजा, सती, ब्रह्माजी और विष्णु भगवान् सब प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ महादेवके विष पान करते थोड़ा बहुत जो विष हाथमेंसे गिरा, उसे बीछू सांप, जहरीली औषध और दूसरेभी जहरी जीवोंने लिया ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ आठवें अध्यायमें समुद्रके मथनेसे लक्ष्मीजीने उत्पन्न होकर, भगवान्का वरण (व्याह) किया और धन्वंतरि भगवान् अमृतले समुद्रमेंसे निकले और उनके हाथमेंसे अमृतका कलश, छीनकर, दैत्य ले भगे, तद भगवान्ने मोहिनीअवतार धारण किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महादेवजी

केवल शांतिही भरी हैं, उनमें उग्रपन व हिंसकपन संभवे नहीं ॥ ३३ ॥ आप कि-जो सकल कार्यकारणोंसे पर और व्यापक हो और जब ब्रह्मादिक उनका स्वरुप जाननेके लियेभी समर्थ नहीं हैं तौ, फिर स्तुति करनेको तौ कैसे समर्थ होवें ? जब ब्रह्मादिक समर्थ नहीं हैं तौ फिर ब्रह्माके पुत्र पौत्रादिकके वंशमें प्रगट हुए हम समर्थ नहीं यह तौ सबप्रकारसे सिद्ध हो चुका. तथापि यथाशक्ति हमभी स्तुति करते हैं ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर ! हम आपके इस स्वरुपकोही जानते हैं परमस्वरूपको नहीं जानते हैं. तौ इतनेहीसे अपने आत्माको कृतार्थ मानते हैं; क्योंकि अव्यक्तचरित आपका जो प्रागव्य है, सो लोकोंके सुखके

तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नांजः स्वरूपगमने प्रभवंति भूम्नः ॥ ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥ ३४ ॥ एततपरं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ॥ मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ॥ सर्वभूतसुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥ ३६ ॥ शिव उवाच ॥ अहो बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥ ३७ ॥ आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ॥ एतावान्हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥ ३८ ॥ प्राणैः स्वैः प्राणिनः पांति साधवः क्षणभंगुरैः ॥ बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥ ३९ ॥ पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ॥ प्रीते हरौ भगवतिं प्रीयेऽहं सचराचरः ॥ तस्मादिदं गरं भुंजे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥ ४० ॥

अर्थ है ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसप्रकार प्रजाका दुःख देखकर, करुणासे अतिपीड़ित, सर्व देहधारियोंके सुहृद महादेवने अपनी प्रिया सतीसे कहा ॥ ३६ ॥ श्रीमहादेव बोले कि-हे भवानि ! अहो ! हाय ! क्षीर समुद्रके मथनसे प्रगटहुए हालाहलसे प्रजाको जो दुःख हुआ है, उसे देखो ॥ ३७ ॥ यह प्रजा प्राण बचाना चाहती है, सो जरूर मुझे इनको अभय देना चाहिये. क्योंकि-दीन पुरुषोंका पालन करना, यही प्रभु और समर्थ पुरुषोंका काम है ॥ ३८ ॥ ये प्राणी तौ भगवान्की मायासे मोहित हो आपसमें मार डालना चाहते हैं, तौभी साधुलोक तौ अपने क्षणभंगुर प्राणोंसे प्राणियोंके प्राण बचातेही रहते हैं ॥ ३९ ॥ हे भद्रे ! जो मनुष्य दया करता है, उसपै सबके अंतर्यामी हरि प्रसन्न रहते हैं, हरि भगवान्के प्रसन्न होने-

रोम हैं, सात छंद, आपके साक्षात् धातु हैं, सर्वप्रकारका जो धर्म है सो वह आपका हृदय है ॥ २८ ॥ हे ईश ! तत्पुरुषादिक पांच मंत्र कि-जिनका पदच्छेद करते एकसौ १३८ मंत्र होते हैं वे आपके मुख हैं, शिव, स्वयंप्रकाश और दीप्तिमान् जो वास्तविक तत्त्व है वह आपकी शांतिभरी स्थिति है ॥ २९ ॥ अधर्मकी लहरें आपकी छाया हैं, सत्व, रज और तम ये तीन गुण कि-जिनसे अनेक प्रकारकी सृष्टि होवे है, वे आपके तीन ३ नेत्र हैं. हे देव ! साक्षात् वेद आपका विचार है, क्योंकि-आप वेदके कर्ता, वेदमय, और पुरातन ऋषि हो ॥ ३० ॥ हे महादेव ! परमज्योति और भेदरहित ब्रह्म कि-जिसमें सत्व, रज के तुम कुछभी नहीं है वह आपका

मुखानि पंचोपनिषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमंत्रवर्गः ॥ यत्तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देवः स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥ २९ ॥ छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ॥ सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा छंदोमयो देवऋषिः पुराणः ॥ ३० ॥ न ते गिरित्राखिललोकपालविरिंचवैकुंठसुरेंद्रगम्यम् ॥ ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥ कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेकभूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते ॥ यस्त्वंतकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्रवह्निस्फुलिंगशिखया भसितं न वेद ॥ ३२ ॥ ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिंतितांघ्रिद्वंद्वं चरंतमुमया तपसाभितप्तम् ॥ कत्थ्यंत उग्रपरुषं निरतं श्मशाने ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥ ३३ ॥

स्वरूप, सकल लोकपाल, ब्रह्मा विष्णु व इंद्र इन सबोंके ध्यानमें आ जावें ऐसा नहीं है ॥ ३१ ॥ जो आप प्रलयकालमें अपने नेत्रसंबंधी अग्निकी चिनगारीसे भस्म हुए इस जगत्को जानतेभी नहीं. और जिन्होंने कामदेव, दक्षप्रजापतिका यज्ञ, त्रिपुरासुर और मृत्युआदि अनेक जगत्द्रोहियोंका संहार किया है, वे आप विषका भक्षण करो, इसमें स्तुति करें ऐसी बात तौ कुछभी नहीं है ॥ ३२ ॥ आपको पार्वतीके साथ विचरते देखकर, जो लोग आप कामी हो, इस तरह बकते हैं और आपको मरघटमें फिरते देखकर, जो लोग आपको उग्र और हिंसक कहते हैं, वे निर्लज्ज लोक बिलकुल आपकी लीलाको नहीं जानते हैं, क्योंकि-जिनके चरणारविंदका आत्माराम और उपदेशक लोग हृदयमें चिंतवन करते हैं, उनमें कामीपनकी घटना बने नहीं और जिनमें तपके कारण

विषसे डरते जो हम आपके शरण आये हैं उनकी आप रक्षा करो ॥ २१ ॥ इस सब जगत्के बंध और मोक्षके ईश्वर आपही हो, इसी लिये चतुर नर, शरणागतोंके आतिर्हर और गुरु आपका पूजन करते हैं ॥ २२ ॥ हे भूमन् ! हे विभु ! आपकी गुणमय शक्तिसे आप जब इस जगत्की सृष्टि, स्थिति, संहार करते हो, तब ब्रह्मा, विष्णु व महेश ये नाम धारण करते हो ॥ २३ ॥ सदसत् यानी देव, मनुष्य, पशुपक्षीआदिको उत्पन्न करनेवाले और सबसे परमगुह्य परब्रह्म आपही हो. जगत्के ईश्वर और आत्मा, आपही अनेक प्रकारके पदार्थोंके रूपसे जाननेमें आते हो ॥ २४ ॥ विद्वान् लोग कहते हैं कि-वेदके कारणरूप आपही

गुणमय्या स्वशक्त्याऽस्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो ॥ धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ २३ ॥ त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ॥ नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥ २४ ॥ त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेंद्रियद्रव्यगुणस्वभावः ॥ कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मस्त्वय्यक्षरं यत्त्रिवृदामनंति ॥ २५ ॥ अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा क्षितिं विदुर्लोकभवांघ्रिपंकजम् ॥ कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥ २६ ॥ नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्सूर्यश्च चक्षूंपि जलं स्म रेतः ॥ परावरात्माश्रयणं तवात्मा सोमो मनो द्यौर्भगवन् शिरस्ते ॥ २७ ॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघा रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ॥ छंदांसि साक्षात्तव सप्तधातवस्त्रयीमयात्मन्हृदयं सर्वधर्मः ॥ २८ ॥

महत्तत्त्व और अहंकाररूप हो, कि-जिसके गुणोंमेंसे प्राण, इंद्रियां व शरीर ये प्रगट होते हैं, स्वभाव, काल, संकल्प, सत्य, ऋत और धर्मस्वरूपभी आपही हो, प्रधान कि-जो त्रिगुणात्मक है, उसके आश्रयरूपभी आपही हो ॥ २५ ॥ हे लोकोत्पादक ! सकल देवतरूप अग्नि आपका मुख है पृथ्वी आपका चरणकमल है, काल आपकी गति है, दिशा कान हैं और वरुण आपकी रसना (जीभ) है, इसतरह विद्वान् लोग सर्वदेवरूप आपके विराट्स्वरूपकी कल्पना करते हैं ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! आकाश आपकी नाभि है, वायु श्वास है, सूर्य नयन, जल वीर्य है, परअवर सब जीवोंका जो आश्रय है वह आपका अहंकार है, चंद्रमा मन है, और स्वर्ग मस्तक है ॥ २७ ॥ हे वेदत्रयमूर्ति ! समुद्र आपकी कुक्षि है, पर्वत अस्थिसमूह है, सब औषधि और लतायें आपके

वान् मथने लगे ॥ १६ ॥ उस समय मेघसे श्यामबरन, पीतांबर पहिने, कानोंमें बिजुलीसे कुंडल झलकाये, बिखरेहुए शिरके बालोंसे देदीप्यमान, माला धरे, अरुण नेत्र, पर्वतको धारण किये, जगत्को अभय देनेवाले और जय करनेवाले भगवान् अपने भुजोंसे सर्पको पकड़ कर, पर्वतसे समुद्रका मथन करते ऐसे शोभा देने लगे कि-मानों पर्वतके समीप दूसरा पर्वतही विद्यमान है ॥ १७ ॥ मथन करनेसे जिसके अंदर, मछलियां, मगर और कछुएआदि जलजंतु घबरा रहे हैं और तिमि, जलहस्ती, ग्राह व तिमिंगल इनके हेतु व्याकुलता छा रही है, ऐसे समुद्रके मथते २ महाउल्बण और जिसका कुछ उपाय नहीं है ऐसा महाकरा-

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ॥ जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दंदशूकं गृहीत्वा मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथोधृताद्रिः ॥ १७ ॥ निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ॥ संभ्रांतमीनोन्मकरादिकच्छपात्तिमिद्विपग्राहतिमिंगिलाकुलात् ॥ १८ ॥ तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ॥ भीताः प्रजा दुद्रुवुरंग सेश्वरा अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥ १९ ॥ विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्याऽभिमतं मुनीनाम् ॥ आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥ २० ॥ प्रजापतय ऊचुः ॥ देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन ॥ त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥ २१ ॥ त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बंधमोक्षयोः ॥ तं त्वामर्चंति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥ २२ ॥

ल हालाहल नाम विष उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ महाराज ! जिसका पराक्रम किसीतरह सहा न जाय ऐसे, उस अतितीक्ष्णवेग विषको ऊपर नीचे और चारों दिशाओंमें फैलता और बढ़ता देखकर, लोकपालोंसहित सब प्रजा कहीं शरण न पाकर, भयभीत हो, दौड़कर, सदा कल्याणमय महादेवजीके शरण गयी ॥ १९ ॥ त्रिलोकीके कल्याणके लिये पार्वतीके साथे कैलासमें विराजमान और मुनिलोगोंके स्वीकार किये तपका उन्हींको मोक्ष देनेके लिये सेवन करते देवतावोंमें उत्तम महादेवजीको देखकर, प्रणामपूर्वक स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ प्रजापति बोले कि-हे देवदेव ! हे महादेव ! हे भूतात्मन्! हे भूतभावन ! त्रिलोकीको भस्म करते इस

नते थे ॥ १० ॥ वैसेही दैत्योंमें तौ दैत्यरूपसे प्रवेश कर, उनका बल और पराक्रम बढ़ाया और देवतोंमें देवरूपसे प्रवेश कर, उनको उद्दीपन किया और सर्पमें गुप्तरूपसे आपने प्रवेश किया ॥ ११ ॥ मानों दूसरा बड़ा पर्वत हो ऐसे और सहस्र भुजा धारण किये, भगवान् मंदराचलको अपने हाथसे दबाके, खड़े रहे; उस समय ब्रह्माजी, महादेव और इंद्रादिक देवता स्तुति करते फूल बरसाने लगे ॥ १२ ॥ ऊपर अपने स्वरूपसे और नीचे कच्छपस्वरूपसे और पर्वत, वासुकिनाग और दैत्य व देवताओंमेंभी उस उस रूपसे रहे भगवान्से वृद्धिंगत (बढ़ेहुए) मदोन्मत्त देवता और दैत्य जोरसे समुद्रको मथने लगे; उस वख्त समुद्रमें जो मगर थे

तथाऽसुरानाविशदासुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ॥ उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णुर्देवेन नागेंद्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥ उपर्यगेंद्रं गिरिराडिवान्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ॥ तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेंद्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥ १२॥ उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ॥ ममंथुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाऽद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥ १३ ॥ अहींद्रसाहस्रकठोरदृङ्मुखश्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ॥ पौलोमकालेयबलील्वलादयो दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ॥ १४ ॥ देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्धूम्रांबरस्रग्वरकंचुकाननान् ॥ समाभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥ १५ ॥ मथ्यमानात्तथा सिंधोर्देवासुरवरूथपैः ॥ यदा सुधा न जायेत निर्ममंथाजितः स्वयम् ॥ १६ ॥

उनका समूह पर्वतके फिरनेसे घबरा गया ॥ १३ ॥ वासुकि सर्पके हजारों विकराल नेत्र, मुख और श्वाससे प्रगट हुआ जो अग्नि और धूम उससे जिनके तेज हीन होगये हैं ऐसे, पौलोम, कालेय, बलि और इल्वलआदि दैत्य, दावानलसे जलेहुए देवदारुके वृक्षके जैसे काले हो गये ॥ १४ ॥ वासुकिके श्वासकी शिखासे देवतोंकीभी कांति जाती रही और उनके वस्त्र, माला, उत्तम कवच और मुख दूसरे रंगमें बदल गये तब उनपर भगवान्की कृपासे मेघ बरसने लगे और समुद्रकी लहरोंसे मिलीहुई शीतल वायु बहनेलगी ॥ १५ ॥ इसतरह देवता और दैत्य यूथपति समुद्रका मथन कर रहे थे, परंतु जब अमृत उत्पन्न नहीं हुवा तब स्वयं अजित भग-

और क्या हम जन्म व कर्मसे प्रख्यात नहीं हैं ? ऐसे कह, दैत्य चुप होकर, खड़े हो गये. उन्हें देखकर, पुरुषोत्तम भगवान्‌ने ॥ ४ ॥ हँसकर, सर्पका फण छोड़ दिया और देवताओंके साथ उसकी पूंछ पकड़ ली, इस तरह वे कश्यपजीके पुत्र अपनी २ जगह नियत कर ॥ ५ ॥ बड़ी सावधानीसे अमृतके लिये समुद्र मथने लगे. समुद्र मथतेसमय नीचे कोई आधार नहीं था, इसलिये हे राजा ! उन बलवानोंने बहुत कुछ जोर किया और उस पर्वतको धर रक्खा था, परंतु आखिर वह जलके अंदर चला गया ॥ ६ ॥ अतिबलवान् दैवके प्रभावसे जब उनका पुरुषार्थ नष्ट हो गया, तब वे मनमें अतिखिन्न हुए और उनके मुखकी कांति जाती रही

स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनंदनाः ॥ ५ ॥ ममंथुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ मथ्यमानेऽर्णवे सोद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥ ६ ॥ ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पांडुनंदन ॥ ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ॥ आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥ विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो दुरंतवीर्योऽवितथाभिसंधिः ॥ कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥ तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः ॥ दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥ सुरासुरेंद्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमंतं गिरिमंग पृष्ठतः ॥ बिभ्रत्तदावर्त्तनमादिकच्छपो मेनेऽगकंडूयनमप्रमेयः ॥ १० ॥

॥ ७ ॥ अनंतशक्ति और सत्यसंकल्प भगवान् इस काममें विघ्नेश्वरका किया यह विघ्न जान; महाद्भुत कच्छपावतार धारण कर, जलमें पैठ, मंदराचलको बाहिर ले आये ॥ ८ ॥ उस पर्वतको पीछा बाहिर आया देखकर, देवता और दैत्य मथन करनेको फिर खड़े हुए, मानों समुद्रमें दूसरा द्वीप प्रगट हुआ हो, ऐसे कच्छपमूर्ति भगवान्‌ने लक्षयोजन विस्तारवाली अपनी पीठसे पर्वतको धारण किया ॥ ९ ॥ महाराज ! देवपति और दैत्यपति अपने २ भुजावोंके पराक्रमसे उस पर्वतको जो कंपायमान करते थे, सो उस पर्वतके फिरनेको, फिरतेहुए पर्वतको पीठसे धारण करते अप्रमेय कच्छप भगवान् अपने अंगमें खुजली खुजाना मा-

प्रगट हुए ॥ ३६ ॥ पर्वतके पड़नेसे चूर्ण २ हुए दैत्य और देवतावोंको देखकर, आपने अपनी दृष्टिसे उन्हें जिलाया और निर्जर व व्रणरहित किया ॥ ३७ ॥ और पर्वतको लीलापूर्वक एक हाथसे गरुड़पर रख, आप उसपै चढ़, देवता और दैत्योंको संग लिये समुद्रपर पधारे ॥ ३८ ॥ वहां पक्षिराज गरुड़ने अपने कंधेसे पर्वतको उतार कर, जलके किनारे धर दिया और हरि भगवान्‌से आज्ञा पा कर, वहांसे चला गया ॥ ३९ ॥ (उसे रुखशत करनेका कारण यह था कि- जबतक वह वहां रहे, तबतक वासुकि सर्प नहीं आवें) इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ॥ ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्व्रणान्यथा ॥ ३७ ॥ गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ॥ आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३८ ॥ अवरोप्य गिरिं स्कंधात्सुपर्णः पततांवरः ॥ ययौ जलांत उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे अमृतमथने मंदराचलानयनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ते नागराजमामंत्र्य फलभागेन वासुकिम् ॥ परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १ ॥ आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह ॥ हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥ तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ॥ न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरंगममंगलम् ॥ ३ ॥ स्वाध्यायश्रुतसंपन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ॥ इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सातवें अध्यायमें मथन करनेसे प्रगट हुआ जो विष उसके डरसे सब लोगोंने महादेवजीकी स्तुति की—तद कृपा कर, उनने विषपान किया; यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—नागराज वासुकि सर्पको अमृतमेंसे हिस्सा देना कबूल कर, देवता और दैत्योंने उसे नेती बनाया, महाराज ! पर्वतमें उस सर्पको लपेट कर, आनंदयुक्त हो, सावधानीसे अमृतके लिये समुद्रका मथन करना प्रारंभ किया. उस समय हरिभगवान्‌ने उस सर्पका मुख पकड़ा और सब देवता भगवान्‌के पीछे हो गये ॥ १ ॥ २ ॥ भगवान्‌के अभिप्रायको न जानकर, दैत्योंने यह बात न चाही और बोले कि-‘ हम सर्पकी पूंछ कभी नहीं पकड़ेंगे, क्योंकि—यह इसका अंग अमांगलिक है ॥ ३ ॥ क्या हम वेदाध्ययन और शास्त्राध्ययनसे संपन्न नहीं हैं ?

यद्पि देवता लोग बिलकुल सजेहुए नहीं थे, तौभी उन्हें देखकर, अपने सेनापति युद्धकी तैयारी करने लगे. उन्हें देखकर, संधि और विग्रहका समय जाननेवाले यशस्वी बलिराजाने निषेध किया ॥ २८ ॥ दैत्ययूथपतियोंसे रक्षा किये, सर्बजीत, परम उत्तम लक्ष्मीसे सेवित, बलिको सभामें विराजमान देख, वे देवता बलिके निकट आये ॥ २९ ॥ महामति महेंद्रने मधुर वाणीसे सांत्वना देकर, पुरुषोत्तम भगवान्से जो कुछ सीख आये थे वह सब बलिसे कहा ॥ ३० ॥ वह बात क्या तौ बलिको और क्या शंबर, अरिष्टनेमि और त्रिपुरमें रहनेवाले दूसरे दैत्यपतियोंको सबको बहुत अच्छी लगी ॥ ३१ ॥ तब देवता और दैत्यों-

दृष्ट्वाऽरीनप्यसंयत्तान्जातक्षोभान्स्वनायकान् ॥ न्यषेधदैत्यराट् श्लोक्यः संधिविग्रहकालवित् ॥ २८ ॥ ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ॥ श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥ महेंद्रः श्लक्ष्णया वाचा सांत्वयित्वा महामतिः ॥ अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥ तद्रोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ॥ शंबरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१ ॥ ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ॥ उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परंतप ॥ ३२ ॥ ततस्ते मंदरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ॥ नदंत उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥ दूरभारोद्वहश्रांताः शक्रवैरोचनादयः ॥ अपारयंतस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥ ३४ ॥ निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ॥ चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥ ३५ ॥ तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकंधरान् ॥ विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥ ३६ ॥

ने आपसमें मेल कर, कौलनामा बांध, हे राजा ! अमृतके वास्ते बड़ा भारी उद्यम उठाया ॥ ३२ ॥ फिर परिघकेसे जिनके भुजदंड हैं ऐसे, दुर्मद वे समर्थ देवता और दैत्य नाद करते पराक्रमसे मंदराचलको उठाकर, समुद्रकी तर्फ चले ॥ ३३ ॥ दूर बहुत होनेसे जब इंद्र और बलिआदि सब भार उठानेसे थक गये और उसे नहीं थाम सके तौ विवश हो, रास्तेके बीच उस पर्वतको उन्होंने छोड़ दिया ॥ ३४ ॥ वहां उस मंदराचलने गिरते २ अपने भारी भारसे कईएक दैत्य और देवताओंको चूर्ण कर दिया ॥ ३५ ॥ जिनके हाथ, जांघ और गर्दन टूट जानेसे दिल टूट गये हैं ऐसे, उन देवता और दैत्योंको जानकर, गरुड़ध्वज भगवान् वहीं तुर्त

तुम जल्दी अमृत पैदा होनेकेवास्ते यत्न करो, कि-जिसके पीनेसे मृत्युग्रस्त जीव अमर हो जाता है॥ २१ ॥सब बेलि, तृण, लता व औषधि क्षीरसमुद्रमें डार, मंदराचलको मथनदंड बनाय, वासुकिसर्पकी नेती कर ॥ २२ ॥ हे देवो ! आलस्यरहित होकर, समुद्रका मथन करो. इसमें मैं तुम्हें सहायता दूंगा, दैत्योंको तौ इसमें फकत क्लेशही मिलेगा और तुम्हें इसका फल मिलेगा॥ २३ ॥ परंतु हे देवताओ ! दैत्यलोग जो जो करना चाहें, वह सब तुम मानते रहना; क्योंकि सबकाम जैसे सांत्वनासे सिद्ध होते हैं वैसे

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलंबितम् ॥ यस्य पीतस्य वै जंतुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ॥ मंथानं मंदरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २२ ॥ सहायेन मया देवा निर्मंथध्वमतंद्रिताः ॥ क्लेशभाजो भविष्यंति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥ २३ ॥ यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छंत्यसुराः सुराः ॥ न संरंभेण सिद्ध्यंति सर्वेऽर्थाः सांत्वया यथा ॥ २४ ॥ न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसंभवात् ॥ लोभः कार्यो न वै जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ तेषामंतर्दधे राजन्स्वच्छंदगतिरीश्वरः ॥ २६ ॥ अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ॥ भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७ ॥

संभ्रम करनेसे नहीं होते ॥ २४ ॥ समुद्रमेंसे जो जहर उत्पन्न होवे, उससे मत डरना और जो चीजें निकलें उनमें लालच कभी न करना. क्योंकि-लालचसे क्रोध उत्पन्न होता है॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! पुरुषोत्तम भगवान् इसतरह उन्हें आज्ञा कर, आप अंतर्द्धान होगये. क्योंकि-आप तौ स्वतंत्रगति और ईश्वर हैं ॥ २६ ॥ ब्रह्माजी और महादेव भगवान्को प्रणाम कर, अपने २ धाम गये और देवता बलिके पास गये ॥ २७ ॥

हमको संकटसे उबारोगे तो हम तुम्हारा अवसान मानेंगे और जब कभी काम पड़ेगा तब संकटसे तुमकोभी उबारेंगे. और भाषणसेही पहले सम्बध होता है सो विदितही है. ऐसी सांपकी बात सुन, मूसाने कहा कि-रात होने दो हम छेद करदेंगे तुम सुखीसे निकल आना. इतना कह, मूसा चुप हो रहा. पीछे जब रात हुई तब फिर सांपने कहा ऐमित्र ! तुम जल्दी इसमें छेद करो मैं निकल आऊं मेरेको भूंख बहुत लगी लगी है. इतना सुन, मूसाने ज्यों छेद किया त्यों वह निकला और मारे भूखोंके आलिंगनके बहानेसे उस मूसाहीको खागया.

नहीं जानते हैं इसलिये आपही देवता और ब्राह्मणोंके सुख होवे वैसा उपाय बताओ ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इसतरह ब्रह्मादिक देवतावोंने स्तुति की, तद स्तुति कियेहुए भगवान्‌ने, उनके हृदयका अभिप्राय जानकर, सब इंद्रियोंको नियममें रखकर, हाथ जोड़े खड़े ब्रह्मादिक देवतानको मेघसी गंभीर वाणीसे कहा ॥ १६ ॥ यदपि देवतानके ईश हरि भगवान् इस कार्यको इकले कर सकते थे, तौभी आपको समुद्रमथनआदि लीला करनी थी, इस लिये देवतानसे कहा ॥ १७ ॥ श्रीभगवान्

श्रीशुक उवाच ॥ एवं विरिंचादिभिरीडितस्तद्विज्ञाय तेषां हृदयं तथैव ॥ जगाद जीमूतगभीरया गिरा बद्धांजलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥ १६ ॥ एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ॥ विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हंत ब्रह्मन्नहो शंभो हे देवा मम भाषितम् ॥ शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः ॥ १८ ॥ यात दानवदैतेयैस्तावत्संधिर्विधीयताम् ॥ कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वो भव आत्मनः ॥ १९ ॥ अरयोऽपि हि संधेयाः सति कार्यार्थगौरवे ॥ अहिमूषकवद्देवा अर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २० ॥

बोले कि–हे ब्रह्माजी ! हे महादेव ! हे देवताओ ! जिस तरह तुम्हारा भला होवे वैसे मैं कहता हूं सो तुम सब सावधान होकर, सुनो ॥ १८ ॥ तुम जाओ और जबतक तुम्हारा उदय होवे तबतक दैवकी जिनपर अनुग्रह है, ऐसे दानव और दैत्योंके साथ संधी (मेल) करो ॥ १९ ॥ जो बड़ा काम निकालना हो तौ, शत्रुओंसेभी मेल कर लेना चाहिये और जब वह काम सिद्ध हो जाय तब पीछे मूसेके साथ जैसे सर्पने वर्ताव किया, वह वर्ताव कर लेना ॥ २० ॥

---

१ इसका भाव यह है कि–एक पिटारीमें एक सांप बन्द हो गया था और उसके अन्दर भूखोंसे मरता था निकलने न पाता था. और एक बाहर मूसा था. सो उस पिटारीसे बाहेर निकलनेके लिये सांपने मूसासे कहा कि–मित्र ! तुम इस पिटारीमें छेद कर दो तो मैं निकल आऊं. मूसाने कहा कि–हमारी तुम्हारी मित्रता काहेकी ? और सम्बन्ध काहेका ? सजातीय वैर तो भले है–सो हम अपने हाथों अपना काल नहीं बुला सके. सांपने कहा कि–मित्र ! लोककी ऐसी रीत है कि–जो जिसका उपकार करता है वह उसका प्रत्युपकार है इसलिये जो तुम हमको इसके अन्दरसे निकालोगे तो हमभी तुम्हारा प्रत्युपकार करेंगे. और अवसानमन्द रहेंगे और एकका एक संकट न काटे तो गुजर कैसे हो ? और जो तुम कहते हो कि–हमारी तुम्हारी मित्रता काहेकी ? तथा सम्वध काहेका ? सो मित्रता इसीतरह होती है कि–अभी तुम

है और अंतसमयमेंभी उसीमें रहेगा, घटका आदि, अंत और मध्यरूप जैसे मिट्टीही है, वैसे जगत्के आदि, अंत और मध्यरूप आपही हो, कारण यह कि–आप प्रधानसेभी पर हो॥ १०॥ आपके आधीन और आपकेही आश्रय रही जो माया तिससे आप इस जगत्को रच कर, उसमें पीछेसे प्रवेश करके रहे हो, अतएव विवेकी और शास्त्र जाननेवाले योग्य पुरुष सृष्टि हुए पीछेभी आपको अपने मनसे निर्गुण रहेही समझते हैं ॥ ११ ॥ जैसे काठमें मथन करनेसे अग्नि मिलती है और दोहनेसे गायोंमें घृत मिलता है, जोतनेसे पृथ्वीमेंसे अनाज मिलता है, उद्यममें व्यौपार आदि करनेसे आजीविका मिलती है और खोदनेसे पृथ्वीमेंसे जल मिलता

त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनु प्रविष्टः॥ पश्यंति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः॥ ११ ॥ यथाऽग्निमेधस्यमृतं च गोषु भुव्यन्नमंबुद्यमने च वृत्तिम् ॥ योगैर्मनुष्या अधियंति हि त्वां गुणेषु बुध्या कवयो वदंति ॥ १२ ॥ तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ॥ दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गांगमंभः॥ १३ ॥ स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला वयं यदर्थास्तवपादमूलम् ॥ समागतास्ते बहिरंतरात्मन्किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः॥ १४ ॥ अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ॥ किं वा विदामेश पृथग्विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमंत्रम् ॥ १५ ॥

है. वैसे विद्वानलोग देहादिकमें विचारशक्तिसे आपको पाते हैं और पाये पीछे इसीप्रकारका उपदेश किया करते हैं ॥ १२ ॥ हे नाथ ! हे पद्मनाभ ! जिनके दर्शनकी हमें बहुत दिनोंसे इच्छा लग रही थी, उन आपको–आज प्रत्यक्ष प्रगट हुए देख कर, दावानलसे दुःखी हाथी, जैसे गंगाजलको देखकर, सुखी हो जाता है, वैसे आज हम सब सुखी हुए हैं ॥ १३ ॥ हे अंतर्यामी ! हम सकल लोकपाल देवता जिस प्रयोजनसे आपके चरणमूलके शरण आये हैं, वह हमारा प्रयोजन आप सिद्ध करें, आप कि–जो सर्वके साक्षी हो, उनके सामने प्रगटरूपसे विनती करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ १४ ॥ मैं, महादेव, देवता आदि और दक्ष आदि प्रजापति कि–जो अग्निके विस्फुलिंगके समान आपसे जुदे प्रतीत होते हैं, वे हम सब अपने कल्याणको

श्यामवरन, परम उज्वल, कमलके गर्भकेसे अरुण नेत्र, ॥ ३ ॥ तपेहुए सुवर्णके समान पीले पीतांबरसे देदीप्यमान, प्रसन्न और सुंदर सब अंगयुक्त, सुंदरमुख, सुंदर भौंह ॥ ४ ॥ अमूल्य मणियोंसे जटित किरीट और भुजबंधसे शोभायमान, कानोंके आभरणकी कांतिसे देदीप्यमान जो कपोल तिनसे शोभायमान मुखकमल ॥ ५ ॥ कटिमेखला, कंकन, हार व नूपुरसे शोभायमान, कौस्तुभ आभरण धारण किये, वनमाला पहिरे, लक्ष्मीजीको धरे, ॥ ६ ॥ मूर्तिमान् सुदर्शनआदि अपने अस्त्रोंसे सेव्यमान,

तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ॥ प्रसन्नचारुसर्वांगीं सुमुखीं सुंदरभ्रुवम् ॥ ४ ॥ महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ॥ कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखांबुजाम् ॥ ५ ॥ कांचीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ॥ कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ॥ ६ ॥ सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् ॥ तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ॥ सर्वामरगणैः साकं सर्वांगैरवनिं गतैः ॥ ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ॥ अणोरणिम्नेऽपरिगणयधाम्ने महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥ रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोर्थिभिर्वैदिकतांत्रिकेण ॥ योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥ त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्त्वय्यंत आसीदिदमात्मतंत्रे ॥ त्वमादिरंतो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥

ऐसे सुंदर स्वरूप पुरुषोत्तम भगवान्‌को, पृथ्वीपर साष्टांग दंडवत् करते सब देवगणोंके संग ब्रह्मा और महादेव स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि–जन्म, स्थिति व नाशरहित, निर्गुण, अपार मोक्षसुखके समुद्ररूप, सूक्ष्मसेभी अतिसूक्ष्म, परिच्छेदरहितस्वरूप और महानुभाव आपको हम बारंबार प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥ हे पुरुषोत्तम ! कल्याणकी इच्छावाले पुरुष वेदोक्त और तंत्रोक्त प्रकारसे जिस स्वरूपका पूजन करते हैं वही यह आपका स्वरूप है. हे धाता ! आपके जगन्मय इस स्वरूपमें हमारे साथ तीनों लोकोंको मैं देखता हूं ॥ ९ ॥ यह जगत् आदिकालमें आपका स्वरूप कि–जो स्वतंत्र है उसीमें था, मध्यसमयमेंभी

क्लेशके देनेवाले, थोड़ा जिनमें सार है ऐसे और वास्तवमें व्यर्थही होते हैं, परंतु जो कर्म आपके अर्पण किये जाते हैं, वे ऐसे नहीं होते हैं ॥ ४७ ॥ थोड़ा और कर्मके आभासरूप कर्मभी जो ईश्वरके अर्पण किया जाय तौ व्यर्थ नहीं होता; क्योंकि–ईश्वर मनुष्योंके प्यारे, हित और आत्मरूप हैं ॥ ४८ ॥ जैसे पेंड़के मूलमें जल सींचनेसे उसके स्कंध और टहनियां स्वयं तृप्त हो जातीं हैं वैसे सबके आत्मा विष्णु भगवान्का आराधन करनेसे सबका आराधन हो जाता है ॥ ४९ ॥ जिनके काम तर्कणा करनेमें नहीं आते ऐसे, अनंत, निर्गुण और गुणोंके स्वामी व अभी सत्वगुणमें विराजमान, आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ॥ कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४८ ॥ यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ॥ एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यमनंताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ॥ निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च सांप्रतम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे ऽमृतमथने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ तेषामाविरभूद्राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥ तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ॥ नापश्यन्खं दिशः क्षोणीमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥ विरिंचो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ॥ स्वच्छां मरकतश्यामां कंजगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छठे अध्यायमें विष्णुभगवान् प्रगट हुए, तब देवतोंने स्तुति की. और भगवान्की सलाहसे दैत्योंमें शामिल हो, अमृतके वास्ते देवतोंने उद्यम किया; यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! देवतोंने इस प्रकार भगवान्की स्तुति की, तब एकसाथ हजारों सूर्य उदय हों वैसे, तेजवान् हरि भगवान् प्रगट हुए ॥ १ ॥ उसी तेजसे सब देवतोंकी आंखें मूंद गयीं, तासों आकाश, पृथ्वी के दिशायें कुछ नहीं दीखता था. अपना शरीरभी उन्हें नहीं दीखता था तौ फिर हरि भगवान्को तौ कहांसे देखें ? ॥ २ ॥ महादेवसहित भगवान् ब्रह्माजीको केवल उस स्वरूपका दर्शन हुआ, कैसा है वह स्वरूप ? कि–मरकतमणिके समान

शिरसे स्वर्ग विहारसे अप्सरायें प्रगट हुई हैं, वे महाविभूति भगवान् हमपै कृपा करो ॥ ४० ॥ जिनके मुखमेंसे ब्राह्मण और रहस्यरूप वेद, भुजासे क्षत्रिय और बल, ऊरू- (जंघावों) से वैश्य और निपुणता व चरणोंसे शूद्र व सेवा प्रगट हुए हैं, वे महाविभूति भगवान् हमपै कृपा करो ॥ ४१ ॥ जिनके अधर होंठसे लोभ, ऊपरके होंठसे प्रेम, नासिकासे कांति, स्पर्शसे पशुओंके हितरूप काम भौंहसे यमराज, पलकोंसे काल प्रगटहुआ है, वे महाविभूति भगवान् हमपै प्रसन्न होवें ॥ ४२ ॥ पंचमहाभूत काल, कर्म, गुण और लौकिक प्रपंच कि-जिनका निरूपण करना अशक्य जानकर, विद्वान्लोग तज देते हैं, यह सब प्रपंच

विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च ॥ ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१ ॥ लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युतिर्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ॥ भ्रुवोर्यमः पक्ष्म भवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥ द्रव्यं वयः कर्मगुणान्विशेषं यद्योगमायाविहितान्वदंति ॥ यदुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः सः महाविभूतिः ॥ ४३ ॥ नमोऽस्तु तस्मा उपशांतशक्तये स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ॥ गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिर्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥ ४४ ॥ स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ॥ प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखांबुजम् ॥ ४५ ॥ तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ॥ कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥ ४६ ॥ क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा ॥ देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७ ॥

जिनकी योगमायासे रचाहुआ कहते हैं, वे महाविभूति भगवान् हमपै कृपा करें ॥ ४३ ॥ शांतशक्ति, स्वरूपानंदके लाभसे परिपूर्णस्वरूप, मायारचित विषयोंमें वृत्तियोंसे आसक्त न होते, अतएव वायुकीसी लीला धारण करनेवाले परब्रह्मरूप आपको हमारा प्रणाम है ॥ ४४ ॥ हमारे आपके दर्शनकी इच्छा लग रही है, सो जिसतरह हमारी इंद्रियोंसे आपके दर्शन हो जायं वैसे मंदहास्यसहित आपके मुखकमलका हमें दर्शन दीजिये ॥ ४५ ॥ हे विभु ! समय समयपर इच्छानुसार धारण कियेहुए उन उन अवतारोंसे आप स्वयं हमसे न बन सकें ऐसे २ काम करते हो ॥४६॥ विषयोंमें लंपटी पुरुष जो कर्म करते हैं वे बहुत

हाविभूति भगवान् हमपै प्रसन्न होवें ॥ ३४ ॥ धनको उत्पन्न करनेवाला, यागादिक कर्मकी प्रवृत्तिके लिये प्रगट होनेवाला और उदरके अंदर जाठराग्निरूपसे खाये पिये पदार्थोंको पचानेवाला अग्नि जिनका मुख है, वे महाविभूति भगवान् हमपै प्रसन्न होवें ॥ ३५ ॥ अर्चिरादि मार्गका देवता, वेदमय, परब्रह्मकी उपासनाका धाम, मुक्तिका द्वार, अमृतरूप और मृत्युरूप यह सूर्य जिनका नेत्र है, वे महाविभूति भगवान् हमपै प्रसन्न होवें ॥ ३६ ॥ स्थावर-जंगमका प्राणरूप, इंद्रिय, मन और शरीरकी शक्तिरूप और जैसे सेवकलोग चक्रवर्ती राजाका अनुसरण

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकांडनिमित्तजन्मा ॥ अंतःसमुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३५ ॥ यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ॥ द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३६ ॥ प्राणादभूद्यस्य चराचराणां प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ॥ अन्वास्मसंम्राजमिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३७ ॥ श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ॥ प्राणेंद्रियात्माऽसुशरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३८ ॥ बलान्महेंद्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणाद्विरिंचः ॥ खेभ्यश्च छंदांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३९ ॥ श्रीर्वक्षसः पितरश्छायायाऽसन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ॥ द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥

करके वर्ते हैं वैसे ये हम सब जिसको अनुसरण करके, वर्तते हैं, वह वायु जिनके प्राणसे उत्पन्न हुआ है, वे महाविभूति भगवान् हमपै कृपा करें ॥ ३७ ॥ जिनकी श्रोत्र इंद्रियसे तो दिशायें, हृदयसे देहके छिद्र और नाभिसे प्राण, इंद्रियां, मन, नागकूर्मआदि प्राण और शरीर इनका आश्रयभूत आकाश प्रगट हुआ है, वे महाविभूति भगवान् हमपै कृपा करें ॥ ३८ ॥ जिनके बलसे इंद्र, कृपासे देवता, क्रोधसे महादेव, बुद्धिसे ब्रह्मा, छिद्रोंमेंसे वेद और ऋषि तथा उपस्थसे प्रजापति प्रगट हुआ है, वे महाविभूति भगवान् हमपै कृपा करें ॥ ३९ ॥ जिनके वक्षःस्थलमेंसे लक्ष्मी, छायासे पितर, स्तनसे धर्म, पीठसे अधर्म,

ज्ञानैकस्वरूप, प्रकृतिसे पर, आदृश्य, निर्विकल्प और देश व कालके परिच्छेदरहित, जो परमात्मा भक्तोंकी रक्षा करनेके वास्ते गरुड़पर विराजे हैं और धीरपुरुष योगरूप साधनसे जिनकी उपासना करते हैं उन्हे हम प्रणाम करते हैं ॥ २९ ॥ जिसकी मायासे मोहित हो कर, यह जन आत्मस्वरूपको भूल जाय है और जिस परमात्माकी मायाको कोईभी तिर नहीं सक्ता है, जिसने माया और मायाके गुणोंको जीत लिया है, जो सकलपदार्थोंमें समभावसे रहे हैं, उन परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं॥ ३० ॥ ये हम देवता और ऋषि, जिनके प्रिय देहरूप सत्वगुणसे प्रगट हुए हैं, वेभी भीतर और बाहिर प्रगट रहतेभी जिनके सूक्ष्मरूपको नहीं जान

य एकवर्ण तमसः परं तदलोकमव्यक्तमनंतपारम्॥ आसांचकारोपसुपर्णमेनमुपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥ न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो मुह्यति वेदनार्थम् ॥ तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरंतम् ॥ ३० ॥ इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिरंतराविः ॥ गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥ ३१ ॥ पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ॥ स वै महापूरुष आत्मतंत्रः प्रसीदतां ब्रह्ममहाविभूतिः ॥ ३२ ॥ अंभस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिध्यंति जीवत्युत वर्धमानाः ॥ लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३३ ॥ सोमं मनो यस्य समामनंति दिवौकसां वै बलमंध आयुः ॥ ईशो नगाना प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३४ ॥

ते हैं; तब रजोगुणी और तमोगुणी दैत्य आदि तो कहांसे जानें ? ॥ ३१ ॥ आपकी बनायीहुई यह पृथ्वी कि–जिसमें जरायुज, अंडज, स्वेदज व उद्भिज यह चारप्रकारकी जीवोंकी सृष्टि रही है, वह पृथ्वी जिनके चरणरूप है, वे स्वतंत्र, बड़े ऐश्वर्यवाले महापुरुष परमात्मा हमपै कृपा करें ॥ ३२ ॥ तीनों लोक और लोकपाल जिस जलसे उत्पन्न होते हैं जीते हैं और बढ़ते हैं, वह उदारशक्ति जल जिनका वीर्यरूप है, वे महाविभूति परमात्मा हमपै प्रसन्न होवें ॥ ३३ ॥ देवताओंका अन्नरूप, अतएव बल और आयुरूप वृक्षोंका स्वामी और प्रजाको बढ़ानेवाला यह चंद्रमा जिनका मन है, वे म-

समय २ पर सत्व, रज, तम इन तीनों गुणोंको धारण करता है ॥ २२ ॥ देहधारियोंके कल्याणके अर्थ सत्वगुण धारण करनेवाले उन हरि भगवान्‌का अभी यह स्थिति और पालन करनेका समय है इसलिये जगद्‌गुरु हरिके आपन शरण चलें, सो देवतोंके प्यारे वे भगवान् निजजन जो आपन हैं उनको अवश्य सुख करेंगे " ॥ २३ ॥ महाराज ! ब्रह्माजी देवतानके साथ इसतरह सलाह मिलाय, उनको संग ले, लोकालोकसे पर जो अजित भगवान्‌का स्थान था वहां गये ॥ २४ ॥ हे राजा ! जिनके विषयमें पहले कुछ सुना था उन अदृष्टस्वरूप भगवान्‌की, ब्रह्माजी एकचित्त हो, वैदिकवाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् ॥ तस्माद्व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सहदेवैररिंदम ॥ अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥ २४ ॥ तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो ॥ स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेंद्रियः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अविक्रियं सत्यमनंतमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ॥ मनोऽग्रयानं वचसा निरुक्तं नमाम हे देव वरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥ विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थेंद्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ॥ छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥ २७ ॥ अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पंचदशारमाशु ॥ त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥ २८ ॥

ब्रह्माजीने स्तुति की कि–देवतोंमें उत्तम आप कि–जो सत्य, विकाररहित, अनंत, अनादि, सर्वव्यापक, उपाधिरहित, अतर्क्य मनसेभी अधिक वेग, वाणीके अविषय और वरेण्यरुप हो, तिन्हें मैं प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ प्राण, मन, बुद्धि और अहंकारके ज्ञाता, विषय और इंद्रियरुपसे प्रतीत होते, अज्ञानरहित, देहरहित अक्षर, आकाशके समान व्यापक, तीन युगोंमें प्रगट होनेवाले, जीवके पक्षमें रहनेवाली जो विद्या और अविद्या तिनसे रहित, आपके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ २७ ॥ मायसे प्रेरित, मनोमय, पंद्रह (दश इंद्रिय व पांच प्राण) आरावाला, शीघ्रगामी, तीन (गुण) नाभीवाला, बिजुलीके समान चंचल, आठ (प्रकृति) चक्रधारावाला जो यह जीवके देहादिकरुप चक्र है उसके धुरीरुप सत्य जो आप हो तिनके मैं शरण आया हूं ॥ २८ ॥

महाराज ! जब दुर्वासांके श्रापसे इंद्रसहित सब त्रिलोकी निर्धन होगयी और यागआदि सब कर्म बंद होगये ॥ १६ ॥ यह सब देखकर, इंद्र, वरुणआदि सब देवतावोंने मिलकर, बहुत कुछ सलाह की, परंतु कुछ पत्ता नहीं लगा ॥ १७ ॥ तब सब मिलकर, सुमेरुपर्वतके शिखरपर ब्रह्माजीकी सभामें गये और प्रणाम करके, उन्होंने सब वृत्तांत ब्रह्माजीके आगे निवेदन किया ॥ १८ ॥ पर और भगवान् ब्रह्माजीने इंद्र, वायु, आदि देवतानको निःसत्व और तेजहीन व लोकोंको अमं-

यदा दुर्वाससः शापात्सेंद्रा लोकास्त्रयो नृप ॥ निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥ १६ ॥ निशाम्यैतत्सुरगणा महेंद्रवरुणादयः ॥ नाध्यगच्छन्वयं मंत्रैर्मंत्रयंतो विनिश्चयम् ॥ १७ ॥ ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः ॥ सर्वं विज्ञापयांचक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १८ ॥ स विलोक्येंद्रवाय्वादीन्निःसत्त्वान्विगतप्रभान् ॥ लोकानमंगलप्रायानसुरा न यथा विभुः ॥ १९ ॥ समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ॥ उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २० ॥ अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः ॥ तस्यावतारांशकला विसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१ ॥ न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः ॥ अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥ २२ ॥

गलमय और दैत्योंको सत्वसहित और तेजवान देखकर ॥ १९ ॥ मनसे परपुरुष भगवान्का स्मरण करते एकाग्र चित्तके साथ प्रफुल्लितमुख होकर, देवोंसे कहा कि– ॥ २० ॥ मैं (ब्रह्मा) महादेव, तुम और दैत्यआदि, मनुष्य, पशुपक्षी, वृक्ष और स्वेदज ये सब जिस परमात्माके पुरुषावतारकी अंशकलासे प्रगट हुए हैं. उसी अविनाशी परमेश्वरके आपन सब शरण चलें ॥ २१ ॥ उस परमात्माके न तो कोई मारनेके योग्य है और न कोई रक्षा करनेकी योग्य है, न तो उसके कोई उपेक्षा करनेयोग्य पक्ष है और न उसके आदर करनेयोग्य पक्ष है, यानी वह सबमें समदृष्टि है, तौभी सृष्टि, स्थिति, संहारके वास्ते वह

---

१ इसकी ऐसी कथा है कि–कोई समय रास्तेमें जाते हुवे इन्द्रको देख, दुर्वासा मुनिने अपने गलेकी माला उनको दी. उस मालामें यह गुण था कि– 'जो उस मालाको पहरे वह सब देवतावोंमें प्रथमपूज्य होवे. सो ऐश्वर्यके मदसे मत्त इन्द्रने उस मालाका अनादर करके, ऐरावतहाथीके मस्तकमें पहराय दी. वह मतवाला हाथी उस मालाको अपने पावोंसे कुचल डालते भया. तब क्रुधित दुर्वासामुनिने उन इन्द्रको शाप दिया कि–तुम तीनों लोकोंसहित निर्धन हो जावो.

वहांभी वैराजकी संभूति नाम स्त्रीमें जगत्पति भगवान्के अंशसे अजित नाम अवतार हुआ ॥ ९ ॥ जिन्होंने समुद्रमथन करके, देवताओंको अमृत पिलाया और कच्छपमूर्ति धारण करके, जलमें चक्कर खाते मंदर पर्वतको धारण किया ॥ १० ॥ परीक्षितने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! जिसतरह भगवान्ने क्षीरसमुद्रका मथन किया जिस वास्ते आपको कच्छपमूर्ति धारण कर, मंदरपर्वत धारण करना पड़ा ॥ ११ ॥ और जिसतरह देवताओंको अमृत मिला. यह और इसके सिवाय औरभी जो कुछ भगवत्संबंधी अद्भुत

तत्रापि देवः संभूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः ॥ अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९ ॥ पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ॥ भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मंदरः ॥ १० ॥ राजोवाच ॥ यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ॥ यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधारांबुचरात्मना ॥ ११ ॥ यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किं चान्यदभवत्ततः ॥ एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥ त्वया संकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतांपतेः ॥ नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ संपृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ॥ अभिनंद्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः ॥ गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥ १५ ॥

चरित्र हो सो, आप कृपा करके, कहो ॥ १२ ॥ आप जो भक्तपति भगवान्की महिमा कहते हो, उससे बहुत दिनोंसे तापके मारे तपाहुआ मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ १३ ॥ सूतजीने कहा कि-हे शौनकादिक ऋषियो ! इसतरह व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीसे राजा परीक्षितने प्रश्न किया, तद राजाकी प्रशंसा करके, श्रीशुकदेवजी भगवान्का चरित कहने लगे ॥ १४ ॥ श्रीशुदेवजीके बोले कि-जब युद्धमें दैत्योंके तीक्ष्ण शस्त्रोंसे देवतालोग मरने और प्राणमुक्त होकर, पृथ्वीपै पड़कर, पीछे बिलकुल नहीं उठे ॥ १५ ॥

"अब आठ अध्यायोंमें अमृतमथनका वर्णन होगा जिस प्रसंगमें भगवान्‌को अपने भक्तोंके पक्षपातसे स्त्रीरूप धारण करना पड़ा" तहां पांचवें अध्यायमें पांचवें और छठे मनुका वर्णन होगा और ब्राह्मणके श्रापसे लक्ष्मीहीन देवताओंने भगवान्‌की स्तुति की–यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे राजा ! पापोंका नाश करनेवाला गजेंद्रमोक्षरूप हरि भगवान्‌का पवित्र चरित्र आपसे कहा, अब रैवत नाम मन्वंतर सुनो ॥ १ ॥ पांचवें तामसनाम मनुके–भाई रैवत नाम मनु हुए, उनके अर्जुन-आदि और बलिविंध्यआदि पुत्र हुए ॥ २ ॥ महाराज ! उसकाल विभु नाम इंद्र, भूतरयआदि देवता और हिरण्यरो-

श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम् ॥ गजेंद्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वंतरं शृणु ॥ १ ॥ पंचमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ॥ बलिविंध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥ विभुरिंद्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ॥ हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३ ॥ पत्नी विकुंठा शुभ्रस्य वैकुंठैः सुरसत्तमैः ॥ तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुंठो भगवान्स्वयम् ॥ ४ ॥ वैकुंठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ॥ रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥ तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ॥ भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥ ६ ॥ षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ॥ पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥ इंद्रो मंत्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ॥ मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥

मा, वेदशिरा और ऊर्ध्वबाहुआदि सप्तर्षि हुए ॥ ३ ॥ शुभ्रकी विकुंठानाम स्त्रीमें वैकुंठ नाम श्रेष्ठ देवतावोंके साथ अपनी कलासे स्वयं वैकुंठ भगवान् उसके यहां प्रगट हुए ॥ ४ ॥ जिन्होंने लक्ष्मीजीकी प्रार्थनासे लक्ष्मीजीको प्रसन्न रखनेके लिये जगद्वंदित वैकुंठ नाम लोक बनाया ॥ ५ ॥ उन वैकुंठ भगवान्‌का प्रभाव और परम उत्कृष्ट गुणोंका वर्णन कर आया हूं महाराज ! जो विष्णु भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करना चाहता है, वह पृथ्वीके रजःकण गिनना चाहता है ॥ ६ ॥ छठे चक्षुषके पुत्र चाक्षुष नाम मनु हुआ, उनके पुरु, पुरुष, सुद्युम्नआदि पुत्र हुए ॥ ७ ॥ महाराज ! वहां मंत्रद्रुम नाम इंद्र आप्यआदि देवगण और हविष्मत् व वीरकआदि सप्तर्षि हुए ॥ ८ ॥

वन, वेत, कीचक, बांस झाड़ी, कल्पवृक्ष ॥ १७ ॥ ब्रह्मा, महादेव और मेरे रहनेके धाम ये पर्वतके शिखर, मेरा प्यारा घर क्षीरससुद्र, देदीप्यमान श्वेतद्वीप, ॥ १८ ॥ श्रीवत्सचिन्ह, कौस्तुभमणि, वैजयंतीमाला, मेरी कौमोदकी नाम गदा, सुदर्शनचक्र, पांचजन्यशंख, पक्षिराज गरुड़, ॥ १९ ॥ मेरे सूक्ष्म अंश शेषजी और मेराही जिसके आधार है ऐसी देवी लक्ष्मी, ब्रह्माजी, नारद-ऋषि, महादेव, प्रल्हाद, ॥ २० ॥ मत्स्य, कूर्म, वराहआदि मेरे अवतारोंके कियेहुए परमपवित्र मेरे चरित्र, सूर्य, चंद्र, अग्नि, ॥ २१ ॥ ओंकार, सत्य, माया, गौ, ब्राह्मण, भक्तिलक्षण धर्म, दक्षकी कन्यायें जो कि-धर्म, चंद्रमा और कश्यपजीकी स्त्रियां

शृंगाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ॥ क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥ १९ ॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ॥ सुदर्शनं पांचजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १९ ॥ शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम् ॥ ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥ २० ॥ मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ॥ कर्माण्यनंतपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥ २१ ॥ प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम् ॥ दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥ २२ ॥ गंगां सरस्वतीं नंदां कालिंदीं सितवारणम् ॥ ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥ २३ ॥ उत्थायापररात्रांते प्रयताः सुसमाहिताः ॥ स्मरंति मम रूपाणि मुच्यंते ह्येनसोऽखिलात् ॥ २४ ॥ ये मां स्तुवंत्यनेनांग प्रतिबुध्य निशात्यये ॥ तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् ॥ हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० म० अ० स्कंधे गजेंद्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥

हैं, ॥ २२ ॥ गंगा, सरस्वती, नंदा, यमुना, ऐरावतहाथी, ध्रुव, सप्तर्षि और पवित्रकीर्ति मनुष्य ॥ २३ ॥ इन सब मेरी विभूतियोंका जो लोक पिछली रातमें उठ कर, एकाग्रचित्त हो, नियम धारण कर, स्मरण करें, वे सब पापोंसे मुक्त हो जांय ॥ २४ ॥ हे अंग ! जो लोग पिछली रातमें जाग्रत होकर, इस गजेंद्रमोक्षसे मेरी स्तुति करें, उनको अंतकालमें मैं निर्मल बुद्धि देता हूं ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-भगवान् इसतरह आज्ञा कर, शंख बजाय, देवताओंकी सेनाको आनंदित करते गरुड़पर सवार हुए ॥ २६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥

असाधु, दुरात्मा और अकृतबुद्धि ब्राह्मणोंका अपमान करता है और हाथीकी तरह स्तब्धबुद्धि है, इसलिये इसे हाथीकी योनि
मिलनी चाहिये सो हाथीही होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज! इसतरह श्राप देकर, अगस्त्य मुनि अपने शिष्योंको साथ ले,
चले गये और इंद्रद्युम्न राजाभी उस श्रापको अपने प्रारब्धसे प्राप्त विचारता, अपनी स्मृतिकी नाश करनेवाली हाथीकी योनिको
प्राप्त हुआ. परंतु हरि भगवान्‌की सेवाके प्रतापसे हाथीकी योनिमेंभी हरिका स्मरण बना रहा ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसतरह पद्म-
नाभ भगवान् गजराजको ग्राहके फंदसे छुड़ाय, उसे अपना पार्षद बनाय, अपने साथ ले, गरुड़पर विराजकर, अपने अद्भुत

श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृपसानुगः ॥ इंद्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधार-
यन् ॥ ११ ॥ आपन्नः कौंजरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ॥ हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृ-
तिः ॥ २२ ॥ एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभस्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ॥ गंधर्वसिद्धविबु-
धैरुपगीयमानकर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥ १३ ॥ एतन्महाराज तवेरितो मया कृष्णानु-
भावो गजराजमोक्षणम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥ १४ ॥
यथाऽनुकीर्तयंत्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः ॥ शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशांतये ॥ १५ ॥ इद-
माह हरिः प्रीतो गजेंद्रं कुरुसत्तम ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानु-
वाच ॥ ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकंदरकाननम् ॥ वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥ १७ ॥

धामको पधारे. उस समय गंधर्व, सिद्ध और देवता अपना यश गा रहे थे ॥ १३ ॥ महाराज ! यह गजेंद्रमोक्षरूप भगवान्‌का
प्रभाव मैंने आपसे कहा है. हे राजा ! जो इसे श्रवण करें, उन्हें स्वर्ग और यशकी प्राप्ति होवे. कलियुगके कल्मष दूर हो जायं.
और दुःस्वप्नका दोष जाता रहे ॥ १४ ॥ इसीलिये जो द्विजाति लोग अपना कल्याण चाहते हैं, वे प्रातःकालमें जल्दी उठ,
पवित्र हो, दुःस्वप्नआदिकी शांतिके निमित्त इस गजेंद्रमोक्षका कीर्तन करते हैं ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! सब लोकोंके सुनते सर्व
प्राणीमय हरि भगवान्‌ने प्रसन्न होकर, गजराजसे यह कहा ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–मैं, तू, यह सरोवर, पर्वत, गुफायें,

चारण और सिद्ध ये पुरुषोत्तम भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ जो ग्राह था वह तौ तुर्तही देवलऋषिके श्रापसे मुक्त हो, परम अद्भुत स्वरूप धारण कर, 'हूहू' नाम उत्तम गंधर्व बना ॥ ३ ॥ और उत्तमश्लोक, अव्यय यशके धाम और कीर्तन करने योग्य जिनकी उत्तम कथा है ऐसे, हरि भगवान्‌को शिरसे प्रणाम कर, भगवान्‌का यश गाने लगा ॥ ४ ॥ भगवान्‌ने उसपै अनुग्रह किया, तद् वह परिक्रमा दे, प्रणाम कर, पापमुक्त हो, लोकोंके देखते २ अपने लोकको चला गया ॥ ५ ॥ गजराजके भगवान्‌का स्पर्श होतेही उसके अज्ञानके बंधन कट गये और भगवान्‌के चतुर्भुज स्वरूपको प्राप्त हुआ और पीतांबर धारण

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ॥ मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गंधर्वसत्तमः ॥ ३ ॥ प्रणम्य शिरसाऽधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ॥ अगायत यशोधाम कीर्त्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥ सोऽनुकंपित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥ लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥ गजेंद्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबंधनात् ॥ प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥ स वै पूर्वमभूद्राजा पांड्यो द्रविडसत्तमः ॥ इंद्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥ स एकदाऽऽराधनकाल आत्मवान्गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ॥ जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥ यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ॥ तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९ ॥ तस्मा इमं शापमदादसाधुरयं दुरात्माऽकृतबुद्धिरद्य ॥ विप्रावमंता विशतां तमोंधं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥ १० ॥

किया ॥ ६ ॥ यह गजराज पूर्वजन्ममें पांडुदेशका राजा इंद्रद्युम्न इस नामसे प्रसिद्ध था और भगवान्‌का व्रत करनेमें तत्पर और द्रविड़देशमें उत्तम गिना जाता था ॥ ७ ॥ मलयाचलमें आश्रय बनाकर, यह स्थिरचित्त इंद्रद्युम्न जटा धारण किये, तपस्या करता, एक समय परमेश्वरके आराधनके समयमें स्नान कर, मौन धर, भगवान्‌की पूजा कर रहा था ॥ ८ ॥ वहां दैवइच्छासे बड़े यशस्वी महामुनि अगस्त्य, अपने शिष्यगणको संग लिये आ निकले, जिसने पूजाआदि कुछभी सत्कार नहीं किया है ऐसे एकांतमें चुपचाप बैठेहुए राजाको देखकर, मुनिको क्रोध आया ॥ ९ ॥ और इस इंद्रद्युम्न राजाको श्राप दिया कि–' यह

ब्रह्मादिक देवता उसे छुड़ानेको नहीं गये, तब सर्वस्वरूप होनेसे सर्वदेवमय हरि भगवान् वहां प्रगट हुए ॥ ३० ॥ जगत्के निवास हरि भगवान् उसे इसतरह पीड़ित जान, उसकी कीहुई स्तुति सुन कर, त्वरासे वेदमय गरुड़के ऊपर विराज, चक्र हाथमें ले, जहां गजराज था, वहां तुर्त पहुंचे और उससमय स्तुति करनेवाले देवताभी संग थे ॥ ३१ ॥ सरोवरके अंदर महाबलवान् ग्राहसे पकड़ाहुआ वह दुःखी गजराज चक्र उठाये हरि भगवान्को आकाशमें देख, कमलसहित सूंड़को ऊंची उठाकर, बड़े कष्टसे पुकारने लगा कि–" हे नारायण ! हे सकलके गुरु ! हे भगवन् ! आपको मेरा प्रणाम है " ॥ ३२ ॥ भगवान्ने उसे दुःखी

तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सहसंस्तुवद्भिः ॥ छंदोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेंद्रः ॥ ३१ ॥ सोंऽतः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ॥ उत्क्षिप्य सांबुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥ तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसाऽवतीर्य स ग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ॥ ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेंद्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे गजेंद्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तदा देवर्षिगंधर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥ मुमुचुः कुसुमासारं शंसंतः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥ नेदुर्दुंदुभयो दिव्या गंधर्वा ननृतुर्जगुः ॥ ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

देखा और गरुड़को पहुंचता न देखा, तौ तत्काल गरुड़से नीचे उतर, ग्राहसहित उस गजराजको कृपा कर, सरोवरसे बाहिर निकाल लिया और चक्रसे ग्राहका मुख फाड़कर, देवतानके देखते हरिभगवान्ने उसे ग्राहके फंदसे छुड़ाया ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ चौथे अध्यायमें ग्राह तौ पीछा गंधर्वदेह प्राप्त हुआ और गजराजको अपना पार्षद बनाकर, हरिभगवान् अपने साथ वैकुंठ ले गये यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–तब देवता, ऋषि, गंधर्व, ब्रह्माजी और महादेवआदि सब भगवान्के चरित्रकी प्रशंसा करते फूल बरसाने लगे ॥ १ ॥ दिव्य दुंदुभि बाजने लगे, गंधर्व गाने और नृत्य करने लगे, ऋषि

और न सदसत् यानी कार्यकारणरूप है, किंतु निषेध करते जो शेष रहता है और जो मायाशक्तिसे सर्वात्मक है, उस परमात्माकी जय होवे, अर्थात् मुझे छुड़ानेके वास्ते प्रगट होवें ॥ २४ ॥ इस ग्राहसे मेरा छुटकारा हो जाय तो फिर मैं जीना नहीं चाहता, क्योंकि भीतर और बाहिर अज्ञानहीसे भरे इस हाथीके शरीरसे मेरे क्या प्रयोजन है ? मैं तो अज्ञान कि-जो आत्मस्वरूपको ढकनेवाला है और जिसका कालसेभी नाश नहीं होता उससे छूटना चाहता हूं ॥ २५ ॥ जो भगवान् जगत्के रचनेवाले, जगद्रूप और जगत्से जुदे, जगत्से रमण करनेवाले, जगत्के आत्मा, अजन्मा और परमपदरूप हैं उन्हें मैं मोक्षकी अभि-

जिजीविषे नाहमिहामुया किमंतर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ॥ इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥ सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ॥ विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥ योगरंधितकर्माणो हृदि योगविभाविते ॥ योगिनो यं प्रपश्यंति योगेशं तं नतोस्म्यहम् ॥ २७ ॥ नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ॥ प्रपन्नपालाय दुरंतशक्तये कदिंद्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥ नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याऽहं धिया हतम् ॥ तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवंतमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं गजेंद्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिंगभिदाऽभिमानाः ॥ नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥

लाषासे प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ योगसे जिनके कर्म भस्म हो गये हैं, ऐसे योगीजन योगसे शुद्धहुए अंतःकरणमें जिन्हें देखा करते हैं, उन योगेश्वर भगवानको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २७ ॥ जो सर्वइंद्रियोंके विषय-रूपसे प्रतीत होते हैं व शरणागत लोकोंकी रक्षा करते हैं और जिनके मार्गको दुष्ट इंद्रियवाले लोक कभी नहीं पहुंच सक्ते हैं, जो असह्य वेगवाली तीन शक्तियोंके नियंता हैं, उन अपारशक्ति आपको मैं वारंवार प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ जिनकी मायाके कारण यह पुरुष देहाभिमानरूप आवरणसे ढकेहुए निज स्वरूपको नहीं जानता है, उन अपार महिमावाले भगवान्के मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह जब गजराजने किसी देवताका नाम न लेते स्तुति की, तो जुदे जुदे देहमें अभिमान रखनेवाले ये

व जन इनमें आसक्त पुरुष, जिनको कभी नहीं पहुँच सक्ते हैं और देहाभिमानरहित पुरुष अपने हृदयमें जिनका चिंतवन करते हैं ऐसे, गुणसंगरहित ज्ञानस्वरूप भगवान् ईश्वरको मेरा प्रणाम है ॥ १८ ॥ धर्म, अर्थ, काम व मोक्षकी इच्छासे जो आपका भजन करते हैं, उन्हें मनवांछित फल मिलता है इतनाही नहीं, किंतु मनमें विना विचारे सुख और अमरदेहभी प्राप्त होता है, वे पूर्ण दयालु भगवान् मुझे इस फंदसे छुड़ावें ॥ १९ ॥ जो पुरुष सर्वज्ञ व मुक्त पुरुषोंकी सेवा करते हैं वे भगवान्के एकांतभक्त, कुछभी पदार्थ नहीं चाहते हैं. किंतु अतिअद्भुत और परममंगल भगवान्का चरित गाते आनंदके समुद्रमें मग्न रहते हैं ॥ २० ॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजंत इष्टां गतिमाप्नुवंति॥ किंत्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥ एकांतिनो यस्य न कंचनार्थं वांच्छंति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ॥ अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं गायंति आनंदसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥ तमक्षरं ब्रह्मपरं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ॥ अतींद्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनंतमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१॥ यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ॥ नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥ यथाऽर्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यांति संयांत्यसकृत्स्वरोचिषः ॥ तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥ २३ ॥ स वै न देवासुरमर्त्यातिर्यङ्ङ स्त्री न षंढो न पुमान्न जंतुः ॥ नायं गुणः कर्म न सन्नचासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥

उन अक्षर, परब्रह्म, परमेश्वर, अव्यक्त, आत्मविचारसे गम्य, इंद्रियोंके अगोचर, सूक्ष्म और अतिदूरके समान रहनेवाले, अनंत, आद्य परिपूर्ण आपकी मैं स्तुति करता हूं ॥ २१ ॥ जिसकी अतिअल्पकलासे नामरूपके भेदद्वारा ब्रह्मादिक देवता व चराचर लोक और वेद ये सब रचे गये हैं उस परमात्माका जय हो ॥ २२ ॥ जैसे अग्निकी ज्वालायें अग्निमेंसे निकलती हैं और पीछे अग्निमेंही लीन हो जाती हैं और जैसे सूर्यकी किरणें सूर्यमेंसे निकल, पीछी उसीमें लीन हो जाती हैं, वैसे बुद्धि, मन इंद्रियां और अनेक प्रकारके शरीर जिसके स्वयंप्रकाश स्वरूपमेंसे बारंबार आविर्भाव होते हैं और पीछे उसी स्वरूपमें तिरोभाव होते हैं ॥ २३ ॥ वह परमेश्वर देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्त्री, नपुंसक, पुरुष कै जंतु कुछभी नहीं है. यह ईश्वर न तौ गुण है,

शांत, घोर और मूढ, सत्वादिक गुणोंके धर्मका अनुकरण करनेवाले, विशेषरहित, साम्यरूप, ज्ञानघन आपको मेरा प्रणाम है ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ और सर्वके अध्यक्ष, साक्षी, पुरुष, स्वयंप्रकाश और प्रकृतिकेभी मूलकारण आपको मेरा प्रणाम है॥ १३ ॥ सबकी इंद्रियोंके द्रष्टा, सबकी इंद्रियोंके विषयोंकी वृत्तियोंके ज्ञापक, प्रतिबिंब जैसे बिंबको जाहिर करता है वैसे असत्‌रूप अहंकारादिक जिनको जाहिर करते हैं और पदार्थमात्रमें सद्रूपतासे प्रकाशे हैं, उन आपको मेरा प्रणाम है॥ १४॥ सबके कारण और स्वयं कारणरहित, अद्भुत कारण व सर्वशास्त्र व वेदोंके महासागररूप, उत्तम पुरुषोंके आश्रय, मोक्षरूप आपको मेरा बारंबार प्रणाम है॥ १५॥

नमः शांताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ॥ निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ॥ पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥ सर्वेंद्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय ॥ सर्वागमाम्नाय महार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय॥ १५॥ गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ॥ नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥ माद्दक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ॥ स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥ आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुणसंगविवर्जिताय॥ मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥

जो आप गुणरूप अरणिसे ढकेहुए ज्ञानाग्निरूप हो, जिन आपका मन सृष्टिके आरंभमें गुणोंके क्षोभसे बहिर्वृत्तिवाला होता है, जो आप आत्मस्वरूपकी भावनासे विधिनिषेधका त्याग करनेवाले ज्ञानीलोकोंमें स्वयंप्रकाशी हो, उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥ मैं जैसे शरणागत पशुका पाशबंधन छुडानेवाले, सब प्रकारसे मुक्त, परमकारुणिक, आलस्यरहित, परिच्छेदरहित, अपने अंतर्यामी स्वरूपसे सर्वप्राणियोंके मनमें प्रकाशते, साक्षीरूप आपको मेरा प्रणाम है ॥ १७ ॥ देह, पुत्र, कुटुंब, घर, धन

जबकालसे प्रभावसे लोक, लोकपाल और सबके कारण महत्तत्त्वादिक ये सब लीन हो जाते हैं तब गहन और गंभीर केवल तम ही रहता है, तमके सिवाय और कुछ नहीं रहता, उस तमसे परे जो विराजे है वह व्यापक परब्रह्म है॥ ५॥ जिसके पदको देवताभी नहीं जानते तौ दूसरा कौन प्राणी जानने और कहनेको योग्य होवे ? जैसे स्वांग बनाकर, चेष्टा करनेवाले नटका चरित्र नहीं जाना जाता वैसे जिसका चरित्र जाननेमें नहीं आ सकता वह मेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥ जिसके परममंगल पदके दर्शनकी इच्छासे प्राणीमात्रमें आत्मदृष्टि रखनेवाले, सबके सुहृद उत्तम साधु मुनिलोग संग छोड़कर, वनमें अखंड ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, वह

कालेन पंचत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ॥ तमस्तदासीद्गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥ न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जंतुः पुनः कोऽर्हति गंतुमीरितुम् ॥ यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥ दिदृक्षवो यस्य पदं सुमंगलं विमुक्तसंगा मुनयः सुसाधवः ॥ चरंत्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥ न विद्यते यस्य च जन्मकर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ॥ तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥ तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥ नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ॥ नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥ सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ॥ नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥

परमात्मा मेरा शरण होवे ॥ ७ ॥ जिसके जन्म, कर्म, नाम, रूप कै गुण वा दोष कुछभी नहीं हैं, तौभी जो लोकोंकी उत्पत्ति और प्रलयके वास्ते अपनी मायासे समय समयपर जन्मादिकोंको स्वीकार करता है ॥ ८ ॥ उस अनंतशक्ति, ब्रह्म व परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूं, जो अरूप और अनेकरूप है, उस आश्चर्यमय कर्म करनेवाले परमात्माको मेरा प्रणाम है ॥ ९ ॥ अन्यप्रकाशके अविषय, साक्षी, मन वाणी और चित्तके अगोचर, परमात्माको मेरा प्रणाम हैं ॥ १० ॥ निपुण संन्यास और सत्वगुणसे प्राप्त होनेवाले, मोक्षसुखके जाननेवाले, मोक्षके पति, आपको मेरा प्रणाम है ॥ ११ ॥

छुड़ावें, इसलिये अब तो विधाताके पाशरूप ग्राहसे, बंधाहुआ मैं उसी परमात्माके शरण जाता हूं जो ब्रह्मादिकोंकाभी परम आश्रय है ॥ ३१ ॥ प्रचंड वेगवाले और अतिशीघ्र दौड़तेहुए बलवान् कालरूप सर्पसे डरेहुए शरणागत जनकी जो परमेश्वर रक्षा करता है और जिसके भयसे मृत्यु चौतर्फ दौड़ा करता है, उस परमेश्वरके मैं शरण जाता हूं ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटिकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ तीसरे अध्यायमें गजेंद्रने जिन भगवान्‌की स्तुति की, उन भगवान्‌ने वहां आकर, ग्राहसे गजराजका उद्धार किया और ग्राहका देवल ऋषिके श्रापसे उद्धार किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इसतरह बुद्धिसे पक्का विचार कर, मनको हृदयमें एकाग्र कर

यः कश्चनेशो बलिनोऽतकोरगात्प्रचंडवेगादभिधावतो भृशम् ॥ भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे मन्वंतरानुवर्णने गजेंद्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ॥ जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥ गजेंद्र उवाच ॥ ॐनमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ॥ पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥ यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ॥ योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयंभुवम् ॥ ३ ॥ यः स्वात्मनीदं निजमाययाऽर्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ॥ अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

पूर्वजन्ममें इंद्रद्युम्न राजा था उस समय जो सीखा था, उस उत्तम मंत्रका जप करने लगा ॥ १ ॥ गजेंद्रने कहा कि–उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूं. जिनसे यह चैतन्य स्वरूप प्रगट हुआ है और जो पुरुषरूप, सर्वका आदिकारण व परमेश्वर हैं, उनका मैं ध्यान करता हूं ॥ २ ॥ जो इस जगत्‌का आधार, उपादान कारण व कर्ता और स्वयं इस जगत्‌रूप हैं और जो कार्य व कारणसे पर हैं, उन स्वयंभू भगवान्‌के मैं शरण प्राप्त होताहूं ॥ ३ ॥ जो इस जगत्‌को अपनी मायासे अपने स्वरूपमें धारण करके, इसका कभी तो आविर्भाव और कभी तिरोभाव करते हैं और जिसकी दृष्टि कभी लुप्त नहीं होती है और जो साक्षी बनकर, कार्यकारणरूप सबको देखते हैं वह स्वयंप्रकाश और परात्पर हरि भगवान् मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

महाराज! वहां किसी बलवान् ग्राहने दैवकी प्रेरणासे क्रोध करके, उसका पांव पकड़ लिया, इसतरह यदृच्छासे कष्ट आ पड़ा, तौभी जबतक अपना बस चला, तबतक तौ उसने खूब पराक्रम किया ॥ २६ ॥ यूथपति इस प्रकार दुःखी होगया, कि-जिसे देखकर, दीनचित्त बिचारी हथिनियां पुकारने लगीं और बलवान् ग्राह जिसे जोरसे खींच रहा है ऐसे, गजराजको समीपवर्ती सहायक हाथियोंने बहुत कुछ सहायता दी, परंतु वे उसे किसी कदर नहीं तिरासके ॥ २७ ॥ महाराज! इसतरह इन गजराज और ग्राहके आपसमें युद्ध होने लगा, यानी ग्राह तौ उसे भीतरकी तर्फ खींच रहा था और गजराज बाहिरकी तर्फ खींच रहा था,

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् ॥ यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथा बलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥ २६ ॥ तथातुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ॥ विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥ २७ ॥ नियुध्यतोरेवमिभेंद्रनक्रयोर्विकर्षतोरंतरतो बहिर्मिथः ॥ समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २८ ॥ ततो गजेंद्रस्य मनोबलौजसां कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः ॥ विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥ २९ ॥ इत्थं गजेंद्रः स यदाप संकटं प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ॥ अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३० ॥ नमामि मे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवंति मोचितुम् ॥ ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३१ ॥

सो इन बलवानोंके युद्ध होते २ दिव्य हजार वर्ष बीत गये, यह बात देखकर, देवताभी आश्चर्य करने लगे ॥ २८ ॥ फिर बहुत कालसे जलमें खैंचे जाते और दुःख पाते गजेंद्रके उत्साह, बल व इंद्रियोंकी शक्ति ये सब बहुत कुछ क्षीण होगये और जलमें रहनेवाले ग्राहके ये सब बढ़ गये ॥ २९ ॥ इस तरह यदृच्छासे परवश पड़ाहुआ यह गजेंद्र जब प्राणसंकटमें पड़ गया, तब अपने छुटकारेके वास्ते कोई उपाय न देखता विचार करने लगा और विचार करते २ बहुत देरसे ऐसी बुद्धि उपजी कि-॥ ३० ॥ जब आतुर जो मैं हूं उसे ये मेरी ज्ञातिवाले हाथीभी नहीं छुड़ा सकते हैं तो फिर हथिनियोंकी तौ क्या ताकत ? कि-मुझे

आदि पशु और हिंस्र जानवर व गैंड़े और बडे २ सांप व गौरवर्ण व काले हरिण, शरभ, चमरी गायें ॥ २० ॥ वृक (भेंड़िये), शूकर, आरणे, भैंसे, रीछ, शैले, वानर, कुत्ते और मर्कट ये तो दूरहीसे भाग जाते हैं और इनके शिवाय दूसरे छोटे २ शशआदि क्षुद्र जीव इसकी दृष्टि बचाकर, इसके अनुग्रहसे निर्भय वनमें विचरा करते हैं ॥ २१ ॥ मद जिसके चू रहा है ऐसा, वह गजराज घामसे तपाहुआ, कलभ (बच्चे) हाथी और हथिनियोंके साथ अपने शरीरके भारसे पर्वतको चारों ओरसे थरथर कंपायमान करता, जल तलाश कर रहा था. वहां मदके भूंखे भौंरोंके झुंड उसकी सेवा कर रहे थे ॥ २२ ॥ मदसे विव्हल हैं नेत्र जिसके ऐसा वह गजराज कमलके

वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छशालावृकमर्कटाश्च ॥ अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयश्चरंत्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २१ ॥ स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः ॥ गिरिं गरिम्णा परितः प्रकंपयन्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २२ ॥ सरोऽनिलं पंकजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ॥ वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम् ॥ २३ ॥ विगाह्य तस्मिन्नमृतांबु निर्मलं हेमारविंदोत्पलरेणुवासितम् ॥ पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृतमात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥ २४ ॥ स्वपुष्करेणोद्धृतशीकरांबुभिर्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ॥ घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥ २५ ॥

परागसे मिलेहुए सरोवरके पवनको दूरसे सूंघताहुआ, प्याससे पीड़ित अपने यूथको संग लिये, तुर्त उस सरोवरके निकट आया ॥ २३ ॥ और आतेही उस सरोवरमें घुसा. कंचनके कमल और उत्पलकी रजसे सुगंधित अमृतसा निर्मल जल अपनी सूंढ़में ले ले कर, खूब पिया और जलसे अपने आत्माको न्हिलाया कि–जिससे उसका सब खेद निवृत्त हो गया ॥ २४ ॥ दयालु वह गजराज अपनी सूंड़में जल लेकर, हथिनियां और कलभों- (बच्चों) को गृहस्थीकी तरह जल प्याय रहा था और उन्हें न्हिलाय रहा था, सो उस मदांध व कृपणको भगवतकी मायासे जो कष्ट प्राप्तहुआ उसकी खबर नहीं पड़ी ॥ २५ ॥

देवदारु ॥ १२ ॥ दाख, ऊख, केला, जामुन, बेरके वृक्ष, बहेड़ा, हरड़ें, आमला, टेशू, चंदन, पितुमंद, कोविदार सरल, देवदारु ॥ १२ ॥ बेल, कपित्थ (कठोरी) जंभीरी और भिलावेंआदि अनेक प्रकारके वृक्ष जिसमें बन रहे हैं ॥ १३ ॥ उस उद्यान- (बाग) में बड़ा भारी एक सरोवर है, जिसमें कंचनके कमल डहडहा रहे हैं और कुमुद, उत्पल, कल्हार व शतपत्रकी शोभा बढ़ रही है, मदोन्मत्त भौंरे गुंज रहे हैं, पक्षी मधुरस्वरसे कूज रहे हैं ॥ १४ ॥ हंस, कारंडव, चकवे और सारस ये पक्षी व्याप्त हो रहे हैं, जलमुर्गा कोयष्टि और दात्यूहके झुंड कूज रहे हैं ॥ १५ ॥ मछलियां और कछुए फिरते हैं, तिनके स्पर्शसे कमल जो हिलते हैं

द्राक्षेक्षुरंभाजंबूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥ बिल्वैः कपित्थैर्जंबीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ॥ १३ ॥ तस्मिन्सरःसु विपुलं लसत्कांचनपंकजम् ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ॥ मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुंतैश्च कलस्वनैः ॥ १४ ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १५ ॥ मत्स्यकच्छपसंचारचलत्पद्मरजःपयः ॥ कदंबवेतसनलनीपवंजुलकैर्वृतम् ॥ १६ ॥ कुंदैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेंगुदैः ॥ कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥ १७ ॥ मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ॥ शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥ १८ ॥ तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ॥ सकंटकान्कीचकवेणुवेत्रवद्विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥ १९ ॥ यद्गंधमात्राद्धरयो गजेंद्रा व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः ॥ महोरगाश्चापि भयाद्द्रवंति सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥ २० ॥

तिससे उनका केसर जलमें पड़ २ कर, मिल रहा है और तीरपर दूसरेभी कई तरहके कदंब, वेतस, नल, नील, वंजुल (मोरसरी) ॥ १६ ॥ कुंद (मोगरा) कुरबक, अशोक, शिरीष, कुटज, हिंगोट, कुजक, सुनहरी जूई, नाग, नागकेसर, जाई, ॥ १७ ॥ मल्लिका, शतपत्र, माधवी और जालकआदि वृक्ष शोभ रहे हैं. कि-जिनमें सदा ऋतु और फलफूलकी संपदा बन रही है ॥ १८ ॥ एक समय उस पर्वतके वनमें रहनेवाला एक गजयूथपति अपनी हथिनियोंको संग लिये, कांटेसहित, कीचक बाँस और बेंतवाली बड़ी झाड़ीको तोड़ता और वृक्षोंको गिराता, उस वनमें विचर रहा था ॥ १९ ॥ कि-जिसकी गंध आतेही सिंह गजराज, व्याघ्र-

समुद्रकी लहरोंसे लहरा रहे हैं, जिसकी हरितवरन मरकत मणियोंकी शिलाओंकी कांतिसे भूमि श्यामबरन हो रही है ॥ ४ ॥ जिसकी कंदराओं-(गुफावों) में सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, बड़े २ नाग, किन्नर और अप्सरा क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ५ ॥ जो वे गान करते हैं उनके गानेका शब्द सुनकर, सिंह जो उसमें रहते हैं, वे दूसरे सिंहके भ्रमसे क्रोध कर, जो गर्जना करते हैं, उससे जिसकी गुफाओंमें घोष बँध रहा है ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारके जंगली पशुओंके समूहसे जिसकी गुफायें व्याकुल और शोभायमान हो रहीं हैं, जहां अनेक प्रकारके वृक्षोंसे शोभायमान देवतानके उद्यानोंमें कोकिला टहूका दे रहीं हैं ॥ ७ ॥ जहां

सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरमहोरगैः ॥ किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकंदरः ॥ ५ ॥ यत्र संगीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ॥ अभिगर्जंति हरयः श्लाघिनः परशंकया ॥ ६ ॥ नानाऽरण्यपशुव्रातसंकुलद्रोण्यलंकृतः ॥ चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकंठविहंगमः ॥ ७ ॥ सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ॥ देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभांब्वनिलैर्युतः ॥ ८ ॥ तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥ उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥ ९ ॥ सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ॥ मंदारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचंपकैः ॥ चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ॥ १० ॥ क्रमुकैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ मधुकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ॥ ११ ॥ अरिष्टोदुंबरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचंदनैः ॥ पिंचुमंदैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ॥ १२ ॥

निर्मल जलभरे तालाव और नदियां कि-जिनके तटोंमें मणिकेसे सेवाल चमक रहे हैं, उनमें जो देवागना स्नान करतीं हैं उनकी सुगंधिसे जल और पवन सुगंधित हो रहा है ॥ ८ ॥ उस पर्वतकी द्रोणी-(कंदरा) में, महात्मा भगवान् वरुणका ऋतुमत नाम उद्यान है. कि-जिसमें देवांगना सदा क्रीड़ा किया करतीं हैं. और नित्य जिनमें फलफूल आया करें ऐसे, दिव्य वृक्ष चौतर्फ शोभा दे रहे हैं ॥ ९ ॥ मंदार, पारिजात, पाटल, अशोक, चंपा, आम, प्रियाल, पनस, आम्र, आम्रातक, ॥ १० ॥ सुपारी, नारियल, खजूर, बिजोरा, महुआ, साल, ताल, तमाल, असन, अर्जुन ॥ ११ ॥ नीम, उदुंबर (गूलर), प्लक्ष, वट (वड़),

ग्राहसे पकड़ेहुए गजराजको किसतरह छुड़ाया? ॥ ३१ ॥ जिस जिस कथामें उत्तमश्लोक हरि भगवान्‌का यश गाया जाता है, वह कथा बड़ी पुण्य, धन्य, कल्याणकारी और शुभकारक होती है ॥ ३२ ॥ सूतजीने कहा कि–अनशन व्रत धारण कियेहुए राजा परीक्षितने इसतरह शुकदेवजीसे कथा कहनेके निमित्त प्रेरणा की, तद हे शौनकादि ऋषियो! उस राजाकी प्रशंसा करके, सब मुनिलोगोंके सुनते, सभाके बीच आनंदपूर्वक शुकदेजीने यह वचन कहा ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ दूसरे अध्यायमें हथिनियोंके साथ जलमें क्रीड़ा करते,

तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ॥ यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितैवं स तु बादरायणिः प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ॥ उवाच विप्राः प्रतिनंद्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे मन्वंतरानुचरिते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ॥ क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥ तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृंगैः पयोनिधिम् ॥ दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २ ॥ अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झरांभसाम् ॥ ३ ॥ स चावनिज्यमानांघ्रिः समंतात्पयऊर्मिभिः ॥ करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥ ४ ॥

गजराजको दैवयोगसे ग्राहने पकड़ लिया, तब गजराजने भगवान्‌का स्मरण किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज! सुंदर और उत्तम एक त्रिकूटनाम पर्वत बड़ा विख्यात है, उसके चौतर्फ क्षीरसागर घेरा दिये है और दशहजार योजन उसकी उँचाई है ॥ १ ॥ और उतनाही फैलाव है, तीन उसके शिखर हैं. जिनमेंसे एक तौ रूपेका, एक लोहेका और एक सोनेका है. जिन शिखरोंके तेजसे क्षीरसमुद्र, दिशा और आकाश सदा प्रकाशमान रहा करते हैं ॥ २ ॥ और दूसरेभी बहुतसे शिखर हैं जिनसे सब दिशायें प्रकाश करतीं हैं. कैसे हैं वे शिखर? कि–जो रत्न और धातुओंसे चित्र विचित्र हो रहे हैं अनेक प्रकारके वृक्ष, बेलि और गुच्छोंसे शोभ रहे हैं, जिनमें झरनोंके जलका सुहावना शब्द हो रहा है ॥ ३ ॥ जिस पर्वतके चारों ओरके नीचेके भाग क्षीरस-

विभु भगवान्‌से नियम सीखे ॥ २२ ॥ तीसरे राजा प्रियव्रतके पुत्र उत्तम नाम मनु हुए, महाराज! उनके पवन, सृंजय, यज्ञ और होत्र आदि पुत्र हुए ॥ २३ ॥ वसिष्ठजीके पुत्र प्रमद आदि सप्तर्षि हुए. सत्या, वेदश्रुता और भद्रानाम देवता हुए; सत्यजित् नाम इंद्र हुए ॥ २४ ॥ धर्मकी स्त्री सूनृतामें पुरुषोत्तम भगवान्‌का सत्यव्रतोंके साथ सत्यसेन नाम अवतार हुआ ॥ २५ ॥ सत्यजित्‌के सखा सत्यसेन भगवान्‌ने झूंठ बोलनेवाले और दुष्टस्वभाव, दुष्ट यक्षराक्षसोंका और भूतद्रोही प्राणी-

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ पवनः सृंजयो यज्ञ होत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥ २३ ॥ वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयाः ॥ सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इंद्रस्तु सत्यजित् ॥ २४ ॥ धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥ सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् ॥ भूतद्रुहो भूतगणास्त्ववधीत्सत्यजित्सखः ॥ २६ ॥ चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ॥ पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥ २७ ॥ सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ॥ ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेंऽतरे ॥ २८ ॥ देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ॥ नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥ तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ॥ हरिरित्याहृतो येन गजेंद्रो मोचितो ग्रहात् ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥ ३१ ॥

गणका नाश किया ॥ २६ ॥ चौथे उत्तम मनुके भाई तामस नाम मनु हुए, उनके पृथु, ख्याति, नर, और केतु, इत्यादि दश पुत्र हुए ॥ २७ ॥ सत्यक, हरि और वीर ये देवता हुए, त्रिशिखनाम इंद्र हुए और ज्योतिर्धाम आदि सप्तर्षि हुए ॥ २८ ॥ महाराज! तामस मन्वंतरमें विधृतिके पुत्र वैधृति नाम देवताभी हुए, जिन्होंने अपने तेजसे कालके प्रभावसे उच्छिन्न हुए वेदोंको धारण किया ॥ २९ ॥ इस मन्वंतरमेंभी हरिमेधाकी हरिणी नाम स्त्रीमें हरि नाम अवतार हुआ. जिन्होंने गजराजको ग्राहके फंदसे छुड़ाया ॥ ३० ॥ परीक्षितने कहा कि–हे शुकदेवजी महाराज! यह चरित्र हम सुनना चाहते हैं कि–हरि भगवान्‌ने

देखो, भगवान् परमेश्वर कर्म करते हैं, पर उसमें आसक्त नहीं होते हैं क्योंकि वे अपने स्वरूपलाभसेही पूर्णकाम हैं, इसलिये दूसरेभी जो उसके अनुसार चलते हैं, वे दुःख नहीं पाते हैं ॥ १५ ॥ कर्म करनेपरभी निरहंकार, सर्वज्ञ, कामनारहित, परिपूर्ण, अन्यकी प्रेरणासे रहित, अपने आचरणोंसे मनुष्योंको क्षिशा देते, मनुष्य अवतारके उचित मार्गमें चलनेवाले सर्वधर्मोंके प्रवर्तक, परमेश्वरके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–वह मनु एकचित्त होकर, इसतरह मंत्रोंके रहस्यका उच्चारण

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते ॥ आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदंति येऽनु तम् ॥ १५ ॥ तमीहमानं निरहंकृतं बुधं निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ॥ नॄन् शिक्षयंतं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मंत्रोपनिषदं व्याहरंतं समाहितम् ॥ दृष्ट्वाऽसुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन्क्षुधा ॥ १७ ॥ तांस्तथाऽवसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ॥ यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाऽशासत्त्रिविष्टपम् ॥ १८ ॥ स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ॥ द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥ १९ ॥ तत्रेंद्रो रोचनस्त्वासीद्देवाश्च तुषितादयः ॥ ऊर्जस्तंभादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥ ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषितानाम पत्न्यभूत् ॥ तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ॥ २१ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः ॥ अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिणः ॥ २२ ॥

कर रहे थे. इतनेमें असुर और यातुधान इन्हें देखकर, खानेको आये ॥ १७ ॥ उन यक्ष राक्षसोंका ऐसा विचार देखकर, सर्वव्यापक हरि यज्ञ भगवान् याम नाम देवतावोंको संग ले, वहां आये और उन्हें मारकर, आपने स्वर्गका राज किया ॥ १८ ॥ दूसरे मनु स्वारोचिष नाम अग्निके पुत्र हुए. उनके द्युमत्, सुषेण और रोचिष्मत् आदि पुत्र हुए ॥ १९ ॥ उस मन्वंतरमें रोचन नाम इंद्र हुए. तुषितआदि देवता हुए. ऊर्जस्तंभआदि ब्रह्मज्ञानी सप्तर्षि हुए ॥ २० ॥ वेदशिरानाम मुनिकी तुषिता नाम स्त्रीमें विभुनाम भगवान्‌का अवतार हुआ ॥ २१ ॥ व्रत धारण करनेवाले अट्ठासी हजार ८८००० मुनि लोगोंने, बालब्रह्मचारी

लगे ॥ ८ ॥ मनुने कहा कि– जिन चैतन्यसे यह जगत् सचेतन होता है, पर जिन्हे यह जगत् सचेतन नहीं कर सकता क्यों-कि वह स्वयं चिद्रूप हैं. और इस विश्वके सोनेपर वह जाग्रत रहते हैं यानी साक्षीभूत रहते हैं, अहो ! बड़ी अचरजकी बात है कि–वह तो इसे जानते हैं और यह उन्हें नहीं जानता ॥ ९ ॥ इस पृथ्वीमें जो कुछ पदार्थ हैं, उस सबमें ईश्वर व्यापक होकर रहा है, इसलिये परमेश्वर जो कुछ तुम्हें देवे, उसीसे निर्वाह करो, किसी दूसरेके धनकी इच्छा मत करो ॥ १० ॥ जो इस जगत्को देख रहा है, पर यह जगत् जिसे नहीं देखता, जिस ईश्वरका ज्ञान कभी नाश नहीं होता, उस सब प्राणियोंके अंत-

मनुरुवाच ॥ येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ॥ यो जागर्त्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥ आत्मा वास्यमिदं विश्वं यत्किंचिज्जगत्यां जगत् ॥ तेन त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १० ॥ यन्न पश्यति पश्यंतं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ॥ तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥ ११॥ न यस्याद्यंतौ मध्यं च स्वः परो नांतरं बहिः ॥ विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत् ॥ १२ ॥ स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ॥ धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥ १३ ॥ अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहंतेऽकर्महेतवे ॥ ईहमानो हि पुरुषः प्रायोनीहां प्रपद्यते ॥ १४ ॥

र्यामी असंग परमात्माका भजन करो ॥ ११ ॥ जिसके न तो आदि है न अंत है और न मध्य है, न अपना और पराया है व न भीतर और न बाहिर है और जिससे जगत्की ये सब बातें होतीं हैं और यह जगत् जिसकाही स्वरुप भूत है, वही सत्य व पूर्ण ब्रह्मरुप है ॥ १२ ॥ वह परब्रह्म, सत्य स्वयंप्रकाश, अजन्मा, ईश्वर पुराण अनंतनामा और जगत्स्वरुप है, सो वही अपनी मायाशक्तिसे जगत्के जन्म, स्थिति, लय करता है और विद्याशक्तिसे मायाको दूर रखकर, आप सदा निर्विकार स्वरूपही रहता है ॥ १३ ॥ परमेश्वरभी कर्म कर, उनका संग छोड़, निष्क्रिय होकर, रहता है, तासों ऋषिलोकभी कर्म तजनेके लिये पहले कर्म किया करते हैं. क्योंकि जो कर्म करता रहता है, वह पुरुष बहुधा निष्क्रिय हो जाता है ॥ १४ ॥

श्रीविघ्नहर्त्रे नमः ॥ पहले अध्यायमें स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम और तामस इन चार मनुओंका वर्णन होगा ॥ १ ॥

राजा परीक्षितने कहा कि-हे गुरु ! स्वायंभुवमनुका वंश तो विस्तारपूर्वक यहां सुना, कि-जिसमें विश्वसृज् (मरीचिआदि) ऋषियोंके पुत्रपौत्रादिकोंकी सृष्टि हुई. अब दूसरे मनुओंका हमसे वर्णन करो ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिस जिस मनुमें व्यापक हरि भगवान्के जन्म और चरित्र कविलोग गाया करते हैं, वे हमें कहो, क्योंकि हमारे श्रवण करनेकी बड़ी उत्कंठा लग रही है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जगत्के पालक हरि भगवान्ने जिस जिस मन्वंतरमें जो जो चरित्र किये हैं, जो चरित्र अभी करते हैं

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ स्वायंभुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ॥ यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥ १ ॥ यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ॥ गृणंति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥ २ ॥ यद्यस्मिन्नंतरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः ॥ कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट् कल्पे स्वायंभुवादयः ॥ आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च संभवः ॥ ४ ॥ आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ॥ धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५ ॥ कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ॥ आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥ ६ ॥ विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ॥ विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥ ७ ॥ सुनंदायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ॥ तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥ ८ ॥

और जो चरित्र करेंगे सो सब हमें कहो ॥ ३ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि-इस कल्पमें स्वायंभुवआदि छह ६ मनु तो हो चुके हैं, उनमेंसे पहले स्वायंभुवमनुका मैं वर्णन कर चुका हूं कि-जिसमें देवताआदि सबकी उत्पत्ति हुई ॥ ४ ॥ स्वायंभुव मनुकी आकूति और देवहूति नाम दो कन्याओंमें धर्म और ज्ञानका उपदेश करनेके वास्ते भगवान्के अवतार हुए ॥ ५ ॥ महाराज ! कपिल भगवान्का तो म पहले वर्णन कर चुका हूं अब यज्ञ भगवान्ने जो चरित्र किया वह कहता हूं सो सुनो ॥ ६ ॥ जब शतरूपाके पति प्रभु स्वायंभुवमनु कामभोगसे वैराग्य पा, राज छोड़, तप करनेके लिये स्त्रीको साथ ले, वनमें गये ॥ ७ ॥ तो महाराज ! वहां सुनंदा नदीके तीरपर एक पांवसे पृथ्वीका स्पर्श करके, घोर तपस्या करते उपदेश करते हों उस तरह कहने

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषया सहितः
सप्तमस्कंधः समाप्तः ॥

जिनका वर्णन नहीं कर सकते उन प्रभुका हमभी मौन, भक्ति और उपशमादिक साधनोंसे पूजा करते हैं. ये भक्तोंके पालक भगवान् सबपर प्रसन्न होवें ॥ ७७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इसप्रकार नारदजीके वचन सुनकर, अतिप्रसन्नमन युधिष्ठिर राजाने प्रेमसे विव्हल होकर, नारदजीकी और भगवान्‌की पूजा की–नारदजी पूजाको स्वीकारकर, भगवान्‌से और युधिष्ठिरसे आज्ञा मांग,

श्रीशुक उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः ॥ पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥ ७८ ॥ कृष्णपार्थावुपामंत्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः ॥ श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥ ७९ ॥ इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ॥ देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥ ८० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ समाप्तोऽयं सप्तमस्कंधः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

वहांसे सिधारे. युधिष्ठिरभी श्रीकृष्णचंद्रको परब्रह्मरूप सुनकर, अत्यंत आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ इसप्रकार दक्षप्रजापतिकी पुत्रियोंके जुदे २ वंश मैंने आपको कह सुनाये कि–जिन वंशोंमें देवता दैत्य, और मनुष्यआदि तथा सकल स्थावरजंगम लोक उत्पन्न हुए हैं ॥ ८० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकयां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥

एक दिवस देवतानकी सभामें भगवान्की कथा गानेके वास्ते प्रजापतियोंने गंधर्व और अप्सरानको बुलाया॥ ७१ ॥ तिनमें मुझकोभी बुलाया. तब मैं स्त्रियोंके यूथको साथ लेकर, गाता गाता वहां गया. मेरा यह अपराध देखकर, प्रजापतिने अपनी शक्तिसे मुझे श्राप दिया कि–' तूने अपराध किया इसवास्ते तू लक्ष्मीहीन होकर, शीघ्र शूद्रयोनिमें जा ॥ ७२ ॥ इस श्रापसे तुरंत मैं दासीपुत्र हुआ. इस जन्ममेंभी ब्रह्मवादियोंकी सेवा और उनकी संगति करनेके प्रभावसे इस तीसरे जन्ममें मैं ब्रह्माका पुत्र हुआ हूं ॥ ७३ ॥ पापको नाश करनेवाला गृहस्थाश्रमसंबंधी धर्म मैंने

एकदा देवसत्रे तु गंधर्वाप्सरसां गणाः ॥ उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥ ७१ ॥ अहं च गायंस्तद्विद्वान्स्त्रीभिः परिवृतो गतः ॥ ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा॥ याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥ ७२ ॥ तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ॥ शुश्रूषयाऽनुषंगेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥ ७३ ॥ धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ॥ गृहस्थो येन पदवीमंजसा न्यासिनामियात् ॥ ७४ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियंति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम् ॥ ७५ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्मार्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च॥ ७६ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतांपतिः ॥ ७७ ॥

आपसे कहा है. जिस धर्मके पालनेसे गृहस्थीको विना आयास संन्यासियोंकी पदवी प्राप्त हो जाती है ॥ ७४ ॥ मनुष्यलोकमें तुम बड़े भाग्यशाली हो; क्योंकि तुम्हारे घरमें मनुष्यावतारसे गूढ़ साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्णचंद्र विराजते हैं. अतएव त्रिलोकीको पावन करनेवाले मुनिलोक तुम्हारे घर आते हैं ॥ ७५ ॥ तुम्हारे परममित्र, मामाके पुत्र, आत्मरूप, पूज्य, आज्ञाके अनुसार चलनेवाले और गुरुरूप श्रीकृष्णचंद्रही परब्रह्म हैं. बड़े २ महात्मा उन्हींको ढूंढ़ते हैं. और मोक्षसंबंधी निरुपाधिक सुखके अनुभवरूपभी येही हैं. ॥ ७६ ॥ महादेव और ब्रह्मादिक देवताभी अपनी बुद्धिके प्रभावसे भगवान्का स्वरूप ऐसाही है ऐसे

सर्वप्राणियोंके देह पंचभूतात्मकतासे एकरूप हैं और भोक्ताभी परमात्मा होनेके कारण एकरूप है. तासों उनके अर्थ और कामभी एकरूप हैं ऐसे विचारना यह द्रव्याद्वैत कहलाता है. इस द्रव्याद्वैतकी भावना रखनेसे ' मेरे कर्मसे भयाहुआ यह फल मेरेही भोगनेका है ' ऐसे समझनेरूप तीसरा स्वप्नभी निवृत्त हो जाता है ॥ ६५ ॥ पूर्वोक्त आश्रमसंबंधी धर्म पीछे संक्षेपसे कहे जाते हैं. जिस उपायसे जिसके पाससे, जहां, जिस द्रव्यका, जिस पुरुषके वास्ते शास्त्रमें निषेध नहीं किया है, उस उपायसे, उसके पाससे, वहां, उस द्रव्यसे, उस पुरुषको कर्म करना चाहिये. आपत्काल विना इससे दूसरी रीति नहीं पकड़नी ॥ ६६ ॥ हे राजा ! पूर्व कहेहुए और दूसरेभी अपने वेदोक्त कर्मसे बर्तनेवाला और भगवान्‌की भक्ति करनेवाला मनुष्य घरमें रहकरभी भगवानकी

यद्यस्य वाऽनिषिद्धं स्याद्येन यत्र यतो नृप ॥ स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥ ६६ ॥ एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः ॥ गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद्राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः ॥ ६७ ॥ यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजादापद्गणादुत्तरताऽऽत्मनः प्रभोः ॥ यत्पादपंकेरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥ ६८ ॥ अहं पुराऽभवं कश्चिद्गंधर्व उपबर्हणः ॥ नाम्नाऽतीते महाकल्पे गंधर्वाणां सुसंमतः ॥ ६९ ॥ रूपपेशलमाधुर्यसौगंध्यप्रियदर्शनः ॥ स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलंपटः ॥ ७० ॥

गतिको प्राप्त हो जाता है ॥ ६७ ॥ यह बात तौ सबके वास्ते साधारण हैं. परंतु भक्तको तौ भक्तिही सर्व पुरुषार्थ सिद्ध कर देती है. देखो तुमही किसी प्रकारसे टालनेपरभी न टल सके ऐसे कष्टसमूहोंसे भगवान्‌की सहायतासेही बचे हो. और उनके चरणारविंदकी सेवाके प्रभावसे सब दिशाओंको जीतकर, तुमने बड़े २ यज्ञ किये हैं ॥ ६८ ॥ यह भगवान्‌की सेवा महात्मा पुरुषोंका तिरस्कार करनेसे छूट जाती है. और उनकी कृपासे सिद्ध हो जाती है. इस बातका मुझको अनुभव हुवा है. गत महाकल्पमें प्रथम मैं उपबर्हण नाम एक गंधर्व था. दूसरे गंधर्व मुझे मान दिया करते थे ॥ ६९ ॥ रूप, सुकुमारता, मधुरता और सुगंधिके हेतु सब लोकोंको मेरा दर्शन प्रिय लगता था. मैं स्त्रियोंको अतिप्रिय, निरंतर मदोन्मत्त रहनेवाला और अत्यंत लंपट था ॥ ७० ॥

कदाचित् भेद माना जाय तौभी वह भेद जबलौं अविद्याकी निवृत्ति न होवे तबलौं ठहेर सकता है ॥ ६० ॥ इसप्रकार भेद माना जाय तौभी कोई वस्तु स्थायी है ऐसे सिद्ध नहीं होता; क्योंकि- पदार्थ नदीके प्रवाहके समान क्षणक्षणमें बदलते जाते हैं ऐसा नित्यप्रलयका सिद्धांत है. इस सिद्धांतमें ऐसा निश्चय किया गया है कि-पदार्थोंका स्थायीपन न होनेपरभी ' यह पदार्थ वोका वो है ' ऐसे जो कहा जाता है वह तो पूर्वपदार्थके जैसाही दूसरा पदार्थ होता है तासों सादृश्यके हेतु उत्पन्न भयीहुई भ्रांतिसे कहलाता है. यह सादृश्यकी भ्रांति जबलौं अविद्या निवृत्त नहीं होती तबलौं रहती है. अविद्या निवृत्त हुए पीछे तो सब द्वैत अवास्तविक ठहेर जाता है. अर्थात् पीछे भ्रांतिको अवकाशही नहीं रहता है. अद्वैतस्थितिमें तो शास्त्रमें कहेहुए विधिनिषेधभी स्वप्नमें होतीहुई जाग्रत् और सुषुप्तिकी व्यवस्थाके समान है ॥ ६१ ॥ भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैतकी यथार्थ

स्यात्सादृश्यभ्रमस्तावद्विकल्पे सति वस्तुनः ॥ जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ॥ ६१ ॥ भावद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथाऽऽत्मनः ॥ वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुते मुनिः ॥ ६२ ॥ कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतंतुवत् ॥ अवस्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६३ ॥ यद्ब्रह्मणि परे साक्षात्सर्वकर्मसमर्पणम् ॥ मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६४ ॥ आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् ॥ यत्स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥ ६५ ॥

भावना करनेवाला मुनि अपने स्वरूपके अनुभवसे जाग्रतआदि तीनों अवस्थाओंका त्याग कर देता है ॥ ६२ ॥ जैसे वस्त्र यह कोई चीज नहीं है किंतु तंतुही वास्तविक पदार्थ हैं. ऐसे जाग्रत यह कोई चीज नहीं है किंतु परब्रह्मही वास्तविक वस्तु है. इसप्रकार भेदको मिथ्या जानकर, कार्य वस्तु और कारण वस्तुकी एकता विचारनी यह भावाद्वैत कहलाता है. इस भावाद्वैतकी भावना करनेसे वस्तुओंमें भेदबुद्धिरूप स्वप्नभी निवृत्त हो जाता है ॥ ६३ ॥ हे युधिष्ठिर! मन, वाणी और शरीरसे कियेहुए कर्म साक्षात् परब्रह्मके अर्पण करदेना यह क्रियाद्वैत कहलाता है. प्राप्त होनेको संकल्प कियेहुए फलोंकी भिन्नतासे क्रियाओंकी भिन्नता होती है. परंतु ईश्वरको अर्पण कर देनेमें फलकी भिन्नता नहीं रहती, तासों इसको क्रियाद्वैत कहा करते हैं. इस क्रियाद्वैतकी भावना रखनेसे कर्ममें भेद समझनेरूप दूसरा स्वप्नभी निवृत्त हो जाता है ॥ ६४ ॥ आप, स्त्री-पुत्रादिक और दूसरेभी

आता है. ऐसे इंद्रियोंसे जाननेमें आताहुआ संसार भी किसी प्रकारकी योग्य तर्कसे सिद्ध नहीं होता; अर्थात् अवास्तविक ठहेरता है, तथापि मानों कोई एक पदार्थ हो ऐसे कल्पन किया जाता है॥५८॥ पृथ्वी आदि पंचभूतोंकी जिसमें एकता भयीहुई माननेमें आती है ऐसा देहादिक पदार्थ पंचमहाभूतके संघात, कार्य वा परिणाममेंसे किसीप्रकारका नहीं ठहेरता. जैसे वृक्षका संघात वन कहलाता है ऐसे देह जो पंचमहाभूतका संघात होवे तो देहका एक भाग खैंचनेसे सर्वभाग खैंचा जाता है वह खैंचा जाना संभवे नहीं; क्योंकि एक वृक्ष खैंचा जानेसे सकल वन खैंचा नहीं जाता. देह पंचमहाभूतोंका कार्य अर्थात् उनमेंसे बनाहुआ विकाररूप हो तो वह अपने अवयवोंसे जुदा है वा उनमें मिलाहुआ है ? यह विचार करनेपर कुछभी कहा नहीं जा सक्ता, और देह पंचभूतोंका परिणामरूप हो तोभी यही बाध आता है; तासों देह अवास्तविकही है. ऐसा निर्णय होता है. देह अपने अवयवोंसे जुदा तो नहीं है क्योंकि, वैसे देखनेमें नहीं आता. ऐसे उनमें मिलाहुआभी कहा नहीं जा सक्ता; क्योंकि-मिलाहुआ हो तो वह हरएक अवयवमें सब मिलाहुआ है वा अंशसे

क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमाऽपि हि ॥ न संघातो विकारोऽपि न पृथङ् नान्वितो मृषा ॥ ५९ ॥ धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ॥ न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽततः ॥ ६० ॥

मिलाहुआ है ? यह प्रश्न उत्पन्न होता है उसका योग्य खुलासा हो नहीं सक्ता. हरएक अवयवमें सब मिलाहुआ है. ऐसे कहें तो एक अंगुलीकोभी देह मानना चाहिये. और अंशसे मिलाहुआ है ऐसे कहें तो अंशका अंश, उसका अंश, ऐसे कल्पना करनेमें अनवस्था दोष आता है. इससे यह सिद्ध होता है कि-देहादिक पदार्थ अवास्तविकही है ॥ ५९ ॥ इसप्रकार देहादिकका अवास्तविकत्व कहकर, अब उसके कारणरूप पृथ्वीआदि पंचमहाभूतोंकीभी अवास्तविकता कही जाती है. पंचमहाभूतभी अवयवी पदार्थ हैं. तासों अवयवोंविना उनका जुदा निरूपण हो सके ऐसे नहीं है. तासों अवयवी यह कुछ कारणसे भिन्न वस्तुही नहीं है ऐसे निश्चय होता है. अवयवी जब अवास्तविक ठैहेरा, तब अंतमें अवयवभी अवास्तविकही ठैहेरते हैं, क्योंकि-अवयवीकी प्रतीति विना दूसरे किसी प्रमाणसे अवयव सिद्ध नहीं हो सक्ते. यद्यपि वास्तविकरीतिसे परमकारणरूप एक परमेश्वरके सिवाय दूसरी कोई वस्तु वास्तविक नहीं ठहेरती; और वास्तविक नहीं ठहेरती तब उनमें परस्पर भेद मानना यहभी व्यर्थही हुआ. तथापि

वाले मनको वेदवाणीमें होमते हैं. (कारण यह कि-वेदकी आज्ञासे मनमें कर्तृत्वआदि विकार उत्पन्न होते हैं) वाणीको अक्षरोंके समुदायमें और अक्षरोंके समुदायको तीन वर्ण- (अ उ म्) वाले ओंकारमें, ओंकारको बिंदुमें, बिंदुको नादमें, नादको प्राणमें और प्राणको परब्रह्ममें होमते हैं. ॥ ५३ ॥ इसप्रकार निवृत्त कर्म करके ज्ञानमें निष्ठा रखनेवाला पुरुष प्रथम अग्निदेवके निकट, फिर सूर्यदेवके पास, पीछे वहांसे दिवसके देवके समीप, वहांसे दिवसके अंतमें होकर, शुक्लपक्षके देवके समीप, वहांसे शुक्लपक्षके अंतमें हो, उत्तरायणके देवके निकट और वहांसे फिर ब्रह्माजीके निकट जाता है. ब्रह्मलोकमें रहकर, वहांके भोग भोगे पीछे आप कि-जो स्थूलदेहकी उपाधिवाला विश्व है, उस स्थूलदेहका सूक्ष्ममें लय करके, सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस होता है फिर सूक्ष्मके कारणमें लय करके, कारण शरीरका उपाधिवाला प्राज्ञ होता है. कारण शरीरका, तीनों शरीरोंमें व्यापक साक्षी

अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ॥ विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ॥ ५४ ॥ देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वाऽनुपूर्वशः ॥ आत्मयाज्युपशांतात्मा ह्यात्मस्थो न विवर्तते ॥ ५५ ॥ य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते ॥ शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोपि न मुह्यति ॥ ५६ ॥ आदावंते जनानां सद्बहिरंतः परावरम् ॥ ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ॥ ५७ ॥ आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः ॥ दुर्घटत्वादैंद्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥ ५८ ॥

स्वरूपमें लयकरके आप चौथा अर्थात् सबसे जुदा पड़ता है, (दृश्य पदार्थोंका लय होते शुद्ध आत्मा बन, मुक्ति पाता है) ॥५४॥ यह मार्ग कि-जिसमें पूर्वोक्त क्रमके अनुसार प्राप्ति होती है उस मार्गको देवयान कहते हैं. केवल आत्माकाही यजन करनेवाला आत्मामेंही रहाहुआ और परमशांति पायाहुआ पुरुष इस मार्ग जाकर, पीछा अवागवनमें नहीं आता ॥ ५५ ॥ वेदमें कहेहुए इन देवयान और पितृयान नाम दोनों मार्गोंको शास्त्ररूप चक्षुसे जो जानता है. वह पुरुष देहमें रहनेपरभी मोहित नहीं होता ॥ ५६ ॥ देहोंके आदि व अंतमें रहनेवाला, भोग्य, भोक्ता, उच्च, नीच, ज्ञान, ज्ञेय (जाननेयोग्य), शब्द, अर्थ, अप्रकाश और प्रकाश यह सब ज्ञानी आपही हैं. अर्थात् ज्ञानीपुरुष अपनेसे जुदा कुछभी नहीं देखता कि-जिससे मोह होवे ॥ ५७ ॥ प्रतिबिंबआदि आभास पदार्थ यद्यपि तर्कणाके विरोधके हेतु सर्वप्रकारसे अवास्तविक ठहेरता है तथापि जैसे एक वस्तुरूपसे माननेमें

प्रकारके कर्म वेदमें कहे हैं. तिनमें प्रवृत्तकर्मसे संसारमें भ्रमण करता है. और निवृत्तकर्मसे मुक्त हो जाता है ॥ ४७ ॥ हिंसा-
वाले श्येनयागादिक, अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास, पशुयाग, सोमयाग, ॥ ४८ ॥ वैश्वदेव और बलिदान, इत्यादिक
कर्म कि- जो पदार्थोंका उपयोग करनेसे होनेवाले हैं. वे इष्ट कर्म कहलाते हैं. और देवालय, बाग, बगीचा, कुआं तथा प्रपा
(पौसरा) आदि जो कर्म हैं वे पूर्त कहलाते हैं. येही कर्म यदि सकाम और अत्यंत आसक्तिके साथ किये जांय तो प्रवृत्त कहे
जाते हैं ॥ ४९ ॥ हे राजा ! प्रवृत्तकर्म करनेवाला पुरुष, चरु और पुरोडाशआदिके सूक्ष्मभागसे बनेहुए देहको धर कर, धू-

हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशांतिदम् ॥ दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥ ४८ ॥ ए-
तदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च ॥ पूर्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादि लक्षणम् ॥ ४९ ॥ द्रव्यसूक्ष्म-
विपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः ॥ अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः ॥ ५० ॥ अन्नं रेत इति क्ष्मे-
श पितृयानं पुनर्भवः ॥ एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥ ५१ ॥ निषेकादिश्मशानांतैः सं-
स्कारैः संस्कृतो द्विजः ॥ इंद्रियेषु क्रियायज्ञान्ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥ ५२ ॥ इंद्रियाणि मनस्यूर्मौ वा-
चि वैकारिकं मनः ॥ वाचं वर्णसमाम्नाये तमोंकारे स्वरे न्यसेत् ॥ ओंकारं बिंदौ नादे तं तंतुप्राणे म-
हत्यमुम् ॥ ५३ ॥

मके देवके निकट जाता है. वहांसे रात्रिके देवके पास जाता है. वहांसे कृष्णपक्षके देवके पास जाता है. वहांसे दक्षिणायनके
देवके निकट जाता है. और वहांसे चंद्रलोकमें जाता है. यहांतक चढ़कर, पीछा भोगके क्षयसे उत्पन्न भयेहुए शोकाग्नीसे
दुर्बल होकर, दृष्टिरूप द्वारसे औषधि, लता, अन्न और वीर्यमें अनुक्रमसे आकर, इस संसारमें जन्म पाता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥
गर्भाधानसे ले मरणपर्यंत संस्कार जिसके हुए होवें ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इस प्रवृत्तकर्म करनेके अधिकारी हैं. अब नि-
वृत्तकर्म कहते हैं. ज्ञानीपुरुष इंद्रियोंके व्यापाररूप इष्ट और पूर्तआदि कर्मोंको ज्ञानसे दीपनेवाली इंद्रियोंमें होम देते हैं, यानी
ये इष्टआदि धर्म इंद्रियोंसे जुदे नहीं हैं ऐसे जानते हैं ॥ ५२ ॥ ऐसेही इंद्रियोंको संकल्प विकल्परूप मनमें होमते हैं. विकार-

सारथी है. ईश्वरका उत्पन्न किया हुआ चित्त रथका बड़ा बंधनरूप है ॥ ४१ ॥ दश प्राण धुरीरूप हैं. अधर्म और धर्म चक्र (पहिया) रूप हैं. अहंकारवाला जीव रथमें बैठनेवाला है. ओंकार धनुषरूप है. शुद्ध जीव बाणरूप है. और परब्रह्म लक्ष्य (निशाना) रूप है. जैसे धनुषसे बाण लक्ष्यपर डाला जाता है, ऐसे ओंकारसे शुद्ध जीव परब्रह्ममें लगाया जाता है ॥ ४२ ॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, असूया (गुणमें दोषका आरोप) माया, हिंसा, मत्सर (दूसरेका उत्कर्ष न सहना), ॥ ४३ ॥ अभिनिवेश (यह कार्य अवश्य करना है ऐसे आग्रहयुक्त मनका संयोग), प्रमाद, क्षुधा और निद्राआदि

अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम् ॥ धनुर्हि तस्य प्रणवं पठंति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥ ४२ ॥ रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः ॥ मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः ॥ ४३ ॥ रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः ॥ रजस्तमःप्रकृतयः सत्वप्रकृतयः क्वचित् ॥ ४४ ॥ यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ॥ ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः स्वाराज्यतुष्ट उपशांत इदं विजह्यात् ॥ ४५ ॥ नोचेत्प्रमत्तमसदिंद्रियवाजिसूतानीत्वोत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपंति ॥ ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽधे संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपंति ॥ ४६ ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ आवर्त्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥ ४७ ॥

रजोगुण तमोगुणके स्वभाव तौ शत्रुरूप हैंही. परंतु कभी २ परोपकारआदि सत्वगुणके स्वभावभी शत्रुरूप हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ जबलों इस मनुष्यदेहरूप रथके इंद्रियआदि अंग स्वाधीन होवें तबलों गुरुचरणोंकी सेवाके प्रभावसे तीक्ष्ण भयेहुए ज्ञानरूप खड्गसे शत्रुओंका नाश कर, शांत और आत्मानंदसे संतुष्ट रहकर, भगवान्का आश्रय ले, पूर्वोक्त रथादिककी उपेक्षा कर देनी चाहिये ॥ ४५ ॥ भगवान्का आश्रय न लिया हो तौ बहिर्मुख इंद्रियरूप घोड़े और बुद्धिरूप सारथी असावधान पुरुषको उलटे मार्ग (प्रवृत्तिमार्ग) में ले जाकर, विषयरूप चोरलोकोंकी मंडलीमें पटक देते हैं. फिर ये चोरलोक घोड़े और सारथी सहित इस पुरुषको गाढ़ अंधकारवाले और मृत्युके महाभयवाले संसाररूप कूपमें डाल देते हैं ॥ ४६ ॥ प्रवृत्त और निवृत्त ये दोनो

संन्यासीका मन थोड़े कालमेंही इंधनविनाके अग्निकी नाईं शांत हो जाता है ॥ ३४ ॥ कामादिकसे क्षोभित नहीं होताहुआ और सर्ववृत्तियां जिसकी शांत हो गयीं होवें ऐसा चित्त, ब्रह्मसुखका स्पर्श होनेके हेतु पीछा कदापि नहीं उठता ॥ ३५ ॥ जो जन प्रथम धर्म, अर्थ और कामके क्षेत्ररूप घरमेंसे निकल कर, पीछा धर्म, अर्थ और कामका सेवन करे उस संन्यासीको वमन कियेहुएको खानेवाला (थूंककर,चाटनेवाला) और निर्लज्ज समझना चाहिये ॥ ३६ ॥ जिन्होंने अपने देहको अनात्मा, मरनेवाला और विष्ठा कीड़ा वा भस्मरूप होनेवाला जान लिया है, वेही कितनेएक पीछे नीच बनकर, इस देहको निजरूप मान-

कामादिभिरनाविद्धं प्रशांताखिलवृत्ति यत् ॥ चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ॥ ३५॥ यः प्रव्रज्य गृहात्पूर्वं त्रिवर्गावपनात्पुनः ॥ यदि सेवेत तान्भिक्षुः स वै वांताश्यपत्रपः ॥ ३६ ॥ यैः स्वदेहः स्मृतोऽनात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् ॥ त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयंति ह्यसत्तमाः ॥ ३७ ॥ गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो बटोरपि ॥ तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिंद्रियलौल्यता ॥ ३८ ॥ आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडंबकाः ॥ देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकंपया ॥ ३९ ॥ आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञानधुताशयः ॥ किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लंपटः ॥ ४० ॥ आहुः शरीरं रथमिंद्रियाणि हयानभीषून्मन इंद्रियेशम् ॥ वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद्बंधुरमीशसृष्टम् ॥ ४१ ॥

कर, उसकी स्तुति करवाते हैं ॥ ३७ ॥ गृहस्थ होकर, क्रियाका त्याग करे. ब्रह्मचारी होकर, ब्रह्मचर्य न पाले. वानप्रस्थ होकर, गाँवमें रहे और संन्यासी होकर, इंद्रियोंके स्वादमें लौल्य राखे ॥ ३८ ॥ ये सब आश्रमोंमें नीच और सच्चे आश्रमोंका अनुकरण करनेवाले हैं ऐसे जानना. नारदजी कहते हैं कि–हे राजा ! भगवान्‌की मायासे मोहित इन लोगोंपर अनुकंपा रखकर, तुमको इनकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ जो अपनेको परब्रह्मरूप जानता होवे, वह ज्ञानसे वासना निवृत्त हो जानेके कारण फिर किस प्रयोजनसे और किसके वास्ते लंपट बनकर, देहका पोषण करता है ? ॥ ४० ॥ विद्वान् लोक कहते हैं कि–शरीर रथरूप है. इंद्रियां अश्वरूप हैं. इंद्रियोंका अधिपति मन बलगा (बाग) रूप है. शब्दादिक विषय पहुंचनेके देशरूप है. बुद्धि

परमेश्वरको जो लोक मूढबुद्धि हैं वे नहीं जान सक्ते. प्रत्युत ऐसे २ कुतर्क करते हैं कि–गुरु ईश्वर नहीं हैं. क्योंकि–इनके तौ पुत्र आदि हैं. इसवास्ते हमारे जैसे मनुष्यही हैं ॥ २७ ॥ नियम पालनेकी सब आज्ञायें छः इंद्रियोंको जीतनेके उद्देशसे हैं. और छः इंद्रियोंका जय हुए पीछेभी जो उनसे ध्यान, धारणा और समाधि न बन सके तौ वे सब आज्ञायें केवल श्रम देनेवालीही हैं ॥ २८ ॥ जैसे खेतीबारी और व्यापारआदि आजीविका तथा उनके फल, मोक्ष कि–जो योगका एक फल है, उसे नहीं दे सक्ते. किंतु उससे विपरीत फल जन्म–मरणरूप संसार देते हैं. ऐसेही बहिर्मुख मनुष्यके वास्ते यज्ञ और बावड़ीकुएआदि बनानेरूप कर्म जन्म–मरणका देनेवाला होता है ॥ २९ ॥ चित्तजयके उद्योगमें लगाहुआ पु-

षड्वर्गसंयमैकांताः सर्वा नियमचोदनाः ॥ तदंता यदि नो योगा नावहेयुः श्रमावहाः ॥ २८ ॥ यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति ॥ अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथाऽसतः ॥ २९ ॥ यश्चित्त-विजये यत्तः स्यान्निःसंगोऽपरिग्रहः ॥ एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥ ३० ॥ देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मनः ॥ स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वंग ओमिति ॥ ३१ ॥ प्राणापानौ सन्निरुंध्यात्पूरकुंभकरेचकैः ॥ यावन्मनस्त्यजेत्कामान्स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ३२ ॥ यतो यतो निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् ॥ ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुंध्याच्छनैर्बुधः ॥ ३३ ॥ एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ॥ अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिंधनवह्निवत् ॥ ३४ ॥

रुष संन्यास लेकर, इकल्ला विचरता रहे. किसीका संग नहीं करे. किसी वस्तुका परिग्रह नहीं करे. एकांतमें रहे. और भिक्षा मांगनेसे जो कुछ थोड़ा बहुत मिले उतनाही खाकर, रह जाय ॥ ३० ॥ पवित्र और समभूमिमें अपना स्थिर और सम आसन जमाकर, उसपर सरल अंगसे ॐकारका उच्चारण करता बैठे ॥ ३१ ॥ जबलों मन सर्वकामनाओंको त्याग देवे तबलों अपनी नाककी अनीपर दृष्टि रखकर, पूरक, कुंभक और रेचकसे प्राण तथा अपानवायुको रोंख राखे ॥ ३२ ॥ कामनाओंसे भ्रष्ट भयाहुआ और भटकता हुआ मन जिस जिस विषयकी ओर निकल कर, दौड़े उस उस स्थलसे उसको पीछा हटाकर, धीरे २ विद्वान् पुरुष हृदयमें रोंकता रहे ॥ ३३ ॥ इसप्रकार निरंतर अभ्यास करनेवाले

जाता है, परंतु लोभका अंत तौ दिग्विजय करनेसे वा राज्य भोगनेसेभी नहीं आता ॥ २० ॥ महाराज ! बहुतसे बड़े २ ज्ञाता संशय काटनेवाले पंडित और सभाध्यक्षभी असंतोषसे नरकमें पड़े हैं ॥ २१ ॥ मनमें संकल्प विकल्प न करनेसे कामनाको जीतना. कामनाके परित्यागसे क्रोधको जीतना. धनको अनर्थ समझकर, लोभको जीतना. तत्त्वविचारसे भयको जीतना ॥ २२ ॥ आत्मा और अनात्मवस्तुके विचारसे शोक व मोहको जीतना. महात्मा पुरुषोंकी सेवासे दंभको जीतना. मौनसे योगके विघ्नरूप मिथ्यावार्तालाप (गप्पाष्टक) को जीतना. शरीरआदिकें व्यापारके तजनेसे हिंसाको जीतना ॥ २३ ॥ जिन प्राणियोंसे भया

पंडिता बह्वो राजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः ॥ सदसस्पतयोऽप्येके असंतोषात्पतंत्यधः ॥ २१ ॥ असंकल्पाज्जयेत्कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ॥ अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥ २२ ॥ आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दंभं महदुपासया ॥ योगांतरायान्मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥ २३ ॥ कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात्समाधिना ॥ आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥ २४ ॥ रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ॥ एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यंजसा जयेत् ॥ २५ ॥ यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ॥ मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुंजरशौचवत् ॥ २६ ॥ एष वै भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ योगेश्वरैर्विमृग्यांघ्रिर्लोको वै मन्यते नरम् ॥ २७ ॥

हुआ हो उन्हींका हित करनेसे भूतज दुःखको जीतना. दैवकृत दुःखको समाधिसे जीतना. योगबलके प्रभावसे देहज दुःखको जीतना. सात्विक आहारआदिके सेवनसे निद्राको जीतना ॥ २४ ॥ सत्वगुणसे रजोगुण तमोगुणको जीतना. और उपशमसे सत्वगुणकोभी जीतना. ये तौ प्रत्येकके जयके वास्ते प्रत्येकके जुदे २ साधन कहे. परंतु गुरुभक्ति एकही ऐसी है कि–मनुष्य उससे विना परिश्रम इन सबको जीत सकता है ॥ २५ ॥ ज्ञानरूप दीपकके देनेवाले साक्षात् भगवान् (गुरु) को जो मनुष्य अपनी दुर्बुद्धिसे मनुष्य करके जाने, उसने जो जो शास्त्र सुने हों, वे सब हाथीकी स्नानकी नाई व्यर्थ हैं ॥ २६ ॥ गुरु, प्रधान–पुरुषके ईश्वर और योगेश्वर जिनके चरणकमलको ढूंढा करते हैं ऐसे, साक्षात् भगवान्के रूपही हैं. परंतु गुरुरूप

में बाधा पहुँचे वह विधर्म. जो धर्म दूसरोंका हो वह परधर्म. मनुष्योंने आश्रमकी पद्धतिसे जो जुदा धर्म अपनी इच्छासे ठहराया हो वह आभास. जो पाखंड धर्म हो वह उपमा. और जो धर्म ढोंगभरा अथवा धर्मशास्त्रके वचनोंका उलटा अर्थ करके माना जाय वह छल कहलाता है ॥ १३ ॥ स्वभावके अनुसार धर्मशास्त्रोंमें कहाहुआ धर्म सर्वमनुष्योंको शांति देता है ॥ १४ ॥ निर्धन मनुष्यको धर्मके वास्ते वा निर्वाहके वास्तेभी धनकी इच्छा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि निवृत्तिवाले मनुष्यको अजगरकी नांई निवृत्तिही आजीविका दे देती है ॥ १५ ॥ जो सुख आत्माराम, संतोषी और निरीह पुरुषको मिलता है

यस्त्विच्छया कृतः पुंभिराभासो ह्याश्रमात्पृथक् ॥ स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशांतये ॥ १४ ॥ धर्मार्थमपि नेहेत यात्राऽर्थं वाऽधनो धनम् ॥ अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥ १५ ॥ संतुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखम् ॥ कुतस्तत्कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥ १६ ॥ सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ शर्कराकंटकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥ १७ ॥ संतुष्टः केन वा राजन्न वर्त्ततापि वारिणा ॥ औपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद्गृहपालायते जनः ॥ १८ ॥ असंतुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ॥ स्रवंतींद्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥ १९ ॥ कामस्यांतं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् ॥ जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥ २० ॥

वह सुख विषयोंके लोभसे धन उपार्जन करनेके वास्ते चारोंओर दौड़नेवाले पुरुषको कहां है ? ॥ १६ ॥ जिसने पैरोंमें जूते पहिन रक्खे हैं उस मनुष्यके जैसे कांटे और कंकरवाली पृथ्वीमेंभी सर्वत्र सुखही है. ऐसे सदा संतुष्टचित्त पुरुषकेभी जहां जाय वहीं सुख है ॥ १७ ॥ हे राजा ! संतोषी पुरुष कौन वस्तुसे निर्वाह नहीं कर सकता है ? और वस्तु तो दूर रहीं परंतु संतोषी मनुष्य जलमात्रसेभी अपना निर्वाह कर सकता है. यह मनुष्य केवल उपस्थ और जिव्हाके लालचसे श्वानके समान कृपण बन जाता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण असंतोषी होवे उसके तेज, विद्या, तप और यश इंद्रियोंके लौल्यसे स्रव जाते हैं. और ज्ञानभी लीन हो जाता है ॥ १९ ॥ कामका अंत भूंख–प्यास सहनेसे आ जाता है. क्रोधका अंत किसीको दुःख देनेसे आ

भगवान्‌के निवेदन कर, श्रद्धासे विधिसहित सत्पात्रको भोजन करवाया जाय तौ वह अन्न अक्षय और कामनाको पूर्ण करनेवाला हो जाता है ॥ ५ ॥ देवता, ऋषि, पित्रीश्वर, प्राणीमात्र, अपना शरीर और स्वजनोंको अन्नका विभाग दे इन सबको ईश्वररूप जानना ॥ ६ ॥ धर्मके तत्त्वको जाननेवाला पुरुष श्राद्धमें मांस न देवे और न खावे. क्योंकि–पित्रीश्वर जैसे मुनिअन्नसे तृप्त होते हैं वैसे पशुहिंसासे तृप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ मन, वचन व कायसे किसी प्राणीको दुःख न देना इसके बराबर, उत्तम धर्मकी इच्छावाले पुरुषके वास्ते दूसरा कोईभी उत्कृष्ट धर्म नहीं है ॥ ८ ॥ यज्ञ जाननेवालोंमें उत्तम और निष्काम रहनेवाले कितने-

देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च ॥ अन्नं संविभजन्पश्येत्सर्वं तत्पुरुषात्मकम् ॥ ६ ॥ न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् ॥ मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥ ७ ॥ नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ॥ न्यासो दंडस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥ ८ ॥ एके कर्ममयान्यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः ॥ आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति ॥ एष मा करुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृप् ध्रुवम् ॥ १० ॥ तस्माद्दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ॥ संतुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥ ११ ॥ विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ॥ अधर्मशाखाः पंचेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत् ॥ १२ ॥ धर्मबाधो विधर्मः स्यात्परधर्मोऽन्यचोदितः ॥ उपधर्मस्तु पाखंडो दंभो वा शब्दभिच्छलः ॥ १३ ॥

एक ज्ञानीपुरुष ज्ञानसे प्रदीप्त भयेहुए मनोनिग्रहमें कर्मरूप यज्ञोंको होम देते हैं. तात्पर्य यह कि–मनोनिग्रहमें कर्ममय यज्ञ विघ्नरूप हैं ऐसे जानकर, उनको त्याग देते हैं ॥ ९ ॥ जिनमें पदार्थोंका उपयोग होता है ऐसे यज्ञ करनेके वास्ते तैयार भयेहुए मनुष्यको देख, दूसरे प्राणी भयभीत होते हैं, कि–' आत्माको नहीं जाननेवाला, उदरंभरि (पेटू) और दयाहीन यह मनुष्य निश्चय हमको मारेगा' ॥ १० ॥ अतएव धर्मवेत्ता पुरुषको चाहिये कि–प्रारब्धसे प्राप्त चावलआदि अन्नसे संतुष्ट रहकर, प्रतिदिवस अपनी नित्यनैमित्तिक क्रियायें करता रहे ॥ ११ ॥ विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल इन पांच अधर्मकी शाखाओंको धर्म जाननेवाले पुरुषको अधर्मकी भांति त्याग देना चाहिये ॥ १२ ॥ जिस वस्तुको धर्म समझकर, करते स्वधर्म-

हे राजेंद्र! मनुष्योंमेंभी जो ब्राह्मण तप, विद्या और संतोषपूर्वक भगवान्के शरीररूप वेदका अभ्यास करता है वह उत्तम पात्र है ऐसे महात्मालोक कहते हैं ॥ ४१ ॥ हे राजा! चरणरजसे त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले ब्राह्मणही इस जगत्के आत्मा श्रीकृष्णचंद्रके परम दैवतरूप हैं ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ पन्द्रहवें अध्यायमें सर्व वर्ण व आश्रमोंकी रीति और तदनंतर सर्व मोक्षधर्मके सारके संग्रहसे मोक्षका लक्षण निरूपण किया जायगा ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-हे राजा! कितनेएक ब्राह्मण तौ कर्मनिष्ठ, कितनेएक तपोनिष्ठ, कितनेएक स्वाध्यायनिष्ठ

पुरुषेष्वपि राजेंद्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥ ४१ ॥ नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः ॥ पुनंतः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे सदाचारनिर्णये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठा नृपापरे ॥ स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥ १ ॥ ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानंत्यमिच्छता ॥ दैवे च तदभावेस्यादितरेभ्यो यथाऽर्हतः ॥ २ ॥ ॥ द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥ ३ ॥ देशकालोचिता श्रद्धा द्रव्यपात्रार्हणानि च ॥ सम्यग्भवंति नैतानि विस्तरात्स्वजनार्पणात् ॥ ४ ॥ देशे काले च संप्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ॥ श्रद्धया विधिवत्पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥ ५ ॥

और कितनेएक व्याख्यानकी निष्ठावाले, कितनेएक ज्ञाननिष्ठ और कितनेएक योगनिष्ठ हैं ॥ १ ॥ पितृ और देवसंबंधी कार्योंमें अनंत गुने फलकी इच्छावाले पुरुषको चाहिये कि-ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणको भोजन कराये और वह नहीं मिले तौ पीछे दूसरे ब्राह्मणोंको उनकी योग्यताके अनुसार भोजन करवावे ॥ २ ॥ श्राद्धमें जिन ब्राह्मणोंका निमंत्रण करे वे ब्राह्मण सब प्रकारसे योग्य होने चाहिये इसीलिये पुष्कल समृद्धिवाले पुरुषकोभी श्राद्धमें विश्वेदेवोंके दो और पित्रीश्वरोंके तीन अथवा दोनोंका एक एक ब्राह्मणही जिमाना. परंतु इससे अधिक विस्तार नहीं करना ॥ ३ ॥ विस्तार बढानेसे स्वजनोंका कार बढ जाता है. और विस्तारमें देशकालके उचित श्रद्धा, पदार्थ, पात्र और पूजन येभी विधिसहित नहीं बन सकते ॥ ४ ॥ उचित देश-कालमें व्रीहिआदि मुनियोंका अन्न

कोही मुख्य पात्ररूप माना है, क्योंकि सब स्थावर-जंगम जगत् केवल भगवन्मय है ॥ ३४ ॥ हे राजा! आपके यज्ञमें अग्रपूजाके समय देवता, ऋषि, महात्मा और ब्रह्माजीके पुत्रआदि सब हैं परंतु उन सभोंमेंभी अग्रपूजाके योग्य सर्वोत्तम पात्र तो एक श्रीकृष्ण भगवान्ही हैं ऐसा निर्णय हो चुका है ॥ ३५ ॥ यह ब्रह्मांडरूप बड़ा वृक्ष कि-जो अनेक जीवसमूहोंसे व्याप्त है तिसका मूल भगवान् हैं. अतएव भगवान्की पूजा करनेसे सर्व जीवोंकी और अपनीभी तृप्ति हो जाती है ॥ ३६ ॥ मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि और देवताआदिके पुर (शरीर) भगवान्नेही रचे हैं. और इनमें जीवरूपसे भगवान्ही विराजे हैं. अतएव इनका नाम पुरुष कहलाता है ॥ ३७ ॥ हे राजा! पशु-पक्षियोंके शरीरकी अपेक्षा मनुष्यशरीरमें भगवान् अधिक अंशसे विराजे हैं,

देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ॥ राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाच्युतः ॥ ३५ ॥ जीवराशिभिराकीर्ण आंडकोशांघ्रिपो महान् ॥ तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥ ३६ ॥ पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ॥ शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥ ३७ ॥ तेष्वेषु भगवान् राजंस्तारतम्येन वर्तते ॥ तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप ॥ त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥ ३९ ॥ ततोऽर्चायां हरिं केचित्संश्रद्धाय सपर्यया ॥ उपासत उपास्ताऽपि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥ ४० ॥

तासों मनुष्य पूजन करनेमें पात्ररूप माने जाते हैं तत्रापि (तहांभी) तपआदिके हेतु ज्ञानका अंश जिस जिसमें अधिक देख पड़े उस उस मनुष्यको उत्तम पात्र समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ प्रथम तो मनुष्योंके शरीरमेंही भगवान्की पूजा करनेकी रीति थी. परंतु उनमें परस्पर खटपट होनेके हेतु अवज्ञा होने लगी. उसे देखकर, त्रेतायुगके प्रारंभसे विद्वानोंने भगवान्की प्रतिमाओंकी पूजा करनी नियत कर दी है ॥ ३९ ॥ अतएव कितनेएक लोक मूर्तिमेंही भगवान् हैं ऐसे मानकर, उसकी उपासना करते हैं. मूर्तिका पूजन करनेपरभी जो मनुष्य दूसरे मनुष्योंसे द्वेष करें उनको वह मूर्ति फलदायक नहीं होती. किसी मनुष्यसे द्वेष न करते मूर्तिकी उपासना की जाय तो वह मूर्ति मंद अधिकारीकाभी पुरुषार्थ सिद्ध कर देती है ॥ ४०

समय होवे उस समय पुण्य करना ॥ २६ ॥ अब धर्म आदिकल्याणके साधनभूत पुण्य देशोंके नाम मैं तुमसे कहता हूं सो सुनो॰ जहां चराचरकी निवासभूत भगवान्‌की मूर्तिरूप सत्पात्र मिल जाय वह देश अत्यंत पवित्र जानो. जहां तप, विद्या और दयावाले ब्राह्मण निवास करते हों, जहां भगवान्‌की प्रतिमा होवे, जहां पुराणोंमें प्रसिद्ध गंगाआदि नदियां होवें वह देश कल्याणोंका आश्रयरूप है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ पुष्करआदि सरोवर, महात्मा लोकोंके रहनेके क्षेत्र, कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग,

अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेय आवहान् ॥ स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥ २७ ॥ बिंबं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् ॥ यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम् ॥ २८ ॥ यत्र यत्र-हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ॥ यत्र गंगादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥ २९ ॥ सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत ॥ कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥ ३० ॥ नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ॥ वाराणसी मधुपुरी पंपा बिंदुसरस्तथा ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रमो नंदा सीतारामाश्रमादयः ॥ सर्वे कुलाचला राजन्महेंद्रमलयादयः ॥ ३२ ॥ एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये ॥ एतान्देशान्निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ॥ धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥ ३३ ॥ पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ॥ हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥ ३४ ॥

पुलह ऋषिका आश्रम, ॥ ३० ॥ नैमिषारण्य, फाल्गुनतीर्थ, सेतुबंधरामेश्वर, प्रभास, द्वारका, बनारस (काशी), मथुरा, पंपा, सरोवर, बिंदुसरोवर, ॥ ३१ ॥ नारायणका आश्रम, नंदा, सीता व रामचंद्रजूका आश्रम आदि तथा हे राजा ! महेंद्र व मलय-आदि सब बड़े २ पर्वत ॥ ३२ ॥ और भगवान्‌की स्थिर मूर्तिवाले देश ये सब अत्यंत पवित्र देश गिने जाते हैं. जो मनुष्य अपना कल्याण चाहे वह वारंवार इन देशोंका सेवन करे. इन देशोंमें जो पुण्यकर्म किया जाय वह, मनुष्योंके हजार गुणोंसेभी अधिक फल देनेवाला होता है ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! युधिष्ठिर ! भलीभांति पात्रको पहिंचाननेवाले विद्वानोंने एक भगवान्-

श्रवणद्वादशी, ॥ २० ॥ वैशाखशुक्ल तृतीया (अक्षयतृतीया), कार्तिकशुक्लनवमी (आमलानवमी), हेमंत और शिशिरऋतुमें चार अष्टका नाम तिथियां ॥ २१ ॥ माघशुक्ल सप्तमी, मघा नक्षत्रवाली माघशुक्ल पूनम और दूसरेभी महीनोंकी अपने अपने नक्षत्रोंवाली राका[1] वा अनुमति[2] नाम पूर्णिमासियां जैसे चैत्र चित्रा, वैशाख विशाखा, जेठ जेष्ठा, आषाढ पूर्वाषाढ़ा, वा उत्तराषाढ़ा, श्रावण श्रवण, भादों पूर्वाभाद्रपद वा उत्तराभाद्रपद, कुँवार अश्विनी, कार्तिक कृत्तिका, अगहन मृगशिर, पौष पुष्य और फाल्गुन पूर्वाफाल्गुनी वा उत्तराफाल्गुनी ॥ २२ ॥ द्वादशीके दिन अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद नक्षत्र

तृतीयायां शुक्लपक्षे नवम्यामथ कार्तिके ॥ चतसृष्वप्यष्टकासु हेमंते शिशिरे तथा ॥ २१ ॥ माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ॥ राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि ॥ २२ ॥ द्वादश्यामनुराधास्याच्छ्रावणस्तिस्र उत्तराः ॥ तिसृष्वेकादशी वाऽऽसु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥ २३ ॥ त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः ॥ कुर्यात्सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥ २४ ॥ एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम् ॥ पितृदेवनृभूतेभ्यो यद्दत्तं तद्ध्यनश्वरम् ॥ २५ ॥ संस्कारकालो जायाया अपत्यस्याऽऽत्मनस्तथा ॥ प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥ २६ ॥

हो वह दिन, एकादशीके दिन पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हो वह दिन अथवा जिस तिथिमें जन्मनक्षत्र वा श्रवणनक्षत्र हो उस दिनमें श्राद्ध करना ॥ २३ ॥ ये समय केवल श्रवण करनेके वास्तेही नहीं हैं किंतु मनुष्योंके सर्वप्रकारके धर्मको बढ़ानेवाले हैं. इसीलिये इन पुण्यकालसंबंधी पर्वणियोंमें सर्वप्रकारका पुण्य करना क्योंकि पुण्य करनाही आयुष्यको सफल करनेवाला है ॥ २४ ॥ इन पुण्यतिथियोंमें स्नान, जप, होम, व्रत, देवता व ब्राह्मणोंकी पूजा, जो कुछ किया जाता है और पित्रीश्वर, भूत और मनुष्योंको जो कुछ दिया जाता है वह सब अक्षय हो जाता है ॥ २५ ॥ महाराज ! स्त्रीके और अपनी संतानके अथवा अपने संस्कारके समय, प्रेतके दाहादिकके समय, सांवत्सरिक श्राद्ध और दूसराभी मांगलिक कर्म करनेका

१ संपूर्ण चंद्रमावाली पूनम. २ न्यून चंद्रमावाली पूनम.

है ऐसा यह तुच्छ शरीर और इसी देहके सुखके वास्ते जिसमें प्रीति होती है ऐसी स्त्रियें तो कहा ? तथा सर्वव्यापक और असंग आत्माका स्वरुप कहां ? ॥ १३ ॥ जो अन्नआदि प्रारब्धसे मिलें उनसे पंचमहायज्ञ करनेके अनंतर जो शेष बचे उससे अपना निर्वाह करना और निर्वाह होनेपर जो अवशेष रहे उसमें ममता नहीं राखनी. जो विवेकी पुरुष इसप्रकार रहे वह परपहंस लोगोंकी गतिको प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥ अपनीं योग्य आजीविकासे जो धन मिले उससे नित्य देवता, ऋषि, पित्रीश्वर, मनुष्य और प्राणियोंका पूजन करना. और अपने शरीरकाभी पोषण करना. इस प्रकार करनेसे अंतर्यामी भगवान्कीही वह पूजा होती है ॥ १५ ॥ जब अपनेको अधिकारआदि सर्वयज्ञ करनेकी संपदाका सुभीता मिल जावे तौ वेदविहित

सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद्वृत्तिमात्मनः ॥ शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ॥ १४ ॥ देवानृषीन्नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम् ॥ स्ववृत्त्या गतवित्तेन यजेत् पुरुषं पृथक् ॥ १५ ॥ यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसंपदः ॥ वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥ १६ ॥ न ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक् ॥ इज्येत हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतैः ॥ १७ ॥ तस्माद्ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः ॥ तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥ १८ ॥ कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः ॥ श्राद्धं पित्रोर्यथा वित्तं तद्बंधूनां च वित्तवान् ॥ १९ ॥ अयने विषुवे कुर्याद्व्यतीपाते दिनक्षये ॥ चंद्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च ॥ २० ॥

अग्निहोत्रादि विधिसे यजन करना ॥ १६ ॥ महाराज ! सर्वयज्ञोंके भोक्ता ये भगवान्, ब्राह्मणोंके मुखमें होमनेसे जैसे प्रसन्न होते हैं ऐसे अग्निके मुखमें घृतआदि पदार्थ होमनेसे प्रसन्न नहीं होते ॥ १७ ॥ इसवास्ते ब्राह्मण, देवता, मनुष्य, और दूसरे प्राणियोंको यथायोग्य दान-मान देकर, उनमें अंतर्यामीका पूजन करो. और अंतर्यामीका मुख्य मुख ब्राह्मणही है ऐसे जानो ॥ १८ ॥ द्विजवर्णोंको चाहिये कि-भाद्रपदमासके यानी पूर्णिमांत मासके हिसाबसे कुंवारके महीनेमें कृष्णपक्षमें माता पिताका महालयश्राद्ध करें. और धनकी संपत्ति होवे तौ माता-पिताके बंधुनकाभी करें ॥ १९ ॥ दक्षिणायन (कर्क संक्रांति), उत्तरायण (मकर संक्रांति), मिथुन (मेष और तुलाकी संक्रांति) व्यतीपात, क्षयदिवस, सूर्य-चंद्रमाका ग्रहणदिन,

जातिवाले, माता, पिता, पुत्र, भाई और दूसरे सुहृद जो कुछ कहें वा चाहें उसमें ममता छोड़कर, संमति दे दिया करे ॥ ६ ॥ धान्यादिक, पृथ्वीमेंसे मिलाहुआ निधानआदि और अकस्मात् मिलाहुआ दैवप्राप्त जो पदार्थ होवे, उस सबका उपभोग करता रहे. परंतु विद्वान् पुरुषको चाहिये कि–वह पूर्वोक्त रीतिसे करे ॥ ७ ॥ जितनेसे पेट भर जाय उतनाही तौ प्राणीका अपना है, उससे अधिकमें जो अभिमान राखे वह जन चोरके समान होनेसे शिक्षाके योग्य होता है ॥ ८ ॥ मृग, ऊंट, गधा, बानर, मूषक, सांप, बीछू, पक्षी और मक्खी इन सबको अपने पुत्रके समान देखता रहे; क्योंकि इनमें और पुत्रादिकोंमें कितना अंतर है?

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोपरे ॥ यद्वदंति यदिच्छंति चानुमोदेत निर्ममः ॥ ६ ॥ दिव्यं भौमं चांऽऽतरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् ॥ तत्सर्वमुपभुंजान एतत्कुर्यात्स्वतो बुधः ॥ ७ ॥ यावद्भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम् ॥ अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दंडमर्हति ॥ ८ ॥ मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ॥ आत्मनः पुत्रवत्पश्येत्तैरेषामंतरं कियत् ॥ ९ ॥ त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ॥ यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥ १० ॥ आश्वाघांतेवसायिभ्यः कामान्संविभजेद्यथा ॥ अप्येकामात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः ॥ ११ ॥ जह्याद्यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद्वा पितरं गुरुम् ॥ तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद्यस्तेन ह्यजितो जितः ॥ १२ ॥ कृमिविड्भस्मनिष्ठातं क्वेदं तुच्छं कलेवरम् ॥ क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः ॥ १३ ॥

॥ ९ ॥ घरमें रहनेपरभी अत्यंत कष्ट सहकर, धर्म, अर्थ व कामको संपादन नहीं करना. किंतु देशकालका अनुसरण करके, जितना प्रारब्धसे मिले उसीसे संतुष्ट रहना ॥ १० ॥ कुत्ते, पतित और चांडालआदिपर्यंत सर्वप्राणीमात्रकाभी अपने अन्नमेंसे यथायोग्य विभाग कर देना. स्त्री कि–जो मुख्य करके अपनीही सेवा करनेके वास्ते है और जिसमें मनुष्योंका ‘ यह तौ मेरीही है ’ ऐसा आग्रह है उस स्त्रीकोभी धर्मशास्त्रके कथनानुसार अतिथिसेवामें लगा देना ॥ ११ ॥ जिसके वास्ते मनुष्य अपने प्राण त्याग देते हैं और अपने पिता और गुरुकोभी मार देते हैं, उस स्त्रीमेंसे जिन्होंने ममताका परित्याग किया वे पुरुष अजित भगवान्कोभी अपने वश कर लेते हैं ॥ १२ ॥ जिसकी अंतमें भस्म, कीट वा विष्ठा होनेके सिवाय दूसरी कोईभी गति नहीं

तुमसे मैंने यह कह दिखाया है ॥ ४५ ॥ नारदजीने कहा कि-इस प्रकार अवधूतके मुखसे परमहंसका धर्म सुन, प्रसन्न प्रल्हाद, उनका पूजन कर, आज्ञा ले, पीछा अपने घरको लौट गये ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ चौदहवें अध्यायमें गृहस्थका मोक्षदायी धर्म और देश-काल-आदिके भेदसे दूसरे संसारसंबंधी सुख देनेवाले धर्मभी कहे जायंगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि-हे नारदजी ! मेरेजैसे गृहासक्त मूढमति गृहस्थी पुरुष इस संन्यासीकी पदवीको जिस विधिसे बिना परिश्रम प्राप्त हो जावे वह विधि मुझको कहो ॥ १ ॥

नारद उवाच ॥ धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वरः ॥ पूजयित्वा ततः प्रीत आमंत्र्य प्रययौ गृहम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे युधिष्ठिरनारदसंवादे यतिधर्मे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चांजसा ॥ याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन् गृहोचिताः ॥ वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥ २ ॥ शृण्वन्भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथाऽमृतम् ॥ श्रद्धानो यथाकालमुपशांतजनावृतः ॥ ३ ॥ सत्संगाच्छनकैः संगमात्मजायात्मजादिषु ॥ विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥ ४ ॥ यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पंडितः ॥ विरक्तो रक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥ ५ ॥

नारदजीने कहा कि-हे राजा ! घरमें बैठाहुआ गृहस्थी पुरुष जो कुछ वेदविहित कर्म करे वह सब कर्म साक्षात् वासुदेव भगवान्के अर्पण करे और महामुनियोंकी उपासना करता रहे ॥ २ ॥ भगवान्के अवतारसंबंधी कथारूप अमृतको सदा श्रद्धापूर्वक सुनता रहे और समय २ पर उपशांत लोकोंकी संगति करे ॥ ३ ॥ स्त्री और पुत्रआदि कि-जो एक दिन बिछुरनेवाले हैं उनमेंसे सत्संगके बलसे धीरे धीरे आसक्तिको छोड़ देना चाहिये जैसे स्वप्नमेंसे उठाहुआ मनुष्य स्वप्नमें देखेहुए पुत्रादिकमेंसे आसक्तिको छोड़ देता है ऐसे अपने आप आसक्ति त्याग देनी चाहिये ॥ ४ ॥ विवेकी पुरुषको चाहिये कि-देहमें और घरमें जितना प्रयोजन होवे उतनाही संबंध रक्खे, मनमें वैराग्य रखकर, ऊपरसे आसक्त पुरुषकी नाईं पुरुषार्थ करता रहे ॥ ५ ॥

मैं तो जो कुछ यदृच्छासे मिल जाता है, वह खा कर, सदा प्रसन्न रहता हूं॥ ३८ ॥रेशमी वस्त्र, सूतीवस्त्र, चमड़ा, चीर भोजपत्रआदि बकले औरभी जो कुछ मिल जाता है वही पहिन लेता हूं और प्रपर दृष्टि रखकर, सदा प्रसन्न रहता हूं ॥ ३९ ॥ कभी पृथ्वीपर सोरहता हूं. कभी तृण, पत्ते, चट्टान और भस्मीमें लोट जाता हूं. कभी कोई आकर, पकड़ कर ले जाता है तब उसकी इच्छाके अनुसार महलमें पलँगपर तोशकआदिपर शयन करता हूं ॥ ४० ॥ कभी स्नान किये, शरीरमें अरगजा लगाये, सुंदर वस्त्र पहिरे, माला और आभूषण धारण किये, रथ, घोड़े व हाथियोंपर बैठा विचरता हूं. कभी हे प्रभु ! ग्रहकी नाई दि

क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा॥ वसेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् ॥ ३९॥ क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु ॥ क्वचित्प्रासादपर्यंके कशिपौ वा परेच्छया ॥ ४० ॥ क्वचित्स्नातोऽनुलिप्तांगः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ॥ रथेभाश्वैश्वरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद्विभो ॥ ४१ ॥ नाहं निंदे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ॥ एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥ ४२ ॥ विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे ॥ मनो वैकारिके हुत्वा तं मायाया जुहोत्यनु ॥ ४३ ॥ आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात्सत्यदृङ्मुनिः ॥ ततो निरीहो विरमेत्सानुभूत्याऽऽत्मनि स्थितः ॥ ४४ ॥ स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ॥ व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान्हि भगवत्परः ॥ ४५ ॥

गंबर होकर, फिरता हूं ॥ ४१ ॥ स्वभावसे विषम इस जनकी न तो मैं निंदा करता हूं और न स्तुति करता हूं. किंतु इन सबका कल्याण और परमेश्वरमें एकता होना चाहता हूं ॥ ४२ ॥ भेदको मनकी वृत्तिमें होम देना. वृत्तिको पदार्थरूप विभ्रमवाले मनमें होम देना. मनको अहंकारमें होम देना और अहंकारको महत्तत्त्वद्वारा मायामें होम देना ॥ ४३ ॥ फिर मायाको, सत्यस्वरूपको देखनेवाला मुनि स्वरूपके अनुभवमें होमे. फिर उद्यमरहित होकर, अपने अनुभवसे स्वरूपमें रहकर, विरामको पावे ॥ ४४ ॥ मेरा आचरण यद्यपि अत्यंत गुप्त और लोक व शास्त्रसे उलटा है. तथापि तुम भगवान्के भक्त हो, इसवास्ते

सब ओरसे शंकितचित्त रहते हैं ॥ ३१ ॥ जिनको जीने और धनकी लालसा रहती है उनको राजसे, चोरसे, शत्रुसे, स्वजनसे, पशु–पक्षीसे, मांगनेवालोंसे, कालसे और निजसेभी सदा भय बना रहता है ॥ ३२ ॥ प्राण और धनकी तृष्णा कि–जिसके हेतु मनुष्योंके शोक, मोह, भय, क्रोध, प्रीति, दीनता और परिश्रमआदि हुआ करते हैं उसीको तज देना बुद्धिमान् पुरुषका काम है ॥ ३३ ॥ इस लोकमें मधुमक्षिका (शहदकी मक्खी) और अजगर ये दो हमारे बड़े गुरु हैं, जिनसे शिक्षा पाकर, हम वैराग्य और संतोषको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ मधुमक्षिकासे मैं सर्वविषयोंमें वैराग्य रखनेकी शिक्षा पाया हूं. जो मनुष्य अतिशय परिश्रम करके धन इकठा करता है, उसका धन जैसे मधुमक्षिकाके कष्टोपार्जित शहदको उसे मार कर, व्याध ले जाता है,

राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः ॥ अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ॥ ३२ ॥ शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः ॥ यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात्स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥ ३३ ॥ मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ ॥ वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥ ३४ ॥ विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ॥ कृच्छ्राप्तं मधुवद्वित्तं हत्त्वाऽप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥ ३५ ॥ अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ॥ नोचेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुंजेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा ॥ क्वचिद्भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥ ३७ ॥ श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम् ॥ भुंजे भुक्त्वाऽथ कस्मिंश्चिद्दिवा नक्तं यदृच्छया ॥ ३८ ॥

ऐसे उस पुरुषको मार कर, अन्य पुरुष ले जाता है ॥ ३५ ॥ अजगरसे संतोष रखना सीखा हूं. मुझे विना उद्यम किये जो कुछ पदार्थ यदृच्छासे मिल जाता है उसीसे मैं संतुष्ट रहता हूं. किसी समय बिलकुल नहीं मिलता तौ उस समयभी मैं उद्योग नहीं करता, किंतु जैसे अजगर विना खाये धीरज धरकर, पड़ा रहता है वैसे बहुत दिनोंतक सोया पड़ा रहता हूं. परंतु उद्यम नहीं करता ॥ ३६ ॥ मुझको कभी न्यून कभी अधिक, कभी स्वादु, कभी अस्वादु, कभी बहुत गुणवाला, कभी बिलकुल गुणहीन जो कुछ आहार मिलता है वही खा लेता हूं ॥ ३७ ॥ कहीं तौ कोई श्रद्धासे लाकर, देता है. कभी अपमान करके, देता है. कभी दिनमें मिलता है और कभी रात्रिमें हाथ लगता है. तथापि

पीछा मनुष्यदेहका और निवृत्तिसे मोक्षका द्वार है ॥ २४ ॥ इस मनुष्यजन्ममेंभी सुख प्राप्त होनेके वास्ते और दुःख मिटानेके वास्ते अनेक प्रकारके कर्म स्त्री–पुरुष किया करते हैं, परंतु उनसे उनको वांछित फलसे विपरीत फल मिलता है. इस बातको देखकर, मैं सर्वकर्म करनेसे निवृत्त हुआ हूं ॥ २५ ॥ इस जीवका स्वरूप सुख है. जो सब क्रियाओंके बंद होनेपर अपने आप प्रकाशमान होता है. सर्वप्रकारके भोगोंको मनकल्पित और अवास्तविक जान कर; मैं उद्यमशून्य रहता हूं. और प्रारब्धसे जो अपने आप मिल जाता है उसे भोगता रहता हूं ॥ २६ ॥ अपना सुखरूप पुरुषार्थ अपनेमेंही है उसे विस्मृत होकर, यह जन द्वैत पदार्थ अवास्तिक होनेपरभी भयंकर संसारके प्रवाहमें भटका करता है ॥ २७ ॥ जैसे कोई मूर्ख मनुष्य, काईआदिसे आच्छादित जलको छोंड़कर,

अत्रापि दंपतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ॥ कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥ २५ ॥
सुखमस्याऽऽत्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः ॥ मनः संस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् ॥
॥ २६ ॥ इत्येतदात्मनः स्वार्थं संतं विस्मृत्य वै पुमान् ॥ विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥ २७ ॥ जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञो जलकाम्यया ॥ मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक्स्वतः ॥२८॥ देहादिभिर्दैववतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः ॥ दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥२९॥
आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित् ॥ मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैःकामैः क्रियेत किम्॥ ३०॥ पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ॥ भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशंकिनाम् ॥ ३१ ॥

जल पीनेकी इच्छासे मृगतृष्णाके जलकी ओर दौंड़े, ऐसे अपने स्वरूपके सिवाय दूसरी ठौर सुख देखताहुआ विषयोंकी ओर दौड़ा करता है ॥ २८ ॥ देहादिक पदार्थ कि– जो दैवके आधीन हैं उनसे सुख प्राप्त होना चाहते और दुःख मिटाना चाहतेहुए भाग्यहीन पुरुष जो जो उद्यम करते हैं वे सब निष्फलही जाते हैं ॥ २९ ॥ आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंसे कदापि (कभीभी) मुक्त नहीं होताहुआ और जिसके शिरपर सदा मृत्यु घूम रही है ऐसा मनुष्य यदि कदाचित् बड़ी भारी कठिनतासे धन वा सुखको उपार्जनभी कर लेवे, परंतु उससे उसको क्या हुआ ? कुछभी नहीं ॥ ३० ॥ लोभी और अजितेंद्रिय धनवान् पुरुषोंके मैं तो सदा क्लेशही देखता हूं. क्योंकि एक तो उनको भयके मारे रातमें निद्रा नहीं आती. दूसरे वे-

करके वह कारण कहो कि-जिससे यह आपका शरीर पुष्ट हुआ है ॥ १७ ॥ लोक तौ धन उपार्जन करनेआदिमें असमर्थ होनेपरभी उसके वास्ते उद्यम करते हैं. और आप तौ समर्थ होनेपरभी उद्यम नहीं करते सो इसका कारण क्या है ? आप विद्वान, समर्थ, चतुर और वार्तालापसे लोकोंको प्रसन्न करनेवाले होनेपरभी शयन करते हो. और लोक कर्म किया करते हैं उनको देखते रहते हो; तथापि सम होनेके कारण न तौ किसीके कामकी स्तुति करते हो और न निंदा करते हो ॥ १८ ॥ नारदजीने कहा कि-इसप्रकार प्रल्हादने प्रश्न किया. तब उसके वचनरूप अमृतसे वशीभूत भयेहुए इन योगीने हँसकर, इसप्रकार कहा ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयजीने कहा कि-हे दैत्यराज ! तुम कि-जो ज्ञानीजनोंमें प्रख्यात हो. वे, प्रवृत्ति और निवृत्तिमें मनुष्योंको कै-

कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः ॥ लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षितापि वा ॥ १८ ॥
नारद उवाच ॥ स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः ॥ स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयंत्रितः ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवानन्वार्यसंमतः ॥ ईहोपरमयो नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥ २० ॥ यस्य नारायणो देवो भगवान्हृद्गतः सदा ॥ भक्त्या केवलयाऽज्ञानं धुनोति ध्वांतमर्कवत् ॥ ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथाश्रुतम् ॥ संभावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥ २२ ॥ तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया ॥ कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥ २३ ॥ यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥ २४ ॥

सा फल मिलता है उसको अंतर्दृष्टिसे अच्छीतरह जानतेही हो ॥ २० ॥ क्योंकि शुद्ध भक्तिके हेतु तुम्हारे हृदयमें निरंतर विराजकर, नारायण भगवान, सूर्यजैसे अंधकारका नाश करें वैसे तुम्हारे अज्ञानको दूर करते हैं ॥ २१ ॥ हे राजा ! तथापि जैसा हमने सुना है उसके अनुसार आपके प्रश्नोंका उत्तर हम देंगे. क्योंकि-जिनको अपना अंतःकरण शुद्ध करनेकी इच्छा होवे उनको आपको अवश्य मान देना चाहिये ॥ २२ ॥ जन्म-मरणके प्रवाहको चलानेवाली और योग्य विषयोंसेभी शांत न होनेवाली तृष्णाने कर्म करवाकर, मुझको अनेक योनियोंमें गिराया था ॥ २३ ॥ कर्मोंसे भटकता हुआ मैं इसी तृष्णासे अब दैवगतिसे पीछा इस मनुष्यदेहमें डाला गया हूं. जो मनुष्यदेह पुण्यसे स्वर्गका, पापसे नीचयोनियोंका, पुण्य-पापके मिश्रितपनसे

इस विषयमें प्रल्हाद और अजगरवृत्तिवाले एक मुनि-(दत्तात्रेय) का संवादरुप एक पुरातन इतिहास कहा जाता है वह कहता हूं-सो सुनो ॥ ११ ॥ लोकोंकी रीति भांतिकी जाननेकी इच्छासे कितनेएक अमात्यवर्गको संग लेकर, लोकोंमें दौरा करनेको निकले हुए महावैष्णव प्रल्हादके, सह्याद्रिके पास काबेरी नदीके तटपर धरतीपर सोयेहुए और शरीरके अवयव धूलिसे भर जानेके कारण जिनका निर्मल तेज आच्छादित हो रहा था ऐसे ये योगी, दृष्टिमें आये ॥ १२ ॥ १३ ॥ कर्म, आकृति, वाणी वा वर्णाश्रमआदिके चिन्होंपरसे 'ये वे हैं वा नहीं' ऐसे किसीसे पहिँचाने न जांय ॥ १४ ॥ ऐसे इन योगीको प्रणाम करके,

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥ ११ ॥ तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ॥ रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥ १२ ॥ ददर्श लोकान्विचरँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ वृतोमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ १३ ॥ कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिंगैर्वर्णाश्रमादिभिः ॥ न विदंति जना यं वै सोऽसाविति न वेति च ॥ १४ ॥ तं नत्वाऽभ्यर्च्य विधिवत्पादयोः शिरसा स्पृशन् ॥ विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥ १५ ॥ बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्यथा ॥ वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह ॥ भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा ॥ १६ ॥ न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन्नुहार्थो यत एव भोगः ॥ अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत् ॥ १७ ॥

विधिपूर्वक पूजा करनेके अनंतर चरणमें शिर रखकर, पहँचाननेकी इच्छासे महावैष्णव प्रल्हादजीने इस प्रकार कहा ॥ १५ ॥ प्रल्हादने पूंछा कि-आप मानों उद्यम करनेवाले और भोग भोगनेवाले हो ऐसे आपका शरीर पुष्ट है सो यह कैसे ? क्योंकि उद्यम करनेवालोंको धन मिलता है. धनवालोंको भोगका सुख मिलता है और भोगके सुखवालोंका शरीर पुष्ट होता है. विना भोगसुखके शरीर पुष्ट नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ आप तौ सोते रहते हो. और कोईभी उद्यम नहीं करते. अतएव आपके पास धनका होना संभवे नहीं. और धनविना भोग मिले नहीं. और भोगविना शरीरका पुष्ट होना संभवे नहीं. इसीलिये मैं आपसे पूंछता हूं कि-भोग भोगे विनाभी यह आपका शरीर किससे पुष्ट हुआ है ? सो यदि हमको कहनेके योग्य होवे तौ कृपा

आत्मस्वरूप आच्छादित रहता है और जाग्रत व स्वप्नअवस्थामें विक्षेपके हेतु प्रकाशता नहीं, परंतु अवस्थाओंकी संधिमें तमोगुणका विक्षेप नहीं होता, तासों उस समयमें आत्माको लक्ष्य बनाकर ,आत्मस्वरूपको देखते रहना. तथा बंध व मोक्षको मायामात्र जानकर, आत्माको सर्वत्र व्यापक देखते रहना ॥ ५ ॥ इस देहका मरण कि–जो अवश्य होनेवाला है उसकी इच्छा नहीं करनी. ऐसेही जीवित कि–जो रहनेका नहीं है उसकीभी इच्छा नहीं करनी. केवल प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाश करनेवाले कालकीही राह देखते रहना ॥ ६॥ अनात्मप्रतिपादक नाटकआदि शास्त्रोंमें आसक्ति नहीं रखनी. वैद्यक वा ज्योतिषआदिकी वृत्ति नहीं करनी. अयोग्य वादविवादका और तर्कका परित्याग करना. किसी पक्षका आग्रह नहीं रखना ॥ ७ ॥ बहुत शिष्य नहीं करने. बहुत ग्रंथोंका अभ्यास नहीं करना. सभा इकट्ठी करके, वक्तृताआदिका कार्य नहीं करना. मठ बांधनेआदि आरं-

नाभिनंदेद्ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य जीवितम् ॥ कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ ६ ॥ नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् ॥ वादवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कंचन संश्रयेत् ॥ ७ ॥ न शिष्याननुबध्नीत ग्रंथान् नैवाभ्यसेद्बहून् ॥ न व्याख्यामुपयुंजीत नारंभानारभेत्क्वचित् ॥ ८ ॥ न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः ॥ शांतस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ॥ ९ ॥ अव्यक्तलिंगो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् ॥ कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्यादर्शयेन्नृणाम् ॥ १० ॥

भोंका आरंभ नहीं करना ॥ ८ ॥ ज्ञान उत्पन्न न हुआ हो तबलों संन्यासके चिन्ह धारण करके, अंतःकरणकी शुद्धिके वास्ते यम नियम पालकर, ज्ञान प्राप्त होनेके वास्ते यत्न करना. परंतु ज्ञान उत्पन्न भये पीछे उन नियमोंको पालनेकी कोई आवश्यकता नहीं. और यमभी स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं. तासों उस समयमें शांत और समचित्तवाले महात्मा संन्यासीके आश्रमके चिन्हआदि धारण करनेसे कोई प्रयोजन नहीं है. आश्रमके चिन्हआदि रखनेसे संन्यासीको किसी प्रकारका धर्म नहीं होता, तासों उनको रखना वा न रखना यह उसकी इच्छापर है ॥ ९ ॥ बाहिरके चिन्ह रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है. किंतु आत्माका अनुसंधान रखनेकी अत्यंत आवश्यकता है. संन्यासीको उचित है कि–स्वयं (आप) विद्वान् होनेपरभी लोकोंकी दृष्टिमें उन्मत्त और बालककी भांति रहे. और विचक्षण होनेपरभी अपने शरीरको मूक (गूंगा) जैसा दिखावे ॥ १० ॥

प्रकृतिको परमात्मामें लय करना ॥ ३० ॥ इस प्रकार शेष रहेहुए चैतन्यस्वरूप आत्माको परब्रह्मरूप जान, अद्वैतभावसे विराजमान होकर, जिसके काठ जलगये हैं ऐसे अग्निकी नाईं अपने आप विरामको प्राप्त होना ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामस्वामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ तेरहवें अध्यायमें साधक संन्यासीका धर्म और अवधूतके इतिहाससे सिद्धकी अवस्था कही जायगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि- जो वानप्रस्थ, ब्रह्मविचारमें अशक्त होवे उसको पूर्वोक्त रीतिके अनुसार करना चाहिये. और जो ब्रह्मविचारमें समर्थ होवे उसको चाहिये कि-संन्यास लेकर, देहके सिवाय

इत्यक्षरतयाऽत्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ॥ ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ॥ ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥ १ ॥ बिभृयाद्यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दंडलिंगादेरन्यत्किंचिदनापदि ॥ २ ॥ एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ॥ सर्वभूतसुहृच्छांतो नारायणपरायणः ॥ ३ ॥ पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये ॥ आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥ ४ ॥ सुप्तप्रबोधयोः संधावात्मनो गतिमात्मदृक् ॥ पश्यन्बंधं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥ ५ ॥

सब वस्तुमात्रका त्याग करके, किसी प्रकारकी लालसा न रखता पृथ्वीमें विचरता रहे. और गाँवमें एकरात्रिसे अधिक न रहे ॥ १ ॥ यदि संन्यासी वस्त्र धारण करना चाहे तो जिससे कौपीन ढक जाय उतना वस्त्र स्वस्थपनमें धारण करे, परंतु दंडआदि चिन्होंके सिवाय आपदा बिना और कुछभी पदार्थ अपने पास न राखे; क्योंकि-जिसका परित्याग कर दिया, फिर उसका लेना योग्य नहीं ॥ २ ॥ संन्यासीको चाहिये कि-इकल्ला विचरे. अपने आत्मविचारसे आनंदित रहे. किसीका आश्रय न लेवे. संपूर्ण प्राणीमात्रसे सुहृद्भाव राखे. शांतचित्त रहे. नारायणके परायण रहे ॥ ३ ॥ कार्य कारणसे अथवा स्थूल सूक्ष्मसे पर अविनाशी परमेश्वरमें सब जगत् रहा है और कार्य-कारणमय सब जगत्में परब्रह्म विराजे हैं, ऐसे देखते रहे ॥ ४ ॥ सुषुप्तिमें तमोगुणके हेतु

ज्ञानाभ्यास करनेमेंभी असमर्थ होवे तब उसको चाहिये कि–अनशनआदि व्रत धारण करे ॥ २३ ॥ यह व्रत धारण करे, उससे प्रथम अग्निहोत्रसंबंधी अग्नियोंका देहमेंही आरोपण कर, (ध्यान करके) अहंता ममताको त्यागकर, भलीभांति यथायोग्य देहका उसकी उत्पत्तिके कारणोंमें लय करे ॥ २४ ॥ उत्पत्तिके अनुसार देहके छिद्रोंको आकाशमें, श्वासको वायुमें, गर्मीको तेजमें, रुधिर श्लेष्म और पूयको जलमें, अस्थिआदि दूसरे कठिन भागोंको पृथ्वीमें ॥ २५ ॥ वाणी और उसके कर्मरूप भाषणको अग्निमें, हाथ और उसके कर्मरूप शिल्पको इंद्रमें, चरण और उसकी कर्मरूप गतिको विष्णुमें, उपस्थ और उसकी कर्म-

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम् ॥ कारणेषु न्यसेत्सम्यक् संघातं तु यथार्हतः ॥ २४ ॥ खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् ॥ अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम् ॥ २५ ॥ वाचमग्नौ सवक्तव्यामिंद्रे शिल्पं करावपि ॥ पदानि गत्यावयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥ २६ ॥ मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् ॥ दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम् ॥ २७ ॥ रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिष्यभिनिवेशयेत् ॥ अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥ २८ ॥ मनो मनोरथैश्चंद्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे ॥ कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममताक्रिया ॥ सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणवैकारिकं परे ॥ २९ ॥ अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तम् ॥ ३० ॥

रूप रतिका प्रजापतिमें ॥ २६ ॥ पायु और उसके कर्मरूप मलोत्सर्गको मृत्युमें, श्रोत्र और शब्दका दिशाओंमें. त्वचा और स्पर्शको वायुमें ॥ २७ ॥ चक्षु और रूपको तेजमें, जिव्हा और वरुणको जलमें, घ्राण और अश्विनीकुमारोंको गंधवाली पृथ्वीमें ॥ २८ ॥ मन और मनोरथको चंद्रमामें, बुद्धि और उसके विषयोंको ब्रह्मामें, अहंकार और उसके कर्मोंको रुद्रमें कि–जिनसे अहंता ममतापूर्वक क्रिया हुआ करती हैं. क्षेत्रज्ञ (जीव), गुण और देवतानको परब्रह्ममें लय करना ॥ २९ ॥ पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें और आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको प्रकृतिमें और

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी वा गृहस्थ इसप्रकार रहनेसे ज्ञेय वस्तुको जानकर, परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ १६ ॥ अब मुनिलोकोंके संमत वानप्रस्थके धर्म कहता हूं सो सुनो. जिन धर्मोंका यहां अनुष्ठान करनेसे मुनि विना श्रम ऋषिलोकको प्राप्त हो जाता है ॥ १७ ॥ खेतीसे पकाहुआ नाज नहीं खाना, खेतीविना पकाहुआ होनेपरभी जो विना समय पका हो वह नहीं खाना, जो फलआदि पदार्थ सूर्यसे पके हुए हों वे खाने. और ऐसे न बन सके तौ अन्नादिक पदार्थ अग्निमें पकाकर, अथवा वैसाका वैसा कच्चा खाना ॥ १८ ॥ वनमें पैदा भयेहुए नीवारआदि पदार्थोंसे शास्त्रने जिस समयमें

एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ॥ चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १६ ॥ वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसंमतान् ॥ यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहांजसा ॥ १७ ॥ न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः ॥ अग्निपक्वमथाऽऽमं वा अर्कपक्वमुताहरेत् ॥ १८ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशान्निर्वपेत्कालचोदितान् ॥ लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥ १९ ॥ अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाऽद्रिकंदराम् ॥ श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम् ॥ २० ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधत् ॥ कमंडल्वजिनेदंडवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥ २१ ॥ चरेद्वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः ॥ द्वावेकं वा यथाबुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥ २२ ॥ यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाऽथवा ॥ आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम् ॥ २३ ॥

यज्ञआदि करनेको कहा है उस समयमें चरु व पुरोडाशआदि होम करना. अन्नआदि वस्तु नयी मिलजाय तब पुरानी वस्तुका परित्याग कर देना ॥ १९ ॥ अग्निकी रक्षाके वास्तेही पर्णकुटी वा पर्वतकी गुफाका आश्रय लेना. बाकी आप तौ सर्दी, वायु, अग्नि, वर्षा और गर्मीको सहकर, रहे ॥ २० ॥ केश, रोम, नख, श्मश्रु (डाढ़ी मूछ) को धारण करना. मैलको धोकर, कभी नहीं निकालना, जटा राखनी, कमंडलु, मृगचर्म, दंड, वल्कल व अग्निहोत्रकी सामग्री राखनी ॥ २१ ॥ इसप्रकार वनमें बारह, आठ, चार, दो वा एक वर्षपर्यंत रहना. तपके क्लेशसे बुद्धि नष्ट न हो जावे ऐसे पूर्वोक्त पक्षोंमेंसे चाहिये जिसपक्षको ग्रहण करना ॥ २२ ॥ वानप्रस्थ आश्रममें जब व्याधिसे अथवा जरासे अपनी क्रिया करनेमें असमर्थ हो जाय और

बैठना. यदि प्रयोजन हो तो भले उतनी बेरतक एकांतमें रहे. परंतु विना प्रयोजन क्षणभरभी न बैठे ॥ ९ ॥ स्वरूपके साक्षात्कारसे यह द्वैत अवस्तुरूप है ऐसा निश्चय करके, जबलों यह जीव स्वतंत्र न हो जाय; तबलों इसकी द्वैतकी भावना नहीं मिटती. और वह भावना न मिटे तबलों विषयोंमें लालच होनेकाभी संभव है. अतएव कहा गया है कि– स्त्रीआदिसे बने वहांतक दूरही रहना चाहिये ॥ १० ॥ सुशील रखना इत्यादि जो ब्रह्मचारीके धर्म कहे गये वे सब गृहस्थीके वास्ते और संन्यासीके वास्तेभी बराबर हैं. परंतु गृहस्थी ऋतुकालमें स्त्रीसंग करे और गुरुसेवा बन सके तो करे इतना विशेष है ॥ ११ ॥ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी लोंकोंको चाहिये कि–सुरमा आखमें न डालें. शरीरमें तेल न लगावें, मर्दन न करें, स्त्रीको व

कल्पयित्वाऽऽत्मना यावदाभासमिदमीश्वरः ॥ द्वैतं तावन्न विरमेत्ततो ह्यस्य विपर्ययः ॥ १० ॥ एतत्सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि ॥ गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥ ११ ॥ अंजनाभ्यंजनोन्मर्दस्यवलेखामिषं मधु ॥ स्रग्गंधलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥ १२ ॥ उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुध्य च ॥ त्रयीं सांगोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥ १३ ॥ दत्त्वावरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः ॥ गृहं वनं वा प्रविशेत्प्रव्रजेत्तत्र वा वसेत् ॥ १४ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ॥ भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥ १५ ॥

स्त्रीके चित्रआदिकोभी न देखें. मद्य, मांस, माला, सुगंध, अरगजा, अलंकारआदि भोगोंका त्याग करें ॥ १२ ॥ इसप्रकार गुरुके घर रहकर, अंग और उपनिषद्सहित तीनों वेदोंका अपनी शक्ति और अधिकारके अनुसार अभ्यास करके तथा अर्थ जानके ॥ १३ ॥ जो शक्ति हो तो गुरु जैसी गुरुदक्षिणा मांगे वैसी गुरुदक्षिणा देनी. फिर गुरुसे आज्ञा मांग, अधिकारके अनुसार गृहस्थाश्रममें, वनमें वा संन्यासाश्रममें जाना. वा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करके वहीं रहना ॥ १४ ॥ अग्नि, गुरु, आत्मा और सर्वप्राणीमात्रमें अपने अंशभूत जीवोंके साथ उनके नियंतापनसे प्रविष्ट हों ऐसे प्रतीत होनेपरभी वस्तुतः प्रवेश न कियेहुए भगवान्का चिंतवन करना. यानी अग्निआदि सर्व ईश्वररूप होनेसे प्रभुका प्रवेश होना संभवे नहीं ऐसे विचारना ॥ १५ ॥

सायंकालमें और प्रातःकालमें गुरु, अग्नि, सूर्य और उत्तम देवतानकी उपासना करे. तीनों संध्योपासनके समयमें सावधानीके साथ गायत्री मंत्रका जप करे. सायंकालमें और प्रातःकालमें मौन राखे ॥ २ ॥ गुरु पढ़ानेको बुलावें तब उनसे अतिध्यान धरकर, वेद पढ़े. पढ़नेके आरंभमें और अंतमें गुरुके चरणमें मस्तकसे प्रणाम करे ॥ ३ ॥ शास्त्रमें जैसा कहा है उसके अनुसार मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दंड और कमंडलु धारण करे. हाथमें दर्भ राखे. यज्ञोपवीत धारण करे ॥ ४ ॥ तथा सायंकालमें और प्रातःकालमें भिक्षा मांगकर, लाना जो आवे वह सब गुरुके अर्पण करना, गुरु आज्ञा देवें तौ खाना

सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् ॥ उभे संध्ये च यतवाग् जपन्ब्रह्म समाहितः ॥ २ ॥ छंदांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत्सुयंत्रितः ॥ उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥ ३ ॥ मेखलाजिनवासांसि जटादंडकमंडलून् ॥ बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥ ४ ॥ सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत् ॥ भुंजीत यद्यनुज्ञातो नोचेदुपवसेत्कचित् ॥ ५ ॥ सुशीलो मितभुग्दक्षः श्रद्दधानो जितेंद्रियः ॥ यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥ ६ ॥ वर्जयेत्प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः ॥ इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंत्यपि यतेर्मनः ॥ ७ ॥ केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यंजनादिकम् ॥ गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा ॥ ८ ॥ नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुंभसमः पुमान् ॥ सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ॥ ९ ॥

और जो आज्ञा न देवें तौ उपवासभी कर डालना ॥ ५ ॥ सुंदर स्वभाव रखना, प्रमित भोजन करना, पवित्रतासे रहना, श्रद्धा राखनी, जितेंद्रिय रहना, स्त्रियोंके साथ और स्त्रीलंपट लोकोंके साथ भिक्षा लेनेके वास्ते जितना प्रयोजन हो उतना व्यवहार राखना ॥ ६ ॥ केवल ब्रह्मचारीही नहीं, किंतु औरभी जो गृहस्थसे व्यतिरिक्त ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला है वह, स्त्रीसंबंधी बातभी नहीं करे, क्योंकि–ये बलवान् इंद्रियां मनुष्यके मनको बलात्कारसे वश कर लेतीं हैं ॥ ७ ॥ यदि गुरुपत्नियां तरुण-अवस्थामें हों तौ आप युवा होनेके कारण अपने केश सँवारना, मर्दन करना, स्नान और अभ्यंगआदि उनके हाथ न करवावे ॥ ८ ॥ क्योंकि–स्त्री तौ अग्निके समान और पुरुष घृतकुंभके समान है. विना अवसर अपनी कन्याके साथभी एकांतमें नहीं

विकासे वर्तनेवाला और आपना कर्म करनेवाला मनुष्य अपने स्वभावसे पैदा भयेहुए कर्मबंधनमेंसे धीरे धीरे मुक्त होकर, नि- र्गुणताको प्राप्त हो जाता है ॥ ३२ ॥ जिस खेतमें बारंबार बोया जावे, वह खेत स्वयमेव (आपही) निर्वीर्य हो कर, पीछा धान्य उत्पन्न नहीं कर सकता. केवल इतनाही नहीं परंतु उसमें बोया हुआ बीजभी नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार कामनाओंसे भराहुआ चित्त अतिबहुत विषय भोगनेसे तृप्त होकर, पीछे स्वयमेव (आपही) वैराग्यको प्राप्त हो जाता है. जो मनुष्य अतिबहुल वासनावाला होवे उससे एकसाथ वासनाका त्याग नहीं हो सकता. तासों उस मनुष्यको चाहिये कि-वेदोक्त नियमसे बहुतसे विषयोंका भोग करते नित्य नैमित्तिक कर्म करते रहेना. इन कर्मोंके हेतु विषयोंमें दोष देख- नेसे ययाति राजा और सौभरि ऋषिकी नाईं धीरे २ स्वयमेव (आपही) वैराग्य प्राप्त हो जाता है. जैसे जलताहुआ अग्नि

उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ॥ न कल्पते पुनः सूत्या उप्तं बीजं च नश्यति ॥ ३३ ॥ एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ॥ विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत्कामबिंदुभिः ॥ ३४ ॥ यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यंजकम् ॥ यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दांतो गुरोर्हितम् ॥ आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥ १ ॥

घृतके बिंदुओंसे शांत नहीं होता किंतु अधिकतर डालनेसे शांत होता है. ऐसेही चित्त, कुछ कुछ विषय भोगनेसे शांत नहीं होता. किंतु अतिबहुल विषय भोगनेसे शांत होता है. दूसरे स्थलोंमें बालकपनसे निवृत्ति रखनेके वास्ते जो कहा गया है. उसकी वासनाओंके मंद और अमंदपनसे व्यवस्था जाननी ॥ ३४ ॥ जिस मनुष्यके वर्णको जाननेवाला जो लक्षण कहा गया है वह लक्षण जो उससे दूसरे वर्णके मनुष्यमें देख पड़े तो उस मनुष्यकोभी उसीवर्णका समझना चाहिये ॥ ३५ ॥ इति श्रीभा- गवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ बारहवें अध्यायमें ब्रह्मचारी व वानप्रस्थके धर्म और चारों आश्रमोंके कछुक साधारण धर्मभी कहे जायंगे ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-ब्रह्मचारी गुरुके घर जितेंद्रियपनसे रहे, गुरुके हितमें तत्पर रहे, दासकी भांति अत्यंत नम्रता राखे, गुरुपर दृढ़ प्रीति राखे ॥ १ ॥

साधन, नम्रता, जितेंद्रियपन और सत्य व प्रिय लगें ऐसे वचनोंसे समय समयपर प्रेमपूर्वक पतिकी सेवा करनी. आप शृंगार किये रहना. और घरकी चीज वस्तु सब स्वच्छ रखनी ॥ २६ ॥ २७ ॥ जो कुछ मिले उतनेसेही संतोष रखना, मिलेहुए पदार्थ भोगनेमेंभी लोलुपता नहीं रखनी, आलस्यका परित्याग करना, सत्य और प्रिय वचन बोलना, सावधान रहना और पति पतित न हो तौ पवित्रतासे और स्नेहसे उसकी भक्ति करनी ॥ २८ ॥ जो स्त्री पतिके परायण होकर, लक्ष्मीके

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ॥ वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम् ॥ २७ ॥ संतुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ॥ अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥ २८ ॥ या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा ॥ हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥ २९ ॥ वृत्तिः संकरजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् ॥ अचौराणामपापानामंत्यजांतेऽवसायिनाम् ॥ ॥ ३० ॥ प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ॥ वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत् ॥ ३१ ॥ वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ॥ हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥ ३२ ॥

समान अपने पतिको हरिरूप जानकर, अपने पतिकी सेवा करे, वह स्त्री विष्णुरूप अपने पतिके साथ लक्ष्मीकी नांई भगवानके वैकुंठलोकमें आनंदित रहती है ॥ २९ ॥ वर्णसंकर जातिवालोंका यह धर्म है कि- चोरी व पाप न करके, अपने अपने कुलकी आजीविकासे निर्वाह करें. अंत्यज (चांडाल) व नाई प्रभृतिभी इसी प्रकार अपना निर्वाह करें ॥ ३० ॥ दूसरेके धर्मकी अपेक्षा अपना धर्म नीच हो तौभी वही अपने वास्ते सुखकारी है ऐसे जानना. सत्वादिक प्रकृतिपरसे प्रत्येक युगमें मनुष्योंके वास्ते जो जो धर्म शास्त्रवेत्तानने कहा है वही धर्म इस लोक और परलोकमें सुखदाता है ॥ ३१ ॥ सत्वादिक प्रकृतिपरसे नियत कीहुई आजी-

---

१ रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥ कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः ॥ १ ॥ अर्थ–धोबी, चमार, नट, बुरुड [बेड़िया], कैवर्त [केवट], मेद और भील यही सात अन्त्यज कहे हैं ॥ १ ॥

इसे ऋत कहते हैं. विना मागे मिले उसे अमृत. प्रतिदिवस भिक्षा मागकर, लाना इसे मृत. खेती आदिको प्रमृत ॥ १९ ॥ व्यौपार करनेको सत्यानृत और आपसे हीनवर्णकी सेवा करनी इसे कुत्तेकी वृत्ति जानो. तहा ब्राह्मण और क्षत्रियको इस निंदनीय श्वानवृत्तिका सदा त्याग रखना चाहिये; क्योंकि— ब्राह्मण तौ सर्व वेदमय हैं. और क्षत्रिय सर्वदेवमय हैं ॥ २० ॥ मनोनिग्रह, इंद्रियनिग्रह, तप, पवित्रता, संतोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, भगवत्परायणता और सत्य ये ब्राह्मणके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ युद्धमें उत्साह, पराक्रम, धीरज, तेज, दान, मनोजय, क्षमा, ब्राह्मणभक्ति, प्रसन्नता और रक्षा ये क्षत्रियके लक्षण हैं

सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् ॥ वर्जयेत्तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २० ॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ॥ ज्ञानं दयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥ २१ ॥ शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा ॥ ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥ २२ ॥ देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ॥ आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम् ॥ २३ ॥ शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया ॥ अमंत्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषाऽनुकूलता ॥ तद्बंधुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥ २५ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमंडलवर्तनैः ॥ स्वयं च मंडिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥ २६ ॥

॥ २२ ॥ देवभक्ति, गुरुभक्ति, भगवद्भक्ति, धर्मकी वृद्धि, धनकी वृद्धि, विषयसुखकी वृद्धि, आस्तिकपन, निरंतर उद्योग और निपुणता ये वैश्यके लक्षण हैं ॥ २३ ॥ अपनेसे उत्तम वर्णको प्रणाम करना, पवित्रता रखनी, निष्कपटभावसे स्वामीकी सेवा करनी, मंत्र पढ़े विना वैश्वदेवआदि पंचयज्ञ करना, चोरी न करनी, सत्य भाषण करना और गौब्राह्मणकी रक्षा करनी ये शूद्रके लक्षण (धर्म) हैं ॥ २४ ॥ पतिकी सेवा, पतिके अनुकूल रहना, पतिके बंधुओंका अनुसरण करना और पतिके नियमको धारण करना ये चार पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म हैं ॥ २५ ॥ घरमें झाडू देना, लीपना, आंगनमें मंडल बनाना, छोटे मोटे सुखके

और ये संस्कार ब्रह्माजीने जिसके करनेके वास्ते कहे हैं उसीके होते हैं. जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य.) कुलसे और आ-
चारसे शुद्ध होवें उनको यज्ञ, वेदाध्ययन और दान ये तीन कर्म करनेकी तथा आश्रमसंबंधी क्रिया करनेकी आज्ञा है ॥ १३ ॥
पूर्वोक्त तीन कर्म तथा पढ़ाना, यज्ञ कराना और प्रतिग्रह (लेना) ये छह कर्म ब्राह्मणोंके वास्ते हैं तिनमें पिछले तीन कर्म ब्राह्म-
णोंकी आजीविकारूप हैं. क्षत्रियको आपदाके समयमें एक प्रतिग्रहके सिवाय दूसरे दोनों कर्म यानी यज्ञ कराने और पढ़ानेके
वास्तेभी छूट है. जो क्षत्रियराजा होवे उसके वास्ते कर, दंड और शुल्क (टैक्स) आदि लेनेरूप आजीविका है. परंतु ये कर-
आदि ब्राह्मणसे नहीं लिये जाते ॥ १४ ॥ वैश्य खेतीबारी और व्योपारआदिसे अपनी आजीविका करे और निरंतर ब्राह्मणोंका

विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्तस्याप्रतिग्रहः ॥ राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद्वाकरादिभिः ॥ १४ ॥ वैश्य-
स्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥ १५ ॥ वा-
र्ताविचित्राशालीनयायावरशिलोंछनम् ॥ विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥ १६ ॥ जघन्यो
नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः ॥ ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥ १७ ॥ ऋतामृताभ्यां
जीवेन मृतेन प्रमृतेन वा ॥ सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ १८ ॥ ऋतमुंछशिलं
प्रोक्तममृतं यदयाचितम् ॥ मृतं तु नित्ययाच्ञास्यात्प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ १९ ॥

अनुसरण करके, रहे. शूद्र द्विजलोकोंका अनुसरण करके, रहे. और जो द्विज अपना स्वामी हो उससे मासिक वेतन (तनख्वाह)
आदि लेकर, अपना निर्वाह करे ॥ १५ ॥ विचित्र प्रकारकी वार्ता (खेतीबारी आदि) १ विना याचना प्राप्त हो वह २ प्रति-
दिवस धान्य मांग कर, लाना ३ और शिलोंछन (कण बीन कर, लाना) ४ ये चार प्रकारकी ब्राह्मणकी वृत्तियां दूसरे युगोंमें
थीं. और उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानी जातीं थीं ॥ १६ ॥ हीनवर्ण कष्टके समय विना अपनेसे उत्तम वर्णकी आजीविकाको ग्रहण
न करे. तत्रापि (तहांभी) क्षत्रियको एक प्रतिग्रहके सिवाय बाकी सब द्विजवर्णोंकी आजीविका ग्रहण करनेकी छुट्टी है. और
आपदामें तो सबको पूर्वोक्तप्रकारसे सब प्रकारका अधिकार है ॥ १७ ॥ ऋतसे, अमृतसे मृतसे, प्रमृतसे अथवा सत्यानृतसे
जीविका करनी. परंतु कुत्तेकी वृत्तिसे जीविका नहीं करनी ॥ १८ ॥ खेतमें वा हाटआदिमें स्वामीके छोंडेहुए कणोंका बीनना

तप, पवित्रता, सहनशीलता, योग्यायोग्यका विवेक, मनोनिग्रह, इंद्रियनिग्रह, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, यथोचित जप, सरलता, ॥ ८ ॥ संतोष, महत्पुरुषोंकी सेवा, धीरे धीरे प्रवृत्तिके कर्मोंसे निवृत्ति, मनुष्योंकी निष्फल जाती क्रियाओंका विचार, मौन, यानी वृथाभाषणका त्याग, देहादिकसे आत्मा जुदा है ऐसा अनुसंधान ॥ ९ ॥ हे युधिष्ठिर! अपने अन्नादिकमेंसे दूसरे प्राणि-

संतोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ॥ नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥ अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पांडव ॥ १० ॥ श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ॥ सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥ ११ ॥ नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ॥ त्रिंशल्लक्षणवान् राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ॥ १२ ॥ संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोऽजोजगाद यम् ॥ इज्याऽध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ॥ जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥ १३ ॥

योंका यथोचित विभाग, सर्व प्राणीमात्रको और उनमेंभी विशेष करके मनुष्योंको आत्मा और देवरूप जानना ॥ २० ॥ महात्माओंके गतिरूप भगवान्का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार, दासभाव, सखाभाव और स्वात्मसमर्पण ॥ ११ ॥ महाराज! यह तीस लक्षणवाला धर्म, सब मनुष्यमात्रके वास्ते साधारण धर्म कहलाता है. जिसका आचरण करनेसे सर्वके अंतर्यामी हरि प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १२ ॥ वेदके मंत्रोंसे जिसके गर्भाधानआदि संस्कार अविछिन्न हुए हों वह द्विज कहलाता है.

---

१ यहां यह शंका होती है कि– शूद्रकेभी वेदके मंत्रोंसे गर्भाधानादि संस्कार अविच्छिन्न होनेपर वहभी द्विज हो सकता है? तहां कहते हैं कि– ब्रह्माजीने जिसको इसप्रकारकरके संस्कारोंयुक्त कहा है वह द्विज है; शूद्रको ब्रह्माजीने मंत्रवत्संस्कारयुक्त नहीं कहा है. और यह [शूद्र] यज्ञोपवीतवालाभी नहीं. द्विजभी नहीं 'तथाच स्मृतिः । विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा ॥ न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः ॥ १ ॥ श्रुतिश्च । गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत् त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचिच्छूद्रम् ॥ १ ॥ अर्थ–तैसेही स्मृतिमेंभी कहा है कि–केवल विवाहसंस्कारको शूद्रभी हमेशह प्राप्त होवे अन्य संस्कारको नहीं. क्योंकि– ब्रह्माजीने उस [शूद्र] को कोईभी छन्दसे उत्पन्न नहीं किया ॥ १ ॥ श्रुतिनेभी कहा है कि–विधाताने गायत्रीसे ब्राह्मणवर्णको उत्पन्न किया. और त्रिष्टुप्छन्द करके क्षत्रियको तथा जगतीछन्दसे वैश्यको उत्पन्न किया और शूद्रको कोईभी छन्दसे उत्पन्न नहीं किया ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने कहा कि–हे भगवन् ! मनुष्योंके वर्ण व आश्रमके आचारसंयुक्त सनातन धर्मको मैं सुनना चाहता हूं. जिसके पालनेसे यह मनुष्य उत्तम ज्ञान और भक्तिको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप साक्षात् प्रजापति परमेष्ठी यानी ब्रह्माजीके पुत्रोंमें तप, योग व समाधिसे परममान्य पुत्र हो ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण आपसे नारायणके भक्त, दयालु, साधु व शांत हैं, वेही तो परमगुह्य धर्मको जानते हैं. पर दूसरे नहीं जानते ॥ ४ ॥ नारदजीने कहा कि–लोकोंके धर्मके हेतु

युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ॥ वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान्विदते परम् ॥ २ ॥ भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः ॥ सुतानां संमतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ॥ ३ ॥ नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः ॥ कारुणाः साधवः शांतास्त्वद्विधा न तथाऽपरे ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे ॥ वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ५॥ योऽवतीर्याऽऽत्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः ॥ लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे॥६॥ धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरिः ॥ स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥ सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ॥ अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥ ८ ॥

श्रीमन्नारायण भगवान्को प्रणाम करके, नारायणके मुखसे सुनाहुआ सनातन धर्म कहता हूं सो सुनो ॥ ५ ॥ जो नारायणधर्मसे दक्षकी कन्या मूर्तिमें अपने अंश नरके साथ अवतार ले, लोकोंके कल्याणके अर्थ बदरिकाश्रममें विराजे तप कर रहे हैं ॥ ६ ॥ महाराज ! सर्ववेदरूप भगवान्ही धर्मविषयमें प्रथम प्रमाण हैं. जैसे धर्मके विषयमें वेद प्रमाण हैं. ऐसे वेद जाननेवाले पुरुषोंकी स्मृतियांभी प्रमाणीभूत हैं. तथा जिससे अंतःकरण प्रसन्न होवे वहभी प्रमाण है ॥ ७ ॥ अब साधारण धर्म कहते हैं. सत्य, दया,

---

१ तथाच याज्ञवल्क्यः । श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ॥ सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥ १ ॥ मनुश्च । वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ॥ आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ २ ॥ अर्थ–तैसेही याज्ञवल्क्यने कहा है कि–श्रुति (वेद), स्मृति, सदाचार और अपने आत्माको प्रिय तथा अच्छी प्रकार प्रतिज्ञा किया मनोरथ यही धर्मका मूल यानी प्रमाण है ॥ १ ॥ मनुजीनेभी कहा है कि–सम्पूर्ण वेद धर्मका प्रमाण है. और वेद जाननेवालोंकी स्मृतिशीलमें प्रमाण है. तथा साधुपुरुषोंको आचार धर्मका प्रमाण है और अपनी प्रसन्नताभी धर्मका प्रमाण है ॥ २ ॥

महाराज ! फिर धनुषमें शरसंधान कर, महादेवजीने उन दुर्भेद्य पुरोंको अभिजित् मुहूर्तमें उस बाणसे भस्म कर दिया ॥ ६६ ॥ जिस समय पुर दग्ध हुए उस समय स्वर्गमें दुंदुभि बाजे लगे बजने. सैकड़ों विमानोंकी भारी भीड़ हो गयी. देवता, ऋषि, पित्रीश्वर और सिद्धपति जयशब्दके साथ फूल बरसाने लगे. गंधर्व प्रसन्न हो कर, लगे गान करने और अप्सरागण लगा नृत्य करने ॥६७॥ महाराज ! पुरदाह करनेवाले महादेवजी इसप्रकार तीनों पुरोंको भस्म करके, ब्रह्मादिकों करके स्तुति कराते निजधाम पधारे ॥ ६८ ॥ अपनी मायासे मनुष्यलीला धारण करते इन परमात्मा और जगद्गुरु भगवान्‌के ऐसे २ जगत्‌को पवित्र करनेवाले

शरं धनुषि संधाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ॥ ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप ॥ ६६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः ॥ देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ॥ अवाकिरन् जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६७ ॥ एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ६८ ॥ एवं विधान्यस्य हरेः स्वमायया विडंबमानस्य नृलोकमात्मनः ॥ वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान्पुनानान्यपरं विदाम किम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वेहितं साधु सभासभाजितं महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ॥ युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदायुतः पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥ १ ॥

पराक्रम ऋषियोंने गाये हैं. अब और क्या श्रवण करनेकी इच्छा है ? सो कहो. क्या कहूं? ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ग्यारहवें अध्यायमें मनुष्यमात्रके साधारण धर्म, चारों वर्णोंके सामान्य और विशेष धर्म और स्त्रियोंके धर्म कहे जायंगे ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- महात्माओंमें मुख्य और भगवान्‌मेंही मन रखनेवाले प्रल्हादजीका सत्पुरुषोंकी सभाओंमें सत्कार पायाहुआ चरित्र सुनकर, प्रसन्न भयेहुए युधिष्ठिर राजाने नारदजीसे फिर प्रश्न किया ॥ १ ॥

हुए दैत्योंको ला २ कर, अपने बनायेहुए अमृतमय कुएंके रसमें गिराता है ॥ ५८ ॥ जिस अमृतरसमें पड़तेही वे दैत्य पीछे वज्रके समान दृढ़ अंगवाले, महाबली, बादल बिखेरनेवाले और बिजलीकी अग्निके समान पीछे उठ जाते थे ॥ ५९ ॥ इस बातको देखकर, अपने संकल्पका भंग होनेसे महादेवजी उदास हुए. तब इन विष्णु भगवान्‌ने वहां यह वक्ष्यमाण उपाय किया ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीको तो वत्स बनाया. और आप गौ बने. और अवसर पाकर, मध्यान्हके समय त्रिपुरके भीतर घुसे. और अमृतमय कुएंका रस पीने लगे. यद्यपि दैत्योंने इनको पीते देख लिया था. तथापि भगवान्‌की मायासे मोहित होनेके कारण

सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः ॥ उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥ ५९ ॥ विलोक्य भग्नसंकल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ॥ तदाऽयं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥ ६० ॥ वत्स आसीत्तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः ॥ प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥ तेऽसुरा ह्यपि पश्यंतो न न्यषेधन्विमोहिताः ॥ ६१ ॥ तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ॥ स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम् ॥ ६२ ॥ देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥ आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ॥ ६३ ॥ अथासौ शक्तिभिः स्वाभिः शंभोः प्राधनिकं व्यधात् ॥ धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः ॥ ६४ ॥ रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्मशरादि यत् ॥ सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ॥ ६५ ॥

किसीने निषेध नहीं किया ॥ ६१ ॥ इस बातको जानकर, रसकूपका पहरा देनेवाले दैत्य शोकसे आर्त हो कर, शोक करने लगे. तब शोकरहित मय दानवने इसको दैवगतिसे हुआ जान, दैवका स्मरण करके, उन दैत्योंसे यह कहा कि—॥ ६२ ॥ 'चाहो कोई देवता, दैत्य, मनुष्य वा दूसराभी कोई क्यों न हो ? अपने वा दूसरेके अथवा दोनोंके दैवकल्पित कार्यको किसी प्रकार हाटानेको समर्थ नहीं हैं' ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ फिर उस समय विष्णु भगवान्‌ने अपनी धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऋद्धि, तप, विद्या और क्रियाआदि शक्तियोंसे महादेवजीके युद्धके लिये रथ, सारथी, ध्वजा, घोड़े, धनुष, कवच और बाणआदि जो युद्धकी सामग्री चाहिये वह सब तैयार की. फिर महादेवजीने कमर कस, रथपर बैठ, धनुष बाण हाथमें लिया ॥ ६५ ॥

मय दैत्यने भगवान् महादेवजीके यशको प्रतिहत कर दिया था. और वहां फिर श्रीकृष्ण भगवान्ने उनका मान किस प्रकार-से रक्खा ? सो हमें कहो ॥ ५१ ॥ नारदद्जीने कहा कि-श्रीकृष्ण भगवान्के तेजबलके प्रभावसे बढ्कर, देवताननें दैत्योंको युद्धमें जीत लिया. तब वे मायावियोंके परमगुरु मयदैत्यके शरण गये ॥ ५२ ॥ इस समर्थ दैत्यने सुवर्ण, रूपा और लोहेके तीन ऐसे पुर बनाये कि-जिनकी न तौ आनेकी खबर पड़ सक्ती थी और न जानेकी. तथा उनमें सामान किसप्र-कारका है ? यह जानना बड़ा कठिन था ॥ ५३ ॥ महाराज ! अपने पूर्ववैरका स्मरण करके, अलक्षित रहकर, दैत्योंकी सेनाके

नारद उवाच ॥ निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः ॥ मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ॥ ५२ ॥ स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमी रौप्यायसीर्विभुः ॥ दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥ ५३ ॥ ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन्सेश्वरान्नृप ॥ स्मरंतो नाशयांचक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥ ५४ ॥ ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो ॥ त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥ ५५ ॥ अथानुगृह्य भगवान्माभैष्टेति सुरान्विभुः ॥ शरं धनुषि संधाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुंचत ॥ ५६ ॥ ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमंडलात् ॥ यथा मयूखसंदोहा नादृश्यंत पुरो यतः ॥ ५७ ॥ तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः ॥ तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥ ५८ ॥

लोक उन पुरोंसे लोकपालोंसहित तीनों लोकोंका संहार करने लगे ॥ ५४ ॥ तब लोकपालोंके साथ सब प्रजाने महादेवजीके निकट जाकर, प्रार्थना की कि-हे विभु ! हे देव ! त्रिपुरमें रहनेवाले दैत्य, आपके भक्त हम लोकोंका नाश कर रहे हैं सो आप हमारी रक्षा करो ॥ ५५ ॥ तब समर्थ महादेवजीने अनुग्रह करके, 'तुम मत डरो' ऐसे देवतानसे कहा. और अपने धनुषमें शरका संधान करके, पुरोंपर चलाया ॥ ५६ ॥ उस अभिमंत्रित शरसे अग्निके समान देदीप्यमान जैसे सूर्यमंडलसे किरण-जाल निकलता है वैसे इतने बाण निकले कि-जिनसे आच्छादित होकर, पुर दीखने बंद हो गये ॥ ५७ ॥ और उन बाणोंके लगनेसे पुरोंमें रहनेवाले सब दैत्य प्राणरहित हो हो कर, पड़ने लगे. ज्यों ज्यों वे दैत्य मरते हैं त्यों त्यों मयदैत्य उन मरे-

ण्यकशिपुके वधरूप नृसिंहलीलाका पाठ करे और सत्पुरुषोंमें उत्तम ऐसे प्रल्हादके पवित्र प्रभावको श्रवण करे. वह मनुष्य निर्भय पदको प्राप्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ आजके दिन तुम इस मनुष्यलोकमें बड़े बड़भागी हो, क्योंकि तुम्हारे घरोंमें साक्षात् परब्रह्म मनुष्यदेह धारणकरके गुप्तरीतिसे विराज रहे हैं. इस कारण बड़े २ मुनिलोग लोकोंको पवित्र करते तुम्हारे घरपर आते हैं ॥ ४७ ॥ अंगुल्यादेशसे बताकर, नारदजीने कहा कि–यह श्रीकृष्ण वही हैं कि–जो महत्पुरुषोंके ढूंढ़ने योग्य कैवल्य निर्वाण सुख यानी निरुपाधिक परमानंदका अनुभवस्वरूप परब्रह्म है. वे परब्रह्म तुम्हारे प्रिय, सुहृद, मामाके पुत्र, आत्मा, पूज्य, गुरु और ज्ञानकारी हुए. अब तुम्हारे भाग्यकी महिमाको कहांलौं वर्णन करें ॥ ४८ ॥ महादेव और ब्रह्मादिकभी जिनके

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियंति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम् ॥ ४७ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यकैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥ ४८ ॥ न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ४९ ॥ स एष भगवान् राजन्व्यतनोद्विहतं यशः ॥ पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानंतमायिना ॥ ५० ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोऽहन् जगदीशितुः ॥ यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥ ५१ ॥

स्वरूपको 'ऐसाही है, ऐसे अपनी बुद्धिसे साक्षात् वर्णन न कर सके, वे भगवान् तुमपर स्वयमेव प्रसन्न हुए हैं' बाकी हमको तौ मौन, भक्ति और शांतिआदि साधनोंसे उनको प्रसन्न करना पड़ता है. वे भक्तोंके पति हरि हमपर प्रसन्न होवें. प्रल्हाद कोई तुमसे बढ़कर, भाग्यशाली नहीं है; क्योंकि उसके घरमें परब्रह्मका निवास नहीं है. परब्रह्मके दर्शनके वास्ते मुनिलोकभी उसके घर नहीं जाते थे. और विना साधन भगवान् उसपर प्रसन्न नहीं हुए थे. अतएव प्रल्हादसे व हमारेसेभी आप सदा भाग्यशाली हो. ॥ ४९ ॥ महाराज ! पहले अनंत माया जाननेवाले मयदैत्यने महादेवकी कीर्तिको नष्ट कर दिया था. उस समय इन्हीं प्रभुने उनके यशको पीछा विस्तृत किया ॥ ५० ॥ युधिष्ठिरने कहा कि–कौन काममें

हे ऐसे अंतमें भगवत्‌रूपताको प्राप्त हुए ॥ ३८ ॥ भेददृष्टिरहित भगवान्‌की परमभक्ति करनेसे जैसे भगवान्‌के स्वरूपकी प्राप्ति होती है ऐसेही भगवान्‌का चिंतवन रहनेके हेतु शिशुपालआदि राजाओंको भगवान्‌के स्वरूपकी प्राप्ति हुई है ॥ ३९ ॥ शिशुपालआदि राजा यद्यपि भगवान्‌से द्वेष किया करते थे. तथापि उनको भगवत्प्राप्ति होनेके विषयमें जो तुमने मुझसे पूंछा था वह सब मैंने आपको कह सुनाया ॥ ४० ॥ ब्रह्मण्यदेव, महात्मा, श्रीकृष्ण भगवान्‌की यह नृसिंहावतारसंबंधिनी पवित्र कथा कि- जिसमें आदिदैत्य यानी हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके वधका वर्णन है वह मैंने कही ॥ ४१ ॥ तथा भगवान्‌के परम-

यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाऽऽभिदा ॥ नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिंतया ययुः ॥ ३९ ॥ आख्यातं सर्वमेतत्ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥ ४० ॥ एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ॥ अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ४१ ॥ प्रह्रादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ॥ भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥ ४२ ॥ सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ॥ परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥ ४३ ॥ धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ॥ आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥४४॥ य एतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ॥ कीर्त्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते ॥ ४५ ॥ एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेंद्रलीलां दैत्येंद्रयूथपवधं प्रयतः पठेत ॥ दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वाऽनुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥ ४६ ॥

भक्त प्रल्हादका चरित्र व भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका लक्षण और स्थिति, उत्पत्ति और संहारके अधिपति भगवान्‌का तत्त्व ॥ ४२ ॥ व उनके गुण व कर्मोंका वर्णन, देवता और दैत्योंके स्थानोंका कालके कारण बड़ाही विपर्यास ॥ ४३ ॥ भगवद्भक्तोंका धर्म, कि- जिससे भगवान् चीन्हे जाते हैं, इसप्रकार इस आख्यानमें आत्मा और अनात्मविवेकआदि विषय पूर्णरीतिसे दिखाये गये हैं ॥ ४४ ॥ विष्णु भगवान्‌के पराक्रमसे उपबृंहित (बढ़ेहुये) इस पवित्र आख्यानको जो मनुष्य कीर्तन करे और श्रद्धाके साथ सुने, वह कर्मबंधनसे मुक्त हो जाय ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य सावधान होकर, आदिपुरुष हरि भगवान्‌की इस हिर-

कोंके देखनेमें न आसके ऐसी रीतिसे हां भगवान् वहीं अंतर्धान हो गये ॥ ३० ॥ तब फिर प्रल्हादने ब्रह्माजीकी और महादेव, प्रजापति व देवतानकी पूजा करके, शिरसे प्रणाम किया ॥ ३१ ॥ उस समय ब्रह्माजीने शुक्राचार्यआदि मुनिलोकोंके साथ प्रल्हादको दैत्य और दानवोंका राजा बनाया ॥ ३२ ॥ महाराज ! फिर ब्रह्मादिक देवता प्रल्हादको धन्यवाद और अतिउत्तम आशीर्वाद दे, पीछा मान पाकर, अपने अपने धामको सिधारे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार वे भगवान्के पार्षद दितिके पुत्र हुए. और वे दोनों वैरभावसे भगवान्को हृदयमें रखकर , भगवान्के हाथ मरे ॥ ३४ ॥ फिर वेही सनत्कुमारोंके श्रापसे दूसरे जन्ममें

ततः संपूज्य शिरसा ववंदे परमेष्ठिनम् ॥ भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥ ३१ ॥ ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ॥ दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत्पतिम् ॥ ३२ ॥ प्रतिनंद्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ॥ स्वधामानि ययू राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥ ३३ ॥ एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः ॥ हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥ ३४ ॥ पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ॥ कुंभकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥ ३५ ॥ शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ॥ तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥ ३६ ॥ ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ ॥ हरौ वैरानुबंधेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥ ३७ ॥ एनः पूर्वकृतं यत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः ॥ जहुस्त्वंते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥ ३८ ॥

कुंभकर्ण और रावण नाम राक्षसयोनिमें प्रगट हुए. ये दोनों रामचंद्रजूके पराक्रमसे मारे गये ॥ ३५ ॥ रामचंद्रजीके बाणोंसे हृदय विदारण हो जानेसे ये दोनों रणभूमिमें सोये. पूर्वजन्मकी नाईं रामचंद्रजीका चिंतवन उनके हृदयमें रहा था. और देहका त्याग हुआ था ॥ ३६ ॥ वेही फिर यहां शिशुपाल और दंतवक्र पैदा हुए थे; सो ये अभी तेरे देखते देखते भगवान्से वैर बांधनेके हेतु भगवत्स्वरूपको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ भगवान्के साथ वैर रखनेवाले राजालोक भगवान्की निंदा करनेआदिसे उत्पन्न भयेहुए पापसे भगवान्के ध्यानके प्रभावसे हेतुयुक्त होकर, भ्रमरीका चिंतवन करताहुआ कीड़ा जैसे भ्रमरीरूप बन जाता

वके पालक ! हे पूर्वज ! आपने यह बहुत अच्छा किया, जो लोकोंको तपायमान करनेवाले इस पापी असुरका संहार किया ॥ २५ ॥ एक तौ इसने मुझसे ऐसा वर पा लिया था कि- मेरी रचीहुई सृष्टिके हाथ न मरे. दूसरा यह तप, योग व बलके प्रभावसे ऐसा मदमत्त हो गया था कि-इसने सब धर्मोंका सत्यानाश कर दिया था ॥ २६ ॥ यह बहुत अच्छा हुआ कि-भगवान्‌के परमभक्त और साधु इसके बालक पुत्रको आपने मृत्युसे बचाया; और यह अत्यंतही उत्तम

योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ॥ तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥ २६ ॥ दिष्ट्याऽस्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ॥ त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥ ॥ २७ ॥ एतद्वपुस्ते भगवन्ध्यायतः प्रयतात्मनः ॥ सर्वतो गोप्तृसंत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥ २८ ॥ नृसिंह उवाच ॥ मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसंभव ॥ वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥२९॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान् राजंस्तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३० ॥

हुआ कि-यह बालक अभी आपके शरण प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ यह आपका शरीर, ध्यान करनेवाले जितेंद्रिय भक्तको, यद्यपि मारनेके वास्ते स्वयं मृत्यु आ गया होगा तथापि उसके त्राससे सर्वप्रकारसे बचावेगा ॥ २८ ॥ नृसिंह भगवान्‌ने ब्रह्माजीसे कहा कि- हे ब्रह्माजी ! दैत्योंको ऐसा वरदान आप अब कदापि मत देना. क्योंकि क्रूर स्वभाववाले दैत्योंको जो वरदान देना है वह तौ मानो सर्पोंको अमृत पिलाना है ॥ २९ ॥ नारदजीने कहा कि-महाराज ! इस प्रकार आज्ञा करके, ब्रह्माजीकी पूजाको अंगीकार कर, सर्वलो-

---

१ यहांपर यह एक दृष्टांत है कि-नीचको ऊंचा पद कभी न देना. जैसे कि-कोई एक महानिर्बल कुत्ता था उसे दूसरे कुत्तोंने मारकाटके, बाहर हँकाल दिया. तब भागके, वह एक वनमें कोई सिद्ध बाबाके निकट बड़ी गरीबीसे रहने लगा कि-इतनेमें कोई दिन बाबाके पास एक भेंड़िया आया. उसे देख, वह उस बाबाके पीछे जा, छिपा. तब बाबाजीको दया लगी इन्होंने उसे भेंड़ियां बनादिया. ऐसेही एक रोज हाथी आया उसे देख वह डरा तो बाबाजीने उस कुत्तेको सेर बनादिया. अब निर्भय हो, बाबाकी कुटीके आसपास चार २ कोसके जानवर मार २ लगा खाने. तब यह पुकारा हुवा कि-बाबाका बनाया हुवा कुत्तेका सेर बड़ा जुलुम करता है. यह सुन, उस सेरने विचारा कि-जबलग यह बाबा जीता रहेगा तबलग मेरा कुत्तेका नाम न छूटेगा. यह ठान, ज्यों बाबाको मारना चाहा; त्योंही उस बाबाने कहा कि- जा बरचोद कुत्तेका कुत्ता.

या ॥ १७ ॥ जिस जिस स्थलमें शांत, समदर्शी, साधु, भलीभांति उत्तम आचार पालनेवाले मेरे भक्त रहते हैं. वे कीकट यानी अंग वंगआदि अपवित्र देशभी पवित्र माने जाते हैं ॥ १८ ॥ हे प्रल्हाद! मेरी भक्तीसे जिनकी स्पृहा (चाह) जाती रही है वे भक्तलोक सब प्रकारसे छोटे मोटे सब प्राणीमात्रमें किसीकी हिंसा नहीं करते ॥ १९ ॥ हे प्रल्हाद! जो लोक तेरा अनुसरण करेंगे, वेभी जगत्के बीच मेरे भक्त हो जायंगे. मेरे संपूर्ण भक्तोंके बीच तू सबसे श्रेष्ठ भक्त होगा ॥ २० ॥ तेरा पिता सब प्रकारसे पवित्र है. इसलिये उसके तू प्रेतकार्य कर. हे प्रल्हाद! इसके तो मेरे अंगका स्पर्श हो गया है. दूसरा इसके तेरा जैसा

यत्र यत्र च मद्भक्ता प्रशांताः समदर्शिनः ॥ साधवः समुदाचारास्ते पूयंत्यपि कीकटाः ॥ १८ ॥ सर्वात्मना न हिंसंति भूतग्रामेषु किंच न ॥ उच्चावचेषु दैत्येंद्र मद्भावेन गतस्पृहाः ॥ १९ ॥ भवंति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ॥ भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥ २० ॥ कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः ॥ मदंगस्पर्शनेनांग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥ २१ ॥ पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥ २२ ॥ नारद उवाच ॥ प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्सांपरायिकम् ॥ यथाह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥ २३ ॥ प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ॥ स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥ ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज ॥ दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसंतापनोऽसुरः ॥ २५ ॥

सुपूत पुत्र है, फिर यह स्वर्गमें क्यों नहीं जायगा ? अवश्यही जायगा ॥ २१ ॥ हे तात! जिसप्रकार ये वेदवादी आज्ञा करते हैं. उसी प्रकार मेरे परायण होकर, कर्म कर. और मेरेमें मन लगाकर, अपने पिताके राज्यसिंहासनपर बैठ ॥ २२ ॥ श्रीनारदजीनें कहा कि– महाराज! ब्राह्मणोंने जिसका अभिषेक किया है ऐसे प्रल्हादने अपने पिताकी उस समय भगवान्की आज्ञाके अनुसार प्रेतक्रिया की ॥ २३ ॥ देवताआदिसे घिरेहुए ब्रह्माजीने कृपा करनेसे सुंदर मुखवाले नृसिंह भगवान्की पवित्र वाणियोंसे स्तुति करके, यह कहा ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि– हे देवदेव! हे सर्वके अध्यक्ष! हे जग-

त्तमें रखकर, यज्ञरूप कर्म करते रहना. और जो कर्म करे वह मेरे अर्पण करते रहना. और उन कर्मोंके फलकी अभिसंधि न रखना ॥ ११ ॥ इसप्रकार करनेसे तू सुखभोगसे पुण्यका, पुण्यसे पापका और कालके बेगसे देहका त्याग कर तथा देवताभी जिसको गाया करें ऐसी पवित्र कीर्तिको फैलाकर, बंधनसे मुक्त हो, मुझको प्राप्त होवेगा ॥ १२ ॥ जो मनुष्य तेरी कीहुई इस मेरी स्तुतिका पाठ व कीर्तन करेगा तथा तेरा मेरा और इस चरित्रका स्मरण करेगा. वह मनुष्य लोकनिमित्तक कर्मबंधनसे मुक्त हो जायगा ॥ १३ ॥ प्रल्हादजीनें कहा कि-हे महेश्वर! वर देनेवालोंके ईश्वर आपसे मैं यह वरदान मांगता हूं कि-

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा ॥ कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां विताय मामेष्यसि मुक्तबंधः ॥ १२ ॥ य एतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वयागीतामिदं नरः॥ त्वां च मांच स्मरन्काले कर्मबंधात्प्रमुच्यते ॥ १३ ॥ प्रह्राद उवाच ॥ वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर ॥ यदनिंदत्पिता मे त्वामविद्वांस्तेजऐश्वरम् ॥ १४ ॥ विद्धामर्षाशयः साक्षात्सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ॥ भ्रातृहेति मृषा दृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥ १५ ॥ तस्मात्पिता मे पूयेत दुरंतादुस्तराद्घात् ॥ पूतस्तेऽपांगसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ॥ यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ १७ ॥

ईश्वरसंबंधी आपके तेजको न जानकर, मेरे पितानें जो आपकी निंदा की ॥ १४ ॥ तथा अवर्षसे व्याप्तचित्त हो कर, 'यह मेरे भाईका मारनेवाला है' ऐसी दृष्टिसे जिसने सर्वजगत्के परमपूज्य साक्षात् प्रभु आपकी तौ निंदा की और आपके भक्त मुझको दुःख दिया ॥ १५ ॥ वह मेरा पिता उस दुरंत और दुस्तर पातकसे जिसप्रकार पवित्र हो जाय वैसी कृपा करो. हे दीनवत्सल! यद्यपि वह पवित्र तौ तभी हो चुका था कि-जबसे आपकी दृष्टि पड़ी ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे निष्पाप! हे साधु! तेरा पिता तौ अपनी इक्कीस पुस्तोंके[१] साथ पवित्र हो चुका; कारण यह कि-कुलको पावन करनेवाले तूने इसके घरमें जन्म लि-

१ यहां शंका है कि-इसकी तो कश्यप १ मरीचि २ ब्रह्मा ३ तीसरी पीढी हुई. पुनः भगवान्ने इक्कीस कैसे कहीं? उत्तर- कल्पकल्पान्तरोंके अभिप्रायसे.

जो स्वामी दासके पास सेवाकी इच्छा रखकर, उसे वांछित पदार्थ देवे, वह सच्चा स्वामीभी नहीं माना जायगा. क्योंकि वहभी
व्यौपारी बनियाही हुआ ॥ ४ ॥ मैं तौ आपका निष्काम भक्त हूं और आप मेरे निष्काम स्वामी हो. राजा और नौकरके
बीचमें जैसा स्वार्थका संबंध रहता है ऐसा अपने बीचमें नहीं है. अपने बीचमें तौ निष्कामपन रहे इतनाही प्रयोजन है ॥ ५ ॥
हे वरदेनेवालोंमें उत्तम ! आप जो मुझे मांगेहुए वरदानही देते हो तौ मैं आपसे इतनाही मांगता हूं कि-मेरे मनमें किसी
कामनाका अंकुरही उत्पन्न न होवे ॥ ६ ॥ कामनाका जन्म होनेसे इंद्रियां, मन, प्राण, देह, धर्म, धीरज, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी,

अहंत्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ॥ नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ५ ॥ यदि
रासीश मे कामान्वरांस्त्वं वरदर्षभ ॥ कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥ ६ ॥ इंद्रियाणि-
मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ॥ ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यंति जन्मना ॥ ७ ॥
विमुचंति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ॥ तर्ह्येव पुंडरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥ ८ ॥ न-
मो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ॥ हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ९ ॥ नृसिंह उवाच ॥
नैकांतिनो मे मयि जात्विहाशिष आशासतेऽमुत्र च ये भवाद्विधाः ॥ अथाऽपि मन्वंतरमेतदत्र दै-
त्येश्वराणामनुभुंक्ष्व भोगान् ॥ १० ॥ कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्वमावेश्य मामात्मनि संत
मेकम् ॥ सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥ ११ ॥

तेज, स्मृति और सत्य ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ हे कमलनयन ! यह मनुष्य जब मनोगत सर्वकामनाओंका परित्याग
करता है. तभी मुक्तिके योग्य होता है ॥ ८ ॥ आप भगवान् कि-जो महापुरुष, परमात्मा, परब्रह्म और अद्भुत सिंहरूप विष्णु-
रूप हो तिनको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ९ ॥ नृसिंहजीने कहा कि- तेरेजैसे मेरे सच्चे भक्त यद्यपि इस लोकके वा परलोकके
सुखोंको कदापि नहीं चाहते; तथापि मेरी आज्ञासे इस एक मन्वंतरपर्यंत दैत्योंके राजापनके सुखोंका भोग कर ॥ १० ॥ मेरी
प्रिय कथाओंका सेवन करते रहना. और मैं कि-जो सर्व पदार्थोंमें व्यापक, एक ईश्वर और यज्ञोंका अधिष्ठाता हूं, उसको चि-

और धैर्यवाले साधुपुरुष, सर्व सुखोंके स्वामी मुझको सर्वप्रकारके भावसे प्रसन्न करते हैं ॥ ५४ ॥ नारदजीने कहा कि-इसप्रकार लोकोंको ललचानेवाले वरोंका भगवान्‌ने प्रल्हादको लालच दिया तथापि वह प्रल्हाद भगवान्‌का निष्काम भक्त होनेके कारण किसी वरदानके लालचमें नहीं फँसा. यानी किसी वरदानकी इच्छा न की ॥ ५५ ॥ इति श्री-भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दशवें अध्यायमें प्रल्हादपर अनुग्रह करके, भगवान् अंतर्धान हुये और विष्णुने रुद्रपर अनुग्रह किया. यह कथा कही जायगी ॥ १ ॥ नारदजीने

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ॥ एकांतित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तमः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवोनाम नवमोध्यायः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ भक्तियोगस्य तत्सर्वमंतरायतयाऽर्भकः ॥ मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥ १ ॥ प्रह्राद उवाच ॥ मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः ॥ तत्संगभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥ २ ॥ भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ॥ भवान्संसारबीजेषु हृदयग्रंथिषु प्रभो ॥ नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ॥ ३ ॥ यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥ आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥ न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन्यो राति चाशिषः ॥ ४ ॥

कहा कि-यह सब भक्तियोगमें विघ्नरूप है. ऐसे जानतेहुए प्रल्हादने हँसकर भगवान्‌से इस प्रकार कहा ॥ १ ॥ प्रल्हाद बोला कि-मैं कि-जो जन्मसेही विषयोंमें आसक्त हूं. उसको वरदानोंका लालच देकर, हे प्रभु ! मत फँसावो. विषयोंके संगसे भयभीत और कातर भयाहुआ मैं मोक्षकी अभिलाषासे आपके शरण आया हूं ॥ २ ॥ हे प्रभु ! संसारके बीजरूप और हृदयग्रंथिरूप विषयोंमें प्रवृत्त होनेके वास्ते आपने जो मुझको आज्ञा की. सो वह 'मैं सच्चा भक्त हूं वा नहीं'. इस बातकी परीक्षा करनेके वास्ते की होगी ऐसे मैं मानता हूं. हे प्रभु ! अन्यथा आप कि-जो दयालु हो तिनके ऐसी प्रेरणा करनी संभवे नहीं ॥ ३ ॥ जो दास आपसे विषयसुखका लालच राखे उसे दास नहीं समझना चाहिये; क्योंकि यह तो व्यौपार करनेवाला बनिया हुआ. ऐसेही

स्वरूप है. मनसे और वचनसे जो कुछ प्रकाशित होनेमें आता है वह कुछभी आपसे भिन्न नहीं है ॥ ४८ ॥ गुण, गुणवान्, महत्तत्वादिक, मनआदि, देवता और मनुष्य कि-जो आदि और अंतवाले हैं. उनमेंसे कोईभी आदि अंतसे रहित आपके स्वरूपको नहीं जानता. ऐसे विचार कर, ज्ञानीलोक सर्व अध्ययनआदिका परित्याग करके, केवल समाधिसे आपकीही उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये हे पूज्य ! प्रणाम, स्तुति, सर्वकर्मसमर्पण, पूजन, चरणोंकी स्मृति और कथाश्रवण, इस-प्रकार आपकी छः अंगवाली सेवा किये विना आप कि-जो परमहंसोंके गतिरूप हो तिनकी भक्ति लोकोंको किस प्रकार

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ॥ आद्यंतवंत उरुगाय विदंति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमंति शब्दात् ॥ ४९ ॥ तत्तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्मपूजाः कर्मस्मृति-श्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ॥ संसेवया त्वयि विनेति षडंगया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ ५० ॥ नारद उवाच ॥ एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ॥ प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रह्लाद भद्र भद्रं प्रीतोहं ते सुरोत्तम ॥ वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥ ५२ ॥ मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे ॥ दृष्ट्वा मां न पुनर्जंतुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥ ५३ ॥ प्रीणंतिह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ॥ श्रेयस्कामा माहाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥ ५४ ॥

मिले ? भक्ति विना मोक्ष नहीं और सेवा विना भक्ति नहीं. अतएव आप कृपा करके, मुझे आपका दास बनाओ ॥ ५० ॥ नारदजीने कहा कि-इसप्रकार भगवद्भक्त प्रल्हादने भक्तिपूर्वक जिनके गुणोंका वर्णन किया है ऐसे अलौकिक गुणविशिष्ट भगवान्ने प्रसन्न होकर, क्रोध शांत करके, प्रणत प्रल्हादसे इसप्रकार कहा ॥ ५१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे दैत्योंमें उत्तम ! प्रल्हाद ! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं. जो तेरे चाहिये वह वर मांग. मैं मनुष्योंकी कामना पूर्ण करनहारा हूं ॥ ५२ ॥ हे आयुष्मन् ! मुझको प्रसन्न किये विना मेरा दर्शन होना अतिदुर्लभ है. और मेरा दर्शन भये पीछे यह जीव अपनी आत्माका शोक करनेके योग्य नहीं रहता ॥ ५३ ॥ अतएव कल्याणकी इच्छावाले भाग्यशाली

करता हूं इसकाभी कारण यही है कि–संसारमें भटकते हुए इन लोकोंके वास्ते आपके सिवाय दूसरा कोईभी मुझे छुड़ानेवाला नहीं दीख पड़ता ॥ ४४ ॥ गृहस्थाश्रमसंबंधी मैथुनआदि जो सुख हैं वे तो अत्यंतही तुच्छ हैं; क्योंकि हाथसे शरीरको खुजानेसे एक दुःख निवृत्त करते जैसे दूसरा दुःख खड़ा हो जाता है. ऐसे विषयसुख भोगते समय एक प्रकारका दुःख निवृत्त करते दूसरा दुःख खड़ा हो जाता है. ऐसे सुखकी इच्छा रखनेवाले संसारी लोक अनेक दुःख भोगा करते हैं. तथापि उस सुखसे तृप्ति नहीं पाते. शरीरमें खुजली आती हो उसे जेसे सह लेते हैं, ऐसे कामदेवके वेगको सह लेवे ऐसा धीरपुरुष तो एकाधही होता है. वहभी आपकाही भक्त निकलेगा. परंतु दूसरा नहीं ॥ ४५ ॥ मौनव्रत, शास्त्रश्रवण, एकादशीव्रतआदि तप, अध्ययन,

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कंडूयनेन करयोरिव दुःख दुःखम् ॥ तृप्यंति नेह कृपणा बहु-
दुःखभाजः कंडूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥ ४५ ॥ मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म व्याख्यार-
होजपसमाधय आपवर्ग्याः ॥ प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेंद्रियाणां वार्ता भवंत्युत न वाऽत्र तु दांभिकाना-
म् ॥ ४६ ॥ रूपे इमे सदसती तववेदसृष्टे बीजांकुराविव न चान्यदरूपकस्य ॥ युक्ताः समक्षमुभयत्रविचि-
न्वते त्वा योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ॥ ४७ ॥ त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदंबुमात्राः प्राणेंद्रियाणि
हृदयं चिदनुग्रहश्च ॥ सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्नान्यत्त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥ ४८ ॥

स्वधर्म, व्याख्यान, एकान्तवास, जप और समाधि ये दश मोक्षके साधन हैं, सो यह वार्ता सत्य है. परंतु ये साधन प्रायः अजितेंद्रिय पुरुषोंके उदर भरनेके साधनरूप हो जाते हैं. और दांभिक लोकोंके तो पेट भरनेकेभी साधन होवें वा न होवें यह कुछ कहा नहीं जा सक्ता ॥ ४६ ॥ बीजमेंसे अंकुर और अंकुरमेंसे बीजकी नाई प्रवाहरूपसे प्रवृत्त होतेहुए कार्य और कारण ये दोनों, आप कि–जो प्राकृतरूपसे रहित हो उन्हींके रूप हैं. किंतु जुदे नहीं, ऐसे वेद कहता है. मथन करनेसे जैसे काठमें अग्नि प्रतीत होता है ऐसे भक्तियोगसे जितेंद्रिय पुरुषोंके कार्य और कारणमें आपही देखनेमें आते हो. आपके विना दूसरे किसी पदार्थसे कार्य और कारणोंकी उत्पत्ति होनी संभवे नहीं ॥ ४७ ॥ हे प्रभु ! वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, शब्दादिक विषय, प्राण, इंद्रियां, मन, चित्त, अहंकार, देवता, स्थूल और सूक्ष्म यह सब आपकाही

है, पांचवी ओर सुंदर शब्द सुननेकी अभिलाषासे कान तानता है. छठी ओर सुगंध लेनेको नासिका खैंचती है. सातवीं ओर सुंदर रूप देखनेके वास्ते चंचल चक्षु आकर्षण करती है. और इसी प्रकार कर्मेंद्रियांभी अपने २ कामके वास्ते चारों तर्फसे खैंचती हैं ॥ ४० ॥ हे नाथ ! जैसे मैं दुःखी हूं ऐसे येभी सब लोक दुखी हैं. तथा संसाररूप वैतरणीमें पड़ेहुए हैं. एक दूसरेसे होतेहुए जन्म, मरण और भक्षणसे अतीव डरते हैं. अपने और दूसरोंके साथ मैत्री व वैर रखते हैं. तासों हे नित्यमुक्त परमेश्वर ! ऐसे मूढ़ लोकोंपर कृपा करके, उनको संसाररूप वैतरणीमेंसे बाहिर निकाल कर, रक्षा करो ॥ ४१॥ हे भगवान ! हे सर्वगुरु ! जो आप सर्वजगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करते हो. उनके इन सर्व लोकोंका उद्धार करनेमें कौन

एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्यामन्योऽन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ॥ पश्यन् जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हंतेति पारचरपीप्टहि मूढमद्य ॥ ४१ ॥ कोन्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसंभवलोपहेतोः ॥ मूढेषु वै महदनुग्रहआर्तबंधो किं तेन ते प्रियजनाननु सेवतां न ॥ ४२ ॥ नैवोद्विजे परदुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ॥ शोचे ततो विमुखचेतस इंद्रियार्थमायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥ ४३ ॥ प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरंति विजने न परार्थनिष्ठाः ॥ नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥ ४४ ॥

परिश्रम है ? हे दीनबंधु ! मूढ़ लोकोंपर अनुग्रह करना, इसीमें सच्चा बड़प्पन है. बाकी हम कि-जो आपके भक्तोंका सेवन करते हैं तिनका उद्धार करोगे इसमें तो क्या ? ॥ ४२ ॥ हे परमेश्वर ! मैं कि-जिसका चित्त आपके पराक्रमोंके गानरूप महाअमृतमेंही बूड़ाहुआ है वह तो इस अपार संसाररूप वैतरणीसे नहीं डरता. परंतु दूसरे मूढ़लोक कि-जिनके चित्त आपकी बातोंसे विमुख हैं और जो मायिक विषय सुखके वास्ते कुटुंबआदिका भार उठाया करते हैं. उनके वास्ते मैं शोक करता हूं ॥ ४३ ॥ हे देव ! प्रायः मुनिलोक तो अपनी मुक्तिके वास्ते वनमें तपस्या करते हैं परंतु दूसरोंके स्वार्थके वास्ते कुछभी नहीं करते, तासों मैं तो इन बिचारे दीन लोकोंको छोड़कर, इकला मुक्ति पाना नहीं चाहता. तथा आपके पास मैं बहुत आग्रह

हे महापुरुष ! इसीप्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी, देव और मत्स्यका अवतार धारण करके, लोकोंका पालन करते हो. लोकोंके शत्रुओंका संहार करते हो. और उस २ युगमें चले आते धर्मकी रक्षा करते हो. परंतु कलियुगमें ऐसे नहीं करते; क्योंकि उसमें आप गुप्तरूपसे रहते हो. तीन युगमेंही आप प्रगट देख पड़ते हो. तासों आपका 'त्रियुग' ऐसा नाम कहता है ॥ ३८ ॥ हे विकुंठनाथ ! पापसे दुष्ट भयाहुआ, बहिर्मुख, तीव्र, कामनासे आतुर और हर्ष, शोक, भय

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान्विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ॥ धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ सत्वम् ॥ ३८ ॥ नैतन्मनस्तव कथासु विकुंठनाथ संप्रीयते दुरितदुष्टमसाधुतीव्रम् ॥ कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥ ३९ ॥ जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति ॥ ४० ॥

व तृष्णासे पीड़ित यह मेरा मन आपकी कथामें नहीं लगता. मैं जो दीन हूं वह ऐसे मनमें आपके तत्त्वका विचार किस प्रकार कर सकूं ? ॥ ३९ ॥ हे अच्युत ! जैसे एक गृहपति (खाविन्द)[1] के पीछे अनेक स्त्रियां लग जांय और वे उसे तोड़ २ खाय ऐसे ये इंद्रियां मुझे चारोंओर खैंच रही हैं. किसी समय तौ तृप्ति नहीं पातीहुई जीभ मुझको एक ओर खैंचने लगती है. दूसरी ओर शिश्न इंद्रिय तानती है. तीसरी ओर स्पर्शसुखके वास्ते त्वचा आकर्षण करती है. चौथीतर्फ आहारके वास्ते पेट चपेट लगाता

१ यहांपर एक यह इतिहास है कि–कोई एक पुरुषके दो स्त्रिया थीं सो वह रोटी जीम, रातको सोने चला तो बड़ी बोली कि–अंटारीपर शीतल, मन्द, सुगंध, क्या पवन आ रही है. तब छोटीने कहा कि–भोजन कर, तुर्त आराम करना चाहिये. उसने कहा भोजनके पीछे सौ पद चलना चाहिये निदान गृहपतिने अँटारीपर जानेके लिये ज्यो सीढ़ीपर पांव रक्खा कि–त्योंही छोटीने नीचेसे टंगड़ी पकड़ नीचेको खींचा इतनेमें बड़ीने चोटी पकड़ ऊपरको ताना कि–ऐसी खींचाखींचमें सीढ़ीसे वेतो हाय २ करते जमीनपर गिरे और दो दांत टूटे और टांगभी टूटी जब यह हाल हुवा तब दोनों अपने २ पलँगपर जा, सो रहीं हलदीभी न लगाया.योंहीं इंद्रियां हैं.

जलमें पौढ़नेवाले और अपनी कालशक्तिसे प्रकृतिके गुणोंके प्रेरक हो उन्हींका स्वरूप यह जगत् है. शेषनागरूप पलँगपर पौढ़नेवाले आपकी समाधिका विराम होनेपर आपकी नाभिमेंसे सूक्ष्म बीजमेसे जैसे बड़ा वटका वृक्ष पैदा होता है ऐसे प्रलयके जलमें बड़ा कमल उत्पन्न हुआ था. जो प्रथम आपके स्वरूपमेंही गुप्तरूपसे रहा था ॥ ३३ ॥ इस कमलमें उत्पन्न भयेहुए और कमलके सिवाय दूसरा कुछभी नहीं देखतेहुए, ब्रह्माजी बीजरूप आप कि-जो अपने (ब्रह्मा) मेंही व्यापकर रहेहुए थे, उनको अपने (ब्रह्मा) से बाहिर हों ऐसे सोचकर, सौवर्षपर्यंत जलमें बूड़कर ढूंढ़ते रहे. तथापि उनको आपका पता लगा नहीं; ठीक है. अंकुर उगनेके अंनतर बीज किस प्रकार हाथ लगे ? ॥ ३४ ॥ फिर ब्रह्माजी अतिविस्मित होकर, जब पीछे लौटे और कम-

तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिंत्य ॥ नाविंदद्ब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेऽकुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥ ३४ ॥ सत्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ॥ त्वामात्मनीश भुवि गंधमिवातिसूक्ष्मं भूतेंद्रियाशयमये विततं ददर्श ॥ ३५ ॥ एवं सहस्रवदनांघ्रिशिरःकरोरुनासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ॥ मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिंचः ॥ ३६ ॥ तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्वेदद्रुहाव-तिबलौ मधुकैटभाख्यौ ॥ हत्वाऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनंति ॥ ३७ ॥

लपर बैठकर, तप करने लगे तप करते २ बहुत समय व्यतीत हो गया और उस तपके प्रभावसे अंतःकरण शुद्ध हो गया तब उन्होंने पृथ्वीके भीतर अत्यंत सूक्ष्म गंधकी नाईं भूत, इंद्रिय और अंतःकरणरूप अपने शरीरके भीतरही आपको व्यापक-रीतिसे विराजमान देखा ॥ ३५ ॥ इस प्रकार करनेसे आपका लोकरूप अवयववाला मायामय विराटरूप कि-जिसमें हजारों मुख, चरण, हाथ, ऊरू, नाक, कान और नेत्र थे तथा जो आभरण और आयुधोंसे परिपूर्ण था उसे देखकर, ब्रह्माजी आनं-दित हुए ॥ ३६ ॥ उस समय आपने हयग्रीवका अवतार धारण कर, वेदके द्रोही व तमोगुण रजोगुणरूप मधुकैटभ नाम दैत्योंको मारकर, ब्रह्माको वेद पीछे ला दिये; क्योंकि सत्वगुणही आपकी अतिशय प्रिय मूर्ति कहलाती है ॥ ३७ ॥

ऋषियोंके वचन सत्य करनेको किया है ऐसे मैं मानता हूं अयोग्य कर्म करना विचार कर, खड्ग हाथमें ले, मेरे पिताने कहा था कि–'मुझसे जुदा यदि कोईभी हो तौ भले वह तेरी रक्षा करे, मैं तेरा शिर उड़ा देता हूं.' उस समय भक्तोंको अभय देनेकी प्रतिज्ञाके आपके वचन सत्य करनेके वास्ते आपने महत्प्रयास किया है यहभी मानता हूं ॥ २९ ॥ इस सर्वजगत्रूप आप एकही हो, क्योंकि जगत्के आदिमें और अंतमें आपही अवशेष रहते हो तासों मध्यमेंभी आपही हो. अपनी मायासे गुणों-के परिणामरूप इस जगत्को सरज कर, उसमें अंतर्यामीरूपसे प्रवेश किये हुए आप गुणोंके कारण मानों किसीके रक्षक और किसीके मारक हों ऐसे जुदे २ प्रकारोंसे प्रतीत होते हो ॥ ३० ॥ हे ईश ! यह कार्यकारणरूप जगत् आपसे जुदा नहीं है, किंतु आप जग-

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यंतयोः पृथगवस्यासि मध्यतश्च ॥ सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमायये‌दं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥ ३० ॥ त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ॥ यद्यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद्वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ३१ ॥ न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयांबुमध्ये शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ॥ योगेन मीलितदृगात्मनि पीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युंक्षे ॥ ३२ ॥ तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या संचोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ॥ अंभस्यनंतशयनाद्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत्स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥ ३३ ॥

तसे जुदेभी हो. अतएव 'यह अपना और यह पराया' ऐसी बुद्धि मायिक और अवास्तविकही है. वृक्ष जैसे पृथ्वीमय बीजरूप है, बीज सूक्ष्मभूतरूप है. और सूक्ष्मभूत परब्रह्मरूप है. ऐसे यह जगत् पंचमहाभूतरूप है, पंचभूत अपने सूक्ष्मभूतरूप हैं. और सूक्ष्मभूत परब्रह्मरूप है. जो जिससे पैदा होवे, जिससे प्रकाशित होवे और जिसमें लीन होवे वह वस्तु तद्रूपही होती है ॥ ३१ ॥ इस जगत्को आपही अपने स्वरूपमें डालकर, अपने स्वरूपसुखका अनुभव करते समय क्रियारहित होकर, आप प्रलयके जलमें पौढ़ते हो. उस समय योगसे दृष्टि मूंदकर तथा स्वरूपके प्रकाशसे निद्राका पराभव करके, तीन अवस्थाओंसे जुदे स्वरूपमें विराजते हो, अतएव आप अज्ञानके या जाग्रत् स्वप्नके विषयोंमें नहीं देखते ॥ ३२ ॥ आप कि–जो इस प्रलयसंबंधी

प्रकार जानते हैं, तथापि परिश्रमसे प्राप्त हातेहुए सुखके लेशोंसे कामनारूप अग्निको शांत करते रहते हैं तासों वैराग्यको प्राप्त नहीं होते. हे प्रभु ! यह आपकी मायाकी चेष्टा बड़ी अद्भुत है ॥ २५ ॥ हे परमेश्वर ! रजोगुणसे रचेहुए शरीरवाले और तमोगुणकी वृद्धिवाले इस दैत्यकुलमें जन्म पाया हुआ मैं तो कहां ? और आपकी कृपा कहां ? जिस कृपासे परमपुरुषार्थरूप आपका हस्तकमल कि-जो आजतक ब्रह्मा, महादेव वा लक्ष्मीजीके शिरपरभी नहीं रक्खा गया वह मेरे शिरपर रक्खा गया ॥ २६ ॥ ब्रह्मादिक उत्तम हैं और यह असुर नीच है ऐसी पामर लोकोंके जैसी बुद्धि आपके बिलकुल नहीं है. क्योंकि आप तो सकल जगत्के आत्मा और मित्र हो. तथापि कल्पवृक्षकी नाईं जो जैसी सेवा करता है उसको उसके अनुसार फल मिलताही है. क्योंकि

काहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकंपा ॥ न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥ २६ ॥ नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जंतोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथापि ॥ संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥ २७ ॥ एवं जनं निपतितं प्रभवाऽहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसंगात् ॥ कृत्वाऽऽत्मसात्सुरर्षिणा भगवन्गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥ २८ ॥ मत्प्राणरक्षणमनंत पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ॥ खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥ २९ ॥

आपका अनुग्रह कल्पवृक्षके समान है. यद्यपि कल्पवृक्षके सब प्राणीमात्र बराबर हैं तथापि जो जन उसके नीचे बैठे उसको मनवांछित फल मिलता है. ऐसे आपके सब बराबर हैं, तथापि जो आपका सेवन करते हैं उनको उस सेवाके अनुसार फल मिलता है. तासों किसीप्रकार आपके विषमबुद्धि नहीं कही जा सक्ती ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! जैसे आपने मुझपर अनुग्रह किया और मुझको अपना करके रक्खा, ऐसेही पहिले नारदजीनेभी मैं कि-जो संसाररूप सर्पवाले कूपमें पड़ेहुए और विषयसुखकी लालसावाले लोकोंके प्रसंगसे उसी कूपमें पड़रहा था. उसे अपना कर रक्खा वह मैं आपके दासलोकोंकी सेवाका परित्याग कैसे करूं ? ॥ २८ ॥ हे अनंत ! मेरे प्राणकी रक्षा और मेरे पिताका वध जो आपने किया वह अपने दास और

प्रधान माननेवाला और अविद्याके दियेहुए सोलह विकाररूप आरावाला है उसको कालके क्षोभित कियेहुए गुणोंवाली माया आपके अंशरूप पुरुषकी दृष्टिसे उत्पन्न करती है. इस संसारचक्ररूप मनको आपकी भक्तिविना कौन तिर सकता है ? ॥ २१ ॥ हे प्रभु ! परमेश्वर ! चैतन्यशक्तिसे निरंतर बुद्धिके गुणोंको जीतनेवाले, मायाके प्रेरक और कार्य व साधनोंकी शक्तियोंको स्वाधीन रखनेवाले आप, मैं कि-जो मायासे सोलह (विकार) आरावाले संसारचक्रमें गिरायाहुआ और कोल्हूके भीतर ऊंखकी भांति पेरा जाता हूं तिस, शरणागत भक्तके मनको मारकर, अपने निकट खैंचो ॥ २२ ॥ हे

स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालोवशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ॥ चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥ २२ ॥ दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपानामायुः श्रियो विभव इच्छति यान् जनोऽयम् ॥ येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृंभितभ्रूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥ २३ ॥ तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोज्ञ आयुः श्रियं विभवमैंद्रियमाविरिंचात् ॥ नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥ २४ ॥ कुत्राऽऽशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ॥ निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥ २५ ॥

प्रभु ! सर्वलोकपालोंकी आयु, लक्ष्मी और वैभव कि-जिनकी लोक अभिलाषा रखते हैं उनको तो मैंने देख लिया; क्योंकि वे मेरे पिताके क्रोधयुक्त हास्यसे चढ़ीहुई भ्रुकुटिके विस्फूर्जितसेही नष्ट भ्रष्ट होगये थे. और इस मेरे पिताकोभी आपने मारा ॥ २३ ॥ अतएव परिणामको जाननेवाला मैं ब्रह्मापर्यंत प्राणियोंकि आयु, लक्ष्मी व इंद्रियोंसे भोगेजाते सुख और भोगोंकी अभिलाषा नहीं करता. ऐसे आपके कालरूप प्रबल पराक्रमसे नाश होनेवाली सिद्धियोंकोभी मैं नहीं चाहता. हे प्रभु ! मुझको तो आप अपने दासलोकोंके निकटमें राखो ॥ २४ ॥ श्रवणमात्रसे केवल कानोंको सुख देनेवाले, परंतु परिणाममें मृगतृष्णाके जलके समान संसारसंबंधी सुखोंमें क्या सार है ?. ऐसेही सर्व रोगोंके देनेवाले इस शरीरमेंभी क्या सार है ?. यद्यपि लोक इस

प्रियपदार्थके वियोग और अप्रिय पदार्थके संयोगसे उत्पन्न होतेहुए शोकरूप अग्निसे तमाम जन्मोंमें मैं जला करता हूं. यद्यपि संसारमें दुःख मिटनेके वास्ते जो उपाय हैं वेभी दुःखरूप हैं; तथापि मैं देहादिकके अभिमानसे भटक रहा हूं, तासों हे प्रभु! अब आप अपने दासभावरूप निस्तारका उपाय बता दो. कि-जिससे फिर यह दुःख कदापि मुझे सताने न पावे ॥ १७ ॥ हे नृसिंह! गुणोंके बंधनोंसे मुक्त होकर तथा आपके चरणारविंदमें रहनेवाले ज्ञानीलोकोंका संग करके, परमसुहृद और परमदैवतरूप आपकी ब्रह्माजीसे गायीजाती लीलासंबधी कथाओंका अभ्यास करनेसे बड़े २ दुःखोंको मैंभी सहजमें तिर जाऊंगा. यानी आपके कथामृतके प्रभावसे उनको

यस्मात्प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ॥ दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाऽहं भूमन्भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥ १७ ॥ सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरिंच्यगीताः ॥ अंजस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससंगः ॥ १८ ॥ बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौ ॥ तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहांजसेष्टस्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥ १९ ॥ यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुतयस्त्वपरः परो वा ॥ भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥ २० ॥ माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदितगुणाऽनुमतेन पुंसः ॥ छंदोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं संचारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥ २१ ॥

कुछ बस्तु नहीं गिनूंगा ॥ १८ ॥ हे नृसिंह ! दुःखी लोकोंके दुःख मिटानेके वास्ते जितने साधन इस जगत्में प्रसिद्ध हैं, वे सब आप जबलों उनकी उपेक्षा नहीं करते तबलों काम आते हैं. यदि आपसे उपेक्षा की जाय तो माता-पिताभी बालककी रक्षा नहीं कर सक्ते. औषध रोगीकी रक्षा नहीं कर सक्ता. और समुद्रमें बूड़तेहुएकी नौकाभी रक्षा नहीं कर सक्ती ॥ १९ ॥ जुदे जुदे स्वभाववाले पूर्व उत्पन्न भयेहुए ब्रह्मादिक अथवा उनसे पीछे उत्पन्न भयेहुए पिताआदि जो कोईभी जन जिसमें, जिस कारणसे, जब, जिससे, जिससंबंधी, जिसके वास्ते, जिस प्रकार, जिसकी प्रेरणासे और जिसको उत्पन्न करते हैं तथा रूपांतरको प्राप्त करते हैं, वह सब आपकाही स्वरूप हैं ॥ २० मन कि-जो कर्म करनेवाला, बलवान्, वेदोक्त कर्मको

वर्णन करता हूं; क्योंकि जो आपका वर्णन करता है वह पुरुष पवित्र हो जाता है ॥ १२ ॥ हे प्रभु ! आपसे उद्वेग पातेहुए ये सब ब्रह्मादिक लोक आप कि- जो सत्वमूर्ति हो तिनके भक्त और आज्ञाकारी हैं. परंतु हम लोकोंकी भांति वैरभावसे भजनेवाले नहीं हैं. तथा सुंदर अवतारोंसे आपकी लीला जगत्के कल्याण, ऐश्वर्य और सुख देनेके वास्ते होती है, परंतु भय उत्पन्न करनेके वास्ते नहीं होती. अतएव हे प्रभु ! इस क्रोधको शांत करो. असुरका बध कर चुके. इसलिये अब क्रोधका कोई प्रयोजन नहीं ॥ १३ ॥ बीछू वा सर्पको यदि कोई मार डाले तौ उससे साधु पुरुषभी प्रसन्नही होते हैं. ऐसे हिरण्यकशिपुके मारनेसे साधुलोक प्रसन्न हुए हैं. अब सुखी भयेहुए आपका क्रोध शांत होनेकी राह देखते हैं. हे नृसिंह ! लोक अपने भयके नाशके

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजंतः ॥ क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥ १३ ॥ तद्यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाऽद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ॥ लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियंति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरंति ॥ १४ ॥ नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्यजिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ॥ आंत्रस्रजः क्षतजकेसरशंकुकर्णा निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ १५ ॥ त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद्ग्रसतां प्रणीतः ॥ बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेंऽघ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गमरणं ह्वयसे कदा नु ॥ १६ ॥

निमित्त आपके स्वरूपका स्मरण करते हैं, सो स्वरूपस्मरणसेही भय निवृत्त हो जायगा. फिर क्रोध रखनेसे क्य प्रयोजन है ? ॥ १४ ॥ हे प्रभु ! वह आपका स्वरूप कि-जो अतिभयानक मुख, जिव्हा, सूर्यकेसे नेत्र, भ्रकुटिका चढाना और अतिकराल दाढोंसे डरावना देख पड़ता है, अंत्रमाला धरे हैं. और जिसके सटाके केश रुधिरसे व्याप्त हो रहे हैं, कान कीलेसे ऊंचे और खड़े देख पड़ते हैं. नखके अग्र शत्रुके विदारनेवाले हैं. और नादसे दिग्गज हाथीभी भयभीत होते हैं. इससे तौ मैं नहीं डरता ॥ १५ ॥ परंतु हे दीनवत्सल ! दुःसह और उग्र संसारचक्रके दुःखसे मैं बहुत डरता हूं. वहांभी साधारण संसारचक्रसे नहीं, किंतु अपने कर्मोंसे बँधकर, मैं हिंसक लोकोंके बीचमें पड़ा हूं इससे मुझको बहुत भय लगता है. सो हे प्रिय ! आप प्रसन्न होकर, मोक्षरूप और शरणरूप आपके चरणारविंदोंमें मुझको कब बुला होगे ? ॥ १६ ॥

तपन, इंद्रियोंकी निपुणता, कांति, प्रभाव, बल, उद्यम, बुद्धि और अष्टांगयोग इनमेंसे कोईभी उपाय भगवान्‌को प्रसन्न करनेके वास्ते परिपूर्ण नहीं है. क्योंकि भगवान् भक्ति करनेसे गजेंद्रपरभी प्रसन्न हुए हैं ॥ ९ ॥ चाहो ब्राह्मण जातिका और उसमेंभी पूर्वोक्त धनआदि द्वादश गुणोंसे संपन्न होवे, तौभी जो जन, भगवान्‌के चरणारविंदसे विमुख होवे, उसकी अपेक्षा जो जन चांडाल जातिका होनेपरभी अपने मन,बचन, कर्म, धन और प्राणको भगवदर्पण कर देवे उसे मैं श्रेष्ठ मानता हूं. क्योंकि ऐसा चांडालभी अपने सकलकुलको पवित्र करता है. और वैसा अतिबहुल गर्ववाला ब्राह्मण अपने कुलको पवित्र नहीं कर सकता. भक्तिरहित मनुष्यके पूर्वोक्त गुण केवल गर्वके वास्तेही होते हैं. परंतु कल्याणार्थ नहीं ॥ १० ॥ भगवान् आप अपने

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविंदनाभपादारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ॥ मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः ॥ १० ॥ नैवाऽऽत्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनाद-विदुषः करुणो वृणीते ॥ यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चाऽऽत्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥ ११ ॥ तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ॥ नीचोऽजया गु-णविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ १२ ॥

स्वरूपके लाभसेही परिपूर्ण हैं. तासों अज्ञानी पुरुषके पास उनके अपने वास्ते पूजा लेनेकी किसी प्रकारकी इच्छा नहीं है तथापि दयालु होनेके कारण चाहते हैं; क्योंकि यह प्राणी जिस जिस धनआदि पदार्थसे भगवान्‌को मान देता है वह वह पदार्थ अपने वास्तेही होता है. जैसे अपने मुखपर जितनी शोभा और सजावट की जाती है वह सब प्रतिबिंबको मिलती है. ऐसे भगवान्‌की जो पूजा की जाय वह सब उस आपको अर्थात् पूजा करनेवालेका मिलती है ॥ ११ ॥ अतएव मैं कि-जो नीच और मायाके बंधनसे संसारमें पड़ा हुआ हूं. वह निर्भय होकर, समस्तप्रयत्नसे मेरी बुद्धिके अनुसार परमेश्वरकी महिमाका

१ यद्वा सनत्सुजातोक्ता द्वादश धर्मादयो गुणा द्रष्टव्याः । तदुक्तम् । धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षाऽनसूया ॥ यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ १ ॥ यद्वा । शमो दमस्तपः शौचं क्षांत्यार्जवविरक्तताः ॥ ज्ञानविज्ञानसंतोषाः सत्यास्तिक्ये द्विषड्गुणाः ॥ २ ॥ अर्थ-अथवा सनत्सुजातपर्वमें कहेहुए धर्मादि बारह १२ गुण देखना. वही लिखते हैं-धर्म, सत्य, दम (बाह्येंद्रियनिग्रह), तप, अमात्सर्य (परसंताप न करना), लज्जा, तितिक्षा (क्षमा) अनसूया, (अनिन्दा), यज्ञ, दान, धृति और श्रुत (शास्त्रज्ञान) यही बारह ब्राह्मणके व्रत हैं ॥ १ ॥ अथवा शम (अन्त-रिंद्रियनिग्रह) , दम (बाह्येन्द्रियनिग्रह), तप, शौच, क्षान्ति (क्षमा), आर्जव (सरलता), विरक्तता, ज्ञान, विज्ञान,संतोष सत्य और आस्तिक्य यह बारह गुण हैं ॥ २ ॥

पित भयेहुए प्रभुके निकट तू जा. और उनको शांत कर ॥ ३ ॥ महाराज ! ब्रह्माजीकी आज्ञाको शिरपर चढ़ाकर, भगवान्के परमभक्त उस बालक प्रल्हादने कर जोड़े धीरे धीरे निकट जा कर, पृथ्वीपर शरीरसे साष्टांग प्रणाम किया ॥ ४ ॥ उस बालकको चरणमूलमें पड़ाहुआ देखकर, भगवान्ने करुणासे परिप्लावित होकर, उसको उठाया और कालरूप सर्पसे त्रसित बुद्धिवाले पुरुषोंके अभय करनेवाला अपना हस्तकमल उसके शिरपर रक्खा ॥ ५ ॥ भगवान्के करकमलका स्पर्श होतेही उसकी सब अशुभ वासना निवृत्त होगयीं. और तुरंत अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ. हृदयमें परमसुख प्राप्त हुआ. रोम खड़े

तथेति शनकै राजन्महाभागवतोऽभर्कः ॥ उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृतांजलिः ॥ ४ ॥ स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ॥ उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात्करांबुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥ ५ ॥ स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ॥ तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥ ६ ॥ अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तन्न्यस्तहृदयेक्षणः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ॥ नाराधितुं पुरुगुणैरधुनाऽपिपिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ ८ ॥ मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ॥ नाराधनाय हि भवंति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥ ९ ॥

हो गये. अंतःकरण प्रेमसे द्रवीभूत हो गया. नेत्रोंमें अश्रु भर आये और आप भगवान्के चरणारविंदका ध्यान करने लगा ॥ ६ ॥ एकाग्रचित्त और स्वस्थ भयाहुआ वह प्रल्हाद अपने नेत्र और हृदयको केवल नृसिंहजीके स्वरूपमें लगाकर, प्रेमके कारण गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगा ॥ ७ ॥ प्रल्हादने कहा कि–केवल सत्त्वगुणके विस्तारभरी बुद्धिवाले ब्रह्मादिक देवता मुनि और सिद्धलोकभी वचनोंके प्रवाहोंसे और अनेकगुणोंसे जिनका आराधन करनेको अबलोंभी समर्थ नहीं हुए वे भगवान्, मुझ असुरजातिपर किसप्रकार प्रसन्न होनेको योग्य होवें ? ॥ ८ ॥ परंतु मैं मानता हूं कि–धन, उत्तमकुलमें जन्म, रूप, तप, पंडि-

थे. परंतु यह महादुर्जन उस सपर्याको ले लिया करताथा. सो इसका आपने रोगकी नांई नाश किया. यह बहुत अच्छा हुआ ॥ ५४ ॥ किन्नरोंने स्तुति की कि–आपकी सेवा करनेवाले हम किन्नरोंके पास जो यह दैत्य बेगार लिया करता था. उस दुष्ट दैत्यको आपने मारा. अतएव हे नृसिंह ! हे स्वामी ! आप हमारा कल्याण करो ॥ ५५ ॥ विष्णु भगवान्‌के पार्षदोंने स्तुति की कि–हे भक्तोंको आश्रय देनहारे ! सर्वलोकोंको सुख देनेवाला यह अद्भुत नृसिंहरूप तौ हमने आजही देखा. हे प्रभु ! यह आपका दास हिरण्यकशिपु कि–जिसको ब्राह्मणोंने श्राप दिया था उसको आपने मारा, यह तौ इसीपर अनुग्रह करनेके वास्ते

किन्नरा ऊचुः ॥ वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ॥ भवता हरे स-वृजिनोऽवसादितो नरसिंहनाथ विभवाय नो भव ॥ ५५ ॥ विष्णुपार्षदा ऊचुः ॥ अद्यैतद्धरिनररू-पमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ॥ सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्र-हाय विद्मः ॥ ५६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे प्रह्लादानुचरिते दैत्यराजवधे नृसिंहस्त-वोनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः ॥ नोपैतुमशक-न्मन्युसंरंभं सुदुरासदम् ॥ १ ॥ साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात्सा नोपेयाय शंकिता ॥ २ ॥ प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्माऽवस्थितमंतिके ॥ तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥ ३ ॥

किया. ऐसे हम मानते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीभा० म० सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ नवमें अध्यायमें, भयके कारण ब्रह्माजीके प्रेरेहुए प्रल्हादने कोप शांत करनेको महाभयंकर नृसिंहजीकी स्तुति की, यह कथा होगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि–इसप्रकार क्रोधके आवेशवाले और अतिदुरासद नृसिंहजीसे दूर खड़े होकर, ब्रह्मा और महादेवआदि सब देवता स्तुति करते रहे, परंतु निकट नहीं जा सके ॥ १ ॥ देवतानने साक्षात् लक्ष्मीजीको भगवान्‌के पास पठाया. परंतु वेभी जिस स्वरूपको न तौ कभी देखा था. और न सुना था, ऐसा अद्भुत स्वरूप देखकर, त्रासके मारे समीपमें नहीं गईं ॥ २ ॥ तब निकटमें बैठेहुए प्रल्हादसे ब्रह्माजीने कहा कि–हे पुत्र ! तेरे पितापर कु-

प्रेरणासे प्रजाको रचतेहुए हम लोक जिसके प्रतिषेध करनेसे उस कार्यको छोड़ बैठे थे, उस दुष्ट दैत्यको आज आपने वक्षःस्थल विदार कर मारा. सो अब हम आनंदसे प्रजाको सरजेंगे. हे सत्वमूर्ति ! आपका अवतार जगत्के कल्याणके अर्थ है ॥ ४९ ॥ गंधर्वोंने कहा कि–हे प्रभु ! हम कि–जो आपके नट, नाचनेवाले और गायक हैं. उनको जिस दैत्यने अपनी शूरता और बलके प्रभावसे स्वाधीन कर लिया था. उस दैत्यको आपने आज इस दशाको प्राप्त किया यह ठीकही है. क्या उलटे मार्ग चलनेवालेका कल्याण हो सक्ता है ? कदापि नहीं ॥ ५० ॥ चारणोंने कहा कि–साधुलोकोंको त्रास देनेवाले इस दैत्यको आपने

गंधर्वा ऊचुः ॥ वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसाकृताः ॥ स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥ ५० ॥ चारणा ऊचुः ॥ हरे तवांघ्रिपंकजं भवापवर्गमाश्रिताः ॥ यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥ ५१ ॥ यक्षा ऊचुः ॥ वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञैस्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ॥ स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पंचतां पंचविंश ॥ ५२ ॥ किंपुरुषा ऊचुः ॥ वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ॥ अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ ५३ ॥ वैतालिका ऊचुः ॥ सभासु सत्रेषु ॥ तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ॥ यस्तां व्यनैषीद्भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः ॥ ५४ ॥

समाप्त किया. इसलिये हे हरि ! आपका चरणारविंद कि–जो संसारको मिटानेवाला है उसके शरण प्राप्त हुए हैं ॥ ५१ ॥ यक्षोंने स्तुति की कि– हे चौबीस तत्त्वोंके अधिप ! हे नृसिंह ! हम कि–जो उत्तम उत्तम कार्य करके, आपकी सेवा किया करते हैं; उनको इस दुष्ट दैत्यने बेगारी बना लिया था. परंतु आपने उस दैत्यके कियेहुए हमारे तापको जानकर, आज उस दैत्यका बध किया ॥ ५२ ॥ किंपुरुषोंने कहा कि–हम किंपुरुष हैं. और आप तो महापुरुष ईश्वर हो. तासों हम आपकी स्तुति किस प्रकार कर सकें ? यह कुपुरुष (हिरण्यकशिपु) तो तभीसे मर गया था. जबसे इसका साधुपुरुषोंने तिरस्कार कर दिया था ॥ ५३ ॥ वैतालिकोंने स्तुति की कि–सभाओंमें और यज्ञोंमें आपकी निर्मल कीर्तिका गान करके, हम बड़ी सपर्या (पूजा) पाया करते

पित्रीश्वरोंने स्तुति की कि-जो यह असभ्य दैत्य, हमको हमारे पुत्रोंके दियेहुए श्राद्धोंको और तीर्थमें दियेहुए तिलजलकोभी बला-त्कारसे ले लिया करता था उस दैत्यके पेटको नखोंसे विदार कर, आपने वह सब हमको पीछा दिया. अतएव सर्वधर्मोंके रक्षक आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ सिद्धोंने स्तुति की कि-जो दुष्ट दैत्य हमारी योगसिद्ध सिद्धिको योग और तपके बलसे ले गया था उस अनेक प्रकारके दर्पसे दर्पित दैत्यको जिन आपने नखसे विदार दिया उन नृसिंहमूर्ति आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४५ ॥ विद्याधरोंने स्तुति की कि-बल और वीर्यसे दर्पित जिस दैत्यने जुदे जुदे ध्यानसे प्राप्त हमारी विद्याका प्रतिषेध कर दिया था. उस दैत्यको

पितर ऊचुः ॥ श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेप्यपिबत्तिलांबु ॥ तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ४४ ॥ सिद्धा ऊचुः ॥ यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन ॥ नानादर्पं तं नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ ॥ ४५ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ॥ स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ४६ ॥ नागा ऊचुः ॥ येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ॥ तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानंद नमोऽस्तु ते ॥ ४७ ॥ मनव ऊचुः ॥ मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ॥ भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किंकरान् ॥ ४८ ॥ प्रजापतय ऊचुः ॥ प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ॥ स एष त्वया भिन्नवक्षानुशेते जगन्मंगलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥ ४९ ॥

जिन आपने युद्धमें पशुकी भांति मारा, तिन मायासे नृसिंहमूर्ति आपको हम वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥ नागलोकोंने स्तुति की कि-जिस पापीने हमारे रत्न और उत्तम स्त्रियोंका हरण किया. उस दैत्यके वक्षःस्थलको विदारकर, हमको जिन्होंने आनंदित किया तिन आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४७ ॥ मनुलोकोंने स्तुति की कि-हम मनु कि-जो आपकी आज्ञानुसार अपना विहित कर्म कर रहे हैं. उनकी सर्वमर्यादानको जिसने तोड़ दिया. उस दुष्ट दैत्यको आपने मारा. यह बहुत आच्छा हुआ. अब हे प्रभु ! हम किंकरलोकोंको क्या आज्ञा है ? हमें आज्ञा करो ॥ ४८ ॥ प्रजापतियोंने कहा कि-हे परमेश्वर ! आपकी

करने लगे ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि-सत्वआदि गुणोंद्वारा अपनी लीलासे जगत्की स्थिति, उत्पत्ति व संहार करनहारे. अव्ययस्वरूप, दुरंतशक्ति, विचित्र पराक्रम और पवित्र चरित्र, अनंतरूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४० ॥ महादेवजीने कहा कि-आपके कोपका काल तौ जगत्का प्रलयकालही है. अभी तो आपने यह अत्यंत अल्प दैत्यका बध किया है. हे भक्तवत्सल ! इसलिये अब कोप शांत करके, आपके भक्त और शरणागत इस प्रल्हादकी रक्षा करो ॥ ४१ ॥ इंद्रने स्तुति की कि- हे परमेश्वर नृसिंह ! आपने हमारी रक्षा करी, दैत्यसे छीनकर, हमारे भाग हमको आपन पीछे दिये. आपका ध्यान करनेका

ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्म्यनंताय दुरंतशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ॥ विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥ ४० ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ कोपकालो युगांतस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ॥ तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४१ ॥ इंद्र उवाच ॥ प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा दैत्याक्रांतं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ॥ कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ४२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ॥ तद्विप्रलुप्तममुनाऽद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४३ ॥

धाम हमारा हृदयकमल कि-जो दैत्यके भयसे व्याप्त था उसको वह भय निवृत्त करके विकसित किया है. जिसका कालसे नाश होनेवाला है ऐसा यह त्रैलोक्यका राज्य तौ आपके सेवक लोकोंके वास्ते किस गिनतीमें ? क्योंकि इनको तौ हे नाथ ! मुक्तिभी प्रिय नहीं लगती. तब दूसरे सुखोंका तौ हिसाबही कौन ? ॥ ४२ ॥ ऋषियोंने कहा कि-हे आदिपुरुष ! हे शरणागतपालक ! आपका प्रभावमय ध्यानरूप तप कि-जिससे आपने अपनेमें रहेहुए जगत्को पैदा किया, वही करनेको आपने हमको कहा है. परंतु वह तप अभी इस दैत्यसे विध्वंस किया गया था. सो रक्षाके वास्ते अवतार धारण करके, पीछा तप करनेको आपने आज हमको आज्ञा की है ॥ ४३ ॥

लगे. इनके तेजसे आकाश और दिशायें कांतिहीन हो गयीं ॥ ३३ ॥ फिर सभाके बीच उत्तम राजसिंहासनपर विराजमान तेजःपुंजसे भरेहुए और जिनके सोहीं कोईभी शत्रु देखनेमें नहीं आता ऐसे महाक्रोधसे भरे और विकराल मुखवाले उन प्रभु नृसिंह भगवान्के निकट कोईभी नहीं गया ॥ ३४ ॥ त्रिलोकीको दुःख देनेके लिये शिरके शूलके समान इस आदिदैत्य हिरण्यकशिपुका भगवान्ने बध किया, तिसे देखकर, आनंदके वेगसे जिनके मुखकमल प्रफुल्लित हो रहे हैं ऐसी देवांगना बारंवार फूलोंकी बरसा करने लगीं ॥ ३५ ॥ जिस समय भगवान्ने दैत्यका बध किया, उस समयमें भगवान्के दर्शनकी

ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे नृपासने संभृततेजसं विभुम् ॥ अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं प्रचंडवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥ ३४ ॥ निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥ ३५ ॥ तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतां संकुलमास नाकिनाम् ॥ सुरानका दुंदुभयोऽथ जघ्निरे गंधर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥ ३६ ॥ तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेंद्रगिरिशादयः ॥ ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ॥ ३७ ॥ मनवः प्रजानां पतयो गंधर्वाप्सरचारणः ॥ यक्षाः किंपुरुषास्तात वैतालाः सिद्धकिन्नराः ॥ ३८ ॥ ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनंदकुमुदादयः ॥ मूर्ध्नि बद्धांजलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ॥ ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥ ३९ ॥

इच्छावाले स्वर्गवासी लोकोंके विमानोंकी पंक्तियोंसे आकाशतल व्याप्त होगया. देवतानके नक्कारे और दुंदुभि बजने लगे. मुख्य मुख्य गंधर्व लगे गान करने और अप्सरायें, लगीं नृत्य करने ॥ ३६ ॥ ब्रह्मा इंद्र और महादेवआदि देवता, ऋषि, पित्रीश्वर, सिद्ध, विद्याधर, बड़े २ नाग, ॥ ३७ ॥ मनु, प्रजापति, गंधर्व, अप्सरायें, चारण, यक्ष, किंपुरुष, वैताल, सिद्ध, किन्नर, ॥ ३८ ॥ और सुनंद कुमुदआदि सब भगवान्के पार्षद वहां समीप आ, शिरपर अंजलिसंपुट जोड़ न तौ अतिदूर और न अतिनिकट ऐसे खड़े हो, सिंहासनपर विराजमान अतितीव्र तेजवाले नृसिंह भगवानकी जुदे २ प्रकारकी स्तुतियोंसे स्तुति

जीने पीछा पकड़ लिया॥२८॥ सर्पके पकड़ेहुए मूषककी भाति चौतर्फ आतुरतासे तड़पते और जिसका चमड़ा वज्रसेभी नहीं कटा था ऐसे हिरण्यकशिपुको द्वारके बीच यानी न तौ भीतर और न बाहिर अपनी साथलोंपर यानी न तौ पृथ्वीपर और न आकाशमें पटककर, गरुड़ जैसे महाजहरीले सर्पको चीर डालता है ऐसे लीलामात्रसे भगवान्‌ने सायंकालके समयमें यानी न तौ दिनमें और न रात्रिमें, नखोंसे यानी न तौ जीते और न मरेहुए पदार्थसे चीर डाला॥ २९॥ क्रोधके कारण किसीसे जिनके सामने नहीं देखा जाता ऐसे महाविकराल नेत्रवाले, फटेहुए मुखकी गलाफू जीभसे चाटतेहुए, गलेमें आंतोंकी माला पहिरे और हाथीको मारनेवाले सिंहके समान

विष्वक्स्फुरंतं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ॥ द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम् ॥ २९ ॥ संरंभदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननांतं विलिहन्स्वजिह्वया॥ असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथांऽत्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥ ३० ॥ नखांकुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ॥ अहन्समंतान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दोर्दंडयूथोऽनुपथान्सहस्रशः ॥ ३१ ॥ सटाऽवधूता जलदाः परापतन् ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ॥ अंभोधयः श्वासहता विचुक्षुभुर्निर्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥ ३२ ॥ द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसंकुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदाऽतिपीडिता ॥ शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥ ३३ ॥

जिनकी सटा और मुख रुधिरके बिंदुओंसे लिपायमान और रक्तवर्ण हो रहा था ऐसे नृसिंह भगवान्‌ने हिरण्यकशिपु कि-जिसके हृदयकमलको नखोंके अग्रसे विदारण किया था उसे फेंककर, उसके उद्यतशस्त्र हजारों अनुचरोंको और पक्षपातियोंको चौतर्फसे नख, शस्त्र और चपेटोंसे मारकर, मैदान कर दिया. उस समय भगवान्‌के पास तौ सैन्यमें केवल अपने हाथही थे॥ ३०॥ ३१ ॥सटासे कम्पित भयहुए बादल बिखरने लगे. ग्रह भगवान्‌की दृष्टिकी कांतिसे छबि छीन होगये भगवान्‌के श्वाससे समुद्रोंमें तोफान उठ खड़ा हुआ. और नृसिंह भगवान्‌का अदृष्ट शब्द सुनकर, भयभीत दिग्गज चिल्लाने लगे ॥ ३२ ॥ सटाकी झपटसे उत्क्षिप्त जो विमान उनसे आकाश व्याप्त हो गया. और पृथ्वी पांवके भारसे पीड़ित होकर, [illegible] और भगवान्‌के वेगसे पर्वत गिरने

करता यह महादैत्य हिरण्यकशिपु गदा हाथमें ले, नृसिंह भगवान्‌के ऊपर चला. इस समय अग्निमें पड़ाहुआ पतंग जैसे अलक्षित हो जाता है ऐसे वह दैत्य नृसिंह भगवान्‌के तेजमें अलक्षित हो गया. यानी दैत्यका कुछभी पता न रहा ॥ २४ ॥ सत्त्वके प्रकाशरूप भगवान् कि–जो सृष्टिके आरंभमें प्रलय कालके अंधकारको अपने तेजसे पीगये थे. उनके तेजमें पड़ाहुआ यह दैत्य अलक्षित हुआ. यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है. फिर हिरण्यकशिपुनें आकर, क्रोधसे महावेगवाली गदासे नृसिंह भगवान्‌के वक्षःस्थलमें प्रहार किया ॥ २५ ॥ पराक्रम करते और गदा धारण करते इस दैत्यको गरुड़जी जैसे बड़े सर्पको पकड़ें वैसे भगवा-

न तद्विचित्रं खलु सत्त्वधामनि स्वतेजसा यो नु पुरापिबत्तमः ॥ ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥ २५ ॥ तं विक्रमंतं सगदं गदाधरो महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाऽग्रहीत् ॥ स तस्य हस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥ २६ ॥ असाध्वमन्यंत हृतौकसोऽमरा घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः ॥ तं मन्यमानो निजवीर्यशंकितं यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ॥ पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे ॥ २७ ॥ तं श्येनवेगं शतचंद्रवर्त्मभिश्चरंतमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ॥ कृत्वाऽट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥ २८ ॥

नूने पकड़ा परंतु लीला करतेहुए भगवान्‌के हाथमेंसे, गरुड़जीकी चोंचमेंसे जैसे सर्प निकल जाय ऐसे, यह दैत्य निकल गया ॥ २६ ॥ हे राजा ! जिनके स्थान हिरण्यकशिपुने ले लिये थे ऐसे सब लोकपाल देवता कि–जो बादल आड़े देकर, देख रहे थे वे हिरण्यकशिपु हाथमेंसे खसक गया. इस बातको बड़ी बुरी मानने लगे. भगवान्‌के हाथमेंसे छिटक गया, तासों भगवान्‌को अगने पराक्रमसे भयभीत मानता वह दैत्य युद्धमें श्रमको जीत, ढालतलवार लेकर, पीछा वेगसे भगवान्‌के ऊपर आया॥ २७ ॥ बाजके समान वेगवाले और ढाल तलवारके पेंचोंसे प्रतिपक्षी (दुश्मन) का दांव न लगे इस प्रकार ऊपर नीचे फिरतेहुए इस हिरण्यकशिपुको भयंकर शब्दवाले तीव्र अट्टहासके भयसे और अपने तेजसे उस दैत्यकी आंखें मुंदवाकर, महावेगवाले नृसिंह-

शब्द सुनकर, यह शब्द किसने किया? ऐसे चौतर्फ देखता था. इतनेमें खंभमेंसे निकलतेहुए इस स्वरूपको देखा, तदनंतर विचार करने लगा कि-अहो! यह न तौ जानवर है और न मनुष्य है, सिंह और मनुष्यमिश्रित स्वरूप है. यह क्या होगा? ॥१९॥ इसप्रकार वह विचार करता था, इतनेमें तो महाभयानक नृसिंहरूप उसकी दृष्टिमें आये, नृसिंह भगवान्‌के नेत्र तपेहुए सुवर्णकेसे भयंकर थे. सटा (कंधेके बाल) और बालोंके चाकचक्यसे मुखका भारी आडंबर बन रहा था ॥ २० ॥ विकराल दाढ़ें, छूरेकी पैनी अनीसी तीक्ष्ण धारवाली खड्गकी भांति लपकतीहुई जीभ, भालमें चढ़ीहुई भारी भयानक भ्रुकुटिसे उल्बण मुख, खड़े और अक्कड़ कान, पर्वतकी

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ॥ प्रतप्तचामीकरचंडलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृंभिताननम् ॥ २० ॥ करालदंष्ट्रं करवालचंचलक्षुरांतजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ॥ स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकंदराद्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥ २१ ॥ दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षस्थलमल्पमध्यमम् ॥ चंद्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥ २२ ॥ दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ॥ प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥ २३ ॥ एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो नदन्नृसिंहं प्रति दैत्यकुंजरः ॥ अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतंगमो यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥ २४ ॥

गुफाके समान महाअद्भुत फटाहुआ मुख और नासिका, कानके अंततक फटीहुई गलाफू, इनसे वह स्वरूप महा भयंकर लगता था ॥ २१ ॥ शरीर स्वर्गको पहुंच जाय इतना ऊंचा, गर्दन पुष्ट और जंघा, वक्षःस्थल महाविशाल, पतली कमर, चंद्रमाकी किरणोंके समान देदीप्यमान सुफेद रोम शरीरमें व्याप रहे थे. हजारों हाथ सर्व दिशाओंमें फैल रहे थे. नख आयुधोंके समान शोभ रहे थे ॥ २२ ॥ किसीसे निकट जाया जाय ऐसे नहीं था. चक्रआदि अपने उत्तम शस्त्र और वज्रआदि दूसरे देवतानके उत्तम शस्त्र धारण कर रहे थे, तिससे दैत्य और दानव दूर भाग रहे थे. ऐसे स्वरूपको देखकर, हिरण्यकशिपु विचार करने लगा कि-बहुत करके महामायावी विष्णुने इस ढबसे मुझे मारनेका विचार किया होगा क्या ? ॥ २३॥ ऐसे कहता और गर्जना

सुनकर, ब्रह्मादिकोंने तौ अपने लोकोंका प्रलय होनाही मान लिया ॥ १६ ॥ पराक्रम करतेहुए और बलसे पुत्रको मार डालना विचारतेहुए इस दैत्यने अपूर्व और अद्भुत शब्द सुना, जिससे बड़े बड़े दैत्य त्रास खा गये. परंतु सभाके बीचमें जिसने यह शब्द किया, उसे नहीं देखा ॥ १७ ॥ इतनेमें तौ खंभ चीरकर, श्रीनृसिंह भगवान् प्रकट हुए. अपने दास प्रल्हादने कहा था कि–' खंभेमें दीखते हैं ' यह बात सत्य करनेके लिये तथा सर्वस्थलमें आप व्याप्त हैं यह बात प्रकट दिखानेके लिये, अपने भक्त सनकादिकोंने जय विजयको श्राप दिया. फिर पश्चात्ताप करके उन्होंने कहा कि–'तीन जन्मसे तुम्हारा श्रापसे छुटकारा हो जायगा ' यह बात सत्य करनेके वास्ते अपने पार्षद हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे वरदान मांगा था कि–' आपके रचेहुए प्राणि-

स विक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् ॥ अंतःसभायां न ददर्श तत्पदं वितत्र-सुर्येन सुरारियूथपाः ॥ १७ ॥ सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चाऽऽत्म-नः ॥ अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तंभे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥ १८ ॥ ससत्त्वमेनं परि-तोऽपि पश्यन्स्तंभस्य मध्यादनु निर्जिहानम् ॥ नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृ-मृगेंद्ररूपम् ॥ १९ ॥

योंसे नहीं मरूं तथा मनुष्य या जानवरसे अथवा बाहिर कै भीतर, रात्रि वा दिनमें न मरूं, यह बात सत्य करनेके वास्ते, अपने दास ब्रह्माजीने हिरण्यकशिपुको ' तथास्तु ' ऐसा कहा था यह बात सत्य करनेके वास्ते, अपने दास हिरण्यकशिपुने कहा था कि–'कदाचित् मेरी इस पुत्रके विरोधसे तौ मृत्यु न हो जाय ? ' यह बात सत्यकरनेके वास्ते, अपने भक्त नारदजीने इंद्रको कहा था कि–' यह कयाधूका गर्भ तुझसे नहीं मरेगा तथा यह सर्वसे निर्भय रहेगा वह वार्ता सत्य करनेके वास्ते और आपनेभी अपने भक्तोंसे अनेक बेर कहा है कि– 'मेरे भक्तकी मैं रक्षा करता हूं ' यह बात सत्य करनेके वास्ते जानवरभी नहीं और मनुष्यभी नहीं ऐसा अद्भुत रूप धारण करके, नृसिंह भगवान् सभाके बीच खंभमेंसे प्रगट हुए ॥ १८ ॥ यह हिरण्यकशिपु अद्भुत

१ कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ॥ १ ॥ अर्थ–भगवान्ने श्रीमुखसे गीतामें अर्जुनके प्रति कहा है कि– हे कौन्तेय ! (अर्जुन) तुम ऐसा जानो कि–हमारा भक्त नाश नहीं होता. हम अपने भक्तोंको मृत्युसे तथा संसारसागरसे अलग कर देते हैं ॥ १ ॥

जानो ॥ १० ॥ कितनेएक लोक, लूट करतेहुए छः इंद्रियरूप शत्रुओंको विना जीते पहलेहीसे दशोंदिशानको निजकी जीतीहुई मानलेते हैं. परंतु जो विद्वान् मनको जीतनेवाला और प्राणीमात्रमें समता रखनेवाला है, उसके तौ अपने अज्ञानसे कल्पन किये जाते शत्रु कथमपि (कोईतरहभी) नहीं होते ॥ ११ ॥ प्रल्हादका यह वचन सुनकर, हिरण्यकशिपुने कहा कि-तू निश्चय मरनेकी कामनावाला है; क्योंकि तू बहुत कुछ बकवाद करता है. हे मंदबुद्धि ! जिनकी मृत्यु निकट आ जाती है उनकी वाणीका कुछ ठिकाना नहीं रहता ॥ १२ ॥ हे मंदभाग्य ! मेरे सिवाय दूसरा तूने जो जगत्का ईश्वर बतलाया, वह

दस्यून्पुरा षण्णविजित्य लुंपतो मन्यंत एके स्वजिता दिशो दश ॥ जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योतिमात्रं विकत्थसे ॥ मुमूर्षूणां हि मंदात्मन्ननु स्युर्विप्लवा गिरः ॥ १२॥ यस्त्वया मंदभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ॥ क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तंभे न दृश्यते ॥ १३ ॥ सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ॥ गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥ १४ ॥ एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन् रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः ॥ खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात्स्तंभं तताडातिबलः स्वमुष्टिना ॥ १५ ॥ तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो बभूव येनांडकटाहमस्फुटत ॥ यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः श्रुत्वा स्वधामाप्ययमंग मेनिरे ॥ १६ ॥

जो हो तौ कहां है ? प्रल्हादने कहा कि-वह सबठौर है. हिरण्यकशिपुने कहा कि-तब इस खंभेमें क्यों नहीं ? तब प्रल्हादने कहा कि- ये विद्यमान दीखते हैं ॥ ॥ १३ ॥ हिरण्यकशिपु उस रूपको खंभेमें न देखकर, बोला कि-तू जो विपरीत बोल रहा है तिसका शिर मैं धड़से दूर कर देता हूं. अब जिसे तू अपना शरणद मानता है वह विष्णु भले तेरी रक्षा करे, देखें किस प्रकार तेरी रक्षा करता है ? ॥ १४ ॥ नारदजीने कहा कि-इसप्रकार महावैष्णव पुत्रको दुर्वचनोंसे वारंवार पीड़ित करता और क्रोधसे भरेहुए इस महाबली दैत्यने खड्ग लेकर, आसनऊपरसे उछलकर, खंभेके बीचमें अपनी मुक्की मारी ॥ १५ ॥ हे राजा ! उसीक्षण उसी खंभेमेंसे महाभयंकर शब्द हुआ. जिससे ब्रह्मांड स्फुटित होगया. इस शब्दको अपने लोकोंमें

मारनेका मन किया ॥ ३ ॥ जिसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये ऐसे प्रल्हादका परुष यानी कठोर वाणीसे तिरस्कार कर, टेढी और क्रोधभरी कुटिल आंखसे तिरछा देखकर, ॥ ४ ॥ स्वभावसे दारुण और पांवसे कुचलेहुए सर्पकी नाई फुंकारते हिरण्यकशिपुने प्रल्हाद कि–जो जितेंद्रिय और नम्रताके निमित्त हाथ जोड़े खड़ा था उससे इस प्रकार कहा कि– ॥ ५ ॥ "हे दुर्विनीत ! हे मंदबुद्धि ! हे कुलमें भेद पटकनेवाले ! अधम ! तू कि–जो अक्कड़ और मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला है तिसे आज मैं यमपुरी पठाय दूंगा ॥ ६ ॥ हे मूढ़ ! मैं कि–जिसके क्रोधसे लोकपालसहित तीनों लोक कांप उठते हैं, तिसकी

क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम् ॥ आहेक्षमाणः पापेन निरश्चीनेन चक्षुषा ॥ ४ ॥ प्रश्रयावनतं दांतं बद्धांजलिमवस्थितम् ॥ सर्पः पदा हत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत मंदात्मन्कुलभेदकराधम ॥ स्तब्धं मच्छासनोद्धूतं नेष्ये त्वाऽद्य यमक्षयम् ॥ ६ ॥ क्रुद्धस्य यस्य कंपंते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ॥ तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किं बलोऽत्यगाः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ न केवलं मे भवतश्च राजन्स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ॥ परेऽवरेऽमी स्थिरजंगमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥ ८ ॥ स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजः सहः सत्त्वबलेंद्रियात्मा ॥ स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥ ९ ॥ जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न संति विद्विषः ॥ ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि ह्यनंतस्य महत्समर्हणम् ॥ १० ॥

आज्ञाका उल्लंघन तू निर्भयकी नाई किसके बलसे करता है ? ॥ ७ ॥ प्रल्हादने कहा कि–हे राजा ! पहले और पिछले सब स्थावर जंगमोंको और ब्रह्मादिकोंकोभी जिन्होंने अपने वश कर लिया है, वेही ईश्वर मेरे और तुम्हारेभी बलरूप हैं, इतनाही नहीं, किंतु दूसरे बलवालोंकेभी बलरूप येही हैं. ॥ ८ ॥ महापराक्रमी ये ईश्वरही कालरूप कहलाते हैं. शरीरकी शक्ति, मनकी शक्ति, धैर्य, बल और इंद्रियोंके नियंताभी येही हैं. तीन गुणोंके स्वामी येही परमेश्वर अपनी शक्तियोंसे जगत्को रचते हैं, पालते हैं और लीन करते हैं ॥ ९ ॥ आप यह अपना असुरभाव त्याग दो. और मनमें समता राखो. अजित और उलटे मार्ग चलनेवाले मनके सिवाय दूसरा कोईभी शत्रु नहीं है. मनमें समता रखनी यही भगवान्का बड़ा आराधन है, ऐसे

दान, तप, यज्ञ, पवित्रता वा व्रत कोईभी भगवान्‌को प्रसन्न करनेके वास्ते समर्थ नहीं है. भगवान् तौ केवल निर्मल भक्तिहीसे प्रसन्न होते हैं. बाकी सब ढोंग हैं ॥ ५१॥ ५२ ॥ इसलिये हे दैत्यो ! सबको अपने बराबर जानकर, सर्व प्राणीमात्रके आत्मा और परमेश्वर नारायण हरि भगवान्‌कीही भक्ति करो. दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियां, शूद्र, व्रजवासी, पक्षी, चौपायं और दूसरेभी पापी जीव भक्तिके प्रभावसे मुक्त हुए हैं॥ ५३ ॥ ५४ ॥ भगवान्‌की अखंडित भक्ति करनी और सर्वमें भगवान् विराजे हैं ऐसे विचारना, यही इस जगत्‌में मनुष्यका मुख्य स्वार्थ है ॥ ५५ ॥ इति श्रीभा० म० सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ॥ प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडंबनम् ॥ ५२ ॥ ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः ॥ आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥ ५३ ॥ दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ॥ खगा मृगाः पापजीवाः संति ह्यच्युततां गताः ॥ ५४ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ॥ एकांतभक्तिर्गोविंदे यत्सर्वत्र परीक्षणम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ नारद उवाच॥ अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ॥ जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥ १ ॥ अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकांतसंस्थिताम् ॥ आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥ २ ॥ श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयम् ॥ कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हंतुं मनोदधे ॥ ३ ॥

सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥ आठवें अध्यायमें अत्यंत क्रोधसे पुत्रको मारतेहुए हिरण्यकशिपुको नृसिंह भगवान्‌ने स्वयंप्रगट होकर, मारा और ब्रह्मादिक देवताननें भगवान्‌की स्तुति की, यह कथा होगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-दैत्योंके बालक प्रल्हादकी बात सुनकर, निर्दोष होनेके कारण उसीको ग्रहण करने लगे. गुरुकी शिक्षा ग्रहण नहीं की ॥ १ ॥ इस प्रकार इन सब बालकोंकी बुद्धि परब्रह्ममें लगीहुई देखकर, शुक्राचार्यके पुत्रने डरकर, वह सब वार्ता यथार्थ रीतिसे जाकर, हिरण्यकशिपुसे कही ॥ २ ॥ यह अप्रिय असह्य पुत्रकी अनीति सुनकर, क्रोधके आवेशसे जिसका शरीर कांप रहा था ऐसे हिरण्यकशिपुने पुत्रको

और क्षणभंगुर है· तथा वारंवार आता है· और जाता है ॥ ४३ ॥ अहंताका आस्पद देहभी जब पराया है तब संतान, स्त्रियां
घर, धनआदि राज्य, भंडार, हाथी, अमात्य, नौकर और संबंधी कि-जो देहसे दूर और ममताके आस्पद हैं वे पराये होवें
इसमें तो कहनाही क्या ? ॥ ४४ ॥ आत्मा कि-जो अविनाशी आनंदका समुद्ररूप है उसके तुच्छ और देहके साथ नाश होने-
वाले तथा अनर्थरूप होनेपरभी भूलसे पुरुषार्थरूप प्रतीत होतेहुए संतानआदि अनर्थोंसे क्या प्रयोजन है ?॥ ४५ ॥ कर्मके
हेतु, गर्भआदि स्थितियोंमें क्लेश पातेहुए प्राणियोंको पूर्वोक्त पदार्थोंसे यहां कितना और कैसा सुख मिलता है ? वो कहो

किमु व्यवहितापत्यदारागारधनादयः ॥ राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः ॥ ४४ ॥ किमे-
तैरात्मनस्तुच्छैः सहदेहेन नश्वरैः ॥ अनर्थैरर्थसंकाशैर्नित्यानंदमहोदधेः ॥ ४५ ॥ निरूप्यतामिह स्वा-
र्थः कियान्देहभृतोऽसुराः ॥ निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥ ४६ ॥ कर्माण्यारभते दे-
ही देहेनात्मानुवर्तिना ॥ कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥ ४७ ॥ तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्मा-
श्च यदपाश्रयाः ॥ भजतानीहयाऽऽत्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥ ४८ ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मे-
श्वरः प्रियः ॥ भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥ ४९ ॥ देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गंधर्व
एव च ॥ भजन्मुकुंदचरणं स्वस्तिमान्स्याद्यथा वयम् ॥ ५० ॥ नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वाऽसुरा-
त्मजाः ॥ प्रीणनाय मुकुंदस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥ ५१ ॥

॥ ४६ ॥ प्राणी निजरूप मानेहुए देहसे कर्म किया करता है और कर्मसे पीछा देहको प्राप्त होता है· तासों सुख भोगनेका
अवसर इसे मिलही नहीं सक्ता. और वास्तविक रीतिसे देखते हैं तो कर्म और देह ये दोनों अज्ञानहीसे होते हैं ॥ ४७ ॥ इस-
लिये अर्थ, काम और धर्म, ये सब जिनके आधीन हैं तिन क्रियारहित भगवान्को क्रिया रहित होकर, भजो ॥ ४८ ॥ अपने
रचेहुए पंचमहाभूतोंसे बनायेहुए संपूर्ण प्राणीमात्रके आत्मा अंतर्यामी ईश्वर और प्रिय भगवान्ही हैं ॥ ४९ ॥ अपनेको इन
भगवान्के भजनका अधिकार नहीं ऐसे नहीं जानना; क्योंकि देव, असुर, मनुष्य, यक्ष वा गंधर्व कोई क्यों न हो, भगवान्के
चरणका भजन करनेसे उसका कल्याणही होता है ॥ ५० ॥ हे दैत्यपुत्रो ! ब्राह्मणत्व, देवत्व, ऋषित्व, सदाचार, बहुलज्ञान,

जन करो ॥ ३७ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! भगवान्‌की उपासना करनेमें कोई बड़ा परिश्रम नहीं है, क्योंकि भगवान् अपने हृदयमें आकाशकी नाई बिराजही रहे हैं, प्रभु अपने आत्मा और सर्वप्राणीमात्रके सखा हैं. सर्वसाधारण प्राणियोंकी तरह विषय संपादन करनेमें क्या फल है ? कुछभी नहीं. विषयोंमें निष्ठा रखनेसे तौ कुत्ते और शूकरकी बराबरी हो जाती है ॥ ३८ ॥ धन, स्त्रियां, पशु, पुत्रादिक, घर, पृथ्वी, हाथी, भंडार, वैभव (ऐश्वर्य), और इनके सिवाय औरभी सब पदार्थ और कामना कि-जो चंचल हैं, वे क्षणभंगुर आयुष्यवाले, मनुष्यको कितना प्रिय कर सकते हैं ?॥ ३९ ॥ यज्ञ करनेसे मिलनेवाले स्वर्गादिक लोकभी इ-

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि छिद्रवत्सतः ॥ स्वस्याऽऽत्मनः सख्युरशेषदेहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥ ३८ ॥ रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा मही कुंजरकोशभूतयः ॥ सर्वेऽर्थकामाः क्षणभंगुरायुषः कुर्वंति मर्त्यस्य कियत्प्रियं चलाः ॥ ३९ ॥ एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः ॥ तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं भक्त्यैकयेशं भजताऽऽत्मलब्धये ॥ ४० ॥ यदध्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः ॥ करोत्यतो विपर्यासममोघं विंदते फलम् ॥ ४१ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय संकल्प इह कर्मिणः ॥ सदाऽऽप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥ ४२ ॥ कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः ॥ स वै देहस्तु पारक्यो भंगुरो यात्युपैति च ॥ ४३ ॥

सीतरह हैं; क्योंकि वेभी ईर्ष्याआदि दोषवाले, पुण्योंके फेरफारसे न्यूनाधिक सुखवाले और क्षीण होनेवाले हैं, इसलिये एक भगवान् कि- जिनमें कोईभी दूषण देखनेमें वा सुननेमें नहीं आता उन्हींका अपने स्वरूपकी प्राप्तिके वास्ते एकांतभक्तिसे भजन करो ॥ ४० ॥ विद्वानपनका अभिमान रखनेवाला पुरुष जो फल विचारके कर्म करता है तिससे उसको उससे विपरीत फल मिलता है. यह अवश्य है. कर्म करनेवाले मनुष्यका संकल्प सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके वास्ते होता है परंतु कर्म करनेसे निरंतर दुःखकी प्राप्ति तौ होती है पर सुख नहीं मिलता. सुखकी प्राप्ति तौ केवल कर्म नहीं करनेहीसे होती है ॥ ४१ ॥४२॥ मनुष्य सकामकर्म करके जिसके वास्ते सुख उपार्जन करना चाहता है वह देह तौ पराया अर्थात् कुत्ते आदिके काम आवे ऐसा है.

दर्शन तथा पूजाआदि, ये धर्म अत्यंत अंतरंग (मुख्य) हैं ॥ ३१ ॥ सर्वप्राणीमात्रमें ईश्वर विराजे हैं ऐसा निश्चय करके सर्व प्राणीमात्रका मनसे और मनवांछित पदार्थ देनेसे सत्कार करना ॥ ३२ ॥ छहही इंद्रियोंको जीतनेवाले पुरुष इसीप्रकार वासुदेव भगवान्‌की भक्ति करते हैं. जिस प्रकार भक्ति करनेसे भगवान्‌में प्रीति हो जाती है ॥ ३३ ॥ भगवान्‌के कर्म, सर्वोत्तम गुण और लीलावतारधारण करके कियेहुए पराक्रमोंका वर्णन सुन कर, अत्यंत आनंद प्राप्त हो जाय, रोम खड़े हो जायं, नेत्रोंमें जल आ जाय. वाणी गद्गद हो जाय और मुक्तकंठ हो कर, लगे गाने, रोने और नाचने ॥ ३४ ॥ हे राजा ! जब प्रेमलक्षणा भक्ति

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः ॥ इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥ ३२ ॥ एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ॥ वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥ ३३ ॥ निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ॥ यदाऽतिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कंठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥ ३४ ॥ यदाग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रंदते ध्यायति वंदते जनम् ॥ मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥ ३५ ॥ तदा पुमान्मुक्तसमस्तबंधनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ॥ निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥ ३६ ॥ अधोक्षजालंभमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ॥ तद्ब्रह्मनिर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥ ३७ ॥

हो जाती है तब मानों ग्रहगृहीत हो जैसे किसी समय हँसै, पुकारै, ध्यान करै, मनुष्योंको वंदन करै और वारंवार श्वास लेकर, 'हे हरि ! हे जगत्पति ! हे नारायण ! ऐसे मुक्तलज्ज होकर, बोलता है ॥ ३५ ॥ जब ऐसी प्रीति हो जाय, तभी यह मनुष्य सर्व बंधनोंसे मुक्त हो, मन तथा शरीरमें भगवान्‌की चेष्टाकीसी भावनाको प्राप्त हो, कर्मके बीजरूप अज्ञान तथा वासनाओंको भस्म करके, बड़े भक्तियोगसे भगवान्‌को प्राप्त होजाता है ॥ ३६ ॥ भगवान्‌का मनसे स्पर्श होवे यही मलीन मनवाले प्राणीके जन्म मरणके फेरेको मिटानेवाला है और यही मोक्षसुख है, ऐसे विद्वानोंका निश्चय है. इसलिये हृदयमें अतर्यामी भगवान्‌का भ-

सर्वका साक्षी और सर्वसे पर आत्मा है॥ २५ ॥कर्मसे उत्पन्न भयीहुई और त्रिगुणात्मक इन बुद्धिकी वृत्तियोंको आत्माका धर्म न होनेके हेतु दूर करकर, तिनपरसे तिनको जाननेवाले आत्माका स्वरूप जान लेना चाहिये, जैसे पुष्पके धर्मरूप गंधपरसे उसकी आश्रयरूप वायु जाननेमें आती है, ऐसे बुद्धिकी धर्मरूप तीन अवस्थाओंपरसे उनको जाननेवाला और अधिष्ठानरूप आत्मा जुदा प्रतीत होता है ॥ २६ ॥ क्योंकि बुद्धिके गुण और कर्मोंसे संसार बना हुआ है, इसका मूलकारण अज्ञान है. तासों यह

एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः ॥ स्वरूपमात्मनो बुध्येद्गंधैर्वायुमिवान्वयात् ॥ ॥ २६ ॥ एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबंधनाः ॥ अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥ २७ ॥ तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥ २८ ॥ तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ॥ यदीश्वरे भगवति यथा यैरंजसा रतिः ॥ २९ ॥ गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ॥ संगेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥ ३० ॥ श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ॥ तत्पादांबुरुहध्यानात्तल्लिंगेक्षार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥

मिथ्या होनेपरभी स्वप्नकी नाईं देखनेमें आता है ॥ २७ ॥ इस लिये तुमको योग साधना चाहिये कि– जिस योगसे त्रिगुणात्मक कर्मका बीजरूप अज्ञान भस्म हो जाता है.और तीन अवस्थारूप बुद्धिका प्रवाह निवृत्त हो जाता है ॥२८॥ तत्रापि (तहांभी) जिन धर्मोंसे नारायण भगवान्‌में प्रीति होवे, उन धर्मोंका पालन करना यही हजारों उपायोंमें अत्युत्तम उपाय है. ऐसे गीता आदि शास्त्रोंमें श्रीप्रभुने अपने श्रीमुखसे कहा है ॥ २९ ॥ गुरुसेवा, भक्ति, संपूर्ण लब्धपदार्थोंका अर्पण, उत्तम भक्तलोगोंका सत्संग, ईश्वरका आराधन, ॥ ३० ॥ भगवत्कथामें श्रद्धा, भगवान्‌के गुण व कर्मोंका कीर्तन, भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान और भगवत्मूर्तिका

१ शुश्रूषा श्रवणश्चैव ग्रहणं धारणं तथा ॥ ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥ १ ॥ अर्थ–शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहापोह (तर्क वितर्कसे सिद्धांत-प्रतिपादन) तथा अर्थविज्ञान और तत्त्वज्ञान यही (आठ) बुद्धिके गुण हैं. २ यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥ यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ अर्थ–हे अर्जुन ! तुम जो करो, जो खावो, जो होमो, जो देवो, जो तप करो, वह सब हमारे अर्पण करो

परप्रकाश्य है आत्मा सर्व और देह कार्य पदार्थ है, आत्मा व्यापक है और देह व्याप्य है, आत्मा असंग है और देह संग है तथा आत्मा किसीसे आवृत्त नहीं होता और देह वस्त्रआदिसेभी आच्छादित हो जाता है ॥ १९ ॥ इन बारह लक्षणोंकी बड़ी भिन्नतासे आत्माको यथार्थ रीतिसे जानकर, देहादिकमें मोहसे भयीहुई अहंता ममतारूप असत् बुद्धिको त्याग देना चाहिये ॥ २० ॥ जैसे उपायोंको जाननेवाला सोनार फूंकनेआदि उपायोंसे खानके पत्थरोंमेंसे सुवर्णको जुदा निकाल लेता है, तैसे विवेकी पुरुषभी वक्ष्यमाण आत्मप्राप्तिके उपायोंसे देहरूप क्षेत्रमेंसे आत्माको जुदा निकाल लेते हैं ॥ २१ ॥ माया, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध ये आठ प्रकृतियां मानी जाती हैं. सत्व, रज और तम ये तीन मायाके गुण हैं. तासों मायासे जुदे नहीं

एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः ॥ अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥ २० ॥ स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात् ॥ क्षेत्रेषु देहेषु तथाऽऽत्मयोगैरध्यात्मविद्ब्रह्म गतिं लभेत ॥ २१ ॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः ॥ विकाराः षोडशाऽऽचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥ २२ ॥ देहस्तु सर्वसंघातो जगत्तस्थुरिति द्विधा ॥ अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥ २३ ॥ अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशताऽऽत्मना ॥ सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥ २४ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ॥ ता येनैवानुभूयंते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥ २५ ॥

गिने जाते. ग्यारह इंद्रियां और पांच महाभूत मिलकर, सोलह विकार हैं. अर्थात् आठ प्रकृति और सोहल विकार मिलकर, चौबीस तत्व हैं तिनमें सर्वके साक्षीपनके संबंधसे आत्मा एकही है ॥ २२ ॥ इन चौबीस तत्त्वोंका संघात देह कहलाता है. वह देह स्थावर और जंगम ऐसे दो प्रकारका है. इस देहमेंही आत्माको ढूंढ़ लेना चाहिये और वह सहजमें हो सकता है. क्योंकि 'यह आत्मा नहीं, यह आत्मा नहीं' ऐसे कह कर, जड़ पदार्थोंको पृथक् करते २ (जुदा समझते) यह आत्मा स्वयमेव जुदा प्रतीत हो जाता है ॥ २३ ॥ अक्षर श्याहीसे जुदे नहीं हैं परंतु श्याही अक्षरोंसे जुदी है, तैसे देहादिक आत्मासे भिन्न नहीं परंतु आत्मा इनसे भिन्न है इस प्रकार अन्वयव्यतिरेकरूप विवेकसे अंतःकरणकी शुद्धिपूर्वक सृष्टि, स्थिति, संहारका निरूपण करनेवाले वेदवाक्योंकी विचार करनेसे धीरपुरुष आत्माको हेर लेते हैं ॥ २४ ॥ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये वृत्तियां बुद्धिकी हैं. इन वृत्तियोंको जो जाननेवाला है वह

मेरा पिता भारी तपस्या करके, पीछा न लौटा तबतक निर्भय रीतिसे नारदजीके निकट रही ॥ १३ ॥ गर्भवती और पतिव्रता मेरी माताने अपने गर्भकी रक्षाके अर्थ और पति आनेके अनंतर प्रसव होनेके निमित्त वहां परमभक्तिसे नारदजीकी सेवा की ॥ १४ ॥ दयालु और समर्थ इन मुनिसे धर्मका तत्त्व और निर्मल ज्ञान ये दोनों मेरी माताको दिये थे. और उसमें मुझकोभी बोध देनेको उद्देश था ॥ १५ ॥ मेरी माताजातिसे स्त्री और फिर समय बहुत दीर्घ निकल गया, तासों मेरी माताका बोध तौ बिलकुल चला गया. परंतु नारदजीके अनुग्रहसे मेरे अबतक वह स्मरण बन रहा है मैं उसे नहीं भूला ॥ १६ ॥ तुमभी जो मेरे बचनपर श्रद्धा राखोगे तौ तुमकोभी वह बोध प्राप्त हो जायगा. श्रद्धा हो तौ स्त्रियां और बालकोंकोभी मेरे जैसे

ऋषिं पर्यचरत्तत्र भक्त्या परमया सती ॥ अंतर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छा प्रसूतये ॥ १४ ॥ ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ॥ धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥१५॥ तत्तु काल-स्य दीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ॥ ऋषिणाऽनुग्रहीतं मां नाधुना प्यजहात्स्मृतिः ॥ १६ ॥ भव-तामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ॥ वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥ १७ ॥ ज-न्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः ॥ फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ १८ ॥ आ-त्मा नित्योऽव्ययः शुद्धः एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ॥ अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसंग्यनावृतः ॥ १९ ॥

ब्रह्मविद्या प्राप्त हो सक्ती है ॥ १७ ॥ महासमर्थ कालके हेतु होतेहुए जायते (जन्मता है). अस्ति (है) वर्द्धते (बढ़ता है). विपरिणमते (रूपांतर पाता है) . अपक्षीयते (क्षीण होता है). और नश्यति (नष्ट होता है). ये छह ६ विकार देहकेही देखनेमें आते हैं आत्माके नहीं. परंतु जैसे वृक्ष होवे तभी उसके फलके ये विकार हो सक्ते हैं, तैसे आत्मा होनेहीसे ये विकार देहके हो सक्ते हैं ॥ १८ ॥ आत्मा नित्य है और देह अनित्य है, आत्मा क्षीण नहीं होता और देह क्षीण होता है. आत्मा शुद्ध है और देह अशुद्ध है, आत्मा एक है और देह अनेक हैं, आत्मा देहादिकको जानता है और देह जड़ है, आत्मा सबका आश्रय है और देह आत्माके आश्रयसे है, आत्मा निर्विकार है और देह सविकार है, आत्मा स्वयं प्रकाश है और देह

इच्छासे दैत्य भागने लगे ॥ ५ ॥ तब जयकी इच्छावाले देवतानने राजाके शिबिर (दरबार) में लूट की. तहां इंद्र तौ मेरी माता महारानी कयाधूको पकड़कर, रवाना हुआ ॥ ६ ॥ कुररी (टिटोड़ी) की नाई रोती और भयसे उद्वेग पातीहुई मेरी माताको पकड़कर, इन्द्र लिये जाता था. तहां यदृच्छासे नारदजी उसी मार्गमें आ निकले. और मेरी माताको उस प्रकार देखा ॥ ७ ॥ देखकर, नारदजीने इससे कहा कि–हे सुरपते ! इस निरपराधिनीको नहीं ले जाना चाहिये. हे महाभाग ! इस पतिव्रता परस्त्रीको छोड़ो छोड़ो यह ले जानेके योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ तब इंद्रने कहा कि–इसके उदरमें हिरण्यकशिपुका गर्भ है सो

न्यलुंपन् राजशिबिरममरा जयकांक्षिणः ॥ इंद्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥ ६ ॥ नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ॥ यदृच्छयागतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥ ७ ॥ प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसाम् ॥ मुंच मुंच महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥ ८ ॥ इंद्र उवाच ॥ आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ॥ आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ॥ त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनंतानुचरो बली ॥ १० ॥ इत्युक्तस्तां विहायेंद्रो देवर्षेर्मानयन्वचः ॥ अनंतप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥ ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ॥ आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत्ते भर्तुरागमः ॥ १२ ॥ तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरंति साऽप्यकुतोभया ॥ यावद्दैत्यपतिर्घोरात्तपसो न न्यवर्तत ॥ १३ ॥

वह अत्यंत भयंकर हो पड़े, इसलिये प्रसव होवेगा तबतक इसे मैं मेरे पास रक्खूंगा और जब इसके लड़का होगा, तब उस लड़केको मारकर, फिर इसे मैं छोड़ दूंगा ॥ ९ ॥ नारदजीने कहा कि–इसके उदरमें तौ निष्पाप और साक्षात् महावैष्णव, महात्मा पुत्र है सो वह तुझसे मरेगा नहीं; क्योंकि भगवान्‌के भक्त महाबलवान हुआ करते हैं ॥ १० ॥ प्रल्हादने कहा कि–इस प्रकार नारदजीने कहा, तब इंद्रने उनके बचनको मान दे, मेरी माताको छोड़दिया. और आप भगवद्भक्तोंका भक्त होनेसे उनकी भक्तिके हेतु मेरी माताको प्रदक्षिणा कर, स्वर्गमें चला गया ॥ ११ ॥ फिर नारदजीने मेरी माताको अपने आश्रममें ला, आश्वासना देकर, कहा कि–'हे पुत्रि ! तेरा पति आवे तबलों तू यहीं रह' ॥ १२ ॥ मेरी माता मुनिके बचनको स्वीकार कर,

किसी गुरुको नहीं, जानते, क्योंकि अतिछोटी बचपनकी अवस्थाहीसे आपन इनके आधीनमें हैं. इसलिये यहां तौ दूसरे गुरुका होना संभवे नहीं ॥ २९ ॥ हे सौम्य ! जब आप बाल्यअवस्थामें अंतःपुरमें रहते थे. तब वहां महत्पुरुषोंकी संगती बननी अतिदुर्घट थी. हमारे मनमें इस बातका बड़ा संदेह है सो यदि विश्वासका हेतु कोई कारण होवे तौ वह हमें कहो और हमारा संदेह काटो ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सातवें अध्यायमें प्रल्हाद गर्भमें था. तिससमयमें नारदजीने जो उपदेश किया था. उ-स[illegible] स्मरण करके, प्रल्हादने दैत्यबालकोंको भरोसा आनेके वास्ते सब बात कहीं. यह कथा होगी ॥ १ ॥

बालस्यांतःपुरस्थस्य महत्संगो दुरन्वयः ॥ छिंधि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रंभकारणम् ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे प्रह्लादानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः ॥ उवाच स्मयमानांस्तान्स्मरन्मदनुभाषितम् ॥ १ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मंदराचलम् ॥ युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति ॥ २ ॥ पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः ॥ पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः ॥ ३ ॥ तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ॥ वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृहान्पशुपरिच्छदान् ॥ नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ ५ ॥

नारदजीने कहा कि-इस प्रकार दैत्योंके पुत्रोंने महावैष्णव प्रल्हादसे पूंछा. और वे हँसेभी. तब उन्हें हँसते देख कर, मेरे भाषणका स्मरण करके प्रल्हादने इस प्रकार उन दैत्यपुत्रोंसे कहा ॥ १ ॥ प्रल्हाद बोला कि-हमारा पिता तप करनेको मंदराचल पर्वतमें चला गया था तब देवतानने दैत्योंके ऊपर युद्धका बड़ा भारी उद्यम किया ॥ २ ॥ इंद्रादिक देवता कहने लगे कि-चींटियां जैसे सांपको खा जायं तैसे इस लोकोंके दुख देनेवाले हिरण्यकशिपुको इसका पापही खा गया, यह बहुत अच्छा हुआ ॥ ३ ॥ दैत्योंके यूथपति उन देवतानका अत्यंत बलके साथ उद्योग देख, देवतानके हाथ मारे जाते भयभीत हो, सब दैत्य दिशानमें भाग निकले ॥ ४ ॥ स्त्री, पुत्र, मित्र, संबंधी, घर, पशु और सामग्री इनकी कुछभी संभाल न करते जल्दी प्राण बचानेकी

वाली मायासे भगवान्नेही अंतर्हित किया है. ऐसे प्रतीत होता है ॥ २३ ॥ अतएव तुम असुरभावको त्यागकर, सर्वप्राणीमात्रपर दया और स्नेह राखो- क्योंकि दया रखनेसे हरि भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २४ ॥ जब अनंत और सर्वके आदि भगवान् प्रसन्न हो जायं तब कोईभी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती. तथापि उन्हींके चरणसंबंधी सुधाकीही सेवा करनेवाले और उसीका गान करनेवाले आपन लोकोंके धर्म, अर्थ वा काम इनसे क्या प्रयोजन है? क्योंकि वे तो प्रारब्धगतिसे स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं. जैसे धर्मादिकसे कुछभी प्रयोजन नहीं है ऐसे अगुण यानी मोक्षकी

तस्मात्सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम् ॥ आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥ २४ ॥ तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनंत आद्ये किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ॥ धर्मादयः किमगुणेन च कांक्षितेन सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥ २५ ॥ धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग ईक्षात्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता ॥ मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥ २६ ॥ ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नरायणो नरसखः किल नारदाय ॥ एकांतिनां भगवतस्तदकिंचनानां पादारविंदरजसाप्लुतदेहिनां स्यात् ॥ २७॥ श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात् ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्रा ऊचुः ॥ प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम् ॥ एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ॥ २९ ॥

इच्छासेभी क्या प्रयोजन है ? कुछभी नहीं ॥ २५ ॥ धर्म, अर्थ और काम यहत्रिवर्ग, आत्मविद्या, कर्मविद्या, तर्कविद्या, दंडनीति और अनेक प्रकारकी आजीविकारूप वेदमें निरूपण कियेहुए सकल विषय, अपने अंतर्यामीरूप भगवान्के अपना आत्मा अर्पण कर देनेके साधनरूप हो जायं तौ उन्हें मैं सफल भये मानता हूं ॥ २६ ॥ यह निर्मल और दुर्लभ ज्ञान नरके मित्र नारायणने नारदजीको कहा था. सो जो देहाभिमानसे रहित और सच्चे भगवद्भक्तोंकी चरणरजमें नहानेवाले हैं उनकोभी यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है ॥ २७ ॥ विज्ञानसहित यह ज्ञान और भागवतसंबंधी शुद्ध धर्म ये दोनों पहले मैंने देवतानकेसे दर्शनवाले नारदजीके मुखसे सुने थे ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्रोंने पूंछा कि–हे प्रल्हाद ! तुम और हम, इन दो गुरुपुत्रोंके सिवाय दूसरे

षण करता हो तौ वह, आत्मविचार करनेमें कथमपि समर्थ नहीं हो सकता, किंतु मूढ़की नाईं केवल अहंता ममतामेंही चक्कर-खाया करता है ॥ १६ ॥ स्त्रियां कि– जिनकी दृष्टिमें कामदेव छा रहा है. तथा जिनकी पुत्रपौत्रादिरूप बेड़ी अतिकड़ी है. उ-नके निकट क्रीड़ामृगके समान दीन बनकर, रहनेवाला कोईभी मनुष्य किसी समयमें वा किसी स्थलमें अपने आत्माको छुड़ानेके वास्ते समर्थ नहीं हो सकता ॥ १७ ॥ इसलिये विषयोंमें लगेहुए दैत्योंका संग दूरसे छोड़कर, आदिदेव नारायणकाही तुम भज-न करो. क्योंकि संगका त्याग करनेवाले पुरुषोंने नारायणके भजनकोही मोक्षरूप माना है ॥ १८ ॥ हे दैत्यपुत्रो ! नारायणको

यतो न कश्चित्क्व कुत्रचिद्वा दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ॥ विमोचितुं कामदृशां विहारक्रीडामृ-गो यन्निगडो विसर्गः ॥ १७ ॥ ततो विदूरात्परिहृत्य दैत्या दैत्येषु संगं विषयात्मकेषु ॥ उपेत ना-रायणमादिदेवं स मुक्तसंगैरिषितोऽपवर्गः ॥ १८ ॥ न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥ १९ ॥ परावरेषु भूतेषु ब्रह्मांतस्थावरादिषु ॥ भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥ २० ॥ गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा ॥ एक एव परो ह्या-त्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ २१ ॥ प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयम् ॥ व्याप्यव्यापक-निर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः ॥ २२ ॥ केवलानुभवानंदस्वरूपः परमेश्वरः ॥ माययांऽतर्हितैश्व-र्ये ईयते गुणसर्गया ॥ २३ ॥

प्रसन्न करनेमें अत्यंत प्रयास करना नहीं पड़ता. क्योंकि नारायण सर्वके आत्मा हैं. और सबठौर सिद्ध हैं ॥ १९ ॥ स्थावरसे ले, ब्रह्मापर्यंत जीवोंमें, पंचभूतोंसे बनेहुए निर्जीव पदार्थोंमें, पंचमहाभूतोंमें, तीन गुणोंमें, प्रकृतिमें और महत्तत्त्वादिक विकारोंमेंभी परमात्मा ईश्वर और अविनाशी भगवान् एकही हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ यदपि ये परमात्मा स्वयं एकही हैं. तथापि भोक्तारूपसे तौ व्यापक और भोग्यरूपसे व्याप्य हैं ऐसे कहनेमें आता है. वस्तुतस्तु प्रभु निर्देश करनेको अशक्य और विकल्परहित हैं ॥ २२ ॥ केवल अनुभवरूप, आनंदही जिनका स्वरूप है ऐसे, इन प्रभुका अखंड रहाहुआ अपना सर्वज्ञत्वादिक ऐश्वर्य गुणोंकी गड़बड़-

गाहुआ तथा कोशस्कृत (एक प्रकारका कीड़ा) जैसे अपना घर बनताहुआ अपने निकलनेका मार्गभी नहीं रखता तिसप्रकार कर्म करताहुआ यह अनुरक्त चित्तवाला प्राणी दयाकी पात्र मानीहुई स्त्रीके रहस्यसंगको और मनोहर विचारोंको कैसे छोड़ सके ? तैसेही संबंधियोंके तथा मधुर कोमल वाणी बोलनेवाले बच्चोंके संगकोभी किस प्रकार छांड़ सकै ? और किस प्रकार वैराग्यको प्राप्त होवे ? ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ यह प्रमेत्त मनुष्य कुटुंबके पोषणसंबंधी कार्यमें न्यून होते जाते अपने आयु-

पुत्रान्स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या भ्रातॄन्स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ॥ गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च वृत्तीश्च कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ॥ १२ ॥ त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ॥ औपस्थ्यजैह्व्यं बहुमन्यमानः कथं विरज्येत दुरंतमोहः ॥ १३ ॥ कुटुंबपोषाय वियन्निजायुर्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ॥ सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा निर्विद्यते न स्वकुटुंबरामः ॥ १४ ॥ वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्त्तुः ॥ प्रेत्येहचाथाप्यजितेंद्रियस्तदशांतकामो हरते कुटुंबी ॥ १५ ॥ विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुंबं पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ॥ यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥ १६ ॥

ष्यको और नाश होतेहुए पुरुषार्थको नहीं जानता. कुटुंबमें प्रीति रखनेवाला पुरुष सब ठौर तीन प्रकारके तापोंसे दुःखी हुआ करता है तथापि उन्हें दुःखरूप नहीं मानता ॥ १४ ॥ अजितेंद्रिय और जिसका चित्त निरंतर धनमेंही लगाहुआ है ऐसा कुटुंबी मनुष्य, पराया धन लेनेवालेको इसलोकमें और परलोकमें जो दुःख मिलता है, उसे जानता है. तथापि तृष्णा शांत न होनेके कारण चोरी करताही है ॥ १५ ॥ हे दैत्यो ! विद्वान् पुरुषभी जो इसप्रकार अपने और परायेमें भेददृष्टि रखकर, कुटुंबका पो-

---

१ आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते । दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥ १ ॥ अर्थ–यदपि सूर्यनारायणके उदय–अस्त होनेसे दिनबदिन उमर नाश होती जाती है. परंतु बहुत भारी कारबारवाले व्यापारोंके होनेसे काल नहीं जाना जाता तैसेही पुत्रादिकोंका जन्मदुःख, पिताआदिकोंका जरा (बुढ़ापेका दुःख) बूढ़ोंका मरणदुःख देखकेभी त्रास क्यों नहीं होता है?. तहां कैं हहैं कि– मोहमयी प्रमादमदिराको पीकर, यह जगत् उन्मत्तसा हो जाता है ॥ १ ॥

इसलिये जगतमें जबलों अपने इस मनुष्यदहका पुष्कल पुरुषार्थ नाश न हो जाय तिससे प्रथम संसारी चतुर मनुष्यको चाहिये कि-अपने कल्याणके वास्ते यत्न करे ॥ ५ ॥ अजितेंद्रिय पुरुषकी सौ वर्षकी आयु कहलाती है तिसमें पचास वर्ष तो निष्फलही हैं; क्योंकि उतने वर्षतक तो निद्रारूप महामोहमें पड़कर, मनुष्य सोया पड़ा रहता है ॥ ६ ॥ बीस २० वर्ष बालक अवस्थाके अज्ञानमें और कुमारअवस्थाके खेलमें चले जाते हैं. बीस २० वर्ष बुढ़ापेसे शरीर रोगग्रस्त हो जानेके कारण असमर्थपनमें निकल जातेहैं ॥ ७ ॥ अब जो शेष बचे वे वर्ष दुःख भोगकर, चौतर्फसे पूर्ण करनेमें आती

ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः ॥ शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥ ५ ॥ पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः ॥ निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽधं प्रापितस्तमः ॥ ६ ॥ मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ॥ जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥ ७ ॥ दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ॥ शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥ ८ ॥ को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेंद्रियः ॥ स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥ ९ ॥ कोन्वर्थतृष्णां विसृजेत्प्राणेभ्योऽपि य ईप्सितः ॥ यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥ १० ॥ कथं प्रियाया अनुकंपितायाः संगं रहस्यं रुचिरांश्च मंत्रान् ॥ सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥ ११ ॥

तृष्णासे और बलवान् मोहसे घरमें आसक्त रहनेसे प्रमत्त दशामें व्यतीत हो जाते हैं ॥ ८ ॥ कौन अजितेंद्रिय पुरुष घरोंमें लगेहुए और स्नेहकी दृढ़ पाशोंसे बंधेहुए अपने आत्माको छुड़ा सकता है ? ॥ ९ जो धन प्राणोंसेभी प्यारा है और जिस धनको चोर, सेवक और व्यौपारी लोग अपने प्यारे प्राण गँवाना स्वीकार करकेभी उपार्जन करते हैं. उस धनकी तृष्णाको कौन मनुष्य छोड़ सकता है ? ॥ १० ॥ पुत्र, सुंदर कन्या, भाई, बहने, विचारे दीन माता, पिता, अतिरमणीय सामानवाले घर, कुलपरंपराकी जीविका, घरके पशु तथा सेवकोंके वर्गको याद करता. सुहृदोंके स्नेहसे बंधाहुआ, लोभके हेतु जिसकी तृष्णा पूर्ण नहीं होती ऐसा, उपस्थ व जिह्वाके रसको अधिकतर माननेवाला और अपार मोहसे उसीके भीतर ल-

तथा चेष्टाआदिसे दूषित नहीं हुई थी. वे प्रल्हादके गौरवसे क्रीड़ाके साधनोंको त्याग कर, ॥ ५६ ॥ केवल प्रल्हादमें अपने हृदय और नेत्र लगाकर, उसके समीपमें बैठ जाते. हे राजेंद्र ! महादयालु व सबका मित्र और महावैष्णव प्रल्हाद उन बालकोंको तब इस प्रकार कहता ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छठे अध्यायमें गुरु घरके धंधेमें लगगये. तब प्रल्हादने दैत्यबालकोंपर कृपा करके, उनको परमज्ञानका उपदेश किया. जो ज्ञान निजको नारदजीने दिया था ॥ १ ॥ प्रल्हादने कहा कि–बुद्धिमानको चाहिये कि–अपनी बाल्यावस्थाहीसे वैष्णवधर्मका पालन करै, क्योंकि मनुष्यजन्म मिलना परमदुर्लभ है. यदपि यह जन्म अध्रुव यानी अनित्य

पर्युपासत राजेंद्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः ॥ तानाह करुणो मैत्रो महाभगवातोऽसुरः ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान्भागवतानिह ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ १ ॥ यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ॥ यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥ २ ॥ सुखमैंद्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ॥ सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः ॥ ३ ॥ तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ॥ न तथा विंदते क्षेमं मुकुंदचरणांबुजम् ॥ ४ ॥

है तथापि पुरुषार्थका देनेवाला तौ यही है ॥ १ ॥ मनुष्यके लिये इस संसारमें भगवान्‌के चरणके शरण रहना येही योग्य है; क्योंकि प्रभु सर्वप्राणीमात्रके ईश्वर और आत्मा होनेसे सर्वके प्यारे और सुहृद हैं ॥ २ ॥ हे दैत्यो ! विषयसुखके वास्ते मनुष्यको प्रयास नहीं करना चाहिये क्योंकि उसमें मनुष्यकी आयुष्यका व्यय (खर्च) वृथा होता है, कारण यह है कि–इंद्रियसंबंधी सुख तौ, देहधारियोंको देहके संबंधसे ? स्वयमेव सर्वत्र प्रारब्धसे जैसे विना यत्न किये दुःख आ प्राप्त होताहै ऐसे मिलही जाता है. फिर उसके वास्ते यत्न क्यों करना ? और मनुष्यको मुकुंद भगवान्‌के चरणारविंदका भजन करनेसे जैसा कल्याण प्राप्त होता है ऐसा अन्य किसी साधनसे नहीं प्राप्त हो सकता ॥ ३ ॥ ४ ॥

भ्रकुटिको चढ़ातेहो तिस समय सर्व लोकपाल त्रास खा जाते हैं. तिन आपके चिंता करनेके योग्य हमें तो कुछभी नहीं दीखता, तैसे बालककी चाल चलनपर गुण दोषका आधारभी नहीं रखना चाहिये ॥ ४९ ॥ तथापि शुक्राचार्यजी आवें तबतक इस लड़केको वरुणपाशसे बांधकर, रख देना चाहिये. जिससे त्रासके मारे भाग न जाय. और यह तो प्रसिद्धही है कि- मनुष्योंकी बुद्धि अवस्थासे और महात्मा लोकोंकी सेवासे सुधर जाती है ॥ ५० ॥ इस प्रकार गुरुपुत्रोंके कहनेसे उस प्रकार करनेकी आज्ञा देकर, हिरण्यकशिपुने गुरुपुत्रोंसे कहा कि-" गृहस्थाश्रममें रहनेवाले राजाओंके जो धर्म हैं, आप इसे उन

इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा निधेहि भीतो न पलायते यथा ॥ बुद्धिश्च पुंसो वयसार्यसेवया यावद्गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ॥ ५० ॥ तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् ॥ धर्मो ह्यस्योपदेष्टव्यो राज्ञां ये गृहमेधिनाम् ॥ ५१ ॥ धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः ॥ प्रह्लादायोचतू राजन्प्रश्रितावनताय च ॥ ५२ ॥ यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ॥ न साधु मेने तच्छिक्षां द्वंद्वारामोपवर्णिताम् ॥ ५३ ॥ यदाऽऽचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु ॥ वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥ ५४ ॥ अथ तान् श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः ॥ उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥ ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः ॥ बालानदूषितधियो द्वंद्वारामेरितेहितैः ॥ ५६ ॥

धर्मोंका उपदेश करो" ॥ ५१ ॥ हे राजा ! इस प्रकार प्रबंध कर, ये ब्राह्मण नम्रतावाले प्रल्हादको अनुक्रमसे धर्म, अर्थ व कामके विषय पढ़ाने लगे ॥ ५२ ॥ गुरुनने वे विषय प्रल्हादको अच्छीतरह पढ़ाये परंतु यह उपदेश प्रल्हादको अच्छा नहीं लगा; कारण यह कि-रागद्वेषादिकोंसे संसारके सुखमें क्रीड़ा करनेवाले लोगोंका वर्णन कियाहुआ यह विषय है ॥ ५३ ॥ जब गुरु घरके कामकाजके लिये बाहिर जाते तब अवसर मिल जानेसे अपने समान अवस्थावाले बालक उस प्रल्हादको अपने पास बुलाया करते ॥ ५४ ॥ उस समयमें उनकी जन्म मरणादिक स्थितिको जाननेवाला प्रल्हाद उन्हें मधुर वाणीसे पीछा बुलाकर, मानों दयासे हँसता हो ऐसे उपदेश किया करता ॥ ५५ ॥ ये सब बालक कि-जिनकी बुद्धि विषयी पुरुषोंके भाषणोंसे

रक्खा, विष दिया, खानेको नहीं दिया ॥ ४३ ॥ हिममें, पवनमें, अग्निमें जलमें गिराया, पर्वत उठा २ कर उसपर गिराये, ऐसे २ अनेक उपाय किये. तथापि निर्दोष पुत्रको जब हिरण्यकशिपु किसी प्रकारसे नहीं मार सका. तब उसके मनमें बड़ी चिंता पैदा हुई. और कोईभी उपाय उसे नहीं सूझा, अर्थात् उसका बध कथमपि नहीं कर सका ॥ ४४ ॥ तब मनमें चिंता करने लगा कि–' इसको मैंने बहुतसे कठिन यानी परुष वचन कहे हैं, इसके बधके अनेक उपायभी किये हैं, तथापि यह अपने तेजके प्रभावसे स्वयमेव इन सब अपकारों और अभिचारके प्रयोगोंसे मुक्त हुआ ॥ ४५ ॥ यह मेरे निकट रहता है और बालक

हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि ॥ न शशाक यदा हंतुमपापमसुरः सुतम् ॥ चिंतां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥ ४४ ॥ एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः ॥ तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥ ४५ ॥ वर्तमानोऽविदूरे वै बालोप्यजडधीरयम् ॥ न विस्मरति मेऽनार्यं शुनः शेप इव प्रभुः ॥ ४६ ॥ अप्रमेयानुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः ॥ नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥ ४७ ॥ इति तं चिंतया किंचिन्म्लानश्रियमधोमुखम् ॥ शंडामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः ॥ ४८ ॥ जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवोर्विजृंभणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ॥ न तस्य चिंत्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ॥ ४९ ॥

है. तथापि निर्भय रहकर, कुत्तेकी पुच्छकी नांई अपने स्वभावको नहीं छोड़ता मेरे शत्रुको नहीं भूलता ॥ ४६ ॥ यह पुत्र बड़ा प्रतापी और अमर है. अतएव यह किसीसे नहीं डरता, कदाचित् इसके विरोधसे मेरी मृत्यु न हो जाये ? अवश्य मेरी मृत्यु तो इसीके निमित्तसे होगी. अन्यथा कथमपि मेरी मृत्यु होनी नहीं है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार चिंतासे किंचित् उदास और कांतिहीन, मुख नीचेकी ओर किये बैठे हिरण्यकशिपुको शुक्राचार्यजीके पुत्र शंड और अमर्क इन्होंने एकांतमें लेकर, कहा कि–॥ ४८ ॥ " हे नाथ ! आपने किसी दूसरेकी सहायता विना लिये त्रिलोकीका विजय किया है. और आप जब किंचिन्मात्र

---

१ रामनामजपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् । पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥ १ ॥ अर्थ–अग्निमें पड़े हुये प्रल्हादने कहा कि–हे तात ! सब तापोंके मिटानेकी एक औषधरूप रामनामके जपनेवालोंका भय कहांसे ? देखो मेरेही शरीरमें अग्निभी इस समय जलसे ठंढे होगये हैं.

विष्णु भगवान्‌काभी क्या भला करेगा ? ॥ ३६ ॥ पराया होकरभी जो अपना हितकारी होवे उसे अपना पुत्रही समझना चाहिये. और अपने देहसे उत्पन्न भयाहुआ पुत्रभी क्यों न हो पर अपना बुरा करता हो तौ उसे रोगके समान समझना चाहिये, पुत्रकी बात तौ एक ओर रही. परंतु जो अपनाही अंग हाथ पैरआदि दुःखदायी हो तौ उसे काट देना चाहिये. जिसके काट देनेसे शेष बचाहुआ शरीर सुखपूर्वक जी सकता है ॥ ३७ ॥ मुनिकी दुष्ट इंद्रियकी नांई यह बालक निजका होनेपरभी शत्रुका कार्य करता है. तासों खाने, सोने और बैठनेआदिमें विषदेनेआदि सर्व प्रकारके उपायोंसे इसे मारही देना चाहिये

परोप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ॥ छिंद्यात्तदंगं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥ ३७ ॥ सर्वैरुपायैर्हंतव्यः संभोजशयनासनैः ॥ सुहृल्लिंगधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेंद्रियम् ॥ ३८ ॥ नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः ॥ तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥ ३९ ॥ नदंतो भैरवान्नादांश्छिंधि भिंधीति वादिनः ॥ आसीनं चाहनन् शूलैः प्रह्रादं सर्वमर्मसु ॥ ४० ॥ परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ॥ युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥ ४१ ॥ प्रयासेऽपहते तस्मिन्दैत्येंद्रः परिशंकितः ॥ चकार तद्वधोपायान्निर्बंधेन युधिष्ठिर ॥ ४२ ॥ दिग्गजैर्दंदशूकैश्च अभिचारावपातनैः ॥ मायाभिः सन्निरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥ ४३ ॥

॥ ३८ ॥ इसप्रकार स्वामी हिरण्यकशिपुकी आज्ञा पाकर, तीक्ष्ण दाढ़ोंवाले और विकराल मुखवाले तथा ताम्रबरन दाढ़ी मूछवाले, त्रिशूल धारण करनेवाले वे राक्षस ॥ ३९ ॥ भयंकर नाद करते और ' मारो, काटो ' इस प्रकार बोलते, त्रिशूलोंसे बैठे हुए प्रल्हादके सकल मर्मस्थलोंमें प्रहार करने लगे ॥ ४० ॥ सर्वके अगोचर और सर्वस्वरूप परब्रह्म भगवान्‌में जिसका चित्त लग गया है ऐसे प्रल्हादके ऊपर मंदभागी मनुष्यके बड़े उद्यमकी नांई ये सब प्रहार व्यर्थ होगये ॥ ४१ ॥ हे युधिष्ठिर ! यह सब परिश्रम व्यर्थ चला गया. तब मनमें शंकित भयाहुआ वह हिरण्यकशिपु बड़े आग्रहसे उसके बधके उपाय करने लगा ॥ ४२ ॥ उस पुत्रको दिग्गजोंके पास धरा, सांप डँसाये, अभिचारके प्रयोग किये, पर्वतोंके शिखरोंपरसे गिराया, मायाके प्रयोग किये, गढ़ेआदिमें रोंक

वारंवार भोग करनहारे और दमन न कीहुई इंद्रियोंसे जन्म-मरण पातेहुए पुरुषोंकी बुद्धि न तौ अपने आप और न दूसरेकिसीके उपदेशसे तथा न परस्परकी बातोंसे भगवान्‌को प्राप्त होती है ॥३०॥ ब्राह्मणादि नामोंवाली वेदवाणीरूप ईश्वरकी डोरीमें बँधेहुए, विषयोंकी वासनावाले और ऐसेहीको गुरु माननेवाले लोक भगवान्‌को नहीं जानते, इतनाही नहीं किंतु अंधोंको ले जाते अंधोंके समान गढ़ेके अंदरही गिरते हैं ॥ ३१ ॥ सर्व प्रकारके अहंकारसे रहित महात्मा पुरुषोंके चरणारविंदकी रजमें जबलों स्नान न करै, तबलों इन लोकोंकी बुद्धि भगवान्‌के चरणको नहीं पहुंच सकती. जिस बुद्धिके पहुंचनेसे यह संसाररूप अनर्थ निवृत्त

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः ॥ अंधा यथांऽधैरुपनीयमाना वाचीशतंत्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥ ३१ ॥ नैषां मतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ॥ महीयसां पादरजोभिषेकं निष्किंचनानां न वृणीत यावत् ॥ ३२ ॥ इत्युक्तोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा ॥ अंधीकृतात्मा स्वोत्संगान्निरस्यत महीतले ॥ ३३ ॥ आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः ॥ वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः ॥ ३४ ॥ अयं मे भ्रातृहा सोऽयं हित्वा स्वान्सुहृदोऽधमः ॥ पितृव्यहंतुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥ ३५ ॥ विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमंजसः ॥ सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद्यः पंचहायनः ॥ ३६ ॥

हो जाता है ॥ ३२ ॥ नारदजीने कहा कि-इतना कहकर, चुप लगाये अपने पुत्र प्रल्हादको क्रोधसे अंध हिरण्यकशिपुने अपनी गोदीमेंसे पृथ्वीपर पछाड़ा ॥ ३३ ॥ फिर असहनता और क्रोधसे व्याप्त हो, नेत्र लाल करके. बोला कि-हे राक्षसो ! यहांसे इसे ले जाओ. और मार डालो; क्योंकि यह मारनेकेही योग्य है ॥ ३४ ॥ यही नीच मेरे भाईका मारनेवाला है; क्योंकि अपने संबंधी लोगोंको त्यागकर, अपने चचेके मारनेवाले विष्णुके चरणका दासकी नांई पूजन करता है ॥ ३५ ॥ माता पिताका स्नेह कि-जिसको त्यागना बड़ा कठिन है तिसे पांच वर्षकी अवस्थामेंही जिसने त्याग दिया, वह यह नीच

किंतु 'अर्पण करकेही करनेमें आवे तौ सर्वोत्तम पढ़ना है' ऐसे मैं मानता हूं. इस गुरुसे जो कुछ मैंने पढ़ा है उसमें तौ ऐसा उत्तम कोईभी विषय देखनेमें नहीं आया ॥ २४ ॥ नारदजीने कहा कि-इस प्रकार पुत्रका वचन सुनकर, कोपसे जिसके होंठ फरक रहे हैं ऐसे हिरण्यकशिपुने शुक्राचार्यजीके पुत्रसे कहा कि-॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणाधम ! हे दुर्मति ! तूने मेरा अनादर करके, मेरे शत्रुके पक्षमें रहकर, इस लड़केको ऐसी बुरी बात क्यों पढ़ायी ? ॥ २६ ॥ जगत्में जो कपटवेष रखनेवाले और झूंठी

निशम्यैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥ २५ ॥ ब्रह्मबंधो किमेतत्ते विपक्षं श्रयताऽसता ॥ असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥ २६ ॥ संति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः ॥ तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र उवाच ॥ न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं सुतो वदत्येष तवेंद्रशत्रो ॥ नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्नियच्छ मन्युं कदः स्म मा नः ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतम् ॥ न चेद्गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्राऽसती मतिः ॥ २९ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ॥ अदांतगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥ ३० ॥

मित्रता दिखलानेवाले दुष्ट पुरुष होते हैं उनका पापसमय आनेपर स्वयमेव खुल जाता है, जैसे गुप्त पाप,रोगके होनेसे प्रगट हो जाते हैं ॥२७॥ शुक्राचार्यके पुत्रने कहा कि-हे इंद्रशत्रु ! यह आपका पुत्र न तौ मेरा पढ़ाया विषय कहता है. और न कोई दूसरेका पढ़ाया कहता है यह तौ इसकी स्वाभाविक बुद्धि है. तासों आप क्रोधको शांत करो. और हमपै दोष मत लगाओ॥२८॥ नारदजीने कहा कि-इस प्रकार गुरुपुत्रने कहा. तब हिरण्यकशिपुने फिर प्रल्हादसे कहा कि-' हे दुष्ट ! यह तेरी दुष्टबुद्धि गुरुके उपदेशसे नहीं है तौ फिर कहांसे आई? ॥ २९ ॥ प्रल्हादने कहा कि-केवल घरकी चिंता रखनेवाले, वारंवार चर्वितचर्वण करनहारे यानी भोगेहुए विषयोंकाही

१ ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः । स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ १ ॥-अर्थ-ऐसा स्मृतिमें लिखा है कि-ब्रह्मघातीके क्षयरोग होता है. मदिरा पीनेवालेके दांत श्याह होते हैं. सुवर्ण चुरानेवालेके नख बुरे होते हैं. गुरुतल्पगामीकी [illegible] बुरी होती है

वृक्षसा पैदा हुआ है. यह लड़का चंदनवनके समान दैत्यकुलके मूलको समूल उखाड़नेवाले विष्णुरूप कुल्हाड़ेका दंडसा बना है ॥ १७ ॥ इस प्रकार तिरस्कारआदि अनेक २ उपायोंसे डराता हुआ वह ब्राह्मण प्रल्हादको धर्म, अर्थ और कामपुरुषार्थ-संबंधी शास्त्रोंको पढ़ाने लगा ॥ १८ ॥ फिर कितनेएक दिनोंके अनंतर साम, दान, भेद व दंडके विषयोंमें प्रल्हादको पूर्ण जानकर, प्रल्हादकी माके हाथ उसे न्हिलाय, धुलाय तथा शृंगार कराय, हिरण्यकशिपुके निकट लेगया ॥ १९ ॥ प्रल्हाद आकर, चरणोंमें गिरा. तिसका आशीर्वादसे सत्कार कर, बहुत देरतक हाथोंसे आलिंगन कर हिरण्यकशिपुने बड़ा सुख माना

इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः ॥ प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम् ॥ १८ ॥ तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम् ॥ दैत्येंद्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलंकृतम् ॥ १९ ॥ पादयोः पतितं बालं प्रतिनंद्याऽऽशिषाऽसुरः ॥ परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥ २० ॥ आरोप्यांकमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलांबुभिः ॥ आसिंचन्विकसद्वक्त्रमिदमाह युधिष्ठिर ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किंचिदुत्तमम् ॥ कालेनैतावताऽऽयुष्मन्यदशिक्षद्गुरोर्भवान् ॥ २२ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥ इति पुंसाऽर्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ॥ क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २४ ॥

॥ २० ॥ हे युधिष्ठिर ! उसे गोदीमें बिठाय, शिर सूंघ, आँसुओंके बिंदुओंसे न्हिलाताहुआ वह हिरण्यकशिपु प्रफुल्लित मुखवाले अपने पुत्र प्रल्हादसे कहने लगा ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि-हे प्रल्हाद ! हे तात ! हे आयुष्मन् ! इतने समयमें तू गुरुसे जो कुछ पढ़ा हो और जिस किसी विषयका तेरे भली भांति अभ्यास हुआ हो, वह मुझको कहकर, सुनाव ॥ २२ ॥ प्रल्हादने कहा कि-विष्णु भगवान्का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवन, पूजन, वंदन, दास्य, मित्रभाव और आत्मनिवेदन ॥ २३ ॥ यह नव प्रकारकी भक्ति जो करनेमें आवे और उसके किये पीछे भगवान्के अर्पण की जाय ऐसे नहीं

चाहते हैं सो तू सत्य कह ॥ १० ॥ प्रल्हादने कहा कि–पुरुषोंके 'यह पराया और यह अपना' ऐसा मोह जिसकी मायाको कियाहुआ है और वह मोह, तुम कि–जिनकी मायाको बुद्धि मायासे मोहित है उन्हींके देखनेमें आती है, तिन भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ११ ॥ ये भगवान् जब अनुकूल होते हैं तभी पशुओंकीसी 'मैं दूसरा और यह दूसरा' ऐसे भेदको प्राप्त भयीहुई संसारविषयिणी बुद्धि निवृत्त होजाती है ॥ १२ ॥ जिनका वर्णन करना अतिकठिन है. और जिनके मार्गमें ब्रह्मादिकभी मोहित हो जाते हैं, उन्हीं परमात्माको अविवेकी पुरुष अपना और पराया कहते हैं वेही परमात्मा मेरी बुद्धिको घुमाते हैं

प्रह्लाद उवाच ॥ स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः ॥ विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥ ११ ॥ स यदाऽनुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ॥ अन्य एष तथाऽन्योहमिति भेदगताऽसती ॥ १२ ॥ स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ॥ मुह्यंति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ॥ १३ ॥ यथा भ्राम्यत्ययोब्रह्मन्स्वयमाकर्षसन्निधौ ॥ तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः ॥ तं निर्भर्त्स्याथ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥ १५ ॥ आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः ॥ कुलांगारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥ १६ ॥ दैतेयचंदनवने जातोऽयं कंटकद्रुमः ॥ यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥ १७ ॥

॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे चुंबकके समीपमें लोहा स्वयमेव फिरा करता है वैसे भगवान्‌के सामीप्यके हेतु मेरा मन स्वयमेव फिरा करता है. और वह भगवान्‌का सामीप्य मुझे किस प्रकारसे मिला है वह मैं नहीं जानता ॥ १४ ॥ नारदजीने कहा कि–महामति प्रल्हाद ब्राह्मणको इतना कहकर, चुप हो गया. तब कोपयुक्त भया हुआ वह दीन राजाका सेवक ब्राह्मण प्रल्हादको झिड़ककर, बोला कि– ॥ १५ ॥ अरे ! बेत लाओ. यह लड़का तो अपनी अपकीर्ति करानेवाला है.कुलमें अंगारेके समान इस दुर्बुद्धि लड़केको तौ उपायोंमें चौथा उपाय दंड देनाही योग्य है ॥ १६ ॥ दैत्यकुलरूप चंदनवनमें यह तो कांटोंवाले बबूलके

क्योंकि उन विषयोंसे 'यह पराया और यह अपना' ऐसा दुराग्रह बँधा करता है ॥ ३ ॥ हे राजा एक दिन दैत्यराज हिरण्यक-शिपुने अपने पुत्र प्रल्हादको गोदीमें बिठाकर, पूंछा कि-हे पुत्र ! तेरे मनको जो अच्छा लगता होवे वह मुझसे कह ॥ ४ ॥ तब प्रल्हादने कहा कि-हे दैत्यवर्य ! 'मैं और मेरा' ऐसे दुराग्रहसे निरंतर उद्वेग पातेहुए प्राणियोंके वास्ते मैं यही उत्तम मानता हूं कि-जिससे जिनको नरकमें पड़ना पड़ता है ऐसे अंधकूपरूप घरको त्याग, वनमें जाकर, केवल प्रभुका शरण लेना ॥ ५ ॥ नारदजी बोले कि-शत्रुके पक्षमें जातीहुई पुत्रकी वाणी सुनकर, हिरण्यकशिपु हँसा. और बोला कि- ॥ ६ ॥ बालकोंकी

एकदाऽसुरराट् पुत्रमंकमारोप्य पांडव ॥ पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥ ४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ॥ हित्वाऽत्मपातं गृहमंधकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः ॥ जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥ ६ ॥ सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः ॥ विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥ ७ ॥ गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः ॥ प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छंत सामभिः ॥ ८ ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ॥ बालानतिकुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ॥ ९ ॥ बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् ॥ भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनंदन ॥ १० ॥

बुद्धि दूसरेके विचारोंसे फिर जाती है, इस लिये ब्राह्मणोंको चाहिये कि-इस बालकको अपने घरमें बड़े बंदोबस्तके साथ रक्खें जिससे विष्णुके पक्षवाले वेष बदल, भीतर आ, इसकी बुद्धिको फिरा न सकें ॥ ७ ॥ फिर दैत्योंके पुरोहितोंने प्रल्हादको घर ला, बुलाकर, अच्छी मधुर वाणीसे उसकी प्रशंसा करके, सामवचनोंसे पूंछा कि- ॥ ८ ॥ हे वत्स ! हे प्रल्हाद ! तेरा भला होगा; तू सत्य कह. झूंठ मत बोल. इन दूसरे बालकोंकी बुद्धिमें कुछभी फरक न पड़ते तेरी बुद्धिमें यह अंतर किसप्रकार पड़ा ? ॥ ९ ॥ हे कुलनंदन ! यह तेरी बुद्धि किसी दूसरेने फेर दी है के यह स्वयमेव बदल गयी है. हम जो तेरे गुरु हैं वे सुनना

पुत्र कुपुत्र हो जाय, तथापि पुत्रपर प्रेम रखनेवाले पिता उनको शिक्षा देनेके वास्ते तौ भलेही उलाहना देते हैं परंतु शत्रुकी नाईं उसका बुरा करना कदापि नहीं चाहते ॥ ४५ ॥ तब अनुकूल रहनेवाले, सुपात्र और गुरुकोही केवल इष्टदेव कर, माननेवाले इस प्रल्हादजैसे पुत्रका बुरा न करें इसमें तौ कहनाही क्या ?. हे ब्रह्मन् ! इस बातसे हमको बड़ा कौतूहल होता है कि-पिताने पुत्रको मारनेके वास्ते द्रोह किया, सो हमारा यह संदेह तौ आपको अवश्य मिटाना चाहिये ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवते सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पाचवें अध्यायमें गुरुने जो

पुत्रान्विप्रतिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः ॥ उपालभंते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥ ४५ ॥ किमुतानुवशान्साधूंस्तादृशान्गुरुदेवतान् ॥ एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ॥ पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे प्रह्लादचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ पौरोहित्याय भगवान्वृतः काव्यः किलासुरैः ॥ शंडामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहांतिके ॥ १ ॥ तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् ॥ पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥ २ ॥ यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठ च ॥ न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ॥ ३ ॥

पढ़ाया उसे छोड़कर, विष्णुकी स्तुति करनेमें लगेहुए प्रल्हादको हिरण्यकशिपु हाथी और सर्पआदिसे मरवाने लगा, तथापि उसे मरवा नहीं सका. यह कथा होगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-दैत्योंने महात्मा शुक्राचार्यको अपने पुरोहित बनाये थे. इन आचार्यके शंड और अमर्क नाम दो पुत्र थे. वे हिरण्यकशिपुके घरके समीपमेंही रहा करते ॥ १ ॥ ये हिरण्यकशिपुके पठायेहुए नीतिनिपुण प्रल्हादको और दूसरेभी दैत्यपुत्रोंको दंडनीतिआदि पढ़ानेके विषय पढ़ाया करते थे ॥ २ ॥ तहां गुरु जो कहते वह प्रल्हाद सुनते और सुनकर, पीछा वैसाका वैसा पढभी देते; परंतु यह वार्ता इन्हे मनमें अच्छी नहीं लगती;

॥ ३६ ॥ बचपनहीसे खिलौनोंका खेल छोड़कर, उन्होंने अपना मन भगवानमें लगा दिया था. वह भगवान्‌रूप ग्रहगृहीत हो गये थे, तासों वह जड़की भांति जगत्‌को बिलकुल नहीं जानते थे कि-जगत् कैसा है? ॥ ३७ ॥ बैठते, घूमते, खाते,सोते, पीते और बोलते केवल गोविंद भगवान्‌में एकरूप हो गये थे तासों 'हम क्या करते हैं' ऐसाभी उन्हे अनुसंधान नहीं रहा था ॥ ३८ ॥ भगवान्‌के चिंतवनसे बुद्धि व्याप्त हो जानेके कारण किसी समय वह प्रल्हाद रुदन करते, किसी समय हँसते और किसी समय ध्यानके आनंदके हेतु ऊंचे स्वरसे गान किया करते ॥ ३९ ॥ किसी समय मुक्तकंठ होकर, वह गर्जना करते. किसी समय

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्कया ॥ कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥ ३७ ॥ आसीनः पर्यटन्नश्नन् शयानः प्रपिबन्ब्रुवन् ॥ नानुसंधत्त एतानि गोविंदपरिरंभितः ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रुदति वैकुंठचिंताशबलचेतनः ॥ क्वचिद्धसति तच्चिंताह्लादउद्गायति क्वचित् ॥ ३९ ॥ नदति क्वचिदुत्कंठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ॥ कचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥ ४० ॥ क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ॥ अस्पंदप्रणयानंदसलिलामीलितेक्षणः ॥ ४१ ॥ स उत्तमश्लोकपदारविंदयोर्निषेवयाऽकिंचनसंगलब्धया ॥ तन्वन्परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसंगदीनान्यमनः शमं व्यधात् ॥ ४२ ॥ तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ॥४३॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ देवर्ष एतादिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत ॥ यदात्मजाय शुद्धाय पिताऽदात्साधवे ह्यघम् ॥४४॥

लज्जारहित होकर, नृत्य करते. किसी समय भगवान्‌की भावनासे तन्मय होकर, भगवान्‌के जैसीही चेष्टा किया करते ॥ ४० ॥ किसी समय भगवान्‌की भावनाका परमसुख मिलनेसे रोमांचित होकर, चुपचाप बैठ जाते. और अखंड स्नेहके आनंदसे अश्रुभर आनेसे आखें मूंदिके रहा करते ॥ ४१ ॥ निष्किंचन पुरुषोंके संगसे प्राप्त भयी जो भगवान्‌के चरणोंकी सेवा उसके प्रभावसे अपने मनको परमशांति देतेहुए वह प्रल्हाद दुःसंगसे दीन भयेहुए दूसरे पुरुषोंके मनकोभी शांति देते थे ॥ ४२ ॥ महावैष्णव, महात्मा और महाभाग्यशाली इस पुत्रसे हे राजा ! वह हिरण्यकशिपु द्वेष करने लगा ॥ ४३ ॥ युधिष्ठिरने पूंछा कि-हे नारदजी ! हे सुंदरव्रत धरनहारे ! इस शुद्ध और सत्पुत्रसे पिताने द्रोह क्यों किया ? इस बातको मैं आपसे जानना चाहता हूँ ॥ ४४ ॥

और महात्मालोगोंके भक्त थे ॥ ३० ॥ यह प्रल्हाद ब्राह्मणोंको माननेवाले, उत्तम स्वभाववाले, वचन पालनेवाले, जितेंद्रिय और सर्वप्राणीमात्रको अपने आत्माके समान अत्यंत प्यारे और अनन्य मित्र थे ॥ ३१ ॥ यह महात्मापुरुषोंके चरणोंमें दासकी भांति प्रणाम करते थे. दीन जनोंपर उनके पिताके समान प्रेम रखते. जो पुरुष अपने बराबरके थे तिनसे भाईकासा स्नेह रखते. गुरुको ईश्वरकरके मानते थे. विद्या, धन, रूप और कुलसे संपन्न थे. तथापि अभिमान कै अक्कड़पन बिलकुल नहीं था ॥ ३२ ॥ दुःखसे उद्विग्न नहीं होते थे, इसलोक और परलोकसंबंधी विषयसुखोंको मिथ्याभूत मानते थे. तासों तिनमें तिसकी

ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसंधो जितेंद्रियः ॥ आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥ ३१ ॥ दासवत्संनतार्यांघ्रिः पितृवद्दीनवत्सलः ॥ भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः ॥ विद्याऽर्थरूपजन्माढ्यो मानस्तंभविवर्जितः ॥ ३२ ॥ नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ॥ दांतेंद्रियप्राणशरीरधीः सदा प्रशांतकामो रहितासुरोऽसुरः ॥ ३३ ॥ यस्मिन्महद्गुणा राजन्गृह्यंते कविभिर्मुहुः ॥ न तेऽधुना पिधीयंते यथा भगवतीश्वरे ॥ ३४ ॥ यं साधुगाथा सदसि रिपवोऽपि सुरा नृपः ॥ प्रतिमानं प्रकुर्वंति किमुतान्ये भवादृशाः ॥ ३५ ॥ गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते ॥ वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥ ३६ ॥

इच्छा नहीं थी. इंद्रिय, प्राण, शरीर और बुद्धिको वश्य कर रखते थे. निरंतर उनकी सकल कामना शांतही रहा करतीं थीं. जातिसे असुर थे तथापि उनमें असुरके गुण नहीं थे ॥ ३३ ॥ हे राजा ! इनके बड़े बड़े गुणोंको विद्वान्‌भी वारंवार ग्रहण करते हैं. भगवान्‌के गुण जैसे विस्मृत नहीं होते तैसे अद्यापि इन प्रल्हादके गुणभी तिरोहित नहीं होते ॥ ३४ ॥ यदपि देवता जातिसे उनके शत्रु हैं तथापि सभाके बीच अच्छी अच्छी बातें निकलतीं हैं तब प्रल्हादका दृष्टांत देते हैं तब तुमजैसे दूसरे उनका दृष्टांत दें इसमें तो कहनाही क्या ? ॥ ३५ ॥ यह तो मैं केवल उनके गुणोंकी महिमा कहता हूं. बाकी उनके गुणोंकी तो संख्याही नहीं है, तासों उनके गुणोंका पार नहीं आ सक्ता. सब इनके गुणोंको तो इसीमें समझ लो कि-वासुदेव भगवान्‌में उनकी स्वाभाविक प्रीति है

ईश्वर भगवान् जहां हैं और निर्मल व शांत संन्यासी लोग जहां जाकर, पीछे नहीं आते उस दिशाको हम प्रणाम करते हैं" ॥ २२ ॥ ऐसा वाक्य बोलते, जितेंद्रिय और निर्मल रहनेवाले सब लोक समाधिमें स्थिति रख कर, निद्राका त्याग करके तथा केवल वायुमात्रका भक्षण कर, भगवान्का भजन करने लगे ॥ २३ ॥ इस समयमें मेघकेसे शब्दवाली दिशाओंको गर्जित करती और साधुलोगोंका भय मिटानेवाली आकाशवाणी उनके सुननेमें आयी ॥ २४ ॥ कि–"हे देवो ! तुम डरो मत. तुम सबोंका कल्याण होगा. मेरी स्तुति, श्रवण व दर्शन करनेसे प्राणीमात्रका सकल प्रकारसे कल्याण होता है ॥ २५ ॥ इस अधम दैत्य-

इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ॥ उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥ ॥ २३ ॥ तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिःस्वना ॥ सन्नादयंती ककुभः साधूनामभयंकरी ॥ २४ ॥ मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥ मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥ २५ ॥ ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च ॥ तस्य शांतिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत ॥ २६ ॥ यदादेवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ॥ धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥ २७ ॥ निर्वैराय प्रशांताय स्वसुताय महात्मने ॥ प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥ २८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः ॥ न्यवर्तंत गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥ २९ ॥ तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ॥ प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥ ३० ॥

की दुष्टता मेरे जाननेमें है. इसकी शांति मैं करूंगा. परंतु अभी तुम उस समयकी राह देखते रहो ॥ २६ ॥ जो पुरुष, देव, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मेरा द्वेषी है वह तुर्त नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥ वैररहित, शांत और महात्मा अपने पुत्र प्रल्हादसे जब यह हिरण्यकशिपु द्रोह करेगा, तब यदपि यह वरदानसे बढ़ाहुआ है तथापि इसे मैं मार डालूंगा "॥ २८ ॥ नारदजीने कहा कि– इसप्रकार भगवान्का वचन सुन, उद्वेगरहित भयेहुए देवता भगवान्को प्रणाम कर, पीछे लौटे. और हिरण्यकशिपुको माराहुआ मानने लगे ॥ २९ ॥ इस दैत्यराज हिरण्यकशिपुके महाअद्भुत चार पुत्र हुए थे. तिनमें सबकी अपेक्षा प्रल्हाद गुणोंसे सबसे बड़े

हुए उस दैत्यके निकट गान किया करते. हे पांडुपुत्र ! गंधर्व, सिद्ध, ऋषि, विद्याधर और अप्सरायें, ये सब उसकी बारंबार स्तुति किया करते ॥ १४ ॥ वर्णाश्रमवाले लोक पुष्कल दक्षिणावाले यज्ञोंसे उसका पूजन करते थे. और हविष्य पदार्थके यज्ञभागभी अपने बलसे वही लेता था ॥ १५ ॥ उसके राज्यमें सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी विनाहल चलाये अन्नआदि पदार्थ पकेहुए देती थी. स्वर्गलोक सर्वकामना पूर्ण करता था. आकाशमें अनेक आश्चर्य देखनेमें आते थे ॥ १६ ॥ खारा जल, मदिरा, घी, मधु, दधि, दूध व मधुर जलवाले रत्नाकर, यानी समुद्र मात्र अपनी लहरोंसे रत्न देते थे. उनकी स्त्रियां यानी नदियां दूध-

स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत्स्वेन तेजसा ॥ १५ ॥ अकृष्टपच्या तस्यासीत्सप्तद्वीपवती मही ॥ तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥ १६ ॥ रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ॥ क्षारसीधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥ १७ ॥ शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः ॥ दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥ १८ ॥ स इत्थं निर्जितककुबेकराड्विषयान्प्रियान् ॥ यथोपजोषं भुंजानो नातृप्यदजितेंद्रियः ॥ १९ ॥ एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ कालो महान्व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥ २० ॥ तस्योग्रदंडसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥ अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥ २१ ॥ तस्मै नमोस्तु काष्ठाय यत्राऽऽत्मा हरिरीश्वरः ॥ यद्गत्वा न निवर्तंते शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ २२ ॥

आदि रसके पदार्थ बहतीं थीं ॥ १७ ॥ पर्वत अपनी गुफाओंके भीतर क्रीड़ा करनेकी भूमि देते थे. वृक्ष सब ऋतुओंमें फलफूलआदि पदार्थ देते थे, सर्वलोकपालोंके जुदे जुदे गुणोंको यह हिरण्यकशिपु इकला धारण करता था ॥ १८ ॥ इस प्रकार दिग्विजय करनेवाला चक्रवर्ती हिरण्यकशिपु अपनी इच्छाके अनुसार प्रिय विषयोंका भोग करता था. तथापि अजितेंद्रिय होनेके कारण उसे तृप्ति नहीं आयी ॥ १९ ॥ इस प्रकार ऐश्वर्यसे मदमत्त भयेहुए, शास्त्रसे विरुद्ध प्रकारसे चलनेवाले और ब्राह्मणोंके श्रापसे जन्म पायेहुए हिरण्यकशिपुके राज्य करते बहुत काल व्यतीत हो गया ॥ २० ॥ इस दैत्यके उग्र दंडसे उद्वेग पायेहुए और दूसरी किसी जगह जिनको शरण नहीं मिला ऐसे लोकपालोंसहित सब लोक भगवानके शरण गये ॥ २१ ॥ “ सर्वके आत्मा और

पालोंके तेजके साथ उनके स्थान छीन लिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ देवतानके उद्यानोंकी शोभावाले स्वर्गमें रहकर, त्रिलोकीका राज्य करने लगा. विश्वकर्माके बनायेहुए, त्रिलोकीकी लक्ष्मीके आश्रयरुप और सर्वसमृद्धियोंसे सम्पन्न साक्षात् इंद्रके भवनमें रहने लगा ॥ ८ ॥ जिस घरमें विद्रुममणिकी सीढ़ीवाली अमूल्य मरकत मणिकी बंधीहुई भूमियां हैं. स्फटिक मणिकी भीतें हैं. वैडूर्य मणिके खंभोंकी श्रेणियां शोभ रही हैं ॥ ९ ॥ जहां चित्र विचित्र वितान यानी चंदवे लग रहे हैं. पद्मराग (माणिक) मणिके आसन बिछ रहे हैं. दूधके फेनसी सुफेद और सुकोमल शय्यायें बिछ रही हैं. जिनमें मोतियोंकी मालाके कसे लगे

देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् ॥ महेंद्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥ ८ ॥ यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः ॥ यत्र स्फाटिककुड्यानि वैडूर्यस्तंभपंक्तयः ॥ ९ ॥ यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च॥पयःफेननिभाः शय्यामुक्तादामपरिच्छदाः ॥ १० ॥ कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयंत्य इतस्ततः ॥ रत्नस्थलीषु पश्यंति सुदतीः सुंदरं मुखम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्महेंद्रभवने महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट्॥ रेमेऽभिवंद्यांघ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितै रूर्जितचंडशासनः ॥ १२ ॥ तमंग मत्तं मधुनोरुगंधिना विवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ॥ उपासतोपायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥१३ ॥ जगुर्महेंद्रासनमोजसास्थितं विश्वावसुस्तुंबुरुरस्मदादयः ॥ गंधर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन्मुहुर्विद्याधरा अप्सरसश्च पांडव ॥ १४॥

हुए हैं ॥ १० ॥ झणत्कार करतेहुए नूपुरोंके शब्दसे भवनको चौतर्फसे शब्दायमान करतीं सुंदर दांतोंवाली देवांगना रत्नभूमियोंके बीच विचरतीं अपने सुंदर मुखके प्रतिबिंबको उन्हींमें देखा करतीं हैं ॥ ११ ॥ ऐसे इंद्रके घरमें महाबली, महाउदारचित्त, लोकजयी, चक्रवर्ती, प्रचंड व ऊर्जित आज्ञावाला और प्रतापके प्रभावसे तप्त होकर, देवताआदि जिसके चरणको प्रणाम करते हैं ऐसा वह हिरण्यकशिपु वहीं स्वर्गके बीच रमण करने लगा ॥ १२ ॥ हे राजा ! उग्र गंधवाली मदिरा पीकर, मत्त रहनेवाले, घूर्णित और अरुणनेत्रवाले और तप, योग, बल व सामर्थ्यके निधि इस दैत्यकी ब्रह्मा, विष्णु व महादेवके शिवाय शेष सकल देवता और लोकपाल हाथोंमें भेंटें ले ले कर, सेवा करते थे ॥ १३ ॥ विश्वावसु, तुंबुरु और मैं (नारद) आदि सब बलात्कारसे इंद्रासनपर बैठे-

चौथे अध्यायमें वर पाकर, सब लोकपालोंको जीतकर, हिरण्यकशिपुने विष्णुकेद्वेषसे सब देवतानको दुःख दिया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-इस प्रकार हिरण्यकशिपुने प्रार्थना की तब उसके तपसे प्रसन्न भयेहुए ब्रह्माजीने दूसरोंको जिनका मिलना अतिदुर्लभ है ऐसे वरदान दिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि-हे तात ! हे अंग ! जो वर तू मुझसे मांगता है वे सब वर यदपि मनुष्योंको मिलना अतिदुर्लभ हैं तथापि मैं तुझे देता हूं ॥ २ ॥ नारदजीने कहा कि-हिरण्यकशिपुने जिनका पूजन किया है

नारद उवाच ॥ एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ ॥ प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तातेमे दुर्लभाः पुंसा यान्वृणीषे वरान्मम ॥ तथाऽऽपि वितराम्यंग वरान्यदपि दुर्लभान् ॥ २ ॥ ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः ॥ पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥ एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः ॥ भगवत्यकरोद्द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४ ॥ स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन्महासुरः ॥ देवासुरमनुष्येंद्रान्गंधर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥ सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन्पितृपतीन्मनून् ॥ यक्षरक्षःपिशाचेशान्प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६ ॥ सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित् ॥ जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ ७ ॥

ऐसे अमोघ अनुग्रहवाले, समर्थ और प्रजापति जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे ब्रह्माजी इसप्रकार उसे बरदान दे, वहांसे पीछे अपने धाम सिधारे ॥ ३ ॥ इस प्रकार जिसको वर मिले हैं ऐसा वह कंचनकेसे शरीरवाला हिरण्यकशिपु अपने भाईके मरणका स्मरण कर, भगवानसे द्वेष करने लगा ॥ ४ ॥ सर्व दिशायें, तीनों लोक, देवता, असुर, मनुष्योंके राजा, गंधर्व, गरुड़, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृपति, मनु, यक्षोंके राजा, राक्षसोंके पति, पिशाचोंके स्वामी, प्रेतोंके अधिपति, भूतोंके राजा और इनके शिवाय दूसरेभी संपूर्ण प्राणीमात्रके अधिपतियोंको जीत, अपने अधीन करके जगज्जयी उस महादैत्य हिरण्यकशिपुने लोक-

और ब्रह्मांड जिनके गर्भमें है ऐसे परब्रह्म आपही हो. ॥ ३२ ॥ यह सकल ब्रह्मांड आपका शरीर है. जिस शरीरसे आप स्वरूपमें रहकर इंद्रिय, प्राण और मनके विषयोंका अनुभव करते हो. अतएव अव्यक्त आत्मा और पुराणपुरुषरूप परब्रह्म आपही हो ॥ ३३ ॥ हे अनंत ! विद्या और अविद्या शक्तिवाले जो आप मन व वचनसे न जाना जाय ऐसे रूपके द्वारा इस सारे जगत्‌में व्याप्त हो, तिन्हें मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३४ ॥ हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! जो आप मुझे मनवांछित वरदान देते हो तौ आपके रचेहुए किसी पदार्थसे मेरा मरण न होना चाहिये ॥ ३५ ॥ बाहिर, भीतर, दिनमें, रात्रिमें, आपके रचेहुए पदार्थोंसे, भिन्न

व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेंद्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ॥ भुंक्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्य अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ३३ ॥ अनंताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ॥ चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ३४ ॥ यदि दास्यस्यभिमतान्वरान्मे वरदोत्तम ॥ भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्माभून्मम प्रभो ॥ ३५ ॥ नांतर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ॥ न भूमौ नांबरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥ ३६ ॥ व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः ॥ अप्रतिद्वंद्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥ ३७ ॥ सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथाऽऽत्मनः ॥ तपोयोगप्रभावाणां यन्नरिष्यति कर्हिचित् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

पदार्थसेभी तथा शस्त्रोंसे, पृथ्वीमें आकाशमें, मनुष्योंसे, मृगोंसे, ॥ ३६ ॥ प्राणविनाके पदार्थोंसे तथा प्राणवाले पदार्थोंसे, देवतानसे, दैत्योंसे, बड़े सर्पोंसे इनमेंसे किसीसेभी मेरा मरण न होना चाहिये, मुझे आप सब लोकोंका एक चक्रवर्ती राजा बनाओ. और युद्धमें मेरे सामने कोईभी ठहेर न सके ऐसा मुझे कर दो ॥ ३७ ॥ सर्व लोकपालोंके जैसी तथा आपके जैसी महिमा मेरी कर दो, तप तथा योगके प्रभाववाले पुरुषोंकी जो अणिमादिक सिद्धियां कदापि नष्ट नहीं होतीं वेभी मुझे दो ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥

काश प्रभुने अपने प्रकाशसे प्रकट दिखाया है तथा जो आप त्रिगुणात्मक स्वरूपसे इस जगत्को रचते, पालते और लीन करते हो. उन रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुणके आश्रयरूप परमेश्वर आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ २७ ॥ सर्वके आदि, ज्ञानविज्ञानरूप सबके निमित्तरूप और प्राण, इंद्रिय, मन व बुद्धिरूप विकारोंसे कार्यके आकारको प्राप्त भयेहुए आपको प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ आपही मुख्य प्राणरूपसे स्थावरजंगमके नियंता हो तासों आप प्रजाओंके पति हो. प्रजाओंके चित्त, चेतना, मन और इंद्रियोंके पति हो. तासों आपही सबसे बड़े हो. आकाशादिक पंचमहाभूत तथा शब्दादि पंच विषय व वास-

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुंपति ॥ रजःसत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥ २७ ॥ नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्त्तये ॥ प्राणेंद्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥ २८ ॥ त्वमीशिषे जगतस्त-स्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ॥ चित्तस्य चित्तेर्मनइंद्रियाणां पतिर्महान्भूतगुणाशयेशः ॥ २९ ॥ त्वं सप्ततंतून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ॥ त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामना-दिरनंतपारः कविरंतरात्मा ॥ ३० ॥ त्वमेव कालो निमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ॥ कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥ ३१ ॥ त्वत्तः परं नापरमप्यने-जदेजच्च किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥ विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥ ३२ ॥

नाओंके रचनेवालेभी आपही हो ॥ २९ ॥ चार होतानके कर्म करनेके विषयवाली वेदत्रयीरूप विद्यासे आपही अग्निष्टोमआदि यज्ञोंका विस्तार करते हो. तथा प्राणियोंके आत्मा और अंतर्यामी आपही हो, क्योंकि सर्वज्ञ, अखंडित, अनादि, अनंत और अपार आपही हो ॥ ३० ॥ कालके प्रवाहरूप आपही लव, क्षणआदि विभागोंसे लोकोंकी आयुष्यको कम करते हो. अविनाशी, ज्ञान-रूप परमेश्वर, अजन्मा, परिच्छेदरहित और इस जीवलोकके जीवन देनेवाले तथा नियंता आपही हो ॥ ३१ ॥ कार्य, कारण, स्थावर, जंगम कुछभी आपसे जुदा नहीं है. सब विद्या तथा कला आपकेही शरीररूप हैं. क्योंकि त्रिगुणात्मक, प्रधानसे पर

हे दितिपुत्र ! बड़े २ धीर पुरुषोंसेभी न बन सके ऐसे तेरे इस निश्चयसे मैं तेरे वश हुआ था. तत्रापि (तहांभी) तपकरके तो मुझे अत्यंतही अपने वशमें कर लिया है ॥ २० ॥ हे असुरोंमें श्रेष्ठ ! अतएव तेरे सब मनोरथ मैं पूर्ण करूंगा. तू कि-जिसका शरीर मरणसे मुक्त नहीं है तिसे मैं कि-जो मरणसे मुक्त हूं तिसका दर्शन हुआ है सो वह दर्शन निष्फल कदापि नहीं होगा. ॥ २१ ॥ नारदजीने कहा कि-आदिदेव ब्रह्माजीने इतना कहकर, हिरण्यकशिपु कि-जिसका शरीर चींटे खा गये थे तिसके ऊपर दिव्य और अमोघ शक्तिवाला अपने कमंडलुका जल छिड़का ॥ २२ ॥ वह जल छिड़कतेही बांसोंवाले बिलमेंसे, अग्नि

व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ॥ तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनंदन ॥ २० ॥ ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुंगव ॥ मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽदिभवो देवो भक्षितांगं पिपीलिकैः ॥ कमंडलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥ २२ ॥ स तत्कीचकवल्मीकात्सहओजोबलान्वितः ॥ सर्वावयवसंपन्नो वज्रसंहननो युवा ॥ उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥ २३ ॥ स निरीक्ष्यांबरे देवं हंसवाहमवस्थितम् ॥ ननाम शिरसा भूमौ तद्द-र्शनमहोत्सवः ॥ २४ ॥ उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् ॥ हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा ग-द्गदयाऽगृणात् ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ कल्पांते कालसृष्टेन योंऽधेन तमसा वृतम् ॥ अभि-व्यनक् जगदिदं स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा ॥ २६ ॥

जैसे काष्ठमेंसे प्रगट होता है तैसे, हिरण्यकशिपु निकला. शरीर, इंद्रिय यथा मनकी शक्ति पायाहुआ सर्व अवयवोंसे संपूर्ण, तरुण और वज्रकासा दृढांग वह दैत्य ॥ २३ ॥ आकाशमें हंसपर विराजमान ब्रह्माजीका दर्शन करके, उनके दर्शनसे परमआल्हादित हुआ. और उसने ब्रह्माजीको पृथ्वीपर शिरसे साष्टांग प्रणाम किया ॥ २४ ॥ नम्र, हर्षके मारे अश्रुकलासे व्याप्त, रोमांचितगात्र और ब्रह्माजीका दर्शन करताहुआ यह उठकर, हाथ जोड़, गद्गदवाणीसे ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगा ॥ २५ ॥ हिरण्यकशिपु बोला कि-कल्पके अंतमें कालके उत्पन्न कियेहुए गाढ़ तमोगुणसे आच्छादित भयेहुए इस जगत्को जिन स्वयंप्र-

वह बड़ा तप करना ठान बैठा है. तासों अब जो आपको योग्य दीखे वह करो ॥ १२ ॥ आपके आसनसे गौ ब्राह्मणका प्रतिपालन तथा सुख, ऐश्वर्य और उद्भव, उत्कर्ष व क्षेम हुआकरता है. तासों हे जगत्पति ! आप जो स्थानभ्रष्ट होओगे तौ दूसरोंकाभी अनिष्ट होगा ॥ १३ ॥ नारदजीने कहा कि-हे राजा ! इस प्रकार देवताननें विनती की. तब भृगु और दक्षआदि प्रजापतियोंको साथ ले, ब्रह्माजी हिरण्यकशिपुके आश्रममें पधारे ॥ १४ ॥ वल्मीक (बांबी) तृण व कीचक (थोथेवांस) इनसे यह दैत्य ढक गया था. तासों वह एकवार तौ ब्रह्माजीकी दृष्टिमें नहीं आया. फिर बादलमें जैसे सूर्य दीख पड़ता है ऐसे थोड़ीसी

तवाऽऽसनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ॥ भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥ १३ ॥ इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप ॥ परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥ १४ ॥ न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ॥ पिपीलिकाभिराचीर्णमेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥ १५ ॥ तपंतं तपसा लोकान्यथाभ्रा पिहितं रविम् ॥ विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन्हंसवाहनः ॥ १६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपःसिद्धोऽसि काश्यप ॥ वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥ १७ ॥ अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम् ॥ दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥ १८ ॥ नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यंति चापरे ॥ निरंबुर्धारयेत्प्राणान्को वै दिव्यसमाः शतम् ॥ १९ ॥

देरी पीछे वह किंचिन्मात्र देखनेमें आया. इसके मेद, त्वचा, मांस और रुधिरको तौ चींटे खा गये थे. केवल अस्थि और नाड़ियांमात्र शेष रह गयीं थीं. तथापि वह अपने तपके प्रभावसे लोकोंको तपा रहा था. तिसे देखकर, ब्रह्माजी बड़े विस्मित हुए और बोले कि- ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे कश्यपके पुत्र! उठ उठ, खड़ा हो, तेरा भला हो. तू तपसे सिद्ध हुआ है. मैं वर देनेको आया हूं. तासों तेरे जो चाहिये वह वर माँग ॥ १७ ॥ तेरे हृदयकी यह अद्भुत धीरज मैंने देखी. तेरे देहको मक्खियांआदि खा गयीं हैं. तथापि तेरे प्राण केवल अस्थिमात्रमें ठहर रहे हैं ॥ १८ ॥ न तौ पहले ऋषियोंमेंसे ऐसा तप आजतक किसीने किया, न कोई अब पीछे करेगा. देवतानके सौ १०० वर्षपर्यंत विना जल प्राणोंको कौन रखसक्ता है ? ॥ १९ ॥

दशों दिशायें जलने लगीं. ॥ ५ ॥ इस अग्निसे तपायमान भयेहुए देवता स्वर्गको छोड़कर, ब्रह्मलोकमें गये और वहा जाकर, ब्रह्मा-
जीसे विनती की कि-' हे देवदेव ! हे जगत्पति ! ॥ ६ ॥ हिरण्यकशिपुके तपसे तपायमान भयेहुए हम स्वर्गमें नहीं रह सकते.
तासों हे भूमन् ! जो आपकी इच्छा हो तौ आपको भेंटें देनेवाले ये लोक जबलों नाश नहीं हो जांय, तिससे प्रथम उस
दैत्यके तपको शांत करो ॥ ७ ॥ " ब्रह्माजीका उसपर द्वेष उत्पन्न होनेको देवता उसके संकल्पको निवेदन करते हैं. " यदपि
आपसे कोई बात छिपी नहीं है. तथापि उसने यह दुष्कर तप करके जो संकल्प किया है वह हमसे सुनो ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ॥ धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥ ६ ॥ दैत्यें-
द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः ॥ तस्य चोपशमं भूमन्विधे हि यदि मन्यसे ॥ लोका न यावन्नं-
क्ष्यंति बलिहारास्तवाभिभूः ॥ ७ ॥ तस्यायं किल संकल्पश्चरतो दुश्चरं तपः ॥ श्रूयतां किं न विदित-
स्तवाथाऽपि निवेदितम् ॥ ८ ॥ सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ॥ अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः
परमेष्ठी निजासनम् ॥ ९ ॥ तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ॥ कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साध-
यिष्ये तथाऽऽत्मनः ॥ १० ॥ अन्यथेदं विधास्येऽहमयथा पूर्वमोजसा॥ किमन्यैः कालनिर्धूतैः
कल्पांते वैष्णवादिभिः ॥ ११ ॥ इति शुश्रुम निर्बंधं तपः परममास्थितः ॥ विधत्स्वानंतरं युक्तं स्वयं
त्रिभुवनेश्वर ॥ १२ ॥

इस सकल चराचर जगत्को तप और योगकी निष्ठाके प्रभावसे रचकर, सर्व लोकोंकी अपेक्षा उत्तम सत्यलोकमें जैसे बैठे हैं
वैसे मैंभी तप और योगमें निष्ठा अधिक २ रखकर, मेरे आत्माको वैसाही सिद्ध करलूंगा जैसे ब्रह्माजी हैं. यदपि आयुष्य अल्प
होनेसे वारंवार देह पड़ जानेका संभव है तथापि काल और आत्मा अविनाशी हैं, तासों अनेक जन्मोंसेभी मेरा यह कार्य सिद्ध,
करूंगा ॥ ९ ॥ १० ॥ मेरे सामर्थ्यसे देवतानको दैत्य और दैत्योंको देवता तथा पुण्यको पाप और पापको पुण्य
ठहेराकर, जगत्को उलट पलट कर दूंगा. कल्पके अंतमें कालगतिसे नाश होनेवाले दूसरे ध्रुवपदआदिसे मेरे क्या प्रयो-
जन है ? मेरे तो ब्रह्मपदवीही लेनी है ॥ ११ ॥ हे त्रिलोकीनाथ ! इसप्रकारका उसका आग्रह हमने सुना है. और उसी हेतुसे

और दूसरा कौन है ? ॥ ६० ॥ नारदजीने कहा कि-इस प्रकार अपनी पुत्रवधूके साथ दितिने हिरण्यकशिपुका वचन सुनकर, क्षणमात्रमें पुत्रका शोक त्याग दिया. और परब्रह्ममें मन लगाया ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे रामश्याम-विरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ तीसरे अध्यायमें हिरण्यकशिपुके तपसे जगत्‌को तपायमान देखकर, ब्रह्माजी आये. वहां उसके तपको देखकर, विस्मित हुए. तहां हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीकी स्तुति की. और ब्रह्माजीने वरदान दिये, यह कथा होगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि-हे युधिष्ठिर ! फिर हिरण्यकशिपुने अपने देहको अजर, अमर,

नारद उवाच ॥ इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा ॥ पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधा-रयत् ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे दितिशोकापनयनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ॥ आत्मानमप्रतिद्वंद्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ ॥ १ ॥ स तेपे मंदरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ॥ ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥ जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः ॥ तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥ ३ ॥ त-स्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः ॥ तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥ चुक्षुभुर्न-द्युदन्वंतः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ॥ निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥ ५ ॥

शत्रुरहित, अजेय और चक्रवर्ती, बनानेकी इच्छा की ॥ १ ॥ इस प्रकारकी इच्छासे मंदराचल पर्वतकी गुफामें जाकर, महद्दारुण तप करना प्रारंभ किया. हाथ ऊंचे कर, दृष्टि आकाशकी ओर लगाय पैरके अंगूठे मात्रसे पृथ्वीका सहारा ले, ॥ २ ॥ तपस्या करताहुआ वह हिरण्यकशिपु अपनी जटाकी किरणोंसे प्रलयकालका सूर्य जैसे किरणोंसे शोभायमान होता है ऐसे शोभा देने लगा. हिरण्यकशिपु तप करने लगा, तब देवता कि-जो प्रथम गुप्तरीतिसे पृथ्वीपर विचरते थे. वे अपने अपने स्थान पहुँचे ॥ ३ ॥ इस दैत्यके शिरमेंसे प्रगट भयाहुआ धूमसहित तपोमय अग्नि, टेढ़ा, ऊंचा और नीचा चौतर्फ फैलकर, त्रिलोकीको तपाने लगा ॥ ४ ॥ नदियां और समुद्र क्षोभित हो गये. द्वीप व पर्वतोंसहित पृथ्वी कांपने लगी. ग्रह और तारा टूटने लगे.

जीनेवाले इस मेरे आंधे शरीरसे मेरे क्या प्रयोजन है ? तासों दैव चाहे मुझेभी भले उठा लेवे, ॥ ५४ ॥ जिनके पर अबतक नहीं आये हैं ऐसे माताविनाके बच्चोंको मैं किस प्रकार पाल सकूंगा ? अरे ! मंदभागी ये मेरे बच्चे घोंसलेके भीतर अपनी माताकी राह देखते होंगे ? ॥ ५५ ॥ इस प्रकार विलाप करते स्त्रीके वियोगसे आतुर भयेहुए और जिसके मुखमें अश्रु भर रहे थे ऐसे इस कुलिंग पक्षीको वहीं निकटमें गुप्त रहेहुए और कालप्रेरित पारधीने बाणसे वेध लिया ॥ ५६ ॥ इस प्रकार तुमभी कि-जो मूर्ख और अपने मरणको नहीं जाननेवाली हो, वे चाहे सैकड़ों वर्ष-

कथं त्वजातपक्षांस्तान्मातृहीनान्बिभर्म्यहम् ॥ मंदभाग्याः प्रतीक्षंते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥ ५५ ॥ एवं कुलिंगं विलपंतमारात्प्रियावियोगातुरमश्रुकंठम् ॥ स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥ ५६ ॥ एवं यूयमपश्यंत्य आत्मापायमबुद्धयः ॥ नैनं प्राप्स्यथ शोचंत्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥ ५७ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ॥ ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥ ५८ ॥ यम एतदुपाख्याय तत्रैवांतरधीयत ॥ ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्सांपरायिकम् ॥ ५९ ॥ ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च ॥ क आत्मा कः परो वाऽत्र स्वीयः पारक्य एव वा ॥ स्वपराभिनिवेशेन विनाज्ञानेन देहिनाम् ॥ ६० ॥

पर्यंत शोक किये करो; तथापि यह पति तौ पीछा कभी नहीं मिलेगा " ॥ ५७ ॥ हिरण्यकशिपुने कहा कि-इस बालकके इसप्रकार कहनेसे सब संबंधी लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ. और सबको निश्चय हुआ. कि-यह सब संबंध अनित्य और मिथ्या खड़ा हुआ है ॥ ५८ ॥ इतनी बात कहकर, यमराज वहीं अंतर्धान हो गये और संबंधी लोगोंने सुयज्ञ राजाका जो कुछ प्रेतकृत्य परलोकसंबंधी करना चाहिये वह किया ॥ ५९ ॥ इस लिये तुमभी दूसरेका या अपना किसीका शोक मत करो. ' यह अपना और यह पराया ' ऐसे दुराग्रहरूप अज्ञान विना प्राणियोंके अपना कौन है ? और पराया कौन है ? आप कौन है ?

---

१ स्त्री मरजानेसे अपने शरीरको कहता है॰

है. क्योंकि इंद्रियसंबंधी पदार्थ जो आत्मामें प्रतीत होते हैं वे सब मनोरथ और स्वप्नकी नांई मिथ्या हैं अर्थात् वे धर्म आत्माके नहीं किंतु अन्यके हैं अतएव ज्ञानीलोक आत्मा और देहादिकके संबंधको अनित्य जानकर, किसी प्रकारसे शोक नहीं करते ॥ ४८ ॥ औरभी पक्ष कहते हैं कि-चाहे यह जीव नित्य रहे चाहे अनित्य रहे परंतु विद्वानोंको इस बातका शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो होना है वह तौ टल नहीं सक्ता. फिर शोक करनेसे क्या फायदा ? इसलिये अपनी टेंव न मिटनेसे शोक करना हो तौ भले करो; इसमें तौ कुछ बदलना नहीं है ॥ ४९ ॥ शोकग्रस्त लोकोंको समझानेके वास्ते दृष्टांत कहते हैं. ईश्व-

अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचंति तद्विदः ॥ नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥ ४९ ॥ लुब्धको विपिने कश्चित्पक्षिणां निर्मितोऽतकः ॥ वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥ ५० ॥ कुलिंगमिथुनं तत्र विचरत्समदृश्यत ॥ तयोः कुलिंगी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥ ५१ ॥ साऽसज्जत शिचस्तंत्यां महिषी कालयंत्रिता ॥ कुलिंगस्तां तथाऽपन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ॥ स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥ ५२ ॥ अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया विभुः ॥ कृपणं माऽनुशोचंत्या दीनया किं करिष्यति ॥ ५३ ॥ कामं नयतु मां देवः किमर्धेनाऽऽत्मनो हि मे ॥ दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥ ५४ ॥

रका बनायाहुआ एक पक्षियोंका कालरूप पारधि (चिड़ीमार) वनमें जहां तहां जाल फैलाकर, पक्षियोंको ललचाया करता था ॥ ५० ॥ वहां कुलिंगपक्षीका जोड़ा फिरता उसकी दृष्टिमें आया. इस जोड़ेमेंसे पारधी (बहलिया) के ललचानेसे मादी मृत्यु आ जानेके कारण जालकी डोरीमें फँस गयी. इसप्रकार कष्ट पातीहुई अपनी दीन स्त्रीको देखकर, वह कुलिंग अत्यंत दुःखी हुआ. और छुड़ानेको असमर्थ होनेके कारण स्नेहसे वह विचारा कुलिंग उस दीन स्त्रीके लिये विलाप करनेलगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अहो ! विधाता बड़ा निर्दयी है. विचारी दीन स्त्री कि-जो मुझ कृपणका शोक कर रही है और दयाकी पात्र है, तिससे इस समर्थ दैवको क्या काम पड़ा होगा ? ॥ ५३ ॥ अब दीन, रँडुए और दुःखपूर्वक

काष्ठसे बिलकुल जुदा है और जैसे वायु शरीरमें रहने परभी मुख और नासिकाआदिमें जुदा रहताहुआ प्रतीत होता है, ऐसे आत्मा देहमें रहनेपरभी देहसे बिलकुल जुदा है. आकाश सर्वगत होनेपरभी जैसे किसीके गुणसे लिप्त नहीं होता; ऐसे आत्मा देह और इंद्रियादिकमें रहनेपरभी देह और इंद्रियादिकके जन्म-मरणादि किसी प्रकारके गुणोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ४३ ॥ हे मूर्खो ! तुम जिसका शोक करती हो वह तुम्हारा स्वामी सुयज्ञ तौ यहां सोया पड़ा है तासों इसका तौ तुम शोक क्यों करती हो ? तुम्हारे मनमें कदाचित् ऐसा होवे कि- इतनीबेर तौ यह सुनता था और बोलता था. अब यह नहीं तौ सुनता है और नहीं बोलता है. तिसका हम शोक करती हैं, सो इस बातका तुमको शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४४ ॥ क्योंकि इस शरीरमें जो सुननेवाला और बोलनेवाला है, उसे तुमने पहलेभी कदापि नहीं देखा था, कदाचित् कहो मुख और नाकमें संचारी प्राणको

सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ ॥ यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ॥ ४४ ॥ न श्रोता नानुवक्ताऽयं मुख्योऽप्यत्र महानसुः ॥ यस्त्विहेंद्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ॥ ४५ ॥ भूतेंद्रियमनोलिंगान्देहानुच्चावचान्विभुः ॥ भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥ ४६ ॥ यावल्लिंगान्वितो ह्यात्मा तावत्कर्मनिबंधनम् ॥ ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगेऽनुवर्त्तते ॥ ४७ ॥ वितथाऽभिनिवेशोयं यद्गुणेष्वर्थदृग्वचः ॥ यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैंद्रियकं मृषा ॥ ४८ ॥

हमने देखा था, जो सब इंद्रियोंकी चेष्टाका हेतु और मुख्य बोलने और सुननेवाला था. तब कहते हैं कि- नहीं. प्राण बोलनेवाला और सुननेवाला नहीं है; क्योंकि वह तौ जड़ है. तासों देह और इंद्रियादिकसे उन २ पदार्थोंका द्रष्टा आत्मा कि-जो यथार्थमें सुननेवाला और बोलनेवाला है वह प्राण व देह इन दोनोंसे जुदा है ॥ ४५ ॥ यह आत्मा आप जुदा है तौभी प्राण, इंद्रिय और मनके कारण होतेहुए जुदे २ शरीरोंको ‘ मैं हूं ’ ऐसे मान लेता है और जब विवेक हो जाता है तब उसके बलसे इस मिथ्या अभिमानको छोड़भी देता है ॥ ४६ ॥ जबलग आत्माके लिंगशरीरका अभिमान रहता है तबलगही उसके कर्मबंधनका कारण होता है और उसीसे शरीरके धर्म, आत्मामें प्रतीत होते हैं. और क्लेश निरंतर प्रवृत्त रहते हैं. क्योंकि यह सब विपर्यय आदिमायाकल्पित है परमार्थ स्वरूप नहीं है ॥ ४७ ॥ सुख दुःखादि आत्माके धर्म हैं ऐसे मानना और कहना यही मिथ्या अभिनिवेश

पालता है और संहार करता है, उस परमेश्वरका यह सब स्थावर–जंगमात्मक जगत् खिलौना है. ऐसे कहलाता है अतएव प्रभुही मारने और पालनेमें समर्थ हैं ॥ ३९ ॥ मार्गमें पड़ेहुएकोभी जो ईश्वर बचावे तौ वह बच जाता है. और घरमें रहकर, अत्यंत यत्नपूर्वक रक्षा की जाय तौभी जो ईश्वरको उसे न रखना होवे वह नहीं रह सकता. अनाथ और वनमें पड़ेहुए परभी जो ईश्वरकी बचानेकी दृष्टि होवे तो वह जी सकताहै. और घरमें पालन किये जाने परभी यदि ईश्वरकी बचानेकी दृष्टि न होवे तौ वह नहीं जी सकता॥ ४० ॥वस्तुतः देखते हैं तौ सर्व प्राणीमात्र अपने २ लिंगशरीरसे कियेहुए कर्मोंहीसे तौ जन्मते हैं और कर्मोंहीसे मरते हैं. यदपि आत्मा उन देहादिकमें रहता है, तथापि देहादिके धर्मरूप जन्मादिकसे वह संबंध नहीं

पथिच्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ॥ जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥ ४० ॥ भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभिर्भवंति काले न भवंति सर्वशः ॥ न तत्र हाऽऽत्मा प्रकृतावपि स्थितस्तस्यागुणैरन्यतमो निबध्यते ॥ ४१ ॥ इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग्भौतिकमीयते गृहम् ॥ यथौदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः कालेन जातो विकृतो विनश्यति ॥ ४२॥ यथाऽनलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक्स्थितः॥ यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान्सर्वगुणाश्रयः परः ॥ ४३ ॥

पाता क्योंकि वह देहादिकसे अत्यंत विलक्षण है ॥ ४१ ॥ यह शरीर केवल अविवेकके कारण आत्मरूप प्रतीत होता है, वास्तविक रीतिसे तौ बिलकुल आत्मासे जुदा है. मिट्टीके घरके समान देखनेमें आता है. इसमें यह अनुमान है कि–अभौतिक द्रष्टा आत्मासे, पंचमहाभूतसे बनाहुआ यह शरीर भिन्न है; क्योंकि यह शरीर भौतिक और दृश्य है, जैसे अत्यंत अविवेकी मनुष्य घरको आत्माकरके मान बैठता है, तथापि वह घर उससे जुदा है. वैसे आत्मरूप माना हुआ यह शरीरभी आत्मासे बिलकुल जुदा है. जलके परमाणुओंसे बनेहुए बुलबुलेकी नांई, पृथ्वीके परमाणुओंसे बनेहुए घटादिककी नांई और तेजके परमाणुओंसे बनेहुए कुंडलादिक पदार्थोंकी नांई इन तीनो जातिके परमाणुओंसे बनाहुआ यह देहभी कालसे नष्ट हो जाता है. परंतु उसके साथ आत्माका नाश नहीं होता ॥ ४२ ॥ जैसे अग्नि काष्ठमेंही रहता है; तथापि दाहक और प्रकाशतासे

इस निर्दय विधाताने आपको अदृश्य स्थितिमें प्राप्त किया ! जिसने पहले आपको उशीनरदेशके निवासी लोगोंका जीविका देनेवाला बनाया था उसीने आज उनके शोकको बढ़ानेवाला किया ॥ ३३ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! कियेहुए उपकारोंको जाननेवाले और परमस्नेही आपके विना हम किसप्रकार जीवें ? अतएव जहां आपको पधारना है वहां हमभी आपके चरणोंकी सेवा करनेके वास्ते साथ चलनेके लिये आज्ञा देओ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार रानियां अपने मरेहुए पतिको लेकर, विलाप करतीं थीं. और उसे जलाना नहीं चाहातीं थीं सो ऐसे होते २ सूर्य अस्त हो गये ॥ ३५ ॥ इस समयमें शव (मृतक) के संबंधियोंका

त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ॥ तत्रानुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥ ३४ ॥ एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् ॥ अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥ ३५ ॥ तत्र ह प्रेतबंधूनामाश्रुत्य परिदेवितम् ॥ आह तान्बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥ ३६ ॥ यम उवाच ॥ अहो अमीषां वयसाऽधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ॥ यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचंत्यपार्थम् ॥ ३७ ॥ अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिंतयामः ॥ अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥ ३८ ॥ य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुंपते च यः ॥ तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥ ३९ ॥

रुदन सुनकर, यमराजाने आप बालकका रूप धर, वहां आ, इस रीतिसे उनसे कहा ॥ ३६ ॥ यमराज बोले कि-"अहो ! ये मनुष्य हमसे अवस्थामें बड़े हैं. और जगत्के जन्म मरणादिक प्रकारको सदा देखते हैं; तथापि देखो, इन लोकोंका बड़ा अद्भुत मोह है. मनुष्य जहां (अप्रकट स्थल) से आया था उसके वहीं पीछा जानेपर और आपभी वैसीही स्थितिके होनेपरभी फिर वृथा शोक करते हैं ॥ ३७ ॥ अहो ! तुमसे तो हम अत्यंत धन्य हैं. हमारे माता पिताने हमको छोड़ दिया है और हम बालक हैं, तथापि कुछभी चिंता नहीं करते और भेड़िया आदि प्राणीभी हमें नहीं खाते; क्योंकि जिसने गर्भमें रक्षा की है वही सबठौर रक्षा करनेवाला है ॥ ३८ ॥ हे स्त्रियो ! जो अविनाशी परमेश्वर अपनी इच्छासे इस जगत्को सरजता है,

शोक, अविवेक, चिंता और स्वरुपका अनुसंधान यह सब देहाभिमानहीसे होता है ॥ २६ ॥ शोक करनेका कारण न होनेपरभी शोक करना यह वृथा है. इसविषयमें यमराज और शव (मुर्दे) के संबंधियोंका संवादरूप एक पुराना इतिहास कहा करते हैं वह सुनो ॥ २७ ॥ उशीनर देशमें सुयज्ञ नाम एक विख्यात राजा था. उसे युद्धमें शत्रुओंने मार लिया तब उसके संबंधी उसे घेर कर, चौतर्फ बैठे ॥ २८ ॥ इस राजाका रत्नजटित कवच कट गया था, आभूषण और मालायें बिखर गयीं थीं. बाणसे वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया था. रुधिरसे व्याप्त होकर, सोया पड़ा था. ॥ २९ ॥ केश बिखर गये थे, आंखें झूंठी पड़ गयीं

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ यमस्य प्रेतबंधूनां संवादं तं निबोधत ॥ २७ ॥ उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः ॥ सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥ २८ ॥ विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम् ॥ शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥ २९ ॥ प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् ॥ रजःकुंठमुखांभोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥ ३० ॥ उशीनरेंद्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ॥ हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं घ्नंत्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन् ॥ ३१ ॥ रुदत्य उच्चैर्दयितांघ्रिपंकजं सिंचंत्य अस्रैः कुचकुंकुमारुणैः ॥ विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां सृजंत्य आक्रंदनया विलेपिरे ॥ ३२ ॥ अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान्प्रणीतो दृगगोचरां दशाम् ॥ उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥ ३३ ॥

थीं, क्रोधसे डसे हुए होंठ वैसेके वैसे थे, मुख धूलसे ढक गया था. और युद्धमें हाथ व शस्त्र कट गये थे ॥ ३० ॥ दैवने जिसकी ऐसी गती कर दी है ऐसे, अपने स्वामीको देखकर, दुःखित भयीहुई उसकी रानियां "हे नाथ ! हम मरीं" ऐसे कहकर, बारंबार अपने हाथोंसे छाती कूटतीं उसके चरणोंमें गिर पड़ीं ॥ ३१ ॥ उच्चस्वरसे रुदन करतीं, स्तनकी केसरसे रँगेहुए अश्रुओंसे अपने पतिके चरणोंको सींचतीं, दीनताभरे विलापसे दूसरे मनुष्योंके हृदयमेंभी शोक उत्पन्न कर, जिनके केश व आभरण बिखर गये हैं ऐसी ये रानियां विलाप करने लगीं ॥ ३२ ॥ अहो ! हे प्रभो ! हमारे ऊपर कसाईकी नाईं वर्तनेवाले

हे पुत्रो ! इस महावीर हिरण्याक्षका शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि शत्रुके सामने वध होवे यह तौ प्रशंसा करनेके योग्य और शूर पुरुषोंके अतिप्रिय है ॥ २० ॥ हे माता ! प्रारब्धकर्मसे एकत्रित होते और पीछे अपने २ कर्मोंसे विछुरतेहुए प्राणी, प्रपा यानी जल पीनेकी पौसरोंमें जैसे इकट्ठे होजाते हैं, वैसे इस संसारमें एकत्रित होते हैं ॥ २१ ॥ वास्तविक रीतिसेभी शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि आत्मा देहादिकसे भिन्न होनेके कारण न तौ मरता है और न क्षीण होता है, यह तौ सदा शुद्ध सर्वगामी और सर्वज्ञ है, अतएव इसे मराहुआ, दुबला, मैला, विछुराहुआ और अज्ञ मानकर, शोक नहीं करना चाहिये. यह आत्मा लिंगशरीरमें मिथ्या अभिमान रखनेके कारण अपनी अज्ञतासे उच्च नीच शरीरोंको और सुख दुःखआदि गुणोंको

भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते ॥ दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥ २१ ॥ नित्य आत्माऽव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः ॥ धत्तेऽसावात्मनो लिंगं मायया विसृजन्गुणान् ॥ २२ ॥ यथांऽभसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥ २३ ॥ एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान् ॥ याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिंगो लिंगवानिव ॥ २४ ॥ एष आत्मविपर्यासो ह्यलिंगे लिंगभावना ॥ एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥ २५ ॥ संभवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः ॥ अविवेकश्च चिंता च विवेकास्मृतिरेव च ॥ २६ ॥

धारण करता है ॥ २२ ॥ जैसे चलते हुए जलके हेतु नौकापर बैठेहुए मनुष्योंको तटपरके वृक्ष चलतेसे प्रतीत होते हैं, ऐसे लिंगशरीरके सुख दुःखादि धर्म आत्मामें प्रतीत होते हैं, अर्थात् दूसरेके धर्म दूसरेमें, प्रतीत होते हैं. तथा जैसे गोल चक्कर खानेवाले पुरुषकी आंख फिरनेके कारण उस मनुष्यको पृथ्वी फिरती हो ऐसे प्रतीत होती है वैसे गुणोंके हेतु लिंगशरीर फिरा करता है, तासों यदपि आत्मा सदा शुद्धरूप है तथापि मानों फिरता हो यानी जन्म—मरणादिक पाता हो ऐसे प्रतीत होता है. हे माता ! आत्माके वस्तुतः लिंगशरीर (अंतःकरण) का संबंध नहीं है; तथापि मानों उसका संबंध हो गया हो वैसे लिंगशरीरके धर्म उसमें प्रतीत होते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ अपना देहका संबंध नहीं होनेपरभी 'मैं देह हूं, ऐसे मान लेना यही अपने स्वरूपका विपर्यास है. प्रिय पदार्थका वियोग, अप्रिय पदार्थोंकी प्राप्ति, कर्म, अनेकगर्भोंमें प्रवेश ॥ २५ ॥ जन्म, मरण, अनेक प्रकारका

और वहां जाकर, आग लगाकर, उन देशोंको जला दो. और यज्ञोपयोगी वृक्षोंको काट डालो ॥ १२ ॥ नारदजीने कहा कि- इस प्रकार अपने स्वामीकी आज्ञाको शिरपर चढ़ाय, हिरण्यकशिपुसे आदर पा, प्रजाका कदन (नाश) जिनको अतिप्रिय है. ऐसे वे दैत्य और दानव वैसेही प्रजाका कदन (नाश) करने लगे ॥ १३ ॥ नगर, गांव, व्रज, बाग, क्षेत्र, बगीचा, आश्रम, खाने, किसानोंके निवासस्थान, पर्वतकी द्रोणीमें बसाहुआ गांव, घोष (अहीरोंके निवासस्थान), राजधानियां (पायतख्त) इनको जलाने लगे ॥ १४ ॥ कितने एक दैत्य तो पुल, किले और दरवाजोंको कुदालोंसे खोद २ कर, गिराने लगे. कितनेक कुल्हाड़े

इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसादृताः ॥ तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥ १३ ॥ पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ॥ खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥ १४ ॥ केचित्खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् ॥ आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान्केचित्परशुपाणयः ॥ प्रादहन् शरणानन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥ १५ ॥ एवं विप्रकृते लोके दैत्येंद्रानुचरैर्मुहुः ॥ दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः ॥ कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसांत्वयत् ॥ १७ ॥ शकुनिं शंबरं धृष्टं भूतसंतापनं वृकम् ॥ कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम् ॥ १८ ॥ तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा ॥ श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वरः ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ अंबांब हे वधूः पुत्रा वीरं मार्हथ शोचितुम् ॥ रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥ २० ॥

हाथोमें ले २ लोकोंके जीविका देनेवाले वृक्षोंको काटने लगे. कितनेक जलते लकड़े हाथोमें ले लोकोंके घर जलाने लगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार हिरण्यकशिपुके अनुचरोंके उपद्रवसे जगत् वारंवार महादुःखी हुआ तब देवता यज्ञभाग बंद होनेसे स्वर्ग छोड़कर, गुप्तरीतिसे पृथ्वीमें विचरने लगे ॥ १६ ॥ हे राजा ! भाईके मरनेसे दुखित हिरण्यकशिपु अपने मरेहुए भाई हिरण्याक्षकी प्रेतक्रिया कर, शकुनि, शंबर, धृष्ट, भूतसंतापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच नाम अपने भाईके पुत्रोंको तथा उनकी माता रुषाभानुको और अपनी माता दितिको उत्तमवाणीसे सांत्वना देता देशकालका अनुसरण करके, यह वक्ष्यमाण वचन बोला ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपुने कहा कि-हे माता ! हे बहू !

सुनकर उसीके अनुसार शीघ्र करो, इसमें विलंब मत करो ॥ ५ ॥ यदपि विष्णुभगवान् सर्वके समान हैं; तथापि मेरे क्षुद्र शत्रु देवताननें भाव और भक्ति कर कर, उन्हें अपने पक्षमें लेकर, उनके हाथ मेरे प्यारे भाई हिरण्याक्षको मरवाया है ॥ ६ ॥ अतएव अपने समभावको त्याग देनेवाले तेजोमय होनेपरभी मायासे सूकरमूर्ति और भजन करनेवालेका अनुसरण करनेवाले व बालककी भांति चंचलचित्त ॥ ७ ॥ इस विष्णुका गला मेरे त्रिशूलसे काटकर, उसके पुष्कल (बहुतसे) रुधिरसे मेरा भाई कि–जिसे रुधिर अतिप्रिय था, तिसको तर्पण करके, तृप्त करूंगा. तब मेरा परिताप शांत होगा ॥ ८ ॥ कपटी और अपना अहित करनेवाला यह

सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् ॥ पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः ॥ ६ ॥ तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः ॥ भजंतं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः ॥ ७ ॥ मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै ॥ रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥ ८ ॥ तस्मिन्कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ ॥ विटपा इव शुष्यंति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥ ९ ॥ तावद्यात भुवं यूयं विप्रक्षत्रसमेधिताम् ॥ सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥ १० ॥ विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् ॥ देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥ ११ ॥ यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः ॥ तं तं जनपदं यात संदीपयत वृश्चत ॥ १२ ॥

विष्णु मर जायगा, तब वृक्षका मूल कटनेपर जैसे शाखायें स्वयं नष्ट हो जाती हैं, ऐसे देवता स्वयं नष्ट हो जायंगे; क्योंकि इनका जीवन विष्णुही है ॥ ९ ॥ परंतु तुम उससे पहले ब्राह्मण और क्षत्रिय जिसमें बहुत बढ़ गये हैं ऐसी पृथ्वीपर जाकर तप, यज्ञ, वेदाध्ययन, व्रत और दान करनेवालोंको मारो ॥ १० ॥ क्योंकि यज्ञरूप और धर्ममय विष्णुका मूल ब्राह्मणोंकी क्रिया है. और देवता, ऋषि, पितृ, भूत और धर्मका बड़ा आश्रय विष्णुही है और ये लोक मुझे न गिनकर, विष्णुकाही सेवन करते हैं. अतएव ये लोक मारनेके योग्य हैं ॥ ११ ॥ जहां जहां ब्राह्मण, गौ, वेद वर्ण, आश्रम और क्रिया होवें. उन उन देशोंमें जाओ.

हैं. वे अबी भगवान्के चक्रसे निष्पाप होकर, श्रापसे मुक्त हुए हैं ॥ ४४ ॥ वैरके अनुबंधसे तीव्र भयेहुए ध्यानके प्रभावसे भगवद्रूपता-को प्राप्त भयेहुए ये भगवान्के पार्षद पीछे भगवान्के समीप प्राप्त हुए हैं ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिरने पूंछा कि–हे भगवन् ! महात्मा और प्यारे पुत्र प्रल्हादके ऊपर हिरण्यकशिपुका द्वेष किस प्रकारसे हुआ ? और प्रल्हादको भगवान्की परमभक्ति किस कारणसे प्राप्त हुई ? वह मुझे कहो ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दूसरे अध्यायमें, हिरण्यकशिपुने विष्णुके द्वेषसे दानवोंके द्वारा लोकोंको नष्ट करवाकर, अपने भाई हिरण्याक्षके पुत्रआदिको

वैरानुबंधतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ॥ नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ॥ ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ॥ हिरण्यकशिपू राजन्पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥ १ ॥ आह चेदं रुषा घूर्णः संदष्टदशनच्छदः ॥ कोपोज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन्धूम्रमंबरम् ॥ २ ॥ करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ॥ शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ भो भो दानव दैतेया द्विमूर्द्धंस्त्र्यक्ष शंबर ॥ शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥ ४ ॥ विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः ॥ शृणुतानंतरं सर्वे क्रियतामाशु माचिरम् ॥ ५ ॥

सांत्वना दी. यह कथा होगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि–हे राजा ! वराहमूर्ति भगवान्ने इंद्रके पक्षपातसे हिरण्याक्षका बध किया. उससे हिरण्यकशिपुको क्रोध व शोकके कारण बड़ा परिताप हुआ ॥ १ ॥ यह हिरण्यकशिपु क्रोधसे व्याप्त होकर, होंठ डँसता और कोपरूप अग्निके धूमसे धूम्र भयेहुए आकाशको जलती आंखोंसे देखता यह वक्ष्यमाण वचन बोला ॥ २ ॥ विकराल दाढें और भयंकर दृष्टि तथा कपालमें चढ़ीहुई भ्रकुटिके हेतु उसके मुखके सामने कोईभी देख नहीं सकता था. इस प्रकार क्रोधसे व्याप्त हिरण्यकशिपुने त्रिशूल उठाकर, सभाके बीचमें दानवोंसे कहा कि– ॥ ३ ॥ हे दानवो ! हे दैत्यो! हे द्विमूर्धा ! हे त्र्यक्ष! हे शंबर! हे शतबाहु! हे हयग्रीव ! हे नमुचि ! हे पाक ! हे इल्वल ! ॥ ४ ॥ हे विप्रचित्ति ! हे पुलोमन ! हे शकुनआदि लोको ! मेरा वचन सुनो और

सनकादिकोंने कहा कि-'तुम तीन जन्म पाकर पीछे इस लोकमें आजाओगे' ॥ ३७ ॥ ये दोनों द्वारपाल दितिके पुत्र हुए, तिनमें बड़ा हिरण्यकशिपु और छोटा हिरण्याक्ष हुआ ३८ ॥ इन दोनों भाइयोंको दैत्य और दानव प्रणाम करते थे, इनमेंसे हिरण्यकशिपुको भगवान्ने नृसिंहरूप धरकर, मारा. और हिरण्याक्षको वराहअवतार धारण करके, मारा उस समय एक तौ दैत्यका बध, दूसरा भगवान्के पृथ्वीका उद्धार करना था ॥ ३९ ॥ हिरण्यकशिपुने अपना पुत्र प्रल्हाद कि-जो भगवान्का परमभक्त था उसको मारनेके वास्ते अनेक प्रकारके दुःख दिये, जिससे उस हिरण्यकशिपुका बध हुआ ॥ ४० ॥ सर्व प्राणीमात्रके

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववंदितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ३८ ॥ हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ॥ हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥ ३९ ॥ हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् ॥ जिघांसुरकरोन्नानायातना मृत्युहेतवे ॥ ४० ॥ सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशांतं समदर्शनम् ॥ भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धंतुमुद्यमैः ॥ ४१ ॥ ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवःसुतौ ॥ रावणः कुंभकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥ ४२ ॥ तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये ॥ रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कंडेयमुखात्प्रभो ॥ ४३ ॥ तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव ॥ अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥ ४४ ॥

आत्मारूप, शांत, सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि रखनेवाले और भगवान्के तेजसे व्याप्त भयेहुए प्रल्हादको मारनेके वास्ते उसने अनेक २ यत्न किये; तथापि उसे वह मार नहीं सका ॥ ४१ ॥ फिर ये दूसरे जन्ममें दोनों द्वारपाल विश्रवा ऋषिकी स्त्री केशिनीमें प्रगट हुए. यहां येरावण और कुंभकर्ण नामसे राक्षस विख्यात हुए. इन्होंने इस जन्ममेंभी सब लोकोंको महादुःखी और संतापयुक्त किया ॥ ४२ ॥ वहांभी भगवान्ने रामचंद्रअवतार धारण करके, श्रापसे छुड़ानेके वास्ते उनको मारा. हे राजा रामचंद्रजीका चरित्र आप मार्कंडेय ऋषिके मुखसे सुनोगे ॥ ४३ ॥ ये दोनों अब तीसरे जन्ममें तुम्हारी मौशीके पुत्र शिशुपाल और दंतवक्र नाम क्षत्रिय हुए

तासों वह नरकमें पड़ा. तासों किसी उपायसे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें मन लगाना चाहिये ॥ ३० ॥ हे राजा ! तुम्हारी मौसीके पुत्र शिशुपाल और दंतवक्र ये दोनों प्रथम भगवान्‌के बड़े उत्तम पार्षद थे. वे ब्राह्मणोंके श्रापसे पदभ्रष्ट हुए थे ॥ ३१ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि–हरिभगवान्‌के एकांती भक्तलोगोंकाभी पराभव करनेवाला यह श्राप किससे दिया गया था ? और कैसा था ? भगवान्‌के एकांती भक्तोंका जन्म होना यह बात तो माननेमें नहीं आवे ऐसी दीख पड़ती है ॥ ३२ ॥ प्राकृत प्राण, देह व इंद्रिय जिनके नहीं हैं ऐसे, अर्थात् शुद्ध सत्वगुणवाले वैकुंठवासियोंको प्राकृत देह प्राप्त हुआ, इस विषयके संबंधमें जो आख्यान होवे वह आपको कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ नारदजीने कहा कि–एक दिन ब्रह्माके पुत्र सनकादिक त्रिलोकीमें

मातृष्वस्रेयो वश्चैद्यो दंतवक्रश्च पाडव ॥ पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्युतौ ॥ ३१ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ॥ अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकांतिनां भवः ॥ ३२ ॥ देहेंद्रियासुहीनानां वैकुंठपुरवासिनाम् ॥ देहसंबंधसंबद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ ३३ ॥ नारद उवाच ॥ एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ॥ सनंदनादयो जग्मुश्चरंतो भुवनत्रयम् ॥ ३४ ॥ पंचषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ दिग्वाससः शिशून्मत्वा द्वास्थौ तान्प्रत्यषेधताम् ॥ ३५ ॥ अशपन्कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः ॥ रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ॥ पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यात माश्वतः ॥ ३६ ॥ एवं शप्तौ स्वभवनात्पतंतौ तैः कृपालुभिः ॥ प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥ ३७ ॥

विचरते २ यदृच्छासे वैकुंठ लोकमें चले गये ॥ ३४ ॥ ये सनकादिक मरीचिआदि ऋषियोंसेभी अवस्थामें बड़े थे तथापि पांच या छह वर्षके बालक होवें ऐसे लगते थे. और नग्न थे, तासों उन्हें बालक जानकर, भगवान्‌के दो द्वारपालोंने भीतर जानेके वास्ते रोंक दिया ॥ ३५ ॥ ऐसे होनेपर क्रोधयुक्त होकर, उन ब्राह्मणोंने इनको श्राप दिया कि–' भगवान्‌के चरणका सामीप्य कि–जो रजोगुण व तमोगुणसे रहित है वहां रहनेके योग्य तुम नहीं हो. इसलिये हे मूर्खो ! तुम यहांसे तुरंत असुरकी नीच योनिमें जाओ. ' ॥ ३६ ॥ इस प्रकार श्राप होनेसे ये दोनों द्वारपाल वैकुंठलोकसे गिरने लगे. तब दया लाकर,

आप केवल और सर्वका आत्मा है. तासों तिनके देहाभिमानही नहीं है. अतएव उनमें विषमताका संभव नहीं, प्रभु दैत्यांका वध करते हैं. वहभी तिनके ऊपर अनुग्रह करनेके वास्तेही है. किंतु उनका बुरा करनेके वास्ते नहीं; क्योंकि ये सर्वसे पर और सर्वके शास्ता हैं. अतएव इन प्रभुको किसीकी ओरसे पीड़ा होती है यह तो कौन कारणसे कल्पन किया जाय ? इश्वरके कीसीकी कीहुई निंदा आदिसे विषमता प्राप्त नहीं होती ॥ २४ ॥ तासों वैर भक्ति, भय, स्नेह और काम इन पांच उपायोंमेंसे हर किसी उपायसे प्रभुमें मन लगाना चाहिये. क्योंकि उनमें किसी तरह मन लगाओ प्रभु भिन्न रीतिसे नहीं देखते

तस्माद्वैरानुबंधेन निर्वैरेण भयेन वा ॥ स्नेहात्कामेन वा युंज्यात्कथंचिन्नेक्षते पृथक् ॥ २५ ॥ यथा वैरानुबंधेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् ॥ न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥ २६ ॥ कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् ॥ संरंभभययोगेन विंदते तत्सरूपताम् ॥ २७ ॥ एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ॥ वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिंतया ॥ २८ ॥ कामाद्द्वेषाद्भया-त्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः ॥ आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥ २९ ॥ कतमोऽपि न वे-नः स्यात्पंचानां पुरुषं प्रति ॥ तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥ ३० ॥

वह तो सबको एकरीतिसेही देखते हैं ॥ २५ तत्रापि (तहांभी) वैरके अनुबंधसे मनुष्यजैसा तन्मय हो जाता है ऐसा भक्तियोगसे नहीं होता. ऐसा मेरा निश्चय है ॥ २६ ॥ भ्रमरीने जिसको अपने दीवालके छेदके, अंदर रोंक लिया है वह कीड़ा क्रोध और भयके योगसे जैसे भ्रमरीरूपही हो जाता है ॥ २७ ॥ इसी प्रकार मायासे मनुष्यरूप परमेश्वर श्रीकृष्ण भगवान्से वैर बांधकर, उन्हींका चिंतवन करनेसे पापसे मुक्त होकर, उन्हीं श्रीकृष्णचंद्रके स्वरूपको शिशुपालादिक प्राप्त हुए हैं ॥ २८ ॥ जैसे भक्तिसे प्रभुमें मन लगाया जाता है तैसे कामसे, द्वेषसे, भयसे और स्नेहसेभी मन लग जानेसे बहुत लोक पापसे मुक्त होकर, भगवान्की गतिको प्राप्त हुए हैं ॥ २९ ॥ वेनमें तो भक्तिआदि पांच प्रकारोंमेंसे कोईभी प्रकार नहीं था.

---

१ गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ॥ संबंधाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥ १ ॥ गोपियां कामदेवसे, शिशुपालादिक द्वेषसे, कंसादिक भयसे औ पांडव स्नेहसे भगवान्को प्राप्त हुए.

क्योंकि जबसे पापी शिशुपाल और दंतवक्र ये दोनोंजन बोलना सीखे, तबसे अबतक गोविंद भगवान्‌के ऊपर अमर्ष और मत्सर रखते थे ॥ १७ ॥ तथा वारंवार गालियां देते थे. ऐसे होनेपरभी इनकी जिव्हामें श्वेत कोढ़ न निकला. और नरकमेंभी नहीं पड़े ॥ १८ ॥ इतनाही नहीं प्रत्युत सब लोकोंके देखते भगवान् कि–जिनके स्वरूपकी प्राप्ति होनी अतिअशक्य है, उनमें अनायाससे लीन हुए, यह बात किसप्रकार संभव सकती है ? ॥ १९ ॥ जैसे दीपककी ज्वाला वायुसे भ्रमण करती है. ऐसे इस अत्यंत अद्भुत विषयमें मेरी बुद्धिभी डोलती है; तासों इसमें जो कारण होवे वह कृपा करके, आप फरमावें

शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम्॥ श्वित्रो न जातो जिह्वायां नांधं विविशतुस्तमः ॥१८॥ कथं तस्मिन्भगवति दुरवग्राहधामनि ॥ पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरंजसा ॥ १९॥ एतद्भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना ॥ ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥ २०॥ श्रीशुक उवाच ॥ राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः ॥ तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वत्यास्तत्सदः कथाः ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ निंदनस्तव सत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम् ॥ प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम् ॥ २२ ॥ हिंसा तदभिमानेन दंडपारुष्ययोर्यथा ॥ वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥ २३ ॥ यन्निबद्धोऽभिमानोयं तद्वधात्प्राणिनां वधः ॥ तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः ॥ परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥ २४ ॥

॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इसप्रकार युधिष्ठिर राजाका वचन सुनकर, प्रसन्न भयेहुए नारदजीने उस सभाके सुनते वक्ष्यमाण रीतिसे कथा कही ॥ २१ ॥ नारदजीने कहा कि–हे राजा ! निंदा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार, जिसके भये हुए माननेमें आते हैं. वह देह प्रकृति–पुरुषके अविवेकसे कल्पित है ॥ २२ ॥ महाराज ! उस देहके अभिमानसे प्राणियोंके जैसे मैं और मेरा ऐसी विषमता तथा मारनेसे और गाली देनेसे पीड़ा होती है, वैसे ईश्वरके नहीं होती ॥ २३ ॥ जिस देहमें अभिमान बंधाहुआ है उस देहके बधसे मेरा बध हुआ ऐसे दूसरोंको जैसे प्रतीत होता है, तैसे ईश्वरको नहीं; क्योंकि ईश्वर

पही रचते हैं. यह काल जब सत्वगुणको बढ़ाता है तब बड़ी कीर्तिवाले ईश्वरभी मानों देवसमूह कि- जिसमें सत्वगुण प्रधान है उसे बढ़ाते हैं. और देवतानके ऊपर प्रीतिके हेतु रजोगुण तथा तमोगुणकी वृद्धिवाले देवतानके शत्रुरूप असुरोंका नाश करते हों ऐसे प्रतीत होते हैं. कालशक्तिके हेतु क्षोभित भयेहुए गुणोंमें रहीहुई विषमता, सामीप्यके हेतु उनके अधिष्ठाता ईश्वरमें स्फुरे है, परंतु वस्तुतः ईश्वरमें विषमता नहीं है ॥ ११ ॥ भगवान्‌ने दितिके पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षका बध किया, यहभी कोई देवतानके पक्षपातसे नहीं; किंतु सनकादिकोंके श्रापसे उनको असुरकी योनि प्राप्त हुई. तहां उनपर अनुग्रह करनेके वास्तेही बध किया है. भगवान्‌ने स्वयं रागद्वेषादिकसे रहित होनेपरभी दैत्योंको मारा इस विषयमें पहले हे राजा ! नारदजीने युधिष्ठिर-

अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा ॥ प्रीत्या महाक्रतौ राजन्पृच्छतेऽजातशत्रवे ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ ॥ वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥ १३ ॥ तत्राऽऽसीनं सुरऋषिं राजा पांडुसुतः क्रतौ ॥ पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अहो अत्यद्भुतं ह्येतदुर्लभैकांतिनामपि ॥ वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥ १५ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने ॥ भगवन्निंदया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥ १६ ॥ दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात् ॥ संप्रत्यमर्षी गोविंदे दंतवक्रश्च दुर्मतिः ॥ १७ ॥

राजाको प्रसन्न होकर, राजसूययज्ञमें प्रश्न करनेपर इतिहास कहा है ॥ १२ ॥ राजसूय नाम बड़े यज्ञमें चेदिदेशके राजा शिशुपालका वासुदेव भगवान्‌में लीन हो जाना, यह बड़ी अद्भुत बात देखकर, ॥ १३ ॥ वहीं यज्ञमें विराजमान देवर्षि नारदजीसे चकितचित्त होकर, सब मुनिलोगोंके सुनते पांडुपुत्र राजा युधिष्ठिरने पूंछा ॥ १४ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि—अहो ! एकांती भक्तोंकोभी नहीं मिलती ऐसी परमतत्त्वरूप वासुदेव भगवान्‌की प्राप्ति, निरंतर द्वेष करनेवाले शिशुपालको प्राप्त हुई. यह बड़ा अद्भुत है ॥ १५ ॥ हे मुनि ! हम सब यह जानना चाहते हैं. वेनराजाने भगवान्‌की निंदा की तिससे उसको तो ब्राह्मणोंने नरकमें गिराया ॥ १६ ॥ तब इस दमघोषके पुत्र शिशुपालकोभी महापापी होनेसे नरकमें पड़ना चाहिये था,

महाराज ! ये गुण जो भगवान्‌के निजके होवें तौ प्राकृतपुरुषकी भांति उनमें विषमता होवे, परंतु ऐसे नहीं हैं, क्योंकि सत्व, रज और तम ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं. इन गुणोंका घटाव के बढ़ाव एक समयमें नहीं होता. किंतु कालके क्रमके अनुसार होता है. ॥ ७ ॥ उस उस कालके अनुकूल रहनेवाले भगवान् सत्वगुणकी वृद्धिका समय होवे तब देवता तथा ऋषियोंको, रजोगुणकी वृद्धिका समय होवे तब असुरोंको और तमोगुणकी वृद्धि होवे तब यक्ष और राक्षसोंको भजते हैं ॥ ८ ॥ जैसे अग्नि एकरूपही है परंतु काष्ठादिकमें अनेक प्रकारका प्रतीत होता है. जैसे जल एकरूपही है परंतु पात्रोंमें अनेक प्रकारका दीख पड़ता है. और जैसे आकाश एकरूपही है परंतु घटादिक पदार्थोंमें अनेक प्रकारका प्रतीत होता है. वैसे भगवान् एकरूपही हैं परंतु देव, दैत्य

सत्त्वं रजस्तमइति प्रकृतेर्नाऽऽत्मनो गुणाः ॥ न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्हास एव वा ॥ ७ ॥ जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ॥ तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥ ८ ॥ ज्योतिरादिरिवाभाति संघातान्न विविच्यते ॥ विदंत्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽततः ॥ ९ ॥ यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परोरजः सृजत्येष पृथक् स्वमायया ॥ सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥ १० ॥ कालं चरंतं सृजतीश आश्रयं प्रधानपुंभ्यां नरदेवसत्यकृत् ॥ य एष राजन्नपि काल ईशिता सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यतः ॥ तत्प्रत्यनीकानसुरान्सुरप्रियो रजस्तमस्कान्प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥ ११ ॥

और राक्षसआदिमें भिन्न भिन्न रूपसे प्रतीत होते हैं. तथापि इन देवआदिके शरीरोंसे प्रत्यक्षरीतिसे जुदे प्रतीत नहीं होते. विद्वान्‌लोग स्वभाववाद, कालवाद और कर्मवादका निषेध कर, कार्य देखनेके ऊपरसे विचारशक्तिसे अपने जीवात्माको जुदा जानते हैं ॥ ९ ॥ जब जीवात्माको भोग देनेके वास्ते परमेश्वरके शरीर उत्पन्न करनेकी इच्छा होती है तब वे अपनी मायासे रजोगुणको जुदा बढ़ाते हैं. जब विचित्र शरीरोंमें क्रीड़ा करनेकी इच्छा होती है तब सत्वगुणको जुदा बढ़ाते हैं. और जब संहार करनेकी इच्छा होती है तब तमोगुणको जुदा बढ़ाते हैं. ये अजन्मा ईश्वर काल, प्रधान वा पुरुषकेभी परतंत्र नहीं हैं ॥ १० ॥ हे राजा ! प्रधान और पुरुषके निमित्तसे अशेष कार्य करनेवाले ये ईश्वर काल कि–जो प्रधान और पुरुषका सहायक है उसे आ-

॥ श्रीजगन्नाथाय नमः ॥ सप्तमस्कंधके प्रथम अध्यायमें, हिरण्यकशिपुको अपने वैष्णव पुत्र प्रल्हादजीके ऊपर ब्राह्मणोंके श्रापके हेतु द्वेष उत्पन्न हुआ. यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि– हे ब्रह्मन्! भगवान् कि– जो सर्वप्राणियोंमें समान, सबके प्रिय और मित्ररूप हैं, उन्होंने विषम बुद्धिवाले मनुष्यकी नाईं इंद्रके वास्ते दैत्योंका बध कैसे किया ? ॥ १ ॥ साक्षात् परमानंदरूप और निर्गुण इन भगवान्के देवतानसे कोई लाभ नहीं है. वैसे दैत्योंपर द्वेष के उनसे उद्वेगभी संभवित नहीं है ॥ २ ॥ हे महा-

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन्भूतानां भगवान्स्वयम् ॥ इंद्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥ न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः ॥ नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥ २ ॥ इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान्प्रति ॥ संशयः सुमहान् जातस्तद्भवांश्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ यत्र भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥ गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः ॥ नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥ ५ ॥ निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान्प्रकृतेः परः ॥ स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥ ६ ॥

भाग ! इसप्रकार नारायणके गुणोंके विषे हमें बड़ा संशय हुआ है. वह आपको काटना चाहिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि– महाराज ! भगवान्के इस अद्भुत चरित्रके विषयमें तुमने ठीक प्रश्न किया, जिस प्रसंगमें महावैष्णव प्रल्हादजीके, भगवान्की भक्ति बढ़ानेवाले और परमपवित्र, चरित्रको नारदादिक ऋषि गाया करते हैं. महामुनि वेदव्यासको प्रणाम कर, अब मैं भगवान्की कथा कहता हूं ॥ ४ ॥ ५ ॥ यद्यपि भगवान् स्वयं प्रकृतिसे पर, निर्गुण, अजन्मा और रागद्वेषादिकके कारणरूप इंद्रियादिसे रहित हैं; तथापि अपनी मायाके गुणोंके संबंधसे मरनेवाला और मारनेवाला इस रूपसे प्रतीत होते हैं ॥ ६ ॥

---

१ जिव्हांलब्ध्वापियोविष्णुंकीर्तनीयंनकीर्तयेत् ॥ लब्ध्वापिमोक्षनिःश्रेणींसनारोहतिदुर्मतिः ॥ १ ॥ तस्माद्गोविंदमाहात्म्यमानंदरससुंदरम् ॥ शृणुयात्कीर्तयेन्नित्यंसकृतार्थोनसंशयः ॥ २ ॥ तस्माद्धिमन्कथांपुण्यांगोविंदचरितांचिताम् ॥ महापुण्यप्रदांयस्माच्छृणुष्वनृपसत्तम ॥ यह तीन श्लोक कोई २ पुस्तकोंमें हैं.

जिससे कौशल्य याज्ञवल्क्यऋषिने, बड़ी २ सिद्धियां देने वाली और हृदयकी-ग्रंथि (गांठ) यानी देहाभिमान छेदनहारी अध्यात्मयोग विद्या सीखी थी ॥ ३ ॥ ४ ॥ इस हिरण्यनाभके पुष्प, पुष्पके ध्रुवसंधि, उसके सुदर्शन, उसके अग्निवर्ण, उसके शीघ्र और शीघ्रके मरुनाम पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ योगसिद्धि यह मरु कलाप नाम ग्राममें अभी रहता है, सो जब सूर्यवंशका नाश हो जायगा, तब पीछा कलियुगके अंतमें सूर्यवंशको प्रवृत्त करेगा ॥ ६ ॥ मरुके प्रसुश्रुत, उसके संधि, संधिके अमर्षण, उसके

शिष्यः कौशल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः ॥ योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रंथिभेदकम् ॥ ४ ॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसंधिस्ततोऽभवत् ॥ सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५ ॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ॥ कलेरंते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य संधिस्तस्याप्यमर्षणः ॥ महस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्तक्षको भविता पुनः ॥ ७ ॥ ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ॥ ८ ॥ बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥ प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥ १० ॥ प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ॥ ११ ॥ तस्यांतरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥ बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतंजयः ॥ १२ ॥

महस्वान्, उसके विश्वसाह, उसके प्रसेन जित, उसके तक्षक, उसके बृहद्बल नाम पुत्र हुआ ॥ ७ ॥ जिसे तुह्मारे पिता अभिमन्युने भारतयुद्धमें मारा, इतने तौ इक्ष्वाकुवंशमें राजा हो चुके हैं. इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-पृथ्वीनाथ ! अब होनेवाले राजाओंके नाम कहता हूं सो सुनो ॥ ८ ॥ बृहद्बलके बृहद्रण, उसके उरुक्रिय, उसके वत्सवृद्ध, उसके प्रतिव्योम, उसके भानु, भानुके सेनापति दिवाकर, ॥ ९ ॥ उसके सहदेव, उसके वीर बृहदश्व, उसके भानुमान्, ॥ १० ॥ उसके प्रतीकाश्व, उसके सुप्रतीक, उसके मरुदेव, उसके सुनक्षत्र उसके पुष्कर, ॥ ११ ॥ उसके अंतरिक्ष, उसके सुतपा, उसके अमित्रजित् उसके बृहद्राज,

हली यानी चौकठ) शोभ रहे हैं, वैदूर्यमणिके खंभोंकी श्रेणी शोभ रही है, मरकत मणिके स्थल और उज्वल स्फटिक मणिकी भीतें दीप रहीं हैं ॥ ३२ ॥ कमनीय कामभोगके साधनरूप जो विचित्र माला, पट्टिकायें, वस्त्र, मणिसमूहकी कांतियां और चैतन्यके समान उज्वल मुक्ताफल (मोती) देदीप्यमान हो रहें हैं ॥ ३३ ॥ सुगंधि धूप, दीप और अलंकारोंकेभी अलंकारभूत, देवताओंके समान कांतिवाले व पुष्पमंडित स्त्री पुरुषोंसे निरंतर शोभायमान हो रहे हैं ॥ ३४ ॥ उस महलमें आत्माराम व धीर पुरुषोंमें उत्तम रामचंद्रजी स्नेहवाली और प्यारी अभिलषणीय सीताके साथ रमण करते हैं ॥ ३५ ॥ महाराज! मनुष्य जिनके चरणारविंदका सदा

चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ॥ मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कांतकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥ धूपदीपैः सुरभिभिर्मंडितं पुष्पमंडितैः ॥ स्त्रीपुंभिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ॥ रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥ बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् ॥ वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्यातांघ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे श्रीरामोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ॥ पुंडरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत्ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ॥ ततो बलस्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २ ॥ खगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ॥ ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३ ॥

ध्यान करते हैं ऐसे रामचंद्रजी धर्ममें बाधा न आवे उसप्रकारसे अनेक बरसोंतक समयके नियमानुसार सुखका अनुभव करते विराजते हैं ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ बारहवें अध्यायमें रामचंद्रजीके पुत्र कुशका वंश कहकर, इक्ष्वाकुके पुत्र शशादके वंशकी समाप्ति कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–कुशके अतिथि, उसके निषध, निषधके नभ, नभके पुंडरीक, उसके क्षेमधन्वा, ॥ १ ॥ उसके देवानीक, उसके अनीह, अनीहके पारियात, उसके बलस्थल, उसके वज्रनाभ नाम पुत्र हुआ, जो सूर्यका अंश था ॥ २ ॥ वज्रनाभके खगण, उसके विधृति, उसके हिरण्यनाभ पुत्र हुआ, यह हिरण्यनाभ जैमिनिऋषिका शिष्य और योगके मार्गका आचार्य था कि–

आप लोगोंको दर्शन देनेके वास्ते अपने अनुचरोंके साथ अपनी नगरी देखने पधारते, तब वह नगरी निरंतर सदा सिंगारी हुई देखनेमे आती ॥ २५ ॥ कैसी है वह पुरी कि–जिसमें सुगंधी जल और हाथियोंके चूतेहुए मदसे मार्गमें छिरकाव हो रहा है अपने स्वामी रामचंद्रजीके पधारनेसे दर्शन होनेके कारण जैसे स्वामीको आया देखकर, गौ मदोन्मत्त हो जाती है वैसे मदोन्मत्त हो रही है ॥ २६ ॥ देवमंदिर, दरवाजे, सभा मार्गमेंके बड़े २ वृक्ष और राजद्वारके घर इन सबपै सोनेके कलश चढ़ रहे हैं पताकायें शोभ रहीं हैं ॥ २७ ॥ गुच्छोंवाले सुपारियोंके और केलोंके वृक्ष शोभा दे रहे हैं सुंदर पट पाटे गये हैं काच, वस्त्र, माला व तोरणोंका कौतुक बन रहा है

आसिक्तमार्गां गंधोदैः करिणां मदसीकरैः ॥ स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥ प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ॥ विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मंडिताम् ॥ २७ ॥ पूगैः सवृंदै रंभाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ॥ आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥ तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः ॥ आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥ २९ ॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ॥ आरुह्य हर्म्याण्यरविंदलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः ॥ अनंताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥ विद्रुमोदुंबरद्वारैर्वैदूर्यस्तंभपंक्तिभिः ॥ स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥

॥ २८ ॥ जहां तहां हाथोंमें भेंटें लिये पुरके लोग रामचंद्रजीके सन्मुख आ आ कर, अशीर्वाद दे रहे हैं कि–'वराहावतारमें अपनी उद्धार कीहुई इस पृथ्वीका पालन करो' ॥ २९ ॥ कमलनयन भगवान् रामचंद्रजी कभी बाहिर पधारते और पीछे बहुत दिनोंसे, अयोध्यामें आते, तब नगरके नरनारी उनके दर्शनकी अभिलाषासे घर छोड़ २ ऊंचे २ महलोंपर चढ़कर, फूल बरसाते थे और दर्शन करते नेत्र किसीकेभी तृप्त नहीं होते थे ॥ ३० ॥ बाहिरसे आकर, रामचंद्रजी अपने पूर्वज राजाओंसे सेवित अपने महलमें प्रवेश करते कि–जिसमें अनंत व सब प्रकारके खजाने भरे हैं अमूल्य अनेक प्रकारके सरसामान धरे हैं ॥ ३१ ॥ दरवाजोंमें विद्रुममणिके उदुंबर (दे-

से बिंधेहुए अपने चरणारविंदको भक्तजनोंके हृदयमें रखकर आप स्वधाम पधारे ॥ १९ ॥ जिन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे लीला-
वतार धारण किया था और जिनके प्रभावके बराबर अथवा अधिक किसीका प्रभाव नहीं है. उन रामचंद्रजीने अस्त्रसमूहसे राक्ष-
सोंका वध किया और समुद्रमें सेतु बांधा, यह कोई बड़ी बात नहीं है और शत्रुओंके मारनेमें उनको वानरोंने सहायता दी,
यहभी केवल उनकी लीलाही है ॥ २० ॥ दिग्गजोंके पदके आभरणरूप यानी दिग्गजोंतक व्याप्त और पापनाश करनेवाले
जिनके निर्मलयशको ऋषिलोग राजाओंकी सभामें अद्यापि (अभीभी) गाया करते हैं वे रामचंद्रजी कि-जिनके चरणारविंदका

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ॥ रक्षो वधो जलधिबंधनमस्त्रपूगैः
किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥२०॥ यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनाऽपि गायंत्यघघ्नमृषयो दि-
गिभेंद्रपट्टम् ॥ तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादांबुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ यैः स स्पृष्टो
ऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ॥ कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छंति योगिनः ॥ २२ ॥ पूरुषो
रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ॥ आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबंधैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथं स
भगवान्रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः ॥ तस्मिन्वा तेऽन्ववर्त्तंत प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवा-
च ॥ अथादिशद्दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षतसानुगः ॥ २५ ॥

देवता और राजालोग अपने मुकुटोंसे सेवन करते हैं उनके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ २१ ॥ जिन्होंने रामचंद्रजीका स्पर्श व
दर्शन किया हैं जो साथ बैठे हैं और पीछे चले हैं, वे सब कोसलदेशके लोग उस पदको प्राप्त हुए हैं कि-जिसे योगीजन पाया
करते हैं ॥ २२ ॥ महाराज ! जो मनुष्य कानोंसे रामचंद्रजीके चरितको सुने और सदाचार पाले, वह कर्मबंधनसे मुक्त हो जाता है
॥ २३ ॥ यह सुन, परीक्षितने पूंछा कि-भगवान् रामचंद्रजी आप किसतरह बर्तते थे ? और अपने अंश-रूप भाइयोंके साथ
आप कैसा बर्ताव रखते थे ? और उनके साथ भाइयोंका और प्रजाका कैसा बर्ताव था ॥ २४ ॥ राजाका प्रश्न सुन, श्रीशुक-
मुनिने कहा कि-त्रिलोकी नाथ रामचंद्रजीने दिग्विजयके वास्ते भाइयोंको आज्ञा दी, तब उन्होंने वह आज्ञा सिरपर चढ़ायी,

और कुश नाम दो पुत्र हुए, जिनके वाल्मीकी ऋषिने जातकर्मादिक संस्कार किये ॥ ११ ॥ लक्ष्मणके अंगद व चित्रकेतु नाम दो पुत्र हुए. महाराज! भरतके तक्ष और पुष्कल नाम पुत्र हुए॥ १२ ॥ शत्रुघ्नके सुबाहु और सुकेतु नाम पुत्र हुए, भरतने दिग्विजयमें करोड़ों गंधर्व मारे ॥ १३ ॥ और उनका सब धन ले. राजा रामचंद्रजीके अर्पण किया, शत्रुघ्नने मधुके पुत्र लवण नाम राक्षसको मार, मधुवनमें मथुरा नाम नगरी बसायी, पति रामचंद्रजीने सीताका परित्याग कर दिया तब वह सीता अपने

अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ॥ तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ॥ गंधर्वान्कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम्॥ १३ ॥ तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥ १४ ॥ हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ॥ १५ ॥ ध्यायंती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्रामो रुंधन्नपि धिया शुचः ॥ १६ ॥ स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ स्त्रीपुंप्रसंग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः ॥ अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ १७ ॥ तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत्प्रभुः ॥ त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखंडितम् ॥ १८ ॥ स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दंडककंटकैः ॥ स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥ १९ ॥

दोनों पुत्र वाल्मीकिके सिपुर्द कर ॥ १४ ॥ १५ ॥ रामचंद्रजीके चरणोंका ध्यान करती, पृथ्वीके विवरमें प्रवेश हुई यह बात सुनकर, ईश्वर भगवान् रामचंद्रजीने बुद्धिसे बहुत कुछ सोचको रोका परंतु ॥ १६ ॥ उसके उन उन गुणोंका स्मरण आनेसे नहीं रोकसके; महाराज! जब ईश्वर कोटिके पुरुषोंकेभी स्त्री-पुरुषका प्रसंग इसतरह सर्वस्थलमें त्रास देनेवाला है ॥ १७ ॥ तब घरमें आसक्तचित्त पामर जीवोंको दुख देवे इसमें तौ कहनाही क्या? सीताके विवरमें प्रवेश हुए पीछे एक हजार तेरह वर्ष पर्यंत पृथ्वीपर विराजमान रामचंद्रजीने अखंड ब्रह्मचर्य धारण करते अग्निहोत्रसंबंधी होम किया ॥ १८ ॥ दंडकारण्यवनके काटों-

आभूषण और वस्त्र मात्रही बाकी रक्खे और महाराणी सीतानेभी अपने पहनेहुए सुहागके गहने और वस्त्रोंके सिवाय और कुछभी पास न रक्खा ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ब्रह्मण्यदेव रामचंद्रजीकी ऐसी उत्तम योजना व वत्सलता देखकर, प्रसन्न और आर्द्र-चित्त, ब्राह्मण रामचंद्रजीको पीछा राज देकर, बोले कि- ॥ ५ ॥ ' हे भगवन् ! हे लोकनाथ ! आपने हमें क्या नहीं दिया है क्योंकि हमारे अंतःकरणमें प्रवेश करके, अपने स्वरूपके प्रकाशसे आप हमारे अज्ञानरूप अंधकारको दूर करते हो ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंके परम भक्त, अकुंठबुद्धिवाले, पवित्र यश धारियोंमें अग्रणी, लोकोंको अभयदान देनेवाले पुरुषोंके चित्तमें चरण

इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः ॥ तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमंगल्यावशेषिता ॥ ४ ॥ ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य सस्तुतम् ॥ प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥ अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन्भुवनेश्वर ॥ यन्नोंतर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुंठमेधसे ॥ उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदंडार्पितांघ्रये ॥ ७ ॥ कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ॥ चरन्वाचोऽशृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥ नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ॥ स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥ इति लोकाद्बहुमुखाद्दुराराध्यादसंविदः ॥ पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अंतर्वत्न्या गते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ॥ कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११ ॥

रखनेवाले आपको हम प्रणाम करते हैं' ॥ ७ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-किसी दिन लोकवृत्तांत जाननेके वास्ते रामचंद्रजी, रातमें वेष बदलकर, गुप्तरूपसे फिरते थे, वहां एक मनुष्य अपनी स्त्रीका उद्देश कर, कुछ कह रहा था वह उनके सुननेमें आया ॥ ८ ॥ ' तू कि-जो दुष्ट, व्यभिचारिणी और दुसरोंके घरोंमें जानेवाली है उसे मैं मेरे घरमें नहीं रखता. राम तो स्त्रीका लालची है, तासों वह चाहो ऐसी सीताको रक्खे; पर मै तो अब तुझे किसीकदर रखनेका नहीं' ॥ ९ ॥ इसतरह जगत् कि-जो बहुमुख और किसीतरह राजी नहीं हो सक्ता व मूर्ख है उससे डरते रामचंद्रजीने सीताका त्याग कर वाल्मीकि मुनिके आश्रममें भेज दी, तद वह वहीं रहने लगी ॥ १० ॥ सीता गर्भवती थी, सो प्रसूतिसमय आनेपर उसके एकसाथ लव

वन,नदियां, पर्वत, खंड, द्वीप व सागर थे सब प्रजाओंके सकल मनोरथ पूर्ण करते थे. ॥ ५२ ॥ और कहींभी आधि (मनका दुःख), व्याधि (रोग),जरा (बुढ़ापा),ग्लानि,दुःख सोच,डर व क्लम कुछभी नहीं था परमात्मा रामचंद्रजीके राज्यमें अपनी इच्छा विना किसीका मृत्यु नहीं होता, यानी सबलोग स्वच्छंद मृत्यु थे. ॥ ५३ ॥ राजर्षियोंके धर्मका आचरण करते पवित्र रामचंद्रजी एकपत्नी व्रत धारण करते गृहस्थाश्रमका धर्म लोकोंको सिखलानेके वास्ते स्वधर्मका पालन करते थे ॥ ५४ ॥ और विश्वास व नम्रतायुक्त तथा अभिप्रायकी जाननेवाली सती सीताजी प्रेम, सेवा सुशील, बुद्धि व लज्जासे अपने स्वामी रामचंद्रजीके मनका हरण करती थी

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिंधवः ॥ सर्वे कामदुघा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥ ५२ ॥ नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥ मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥ ५३ ॥ एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥ स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन्स्वयमाचरन् ॥ ५४ ॥ प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥ धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्त्तुः सीताऽऽहरन्मनः ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामचरिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ॥ सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥ होत्रेऽददाद्दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥ आचार्याय ददौ शेषा यावती भूस्तदंतरा ॥ मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥ ३ ॥

॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ग्यारहवें अध्यायमें रामचंद्रजीने अयोध्यामें रहते, भाइयोंके साथ जो जो यज्ञ आदि क्रिया की उनका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महात्मा और आचार्य संपत्तिवाले रामचंद्रजी उत्तम कल्पके यज्ञ करके, सर्वदेवमय और प्रकाशमय निज, स्वरूपकाही स्वयं यजन करने लगे ॥ १ ॥ यज्ञ हो चुके, तद दक्षिणामें होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिमदिशा और उद्गाताको उत्तरदिशा व आचार्यको दिशाओंके बीचकी जितनी पृथ्वी बाकी रही, वह सब दी; क्योंकि आप जानते हैं कि-ब्राह्मणही इस सब राज्यके योग्य हैं अतएव निःस्पृह हो, केवल अपने

बंदीजनोके स्तुति करते ऐसे शोभा देते थे कि-मानों ग्रहोंके साथ चंद्रमा उदय हो रहा है, महाराज ! भाइयोंसे सत्कार पाकर, रामचंद्रजी धूमधामके साथ उत्सवसहित अयोध्यापुरीमें पधारे ॥ ४५ ॥ दरबारमें आ, अतिमान पाकर, रामचंद्रजीने सौतीली मातायें अपनी माता, गुरु, मित्र और जो आपसे छोटे थे उन सबका सत्कार किया ॥ ४६ ॥ सीता व लक्ष्मणभी यथायोग्य सबसे मिले, महाराज ! जैसे प्राणके सन्मुख शरीर ठाढ़ा होवे वैसे खडीहुई मातायें अपने पुत्रोंको गोदमें बिठलाकर अश्रुकी धारासे न्हिलाने लगीं. और उन सबका सोच मिट गया ॥ ४७ ॥ रामचंद्रजीकी जटा उतराय (क्षौर करवाय) वसिष्ठ-

प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरं ॥ गुरून्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥ वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ॥ आरोप्यांकेऽभिषिंचंत्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४७ ॥ जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः ॥ अभ्यषिंचद्यथैवेंद्रं चतुःसिंधुजलादिभिः ॥ ४८ ॥ एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ॥ स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ४९ ॥ अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥ जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ ५० ॥ त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥ रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ ५१ ॥

मुनिने कुलवृद्ध लोगोंके साथ चार समुद्रोंका जल आदि पदार्थ मंगवाकर, इंद्रका जैसे अभिषेक करें वैसे विधिपूर्वक रामचंद्रजीको अभिषेक किया ॥ ४८ ॥ या प्रकार शिरःस्नान किये और सुंदर वस्त्र, माला व आभूषण धारण किये, रामचंद्रजी, सिंगार किये व सुथरे वस्त्र पहनेहुए भाई और सीताके साथ शोभा दे रहे थे ॥ ४९ ॥ भरतने प्रणाम करके, आपको प्रसन्न किया, तद रामचंद्रजीने राज्यासन स्वीकार किया. महाराज प्रभु तो स्वधर्मनिरत और वर्ण व आश्रमके गुणोंसे युक्त प्रजाओंका पिताके समान पालन करने लगे और प्रजाभी रामचंद्रजीको पिताके समान मानती थी. ॥ ५० ॥ रामराज्यमें त्रेतायुगके वर्तमान कालमेंभी सत्ययुगके समान समय बर्तने लगा था महाराज ! सब जीवोंको सुख देनेवाले धर्मज्ञ रामचंद्रजीके राज करते- ॥ ५१ ॥

बजानेके शब्द हो रहे थे ॥ ३६ ॥ और वेद पढ़ेहुए ब्राह्मण वारंवार वेदघोष कर रहे थे सोनेकी किनारीवाली पताकायें शोभ रहीं थीं, चित्र विचित्र ध्वजायुक्त रथोंमें ॥ ३७ ॥ सोनेके साजवाले उत्तम घोड़े जुड़ रहे थे, योधालोक सोनेके वस्तर पहने थे व्यौपारी वेश्या और अनुचर लोगोंके साथ राजाके योग्य छत्र चमर आदि पदार्थ और छोटी मोटी सब सामग्री ले, भरत रामचंद्रजीके समीप जाकर, पैरोंमें गिरा, उसवख्त उसका हृदय और नेत्र प्रेमसे द्रवीभूत हो गये. ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ महाराज ! भरत रामचंद्रजीके आगे पादुका रख, करजोड़, नेत्रोंमें जल भर खड़ा रहा तद लक्ष्मण और सीतासहित रामचंद्रजीने भरतका

ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ ३७ ॥ सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥ श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ ३८ ॥ पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ॥ पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ ३९ ॥ पादुके न्यस्य पुरतः प्रांजलिर्बाष्पलोचनः ॥ तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ ४० ॥ रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ॥ तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ ४१ ॥ धुन्वंत उत्तरासंगान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ॥ उत्तराः कोशला माल्यैः किरंतो ननृतुर्मुदाः ॥ ४२ ॥ पादुके भरतो गृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे ॥ विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ ४३ ॥ धनुर्निषंगाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमंडलुम् ॥ अबिभ्रदंगदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण्नृप ॥ ४४ ॥ पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च बंदिभिः ॥ विरेजे भगवान्राजन्ग्रहैश्चंद्र इवोदितः ॥ भ्रातृभिर्नंदितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् ॥४५॥

बहुत देरतक हाथसे आलिंगन किया और नेत्रोंके जलसे स्नान कराया, ब्राह्मण और दूसरेभी जो योग्य पुरुष थे उन्हे रामचंद्रजीने प्रणाम किया और प्रजाने उनको प्रणाम किया, ॥ ४० ॥ ४१ ॥ कई बरसोंसे आये अपने स्वामीको देखकर, उत्तरीय वस्त्रोंको कँपाते और फूल बरसाते उत्तरकोसल देशके मनुष्य आनंदसे नृत्य करने लगे ॥ ४२ ॥ भरतने पादुका ली, हनुमानने श्वेतछत्र धारण किया, बिभीषण और सुग्रीवने उत्तम चमर हाथमें लिये, ॥ ४३ ॥ शत्रुघ्नने धनुष और भाथे लिये, सीताने तीर्थका कमंडलु लिया महाराज ! अंगदने तलवार ली , जांबवान्‌ने ढाल ली, ॥ ४४ ॥ स्त्रियोंके साथ पुष्पक, विमानमें विराजमान रामचंद्रजी

नरकके लिये तैयार किया ॥ २८ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-रामचंद्रजीकी संमति ले बिभीषणने अपने संबंधी लोगोंका शास्त्ररीतिके अनुसार जो पारलौकिक कर्म करना चाहिये वह सब किया ॥ २९ ॥ फिर भगवान् रामने अपने विरहकी व्यथासे दुर्बल सीताको अशोकवनमें अशोकके वृक्षके तले बैठी देखी ॥ ३० ॥ अपने दर्शनके आनंदसे जिसका मुख-कमल प्रफुल्लित हो रहा है, ऐसी दीन व अतिप्यारी सीताको देखकर, रामचंद्रजीको उसपै दया आगयी ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमानके साथ सीताजीको पुष्पक विमानमें बिठलाय, बिभीषणको राक्षसोंका राज, लंकापुरी और एक कल्पकी

श्रीशुक उवाच ॥ स्वानां विभीषणश्चक्रे कोशलेंद्रानुमोदितः ॥ पितृमेधविधानेन यदुक्तं सांपरायिक-म् ॥ २९ ॥ ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ॥ क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकंपत ॥ आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपंकजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ॥ बिभीषणाय भगवान्दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥ ३२ ॥ लंकामायुश्च कल्पांतं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥ ३३ ॥ उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलांबरम् ॥ ३४ ॥ म-हाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थंडिलेशयम् ॥ ३५ ॥ भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥ पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥ नंदिग्रामात्स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ३६ ॥

आयुष्य दे, चौदह वर्ष वनमें रहनेका अपना नियम पूर्ण कर, अयोध्या पधारे. उस समय मार्गमें लोकपाल पुष्पोंकी बरसा कर रहे थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ और ब्रह्मादिक देवता आनंदपूर्वक चरित्र गा रहे थे, " भाई भरतभी गोमूत्रमें पकाये यव खाता है और वल्कल पहिरता है, पृथ्वीपर सोता है और जटा धारण करता है " यह बात सुन, परमकारुणिक रामचंद्रजीको बड़ा संताप हुआ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रामचंद्रजीको आये सुन, शहरके लोग अमात्य और पुरोहितोंके साथ भरत अपने सिरपर पादुका धर, बड़े भाई रामचंद्रजीके सामने आया. नंदिग्राम कि-जहां अपना डेरा था; वहांसे भरत रामचंद्रजीके सन्मुख गया, उस समय गाने

जिनको युवावस्थाभी प्राप्त नहीं हुई ऐसे किशोर अवस्थावाले ये कुमार कहाँ ? ॥ ८ ॥ अवश्य इस सभामें धर्मका उल्लंघन होगा जहा अधर्म होवे, वहां कभी बैठना न चाहिये ॥ ९ ॥ सभासदोंके दोष जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुषको सभाके अंदरभी न जाना चाहिये; क्योंकि विपरीत बोले तो खराबी और मैं नहीं जानता ऐसे कह चुप रह जाय तो पापका भागी होवे, तौभी खराबी ॥ १० ॥ शत्रुके चारों ओर दौड़ते हुए श्रीकृष्णका मुखकमल परिश्रमजनित जलसे व्याप्त होनेसे देखो कैसा मालूम होता है ? जैसे जलके बिंदुनसे व्याप्त कमल ॥ ११ ॥ दूसरी बोलीं कि- क्या रामकी ओर नहीं देखतीं ? देखो बलरामजीका मुख

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ॥ यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥ न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनांबुजम् ॥ वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवांबुभिः ॥ ११ ॥ किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ॥ मुष्टिकं प्रति सामर्ष हाससंरंभशोभितम् ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिंगगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ॥ गाः पालयन्सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयांऽचति गिरित्ररमार्चितांघ्रिः ॥ १३ ॥ गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ॥ दृग्भिः पिबंत्यनुसवाभिनवं दुरापमेकांतधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥

जिसमें लाल सुर्ख नेत्र भासते हैं और मुष्टिकप्रति क्रोधसे भरेहुए हैं, तौभी हासके आवेशसे शोभायमान हैं ॥ १२ ॥ अहो ! व्रजकी भूमि धन्य है. जहां मनुष्यशरीरसे गुप्त, साक्षात् पुराणपुरुष परमेश्वर बनके विचित्र पुष्प धारण किये बलदेवजीके साथ गैयां चराते बंसी बजाते क्रीड़ा करते विराजते हैं, जिनके चरणोंकी महादेव और लक्ष्मीजीभी पूजन करते हैं ॥ १३ ॥ अहो ! गोपियोंने ऐसा क्या पुण्य किया ? जो श्रीकृष्णचंद्रका रूप कि-जो लावण्यसे श्रेष्ठ, नित्य प्रति नया, दुर्लभ, यश, लक्ष्मी और ऐश्वर्यका अविचल धाम, स्वतःसिद्ध और जगतमें न तो कोई उसके बराबर है, न अधिक है, उसे नेत्रोंसे मानों पी जाती

हों तैसे देखतीं हैं ॥ १४ ॥ अहो ! व्रजागना धन्य हैं; क्योंकि जो दुहतीं, चावल कूटतीं, मथतीं, लींपतीं, झूलतीं, छिड़कतीं और सींचतीं, बालकोंके रोनेके समय उनको रमातीं, झाड़तीं इत्यादिक काम करतीं, अनुरक्तचित्त हो, इन्ही भगवानके चरित गातीं हैं. और उस समय उनका चित्त भगवानमेंही लग जाता है और कंठमें आंसू भर आते हैं ॥ १५ ॥ गौनके साथ प्रातसमय व्रजमेंसे जाते और साझसमय पीछा व्रजमें आते ये भगवान् वेणु बजाते हैं, तद् बंसीकी धुन सुन, जल्दी घरसे बाहिर निकल, भाग्यशाली गोपियां मार्गमें इन भगवान्के दयादृष्टिसहित, मंदहास्ययुक्त मुखका दर्शन करतीं हैं ॥ १६ ॥

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेंखेंखनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ॥ गायंति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकंठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥ प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ॥ निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यंति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥ एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ॥ शत्रुं हंतुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ॥ पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ॥ युयुधाते यथाऽन्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९ ॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ॥ चाणूरो भज्यमानांगो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥ २० ॥ स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ॥ भगवंतं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! स्त्रियोंके ऐसे कहते योगेश्वर हरि भगवानने शत्रुको मारनेका विचार किया ॥ १७ ॥ भयसहित स्त्रियोंकी वाणी सुन, पुत्रके स्नेहके कारण सोचसे आतुर, माता पिता संताप करने लगे, क्योंकि वे पुत्रके बलको नहीं जानतेथे ॥ १८ ॥ उन उन अनेक प्रकारके मल्लयुद्धके प्रकारोंसे श्रीकृष्ण और चाणूर, बलदेवजी और मुष्टिक, न्यायपूर्वक मल्लयुद्ध करते थे ॥ १९ ॥ भगवान्के शरीरके वज्रपातके समान कठोर प्रहारोंसे चाणूरके सब अंग टूट गये. और वह वारंवार ग्लानि पाने लगा ॥ २० ॥ उस मल्लने जुर्रेके वेगके समान उछल, दोनों हाथोंकी मुट्ठी बांध, क्रोध कर, श्रीकृष्ण भगवानके वक्षस्थलमें प्रहार क्रिया ॥ २१ ॥

उस प्रहारसे जैसे मालाके प्रहारसे हाथी चलायमान न होवे, तैसें बिलकुल न डिगे और भगवान्ने चाणूरके दोनों बाहु पकड़ खूब घुमाय, पृथ्वीतलपर पछाड़ा पड़तेही तुर्त प्राण निकल गये. और गहने, केश और माला सब बिखर गिये, पड़ते समय वह ऐसा मालूम हुआ, मानों इंद्रध्वज गिरा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसी तरह मुष्टिक कि- जिसने पहले बलदेवजीके मुष्टिका प्रहार किया था, उसे बलशाली बलदेवजीने तलप्रहारसे मार लिया ॥ २४ ॥ उसके मुंहमेंसे रुधिर बहने लगा और वह कांपता हुआ

नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ॥ बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन्हरिः ॥ २२ ॥ भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ॥ विस्रस्ताकल्पकेशस्रगिंद्रध्वज इवापतत् ॥ २३ ॥ तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ॥ बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ॥ व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवांघ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः ॥ अवधीह्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥ तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ॥ द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७ ॥ चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ॥ शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥ गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गंतौ रुतनूपुरौ ॥ २९ ॥

दुःखी हो, प्राण जानेपर जैसे वायुके वेगसे वृक्ष गिर जाता है, तैसे पृथ्वीतलपर गिर गया ॥ २५ ॥ महाराज ! कूट नाम मल्लको आता देख, प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ बलदेवजीने लीलाहीसे अपमानके साथ बांई मुष्टिसे मार दिया ॥ २६ ॥ उसीक्षण शलनाम मल्ल श्रीकृष्णके चरणप्रहारसे भग्नशिर हो मरा, तोशलकको चीरकर, दो टुकड़े कर दिये. इस भांति ये दोनोंही गिर गये ॥ २७ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशलके मरने पर, शेष रहे सब मल्ल जी बचाय बचाय, भाग गये ॥ २८ ॥ तद अपने मित्र गोपोंका खैंच, अखाड़ेमें ले, उनसे मिल खेलने लगे; उस समय बाजे बाजते थे. और आपके नूपुर नृत्य करनसे

१ गौड़देशमें कोई बड़े उत्सवमें बड़ा स्तंभ ध्वजपताकादि अलंकारयुक्त पुरुषके समान खड़ा करते हैं उस्को इंद्रध्वज ऐसा कहते हैं; वह जैसा गिरपड़ता वैसे. २ अहो; ए चाणूर आदि मल्ल कौन हैं ? तहां कहें हैं कि-ए पांचों पहलेके उतत्थ्यमुनिके बेटे हैं. कैसे थे ? कि-अपना विद्याध्ययन जपआदि जो ब्रह्मकर्म है उसे छोड़, राजा बलिके अखाड़े (तालीम) में जाय, नित्य मल्लयुद्ध (कुस्ती) सीखतेथे ऐसे इन्हें देख, क्रुधित हो, उतत्थ्य मुनिने कहा कि-देखो ! शम

झनझनाहट करते थे ॥ २९ ॥ रामकृष्णका चरित देख, कंसको छोड़, सब लोग प्रसन्न हुए, मुख्य मुख्य ब्राह्मण और सत्पुरुष साधु साधु ऐसा शब्द कहने लगे ॥ ३० ॥ कितनेएक मल्ल तो मर गये. कितने एक भाग गये. तद कंसने अपने बाजे बंद करवा दिये. और यह वक्ष्यमाण बचन कहा—॥ ३१ ॥ इन दुराचारी वसुदेवके पुत्रोंको नगरसे बाहिर निकाल दो, गोपोंका धन लूट लो, दुर्बुद्धि नंदको कैद कर दो ॥ ३२ ॥ अतिनीच, दुर्बुद्धि वसुदेवको जल्दी मार डालो और पिता उग्रसेनकोभी

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ॥ ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति ॥ ३० ॥ हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ॥ न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥ निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ॥ धनं हरत गोपानां नंदं बध्नीत दुर्मतिम् ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ॥ उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ॥ लघिम्नोत्पत्य तरसा मंचमुत्तुंगमारुहत् ॥ ३४ ॥ तमाविशंतमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ॥ मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥ तं खड्गपाणिं विचरंतमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमंबरे ॥ समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥ प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रंगोपरि तुंगमंचात् ॥ तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतंत्रः ॥ ३७ ॥

अनुचरोंसहित मारो; क्योंकि यह शत्रुके पक्षमें है ॥ ३३ ॥ ऐसे कंसके प्रलाप करते भगवान कोपकर, अनायासपूर्वक फुरतीसे कूद, जल्दी ऊंचे मंचपर चढ़ गये ॥ ३४ ॥ उस अपनी मृत्युको आती देख, झट आसनसे उठ, बहादुर कंसने ढाल तलवार हाथमें ली ॥ ३५ ॥ खड्ग हाथमें लिये, आकाशमें जुर्रेसमान बाएं दाहिने पेंच करते हुए, उस कंसको असह्य और उग्र तेजवाले भगवानने तुर्त पकड़ लिया; जैसे गरुड़, बलात्कारसे सांपको पकड़ लेता है ॥ ३६ ॥ केश पकड़, उसका सु-

---

(मनआदिको जीतना), दम (बाहरकी इन्द्रियोंका जीतना) तप, शांति, उदारता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकपन ऐसे यह कर्म ब्राह्मणके स्वभावहीसे होते हैं सो रे दुष्टो ! जिससे अपना यह स्वाभाविक कर्म छोड़, क्षत्रियका धर्म मल्लयुद्ध करते हो इससे जावो तुम लोग भारत खंडमें पहेलवान् होगे और दैत्योंकी संगतसे पूरे दुर्जन बनोगे. सब वेही पांचो मुनिपुत्र हैं यहां आय, चाणूर १ मुष्टिक [illegible] कृष्णजीके अंगस्पर्श होनेसे श्रापमुक्त हो, मोक्ष पाये. ॥ ग०

कुट उड़ा देते, इस कंसको ऊंचे मंचपरसे अखाड़ेमें पटका. और उसके ऊपर, सर्व जगतके आश्रय और स्वतंत्र भगवान् आप पड़े ॥ ३७ ॥ मरेहुए उस कंसको भगवान्ने जगतके देखते पृथ्वीपर घसीटा. जैसे सिंह मरेहुए हाथीको घसीटता है, महाराज! उस समय सब लोगोंके मुखसे भारी हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३८ ॥ वह कंस उद्वेगके कारण पीता, बोलता, फिरता, सोता, सांस लेता, आठ पहर सुदर्शन चक्र धारण किये उन परमेश्वरको आंखोंके आगे देखा करता. अतएव दुर्लभ उसी भगवद्रूपको

तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ॥ हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेंद्र ॥ ३८ ॥ स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपञ्छ्वसन् ॥ ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतस्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥ तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कंकन्यग्रोधकादयः ॥ अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥ तथाऽतिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः ॥ अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥ ४१ ॥ नेदुर्दुंदुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ॥ पुष्पैः किरंतस्तं प्रीताः शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ॥ तत्राभीयुर्विनिघ्नंत्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥

प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ उसके आठ छोटे भाई कंक, न्यग्रोध–आदि क्रोध कर, भाईका बैर लेनेके वास्ते दौड़ कर, आये ॥ ४० ॥ अत्यंत वेगसे आतेहुए और सजेहुए उन्हें देख, बलदेवजीने परिघ उठाय, सबको मार दिया. जैसे सिंह पशुओंको मारता है ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें दुंदुभि बाजने लगे. और ब्रह्मा, महादेव–आदि भगवान्की विभूति सब देवता प्रीतिसे फूल बरसाय बरसाय, स्तुति करने लगे. और अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ ४२ ॥ महाराज! उनकी स्त्रियां पतिके मरणसे दुःखी हो, शिर

---

१ न कहो कि–ए कंसके भाई कौन हैं? जो कि–बलदेवजीके हाथ मोक्ष पाये. तहां कहैं हैं कि–पूर्वकालमें देवयक्ष नामका बड़ा ज्ञानी और शिवभक्त एक यक्ष हुवा जिसके ए देवकूट १ महागिरि २ गंड ३ दंड ४ प्रचंड ५ खंड ६ अखंड ७ पृथु ८ नामके आठ पुत्र भये. सो कोई रोज पिताने शिवपूजाके निमित्त हजार कमलके फूल लानेकी आज्ञा दी. पिताकी आज्ञा मान, मानससरोवरसे फूल लिये आते थे. सो उन्होंकी गंधसे मोहित होनेके कारण इन्होंने उन फूलोंको सूंघके, पीछे पिताको दिये. यह जान, कुधित हो, पिताने श्राप दिया कि–जिससे तुम सबोंने शिवजीका अनादर कर, पहले पुष्प सूंघे इससे तुम लोग राक्षस होगे. सो वेही यक्ष राक्षसयोनिमें आय, कंसके छोटे भाई भये. कि–जिन्होंको बलदेवदाऊने मारके, तार दिया. ॥ ग०

कूटतीं आंखोंमेंसे आंसू डालतीं वहां आयीं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यामें सोतेहुए पतियोंसे मिल, सोच करतीं और वारंवार आंसू डालतीं, उनकी स्त्रियां सुस्वर विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ हा नाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हा करुण ! हा अनाथवत्सल ! आपके मरनेसे घर और प्रजाके साथ हमभी मरीं ॥ ४५ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! आप पति विना यह पुरी शोभा नहीं देती. जैसे हम. क्योंकि इसके उत्सव और मंगल सब नष्ट हो गये हैं ॥ ४६ ॥ आपने जो निरपराधी जीवोंसे घोर वैर किया, उसीसे आपकी यह दशा हुई; क्योंकि जो जीवोंसे वैर करता है उसे सुख मिलना कहां है ? ॥ ४७ ॥ यह श्रीकृष्ण संपूर्ण प्राणियोंको पैदा कर-

शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिंग्य शोचतीः ॥ विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजंत्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथवत्सल ॥ त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वया विरहितापत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ॥ न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमंगला ॥ ४६ ॥ अनागसां त्वं भूताना कृतवान्द्रोहमुल्बणम् ॥ तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक्को लभेत शम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ॥ गोप्ता च तदवध्यायी न कचित्सुखमेधते ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ॥ यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बंधनात् ॥ कृष्णरामौ ववंदाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥ देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥ कृतसंवंदनौ पुत्रौ सस्वजाते न शंकितौ ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे कंसवधोनाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ॥

नेवाले, संहार करनेवाले, रक्षा करनेवाले हैं. इनसे द्रोह करके फिर सुखकी वृद्धि कहां है ? ॥ ४८ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–लोकोंके पालक भगवानने राजाकी स्त्रियोंको सांत्वना दे, जो लोककी रीति है, उसके अनुसार उन मरेहुए सब जनोंकी क्रिया करवायी ॥ ४९ ॥ फिर माता पिताको बंधनसे छुड़ाय, राम कृष्णने चरणोंमें शिर रख, स्पर्श कर, वंदन किया ॥ ५० ॥ देवकी और वसुदेवजी उनको जगतके ईश्वर जान, शंकायुक्त हो, नमस्कार करतेहुए अपने पुत्रोंसे नहीं मिले. प्रत्युत हाथ जोड़, सामने खड़े, हो गये ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदी-

पिकानामभाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ॥ पैंतालीसवें अध्यायमें पिता और नंदराय–आदिका सांत्वन, उग्रसेनजी-का अभिषेक और गुरुके यहांसे पीछा आना, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–पुरुषोत्तम भगवानने माता पिताको ज्ञान प्राप्त हुए जान, यह ज्ञान अभी ठीक नहीं ऐसा विचार, लोगोंको मोहित करनेवाली अपनी माया फैलायी ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण बलदेवजीके साथ माता पिताके समीप आ, विनयसे नम्र हो. प्रसन्न करते ' हे अंब ! हे तात ! ' ऐसे आ-दरसहित वचन बोले कि– ॥ २ ॥ हे तात ! आप दोनों हम पुत्रोंके वास्ते निरंतर उत्कंठा रखते थे. परंतु हमारी बाल्य, पौ-

श्रीशुक उवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥ माभूदिति निजां मायां ततान जनमो-हिनीम् ॥ १ ॥ उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः ॥ प्रश्रयावनतः प्रीणन्नंब तातेति सादरम् ॥ २ ॥ नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कंठितयोरपि ॥ बाल्यपौगंडकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥ ३ ॥ न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदंतिके ॥ यां बालाः पितृगेहस्था विंदंते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥ सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ॥ न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ॥ वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयंति हि ॥ ६ ॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ॥ गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ॥ मोघमेते व्यतिक्रांता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥

गंड और किशोर अवस्थाके जो सुख आपको मिलने चाहिये वे कभी नहीं मिले ॥ ३ ॥ हम मंदभागियोंको आपके निकट रहनाभी नहीं मिला, माबापके घरपर रहनेसे बालकोंको जो आनंद प्राप्त होते हैं, वेभी नहीं मिले ॥ ४ ॥ जिन्होंने धर्मआदि चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला शरीर उत्पन्न किया और पालन कर, बड़ा किया है; उनके ऋणसे मनुष्य सौ बर्षका उम्र पाकर, बरा-बर सौ बरसतक सेवा करे, तौभी उरिण नहीं हो सक्ता ॥ ५ ॥ जो पुत्र, शरीर और धनसे समर्थ होकर, उनको वृत्ति (जीवि-का) नहीं देता, उसे परलोकमें यमराजके दूत उसीका मांस भक्षण करवाते हैं ॥ ६ ॥ वृद्ध माता पिता, पतिव्रता स्त्री, बालक, पुत्र, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत इनका मनुष्य समर्थ होकर, पोषण नहीं करता. वह जीता मुर्दा है ॥ ७ ॥ अतएव हम कि–

जो असमर्थ और कंससे नित्य उद्वेग पाते थे, उनके इतने दिवस आपकी पूजा न बननेसे व्यर्थ गये ॥ ८ ॥ हे तात ! हे माता ! दुष्ट कंसके कारण महाक्लेशयुक्त और पराधीन हमसे जो आपकी सेवा नहीं बनी, सो आपको क्षमा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इसतरह मायासे मनुष्यरूप, जगतके अंतर्यामी, हरि भगवान्‌की वाणीसे मोहित हो, गोदीमें बिठलाय, आलिंगन कर, वे दोनों परमानंदको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ महाराज ! अश्रुनकी धारानसे सींचते, स्नेहरूप पाशसे बंधेहुए दोनों वसुदेवजी और देवकी कि–जिनके गलेतक आंसू पहुंच गये थे, वे ऐसे मोहित हो

तत्क्षंतुमर्हथस्तात मातर्नौ परतंत्रयोः ॥ अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ॥ मोहितावंकमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिंचंतावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ॥ न किंचिदूचतू राजन्बाष्पकंठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः ॥ मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥ आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ॥ ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥ १३ ॥ मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ॥ बलिं हरंत्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १३ ॥ सर्वान्स्वान् ज्ञातिसंबंधान् दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ॥ यदुवृष्ण्यंधकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान्समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ॥ न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥

गये, कि–स्नेहके मारे कुछभी न बोल सके ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने ऐसे मातापिताको आश्वासना दे, मातामह उग्रसेनजीको यदुवंशियोंका राजा किया ॥ १२ ॥ और उन्होंने कहा कि– हे महाराज ! हम आपकी प्रजा हैं. हमें आप आज्ञा करें; यदुवंशियोंको राजा ययातिका शाप हुआ है, इसलिये राजगद्दीपै न बैठना चाहिये ॥ १३ ॥ मुझ सेवकके उपस्थित रहते देवता–आदिभी आपको नम्र हो, लाय लाय, भेंटें अर्पण करेंगे. तब दूसरे राजाओंकी तो बातही क्या ! ॥ १४ ॥ जगत्‌के कर्ता भगवानने सब जातिवाले और संबंधी यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह, कुकुर–आदि जो कंसके डरसे व्याकुल हो, भाग गये थे; उन्हें दिशाओंमेंसे पीछा लाय, विदेशमें रहनेके कारण दुःखी हो गये थे, उन्हें धन दे, प्रसन्न कर,

आदरके साथ सांत्वना दे, अपने अपने घरोंमें पीछे बसाये ॥ १५ ॥ १६ ॥ राम-कृष्णकी भुजासे रक्षा कियेहुए, परिपूर्ण, राम-कृष्णके प्रभावसे तापरहित, सब यादव मनोरथ सिद्ध होनेसे घरोंमें आनंदपूर्वक रमण करने लगे ॥ १७ ॥ नित्य आनंदसे भरा, शोभायुक्त, दयासहित मंदहास्यपूर्वक, जिसका देखना है ऐसे श्रीकृष्णचंद्रके मुखकमलका प्रतिदिन दर्शन करनेसे आनंद-युक्त वृद्धपुरुषभी जवान और अतिबलवान व पराक्रमी हो गये; क्योंकि वे लोग वारंवार नेत्रोंद्वारा भगवानका मुखकमलरूप अमृत पिया करते थे ॥ १८ ॥ १९ ॥ महाराज ! फिर भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवजी नंदरायजीके निकट आ, आलिंगन

कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ॥ गृहेषु रेमिरे सिद्धा कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षंतोऽहरहः प्रीता मुकुंदवदनांबुजम् ॥ नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥ तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः ॥ पिबंतोऽक्षैर्मुकुंदस्य मुखांबुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथ नंदं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः ॥ संकर्षणश्च राजेंद्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ॥ पित्रोरभ्यधिकाप्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥ स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत ॥ शिशून्बंधुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥ यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ॥ ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥ एवं सांत्वय्य भगवान्नंदं सव्रजमच्युतः ॥ वासोलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नंदः प्रणयविह्वलः ॥ पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सहगोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥

कर, यह वक्ष्यमाण वचन बोले कि-॥ २० ॥ हे पिता ! आपने स्नेहके साथ चिरकालतक हमें पाले और पोषे और अपने पुत्रोंपर माता-पिता प्रीति रखते हैं, उससे अधिक प्रीति रक्खी ॥ २१ ॥ माता-पिता ! वेही हैं जो अपने औरस पुत्रके समान, पोषण और पालन करनेको असमर्थ बंधुनसे छोड़ेहुए बालकोंका पोषण करें ॥ २२ ॥ हे तात ! आप व्रजको पधारें, हमभी बंधुनके सुख करके, स्नेहसे दुखी ज्ञातिवाले और आपके दर्शनको आवेंगे ॥ २३ ॥ ऐसे भगवान श्रीकृष्णने व्रजवासियोंके साथ नंदरायजीको सांत्वना दे, वस्त्र, आभूषण, कासा, पीतल आदिके बासन दे, आदरसहित सत्कार किया ॥ २४ ॥ नंदरायजी ये बचन

सुन, प्रेमसे विह्वल हो, उन दोनों भाइयोंसे मिल, आंसूनसे नेत्र भरते गोपोंके साथ व्रजको सिधारे ॥ २५ ॥ महाराज ! फिर वसुदेवजीने पुरोहित और ब्राह्मणोंको बुलाय, पुत्रोंका विधिपूर्वक उपनयनसंस्कार कराया ॥ २६ ॥ उन ब्राह्मणोंको वस्त्र आभूषणसे अलंकृत कर, अच्छी तरह पूज, अच्छी तरह सिंगार कराय, सोनेकी माला पहिराय, रेशमी वस्त्र ओढ़ाय, बछरोंके साथ गौ दान दिये. और उनके साथ दक्षिणा दी ॥ २७ ॥ महामति वसुदेवजीने राम-कृष्णके जन्मसमयमें जो गोदानका संकल्प किया था. उसका स्मरण करके उतनीही गैयां दान दीं. जो कंसने अधर्मसे ले लीं थीं ॥ २८ ॥ फिर उन दोनों भाइयोंने उपनयनसंस्कारसे द्विजत्व पाय, यदुकुलके आचार्य गर्गाचार्यजीसे ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया ॥ २९ ॥ यद्यपि ये दोनों भाई सर्व विद्यानके कारण, सर्वज्ञ, जगदीश्वर थे. तौभी मनुष्य-चेष्टासे स्वतःसिद्ध निर्मल ज्ञानको गुप्त रखते थे ॥ ३० ॥ फिर गुरुकुलमें वास चाहते हुए उज्जैनके वासी सांदीपनि नाम गुरुके पास गये. जो काश्यनामसे प्रसिद्ध था. ॥ ३१ ॥ अन्य लोगोंको सर्वोत्तम गुरु सेवा करनेकी शिक्षा करते हुए, जितेंद्रिय हो, योग्य रीति और प्रीतिसे गुरुके समीप जा, परमेश्वरके समान गुरुभक्ति करने लगे ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ गुरुने उनकी शुद्धभावयुक्त सेवासे प्रसन्न हो, छह अंग और उपनिषदोंसहित संपूर्ण वेद पढ़ाये ॥ ३३ ॥

अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्द्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः ॥ स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥ याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ॥ ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ॥ गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छंतावुपजग्मतुः ॥ काश्यं सांदीपनिंनाम ह्यवंतिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥ यथोपसाद्य तौ दांतौ गुरौ वृत्तिमनिंदिताम् ॥ ग्राहयंतावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवाऽऽदृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच वेदानखिलान्सांगोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥

---

१ अंगानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः ॥ धर्मशास्त्रं पुराणं च [illegible] ॥ १ ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः ॥ अर्थशास्त्रं चतुर्थं

महाराज ! मंत्र और देवतानके ज्ञानसहित धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, मीमांसा-आदि शास्त्र, तर्कविद्या, संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध, आश्रयरूप, छह प्रकारकी राजनीति ॥ ३४ ॥ यह सब, मनुष्योंमें सर्वोत्तम सर्व विद्यानके प्रवर्तक उन दोनों भाइयोंने एकवार गुरुके कहनेसे सीख लिया ॥ ३५ ॥ जितेंद्रिय इन दोनों भाइयोंने चौंसठ दिनोंमें चौंसठ कला सीखीं. जैसे १ गीत, २ वाद्य, ३ नृत्य, ४ लेख्य-(लिखनेकी चतुरता), ५ विशेषकच्छेद्य-(जुदे जुदे प्रकारकी जाली कतरनेकी रीति, ६ नाट्य-(नाटकका खेल) ७ तंदुलकुसुमबलिप्रकार-(देवमंदिरोंमें चांवल और फूलोंसे स्वस्तिकआदि जुदे जुदे आकार बना-

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ॥ तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥ सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ॥ सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ॥ गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छंदयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥

ना) ८ पुष्पास्तरण-(फूल बिछानेकी रीति) ९ दशनवसनांगराग- (दांत और वस्त्र-आदि रंगनेका प्रकार) १० मणिभूमिकाकर्म-(पहले जमानेमें घर अथवा बागमें अद्भुत बैठनेकी जगह बनाय, उसपर बैठ, खाते पीते और ऐश करते थे) ११ शयनरचन १२ उदकवाद्य-(जलका बाजा) १३ उदकाघात- जलमें पैरना, पिचकारी मारना और सुगंधि जल छिड़कना आदि) १४ चित्रयोग-(विचित्र प्रकारकी योजना) १५ माल्यग्रथनविकल्प-(फूल गूथनेकी रीति) १६ शेखरापीडयोजन-(भांति भांतिकी पगड़ी तथा टोपी-आदि बनाना) १७ नेपथ्यप्रयोग-(सिंगार करनेकी रीति) १८ कर्णपत्रभंग-(कर्णफूल-आदि कानके गहने बनाना) १९ सुगंध युक्ति-(अतर-आदि सुगंधि पदार्थ बनानेकी युक्ति) २० भूषणयोजन-(गहने गांठनेकी रीति) २१ ऐंद्रजाल-(जादूके प्रयोग) २२ रूपपरीक्षा-(सामुद्रिक-आदि) २३ चित्रशाकापूपभक्ष्यविकार-

---

व विद्या ह्यष्टादशैव ताः ॥ २ ॥ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः ॥ ज्योतिषामयनश्चैव वेदाङ्गानि षडेव तु ॥ ३ ॥ छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ॥ ज्योतिषामयनश्चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥ ४ ॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ॥ ५ ॥ अर्थ-वेदके शिक्षा-आदि छह अंग, चार वेद, मीमांसाशास्त्र, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र और पुराण ये चौदह विद्या ॥ १ ॥ और आयुर्वेद, (वैद्यक,) धनुर्वेद, गान्धर्व (गानविद्या.) यह तीन और चौथा अर्थशास्त्र यही अठारह विद्या हैं ॥ २ ॥ (अब वेदके शिक्षा आदि छह अंग लिखते हैं) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष छंद यही वेदके छः अंग हैं ॥ ३ ॥ वेदके पांव छन्द, हाथ कल्प, ज्योतिष आंखें, निरुक्त कान, ॥ ४ ॥ शिक्षा नासिका और व्याकरण वेदका मुख है. यही वेदके छह अंग हैं ॥ ५ ॥

(अनेक प्रकारकी रसोई बनाना) २४ कौचुमारयोग-(प्रीतिके उत्पादक तथा शरीरको अच्छा करनेवाले उपाय जो कुचुमार नाम आचार्यके बताये हुए हैं. जैसे पौष्टिक औषध और अंगसंकोचके प्रयोग) २५ हस्तलाघव-(हरेक चीज उड़ा देना-आदि हाथकी चालांकी) २६ ॥ पानकरसरागयोजन-(मुरब्बा, शराब और शर्बत बनानेकी रीति) २७ सूचीकर्म-(सीनेका काम) २८ सूत्रक्रीड़ा-(कोरी संचार)२९ प्रहेलिका-(पहेली. जैसे-"उपजा जलका जलमें रहे आंखो देखाखुसरो कहैं" 'काजल') ३० प्रतिमाला-(अंत्याक्षरी यानी श्लोकके अंतमें जो अक्षर आवे वही अक्षर जिस श्लोकके आदिमें हो उसे कहना, फिर उसके अंतमें जो हो वह जिसके आदिमें हो उस श्लोकको बोलना. यह प्रचार संस्कृत पढ़नेवाले लड़कोंमें प्रायः पाया जाता है) ३१ दुर्वाचकयोग-(जिसका वारंवार आर जल्दी उच्चारण करनेमें गड़बड़ हो जाय ऐसे वाक्य अच्छी तरह बोलते आना. जैसे-'कुए ऊपर सात कबूतर आए मा चुनाय जा' इत्यादि) ३२ प्रतिमाकरण-(नकल करना या मिट्टी-आदिके घोड़े स्त्री-पुरुष-आदि बनाना) ३३ पुस्तक बाचना ३४ नाटकाख्यायिकादर्शन-(नाटक और आख्यान-आदि बराबर दिखला देना) ३५ काव्यसमस्यापूरण-(कविताकी समस्या पूरी करनी) ३६ पट्टिकावेत्रवाणविकल्प-(पाटी और बेंत भरनेकी रीति) ३७ तर्ककर्म-(सूत कातनेकी रीति और करगता-आदि बिननेकी रीति) ३८ तक्षणकर्म (बढ़ईका काम) ३९ वास्तुविद्या-(इमारत बनानेकी रीति) ४३ रूप्यरत्नपरीक्षा (सिक्का और जवाहिरातकी परीक्षा) ४१ आकरज्ञान-(खान जाननेकी कला) ४२ धातुवाद-(मिट्टीके अंदरसे धातु निकालनेका उपाय) ४३ मणिरागज्ञान-(तरहतरहके नगोंमें रंग देना और डांक लगानेकी कला) ४४ वृक्षायुर्वेदयोग-(वृक्षोंके पत्ते नये निकलनेकी और उनके रोग मिटानेकी कला) ४५ मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि (मेंढा, मुर्गी और लावा इनको लड़ानेकी युक्ति) ४६ शुकसारिकाप्रलापन-(तोता और मैनाको बोलना सिखाना) ४७ उत्सादन प्रसादन-(शरीरको साफ करने और अभ्यंग करनेकी चातुरी) ४८ अक्षरमुष्टिकथन-(करपल्लवी भाषा, जैसे-' अहिफेन कमल चक्र टंकारा, तेग पवन यौवन शृंगारा; अंगुलि अक्षर चुटकिहि हि मात्रा, राम कहत सीतासे बाता ' अर्थ-अहिफेन यानी अकारादि स्वर, कमल यानी कवर्ग, चक्र यानी चवर्ग, टंकार यानी टवर्ग, तेग यानी तवर्ग, पवन यानी पवर्ग, यौवन यानी यरलव, शृंगार यानी शषसह इनमेंसे जौनसी अंगुली ऊंची करे वही अक्षर और जितनी चुटकी बजावे उसी प्रमाण मात्रा जाननी चाहिये. इत्यादि) ४९ म्लेच्छितकविकल्प-(भाषाको बिगाड़ कर बोलनेकी रीति. जैसे-च पहले लगाकर बोलना ' चका चत चर- ' ' कातर ' यास्म

बीचमें देकर, बोलना 'तेस्मेरा हास्माथ पस्मकडूं' इत्यादि) ५० देशभाषाविज्ञान-(जुदे जुदे देशोंकी भाषा जानना) ५१ मानसी चिंता (मनकी बात परखना) ५२ अभिधानकोष-(शब्दोंके कोश जानना) ५३ छलितकयोग-(उलट पुलट समझा देना. या फँसा देना. वगैरः छलनेके उपाय) ५४ वस्तुगोपन-(चीज छुपानेकी कला) ५५ द्यूतविशेष-(जुएंकी कला) ५६ बालक्रीड़नक-(बालकोंके खेल) ५७ वैनयिकी विद्या-(सभ्यता संभालनेकी रीति) ५८ वैजयिकी विद्या-(फौजी कवायद वगैरः जय होनेकी कला) ५९ व्यायामिकी विद्या-(कसरतकी कला) ६० आकर्षक्रीड़ा-(खैंचनेका खेल) ६१ यंत्रमातृका-(जुदे जुदे यंत्र यानी कल बनानेकी रीति) ६२ धारणमातृका-(धारणा शक्ति अष्टावधानप्रभृति) ६३ छंदोज्ञान-(वृत्त जो

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ॥ संमंत्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयांबभूव ह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथाऽऽरुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुरंतविक्रमौ ॥ वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिंधुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥३८॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ॥ योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥३९॥ समुद्र उवाच ॥ नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ॥ अंतर्जलचरः कृष्ण शंखरूपधरोऽसुरः ॥४०॥

इंद्रवज्रा-आदि उनका ज्ञान) ६४ केशसंमार्जनकौशल-(केशोंको साफ और अच्छे रखनेकी युक्ति) इति. महाराज ! फिर मनवांछित गुरुदक्षिणा मांगनेको गुरुसे प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ महाराज ! उस ब्राह्मणने उनका ऐसा प्रभाव और मनुष्योंसे परे अतिचमत्कारी बुद्धि देख, अपनी स्त्रीके साथ सलाह मिलाय, प्रभास क्षेत्रमें समुद्रके बीच मराहुआ बालक वरदान गुरुदक्षिणामें मागा ॥ ३७ ॥ अपार पराक्रम वे दोनों महारथ, जो आज्ञा ऐसा कह, रथपर चढ़, प्रभासक्षेत्रमें आ, समुद्रके तटके निकट जा, क्षणभर बैठ गये. समुद्रको खबर पहुँचतेही भेंट ले, उनके पास आ, उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥ भगवानने उससे कहा कि-हमारे गुरुपुत्रको शीघ्र ले आओ, जिस बालकको, तुमने यहां बड़ी तरंगके साथ ले लिया है ॥ ३९ ॥ समुद्र बोला कि-हे देव ! मैंने नहीं लिया; हे कृष्ण ! मेरे जलके अंदर शंखका रूप बनाये एक जलचर पंचजन नाम बड़ा दैत्य रहता है ॥ ४० ॥

अवश्य वही ले गया होगा. यह सुनतेही तुरंत प्रभु जलके अंदर घुस, उसे मार, पेट फाड़, देखें तौ उसके पेटके अंदर बालकको नहीं देखा ॥ ४१ ॥ उसके शरीरका शंख ले, रथपै आय, यमराजकी प्यारी पुरी संयमिनीमें जाय, ॥ ४२ ॥ भगवानने बलदेवजीके साथ शंख बजाया, शंखका शब्द सुनतेही प्रजाको दंड देनेवाले यमराजने ॥ ४३ ॥ उनकी भक्तिसे अतिसमृद्ध बड़ी पूजा की

आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ॥ जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥ तदंगप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ॥ ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥ ४२ ॥ गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ शंखनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ ४३ ॥ तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ॥ लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबंधनम् ॥ आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥ तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ॥ दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥

और नम्र हो, सब जीवोंके अंतर्यामी श्रीकृष्णसे कहा कि–हे लीलासे मनुष्यरूप ! हे विष्णु ! हमें क्या आज्ञा है ? हम आपकी क्या सेवा करें ?॥४४॥ श्रीभगवान बोले कि–महाराज ! अपने कर्मोंके बंधनसे बंधेहुए गुरुपुत्रको आप यहां लाये हो, सो हमारी आज्ञा शिरपर चढ़ाय, उसे ले आओ ॥ ४५ ॥ जो आज्ञा कह, यमराजने ला, उसे हाजिर किया. तद इन दोनों यदुश्रेष्ठोंने

---

१ न कहो कि–यह पंचजन नामका शंख कौन है ? तहां कहे हैं कि शंख, चक्र–आदि ए सब पहलेही भगवत्के उपांग हैं परंतु उन्होंमेंभी इस शंखने बड़ी पदवी पाई. तद इसके मनमें कोई दिन ऐसा अभिमान हुआ कि–मेरी समान रूपवान् तथा भाग्यवान् कोईभी नहीं है. क्योंकि–जो श्रीमुखका अधरामृत लक्ष्मीजीका दुर्लभ है यानी जिसके मिलनेकी अभिलाषा वे अहर्निश किया ही करतीं हैं और मैं उसीको पान करता हूं अतएव मेरे समान कोई नहीं. ऐसा इसका अहंकार देख, लक्ष्मीजीने श्राप दिया. कि–रे दुष्टबुद्धि ! तू दैत्य होगा. बस वही यह समुद्रके अंदर पंचजन नामका दैत्य हुवा. और वैरभावसे फेर भगवत्को प्राप्त हुवा. क्योंकि जिसकी ज्योति [जीवात्मा] परमात्मा श्रीकृष्णजीमें [illegible]

गुरुपुत्रको ला, अपने गुरुको सौंप, फिर गुरुजीसे विनती की कि–वर मांगिये ॥ ४६ ॥ तद गुरुजी बोले कि– हे वत्स ! आपने गुरुदक्षिणा बहुतही अच्छी दी; आपसे जिसके शिष्य हैं उसके मनोरथ पूर्ण क्यों न होवें ? क्यों शेष रह जायं ॥ ४७ ॥ हे वीरो ! तुम अपने घर जाओ, तुम्हारी पवित्र कीर्ति होवे, इस लोकमें तथा परलोकमें तुम्हारे वेद सदा सफल होवें ॥ ४८ ॥ हे तात ! ऐसे गुरुसे आज्ञा पाय, मेघसा शब्द करते और पवनसे वेगवान रथमें बैठ, अपनी पुरीको पीछे आये ॥ ४९ ॥ रामकृष्णको देख, सब प्रजा आनंदयुक्त हुई. क्योंकि बहुत दिनोंसे इनके दर्शनमें अंतर पड़ गया था, जैसे

गुरुरुवाच ॥ सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ॥ को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥ ४७ ॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ॥ छंदांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४८ ॥ गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ॥ आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥ समनंदन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ अपश्यंत्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे गुरुपुत्रानयनंनाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृष्णीनां प्रवरो मंत्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥ शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥ तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकांतिनं क्वचित् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥

गया हुआ धन पीछा आ जाय और आनंद होता है वैसा प्रजाको आनंद हुआ ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ छिआलीसवें अध्यायमें उद्धवजीको व्रजमें पठाय, उनकी वाणीद्वारा श्रीकृष्णने नंद और यशोदाजीका सोच निवृत्त किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठ, साक्षात् बृहस्पतिके शिष्य बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी श्रीकृष्णके प्यारे सखा और मंत्री थे ॥ १ ॥ शरणागतोंकी आर्ति हरनेवाले हरिभगवानने एक समय अपने प्यारे एकांत भक्त उद्धवजी-

१ दोहा–एक समय व्रजवासकी, सुरति करी हरि राय ॥ निजजन निजकै जानिकै, उद्धव लियो बुलाय ॥ १ ॥

का हाथसे हाथ पकड़कर, कहा कि– ॥ २ ॥ हे उद्धवजी ! हे सौम्य ! आप व्रजमें जाय, हमारे माता–पिता प्रसन्न हों वैसे करो और गोपियोंके जो मेरे वियोगका संताप है. उसेभी मेरे संदेशोंसे शांत करो ॥ ३ ॥ उन्होंने सब पतिपुत्र–आदि छोड़, केवल मोमेंही मन लगा रक्खा है और उनका जीवन प्राण मैंही हूं; जो मेरे वास्ते इसलोक तथा परलोकके साधन छोड़ बैठते हैं, उनका भरण पोषण मैं करता हूं ॥ ४ ॥ हे मित्र ! प्यारोंसे प्यारा मैं दूर बैठा हूं. इस लिये वे गोकुलकी स्त्रियां विरहके मारे उत्कंठासे विव्हल हो, मोहित होतीं हैं ॥ ५ ॥ और बहुधा मैंने आते समय पीछा आनेके लिये संदेसे कहला दिये थे, जिससे वे

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ॥ गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥ ३ ॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदेहिकाः ॥ ये त्यक्तलोकधर्माश्च यदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ॥ स्मरंत्योऽग विमुह्यंति विरहौत्कंठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥ धारयंत्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथंचन ॥ प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त उद्धवो राजन्संदेशं भर्तुरादृतः ॥ आदाय रथमारुह्य प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ ७ ॥ प्राप्तो नंदव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ ॥ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ॥ धावंतीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥

गोपियां किसी प्रकार बड़े कष्टसे प्राण धारणभी करतीं हैं; यदि उनका आत्मा उनके शरीरमें होता तो विरहके तापसे अवश्य दग्ध हो जाता. परंतु वह मुझमें है, इसीसे वे किसी तरह जीतीं हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– महाराज ! उद्धवजीको यह बात कही, तो तुर्त वे अपने स्वामीका संदेशा शिरपर धर, रथपरं चढ़, नंदरायजीके गोकुलको रवाना हुए ॥ ७ ॥ सूर्यास्त होते श्रीमान् उद्धवजी नंदरायजीके व्रजमें पहुँचे, उस समय पीछे आते पशुनके खुरोंकी रजसे उनका रथ आच्छादित होगया ॥ ८ ॥ ॥ ८ ॥ वहां रजवाली गायोंके वास्ते मदोन्मत्त बैल आपसमें लड़ते नाद करते थे, थनोंका भार रहतेभी गैयां अपने बछरोंके

१ दोहा– कृष्ण वचन ऐसे कह्यो,उद्धव तुम सुनि लेहु ॥ नन्द यशोदा आदि लै, जा व्रजको सुख देहु ॥ १ ॥
२ दोहा– रथहु जोरि उद्धव चले, अतिआनँद मनकाम ॥ दिनकर घर प्रापति भये, गये नन्दके गाम ॥ १ ॥
३ दोहा–चहुँ दिशि गोधन आवहीं, वृषभानुनकी [illegible]

सामने दौड़ीं जातीं थीं ॥ ९ ॥ इधर उधर सुफेद गौनके बछरे कूदते फांदते शोभा देते थे. गौनको दुहनेके वास्ते 'छोड़, ला, पकड़' ऐसे चारों शब्द ओर सुनायी देतेथे और वेणु बाज रहे थे ॥ १० ॥ और सुंदर वस्त्र, आभूषण पहरे गोप और गोपियां राम–कृष्णके मंगलिक चरित गातीं शोभा देतीं थीं ॥ ११ ॥ और गोपोंके घरोंमें अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण, पितर, देवता इनकी धूप, दीप, पुष्प इनसे पूजा होनेसे भारी सुंदरता छा रही थी ॥ १२ ॥ चारों ओर फूला हुआ वन, जिसमें पक्षी कूज रहे थे और भौंरे गुंज

इतस्ततो विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मंडितं सितैः ॥ गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥ १० ॥ गायंतीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ॥ स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥ ११ ॥ अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ॥ धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥ सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णैः पद्मषंडैश्च मंडितम् ॥ १३ ॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ॥ नंदः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियाऽऽर्चयत् ॥ १४ ॥ भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ॥ गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥ कच्चिदंग महाभाग सखा नः शूरनंदनः ॥ आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥ १६ ॥

रहे थे और कमलोंके बनमें हंस और कारंडव (जलमुर्गे) पक्षी व्याप्त हो रहे थे, जिसकी अद्भुत शोभा बनी थी ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णके प्यारे अनुचर उद्धवजीको आते देख, समीप आ, प्रसन्न हो, मिल, नंदरायजीने कृष्णही हैं ऐसे मानके, उनकी पूजा की ॥ १४ ॥ खीर भोजन कराय, पलँगपर सुखपूर्वक बिठलाय, पांव चापने–आदि क्रियानसे श्रम निवृत्त होनेके अनंतर पूंछा कि–॥ १५ ॥ हे मित्र ! हे महाभाग ! हमारे मित्र शूरके पुत्र वसुदेवजी कष्टसे मुक्त हो, पुत्रआदि अपने कुटुंबके साथ बंधुनसे

१ दोहा– गोदोहन मोहन तिया, टेरत लै लै नाम ॥ गोरज उड़ि अम्बर लगी, छबि पावत नँदगाम ॥ १ ॥

२ दोहा– अपनी अपनी मण्डली, मिले ग्वालके वृन्द ॥ मुरली मधुर बजावहीं गावहिं गुण गोविन्द ॥ १ ॥

३ दोहा–कर गहि ग्रहको ले चले, सुतसनेहके भाय ॥ अशन बसन बहुविध दिये, निजमन्दिर पधराय ॥ १ ॥ अरु चन्दन बहु पुहुप, जल, धूप दीप इत्यादि ॥ विधिपूर्वक पूजा करी, सुखशय्या कुसुमादि ॥ १ ॥

४ दोहा–नन्द यशोदा प्रीतिसों, पूंछन लागे बात ॥ शूरसेनके पुत्रकी, कहो परमकुशलात ॥ १ ॥

वेष्टित भला कुशल तो हैं ? ॥ १६ ॥ बहुत आच्छा हुआ, जो पापी कंस छोटे भाइयोंके साथ अपनेही पापसे मारा गया; जो सदा धर्मशील भलेमानुस यदुवंशियोंसे वैर रखता था ॥ १७ ॥ भला कभी कृष्ण हमें याद करते हैं ? और माता, सुहृत, सखा, गोप आपही जिसके नाथ हैं ऐसे व्रज, गौ, वृंदावन और गोवर्धन पर्वत इन्हेंभी स्मरण करते हैं ? ॥ १८ ॥ भला कृष्ण स्वजनोंसे मिलनेको एकवारभी आवेंगे ? जब आवेंगे तब सुन्दर नासिकायुक्त और सुन्दर मंदहास्य व नेत्रवाले उनके मुखका

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ॥ साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७ ॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ॥ गोपान् व्रजं चाऽऽत्मनाथं गावो वृंदावनं गिरिम् ॥ १८ ॥ अप्यायास्यति गोविंदः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ॥ तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥ दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः ॥ दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलाऽपांगनिरीक्षितम् ॥ हसितं भाषितं चांग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुंदपदभूषितान् ॥ आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥ मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ॥ सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ॥ अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥

दर्शन करेंगे ॥ १९ ॥ देखो, महात्मा श्रीकृष्णने दावानल, वायुसहित वर्षा, अरिष्टासुर, अघासुर औरभी अनेक दुरत्यय मृत्युनसे हमारी रक्षा की ॥ २० ॥ हे मित्र ! हम श्रीकृष्णके पराक्रम, लीलासे कटाक्षसहित देखना, हँसना व भाषण इनका स्मरण करते हैं, तद हम सब काम भूल जाते हैं, ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णके चरणचिन्होंसे अलंकृत नदी, पर्वत और वनके प्रदेश जो उनके क्रीड़ाके स्थान हैं, उन्हें देखते हैं, तद हमारा मन तद्रूप हो जाता है ॥ २२ ॥ गर्गाचार्यजीके कहनेके अनुसार राम-कृष्ण देवतानके बड़े कार्यके लिये इहां उत्तम देव प्रगट हुए हैं. ऐसे मैं मानता हूं ॥ २३ ॥ जैसे सिंह पशुनको मारे, वैसे जिन्होंने दश

१ दोहा—भली भई सेनासहित, कृष्ण कियो हत कंस ॥ यादिनते सुख पावहीं, मात पिता यदुवंस ॥ १ ॥

हजार हाथियोंके बराबर बलवाला कंस, दोनों मल्ल, कुवलयापीड़ हाथी, इनको लीलाहीसे मार दिया ॥ २४ ॥ तीन ताल लंबा, बड़ा दृढ़, धनुष उसे जैसे हाथी लकड़ीको तोड़े, वैसे एक हाथसे तोड़ डाला और सातदिनतक गोवर्धन पर्वत धारण किया ॥ २५ ॥ प्रलंब, धेनुक, अरिष्टासुर, तृणावर्त, बकासुर-आदि दैत्य जो देवता और दैत्योंको जीतनेवाले थे, उन्हें जिसने इहां लीलासे मार गिराये ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-श्रीकृष्णचंद्रमें प्रेमबुद्धिवाले नंदरायजी ऐसे स्मरण कर, अति-उत्कंठित और प्रेमके प्रसरसे विव्हल हो, चुप हो गये ॥ २७ ॥ यशोदाने ज्यों वर्णन कियेजाते पुत्रके चरित सुने, त्यों उस-

तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ॥ बभंजैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥ प्रलंबो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः ॥ दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य नंदः कृष्णानुरक्तधीः ॥ अत्युकंठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥ यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ॥ शृण्वंत्यश्रूण्यवास्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥ तयोरित्थं भगवति कृष्णे नंदयशोदयोः ॥ वीक्ष्यानुरागं परमं नंदमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ॥ नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुंदः पुरुषः प्रधानम् ॥ अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिन्जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् ॥ निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥

के आंसू बहने लगे. और स्नेहसे स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा ॥ २८ ॥ इस प्रकार नंदरायजी और यशोदाका भगवान् श्रीकृष्णमें परमप्रेम देख, आनंदके साथ उद्धवजीने नंदरायजीसे कहा कि-॥ २९ ॥ उद्धवजी बोले कि- हे मान देनेवाले ! आप दोनों निश्चय सब प्राणिनमें सराहनेयोग्य हो, क्योंकि सब जगतके गुरु नारायणमें आपने ऐसी बुद्धि की है ॥ ३० ॥ राम व कृष्ण ये दोनों जगतके बीज और कारण, प्रधान और पुरुषरूप हैं, सब शरीरोंमें प्रवेश कर, उन उन उपाधियोंसे भिन्न भिन्न मालूम होते जीवोंके नियंताभी येही पुराणपुरुष हैं ॥ ३१ ॥ हे महात्मा ! मनुष्य, प्राण जानेके समय क्षणमात्रभी अपना शुद्ध मन

जिनमें रक्खे तो तुर्त कर्मोंकी वासनाका त्याग कर, ज्ञानी और शुद्ध सत्वमय हो, परमगतिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ उन सर्वके आत्मा और कारणरूप, कारणसे जिन्होंने मनुष्यशरीर धारण किया है ऐसे भगवानमें आप दोनों निरंतर भाव रखते हो, अब आपके दूसरा कौन कृत्य अवशेष रहा ? ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णचंद्र थोड़े कालमें व्रजमें पधारेंगे, वे भक्तोंके पति भगवान् यहां आय, माता पिता आपको प्रसन्न करेंगे ॥ ३४ ॥ सब यादवोंके बैरी कंसको मार, रंगभूमिके बीच, श्रीकृष्णचंद्रने आपके पास आ, जो कहा था. उस प्रतिज्ञाको सत्य करेंगे ॥ ३५ ॥ हे महाभागो ! आप खेद मत करो, श्रीकृष्णको आप तुर्त देखोगे;

तस्मिन्भवंतावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ॥ भावं विधत्तां नितरां महात्मन्किंवाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ॥ प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान्सात्वतांपतिः ॥ ३४ ॥ हत्वा कंसं रंगमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ॥ यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥ मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमंतिके ॥ अंतर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ नह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियोऽवास्त्यमानिनः ॥ नोत्तमो नाधमो वाऽपि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ॥ नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८॥ न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ क्रीडार्थः सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ॥ क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हंत्यजः ॥ ४० ॥

क्योंकि काष्ठमें जैसे अग्नि रहता है, तैसे वे सब जीवोंके हृदयमें विराजते हैं ॥ ३६ ॥ अहंतारहित और समदृष्टि उस परमेश्वरके न तो कोई अतिप्यारा है, न कोई अप्रिय है, न उत्तम है, न अधम है और न कोई विषम है ॥ ३७ ॥ उसके न माता, न भार्या, न पिता, न पुत्र–आदि, न अपना, न पर, न देह और न जन्म है ॥ ३८ ॥ इसके न कोई कर्म है, तौभी लोकमें केवल भक्तोंकी रक्षाके वास्ते और क्रीड़ा करनेको ऊंच नीच और मिश्र योनिमें प्रगट होवे है ॥ ३९ ॥ आप निर्गुण हैं तौभी सत्व, रज–तम इन तीनों गुणोंको धारण करते हैं और क्रीडारहित हैं, तौभी क्रीडा करते गुणोंसे जगतको रचते हैं पालते हैं. और

संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे घूमते पुरुषको अपनी फिरती दृष्टिसे पृथ्वी फिरती मालूम होती है और चित्तके कर्म करते उसमें अध्यासके कारण जैसे आत्मा कर्म करता मालूम होता है तैसे सृष्टि स्थिति संहार सब मायासे होते हैं तौभी मानों परमात्मा है ऐसे मालूम होता है, ॥ ४१ ॥ ये भगवान् श्रीकृष्ण आपहीके पुत्र नहीं हैं, ये ईश्वर सबके पुत्र आत्मा, माता और पिता हैं ॥ ४२ ॥ जो देखने और सुननेमें आता है, भूत, भविष्यत्, वर्तमान, स्थावर, जंगम, बड़ी, छोटी, कोईभी वस्तु जो कहनेमें आती है, वह भगवानविना नहीं है वेही सर्वरूप और सबके परमार्थरूप हैं ॥ ४३ ॥

यथा भ्रमरिका दृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ॥ चित्ते कर्तरि तत्राऽऽत्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः ॥ सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ॥ विनाऽच्युताद्वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥ एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नंदस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ॥ गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्वास्तून्समभ्यर्च्य दधीन्यमंथन् ॥ ४४ ॥ ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकंकणस्रजः ॥ चलन्नितंबस्तनहारकुंडलत्विषत्कपोलारुणकुंकुमाननाः ॥ ४५ ॥ उद्गायतीनामरविंदलोचनं व्रजांगनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ॥ दध्नश्च निर्मंथनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममंगलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदिते सूर्ये नंदद्वारि व्रजौकसः ॥ दृष्ट्वा रथं शातकौंभं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! ऐसे नंदरायजी और भगवानके अनुचर उद्धवजीके बातें करते करते वह सारी रैन बीत गयी, गोपियां उठ, दीपक लगाय, वास्तुका पूजन कर, दहीं मथने लगीं ॥ ४४ ॥ उस समय वे गोपियां अनेक कंकण जिनमें पहिरे हुए हैं ऐसे हाथोंसे रज्जु खैंचतीं थीं, नितंब, स्तन, हार ये हालते थे, कपोल कुंडलसे शोभायमान थे, मुखपर अरुण केसर चर्ची हुई थी और आभूषणोंकी मणियां दीपकके प्रकाशसे चमकतीं थीं, जिससे वे विशेष शोभा देतीं थीं ॥ ४५ ॥ जो व्रजांगनानने भगवानका यश गाना प्रारंभ किया, उसकी धुनि स्वर्गतक पहुंची, जिसके बीच बीच दही मथनेका शब्दभी सामिल था, जिस धुनिसे सब दिशानके अमंगल नष्ट किये जाते थे ॥ ४६ ॥ भगवान् सूर्यके उदय होतेही व्रजके द्वारपर सुवर्णसे मँढ़ा

१ दोहा–बात कहत बीती निशा, तमचर कीन्हा गान ॥ मानो गरजन मेघकी, घरघर दधिमंथान ॥ १ ॥

रथ देख, यह किसका है ? ऐसे सब व्रजवासी कहने लगे ॥ ४७ ॥ क्या अक्रूर तो नहीं आगया है ? जो कंसके कार्यको साधनेवाला है, कमलनयन श्रीकृष्णको मथुरा पुरी ले गया॥४८॥ इसका स्वामी कंस जो मरगया है, क्या उसे अपने मांसके पिंड देने आया है ऐसे स्त्रियोंके बातें करते नित्यका आन्हिक कृत्य कर, उद्धवजी आये ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० म० द० पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ॥ सैंतालीसवें अध्यायमें, श्रीकृष्णकी आज्ञासे उद्धवजी गोपियोंको समझाय, तत्वका उपदेश कर, मथुरा गये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–श्रीकृष्णके अनुचर उद्धवजी

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ॥ येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥ किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ॥ इति स्त्रीणां वदंतीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० महा० दशमस्कंधे पूर्वार्धे नंदशोकापनयनंनाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलंबबाहुं नवकंजलोचनम् ॥ पीतांबरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविंदं मणिमृष्टकुंडलम् ॥ १ ॥ शुचिस्मिताः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ॥ इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदांबुजाश्रयम् ॥ २ ॥ तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ॥ रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ॥ भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥

कि–जिनकी लंबी भुजा हैं, नवीन कमलसे नेत्र हैं, शोभायमान मुखारविंद हैं, उन्हें पीतांबर पहिरे, कमलोंकी माला धारण किये, उज्वल कुंडल झलकाये देख, सब व्रजांगना आपसमें कहने लगीं कि–यह कौन है ?॥ १ ॥ यह सुंदर रूपवान् पुरुष भगवानकासा बाना बनाये और अलंकार धारण किये, कहांसे आया ? और किसका है ? ऐसे उन्हें भगवानके चरण कमलोंका अनुचर समझ, उत्कंठित हो, मंद मंद हँसती गोपियोंने उन्हें घेर लिया ॥ २ ॥ वे सब गोपियां विनयसे नम्र हो, लज्जासहित हास्य, देखना और मधुर वचनआदिसे अच्छीतर सत्कार कर, एकांतमें आसनपर बिठलाय, उन्हें श्रीकृष्णका संदेशा लानेवाला जानकर, पूंछने लगीं कि– ॥ ३ ॥ हम आपका श्रीकृष्णके पार्षद आये जानतीं हैं, भगवानने आपको अपने माता पिताको प्रसन्न रखनेको यहां भेजा है ॥ ४ ॥

क्योंकि- बंधुनके स्नेहका संबंध छोड़ना मुनि लोगोंकोभी कठिन हो जाता है, इस व्रजमें माता पिता विना दूसरेका स्मरण करें, ऐसा हमें नहीं दीखता ॥ ५ ॥ दूसरोंके साथ जो मित्रता है वह कितनी ? केवल स्वार्थ सधे तबतक, जैसे पुरुष स्त्रियोंके साथ और भौंरे पुष्पोंके साथ रखते हैं, वह केवल स्वार्थहीकी है ॥ ६ ॥ जैसे वेश्या निर्धनको, प्रजा असमर्थ राजाको, विद्या पढ़नेके बाद शिष्य आचार्यको, ऋत्विज दक्षिणा मिलनेके बाद यजमानको, ॥ ७ ॥ पक्षी फलहीन वृक्षको, अतिथि भोजन

अन्यथा गोत्रजे तस्य रमणीयं न चक्ष्महे ॥ स्नेहानुबंधो बंधूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥ अन्ये-ष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडंबनम् ॥ पुंभिः स्त्रीषु कृता यद्वत्सुमनस्स्विवषट्पदैः ॥ ६ ॥ निःस्वं त्यजंति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ॥ अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७ ॥ खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ॥ दग्धं मृगास्तथाऽरण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥ इति गो-प्यो हि गोविंद गतवाक्कायमानसाः ॥ कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥ गायंत्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ॥ तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ १० ॥ काचि-न्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायंती कृष्णसंगमम् ॥ प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

करनेके बाद घरको, हरिण जलेहुए जंगलको तज देते हैं, तैसे जारपुरुष प्रीतिमती स्त्रीको भोग कर, तज देता है ॥ ८ ॥ श्री-शुकदेवजी बोले कि-श्रीकृष्णचंद्रके दूत उद्धवजीके व्रजमें पधारनेपर गोपियोंने इसतरह लोकव्यवहार तज दिया, क्योंकि उनके तन, मन, वचन सब उन्हीमें लगे हुए थे ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने बाल्य और किशोर अवस्थामें जो चरित किये थे, उनका स्मर-ण कर कर, प्रिय कर्मोंको गातीं लज्जा छोड़, रुदन करने लगीं ॥ १० ॥ कोई एक गोपी भगवानके संगमका ध्यान करती भौंरे-को देख, उसे प्यारेका भेजाहुआ दूत कल्पना कर, यह वक्ष्य वक्ष्यमाण वचन बोली, यानी भौंरेके मिससे उद्धवजीको कहने

१ उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ॥ सरहस्यं तदंगं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १ ॥ अर्थ–जो ब्राह्मण शिष्यको यज्ञोपवीत करके, रहस्यसहित तथा शिक्षादि अंगसहित वेदको पढ़ावे उसे आचार्य कहते हैं ॥ १ ॥

लगी ॥ ११ ॥ गोपी बोली कि–हे भ्रमर ! हे कपटीके मित्र मेरे चरणोंका स्पर्श मत करे, क्योंकि तेरे दाढ़ी मूंछ सपत्नीके कुचोंसे मर्दित भगवानकी वनमालाकी केसरसे रंगे हुए हैं, इसीलिये भगवान् उन्हीं मानवतियोंको प्रसन्न रक्खें, पर यादवोंकी सभामें इस बातकी अवश्य हँसी होती होगी. जिसका तू ऐसा दूत है ॥ १२ ॥ जैसा तू है, वैसाही तेरा स्वामी है, जैसे तू पुष्पोंकी सुगंध ले, तुर्त उन्हें त्याग देता है. तैसे श्रीकृष्णनेभी मोहित करनेवाला अपना अधरामृत एकवार पिलाय, हमें छोड़ दिया. अरे ! लक्ष्मीजी इनके चरणकमलकी कैसे सेवा करती हैं ? मैं जानती हूं कि–भगवानकी झूंठी बातोंसे लक्ष्मीजीका

गोप्युवाच ॥ मधुप कितवबंधो मा स्पृशांघ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः ॥ वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडंब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥ सकृदधरसुधा स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवादृक् ॥ परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपिबत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह बहु षडंघ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ॥ विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयंतीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृंभस्य याः स्युः ॥ चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥

मनभी हरण हो गया होगा ॥ १३ ॥ हे भ्रमर ! यहां हमारे सामने वारंवार यदुपतिका पुरातन गान क्यों करता है ? क्योंकि हमने तो घर बारभी छोड़ दिया है, श्रीकृष्णकी जो नवीन सखियां हैं, उनके आगे जाकर, श्रीकृष्णके प्रसंगका गान करे. जिनके कामज्वर भगवान् शांत करते हैं. वे प्यारी सखियां तुझे अपेक्षित देवेंगी ॥ १४ ॥ हे कपटी ! स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें कौन स्त्रियां हैं ? जो उन्हें दुर्लभ हों, क्योंकि उनका सुंदर हास्य और भ्रुकुटीका विलास ऐसाही है. जब लक्ष्मीजीभी उनके चरणरजकी सेवा करतीं हैं तो, हम उनके सामने क्या चीज हैं ? तौभी भगवान्से जाकर, इतना कह देना कि–' जो पुरुष

दीनपर दया करे, वही महात्मा और बड़ा यशस्वी कहलाता है' ॥ १५ ॥ मेरे पैरोंमें शिर मत रख, मैं तेरे सब लटके जानती हूं. हां, तू भगवान्से सीख कर, दूतकर्म और प्रियवचनरचनामें बड़ा होश्यार हो गया है. हम कि जिन्होंने भगवान्के वास्ते संतान पति और परलोकको तज दिया. उन्हें इन चंचलचित्त कृष्णने त्याग दिया, तो अब उनके साथ हमारे क्या मेल मिलाप करना है ?॥ १६ ॥ रामावतारमें इसने सिकारीकी तरह क्रूरतासे वानरराज बालीको बेधा, स्त्रीके वश हो, इच्छा करती शूर्पणखाके नाक कान काट, उसको विरूप किया. तैसेही वामन–अवतारमें काकसा आचारण कर, बलिराजाकी भेंट पूजा ले, उसीको

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुंदात् ॥ स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन् ॥ १६ ॥ मृगयुरिव कपींद्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृतविरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ॥ बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टय द्ध्वांक्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीला कर्णपीयूषविप्रुट् सकृददनविधूतद्वंद्वधर्मा विनष्टाः ॥ सपदि गृहकुटुंबं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहंगा भिक्षुचर्यां चरंति ॥ १८ ॥ वयमृतमिव जिह्म व्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥ ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमंत्रिन्भण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥ प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुंधे माननीयोऽसि मेंऽग ॥ नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वंद्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥

बांध दिया, इसीलिये इस कालेकी मित्रतासे मैं अघायी, तौभी उसके कथारूप अर्थका तजना तो कठिन है ॥ १७ ॥ जिन्होंने जिस भगवान्के चरितरूप कर्णामृतके एक कणका एकवारभी स्वाद ले लिया है, वे रागद्वेषको छोंड़, भीख मांगे फिरते हैं. तौभी उनकी बातका प्रसंग तो हमसे छोंड़ा नहीं जाता ॥ १८ ॥ जैसे कृष्ण हरिणकी स्त्रियां भोरी हरिणियां व्याधके गायनको निष्कपट मान, बाणसे घायल हो, केवल पीड़ाही देखतीं हैं. तैसे हे दूत ! हमभी इस कपटी कृष्णके कहनेको सत्य मान, नखक्षतआदिसे घायल हो; नखस्पर्शसे अतीव वृद्धिंगत कामदेवसंबंधी पीड़ा वारंवार देखतीं हैं. इसलिये कोई दूसरी बात कह ॥ १९ ॥ हे प्यारेके मित्र ! क्या तू पीछा आया ? क्या प्यारेने तुझे पीछा भेजा है ? तू क्या चाहता है ? जो चाहिये सो

मांग. क्योंकि तू मेरे सन्मान करनेके योग्य है. हे मित्र ! जिनका समागम छोड़ना बहुत कठिन है, ऐसे भगवान्‌के पास तू हमें कैसे ले जायगा ? हे सौम्य ! उनके वक्षस्थलमें तो लक्ष्मी नाम स्त्री साथही रहती हैं. अतएव हमारा क्या प्रयोजन है ? ॥ २० ॥ हे सौम्य ! भला अभी श्रीकृष्ण मथुरामें विराजें हैं ? कभी पिताका घर, बंधु और गोपोंकाभी स्मरण करते हैं ? कभी हम दासियोंकी बात चीत करते हैं ? अगरसी सुगंधिवाली भुजा हमारे शिरपर कब धरेंगे ? ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-उद्धवजी यह सब सुन, श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसावाली गोपियोंको प्यारे श्रीकृष्णके संदेशोंसे सांत्वना देते यह

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बंधूंश्च गोपान् ॥ क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते भुजमगुरुसुगंधं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ॥ सांत्वयन्प्रियसंदेशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥ उद्धव उवाच ॥ अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ॥ भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥ दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानि च ॥ हित्वाऽवृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ॥ विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥

वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ २२ ॥ उद्धवजीने कहा कि- अहो ! तुम कृतार्थ हुई. तुम जगत्‌के पूज्य हो, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णमें जिनका चित्त इसप्रकार लगा हुआ है ॥ २३ ॥ दान, व्रत, तप, होम, वेदपाठ, संयम और अनेकप्रकारके कल्याणके साधनोंसे आखिर श्रीकृष्णचंद्रमें भक्ति साधी जाती है. यानी इन सब साधनोंका फल भक्ति है ॥ २४ ॥ यह अतिउत्तम काम है, जो तुमने उत्तमश्लोक भगवानमें सर्वोत्तम भक्ति प्रवृत्त की. देखो भक्ति मुनिलोगोंकोभी अतिदुर्लभ है ॥ २५ ॥ यह बहुत अच्छा किया. जो पति, पुत्र, देह, स्वजन, घर बार, सब छोड़ छाड़ श्रीकृष्णनाम परपुरुषका स्वीकार किया ॥ २६ ॥ हे महाभागो ! तुमको विरहसे भगवान्‌की एकांतभक्ति प्राप्त हुई और इस भक्तिको दिखलाकर, मुझपर बड़ा अनुग्रह किया ॥ २७ ॥

तुमको सुख देनेवाला प्यारेका संदेशा सुनो, हे कल्याणियो ! जो लेकर, भगवान्के रहस्य काम करनेवाला मैं आया हूं ॥ २८ ॥ उद्धवजीने गोपियोंसे भगवान्के श्रीमुखके वचन कहे. श्रीभगवानने कहा कि– तुम्हारे मेरे साथ जो वियोग है. वह किसीतरह सब प्रकारसे नहीं है; क्योंकि जैसे आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ये पांचो तत्व स्थावर जंगम सब पदार्थोंमें रहे हैं. तैसे मैंभी मन, प्राण, भूत, इंद्रिय और गुणोंके अधिष्ठानरूपतासे सबमें व्याप्त हूं ॥ २९ ॥ और अपनी मायाके प्रभावसे अपने स्वरूपमेंही भूत, इंद्रिय और गुणरूपसे आत्माहीसे आत्माको रचता हूं, पालता हूं, और संहार करता

श्रूयतां प्रियसंदेशो भवतीनां सुखावहः ॥ यमादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित् ॥ यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥ तथाऽहं च मनःप्राणभूतेंद्रियगुणाश्रयः ॥ २९ ॥ आत्मन्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ॥ आत्ममायानुभावेन भूतेंद्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥ आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ॥ सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥ येनेंद्रियार्थान्ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ॥ तन्निरुंध्यादिंद्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥ एतदंतः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ॥ त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रांता इवापगाः ॥ ३३ ॥ यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ॥ मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥

हूं ॥ ३० ॥ क्योंकि आत्मा तो शुद्ध है. किसी गुणमें संबद्ध नहीं है. अतएव सर्वगुणोंसे अलग है. और ज्ञानरूप है, स्वप्न, जाग्रत् सुषुप्तिरूप मायाजन्य मनकी वृत्तियोंसे विश्व, तैजस और प्राज्ञ रूपसे प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ जैसे जाग्रत् पुरुष स्वप्नको मिथ्याही जानता है. तैसे विद्वान्लोग जिनको मिथ्या मानते हैं, ऐसे विषयोंका जिससे चिंतवन किया जाता है और चिंतवन करते इंद्रियोंपै असर होता है, उस मनको आलस्य छोड़, रोकना चाहिये ॥ ३२ ॥ बेद, अष्टांगयोग, सांख्य, संन्यास, स्वधर्म, इंद्रियनिग्रह, सत्य इन सबका फल मानोनिग्रहही है, जैसे नदियां आखिर समुद्रमें जाकर, गिरतीं हैं ॥ ३३ ॥ जो मैं प्यारा तुम्हारी दृष्टिसे दूर रहता हूं. सो तो मेरे चिंतवनकी कामनाके अर्थ. और तुम्हारा मन मोमें लग जाय इस लिये रहता हूं ॥ ३४ ॥

जैसा स्त्रियोंका चित्त पति परदेश हो उसमें रहता है, तैसा समीपवर्ती नेत्रगोचर पतिमें नहीं लगता ॥ ३५ ॥ सकल वृत्तियोंको त्याग, समग्र मन मोमें लगाय, मेरा सदा स्मरण करतीं तुर्त मोको प्राप्त हो जाओगी ॥ ३६ ॥ हे कल्याणियो ! मैं जिस समय वृंदावनमें रात्रिमें रासक्रीड़ा करता था. उससमय जिनको उनके स्वामियोंने रोक रक्खा था अतएव रासक्रीड़ामें सामिल न हो सकीं, वे मेरे पराक्रमका चिंतवन कर, उसी क्षण मोको प्राप्त हुईं ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- ऐसे प्रियतमका संदेशा सुन, वे व्रजांगना प्रसन्न हो, भगवान्‌के संदेशसे पीछी स्मृतिको प्राप्त हो, उद्धवजीसे कहने लगीं ॥ ३८ ॥ गोपियोंने कहा कि-

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ॥ स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षिगोचरे ॥ ३५ ॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ॥ अनुस्मरंत्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन्व्रज आस्थिताः ॥ अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिंतया ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ॥ ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्संदेशागतस्मृतीः ॥ ३८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ॥ दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ॥ प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ॥ नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥ ४१ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविंदः प्रस्तुते क्वचित् ॥ गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथांतरे ॥ ४२ ॥

यादवोंको दुख देनेवाला दुष्ट कंस अनुचरोंके साथ मारा गया. यह बहुत अच्छा हुवा, जिनके सब मनोरथ पूर्ण हुए ऐसे बंधुनके साथ अभी भगवान् आनंदसे विराजें हैं, यह बहुतही अच्छा हुआ ॥ ३९ ॥ हे सौम्य ! हमारे स्नेह और लज्जासहित हास्य व उदार निरीक्षणसे पूजित भगवान्‌को हमपै प्रीति करनी चाहिये. क्या वह प्रीति मथुराकी स्त्रियोंपै की जाती है ? ॥ ४० ॥ रतिके सब प्रकारोंके ज्ञाता, उत्तम स्त्रियोंके प्यारे और उनकी वाणी और विलासोंसे पूजित भगवान् उन स्त्रियोंमें कैसे आसक्त न होवेंगे ? ॥ ४१ ॥ हे साधु ! नगरकी स्त्रियोंकी सभामें यथेष्ट बात चीत करते किसी प्रसंगमें हम गँवारियोंकाभी कभी स्मरण करते हैं ? ॥ ४२ ॥

कुमुद, कुंदपुष्प और चंद्रमासे शोभायमान वृंदावनमें झांझरके झंकारवाली रासमंडलीमें हमारे साथ भगवान् जिन रातोंमें रमे थे. और हमने उनकी मनोहर स्तुति की थी, उन रातोंकोभी कभी भगवान् याद करते हैं ? ॥ ४३ ॥ जैसे इंद्र मेघसे वनको संजीवन करता है. तैसे उन्हींके दियेहुए शोकसे संतप्त हमको अपने गात्रका स्पर्श दे, संजीवन करनेको भला श्रीकृष्णचंद्र यहां पधारेंगे ? ॥ ४४ ॥ अब कृष्ण यहां क्यों आवेंगे ? राज मिलगया, शत्रु मरगये, सब संबंधियोंका समागम हुआ और राजकन्यानसे विवाह हुआ ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीके पति पूर्णकाम और सदा पूर्णस्वरूप महात्मा भगवान्के वनमें रहनेवाली हमसे

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृंदावने कुमुदकुंदशशांकरम्ये ॥ रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ॥ संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेंद्रो वनमबुंदैः ॥ ४४ ॥ कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ॥ नरेंद्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥ किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ॥ श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिंगला ॥ तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाऽप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ॥ अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरंगान्न च्यवते क्वचित् ॥ ४८ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ॥ संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥४९॥ पुनः पुनः स्मारयंति नंदगोपसुतं बत ॥ श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥५०॥ गत्या ललितयोदारहासलीलाऽवलोकनैः ॥माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे॥५१॥

या दूसरी स्त्रियोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ४६ ॥ पिंगला वेश्यानेभी कहा है कि,- आशाका तज देना यही परमसुख है, देखो हम इस बातको जानतीं हैं. तौभी आशाका तजना कठिन है ॥ ४७ ॥ उत्तमश्लोक भगवान्की एकांतवार्ताको कौन छोड़ सक्ता है ? देखो, यद्यपि आप लक्ष्मीकी इच्छा नहीं करते तौभी कभी लक्ष्मी श्रीअंगसे च्युत नहीं होती ॥ ४८ ॥ हे प्रभु ! बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण जिनमें रमे थे वे नदियां, पर्वत, वनके प्रदेश, गौ, वेणुनाद ॥ ४९ ॥ ये सब वारंवार नंदकुमारका स्मरण करवाते हैं, लक्ष्मीके आस्पद उनके चरणचिन्ह देख, हमभी विस्मरण नहीं कर सक्तीं ॥ ५० ॥ सुंदर गति, उदार हास्य और

लीलासहित अवलोकन, मधुर वाणी, इनसे हमारा चित्त हरण किया गया है अब उसे हम कैसे भूलें ? ॥ ५१ ॥ हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे दुःखनाशन ! हे गोविंद ! दुःखसागरमें मग्न गोकुलका उद्धार करो ॥ ५२ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि– भगवान्‌के संदेशोंसे उनका विरहका ताप निवृत्त हो गया. तद उन गोपियोंने श्रीकृष्णचंद्रको परमेश्वर समझ और उन्हें अपनी आत्मा जान, उद्धवजीकी पूजा की ॥ ५३ ॥ गोपियोंका ताप मिटानेको उद्धवजीभी वहां भगवान्‌की लीलासंबंधी कथाका गान करते कुछ महीनोंतक रहे. और गोकुलको आनंद दिया ॥ ५४ ॥ उद्धवजी जितने दिन नंदराय-

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ॥ मग्नमुद्धर गोविंद गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥ ५२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः ॥ उद्धवं पूजयां चक्रुर्ज्ञात्वाऽऽत्मानमधोक्षजम् ॥ ५३ ॥ उवास कतिचिन्मासान्गोपीनां विनुदन् शुचः ॥ कृष्णलीलाकथां गायन्रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ यावंत्यहानि नंदस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः ॥ व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ॥ ५५ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् ॥ कृष्णं संस्मारयन्रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादिगोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम् ॥ उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविंद एव निखिलात्मनि रूढभावाः ॥ वांछंति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनंतकथारसस्य ॥ ५८ ॥

जीके व्रजमें रहे व्रजवासियोंके उतने दिन भगवान्‌की बातचीतसे क्षणके समान निकल गये ॥ ५५ ॥ हरिभक्त वे उद्धवजी नदी, वन, पर्वतोंकी गुफा और फूलेहुए वृक्ष देख देख, प्रश्न–आदिसे भगवान्‌का स्मरण करवाते व्रजवासिनको आनंद देतेभये ॥ ५६ ॥ इसप्रकार गोपियोंकी श्रीकृष्णके आवेशसे चित्तकी कायरता देख, परमप्रसन्न हो, उद्धवजी उन्हें प्रणाम कर, मनमें ऐसे कहने-लगे कि– ॥ ५७ ॥ पृथ्वीमें केवल इन गोपियोंकाही जन्म सफल है; क्योंकि संसारसे डरेहुए मुनिलोग और हम, सबके आत्मा भगवान्‌में जैसा भाव रखनेकी इच्छाही रखते हैं वैसा भाव इन गोपियोंको दृढ प्राप्त हो गया है, भगवान्‌की कथामें रंग

लग जाय तो, पीछे ब्राह्मणजन्म और कर्मोंकाभी क्या काम है ? ॥ ५८ ॥ जंगलमें रहनेवाली और व्यभिचारके दोषसे दुष्ट ये स्त्रियां कहां ? और परमात्मा श्रीकृष्णमें ऐसे दृढ भावकी प्राप्ति कहां ? जो अज्ञानी आपको साक्षात् भजते हैं, तो ईश्वर आपभी उनको पीछा भजते हैं और सेवन कियेहुए अमृतके समान कल्याण करते हैं ॥ ५९ ॥ रासोत्सवमें अपना भुजदंड उनके कंठमें डाल, व्रजकी गोपियोंपर भगवान्‌ने जो कृपा करी, तैसी कृपा एकांतरतिवाली लक्ष्मीजीपरभी नहीं हुई. और कमलसी सुगंधि-

क्वेमा स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावाः॥नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः॥५९॥ नायं श्रियोंऽग उ नितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोऽन्याः ॥ रासोत्सवेऽस्य भुजदंडगृहीतकंठलब्धाशिषां य उदगाद्व्रजवल्लवीनाम्॥६०॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥ या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥ या वै श्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविंदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ६२ ॥ वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ॥ यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नंदमेव च ॥ गोपानामंत्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥

वाली और कांतियुक्त अप्सरानपरभी नहीं हुई, तद दूसरी स्त्रियोंकी तो बातही क्या ? ॥ ६० ॥ अहो ! इनके चरणरजको सेवन करनेवाले गुच्छक, लता, औषधी इनमेंसेभी व्रजमें मैं कोई हो जाऊं तो ठीक, क्योंकि इन्होंने अपने दुस्त्यज स्वजन और धर्मको तज, भगवान्‌की पदवीका शरण लिया है, जिस पदवीको श्रुतियांभी ढूंढा करती हैं ॥ ६१ ॥ जिन्होंने लक्ष्मीजीसे पूजित और पूर्णकाम, ब्रह्मादिक देवता और योगेश्वरोंसे हृदयमें चिंतित, भगवान्‌के चरणकमलको रासक्रीडामें स्तनोंपर धर, आलिंगन कर, अपने तापको निवृत्त किया, उन गोपियोंकी चरणरज मेरे शिरपर पड़े ऐसी मैं आशा रखता हूं ॥ ६२ ॥ नंदरायजीके व्रजकी स्त्रियोंकी पादरजको मैं वारंवार वंदन करता हूं. जिनका भगवत्कथासंबंधी गान त्रिलोकीको पवित्र करता है, ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी

बोले कि–फिर गोपियां, गोप, नंद और यशोदासे सीख मांग, उद्धवजी पुरी जानेको रथपै चढ़े ॥ ६४ ॥ उनके जाते स-मय नंद–आदि सब गोप हाथोंमें अनेक प्रकारकी भेटें ले, आंखोंमें अश्रु डारते कहने लगे कि– ॥ ६५ ॥ हमारे मनकी वृत्तियां श्रीकृष्णके चरणके आश्रित रहैं, वाणी नामस्मरण करे और काय उसको प्रणाम करनेआदिमें लगा रहे ॥ ६६ ॥ ईश्वरेच्छासे हम कर्मोंसे हर कहीं भ्रमण करते रहैं, पर मंगल आचरण और दानके प्रभावसे हमारी बुद्धि सदा परमेश्वर कृष्णमें बनी रहे ॥ ६७ ॥ महाराज ! ऐसे गोपोंने श्रीकृष्णकी भक्तिसे उद्धवजीका सत्कार किया, उद्धवजीभी कृष्णसे पालित मथुरापुरीको पीछे आये॥ ६८॥

तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ॥ नंदादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥ मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादांबुजाश्रयाः ॥ वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ॥ मंगलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ॥ उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याऽऽह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥ वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ सैरंध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥ महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ॥ मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ॥ धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गंधैरपि मंडितम् ॥ २ ॥

कृष्णको प्रणाम कर, व्रजवासियोंकी भक्तिका उद्रेक यह, सुनाया और वसुदेवजी, बलदेवजी और उग्रसेनजी इनके भेंटें अर्पण कीं ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ॥ अड़तालीसवें अध्यायमें कृष्णनें कुब्जाको रमण कराय और अक्रूरजीके घर जाय, उन्हें हस्तिनापुर पठाया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–सबके आत्मा सर्वदर्शी भगवान् कामदेवसे संतप्त कुब्जाको जान, उसका प्रिय करनेकी इच्छा कर, उसके घर पधारे॥ २॥ कैसा है वह घर कि जिसमें अमूल्य सामग्री सजी है, कामदेवकी उद्दीपक

सामा धरी है, मोतीनकी माला, पताका, वितान और शयन-आदि सब सजे हैं सुगंधि धूप, दीप, फूलोंकी माला और चंदन इनसेभी शोभायमान है ॥ २ ॥ घरपै आते हुए श्रीकृष्णचंद्रको देख, वह तुर्त आसनसे उठ, संभ्रमयुक्त हो, यथायोग्य भगवानसे मिल, सखियोंके साथ प्रशस्त आसन-आदिसे उसने भगवान्का सत्कार किया ॥ ३ ॥ तैसेही उद्धवजीकाभी अच्छीतरह सत्कार किया. तद् वे आसनका स्पर्श कर, धरतीपर बैठ गये, फिर लोकरीति दिखलाते तुरंत आप अमूल्य कुब्जाके शयनमें पधारे ॥ ४ ॥ वहभी स्नान, लेपन, वस्त्र, आभूषण, फूलोंकी माला, सुगंध (अतर आदि) तांबूल

गृहं तमायांतमवेक्ष्य साऽऽसनात्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा ॥ यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं स-भाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥ तथोद्धवः साधुतयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चास-नम् ॥ कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूष-णस्रग्गंधतांबूलसुधासवादिभिः ॥ प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥ आहूय कांतां नवसंगमह्रिया विशंकितां कंकणभूषिते करे ॥ प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमे-ऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥ साऽनंगतप्तकुचयोरुरसस्तथाऽक्ष्णोर्जिघ्रंत्यनंतचरणेन रुजो मृजंती ॥ दोर्भ्यां स्तनांतरगतं परिरभ्य कांतमानंदमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्रा-प्य दुष्प्रापमीश्वरम् ॥ अंगरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥

और अमृतजैसे पीनेके मादक पदार्थोंसे अपने शरीरको सजाय, लाजभरी लीलासे हँसती और विलाससहित देखती श्रीकृष्ण-चंद्रके पास आयी ॥ ५ ॥ नवीन संगमसे शंकायुक्त उस सुंदरीको अपने पास बुलाय, कंकणसे शोभायमान उसका हाथ पकड़, शयनमें सुलाय, उसके साथ रमण किया अहो! देखो कुब्जाका भाग्य, जिसने चंदन अर्पण करनेके सिवाय दूसरा कोई पुण्य नहीं किया था ॥ ६ ॥ मानों भगवान्के चरणको सूँघती हो वैसे उस चरणको ले, अपने कामदेवसे तप्त स्तनोंपर, वक्षःस्थलपर तथा नेत्रोंपर धर, संताप दूर करती उस कुब्जाने स्तनोंके अंतर्गत आनंदमूर्ति प्यारेकों जोरसे दोनों हाथोंसे पकड़, छातीसे चिपकाय, बहुत दिनोंका संताप तज दिया ॥ ७ ॥ मोक्षके पति, अतिदुर्लभ परमेश्वरको केवल चंदन अर्पण कर, वह

कुब्जा प्राप्त हुई, पर उस मंदभागिनीने अपनी जीभसे यह मागा कि-॥ ८ ॥ हे प्यारे ! कुछ दिन तो मेरे साथ आप यहां रहें. और मुझे रमण करावें, क्योंकि हे कमलनयन ! मैं आपका संग नहीं छोड़ सक्ती ॥ ९ ॥ मान देनेवाले सबके ईश्वर भगवान् उसे इच्छित वर दे, मान कर, आपभी उससे सत्कार पाय, उद्धवजीके साथ सर्वसंपदायुक्त अपने घर आये ॥ १० ॥

आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ॥ रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं संगं तेऽबुरुहेक्षण ॥ ९ ॥ तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा स मानदः ॥ सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदर्चितम् ॥ १० ॥ दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ॥ किंचिच्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबांधवान् ॥ प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनंद्य च ॥ १३ ॥ ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ॥ पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥

सबके ईश्वरोंके ईश्वर दुराराध्य भगवान्की आराधना कर, जो मनुष्य तुच्छ विषयसुख मांगता है. उसे मूर्ख समझना चाहिये ॥ ११ ॥ फिर प्रभु, बलदेवजी और उद्धवजीको संग ले, अक्रूरजीके घर पधारे. कुछ तो अपना काम था और उन्हें प्रसन्नभी करना था ॥ १२ ॥ वे अक्रूरजी उन मनुष्योंमें श्रेष्ठ अपने बंधुनको दूरसे देख, प्रसन्न हो, झट उठ खड़े हुए और मिल, अभिवंदन करने लगे ॥ १३ ॥ और राम-कृष्णको प्रणाम किया. तद उन्होंनेभी अक्रूरजीको प्रणाम किया, तदनंतर आसनपर

---

१ भला इस कूबरीने पूर्वजन्ममें ऐसी केसी दुर्घट तपस्या करी थी कि-जिसके प्रभावसे देवतावोंकोभी दुर्लभ ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् इसपर प्रसन्न हुये ? तहां कहे हैं कि-कोई समय जिन्होंका पंचवटी विश्राम ऐसे कोटानकोट कामके समान अभिराम रामजीको देख, मोहित हो, यह शूर्पणखा नाम रावणकी बहन पासमें गई तो इन्हें निर्मोह तथा एकपत्नीव्रत देखके, मारे क्रोधके ज्यों सीताको खानेको दौड़ी त्योंही लक्ष्मणजीने प्रभुकी अनुमतिसे बड़ी फुर्तीके साथ तलवारसे उसके कान और नाक काट लिये. पीछे वह नकटी लंकामें जाय, सब रावणको सुनाय, फेरभी रामजीमें मन लगाय, पुष्करजीमें आय, शंकरजीका ध्यान करती हुई दशहजार वर्ष इकदम तपस्या करती रही. कि-जिससे प्रसन्न हुये श्रीशंकरजीने प्रगट हो, 'वरंब्रूहि' (वर मांग) ऐसा कहा तब इसने हाथ जोड़, यही बर मांगा कि-श्रीरामजी मेरे पति होवें. यह सुन, शिवजीने कहा कि-वह तेरी मनोकामना तुर्त तो फलैगी. लेकिन द्वापरयुगके अंतमें श्रीमथुरापुरीमें यह तेरी कामना पूरी होगी. वही यह शिवजीके वरदानसे श्रीकृष्णजीकी परमप्यारी कूबरी हुई ॥ १० ॥

बिठलाय, विधिवत् पूजा की ॥ १४ ॥ महाराज ! चरण पखार, वह जल अक्रूरजीने शिरपर धारण किया और भेंट, दिव्य वस्त्र , गंध माला, उत्तम आभूषण ॥ १५ ॥ इनसे पूजन कर, शिरसे वंदन कर, चरण अपनी गोदीमें ले, धीरे धीरे चापते अक्रूरजीने विनयसे नम्र हो, रामकृष्णसे कहा कि–॥ १६ ॥ बहुत अच्छा हुआ. जो पापी कंस अनुचरोंके साथ मारा गया, यह आपका कुल केवल आपहीके प्रतापसे दुरंत कष्टसे छूट, वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ आप जगतके कारण, जगद्रूप, प्रधानपुरुष हो, आपके विना न तो कारण है और न कार्य है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपहीके रचेहुए इस जगतमें आप

पादावनेजनीरापो धारयन् शिरसा नृप ॥ अर्हणेनांबरैर्दिव्यैर्गंधस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसाऽऽनम्य पादावंकगतौ मृजन् ॥ प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥ दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ॥ भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद्दुरंताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥ युवां प्रधान-पुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ भवद्भ्यां न विना किंचित्परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ॥ ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥ यथा हि भूतेषु च-राचरेषु मह्यादयो योनिषु भांति नाना ॥ एवं भवान्केवल आत्मयोनिष्वात्माऽऽत्मतंत्रो बहुधा वि-भाति ॥ २० ॥ सृजस्यथो लुंपसि पासि विश्वं रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ॥ न बध्यसे तद्गुण-कर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बंधहेतुः ॥ २१ ॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदा-ऽऽत्मनः स्यात् ॥ अतो न बंधस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥

अपनी शक्तियोंसे प्रविष्ट हो, देखने और सुननेमें आते पदार्थरूप अनेक प्रकारसे भासते हो ॥ १९ ॥ जैसे अपनेही रूपांतरसे अभिव्यक्त, चराचर प्राणियोंमें, पृथ्वी–आदि पंच महाभूत कारण रहते अनेक रूप भासते हैं, तैसे केवल, आत्मा और स्वतंत्र आप अपने कार्यरूप सर्व पदार्थोंमें अनेक प्रकार भासते हो ॥ २० ॥ आपही अपनी शक्तिरूप सत्व, रजतम इन तीनों गुणोंसे जगतको रचते, पालते और संहार करते हो, तदपि आप उन गुण और कर्मोंसे नहीं बंधते. क्योंकि आप ज्ञानरूप हो. आपके बंधनका कारण कहां ? ॥ २१ ॥ आपके तो बंधनकी शंकाका संभवही कहां ? पर विद्योपाधिजीवात्माकेभी वस्तुतः

जन्म और जन्ममूलक भेद नहीं है, क्योंकि देहादिक उपाधिका किसीतरह निरूपण नहीं हो सक्ता, अविद्याके अभावसे न तो आपके बंध है. और न मोक्ष है. जो बंध मोक्ष हमें दीख पड़ते हैं. वे केवल हमारे अज्ञानहीसे हैं ॥ २२ ॥ जगतके हितके वास्ते आपका कहाहुआ यह पुरातन वेदमार्ग जब जब असत् पाखंडके पंथोंसे बाधित हो जाता है. तद आप सत्वगुणसे अवतार धारण करते हो ॥ २३ ॥ हे प्रभु ! ये आप आज अपने अंशके साथ भूमिका भार उतारनेको यहां वसुदेवजीके घरमें प्रगट हुए हो, कि–जिससे दैत्योंके अंशरूप राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणी संख्यावाली सेनाका वध होवे और इस यदुकु-

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः ॥ बाध्येत पाखंडपथैरसद्भिस्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥ २३ ॥ स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ॥ अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेवपितृभूतनृवेदमूर्तिः ॥ यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः पंडितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ॥ सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥ दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ॥ छिंध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥

लका जगतमें यश फैले ॥ २४ ॥ हे ईश ! आज हमारे घर पवित्र हुए. हे अधोक्षज ! कारण यह कि–जिनमें जगतके गुरु आप प्रविष्ट हुए, आप कैसे हैं ? जिनके चरणप्रक्षालनका जल (गंगा) त्रिलोकीको पवित्र करता है. और सब देवता, पितर, भूत और राजा ये जिन्होंकी मूर्ति हैं ॥ २५ ॥ हे प्रभु ! कौन बुद्धिमान् आपको छोड़, दूसरेकी शरण जाय ? क्योंकि आप, भक्तप्रिय, सत्यवक्ता, सबके हितकारी और कृतज्ञ हो; और आपही भक्तलोगोंकी सब कामना परिपूर्ण करते हो. फिर हितकारी व जिसका कभी उपचय अपचय नहीं है ऐसा आत्मस्वरूपभी आपही देते हो ॥ २६ ॥ हे विष्णु ! देवता और

योगेश्वरभी जिनके स्वरूपको बड़े प्रयत्नसे प्राप्त हो सक्ते हैं, उन आपने आज यहीं हमको दर्शन दिया, यह बहुत अच्छा हुआ, अब आपकी मायामय जो पुत्र, स्त्री, धन, संबंधी, घर देह-आदिमें हमारे मोहरूप बेड़ी है, उसे शीघ्र छेदन करो ॥ २७ ॥ भक्त अक्रूरजीने ऐसे भगवान्का यजन कर, स्तुति की. तद मंदहास्यके साथ मानों वाणीसे मोहित करते हों, ऐसे अक्रूरजीसे बोले ॥ २८ ॥ श्रीभगवानने कहा कि-आप हमारे गुरु, चचे और सदा सराहने योग्य बंधु हो, हम तो आपकी अनुकंपनीय प्रजा हैं, हमारा आपको पालन पोषण करना चाहिये ॥ २९ ॥ आपजैसे महाभाग अतिउत्तम पुरुषोंकी उन

इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान्हरिः ॥ अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बंधुश्च नित्यदा ॥ वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकंप्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ॥ श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ३० ॥ नह्यम्मयानी तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्यरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ३१ ॥ स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयश्चिकीर्षया ॥ जिज्ञासार्थं पांडवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते बालाः सहमात्रा सुदुःखिताः ॥ आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसंत इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥ तेषु राजांऽबिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ॥ समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोंऽधदृक् ॥ ३४ ॥

पुरुषोंको अवश्य सेवा करनी चाहिये, जो मनुष्य अपना कल्याण करना चाहते हों. देवता तो मतलबी यार होते हैं. पर साधुलोग दूसरेपर कृपा करते हैं ॥ ३० ॥ हां जलमय तीर्थ और मृत्तिका व पाषाणमय देवता नहीं ऐसा नहीं है. तौभी साधु पुरुषोंमें और उनमें बड़ाही अंतर है देखो; वे तो बहुत काल सेवा करनेसे पावन करते हैं. और साधुलोग दर्शनमात्रसेही पवित्र करते हैं ॥ ३१ ॥ वे आप हम बंधुनके बीच अतिश्रेष्ठ हो, इसलिये पांडवोंके कल्याण करनेकी इच्छासे उनका वृत्तांत जाननेको आप हस्तिनापुर पधारे ॥ ३२ ॥ पिता पांडुके मरनेसे वे बालक माताके साथ अतिदुःखी हैं. और ऐसाभी सुना है. कि-राजा धृतराष्ट्रके बुलानेसे वे अपने पुरमें रहते हैं ॥ ३३ ॥ परंतु कृपणचित्त, अंधा धृतराष्ट्र अपने कुपुत्रोंके

वश होनेके कारण उन भाईके पुत्रोंमें समभावसे नहीं वर्तता ॥ ३४ ॥ इसलिये पधारो. और अब ठीक है या बेठीक है उस
हालको दर्याफ्त करो, मालूम होनेके बाद जैसे बंधुनको सुख होगा वह उपाय करेंगे ॥ ३५ ॥ भगवान् ईश्वर श्रीकृष्ण ऐसे
अक्रूरजीको आज्ञा कर, उवद्धजी और बलदेवजीके साथ पीछे अपने घर पधारे ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे
पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८ ॥ ॥ उनचासवें अध्यायमें अक्रूरजी हस्ति-
नापुर जाय, अपने भाईके पुत्रोंमें राजाकी विषम दृष्टि देख, पीछे आये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–वे

गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ॥ विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥
इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ॥ संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥ इति
श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स
गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेंद्रयशोऽकितम् ॥ ददर्श तत्रांबिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥ सहपुत्रं
च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ॥ कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पांडवान्सुहृदोपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसंग-
म्य बंधुभिर्गांदिनीसुतः ॥ संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥ उवास कतिचिन्मा-
सान्राज्ञो वृत्तविवित्सया ॥ दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छंदानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ तेज ओजो बलं वीर्यं
प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ॥ प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥

अक्रूरजी हस्तिनापुर गये, जो पुरुवंशी राजाओंके बनाये मंदिरआदिसे शोभायमान था. वहां धृतराष्ट्र, भीष्मजी, विदुरजी, कुं-
ती, बाल्हीक, सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पांडव और दूसरे सुहृदोंको देखा ॥ १ ॥ २ ॥
अक्रूरजी सब बंधुनके साथ यथायोग्य मिले, उन्होंने अक्रूरजीसे बंधुनका कुशल पूंछा और अक्रूरजीने उससे कुशल प्रश्न किया
॥ ३ ॥ राजाका वृत्तांत जाननेको कुछ महीनोंतक आप वहां रहे, क्योंकि राजा धृतराष्ट्रके एक पुत्र कुपूत थे दूसरा वहभी धैर्य-
हीन और दुष्ट कर्णादिकोंके अनुसार चलता था ॥ ४ ॥ रहते रहते ज्ञात हुआ कि–पांडवोंके तेज, बल पराक्रम, शस्त्रआदिकी
निपुणता, विनय–आदि श्रेष्ठ गुणोंका और प्रजा जो उनसे राजी थी, इस बातकोभी दुष्ट दुर्योधनादि सहन नहीं करते थे ॥ ५ ॥

इसीलिये धृतराष्ट्रके पुत्रोंने विष देने-आदि जो अन्याय किये. वह सब वृत्तात कुंती और विदुरजीने इनको कहा ॥ ६ ॥ कुंती तो अपने भाई अक्रूरजीको आये देख, समीप आ, अपनी जन्मभूमिका स्मरण करती आसूं डारती इसप्रकार बोली कि- ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! मेरे माता, पिता, भाई, बहिनें, भाईयोंके पुत्र, कुलकी स्त्रियां, सखियां, भाईके पुत्र भतीज भक्तवत्सल शरण देनेवाले, श्रीकृष्ण ॥ ८ ॥ और कमलनयन बलरामजी कभी मेरे पुत्रोंकीभी याद करते हैं ? ॥ ९ ॥ मैं तो जैसे व्याघ्रोंके बीच

कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् ॥ आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥६॥ पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ॥ उवाच जन्मनिलयं स्मरंत्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७ ॥ अपि स्मरंति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ॥ भगिन्यो भातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ पैतृष्वस्रेयान्स्मरति रामश्चांबुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥ सपत्नमध्ये शोचंतीं वृकाणां हरिणीमिव ॥ सांत्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ॥ प्रपन्नां पाहि गोविंद शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥ ११ ॥ नान्यत्तव पदांभोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ॥ बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥ १२ ॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणंगता ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ॥ प्रारुदद्दुःखिता राजन्भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥

हरिणी आ गयी हो, वैसे शत्रुओंके बीच पड़ी शोच करती हूं सो क्या श्रीकृष्ण मुझे और पिताहीन मेरे बालकोंको अपने वचनोंसे सांत्वना देंगे ? ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगी ! हे विश्वात्मा ! हे विश्वके पालक ! हे गोविंद ! बालकोंके साथ क्लेश पाती शरणागत मेरी रक्षा करो ॥ ११ ॥ मोक्षके देनेवाले आपके चरणकमलोंके सिवाय मनुष्योंमें मुझे दूसरा कोई शरण नहीं दीखता, क्योंकि मनुष्य तो आप मृत्युरूप संसारसे डरते हैं ॥ १२ ॥ शुद्धस्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा, योगेश्वर, योगमूर्ति श्रीकृष्णको मैं प्रणामकरती हूं. हे प्रभु ! मैं आपके शरण आयी हूं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज

लगी ॥ १४ ॥ अक्रूरजी और बड़े यशस्वी विदुरजी कुंतीके साथ बराबर सुख व दुःखका अनुभव करते उसके पुत्रोंके जनक, धर्म-इंद्रादिकोंका प्रभाव कहकर, सांत्वना देते थे ॥ १५ ॥ जाते समय अक्रूरजीने बंधुनके बीच कुपुत्रोंका अनुसरण करनेवाले विषमदृष्टि राजा धृतराष्ट्रके निकट आ, रामकृष्णादिकोंने जो कहलाया था, वह सब कहा ॥ १६ ॥ अक्रूरजी बोले कि-हे विचित्रवीर्यके पुत्र ! हे कौरवोंके कीर्तिवर्धन ! भाई पांडु मरा, तब अभी आपको राजगद्दी मिली है ॥ १७ ॥ जो आप धर्मसे पृथ्वीकी पालना करोगे, तो प्रजाको

समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः ॥ सांत्वयामासतुः कुंतीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ॥ अवदत्सुहृदां मध्ये बंधुभिः सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥ अक्रूर उवाच ॥ भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन ॥ भ्रातर्युपरते पांडावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रंजयन् ॥ वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ॥ तस्मात्समत्वे वर्तस्व पांडवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥ नेह चात्यंतसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह ॥ राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायाऽत्मजादिभिः ॥ २० ॥ एकः प्रसूयते जंतुरेक एव प्रलीयते ॥ एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरंत्यन्येऽल्पमेधसः ॥ संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२ ॥

सुखभावसे राजी रक्खोगे, अपने बंधुनमें समदृष्टि रक्खोगे, तो आपका भला होगा. और जगतमें यश होगा ॥ १८ ॥ नहीं तो परलोकमें नरक और इहां दुःख भोगना पड़ेगा, इसलिये पांडवोंमें और अपने पुत्रोंमें समदृष्टि रक्खो ॥ १९ ॥ कभी किसीके साथ यहां सदा स्थिति नहीं है, महाराज ! स्त्री और पुत्रादिकोंकी तो क्या बात है ? पर अपना शरीरभी सदा साथ नहीं रहता ॥ २० ॥ देखो ! जीव अकेलाही तो जन्मता है. और एकही मरता है. अकेलाही पुण्यका और पापका भोग करता है ॥ २१ ॥ मूर्खका अधर्मसे संचय किया हुआ धन दूसरे पुत्रआदिके मिससे हर लेते हैं. जैसे मच्छीका जीवनभूत जल उसके बच्चे

ले लेते हैं ॥ २२ ॥ जिन्हें दीन और करुणापात्र समझ, आप अधर्मसे पोषण करता है. वे प्राण, धन और पुत्रादिक उस पोषणकर्ता मूर्ख मनुष्यको भोगका सुख प्राप्त न हुआ हो, उससे पहलेही तज देते हैं ॥ २३ ॥ फिर उनसे छोड़ाहुआ, अपने सच्चे स्वार्थको न जाननेवाला, वह मूर्ख प्रयोजन सिद्ध न होते स्वधर्मसे विमुख हो, अपने किये पापको साथ ले, घोर नरकमें पड़ता है ॥ २४ ॥ इसलिये हे राजा ! इस संसारको स्वप्न माया व मनोरथके समान जान, बुद्धिसे चित्तको वश कर, हे प्रभु ! शांत और समदृष्टि होओ ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्र बोले कि- हे अक्रूर ! आप जो कल्याणी वाणी कहते हैं. इस वाणीसे हम

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपंडितम् ॥ तेऽकृतार्थं प्रहिण्वंति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ॥ असिद्धार्थो विशत्यंधं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥ तस्माल्लोकमिमं राजन्स्वप्नमायामनोरथम् ॥ वीक्ष्यायम्याऽऽत्मनाऽऽत्मानं समः शांतो भव प्रभो ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ॥ तथाऽनया न तृप्यामि म-र्त्यः प्राप्य यथाऽमृतम् ॥ २६ ॥ तथाऽपि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ॥ पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ॥ भूमेर्भारावताराय यो-ऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं सृष्ट्वा गुणान्विभजते तदनुप्रविष्टः ॥ तस्मै नमो दुरवबोधविहारतंत्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥ २९ ॥

तृप्त नहीं होते, जैसे मरणधर्मा मनुष्यको अमृत मिल जाय और वह नहीं अघाता ॥ २६ ॥ हे सौम्य ! तौभी आपकी प्यारी और सत्यवाणी पुत्रकी प्रीतिके कारण विषम मेरे चंचल चित्तमें नहीं ठहरती. जैसे स्फटिकमणिमय सुदामा पर्वतपर दामिनी दमकतेही लीन हो जाती है स्थिर नहीं रहती ॥ २७ ॥ परमेश्वरकी इच्छाको कौन मनुष्य मिटा सक्ता है ? यानी उसकी इच्छाके प्रतिकूल कुछ नहीं होता. सब उसकी इच्छानुसार होता है. जिसने अभी पृथ्वीका भार उतारनेको यदुकुलमें अवतार धारण किया है ॥ २८ ॥ जो अपनी अतर्क्य मायासे इस जगतको रच कर, अंतर्यामीरूपसे अंदर प्रविष्ट हो, कर्म और कर्मोंके

फलका विभाग करता है और समझमें न आवे ऐसी लीलाहीसे रचेहुए संसाररूप चक्रको घुमाता है, उस परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि- वे अक्रूरजी ऐसा उस राजका अभिप्राय जान, बंधुनसे विदा

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ॥ सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥ शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥ पांडवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ॥ ३१ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसहस्र्यां संहितायां दशमस्कंधे पूर्वार्धे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥ पूर्वार्धं समाप्तिमगमत् ॥ ॥

हो, पीछे मथुरापुरी आये ॥ ३० ॥ महाराज ! राम व कृष्णसे पांडवोंविषयक धृतराष्ट्रके सब समाचार कहे, जिसलिये वे भेजे गये थे ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे दध्यङ्कुलोत्पन्नआसोपाज्ञातीयबलदेवात्मजरामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥

इति श्रीभागवते भाषया सहितो
दशमस्कंधपूर्वार्धः समाप्तः

पचासवें अध्यायमें भगवान्‌ने मानों जरासंधके भयसे समुद्रमें किला करवाय, अपने बंधुनको वहां पहुंचाया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- हे भरतश्रेष्ठ ! अस्ति और प्राप्ति नाम कंसकी रानियां पतिके मरनेसे दुःखी हो, अपने पिता जरासंधके घर गयीं ॥ १ ॥ दुःखी उन दोनोंने जा, मगधदेशके राजा पिता जरासंधसे अपने विधवा होनेका सब कारण निवेदन किया ॥ २ ॥ महाराज ! यह अप्रिय बात सुन, शोच और अमर्षयुक्त हो, उसने पृथ्वीके सब यदुवंशियोंको निर्मूल करना चाहा. और बड़ा भारी उद्योग किया ॥ ३ ॥ तेईस अक्षौहिणी सेना ले, यादवोंकी राजधानी मथुरापुरीको चारों ओरसे घेर

श्रीशुक उवाच ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥ मृते भर्त्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासंधाय दुःखिते ॥ वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ ॥ २ ॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ॥ अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चाभिसंवृतः ॥ यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत्सर्वतोदिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ॥ स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥ चिंतयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः ॥ तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ॥ मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥ अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुंजरैः ॥ मागधस्तु न हंतव्यो भूयः कर्त्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥

लिया ॥ ४ ॥ कारणसे मनुष्यमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णचंद्र मर्यादा उल्लंघन कर, आते समुद्रके समान आती उसकी सेनाको व उससे घिरीहुई पुरीको और भयसे व्याकुल अपने स्वजनको देख, देश व कालके अनुसार अपने अवतारके प्रयोजनका विचार करने लगे कि- ॥ ५ ॥ ६ ॥ 'क्या अभी सेनाको मारनाही उचित है ? अथवा सेनासहित जरासंधका बध करना योग्य है ? वा केवल जरासंधकोही मारना चाहिये ? ऐसे विकल्प कर, फिर निश्चय किया कि- अभीतो जरासंधकी लायी हुई वशवर्ती सब राजाओंकी सेनाही कि- जो पृथ्वीपर भाररूप है उसका संहार करना चाहिये ॥ ७ ॥ इक्कीस सहस्र आठसौ सत्तर रथ, उतनेही गजपति, पैंसठ सहस्र छःसौ दस अश्वपति और एक लाख नौ हजार साढ़ेतीनसौ पत्ति (पैदल) इसे अक्षौहिणी कहते हैं. अभी ऐसी

ऐसी अनेक अक्षौहिणी सेनाकोही मारना, पर जरासंधको मारना उचित नहीं. क्योंकि जो यह जीता रहेगा तो फिर उद्यम कर, सेना
इकट्ठी करेगा ॥ ८ ॥ मेरा जो यह अवतार है सो भूमिका भार उतारने, सत्पुरुषोंकी रक्षा करने और दुष्टोंको दंड देनेके वास्ते
है ॥ ९ ॥ मैं अन्यभी जो देह धारण करता हूं, सो समयपर बढ़तेहुए अधर्मनाशके निमित्तही धारण करता हूं ॥ १० ॥
भगवान्के इसतरह विचार करते अकस्मात् आकाशसे सूर्यसे प्रकाशमान सारथीसहित युद्धकी सामासे सजेहुए तुर्त दो रथ
उतरे ॥ ११ ॥ और उनके साथ दिव्य पुराने आयुधभी आये, उन्हें देख, भगवान्ने बलरामजीसे कहा कि- ॥ १२ ॥ ‘ हे

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ॥ संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥ अन्योऽपि
धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ॥ विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥ एवं ध्यायति
गोविंद आकाशात्सूर्यवर्चसौ ॥ रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥ आयुधानि च दि-
व्यानि पुराणानि यदृच्छया ॥ दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्याऽऽर्य व्यस-
नं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ॥ एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय
जह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर ॥ एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं
भूमेर्भारमपाकुरु ॥ एवं संमंत्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥ १५ ॥ निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ
बलेनाल्पीयसा वृतौ ॥ शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत्परसैन्यानां हृ-
दि वित्रासवेपथुः ॥ तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥ १७ ॥

आर्य ! हे प्रभु ! आप जिनकी रक्षा करते हो, उन यादवोंके संकटकी ओर निहारो. आपके वास्ते यह रथ और प्यारे शस्त्र
आगये हैं ॥ १३ ॥ रथपर चढ़, इस बलको मार, अपने स्वजनका इस दुःखसे उद्धार करो. हे ईश ! अपना अवतार केवल
इसीलिये है कि- सत्पुरुष कहीं दुखी न रहें. सदा सुखी हो जावें ॥ १४ ॥ तेईस अक्षौहिणीसेनारूप भूमिका भार दूर करो,
ऐसे वे दोनों भाई आपसमें सलाह कर, बख्तर, टोप, झिलम पहन, रथमें बैठ, अपने शस्त्र ले, थोड़ीसी सेना संग ले, पुरसे
बाहिर निकले, दारुक जिनके सारथी हैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्णने शंखका शब्द किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ उससे शत्रुओंकी सेनाके

हृदय त्राससे कांपने लगे; उन्हें देख, जरासंधने कहा कि- हे कृष्ण ! हे पुरुषोंमें अधम ! मैं तुझ अकेले बालकके साथ युद्ध करना नहीं चाहता; क्योंकि तुझसे युद्ध करते लाज आती है. हे मंद ! हे बंधुहत्यारा ! मैं तुझसे युद्ध नहीं करूंगा; तू जा. क्योंकि तू गुप्त रहनेवाला है ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे राम ! यदि तेरी हिम्मत हो तो धीरज धर. मुझसे युद्ध कर, या तो तू मेरे बाणोंसे विदीर्ण हो, अपने शरीरको छोड़कर, स्वर्ग जा, या मुझे मार ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि- शूर वीर बकवाद नहीं करते, जो होता है वह अपना पराक्रम कर दिखाते हैं. हे राजा ! तू आतुर है और तेरी मौत नगीच आगयी है इसलिये तेरे बचन-

न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ॥ गुप्तेन हि त्वया मंद न योत्स्ये याहि बंधुहन् ॥ १८ ॥ तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ॥ हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न वै शूरा विकत्थ्यंते दर्शयंत्येव पौरुषम् ॥ न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥ ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृज्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसा वृणोत् ॥ ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयंत्यो हरिरामयोर्मृधे ॥ स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचाऽर्दिताः ॥ २२ ॥ हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ॥ स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २३ ॥

पर हम ध्यान नहीं देते ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- जरासंधने उनके समीप आकर, अपनी बड़ी सेनासे, राम-कृष्णको फौज, रथ, ध्वजा घोड़े और सारथीके साथ घेर लिया, जैसे पवन, बादल और रेणुसे सूर्य व अग्निको घेर लेता है ॥ २१ ॥ गरुड़ व तालकी ध्वजाके चिन्हवाले रामकृष्णके रथोंको युद्धमें न देखकर, पुरीके अटालियां, महल, दरवाजोंपर चढ़ींहुई नगरकी नारियां शोचसे दुःखी हो, मूर्छित हो गयीं ॥ २२ ॥ शत्रुओंकी सेनारूप बादलसे गिरती बाणरूप तीक्ष्ण वृष्टिसे अतिपीड़ित अपनी सेनाको देख, भगवानने देवता और दैत्योंसे पूजित अपने शार्ङ्ग धनुषका टंकार शब्द किया ॥ २३ ॥

और भाथेमेंसे बाण निकाल, धनुषमें लगाय, धनुषको खैंच, जो आप तीक्ष्ण बाणोंका समूह चलाते हैं. और रथ, हाथी, घोडे और पत्तियोंका वध करते हैं. उस समय धनुष निरंतर अलातचक्रके समान दीखने लगा ॥ २४ ॥ कुंभस्थल विदीर्ण हो-कर, हाथी गिरे पड़ते हैं. अनेक घोड़ोंकी गर्दनें बाणोंसे कटी जाती हैं, रथोंके घोड़े मरे जाते हैं, ध्वजा टूटी जाती हैं. सारथी और रथी मरे जाते हैं. प्यादे, जो थे उनके भुजा, ऊरु व गर्दनें कटी जाती हैं ॥ २५ ॥ महाराज! जो हाथी, प्यादे, घोड़े, कटे जाते थे उनके देहोंसे सैकड़ों लोहूकी नदियां बहने लगीं; जिनमें भुज सांपसे जनाते थे, आदमियोंके शिर कच्छपसे नजर आते थे, मरेहुए

गृह्णन्निषंगादथ संदधच्छरान्विकृष्ण मुंचन्शितबाणपूगान् ॥ निघ्नन्रथान्कुंजरवाजिपत्तीन्निरंतरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकुंभाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकंधराः ॥ रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकंधराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामंगप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ॥ भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरंगायुधगुल्मसंकुलाः ॥ अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २७ ॥ प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ॥ विनिघ्नताऽरीन्मुसलेन दुर्मदान्संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २८ ॥ बलं तदंगार्णवदुर्गभैरवं दुरंतपारं मगधेंद्रपालितम् ॥ क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २९ ॥

हाथी टापूसे और घोड़े मगरसे दृष्टि आते थे, ॥ २६ ॥ हाथ व ऊरु मछलीसे, मनुष्योंके केश शेवालसे, धनुष तरंगसे, शस्त्र घाससे, ढालें भँवसरसी. और अमूल्य मणियोंके उत्तम आभूषण पत्थर और पँवारेसे नजर आते थे ॥ २७ ॥ युद्धमें बहतीं उन रुधिरकी नदियोंको देख देख, कायर घबराते थे. और शूर वीर परस्पर प्रसन्न होते थे. महाराज ! अमित तेजवाले बलदेवजीने-भी दुर्मद वैरियोंको मुसलसे मार, समुद्रके समान दुर्गम और भयानक उस जरासंधसे पालित अथाह व अपार सेनाका संहार किया; यह जो राम-कृष्णका चरित है सो केवल उनकी क्रीड़ा है, पराक्रम नहीं; क्योंकि वे जगदीश्वर हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

जो अनंतगुण भगवान् अपनी लीलासे त्रिलोकीकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार करते हैं, उन्होंने शत्रुपक्षको दंड दिया यह कोई आश्चर्य-की बात नहीं. तौभी मनुष्यावतार धारण करनेके कारण उनका मैं वर्णन करता हूं ॥ ३० ॥ सेना मर जानेसे जिसके केवल प्राणही शेष रह गये ऐसे महाबली रथहीन जरासंधको बलदेवजीने पकड़ा, जैसे सिंह पराक्रम कर, सिंहको पकड़े ॥ ३१ ॥ शत्रुओंको मारनेवाले जरासंधको वरुण और मनुष्योंके पाशोंसे बलदेवजी बांधने लगे. उन्हें देख, श्रीकृष्णचंद्रने निषेध किया; क्योंकि उससे आपके औरभी काम लेनेकी इच्छा थी ॥ ३२ ॥ वीर पुरुषोंके माननीय उस जरासंधको जब जगत्पति राम-

स्थित्युद्भवांतं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनंतगुणः स्वलीलया ॥ न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथाऽपि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राह विरथं रामो जरासंधं महाबलम् ॥ हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ॥ वारयामास गोविंदस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः ॥ तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ॥ स्वकर्मबंधप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३४ ॥ हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ॥ उपेक्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ॥ ३५ ॥ मुकुंदोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ॥ विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ॥ उपगीयमानविजयः सूतमागधबंदिभिः ॥ ३७ ॥

कृष्णने छोड़ा, तो उसने तप करनेका इरादा किया, पर मार्गमें राजालोगोंने धर्मके और नीतिके वचनोंसे समझाया और लौकिक रीतिसेभी समझाया कि–' आपकी जो यादवोंसे हार हुई, सो केवल कर्मबंधनसे हुई है. इसमें लाजकी बात कौन है ? ' ॥ ३३ ॥३४॥ सब सेना मरनेपर जद भगवानने उसे छोड़ दिया, तौ वह राजा जरासंध उदास हो, मगधदेशको गया ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी शत्रुओंकी सेनारूप समुद्रको पार उतर, अपनी अक्षत सेनाको संग लिये मथुरापुरीमें प्रवेश हुए, उस समय देवता फूल बरसाय, साधु ! साधु ! ऐसा कह, अनुमोदन करते थे ॥ ३६ ॥ संताप दूर होनेके कारण आनंदयुक्त मथुराके लो-

गोंके सामिल हो, सूत, मागध व बंदीजन आपका विजय गाते थे ॥ ३७ ॥ शंख, दुंदुभी, भेरी, तुरी, वीणा, वेणु, मृदंग, ऐसे
अनेक बाजे बजाते थे ॥ ३८ ॥ उस काल मथुरापुरीको देखनी चाहिये, मार्गमें छिरकाव हो गया है, पताकायें लगायीं गयीं
हैं, वेदघोषका नाद हो रहा है, उत्सवके कारण चारोंओर तोरण बँध रहे हैं. और लोग आनंदमें मग्न हैं ॥ ३९ ॥ स्त्रियां
भगवान्‌पै फूल, दही, चिउरा, अंकुर, बरसाय रहीं हैं और प्रीतिसे प्रफुल्लितनेत्र हो, स्नेहसहित दर्शन कर रही हैं ॥ ४० ॥
भगवान्‌नेभी वीर पुरुषोंके पहरनेका जो धन रणभूमिमें पड़ा था, वह सब अनंत धन लाकर, यदुराज उग्रसेनजीके अर्पण

शंखदुंदुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदंगानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥ ३८ ॥ सिक्तमार्गां हृ-
ष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ॥ निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३९ ॥ निचीयमानो ना-
रीभिर्माल्यदध्यक्षतांकुरैः ॥ निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वि-
त्तमनंतं वीरभूषणम् ॥ यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौ-
हिणीबलः ॥ युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥ अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृ-
ष्णतेजसा ॥ हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥ अष्टादशमसंग्राम आगामिनि तदं-
तरा ॥ नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥ रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ॥
नृलोके चाप्रतिद्वंद्वो वृष्णीन् श्रुत्वाऽऽत्मसंमितान् ॥ ४५ ॥

किया ॥ ४१ ॥ फिर इसीतरह राजा जरासंध उतनीही अक्षौहिणी सेना संग ले, सत्रह बेर चढ़ि आया और श्रीकृष्णसे पालित
यादवोंसे उसने संग्राम किया ॥ ४२ ॥ पर यादवोंने भगवान्‌के प्रभावसे सत्रह बेरही मार मार हटाया जब अपनी सेना मर
गयी, तब जरासंध शत्रुओंके हाथसे छूट, पीछा गया ॥ ४३ ॥ अठारहवीं बेर जरासंध तो आनेवाला था. उसके बीचही नारद-
जीका भेजा हुआ वीर कालयवन दीख पड़ा ॥ ४४ ॥ तीन करोड़ म्लेच्छोंको संग लिये आ, मथुरापुरी घेर ली, उसके आने-
का कारण यही था, कि–वह मनुष्यलोकमें अद्वितीय था, उससे कोईभी सामना नहीं करता था, उसने नारदजीके मुखसे यह

सुना कि–यादव आपके बराबरके हैं. सो उनसे जाकर, युद्ध करो ॥ ४५ ॥ उसे देख, बलदेवजीको सहाय ले, श्रीकृष्णचंद्र विचार करने लगे कि– "अहो ! यादवोंको दोनों तर्फसे कैसा बड़ा दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ आज तो इस महाबली कालयवनने हमें घेर लिया है और जरासंधभी आज, कल या परसोंतक आ जायगा ॥ ४७ ॥ आपन दोनोंके युद्ध करते यदि जरासंध आ जाय, तो या तो बंधुनको मार डाले. या वह बलवान् उन्हें पकड़, अपने नगर ले जाय ॥ ४८ ॥ इसलिये ऐसा किला बनाना चाहिये, जिसमें मनुष्य न जा सकें, बंधुनको वहां पहुँचाय, फिर कालयवनको मरवा देंगे" ॥४९॥ ऐसी सलाह

तं दृष्ट्वाऽचिंतयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् ॥ अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४६ ॥ यवनोऽयं निरुंधेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ॥ मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥ ४७ ॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागंता जरासुतः ॥ बंधून्वधिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४८ ॥ तस्माद्द्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ॥ तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४९ ॥ इति संमंत्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ॥ अंतःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाऽद्भुतमचीकरत् ॥ ५० ॥ दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ॥ रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तुविनिर्मितम् ॥ ५१ ॥ सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ॥ हेमशृंगैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजतारकुटैः कोष्ठैर्हेमकुंभैरलंकृतैः ॥ रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥

विचार, भगवान्ने समुद्रके बीच बारह योजनमें अतिअद्भुत किलारूप नगर बनवाया ॥ ५० ॥ इस नगरी (द्वारका) में विश्वकर्माकी तमाम कारीगरी और चातुरी दिख रही थी. राजमार्ग, चौहटे, गलियां ये सब घर–आदि बनानेमें अड़चण न आवे वैसे बनाये गये ॥ ५१ ॥ देवतासंबंधी वृक्ष, लतानके बगीचे और विचित्र बाग शोभा दे रहे थे. अतिऊंची स्फटिकमणिकी अटारियां और द्वारोंपर सोनेके अंडे शोभायमान हो रहे थे, ॥ ५२ ॥ रूपे और पीतलकी घुड़शाल और कोठार–आदि जो बनाये गये तिनपर कंचनके कलश लस रहे थे. अमूल्य मरकत मणिके स्थलवाले कंचनके घरोंके शिखर, माणिक–आदि रत्नों-

के बनाये गये थे ॥ ५३ ॥ देवतानके मंदिर और आकाशियोंकी सुंदर रचना बनी थी, चारों वर्णोंके लोग व्याप्त हो रहे थे और राजमहलोंसे वह अतिशोभा दे रही थी ॥ ५४ ॥ इंद्रने भगवान्‌के वास्ते सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष भेजे, जिस सभामें मनुष्य बैठा रहे. उसे भूख– प्यास– आदि देहके धर्म व्याप्त न होवें ॥ ५५ ॥ वरुणने जिनका एक कान श्याम है ऐसे मनसरीखे वेगवाले सुफेद घोड़े भेजे. कुबेरने अपनी विभूति जो आठ निधि हैं वे भेजे ॥ ५६ ॥ महाराज ! भगवानने इन देवतानको अपने अपने अधिकारकी सिद्धिके वास्ते जो कुछ ऐश्वर्य दिया था, वह सब भगवानके भूमिपै पधारनेपर

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ॥ चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मां पारिजातं च महेंद्रः प्राहिणोद्धरेः ॥ यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥ ५५ ॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयान् शुक्लान्मनोजवान् ॥ अष्टौ निधिपतिः कोशान्लोकपालो निजोदयान् ॥ ५६ ॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ॥ सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५७ ॥ तत्र योगप्रभावेन नीत्वा सर्वजनं हरिः ॥ प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमंत्रितः ॥ निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली विरायुधः ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे दुर्गनिवेशनंनाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तं विलोक्य विनिष्क्रांतमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥ दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥

उन्होंने पीछा अर्पण किया ॥ ५७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सब कुटुंबको अपनी योगमायाके प्रभावसे नगरमें पहुँचाय, प्रजाकी रक्षार्थ बलदेवजीको भलामन दे, उनसे सलाह मिलाय, केवल कमलोंकी माला पहिरे शस्त्र विनाही, पुरीके द्वारसे बाहिर निकले ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥ ॥ इक्यावनवें अध्यायमें भगवान्‌ने मुचुकुंदकी दृष्टिसे कालयवनको मरवाया. और मुचुकुंदने भगवान्‌की स्तुति करी. तद आपने उसपर कृपा करी. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– जैसे चंद्र उदय हुआ हो तैसे भगवान्‌को बाहिर निकलते

१ पद्मश्चैव महापद्मो मत्स्यकूर्मौ तथौदकः ॥ नीलो मुकुन्दः शंखश्च निधयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥ अर्थ–पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, औदक, नील, मुकुंद, शंख यही आठ निधियां हैं

देखा, कैसे हैं भगवान् ? अतिसुंदर, श्यामबरन, पीले पीतांबर पहरे; श्रीवत्सका चिन्ह वक्षःस्थलमें धारण किये, देदीप्यमान कौस्तुभ मणि कंठमें बांधे, मोटे और लंबे चार भुजा धरे, नवीन कमलके समान अरुण जिनके नेत्र हैं ॥ १ ॥ २ ॥ सदा आनंदयुक्त, शोभायुक्त, सुंदर कपोलवाला, सुंदरमंदहास्ययुक्त, मकराकृत कुंडल जिसमें झलक रहे हैं ऐसा मुखारविंद धारण किये ॥ ३ ॥ तिन्हें देख, वह मनमें विचार करने लगा कि- नारदजीने जो लक्षण कहे थे, वे सब इसमें पाये जाते हैं. श्रीवत्सका इसके चिन्ह है, चार भुजा हैं, कमलसे नेत्र हैं, वनमाला पहिरे है और अतिसुंदरभी है. तासों वासुदेव जिसे कहते हैं

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकंधरम् ॥ पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकंजारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ मुखारविंदं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवो ह्ययमितिपुमान्श्रीवत्सलांछनः ॥ चतुर्भुजोऽरविंदाक्षो वनमाल्यतिसुंदरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ॥ निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवंतं पराङ्मुखम् ॥ अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥ हस्तप्राप्तमिवाऽऽत्मानं हरिणा स पदेपदे ॥ नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकंदरम् ॥ ७ ॥ पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ॥ इतिक्षिपन्ननुगतो नैनं प्राप हताशुभः ॥ ८ ॥

वह पुरुष तो यही है, पर यह तो विनाशस्त्र पांवन जाय है, तासों मैंभी इसके साथ आयुधविना युद्ध करूंगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ कालयवन ऐसे निश्चय कर, विमुख हो, भागते हुए भगवान् कि- जिन्हें योगी लोगभी नहीं पहुंच सक्ते. उन्हें पकड़नेको लगा पीछे दौड़ने ॥ ६ ॥ भगवान् पद २ में आपको हाथ पहुंच जाय ऐसे दिखलाते, कालयवनको बड़ी दूर एक पर्वतकी गुफामें ले गये ॥ ७ ॥ आगे आगे आप दौड़े चले जाते हैं. पीछे पीछे वह कालयवन ' अरे ! तू यदुकुलमें प्रगट हुआ है, तुझे भागना न चाहिये ' ऐसे तिरस्कारसे वचन कहता बहुत दौड़ा, पर नहीं पहुँचा, क्योंकि उसके कर्मोंकीवासना क्षीण नहीं हुई थीं ॥ ८ ॥

१ कालयवन यों कहै पुकारी ॥ काहे भागे जात मुरारी ॥ आय पर्‍यो अब मोंसों काम ॥ ठाढ़े रहो करो संग्राम ॥ जरासंध हौं नाहिन कंस ॥ यादवकुलको करों विध्वंस ॥

ऐसे तिरस्कार करनेपरभी भगवान् पर्वतकी गुफामें पैठे. (और भीतर एक पुरुष सोया था उसे अपना पीतांबर ओढाय आप अंतर्द्धान हो गये) वहभी अंदर गया, वहां दूसरे एक सोतेहुए मनुष्यको देखा ॥ ९ ॥ कालयवनने भूलसे ऐसा विचार किया कि- जरूर यह मुझे दूर लाय, अब यहां साधुकी तरह सो रहा है, ऐसे उसे श्रीकृष्ण मान, उस मूर्खने लात मारी ॥ १० ॥ वह बहुत दिनोंसे सोता था. सो उठा और शनैः शनैः आंखे खोल, चारोंओर देखने लगा तो पासहीमें ठाढे कालयवनको देखा ॥ ११ ॥ महाराज ! कोपायमान उस पुरुषकी दृष्टि पड़तेही तुरंत उसकी देहसे प्रगटहुए अग्निसे कालयवन जल

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकंदरम् ॥ सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ॥ इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥ स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ॥ देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ को नाम स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किंवीर्य एवच ॥ कस्माद्गुहां गतः शिश्ये किंतेजो यवनार्दनः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इक्ष्वाकुकुले जातो मांधातृतनयो महान् ॥ मुचुकुंद इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ १४ ॥ स याचितः सुरगणैरिंद्राद्यैरात्मरक्षणे ॥ असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुंदमथाब्रुवन् ॥ राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६ ॥

बल भस्म हो गया ॥ १२ ॥ यों सुन, राजा परीक्षितने कहा कि- हे ब्रह्मन् ! उस पुरुषका नाम क्या था ? किसके वंशका था ? कैसा उसका पराक्रम था ? व किसका पुत्र था ? कि-जिसने कालयवनको भस्म किया. वह गुफामें जा क्यों सो रहा था ? ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- वह इक्ष्वाकुवंशी, मांधाता राजाका पुत्र, ब्राह्मणोंका परमभक्त, सत्यप्रतिज्ञ, मुचुकुंदनाम बड़ा प्रसिद्ध राजा था ॥ १४ ॥ दैत्योंसे डरते इंद्रादिक देवगणोंने आकर, अपनी रक्षाके निमित्त उससे प्रार्थना की, तद उसने कई बरसोंतक उनकी रक्षा करी ॥ १५ ॥ जब उनको स्वर्गके पालक स्वामिकार्तिक सेनापति मिल गये, तद मुचुकुंदसे बोले कि-

हे राजा ! अब आप हमारे पालनके कष्टसे विराम लें ॥ १६ ॥ हे वीर ! पृथ्वीका निष्कंटक राज छोड़, हमारी रक्षा करते आपके सब सुख नष्ट होगये ॥ १७ ॥ क्योंकि–जो आपके पुत्र, रानियां, बंधु, हाथी, मंत्री और उस समयकी प्रजा थीं, वे सब अभी कालके बलसे नष्ट हो गये. एकभी अवशेष नहीं रहा ॥ १८ ॥ जैसे ग्वाल गैयानको प्रेरण करता है, तैसे बलवानोंमें बलवान् भगवान् अविनाशी ईश्वर काल क्रीड़ा करता प्रजाको प्रेरण करता है ॥ १९ ॥ आपका भला हो ! हमसे आज मोक्षके शिवाय जो कुछ बर मांगना हो सो मांगिये, क्योंकि मोक्षके देनेवाले तो एक अविनाशी भगवान् परमेश्वर विष्णुही हैं ॥ २० ॥ ऐसे

नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकंटकम् ॥ अस्मान्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमंत्रिणः ॥ प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना संति कालिताः ॥ १८॥ कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ॥ एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥ एव-मुक्तः स वै देवानभिवंद्य महायशाः ॥ निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्षितः ॥ २१ ॥ यः कश्चि-न्मम निद्राया भंगं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥ स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ॥ अशयिष्ट गुहा-विष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ २२ ॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः ॥ आत्मानं दर्शयामास मुचुकुंदाय धीमते ॥ २३ ॥ तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौ-स्तुभेन विराजितम् ॥ २४ ॥

कहनेपर, उस बड़े यशस्वी राजाने देवतानको नमस्कार कर, उनसे निद्राही मांगी, क्योंकि वह परिश्रमसे थक गया था ॥ २१ ॥ मुचुकुंदने कहा कि– हे सुरोत्तमो ! जो कोई आकर, मेरे निद्रामें विघ्न करे, वह तुरत भस्म हो जाय; ऐसे वर मांगनेपर देवता-नने ' तथास्तु ' कहा. और ऐसा वरदान दिया कि– आपके सोतेके बीचमें जो मूर्ख जगा देगा उसपर, आपकी दृष्टि पड़तेही वह तुरंत भस्म हो जायगा. तद वह देवतानकी दीहुई निद्रासे गुफामें जाकर सो गया ॥ २२ ॥ कालयवनके भस्म होनेपर, यदुश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने बुद्धिमान् राजा मुचुकुंदको दर्शन दिया ॥ २३ ॥ कैसा है वह स्वरूप ? कि– मेघसा तो श्याम

बरन, पीले पीतांबर पहिरे, श्रीवत्सका चिन्ह वक्षःस्थलमें धारण किये, देदीप्यमान कौस्तुभमणिसे विराजमान ॥ २४ ॥ चतुर्भुज, वैजयंती मालासे देदीप्यमान, सुंदर प्रसन्न मुखारविंद धारण किये, मकराकृत कुंडल झलकाये ॥ २५ ॥ मनुष्यलोकके देखने योग्य, स्नेहभरे मंदहास्यसहित अवलोकन करता हुआ, सुंदर अवस्थावाला और मत्त सिंहके समान उदार पराक्रमवाला ॥ २६ ॥ तेजके प्रभावसे जिसके सामने देखा नहीं जाता उस स्वरूपका दर्शन कर, यद्यपि वह राजा भगवान्के तेजसे धर्षित और शंकित हो गया था, तथापि धीरे धीरे उस महाबुद्धि मुचुकुंदने भगवान्से पूंछा ॥ २७ ॥ मुचुकुंदने कहा कि-आप कौन हो ? और यहां पर्वतके

चतुर्भुजं रोचमानं वैजयंत्या च मालया ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ २५ ॥ प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ॥ अपीच्यवयसं मत्तमृगेंद्रोदारविक्रमम् ॥ २६ ॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ शंकितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥ २७ ॥ मुचुकुंद उवाच ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकंटके ॥ २८ ॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः ॥ सूर्यः सोमो महेंद्रो वा लोकपालोऽपरोपि वा ॥ २९ ॥ मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ॥ यद्बाधसे गुहाध्वांतं प्रदीपः प्रभया यथा ॥ ३० ॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुंगव ॥ स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३१ ॥ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबंधवः ॥ मुचुकुंद इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ ३२ ॥

अगम्य वनमें कैसे आये हो ? और कमलके पत्तोंसे कोमल नंगे पांवोंसे बहुत कांटोंके अंदर विचरते क्यों हो ? ॥ २८ ॥ क्या आप तेजकी मूर्ति भगवान् अग्नि हो ? अथवा सूर्य, चंद्र कै इंद्र, या कोई दूसरे लोकपाल हो ? ॥ २९ ॥ आप अपने तेजसे गुफा (हृदय) के अंधकारको दीपकके समान दूर कर रहे हो. तिससे देवनके देव तीनों देवोंमेंसे आपको मैं विष्णु मानता हूं ॥ ३० ॥ हे नरोत्तम ! हम आपका जन्म, कर्म व गोत्र सुननेकी इच्छा करते हैं. सो जो आपकी इच्छा हो तो निष्कपट रीतिसे हमें कहो ॥ ३१ ॥ हे पुरुषसिंह ! हम तो इक्ष्वाकुवंशी जातिके क्षत्रिय हैं, हे प्रभु ! मुचुकुंद मेरा नाम है. और मैं

मांधाताका पुत्र हूं ॥ ३२ ॥ मुझे जागरण बहुत हुए और इंद्रियां निद्राके वश हो गयीं, तब इस विजन वनमें आ, मैं यथेष्ट सो- गया, पर अभी किसीने मुझे जगा दिया ॥ ३३ ॥ और वह अपनेही पापसे भस्म हो गया. अनंतर शत्रुओंके नाश करनहारे श्रीमान् आपके दर्शन हुए ॥ ३४ ॥ आपके असह्य तेजसे हम बहुत बेरतक नहीं देख सक्ते, क्योंकि आपका तेज सहा नहीं जाता, हे महाभाग ! आप देहधारियोंके माननेयोग्य हो ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–जगत्पालक भगवान्‌को राजाने ऐसे पूंछा

चिरप्रजागरश्रांतो निद्रयाऽपहतेंद्रियः ॥ शयेऽस्मिन्विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३३ ॥ सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ॥ अनंतरं भवान् श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः॥ ३४ ॥ तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥ हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥ ३५॥ एवं संभाषितो राज्ञा भगवान्भूतभावनः ॥ प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि संति मेंऽग सहस्रशः ॥ न शक्यंतेऽनुसंख्यातुमनंतत्वान्मयाऽपि हि ॥ ३७ ॥ क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवा न्युरुजन्मभिः ॥ गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३८ ॥ कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ॥ अनुक्रमंतो नैवांते गच्छंति परमर्षयः ॥ ३९ ॥ तथाप्यद्यतनान्यंग शृणुष्व गदतो मम ॥ विज्ञापितो विरिंचेन पुराऽहं धर्मगुप्तये ॥ भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ४० ॥ अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुंदुभेः ॥ वदंति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४१ ॥

तब हँसकर, मेघके नादसी गंभीर वाणीसे भगवान्‌ने पीछा कहा ॥ ३६ ॥ भगवान् बोले कि–हे अंग ! मेरे जन्म, कर्म और नाम अनंत हैं अनंत होनेसे मैंभी उनकी संख्या नहीं कर सक्ता ॥ ३७ ॥ अनेक जन्मोंसे कदाचित् पृथ्वीके रजके कण तो फिर गिने जायं, पर मेरे गुण, कर्म नाम और जन्म, कभी गिने नहीं जाते ॥ ३८ ॥ महाराज ! भूत, भविष्य, वर्तमानके मेरे जन्म, कर्म गिनते गिनते बड़े बड़े मुनिलोगभी पार नहीं पाये ॥ ३९ ॥ हे अंग ! तौभी अभीके मेरे नाम व कर्म सुन; मैं तुझे कहता हूं. धर्मकी रक्षाके वास्ते और भूमिपर भाररूप दैत्योंको नाशके वास्ते पहले ब्रह्माजीने मुझसे विनती की ॥ ४० ॥ तब मैंने यदुकुलमें

वसुदेवजीके घर अवतार लिया, इसीसे वसुदेवके पुत्र मुझे लोग वासुदेव कहते हैं॥ ४१ ॥ यहां जिस मैंने, पूर्व जन्ममें जो कालने-
मिनाम दैत्य था वह यहां कंसके नामसे प्रगट हुआ उसे और सत्पुरुषोंके वैरी प्रलंबआदि दैत्योंका वध किया और महाराज! इस
यवनको आपकी तीक्ष्ण दृष्टिसे भस्म करवाया॥ ४२ ॥ वह मैं आपपर कृपा करनेको यहां इस गुफामें आया हूं; क्योंकि, भक्तवत्सल
जो मैं हूं तिसकी आपने पहले बहुत प्रार्थना की थी॥ ४३॥ हे राजऋषि! वर मांगो आपके सब मनोरथ पूर्ण करूंगा, जो कोई मेरे
शरण आजाता है, वह फिर शोच करनेके योग्य नहीं रहता ॥ ४४॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-यह वचन सुन,

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलंबाद्याश्च सद्विषः ॥ अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४२ ॥ सो-
ऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ॥ प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाऽहं भक्तवत्सलः ॥ ४३ ॥ वरान्वृणी-
ष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते ॥ मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्याऽऽह मुचुकुंदो मुदान्वितः ॥ ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन्
॥ ४५ ॥ मुचुकुंद उवाच ॥ विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ॥ सुखा-
य दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वंचितः ॥ ४६ ॥ लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथंचि-
दव्यंगमयत्नतोऽनघ ॥ पादारविंदं न भजत्यसन्मतिर्गृहांधकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४७ ॥ ममैष
कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ॥ मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्ज-
मानस्य दुरंतचिंतया ॥ ४८ ॥

मुचुकुंद आनंदयुक्त हो, गर्गाचार्यजीके वचनोंका स्मरण कर, उन्हें श्रीमन्नारायण जान, प्रणाम कर बोला ॥ ४५ ॥ मुचुकुंदने
कहा कि-हे ईश! यह मनुष्य आपकी मायासे मोहित होकर, अनर्थ-(संसार) की ओर दृष्टि लगाय सुखके वास्ते दुःखमूलके
मूल घरोंमें क्या स्त्री और क्या पुरुष ठगाकर, आसक्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ हे निर्दोष! जो मनुष्य यहां किसीप्रकार अविकलांग
दुर्लभ मनुष्यदेहको अनायाससे पाकर, आपके चरणारविंदका भजन नहीं करता किंतु विषयासक्त हो, घररूप अंधकूपमें पड़ा
रहता है उसे पशुके समान समझना चाहिये ॥ ४७ ॥ हे अजित! मेरा इतना समय व्यर्थही गया, क्योंकि 'मैं राजा हूं' ऐसे

राजकी लक्ष्मीके मदसे मदोन्मत्त हूं. आर इस मरणधर्मा शरीरको आत्मा करके मानता हूं अतएव पुत्र, स्त्री, भंडार, पृथ्वी इनमें अपार चिंतासे आसक्त हूं ॥ ४८ ॥ यह शरीर कि-जो घड़े और भीतके समान है, तिसमें मैं 'राजा हूं' ऐसा अभिमान कर, रथ, हाथी, घोड़े और प्यादेरूप चतुरंगि णी सेना संग ले, आपको न गिनता, पृथ्वीपर फिरता अतिमदोन्मत्त होकर, रहा. तिससे मरा इतना काल व्यर्थही गया ॥ ५९ ॥ अमुक अमुक कार्य इस भांति करना ऐसी चिंतासे प्रमत्त रहनेवाले, मनोरथोंका भोग होनेपरभी विषयोंमें लालसावाले और मनोरथ प्राप्त होनेपरभी लोभ यानी लालच जिसके बढ़ता जाता है ऐसे मनुष्यको मुखसे जैसे गलाफें चाटता हुआ सर्प चूहेको झपट ले, तैसे अप्रमत्त (सावधान) कालरूप आप तुर्त झपट लेते हो ॥ ५० ॥

कलेवरेऽस्मिन्घटकुड्यसंनिभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ॥ वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वाऽगणयन्सुदुर्मदः ॥ ४९ ॥ प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिंतया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमंतकः ॥ ५० ॥ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ॥ स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५१ ॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवंदितः ॥ गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥ ५२ ॥

प्रथम 'राजा' ऐसा नाम धारण कर, जो देह सोनेसे मढ़े रथ व हांथियोंपै चढ़ा फिरता है. वही देह, टालनेपरभी न टले ऐसे कालमूर्ति आपके प्राप्त होनेपर जो खाया जाय तो 'विष्ठा' रहे तो 'कीड़ा' और जल जाय तो 'भस्म' नाम पाता है ॥ ५१ ॥ हे ईश ! जिसने सब दिशामंडलका विजय कर लिया है, अतएव जिसके कोई संग्राम करना शेष नहीं रहा है ऐसा, उत्तम सिंहासनपर बैठा हुआ कि-जिसको बराबरके सब राजा वंदन करते हैं, वह पुरुषभी मैथुनही जिनमें परम सुख है, ऐसे स्त्रियोंके घरोंमें क्रीडामृगके समान इधर उधर ले जाया जाता है. यानी बाजीगरके बंदरके समान नाचा करता है ॥ ५२ ॥

१ लोभस्यान्तं न ययुर्जित्वा भुक्त्वा दिशो दश ॥ अर्थ-दशो दिशा जीतके और भोगकेभी लोभके अंतको प्राप्त नहीं होते ॥

प्रथम यह मनुष्य तपमें निष्ठा रख, भोग छोड़, राज्यप्राप्तिके वास्ते अनेक कर्म करता है और आपके पास जो कुछ होता है वहभी राजके लोभसे दे देता है; पश्चात् यदि राज्य प्राप्त होगया तो फिर 'अब मैं जन्मांतरमेंभी चक्रवर्ती राजा होऊं' ऐसी तृष्णा बढ़नेसे क्लेशही पाता रहता है पर सुखका अवसर नहीं पाता ॥ ५३ ॥ हे भगवन् ! जब आपके अनुग्रहसे संसारमें भ्रमण करतेहुए मनुष्यके बंधनका अंत होना होता है, तभी उसे सत्पुरुषोंकी संगति मिलती है और सत्संगति प्राप्त होतेही सब संग निवृत्त हो जाय हैं और कार्य-कारणके नियंता आपमें भक्ति हो जाय है ॥ ५४ ॥ सत्संगविना जो यह मेरा राज्यादिका संबंध

करोति कर्माणि तपःसुनिष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् ॥ पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५३ ॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ॥ सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ ५४ ॥ मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबंधापगमो यदृच्छया ॥ यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखंडभूमिपैः ॥५५॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ॥ आराध्यते त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबंधनम् ॥५६॥ तस्माद्विसृज्याऽऽशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबंधनाः ॥ निरंजनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५७ ॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रो लब्धशांतिः कथंचित् ॥ शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ॥ ५८ ॥

यदृच्छाहीसे निवृत्त हुआ, यह आपने मुझपर बड़ी कृपा की, ऐसे मैं मानता हूं, क्योंकि सबके अलग हो, वनमें जानेकी इच्छा करते, उत्तम चक्रवर्ती राजाभी स्वतः इस संबंधका त्याग नहीं कर सक्ते, उसे छोड़नेकी केवल प्रार्थनाही करते हैं ॥ ५५ ॥ हे विभु ! मैं तो आपके चरणारविंदका सेवन कि-जिसकी अकिंचन यानी देहाभिमानरहित पुरुषभी वारंवार प्रार्थना करते हैं, उसके सिवाय दूसरा कुछभी वर नहीं चाहता. हे हरि ! कौन विवेकी पुरुष मोक्षप्रद आपको प्रसन्न कर, आत्माका बंधनरूप वर मांगे ॥ ५६ ॥ इसीसे हे ईश ! सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंसे बँधी हुई सब कामनाओंको छोड. ज्ञानघन, निरंजन, निर्गुण, अद्वैत, अक्षर व ईश्वर आपके मैं शरण आया हूं ॥ ५७ ॥ हे परमात्मा ! हे ईश ! मैं यहां बहुत कालसे कर्मफलोंसे दुःखी हूं.

और कर्मोंकी वासनाओंसे अतितपायमान हूं और तृष्णारहित छह इंद्रियरूप शत्रु मेरे पीछे लग रहे हैं, अतएव मेरे कथमपि (कोई तरहसेभी) शांति मिलनेका काम नहीं हैं हे शरण देनहारे ! अब मैं अभय, सत्य और शोचरहित आपके चरणारविंदके शरण आया हूं. सो आपदाग्रस्त जो मैं हूं तिसकी रक्षा करो ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे चक्रवर्ती ! महाराज ! आपकी बुद्धि बड़ी निर्मल और ऊर्जित है, क्योंकि–मैंने वरदानोंका लोभ दिया, तौभी ललचमें नहीं पड़ी ॥ ५१ ॥ जो मैंने आपको वरदानका लालच दिया सो केवल सचेत रहनेके वास्ते, यह तुम निश्चय जानो क्योंकि मेरे एकांतभक्तोंकी बुद्धि कदापि कामनामें आसक्त

श्रीभगवानुवाच ॥ सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ॥ वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ५९ ॥ प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ॥ न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचि-त् ॥ ६० ॥ युंजानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ॥ अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थित-म् ॥ ६१ ॥ विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ॥ अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६२ ॥ क्षात्रधर्मे स्थितो जंतून्न्यवधीर्मृगयादिभिः ॥ समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६३ ॥ जन्मन्यनंतरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥ भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे मुचुकुंदस्तुतिर्नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥

नहीं होती ॥ ६० ॥ महाराज ! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वे प्रणायामआदि साधनोंसे मनको वश करें, तौभी उनका मन विषयोंके लालचमें आता दीखता है; क्योंकि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई ॥ ६१ ॥ अब तुम मोमें चित्त लगाय, यथेष्ट पृथ्वीमें विच-रो, तुम्हारे सदा अविचल मेरी भक्ति बनी रहेगी ॥ ६३ ॥ तुमने क्षत्रियधर्ममें रहकर, जो मृगया–आदिमें जीवहिंसा की है, सो मेरा शरण ले, एकाग्रचित्त हो, तप कर, उस पापको निवृत्त करो ॥ ६४ ॥ महाराज ! अब तुम अन्य जन्ममें सब जीवोंके मित्र, उत्तम ब्राह्मण होओगे और मेरे केवल स्वरूपको प्राप्त होओगे ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे

रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥ बावनवें अध्यायमें मानों डरते भागें, तैसे भागकर, भगवान् द्वारकाको पधारे और ब्राह्मणके लायेहुए रुक्मिणीके संदेशेको स्वीकार किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्री-शुकदेवजी बोले कि– महाराज ! ऐसे भगवान् श्रीकृष्णने मुचुकुंदपर कृपा की, तब वह उन्हें प्रणाम कर, परिक्रमा दे, गुफामेंसे बाहिर निकला ॥ १ ॥ वह छोटे छोटे मनुष्य, पशु, लता व वनस्पतियोंको देख, कलियुग आगया ऐसे समझ, उत्तरदिशामें चला गया ॥ २ ॥ वह तप व श्रद्धाको धारण कर, संग छोड़, संशयोंसे मुक्त हो, धीरज धर, कृष्णमें चित्त लगाय, गंधमादन

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सोऽनुगृहीतोंऽग कृष्णेनेक्ष्वाकुनंदनः ॥ तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥ स वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ॥ मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसंगो मुक्तसंशयः ॥ समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गंधमादनम् ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ॥ सर्वद्वंद्वसहः शांतस्तपसाऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ॥ हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥ नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ॥ आजगाम जरासंधस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥ विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ॥ मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

पर्वतमें दाखिल हुआ ॥ ३ ॥ नरनारायणका स्थान जो बदरिकाश्रम है उसमें जाय, सब सुखदुःखादि द्वंद्व पदार्थोंका सहन करता, शांतचित्त हो, तपसे भगवान्का आराधन करने लगा ॥ ४ ॥ भगवान्ने पीछे यवनोंसे घिरीहुई अपनी पुरीमें आय, म्लेच्छोंकी सेनाको मार, उनका धन द्वारकाको पहुँचाया ॥ ५ ॥ भगवान्की प्रेरणासे बैल और मनुष्योंपै लादलाद कर, धन ले जाते थे, इतनेमें तेईस अक्षौहिणी लिये जरासंध आया ॥ ६ ॥ महाराज ! राम–कृष्ण उस शत्रुकी सेनाके वेगका उद्रेक देख, मनुष्यलीलाका स्वीकार करते जल्दी भाग निकले ॥ ७ ॥ यद्यपि आपको किसीका भय नहीं है, तोभीअतिडर गये हों, तैसे

बहुतसा जो धन पड़ा था उसे छोड़, कमलके पत्रसे कोमल चरणोंसे बहुत योजन चले गये ॥ ८ ॥ उनको पलायमान हुए देख, वह बलवान् जरासंध हँसकर, रथोंकी सेना ले, पीछे दौड़ा; क्योंकि वह उन ईश्वरोंके प्रमाणको नहीं जानता था ॥ ९ ॥ बहुत दूर दौड़ते दौड़ते वे थक गये. तद प्रवर्षण नाम एक ऊंचे पर्वतपर चढ़ गये. कैसा है वह पर्वत कि– जहां भगवान् इंद्र नित्य प्रति वर्षा करता है ॥ १० ॥ महाराज ! उन्हें पर्वतमें छिपे जान, ढूंढ़नेपरभी कहीं पता न मिला तद, चौतर्फ आग लगाय, पर्वतको इंधनसे जला दिया ॥ ११ ॥ जद उस पर्वतके शिखर जलने लगे और चोटीतक आग लहकी. तद ग्यारहयो-

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ॥ अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्य दूरं संश्रांतौ तुंगमारुहतां गिरिम् ॥ प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥ गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप ॥ ददाह गिरिमेधोभिः समंतादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥ तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ॥ दशैकयोजनोत्तुंगान्निपेततुरधो भुवि ॥ १२ ॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ॥ स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥ सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ॥ बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥ १४ ॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान्रैवतो रेवतीं सुताम् ॥ ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥ भगवानपि गोविंद उपयेमे कुरूद्वह ॥ वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियोमात्रां स्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ॥ पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥

जन ऊंचे उस पर्वतसे उछल कर, वे दोनों भाई तुर्त पृथ्वीपै ऐसी जगह कूद पड़े, कि– जहां जरासंधके लोगोंकी दृष्टि न पड़ सके ॥ १२ ॥ महाराज ! अनुचरोंसहित शत्रुके लक्ष्यमें न आते वे दोनों यदुराय, समुद्रकी खाईवाली अपनी पुरीमें पीछे लौट आये ॥ १३ ॥ वहभी उन्हें झूंठ मूंठही जले जान, अपनी भारी सेनाको संग ले, मगध देशको गया ॥ १४ ॥ आनर्तदेशका राजा रैवत, अपनी रेवती नाम कन्याको ले, ब्रह्माजीके पास वर पूंछने गया. तद ब्रह्माजीके कहनेसे उसने अपनी कन्या बलदेवजीको दी यह पहले कह चुके हैं ॥ १५ ॥ महाराज ! भगवान् श्रीकृष्णनेभी लक्ष्मीकी अंश, भीष्मक राजाकी कन्या रुक्मिणीसे स्वयंवरमें व्याह किया ॥ १६ ॥ शिशुपालके पक्षके शाल्व–आदि सब राजाओंका मथन कर, सब लोगोंके देखते, जैसे

देवोंका मथन कर, गरुड़ने अमृतका हरण किया तैसे, भगवान्‌ने रुक्मिणीका हरण किया ॥ १७ ॥ यह कथा सुन, राजा परीक्षितने कहा कि- भगवान्‌ने भीष्मककी कन्या सुमुखी रुक्मिणीके साथ राक्षसविवाहकी रीतिसे व्याह किया, ऐसा जो सुना ॥ १८ ॥ सो हे भगवन् ! अप्रमाण तेजवाले भगवान् श्रीकृष्णका यह चरित हम विस्तारसे सुनना चाहते हैं, सो जिस प्रकार जरासंध व शाल्व-आदि राजाओंको जीत, श्रीकृष्णचंद्रने कन्याका हरण किया. वह कथा विस्तारपूर्वक कहो ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! भगवान्‌की कथायें पवित्र, मधुर, जगत्‌के मलकी दूर करनहारी व नितनयी हैं. सो जो पुरुष उनका सार जानता है वह कौन

राजोवाच ॥ भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ॥ राक्षसेन विधानेन उपयेम इतिश्रुतम् ॥ १८ ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ॥ यथा मागधशाल्वादीन्जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ॥ को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजाऽऽसीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ॥ तस्य पंचाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥ रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनंतरः ॥ रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥ सोपश्रुत्य मुकुंदस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ॥ गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २३ ॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ॥ कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनोदधे ॥ २४ ॥ बंधूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ॥ ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥ २५ ॥

उन्हें सुनकर, तृप्त होजाय ! ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- विदर्भदेशका स्वामी एक बड़ा भीष्मक नाम राजा था, उसके पांच पुत्र थे. और एक सुमुखी कन्या थी, ॥ २१ ॥ सबसे बड़ा, रुक्मी, फिर रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश व रुक्ममाली ये पांच पुत्र और इनकी बहिन सती रुक्मिणी नाम थी ॥ २२ ॥ उसने घरपै आये हुए नारद-आदि महात्मानके मुखसे भगवान्‌का रूप, पराक्रम, गुण व लक्ष्मीका वैभव सुन, भगवान् मेरे समान पति हैं ऐसा प्रन ठान लिया ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णनेभी रुक्मिणीको बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप, शील और गुण इनसे संपन्न सुन, अपने सदृश भार्या जान, व्याहनेका विचार किया ॥ २४ ॥ महाराज ! सब बंधु तो रुक्मिणीको श्रीकृष्णको देना चाहते थे, पर कृष्णके वैरी रुक्मीने भांजी मार, शिशुपा-

लसे अपनी बहिन रुक्मिणीका व्याह ठहराया ॥ २५ ॥ जब रुक्मिणीको इस बातकी खबर हुई, तो उस सुंदर श्यामकटाक्षवाली रुक्मिणीने अतिउदास हो, किसी विश्वासपात्र ब्राह्मणको शीघ्र श्रीकृष्णचंद्रके पास पठाया ॥ २६ ॥ वह ब्राह्मण द्वारकाको गया, द्वारपालोंने जाने दिया; तब अंदर प्रवेश कर, उसने कंचनके सिंहासनपर विराजमान आदिपुरुष भगवान्‌का दर्शन किया ॥ २७ ॥ ब्राह्मणोंके परमभक्त भगवान् उसे देखतेही तुर्त अपने आसनसे नीचे उतर, उसे आसनपर बिठलाय, पूजा करने लगे. जैसे देवतालोग आपकी पूजा किया करते हैं ॥ २८ ॥ जब वह भोजन कर चुका और उसका मार्गका श्रम निवृत्त हो गया,

तदवेत्यासितापांगी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ॥ विचिंत्याप्तं द्विजं कंचित्कृष्णाय प्राहिणोद्रुतम् ॥ २६ ॥ द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं कांचनासने ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ॥ उपवेश्यार्हयांचक्रे यथाऽऽत्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥ तं भुक्तवंतं विश्रांतमुपगम्य सतांगतिः ॥ पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥ कच्चिद्द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः ॥ वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥ संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ॥ अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥ असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ॥ अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वांगविज्वरः ॥ ३२ ॥ विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ॥ निरहंकारिणः शांतान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥ ३३ ॥

तब सत्पुरुषोंके शरण भगवान्‌ने उसके समीप जा, हाथसे पांव चापते धैर्यके साथ पूंछा कि– ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणोंमें सर्वोत्तम ! वृद्ध पुरुषोंके माननीय आपका धर्म तो अनायाससे प्रवर्ते है ? और आपका मन सदा संतुष्ट तो रहता है ? ॥ ३० ॥ जब ब्राह्मण हरएक चीजसे संतोष कर, रहता है; तब वह अपने धर्मसे च्युत नहीं होता. और उसी धर्मसे उसके सब मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ जो संतोष नहीं रखता, वह वारंवार इस लोकसे उस लोकमें और उस लोकसे इस लोकमें चक्कर खाता रहता है. चाहे स्वयं इंद्र क्यों न हो ? और जिसके पास कुछ नहीं है पर संतोष है. तो वह किसी अंगका संताप न रहते सुखसे सोता है ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण स्वयं जो मिल जाय उसीसे संतोष कर, रहते हैं, स्वधर्मनिष्ठ हैं और जीवोंका भला करते हैं, अहंकाररहित

और शांतमूर्ति हैं, उन्हें मैंभी वारंवार शिरसों प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके राजाकी तर्फसे कुशल तो है ? जिस राजाके राजमें प्रजाका अच्छीतरह पालन होता है और आनन्दसे रहती है, वह मुझे अतिप्यारा है ॥ ३४ ॥ आप जिस इच्छांसे इस दुर्गको पार उतर यहां आये हो, सो वह काम यदि गुह्य न होय तो हमें कहो. हमें क्या आज्ञा है ? ॥ ३५ ॥ भगवान्‌ने ऐसे ब्राह्मणसे प्रश्न किया, तद लीलासे जिन्होंने मनुष्यदेह धारण किया है, उनसे वहांका सब वृत्तांत वर्णन किया

कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः ॥ सुखं वसंति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ॥ सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यंचेत्किं कार्यं करवाम ते ॥ ३५ ॥ एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ॥ लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वा गुणान्भुवनसुंदर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽग तापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽऽविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥ का त्वा मुकुंद महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम् ॥ ३८ ॥

॥ ३६ ॥ रुक्मिणीने एकांतमें लिख जो पाती, प्रेमरँगराती दी थी, उसे खोल, श्रीकृष्णको दिख लायी. तद श्रीकृष्णने आज्ञा की कि–तुमही पढ़ो. तद वह पढ़ने लगा. रुक्मिणीने कहा है कि–हे अच्युत ! हे भुवनसुंदर ! जबसे श्रवण करनेवाले पुरुषोंके कानोंके छिद्रोंद्वारा हृदयमें प्रवेश कर, संताप हरनेवाले आपके गुण और दृष्टिवालोंकी दृष्टिके सकल मनोरथोंका लाभरूप आपका रूप सुना है. तबसे मेरा मन लाज छोड़, आपमें लग रहा है ॥ ३७ ॥ हे मुकुंद ! हे पुरुषसिंह ! कौन बलवान् और उदार गुणवाली धीरजवान कन्या, आप कि–जो मनुष्य लोगके अतिप्यारे और केवल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, धन, घर इन

१ चौ०– नीके राज देश तुम तनो, हमसों भेद कहौ आपनी ॥ २ चौ०– कौन काज यहँ आवन भयो, दैके दरश हमे सुख दयो ॥

सब बातोंसे आपकेही बराबर हो, तिन्हें विवाहके अवसरमें पति स्वीकार न करे ? ॥ ३८ ॥ इसलिये हे विभु ! मैंने आपको पति स्वीकार किये हैं और मेरा देह मैंने आपके अर्पण किया है, सो आप मुझे यहां आकर, आपकी भार्या करें, हे कमलनयन ! मैं कि-जो शूरवीर आपका भाग हूं, उसका शिशुपाल आकर, जैसे सिंहके भागका श्यार स्पर्श नहीं करता, तैसे तुर्त स्पर्श न करे ॥ ३९ ॥ सो मैंने कुएं बावली-आदि कराये, यजन किया, दान दिया और नियम, व्रत, धारण किये, देवता ब्राह्मण, गुरु इनकी पूजन की, इत्यादिक साधनोंसे परमेश्वरका पूर्ण आराधन किया है, तो आकर, भगवान् श्रीकृष्ण मेरा पाणि-

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरंगजायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ॥ मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमंबुजाक्ष ॥ ३९ ॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ॥ आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥ श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेंद्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥ अंतःपुरांतरचरीमनिहत्य बंधूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥ यस्यांघ्रिपंकजरजःस्नपनं महांतो वांछत्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ॥ यर्ह्यंबुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥

ग्रहण करें, दूसरे दमघोषका पुत्र शिशुपाल-आदि न करें ॥ ४० ॥ हे अजित ! सबेरे मेरा व्याह होनेवाला है, सो आप सेनापतियोंको संग ले, गुप्तरूपसे यहां आय, शिशुपाल और जरासंधकी सेनाका बलात्कारसे मथन कर, पराक्रमही जिसका मूल्य है ऐसी मुझे राक्षसविधिसे व्याह लो ॥ ४१ ॥ कदाचित् आप कहो कि-तू जनानखानेमें रहती है. तेरे बंधुनको विना मारे कैसे व्याह लें ? तो इसमें मैं आपको एक उपाय बतलाती हूं सो सुनिये, हमारे कुलमें रीति है कि-व्याहके पहले दिन कुलदेवीकी बड़ी यात्रा होती है, जिसमें विवाह होनेवाली कन्याको पार्वतीके दर्शनके लिये बाहिर जाना पड़ता है ॥ ४२ ॥ हे पद्मनेत्र ! महादेवजीके समान दूसरे महात्माभी अपने अज्ञानकी निवृत्तिके लिये जिसके चरणारविंदकी रजमें स्नान करना चाहते हैं, ऐसे

आपका प्रसाद जो मुझे न मिलेगा, तौ मैं व्रतोंसे कृश करके, मेरे प्राण तज दूंगी, ऐसे वारंवार करते करते, चाहे सैंकड़ों जन्म हो जांय परंतु आपकी कृपा अवश्य उपार्जन करूंगी ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोला कि- हे यदुदेव ! ये गुह्य संदेश मैं लाया हूं, सो आप विचार लें और जो करना हो सो करें ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ॥ तिरपनवें अध्यायमें अद्भुतचरित्र भगवान् श्रीकृष्णने विदर्भ देशमें जाय, वैरियोंके देखते २ बलात्कारसे रुक्मिणीका हरण किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-

ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः ॥ विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनंतरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनंदनः ॥ प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाऽहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ॥ वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ॥ मत्परामनवद्यांगीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ॥ रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्रांजलिरग्रतः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णचंद्र रुक्मिणीका संदेश सुन, ब्राह्मणका हाथ अपने हाथसे पकड़, हँसकर, बोले ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने कहा कि-मेराभी मन वैसेही रातदिन उसीमें लग रहा है, शोकके मारे रातिमें नींद नहीं आती, मैं जानता हूं कि-रुक्मने मेरे वैरसे व्याहमें भांजी मारी है ॥ २ ॥ जैसे विसके काठते अग्निकी ज्वाला काढ़ते हैं, तैसे नीच राजाओंका रणमें मथन कर, उस मत्परायण सुंदरीको ले आऊंगा ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-भगवान्ने रुक्मिणीके व्याहका नक्षत्र जान. सारथीको आज्ञा दी कि-हे दारुक ! शीघ्र रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ वहभी रथमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, बलाहक नाम चार घोड़े जोड़, रथ लाय, हाथ

१ दोहा- जैसे घिसके काठते, काढ़हिं ज्वाला जारि ॥ ऐसे सुन्दरि ल्याइ हो, दुष्ट असुरदल मारि ॥

जोड़, आगे आ, खड़ा हुआ ॥ ५ ॥ भगवान् ब्राह्मणको रथपर चढ़ाय, आप रथपै चढ़, वेगवान् घोड़ोंसे एक रातिमें आनर्त देशसे विदर्भदेशमें पहुंचे ॥ ६ ॥ कुण्डिनपुरका राजा भीष्मक पुत्रके स्नेहके वश हो, शिशुपालको कन्या देनी इस निमित्तसे पितृदेवार्चन-आदि कर्म करवाता था ॥ ७ ॥ नगरके राजमार्ग, गली और चोहटोंमें झार बुहार, छिरकाव कराया, विचित्र ध्वजा पताका और तोरण बंधाय, नगरको शोभायमान किया ॥ ८ ॥ नगरके नर नारी माला, सुगंध, पुष्प, आभूषण और स्वच्छ वस्त्रोंसे सिंगार किये फिरते थे, घर घरमें अगरके धूपकी सुगंधि आती

आरुह्य स्यंदनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ॥ आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥ राजा स कुंडिनपतिः पुत्रस्नेहवशंगतः ॥ शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ॥ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥ स्रग्गंधमाल्याभरणैर्विरजोऽवरभूषितैः ॥ जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥ पितृन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ॥ भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मंगलम् ॥ १० ॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमंगलाम् ॥ अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥ चक्रुः सामर्ग्यजुर्मंत्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ॥ पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशांतये ॥ १२ ॥ हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ॥ प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदांवरः ॥ १३ ॥

थी ॥ ९ ॥ महाराज ! पितर देवता व ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा कर, उन्हें भोजन कराय, यथायोग्य गरीबोंको भोजन दे ब्राह्मणोंसे कन्याके निमित्त स्वस्तिवाचन करवाया ॥ १० ॥ कन्याको अच्छीतरह स्नान कराय, कौतुकसे विवाहसूत्र पहिरनेका मंगलकृत्य कर, दो अहत (अबोट) वस्त्र पहिराय, उत्तम अलंकारोंसे अलंकृत कर, ॥ ११ ॥ उत्तम ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेदके मंत्रोंसे रक्षा करने लगे. और अथर्ववेद जाननेवाला पुरोहित ग्रहशांतिके निमित्त होम करने लगा ॥ १२ ॥ विधि जाननेवालोंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने ब्राह्मणोंको सुवर्ण, रूपा, वस्त्र और गुड़मिश्र तिल और गोदान दिये ॥ १३ ॥

ऐसेही चेदिदेशके राजा दमघोषने अपने पुत्र शिशुपालके निमित्त मंत्रके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे सब उचित मंगलकृत्य करवाया. ॥ १४ ॥ फिर मदझरते हाथी, सोनेकी मालावाले रथ, पैदल और घोड़ोंकी भीडभाड़वाली सेना संग ले, बरात बनाय, कुंडिनपुरको आया ॥ १५ ॥ विदर्भदेशका राजा भीष्मक सामने आया और उसने सन्मान कर, सजायेहुए दूसरे स्थानमें आनंदसे जनवासा दिया ॥ १६ ॥ वहां जरासंध, शाल्व, दंतवक्र, विदूरथ और पौंड्रक–आदि हजारों शिशुपालके पक्षके राजा आये

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ॥ कारयामास मंत्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४ ॥ मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यदंनैर्हेममालिभिः ॥ पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुंडिनं ययौ ॥ १५ ॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य ॥ निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥ तत्र शाल्वो जरासंधो दंतवक्रो विदूरथः ॥ आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौंड्रकाद्याः सहस्रशः ॥ १७ ॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् ॥ यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥ योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ॥ आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयन्नृपोद्यमम् ॥ कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशंकितः ॥ २० ॥ बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ॥ त्वरितः कुंडिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥ भीष्मकन्या वरारोहा कांक्षंत्यागमनं हरेः ॥ प्रत्यापत्तिमपश्यंती द्विजस्याचिंतयत्तदा ॥ २२ ॥

॥ १७ ॥ ये सब राम–कृष्णके वैरी सज कर, शिशुपालको कन्या दिलानेके निमित्त आये थे. और इन्होंने पक्का मनसूबा ठाना था कि–, यदि बलभद्र–आदि यदुनको संग ले, श्रीकृष्ण यहां आकर, कन्याका हरण करेंगे, तो हम इकट्ठे हो, उनसे युद्ध करेंगे. अतएव वे सब राजा अपनी सिगरी सेना और वाहन ले आये थे ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलदेवजी बैरी राजाओंका यह उद्योग सुन और श्रीकृष्णको अकेले कन्याहरणको पधारे सुनकर, कलहसे डरते भाईके स्नेहसे आर्द्रचित्त हो, बड़ी सेना संग ले, हाथी, घोड़े, रथ, पैदलोंके साथ तुर्त कुंडिनपुरको पधारे ॥ २० ॥ २१ ॥ वरारोहा भीष्मक राजाकी कन्या हरिके आग-

मनकी राह देखती थी, पर अपने पठाये ब्राह्मणको पीछा आता न देखकर, चिंता करने लगी ॥ २२ ॥ अहो ! मुझ मंदभागिनके व्याहमें केवल एक रातही बाकी रही है और भगवान् कमलनयन नहीं पधारे. इसका कारण क्या है ? मैं नहीं जानती. जो ब्राह्मण मेरा संदेशा लेकर, गया था वहभी अबतक पीछा नहीं आया ॥ २३ ॥ यह क्या हुआ ? जो मेरे व्याहके लिये भगवान् उद्युक्त थे, फिर अब क्यों नहीं आये ? कदाचित् निर्दोष जो आप हैं सो मुझमें कुछ दोष देख कर, तो नहीं रुक गये हैं ॥ २४ ॥ मंदभागिन जो मैं हूं तिसपर विधाता, महादेव वा गिरिजा सती रुद्राणी देवी पार्वती ये रूठ तो नहीं गये हैं ?

अहो त्रियामांतरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ॥ नागच्छत्यरविंदाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ॥ २३ ॥ अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचिज्जुगुप्सितम् ॥ मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥ २४ ॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ॥ देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ २५ ॥ एवं चिंतयती बाला गोविंदहृतमानसा ॥ न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥ एवं वध्वाः प्रतीक्षंत्या गोविंदागमनं नृप ॥ वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ॥ अंतःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ॥ आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनंदनम् ॥ उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनंप्रति ॥ ३० ॥

॥ २५ ॥ भगवान्‌ने जिसकी सुध बुध हर लीनी है, ऐसी समय जाननेवाली वह बाला रुक्मिणी आंसूसे व्याकुल नेत्र मूंद कर बैठ गयी ॥ २६ ॥ महाराज ! ऐसे रुक्मिणी भगवान्‌के आगमनकी राह देखती थी. इतनेमें उसके प्रियके सूचक बाँये अंग ऊरु, भुजा और नेत्र फड़कने लगे ॥ २७ ॥ इतनेमेंही तो श्रीकृष्णका पठाया हुआ वही ब्राह्मण आया और उसने अंतःपुरमें रहनेवाली राजकुँवरिको देखा ॥ २८ ॥ स्वस्थ रीतिसे चले आते प्रसन्नमुख उस ब्राह्मणको देख, दूत काम करके आया है वा नहीं ? इस बातको उसके लक्षणोंपरसेही जाननेवाली रुक्मिणीने हँस कर, पूंछा ॥ २९ ॥ तद उस ब्राह्मणने निवेदन किया

कि-भगवान् आ पहुँचे हैं. तथा उन्होंने पाणिग्रहणके निमित्त जो सत्य वचन कहा वहभी कह सुनाया ॥ ३० ॥ भगवान्को आये जान, रुक्मिणीने प्रसन्नचित्त हो, ब्राह्मणको पारितोषिक देनेके योग्य दूसरा कुछ नहीं देखा, तो केवल नमस्कार किया. और पीछे बहुत धनभी दिया. रुक्मिणीके प्रणाम करनेका अभिप्राय यह था, कि-जो मुझे प्रणाम करते हैं. उन्हेंभी सब संपदा मिल जातीं हैं, तो जिसे मैं प्रणाम करती हूं, उसके फिर किस बातकी कमी रहेगी ?॥ ३१ ॥ अपनी कन्याके विवाहोत्सव देखनेके उत्साहसे आये जो राम-कृष्ण तिनकी खबर सुन, राजा पूजाकी सामा ले, बाजे गाजेके साथ आया ॥ ३२ ॥ मधुपर्क लाय, निर्मल वस्त्र और वांछित भेंटें अर्पण कर, उसने विधिपूर्वक सत्कार किया ॥ ३३ ॥ महामति राजा भीष्मकने सेना और अनुचरोंको डेरा करवाय, उन दोनों भाइयोंके वास्ते बहुत श्रेष्ठ डेरा तैयार करवाया. और यथायोग्य अतिथिसत्कार किया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जो राजा इकठे हुए थे. उन सबका उनके पराक्रम, अवस्था, बल और धनके अनुसार सब कामनाओंसे सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भ देश और नगरके रहनेवाले श्रीकृष्णको आये सुन, आय, आय, नेत्ररूप अंजलियोंसे भगवान्के मुखकमलका पान करने लगे ॥ ३६ ॥ और कहने लगे कि-रुक्मिणीही इसके योग्य स्त्री है. दूसरी नहीं. और रुक्मिणीके योग्य निर्दोष वरभी यही है ॥ ३७ ॥ जो अपना कुछ पुण्य होवे और उससे त्रिलोकीके कर्ता भगवान् प्रसन्न हो, अनुग्रह करें, तो श्रीकृष्ण

तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ॥ न पश्यंती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ॥ अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥ मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः ॥ उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ॥ ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ॥ यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ॥ आगत्य नेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपंकजम् ॥ ३६ ॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ॥ असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥ ३७ ॥ किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ॥ अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥

रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें ॥ ३८ ॥ ऐसे प्रेमसे बँधेहुए पुरके लोग कहते थे. इतनेमें बहुतसे योधाओंसे रक्षित रुक्मिणी अंतःपुरसे अंबिकाके दर्शनको चली ॥ ३९ ॥ वह पांवोंसे अंबिकाके चरणारविंदके दर्शनको जाती थी. उस समयभी भलीभांति भगवान्के चरणारविंदके ध्यानमें मग्न थी ॥ ४० ॥ मौन धारण किये, मातानको संग लिये, सखियोंसे घिरीहुई वह जा रही थी, उस समय कवच पहरे शस्त्र उठाये, शूरवीर राजाके भट रक्षा कर रहे थे; मृदंग, शंख, ढोल, तूर्य, भेरी, ये बाजे बाज रहे थे ॥ ४१ ॥ हजारों उत्तम वेश्यायें अनेक प्रकारके उपहार और बलिदान लिये आ रहीं थीं; तैसेही माला, सुगंध, वस्त्र,

एवं प्रेमकलाबद्धा वदंति स्म पुरौकसः ॥ कन्या चांतःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्तांऽबिकालयम् ॥ ३९ ॥ पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ॥ सा चानुध्यायती सम्यङ् मुकुंदचरणांबुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥ गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ मृदंगशंखपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१ ॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ॥ स्रग्गंधवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥ ४२ ॥ गायंतश्च स्तुवंतश्च गायका वाद्यवादकाः ॥ परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधबंदिनः ॥ ४३ ॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकरांबुजा ॥ उपस्पृश्य शुचिः शांता प्रविवेशांबिकांऽतिकम् ॥ ४४ ॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ॥ भवानीं वंदयांचक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥ ४५ ॥ नमस्ये त्वांऽबिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम् ॥ भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥

आभूषणसे सिंगार किये ब्राह्मणोंकी स्त्रियां संग जातीं थीं ॥ ४२ ॥ गाते, बजाते, गायक और बाजे बजानेवाले तथा सूत, मागध, बंदीजन ये रुक्मिणीको घेरे चले जाते थे ॥ ४३ ॥ अंबिकाके मंदिरको पहुंच, कमलकेसे हाथ पांव धोय, आचमन कर, पवित्र हो, शांत वह कन्या अंबिकाके समीप गयी ॥ ४४ ॥ तद विधिजाननेवाली ब्राह्मणोंकी वृद्ध स्त्रियोंने उस कन्यासे महादेवसहित पार्वतीको प्रणाम करवाया ॥ ४५ ॥ 'हे अंबिके ! आपके संतानसहित परम मंगलरूप आपको मैं वारंवार

प्रणाम करती हूं, श्रीकृष्ण भगवान् मेरे पति होवें. ऐसी मोपर कृपा करो ' ॥ ४६ ॥ ऐसे प्रार्थना कर, जल, गंध, अक्षत, धूप, माला, पुष्प, आभरण, अनेक प्रकारके उपहार, बलिदान और दीपमालानसे कन्याने पृथक् २ पूजन किया ॥ ४७ ॥ सौभाग्यवती ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंकीभी उन पदार्थोंसे तथा मौन, पूजा, पान, कंठसूत्र, फल, ऊंख इनसे पूजा की ॥ ४८ ॥ रुक्मिणीने ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको और देवीको प्रणाम किया. और प्रसाद लिया. तद उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने उसको आशीर्वाद दिये ॥ ४९ ॥ तिस पीछे मौनव्रत छोंड़, रत्नकी जड़ाऊ, मुंदरीसे शोभायमान हाथसे दासीका हाथ पकड़, देवीके मंदिरसे

अद्भिर्गंधाक्षतैर्धूपैर्वासःस्रङ्माल्यभूषणैः ॥ नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥ ४७ ॥ विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत ॥ लवणापूपतांबूलकंठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ॥ ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामांबिकागृहात् ॥ प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुंडलमंडिताननाम् ॥ श्यामां नितंबार्पितरत्नमेखलां व्यंजत्स्तनीं कुंतलशंकितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥ शुचिस्मितां बिंबफलाधरद्युतिशोणायमानद्विजकुंदकुड्मलाम् ॥ पदा चलंतीं कलहंसगामिनीं सिंजत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ॥ ५३ ॥

बाहिर निकसी ॥ ५० ॥ ईश्वरकी मायाके समान वीर पुरुषोंको मोहित करनेवाली सुंदर जिसका कटिभाग है, कुंडलसे शोभायमान जिसका मुख है, रजोदर्शन जिसके नहीं हुआ है, जिसके नितंबमें रत्नोंकी मेखला बँधी हुई है, स्तन जिसके प्रगट हो रहे हैं, कुंतलोंकी शंकासे चंचल जिसके नेत्र हैं, सुंदर जिसकी मंद मुसकान है, जिसके बिंबफलके सदृश अधरकी कांतिसे कुंदकी कलीके समान जो दांत तिनपर अरुणता छा रही है, राजहंसकीसी जिसकी गति है. ऐसी झनकारशब्द करते नूपुरकी कांतिसे शोभायमान चरणसे चलती उस रुक्मिणीको देख, जो बड़े बड़े यशस्वी वीर पुरुष आये थे. वे सब उसके दर्शनसे उत्पन्न

हुआ, जो कामदेव तिससे पीड़ित हो, मोहित हो गये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ चलनेके मिषसे अपनी शोभा भगवान्‌को दिख-लाती जिस रुक्मिणीको देख, वे सब राजा, उसके उदारहास व लज्जासहित चितवनसे मोहितचित्त हो गये और उनके हाथों-मेंसे शस्त्र छूट गये, निदान ऐसे मूढ़ हो गये कि-वे जिन हाथी, रथ व घोड़ोंपै बैठे हुए थे· उनसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५४ ॥ या प्रकार चलायमान कमलकोशके समान जो कोमल चरण हैं, तिन्हें धीरे धीरे चलाती और तिस समय श्रीकृष्णके आयवेकी राह देखती, वह रुक्मिणी बांए हाथके जो नख हैं तिनसे अलकनको उठाय, आये जो राजा तिन्हें देखे, तहां तुर्त भगवान्

पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राछलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ सैवं शनैश्चलयती च-लपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥ ५४ ॥ उत्सार्य वामकरजैरलकानपांगैः प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ॥ तं राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ॥ ५५॥ रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥ ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः सृगाल-मध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥ अ-हो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणंनाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ॥

देखनेमें आये ॥ ५५ ॥ ज्यों उस राजकन्याने रथपै चढ़ना चाहा, त्यों भगवान् शत्रुनके देखते गरुड़के चिन्हवाले अपने रथमें बिठाय, राजाओंके चक्रका तिरस्कार कर, रुक्मिणीको हर ले गये. जैसे श्यारनके बीचसे सिंह अपना भाग लेकर, चला जाय· फिर बलभद्र-आदि यादवोंके संग आप धीरे धीरे चले ॥ ५६ ॥ जरासंधके आश्रित दूसरे अभिमानी राजा कीर्तिनाशक इस अपने पराभवको न सह कर, कहने लगे, कि-अहो !! हमको धिक्कार है, जैसे सिंहोंके यशको मृग हरकर ले जाय, तैसे हम जो धनुषधारी हैं तिनके यशको ग्वाल हर ले गये ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्मामविरचि-

तायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ॥ चौवनवें अध्यायमें भगवान्‌ने शत्रुपक्षके राजाओंको जीत तथा रुक्मीको विरूप कर, द्वारकामें रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- वे सब अतिक्रोध कर, कवच सनाह पहन, वाहनोंपर चढ़, अपनी अपनी सेनानसे वेष्टित हो, धनुष लिये पीछे दौड़े ॥ १ ॥ यादवोंके सेनापति उन्हें पीछेसे आते देख, महाराज ! वे अपने धनुषोंका टंकारशब्द कर, उनके सौंहीं ठाढ़े हुए ॥ २ ॥ वे निपुण राजा घोड़ोंकी पीठपै, हाथीनके कंधेपै, रथोंके मंचपै बैठे हुए, ऐसी बाणोंकी वर्षा छोड़ने लगे कि-जैसे बादल पर्वतोंपै पानी बरसते हैं

श्रीशुक उवाच ॥ इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥ स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रांता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥ तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ॥ तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥ २ ॥ अश्वपृष्ठे गजस्कंधे रथोपस्थे च कोविदाः ॥ मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ॥ सव्रीडमैक्षत्तद्वक्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्य भगवानाह मास्म भैर्वामलोचने ॥ विनंक्षत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ॥ अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ॥ ६ ॥ पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ॥ सकुंडलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥ हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोंऽघ्रयः ॥ अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥

॥ ३ ॥ सुंदर जिसका कटिभाग है ऐसी बाला रुक्मिणी पतिकी सेनाको बाणोंकी वृष्टिसे ढकी देख, भयसे विह्वल नेत्र हो, लज्जासहित भगवान्‌के मुखकी ओर देखने लगी ॥ ४ ॥ तद हँसकर, भगवान्‌ने कहा कि- हे सुनयनी ! तू डरे मत, अभी तुम्हारे जो ये यादव हैं, सो शत्रुओंकी सेनाका संहार करेंगे ॥ ५ ॥ उन राजाओंके पराक्रमका सहन न करते वीर गद और बलभद्रआदि यादव हाथी, घोड़े, रथ इनका बाणोंसे नाश करने लगे ॥ ६ ॥ रथी, घोड़े, सवार और हाथियोंपै बैठेहुए योधानके मस्तक, कुंडल, किरीट और पगड़ीनके साथ करोड़ों पृथ्वीपै पड़ने लगे ॥ ७ ॥ खड्ग, गदा, धनुष इनके साथ हाथ कट कटकर,

गिरने लगे, लंबे हाथवाले कांड, जंघा व पांव ये कट कटके, गिरते हैं. और घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊंट, गधे, मनुष्य इनके शिर पड़ते हैं ॥ ८ ॥ जयकी इच्छावाले यादवोंने सेनाका संहार करना प्रारंभ किया. तद जरासंध जिनमें मुख्य है ऐसे वे सब राजा विमुख हो, भाग गये ॥ ९ ॥ जैसे स्त्री जाती रही होवे और दुःखी हो, ऐसे दुःखी, तेजहीन, उत्साहरहित, बिलखवदन शिशुपालके पास आ, सब राजा कहने लगे ॥ १० ॥ कि—हे पुरुषसिंह ! इस उदासीको छोड़ दो. हे राजा ! जीवोंमें प्रिय व अप्रियकी स्थिरता नहीं दीख पड़ती ॥ ११ ॥ जैसे काठकी पुतली नचानेवारेकी इच्छानुसार नाचे है, ऐसे यह जीव सुख, दुःख भोगनेमें

हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकांक्षिभिः ॥ राजानो विमुखा जग्मुर्जरासंधपुरःसराः ॥ ९ ॥ शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवाऽऽतुरम् ॥ नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥ भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ॥ न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ॥ एवमीश्वरतंत्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ॥ त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥ १३ ॥ तथाऽप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ॥ कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥ अधुनाऽपि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः ॥ पराजिताः फल्गुतंत्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५ ॥ रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ॥ तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥ एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ॥ हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥

परमेश्वरके आधीन है ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णसे मैं सत्रहबेर तेईस तेईस अक्षौहिणियोंके साथ युद्धमें हारा. फिर मैं अकेला बैरीको जीत गया ॥ १३ ॥ तौभी न तो मैं कभी इस बातका सोच करता हूं न हर्ष; क्योंकि मैं जानता हूं कि— यह जगत् दैवप्रेरित कालके वश है ॥ १४ ॥ अभीभी आपन सब जो योधानके, यूथपतिनके पति हैं. वे जिनके पास थोड़ी सेना है ऐसे, कृष्णसे पालित यदुनसे हार गये ॥ १५ ॥ अभी उनका दैव अनुकूल है, तिससे शत्रुनकी जीत हुई, जद अपना दैव अनुकूल होगा तद आपन जीतेंगे ॥ १६ ॥ ऐसे शिशुपालको मित्रोंने समझाया. तद वह अनुचरोंके साथ अपने घर गया, जो जीते बचे थे. वे

राजा पीछे अपने अपने नगरोंको सिधारे ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णका वैरी बली रुक्म अपनी बहनके राक्षसव्याहको न सहकर, एक अक्षौहिणी सेना ले, कृष्णके पीछे दौड़ा ॥ १८ ॥ क्रोधमें आ, बहनके हरणका सहन न कर, सब राजाओंके सुनते कवच पहर, धनुष हाथमें ले, महाबाहु रुक्मने पण किया कि- ॥ १९ ॥ संग्राममें श्रीकृष्णको विना मारे और रुक्मिणीको पीछी विना लाये कुंडिनपुरमें प्रवेश नहीं करूंगा यह मैं तुमको सत्य कहता हूं ॥ २० ॥ ऐसे कह, रथपर चढ़, जल्दी सारथीको कहा कि- जिधर श्रीकृष्ण हैं उधरको घोड़े चलावो. कि- उसका और मेरा संग्राम होवे ॥ २१ ॥ आज मैं उस दुर्बुद्धि ग्वालके पराक्रमका

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ॥ पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥ रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥ १९ ॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ॥ कुंडिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ॥ चोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगो भवेत् ॥ २१ ॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ॥ नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२ ॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ॥ रथेनैकेन गोविंदं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥ धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ॥ आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥ २४ ॥ कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वांक्षवद्धविः ॥ हरिष्येऽद्य मदं मंद मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्न मे हतो बाणैः शयीथामुंच दारिकाम् ॥ स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥

मद मेरे तीक्ष्ण बाणोंसे हरूंगा, जो मेरी बहनको बलात्कार करके, ले गया है ॥ २२ ॥ परमेश्वरके प्रमाणको न जानकर, वह कुमति ऐसे बकवाद करता, एक रथसे श्रीकृष्ण भगवान्‌को 'ठहर ठहर' ऐसे कह, पुकारने लगा ॥ २३ ॥ और धनुषको दृढ़ ऐंचके, तीन तीर श्रीकृष्णपै चलाये. और बोला कि- हे यदुकुलको कलंक लगानेवारे! क्षणभर यहां ठहर ॥ २४ ॥ जैसे कौआ होमकी सामग्री ले, भाग जाय; तैसे मेरी बहनको चुरा कर, कहां जाता है? हे मंदबुद्धि! छली और कपटयुद्ध करनेवाला जो तू है तिसका मद मैं आज हरूंगा ॥ २५ ॥ जबतक मैं तुझे बाणोंसे नहीं मारता और पृथ्वीपर नहीं सुलाता, तब-

तक कन्याको छोड़ दे. यह वचन सुन, श्रीकृष्णचंद्रने मुसकायके, उसके धनुषको काट, छः बाणोंसे रुक्मको बेधित किया ॥ २६ ॥ और आठ बाण घोड़ोंके लगाये, दो सारथीके, एक ध्वजाके, तद उसने दूसरा धनुष उठाया. और पांच बाण श्रीकृष्णपै चलाये ॥ २७ ॥ जद भगवान् उन बाणोंके समूहोंसे ताड़ित हुए. तद भगवान्‌ने उसका धनुष काट दिया, तद फिर उसने दूसरा धनुष लिया. तो भगवान्‌ने वहभी काट गिराया ॥ २८ ॥ उसने जो जो परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल, तलवार, बरछी, भाला-आदि शस्त्र हाथमें लिये वे सब प्रभुने काट, गिराये ॥ २९ ॥ तद वह रथसे कूद, खड्ग, हाथमें ले, मारनेका विचार कर,

अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ॥ स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पंचभिः ॥ २७ ॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः ॥ पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ॥ यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९ ॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतंग इव पावकम् ॥ ३० ॥ तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ॥ छित्वाऽसिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हंतुमुद्यतः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ॥ पतित्वा पादयोर्भर्त्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥ योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते ॥ हंतुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तया परित्रासविकंपितांगया शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकंठया ॥ कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणोन्यवर्तत ॥ ३४ ॥

क्रोधसे भगवानके सन्मुख दौड़ा, जैसे पतंग आगके सौंही जाता है ॥ ३० ॥ आतेहुए उस रुक्मीकी ढाल तलवारके बाणोंसे तिल तिल जितने टुकड़े कर दिये. और रुक्मको मारनेके वास्ते तीक्ष्ण खड्ग उठाया ॥ ३१ ॥ भाईके मारनेका उद्योग देख, रुक्मिणी भयसे विव्हल होगयी. और पतिके पावोंमें पड़, वह सती करुण वचन बोली कि- ॥ ३२ ॥ हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयस्वरुप ! हे देवदेव ! हे जगत्पति ! हे कल्याण ! हे महाभुज ! यह मारनेयोग्य नहीं है. यह मेरा भाई है ॥ ३३ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि- त्रासके मारे अंग जिसके कांप रहे हैं, शोचसे मुख जिसका सूख गया है, कंठ जिसका

१ चौ०- मारो मत भैया है मेरो । छोड़ो नाथ तिहारो चेरो ॥

रुक गया है, कायरतासे सुवर्णकी माला जिसकी गिरी जाय है, ऐसी रुक्मिणीने पांव पकड़ लिये. तब दयालु भगवान् रुक्मके
वधसे निवृत्त हुए ॥ ३४ ॥ उस दुष्टकर्माको वस्त्रसे बांध, मूछसहित मूंड़ मूंडके विरूप किया. इधर तो यह हुआ. उधर इतने
असेमें जैसे हाथी कमलिनीनको मर्दन करते हैं. तैसे यदुबीरोंने अद्भुत शत्रुनकी सेनाका मर्दन किया ॥ ३५ ॥ फिर श्रीकृष्णके
समीप वहां वे आये, तो रुक्मकी यह दशा देखी. प्रभु बलदेवजी उसे उसतरह मृतप्राय देख, करुणा कर, उसे बंधनसे छोड़,
श्रीकृष्णसे बोले कि- ॥ ३६ ॥ हे कृष्ण ! यह आपने बहुत बुरा किया. हमारी इसमें निंदा होगी; क्योंकि-दाढ़ी मूंछ मूंडके

चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् ॥ तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा
नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५ ॥ कृष्णांतिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ॥ तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा
संकर्षणो विभुः ॥ विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ असाध्विदं त्वया कृष्ण कृत-
मस्मज्जुगुप्सितम् ॥ वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ ३७ ॥ मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रा-
तुर्वैरूप्यचिंतया ॥ सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥ ३८ ॥ बंधुर्वधार्हदोषोऽपि
न बंधोर्वधमर्हति ॥ त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मः प्र-
जापतिविनिर्मितः ॥ भ्राताऽपि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतरस्ततः ॥ ४० ॥ राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रि-
यो मानस्य तेजसः ॥ मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदांधाः क्षिपंति हि ॥ ४१ ॥

विरूप करना, यह संबंधियोंका मारना है ॥ ३७ ॥ रुक्मिणीसे कहते हैं कि-हे साध्वि ! तेरा भाई विरूप हुआ इस चिंतासे हमें
दोष मत देना; क्योंकि यह अपने किये कर्मफलको भोगे है, सुख-दुःखका देनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णको
कहते हैं कि-यदि संबंधी मारनेके योग्य अपराध करै तौभी संबंधीको चाहिये कि-अपने नातेदारको न मारै, वह तो उसीके
अपराधसे मरा हुआ है. फिर उसे क्या मारना ? किंतु छोड़ देना चाहिये ॥ ३९ ॥ फिर रुक्मिणीको समझाते हैं कि-क्षत्रियों-
का यह धर्म विधाताहीने बनाया है कि-भाईभी भाईको मार डारे, इसीसे यह बड़ा दारुण कहलाता है ॥ ४० ॥ फिर श्रीकृ-
ष्णको कहते हैं कि-राज, पृथ्वी, धन, स्त्री, प्रतिष्ठा तेज और औरभी दूसरे किसी प्रयोजनके हेतु जो लक्ष्मीके मदसे अंधे और

अभिमानी हैं, वे संबंधीनका अपमान करते हैं. हमका यह उचित नहीं ॥ ४१ ॥ रुक्मिणी से कहते हैं कि—तुम्हारा भाई, कि—जो सब जीवोंका शत्रुरूप है. उसका तुम अज्ञानीकी तरह जो भला चाहती हो, सो यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है, क्योंकि उसका भला चाहनेसे दूसरे संबंधियोंका बुरा होगा ॥ ४२ ॥ यह हमारा मित्र है, यह शत्रु है और यह उदासीन है. इस प्रकार जो देहाभिमानियोंकी बुद्धि है. सो वह अंतःकरणका अज्ञान केवल ईश्वरकी मायासे कल्पित है ॥ ४३ ॥ सब प्राणिनमें शुद्ध आत्मा एकही है, तौभी अज्ञानी पुरुष उसे नानारूप कर, माने हैं. जैसे जलके भरे बासनोंमें चंद्र—आदि ज्योति एक है तौभी नानारूपसे भासे है और आकाश एक है तौभी घटादिकनमें अनेकरूपसे भासे है ॥ ४४ ॥ अध्यात्म, अधिदैवत, अधिभूतस्वरूपआदि

तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ॥ यन्मन्यसे सदाऽभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया ॥ सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥ ४३ ॥ एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥ ४४ ॥ देह आद्यंतवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ॥ आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥ नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति ॥ तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नाऽऽत्मनः क्वचित् ॥ कलानामिव नैवेंदोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥

अंतवाला यह शरीर आत्मामें अविद्यासे कल्पित है, सो जीवको संसारमें भटकावे है ॥ ४५ ॥ हे सति ! कारणरूप आत्माके न तो दूसरे देहादिकके साथ संयोग है और न वियोग है; क्योंकि अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत ये आत्माके कार्य हैं और आत्माहीसे प्रकाशित होवे हैं. तासों आत्मासे भिन्न बने नहीं, भिन्न हुये विना संयोग, वियोग बने नहीं. जैसे चक्षु इंद्रिय और रूपका प्रकाशक सूर्य है. और ये दोनों तैजस हैं तासों सूर्यके कार्य हैं. और सूर्य कारण है. तासों सूर्यसे भिन्न नहीं हैं ॥ ४६ ॥ जन्म—मरणआदि विकार तो देहके हैं, आत्माके कभी नहीं. जैसे चंद्रमामें घटाव बढ़ाव जो प्रतीत होता है, सो कलाओंका है. चंद्रमाका नहीं, वह तो सदा पूर्णरूप है और जैसे अमावसको कलाके तिरोभावसे चंद्रमाका नाश मानते हैं,

तैसे देहके तिरोभावसे आत्माका नाश कहनेमें आता है ॥ ४७ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नमें पदार्थ मिथ्या होतेभी
भोक्ता जो आप, भोग्य जो विषय, फल जो सुख, तिनका अनुभव करे है. तैसे यह अज्ञानी पुरुष संसारको प्राप्त होय है
॥ ४८ ॥ हे सुंदर मंदहासवाली रुक्मिणी ! इसलिये अज्ञानजन्य व आत्माको शोष और मोह देनेवाला जो सोच है उसे
तत्वज्ञानसे तज कर, स्वस्थ हो ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–ऐसे भगवान् बलदेवजीने रुक्मिणीको समझाया. तद उसने
उदासी छोड़, बुद्धिसे मनको स्थिर किया ॥ ५० ॥ जिसके केवल प्राणही शेष रहे हैं, शत्रुनने जिसकी सेनाको मार डाला

यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ॥ अनुभुंक्तेऽप्यसत्यर्थे यथाऽऽप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥
तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ॥ तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥ श्रीशु-
क उवाच ॥ एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ॥ वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे
॥ ५० ॥ प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः ॥ स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥ ५१ ॥ च-
क्रे भोजकटं नाम विवासाय महत्पुरम् ॥ अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ॥ कुंडिनं न
प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥ भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ॥ पुरमा-
नीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥ तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ॥ अभूदनन्यभावानां
कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥ नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुंडलाः ॥ पारिबर्हमुपाजह्रुर्वर-
योश्चित्रवाससोः ॥ ५५ ॥

है, तेज जिसका जाता रहा है. जिसके मनोरथ व्यर्थ हो गये हैं; उस रुक्मने शत्रुओंके हाथसे छूट, विरूपताका स्मरण
करके, प्रण किया कि–कुमति कृष्णको विना मारे व छोटी बहनको पीछी विना लाये, मैं कुंडिनपुरमें प्रवेश नहीं करूंगा.
तासों क्रोधसे भोजकट नाम पुर बसाय, वहां रहा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ महाराज ! भगवान्ने ऐसे राजाओंको जीत, रुक्मि-
णीको द्वारकामें लाय, विधिसे पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ महाराज ! उस समय द्वारकामें मनुष्योंके घर घरमें बड़ा उत्सव
होने लगा, क्योंकि यादवोंके पति श्रीकृष्णचद्रमें उनकी अनन्यभक्ति थी ॥ ५४ ॥ नगरके नर नारी उज्वल मणियोंके कुंडल

पहिरे, आनंदयुक्त हो, सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए जो दूल्हा दुलहन तिनके लिये सुंदर वस्तु ला, अर्पण करते थे ॥ ५५ ॥ उस समय वह द्वारका ऊंचे इंद्रध्वज, विचित्र माला, वस्त्र, रत्न व तोरणोंसे शोभा देती थी. और द्वारपै मांगलिक सामा सजी हुई थी, जलभरे घड़े, अगर, धूप व दीपोंकी शोभा बनी थी ॥ ५६ ॥ रास्तेमें छिरकाव होगया था. और जो प्यारे राजा बुलाये गये थे, तिनके मद झरते हाथियोंने द्वारपै जो सुपारी और केलेके वृक्ष ऊंचे किये थे तिनकी शोभा छा रही थी ॥ ५७ ॥ खुशीके मारे चारोंओर दौड़े फिरते जो द्वारकावासी तिनके बीच, कुरु, सृंजय, कैकेय, विदर्भ, यदु, कुंति इन देशोंके राजा परस्पर

सा वृष्णिपुर्युत्तभितेंद्रकेतुभिर्विचित्रमाल्यांबररत्नतोरणैः ॥ बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमंगलैरापूर्णकुंभाऽगुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥ सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ॥ गजैर्द्वास्सु परामृष्टरंभापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥ कुरुसृंजयकैकेयविदर्भयदुकुंतयः ॥ मिथो मुमुदिरे तस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ॥ ५८ ॥ रुक्मिण्याहरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ॥ राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥ द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ॥ रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियःपतिम् ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवे चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ॥ देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

आनंदित हो, फिर रहे थे ॥ ५८ ॥ राजा और राजकन्या जहां तहां गाये जाते रुक्मिणीके हरणको सुन, बड़ा आश्चर्य करती थीं ॥ ५९ ॥ महाराज ! लक्ष्मीके पति जो श्रीकृष्णचंद्र तिन्हें, लक्ष्मी जो रुक्मिणी उनके संग देख, द्वारकामें पुरवासिनको बड़ा आनंद प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ॥ पचपनवें अध्यायमें श्रीकृष्णसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ. व प्रद्युम्नको शंबरासुर हर ले गया. और उसे मार, अपनी स्त्रीके साथ प्रद्युम्न पीछा द्वारका आया यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–भगवान्‌का

अंश जो कामदेव सो पहले महादेवजीके क्रोधसे भस्म हो गया था. सो वह पीछा देह प्राप्त होनेको उन्हींके यहां आया ॥ १ ॥ वही कामदेव श्रीकृष्णके वीर्यसे रुक्मिणीमें जन्म ले, प्रद्युम्न नामसे विख्यात हुआ. जो पिता श्रीकृष्णसे सर्व प्रकार न्यून नहीं था ॥ २ ॥ इच्छारूप धारण करनेवाला शंबरनामा दैत्य उसे अपना शत्रु जान, दश दिनोंके अंदर प्रद्युम्नका हरण कर, समुद्रमें डालके, घरको चला गया ॥ ३ ॥ उस बालकको एक बलवान् मच्छ गिल गया, दूसरी मछलियोंके साथ उसेभी मच्छीमार, धीमरोंने बड़ा जाल डालकर, पकड़ लिया ॥ ४ ॥ और उस बड़े मच्छको धीमरोंने ला कर, शंबरको भेंट किया,

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥ तं शंबरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ॥ स विदित्वाऽऽत्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥ ३ ॥ तं निर्जगारबलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ॥ वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तं शंबराय कैवर्ता उपाजन्हुरुपायनम् ॥ सूदा महानसं नीत्वाऽऽवद्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शंकितचेतसः ॥ बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥ साच कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ॥ पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शंबरेण सा सूपौदनसाधने ॥ कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदाऽर्भके ॥ ८ ॥ नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः ॥ जनयामास नारीणां वीक्षतीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥

रसोइँये रसोईमें ले जाकर, उस अनूठे मच्छको छूरीसे चीरने लगे ॥ ५ ॥ उस मच्छके उदरमें बालकको देख, उन्होंने मायावतीको सौंप दिया, मायावती जो मनमें शंका लाती थी, तिसे नारदजीने आकर, कहा कि—यह बालक तेरा पति कामदेव है. श्रीकृष्णसे रुक्मिणीमें प्रगट हुआ है. और शंबरासुरने समुद्रमें डाल दिया. तद एक मच्छ इसे गिल गया ॥ ६ ॥ वह बड़ी यशवाली कामदेवकी स्त्री, कि—रति जिसका नाम है सो, देह जिसका भस्म हो गया है ऐसे, अपने पतिका देह उत्पन्न होनेकी प्रतीक्षा करती वहां रहती थी ॥ ७ ॥ उसे शंबरने दार भात रांधिबे यानी रसोईके काममें नियत कर, रक्खी थी, सो वह बालकको कामदेव जान, बालकपर बड़ा स्नेह करने लगी ॥ ८ ॥ थोड़ेही समयमें वह प्रद्युम्न तरुण होगया और देखतेही

स्त्रियोंके मनको मोहित करने लगा ॥ ९ ॥ महाराज ! कमलके दलसे बड़े जिसके नेत्र हैं, लंबी जिसकी भुजा हैं ऐसे मनुष्य-लोकमें सुंदर अपने पति प्रद्युम्नको लाजभरी मुसकानसे उठाई जो भृकुटी तिससे देखती, प्रीतिकरके सुरतसंबंधी जो भाव हैं तिनसे वह रति सेवन करने लगी ॥ १० ॥ तद भगवान् प्रद्युम्नने रतिसे कहा कि—हे माता ! आपकी मति औरप्रकार हो गयी है, मातृभावको तज, स्त्रीकासा आचरण करती है ॥ ११ ॥ तद रतिने कहा कि—आप श्रीकृष्णके पुत्र हो. शंबरासुर आपको सूतिकाके घरमेंसे उठा लाया है, मैं आपकी स्त्री हूं रति मेरा नाम है, हे प्रभु ! आप कामदेव हो ॥ १२ ॥ आपको जन्मतेही

सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलंबबाहुं नरलोकसुंदरम् ॥ सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरंग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ॥ मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नारायणसुतः शंबरेणाऽऽहृतो गृहात् ॥ अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥ एष त्वाऽनिर्दशं सिंधावक्षिपच्छंबरोऽसुरः ॥ मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादितः प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ॥ मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४ ॥ परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ॥ पुत्रस्नेहकुला दीना विवत्सा गौरिवाऽऽतुरा ॥ १५ ॥ प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६ ॥

दश दिनोंके भीतर यह शंबरासुर ले जाय, समुद्रमें पटक, घर आगया. वहां आपको मच्छ गिल गया. हे प्रभु ! उसके पेटमेंसे आप यहां आये हो ॥ १३ ॥ यह आपका शत्रु सैकड़ों माया जाने है. अतएव असह्य और दुर्जय है. तिसे मोहन—आदि माया करके, आप मारो ॥ १४ ॥ जैसे टिटिहरीके बच्चे चले जायं, तद वह सोच करे. तैसे तुम्हारी माता सोच करती है और बछरे विना गौ आतुर हो जाय तैसे तुम्हारी माता पुत्रके स्नेहसे घबराय दीन हो रही है ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—ऐसे कह, मायावतीने महात्मा प्रद्युम्नको सकल मायानकी विनाश करनेवाली जो महामाया है, वह विद्या दी ॥ १६ ॥

प्रद्युम्नने शंबरासुरके समीप आ, असह्य तिरस्कारके वचनोंसे उसका तिरस्कार कर, कलह उपजाय, संग्राम करनेको आव्हान किया ॥ १७ ॥ दुर्वचनोंसे तिरस्कार किया हुआ वह शंबरासुर जैसे ठोकर लगनेसे सांप फुंकारता है, तैसे गदा हाथमें ले, बाहिर निकला, उस समय उसके नेत्र क्रोधसे तांबेकेसे लाल हो रहे थे ॥ १८ ॥ उस दैत्यने गदा फिराय, महात्मा प्रद्युम्नके ऊपर चलाय, वज्रपातके समान कठोर नाद किया ॥ १९ ॥ महाराज ! भगवान् प्रद्युम्नने उस आतीहुई गदाको अपनी गदासे रोक कर, क्रोध कर, शत्रुपै अपनी गदा चलायी ॥ २० ॥ तब वह दैत्य मयदैत्यकी बतायी दैत्योंकी मायाका आश्रय ले, आकाशमें जाय, प्रद्युम्न-

स च शंबरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ॥ अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन्कलिम् ॥ १७ ॥ सो-
ऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदाहत इवोरगः ॥ निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥ गदामावि-
ध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ॥ प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥ तामापतंतीं भग-
वान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ॥ अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २० ॥ स च मायां स-
माश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ॥ मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रव-
र्षेण रौक्मिणेयो महारथः ॥ सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥ २२ ॥ ततो गौह्यकगांध-
र्वपैशाचोरगराक्षसीः ॥ प्रायुंक्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २३ ॥ निशातमसिमुद्यम्य
सकिरीटं सकुंडलम् ॥ शंबरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्र्वोजसाऽहरत् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणो दिवि-
जैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ॥ भार्ययांऽबरचारिण्या पुरं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥

पर अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ अस्त्रोंकी वर्षासे पीड़ायमान महारथ प्रद्युम्नने, सत्वमय, सर्व मायानकी नाश करनेवाली महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तब दैत्यने गुह्यकोंकी, गंधर्वोंकी, पिशाचोंकी, उरगोंकी, राक्षसोंकी अनेक मायानका प्रयोग किया. परंतु प्रद्युम्नने उन सबका नाश किया ॥ २३ ॥ फिर तीक्ष्ण खड्ग उठाय, किरीट और कुंडलसहित जो लाल दाढ़ी मूंछवाला शंबरका शिर है, तिसे पराक्रम कर, धड़से जुदा कर दिया ॥ २४ ॥ तब देवताननें स्तुति की और फूल बरसाये और आकाशरस्तेसे चलनेवाली स्त्रीने आकाशमार्गसे द्वारका पहुंचाया ॥ २५ ॥

महाराज! अनेक स्त्रियोंसे व्याप्त जो श्रेष्ठ अंतःपुर तहां आकाशमार्ग हो, स्त्रीके साथ जैसे बिजलीके साथ बादल आवे तैसे, उसने प्रवेश किया॥ २६ ॥ मेघसा श्याम बरन, पीले पीतांबर पहरे, लंबी भुजावाला, अरुण नयन, सुंदर जिसका मंद हास है, रुचिर जिसका मुख है ॥ २७ ॥ नील और टेढ़ी अलकावलीरूप भौंरोंसे शोभायमान जिसका मुखकमल है, ऐसे उस प्रद्युम्नको देख, सब अंतःपुरकी स्त्रियां श्रीकृष्ण मान, लज्जित हो, जहां तहां छिप गयीं ॥ २८ ॥ कुछ विलक्षण देख, धीरे धीरे श्रीकृष्ण नहीं है, ऐसे निश्चय करके, वे स्त्रियां प्रसन्न हो, आश्चर्य करतीं, स्त्रियोंमें रत्नभूत जो रति उससहित प्रद्युम्नके निकट आयीं ॥ २९ ॥ वहां

अंतःपुरवरं राजन्ललनाशतसंकुलम् ॥ विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ प्रलंबबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखांभोजं नीलवक्रालकालिभिः ॥ कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥ २८ ॥ अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ॥ उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥ अथ तत्रासितापांगी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ॥ अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ कोऽन्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ॥ धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥ मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ॥ एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ॥ आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ३३ ॥ स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ॥ अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥ ३४ ॥

स्नेहसे स्तन जिसके झर रहे हैं, मधुर जिसका वचन है ऐसी श्यामकटाक्षवाली रुक्मिणीने नष्ट हुए अपने पुत्रका स्मरण किया ॥ ३० ॥ कमलसे जिसके नेत्र हैं ऐसा यह पुरुषोंमें श्रेष्ठ कौन है ? और किसका है ? और इसको किसने उदरमें धारण किया है ? और इसे यह स्त्री कौन मिली है ? ॥ ३१ ॥ मेराभी पुत्र नष्ट हो गया था, जिसे कोई सूतिकाघरमेंसे हर ले गया था. जो वह कहीं जीता होगा, तद उसकी इतनीही उम्र है. और ऐसाही रूप है ॥ ३२ ॥ इसने आकार, अवयव, चाल, स्वर, हँसने और देखनेसे श्रीकृष्णके तुल्य रूप कैसे पाया है ? ॥ ३३ ॥ कदाचित् वही बालक तो यह नहीं है ? जिसको मैंने

गर्भमें धारण किया था ? क्योंकि इसमें मेरी प्रीति बहुत है और मेरी बाई बांहभी फरकती है ॥ ३४ ॥ ऐसे रुक्मिणीके विचार करते देवकी और वसुदेवजीके साथ उत्तमकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णचंद्र आये ॥ ३५ ॥ आप सब जानते थे. तौभी चुप बैठ गये, तद नारदजीने आकर, शंबर हर ले गया–आदि सब हाल कह, सुनाया ॥ ३६ ॥ यह बड़ी अद्भुत बात सुन, भगवान्के अंतःपुरकी स्त्रियोंने प्रद्युम्नका सत्कार किया, जो मानों मर कर, पीछा आया हो तैसे बहुत बरसोंसे नष्ट होकर, पीछा आया था ॥ ३७ ॥ देवकी, वसुदेव, राम, कृष्ण तथा स्त्रियां और रुक्मिणी ये सब इस युगलसे मिल, आनंदको प्राप्त हुए ॥ ३८ ॥ खो गया हुआ प्रद्युम्न पीछा

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ॥ देवक्यानकदुंदुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं शंबराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णांतःपुरयोषितः ॥ अभ्यनंदन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवाऽऽगतम् ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ॥ दंपती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥ ३८ ॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ॥ अहो मृत इवाऽऽयातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥ ३९ ॥ यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रह रूढभावाः ॥ चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिंबबिंबे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

आया यह बात सुन, द्वारकाके लोग कहने लगे कि–मानों मर कर, पीछा आया हो तैसे यह बालक पीछा आया यह बहुत अच्छा हुआ ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णके समान प्रद्युम्नका रूप देख, उसमें वारंवार अपने स्वामीकी भावना होनेसे उनकी माता जो रुक्मिणीआदि, वेभी प्रथम एकांतमें बहुत प्रेम कर, भ्रांत हो, प्रद्युम्नका सेवन करने लगीं, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि लक्ष्मीके निवास जो श्रीकृष्णचंद्र तिनका पुत्र जो कामदेव उसका मनमें स्मरण करतेही जद मन चलायमान हो जाय है, तद साक्षात् मूर्तिमानके दर्शन होनेसे मोहित होवें इसमें तो कहनाही क्या ? जब माताभी भ्रांत हो गयीं. तद दूसरी स्त्रियोंकी तो बातही कौन ? ॥ ४० ॥ इति श्री० म० दश० रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

छप्पनवें अध्यायमें भगवान् अपने ऊपर झूंठा कलंक आनेपर मणि ले, आये. और जांबवान्की कन्याको प्राप्त हो फिर सत्राजितकी कन्याको प्राप्त हुए यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-सत्राजितने भगवान्का अपराध किया था. इसलिये उसे स्यमंतक मणिके साथ अपनी कन्यास्वयं उद्यम करके श्रीकृष्णचंद्रको देनी पड़ी ॥ १ ॥ परीक्षित बोले कि-हे ब्रह्मन् ! सत्राजितने भगवान्का क्या अपराध किया ? उसके पास स्यमंतक मणि कहांसे आयी ? और कन्या श्रीकृष्णको क्यों दी ? ॥२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-सत्राजित सूर्यनारायणका परमभक्त था, यद्यपि सूर्य उसके स्वामी थे. तौभी

श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥ स्यमंतकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम् ॥ स्यमंतकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ॥ प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमंतकम् ॥३॥ स तं बिभ्रन्मणिं कंठे भ्राजमानो यथा रविः ॥ प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ॥ दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशंकिताः ॥५ ॥ नारायण नमस्तेऽस्तु शंखचक्रगदाधर ॥ दामोदरारविंदाक्ष गोविंद यदुनंदन ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ॥ मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७ ॥

उसे सखाके बराबर मानते, सूर्यने प्रसन्न होके, स्नेहसे उसे स्यमंतक नाम मणि दी ॥ ३ ॥ वह सत्राजित् कंठमें मणि धारण किये सूर्यके तुल्य प्रकाशमान द्वारकामें प्रविष्ट हुआ, महाराज ! उसने तेजके प्रभावसे किसीने नहीं पहिंचाना ॥ ४ ॥ लोक उसे दूरसे देख, तेजसे चकाचौंध दृष्टि हो, चौपरखेलते भगवान्के समीप आ, सूर्य आवे हैं ऐसे शंकित हो, कहने लगे ॥ ५ ॥ हे शंख, चक्र, गदा धारण करनहारे नारायण ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र ! हे गोविंद ! हे यदुनंदन ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ हे जगतपति ! यह चंडकिरण सूर्य किरणोंके समूहसे मनुष्योंके नेत्रोंका हरण करते आपके दर्शनकी इच्छा किये

आते हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभु ! त्रिलोकिमें जो श्रेष्ठ देवता हैं, वेभी आपके मार्गको ढूंढते हैं. अभी आपको यादवोंमें गुप्त रीतिसे रहे जानके, सूर्यनारायण तुम्हारे दर्शनको आते हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–अज्ञानी पुरुषोंके वचन सुन, हँसकर, कमलनयन भगवानने कहा कि–यह सूर्य नहीं हैं, यह तो सत्राजित यादव है. मणिसे ऐसा प्रकाशे है ॥ ९ ॥ फिर सत्राजितने अपने घरमें उत्सवके निमित्त मांगलिक कर्म करवाय, प्रवेश किया और देवमंदिरमें ब्राह्मणोंद्वारा मणि स्थापन करवायी ॥ १० ॥ महा-

नन्वन्विच्छंति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ॥ ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य बालवचनं प्रहस्यांबुजलोचनः ॥ प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥ सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमंगलम् ॥ प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥१०॥ दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ सा सृजति प्रभो ॥ दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ॥ न संति मायिनस्तत्र यत्राऽऽस्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥ ११ ॥ स याजितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ॥ नैवार्थकामुकः प्रादाद्याञ्चाभंगमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदा मणिं कंठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ॥ प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥

राज ! वह मणि प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देती थी, जहां मणिका पूजन होता वहां दुर्भिक्ष, मारी, अकल्याण, सांप, आधि, व्याधि और दूसरे अशुभ व मायावी लोक नहीं रह सक्के ॥ ११ ॥ एक समय उग्रसेनजीके वास्ते श्रीकृष्णचंद्रने मणि मांगी, पर धनके लोभी सत्राजितने भगवान्‌की याचनाभंगका ध्यान न करके, मणि नहीं दी ॥ १२ ॥ एक समय सत्राजितका छोटा भाई प्रसेन बड़ी प्रकाशमान मणि कंठमें बांध, घोड़ेपै सवार हो, वनमें सिकार करने गया ॥ १३ ॥

१ चारसो तोलोंकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार होता है.

२ भगवानके अर्पण किये विना किसी वस्तुका आप उपयोग करे तौ चाहे वह वस्तु अनिष्ट मिटानेवाली क्यों न हो पर अनिष्टकारकही होवेगी यह विषय इस कथासे सूचित होता है.

वहां एक सिंह घोड़ेके साथ प्रसेनको मार, मणि ले, पर्वतमें जाने लगा. इतनेमें मणिकी इच्छा करते जांबवान् नाम रीछने उसेभी मार डाला ॥ १४ ॥ जांबवाननेभी बिलमें जाय, वह मणि अपने बालकका खिलौना बनाया, भाईको न देख कर, भाई सत्राजित सोच करने लगा ॥ १५ ॥ बहुधा मेरे भाईको कृष्णनेही मारा होगा; क्योंकि वह गलेमें मणि पहिर कर, वनमें गया था; यह बात सुन कर, लोग कान कानमें गुप्त रीतिसे वार्ता कहने लगे ॥ १६ ॥ भगवान् आपको वह कलंक लगा सुन कर, नगरके लोगोंको संग ले, प्रसेनको ढूंढ़ने चले ॥ १७ ॥ वनमें केसरी सिंहसे मरेहुए प्रसेन और घोड़ेको

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ॥ गिरिं विशन्जांबवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥ सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले॥ अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत॥ १५॥ प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनंगतः ॥ भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ १६ ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ॥ तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलं भीमम्धेन तमसावृतम् ॥ एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥ तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ॥ हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकांतिके ॥ २० ॥ तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥ तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जांबवान्बलिनां वरः ॥ २१ ॥ स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनाऽऽत्मनः ॥ पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥

देखा और उस सिंहकोभी पर्वतके ऊपर रीछके हाथ मरा देखा ॥ १८ ॥ रीछोंके राजाकी गुफा बड़ी भयंकर और घोर अंधकारसे व्याप्त थी, उसे देख, भगवान् प्रजानको बाहिर खड़ी रख, आप अकेले अंदर प्रविष्ट हुए ॥ १९ ॥ वहां बालकका खिलौना किये मणिका देख, मणि हरनेका विचार कर, बालकके निकट खड़े रहे ॥ २० ॥ उस अपूर्व मनुष्यको देख कर, दायी भयभीतकी तरह पुकारी, बलवानोंमें श्रेष्ठ जांबवान् वह आवाज सुन, क्रोध कर, सन्मुख दौड़ आया ॥ २१ ॥ अपने स्वामी जो भगवान् हैं तिन्हें साधारण मनुष्य जान, क्रोध कर, वह उनसे युद्ध करने लगा; क्योंकि वह उनके प्रभावको नहीं

जानता था ॥ २२ ॥ जीतनेकी इच्छावाले उन दोनोंके आयुध, पत्थर वृक्ष और भुजानसे भारी भयंकर द्वंद्वयुद्ध हुआ. जैसे मांसके लिये दो सिकरे लड़ते हैं ॥ २३ ॥ वज्रपातके तुल्य जो कठोर मुष्टि हैं तिनसे विना विश्राम लेते राति दिन अठाईस दिनतक परस्पर युद्ध हुआ ॥ २४ ॥ जद श्रीकृष्णकी मुष्टिप्रहारसे उसके अंगोंके सब बंधन शिथिल हो गये. और पराक्रम क्षीण हो गया, पसीना अंगमें आगया, तद अतिअचंभेमें आ, उनसे कहने लगा कि- ॥ २५ ॥ मैं आपको जानता हूं. आप सब जीवोंके जो प्राण तिनमें ओज (इंद्रियोंका बल), सह (हृदयका बल) और बल (देहका बल) रूप हो तथा पुराणपुरुष,

द्वंद्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ॥ आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ॥ वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टांगोरुबंधनः ॥ क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीवविस्मितः ॥ २५ ॥ जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ॥ विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ॥ कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथाऽऽत्मनाम् ॥ २७ ॥ यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिंगिलोऽब्धिः ॥ सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लंका रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ ॥ इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ॥ व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥

सर्वके प्रभु, सबको वश करनेवाले विष्णुरूप हो ॥ २६ ॥ जगतके सृजनेवाले जो ब्रह्मादिक उनकेभी आप निमित्तकारण हो और उत्पत्तिके योग्य जो कार्य तिसके उपादान कारण हो और सबके प्रेरणवारे जो हैं उनके ईश्वर और कालरूप आप हो तथा जीवोंके शुद्ध आत्मरूप आप हो ॥ २७ ॥ अतएव मेरे इष्टदैवत रघुनाथ आप हो, जिनके किंचित् उद्दीपित क्रोधभरे कटाक्षपातसे समुद्रके नक्र और मगर क्षोभित हो गये, तद समुद्रने मार्ग दिया, जिन्होंने समुद्रमें अपने यशरूप सेतु बांधा, फिर जिन्होंने लंकाको जलाय बाणोंसे राक्षस रावणके शिर काटके, पृथ्वीपै गिराये. वे रामचंद्र आप हो ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-

महाराज ! इस प्रकार रीछोंके राजाको ज्ञान प्राप्त हो गया तद कमलनेत्र देवकीपुत्र भगवानने परम कृपासे अपना सुखकारी हाथ उस भक्तके शरीरपर फेरा और प्रेमपूर्वक गंभीर वाणीसे कहा कि- ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे रीछोंके पति ! हम यहां बिलमें मणिके लिये आये हैं. क्योंकि हमपै जो झूंठा कलंक आया है, वह इस मणिसे दूर किया जायगा ॥ ३१ ॥ ऐसे कहनेपर उसने आनंदपूर्वक अपनी जांबवती नाम कन्या मणिके साथ पूजा करनेके निमित्त श्रीकृष्णको दी ॥ ३२ ॥ जो लोग संग थे, वे गुफामें प्रवेश किये भगवान्‌को बाहिर निकलते न देखके, बारह दिनतक राह देख, दुःखी हो, द्वारका चले आये ॥ ३३ ॥

अभिमृश्यारविंदाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ॥ कृपया परया भक्तं प्रेमगंभीरया गिरा ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥ मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनाऽमुना ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जांबवतीं मुदा ॥ अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥ ३२ ॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ॥ प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥ निशम्य देवकीदेवी रुक्मिण्यानकदुंदुभिः ॥ सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितं शपंतस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ॥ उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥ तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाऽऽशिषा स च ॥ प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवाऽऽगतम् ॥ सहपत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥ सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ॥ प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥

रुक्मिणी देवी, देवकी, वसुदेवजी, बंधु और ज्ञातिके लोग श्रीकृष्णको बिलसे बाहिर न आये सुन कर, शोच करने लगे ॥ ३४ ॥ वे द्वारकावासी सत्राजितको गाली देते दुखी हो, श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये महामाया चंद्रभागानाम दुर्गा देवीका अनुष्ठान करने लगे ॥ ३५ ॥ देवीका अनुष्ठान करनेसे ज्यों देवीने आशीर्वाद दिया कि-तुम श्रीकृष्णको देखोगे, त्यों कार्यसिद्ध करके, स्त्रीको संग लिये हरिभगवान् आनंद देते प्रगट हुए ॥ ३६ ॥ मानों मर कर, पीछे आये हों ऐसे श्रीकृष्णको गलेमें मणि धारणकिये, स्त्रीको संगलिये, प्राप्त होकर, सब लोग बड़े आनंदित हुए ॥ ३७ ॥ श्रीकृष्णचंद्रजीने सत्राजितको राजाके समीपमें सभामें बुलाय, मणि

प्राप्त होनेके समाचार सुनाय, उसे मणि दीनी ॥ ३८ ॥ तद वह अतिलज्जित हो, मणि ले, नीचा मुख करके, अपने अपराधसे पश्चात्ताप करता घर आया ॥ ३९ ॥ बलवान् जो श्रीकृष्ण उनके साथ विरोध होनेसे व्याकुल वह सत्राजित अपने उसी अपराधका चिंतवन करने लगा कि–अब मैं मेरे अपराधको किस प्रकार दूर करूं ? भगवान कैसे प्रसन्न होवें ? ॥ ४० ॥ क्या करनेसे मेरा भला होवे ? मुझ अदीर्घदर्शी, तुच्छ, मूर्ख, द्रव्यलोभीको लोग किस भांति गाली न दें?॥ ४१ ॥ मैं उन्हें स्त्रीरत्नरूप मेरी कन्या और मणि ये दोनों दे दूंगा, यही उपाय अच्छा है, नहीं तो शांति होनेकी नहीं ॥ ४२ ॥ सत्राजितने ऐसे अपनी

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वाऽवाङ्मुखस्ततः ॥ अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ॥ कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽच्युतः कथम् ॥ ४० ॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ॥ अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥ दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ॥ उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शांतिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ॥ मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४३ ॥ तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ॥ बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥ तवाऽऽस्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे स्यमंतकोपाख्याने षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ॥

बुद्धिसे निश्चय करके, अपनी सुंदर कन्या और मणि ये दोनों स्वयं उद्युक्त हो, श्रीकृष्णके अर्पण करीं ॥ ४३ ॥ रूप, उदारता-आदि–गुणयुक्त उस सत्यभामाका भगवान्ने विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया, जिसको कृतवर्मा–आदि कई मांग चुके थे ॥ ४४ ॥ भगवान्ने सत्राजितसे कहा कि– महाराज ! हम मणि नहीं लेंगे, आप सूर्यके भक्त हो, सो आपहीके पास रहनी चाहिये, हम तो फलके भागी हैं. तुम्हारे पुत्र नहीं हैं इससे तुम्हारा धन हमारा है. यह भगवान्का गूढ़ अभिप्राय था ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामरत्नसवविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ॥

सत्तावनवें अध्यायमें, शतधन्वाके मारनेसे जो कलंक आया, वह अक्रूरजीसे मणि मँगवाय, दूर किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– पांडव बिलमें हो, लाक्षाभवनसे निकल गये. यह बात आप जानते थे. तौभी कुंती व पांडवोंको लाक्षाभवनमें जले सुन, कुलोचित व्यवहार करनेको बलदेवजीको साथ ले, कुरुदेश पधारे ॥ १ ॥ भीष्मजी, कृपाचार्य, विदुर, गांधारी और द्रोण इनसे मिल, बराबर दुखी हो, हाय !!! बड़ा कष्ट है. ऐसे वे दोनों भाई कहने लगे ॥ २ ॥ महाराज ! अक्रूर व कृतवर्मा इस अंतरको पाय, शतधन्वासे कहने लगे कि–मणि क्यों नहीं लेता ? ॥ ३ ॥ जिस सत्राजितने कन्यारत्न

श्रीशुक उवाच ॥ विज्ञातार्थोऽपि गोविंदो दग्धानाकर्ण्य पांडवान् ॥ कुंतीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गांधारीं द्रोणमेव च ॥ तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥ लब्ध्वैतदंतरं राजन् शतधन्वानमूचतुः ॥ अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥ योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः ॥ कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ॥ शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥ ५ ॥ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रंदतीनामनाथवत् ॥ हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचाऽर्पिता ॥ व्यलपत्तात तातेति हा हताऽस्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ॥ कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽऽचाख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥

देनेका आपनसे स्वीकार किया था, फिर अपना अनादर करके, श्रीकृष्णको व्याह दी, वह भाईके पीछे क्यों न जाय ? यानी क्यों न मरे ? ॥ ४ ॥ ऐसे उन दोनोंने बहँकाया, तद वह नीच पापी कि–जिसकी मीच नगीच आगयी थी, उसने लोभसे सोते हुए सत्राजितको मार डाला ॥ ५ ॥ अनाथकी तरह स्त्रियां रोतीं विलाप करतीं थीं. पर वह तो कसाई जैसे पशुनको मारता है, तैसे उसे मार, मणि ले, चला गया ॥ ६ ॥ सत्यभामा अपने पिताको मरा देख, शोच करती ' हाय ! मैं मर गयी ' ऐसे मूर्छित होती, हे तात ! २ ऐसे विलाप करने लगी ॥ ७ ॥ मृतक सत्राजितको तेलके कड़ाहमें रख कर, सत्यभामा हस्तिना-

पुर गयी. भगवान्ने पहलेही यह बात जान लीनी- तौभी उसने संतप्त होकर, अपने पिताके मरणके समाचार सुनाये ॥ ८ ॥ महाराज ! यह बात सुन, वे दोनों यद्यपि ईश्वर हैं तौभी मनुष्यलोकका अनुसरण करते आंखोंमें आंसू भर कर, 'अहो ! हमें बड़ा कष्ट है' ऐसे विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ भगवानने वहांसे बड़े भाई और सत्यभामाके साथ द्वारका आ, शतधन्वाको मार, मणि लेनेका उद्योग किया ॥ १० ॥ उसनेभी श्रीकृष्णके उद्योगकी खबर पाय, डरते प्राण बचानेकी इच्छासे कृतवर्माके पास आ, सहायता मांगी, तद वह बोला कि-॥ ११ ॥ ईश्वर जो राम-कृष्ण हैं तिनका अपराध मैं नहीं करसक्ता, उनका अपराध करके, कौन कुशल रह सक्ता

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ॥ शतधन्वानमारेभे हंतुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२ ॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ॥ जरासंधः सप्तदशसंयुगान्विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ॥ सोप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हंति च ॥ चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥ यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल उच्छिलींध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥ अनंतायादिभूताय कूटस्थायाऽऽत्मने नमः ॥ १७॥

है ? ॥ १२ ॥ देखो ! कंस छुटभैयोंके साथ राज्य-लक्ष्मीसे भ्रष्ट हो, जिनके बैरसे मरा. और जरासंध सत्रह बेर विरथ हो, संग्राममें हार कर गया ॥ १३ ॥ जद कृतवर्माने नाहीं की. तद अक्रूरजीके पास जाय, सहायता मांगी. उसनेभी कहा कि-उन ईश्वरोंके बलको जानता उनसे कौन विरोध करे ? ॥ १४ ॥ जो इस जगतको लीलासे सरजे हैं व संहार करे हैं और जिसकी मायासे मोहित हो कर, उस जगत्स्रष्टाकी चेष्टाको कोई नहीं जान सक्ता ॥ १५ ॥ जिसने सात बरसकी बाल्य अवस्थामें पर्वतको उठाय, एक हाथसे लीलासे धारण किया. जैसे बालक छत्राकको उठाता है ॥ १६ ॥ उन अद्भुत चरित करनेवाले, अनंत,

सर्वके आदिकारण, निर्विकारस्वरूप, भगवान् श्रीकृष्णको मैं वारंवार प्रणाम करता हूं ॥ १७ ॥ जब अक्रूरजीने नाहीं की. तद शतधन्वा वह बड़ी मणि अक्रूरजीको सौंप, सौ योजन जानेवाले घोड़ेपर चढ़, चला ॥ १८ ॥ महाराज ! राम–कृष्णभी गरुड़की ध्वजावाले रथमें बैठे, बड़े बेगवाले घोड़ोंसे उस गुरुद्रोहीके पीछे चले ॥ १९ ॥ मिथिलाके उपवनमें पड़ेहुए घोड़ेको छोड़-वह डरता पावोंसे दौड़ा, भगवान् श्रीकृष्णभी पीछे दौड़े ॥ २० ॥ प्यादल श्रीकृष्णचंद्रने तीक्ष्ण धारवाले अपने चक्रसे प्यादल,

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ॥ अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलाया-मुपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्त-स्य पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥ अलब्धमणिरा-गत्य कृष्ण आहाग्रजांतिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नू-नं स मणिः शतधन्वना ॥ कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनंदनः ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथि-लः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीय समर्हणैः ॥ २५ ॥

उस शतधन्वाका शिर काटके, उसके वस्त्रमें मणि ढूंढी ॥ २१ ॥ मणि नहीं मिली तद, श्रीकृष्णने बलदेवजीके समीप आकर, कहा कि– शतधन्वाको तौ वृथाही मारा; क्योंकि, उसके पास मणि नहीं है ॥ २२ ॥ तद बलदेवजीनें कहा कि– वह मणि शतधन्वाने किसीको सौंप दी होगी, सो तुम पुरीको जाओ. और उसे ढूंढो ॥ २३ ॥ बलदेवजीको शक हुआ कि– अवश्य मणि मिलगयी. परंतु श्रीकृष्ण अपनी स्त्रीको देना चाहते हैं, इस लिये मुझसे छल करते हैं. तौभी क्रोध प्रगट न करके, बोले कि–मैं तो मेरे प्रियतम विदेहसे मिलना चाहता हूं. महाराज ! ऐसे कह, बलदेवजी मिथिला पुरी पधारे ॥ २४ ॥ उन्हें देख, मिथिलाका राजा प्रसन्नचित्त हो, जल्दी उठ खड़ा हुआ. और पूजनीय जो बलदेवजी हैं उनकी पूजाकी सामग्रीसे उ-

पुर गयी. भगवान्‌ने पहलेही यह बात जान लीनी. तौभी उसने संतप्त होकर, अपने पिताके मरणके समाचार सुनाये ॥ ८ ॥ महाराज !
यह बात सुन, वे दोनों यद्यपि ईश्वर हैं तौभी मनुष्यलोकका अनुसरण करते आंखोंमें आंसू भर कर, 'अहो ! हमें बड़ा कष्ट है' ऐसे
विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ भगवानने वहांसे बड़े भाई और सत्यभामाके साथ द्वारका आ, शतधन्वाको मार, मणि लेनेका उद्योग
किया ॥ १० ॥ उसनेभी श्रीकृष्णके उद्योगकी खबर पाय, डरते प्राण बचानेकी इच्छासे कृतवर्माके पास आ, सहायता मांगी, तद
वह बोला कि—॥ ११ ॥ ईश्वर जो राम—कृष्ण हैं तिनका अपराध मैं नहीं करसक्ता, उनका अपराध करके, कौन कुशल रह सक्ता

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥ आग-
त्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ॥ शतधन्वानमारेभे हंतुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि
कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाह-
मीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२ ॥ कंसः स-
हानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ॥ जरासंधः सप्तदशसंयुगान्विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः
स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ॥ सोप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया
विश्वं सृजत्यवति हंति च ॥ चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥ यः सप्तहायनः
शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल उच्छिलींध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते
कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥ अनंतायादिभूताय कूटस्थायाऽऽत्मने नमः ॥ १७ ॥

है ? ॥ १२ ॥ देखो ! कंस छुटभैयोंके साथ राज्य—लक्ष्मीसे भ्रष्ट हो, जिनके वैरसे मरा. और जरासंध सत्रह बेर विरथ हो, सं-
ग्राममें हार कर गया ॥ १३ ॥ जद कृतवर्माने नाहीं की. तद अक्रूरजीके पास जाय, सहायता मांगी. उसनेभी कहा कि—उन
ईश्वरोंके बलको जानता उनसे कौन विरोध करे ? ॥ १४ ॥ जो इस जगतको लीलासे सरजे हैं व संहार करे हैं और जिसकी
मायासे मोहित हो कर, उस जगत्स्रष्टाकी चेष्टाको कोई नहीं जान सक्ता ॥ १५ ॥ जिसने सात बरसकी बाल्य अवस्थामें पर्वत-
को उठाय, एक हाथसे लीलासे धारण किया. जैसे बालक छत्राकको उठाता है ॥ १६ ॥ उन अद्भुत चरित करनेवाले, अनंत,

सर्वके आदिकारण, निर्विकारस्वरूप, भगवान् श्रीकृष्णको मैं वारंवार प्रणाम करता हूं ॥ १७ ॥ जब अक्रूरजीने नाहीं की. तद शतधन्वा वह बड़ी मणि अक्रूरजीको सौंप, सौ योजन जानेवाले घोड़ेपर चढ़, चला ॥ १८ ॥ महाराज ! राम-कृष्णभी गरुड़ की ध्वजावाले रथमें बैठे, बड़े बेगवाले घोड़ोंसे उस गुरुद्रोहीके पीछे चले ॥ १९ ॥ मिथिलाके उपवनमें पड़ेहुए घोड़ेको छोड़ वह डरता पावोंसे दौड़ा, भगवान् श्रीकृष्णभी पीछे दौड़े ॥ २० ॥ प्यादल श्रीकृष्णचंद्रने तीक्ष्ण धारवाले अपने चक्रसे प्यादल,

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ॥ अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलाया-मुपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्त-स्य पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥ अलब्धमणिरा-गत्य कृष्ण आहाग्रजांतिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नू-नं स मणिः शतधन्वना ॥ कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनंदनः ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथि-लः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीय समर्हणैः ॥ २५ ॥

उस शतधन्वाका शिर काटके, उसके वस्त्रमें मणि ढूंढ़ी ॥ २१ ॥ मणि नहीं मिली तद, श्रीकृष्णने बलदेवजीके समीप आकर, कहा कि- शतधन्वाको तो वृथाही मारा; क्योंकि, उसके पास मणि नहीं है ॥ २२ ॥ तद बलदेवजीनें कहा कि- वह मणि शतधन्वाने किसीको सौंप दी होगी, सो तुम पुरीको जाओ. और उसे ढूंढ़ो ॥ २३ ॥ बलदेवजीको शक हुआ कि- अवश्य मणि मिलगयी. परंतु श्रीकृष्ण अपनी स्त्रीको देना चाहते हैं, इस लिये मुझसे छल करते हैं. तौभी क्रोध प्रगट न करके, बोले कि-मैं तो मेरे प्रियतम विदेहसे मिलना चाहता हूं. महाराज ! ऐसे कह, बलदेवजी मिथिला पुरी पधारे ॥ २४ ॥ उन्हें देख, मिथिलाका राजा प्रसन्नचित्त हो, जल्दी उठ खड़ा हुआ. और पूजनीय जो बलदेवजी हैं उनकी पूजाकी सामग्रीसे उ-

सने विधिवत् पूजा की और बलदेवजीभी कितनेएक बरस वहां मिथिलामें रहे ॥ २५ ॥ वहां धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने अवसर पाय, उनसे गदायुद्धकी विद्या सीखी. महात्मा जनकनेभी प्रीतिके साथ दुर्योधनका बड़ा आदर सत्कार किया ॥ २६ ॥ भगवानने द्वारकामें आकर, शतधन्वाका वध और मणि उसके पास नहीं मिली यह बात कही. यद्यपि प्रभु सत्यभामाको प्रसन्न रखते, तौभी सत्यभामाको शक हुआ कि–मणि श्रीकृष्णने बड़े भाई बलदेवजीको दी. मेरे पास छल करते हैं ॥ २७ ॥ फिर आपने मृतक ससुरकी और्ध्वदेहिक क्रिया जो जो परलोकसंबंधी हुआ करतीं हैं वे सब बंधुनको साथ रख कर, करवायीं ॥ २८ ॥

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ॥ मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥ ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६ ॥ केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ॥ अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥ ततः स कारयामास क्रिया बंधोर्हतस्य वै ॥ साकं सुहृद्भिर्भगवान्या याः स्युः सांपरायिकाः ॥ २८ ॥ अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ॥ व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ॥ शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥ इत्यंगोपदिशंत्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ॥ मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ॥ स्वसुतां गांदिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥

अक्रूर व कृतवर्मा शतधन्वाका वध सुन, भयसे त्रास खा, द्वारकासे निकल गये; क्योंकि शतधन्वाको प्रेरणा इन्हींने की थी ॥ २९ ॥ अक्रूरजी जाते रहे तब द्वारकावासियोंके अरिष्ट होने लगे और देवता और भूतसंबंधी शरीर व मनके संताप होने लगे. ॥ ३० ॥ महाराज ! ऐसे कितने एक मुनि लोग अपनेही कहे हुए श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूल कर, कहते हैं; क्योंकि मुनि लोगोंके निवासभूत श्रीकृष्णके विराजते अरिष्टका दीखना संभवेही कैसे ? ॥ ३१ ॥ कितनेएक मुनिलोग कहते हैं कि–अक्रूरजीके जानेपर द्वारकाके वृद्ध लोग कहने लगे कि–जब इंद्रने बरसा न करी, तब काशीके राजाने अपनी पुरीमें आयेहुए श्वफल्कको गांदिनी नाम अपनी कन्या दी, तब काशीमें वर्षा हुई ॥ ३२ ॥

अक्रूरजी उसके पुत्र हैं. सो इनकाभी वैसाही प्रभाव है सो ये जहां जाते हैं. वहीं वर्षा होती है. और वहां न ताप और न मारी है ॥ ३३ ॥ ऐसे वृद्धपुरुषोंके वचन सुन, केवल इतनाही नहीं, किंतु मणिभी जातीरही. यहभी इसमें कारण है. ऐसे मान, भगवानने अक्रूरजीको बुलाय, ॥ ३४ ॥ पूजन कर, इन्हें संबोधन दे, प्यारी बातें कह कर, सर्वज्ञ और मनकी बात जाननेवाले भगवान्‌ने मुसकुरायके, कहा कि—॥ ३५ ॥ हे दानपति ! लक्ष्मीमान् जो स्यमंतक नाम मणि है. सो शतधन्वाने आपको सौंपी है. यह बात हम तो पहलेहीसे जानते हैं ॥ ३६ ॥ सत्राजितके पुत्र नहीं है. तासों जल व पिंड दे, ऋण चुकाय, शेष धन

तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ॥ देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥ ३३ ॥ इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ॥ इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाऽभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५ ॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ॥ स्यमंतको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः ॥ ३६ ॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ॥ दायं निनीयापःपिंडान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ॥ किंतु मामग्रजः सम्यङ्न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥ दर्शयस्व महाभाग बंधूनां शांतिमावह ॥ अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तंते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ॥ आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥

जो रहे सो बेटीके पुत्र लेवें, यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ ३७ ॥ तौभी यह मणि आपके पासही रहने दो; क्योंकि यह दूसरोंके पास रहे ऐसी नहीं है, किंतु आपके पास रह सकेगी; क्योंकि आप सुंदर व्रत धारण करो हो, परंतु बड़े भाई बलदेवजीको इस मणिके विषयमें हमारा विश्वास नहीं है ॥ ३८ ॥ तासों हे महाराज ! वह मणि बंधुनको दिखलाकर, आपसमें शांति करो, कदाचित् आप कहोगे कि—हमारे पास नहीं है. सो कभी नहीं हो सक्ता, क्योंकि मणिविना सुवर्णकी वेदीवाले आप अखंड यज्ञ करते हो, सो इतना धन कहांसे आया ? ॥ ३९ ॥ इसप्रकार अक्रूरजीको सामवचनोंसे समझास की. तद सूर्यके समान प्रकाशमान मणिको वस्त्रसे ढक, वरसे लाकर, अक्रूरजीने श्रीकृष्णको दी ॥ ४० ॥

तद भगवान्ने स्यमंतक मणि बंधुनको दिखलाय, उस मणिसे अपना कलंक उतार, पीछी उन्हें सौंप दी ॥ ४१ ॥ जगदीश्वर विष्णु भगवान्का यह चरित कि- जो उनके पराक्रमयुक्त, दुःखहर और अतिमांगलिक है, इसे जो पढ़े, सुने, या स्मरण करे, उसका कलंक दूर हो जाय. और कलंकमूलक पापभी निवृत्त हो जाय व शांतिको प्राप्त होय ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ॥ अठ्ठावनवें अध्यायमें कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा इन पांचोंसे व्याह किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदे-

स्यमंतकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ॥ विसृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमंगलं च ॥ आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शांतिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे स्यमंतकोपाख्याने सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा पांडवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ॥ इंद्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुंदमखिलेश्वरम् ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणा मुख्यमिवाऽऽगतम् ॥ २ ॥ परिष्वज्याच्युतं वीरा अंगसंगहतैनसः ॥ सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ॥ फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवंदितः ॥ ४ ॥

वजी बोले कि- लाक्षाभवनमें पांडव जल गये. यह बात होनेपर फिर द्रुपदराजाके यहां पीछे प्रगट हुए. ऐसी पांडवोंकी खबर पाय, पुरुषोत्तम भगवान् सात्यकी-आदि यादवोंको संग ले, एक समय इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) पधारे ॥ १ ॥ सकलके ईश्वर भगवान्को आते देख, वे वीर पांडव एकसाथ उठ खड़े हुए, जैसे प्राणको पाय, इंद्रियां सचेत हो जाती हैं ॥ २ ॥ भगवान्के श्री अंगके स्पर्शसे पाप जिनके जाते रहे हैं ऐसे, वे वीर भगवान्से मिल, प्रेम व मुसंकानसहित मुखारविंदका दर्शन कर, आनंदको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंको प्रणाम कर, अर्जुनसे मिले. फिर नकुल-सहदेवने आपको प्रणाम किया ॥ ४ ॥

नवविवाहिता, निंदारहित द्रौपदीने लाजके मारे धीरे धीरे कुछ समीप आ, उत्तम आसनपर विराजमान श्रीकृष्णको प्रणाम किया ॥ ५ ॥ तैसेही सात्यकीकोभी पांडवोंने आदर कर, वंदन किया और आसनपर बिठलाया. व दूसरे लोगोंकीभी आदर करके, आगत स्वागत करी ॥ ६ ॥ जद कुंतीके निकट आ, भगवान्‌ने प्रणाम किया. तद अत्यंत स्नेहसे जिसके नेत्रोंमें जल भर आया है ऐसी कुंतीने आलिंगन किया और अपने बंधुनका कुशल पूंछा. तदनंतर आपनेभी बहूनसहित फूफीसे कुशल प्रश्न किया ॥ ७ ॥ तद प्रेम व कायरतासे जिसके कंठ और नेत्र आंसूनसे रुंक रहे हैं ऐसी, वह कुंती अनेक क्लेशोंका स्म-

परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिंदिता ॥ नवोढा व्रीडिता किंचिच्छनैरेत्याभ्यवंदत ॥ ५ ॥ तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवंदितः ॥ निषसादाऽऽसनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥ ६ ॥ पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयाऽतिहार्दार्द्रदृशाऽभिरंभितः ॥ आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्टबांधवः ॥ ७ ॥ तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकंठाश्रुलोचना ॥ स्मरंती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥८॥ तदैव कुशलं नोभूत्सनाथास्ते कृता वयम् ॥ ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥ न तेऽस्ति स्वपरभ्रांतिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ॥ तथाऽपि स्मरतां शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर ॥ योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥ इति वै वार्षिकान्मासान्राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ॥ जनयन्नयनानंदमिंद्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥

रण करती, जिनके दर्शन होतेही क्लेशका नाश हो जाय है ऐसे, श्रीकृष्णचंद्रसे कहने लगी ॥ ८ ॥ कि– हे कृष्ण ! हमारे कुशल तो तभी हो चुका और हम तभी सनाथ हो चुके, जब हम बंधुनका स्मरण करके, आपने मेरे भाई अक्रूरको पठाया ॥ ९ ॥ जगतबंधु और आत्मरूप जो आप हो तिनके यह मेरा है और यह पराया है ऐसा भ्रम नहीं है. तौभी स्मरण करनेवालोंके हृदयमें रह कर, निरंतर क्लेशोंका नाश करते हो ॥ १० ॥ युधिष्ठिरने कहा कि– हे अधीश्वर ! मैं नहीं जानता हूं कि– हमने क्या कल्याणका कार्य किया ? जो योगेश्वरोंको जिनके दर्शन दुर्लभ हैं उनका हम कुमतियोंको दर्शन हुआ ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–

ऐसे राजाने प्रार्थना की. तद चातुर्मास्यके चार महीनेतक इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) के रहनेवालोंको आनंद देते भगवान् सुखपूर्वक वहीं विराजे ॥ १२ ॥ एक समय शत्रुनके वीरोंको मारनेवाले अर्जुन श्रीकृष्णको संग ले, वानरकी ध्वजावाले अपने रथपर चढ़, गांडीव धनुष हाथमें ले, अक्षय तीरोंसे भरे तरकस बांध, सन्नद्ध हो, अनेक हिंसक जनावर व मृगोंसे व्याप्त वनमें सिकार करने गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहां बाणोंसे व्याघ्र, शूकर, भैंसे, रुरु (एक जातिके हिरण), शरभ, गवय (रोज), गेंडे, हरिण, शश (खरगोश) व शल्लक (श्याही) इन्हें बींधने लगे ॥ १५ ॥ उन पवित्रकर्मयोग्य पशुनको राजाके नौकर

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् ॥ गांडीवं धनुरादाय तूर्णौ चाक्षयसायकौ॥ १३ ॥ सार्कं कृष्णेन सन्नद्धो विहर्तुं विपिनं वनम् ॥ बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून् ॥ शरभान्गवयान्खड्गान्हरिणान्शशशल्लकान् ॥ १५ ॥तान्निन्युः किंकरा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते ॥ तृट्परीतः परिश्रांतो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ॥ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरंतीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥ तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ॥ पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि॥ मन्ये त्वां पतिमिच्छंतीं सर्वं कथय शोभने॥ १९ ॥ कालिंद्युवाच ॥ अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ॥ विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता॥ २० ॥

पर्वणी आनेके कारण लाकर, राजाके अर्पण करते थे. जद अर्जुनको प्यास लगी. तद थके हुए यमुनापै आये ॥ १६ ॥ वहां आ, हाथ पांव धोय, वे दोनों महारथी स्वच्छ जल पी, बैठे. वहां फिरती हुई एक सुंदर कन्या देखनेमें आयी ॥ १७ ॥ तद सखा भगवान्ने अर्जुनको पठाया, कि–हे अर्जुन ! तुम पूंछो, वह कौन है ? तद अर्जुनने उसके निकट आ, सुंदर जिसके दांत हैं और मनोहर जिसका मुख है; ऐसी स्त्रियोंमें उत्तम उस वरारोहासे पूंछा कि– ॥ १८ ॥ हे सुश्रोणि ! तू कौन है ? और किसकी है ? व कहांसे आयी है ? तू क्या चाहती है ? हे शोभने ! मेरे विचारमें तो ऐसे आता है कि–तू पति चाहती है. सो हमें सब वृत्तांत कह ॥ १९ ॥ कालिंदीने कहा कि– मैं सूर्यनारायणकी कन्या हूं और वर देनेवाले सर्वोत्तम विष्णु मुझे वर

मिलें इस इच्छासे उत्तम तप करती हूं ॥ २० ॥ हे वीर ! लक्ष्मीके निवास भगवान्‌के सिवाय, दूसरा पति मैं नहीं वरूंगी, वह अनाथ लोगोंके शरण देनेवाले भगवान् मुझपर प्रसन्न होवें ॥ २१ ॥ कालिंदी मेरा नाम है. और जबतक भगवान्‌के दर्शन न होवेंगे तबतक मेरे पिताके रचेहुए इन यमुनाजलरूप घरमें निवास करूंगी ॥ २२ ॥ अर्जुनने आकर, श्रीकृष्णसे वे सब समाचार कहे, तद भगवान् तौ उस बातको पहलेहीसे जानते थे. सो उसे रथमें बिठाय, धर्मराज युधिष्ठिरके पास आये ॥ २३ ॥ ज्योंही पांडवोंने रहनेके लिये नगर बसानेको भगवान्‌से बिनती की. त्योंही विश्वकर्मासे आपने एक बड़ा अद्भुत विचित्र नगर बनवाया ॥ २४ ॥

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ॥ तुष्यतां मे स भगवान्मुकुंदोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिंदीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ॥ निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथा ऽवदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ॥ रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ॥ कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ अग्नये खांडवं दातुमर्जुनस्याऽऽस सारथिः ॥ २५ ॥ सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्छ्वेतान्रथं नृप ॥ अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ॥ यस्मिन्दुर्योधनस्याऽऽसीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७ ॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ॥ आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ २८ ॥ अथोपयेमे कालिंदीं सुपुण्यर्त्वृक्षऊर्जिते ॥ वितन्वन्परमानंदं स्वानां परममंगलम् ॥ २९ ॥

अपने बंधुनको राजी रखनेकी इच्छासे भगवान् वहां विराजे. तहां अग्निको खांडव वन जरानेके लिये अर्जुनके सारथी हुए ॥ २५ ॥ महाराज ! उस अग्निने प्रसन्न होकर, अर्जुनको धनुष, श्वेत घोड़े, अक्षय भाथे और अस्त्रवालोंसे न कटे ऐसा कवच दिया ॥ २६ ॥ और वहां अग्निसे मय दैत्यको बचाया, तिस कारण मय दैत्यने पांडवोंको एक सभा दी, जिसमें दुर्योधनको जलमें थलका और थलमें जलका भ्रम हुआ ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णचंद्र युधिष्ठिरसे आज्ञा पाकर, बंधुनकी संमति ले, सात्यकि-आदि यादवोंको संग ले, पीछे द्वारकापुरी आये ॥ २८ ॥ अच्छा पवित्र और बलवान् ऋतु व नक्षत्र देख, अपने बंधुनको परममंगल व आनंद देते भगवान्‌ने कालिंदीसे व्याह

किया ॥ २९ ॥ मित्रविंदा नाम राजकन्या जो विंद और अनुविंदकी बहन थी. उसने स्वयंवरमें श्रीकृष्णको वरना चाहा. परंतु
उन दोनों भाइयोंने निषेध किया; क्योंकि वे बिचारे दुर्योधनके आधीन थे ॥ ३० ॥ महाराज ! मित्रविंदा जो अपनी फूफी
राजाधिदेवीकी कन्या थी उसे राजाओंके देखते बलात्कारसे भगवान् हर ले गये ॥ ३१ ॥ महाराज ! नग्नजित् नाम कोशलदे-
शका राजा बड़ा धर्मात्मा था. उसके सत्या नाम कांतिवाली कन्या थी. और उसे नाग्नजितीभी कहते थे ॥ ३२ ॥ राजाने पण
किया था कि-'जो वीरपुरुषकी गंधकाभी सहन न करें ऐसे दुष्ट, तीखे सींगोंवाले, अतिदुर्धर्ष, सात सांड़ोंको जीतै, वह मेरी

विंदानुविंदावावंत्यौ दुर्योधनवशानुगौ ॥ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ३० ॥ रा-
जाधिदेव्यास्तनयां मित्रविंदां पितृष्वसुः ॥ प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ ३१ ॥ न-
ग्नजिन्नाम कौशल्य आसीद्राजाऽतिधार्मिकः ॥ तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥ ३२ ॥
न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्तगोवृषान् ॥ तीक्ष्णशृंगान्सुदुर्धर्षान्वीरगंधासहान्खलान् ॥ ३३ ॥
तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्वतांपतिः ॥ जगाम कौशल्यपुरं सैन्येन महतावृतः ॥ ३४ ॥
स कोशलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन्प्रतिनंदितः ॥ ३५ ॥ वरं
विलोक्याभिमतं समागतं नरेंद्रकन्या चकमे रमापतिम् ॥ भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु
सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥ ३६ ॥

कन्याको व्याहे' सब राजा वहां हार खाय, पीछे आये. पर कोईभी उसे न व्याह सका ॥ ३३ ॥ यादवोंके पति भगवान्ने
सुना कि-जो बैलोंको जीते उसे कन्या वरै. यह समाचार सुन, बड़ी सेना संग ले, कोशलराजाके नगर पधारे ॥ ३४ ॥ वह
कोसलदेशका राजा भगवानका आगमन सुन, आसनसे उठने और आसन देने-आदि अनेकप्रकारके सत्कारोंसे सत्कार कर,
बड़ी पूजाकी सामग्रीसे भगवान्की पूजा करने लगा. और सराहने लगा ॥ ३५ ॥ राजकन्याने लक्ष्मीके पति भगवान्को वां-
छित वर आये देख, इच्छा की और ईश्वरसे प्रार्थना करने लगी कि-मुझे ये वर मिलें, जो मैंने व्रत धारण किया है तो परमे-

श्वर मेरी निर्मल कामना सत्य करे ॥ ३६ ॥ जिसके चरणारविंदकी रजको लक्ष्मीजी, ब्रह्माजी, महादेव व लोकपाल ये सब सिरसे धारण करते हैं और जो अपनी बांधीहुई मर्याद पालनेकी इच्छासे समयपर लीलासे शरीर धारण करते हैं. वे परमेश्वर भगवान् मुझपर किस बातसे प्रसन्न होवें ? ॥ ३७ ॥ राजाने पूजा करके फिर भगवान्‌से कहा कि–हे नारायण ! हे जगत्पति ! आत्मानंदसे पूर्ण जो आप हो उनका मैं तुच्छ क्या करूं ? ॥ ३८ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! आसनपर बिराज, प्रसन्न हो, भगवान्‌ने हँसकर, मेघसी गंभीर वाणीसे उससे कहा ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि–हे राजन् !

यत्पादपंकजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः ॥ लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः काले दधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥ अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते ॥ आत्मानंदेन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाह भगवान् हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ॥ मेघगंभीरया वाचा सस्मितं कुरुनंदन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नरेंद्र याच्ञा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबंधोर्निजधर्मवर्तिनः ॥ तथाऽपि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्या वर इहेप्सितः ॥ गुणैकधाम्नो यस्यांगे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥ किंत्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ॥ पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥

पंडित लोग कहते हैं कि–मांगना बहुत बुरा है, तिसमेंभी जो क्षत्रिय है और धर्ममें चलता है, उसके लिये तो अत्यंतही बुरा है, तौभी मैं आपसे संबंध करना चाहता हूं इसलिये आपकी कन्या मांगता हूं. पर हम शुल्क जो कन्याकी एवजमें द्रव्यआदि देते हैं वह न देगें ॥ ४० ॥ राजा नग्नजितने कहा कि–हे नाथ ! आपसे बढ़ कर, इस संसारमें दूसरा कौन वांछित वर कन्याको मिलेगा ? आप गुणोंके एकही धाम हैं, जिनके अंगमें लक्ष्मीभी अविचल होकर, रहती है ॥ ४१ ॥ किंतु हे यदुश्रेष्ठ ! हम राजा लोगोंके पराक्रमकी परीक्षाके अर्थ और कन्याके लिये वर ढूंढ़नेके निमित्त पहले प्रण कर चुके हैं ॥ ४२ ॥

हे वीर! जो इन अशिक्षित और पकड़नेमें न आवें ऐसे सांड़ोंको जीतै वह कन्या वरै. यह बात सुन, बहुतसे राजपुत्र यहां आये. और इनसे अंग तुड़ायके, हार कर, गये ॥ ४३ ॥ हे यदुनंदन ! यदि आपही इनको पकड़ लो, तो हे लक्ष्मीपति ! मेरी कन्याके लिये मैं आपको वर स्वीकार करता हूं ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-भगवान्ने ऐसा प्रण सुन, कमर बांध, सात स्वरूप धारण कर, लीलाहीसे उन्हें पकड़ लिये ॥ ४५ ॥ जिनके गर्व और शक्ति नाश हो गये ऐसे उन बैलोंको रज्जुसे बांध, बालक जैसे

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ॥ एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥ ४३ ॥ यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनंदन ॥ वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियःपते ॥ ४४ ॥ एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ॥ आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥ ४५ ॥ बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः ॥ व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ॥ लेभिरे परमानंदं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शंखभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ॥ नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासः स्रगलंकृताः ॥ ४९ ॥ दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः ॥ युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥ ५० ॥ नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान्रथान् ॥ रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥ ५१ ॥

काठके बैलोंको खींचे तैसे लीलासे खींचने लगे ॥ ४६ ॥ राजाको इस बातसे आश्चर्य हुआ. और प्रसन्न अपनी कन्या श्रीकृष्णको दी. प्रभु भगवान्ने आपके सदृश उस कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ४७ ॥ राजाकी रानियांभी अपनी कन्याके प्रिय पति श्रीकृष्णको वर पाकर, परम आनंदको प्राप्त हुईं और बड़ा उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी, नक्कारे, बाजने लगे, मंगलिक गीत गाये जाते थे. बाजे बाजते थे. ब्राह्मण आशीर्वाद देते थे. नगरके नर नारी सब अच्छे वस्त्र, माला, आभूषण धरे आनंद मे मग्न थे ॥ ४९ ॥ राजाने दूहेजमें दश सहस्र गायें, गलेमें धुकधुकी धारण किये सुंदर वस्त्र पहिरे तीन सहस्र दासि-

यां नौ सहस्र हाथी, नौ लाख रथ, नव करोड़ घोड़े, नौ पद्म प्यादे दिये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ दूलह दुलहनको रथमें बिठाय, बड़ी सेना संग दे, स्नेहसे द्रवीभूत है चित्त जिसका ऐसे कोमल राजाने इनको रवाने किया ॥ ५२ ॥ जिनका पहले यादवों और बैलोंसे पराक्रम भंग हो गया था, वे राजा यह बात सुन कर, सहन न कर सके. और कन्याको ले जाते भगवान्‌को मार्गमें घेर लिया ॥ ५३ ॥ बाणोंके समूह चलातेहुए उन राजानको बंधुनका प्रिय करनेवाले अर्जुनने गांडीव धनुष हाथमें ले, जैसे सिंह

दंपती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ॥ स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोशलः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयंतं पथि कन्यकाम् ॥ भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५३ ॥ तानस्यतः शरव्रातान्बंधुप्रियकृदर्जुनः ॥ गांडीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ५४ ॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ॥ रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ॥ कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥ सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ॥ स्वयंवरे जहारैकः ससुपर्णः सुधामिव ॥ ५७ ॥ अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्याऽऽसन् सहस्रशः ॥ भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ॥

तुच्छ हरिणोंको भगा देता है तैसे भगा दिया ॥ ५३ ॥ दहेज ले, द्वारकामें आ, देवकीके पुत्र भगवान् यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचंद्र सत्याके साथ रमण करने लगे ॥ ५४ ॥ फूफी श्रुतकीर्तिकी कन्या भद्रा नाम जो कैकय देशमें प्रकट हुई थी. उसे संतर्दनआदि भाइयोंके देनेपर आपने व्याह ली ॥ ५६ ॥ मद्रदेशके राजाकी कन्या जो सब लक्षणोंसे युक्त थी. उस लक्ष्मणा नाम कन्याको जैसे गरुड़ अकेला अमृत ले आया. तैसे आप अकेले स्वयंवरमेंसे हर, ले आये ॥ ५७ ॥ औरभी ऐसी श्रीकृष्ण भगवान्‌के हजारों सुंदर स्त्रियां थीं, जिन्हें आप भौमासुरको मार, उसके अंतःपुरसे लाये थे ॥ ५८ ॥ इति श्रीभा० म० दश० उत्तरार्धे

रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ॥ उनसठवें अध्यायमें भौमासुरको मार, हरि ह-
जारों कन्या लाये और स्वर्गसे इंद्रका पराभव कर, कल्पवृक्ष लाये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि-भगवान्ने भौमासुर
कि-जिसने स्त्रियोंको रोंक रक्खा था, उसे जिस प्रकार व जिस कारणसे मारा यह भगवान्का चरित हमें कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

राजोवाच ॥ यथा हतो भगवता भौमो येन च तास्त्रियः ॥ निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः
॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रेण हृतछत्रेण हृतकुंडलबंधुना ॥ हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचे-
ष्टितम् ॥ सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ २ ॥ गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ॥
मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ३ ॥ गदया निर्बिभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः ॥ चक्रे-
णाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथाऽसिना ॥ ४ ॥

कि-जद इंद्रने सत्यभामाके महलमें आकर, विनती की, कि-भौमासुर वरुणका तो छत्र लेगया है और मेरी माताके कुंडल
और अमराद्रिमें जो हमारा मणिपर्वत नाम स्थान है वहभी उसने ले लिया है. इंद्रसे भौमासुरका चरित सुन, भगवान् सत्यभा-
माको संग ले, गरुड़पर विराज, प्राग्ज्योतिष नाम पुरको पधारे ॥ २ ॥ जो गिरिदुर्ग, शस्त्रदुर्ग, जलदुर्ग, अग्निदुर्ग, वायुदुर्ग
इनसे बड़ा दुर्गम, घोर व दृढ़ दस हजार मुरदैत्यकी पासोंसे चारों ओरसे घिरा हुआ था. भगवान्ने गदासे गिरिदुर्ग तोड़ा, बाणोंसे

---

१ न कहो कि-वहां संग्राममें सत्यभामाको संगमें क्यों लेगये ? तहां कहे हैं कि-प्रथम तो सत्यभामाकेही घरमें आय, इन्द्रने कहा. इसलिये प्रियाके कौतुकार्थ
सत्यभामाको संगमें लेगये. दूसरा कोई समय पृथ्वीने बड़ी तपस्या करी तब प्रसन्न हो, भगवान्ने इसे वर दिया था कि-तेरेही कहनेसे हम इस तेरे पुत्र भौमासुरको
मारेंगे. इसलिये सत्यभामाको संग ले गये. क्योंकि-ए सत्यभामा पृथ्वीहीका अवतार हैं. तीसरा कारण यह है कि-कोई समय, कलहप्रिय नारदने रुक्मिणीके महलमें
विराजे श्रीभगवान्को एक कल्पवृक्षका फूल दिया. सो प्रभुने वह पुष्प रुक्मिणीको देदिया यह देख, उक्त महामुनि वहांसे निकल, सत्यभामाके महलमें जाय, बोले कि-
मैंने आजही यह जाना कि-रुक्मिणीसमान दूसरी रानी प्रभुके प्यारी नहीं है ' क्योंकि मैंने स्वर्गलोकसे लायम्. कल्पवृक्षका एक पुष्प तुम्हारे प्रियके लिंये ज्योंही अर्पण
किया. त्योंही उन्होंने सब प्यारीनको छोड़, रुक्मिणीहीके हवाले किया. यह सुन, कुपित सत्यभामाको शांत करतेहुये प्रभुने कहा था कि-तेरेलिये कल्पवृक्षही
ला देंगे इसीसे इस वखत सत्यभामा संग गई. क्योंकि भौमासुरको मार, इन्द्रके छत्र-आदि देनेको प्रभु स्वर्गमें जांयगे तभी कल्पवृक्षभी लेते आयेंगे ॥ ६०

शस्त्रदुर्ग, चक्रसे अग्निदुर्ग, जलदुर्ग और वायुदुर्ग तोड़े तथा खड्गसे मुरपाश काट डाले ॥ ३ ॥ ४ ॥ शंखनादसे यंत्र और शूरवीरोंके मन और गदाधर भगवान्ने बड़ी गदासे कोट तोड़ डाला ॥ ५ ॥ प्रलयसमयके वज्रपातके समान भयंकर पांचजन्य शंखकी धुन सुन, पांच सिरवाला मुर नाम दैत्य जलमें जो सोता था वह उठ खड़ा हुआ ॥ ६ ॥ प्रलयकालके सूर्य व अग्निके समान जिसका तेज है, अतएव जिसके सामने देखना बड़ा कठिन है ऐसा वह उल्वण दैत्य मानों पांचों मुखोंसे त्रिलोकीको गिल जायगा ऐसे जैसे सर्प गरुड़पै दौड़ आवे तैसे त्रिशूल उठाय, भगवान्के सन्मुख दौड़ कर, आया ॥ ७ ॥ वेगसे त्रिशूलको

शंखनादेन यंत्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ॥ प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥ ५ ॥ पांचजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगांताशनिभीषणम् ॥ मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पंचशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगांतसूर्यानलरोचिरुल्बणः ॥ ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पंचभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥ आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पंचभिः ॥ सरोदसी सर्वदिशोऽबरं महानापूरयन्नंडकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥ तदाऽऽपतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्याममभिनत्त्रिधौजसा ॥ मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुंचत ॥ ९ ॥ तामापतंतीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ॥ उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ १० ॥ व्यसुः पपातांऽभसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृंगोऽद्रिरिवेंद्रतेजसा ॥ तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥

फिराय, गरुड़पै चलाय, उसने पांचों मुखोंसे गर्जना की; उसकी गर्जनाका बड़ा नाद अंतरिक्ष, पृथिवी, सब दिशा और आकाशमें भर गया. और उससे ब्रह्मांड घिर गया ॥ ८ ॥ उस आतेहुए त्रिशूलको देख, भगवान्ने अपने दो बाणोंसे तीन टुकड़े करडाले और बाणोंसे इसके मुंह भर दिये, तद उस दैत्यनेभी क्रोध कर, गदा चलायी ॥ ९ ॥ संग्राममें भगवान्ने आतीहुई उस गदाके अपनी गदासे हजारों टुकड़े कर डाले. तद वह दैत्य दोनों हाथ उठाय, दौड़ कर. सन्मुख आने लगा. तद भगवान्ने लीलामात्रसे चक्रसे उसके सिर काट गिराये ॥ १० ॥ जैसे इंद्रके वज्रसे पर्वतका शिखर कट जायं तद वह गिरै, तैसे शिर

कटनेपर प्राणमुक्त हो, वह जलमें गिर गया. उसके जो सात पुत्र थे वे पिताके बधसे दुखी हो, बदला लेनेके हेतु अमर्ष कर, भले प्रकार उद्युक्त हो कर, आये ॥ ११ ॥ ताम्र १ , अंतरिक्ष २ , श्रवण ३ , विभावसु ४ , वसु ५ , नभस्वान् ६ और सातवां अरुण ७ ये सब पीठ नाम सेनापतिको मुखिया ले, भौमासुरकी प्रेरणासे शस्त्र धारण कर, रणभूमिमें आये ॥ १२ ॥ ये बड़े भयानक दैत्य भगवान्के समीप आकर, बाण, खड्ग, गदा, बरछी, ऋष्टि (गुर्ज) और त्रिशूल चलाने लगे, अमोघपराक्रम भगवानने अपने बाणोंसे उस शस्त्रजालको तिल तिल जितने टुकड़े कर, काट गिराया ॥ १३ ॥ और पीठ—आदि उन दैत्यों-

ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ॥ पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुंजताऽऽसाद्य शरानसीन्गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ॥ तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥ तान्पीठमुख्याननयद्यमक्षयं निकृत्तशीर्षोरुभुजांघ्रिवर्मणः ॥ स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥ १४ ॥ निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरिस्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा ॥ कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यं भगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुंजरम् ॥ १६ ॥

को उनके सिर, ऊरु, भुजा पांव व कवच काट, यमराजके लोक पठाये. भगवान्के बाण व चक्रसे नाश हुए अपने सेनापतियोंको देख, पृथ्वीका पुत्र नरकासुर बड़ा अमर्ष कर, समुद्रसे प्रगट हुए मदझरते हाथियोंकी सेना ले, बाहिर निकला और गरुड़पै विराजमान सत्यभामासहित भगवान्को देखा, मानों सूर्यपै बिजलीके साथ बादल चढ़ आया है, आतेही उस दैत्यने भगवान्पै बरछी चलायी. और सेनाके लोकभी एक साथ प्रहार करने लगे ॥ १४ ॥ १५ ॥ उस भौमासुरकी सेनाको, उसी क्षण भगवान्ने विचित्र जिनके पंख हैं ऐसे तीखे बाणोंसे भुजा, ऊरु, गर्दन व अंग काट, हाथी व घोड़ोंको मार, छिन्न भिन्न कर दिया ॥ १६ ॥

महाराज! योधाननें जो शस्त्र अस्त्र चलाये वे आपके पास न पंहुचे, तिससे पहलेही उस सब सेनाको मार, उनके शस्त्रभी आपने तीक्ष्ण तीरोंसे काट गिराये. और पंखोंसे हाथियोंको मारते गरुडपर विराजमान भगवान् एक एक शस्त्रको तीन तीन तीरोंसे काटते थे ॥ १७ ॥ और हाथीभी चोंच, पंख और नखोंसे मारते हुए गरुडसे दुखी हो, भाग पीछे नगरमेंही घुस गये ॥ १८ ॥ अकेला नरकासुर रणभूमिमें युद्ध करने लगा. और अपनी सेना गरुडसे दुखी हो, भाग गयी तिसे देख, भौमासुरने गरुडपै उस बरछीका प्रहार किया. जिससे वज्र रुक गया था, पर गरुड उसके प्रहारसे कंपायमान नहीं हुआ. जैसे हाथी

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ॥ हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां विघ्नता गजान् ॥ गरुत्मता हन्यमानास्तुंडपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाऽऽविशन्नार्त्ता नरको युध्ययुध्यत ॥ दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनाऽऽर्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥ तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रप्रतिहतो यतः ॥ नाकंपत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥ २० ॥ शूलं भौमोऽच्युतं हंतुमाददे वितथोद्यमः ॥ तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥ अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥ सकुंडलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ॥ हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुंदं विकिरंत ईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुंडले प्रतप्तजांबूनदरत्नभास्वरे ॥ सवैजयंत्या वनमालयाऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥

मालाका प्रहार न गिने ॥ १९ ॥ २० ॥ जब भौमासुरका उद्यम वृथा जाता रहा. तब भगवान्को मारनेके लिये भौमासुरने त्रिशूल लिया, उस त्रिशूलके चलानेके प्रथमही भगवान्ने हाथीपै बैठे नरकासुरका शिर तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे काट गिराया ॥ २१ ॥ जिसके कानोंमें कुंडल व शिरपर सुंदर मुकुट धरा है ऐसा, वह देदीप्यमान मस्तक पृथ्वीपै पडा, उस समय दैत्य हाहाकार करने लगे. ऋषिलोग साधु साधु कहने लगे. देवतानके अधिपति फूल बरसाय, भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ फिर देवी पृथ्वी श्रीकृष्णके निकट आय, तपेहुए सुवर्णमें जडे हुए जो रत्न तिनसे प्रकाशमान कुंडल, वैजयंती वन-

माला और वरुणका छत्र व बड़ी मणि ये सब अर्पण कर, हाथ जोड़, जगदीश्वर और देवतानमें श्रेष्ठ जो ब्रह्मादिक तिनसे पूजित भगवान्की भक्तिसे बुद्धिको एकाग्र करके स्तुति करने लगी ॥ २३ ॥ २४ ॥ पृथ्वी बोली कि–हे देवदेवेश ! हे शंखचक्रगदाधर ! हे परमात्मा ! भक्तोंकी इच्छासे अवतार धारण करनहारे आपको मेरा प्रणाम हो ॥ २५ ॥ कमल जिनकी नाभिमें है और कमलकेसे जिनके चरण हैं, ऐसे कमलोंकी माला धारण करनहारे कमलनयन आपको मैं प्रणाम करती हूं ॥ २६ ॥ वसुदेवजीके पुत्र, सबके आदिकारण, पूर्ण ज्ञानमय, जगतके अंतर्यामी विष्णु भगवान् जो आप हो तिन्हें

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ॥ प्रांजलिः प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ॥ भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ॥ नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ॥ पुरुषायाऽऽदिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥ अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमोनिरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ॥ स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान्परः ॥ २९ ॥ अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इंद्रियाणि ॥ कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥ ३० ॥

प्रणाम करती हूं ॥ २७ ॥ अजन्मा और इस जगतके पैदा करनेवाले, अनंतशक्ति ब्रह्म जो आप हो तिन्हें मेरा प्रणाम है, कार्य–कारणके आत्मा, जीवोंके स्वरूपभूत परमात्मा जो आप हो तिन्हें मेरा प्रणाम हो ॥ २८ ॥ हे प्रभु ! जब आपके सृष्टिरचनेकी इच्छा होती है, तब उत्कट रजोगुण धारण करते हो और संहारके लिये तमोगुण और जगतका पालन करनेके लिये सत्वगुण, तथापि आपके इन गुणोंसे आवरण नहीं होता, हे जगत्पति ! काल, प्रधान व पुरुष ये आपसे जुदे नहीं हैं, और आप इनसे पर हो ॥ २९ ॥ मैं (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु, आकाश, शब्द,

स्पर्श, रूप, रस, गंध, दश देवता, मन, इंद्रियां, अहंकार, महत्तत्त्व, यह सब चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमरूप भासे है ॥ ३० ॥ ऐसे स्तुति कर, प्रार्थना करती है कि– हे शरणागतोंके दुःख हरणवाले ! उस भौमासुरका यह भगदत्त नाम पुत्र भयभीत हो, आपके चरणकमलोंके शरण आया है सो इसकी आप पालना करें. और सब पापोंका नाश करनेवाला जो आपका हस्तकलम है सो इसके आप शिरपर धरें ॥ ३१ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि– भक्तिसे नम्र भूमिने

तस्याऽऽत्मजोऽयं तव पादपंकजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ॥ तत्पालयैनं कुरु हस्तपंकजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भूम्याऽर्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ॥ दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥ तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ॥ भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥ तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ॥ मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ॥ इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ३५ ॥

इसप्रकार वचनोंसे प्रार्थना की, तद भगवान् भगदत्तको अभय दे, सकल संपदासे समृद्ध भौमासुरके घरमें पधारे ॥ ३२ ॥ वहां सोलह हजार एकसौ राजकन्या कि–जिन्हें भौमासुर पराक्रम कर, राजोंओंसे हर ले आया था. उन्हें हरि भगवान्‌ने देखा ॥ ३३ ॥ भगवान्‌के प्रवेश करतेही मनुष्योंमें वीर भगवान्‌का दर्शन कर, मोहित हो, दैवप्राप्त उन प्यारे पतिको स्त्रियोंने मनसे वर लिया ॥ ३४ ॥ ये हमारे पति होवें और विधाता इसका अनुमोदन करे, ऐसे सब स्त्रियोंने प्रेमसे श्रीकृष्णचंद्रमें जुदा जुदा मन लगाया ॥ ३५ ॥

---

१ यथाह श्रीपराशरः । कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुल्यविक्रमः ॥ शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामतः ॥ १ ॥ अर्थ– जैसे श्रीपराशरजीने कहा है कि– अतुलपराक्रम भगवान् भौमासुरके कन्यापुर यानी कन्याओंके रहनेकी जगहमें सोहलहजार एकसौ कन्या देखते भये ॥ १ ॥

२ राजभ्य इति सिद्धादीनामप्युपलक्षणम् । यथोक्तं पराशरेण । देवसिद्धासुरादीनां नृपाणां च जनार्दन ॥ हृत्वा हि सोऽसुरः कन्या रुरोध निजमन्दिरे ॥ १ ॥ अर्थ– यहां पर जो कहा कि–राजावोंसे हरले आया इसीसे सिद्धादिकोंकाभी उपलक्षण है. जैसे पराशरजीनेभी कहा है कि– हे जनार्दन ! देवता, सिद्ध और असुरादिकोंकी तथा राजावोंकीभी कन्या उस असुरने हरके, अपने घरमें बन्द रक्खा है ॥ १ ॥

भगवान्‌ने उन्हें सुंदर और स्वच्छ वस्त्र पहराय, पालकीनमें बिठलाय, द्वारकापुरी भेजीं और भारी खजाने, रथ, घोड़े, बहुत द्रव्य और ऐरावत हाथीके कुलके चार चार दांतोंवाले वेगवाले चौंसठ सुफेद हाथी भेजे ॥ ३७ ॥ फिर आपने सत्यभामाको संग ले, इंद्रके भवनमें पधार, अदितिको कुंडल दिये, वहां इंद्र और इंद्राणीने भगवान्‌की पूजा करी ॥ ३८ ॥ सत्यभामाके कहनेसे कल्पवृक्षको उठाय, गरुड़पर धर, इंद्रादिक देवतानको जीत, द्वारकापुरी ले आये ॥ ३९ ॥ और सत्यभामाके घरके बगीचेकी शोभाके अर्थ वहीं स्थापन कर दिया; उसकी सुगंधके मदके लोभी भौंरे स्वर्गसे पीछे पीछे चले आये ॥ ४० ॥ इंद्रने

ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोंबराः ॥ नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महत् ॥ ३६ ॥ ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दंतांस्तरस्विनः ॥ पांडुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥ ३७ ॥ गत्वा सुरेंद्रभवनं दत्त्वाऽदित्यै च कुंडले ॥ पूजितस्त्रिदशेंद्रेण सहेंद्राण्या च सप्रियः ॥ ३८ ॥ चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ॥ आरोप्य सेंद्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ॥ अन्वगुर्भ्रमरा स्वर्गात्तद्गंधासवलंपटाः ॥ ४० ॥ ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ॥ सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ॥ यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥ गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ॥ रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥

प्रथम अपने मुकुटके अग्रसे भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करते प्रणाम कर, अपनी कार्यसिद्धिके वास्ते भगवान्‌से प्रार्थना की और कार्यसिद्ध होनेपर भगवान्‌के साथ विरोध किया. अहो ! देवतालोगोंको बड़ा क्रोध आता है, धनिकताको ही धिक्कार है ॥ ४१ ॥ फिर जितनी स्त्रियां थीं उतनेही स्वरूप धारण कर, भगवान्‌ने जुदे जुदे घरोंमें एकही मुहूर्तमें उन सब स्त्रियोंका एक साथ विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ४२ ॥ जिनके घरके समान अथवा अधिक कोईभी घर नहीं है ऐसे उन स्त्रियोंके घरोंमें सदा रहते और अपने स्वरूपानंदसे पूर्ण होतेभी दूसरोंके समान गृहस्थाश्रमके धर्मोंका पालन करते, अचिंत्य कर्म करनहारे, अविनाशी

भगवान् लक्ष्मीकी अंशरूप स्त्रियोंके साथ रमण करते थे ॥ ४३ ॥ ब्रह्मादिकभी जिनकी पदवीको नहीं जानते, ऐसे लक्ष्मीपति भगवान्‌को अपने पतिरूपसे प्राप्त हो, वे स्त्रियां निरंतर वर्द्धमान प्रीति और स्नेहभरे हास्यपूर्वक अवलोकन करतीं थीं. और आनंदपूर्वक नवीन २ संगम, भाषण और लज्जाको भजतीं थीं ॥ ४४ ॥ यदपि प्रत्येकके पास सैकड़ों दासियां थीं. तौभी सामने जाना, आसन देना, सुंदर पूजन करना, पांव पखालना, बीड़ा देना, पांव चापना, पंखा करना, चंदन पुष्प अर्पण करना, केश सुलझाना, सेज सवांरना, न्हिलाना और भोजन करवाना, ऐसे ऐसे उपचारोंसे वे स्त्रियां भगवान्‌का दास्यभाव करतीं थीं ॥ ४५ ॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम्॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमजल्पलज्जाः ॥४४॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगंधमाल्यैः॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे पारिजातहरणनरकवधोनाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥ ॥श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ॥ पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥ यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ॥ स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥ तस्मिन्नंतर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलंबिना ॥ विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां ऊनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥ ॥ साठवें अध्यायमें भगवान्‌ने हँसीकरके, रुक्मिणीको कोप करवाया. और फिर प्रेमकलहमें उसे शांत किया. यह कथा होगी ॥१॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– एक समय जगत्‌के गुरु भगवान् सुखसे अपने पलँगपर विराजे थे और सखियोंके साथ रुक्मिणी पंखेसे हवा करती अपने पतिकी सेवा करती थी ॥ १ ॥ जो ईश्वर इस जगतको लीलाहीसे रचे हैं, पाले हैं और संहार करे हैं, वेही अजन्मा अपनी मर्यादकी रक्षाके निमित्त यदुनमें प्रगट हुए हैं ॥ २ ॥ वहां घरके अंदर देदीप्यमान मोतियोंकी माला लटकायीं

गयीं थीं. छत बँधी शोभायमान थी और मणिमय दीपक जगमगाते थे ॥ ३ ॥ मधुमल्लिकाके पुष्पोंकी मालानपर भौंरोंका झुंड गुंज रहा था. जालियोंमें होकर, चंद्रमाकी निर्मल किरणें दिखातीं थीं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्षके वनकी सुगंधि लिये बागमेंसे सुगंधित पवन आती थी. महाराज ! जालियोंमेंसे अगरके धूपका धुंआं निकसता था ॥ ५ ॥ जिसपै दूधके फेनके समान सुफेद व कोमल उत्तम बिछौना बिछा है, ऐसे पलँगपर सुखसे विराजमान, जगदीश्वर जो अपने पति श्रीकृष्णचंद्र, तिनका रुक्मिणी सेवन करती थी ॥ ६ ॥ रत्नोंकी डांड़ीवाली जो छोटी पंखी सखीके हाथमें थी उसे ले, उससे हवा करती

मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ॥ जालरंध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चंद्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥ पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ॥ धूपैरगुरुजै राजन्जालरंध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यंके कशिपूत्तमे ॥ उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६ ॥ वालव्यजनमादाय रत्नदंडं सखीकरात् ॥ तेन वीजयती देवी उपासांचक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेंऽगुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ॥ वस्त्रांतगूढकुचकुंकुमशोणहारभासा नितंबधृतया च परार्ध्यकांच्या ॥ ८ ॥ तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ॥ प्रीतः स्मयन्नलककुंडलनिष्ककंठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥

रुक्मिणी भगवान्‌की उपासना करती थी ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णके समीप मणियोंके जड़ाऊ नूपुरोंका झनकार शब्द करती शोभा देती थी, कैसी है वह रुक्मिणी? अँगुरियोंमें मुंदरी पहिने, पहुंचेमें चूरी व कंकन धारण किये और हाथमें पंखा लिये साड़ीके छोरसे ढके जो स्तन तिनकी केसरसे रंगा हुआ अरुण जो मोतियोंका हार और कमरमें पहिरे जो अमूल्य कटिमेखला तिनसे शोभायमान है ॥ ८ ॥ आपने लीलासे धारण किया जो अवतार उसके योग्य रूप धारण किये और आपके सिवाय दूसरा कोई जिसके आश्रय नहीं है ऐसी, यह साक्षात् लक्ष्मीरूप रुक्मिणी कि–जिसके अलकें, कुंडल व ग्रीवाभरणयुक्त कंठ इनसे शोभायमान, मुखमें मंद मुसकानरूप अमृत देदीप्यमान हो रहा है. उसे देख, प्रसन्न हो, मुसकुराकर, श्रीकृष्णचंद्रने

कहा ॥ ९ ॥ भगवान्ने कहा कि–हे राजपुत्रि ! लोकपालोंके समान ऐश्वर्यवाले और महानुभाव व श्रीमान् और रूप, उदारता व बलसे वृद्धिंगत राजा तुम्हारी अभिलाषा करते थे ॥ १० ॥ और तुम्हारा भाई और पिता उन्हें देते थे, फिर कामदेवके मदसे मत्त और प्रार्थना करते आयेहुए शिशुपाल–आदि राजाओंको छोड़, हम जो तुम्हारे बराबरके नहीं हैं तिन्हें क्यों वर लिया ? ॥११॥ हे सुंदर भौंहवाली ! बहुधा राजाओंसे डरते तो हम समुद्रके शरण आये हैं, बलवानोंके साथ हमारे बैर जुदाही बँध रहा है, इसीसे हमने राजगद्दी छोड़ रक्खी है ॥ १२ ॥ जिनके आचरणकी खबर नहीं और जो स्त्रियोंका कहना मानते

श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ॥ महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥ १० ॥ तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ॥ दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥ राजभ्यो बिभ्यता सुभ्रूः समुद्रं शरणंगतान् ॥ बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ॥ आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदंति योषितः ॥ १३ ॥ निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचनजनप्रियाः ॥ तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजंति सुमध्यमे ॥ १४ ॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ॥ तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥ वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया ॥ वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥

नहीं. और जिनका मार्ग जगतसे जुदाही है. ऐसे पुरुषोंका जो स्त्रियां अनुसरण करतीं हैं. वे बहुधा दुःख पाती हैं ॥ १३ ॥ हम आप निष्किंचन हैं और जो निष्किंचन हैं वेही जन हमें प्यारे लगते हैं; हे सुमध्यमे ! अतएव बहुधा धनवान् मुझे नहीं भजते ॥ १४ ॥ जिनके धन, जन्म, ऐश्वर्य, आकार या जाति और आगामी समयकी स्थिति समान होवे, उन्हीं दोनोंके आपसमें विवाह वा मित्रता होनी ठीक है; उत्तम और अधमके बीच होनी ठीक नहीं ॥ १५ ॥ हे रुक्मिणी ! तू इस बातको समझी नहीं और न तूने लंबा विचार किया; केवल भिक्षुकोंके सराहनेसे गुणहीन जो हम हैं तिन्हें तूने भोले वर लिया ॥ १६ ॥

अबभी तेरे योग्य जो उत्तम क्षत्रिय हो उसे तू वर ले, जिससे तू इस लोक और परलोकमें सत्य कामनानको प्राप्त होवेगी ॥ १७ ॥ हे वामोरु! शिशुपाल, शाल्व, जरासंध, दंतवक्र-आदि राजा और तेरा भाई रुक्म मुझसे बैर रखते हैं ॥ १८ ॥ हे भद्र! मैं जो तुझे हर ले आया हूं. सो केवल, पराक्रमके मदसे मदांध और अभिमानी उन राजाओंका गर्व दूर करने और दुष्टोंका तेज हरनेको ले आया हूं ॥ १९ ॥ हम तो उदासीन हैं. हमारे न तौ स्त्रीकी, न पुत्रकी, न धनकी चाह है हम तौ हमारे आत्मानंदसे पूर्ण हैं. न तौ हमें घरकी और न शरीरकी परवाह है. हम तौ दीपकके समान साक्षी हैं. अतएव

अथाऽत्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ॥ येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥ चैद्यशाल्वजरासंधदंतवक्रादयो नृपाः ॥ मम द्विषंति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदांधानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ॥ आनीताऽसि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ॥ आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ॥ मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥ २१ ॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदाऽऽत्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ॥ आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिंतां दुरंतां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥ पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखंत्यश्रुभिरंजनासितैः ॥ आसिंचती कुंकुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥

क्रियारहित हैं ॥ २० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-रुक्मिणी कि-जो भगवान् आपसे कभी अलग नहीं होयं हैं तासों आपकोही बहुत वल्लभ मानती थी, उसका गर्व दूर करनेको श्रीकृष्णचंद्र इतने वचन कह, चुप हो गये ॥ २१ ॥ त्रिलोकीपतियोंकेभी पति और अपने प्यारे भगवान्‌के कभी नहीं सुने ऐसे अप्रिय वचन सुन, हृदयमें भयभीत हो, कांपने लगी और रोती हुई अपार चिंतामें पड़ी ॥ २२ ॥ नखकी अरुण कांतिसे शोभायमान कोमल चरणसे जमीन कुचरती और अंजन शामिल होनेसे श्याम आंसूनसे केसरसे रंगे हुए स्तनोंको सींचती और अतीव दुःखसे जिसकी वाणीभी रुक गई थी ऐसी

वह बाला रुक्मिणी नीचा मुख कर, बैठ गयी ॥ २३ ॥ अप्रिय वचन सुननेसे अत्यंत दुःख व त्याग करनेकी शंकासे भय और पश्चात्तापसे जिसकी बुद्धि व्याकुल हो गयी ऐसी, उस रुक्मिणीके हाथमेंसे पंखा गिर गया. और कंकणभी गिरने लगे. और परवश बुद्धिवाली रुक्मिणीका शरीरभी मूर्छा खाय, वायुने गिरायी कदलीके समान तुर्त पृथ्वीपर पड़ गया. और बाल बिखर गये ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् प्यारीके उस प्रेमबंधनको देख, दयासे द्रवीभूत होगये, क्योंकि आप परमदयालु हैं और वह रुक्मिणी हास्यकी गंभीरतासे अनजान है ॥ २५ ॥ आप तुर्त पलँगसे नीचे उतर, चतुर्भुज स्वरूप धारण कर; दो हाथोंसे उसे

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ॥ देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्रंभेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥ तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबंधनम् ॥ हास्यप्रौढिमजानंत्याः करुणः सोऽन्वकंपत ॥ २५ ॥ पर्यंकादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ॥ केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६ ॥ प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ॥ आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥ सांत्वयामास सांत्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ॥ हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ॥ त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याऽऽचरितमंगने ॥ २९ ॥ मुखं च प्रेमसंरंभस्फुरिताधरमीक्षितुम् ॥ कटाक्षेपारुणापांगं सुंदरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥

उठाय, एक हाथसे केश सँवार, कमलसे एक हाथसे उसका मुख पोंछने लगे ॥ २६ ॥ महाराज ! आंसूनसे व्याप्त नेत्र और आंसूनसे उपहत स्तनोंको पोंछके, जिसके दूसरे किसीका आश्रय नहीं है ऐसी पतिव्रता रुक्मिणीका भुजासे आलिंगन किया ॥ २७ ॥ सांत्वना करनेमें चतुर, सत्पुरुषोंके शरण प्रभु हास्यकी गंभीरतासे चलायमान है चित्त जिसका ऐसी और इस तरहकी हाँसी करनेके अयोग्य कृपण रुक्मिणीपै कृपा कर, सांत्वना करने लगे ॥ २८ ॥ श्रीभगवानने कहा कि—हे रुक्मिणी ! हमपै तू दोषदृष्टि मत कर, तू मेरे परायण है सो मैं जानता हूं, हे अंगना ! तेरे वचन सुननेकी अभिलाषासे हमने यह हँसी करी है ॥ २९ ॥ प्रणयकोपसे फरकता है अधर जिसमें और कटाक्ष चलानेसे अरुण अपांगवाला व उसीसे सुंदर और टेढ़ी चढ़ी

है भ्रुकुटी जिसमें ऐसा तुम्हारा मुख देखनेको हँसी करी है ॥ ३० ॥ हे भामिनी ! हे भीरु ! गृहस्थियोंके घरोंमें यही तो परमलाभ है कि–जो प्रियाके साथ हँसीके वचनोंसे समय व्यतीत करना ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्‌ने रुक्मिणीको सांत्वना दी, तद प्यारेके हँसीके वचन समझ, रुक्मिणीने 'प्रिय मुझे तज देगा' ऐसा जो भय था वह छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ हे भारत लाजसहित हास्यसे सुंदर, स्नेहभरे, कटाक्षसे पुरुषोंमें श्रेष्ठ भगवान्‌को मुखारविंदके देखती कहने लगी ॥ ३३ ॥ रुक्मिणी बोली कि–हे कमलनयन ! आपने जो कहा कि– 'हम तेरे समान नहीं हैं' यह बात सत्य है, क्योंकि अपने स्वरूपानंदहीमें मग्न रहनेवाले और ब्रह्मादिकोंकेभी स्वामी आप कहां ? और पामर तथा अज्ञानी लोग जिसके

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसांत्विता ॥ ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥ बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षंती भगवन्मुखम् ॥ सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापांगेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ नन्वेवमेतदरविंदविलोचनाऽऽह यद्वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ॥ क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः काहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥ सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमांतः शेते समुद्र उपलंभनमात्र आत्मा ॥ नित्यं कदिंद्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽधम् ॥ ३५ ॥

चरणका सेवन करते हैं ऐसी लक्ष्मीरूप त्रिगुण स्वभाववाली मैं कहां ॥ ३४ ॥ हे उरुक्रम ! आपने कहा कि– 'हम राजानसे डरते समुद्रके शरण आये हैं' वहभी सत्यही है, क्योंकि शब्द–स्पर्शादिक जो विषय हैं वेही राजा हैं, मानों उनके भयसेही समुद्रके समान अगाध अर्थात् विषयोंसे क्षोभ नहीं प्राप्त होवे ऐसे हृदयमें चैतन्यघन आत्मस्वरूप जो आप हो सो प्रकाशो हो, आपने कहा कि– 'हमने बलवानोंके साथ बैर किया है' यहभी सत्यही है, क्योंकि–विषयोंमें आसक्त जो बलवान् इंद्रियगण उनके साथ आप निरंतर बैर रखते हो. अर्थात् ऐसी इंद्रियोंसे आपका स्वरूपज्ञान नहीं होता. 'हम राज्यासन छोड़ बैठे हैं' ऐसे जो

आपने कहा–सोभी सत्यही है, क्योंकि राज्यासन घोर अज्ञानरूपही है, उसे आपके सेवकभी छोंड़ बैठे हैं तद आप स्वयं छोंड़ दो इसमें तौ कहनाही क्या? ॥ ३५ ॥ आपने कहा कि–' हमारा मार्ग जाननेमें नहीं आता ' यहभी सत्यही है. क्योंकि हे प्रभु ! आपके चरणकमलके मकरंदका सेवन करनेवाले मुनि लोगोंका आचरणभी पशुतुल्य मनुष्योंके समझमें नहीं आता, तद आपका आचरण तो समझमें कैसे आवे ? आपने कहा कि– ' हम स्त्रियोंके वश नहीं हैं हमारा मार्ग जुदाही है ' यहभी सत्यही है; क्योंकि जो लोग आपका अनुसरण करते हैं उनका मार्गभी लोगोंसे जुदा है, तद आप जो ईश्वर हो उनका मार्ग जुदा होवे उसमें कहनेकी कौन बात है ? ॥ ३६ ॥ आपने कहा कि– ' हम निष्किंचन हैं ' वहभी सत्यही है, क्योंकि–आपसे भिन्न दूसरा कु-

त्वत्पादपद्ममकरंदजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ॥ यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवंतम् ॥ ३६ ॥ निष्किंचनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किंचिद्यस्मै वलिं बलिभुजोऽपि हरंत्यजाद्याः ॥ न त्वा विदंत्यसुतृपोंऽतकमाढ्यतांधाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥ त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वांच्छया सुमतयो विसृजंति कृत्स्नम् ॥ तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥ ३८ ॥

छभी नहीं है अतएव आप निष्किंचन हो, निष्किंचनशब्दका दूसरा अर्थ जो दरिद्रता है वह तौ संभवेही नहीं; क्योंकि दूसरोंसे पूजा ग्रहण करनहारे ब्रह्मादिकभी आपका पूजन करते हैं; आपने कहा कि– ' हमें निष्किंचनजन प्यारे हैं और उनको मैं प्रिय हूं ' सोभी सत्यही है; क्योंकि निष्किंचन यानी जिनके बिलकुल देहाभिमान नहीं है ऐसे ब्रह्मादिक ब्रह्मवेत्तानको आप प्यारे हो और वे आपको प्यारे हैं; आपने कहा कि– ' समृद्धिवाले लोक मुझे नहीं भजते ' यहभी सत्यही है; क्योंकि– धनपात्रताके अभिमानसे अंधे लोग, आप जो कालस्वरूप हो उन्हें नहीं जानते उसीसे वे इंद्रियोंकोही तृप्त करते हैं पर आपको नहीं भजते ॥ ३७ ॥ आपने कहा कि– ' उत्तम और अधमके बीच मित्रता वा व्याह होना योग्य नहीं ' सोभी ठीकही है, क्योंकि आप सकलपुरुषार्थमय और परमानंदरूप हो, ऐसे जानकर, परमानंदकी प्राप्तिकी इच्छासे जों बुद्धिमान् लोग अन्य सब छोड़

॥३९॥

दें, हे प्रभु ! उन्हींके आपका संबंध होना योग्य है, पर सुखदुःखसे व्याकुल व परस्पर प्रीतिकी ग्रंथि बांधेहुए पामर स्त्री पुरुषोंके योग्य नहीं ॥ ३८ ॥ आपने कहा कि– 'हमें भिक्षुक लोग सराहते हैं' यहभी सत्यही है; क्योंकि भिक्षुक यानी सबको अभयदान देकर, भिक्षुक (संन्यासी) हुए जो मुनि लोग वे आपको सराहते हैं; आपने कहा कि– 'तूने हमें भोले वर लिया' सो यह ऐसे नहीं है, क्योंकि– जिसके वास्ते सर्व प्रिय लगता है उस जगतके आत्मरूप और अपना स्वरूप देनेवाले आप हो. तासों मैंने आपको वराहै. अतएव 'तू भोले वरी' यह आपका कहना यथार्थ नहीं. आपने कहा कि– 'तूने यह बात जानी नहीं और लंबा विचार किया नहीं' सोभी आपका कहना ठीक नहीं है; क्योंकि–दूसरोंकी तौ बातही क्या ? परंतु ब्रह्मा और

त्वं न्यस्तदंडमुनिभिर्गदितानुभाव आत्माऽऽत्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि॥ हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ॥ सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥ यद्वांच्छया नृपशिखामणयोऽगवैन्यजायंतनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ॥ राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमंबुजाक्ष सीदंति तेऽनु पदवीं त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥

इंद्रादिकोंकोभी कि–जिनका आपकी भृकुटिसे प्रेरित कालके वेगसे सुखका नाश होय है, ऐसे जान, उन्हें छोड़, मैं आपको वरी हूं. तासों आपने जो मुझपर अदीर्घदर्शीपनका दोष लगाया है सो मिथ्या है ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! हे ईश ! सिंह जैसे पशुनको भगायके, अपना भक्ष्य ले जाय. तैसे आप शार्ङ्ग धनुषके नादसे जरासंधादिक राजाओंको भगायके, अपना भागरूप मुझे हर ले आये, इसीसे, 'इनके भयसे समुद्रका शरण लेनेको आप जो कहते हो' सो यह वचन आपका यथार्थ नहीं. किंतु अज्ञानभरा है ॥ ४० ॥ आपने कहा कि– 'जो हमारी पदवीका आश्रय पकड़ते हैं वे दुःख पाते हैं' यह कहनाभी असत्य है; क्योंकि अन्य राजानके शिरोमणि जो अंग, पृथु, भरत, ययाति, गय–आदि राजा हुए, वेभी आपका भजन करनेकी इच्छासे चक्रवर्ती राज छोड़, वनमें गये. इसीसे हे कमलनयन ! जो आपकी पदवीका आश्रय पकड़ते हैं, क्या वे दुःख पाते हैं ? नहीं, कभी

दुःख नहीं पाते. किंतु आपके स्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ आपने कहा कि– 'तुम अपनेयोग्य किसी क्षत्रियको वर लो' सोतो गुणोंके आश्रयरूप[1] आपके चरणारविंदकी सुगंध कि–जो लक्ष्मीका स्थानरूप लोगोंके मोक्षरूप है और सत्पुरुष जिसका वर्णन करते हैं. उसे सूंघ कर, फिर उसका अनादर करके, कौन स्त्री, सदा बहुत भयसे दबेहुए अन्य पतिको वरे ? जिसे मरना है और जो अपने सांचे स्वार्थको यथार्थ समझती है, वह तो कोईभी स्त्री दूसरे पतिको न वरेगी ॥ ४२ ॥ अतएव सर्व प्रकारसे योग्य जगत्के स्वामी, इस लोकके तथा परलोकके सर्व मनोरथ पूर्ण करनेहारे और आत्मरूप आपकोही मैं वरी हूं, चाहे मैं अनेक प्रकारकी योनियोंमें भटका करूं, पर मेरी यह प्रार्थना है कि–वहांभी आपका चरणारविंद कि– जो इस मिथ्या संसारका

काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगंधमाघ्राय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गम् ॥ लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्यासदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२॥ तं त्वाऽनुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ॥ स्यान्मे तवांघ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमंत्या यो वै भजंतमुपयात्यनृतापवर्गः ॥४३॥ तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ॥ यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिंचसभासु गीता ॥ ४४ ॥

अंत करता है. और भक्त लोगोंको अपना कर लेता है. सकल जन्मोंसे उसीका मेरे शरण होवे ॥ ४३ ॥ हे शत्रुदमन ! हे अच्युत ! आपने कहा कि– 'बड़े बड़े वैभववाले राजा तुम्हें चाहते थे. सो उनको क्यों छोड़ दिया ?' वह आपका कहना बिलकुल असंगत है; क्योंकि आपने जो राजा बतलाये हैं. वे कैसे हैं ? कि– जो स्त्रियोंके घरोंमें गधेके समान केवल भार उठानेवाले, बैलके समान सदा क्लेश पानेवाले. श्वानके समान अपमान पानेवाले, बिड़ालकी तरह कृपण और क्रूर, सेवककी भांति पराधीन हैं. वे तो उस मंदभागिनी स्त्रीको पति मिलने चाहिये, जिसके कानमें महादेव व ब्रह्माजीकी सभानमें गायी जाती आपकी कथा न आयी होवे. अर्थात् जिसने आपके गुण न सुने हों, वह तो कदाचित् भूलभी जाय, पर मैंने तो पहलेहीसे आ-

१ गुणोंके आश्रयरूप कहनेसे 'हम गुणरहित हैं,' ऐसे जो भगवानने कहा उसका खंडन हुआ.

पके गुण सुन लिये थे ॥ ४४ ॥ जिस स्त्रीने आपके चरणकमलका मकरंद नहीं सूंगा है. और जो मूर्ख है. वह तो कदाचित् जीता हुआ मृतक जो मनुष्य है उसे 'यह पति है' ऐसे मानकर, भजे. कैसा है वह मनुष्य, कि–जो बाहिर तौ खाल, दाढ़ी, मूछ, रोम, नख, केश इनसे मढ़ा हुआ है और भीतर मांस, हड्डी, लोहू, कीड़े, विष्ठा, कफ, पित्त और वायुमय है. पर उसे समझनेवाली कौन भजे ? ॥ ४५ ॥ आपने कहा कि–'हम तौ उदासीन हैं. हमें किसीकी अपेक्षा नहीं है. सो ठीक है, हे कमलनयन ! यदपि आपके किसीकी अपेक्षा नहीं है. और आप मुझेभी उत्कृष्ट नहीं समझते. तौभी आपके चरणारविंदमेंही मेरा प्रेम हो; क्योंकि यह प्रेमही मेरे लिये बड़ा लाभ है. इस जगतकी वृद्धिके लिये रजोगुणकी भारी मात्रा लेकर, किसी समय

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमंतर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ॥ जीवच्छवं भजति कांतम-तिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरंदमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥ अस्त्वंबुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्म-न्रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ॥ यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमा-ऽनुकंपा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ॥ अंबाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥ व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ॥ बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदु-भयच्युतः ॥ ४८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलंभिता ॥ मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥

(सृष्टिसमयमें) मैं जो मायारूप हूं उसके सन्मुख देखते हो, यही मुझपर बड़ा अनुग्रह है ॥ ४६ ॥ हे मधुसूदन ! आपने मुझे 'अब दूसरेपर प्रेम करनेका कहा' इस बातको मैं झूंठ नहीं मानती; क्योंकि काशीराजकी कन्या अंबानाम कुमारिकाकी कुमारपनमेंही जैसे दूसरे राजापर प्रीति हुई. तैसे किसी समय कुमारअवस्थामेंभी किसी पुरुषपर प्रेम हो जाय ॥४७॥ और कभी व्याह होनेपरभी छिनाल स्त्रीका मन नये नये पतिपर जाता है. ऐसे बहुतसे उदाहरण हैं, परंतु विद्वान् पुरुषको चाहिये कि–व्यभिचारिणी स्त्रीको घरमें बिलकुल न रक्खे, क्योंकि ऐसी स्त्रीको रखनेवाला पुरुष इस लोकसे और परलोकसे दोनोंसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥ भगवा-न्‌ने कहा कि–हे पतिव्रता राजपुत्री ! तुम्हारे मुखसे ऐसे वचन सुननेकी इच्छासे मैंने तुम्हारी हँसी करी, तुमने जो मेरे वचनोंका प्रत्यु-

त्तर दिया वह सब यथार्थ है ॥ ४९ ॥ हे भामिनी ! तुम जो जो मनोरथ इच्छती हो, वे सब मनोरथ तुम्हारी मोमें एकात भक्ति है, तासों प्राप्तही हैं. इतनाही नहीं. पर हे कल्याणि ! निदान वे मनोरथ मोक्षपर्यवसायी होंगे ॥ ५० ॥ हे अनघे ! तुम्हारा पतिविषे प्रेम और तुम्हारा पतिव्रतापन हमने अच्छीतरह जान लिया है, क्योंकि हमने बचन कहकर, तुमको चलायमानभी किया. पर मुझमें जो तुम्हारी दृढ़बुद्धि लग रही है. वह दूसरे विषयमें बिलकुल नहीं गयी ॥ ५१ ॥ मोक्षका स्वामी जो मैं हूं उसका जो विषयी लोग तप और व्रत धारण करके, दंपतीसंबंधी सुखभोगके वास्ते यजन करते हैं, उन्हें मेरी मायासे मोहित समझने चाहिये

यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ॥ संति ह्येकांतभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥ ५० ॥ उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ॥ यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यवकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मा भजंति दांपत्ये तपसा व्रतचर्यया ॥ कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वांछंति ये संपद एव तत्पतिम् ॥ ते मंदभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥ ५३ ॥ दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृताऽनुवृत्तिर्भवमोचिनी खलैः ॥ सुदुष्कराऽसौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुंभरा या निकृतिं जुषस्त्रियाः ॥ ५४ ॥ न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ॥ प्राप्तान्नृपानविगणय्य रहो हरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥

॥ ५२ ॥ हे मानिनि ! जिसमें सब संपदा और मोक्षभी रहता है. उस मुझको प्रसन्न करके जो लोग संपदारूप विषयसुखकीही इच्छा करते हैं. और संपदानके स्वामी मुझको जो नहीं चाहते, उन लोगोंको मंदभागी समझना चाहिये; क्योंकि विषयसुख तो मनुष्योंको नरकमेंभी मिल जाता है, बरन विषयसुखमें चित्त रहनेसे नरकही प्राप्त होय है ॥ ५३ ॥ हे गृहेश्वरि ! संसारसे छुड़ानेवाली और निष्काम, मनकी वृत्ति जो तुमने मुझमें वारंवार लगायी यह बहुत अच्छा हुआ खलजनोंकी चित्तवृत्ति मुझमें कभी नहीं लगे है. और जो दुष्ट अभिप्रायवाली अतएव जो अपने प्राणोंकाही भरण (पोषण) करनेवाली व ठगोरी है उसकी कभी ऐसी मनकी वृत्ति मुझमें लगे नहीं ॥ ५४ ॥ हे मानिनि ! निष्काम

होकर प्रेमहीसे मेरी सेवा करनेवाली मेरे घरमें बहुत स्त्रियां हैं, तोभी तुम्हारे जैसी प्रेमवाली मैं किसीको नहीं देखता, क्योंकि तुमने अपने विवाहसमयमें आयेहुए राजानको तुच्छ मानकर, केवल मेरे यश सुननेपरसे उत्पन्न हुए प्रेमसे ब्राह्मण-को गुप्त समाचार देकर, केवल मेरे पास पठाया ॥ ५५ ॥ तुम्हारे भाईको युद्धमें जीत कर, हमने विरूप किया तथा अनिरुद्धके विवाहमें जुआरियोंकी सभामें मार डाला, इस बातको तथा उससे समय-समयपै मनमें उमक आते दुःखको तुम हमारे वियोगके भयसे सहन कर रही हो और कुछभी नहीं बोलती. तासों तुमने हमें वश कर लिया है ॥ ५६ ॥ मेरी प्राप्तिके

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ॥ दुःखं समुत्थमसहोऽस्मद्योगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥ दूतस्त्वयाऽऽत्मलभने सुविविक्तमंत्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत ॥ मत्वा जिहास इदमंगमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनंदयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौरतसंलापैर्भगवान् जगदीश्वरः ॥ स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडंबयन् ॥ ५८ ॥ तथाऽन्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥ आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मांल्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ॥

लिये गुप्त सलाह देकर, तुमने दूतको पठाया तथा मेरे आ पहुंचनेमें विलंब हुआ, तद इस जगतको शून्य मान, 'यह शरीर दूसरेके योग्य नहीं है, 'इसलिये उसे छोड़ देना चाहिये' ऐसा विचार किया. इस लिये हम तुम्हारे ऋणसे उरिण नहीं हो सक्के. हम तो केवल तुम्हारी श्लाघा करके तुम्हें राजी करते हैं ॥ ५७ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि- जगतके ईश्वर भगवान् यद्यपि आत्माराम हैं, तौभी मनुष्यलोककी लीलाका अनुकरण करते ऐसी सुरतसंबंधी हँसीकी बातोंसे लक्ष्मीका अवतार रुक्मिणीजीके साथ रमण करते थे ॥ ५८ ॥ तैसेही दूसरी रानियोंके घरोंमेंभी, जैसे गृहस्थसंबंधी धर्मोंका आचरण करता हो, तैसे आचरण करते जगतके गुरु प्रभु हरि भगवान विराजते थे ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे

१ इस बातसे जाना जाता है कि- अनिरुद्धका विवाह होनेके अनंतर भगवानने यह रुक्मिणीसे हँसी की.

रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकाया षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ॥ इकसठवें अध्यायमें श्रीकृष्णके पुत्र और पौत्र–आदि संतानोंका वर्णन और अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका बलदेवजीके हाथ वध, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–एक एक रानीमें श्रीकृष्णके दश दश पुत्र हुए. जो सब प्रकारसे श्रीकृष्णसे न्यून नहीं थे ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण घर छोड़, बाहर नहीं जाते, वहीं रहते, इसे देख, वे राजकन्या श्रीकृष्णको अपनाही प्यारा जानतीं थीं, क्योंकि वे भगवान्‌का आत्मारामपन नहीं जानतीं थीं ॥ २ ॥ सुंदर कमलकोशके सदृश मुख, लंबी भुजा और विस्तीर्ण नेत्र व प्रेमसहित हास्यरसके साथ जो अव-

श्रीशुक उवाच ॥ एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः ॥ अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदः ॥ १ ॥ गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ॥ श्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥ चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ॥ संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभूम्नः ॥ ३ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमंत्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येंद्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥ ४ ॥ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचतांबूलविश्रमणवीजनगंधमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥

लोकन व मनोहर भाषणोंसे अलेप्र कार मोहित हुईं ये स्त्रियां, अपने अनेक विलासोंसे भगवान्‌का मन हरण करनेको समर्थ नहीं हुईं ॥ ३ ॥ गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्षसे सूचित किये अभिप्रायसे मन हरण करनहारे भ्रुकुटिमंडलसे प्रेरित जो सुरतसंबंधी विचार, उनमें प्रगल्भ जो कामदेवके बाण और दूसरेभी कामशास्त्रमें प्रसिद्ध जो उपाय, तिनसे ये सोलह हजार एकसौ आठ स्त्रियां भगवान्‌का मन वश करनेको समर्थ नहीं हुईं ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिकभी जिनकी पदवीको नहीं जानते ऐसे लक्ष्मीपति भगवान्‌को पति पाकर, ये स्त्रियां निरंतर वर्द्धमान प्रीतिसे इसप्रकार स्नेहसहित हास्य, कटाक्ष व नवसंगममें जो उत्सुकता–इत्यादि विलास–समूहका सेवन करतीं थीं ॥ ५ ॥ यद्यपि प्रत्येकके पास सैकड़ों दासियां थीं; तथापि सन्मुख जाना, आसन देना, श्रेष्ठ पूजन करना

पांव धोना, बीड़ा देना, हवा करनी, चंदन चरचना, पांव चापना, पुष्पोंकी माला पहिरना, केश सँवारना, सेज सँवारना, स्नान करवाना, भोजन करवाना इन उपचारोंसे वे स्त्रियां भगवान्का दास्यभाव करतीं थीं ॥ ६ ॥ भगवान्की प्रत्येक स्त्रीके दश दश पुत्र हुए. तिनमेंसे जो भगवान्की आठ पटरानियां पहले कही गयीं उनके प्रद्युम्न-आदि पुत्रोंके नाम मैं तुमसे कहता हूं ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके रुक्मिणीमें प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पराक्रमी चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त और भद्रचारु, चारुचंद्र, विचारु और दशवाँ

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ॥ अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥ ७ ॥ चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ॥ सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथाऽपरः ॥ ८ ॥ चारुचंद्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ॥ प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥ भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ॥ चंद्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाऽष्टमः ॥ १० ॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ॥ सांबः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः ॥ जांबवत्याः सुता ह्येते सांबाद्याः पितृसंमताः ॥ १२ ॥ वीरश्चंद्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान्वृषः ॥ आमः शंकुर्वसुः श्रीमान् कुंतिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ॥ शांतिर्दर्शः पूर्णमासः कालिंद्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ॥ माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥

चारु. ये प्रद्युम्न-आदि दश पुत्र हुए. जो पितासे कम नहीं थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ सत्यभामाके ये दश पुत्र-भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चंद्रभानु, बृहद्भानु, आठवां अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु ॥ १० ॥ जांबवतीके-सांब, सुमित्र, पुरुजित, शतजित, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु वसुमान्, द्रविड, क्रतु ये सांबको आदि ले दश पुत्र हुए जो पिताके मान्य थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ नाग्नजितीके वीर, चंद्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु और श्रीमान् कुंति ये दश पुत्र हुए ॥ १३ ॥ कालिंदीके श्रुत कवि, वृष, वीर, सुबाहु, एकभद्र, शांति, दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक ये पुत्र हुए ॥ १४ ॥ माद्रीके प्रघोष, गात्रवान्

सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाँशक्ति, सह, ओज व परांजित ये पुत्र हुए ॥ १५ ॥ मित्रविंदाके वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र वर्द्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुधि ये पुत्र हुए ॥ १६ ॥ भद्राके संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक ये पुत्र हुए ॥ १७ ॥ भगवान्‌के रोहिणी नाम जो रानी थी, तिसके दीप्तिमान् और ताम्रतप्त आदि पुत्र हुए. प्रद्युम्नके रुक्मवती नाम स्त्रीमें बड़ा बलवान् अनिरुद्ध नाम पुत्र हुआ ॥ १८ ॥ महाराज! यह रुक्मवती रुक्मकी कन्या थी और भोजकट नगरमें प्रद्युम्नसे व्याही गयी थी. महाराज! इनके बेटे और नाती मिलकर, करोड़ों हुए. श्रीकृष्णके

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ॥ महीशः पावनो वह्निर्मित्रविंदात्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥ संग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित ॥ जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ॥ प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥ १८ ॥ पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥ मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि ॥ कृष्णेन परिभूतस्तं हंतुं रंध्रं प्रतीक्षते ॥ एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥ २० ॥ अनागतमतीतं च वर्तमानमतींद्रियम् ॥ विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यंति योगिनः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः स्वयंवरे साक्षादनंगोऽगयुतस्तया ॥ राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥ २२ ॥

पुत्रोंकी माता सोलह हजार एकसौ आठ थीं ॥ १९ ॥ परीक्षितने कहा कि–हे विद्वन्! रुक्मने अपने शत्रुके पुत्रको अपनी कन्या कैसे दी? वह तो युद्धमें श्रीकृष्णसे पराभव पा कर, श्रीकृष्णको मारनेके लिये छिद्र देख रहा था, इन दोनों शत्रुनके आपसमें यह विवाहका संबंध कैसे हुआ? यह बात आप हमें कहें ॥ २० ॥ रुक्मिणीका अभिप्राय आपसे अज्ञात न होना चाहिये; क्योंकि जो वस्तु भूत, भविष्य, वर्तमान, इंद्रियोंसे अगम्य दूर अथवा किसीके ओटमें हो, उसेभी योगीजन अच्छीतरह जानते हैं ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–उसने साक्षात् मूर्तिमान् कामदेव प्रद्युम्नको स्वयंवरमें वर लिया. तद वह एकही रथसे

युद्धमें इकट्ठे हुए सब राजानको जीत, हर ले आया ॥ २२ ॥ यद्यपि रुक्मीका भगवान्‌ने जो अपमान किया, उसका उसे स्मरण था, तौभी बहनको राजी करनेके लिये अपने भानजेको अपनी कन्या दी ॥ २३ ॥ महाराज ! बड़े हैं नेत्र जिसके ऐसी रुक्मिणीकी जो चारुमती नाम कन्या थी. उसका बलवान् कृतवर्माके पुत्रके साथ पाणिग्रहण हुआ ॥ २४ ॥ यद्यपि रुक्मी बैर बांधे था. और आप जानता था कि-शत्रुके साथ संबंध करना अयोग्य है; तौभी स्नेहरूप पाशसे बँधकर, अपनी बहनको राजी रखनेके लिये उसने अपने दौहित्र श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धको अपनी नातिन रोचना नाम कन्या दी ॥ २५ ॥ महाराज !

यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ॥ व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥ २३ ॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ॥ उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ॥ रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबंधनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ ॥ पुरं भोजकटं जग्मुः सांबप्रद्युम्नकादयः ॥ २६ ॥ तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिंगप्रमुखा नृपाः ॥ दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ॥ इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राऽऽददे पणम् ॥ तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिंगः प्राहसद्बलम् ॥ दंतान्संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥ २९ ॥

उस अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, बलदेवजी, श्रीकृष्णचंद्र, सांब और प्रद्युम्न-आदि सब यादव भोजकट नाम नगरमें बरातमें गये थे ॥ २६ ॥ जद विवाह हो चुका, तद कलिंग देशके राजाको आदि ले, वे घमंडी राजा, रुक्मसे बोले कि- ' हे रुक्म ! बलदेवजीको द्यूतमें जीत लो ॥ २७ ॥ हे राजा ! ये जुआं खेलना नहीं जानते. तौभी इनको जुएंका बड़ा भारी व्यसन है' जद राजाओंने ऐसे कहा तद रुक्मी बलदेवजीको बुलाय, उनके साथ जुआं खेलने लगा ॥ २८ ॥ बलदेवजीने वहां पहले सौ फिर हजार फिर दश हजारका दावँ लगाया. वह दावँ रुक्मी जीत गया, तिससमय कलिंगदेशके राजाने दांत दिखाकर,

बलदेवजीकी बहुत हांसी करी, बलदेवजी उसका सहन नहीं कर सके ॥ २९ ॥ पीछे रुक्मीने लाखका दावँ लगाया वहां बलदेवजी जीत गये, तद रुक्मी छल करके बोला कि–मैं जीता हूं ॥ ३० ॥ जैसे पूनमके दिन समुद्र क्षोभयुक्त होय है, तैसेश्रीमान् बलदेवजी क्रोधसे क्षोभयुक्त हो गये और स्वभावहीसे लाल जिनके नेत्र हैं ऐसे बलरामजीने अतिक्रोध कर, दश करोड़का दावँ लगा दिया ॥ ३१ ॥ धर्मसे तो वह दावँ बलदेवजीही जीते, परंतु रुक्मी कपट करके, बोला कि– , यहांभी मैं जीता हूं. इस विषयमें ये सभासद कहेंगे '॥ ३२ ॥ तद आकाशवाणी बोली कि–धर्मसे तो यह दावँ बलदेवजी जीते हैं. और वचनसे रुक्म झूंठ बोलता है ॥ ३३ ॥ दुष्ट राजाओंका सिखाया वह रुक्म उस आकाशवाणीका अनादर करके, बलदेवजीकी हाँसी करता कालसे प्रेरित होकर, यह वचन बोला कि–॥ ३४ ॥ आप पांसा खेलना नहीं जानते, आप वनवासी हो. आप तो गैयां चराना जानते हो, पांसोंसे और बाणोंसे तो राजालोग खेला करते हैं. आपजैसे पांसे और बाणोंसे नहीं खेलते ॥ ३५ ॥ ऐसे जद रुक्मने तिरस्कार किया. और दूसरे राजा हँसे, तद बलदेवजीने क्रोध कर, परिघ उठाय, मांगलिक सभामें उस रुक्मको मार दिया ॥ ३६ ॥ और कलिंग देशके राजाको तुर्त दशवें कदममें पकड़, क्रोध कर, उसके दांत गिरा दिये; क्योंकि दांत दिखाय कर,

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णात् ग्लहं तत्राजयद्बलः ॥ जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युना क्षुभितः श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि ॥ जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान्रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः ॥ रुक्मी जितं मयात्रेमे वदंतु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽब्रवीन्नभो वाणी बलेनैव जितो ग्लहः ॥ धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ॥ संकर्षणं परिहसन्बभाषे कालचोदितः ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ॥ अक्षैर्दीव्यंति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥ ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ॥ क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कलिंगराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ॥ दंतानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥

उसने हँसी करी थी ॥ ३७ ॥ दूसरे राजा बलदेवजीके परिघसे पीड़ित हो, डरते भाग गये. उनके भुज, ऊरु और मस्तक टूट गये थे. और रुधिरसे उनका शरीर गदगद था ॥ ३८ ॥ महाराज ! जब साला रुक्म मर गया. तब भगवान्‌ने न तो अच्छा कहा. और न बुरा कहा; जो अच्छा कहैं तो रुक्मिणी नाराज हो जांय; और बुरा कहैं तो बलदेवजी नाराज हो जायं ॥ ३९ ॥ फिर दुलहनके साथ दूल्हे अनिरुद्धको रथमें बिठाय, राम-आदि सब यदुवंशी भगवान्‌का आश्रय पाय, सब कारज सिद्ध कर, भोजकटसे पीछे द्वारका आये ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदी-

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ॥ राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ रुक्मिणीबलयो राजन्स्नेहभंगभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥ रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उ० अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधोनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॥ राजोवाच ॥ बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥ तत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥ एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ॥ येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ २ ॥ तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ॥ मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधो दृढव्रतः ॥ ३ ॥

पिकानामभाषाटीकायां एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॥ बासठवें अध्यायमें ऊषाके साथ रमण करते अनिरुद्धको सहस्रबाहु बाणासुरने कैद किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि- बाणासुरकी कन्या ऊषासे अनिरुद्धने व्याह किया. वहां भगवान्‌की और महादेवजीको बड़ा भारी घोर युद्ध हुआ. सो हे महायोगी ! यह सब आप मुझे कहनेको योग्य हो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- महात्मा बलिराजाके सौ पुत्र थे उनमें यह बाणासुर सबसे बड़ा पुत्र था जिस बलि राजाने वामनरूप हरि भगवान्‌को पृथ्वी दी ॥ २ ॥ यह बाणासुर उसका औरस पुत्र और शिवजीका निरंतर परमभक्त, मान्य, उदार, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञावाला और दृढ नियमवालाथा ॥ ३ ॥

वह पहले सुंदर शोणितनाम पुरमें राज करता था' महादेवजीकी कृपासे देवता उसके पास सेवककी भांति रहते थे ॥ ४ ॥ एक समय महादेवजी नृत्य करते थे. उस समय इसने हजार हाथोंसे बाजे बजाकर, महादेवजीको प्रसन्न किया तद सब जीवोंके स्वामी शरण देनेवाले भक्तवत्सल भगवान महादेवजीने इससे कहा कि– ' वर मांग ' तद इसने कहा कि–आप मेरे पुरके पालक होवो ॥ ५ ॥ एक समय पराक्रमसे मदोन्मत्त बाणासुर पासमें रहेहुए महादेवजीके चरणकमलोंका अपने सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुटसे स्पर्श करता शिवजीसे कहने लगा कि– ॥ ६ ॥ हे महादेव ! लोगोंके गुरु, ईश्वर, जिनकी कामना

शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा ॥ तस्य शंभोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः ॥ ४ ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन तांडवे तोषयन्मृडम् ॥ भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ वरेण छंदयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥ स एकदाऽऽह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ॥ किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदांबुजम् ॥ ६ ॥ नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ॥ पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामरांघ्रिपम् ॥ ७ ॥ दोः सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ॥ त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥ कंडूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ॥ आद्याऽयां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ॥ त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ १० ॥ इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ॥ प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः ॥ ११ ॥

पूर्ण न हुई ऐसे मनुष्योंकी कामना पूर्ण करनेके अर्थ कल्पवृक्षरुप जो आप हो, तिन्हें मैं प्रणाम करता हूं ॥ ७ ॥ आपने हजार हाथ दिये, पर मेरे तौ भारके लिये हुए, क्योंकि आपके सिवाय, त्रिलोकीमें मेरे बराबरका जो मुझसे युद्ध करै ऐसा नहीं मिलता ॥ ८ ॥ हे आदिपुरुष ! मेरी भुजाननमें खुजली चलने लगी, तद मैं दिग्गज हाथियोंसे युद्ध करनेकी इच्छा करके गया. परंतु वेभी पर्वतोंको चूर्ण करते डरते भाग गये ॥ ९ ॥ यह बात सुन, महादेवजीने क्रोध करके कहा कि–जद तेरी ध्वजा[1] टूट जाय, हे मूर्ख ! तद मेरे समानकेसे तेरा युद्ध होगा. उसमें तेरा गर्वका गंजन हो जायगा ॥ १० ॥ महाराज ! ऐसे महादेवजीने

१ वंशकी कन्याका जो जार पुरुष भोग करे उसे ध्वजा टूट जाना कहते हैं अथवा रथमें बैठे हुये उसकी ध्वजा टूट जाय ऐसा सुबोधिनी टीकामें लिखा है.

कहा, तद वह कुबुद्धि प्रसन्न हो, अपने घरमें गया और कुमतिताके कारण जिससे अपने पराक्रमका नाश हो जाय, ऐसी शिव-
जीकी आज्ञा सफल होनेकी राह देखने लगा ॥ ११ ॥ बाणासुरके ऊषानाम कन्या थी, उसको पहले कभी जिनको न तौ देखा
और न सुना, ऐसे सुंदर अनिरुद्धके साथ स्वप्नमें समागम हुआ ॥ १२ ॥ फिर वहां उसने उसे नहीं देखा. तद 'हे कांत ! आप
कहां हो ? ऐसे कहती बहुत लज्जित हो, विह्वल होकर, सखियोंके बीच उठ खड़ी हुई ॥ १३ ॥ बाणासुरका मंत्री कुंभांड उस-
की कन्याका नाम चित्रलेखा था, वह ऊषाकी सखी थी. सो उसने कौतुकके साथ अपनी सखी ऊषासे पूंछा कि- ॥ १४ ॥

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ॥ कन्याऽलभत कांतेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ॥ १२ ॥ सा
तत्र तमपश्यंती क्वासि कांतेति वादिनी ॥ सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ १३ ॥
बाणस्य मंत्री कुंभांडश्चित्रलेखा च तत्सुता ॥ सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १४ ॥ कं
त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ॥ हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥ ऊषोवाच ॥
दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ॥ पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥ १६ ॥ तमहं
मृगये कांतं पाययित्वाऽधरं मधु ॥ क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १७ ॥
चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं ते ऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ॥ तमानेष्ये नरं यस्ते मनो-
हर्ता तमादिश ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा देवगंधर्वसिद्धचारणपन्नगान् ॥ दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च
यथाऽलिखत् ॥ १९ ॥

हे सुंदरभौंहवाली ! तू किसे ढूंढ़ती है ? तेरा कैसा मनोरथ है ? हे राजपुत्रि ! अबतक तो आपका पाणिग्रहणभी नहीं हुआ है
॥ १५ ॥ ऊषाने कहा कि-स्वप्नमें मैंने किसीएक मनुष्यको देखा, जो श्यामवरन, कमलनयन, पीतपट ओढ़े, लंबी भुजावाला
और स्त्रियोंका मन हरनेवाला था ॥ १६ ॥ वह मुझे अधरामृत पिलायके, इच्छा जिसकी बनी रही ऐसी जो मैं तिसे दुःखसमु-
द्रमें डालके कहीं चला गया. उस प्यारेको मैं ढूंढ़ती हूं ॥ १७ ॥ चित्रलेखा बोली कि-जो त्रिलोकीमें होगा तद तौ मैं तेरा
दुःख दूर कर दूंगी. जो मनुष्य तेरा मन हरनेवाला है, उसे तू बतला दे, उसे मैं ले आऊंगी ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-

ऐसे कह उसने पटमें चित्र लिखने शुरू किये. सो देवता, गंधर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्य इनके चित्र लिखें ॥ १९ ॥ मनुष्योंमेंभी वृष्णि और वृष्णिनमेंभी शूरसेन और वसुदेवजी व रामकृष्ण और प्रद्युम्नका चित्र लिखा देख 'यह ससुर है' ऐसे मानकर वह लज्जित हो गयी ॥ २० ॥ महाराज! फिर अनिरुद्धका जो चित्र लिखा उसे देख, लज्जासे मुह नीचा करके, मुसक्या कर, हां, यही है ऐसे ऊषाने कहा ॥ २१ ॥ योग जाननेवाली चित्रलेखा उसे श्रीकृष्णका पौत्र जानकर महाराज श्रीकृष्ण भगवान् जिसकी पालना करतें हैं, उस द्वारकामें आकाशमार्गसे गयी ॥ २२ ॥ वहां वह अनिरुद्ध

मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुंदुभिम् ॥ व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषा ऽवाङ्मुखी ह्रिया ॥ सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ॥ ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यंके प्राद्युम्निं योगमास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥ सा च तं सुंदरवरं विलोक्य मुदितानना ॥ दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुंभी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥ २४ ॥ परार्ध्यवासः स्रग्गंधधूपदीपासनादिभिः ॥ पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयाऽर्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ॥ नाहर्गणान्स बबुधे ऊषयाऽपहृतेंद्रियः ॥ २६ ॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ॥ हेतुभिर्लक्षयांचक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥ २७ ॥

पलँगपर सोता था. उसे यह योग धारणकर, उठाय शोणितपुरमें ले आयी. और सखीको प्यारेका दर्शन कराया ॥ २३ ॥ ऊषाभी उस अतिसुंदर अनिरुद्धको देख, प्रसन्नमुख हुई और पुरुषोंकी जिसपै दृष्टि नहीं पड़े ऐसे अपने घरमें अनिरुद्धके साथ रमण करने लगी ॥ २४ ॥ अमूल्य वस्त्र, माला, सुगंधितपदार्थ, धूप, दीप, आसन–आदि और पान, भोजन, भक्ष्य, मधुर वचन और सेवासे पूजन करने लगी ॥ २५ ॥ बढ़ा है स्नेह जिसका ऐसी ऊषाने हरली हैं इंद्रियां जिसकी ऐसा वह अनिरुद्ध, कन्याके अंतःपुरमें गुप्त रहने लगा और बहुत दिन बीत गये पर सुध न रही ॥ २६ ॥ अनिरुद्धने जिसका भोग किया है अतएव जा-

तारहा है कन्यापनका व्रत जिसका ऐसी उस अतिप्रसन्न कन्याको गुप्त न रहें ऐसे लक्षणोंसे पहरेदारोंने पहिचान लिया ॥ २७ ॥ और आकर, बाणासुरसे कहा कि-महाराज! कुलको कलंक लगे ऐसी आपकी कन्याकी कुचेष्टा हमें दीख पड़े है ॥ २८ ॥ हे प्रभु! हम तो वरका अखंड पहरा देते हैं. और आपकी कन्याकी रक्षा करतें हैं इसे कोई पुरुष देखभी नहीं सक्ता, फिर यह कन्याको दूषण कहांसे लग गया? सो हम नहीं जानते ॥ २९ ॥ तद कन्याको कलंक लगा सुन, बाणासुर दुःखी हो, तुर्त कन्याके घर आया. और अनिरुद्धको देखा ॥ ३० ॥ कैसा है वह अनिरुद्ध, कामदेवका पुत्र, जगतमेंभी एक सुंदर, श्यामवरन,

भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ॥ विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २८ ॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ॥ कन्याया दूषणं पुंभिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥ २९ ॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ॥ त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुंदरं श्यामं पिशंगांबरमंबुजेक्षणम् ॥ बृहद्भुजं कुंडलकुंतलत्विषा स्मितावलोकेन च मंडिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यंतमक्षैः प्रियया ऽभिनृम्णया तदंगसंगस्तनकुंकुमस्रजम् ॥ बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३२ ॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः ॥ उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथांऽतको दंडधरो जिघांसया ॥ ३३ ॥ जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ॥ ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्द्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥

कमलनयन, पीतांबर पहने, लंबी भुजा धारण किये, कुंडल और केशोंकी कांतिसे व मंदहासयुक्त देखनेसे शोभायमान है मुख जिसका ॥ ३१ ॥ और सर्वमंगलरूप प्यारीके साथ पांसोंसे खेलता, प्यारीके अंगसंगसे जिसमें स्तनोंकी केसर लग गयी थी ऐसी वसंतऋतुसंबंधी मल्लिकाके पुष्पोंकी माला वक्षःस्थलमें धारण किये कामदेवके पुत्र अनिरुद्धको कन्याके आगे बैठा देखकर, बाणासुर आश्चर्य करने लगा ॥ ३२ ॥ शस्त्र धारण किये अनेक योधनसे आवृत उस बाणासुरको घरमें आया देख, अनिरुद्धभी उन्हें मारनेकी इच्छासे लोहका परिघ उठाय, दंडधर यमराजके समान उठ खडा हुआ ॥ ३३ ॥ पकड़ लेनेकी इच्छासे चारोंओरसे

आते इन योधानको जैसे बड़ा शूकर कत्तोंको मारे तैसे मारने लगा. मार खाते और जिनके शिर फूट गये और हाथ पांव टूट गये, ऐसे वे योधा घरसे बाहर निकलकर, भाग गये ॥ ३४ ॥ अपनी सेनाको मारतेहुए उस अनिरुद्धको नागपाश डालके, क्रोधकर, उस बलवान बाणासुरने पकड़ लिया. अनिरुद्धको बँधा देख, शोक तथा क्रोधसे विव्हल होकर, आंखोंमेंसे आंसू डालती ऊषा अत्यंत रुदन करने लगी ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ॥ तिरसठवें अध्यायमें बाणासुर और यादवोंको संग्राम हुआ. तहां ज्वरने भगवान्‌की स्तुति की–और बाणासुरके

तं नागपाशैर्बलिनंदनो बली घ्नंतं स्वसैन्यं कुपितो बबंध ह ॥ ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे अनिरुद्धबंधो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बंधूनां च भारत ॥ चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ॥ प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः सांबोऽथ सारणः ॥ नंदोपनंदभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम् ॥ रुरुधुर्बाणनगरं समंतात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥

हाथ काटनेवाले भगवान्‌की शिवजीने स्तुति की. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– महाराज ! चातुर्मासके चार महीने बित गये. पर अनिरुद्धका कहीं पता न लगा. और उसके बंधु बड़ा शोच करते थे ॥ १ ॥ तद नारदजीने आकर, उसका चरित कहा. और वह कैदमें पड़ा है यह समाचार कहे, यह बात नारदजीके मुखसे सुनकर, यादव श्रीकृष्णको संग ले, शोणितपुरपर चढ़े ॥ २ ॥ प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, सांब, सारण, नंद, उपनंद और भद्र–आदि सब राम–कृष्णके पीछे रवाना हुए ॥ ३ ॥ बारह अक्षौहिणी सेना ले, इकट्ठे हो, इन यदुवीरोंने बाणासुरका पुर चारोंओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥ सब दिशानमें पुर, बगीचे, गढ़, कोठे और दरवाजे टूटने लगे, तिन्हें देख, बाणासुर क्रोधमें आ, बारह अक्षौहिणी सेना ले, युद्ध करने बा-

हिर आया ॥ ५ ॥ बाणासुरके वास्ते भगवान् महादेवजी आप अपने पुत्र और पार्षदोंको संग ले, नंदीपर सवार हो, राम-कृष्णसे युद्ध करने आये ॥ ६ ॥ अब आपसमें बड़ा अद्भुत व तुमुल कि-जिसको देखतेही रोंवें खड़े हो जाय ऐसा युद्ध होने लगा. महाराज ! श्रीकृष्ण और महादेवजीका और प्रद्युम्न और स्वामिकार्तिकका ॥ ७ ॥ कुंभांड, कूपकर्ण और बलदेवजीका, सांब और बाणासुरके पुत्रका, बाणासुर और सात्यकिका आपसमें द्वंद्वयुद्ध होने लगा ॥ ८ ॥ उस समय ब्रह्मादिक देवतानके अधिपति, मुनि, सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष ये विमानोंमें बैठ बैठ, देखने आये ॥ ९ ॥ महादेवजीके अनुचर जो भूत

बाणार्थे भगवान्रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नंदिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सु-तुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ कृष्णशंकरयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुंभांडकूपकर्णाभ्यां ब-लेन सह संयुगः ॥ सांबस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सि-द्धचारणाः ॥ गंधर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥ शंकरानुचराञ्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥ डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान् ॥ द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानि प्रायुंक्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ॥ प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥ मोहयित्वा तु गिरिशं जृंभणास्त्रेण जृंभितम् ॥ बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥

प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, बेताल, विनायक, प्रेत, मातृगण, पिशाच, कूष्मांड, ब्रह्मराक्षस हैं, उनको श्रीकृष्ण भगवान्ने शार्ङ्ग धनुषसे छूटे पनी अनीवाले बाणोंसे मार भगाया ॥ १० ॥ ११ ॥ महादेवजीने पिनाक धनुषमें चढ़ाय चढ़ाय, श्रीकृष्णपै अनेक प्रकारके अस्त्र चलाये. पर शार्ङ्गधनुष धारण करनहारे भगवान्ने विस्मय न करते प्रत्यस्त्रोंसे शांत कर दिये ॥ १२ ॥ ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यको पर्वतास्त्रसे, अग्निअस्त्रको पर्जन्यअस्त्रसे, पाशुपत अस्त्रको नारायणास्त्रसे शांत कर, ॥ १३ ॥ जृंभणास्त्रसे महादेवजीको मोहित किया. तद वे तौ जमुहाई खाने लगे. इधर भगवान् खड्ग, गदा और बाणोंसे बाणा-

सुरकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १४ ॥ स्वामिकार्तिक प्रद्युम्नके बाणजालसे पीड़ित हुए. और शरीरमेंसे चौतर्फ रक्त बहने लगा. तब रण छोड़, मयूरपै बैठ, भाग गये ॥ १५ ॥ कुंभांड और कूपकर्ण ये दोनों मूसलके प्रहारसे गिर गये और स्वामी मरजानेसे उनकी सेना चारोंओर तितर बितर हो गयी ॥ १६ ॥ अपनी सेनाको तितर बितर हुई देख, बाणासुर अतिक्रोधकर, संग्राममें सात्यकिको छोंड़, रथमें बैठ, श्रीकृष्णके सन्मुख दौड़ा ॥ १७ ॥ रणमें मदोन्मत्त बाणासुरने एक साथ पांचसौ धनुष

स्कंदः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समंततः ॥ असृग्विमुंचन्गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥ कुंभांडः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ॥ दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पंचशतानि वै ॥ एकैकस्मिन्शरौ द्वौ द्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान्धनूंषि युगपद्धरिः ॥ सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरानाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ॥ पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥ ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ॥ बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥ २१ ॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ॥ अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३ ॥

खैंच, एक एक धनुषमें दो दो तीर चढ़ाये ॥ १८ ॥ हरि भगवानने वे पांचसौ धनुषही एकसाथ काट डाले और सारथी व घोड़ोंको मार, रथको तोड़, शंखनाद किया ॥ १९ ॥ तब बाणासुरकी माता कोटरा नाम, अपने पुत्रके प्राण बचानेके लिये खुले केश कर, नग्न हो, श्रीकृष्णके सन्मुख आ ठाढ़ी हुई ॥ २० ॥ तब भगवान्ने उस नग्न स्त्रीको न देखते मुह फेर लिया. इतनेमें जिसका धनुष कट गया और रथ टूट गया वह बाणासुरभी पुरमें गया ॥ २१ ॥ जब भूतगण भाग गये. तब तीन शिर व तीन पांववाला ज्वर मानों दशों दिशानको जलाता हो तैसे श्रीकृष्णपै आया ॥ २२ ॥ श्रीमन्नारायणदेव श्रीकृष्णचंद्रने उसे देख,

शीतज्वरको भेजा. अब माहेश्वर और वैष्णव ये दोनों ज्वर आपसमें युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ जद वैष्णव ज्वरने माहेश्वर ज्वरको अपने बलसे दबा लिया. तद वह पीड़ित हो, पुकारने लगा और दूसरी जगह अभय न पाकर, वह माहेश्वर ज्वर भयभीत हो, शरणकी इच्छा करता हाथ जोड़, भगवान्की स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ ज्वर बोला कि–अनंतशक्ति, ब्रह्मादिकनकेभी स्वामी, सबसे आत्मा, शुद्ध, चैतन्यघन जगतकी उत्पत्ति–स्थिति–संहारके कारण, वेदसे गम्य, शांतमूर्ति ब्रह्म जो आप हो तिन्हें मैं प्रणाम करता हूं ॥ २५ ॥ काल, कर्म, दैव, जीव, स्वभाव, द्रव्य (पांच वि-

माहेश्वरः समाक्रंदन्वैष्णवेन बलार्दितः ॥ अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरोज्वरः ॥ शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयतांजलिः ॥ २४ ॥ ज्वर उवाच ॥ नमामि त्वाऽनंतशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ॥ विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिंगं प्रशांतम् ॥ २५ ॥ कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ॥ तत्संघातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूंल्लोकसेतून्बिभर्षि ॥ हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानान्जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥ २७ ॥ तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शांतोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ॥ तावत्तापो देहिनां तेंऽघ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ॥ यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥

षय), शरीर, प्राण, अहंकार विकार यानी दश इंद्रियां मन और पंचमहाभूत, लिंगदेह और देहसे कर्म और कर्मसे देह ऐसे चलताहुआ प्रवाह, यह सब आपकी माया है. इसलिये मायाका निषेध करके अवधिरूप जो आप रहे हो, उनके मैं शरण आया हूं, ॥ २६ ॥ आप सकल उपाधियोंसे मुक्त होकर, लीलासे स्वीकार किये अनेक अवतारोंसे देवता, साधु और वर्णाश्रमकी मर्यादानकी रक्षा करते हो और जगतको दुःख देनेवाले कुमार्गी लोगोंका नाश करते हो, यह आपका अवतार पृथ्वीका भार उतारनेको हुआ है ॥ २७ ॥ आपके उत्पन्न कियेहुए इस दुःसह, भयंकर, उग्र शीतज्वरसे मैं तप गया हूं, देहधारीनको संताप तबतक रहता है जबतक सब आश छोड़, आपके चरणमूलके शरण नहीं आते ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–

हे त्रिशिर ! मैं तुझपै प्रसन्न हुआ हूं. मेरे ज्वरसे जो तुझे भय हुआ है वह तेरा निवृत्त हो. पर जो मनुष्य अपने इस संवादका स्मरण करै, उसे तू भय उत्पन्न मत करै ॥ २९ ॥ भगवान्‌ने ऐसे कहा; तब माहेश्वर ज्वर भगवान्‌को प्रणाम कर, चला गया, इतनेमें बाणासुर रथमें बैठ, युद्ध करनेको भगवान्‌के सन्मुख आया ॥ ३० ॥ महाराज ! तब वह असुर हजार हाथोंमें अनेक प्रकारके शस्त्र धारण किये वहां आ, बड़ा क्रोध कर, चक्रधर भगवान्‌पै बाण चलाने लगा ॥ ३१ ॥ वारंवार अस्त्र चलाते उस बाणासुरकी, तीखी धारवाले चक्रसे जैसे वृक्षकी शाखा काटते हैं, तैसे भगवान् भुजा काटने लगे ॥ ३२ ॥

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन्जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ॥ मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥३१॥ तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ चिच्छेद भगवान्बाहून्शाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषु च्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः ॥ भक्तानुकंप्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ त्वं हि ब्रह्म परंज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यंत्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमंबु रेतो द्यौः शीर्षमाशा श्रुतिरंघ्रिरुर्वी ॥ चंद्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेंद्रः ॥ ३५ ॥ रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिंचो धिषणा विसर्गः ॥ प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥

बाणासुरकी भुजा कट रहीं थीं, तब भगवान् महादेवजी भक्तपर करुणा कर, चक्रधर भगवान्‌के समीप आ, बोले ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्रने कहा कि-वेदमेंभी गुप्तरूप रहे और परम-प्रकाशरूप, परब्रह्मरूप आप हो, जिनको निर्मल बुद्धिवाले आकाशके समान निरंजनरूप देखते हैं ॥ ३४ ॥ निर्गुणस्वरूपकी बात तो एक तर्फ रही, पर विराट्स्वरूपकोभी कोई नहीं जानता, जिसका आकाश नाभि है, अग्नि मुख, जल वीर्य, स्वर्ग मस्तक, दिशा कान, पृथ्वी चरण, चंद्रमा मन, सूर्य नेत्र, मैं (शिव) अहंकार, समुद्र उदर, इंद्र भुजा, औषधियां रोम, बादल केश, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति शिश्न, धर्म हृदय है. वह जगतरूपसे कल्पित विरा-

१ चौ०—यह संवाद सुनै जो कोय । ज्वरको भय ताको नहिं होय ॥

रूप आप हो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे अखंडस्वरूप ! यह आपका अवतार धर्मकी रक्षाके लिये और जगतके कल्याणके लिये है, हम सब लोकपाल आपहीसे रक्षा पाकर, सातों लोकोंका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप परब्रह्म, सजातीय भेदरहीत, आदिपुरुष, शुद्ध, स्वयंप्रकाश विजातीय भेदसेभी रहित, सबके कारणरूप और स्वयं कारणरहित हो तौभी सब विषयोंका प्रकाश करनेके लिये अपनी मायासे प्रत्येक शरीरमें जीवरूपसे भिन्न भिन्न भासो हो ॥ ३८ ॥ हे ईश्वर ! जैसे सूर्य अपनी मेघरूप छायासे ढकेहुए प्रतीत होनेपरभी मेघ और मेघसे व्यवहित घटादिक पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं, ऐसे स्वयंप्रकाश आप जीवकी दृष्टिमें अपने कार्यरूप अहंकारसे ढकेहुए प्रतीत होनेपरभी

तवावतारोऽयमकुंठधामन्धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ॥ वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७ ॥ त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ॥ प्रतीयसेऽथापि यथा विकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥ ३८ ॥ यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च संचकास्ति ॥ एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपोगुणिनश्च भूमन् ॥ ३९ ॥ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ॥ उन्मज्जंति निमज्जंति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ४० ॥ देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेंद्रियः ॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवंचकः ॥ ४१ ॥ यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ॥ विपर्ययेंद्रियार्थार्थे विषमत्यमृतं त्यजन् ॥ ४२ ॥ अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ॥ सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥

सत्वादि गुणरूप उपाधियों और उनसे व्यवहित जीवोंकोभी प्रकाशित करते हो ॥ ३९ ॥ आपकी मायासे मोहित होकर, पुत्र, स्त्री और घर-आदिमें लगेहुए लोक दुःखमय भवसागरमें ऊंच, नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ आपके दिये इस मनुष्यदेहको पाकर, जो अजितेंद्रिय पुरुष आपके चरणका भजन नहीं करता, उसे शोच करनेयोग्य और आत्मवंचक समझना चाहिये ॥ ४१ ॥ जो पुरुष, जड़, अप्रिय और अनीश्वर पुत्रादिकोंके वास्ते चैतन्य, प्रिय और ईश्वररूप आपको छोड़ देते हैं. वे पुरुष अमृतको तज, विष खाते हैं ॥ ४२ ॥ मैं (शिव), ब्रह्मा, देवता, निर्मल अंतःकरणवाले मुनिलोगभी प्रिय, ईश्वर और

आत्मरूप आपकोही भजते हैं ॥ ४३ ॥ जगत्की उत्पत्ति स्थिति व प्रलयके कारण, सम, शांत, मित्र, आत्मरूप, इष्टदेव, सजातीय विजातीयभेदरहित, जगत और जीवोंके अधिष्ठानरूप देव जो आप हो, तिन्हें संसारसे पार उतरनेको हम भजते हैं ॥ ४४ ॥ हे देव ! यह मेरा प्यारा और इष्ट भक्त है, इसे मैंने अभय दान दिया है, इसलिये जैसी आपने प्रल्हादपर कृपा करी, तैसी इसपरभी कृपा करो ॥ ४५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे भगवान् ! आपने जो कहा वैसेही मैं आपको राजी रक्खूंगा, आप जिस बातका विचार करते हो मैं, उसमें भली भांति संमति देता हूं ॥ ४६ ॥ बलिराजाका पुत्र यह बाणासुर मेरेभी

तं त्वा जगत्स्थित्युदयांतहेतुं समं प्रशांतं सुहृदात्मदैवम् ॥ अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४ ॥ अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव ॥ संपाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ भगवंस्त्वन्नः करवाम प्रियं तव ॥ भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ॥ प्रह्रादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ॥ सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥ चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यंत्यजरामराः ॥ पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥ इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ॥ प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासः समलंकृतम् ॥ सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥ ५१ ॥

मारनेयोग्य नहीं है; क्योंकि प्रल्हादको मैंने वरदान दिया है कि-मैं तेरे वंशवालोंको नहीं मारूंगा ॥ ४७ ॥ गर्व उतारनेको इसके हाथ मैंने काट डाले हैं और जो पृथ्वीपर भाररूप बहुतसी सेना थी उसे मार भूमिका भार, कम कर दिया है ॥ ४८ ॥ इसकी चार भुजा जो शेष रही हैं, ये अजर और अमर होंगी, यह दैत्य आपका प्रधान पार्षद है. इसे किसीका भय न होगा ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-बाणासुरने ऐसे अभय पाकर, श्रीकृष्णको शिरसे प्रणाम कर, दुलहनके साथ अनिरुद्धको रथमें बिठाय लाकर, हाजिर किया ॥ ५० ॥ बाणासुरकी दी हुई एक अक्षौहिणी सेनासे घिर और सुंदर वस्त्र व अलंकारोंसे सिंगार किये स्त्री-

सहित अनिरुद्धको आगे कर, शिवजीकी संमति ले, श्रीकृष्ण भगवान् वहांसे रवाने हुए ॥ ५१ ॥ नगरीके लोग संबंधी और द्विजनने जिनको सन्मुख आयके, सत्कार किया ऐसे भगवान्ने शंख, आनक और नगारोंके बाजते तोरण व ध्वजानसे शोभायमान व जिसके मार्ग और चोहटोंमें छिरकाव हो गया है ऐसी अपनी राजधानी द्वारकामें प्रवेश किया ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य शिवजीके साथ संग्राम और श्रीकृष्णका विजय, इन दोनोंका इसप्रकार प्रात उठकर, स्मरण करै; उसका पराजय नहीं होवे ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ॥

विवेश शंखानकदुदुंभिस्वनैरभ्युद्यतः स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ॥ पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥ संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे उत्तरार्धे अनिरुद्धानयनंनाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजन्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥ विहर्तुं सांबप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वंतः पिपासिताः ॥ जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥ कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ॥ तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥ चर्मजैस्तांतवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ॥ नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥

चौसठवें अध्यायमें श्रीकृष्णने नृगराजाको शापसे छुड़ाया. और ब्राह्मणका द्रव्य लेनेवालोंको ऐसा दोष लगता है इस कथनसे गर्विष्ट राजानको शिक्षा करी, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! एक समय सांब, चारु, प्रद्युम्न, भानु, गद–आदि यदुकुमार खेलनेको बागमें गये ॥ १ ॥ वहां बहुत देरतक खेले, जब प्यास लगी, तब जल तलाश करने गये. तो एक खाली कुएमें पड़ाहुआ अद्भुत जीव दीखपड़ा ॥ २ ॥ वे पर्वतके सदृश एक गिरगिटको देख, मनमें आश्चर्य करने लगे और दया करके, उसे निकालनेको यत्न करने लगे ॥ ३ ॥ उन कुमारोंने चमड़े और सूतकी पासें डाल, उस पड़ेहुए जीवको निकालनेके लिये बहुत यत्न किया. पर नहीं निकाल सके तब उत्सुक हो, श्रीकृष्णचंद्रसे आकर, कहा ॥ ४ ॥

कमलनयन जगतके पालक भगवान्‌ने वहां आ, उसे देख, लीलाके साथ बाएं हाथसे उसे बाहिर निकाल लिया ॥ ५ ॥ उत्तमश्लो-
भगवान्‌के हाथका स्पर्श होतेही उसका तुर्त गिरगिटका रूप निवृत्त हो गया; तपेहुए सुवर्णके समान सुंदर वर्णयुक्त, अद्भुत अलंकार,
वस्त्र व माला धारण किये देवमूर्ति हो गया ॥ ६ ॥ भगवान् इसका कारण जानते थे, तौभी लोगोंमें यह बात विख्यात करने-
के लिये उन्होंने पूंछा कि-हे महाभाग! सुंदर रूपवाले तुम कौन हो? हम तौ तुम्हें उत्तम देवता मानते हैं ॥ ७ ॥ हे सुभद्र! तुम इस
दशाके योग्य नहीं हो. पर तुमने ऐसा कौन कर्म किया? जिससे यह दशा प्राप्त हुई. हम यह बात जानना चाहते हैं, सो यदि

तत्राऽऽगत्यारविंदाक्षो भगवान्विश्वभावनः ॥ वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥ स उत्तम
श्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ॥ संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणांबरस्रक्
॥ ६ ॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुंदः ॥ कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो दे-
वोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ॥
आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्म
राजा संपृष्टः कृष्णेनानंतमूर्तिना ॥ माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच ॥ नृ-
गो नाम नरेंद्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ॥ दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥ किं नु
तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ॥ कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाऽऽज्ञया ॥ ११ ॥ यावं-
त्यः सिकता भूमेर्यावंत्यो दिवि तारकाः ॥ यावंत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥ १२ ॥

तुम यहां हमें कहना उचित समझते होवो, तद तौ अपना भेद हमें कहो ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-अनंतमूर्ति भगवान्
श्रीकृष्णने यह प्रश्न किया, तद वह सूर्यके समान तेजवान् मुकुटसे प्रणाम करके, भगवान्‌से कहने लगा ॥ ९ ॥ नृगने कहा
कि-हे प्रभु! मैं इक्ष्वाकुका पुत्र नृग नाम राजा हूं, दानीपुरुषोंका नाम कहतेसमय आपके कानमें मेरा नामभी आया होगा
॥ १० ॥ हे नाथ! सब जीवोंकी बुद्धिके साक्षी और कालसे जिसके ज्ञानका नाश नहीं होता ऐसे जो आप हो उनसे कौन
बात अज्ञात है? तौभी आपकी आज्ञा है इसलिये मैं कहूंगा ॥ ११ ॥ जितने पृथ्वीके रजःकण हैं और जितने आकाशमें तारे हैं

व जितनी बरसाकी धारा हैं, मैंने उतनी गैयां दीं ॥ १२ ॥ वेभी कैसी जो दूधवाली, तरुण, अच्छे स्वभाववाली, रूपवान्, गुण-
वान्, कपिलवर्ण, न्यायप्राप्त व बछरे जिनके संग हैं, सुवर्णके सींगवाली. रूपेके खुरवाली ऐसी गैयानका वस्त्र और मालानसे सिंगार
कराय, मैंने दान दिया ॥१३॥ जिन्हें दान दिया वे ब्राह्मणभी कैसे जो अच्छीतरह सिंगार किये अच्छे गुणवान्, अच्छे स्वभाववाले निष्क-
पट आचरणवाले, तपसे विख्यात, वेद पढ़ानेवाले, तरुण और जिनके कुटुंब दरिद्रतासे पीड़ायमान थे ऐसे सुपात्र उत्तम ब्राह्म-
णोंको मैंने गोदान दिया ॥ १४ ॥ गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, घर, घोड़ा, हाथी, दासीसहित कन्या, तिल, रूपा, शय्या, वस्त्र, रत्न

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृंगीः ॥ न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकू-
लमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुंबेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ॥ तपश्श्रुतब्रह्म-
वदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुंगवेभ्यः ॥ १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्ति-
लरूप्यशय्याः ॥ वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥ कस्यचिद्द्वि-
जमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ॥ संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥ तां नीयमा-
नां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ॥ ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥ विप्रौ वि-
वदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ॥ भवान्दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥

और सब प्रकारका सामान, रथ ये दानभी मैंने किये. और यज्ञ किये. व कुआ बावड़ी-आदि जलाशयभी करवाये ॥ १५ ॥
किसी उत्तम ब्राह्मणकी गौ भूलकर, मेरी गौनके यूथमें शामिल हो गयी. मुझे इस बातकी खबर नहीं थी इस लिये मैंने वह
गौ दूसरे ब्राह्मणको दे दी ॥ १६ ॥ उस गौको ले जाते देखकर, गौके स्वामीने कहा कि-यह गौ तौ मेरी है, तद उसने पीछा
कहा कि-नहीं. यह तेरी नहीं है. यह तौ मेरी है. मुझे नृगराजाने दी है ॥ १७ ॥ अपना प्रयोजन सिद्ध करनेवाले वे दोनों
ब्राह्मण विवाद करते करते मेरे पास आकर, बोले. एकने कहा कि-'आपने मुझे गौ दी है.' दूसरेने कहा कि-'आपने मेरी गौ

१ किसीको बिना ठगके जो उपार्जित की गयीं सो.

ली है ' यह बात सुनकर, मैं व्याकुल हुआ ॥ १८ ॥ धर्मसंकट आ पड़ा, तद दोनों ब्राह्मणोंसे मैं प्रार्थना करने लगा कि- इस गौको छोड़ दो. जो छोड़ देगा उसे मैं एक लाख उत्तम गौ दूंगा ॥ १९ ॥ मैं जो आपका किंकर हूं. और अनजान हूं, तिसपर आपको अनुग्रह करना चाहिये, मैं अपवित्र नरकमें पड़ता हूं. सो कष्टसे आपको मेरा उद्धार करना चाहिये ॥ २० ॥ हे राजा ! मैं दान नहीं लेता ऐसे कह कर, गौका स्वामी चला गया और दूसराभी ' एक लाखके ऊपर दश हजार देओ तौभी इस गौके सिवाय दूसरी गौ मैं नहीं चाहता ' ऐसे कहकर, चला गया ॥ २१ ॥ हे देवदेव ! हे जगत्पति ! इस अवसरमें यम-

अनुतीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ॥ गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवंतावनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः ॥ समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतंतं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत ॥ नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ २१ ॥ एतस्मिन्नंतरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ॥ यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥ पूर्वं त्वमशुभं भुंक्षे उताहो नृपते शुभम् ॥ नांतं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वं देवाशुभं भुंज इति प्राह पतेति सः ॥ तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ॥ स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥ स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः ॥ साक्षादधोक्षज उरुव्यसनांधबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवाऽपवर्गः ॥ २६ ॥

राजके दूत मुझे यमपुरी ले गये. तहां यमराजने मुझसे पूंछा कि-॥ २२ ॥ हे राजा ! पहले तू पाप भोगेगा ? या पुण्य भोगेगा ? तेरे दान व धर्मका तथा उससे प्राप्त होनेवाले उत्तम लोककाभी मैं अंत नहीं देखता ॥ २३ ॥ तद मैं बोला कि-हे देव ! पहले मैं पाप भोगूंगा, तद यमराजने कहा कि-तद नीच योनिमें पड़. इतनेमें हे प्रभु ! मैं वहांसे नीचे पड़ा और मेरा गिरगिटका स्वरूप मैंने देखा ॥ २४ ॥ हे केशव ! मैं ब्राह्मणोंका भक्त, उदार, आपका दास हूं. और आपके दर्शनकी मेरे इच्छा लग रही है. अतएव मेरी अबतक स्मृति नाश नहीं हुई है ॥ २५ ॥ हे प्रभु ! आप योगेश्वरोंकेभी उपनिषद्रूप चक्षुसे केवल निर्मल हृदयमें

देखनेमें तनम

और इसकी तपस्याके फलको प्रगट करो; क्योंकि आप सिद्धिके देनेवाले हो ॥ ४ ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवने कहा । ... , ...
पुरुषोत्तम भगवान्‌की परमभक्ति प्राप्त होनेके कारण यह ब्रह्मर्षि किसी लोकके सुखकी इच्छा नहीं रखता. संसारिक सुख ...
रहा परंतु इसके तो मोक्षकीभी इच्छा नहीं है ॥ ६ ॥ तथापि हे पार्वती ! इस साधु पुरुषके साथ आपन बातें करेंगे; क्योंकि
मनुष्योंमें साधुजनका समागम होना यही एक बड़ा भारी लाभ है ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा कि—सर्व विद्याओंके और सर्व प्राणि-
योंके ईश्वर और सत्पुरुषोंके पति महादेव इस प्रकार कहकर, उन मार्कंडेयके समीप आये ॥ ८ ॥ मार्कंडेयमुनि अपने अंतःकर-

श्रीभगवानुवाच ॥ नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ॥ भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥ अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ॥ अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्सात्वतां गतिः ॥ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥ तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ॥ न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरिशो योगमायया ॥ आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥ आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिंगजटाधरम् ॥ त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यंतमिव भास्करम् ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्मांबरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ॥ अक्षमालाडमरुककपालपरशुं सह ॥ बिभ्राणं सहसाभातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ॥ १२॥ किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ॥ १३ ॥

णकी वृत्तियोंको रोंकनेके हेतु अपने आत्माको और जगत्‌को नहीं देखते थे तासों साक्षात् ईश्वर और जगत्‌के आत्मारूप शिव—
पार्वतीके आगमनकोभी उन्होंने नहीं जाना ॥ ९ ॥ भगवान् महादेवजी इस बातको जानकर, वायु जैसे छिद्रमें प्रवेश करे ऐसे
योगमायासे मार्कंडेयके हृदयाकाशमें प्रवेश हुए ॥ १० ॥ बिजलीकीसी पिंगल जटा धारण किये, दशभुज, त्रिलोचन, लंबे,
उदित होतेहुए सूर्यके समान तेजवान् ॥ ११ ॥ बाघांबरका वस्त्र, त्रिशूल, धनुष, बाण, खड्ग, ढाल, रुद्राक्षकी माला, डमरू, कपाल और परशुको धारण किये, महादेवको हृदयमें आकर, अकस्मात् प्रगट हुए देखकर, ॥ १२ ॥ विस्मित भयेहुए मुनि कहने

विस्तारको सुने वह सर्व पापोंसे मुक्त हो जाय ॥ ६० ॥ वैशंपायनके शिष्य यजुर्वेद वेद तासों वे यज्ञमें अध्वर्युकी पदवीको प्राप्त हुए, इन्होंने अपने गुरु वैशंपायनको ब्रह्महत्याका पाप लगा, तब उस पापकी निवृत्तिके वास्ते गुरुके बदले प्रायश्चित्त किया तिससे वे चरकाध्वर्यु कहलाये ॥ ६१ ॥ ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करवानेके समयमें वैशंपायनके शिष्य याज्ञवल्क्यने अपने गुरुसे कहा कि– 'हे भगवन् ! अल्प दृढ़तावाले दूसरे शिष्य, प्रायश्चित्त करेंगे तिससे क्या होना है ? यह अत्यंत कठिन प्रायश्चित्त मैं इकल्लाही करूंगा ॥ ६२ ॥ इस प्रकार याज्ञवल्क्यके कहनेपर वैशंपायनने कोप करके, कहा कि–' बस, तू चला जा तू कि–जो दूसरे ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला शिष्य है तिससे मेरे कुछभी प्रयोजन नहीं है. मुझसे जो तूने अध्ययन किया

वैशंपायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ॥ यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांऽहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ॥ चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥ इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ॥ विप्रावमंत्राशिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥ देवरातसुतः सोपि छर्दित्वा यजुषांगणम् ॥ ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥ यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतया ददुः ॥ तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छंदांस्यधिगवेषयन् ॥ गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥ ६६ ॥

है उसे पीछा तू तुर्त त्याग दे ' ॥ ६३ ॥ गुरुने इसप्रकार कहा तब देवरातका पुत्र वह याज्ञवल्क्य यजुर्वेदके मंत्रोंको उगलकर, वहांसे चल निकला. फिर दूसरे मुनिलोगोंके ये यजुर्वेदके मंत्र दृष्टिमें आये ॥ ६४ ॥ उन मंत्रोंमें अभिलाषाके हेतु उन मुनिलोगोंने तीतरपक्षी बनकर, वे यजुर्वेदके मंत्र ले लिये. ' ब्राह्मणरूपसे उगलेहुए पदार्थका लेना योग्य नहीं, इस विचारसे उन्होंने तीतरपक्षी बनकर, मंत्रोंका ग्रहण किया. फिर इन मंत्रोंके समुदायमेंसे अंतर्गत कितनेएक विभाग होनेपर उनमेंसे तैत्तिरीय ऐसे नामकी अतिरमणीय यजुर्वेदकी शाखायें हुई. ॥ ६५ ॥ हे शौनक ! गुरुके पास अविद्यमान ऐसे अधिक मंत्रोंको तलाश करतेहुए याज्ञवल्क्य मुनिने सर्व वेदोंके स्वामी सूर्यनारायणकी वक्ष्यमाण रीतिसे स्तुति की ॥ ६६ ॥

संहिता दी ॥ ५२ ॥ जैमिनिको छंदोग नाम सामवेदकी संहिता दी. और सुमंतु नाम अपने शिष्यको अथर्वांगिरसी नाम अथर्ववेदकी संहिता दी ॥ ५३ ॥ पैलमुनिने इंद्रप्रमिति और बाष्कल नाम दो शिष्योंको अपनी संहिता पढायी. हे शौनक ! बाष्कलने अपनी संहिताके चार भाग करके, बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र इन चार शिष्योंको पढायी, आत्मज्ञानी इंद्रप्रमितिने मांडूकेय नाम अपने विद्वान् शिष्यको अपनी संहिता पढायी. मांडूकेयसे देवमित्रने पढी. देवमित्रने अपने शिष्य सो-

साम्नां जैमिनये प्राह तथा छंदोगसंहिताम् ॥ अथर्वांगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमंतवे ॥ ५३ ॥ पैलः स्वसंहितामूच इंद्रप्रमितये मुनिः ॥ बाष्कलाय च सोप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ॥ पराशरायाग्निमित्रे इंद्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥ अध्यापयत्संहितां स्वां मांडूकेयमृषिं कविम् ॥ तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ॥ ५६ ॥ शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पंचधा व्यस्य संहिताम् ॥ वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७ ॥ जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ॥ बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥ बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् ॥ चक्रे बालायनिर्भज्यः कासारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥ बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ॥ श्रुत्वैतच्छंदसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

भरि- आदि शिष्योंको पढायी ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ मांडूकेयके पुत्र शाकल्यने अपनी संहिताके पांच भाग करके, वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर नाम शिष्योंको पढायी ॥ ५७ ॥ शाकल्यके छठे शिष्य जातूकर्ण्यने अपनी संहिताके तीन विभाग करके और वैदिक पदार्थोंका व्याख्यानरूप निरुक्त नाम ग्रंथ बनाकर, बलाक, पैज, वेताल और विरज नाम चार शिष्योंको पढाया ॥ ५८ ॥ बाष्कलके पुत्र बाष्कलिने पूर्वोक्त सर्व शाखाओंमेंसे वाल[illegible]ण, [illegible]ख्य नाम संहिता बनाकर, वह संहिता बालायनि, भज्य और कासारको पढायी ॥ ५९ ॥ ये ऋग्वेदकी संहितायें इन ब्रह्मर्षि[illegible]रखकर, [illegible]धारण की गयीं. जो मनुष्य इस वेदके

फिर ब्रह्माजीने वेदके उच्चारण–आदिमें निपुण अपने पुत्र मरीचि–आदि ब्रह्मर्षियोंको वे वेद पढाये. और धर्मका उपदेश करनेवाले इन ब्रह्मर्षियोंने अपने पुत्रोंको पढाया ॥ ४५ ॥ ये वेद नियम धारण करनेवाले उन उन शिष्य और प्रशिष्योंकी परंपरासे चारों युगोंमें चले आते हैं सो द्वापरयुगके अंतमें महर्षियोंने उनके विभाग किये हैं ॥ ४६ ॥ इसका कारण यह हुआ कि–कलियुगमें लोग कालके बलसे अल्पायु, हीनपराक्रमी और मंदबुद्धि होने लगे उन्हें देखकर, हृदयके भीतर विराजेहुए भगवान्‌के प्रेरेहुए इन ऋषियोंने वेदका विभाग किया ॥ ४७ ॥ हे शौनक ! इस वैवस्वत मन्वंतरमें तो धर्मकी रक्षाके वास्ते ब्रह्मा और महादेव–

पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ॥ ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥ ४५ ॥ ते परंपरया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ॥ चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥ ४६ ॥ क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ॥ वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥ ४७ ॥ अस्मिन्नप्यंतरे ब्रह्मन्भगवाँल्लोकभावनः ॥ ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ॥ अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥ ४९ ॥ ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ॥ चतस्रः संहिताश्चक्रे मंत्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥ तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ॥ एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥ ५१ ॥ पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ॥ वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ५२ ॥

आदि लोकपालोंकी प्रार्थनासे लोकोंके पालक भगवान् अपनी मायाके सत्वगुणके अंशसे वेदव्यासरूपसे पराशरऋषिके वीर्यसे सत्यवतीके गर्भमेंसे प्रगट हुए हैं. और उन्हींने वेदके चार विभाग किये हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ जैसे अनेक मणियोंके ढेरमेंसे माणिक्य–आदि मणियां बीन कर, जुदी कर ली जाती हैं. ऐसे मंत्रोंके समूहरूप एक वेदमेंसे ऋच, यजुष, सामन् और अथर्वन् नामके मंत्रोंको उन उन वर्गोंके अनुसार जुदे जुदे टाल कर, उन मंत्रोंसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नामकी चार संहिता वेदव्यासजीने बनायीं ॥ ५० ॥ हे शौनक ! फिर महामति वेदव्यासजीने चार शिष्योंको बुलाकर, एक एकको उन संहिताओंमेंसे एक एक संहिता दी ॥ ५१ ॥ पैलको बह्वृच नाम पहली ऋग्वेदकी संहिता दी. वैशंपायनको निगदनाम यजुर्वेदकी

'ॐकार' प्रगट हुआ है. यह 'ओंकार' सर्वव्यापक परमात्मा भगवान्‌का ज्ञापक है ॥ ३९ ॥ कि-जो परमात्मा सर्वशून्य हो जानेपरभी आप जाननेवाले होनेसे कान बंद किये जानेपरभी इस अव्यक्त 'ओंकार' को सुनते हैं. परंतु जीव तो इंद्रियोंके आधीन होनेसे कान बंद होनेके समयमें कुछभी सुन नहीं सक्ता. सोया हुआ मनुष्य किसीका शब्द सुनकर, जागता है तब यह शब्द किसने सुना ऐसे विचार किया जाय तो इंद्रियां लीन होनेसे जीवके तो श्रवण होना संभवे नहीं. किंतु परमात्माही सुनता है और सुनकर, जीवको जगाता है ऐसे ठहरता है. ऐसे इस स्थलमेंभी जीवको जो नादका कछुक अनुभव होता है वह परमात्माको लेकर, होता है ऐसे जानना, हृदयाकाशमें आत्मासे प्रगट भयेहुए इस 'ओंकार' से वैखरी वाणी प्रगट हुई है

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ॥ येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ॥ ४० ॥ स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ॥ ससर्वमंत्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥ तस्य ह्यासंस्त्रयोवर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ॥ धार्यंते यैस्त्रयोभावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥ ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ॥ अंतस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ॥ सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥

॥ ४० ॥ अपने आश्रयरूप और सर्वव्यापक साक्षात् परमात्माका नामरूप यह 'ओंकार' ही सर्व मंत्रोंका सूक्ष्मरूप है. कारण यह कि-यही वेदोंका निर्विकार बीज है ॥ ४१ ॥ हे शौनक ! इस 'ओंकार' के अकार, उकार और मकाररूप तीन अक्षर प्रगटहुए कि- जिनमें सत्व, रज और तम, ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद, भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तथा जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इत्यादि तीन संख्यावाले पदार्थोंका अनुक्रमसे समावेश कल्पन किया गया है ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजीने इन तीन अक्षरोंमेंसे अक्षरोंका समुदाय रचा है कि- जिस समुदायमें अंतस्थ (य र ल व) ऊष्म (श ष स ह) स्वर (अ से औ तक) स्पर्श (क से म तक) ह्रस्व और दीर्घ- आदि आजाते हैं ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजीने यज्ञसंबंधी कर्मोंका उपदेश करनेके वास्ते इन अक्षरोंके समुदायमेंसे चार मुखोंद्वारा व्याहृतियां (भूः, भुवः, स्वः) और ओंकारसहित चार वेदोंको रचा है ॥ ४४ ॥

र्णरूपसे निश्चय किया है ॥ ३२ ॥ जिन लोगोंके देह और घरमें 'मैं और मेरा' ऐसा मिथ्याभिमान न होवे वेही इस विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ इसलिये योग्य तो यह है कि-पराये दुर्वचनोंका सहन करना. किसीका अपमान नहीं करना. इस देहमें अभिमान रखकर, किसीके साथ वैर नहीं करना ॥ ३४ ॥ महात्मा और अकुंठित ज्ञानवाले वेदव्यासजीको मैं प्रणाम करता हूं कि-जिनके चरणारविंदके ध्यानसे मैं इस भागवतसंहिताको प्राप्त हुआ हूं ॥ ३५ ॥ शौनकने कहा कि-हे सौम्य ! पुराणोंकी संहिताओंका विभाग विशेष रीतिसे जाननेकी हमारी इच्छा है सो उस प्रसंगसे वेदके विभागविषयमेंभी हम पूंछते हैं

त एतदधिगच्छंति विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥ ३३ ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥ ३४ ॥ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ यत्पादांबुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥ ३५ ॥ शौनक उवाच ॥ पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ॥ वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥ ३६ ॥ सूत उवाच ॥ समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः ॥ द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यांत्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ॥ यत्तल्लिंगं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

कि-व्यासजीके शिष्य वेदोंके प्रवर्त्तक पैल-आदि महात्मा ऋषियोंने कितने प्रकारसे वेदोंका विभाग किया यह हमें कहो ॥ ३६ ॥ सूतजीने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! समाधि धरकर, बैठेहुए परमेष्ठी ब्रह्माजीके हृदयाकाशमेंसे प्रथम नाद उत्पन्न हुआ कि-जो नाद, कानको अंगुलीआदिसे रोकनेपर कछुक अपने अनुभवमें आता है ॥ ३७ ॥ और जिस नादकी उपासनासे योगीजन अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवतरूप अपने मलको धोकर, मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ इस नादमेंसे स्वयंप्रकाश और जिसकी उत्पत्ति स्पष्ट जाननेमें नहीं आती ऐसा अकार-आदि तीन अक्षरमय

तब उनके वचनको मान देनेके वास्ते जनमेजयने बृहस्पतिका कहना स्वीकार किया. और सर्पयागको वहींसे समाप्त करके बृह-
स्पतिकी पूजा की ॥ २८ ॥ ब्राह्मणने कोप करके, परीक्षितका बध किया और जनमेजयने क्रोध करके सर्पोंका बध किया सो
यह कोप करनेरूप मोह विद्वानोंकेभी हुआ इसमें कोई आश्चर्य मानो ऐसी बात नहीं है. क्योंकि प्रभु विष्णु भगवान्‌की माया
बड़ी अतर्क्य और बाधित करनेको अशक्य है कि-जिससे विष्णु भगवान्‌केही अंशरूप प्राणी दुसरे प्राणियोंपर क्रोध-आदि वृ-
त्तियोंके हेतु मोहित हो जाते हैं ॥ २९ ॥ यह माया आत्मविचारविना दूसरे सर्व स्थलोंमें निर्भय रहती है. आत्मवादी पुरुष
जब वारंवार आत्मविचार करते हैं तब ‘ यह बड़ी कपटकारिणी है ’ इस प्रकार जानीहुई माया निर्भय रीतिसे प्रकाशित नहीं

सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यया ॥ मुह्यंत्यस्यैवाऽऽत्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥ २९ ॥
न यत्र दंभीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ॥ न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो
मनश्च संकल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥ ३० ॥ न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्विय-
स्त्वहम् ॥ तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमेत्स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥ परं पदं वै-
ष्णवमामनंति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यावसितं
समाहितैः ॥ ३२ ॥

हो सवती किंतु मानों डरती हो ऐसे अपने मोह-आदि कार्यको न करती किसी तरह अपना निर्वाह करती है. और जिस आत्म-
विचारमें मायाके आश्रयवाला अनेक प्रकारका वाद और संकल्प व विकल्परूप वृत्तिवाला मनभी नहीं रहता ॥ ३० ॥ अहंकार-
आदि ऊर्मियोंका निषेध करके जिसमें इंद्रियां, कर्म और इन दोनोंसे होनेवाला फल तथा इन तीनोंसे संबंध रखनेवाला अहंकारात्मक
जीवपनभी नहीं रहता. अतएव जिसमें सर्व बाध्य और बाधकोंका निरास हो जाता है उसी आत्मस्वरूपमें विवेकी पुरुषको अपनी इच्छासे
रमण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ अनात्म पदार्थोंका त्याग करना चाहतेहुए और उसीसे देहादिकमें अहंभावको त्यागकर, आत्माविना
दूसरे किसीमें प्रेम नहीं रखनेवाले विद्वान् लोग अनात्मपदार्थोंका ‘ नेति नेति ’ इस प्रकार निषेध करते करते प्रतीत होतेहुए इस
आत्मस्वरूपकोही विष्णुका परमपद कहते हैं कि-जिसका समाधिनिष्ठ पुरुषोंने ध्यानआदिसे हृदयमें आलिंगन करके, परिपू-

मेजय राजाने ऋत्विजोंसे कहा कि–' हे ब्राह्मणो ! तब इंद्रसहित तक्षकको अग्निमें क्यों नहीं गिरा देते हो ?' २० ॥ यह वचन सुनकर, ब्राह्मणोंने यज्ञमें इंद्रसहित तक्षकको " हे तक्षक ! मरुद्गणके स्वामी इंद्रके साथ तू यहां शीघ्र पड़. " इसप्रकार मंत्रोंसे बुलाया ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके कहेहुए इसप्रकारके कठोर वाक्योंसे तक्षकसहित इंद्र अपने स्थानसे विमानके साथ चले और मनमें व्याकुल हुए ॥ २२ ॥ उन इंद्रको विमानसे तक्षकसहित आकाशमेंसे पड़ता देखकर, अंगिराके पुत्र बृहस्पतिने उस जनमेजय राजासे कहा कि–॥ २३ ॥ 'हे राजा ! आपके हाथसे इस सर्पराजका बध नहीं होना चाहिये; क्योंकि इसने अमृत पिया

तच्छ्रुत्वाऽऽजुहुवुर्विप्राः सहेंद्रं तक्षकं मखे ॥ तक्षकाऽऽशु पतस्वेह सहेंद्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपः स्थानादिंद्रः प्रचालितः ॥ बभूव संभ्रांतमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥ तं पतंतं विमानेन सहतक्षकमंबरात् ॥ विलोक्यांगिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥ नैष त्वया मनुष्येंद्र वधमर्हति सर्पराट् ॥ अनेन पीतममृतमथवा अजरामरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जंतोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ॥ राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥ २५ ॥ सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ॥ पंचत्वमृच्छते जंतुर्भुंक्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राजन्संस्थीयेताऽऽभिचारिकम् ॥ सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ॥ सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥

है. और उसीसे यह अमर और अजर हो गया है ॥ २४ ॥ आपके पिताके मरणके वास्ते तक्षकपर आपको क्रोध नहीं करना चाहिये. कारण यह कि–जीवका जीवन मरण और परलोक ये सब अपने कर्मोंसेही होते हैं. हे राजा ! इसलिये सुख वा दुःखका देनेवाला दूसरा कोईभी नहीं है ॥ २५ ॥ हे राजा ! सर्प, चौर, अग्नि, बिजली वा रोगादिकसे जीवका जो मरण होता है वह उसको अपने प्रारब्धकर्मोंकाही भोग मिलता है; ऐसे जानो. सर्पादिक कथमपि स्वतंत्र नहीं हैं किंतु उन्हें तो प्रारब्धकर्मही प्रेरता है ॥ २६ ॥ हे राजा ! इसलिये इस हिंसाभरे यज्ञको यहींसे समाप्त कर दो. और बिचारे दूसरे निरपराधी सर्प जल गये उसमें तुम्हाराभी दोष नहीं है. क्योंकि जीव अपने प्रारब्ध कर्मका भोग किया करते हैं ॥ २७ ॥ इसप्रकार बृहस्पतिने कहा

और आप अपनी इच्छामें आया वैसा रूप बनानेको समर्थ होनेसे ब्राह्मणके वेषसे गुप्त रहकर, राजाके निकट जाकर, उसको डसा ॥ १२ ॥ प्रथमसेही ब्रह्मभूत भयेहुए राजाके पास तक्षकका आना पिष्टपेषणकी नांई व्यर्थही हुआ सर्व प्राणिमात्रके देखते इन राजर्षि परीक्षितका शरीर विषके अग्निसे तुर्त भस्म हो गया ॥ १३ ॥ पृथ्वीमें आकाशमें और सर्व दिशाओंमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया. देव, असुर और मनुष्य-आदि सबलोक चकितसे रह गये ॥ १४ ॥ देवतानके दुंदुभि बाजने लगे. गंधर्व और अप्सरा गाने लगीं. फूलोंकी वर्षा होने लगी. विद्वान् लोक 'साधु साधु' ऐसे कहने लगे ॥ १५ ॥ जनमेजय राजा, अ-

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ॥ बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥ हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ॥ विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्गंधर्वाप्सरसो जगुः ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥ १५ ॥ जन्मेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ॥ यथा जुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सहद्विजैः ॥ १६ ॥ सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् ॥ दृष्ट्वेंद्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ॥ उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्योतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तं गोपायति राजेंद्र शक्रः शरणमागतम् ॥ तेन संस्तंभितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ॥ सहेंद्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥

पने पिता परिक्षितको तक्षक डँसा, यह समाचार सुनकर, क्रोधसे ब्राह्मणोंको एकत्रित करके, यज्ञमें सर्व नागलोकोंको होमने लगा ॥ १६ ॥ इस सर्पयज्ञके प्रदीप्त भयेहुए अग्निमें बड़े २ नागोंको दग्ध होते देखकर, भयसे उद्विग्न भयाहुआ तक्षक इंद्रके शरण गया ॥ १७ ॥ परीक्षितके पुत्र जनमेजय राजाने अपने यज्ञमें तक्षकको न देखकर, ब्राह्मणोंसे कहा कि-'सर्पलोकोंमें अधम तक्षक क्यों नहीं जलता'? ॥ १८ ॥ तब ब्राह्मणोंने कहा कि-'हे राजेंद्र! इन्द्र अपने शरणागत इस तक्षक सर्पकी रक्षा करता है और उसने इस सर्पको रों॰ रक्खा है नासों यह अग्निमें नहीं पड़ता'॥ १९ ॥ ये वचन सुनकर, उदारबुद्धिवाले जन-

दिखाया उसको मैं पा चुका हूं ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझको अनुज्ञा देओ. मैं मेरी वाणीको बंद करता हूं और जिसने वासना-
ओंका त्याग कर दिया है ऐसे चित्तको भगवान्‌में लगाकर, प्राणोंका त्याग करता हूं ॥ ६ ॥ ज्ञान और विज्ञानकी निष्ठासे मेरा
अज्ञान और उसके संस्कारभी निवृत्त हो गये हैं. आपने परमकल्याणरूप भगवान्‌का स्वरूप मुझको दिखाया ॥ ७ ॥ सूतजीने
कहा कि—इसप्रकार कह कर, राजाने श्रीशुकदेवजीकी पूजा की. उसे अंगीकार कर, महात्मा शुकदेवजी उनकी संमति लेकर, संन्यासी
लोगोंके साथ वहांसे पधार गये ॥ ८ ॥ गंगाजीके तटपर पूर्वदिशाकी तर्फ जिनका अग्र है ऐसे दर्भोंपर उत्तरदिशाकी ओर मुख रखकर,
बैठा हुआ, आसक्तिरहित ब्रह्मभूत, महायोगी और संदेह जिसके कट गये हैं ऐसा राजर्षि परीक्षितभी बुद्धिसे मनको परमात्मामें लगा-

अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ॥ मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥
अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ॥ भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥
इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ॥ जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षि-
दपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ॥ समाधाय परं दध्यावस्पंदासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूले बर्हिष्या-
सीनो गंगाकूल उदङ्मुखः ॥ ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ तक्षकः प्रहितो विप्राः
क्रुद्धेन द्विजसूनुना ॥ हंतुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥ तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य
विषहारिणम् ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥

कर, उनका ध्यान करने लगा. और वृक्षकी नाईं लीनप्राण हो गया ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! क्रोधित भयेहुए ब्राह्मणके पुत्रका पठाया
हुआ तक्षक नाग परीक्षित राजाको मारनेकी इच्छासे जा रहा था वहां मार्गमें उसने कश्यप नाम एक ब्राह्मणको देखा ॥ १० ॥
यह ब्राह्मण विषकी चिकित्सासे परीक्षितकी रक्षा करके द्रव्य पानेकी इच्छासे आ रहा था उसकी परीक्षा करनेके वास्ते तक्षक
सर्पने एक बड़के पेड़को अपनी जीभसे चाटकर, भस्म कर दिया. इस पेड़को पीछा अंकुर-आदि क्रमसे उस ब्राह्मणने सजीव
कर दिया यानी वह बड़का पेड़ पीछा अंकुर—आदिसहित हरा हो गया तब तक्षकने जाना कि—यह तो मेरे महिमाका नाश
करे ऐसा है ॥ ११ ॥ इसलिये उसने उस ब्राह्मणको जितना द्रव्य चाहिये था उतना धन दे, उसे प्रसन्न कर, पीछा लौटा दिया

ऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पांचवें अध्यायमें संक्षेपसे परब्रह्मका उपदेश करके परीक्षित राजाके तक्षकके काटनेसे होनेवाले मृत्युके भयका निवारण करनेमें आवेगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इस श्रीमद्भागवतमें सर्वके आत्मा हरिभगवान्‌का वारंवार वर्णन किया जाता है; कि–जिन भगवान्‌के प्रसादसे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्र उत्पन्न हुए हैं. ब्रह्मा, रुद्र और सर्व जगत्‌केभी नियंता भगवान्‌का जो श्रवण करता है उसके किसीसेभी भयकी शंका नहीं रहती ॥ १ ॥ हे राजा ! तुम ' मैं मर जाऊंगा ' ऐसी पशुबुद्धिको छोड़ दो. कारण यह कि– जैसे यह देह प्रथम नहीं था किंतु पीछेसे पैदा हुआ है. तासों यह नष्ट हो जायगा. ऐसे तुम पहले नहीं थे किंतु पीछेसे पैदा हुए हो ऐसे नहीं है तासों तुम्हारा नाश नहीं होगा ॥ २ ॥ जैसे बीज और अंकुरकी रीतिके

श्रीशुक उवाच ॥ अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ॥ यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥ त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ॥ न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नंक्ष्यसि ॥ २ ॥ न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान् ॥ बीजांकुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥ स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पंचत्वाद्यात्मनः स्वयम् ॥ यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥ घटे भिन्ने यथाकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा ॥ एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः ॥ ५ ॥ मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चाऽऽत्मनः ॥ तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥

अनुसार देह, पुत्रपौत्रादिकरूप होकर, जन्म धारण किया करता है ऐसे तुम कि– जो काष्ठसे अग्निकी नाईं देहादिकसे जुदे होवे पुत्र पौत्रादिकरूपसे जन्म धारण करनेवाले नहीं हो ॥ ३ ॥ जैसे स्वप्नमें अपने देहके शिरच्छेदको आप देखता है ऐसे जाग्रत्‌मेंभी अपने देहके मरणादिकको आप देखता है तासों ' मैं मरता हूं ' ऐसी बुद्धि केवल भ्रांतिसेही होती है. क्योंकि वस्तुतः आत्मा अजर और अमर है ॥ ४ ॥ आत्माके यह जन्मादिक संसारकी भ्रांति देहरूप उपाधिको लेकर है तासों उपाधिकी निवृत्ति होनेसे मोक्ष होता है. जैसे घड़ा फूट जानेपर घटाकाश जैसा प्रथम महाकाशरूप था वैसाही पीछा हो जाता है ऐसे तत्त्वज्ञानसे देहका लय होनेपर जीव जैसा ब्रह्मरूप था वैसाही पीछा ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ५ ॥ मन आत्माके देह, गुण और

दार्थोंकी क्षण-क्षणकी गतियां जैसे देखनेमें नहीं आतीं. ऐसे कालसे होतीहुई देहादिककी क्षण-क्षणकी अवस्थायेंभी देखनेमें नहीं आतीं. जैसे चंद्रादिकके दूसरे प्रवेशकी प्राप्ति होनेपरसे उनकी क्षण-क्षणमें होतीहुई गतिकी स्थितियां कल्पन करनेमें आती हैं ऐसे देहादिकेभी वृद्धत्व-आदि देखनेपरसे उनकी क्षणक्षणमें बदलतीं हुई अवस्थायें कल्पन करनेमें आती हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यंतिक और नित्य ये चार प्रकारके प्रलय तुमसे कहे. कालकी गति इस प्रकारकी है ॥ ३७ ॥ हे राजा ! जगत्के कर्ता और सर्वव्यापक नारायणकी लीलासंबंधी ये कथायें मैंने संक्षेपसे आपको कहीं; क्योंकि संपूर्ण कथा कहनेको तौ ब्रह्माजीभी समर्थ नहीं हैं ॥ ३८ ॥ अनेकप्रकारके दुःखरूप दावानलसे दुखी और उसीसे अतिदुस्तर संसाररूप

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः ॥ आत्यंतिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३७ ॥ एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ॥ लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥ ३८ ॥ संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य ॥ लीलाकथारसनिषेवणमंतरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ३९ ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः ॥ नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥ ४० ॥ स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः ॥ इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥ ४१ ॥ एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये ॥ दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४२ ॥ इति श्री० म० द्वा० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

समुद्रको पार करना चाहतेहुए पुरुषके वास्ते पुरुषोत्तम भगवान्की लीलाओंकी कथारूप रसके सेवनविना दूसरा कोईभी तिरनेका उपाय नहीं है. दूसरा उपाय न होनेसे भगवान्की कथाके श्रवणका यथाशक्ति सेवन करना यही उचित है ॥ ३९ ॥ अविनाशी नारायण ऋषिने पहले यह भागवतरूप पुराणसंहिता नारदजीसे कही. और नारदजीने वेदव्यासजीको कही ॥ ४० ॥ महाराज ! इन महात्मा वेदव्यासजीने प्रसन्न होकर, यह वेदतुल्य भागवतसंहिता मुझको कही ॥ ४१ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! यह अपने पास बैठाहुआ सूत, नैमिषारण्यमें दीर्घकालसंबंधी यज्ञमें शौनकादिक ऋषियोंके पूंछनेपर उनको यह भागवतसंहिता कहकर, सुनायेगा ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशे [illegible] रामस्वामिविरचितायां तत्वदीपिकाभाषाटीकायां चतुर्थो-

नेक प्रकारका कहते हैं ऐसे अहंकाररूप उपाधिवाले लोक, व्यवहारमें रूपके भेदके हेतु एकरस भगवान्‌को लोक और वेदकी भाषाओंसे आकाश-आदि भिन्न २ नामोंसे वर्णन करते हैं ॥ ३० ॥ जैसे मेघ सूर्यसे उत्पन्न भयाहुआ और सूर्यकाही प्रकाशित कियाहुआ होनेपरभी सूर्यके अंशरूप चक्षुके सूर्यका दर्शन होनेमें प्रतिबंध करता है, ऐसे अहंकार ब्रह्मसे उत्पन्न भयाहुआ और ब्रह्मकाही प्रकाशित कियाहुआ होनेपरभी ब्रह्मके अंशरूप जीवके ब्रह्मका ज्ञान होनेमें प्रतिबंध करता है ॥ ३१ ॥ जब सूर्यसे उत्पन्न भयाहुआ बादल विखर जाता है तब चक्षु आपने स्वरूपभूत सूर्यको देखती है ऐसे ब्रह्मसे उत्पन्न भयाहुआ और अपना उपाधिरूप अहंकार जब विचार करनेसे नाशको प्राप्त हो जाय तब जीव अपने स्वरूपभूत ब्रह्मको जानता है ॥ ३२ ॥ महाराज !

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः ॥ एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्याऽऽत्मन आत्मबंधनः ॥ ३१ ॥ घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ॥ यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३२ ॥ यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्मबंधनम् ॥ छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यंतिकमंग संप्लवम् ॥ ३३ ॥ नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप ॥ उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥ ३४ ॥ कालस्रोतो जवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा ॥ परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥ ३५ ॥ अनाद्यंतवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ अवस्था नैव दृश्यंते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३६ ॥

इसप्रकार इस विवेकरूप शस्त्रसे मायामय अहंकाररूप अपने बंधनको काटकर, जब जीव परिपूर्ण आत्माका अनुभव करे तब आत्यंतिकप्रलय (मोक्ष) हुआ कहलाता है ॥ ३३ ॥ नित्यप्रलय कहते हैं. हे राजा ! कितनेएक सूक्ष्म जाननेवाले विद्वान् कहते हैं कि-ब्रह्मादिक सर्व पदार्थोंकी उत्पत्ति और प्रलय क्षणक्षणमें हुआ करते हैं ॥ ३४ ॥ नदीका प्रवाह और दीपककी ज्वाला-आदि परिणामी पदार्थोंकी जैसी क्षणक्षणमें हेरफेर होने-आदि अवस्थायें हैं ऐसीही अवस्थायें कालरूप प्रवाहके वेगसे तुर्त २ खैंचे जाते देहादिककीभी देखनेमें आतीं हैं. जिन अवस्थाओंपरसे क्षण-क्षणमें उन पदार्थोंका जन्म और नाश होता हुआ माननेमें आता है ॥ ३५ ॥ आदि-अंतसे रहित और ईश्वरकी मूर्तिरूप कालसे होतीहुई आकाशमें चलतेहुए चंद्रादिक तैजस प-

होता है. ऐसे एकको छोड़कर, दूसरेका निरूपण नहीं हो सकता तासों ब्रह्ममें कारणपन-आदि धर्मभी केवल अध्यारोप पक्षमें ठहराये हुए हैं किंतु वास्तविक नहीं. जो जो परस्परकी अपेक्षावाला होवे वह आदिअंतवाला होता है. और उसीके हेतु वह वास्तविक नहीं कहा जा सक्ता. जो जो दृश्य होवे वह भ्रमरूपही होता है. कारण यह कि-दृश्य पदार्थ स्वप्नकी नाईं सामान्य और विशेषरूप होते हैं. और फिर परस्परके आश्रयसे सिद्ध होते हैं. ऐसे २ अनेक कारणोंसे प्रपंचका अद्वैतभाव सिद्ध होता है ॥ २७ ॥ यदपि विकाररूप प्रपंच प्रकाशता है तथापि आत्माके प्रकाशविना उसका अणुमात्रभी निरूपण नहीं हो सकता. और जो निरूपण करनेमें आवे तौ वह प्रपंच स्वयंप्रकाशरूप होकर, आत्मासे अपनी भिन्न सत्ताको बिलकुल नहीं रख सकता. यानी उस आत्मासे एकरूपी होगा परंतु भिन्न नहीं ॥ २८ ॥ सत्य पदार्थमें अनेकपन होवे नहीं. और जिसमें अनेकपन है वह सत्य नहीं. यद्यपि आत्मामेंभी जीव और ब्रह्मरूपसे भेद देखनेमें आता है तथापि यह जीव और ब्रह्मका भेद, घटाकाश और महा-

विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमंतरा ॥ न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत्
॥ २८ ॥ न हि सत्यस्य नानात्वमविद्वान्यदि मन्यते ॥ नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव
॥ २९ ॥ यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु ॥ एवं वचोभिर्भगवानधोक्ष-
जो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३० ॥

काशके भेदके जैसा है. और जलमें रहेहुए उसके प्रतिबिंबके भेदके जैसा है. तथा बाहिर रहेहुए और भीतर रहेहुए प्राणवायुके भेदके जैसा है. घटाकाश परिच्छिन्न और महाकाश अपरिछिन्न होनेपरभी जैसे दोनोंके बीचमें भेद नहीं है ऐसे जीव परिच्छिन्न और ब्रह्म अपरिच्छिन्न होनेपरभी दोनोंके बीचमें भेद नहीं है. जलमें रहाहुआ सूर्य कंपादिक विकारसहित और आकाशमें रहाहुआ सूर्य उस विकारसे रहित होनेपरभी जैसे दोनोंके बीचमें भेद नहीं है ऐसे जीव विकारसहित और ब्रह्म विकाररहित होनेपरभी दोनोंके बीचमें भेद नहीं है. बाहिरकी वायुकी और भीतरकी प्राणवायुकी क्रियायें भिन्न २ होनेपरभी जैसे उन दोनों वायुके बीचमें भेद नहीं है. ऐसे ब्रह्मकी सृष्टि-आदि और जीवकी सरजाजाने-आदि क्रियायें भिन्न २ होनेपरभी उन दोनोंके बीचमें भेद नहीं है. उपाधिसे भयाहुआ भेद स्वरूपकी एकताका कदापि बाध नहीं करता. तासों इस भेदसे जो स्वरूपमें भेद भयाहुआ माने उसे अविद्वान् जानना ॥ २९ ॥ जैसे लोक, व्यवहारके मार्गोंमें उन उन रचनाओंके भेदके हेतु सुवर्णको कटक और कुंडल-आदि रूपसे अ-

और रूप अपने कारणभूत तेजसे भिन्न नहीं हैं ऐसे बुद्धि, इंद्रियां और विषय अपने कारणभूत ब्रह्मसे जुदे नहीं ॥ २३ ॥ हे राजा ! जब बुद्धि परब्रह्मसे भिन्न नहीं है तब उसकी अवस्थारूप जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति किस प्रकार भिन्न हो सकी हैं; क्योंकि ये तीनों अवस्थायें बुद्धिकीही हैं ऐसे कहलाता है. तीन अवस्थाओंके अभिमानके हेतु विश्व, तैजस और प्राज्ञपन जो आत्मामें माननेमें आता है वह केवल मायामय है ॥ २४ ॥ जैसे आकाशमें किसी समय बादल होते हैं और कभी नहींभी होते, ऐसे परब्रह्ममें कभी यानी सृष्टिके समयमें यह जगत् दीख पड़ता है और कभी नहीं दीखता. घड़ा जैसे अवयव-वाला है तासों आदि-अंतवाला है ऐसे जगत्भी अवयववाला है तासों आदि-अंतवाला है. और जो आदि-अंतवाला होता है वह अपने कारणसे भिन्न सत्तावाला नहीं होता. यह निर्णय कियाहुआ है ॥ २५ ॥ सब अवयवी पदार्थोंका कारणभूत जो अव-

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते ॥ मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥ २४ ॥ यथा जलधारा व्योम्नि भवंति न भवंति च ॥ ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २५ ॥ सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह ॥ विनाऽर्थेन प्रतीयेरन्पटस्येवांग तंतवः ॥ २६ ॥ यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः ॥ अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यंतवदवस्तु यत् ॥ २७ ॥

यव है वही वास्तविक है, कारण यह कि- अवयवीविनाभी अवयवकी प्रतीति होती है. इसीतरह जगत्विनाभी ब्रह्मकी प्रतीति होती है तासों जगत्का कारणरूप ब्रह्मही वास्तविक स्वरूप है. हे राजा ! तंतुविना वस्त्रकी प्रतीति नहीं होती. तासों वस्त्र तंतु-ओंसे भिन्न नहीं है किंतु वस्त्र तंतुरूपही है ऐसे परब्रह्म विना जगत्की प्रतीति नहीं होती तासों जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं है किंतु ब्रह्मरूपही है ॥ २६ ॥ जो कार्य-कारण रूपसे, गुण-गुणिरूपसे, विशेषण-विशेष्य-रूपसे और व्याप्य-व्यापक-आदि रूपसे जाननेमें आता है वह सब भ्रमरूप है. क्योंकि उस सबमें अन्योन्याश्रय दोष आता है. कारणको लेकर, कार्यपन और कार्यको लेकर, कारणपन सिद्ध होता है, गुणीको लेकर, गुणपन और गुणको लेकर, गुणीपन सिद्ध होता है. विशेष्यको लेकर, विशेषणपन और विशेषणको लेकर, विशेष्यपन सिद्ध होता है, ऐसेही व्यापकको लेकर, व्याप्यपन और व्याप्यको लेकर, व्यापकपन सिद्ध

इस मायामें वाणी, मन, सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, महत्तत्त्वादि, प्राण, बुद्धि, इंद्रियां, देवता या जगत्‌रूप रचना इसमेंका कुछभी विभक्त नहीं रहता ॥ १९ ॥ इसमें स्वप्न, जाग्रत वा सुषुप्ति नहीं होती. आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी वा सूर्य नहीं रहता. यह मायारूप तत्त्व इंद्रियां न होनेसे सुषुप्ति जैसी और तर्कमें न आनेसे शून्य जैसी प्रतीत होती है परंतु वह शून्य नहीं है; कारण यह कि-सर्व जगत्‌की मूलरूप तत्त्व यही कहलाती है ॥ २० ॥ यह माया अंतमें रहनेरूप प्राकृतिकलय कहा गया कि-जिस प्रलयमें प्रकृति तथा पुरुषकी सत्व-आदि शक्तियां कालसे पराभव पाकर, परवश होकर, लीन हो जाती हैं. वह माया भगवान्‌की शक्ति है तासों सर्वके कारणरूप एक परमेश्वरही हैं ॥ २१ ॥ अब आत्यंतिक प्रलय कहता हूं. मोक्ष यही आत्यंतिक

न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी ॥ न प्राणबुद्धींद्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥ १९ ॥ न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ॥ संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनंति ॥ २० ॥ लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा ॥ शक्तयः संप्रलीयंते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २१ ॥ बुद्धींद्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् ॥ दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यंतवदवस्तु यत् ॥ २२ ॥ दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् ॥ एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥ २३ ॥

प्रलय है. कारण यह कि-यह मोक्ष ब्रह्मज्ञानसे सर्व प्रपंचका लयरूप है. इस स्थलमें प्रलय यानी मृत्तिकाके ज्ञानसे जैसे घट-शराव-आदिका बाध होता है ऐसे ब्रह्मज्ञानसे दूसरे सर्वका बाध समझना. जो आत्माकी नाईं प्रपंच यथार्थ होवे तौ उसका बाध होना संभवे नहीं, तासों प्रपंच, परब्रह्मसे बिलकुल जुदा नहीं है, यह विषय कहता हूं सो सुनो. बुद्धि, इंद्रियां और विषय कि-जो अनुक्रमसे ग्रहण ग्राहक, करनेका साधन और ग्राह्यरूप हैं उनका अधिष्ठानरूप एक ब्रह्मही उनके आकारसे प्रकाशता है. ये ब्रह्मसे जुदी सत्ताको नहीं रखता. मृत्तिकामें प्रतीत होतेहुए घट-शराव-आदि पदार्थ जैसे दृश्य होनेके हेतु और आदि-अंतवाले होनेके हेतु मृत्तिकासे भिन्न नहीं हैं. अतएव वास्तविक नहीं हैं, ऐसे परब्रह्ममें प्रतीत होताहुआ यह बुद्धि-आदि प्रपंचभी दृश्यपनके हेतु और आदि अंतवाला होनेके हेतु अपने कारणभूत परब्रह्मसे भिन्न नहीं है अतएव वास्तविकभी नहीं है ॥ २२ ॥ जैसे दीपक, चक्षु

महाराज ! विचित्र वर्णवाले अनेक मेघके कुल सौ १०० वर्षपर्यंत वर्षा करेंगे. और भयंकर रीतिसे गर्जना करेंगे. ऐसे होनेसे ब्रह्मांडके भीतरका सब जगत् एक जलमय हो जायगा ॥ १२ ॥ उस समय जल ऊपर फिर जानेसे पृथ्वीके गंधरूप गुणको जल गिल जायगा. और गंधका नाश होनेसे पृथ्वीका अभाव हो जायगा ॥ १३ ॥ जलके रसको तेज निगल जायगा तब रसरहित जलका अभाव हो जायगा. तेजके रूपको वायु निगल जायगी तब रूप—रहित तेज वायुमें लीन हो जायगा ॥ १४ ॥ महाराज ! वायुके स्पर्शको आकाश निगल जायगा तब वायु आकाशमें लीन हो जायगी. आकाशके शब्दगुणको तामसाहंकार

ततो मेघकुलान्यंग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥ शतं वर्षाणि वर्षंति नदंति रभसस्वनैः ॥ १२ ॥ तत एकोदकं विश्वं ब्रह्मांडविवरांतरम् ॥ तदा भूमेर्गंधगुणं ग्रसंत्याप उदप्लवे ॥ १३ ॥ ग्रस्तगंधा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ अपां रसमथो तेजस्ता लीयंतेऽथ नीरसाः ॥ १४ ॥ ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥ लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ॥ स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥ १५ ॥ शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ॥ तैजसश्चेंद्रियाण्यंग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १६ ॥ महान् ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ॥ ग्रसतेऽव्याकृतं राजन्गुणान्कालेन चोदितम् ॥ १७ ॥ न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ॥ अनाद्यनंतमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥ १८ ॥

गिल जायगा; तब आकाश तामसाहंकारमें लीन हो जायगा. इंद्रियोंको उनकी वृत्तियोंके साथ राजसाहंकार निगल जायगा तब इंद्रियां राजसाहंकारमें लीन हो जायगीं- इंद्रियोंके देवताओंको सात्विकाहंकार गिल जायगा तब देवता सात्विकाहंकारमें लीन हो जायंगे ॥ १५ ॥ १६ ॥ महाराज ! इस तीन प्रकारके अहंकारको महत्तत्त्व गिल जायगा तब अहंकार, महत्तत्त्वमें लीन हो जायगा. महत्तत्त्वको सत्व—आदि गुण निगल जायंगे. और सत्व—आदि गुणोंको कालकी प्रेरीहुई माया निगल जायगी ॥ १७ ॥ इस मायाका लय नहीं होता. कालके अवयवोंसे उसमें कुछ विकारभी नहीं होता. इस मायाका न तो आदि है और न अंत है. न स्पष्ट देखनेमें आती है. सदा सर्वदा एकरूप रहती है. कभी घटती नहीं; क्योंकि वह सर्वकी कारणरूप है ॥ १८ ॥

है; कारण यह कि– इस प्रलयमें नारायण त्रिलोकीको अपने उदरमें लेकर, शेष नागपर पौढ़ते हैं. और ब्रह्माजी उन नारायणमें सोया करते हैं. इसप्रकार ब्रह्माकी निद्रारूप निमित्तसे यह प्रलय होता है ॥ ४ ॥ अब प्राकृतिक प्रलयके विषयमें कहता हूं. ब्रह्माजीकी आयुके दोनों परार्द्ध पूरे हो जायं तब महत्तत्त्व, अहंकार और पांच तन्मात्रारूप सातों प्रकृतियां लीन हो जाती हैं ॥ ५ ॥ तासों इस प्रलयका नाम 'प्राकृतिक प्रलय' कहलाता है. जिस प्रलयमें नाशका कारण प्राप्त होनेसे, हे राजा! पूर्वोक्त सात प्रकृतियां और उनका कार्यरूप सारा ब्रह्मांडभी लीन हो जायगा ॥ ६ ॥ महाराज! यह प्रलय होगा तब पृथ्वीमें सौ १००

द्विपरार्धे त्वतिक्रांते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ तदा प्रकृतयः सप्त कल्पंते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥ एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते ॥ आंडकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥ ६ ॥ पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्नवर्षति ॥ तदा निरन्ने ह्यन्योऽन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः ॥ क्षयं यास्यंति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७ ॥ सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः ॥ रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुंचति ॥ ८ ॥ ततः सांवर्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ॥ दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान्भूविवरानथ ॥ ९ ॥ उपर्यधः समंताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥ दह्यमानं विभात्यंडं दग्धगोमयपिंडवत् ॥ १० ॥ ततः प्रचंडपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसाऽऽवृतम् ॥ ११ ॥

बरसतक वर्षा नहीं होवेगी. अतएव तब अन्नका अभाव होनेसे भूंखसे पीडित और कालसे उपद्रवयुक्त भयीहुई तथा एक दूसरेका भक्षण करतीहुई प्रजा धीरे २ सब क्षयको प्राप्त हो जायगी ॥ ७ ॥ प्रलयकालका सूर्य अपनी प्रचंड किरणोंसे समुद्रके, पृथ्वीके और देहके सारे रसको खैंच लेगा. और पीछा नहीं छोड़ेगा ॥ ८ ॥ फिर शेष भगवान्के मुखसे प्रगट भयाहुआ प्रलयकालका अग्नि पवनके वेगसे लहक कर उजड़ भयेहुए पृथ्वीके प्रदेश और पाताल विवरोंको भस्म कर देगा ॥ ९ ॥ ऊपर नीचे और चौतर्फ अग्नि व सूर्यकी ज्वालाओंसे भस्म भयाहुआ ब्रह्मांड दग्ध भयेहुए कंडेके जैसे प्रतीत होगा ॥ १० ॥ फिर प्रलयकालकी महाप्रचंड पवन सौ १०० वर्षसे कुछ अधिक कालपर्यंत चलेगी. उस समय आकाश रजसे घिरकर, धूम्रवर्ण हो जायगा ॥ ११ ॥

वान्का ध्यान करना चाहिये; क्योंकि परमेश्वरका ध्यान करनेसे प्रभु स्वरूपको, प्राप्त कर देते हैं ॥ ५० ॥ हे राजा ! दोषोंके भंडाररूप इस कलियुगमें एक बड़ा भारी गुण है कि- इस युगमें केवल भगवान्को कीर्तनमात्र करनेसेही मनुष्य मुक्तसंग होकर, परमपदको प्राप्त हो जाता है ॥ ५१ ॥ सत्ययुगमें भगवान्का ध्यान करनेसे, त्रेतायुगमें यज्ञोंद्वारा यजन करनेसे, द्वापरयुगमें भगवान्की पूजा करनेसे जो फल मिलता है वह फल कलियुगमें केवल भगवान्का कीर्तन करनेसे मिल जाता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ चौथे अध्यायमें नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यंतिक और नित्य ऐसे चार प्रकारका प्रलय कहकर, फिर भगवान्का कीर्तन करनेसे संसारसे नि-

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ॥ कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ॥ द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप ॥ कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥ स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥ तदंते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रि रुदाहृता ॥ त्रयो लोका इमे तत्र कल्पते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥ एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ॥ शेतेऽनंतासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चाऽऽत्मभूः ॥ ४ ॥

स्तार होता है यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- महाराज ! कलियुगका दोष किससे निवृत्त होवे? और कलियुगमें कौन धर्म पालना ? इन दो प्रश्नोंका उत्तर तो मैंने कहा. अब प्रलयका निरूपण करता हूं. परमाणुसे ले, दो परार्धपर्यंत कालके विषयमें और युगोंके प्रमाणके विषयमें मैं आपको पहले कह चुका हूं. अब कल्प (स्थिति) और प्रलय (संहार) के विषयमें कहता हूं सो सुनो ॥ १ ॥ चार सहस्र युगका ब्रह्माजीका एक दिन कहलाता है. जिसमें चौदह मनु बदलते हैं. महाराज ! इसी ब्रह्माजीके दिनको कल्प कहते हैं ॥ २ ॥ इस दिनके अंतमें चार हजार युग संख्यावाली ब्रह्माजीकी रात्रि होती है उसे प्रलय कहते हैं. इस प्रलयमें इन तीनों लोकोंका लय होता है ॥ ३ ॥ इस प्रलयका नाम 'नैमित्तिक प्रलय' कहलाता

प्रायः पाखंडसे विक्षिप्त चित्त हो जानेके कारण लोक कलियुगमें पूजा नहीं करेंगे ॥ ४३ ॥ यह मनुष्य जिन भगवान्‌का नाम मरता, पड़ता, अखाड़ता, पराधीन और आतुर होनेपरभी यदि लेवे तो तुर्त कर्मरूप आर्गला यानी प्रतिबंधोंसे छूटकर, उत्तम-गतिको प्राप्त होता है उन भगवान्‌की लोक कलियुगमें पूजा नहीं करेंगे ॥ ४४ ॥ अब कलियुगके दोष मिटनेके उपाय कहता हूं सो सुनो. चितमें विराजेहुए पुरुषोत्तम भगवान् कलियुगके कियेहुए और द्रव्य, देश तथा चित्तसे उत्पन्न भयेहुए मनुष्योंके सर्व दोषोंको हर लेते हैं ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य भगवान्‌का श्रवण, कीर्तन, ध्यान, पूजन और आदर करे उसके हृदयमें प्राप्त हो-

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ॥ विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यंति न तं कलौ जनाः ॥४४॥ पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसंभवान् ॥ सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥ श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चाऽऽदृतोऽपि वा ॥ नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥ यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हंति धातुजम् ॥ एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥ ४७ ॥ विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ॥ नात्यंतशुद्धिं लभतेऽतरामा यथा हृदिस्थे भगवत्यनंते ॥ ४८ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम् ॥ म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥ म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ॥ आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥

कर, हरि भगवान् मनुष्योंके दशसहस्र जन्मोंके पापकाभी नाश कर देते हैं ॥ ४६ ॥ जैसे सुवर्णमें रहाहुआ अग्नि अन्य धातुओंके संबंधसे भयेहुए मलिनपनको नाश कर देता है ऐसे हृदयमें प्राप्त भयेहुए हरि योगीजनोंके हृदयकी बुरी वासनाओंको नाश कर देते हैं ॥ ४७ ॥ जैसा यह अंतःकरण हरि भगवान्‌के हृदयमें प्राप्त होनेसे अत्यंत शुद्धिको प्राप्त होता है ऐसा विद्या, तप, प्रणायाम, मैत्री, तीर्थस्नान, व्रत, दान व जप करनेसे कदापि नहीं ॥ ४८ ॥ हे राजा ! आपकी मृत्यु निकट आ गयी है इसलिये सर्वभावसे सावधान होकर, केशव भगवान्‌का हृदयमें ध्यान धरो; क्योंकि-भगवान्‌का ध्यान करनेसे आपको उत्तम गति मिलेगी ॥ ४९ ॥ महाराज ! जिसकी मृत्यु निकट आ जाय उस मनुष्यको सर्वके आत्मा और सर्वके आश्रय परमेश्वर प्रभु भग-

कर चले जायंगे ऐसेही नौकरमें आपदा आ पड़ेगी तौ पुराना परंपराका होनेपरभी स्वामी उसको छोड़ देंगे. जो गौ दूध नहीं देगी उसे उसके स्वामी छोड़ देंगे ॥ ३६ ॥ कलियुगमें पिता, भाई, संबंधी और ज्ञातिवालोंको छोड़कर, केवल सुरतसंबंधी स्नेहको रखनेवाले और स्त्रियोंके परतंत्र भयेहुए दीनलोग साले सालियोंके साथ एक मत रहेंगे ॥ ३७ ॥ तपस्वियोंकासा वेष बनाकर, जीविका करनेवाले शूद्र दान लेवेंगे. और धर्मको नहीं जाननेवाले लोग ऊंचे उत्तम आसनपर बैठ कर, धर्मका उपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥ महाराज ! जब पृथ्वीपर अन्न नहीं रहेगा तब अनावृष्टिके भयसे दुःखी और नित्य दुर्भिक्ष (अकाल) व कर

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ॥ ननाद्रश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ ३७ ॥
शूद्राः प्रतिग्रहीष्यंति तपोवेषोपजीविनः ॥ धर्मं वक्ष्यंत्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥
नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिताः ॥ निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥ वासोन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ॥ हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यंति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥ कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ॥ त्यक्ष्यंति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यंति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ न रक्षिष्यंति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ॥ पुत्रान्सर्वार्थकुशलान्क्षुद्राः शिश्नोदरंभराः ॥ ४२ ॥ कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं त्रिलोकनाथानतपादपंकजम् ॥ प्रायेण मर्त्या भगवंतमच्युतं यक्ष्यंति पाषंडविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥

(टॅक्स) से पीड़ित प्रजा सदा उद्विग्नमन रहेगी ॥ ३९ ॥ और वस्त्र, अन्न, जल, शय्या, मैथुन, स्नान व आभूषणोंसे हीन यह प्रजा कलियुगमें पिशाचोंके जैसी हो जायगी ॥ ४० ॥ कलियुगमें बीस कौड़ी यानी छदाम जितने धनके वास्तेभी कलह करके स्नेह त्याग देनेवाले लोक अपने प्यारे प्राणोंकोभी छोड़ देंगे और अपने बंधुओंकोभी मारेंगे ॥ ४१ ॥ मनुष्य अपने वृद्ध मातापिताकी रक्षा नहीं करेंगे. शिश्न तथा उदरकोही तृप्त करनेवाले माता-पिता सर्व प्रकारके विषयोंमें निपुण अपने पुत्रोंकी रक्षा नहीं करेंगे ॥ ४२ ॥ हे राजा ! त्रिलोकीके अधिपतिभी जिनके चरणारविंदको प्रणाम करते हैं ऐसे जगत्के गुरु अच्युत भगवान्की

जब लोभ, असंतोष, मान, दंभ, मत्सर और काम्यकर्ममें प्रवृत्ति होवे तब रजोगुण, तमोगुणवाला द्वापर युग जानना ॥ २९ ॥ जब लोकोंमें कपट, झूंठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय और दीनता होवे तब तमोगुणी कलियुग जानना ॥ ३० ॥ कलियुगके लोग मंदमति, मंदभाग्य, अतिआहार करनेवाले, कामी और निर्धन होवेंगे तथा स्त्रियां व्यभिचारिणियां और दुष्ट होवेंगी ॥ ३१ ॥ देशोंमें चोर बहुत होवेंगे. वेद पाखंडसे दूषित हो जायंगे. राजा प्रजाको खानेवाले होवेंगे. और ब्राह्मण उपस्थ तथा उदरके काममें तत्पर होवेंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारी, शौच और आचारसे भ्रष्ट

यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दंभोऽथ मत्सरः ॥ कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥ २९ ॥
यदा मायाऽनृतं तंद्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ॥ शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥
यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ॥ कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥
दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखंडदूषिताः ॥ राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥ अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुंबिनः ॥ तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥ ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ॥ शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥ पणयिष्यंति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः ॥ अनापद्यपि मंस्यंते वार्तां साधुजुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥ पतिं त्यक्ष्यंति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ॥ भृत्यं विपन्नं पतयः लौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥

होवेंगे. कुटुंबी यानी गृहस्थी आप भीख मांगेंगे, तब दूसरोंको भिक्षा देनेकी तो बातही कहां रही ? तपस्वीलोक वन छोड़कर, गाँवमें रहेंगे, संन्यासी धन-आदिके लोभी होवेंगे ॥ ३३ ॥ स्त्रियां नाटी (ठिंगनी), बहुत खानेवाली, बहुत छोकरा छोकरी पैदा करनेवाली, निर्लज, निरंतर कडुए वचन बोलनेवाली, बड़ी चोट्टी, बड़ी हठीली और बड़ी माया यानी छलबल जाननेवाली होवेंगीं ॥ ३४ ॥ कपट करनेवाले नीच कराड़ (बनिये) व्योपार करेंगे. सबलोग आपत्कालविनाभी सत्पुरुषोंकी धिक्कार कीहुई वृत्तिको उत्तम मानेंगे ॥ ३५ ॥ स्वामी सर्वोत्तम होनेपरभी यदि वह निर्धन हो जायगा तो उसको छोड़कर, चा-

चरणोंसे धर्मके चरणोंमेंसे चौथा चौथा भाग क्षीण होता जाता है ॥ २० ॥ त्रेतायुगमें प्रायः लोक क्रिया व तपकी निष्ठावाले,
न तौ अतिहिंसक और न अतिलंपट, धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थमें लगेहुए और वेदत्रयीके हेतु वृद्ध माने जाते और
ब्राह्मण, वर्ण जिनमें मुख्य हैं ऐसे होवेंगे ॥ २१ ॥ द्वापरयुगमें असंतोष, हिंसा, मिथ्याभाषण और द्वेष इन अधर्मके चार चर-
णोंके निमित्त तप, दया, सत्य और दान इन धर्मके चार चरणोंमेंसे आधा आधा भाग क्षीण हो जाता है ॥ २२ ॥ तासों द्वा-
परयुगमें लोक प्रायः यशस्वी, बड़े गृहस्थ, वेद पढ़नेमें प्रीतिवाले, धनाढ्य, कुटुंबवाले, आनंदयुक्त और ब्राह्मण व क्षत्रिय

तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लंपटाः ॥ त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥ तपःसत्य-
दयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ॥ हिंसा तुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥ यशस्विनो महाशीलाः
स्वाध्यायाध्ययने रताः ॥ आढ्याः कुटुंबिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ॥ २३ ॥ कलौ तु धर्महेतूनां
तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ॥ एधमानैः क्षीयमाणो ह्यंते सोऽपि विनंक्ष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिन्लुब्धा दुराचारा
निर्दयाः शुष्कवैरिणः ॥ दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदाशोत्तराः प्रजाः ॥ २५ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति दृ-
श्यंते पुरुषे गुणाः ॥ कालसंचोदितास्ते वै परिवर्तंत आत्मनि ॥ २६ ॥ प्रभवंति यदा सत्त्वे मनोबु-
द्धींद्रियाणि च ॥ तदा कृतयुतं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥ २७ ॥ यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भव-
ति देहिनाम् ॥ ॥ तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८ ॥

जिनमें प्रधान माने जाते हैं ऐसे होवेंगे ॥ २३ ॥ कलियुगमें तौ अधर्मके चरणोंकी वृद्धिके हेतु धर्मके चरणोंका चौथा भाग अ-
वशेष रहता है सो अंतमें वहभी क्षीण होता २ बिलकुल नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥ कलियुगमें लोग लोभी, दुराचारी, निर्दयी
वृथा वैर करनेवाले, दुर्भाग्य, अतितृष्णावाले और शूद्र व दास जिनमें उत्तम माने जाते हैं ऐसे होवेंगे ॥ २५ ॥ सत्व, रज और
तम ये तीन गुण पुरुषमें दीख पड़ते हैं. और वे कालकी गतिसे चित्तमें सदा फिरते रहते हैं ॥ २६ ॥ जब मन, बुद्धि और इं-
द्रियां सत्वगुणमें अतीव प्रवृत्त रहें तब सत्ययुग जानना कि-जिससे ज्ञान व तपमें रुचि हुआ करती है ॥ २७ ॥ जब देहधारि-
योंकी भक्ति यानी रुचि, काम्य कर्मोंमें होवे तब हे बुद्धिमान् राजा ! रजोगुणकी वृत्तिवाला त्रेतायुग जानना ॥ २८ ॥

रथ पूर्ण नहीं हुए ऐसे इन लोगोंको कालने केवल लोगोंके कहनेमात्रमें अवशेष रख दिया है ॥ १३ ॥ महाराज ! लोकोंमें यशको विस्तार कर, मरेहुए महात्मा राजाओंकी ये कथायें मैंने आपसे कहीं सो केवल विषयोंकी असारता और वैराग्यका निरूपण करनेके वास्ते कहीं हैं तासों हे राजा ! ये कथायें केवल वाणीका विलासरूप हैं परमार्थरूप नहीं ॥ १४ ॥ जो अमंगलका मिटानेवाला भगवान्के गुणोंका अनुवाद वारंवार कहनेमें आता है वह उतनाही भाग इन कथाओंमें पुरुषार्थरूप है. अतएव जो मनुष्य कृष्ण भगवान्में निर्मलभक्ति करनी चाहे वह निरंतर उन्हीं श्रीकृष्ण भगवान्के गुणानुवादका श्रवण करै ॥ १५ ॥

कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ॥ विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचो विभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः ॥ तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः ॥ विधमिष्यंत्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥ युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ॥ कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ॥ सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥ संतुष्टाः करुणा मैत्राः शांता दांतास्तितिक्षवः ॥ आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ॥ १९ ॥ त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ॥ अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥ २० ॥

परीक्षितने कहा कि–हे भगवन् ! मुनि महाराज ! ये लोग कलियुगमें कलियुगके बढ़ेहुए दोषोंको किस उपायसे दूर कर सकें ? सो वह उपाय मुझे ठीक ठीक बताओ ॥ १६ ॥ तथा युग, युगके धर्म, प्रलय व कल्पका प्रमाण और ईश्वररूप विष्णुमूर्ति महात्मा कालकी गति कहो ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! सत्ययुगमें उस युगके लोगोंका धारण कियाहुआ धर्म चार चरणवाला प्रवृत्त होता है. सत्य, दया, तप और अभयदान ये चार धर्मके चरण हैं ॥ १८ ॥ उस युगमें लोगभी प्रायः संतोषी, दयालु, सबसे मित्रभाव रखनेवाले, शांत, जितेंद्रिय, दुःखादिकका सहन करनेवाले, आत्माराम, समदृष्टि और आत्माभ्यासमें परिश्रम करनेवाले होते हैं ॥ १९ ॥ त्रेतायुगमें धीरे २ मिथ्याभाषण, हिंसा, असंतोष और कलह इन चार अधर्मके

तो मुझको जीत कर फिर भारी तृष्णासे समुद्र पारके देशोंमेंभी प्रवेश करते हैं. परंतु इंद्रियोंको जीतनेका फल यह नहीं हैं, क्योंकि यह अतितुच्छ है. वस्तुतः इंद्रियजयका फल साक्षात् मोक्षही है ' ॥ ४ ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे कुरुनंदन ! पृथ्वी कहती है कि–जिस मुझको छोड़कर, मनु और उनके पुत्रभी जैसे आये वैसेही चले गये हैं उस मुझको ये मूर्ख राजा युद्धमें जीत लेंगे ? ॥ ६ ॥ देखो मेरे वास्ते पिता पुत्र और भाइयोंकेभी परस्पर कलह हुआ करता है कि–जिन दुष्टलोकोंका चित्त राज्यमें ममतासे बंधा हुआ होता है ॥ ७ ॥ हे मूढ़ ! यह सब पृथ्वी मेरीही है, तेरी नहीं है, इसप्रकार कहतेहुए और परस्प-

समुद्रावरणां जित्वा मां विशंत्यब्धिमोजसा ॥ कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ॥ गता यथा गतं युद्धे तां मां जेष्यंत्यबुद्धयः ॥ ६ ॥ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ॥ जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥ ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः ॥ स्पर्धमाना मिथो घ्नंति म्रियंते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥ पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ॥ मांधाता सगरो रामः खट्वांगो धुंधुहा रघुः ॥ ९ ॥ तृणबिंदुर्ययातिश्च शर्यातिः शंतनुर्गयः ॥ भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ॥ नमुचिः शंबरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥ अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ॥ सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मय्यवर्तंत कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ॥ कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥

रका पराभव करना चाहतेहुए राजा मेरे वास्ते मारते हैं और मरते हैं ॥ ८ ॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, भरत, अर्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, धुंधुहा, रघु, ॥ ९ ॥ तृणबिंदु, ययाति, शर्याति, शंतनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नल, नृग, ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, लोकोंको रुदन करानेवाला रावण, नमुचि, शंबर, भौमासुर, हिरण्याक्ष, तारकासुर ॥ ११ ॥ औरभी बहुतसे दैत्य और राजा कि–जो सब बड़े ऐश्वर्यवाले, सर्व वस्तुको जाननेवाले, शूरवीर–सबको जीतनेवाले और जिनका कहींभी पराभव नहीं हुआ ऐसे थे सो ॥ १२ ॥ येभी मेरेमें दृढ़ ममता बांधकर, अंतमें मर गये हैं. जिनके मनो-

और मेरे पौत्रके पास तथा मेरे वंशजोंके पास अविचल रीतिसे किसप्रकार रहेगी ?' ॥ ४२ ॥ इसप्रकार पृथ्वीको ममतासे और अग्नि, तेज तथा जलमय कायाको अहंतासे पकड़नेवाले मूर्ख राजा अंतमें पृथ्वीको और कायाको छोड़कर मरगये हैं ॥ ४३ ॥ हे परीक्षित् राजा ! जो जो राजा अपने सामर्थ्यसे पृथ्वीको भोगते रहे उन सब राजाओंको कालने कथाओंमें कहने मात्र कर दिया है. अर्थात् उनका नाम व कीर्तिके सिवाय, दूसरा कुछभी बाकी नहीं रहा है ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ तीसरे अध्यायमें पृथ्वीके वचनोंसे राज्यके दोषादिकका वर्णन करके अतिबहुल दोषवाले कलियुगके दोषको मिटनेवाला केवल

तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वाऽऽत्मतयाऽबुधाः ॥ महीं ममतया चोभौ हित्वांऽतेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥ ये ये भूपतयो राजन्भुंजंति भुवमोजसा ॥ कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ॥ अहो मां विजिगीषंति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥ १ ॥ काम एष नरेंद्राणां मोघः स्याद्विदुषामपि ॥ येन फेनोपमे पिंडे येऽतिविश्रंभिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमंत्रिणः ॥ ततः सचिवपौराप्तकरींद्रानस्य कंटकान् ॥ ३ ॥ एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ॥ इत्याशाबद्धहृदया न पश्यंत्यंतिकेऽतकम् ॥ ४ ॥

एक भगवान्का नमस्कारही है यह कहा जायगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-यह पृथ्वी, अपनेको जीतनेका उद्योग करतेहुए राजाओंको देखकर, हँसती है कि-'अहो ! ये मृत्युके खिलौनेरूप राजा मुझको जीत लेना चाहते हैं ॥ १ ॥ विद्वान् राजाओंकाभी यह मनोरथ व्यर्थही होगा कि-जो मनोरथ राजाओंके फेनजैसे नाशवान् शरीरमें अत्यंत विश्वास उत्पन्न करता है ॥ २ ॥ राजालोग विचार करते हैं कि-'हम प्रथम छह इंद्रियोंको जीतकर, राज्यके मंत्रियोंको वश करेंगे, फिर कंटकोंको उखेड़कर, सचिव, नगरके लोग, शिष्ट और गजराजोंको स्वाधीनमें रक्खेंगे ॥ ३ ॥ इसप्रकार क्रमसे समुद्ररूप मेखलावाली पृथ्वीको जीत लेंगे.' इसप्रकारकी आशासे बद्धहृदय राजालोग अपने समीपमें शिरपर बसतेहुए कालको नहीं देखते, कितनेएक राजा

करती है ऐसे जानना ॥ ३५ ॥ अभी जो केवल नाममात्रसे जाने जाते हैं और जो केवल कथा यानी वार्तामात्रमें अवशेष रहे हैं ऐसे इन महात्मा पुरुषोंकी केवल कीर्तिही पृथ्वीपर रह गयी है. अर्थात् राज्य वा पुत्रादिक कुछभी नहीं रहे केवल कीर्तिमात्र अवशेष रही है. इसलिये मनुष्यको चाहिये कि– राज्य व पुत्र आदिमेंसे ममता छोड़ कर केवल सदाचार पाल कर कीर्तिको संपादन करे ॥ ३६ ॥ चंद्रवंशी शंतनु राजाका भाई देवापि और ईक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न भयाहुआ सूर्यवंशी राजा मरु ये दोनों राजा महायोगबलके प्रभावसे कलाप ग्राममें विराजते हैं ॥ ३७ ॥ सो ये दोनों राजा कलियुगके अंतमें

एतेषां नामलिंगानां पुरुषाणां महात्मनाम् ॥ कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥ देवापिः शंतनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ॥ कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरंते वासुदेवानुशिक्षितौ ॥ वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥ राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे ॥ भूमौ ममत्वं कृत्वाऽन्ते हित्वेमां निधनं गताः ॥ ४० ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञांऽते राजनाम्नोपि यस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥ कथं सेयमखंडा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ॥ मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥ ४२ ॥

भगवानकी आज्ञासे पीछे यहां आकर, पहलेके जैसे वर्ण और आश्रमके धर्मको लोकोंमें प्रगट करेंगे ॥ ३८ ॥ सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये चार युग हैं सो ये युग इसी क्रमसे पृथ्वीपर देहधारियोंके बीच बर्ता करते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजा ! मेरे कहेहुए ये राजा तथा दूसरेभी राजा पृथ्वीमें ममता बांधकर, अंतमें इस पृथ्वीको छोड़कर, मरणको प्राप्त हुए हैं ॥ ४० ॥ राजा कहे जानेपरभी जिस देहकी अंतमें कीड़ा, विष्ठा वा भस्मरूप स्थिति होती है उस देहके निमित्त दूसरे प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले पुरुषका कौन स्वार्थ सिद्ध हो सकता है ? कोईभी नहीं; क्योंकि द्रोह करनेसे नरककी प्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥ ' इस अखंड पृथ्वीका मेरे पूर्वजोंने किसप्रकार पालन किया ? और वह पृथ्वी अब मेरे पास, मेरे पुत्रके पास

न मनुष्योंके सौ १०० वर्षपर्यंत ये सप्तर्षि रहा करते हैं. यानी जैसे चंद्रमा एक नक्षत्रपर एक दिन रहता है ऐसे सप्तर्षि सौ १०० वर्षके लगभग एक नक्षत्रपर रहते हैं; सो ये सप्तर्षि आपके जन्मसमयमें मघा नक्षत्रपर थे और अभीभी उसी नक्षत्रपर है ॥ २८ ॥ कलियुगके प्रवेशके समयका निर्णय यह है कि-श्रीकृष्ण भगवान्‌का शुद्ध सत्वमय देह जब वैकुंठधाम गया उसी क्षणमें कलियुगका प्रवेश हो चुका है कि-जिस युगमें लोगोंके मनकी पापमें रुचि होती है ॥ २९ ॥ परंतु लक्ष्मीके पति श्रीकृष्ण भगवान् जबलों अपने चरणकमलोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते विराजे रहे तबलों कलियुग सूक्ष्मरीतिसे पृथ्वीपर आ चुका था परंतु पृथ्वीका पराभव नहीं कर सका ॥ ३० ॥ जबसे सप्तर्षि मघा नक्षत्रको भोगने लगे हैं तभीसे देवताओंके बारह सौ १२०० वर्षके कलियुगका

विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः ॥ तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥ यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ॥ तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रांतुं न चाशकत् ॥ ३० ॥ यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरंति हि ॥ तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥ ३१ ॥ यदा मघाभ्यो यास्यंति पूर्वाषाढां महर्षयः ॥ तदा नंदात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥ ३२ ॥ यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि ॥ प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥ दिव्याब्दानां सहस्रांते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ॥ भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥ इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ॥ तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगे युगे ॥ ३५ ॥

आरंभ हो चुका है ॥ ३१ ॥ अब ये सप्तर्षि मघा नक्षत्रसे पूर्वाषाढा नक्षत्रपर जायगे तब नंदराजाका राज होगा. और उस नंदके राज्यसे कलियुग अत्यंत वृद्धिको प्राप्त होवेगा ॥ ३२ ॥ जिस दिन और जिस घड़ीमें श्रीकृष्णभगवान् स्वधाम पधारे उसी दिन और उसी घड़ीमें कलियुगका प्रवेश जाननेमें आया ऐसे भूतकालके जाननेवाले विद्वान् कहते हैं ॥ ३३ ॥ देवतानका एक हजार और दो सौ वर्ष १२०० का कलियुगका प्रमाण है वह बीतनेके अनंतर पीछी सत्ययुगकी प्रवृत्ति होवेगी और सत्ययुगकी प्रवृत्तिका लक्षण यही देखनेमें आवेगा कि-लोगोंका मन आत्माके जाननेमें समर्थ होवेगा ॥ ३४ ॥ जैसे पृथ्वीमें मनुके वंशके राजाओंकी स्थितियोंकी हेरफेर कही गयी ऐसे प्रतियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकीभी स्थितियोंकी हेरफेर हुआ

थ्वीपर विचरतेहुए अतुल तेजवाले कल्किरूपसे राजाओंकेसे वेष धारण करनेवाले करोड़ों दस्यु यानी चोरोंका संहार करेंगे ॥ १९ ॥ २० ॥ सब चोरलोग मर जांयगे तब नगरके और देशके लोगोंके भगवान्‌के श्रीअंगमें चर्चेहुए चंदन-आदिकी पवित्र सुगंधिवाली पवनका स्पर्श होनेसे मन निर्मल हो जांयगे ॥ २१ ॥ और सत्वगुणमूर्ति वासुदेव भगवान् हृदयमें रहनेसे उनके संतानोंकी सृष्टि पीछे बढ़ने लगेगी और उनके शरीरभी बड़े २ होने लग जायेंगे ॥ २२ ॥ धर्मके पति हरि कल्कि भगवान् जब अवतार लेंगे तब सत्ययुग प्रवृत्त होगा और प्रजाके संतानभी सत्वगुणसंबंधी होगी ॥ २३ ॥ अब अवतार कब होगा ? वह

विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ॥ नृपलिंगच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥ २० ॥ अथ तेषां भविष्यंति मनांसि विशदानि वै ॥ वासुदेवांगरागातिपुण्यगंधानिलस्पृशाम् ॥ पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥ २१ ॥ तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥ २२ ॥ यदाऽवतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ॥ कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्विकी ॥ २३ ॥ यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ॥ एकराशौ समेष्यंति तदा भवति तत्कृतम् ॥ २४ ॥ येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यंति च पार्थिवाः ॥ ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः ॥ २५ ॥ आरभ्य भवतो जन्म यावन्नंदाभिषेचनम् ॥ एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम् ॥ २६ ॥ सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ॥ तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥ २७ ॥ तेनैत ऋषयो युक्तास्तिष्ठंत्यब्दशतं नृणाम् ॥ ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८ ॥

समय कहते हैं. जब चंद्रमा, सूर्य और बृहस्पति ये तीनों ग्रह एकसाथ पुष्यनक्षत्रपर कर्कसंक्रांतिके आवेंगे तब सत्ययुग प्रवृत्त होगा ॥ २४ ॥ चंद्रवंशी और सूर्यवंशी जो राजा हो चुके हैं जो अभी विद्यमान हैं और जो अब होंगे उनके नाम संक्षेपसे मैंने आपसे कह सुनाये ॥ २५ ॥ आपके जन्मसे लेकर, नंदराजाका अभिषेक होगा. इतने अवसरमें पन्द्रहसौ और दश १५१० वर्ष व्यतीत होवेंगे ॥ २६ ॥ आकाशमें सप्तर्षियोंका उदय होता है तब उनमें प्रथम उगेहुए दो ताराओंके मध्यमें दक्षिणदिशामें सम प्रदेशमें रहाहुआ जो हरएक अश्विनी-आदि नक्षत्र रात्रिमें देखनेमें आता है ॥ २७ ॥ उस प्रत्येक नक्षत्रसे युक्त होकर, अंदाज-

२० वा हद्द ३० वर्षकी गिनी जायगी ॥ ११ ॥ कलियुगके दोषके प्रभावसे देहधारियोंके देह क्षीण यानी छोटे हो जायंगे. और वर्णाश्रमवाले मनुष्योंका वेदविहित धर्म नष्ट हो जायगा ॥ १२ ॥ धर्मकी ठौर केवल पाखंड रह जायगा. राजा चोरप्राय हो जायंगे. लोक चोरी, असत्यभाषण और वृथा हिंसा आदि अनेक बुरे कामोंमें लग जायंगे ॥ १३ ॥ वर्ण शूद्रप्राय रह जायंगे, गायें बकरीयांसी छोटी २ रह जायंगी. आश्रम घरकेसे रह जायंगे बंधुओंमें सगोंका संबंधही मुख्य माना जायगा ॥ १४ ॥ औषधियां बहुत सूक्ष्म रह जायंगी, वृक्षोंमें केवल

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ॥ वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥ पाखंडप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ॥ चौर्यानृतवृथाहिंसा नानावृत्तिषु वै नृषु ॥ १३ ॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु ॥ गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बंधुषु ॥ १४ ॥ अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ॥ विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥ १५ ॥ इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि ॥ धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥ १६ ॥ चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ॥ धर्मत्राणाय साधूनां जन्मकर्मापनुत्तये ॥ १७ ॥ शंभलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥ अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ॥ असिनाऽसाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥

शमी (छिउकुरि) का वृक्ष शेष रह जायगा. वर्षामें प्रायः बिजलियां झबाझब किया करेंगी, घर बहुत करके धर्म– आदिसे शून्य हो जायंगे ॥ १५ ॥ इसप्रकार लोग सब अधर्मी हो जायंगे और महाविकराल धर्मवाला कलिकाल जब पूरा होनेको आवेगा तब सत्वगुणसे धर्मकी रक्षाके अर्थ कल्कि भगवान् अवतार धारण करेंगे ॥ १६ ॥ चराचरके गुरु सर्वके अंतर्यामी और प्रभु विष्णु भगवान्का अवतार सत्पुरुषोंके धर्मकी रक्षा और उनके मोक्षके निमित्त है ॥ १७ ॥ सो यह कल्किअवतार, शंभल नाम गांवमें प्रधान महात्मा विष्णुयशा नाम ब्राह्मणके घरमें होगा ॥ १८ ॥ अणिमा–आदि अष्ट सिद्धियोंवाले, जगत्के पति हरि बहुत शीघ्र वेगवाले दुष्टोंका दमन करनेके योग्य देवदत्त नाम घोड़ेपर सवार होकर, अतिशीघ्र चलनेवाले उस घोड़ेसे पृ-

होनेमें उनका आचार नहीं; किंतु दंड और मृगचर्म-आदि चिन्हही कारणरूप होवेंगे. न्यायाधीशोंको रुश्पत न दी जायगी. तो उसका न्यायमें पराजय होगा. जो अधिक बोलेगा वही पंडित कहा जायगा ॥ ४ ॥ जो निर्धन होगा वह असाधु यानी चोर-आदि कहा जायगा. जो ढोंगी होगा वह साधु कहा जायगा. पाणिग्रहणमें क्रिया नहीं किंतु केवल स्वीकारही कारणरूप गिना जायगा. स्नानही अलंकार गिना जायगा ॥ ५ ॥ जो जलाशय दूर होगा वह तीर्थ गिना जायगा, परंतु गुरु व माता-पिताको तीर्थ नहीं मानेंगे. अच्छे केश रखना यही शोभा गिनी जायगी. पेट भरना यही पुरुषार्थ गिना जायगा. जिसमें लुच्चाई ज्यादा होगी वह मनुष्य सच्चा माना जायगा ॥ ६ ॥ कुटुंबका भरण पोषण करना यही चातुरी गिनी जायगी. धर्मका

अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दंभ एव तु ॥ स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् ॥ उदरंभरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥ ६ ॥ दाक्ष्यं कुटुंबभरणं यशोर्थे धर्मसेवनम् ॥ एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमंडले ॥ ७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृप ॥ प्रजा हि लुब्धे राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यंति गिरिकाननम् ॥ शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥ अनावृष्ट्या विनंक्ष्यंति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतप्स्यंते च चिंतया ॥ त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥

सेवन केवल यशके वास्ते किया जायगा. इसप्रकार दुष्ट प्रजाओंसे सब भूमंडल व्याप्त हो जायगा ॥ ७ ॥ तब, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनमें जो बलवान् होगा वही राजा बन बैठेगा. लोभी, निर्दयी और चोरकीसी वृत्तिवाले राजा ॥ ८ ॥ जब प्रजाकी स्त्रियां और धन छीन लेंगे तब वह प्रजा गांव और शहर छोड़कर, पर्वत और वनमें चली जायगी. और वहां शाक, मूल, मांस, शहद, फल, फूल और बीज खा कर, निर्वाह करेगी ॥ ९ ॥ दुर्भिक्ष (अकाल) और राजाओंके कर (टेक्स) से पीड़ित भयीहुई प्रजा अनावृष्टि, सर्दी, गर्मी, हवा, वर्षा और हिमसे परस्पर महादुःखी होकर, नष्ट हो जायगी ॥ १० ॥ भूख, प्यास, रोग, संताप और चिंतासे प्रजा अत्यंतही दुःखी हो जायगी. और मनुष्योंकी पूरी आयुभी कलियुगमें

बहुत करके उदय और अस्त पातेहुए अर्थात् इधर जन्मे नहीं और इधर मरे नहीं ऐसे कम धीरजवाले, अल्पायु, ॥ ३९ ॥ गर्भाधान–आदि संस्कारोंसे रहित, संध्या आदि अपनी क्रियासे हीन, रजोगुण व तमोगुणसे घिरेहुए होवेंगे. ये राजाओंके रूप धारण करनेवाले म्लेच्छ प्रजाओंको खा जायंगे यानी धन–आदि लेनेसे उनको महादुखी कर देंगे ॥ ४० ॥ इन राजाओंके देशमें रहनेवाले और उन्हींके जैसेही शील, आचार और वाद रखनेवाले लोग परस्परके क्लेशोंसे और राजाओंके कियेहुए उपद्रवोंसे पीड़ित होकर, नाशको प्राप्त हो जायंगे ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ दूसरे अध्यायमें कलियुगका दोष जब अत्यंत बढ़ जायगा तब भगवान् कल्कि अ-

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा वृताः ॥ प्रजास्ते भक्षयिष्यंति म्लेच्छराजन्यरूपिणः ॥ ४० ॥ तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ॥ अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यंति पीडिताः ॥ ४१ ॥ ॥ इति श्रीभा०महा० द्वाद० प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥ कालेन बलिना राजन्नंक्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥ १ ॥ वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ॥ धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥ दांपत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ॥ स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥ ३ ॥ लिंगमेवाश्रमख्यातावन्योऽन्यापत्तिकारणम् ॥ अवृत्त्यान्यायदौर्बल्यं पांडित्ये चापलं वचः ॥ ४ ॥

वतार धारण करके, अधर्मी लोगोंको मारकर, पीछा सत्ययुग प्रवृत्त करेंगे. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजा! फिर बलवान् कालके प्रभावसे दिन दिन धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मृतिका नाश होता जायगा ॥ १ ॥ निदान कलियुगमें जिसके पास धन होगा वही मनुष्य कुलवान्, आचारवान् और गुणवान् कहा जायगा. जिसका बल अधिक होगा वही धर्मात्मा और न्यायशील कहा जायगा ॥ २ ॥ स्त्री और पुरुषके संबंधमें कुल गोत्र–आदि नहीं; किंतु केवल परस्परकी प्रीतिही कारणरूप होगी लेनदेनमें केवल कपट करनेमें आवेगा. स्त्री वा पुरुषकी उत्तमता कुल व आचारसे नहीं; किंतु रतिकरनेमें कुशलता परसेही माननेमें आवेगी. ब्राह्मणपनमें केवल यज्ञोपवीतही रह जायगा ॥ ३ ॥ आश्रमोंके पहँचाननेमें और एक आश्रमसे दूसरे आश्रमको प्राप्त

फिर उन्हीं बाल्हिक वंशियोंमेंसे सात अंध्रदेशके राजा, सात कोसलदेशके राजा, वैदूरदेशके राजा और निषधदेशके राजा होवेंगे. ये उन उन देशोंके नामोंसे प्रख्यात भयेहुए राजा एकही समयमें जुदे २ खंडपति होकर, राज्य करेंगे ॥ ३३ ॥ मागधवंशियोंमें तो विश्वस्फूर्जि नाम राजा होगा वह 'पुरंजय' इस नामसे प्रख्यात होवेगा. पहले पुरंजयसे अतिप्रख्यात भयाहुआ यह दूसरा दुर्बुद्धि पुरंजय ब्राह्मण–आदि वर्णोंको भ्रष्ट करके पुलिंद, यदु और मद्रक नामक म्लेच्छप्राय कर देगा ॥ ३४ ॥ और बहुतकरके जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नहीं रहें ऐसी प्रजाओंको स्थापन करेगा. यह पराक्रमी पुरंजय, क्षत्रियोंका नाश करके, पद्मवती

एककाला इमे भूपाः सप्तांध्राः सप्तकौशलाः ॥ विदूरपतयो भाव्या निषधास्तत एव हि ॥ ३३ ॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरंजयः ॥ करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिंदयदुमद्रकान् ॥ ३४ ॥ प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ॥ वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥ अनुगंगामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३५ ॥ सौराष्ट्रावंत्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः ॥ व्रात्या द्विजा भविष्यंति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥ ३६ ॥ सिंधोस्तटं चंद्रभागां कौंतीं काश्मीरमंडलम् ॥ भोक्ष्यंति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३७ ॥ तुल्यकाला इमे राजन्म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ॥ एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥ ३८ ॥ स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः ॥ उदितास्तिमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥ ३९ ॥

नाम पुरीमें रहकर, राज करेगा. तापीछे हरिद्वारसे प्रयागपर्यंत पृथ्वीका 'गुप्त' संज्ञक राजा राज करेंगे ॥ ३५ ॥ फिर सौराष्ट्र (सोरठ), आवंत्य (उज्जैनप्रांतका देश), आभीर, शूर, अर्बुद (आबू) और मालवादेशके रहनेवाले द्विज यानी तीनों वर्ण व्रात्य यानी यज्ञोपवीत–आदि संस्कारहीन हो जायंगे. और राजा शूद्रप्राय हो जायंगे ॥ ३६ ॥ सिंधुनदीका तट, चंद्रभागा नदी कौंती पुरी और काश्मीर देशको शूद्र, म्लेच्छ और संस्काररहित भ्रष्ट भयेहुए व्रात्य व तेजहीन ब्राह्मण आदि भोगेंगे ॥ ३७ ॥ हे राजा ! एकही समयमें भयेहुए और बहुत करके म्लेच्छप्राय भयेहुए ये राजा अधर्मी, झूंठे, महातीव्र क्रोधवाले, अल्प देनेवाले (कंजूस) ॥ ३८ ॥ स्त्री, बालक, गौ और द्विज यानी त्रैवर्णिक लोगोंको मारनेवाले, परस्त्री व परधनमें लालसा रखनेवाले,

मतीके पुरीमान् ॥ २४ ॥ पुरीमान्‌के मेदशिरा, मेदशिराके शिवस्कंद, शिवस्कंदके यज्ञश्री, यज्ञश्रीके विजय, विजयके चंद्रविज्ञ और चंद्रविज्ञके सलोमधि नाम पुत्र होगा ॥ २५ ॥ हे कुरुनंदन ! ये तीस राजा चारसौ छप्पन ४५६ वर्षपर्यंत पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ २६ ॥ फिर अवभृतिनाम नगरीमें सात आभीरजातिके राजा होवेंगे. दश गर्दभि नाम राजा होंगे. फिर महालोभी षोलह कंकजाति राजा होवेंगे ॥ २७ ॥ फिर आठ यवन राजा होवेंगे, चौदह तुष्कस (तुरक) वा पुष्कस राजा होवेंगे. फिर दश गुरुंड और ग्यारह मौन राजा होवेंगे ॥ २८ ॥ ये आभीर-आदि गुरुंडपर्यंत पैंसठ राजा एक हजार निन्यानवें १०९९ वर्षपर्यंत पृथ्वी-

मेदशिराः शिवस्कंदो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ॥ विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चंद्रविज्ञः सलोमधिः ॥ २५ ॥ एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ॥ षट्पंचाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यंति कुरुनंदन ॥ २६ ॥ सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः ॥ कंकाः षोडश भूपाला भविष्यंत्यतिलोलुपाः ॥ २६ ॥ ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ॥ भूयो दश गुरुंडाश्च मौना एकादशैव तु ॥ २७ ॥ एते भोक्ष्यंति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ॥ नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥ २९ ॥ भोक्ष्यंत्यब्दशतान्यंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ॥ ४ ॥ किलिकिलायां नृपतयो भूतनंदोऽथ वंगिरिः ॥ ३० ॥ शिशुनंदिश्च तद्भ्राता यशोनंदिः प्रवीरकः ॥ इत्येते वै वर्षशतं भविष्यंत्यधिकानि षट् ॥ ३१ ॥ तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ॥ पुष्पमित्रोथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ॥ ३२ ॥

का पालन करेंगे ॥ २९ ॥ महाराज ! ग्यारह मौन राजा तीनसौ ३०० वर्षपर्यंत पृथ्वीका पालन करेंगे. फिर वे मर जायंगे तब ' किलिकिला ' नाम नगरीमें ये वक्ष्यमाण राजा होवेंगे. प्रथम इस नगरीमें भूतनंदनाम राजा होगा. उसके अनंतर वंगिरि ॥ ३० ॥ वंगिरिके अनंतर उसका भाई शिशुनंदि, शिशुनंदिके अनंतर यशोनंदि, यशोनंदिके अनंतर प्रवीरक राजा होगा. ये राजा एकसौ छह १०६ वर्षपर्यंत पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ ३१ ॥ फिर भूतनंद- आदिके बाल्हिक नाम तेरह पुत्र होंगे सो वे राज करेंगे. फिर एक दूसरा पुष्पमित्र नाम राजा होगा. उसके दुर्मित्र नाम पुत्र होवेगा ॥ ३२ ॥

वज्रमित्रके भागवत और भागवतके देवभूति नाम पुत्र होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ ये शुंग नामसे पहँचाने जाते दश राजा एकसौ बारह ११२ वर्षपर्यंत पृथ्वीका पालन करेंगे, फिर हे राजा ! यह पृथ्वी अल्पगुणवाले 'कण्व' राजाओंके हाथमें चली जायगी ॥ १७ ॥ परस्त्रीलंपट देवभूति- नाम शुंगवंशी राजाको मार कर, उसका अमात्य कण्ववंशी महामति वसुदेव आप राज करेगा ॥ १८ ॥ इस वसुदेवके भूमित्र, भूमित्रके नारायण और नारायणके सुशर्मा नाम पुत्र होगा. ये कण्ववंशी चार राजा कलियुगमें

ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ॥ ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरिति श्रुतः ॥ १६ ॥ शुंगा दशैते भोक्ष्यंति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ ततः कण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप ॥ १७ ॥ शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥ स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥ १८ ॥ तस्य पुत्रस्य भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ॥ काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पंच च ॥ शतानि त्रीणि भोक्ष्यंति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ १९ ॥ हत्वा काण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ॥ गां भोक्ष्यत्यंध्रजातीयः कंचित्कालमसत्तमः ॥ २० ॥ कृष्णनामाऽथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ॥ श्रीशांतकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ लंबोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिबिलको नृपः ॥ मेघस्वातिश्चिबिलकादटमानस्तु तस्य च ॥ २२ ॥ अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनंदनः ॥ २३ ॥ चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिंदमः ॥ तस्यापि गोमतीपुत्रः पुरीमान्भविता ततः ॥ २४ ॥

तीनसौ पैंतालीस ३४५ वर्षपर्यंत पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ १९ ॥ सुशर्माका महानीच अंध्रजाति कोई बलीनाम शूद्र नौकर कण्ववंशी सुशर्माको मार कर, कुछ समयतक आप पृथ्वीका पालन करेगा ॥ २० ॥ फिर उस बलीराजाका भाई कृष्ण नाम राजा होगा. कृष्णके श्रीशांतकर्ण, श्री शांतकर्णके पौर्णमास,॥ २१॥ पौर्णमासके लंबोदर, लंबोदरके विकल, विकलके मेघस्वाति, मेघस्वातिके अटमान, ॥ २२ ॥ अटमानके अनिष्टकर्म करनेवाला हालेय, हालेयके तलक, तलकके पुरीषभीरु, पुरीषभीरुके सुनंदन, ॥ २३ ॥ सुनंदनके चकोर और चकोरके नवमा शिवस्वाति नाम पुत्र होगा. हे शत्रुदमन ! उस शिवस्वातिके गोमती, गो-

नंद नाम महाबली कोईएक राजा होगा ॥ ७ ॥ वह महापद्म धनका पति और क्षत्रियोंका विनाश करनेवाला होगा, इस राजासे लेकर, फिर सब राजा शूद्रप्राय और महाअधर्मी होवेंगे ॥ ८ ॥ यह महापद्म नाम नंदराजा मानों दूसरे परशुरामजी हों ऐसे क्षत्रियोंका विनाश करके, आज्ञाभंग न हो ऐसे पृथ्वीपर एकछत्र राज करेगा ॥ ९ ॥ उस नंदके सुमाल्य—आदि आठ पुत्र होवेंगे. वे राजा सौ १०० वर्षपर्यंत पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ १० ॥ इन नवों प्रख्यात राजाओंको कोईएक चाणक्य नाम ब्राह्मण समूल उखाड़ देगा. तब इनके अभावमें " मौर्य " नामसे पहँचानेजाते राजा कलियुगमें पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ ११ ॥ वही

महापद्मपतिः कश्चिन्नंदः क्षत्रविनाशकृत् ॥ ततो नृपा भविष्यंति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ८ ॥ स एकच्छत्रा पृथिवीमनुल्लंघितशासनः ॥ शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ ९ ॥ तस्य चाष्टौ भविष्यंति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ॥ य इमां भोक्ष्यंति महीं राजानः स्म शतंसमाः ॥ १० ॥ नव नंदान् द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ॥ तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यंति वै कलौ ॥ ११ ॥ स एव चंद्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ तत्सुतो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १२ ॥ सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुतः ॥ शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १३ ॥ शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः ॥ मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥ समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कलौ कुरुकुलोद्वह ॥ १४ ॥ अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिंदो भविता ततः ॥ १५ ॥

चाणक्य नाम ब्राह्मण चंद्रगुप्तको राजगद्दीपर बिठावेगा. चंद्रगुप्तके वारिसार नाम पुत्र होगा, वारिसारके अशोकवर्धन ॥ १२ ॥ अशोकवर्द्धनके सुयश, सुयशके संगत, संगतके शालिशूक, शालिशूकके सोमशर्मा, ॥ १३ ॥ सोमशर्माके शतधन्वा और शतधन्वाके बृहद्रथ पुत्र होगा. हे कुरुकुलदीपक ! ये मौर्यवंशी दशराजा एकसौ सैंतीस १३७ वर्षपर्यंत कलियुगमें पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ १४ ॥ फिर मौर्यवंशके अन्तिम राजा बृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामीको मार कर, आप राज करेगा. पुष्पमित्रके अग्निमित्र, अग्निमित्रके सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठके वसुमित्र, वसुमित्रके भद्रक, भद्रकके पुलिंद, पुलिंदके घोष, घोषके वज्रमित्र

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ पहले अध्यायमें कलियुगके प्रभावसे संस्कार-आदिसे मलीन ऐसे भविष्यत् जरासंधके वंशज राजाओंका वर्णन होगा ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि-यदुकुलके अलंकाररूप श्रीकृष्णचंद्र निजधाम पधार गये. तब पृथ्वीपर किसका वंश रहा यह मुझे कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-जो अंतिम बृहद्रथके वंशवाला पुरंजय नाम राजा होगा जिसका वर्णन नवमस्कंधमें हो चुका है उसका अमात्य शुनक अपने स्वामी पुरंजयको मारकर, अपने पुत्र प्रद्योतको राजगद्दी-

श्रीकृष्णाय नमः ॥ रा[illegible]वाच ॥ स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ॥ कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ १ [illegible]शुक उवाच ॥ योऽन्त्यः पुरंजयो नाम भविष्यो बार्हद्रथो नृपः ॥ तस्यामात्यस्तु शुनको हत्[illegible]नमात्मजम् ॥ प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ॥ २ ॥ विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता [illegible]कस्ततः ॥ नंदिवर्धनस्तत्पुत्रः पंच प्रद्योतना इमे ॥ अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यंति पृथिवीं नृपाः ॥ ३ ॥ शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ॥ क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ४ ॥ विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ॥ दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ५ ॥ नंदिवर्धन आजेयो महानंदिसुतस्ततः ॥ शिशुनागा दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ६ ॥ समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः ॥ महानंदिसुतो राजन् शूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ७ ॥

पर बिठावेगा. उसके पालक नाम पुत्र होगा ॥ २ ॥ उसके विशाखयूप नाम पुत्र होगा, विशाखयूपके राजक, राजकके नंदिवर्द्धन, ये 'प्रद्योतन' नामसे प्रसिद्ध पांच राजा एकसौ अडतीस १३८ वर्षपर्यंत पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ ३ ॥ फिर शिशुनाग नाम राजा होगा. शिशुनागके काकवर्ण, काकवर्णके क्षेमधर्मा, क्षेमधर्माके क्षेत्रज्ञ, ॥ ४ ॥ क्षेत्रज्ञके विधिसार, विधिसारके अजातशत्रु, अजातशत्रुके दर्भक, दर्भकके अजय ॥ ५ ॥ अजयके नंदिवर्द्धन, नंदिवर्धनके महानंदि, हे राजा! ये शिशुनागवंशी दश राजा तीनसौ साठ ३६० वर्षपर्यंत कलियुगमें पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ ६ ॥ महाराज! फिर पूर्वोक्त महानंदिके वीर्यसे शूद्रीके गर्भ[illegible]

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषया सहितः
एकादशस्कंधः समाप्तः ॥

या ॥ २५ ॥ महाराज ! तुम्हारे दादे अर्जुनके मुखसे सुहृदोंके वधका समाचार सुनकर, तुझको वंशधर यानी राजा बनाकर, सब पांडवोंनेभी महापथको प्रस्थान किया ॥ २६ ॥ जो मनुष्य देवनके देव विष्णु भगवान्‌के इस चरित्रका तथा जन्म व कर्मोंका श्रद्धापूर्वक कीर्तन करे. वह सब पापोंसे मुक्त हो जाय ॥ २७ ॥ इसप्रकार इस ग्रंथमें और दूसरे ग्रंथोंमेंभी वर्णन

श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ॥ त्वां तु वशंधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥ य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ॥ कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ॥ अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥

कियेहुए विष्णुभगवान्‌के महामंगलरूप मनोहर अवतारसंबंधी पराक्रम और बालचरित्रोंका जो मनुष्य कीर्तन करे वह पुरुष परमहंसोंके गतिरूप भगवान्‌के स्वरूपमें उत्तम भक्तिको प्राप्त होवे ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ ॥

और भगवान्के विरहसे आतुर होकर, उन्होंने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया. हे राजा ! स्त्रिया अपने २ पतियोंकी लहाशोंका आलिंगन कर, चिताओंपर चढ़कर, जल गयीं ॥ १९ ॥ बलदेवजीकी रानियोंने अपने पतिकी लहाशका आलिंगन कर, अग्निमें प्रवेश किया. वसुदेवजीकी स्त्रियां वसुदेवजीकी लहाशका और भगवान्के पुत्रोंकी स्त्रियां अपने २ पति प्रद्युम्न-आदिकी लहाशोंका आलिंगन कर, अग्निमें प्रविष्ट हुई. रुक्मिणी-आदि भगवान्की स्त्रियां कि-जिनके मन केवल भगवान्मेंही लग रहे थे उन्होंनेभी अग्निमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ अर्जुनने अपने परमप्यारे सखा श्रीकृष्णके वियोगसे व्याकुल होनेपरभी सच्ची

प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ॥ उपगुह्यपतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥ रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ॥ वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ॥ कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥ अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ॥ आत्मानं सांत्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बंधूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम् ॥ हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ॥ वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥ नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ स्मृत्याऽशेषाशुभहरं सर्वमंगलमंगलम् ॥ २४ ॥ स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनंजयः ॥ इंद्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥

उक्तियोंवाले श्रीकृष्ण भगवान्के वाक्योंका स्मरण करके, उनसे आपने आत्माको सांत्वना दी ॥ २१ ॥ और जिनके कुल समूल नष्ट हो गये हैं ऐसे मरेहुए अपने बांधवोंकी पिंडोदकादि उत्तरक्रिया अर्जुनने शास्त्रोक्त विधिसे अनुक्रमसे करवायी ॥ २२ ॥ महाराज ! भगवान्ने जिस क्षण द्वारकापुरीका परित्याग किया-उसी क्षण श्रीमान् भगवान्के मंदिरको बचाकर, समुद्रने पुरीको बुड़ा दिया ॥ २३ ॥ मंदिर बचानेका कारण यह है कि- भगवान् मधुसूदन वहां सदा सन्निहित विराजते हैं. और वह मंदिर कैसा है कि-जिसका स्मरणमात्र करनेसे सकल अमंगलका नाश हो जाता है और सर्व मंगलकाभी मंगल हो जाता है ॥ २४ ॥ जो मरनेसे बच गये थे उनको और स्त्रियां, बालक व वृद्धोंको अर्जुन इंद्रप्रस्थ ले गये. और वहां वज्रनाभको राज्याभिषेक कि-

जो समर्थ थे तौ कितनेएक समयतक अपने इसी शरीरसे भूर्लोकमेंही क्यों न रहे ? ऐसी शंका नहीं करनी; कारण यह कि-यद्यपि पूर्वोक्त रीतिके अनुसार भगवान् सर्व शक्तियोंके धारण करनहारे और सकल जगत्की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय करनेमें स्वतंत्र कारणरूप हैं तथापि यादवपनका अनुकरण करनेके वास्ते आपने अपने शरीरको यहां रखनेकी इच्छा नहीं की. ऐसेही मनुष्यशरीर चिरकालतक अविचल रख कर, क्या करना है ? कुछभी प्रयोजन नहीं, ऐसे समझाकर, आत्मनिष्ठ पुरुषोंको दिव्य गति दिखलानेके वास्तेभी भगवान्ने अपने शरीरको यहां रखना न चाहा. जो मैं मेरे शरीरको यहां अविचल रक्खूंगा तौ आत्मनिष्ठ पुरुषभी दिव्यगतिका अनादर करके, देहको अविचल रखते यहीं रमण करनेको यत्न करेंगे तो वह अतीव अयोग्य होगा.

तथाप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ॥ नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥ य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ॥ प्रयतः कीर्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ॥ पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिंचत्कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥ कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ॥ तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्छिताः ॥ १६ ॥ तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ॥ व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नंत आननम् ॥ १७ ॥ देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ॥ कृष्णरामावपश्यंतः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥

ऐसे विचारसे भगवान्ने अपना शरीर यहां नहीं रक्खा ॥ १३ ॥ जो मनुष्य प्रातःकालमें उठकर, सावधान हो, भक्तिसे इसका कीर्तन करे. वह श्रीकृष्ण भगवान्की सर्वोत्तम परमपदवीको प्राप्त होवे ॥ १४ ॥ दारुक सारथी द्वारकापुरी जाकर, वसुदेवजी और उग्रसेनजीके चरणोंमें गिरा. और भगवान्के विरहसे व्याकुल हो कर, अश्रुधारासे उनके चरणोंको सींचने लगा ॥ १५ ॥ महाराज ! उसने उनसे यादवस्थलके सब समाचार कहे सो सुनकर, वे लोक उद्विग्नचित्त और शोकसे मूर्छित हुए ॥ १६ ॥ और श्रीकृष्णचंद्रके वियोगसे विव्हल होकर, कपाल कूटते जल्दी उस स्थानको चले कि-जहां अपनी जातिवाले मरे पड़े थे ॥ १७ ॥ देवकी, रोहिणी और वसुदेवजी अपने पुत्र राम-कृष्णको न देखकर, शोकसे पीड़ित हो, स्मृति भूल गये ॥ १८ ॥

स्थलमें देखाभी सही. तासों उन सबको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ८ ॥ जैसे बादलके मंडलको छोड़कर, जातीहुई बिजलीकी गति मनुष्योंके जाननेमें नहीं आती किंतु देवतानसेही जानी जाती है ऐसे भूमंडलको छोड़कर, स्वधाम पधारते हुए श्रीकृष्ण-चंद्रकी गति देवतानके जाननेमें नहीं आयी किंतु केवल भगवान्‌के पार्षदोंकेही जाननेमें आयी ॥ ९ ॥ भगवान्‌की इस योगगतिको देखकर, विस्मित भयेहुए और उस गतिकी प्रशंसा करतेहुए ब्रह्मा और रुद्र—आदि लोक अपने २ लोकोंको सिधारे ॥ १० ॥ महाराज ! जैसे नट आप निर्विकार रहकरही अनेक जन्मादिकका अनुकरण करता है ऐसे भगवान्‌भी यादव—आदिमें जो आविर्भाव, तिरोभाव करते हैं वह केवल मायासे अनुकरणमात्रही है ऐसे जानो. भगवान्‌के इस आविर्भाव व तिरोभावसे

सौदामन्या यथाऽऽकाशे यांत्या हित्वाऽभ्रमंडलम् ॥ गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥ ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ॥ विस्मितास्तां प्रशंसंतः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडंबनमवेहि यथा नटस्य ॥ सृष्ट्वाऽऽत्मनेदमनुविश्य विहृत्य चांते संहृत्य चाऽऽत्ममहिनोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ॥ जिग्येऽतकांतकमपीशमसावनीशः किं स्वावने स्वरनयन् मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥

किसी प्रकारका विकार प्राप्त नहीं होता. देहधारियोंमें जन्म लेनेकी शंका तो एकतर्फ रही परंतु भगवान् जगत्‌की सृष्टि और प्रलय—आदिमेंभी निर्विकारही रहते हैं. भगवान् आपही इस जगत्‌को रच कर, उसमें अंतर्यामीपनसे प्रवेश करके और अंतमें जगत्‌का संहार करके, अपनी महिमाके हेतु उपरतही रहते हैं ॥ ११ ॥ इस विषयमें अन्यथा नहीं मानना; क्योंकि इसी अवतारमें उनका सर्वोत्तम प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ है. यमराज गुरुपुत्रको अपने लोकमें ले गया था. परंतु गुरुने भगवान्‌से कहा कि-मेरा पुत्र गुरुदक्षिणामें मुझको मिले तब भगवान् इसी शरीरसे यमलोक पधारकर, गुरुपुत्रको ले आये और ब्रह्मास्त्रसे भस्म भयेहुए तुमकोभी जिलाया. बाणासुरके संग्राममें कालकेभी कालरूप महादेवको जीत लिया और व्याधको इसी शरीरसे स्वर्गको पठाया. वे शरणागतोंके रक्षक भगवान् अपने शरीरकी रक्षा करनेमें क्या असमर्थ थे ? नहीं ॥ १२ ॥

रायें, द्विज अर्थात् गरुड़के लोकमें रहनेवाले पक्षी वा मैत्रेय—आदि ब्राह्मण, ये सब भगवान्‌का निर्याण देखनेकी इच्छासे बड़ी उत्सुकताके साथ भगवान्‌के जन्म और कर्मोंका कीर्तन व गान करते द्वारकापुरी आये ॥ २ ॥ ३ ॥ महाराज ! ये सब लोग विमानोंकी पंक्तियोंसे आकाशमें भारी भीड़ करते परमभक्तिसे युक्त होकर, फूलोंकी बरसा करने लगे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्‌नेभी ब्रह्माजीको और दूसरे तमाम अपने विभूतिरूप देवतानको अपने २ लोकोंमें ले जानेके वास्ते आयेहुए देख, मनको बुद्धिमें लगाय, ध्यान कर, चतुराईसे उन देवतानको मानो वंचन करनेके वास्तेही समाधि लगाते हों ऐसे अपने कमलकेसे नेत्र मूंद लिये ॥ ५ ॥ फिर स्वच्छंद मृत्युवाले योगीजन जैसे अग्निकी धारणासे अपने देहको भस्म करके, परलोकमें

द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ॥ गायंतश्च गृणंतश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ॥ कुर्वंतः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥ भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ॥ संयोज्याऽऽत्मनि चाऽऽत्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥ लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम् ॥ योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥ ६ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ॥ सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७ ॥ देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशंतं स्वधामनि ॥ अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥

जाते हैं ऐसे नहीं किया. किंतु उसी शरीरसे अपने धामरूप वैकुंठलोकमें पधारे. कारण यह कि–इस शरीरको योगधारणासे भस्म कर देते तौ उसमेंका जगत्‌भी भस्म हो जाता. और उस शरीरका ध्यान व धारणा करनेवाले उपासक लोगोंको पीछा उस शरीरका साक्षात्कार और फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ६ ॥ जिस समय भगवान् वैकुंठधाम पधारे उससमय आकाशमें दुंदुभि बाजे बजे. आकाशसे फूलोंकी बर्षा हुई. और सत्य, धर्म, धीरज, कीर्ति व लक्ष्मी ये सब भूमिपरसे भगवान्‌के साथ गये ॥ ७ ॥ जिनमें ब्रह्माजी मुख्य हैं ऐसे देवादिक लोक ‘ श्रीकृष्णचंद्र अंतर्हित होकर, कहां पधारे ’ ऐसे तर्कणा करतेही रहे. परंतु श्रीकृष्णकी गति किसीके जाननेमें न आयी. और वहां आ जानेसे भगवान्‌को स्वधाममें पधारतेभी नहीं देखा और किसी २

इससे सारथी बड़ा विस्मय करने लगा तब भगवान्ने उससे कहा कि-॥ ४५ ॥ हे सूत ! तू द्वारकापुरी जा और हमारे बंधुनको यादवास्थल, बलदेवजूका निर्याण और मेरी जो दशा तू देखता है वह कह ॥ ४६ ॥ और उनको यहभी कह देना कि-तुम अब अपने बंधुनके साथ द्वारकामें नहीं रहना; क्योंकि मैंने इसको त्याग दिया है इसवास्ते इसको समुद्र डुबा देगा ॥ ४७ ॥ सो तुम सब अपने २ परिग्रहको व हमारे मातापिताको संग लेकर, अर्जुनसे रक्षित हो इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) को चले जाओ ॥ ४८ ॥ और तू तो ज्ञानमें निष्ठा रखकर, सबकी उपेक्षा करके मेरे

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ॥ संकर्षणस्य निर्याणं बंधुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिश्च स्वबंधुभिः ॥ मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ॥ अर्जुनेनाविता सर्व इंद्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ॥ मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभा० महापुराणे एकादशस्कंधे यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ॥ महेंद्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥ पितरः सिद्धगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥

धर्मको धारण कर. और इस सबको मेरी मायाकी रचना जानकर, उपशमको प्राप्त हो ॥ ४९ ॥ भगवान्ने इसप्रकार आज्ञा की तब वह सारथी भगवान्को परिक्रमा कर, वारंवार नमस्कार कर, भगवान्के चरणोंको शिरपर रखकर, उनमना होकर, पुरीको गया ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ इकतीसवें अध्यायमें भगवान् यहांसे स्वधाम पधारे और तदनंतर वसुदेवादिकभी प्रीतिके कारण उनके पीछेही गये यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-फिर वहां ब्रह्माजी, पार्वतीको संग लिये महादेवजी, इंद्रादि देवता, मुनि, प्रजापति, ॥ १ ॥ पित्रीश्वर, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, नाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्स-

श्रीभगवान्‌ने कहा कि-हे जरा ! तू डरे मत; उठ खड़ा हो. यह मेरी इच्छासेही तेरे हाथसे हुआ है. अब मैं तुझको आज्ञा देता हूं सो तू मेरी आज्ञासे सुकृती लोकोंके रहनेके आश्रय स्वर्गको जा ॥ ३९ ॥ इच्छासे शरीर धरनहारे हरिभगवान्‌ने इस प्रकार आज्ञा की तब वह भगवान्‌को तीन फेरी दे, प्रणाम कर, विमानमें बैठकर, स्वर्गको गया ॥ ४० ॥ दारुक सारथी भगवान्‌की पदवीको ढूंढ़ता २ तुलसीकी सुगंधिसे मिली वायुके आनेसे पता पाकर, उस सुगंधिके सन्मुख गया ॥ ४१ ॥ वहां प्रदीप्त कांति-वाले शस्त्र भगवान्‌के चारों ओर उपस्थित हो रहे थे और भगवान् पीपरके तले विराज रहे थे, उनका दर्शन होतेही दारुकका

श्रीभगवानुवाच ॥ माभैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ॥ याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ॥ त्रिःपरिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नाधिगम्य ताम् ॥ वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ॥ स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयोरथादवप्लुत्य स बाष्पलोचनः ॥ ४२ ॥ अपश्यतस्त्वच्चरणांबुजं प्रभो दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा ॥ दिशो न जाने न लभे च शांतिं यथा निशायामुडुपे प्रनष्टे ॥ ४३ ॥ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलांच्छनः ॥ खमुत्पपात राजेंद्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥ तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ॥ तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥

अंतःकरण स्नेहसे परिप्लुत हो गया. और नेत्रोंमें आंसू भर आये. दारुक तुरंत रथसे उतरकर, भगवान्‌के चरणोंमें गिरा ॥ ४२ ॥ और बोला कि-हे प्रभु ! आपके चरणारविंदके दर्शनविना मेरी दृष्टि जैसे रात्रिमें चंद्र अस्त होनेपरभी अंधकार व्याप जानेसे नष्टसी हो जाती है ऐसे नष्ट हो गयी. अर्थात् मुझको अब न तो किसी दिशाकी सुध है. और नहीं शांति मिलनेका प्रकार दीख पड़ता है ॥ ४३ ॥ वह सारथी इसप्रकार कह रहा था इतनेमें तो हे राजेंद्र ! सारथीके देखते २ वह गरुड़के चिन्हवाला रथ घोड़े व ध्वजाके साथ ज्योंका त्यों आकाशमें चला गया ॥ ४४ ॥ और उसके पीछे भगवान्‌के दिव्य अस्त्रभी चले गये.

वनमाला गलेके बीच पधरायी हुई थी. मूर्तिवान् आपके शस्त्र निकटमें उपस्थित थे. और आप अपनी दाहिनी साथलपर कमलसा अरुण चरण रख कर, विराज रहे थे ॥ ३२ ॥ उस समय 'जरा' नाम व्याध कि–जिसने मुसलसे अवशेष रहेहुए लोहेके टुकडेसे बाण बनाया था उसने मृगके मुखके सदृश आकारवाले भगवान्‌के चरणको अज्ञानसे मृग समझकर, बाणसे बेध दिया ॥३३॥ फिर निकट आकर, चतुर्भुज पुरुषको देखकर, भयभीत भयाहुआ वह अपराधी पारधी शीघ्र अपने शिरसे भगवान्‌के चरणोंमें गिरा और बोला कि–॥ ३४ ॥ हे मधुसूदन! हे उत्तमश्लोक! हे अनघ! मैंने अनजाने यह आपका अपराध किया है

वनमालापरीतांगं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पंकजारुणम् ॥३२॥ मुसलावशेषायःखंडकृतेषुर्लुब्धकोजरा ॥ मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ॥ ३३ ॥ चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ॥ भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥ अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ॥ क्षंतुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोकमेऽनघ ॥ ३५ ॥ यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वांतनाशनम् ॥ वदंति तस्य ते विष्णो मयासाधुकृतं प्रभो ॥ ३६ ॥ तन्माशु जहि वैकुंठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ॥ यथा पुनरहंत्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥ यस्याऽऽत्मयोगरचितं न विदुर्विरिंचो रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ॥ त्वन्मायया पिहितदृष्टय एतदंजःकिं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥ ३८ ॥

आपको मुझ पापीपर क्षमा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥ हे प्रभु! जिनका स्मरण मनुष्योंके अज्ञानरूप अंधकारका नाश करनेवाला कहलाता है उन आपका मैंने अपराध किया ॥ ३६ ॥ तासों हे प्रभु! मैं कि–जो मृगका लोभी पापी हूं तिसको तुरंत मारो. जिससे मैं फिर ऐसे सत्पुरुषोंका अपराध नहीं करूं ॥ ३७ ॥ आप यद्यपि इस कामको ब्राह्मणोंके श्रापसे भयाहुआ मानते होओगे तथापि जिनकी मायाकी रचनाको ब्रह्मा, रुद्रादिक उनके पुत्र और वाणीके अधिपति औरभी नहीं जानते उनके ब्राह्मणोंके शापका लगना हमजैसे मायासे अंध भयेहुए पापी पुरुषोंसे कैसे कहा जाय. तासों वह बात किसीप्रकारसे हो परंतु मुझे तो तुरंत मार डालो ॥ ३८ ॥

हुए दोनों भाईभी मुष्टियोंमें परिवरूप भयाहुआ एरा हाथोंमें लेकर, फिरते युद्धमें यादवोंको मारने लगे ॥ २३ ॥ ब्राह्मणोंके श्रापसे मोहित और भगवान्की मायासे घिरेहुए इन यादवोंके परस्परकी स्पर्द्धासे बढ़ेहुए क्रोधसे बाँसोंसे उत्पन्न भयाहुआ अग्नि जैसे बाँसोंके बनका क्षय करे वैसे सर्वका संहार होगया ॥ २४ ॥ इस प्रकार अपने सब यादवलोग नष्ट हो गये तब अवशेष रहेहुए श्रीकृष्ण भगवान्ने जाना कि–' हां अब पृथ्वीका भार उतरा ' ॥ २५ ॥ बलदाऊजीने समुद्रके तटपर पधार कर, परमात्माके ध्यानरूप योगको धारण करके, अपने स्वरूपको परब्रह्ममें लगाकर, मनुष्यदेहका परित्याग किया ॥ २६ ॥ बलरामजी-

ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ॥ स्पर्धा क्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४॥ एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ॥ अवतारितो भुवोभार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ॥ तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्याऽऽत्मानमात्मनि ॥ २६ ॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान्देवकीसुतः ॥ निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥ बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णुप्रभया स्वया ॥ दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ॥ कौशेयांबरयुग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥ २९ ॥ सुंदरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुंतलमंडितम् ॥ पुंडरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकांगदैः ॥ हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥

का निर्याण देखकर, देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण पीपरके वृक्षका सहारा ले, चुपचाप पृथ्वीपर बिराजे ॥ २७ ॥ उस समय आपने अपना देदीप्यमान चर्तुभुज स्वरूप धारण किया था. भगवान्की कांतिसे दिशायें अंधकाररहित हो रहीं थीं. और भगवान्का स्वरूप धूमरहित अग्निके समान दीप रहा था ॥ २८ ॥ श्रीवत्सका चिन्ह शोभ रहा था, मेघसा श्याम बरन, तपेहुए सुवर्णसी कांति और पीले पीतांबरयुगलकी छबि छा रही थी. यह स्वरूप अतिमंगलकारी था ॥ २९ ॥ मंदहास्यवाला मुखारविंद श्याम केशोंसे शोभ रहा था. कमलकेसे सुंदर नेत्र प्रकाश रहे थे. कानोंमें मकराकृत कुंडल स्फुर रहे थे ॥ ३० ॥ कटिमेखला, यज्ञोपवीत, किरीट, कटक (कड़ा) भुजबंध, हार, नूपुर, मुंदरियां और कौस्तुभ मणि दीप रही थी ॥ ३१ ॥

भगवान्‌का पुत्र, सुमित्र और असुरथ ये अतिदारुण स्वभाववाले मत्सरसे व्याप्त होकर, परस्पर द्वंद्वयुद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ औरभी निशठ, उल्मुक, सहस्रजित्, शतजित् और भानु–आदि यादव कि–जिनको भगवान्‌ने मोहित करदिया था वे मदिराके मदसे मत्त और अंधे हो, परस्पर भिड़कर, एक दूसरेको मारने लगे ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अंधक, भोज, सात्वत, मधु, विसर्जन, कुकुर और कुंतिकुलके तथा अर्बुद, माथुर और शूरसेनदेशके यादव संबंध छोड़कर परस्पर प्राण लेने लगे ॥ १८ ॥ पुत्र पिताके साथ मामे भानेजोंके साथ दौहित्र मातामहों–(नाना) के साथ, भतीजे चचोंके साथ और मित्र मित्रोंके साथ

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ॥ अन्योऽन्यमासाद्य मदांधकारिता जघ्नुर्मुकुंदेन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥ दाशार्हवृष्ण्यंधकभोजसात्त्वता मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ॥ विसर्जनाः कुकुराः कुंतयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ॥ मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहन् ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥ शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ॥ शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्रुरेरकाः ॥ २० ॥ ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः ॥ जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ २१ ॥ प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ॥ हंतुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनंदन ॥ एरकामुष्टिपरिघौ चरंतौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥

युद्ध करने लगे. इसप्रकार मूढ बनेहुए ये ज्ञातिवाले अपने ज्ञातिवालोंकोही मारने लगे ॥ १९ ॥ जब बाण क्षीण हो गये और धनुष टूट गये और शस्त्र क्षयको प्राप्त हो गये, तब वे समुद्रके तटपर जगा हुआ एरा मुठियोंसे उखेड़ने लगे ॥ २० ॥ मुठियोंमें धारण कियाहुआ वह एरा वज्रके जैसा परिघरूप होगया. इस एरेसे वे शत्रुओंको मारने लगे. और श्रीकृष्णचंद्र बीचमें पड़कर, निवारण करने लगे तौ वे श्रीकृष्ण भगवान्‌परभी प्रहार करने लगे ॥ २१ ॥ हे राजा ! मोहित भयेहुए ये यादव श्रीकृष्ण बलरामजीकोभी शत्रु मानकर, उनको मारनेके वास्ते शस्त्र उठाकर, उनपर आये ॥ २२ ॥ हे कुरुनंदन ! तब क्रोधित भये

वस्त्र, अश्व, गज, रथ और घरके दान देकर, पूजन करेंगे ॥ ८ ॥ यह विधि अशुभको मिटानेवाला और उत्तम कल्याणका देनेवाला है देव, ब्राह्मण और गौनकी पूजा देहधारियोंका परमउदय करती है ॥ ९ ॥ सब यदुवृद्ध श्रीकृष्ण भगवान्का यह वचन सुन कर, 'जो आज्ञा, ऐसे कह कर, नौकामें बैठ, समुद्रके पार उतरके, फिर रथोंमें बैठकर, प्रभासक्षेत्र आये ॥ १० ॥ यदुदेव श्रीकृष्णचंद्रने जैसा कहा था उसके अनुसार यादवोंने परमभक्तिसे प्रभासमें सब किया. और उसके सिवाय औरभी अनेक कल्याणके साधन किये ॥ ११ ॥ फिर जिनकी बुद्धि भावीने भ्रष्ट कर दी है ऐसे यादवोंने इस प्रभास जैसे पवित्र क्षेत्रमें मैरेयक

विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मंगलायनमुत्तमम् ॥ देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ॥ तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन् भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः ॥ चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ॥ दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ॥ कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ॥ धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताकैरथ कुंजरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ॥ मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदान्यहन् शरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥ प्रद्युम्नसांबौ युधि रूढमत्सरावक्रूर भोजावनिरुद्धसात्यकी ॥ सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

नाम मधुर रसवाले मद्यका अतिशय पान किया कि-जिसके रसोंसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है ॥ १२ ॥ भगवान्की मायासे मोहित भयेहुए और मदिरा पीनेसे मत्त भयेहुए तथा महाभिमान रखनेवाले शूरवीर यादवोंके बीच परस्पर भारी कलह उत्पन्न हुआ ॥ ॥ १३ ॥ क्रोधके बेगसे संरब्ध भयेहुए और हाथमें शस्त्र लियेहुए यादव समुद्रके तटपर धनुष, खड्ग, भाला गदा, तोमर और ऋष्टियोंसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ जिनकी पताका फहरा रही हैं ऐसे रथ, हाथी आदिनसे तथा गधे, ऊंठ, बैल मनुष्य व खच्चरोंसे परस्पर जुटकर, ये दुष्ट मदमत्त यादव, जैसे हाथी वनमें दांतोंसे परस्पर प्रहार करें ऐसे बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ १५ ॥ प्रद्युम्न और सांब, अक्रूर और कृतवर्मा, अनिरुद्ध और सात्यकि, सुभद्र और संग्रामजित्, श्रीकृष्ण भगवान्का भाई गद और उसी नामका

नष्टप्राय हो गया. उस समय प्रभुने सर्व नेत्रोंके प्यारे अपने शरीरका किसप्रकारसे परित्याग किया ? ॥ २ ॥ स्त्रियें जिस रूपमे लगेहुए अपने नेत्रोंको पीछा खैंच नहीं सक्तीं थीं. जो रूप कर्णमार्गद्वारा भीतर प्रवेश करके, सत्पुरुषोंके हृदयमें ऐसा लग जाता है कि–पीछा उसमेंसे बिलकुल निकलताही नहीं जो रूप वर्णन करनेमें आतीहुई कवियोंकी वाणीकोभी उल्लास देता है तब उनको मानपात्र बनावे इसमें तो कहनाही क्या ? तथा महाभारतके संग्राममें अर्जुनके रथपर विराजमान जिस रूपका दर्शन करनेसे सुभटलोग सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुए, उस रूपका भगवान्‌ने किस प्रकार परित्याग किया ? ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेव-

प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् ॥ यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ दिवि भुव्यंतरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् ॥ दृष्ट्वाऽऽसीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ॥ मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुंगवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजंत्वितः ॥ वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ॥ देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् ॥ गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥

जीने कहा कि–स्वर्गमें सूर्यके परिवेष (मंडल) –आदि, पृथ्वीमें भूकंप–आदि और अंतरिक्षमें दिग्दाह–आदि बड़े २ उत्पात होने लगे. उनको देखकर, सुधर्मा सभामें बैठेहुए यादवोंसे हरिभगवान्‌ने यह कहा ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णचंद्र बोले कि–हे यदुश्रेष्ठो ! मृत्युके सूचक ये अनेक महाभयंकर बड़े २ उत्पात द्वारकामें हो रहे हैं इसलिये आपनको अब यहां दो घड़ीभी नहीं ठहेरना चाहिये ॥ ५ ॥ स्त्रियां, बालक और वृद्ध इनको तौ यहांसे शंखोद्धार–तीर्थ भेज दो सो वे तो चलेजायं. और आपन प्रभासक्षेत्र चलेंगे कि–जहां पश्चिमवाहिनी सरस्वती है ॥ ६ ॥ वहां स्नान कर, उपवासकर, पवित्र हो, सावधानीके साथ, स्नान, लेपन और अर्चादिकसे देवतानका पूजन करेंगे ॥ ७ ॥ आपन ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन करवाकर, भाग्यशाली ब्राह्मणोंको गौ, पृथ्वी, सुवर्ण,

मुख्य मित्र भगवान्ने जैसा उपदेश किया था उसीके अनुसार धारणा रखकर, भगवान्की गतिको प्राप्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनके चरणकी योगेश्वर सेवा करते हैं ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्ने आनंदके समुद्ररूप भक्तिमार्गके साथ एकता करके, उद्धवजीको जो यह ज्ञानामृत पिलाया है तिसका उत्तम श्रद्धासे जो पुरुष किंचिन्मात्रभी सेवन करे वह आप तो मुक्त होवेही; परंतु उसकी संगतिसे औरभी सारा जगत् मुक्त हो जाय ॥ ४८ ॥ वेदके कर्ता जिन भगवान्ने निवृत्तिवाले पुरुषोंका संसार निवृत्त करनेके लिये भ्रमर जैसे पुष्पमेंसे सार निकाल लेता है ऐसे वेदका सारभूत 'ज्ञान-विज्ञान' नामक एक उत्तम अमृतका उद्धार किया है. और प्रवृत्तिवाले

य एतदानंदसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ॥ कृष्णेन योगेश्वरसेवितांघ्रिणा सच्छ्रद्धया- सेव्य जगद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ भवभयमपहंतुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृंगवद्वेदसारम् ॥ अ- मृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥ ॥ इति श्रीभा० महा० एका० एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ राजोवाच ॥ ततो महाभागवते उद्धवे निर्गते वनम् ॥ द्वारव- त्यां किमकरोद्भगवान् भूतभावनः ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ॥ प्रेयसीं सर्वनेत्रा- णां तनुं स कथमत्यजम् ॥ २ ॥

पुरुषोंका जरा और रोग-आदि भय दूर करनेके लिये भ्रमर जैसे पुष्पमेंसे सार निकाल लेता है ऐसे समुद्रका साररूप 'सुधा' नामक दूसरा अमृत निकाला. और निकाल कर, ये दोनों अमृत अपने दासलोगोंको योग्यताके अनुसार पिलाये हैं तिन श्रीकृ- ष्णनामक-आदि पुरुषोत्तम भगवान्को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविर- चितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ तीसवें अध्यायमें पूर्वोक्त मुसलसंबंधी शापके मिषसे अपने धाम पधारना चाहतेहुए श्रीकृष्णचंद्रने अपने कुलका संहार किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि-महावैष्णव उ- द्धवजीके वनमें जानेके अनंतर जगत्पालक हरि भगवान्ने फिर द्वारकामें क्या किया ? ॥ १ ॥ अपना कुल ब्राह्मणोंके श्रापसे

शीत और उष्ण-आदि सर्व द्वंद्वोंका सहन करना; स्वभावमें सरलता-आदि गुण रखना. इंद्रियोंको वश रखना. शांत रहना. और एकाग्रचित्तवाली बुद्धिसे ज्ञान और विज्ञानको धारण करना ॥ ४३ ॥ मेरे पास जो कुछ यह ब्रह्मविद्या पढ़े हो उसका मनन और निदिध्यासन करना. वाणी व मन केवल मेरे में रखकर, मेरे धर्मोंमें निरंतर प्रीति रखना. जो इसप्रकार करोगे तौ त्रिगुणात्मक गतियोंको उल्लंघ कर, मैं कि-जो उन गतियोंसे पर हूं उसको प्राप्त होओगे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-संसारको हरनेवाली जिनकी बुद्धि है ऐसे भगवान्‌ने इस प्रकार आज्ञा की तब उद्धवजी यद्यपि स्वयं सुखदुःखसे मुक्त हो गये थे

तितिक्षुर्द्वंद्वमात्राणां सुशीलः संयतेंद्रियः ॥ शांतः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ॥ मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ॥ अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ॥ शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिंचदद्वंद्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥ सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ॥ कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमंतर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् ॥ यथोपदिष्टां जगदेकबंधुना ततः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥ ४७ ॥

तथापि वहांसे निकलनेके समय हृदय भर जानेके कारण भगवान्‌को प्रदक्षिणा कर व चरणमें शिर रखकर, आंसुओंके बिंदुओंसे भगवान्‌के चरणमूलको भिगोने लगे ॥ ४५ ॥ जिसमें स्नेहका त्याग करना अतिकठिन है ऐसे वियोगसे कायर भयेहुए और उसीसे भगवान्‌का त्याग नहीं किया जा सकनेसे विव्हल भयेहुए उद्धवजी अति व्याकुल हो गये. फिर भगवान्‌की कृपा कर, दीहुई पादुकानको शिरपर चढ़ाकर, अतिआग्रहवाली भगवान्‌की आज्ञासे उनको वारंवार प्रणाम करके, रवांना हुए ॥ ४६ ॥ फिर भगवान्‌के स्वरूपको अपने हृदयमें अच्छे प्रकार धारण करके, उद्धवजी बदरिकाश्रम गये. वहां वे परमवैष्णव उद्धवजी जगत्‌के

१ मार्गमें जातेसमय भगवान्‌की प्रभासयात्रा सुनकर, धीरे २ उनके पीछे २ गये, वहां कुलका संहार करके, एकांतमें विराजेहुए भगवान्‌का दर्शन करके, बैठे. तहां उससमय मैत्रेयजी आ निकले. उनको भगवान्‌ने कृपा करके, जो उपदेश दिया दह उनके साथ उद्धवजीने फिर दुबारा सुना, तदनंतर भगवान्‌से आज्ञा लेकर, उद्धवजी बदरिकाश्रम गये. ऐसे इस कथाकी संगति तृतीयस्कंधकी कथाके साथ मिला लेनी.

जो मनुष्य अग्निके समीप जाता है उसका जाड़ा और अंधेरा क्या कुछभी भय कर सक्ते हैं ? नहीं ॥ ३७ ॥ यद्यपि मेरा मोहरूप अंधियारा आपके समागमसे हट गया था तथापि फिरभी अतिदयालु आपने आपके दास मुझको यह ज्ञानरूप दीपक दिया इससे मैं आपकी बड़ी कृपा समझता हूं आपने तो यह ज्ञानदीप पहलेही देरक्खा था परंतु मामाने उसका हरण कर लिया था सो वह आज आपने मुझको पीछा दिया अतएव आपके कियेहुए अनुग्रहको जाननेवाला कौन पुरुष आपके चरणमूलको त्याग कर, दूसरेके शरण जाय ? ॥ ३८ ॥ सृष्टिको बढ़ानेके वास्ते आपने अपनी मायासे दाशार्ह, वृष्णि, अंधक और सात्त्वत–आदि कुलोंके यादवोंमें स्नेहरूप जो दृढ पाश मेरे गलेमें डाल रक्खा था वह आपनेही आत्मतत्त्वके ज्ञानरूप शस्त्रसे

प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकंपिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ॥ हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यंधकसात्त्वतेषु ॥ प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन्प्रपन्नमनुशाधि माम् ॥ यया त्वच्चरणांभोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ॥ तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥ ईक्षयाऽलकनंदाया विधूताशेषकल्मषः ॥ वसानो वल्कलान्यंग वन्यभुक्सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥

आज काट दिया ॥ ३९ ॥ इसप्रकार आपने बहुत कुछ किया है तथापि हे महायोगी ! शरणागत मैं आपको प्रणाम करके, इतनी प्रार्थना करता हूं कि–मुझको जीवन्मुक्तदशामेंभी निवृत्त न होवे ऐसी आपके चरणारविंदमें प्रीति जिस प्रकारसे प्राप्त हो जाय वह प्रकार मुझे बताओ ॥ ४० ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे उद्धव ! तुम मेरी आज्ञासे मेरे बदरिकाश्रममें जाओ. वहां मेरे चरणसे निकलीहुई अलकनंदानाम (गंगा) तीर्थमें स्नान व आचमन करके, पवित्र होओ ॥ ४१ ॥ हे उद्धव ! तुम्हारे सब पापमात्र तो अलकनंदाके दर्शनसेही धुल जायंगे. सो तुम वहां वल्कलके वस्त्र पहरना. वनके फल फूल खाकर, निर्वाह करना. किसी प्रकारके सांसारिक सुखकी स्पृहा नहीं करना ॥ ४२ ॥

दूसरे किसी पदार्थके पीनेकी इच्छा नहीं रहती ऐसे जाननेकी इच्छावाले पुरुषके इसके जाने पीछे दूसरा कुछभी ज्ञातव्य अवशेष नहीं रहता ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! दूसरे जुदे जुदे फलोंके साधन जाननेके योग्य अनेक हैं परंतु वे सब अभक्तोंके वास्ते हैं. तुम कि-जो मेरे भक्त हो उनके तो ज्ञान, कर्म, योग, खेती-आदि व्यापार और राजनीतिसे मनुष्योंको जो कुछ धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप चार पुरुषार्थरूप फल मिलता है वह मैंही हूं. तासों तुम केवल एक मेरा शरण लेकर, रहो ॥ ३३ ॥ जब मनुष्य सर्व कर्म छोड़कर, अपने आत्माको मेरे अर्पण कर देता है तब उसका परमकल्याण करनेकी मेरी इच्छा होती है. और

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दंडधारणे ॥ यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥ मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ॥ तदाऽमृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ॥ बद्धांजलिः प्रीत्युपरुद्धकंठो न किंचिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः ॥ कृतांजलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविंदम् ॥ ३६ ॥ उद्धव उवाच ॥ विद्रावितो मोहमहांधकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ॥ विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवंत्यजाद्य ॥ ३७ ॥

जब मेरी ऐसी इच्छा होवे तब वह मनुष्य ब्रह्मवेत्ता होकर, मेरे साथ एकता अथवा मेरे समान ऐश्वर्यको प्राप्त होता है ॥३४॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-भगवान्‌ने इसप्रकार योगमार्ग दिखाया तब वे उद्धवजी उत्तमश्लोक हरि भगवान्‌का वचन सुन, कर जोड़, सामने खड़े रहे. परंतु अश्रुओंसे नेत्र व्याप्त हो जानेके कारण और गला रुंक जानेके हेतु कुछभी बोल सके नहीं ॥३५॥ महाराज ! फिर स्नेहसे क्षोभको प्राप्त भयेहुए अपने चित्तको धीरजसे स्थिर करके, अपने आत्माको कृतार्थ मानते और हाथ जोड़े खड़े उद्धवजीने अपने शिरसे भगवान्‌के चरणारविंदको छूकर, भगवान्‌से इसप्रकार प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे ब्रह्माजीकेभी जनक ! मैंने जो मोहरूप अंधकारका आश्रय लिया था वह आपके समागमसे पलायमान हुआ. ठीक है;

जो विषय तुमसे वारंवार कहा है. उस विषयके जाननेसे संशय निवृत्त होनेके हेतु पुरुष मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ ऐसे समझना तो एक ओर रहा परंतु मैंने जो तुह्मारे प्रश्नोंका जिसमें उत्तर दिया है उस आख्यानकोभी जो मनुष्य मनमें धारण करे कहे और श्रवण करे वहभी वेदके रहस्यरूप सनातन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ २५ ॥ जो पुरुष मेरे भक्तोंको पुष्कल रीतिसे यह ज्ञान देवे उस उपदेश करनेवाले पुरुषको मैं स्वयं अपना स्वरूप देता हूं ॥ २६ ॥ जो मनुष्य अत्यंत पवित्र और दूसरोंकोभी पवित्र करनेवाले इस आख्यानका प्रतिदिवस पाठ करे वह पुरुष ज्ञानरूप दीपकसे मेरा स्वरूप जाननेके हेतु पवित्र

सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ॥ सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥ य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम् ॥ तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥ २६ ॥ य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ॥ स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥ २७ ॥ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ॥ मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥ अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ॥ अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥ नैतत्त्वया दांभिकाय नास्तिकाय शठाय च ॥ अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ॥ साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥

हो जाता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य सावधान रहकर, श्रद्धाके साथ इस आख्यानको नित्य श्रवण करे. वह मनुष्य मेरी उत्तम भक्ति उत्पन्न होनेके कारण कर्मोंसे नहीं बँधता ॥ २८ ॥ हे सखा ! उद्धव ! आपके ध्यानमें परब्रह्म अच्छीतरह आया ? तुह्मारे मनमें जो संदेह और मोह थे वे क्या निवृत्त हुए ? ॥ २९ ॥ यह ज्ञान तुम दांभिक, नास्तिक, वंचक, असेवक, अभक्त और नम्रताहीन मनुष्यको मत देना ॥ ३० ॥ जिसमें ये दोष न होवें, जो ब्राह्मणोंका भक्त, प्रिय, साधु व पवित्र होवे उसको यह ज्ञान देना, यदि स्त्री और शूद्रोंके भक्ति देखो तो उनकोभी यह ज्ञान देना ॥ ३१ ॥ जैसे अतिमधुर अमृत पान किये पीछे

अर्घ्यके पात्रमें गंध, पुष्प, अक्षत, यव, दर्भके अग्र, तिल, सर्षप और दूब ये आठ पदार्थ डालना. पाद्यके पात्रमें श्यामा, [illegible] कमल और विष्णुक्रांता-आदि पदार्थ डालना, आचमनके पात्रमें जावत्री लवंग और कंकोल डालना. पाद्यके पात्रको हृदयके मंत्रसे अर्घ्यके पात्रको मस्तकके मंत्रसे मंत्रित कर और आचमनके पात्रको शिखाके मंत्रसे मंत्रित कर, फिर सर्व पात्रोंका गायत्रीमंत्रसे अभिमंत्रण करना ॥ २१ ॥ २२ ॥ फिर देहको कोष्ठगत वायुसे शोषित कर आधारचक्रगत अग्निसे दग्ध कर, फिर ललाटगत चंद्रमंडलके अमृतसे द्रवीभूत करनेसे अमृतमय करके, उस देहके भीतर हृदयकमलमें स्थित, उत्तम और सूक्ष्म नारायणकी मूर्ति कि-जिसका प्रणवसंबंधी अकार, उकार, मकार, बिंदु और नादके अं-

पाद्यार्घाचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः ॥ हृदा शीर्ष्णाऽथ शिखया गायत्र्या चाभिमंत्रयेत् ॥ २२ ॥ पिंडे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ॥ अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादांते सिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥ तयाऽऽत्मभूतया पिंडे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः ॥ आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्तांगं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् ॥ धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥ २५ ॥ पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्वलम् ॥ उभाभ्यां वेदतंत्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥

तमें सिद्धलोक ध्यान करते हैं उसका ध्यान करना ॥ २३ ॥ दीपकके प्रकाशसे घरकी नाईं अपने स्वरूपकी भावनासे चिंतवन कीहुई उस मूर्तिसे देह व्याप्त हो जाय तब देहमेंही प्रथम मानसोपचारसे पूजा कर, तन्मय होकर, उसका मूर्ति-आदिमें आवाहन करके, फिर स्थापनमुद्रासे स्थापन करके, मेरे अंगन्यास किये पीछे पूजा करनी ॥ २४ ॥ धर्मादिक आठसे और नव शक्तियोंसे मेरे लिये आसन बनाना; उसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यसे इस पलंगके अग्निकोन आदि चार कोनोंमें पाये कल्पन करने. अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यसे पूर्वादि-दिशाओंमें ईस और ऊपले कल्पन करने. तीन गुणरूप पट्टिका कल्पन करनी. तिनमें विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रव्ही, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा इन नव शक्तियोंकी पूर्वादि आठ दिशाओंमें और मध्यमें कल्पना करनी ॥ २५ ॥ इसप्रकार पलंगकी कल्पना कर, उसपर कर्णिका, केसर

और उसमें स्थित सूर्य-आदि मंडलोंसे अत्यंत शोभायमान आठ दलवाले कमलकी कल्पना करनी, फिर भुक्ति और मुक्तिकी सिद्धिके वास्ते वेद और तंत्रमें कहीहुई विधिसे अर्घ, पाद्य-आदि उपचार मेरे अर्पण करने ॥ २६ ॥ फिर सुदर्शन, पांचजन्य, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मुसल, कौस्तुभ, माला और श्रीवत्सकी पूजा करनी. तहां सुदर्शन-आदि आठ आयुधोंकी आठ दिशाओंमें और कौस्तुभ-आदि तिनकी वक्षःस्थलमें ॥ २७ ॥ नंद, सुनंद, प्रचंड, चंड, महाबल, बल, कुमुद और कुमुदेक्षण इन आठ पार्षदोंकी आठ दिशाओंमें पूजा करनी. और गरुड़की भगवान्के सन्मुखमें पूजा करनी ॥ २८ ॥ चार कोनोंमें दुर्गा, वि-

सुदर्शनं पांचजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ॥ मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥ नंदं सुनंदं गरुडं प्रचंडं चंडमेव च ॥ महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥ २८ ॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् ॥ स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चंदनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः ॥ सलिलैः स्नापयेन्मंत्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥ स्वर्णघर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ॥ पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गंधलेपनैः ॥ अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥

नायक, व्यास और विष्वक्सेनकी पूजा करनी. गुरुनकी वामभागमें पूजा करनी. और इंद्रादि चार लोकपालोंकी पूर्व-आदि चारों दिशानमें पूजा करनी. ऐसे इन सबकी अपने २ स्थानपर भगवान्के सामने प्रोक्षण और अर्घ-आदिसे पूजा करनी ॥ २९ ॥ जो अपने पास वैभव हो तौ चंदन अगर, खस, कर्पूर और केसर व कस्तुरी आदिसे सुगंधित जलसे मंत्र पढ़ २ कर, प्रतिदिवस स्नान कराना ॥ ३० ॥ '[1]स्वर्णघर्म' नाम अनुवाक और '[2]पुरुषसूक्त' तथा महापु[3]रुष विद्या, 'नामश्लोक' व [4]नीराजन और रौहिण-आदि सामवेदके मंत्र पढ़ना ॥ ३१ ॥ मेरे भक्तको चाहिये कि-यथोचित रीतिसे वस्त्र, उपवीत, आभ-

१ सुवर्णं घर्मं परिवेदवेनमित्यादिः । यही मंत्र स्वर्णघर्मनामका अनुवाक् है. २ सहस्रशीर्षेत्यादिः । इसी मंत्रको पुरुषसूक्त कहते हैं. ३ जितं ते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥ इसश्लोकको महापुरुषविद्या कहते हैं. ४ इन्द्रं नरोनेमधिताहवंत इत्यस्यामृचि गीतानि ॥

रण, पत्रभंगी, माला और सुगंधी लेपनसे प्रेमसहित मुझको शृंगार धरावे ॥ ३२ ॥ पूजन करनेवाला पुरुष श्रद्धासे पाद्य, आचमन, गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और नैवेद्य मेरे अर्पण करे ॥ ३३ ॥ जो अपने पास वैभव हो तौ गुड़, खीर, घृत, पूरी, कचोरी, पुए, लड्डू, संयाव (हलुवा) दही और अनेक प्रकारके व्यंजन (साग) मेरे भोग धरे ॥ ३४ ॥ अभ्यंग, मर्दन, आईना, दतून, पंचामृत-आदिसे स्नान, भक्ष्य-भोज्य, गाना, नाचना-आदि भगवान्‌की सेवाके सब साधन करने. जो वैभव होवे तब तौ ये सब प्रकार नित्य करने और जो नित्य बनि न आवे तौ उत्सवके दिन तौ अवश्यही करने ॥ ३५ ॥ अब अग्निमें पूजा

पाद्यमाचमनीयं च गंधं सुमनसोऽथ तान् ॥ धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयाऽर्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ॥ संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥ अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदंतधावाभिषेचनम् ॥ अन्नाद्यगीतनृत्यादि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥ विधिना विहिते कुंडे मेखलागर्तवेदिभिः ॥ अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ॥ प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥ तप्तजांबूनदप्रख्यं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ लसच्चतुर्भुजं शांतं पद्मकिंजल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवरांगदम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥

करनेकी विधि कहता हूं सो सुनो. अपने गृह्यसूत्रमें कहा है उस विधिके अनुसार मेखला, गर्त और वेदी-आदिसे उपलक्षित बनायेहुए कुंडमें अग्निका आधान कर, उसको प्रज्वलित किये पीछे हाथसे उसको चौतर्फसे इकठा करना ॥ ३६ ॥ दर्भसे परिस्तरण कर, चारों ओर प्रोक्षण करना. फिर विधिपूर्वक आहुतियोंसे समिध होमने आदि अन्वाधाननामक कर्मसे निपटकर अग्निके उत्तर भागमें होमके उपयोगी पदार्थ रखकर, उनका प्रोक्षणीपात्रके जलसे प्रोक्षण कर, अग्निमें इसप्रकार मेरा ध्यान करना ॥ ३७ ॥ तपेहुए सुवर्णसी कांतिवाले, शंख, चक्र, गदा, पद्म इनसे शोभायमान चार भुजावाले, शांतस्वरूप, कमलके केसरकेसे पीले वस्त्र धरनहारे, ॥ ३८ ॥ किरीट, कटक, कटिमेखला व उत्तम भुजबंधकरि देदीप्यमान, श्रीवत्सका चिन्ह, वक्षः-

स्थलमें हुलसाये, कोस्तुभ मणिसे प्रकाशमान, वनमाला पहिरे ॥ ३९ ॥ ऐसे मेरे स्वरूपका ध्यान करके, पूजन करनेके अनंतर घृतसे परिप्लुत समिध अग्निमें डालकर, चारों ओर घृत डालने रूप दो आघार और आज्यभाग देकर, ॥ ४० ॥ मूलमंत्रसे वा पुरुषसूक्तसे प्रतिऋचा एक एक आहुति लेकर, पूजाके क्रमसे धर्मादिकके वास्ते अग्निमें घृतसे परिप्लुत हविसे होम करना. फिर स्विष्टकृत नामक होम करके ॥ ४१ ॥ अग्निके भीतर, स्थित अंतर्यामीकी पूजा और उसको नमस्कार करके, पार्षदोंको बलिदान देना. फिर पूजाके स्थानमें भगवान्के समीपमें बैठकर, नारायणरूप परब्रह्मका स्मरण करते सुबुद्धि पुरुषको चाहिये कि-यथा-

ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाभिघृतानि च ॥ प्रास्याज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥ जुहुयान्मूलमंत्रेण षोडशर्चाऽवदानतः ॥ धर्मादिभ्यो यथान्यायं मंत्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ॥ मूलमंत्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥ दत्त्वाऽऽचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥ मुखवासं सुरभिमत्तांबूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम ॥ मत्कथाः श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ॥ स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वंदेत दंडवत् ॥ ४५ ॥

शक्ति मूलमंत्रका जप करे ॥ ४२ ॥ फिर भगवान्के आरोगनेके समाप्तिका ध्यान करके, भगवान्को आचमन करावे, फिर जो उच्छिष्ट रहा हो वह विष्वक्सेन-(पार्षद) को देनेकी मनमें कल्पना करके, तदनंतर उसकी आज्ञासे आप भोजन करे. परंतु उससे पहले सुगंधिवाले तांबूल-आदि मुखवासक पदार्थ अर्पण करके, फिर पुष्पांजलि अर्पण करे ॥ ४३ ॥ भगवान्के आगे गाना, स्तुति करनी, नृत्य करना और मेरे कर्मोंका अपनेमें आविर्भाव करके, मेरी कथायें श्रवण करनी और श्रोता मिल जाय तो आप श्रवण करानी. इसप्रकार व्यग्रता छोंड़कर, थोड़ी बेर भगवान्के निमित्त अवश्य अवकाश निकालना ॥ ४४ ॥ पुराणके छोटे मोटे स्तोत्रोंसे और प्राकृत भाषाकी छोटी मोटी स्तुतियोंसे स्तुति करके, ' हे भगवन् ! आप हमपर प्रसन्न होओ '

१ आघार इसे कहते हैं जो कि-' प्रजापतये स्वाहा इन्द्रायस्वाहा ' इन मंत्रोंसे उत्तर और दक्षिणपरिधिसंधिसे लेके, अग्निके मध्यसे परिधिके अन्तपर्यंत घी छोड़ा जाता है. २ और आज्यभाग इसे कहते हैं जोकि-' अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा ' इन मंत्रोंसे होम किया जाता है. ३ ' नमो नारायणाय स्वाहा ' इसे मूलमंत्र कहते हैं. ४ अर्थात् जिस पुरुषसूक्तमें सोलह ऋचा हैं तिससे. ' अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ' इसतरह स्विष्टकृत होम किया जाता है.

ऐसे प्रार्थना करके, दंडवत् प्रणाम करना ॥ ४५ ॥ मेरे चरणमें शिर रखकर, अपराधीकी भाति अपनी पीठकी ओर हाथ बांधकर, वा दोनों हाथोंसे मेरे चरण पकड़ कर, 'हे ईश्वर ! मैं कि-जो मृत्युरूप ग्राहवाले संसारसमुद्रसे भयभीत होकर, आपके शरण आया हूं तिसकी रक्षा करो' ऐसे प्रभुसे प्रार्थना करनी ॥ ४६ ॥ फिर मेरे निर्माल्यको ऐसीही प्रार्थनासे मेरा दियाहुआ सोच कर, तुर्त उसको शिरपर चढ़ाना. मेरा विसर्जन करना हो तौ प्रतिमामें जिस ज्योतिका आवाहन किया हो उस ज्योतिका पीछा हृदयकमलगत ज्योतिमेंही विसर्जन करना ॥ ४७ ॥ मूर्तिआदिमें जब जिसमें श्रद्धा होवे तब उसमें मेरी पूजा करनी; क्योंकि सर्वका आत्मारूप मैं सर्व पदार्थोंमें और जीवोंमेंभी रहा हूं तासों अमुक स्थलमें अधिक और अमुक स्थलमें न्यून रहता

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥ प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥
इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् ॥ उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥
अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ॥ सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माऽहमवस्थितः ॥ ४८ ॥
एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतांत्रिकैः ॥ अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विंदत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥
मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मंदिरं कारयेद्दृढम् ॥ पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥
पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥ क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥
प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ॥ पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥

हूं ऐसे नहीं है ॥ ४८ ॥ इसप्रकार वैदिक और तांत्रिक पूजनके प्रकारोंसे मेरी सेवा करनेवाला पुरुष इस लोकमें और परलोकमें मनवांछित सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ जो पुरुष समर्थ होवे वह मेरी मूर्तिको स्थापन करके, दृढ़ मंदिर बनवावे; और उसमें नित्य पूजा व उत्सव तथा अनेक लोकोंके समागम व वसंत-आदि उत्सवके निमित्त उपयोगी होनेके वास्ते सुंदर पुष्पवाटिका और क्षेत्र-आदि अर्पण करे ॥ ५० ॥ बड़े २ उत्सव और प्रतिदिवसकी पूजा सदाके लिये चली जाय इसवास्ते खेत, दुकाने, गांव और नगर-आदि भगवानके भेंट करे; क्योंकि ऐसे करनेसे मनुष्यको मेरे जैसा ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ प्रतिष्ठा करनेसे चक्रवर्ती राज मिलता है. दानसे त्रिलोकीका राज्य मिलता है. और

पूजा-आदि करनेसे ब्रह्मलोक मिलता है और ये तीनों करनेसे मेरे बराबरका हो जाता है ॥ ५२ ॥ यह सब सकाम भक्तके वास्ते कहा है. परंतु जो पुरुष निष्काम होकर, भक्ति करे वह साक्षात् मुझकोही प्राप्त होता है. इस रीतिसे जो मनुष्य मेरी सेवा करे; उसको भक्तियोग प्राप्त हो जाता है ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य अपनी दीहुई अथवा दूसरोंकी दीहुई देवता और ब्राह्मणकी आजीविका छीन लेवे वह पुरुष करोड़ वर्षपर्यंत विष्ठा खानेवाला कीड़ा होता है ॥ ५४ ॥ ऐसे २ सत्कर्म करनेसे जो फल होते हैं वे कर्ताको, सहायता देनेवालेको, प्रेरणा करनेवालेको और संमति देनेवालेको बराबर

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विंदति ॥ भक्तियोगं स लभत एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ॥ वृत्तिं स जायते विट्भुक् वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥ कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ॥ कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभा० महापुराणे एकादशस्कंधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ॥ विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निंदति ॥ स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिंडस्थो नष्टचेतनः ॥ मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥ ३ ॥

मिलते हैं; कारण यह कि-ये सब कर्मके विभागी हैं. उसमें जिसने अधिक किया होवे उसको अधिक फल मिलता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ अट्ठाईसवें अध्यायमें जो ज्ञानयोग पहले विस्तारसे कहा गया है वही संक्षेपसे फिर कहा जायगा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-प्रकृति और पुरुषरूपसे सब जगत् एकरूपही है. ऐसे जानकर, दूसरोंके स्वभावकी वा दूसरोंके कामकी प्रशंसा नहीं करनी ऐसे निंदाभी नहीं करनी ॥ १ ॥ जो मनुष्य दूसरोंके स्वभाव और कर्मोंकी स्तुति करे वा निंदा करे वह पुरुष द्वैतके अभिनिवेशके कारण ज्ञाननिष्ठारूप अपने स्वार्थसे शीघ्र भ्रष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ जैसे इंद्रियां निद्रासे पराभव पा जातीं हैं तब देहमें रह

हुआ जीव केवल मनद्वारा स्वप्नरूप मायाको प्राप्त होता है. और मन लीन हो जाता है तब भानरहित होकर, मृत्युको अथवा मृत्यु जैसी सुषुप्तिको प्राप्त होती है ऐसे भेदबुद्धि रखनेवाला द्वैताभिनिवेशी पुरुष विक्षेप और लयको प्राप्त होता है जैसे जाग्रत् अवस्थाके अभिमानी विश्वको सुषुप्तिअवस्थाके अभिमानी प्राज्ञके संबंधसे भोगमेंसे भ्रष्ट होना पड़ता है ऐसे आत्माकोभी अनात्म पदार्थके संबंधसे स्वरूपमेंसे भ्रष्ट होना पड़ता है. द्वैत अवास्तविक होनेके कारण स्तुति और निंदाका कोई विषयही नहीं है ॥ ३ ॥ द्वैत कि–जो अवस्तुभूत पदार्थ है उसके भीतर कौन वस्तु अच्छी है और कौन बुरी है ? ऐसेही सुख कितना और दुःखभी कितना है ? कुछभी नहीं; कारण यह कि–जो कुछ वाणीसे कहा जाय, इंद्रियोंसे जाना जावे और मनसे चिंतवन

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ॥ वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥ छायाप्रत्याह्वया भासा ह्यसंतोऽप्यर्थकारिणः ॥ एवं देहादयो भावा यच्छंत्या मृत्युतोभयम् ॥ ५ ॥ आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ॥ त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥ तस्मान ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ॥ निरूपितेऽयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥ इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ॥ न निंदति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥

किया जाय वह सब अवस्तुभूत है ॥ ४ ॥ जैसे छाया (प्रतिबिंब) प्रतिध्वनि और आभास (शुक्तिमें रजतादिकी प्रतीति) अवस्तुभूत होनेपरभी भयादिक देते हैं ऐसे देहादिक पदार्थ वास्तविक न होनेपरभी वे जबलों लीन नहीं हो जाते तबलों भय देते हैं ॥ ५ ॥ जो सरजा जाता है, जो सरजता है, जिसका पालन होता है जो पालता है, जिसका संहार होता है, जो संहार करता है वह आत्माही है ॥ ६ ॥ प्रभु, जगत्के अधिष्ठान और ईश्वर जो आत्मा हैं वेही यह जगत् है. आत्मा कि–जो सर्वसे जुदा है उससे कोईभी पदार्थ जुदा निरूपण नहीं किया जा सक्ता. यह अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूप जो प्रतीत होता है वह सब निर्मूलही है. यह निश्चय है. यह आध्यात्मादिक तीन प्रकारका गुणमय जगत् आत्मामें मायाकाही कियाहुआ है; ऐसे जानो ॥ ७ ॥ इस मेरी कहीहुई ज्ञान व विज्ञानसंबंधी निष्ठाको जो पुरुष जाने वह किसीकी न तौ निंदा करता है और न

किसीकी स्तुति करता है. किंतु जगत्‌में सूर्यकी नाईं असंग रहकर, विचरता है ॥ ८ ॥ घटादिक पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाणसेही आदि और अंतवाले सिद्ध होते हैं. देखो ! जो पदार्थ सावयव होवे वह निश्चय आदि अंतवाला होवे ऐसी व्याप्ति (नियम) वाले अनुमानसे पृथिवी-आदि पदार्थ, आदि और अंतवाले सिद्ध होते हैं. जो आकाशादिक अरूपी पदार्थ हैं वे वेदरूप प्रमाणसे आदि व अंतवाले सिद्ध होते हैं. और अपने अनुभवरूप प्रमाणसेभी सर्व पदार्थ-आदि और अंतवाले सिद्ध होते हैं. तासों जो जो पदार्थ आदि और अंतवाले हैं वे सब अवास्तविक हैं ऐसे जान, जगत्‌मेंसे आसक्तिको छोड़कर, ज्ञानीको विचरना चाहिये ॥ ९ ॥ उद्धवजीने कहा कि- आपके कहनेके अनुसार आत्मा स्वयंप्रकाश है और देहादिक द्वैत जड़ है ऐसे निश्चित हुआ

प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनाऽऽत्मसंविदा ॥ आद्यंतवदसज्ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धव उवाच ॥ नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ॥ अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावद्देहेंद्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् ॥ संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥

तो अब संसारका प्रतिभास होना संभवे नहीं; क्योंकि स्वयंप्रकाश आत्मा कि- जो चैतन्यरूप है तिसमें संसारका दीखना संभवे नहीं. और देहादिक कि-जो जड़ है उसकेभी संसारका दीखना संभवे नहीं तब पीछे यह संसार किसके होता है ? हे प्रभु ! संसार किसीकेभी नहीं है ऐसे कहनाभी संभवे नहीं. कारण यह कि- संसार प्रत्यक्ष देखनेमें आता है ॥ १० ॥ आत्मा अविनाशी, रागादिगुणसे रहित, पापपुण्यसे रहित, अज्ञानसे रहित और मलसे रहित है तथा देह जड़ है तब आत्मा और देह कि-जो अग्नि और काष्ठके समान हैं तिनमेंसे संसार किसके हुआ ? दोनोंके स्वभावका विचार किया जाय तौ किसीकेभी संसार होना संभवे नहीं ॥ ११ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि- यह तुम्हारा कहना सत्य है तथापि सिद्धांत यह है कि-इसप्रकार आत्मा और देहका अविवेकही संसारका आश्रयरूप है. आत्माके अज्ञानके हेतु जबलों देह, इंद्रिय और प्राणका संबंध रहे तबलों संसार मि-

ध्या होनेपरभी अज्ञानी पुरुषको दिखायी दिया करता है ॥ १२ ॥ जैसे विषयोंका ध्यान करतेहुए पुरुषके स्वप्नअवस्थासंबंधी अनर्थ मिथ्या होनेपरभी निवृत्त नहीं होते ऐसे विषयोंका ध्यान करतेहुए पुरुषका यह संसार वास्तविक न होनेपरभी निवृत्त नहीं होता ॥ १३ ॥ जैसे नहीं जागेहुए मनुष्यको स्वप्नअवस्था अनेक अनर्थ देती है और वही अवस्था जागनेके अनंतर किसीप्रकारका मोह नहीं कर सक्ती. ऐसे अज्ञानी पुरुषकोभी देहादिक अनेक अनर्थ देते हैं. परंतु वेही देहादिक ज्ञान भये पीछे किसी प्रकारका मोह नहीं कर सक्ते. तासों जीवन्मुक्तके संस्कारके हेतु विषयोंकी स्फूर्ति होवे तोभी किसी प्रकारका मोह नहीं होता ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा और जन्म-मरण आदि ये सब अहंकारके हेतुही प्रतीत होते हैं. आत्माके नहीं. जो आत्माके होवें तौ सुषुप्ति और समाधि आदिमेंभी दीखने चाहिये. जैसे ‘ मैं सुखी हूं ’ ऐसी प्रतीति होती है. ऐसे ‘ चैतन्य सुखी है ’ ऐसी

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥ अहंकारस्य दृश्यंते जन्ममृत्यू च नाऽऽत्मनः ॥ १५ ॥ देहेंद्रियप्राणमनोभिमानो जीवोंऽतरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ॥ सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतंत्रः ॥ १६ ॥

प्रतीति नहीं होती. और सुखादिक पदार्थ दृश्य हैं तासों वे द्रष्टा आत्माके धर्म होने संभवे नहीं ॥ १५ ॥ इससे यह नहीं जानना कि- अहंकारके संसार होवे तौ मुक्तिभी अहंकारकेही होनी चाहिये; क्योंकि ऐसे हो तौ मुक्तिमेंभी अहंकारकी स्थिति माननी पड़ती है; कारण यह कि-अहंकार कोई आत्मासे जुदा नहीं है किंतु आत्मामेंही कल्पित है तासों कल्पितरूप निवृत्त होनेपर मुक्तिमें केवल आत्माकीही स्थिति है. यह आत्माही देह, इंद्रिय, प्राण और मनका अभिमान रखनेवाला इन देहादिकके अंदर जीव है. और गुण, कर्म, सूत्र, महत्तत्त्व और अहंकार-आदि शब्दोंसेभी आत्माही कहा जाता है. जीव कि- जो ईश्वरके आधीन रहकर, संसारमें चारोंओर दौड़ा करता है वह आत्मासे भिन्न नहीं है किंतु ईश्वरही है. तासों कल्पितरूप निवृत्त होनेपर स्वस्वरूपमें रहना यह मुक्ति है. तासों मुक्तिमें अहंकार अवशेष नहीं रहता. किंतु आत्माही अवशेष रहता है. इस आ-

त्माके मिथ्याभूत अहंकारने मिथ्या बंधन कर रक्खा है तासों 'अहंकारकेही संसार है' ऐसा कहना अघटित नहीं ॥ १६ ॥ मन, वचन, प्राण, शरीर और कर्मके बीचमें यह अहंता–ममतारूप संसार जो इंद्रजालकी नाई निर्मूल प्रतीत होता है उसको गुरुकी उपासनासे तीक्ष्ण कियेहुए ज्ञानरूप खड्गसे काटकर, ज्ञानीपुरुष तृष्णारहित होकर, पृथ्वीपर विचरता है ॥ १७ ॥ ज्ञानका स्वरूप विवेकही है. और वह विवेक वेद, स्वधर्म, अपना अनुभव, गुरुका उपदेश और तर्क इन साधनोंसे होता है. विवेकका फल यह है, कि– 'इस जगत्के आदि और अंतमें जो है वही मध्यमें है.' इससे जुदा जगत् नहीं है. जो जगत्का प्रकाशक और जगत्का कारणरूप है उस पदार्थसे जगत् जुदी सत्ता नहीं रखता. ऐसा ज्ञान हो जावे ॥ १८ ॥ जैसे कुंडल–आदि रूपसे

अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म ॥ ज्ञानासिनोपासनया शितेन छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥ ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ॥ आद्यंतयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥ यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ॥ तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमंग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ॥ समन्वयेन व्यतिरेकतश्च ये नैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ॥ भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥

नहीं बना हुआ जो सुवर्ण कुंडल–आदि सुवर्णके बनेहुए अनेक आकारोंके आदि और अंतमें है वही सुवर्ण मध्यकालमें कुंडलादिक अनेक नामरूपोंसे व्यवहारको पाता है. ऐसेही जो मैं इस जगत्के आदि और अंतमें हूं वही मैं मध्यकालमें अनेक नामरूपोंसे व्यवहारको पाता हूं ॥ १९ ॥ ऐसे कार्यको कारणरूप कहकर, अब प्रकाश्यको प्रकाशकरूप कहते हैं. हे उद्धव ! जाग्रत–आदि तीन अवस्थावाला मन तीनों अवस्थाओंके कारणरूप तीन गुण और तीन गुणोंका कार्यरूप इंद्रियां, देवता व पंचमहाभूतमय सब जगत्, जो ज्ञानके अनुस्यूतपनसे प्रकाशता है और जो ज्ञान, ये सब न होवें तबभी समाधि–आदिमें रहता है वही ज्ञान अर्थात् त्रिगुण पदार्थोंसे जुदा चौथा ब्रह्मस्वरूप और सत्यस्वरूप है ॥ २० ॥ जो (कार्य) उत्पत्तिसे पूर्व नहीं रहता और नाश

भये पीछेभी नहीं रहता वह (कार्य) मध्यमेंभी अपने कारणसे जुदा नहीं होता. किंतु केवल कल्पित नामरूप मात्रसे व्यवहारगोचर होता है; कारण यह कि–जिस (कार्य) को जिस (कारण) ने प्रकाश दिया होवे वह (कार्य) उस (कारण) रूपही होता है. जैसे घटादिक कार्य और प्रकाश्य पदार्थ अपनी कारण और प्रकाशकरूप मिट्टीसे जुदे देखनेमें नहीं आते ऐसे यह सब जगत् कि–जो कार्य और प्रकाश्य है वह अपने कारण और प्रकाशरूप ब्रह्मसे जुदा देखनेमें नहीं आता. ऐसे मेरा निश्चय है ॥ २१ ॥ यह विकारोंका समूहरूप प्रपंच कि– जो पहले नहीं था वह प्रपंच पीछे रजोगुणरूप द्वारसे ब्रह्मका कार्यरूप उत्पन्न हुआ है. तथा ब्रह्मसेही प्रकाशित हुआ है और ब्रह्म तो स्वतःसिद्ध व प्रकाशक है तासों एक ब्रह्मही इंद्रियां, तन्मात्रा, मन, देवता व पंचमहाभूतादि विचित्ररूपसे प्रतीत होता है ॥ २२ ॥ इसप्रकार परब्रह्मके विवेकके साधनरूप वेदादिकसे, देहा-

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः ॥ ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेंद्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥ एवं स्फुटं ब्रह्म विवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ॥ छित्त्वाऽऽत्मसंदेहमुपारमेत स्वानंदतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥ नाऽऽत्मा वपुः पार्थिवमिंद्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ॥ मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥ २४ ॥

दिक अनात्म पदार्थोंके निरासके और सद्गुरुकी सहायतासे, अपने स्वरूपके संदेहको काटकर, स्वरूपके आनंदसेही संतुष्ट होकर, सर्व इंद्रियादिकके संगका परित्याग कर देना चाहिये ॥ २३ ॥ देहादिक अनात्म पदार्थोंका परित्याग करना वह इसप्रकारसे करना कि– ‘ शरीर आत्मा नहीं है, कारण यह कि–वह पृथ्वीका विकाररूप है. जो जो पृथ्वीका विकाररूप होवे वह आत्मा नहीं होता. जैसा घड़ा पृथ्वीका विकाररूप है अतएव वह आत्मा नहीं है. ऐसेही इंद्रियां, इंद्रियोंके देवता, प्राण, बुद्धि, चित्त और अहंकार येभी आत्मा नहीं हैं; कारण यह कि– ये सब अन्नके आधारसे रहते हैं. जो जो अन्नके आधारसे रहे वह आत्मा नहीं होवे. इसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्दादिक विषय और प्रकृतिभी आत्मा नहीं हैं; कारण यह कि– वे जड़ हैं; जो जो जड़ है वह आत्मा नहीं. जैसे घड़ा जड़ है तासों वह आत्मा नहीं ’ ऐसे दूसरेभी कितनेएक अनुमानोंसे देहा-

दिक अनात्मपदार्थोंका निरास करना ॥ २४ ॥ इसप्रकार विवेक ज्ञानवाले मुक्त पुरुषके इंद्रियादिकोंके कियेहुए गुण–दोषका संबंध नहीं रहता. मेरे स्वरूपको यथार्थ रीतिसे जाननेवाले पुरुषके विषयोंमें आसक्ति रखनेवाली इंद्रियां वश रहनेसे तो कोई गुण नहीं है और इंद्रियां विक्षेप पानेसे कोई दोष नहीं है. जैसे बादलोंके आने जानेसे सूर्यके किसी प्रकारका गुण दोष नहीं होता ॥ २५ ॥ जैसे आकाश, वायुके शोषणगुणसे, अग्निके दाहकगुणसे, जलके द्रवीकरण गुणसे, पृथ्वीके रजसहितपन गुणसे तथा ऋतुओंके जाते आते शीतोष्णादिक गुणोंसे संबंध नहीं पाता ऐसे अहंकारसे पर आत्माका स्वरूप, संसार देनेवाले सत्व, रज और तमोगुणके मलसे संबंधको प्राप्त नहीं होता ॥ २६ ॥ यद्यपि यह बात इसप्रकार है तथापि मुक्त पुरुष जैसे यथेष्ट आ-

समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सु विविक्तधाम्नः ॥ विक्षिप्यमाणैरुत किं नु दूषणं घनै-रुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥ २५ ॥ यथा नभो वाय्वनलांबुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ॥ तथाऽक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥ तथाऽपि संगः परिवर्ज्जनीयो गुणेषु माया-रचितेषु तावत् ॥ मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥ २७ ॥ यथाऽमयोऽसाधु चिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहान् ॥ एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्व-संगम् ॥ २८ ॥ कुयोगिनो ये विहितांतरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ॥ ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भू-यो युंजंति योगं न तु कर्मतंत्रम् ॥ २९ ॥

चरण करते हैं ऐसे अर्धपक्व ज्ञानीको यथेष्ट आचरण नहीं करना चाहिये. जबलों मनको मलिन करनेवाला मलरूप विषयोंका राग मेरे दृढ़ भक्तियोगसे निवृत्त न हो जाय तबलों मायारचित विषयोंका संग छोड़ देना चाहिये ॥ २७ ॥ जिस रोगकी यथार्थ चिकित्सा न हुई होवे वह रोग वारंवार प्रगट होकर, मनुष्योंको दुःख देता है. इसीप्रकार जिस मनके रागादि दोष और उनके मूलरूप कर्म निःशेष भस्म न हो गये होवें वह मन वारंवार पुत्रादिकमें आसक्त होकर, अर्धपक्व ज्ञानीको भ्रष्ट कर देता है॥ २८॥ यह नहीं जानना कि–अपक्व योगी 'इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट' हो जाते हैं; क्योंकि यदि कदाचित् अपक्व योगी विषयोंके संगसे योग-मेंसे भ्रष्टभी हो जायं तौभी वे परिणाममें शुभ फलही पाते हैं. तासों विषयोंके संगके भयसे योगके मार्गसे नहीं चढ़ना ऐसे मनमें

नहीं लाना. जो अपक्व योगी देवतानसे असहनताके हेतु प्रेरण किये जाते बंधु और शिष्यादिरूप विघ्नोंसे योगमेंसे भ्रष्टभी किये जावें तौभी वे पहले अभ्यासबलसे जन्मांतरमेंभी पीछा योगके मार्गकोही पकड़ते हैं. परंतु कर्मके विस्तारके मार्गको नहीं पकड़ते ॥ २९ ॥ किसीसेभी सर्वथा कर्मका परित्याग नहीं हो सक्ता इसलिये विद्वानोंकेभी पीछा संसार हो जायगा ऐसी शंका नहीं करनी; क्योंकि यह देहही किसी प्रारब्धके संस्कारकी प्रेरणासे मरणपर्यंत भोजनादिक कर्म करता है और उन कर्मोंसे पुष्टि-आदि विकारकोभी पाता है. परंतु अपने स्वरूपसुखके अनुभवसेही तृष्णारहित भयाहुआ विद्वान् पुरुष तो उस देहमें रहनेपरभी निरहंकारपनके कारण हर्ष और शोकादिकसे संसारको नहीं पाता ॥ ३० ॥ ज्ञानी पुरुष जब देहकोभी नहीं देखता तब उसके देहसंबंधी कर्मोंसे विकार होनेकी तो शंकाभी किसप्रकार की जाय ? जिसकी बुद्धि आत्मामें स्थित हो ऐसा ज्ञानीपुरुष

करोति कर्म क्रियते च जंतुः केनाप्यसौ चोदित आनिपातात् ॥ न तत्र विद्वान्प्रकृतौ स्थितोऽपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥ तिष्ठंतमासीनमुत व्रजंतं शयानमुक्षंतमदंतमन्नम् ॥ स्वभावमन्यत्किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदि स्म पश्यत्यसदिंद्रियार्थं नानाऽनुमानेन विरुद्धमन्यत् ॥ न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥ पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमंग ॥ निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥

बैठे, खड़े, चलते, सोते, पेशाब करते, अन्न खाते वा दूसरी कोईभी क्रिया करतेहुए अपने देहको बिलकुल नहीं जानता ॥ ३१ ॥ इंद्रियादिकवाले पुरुषके देहादिकका सर्वथा अदर्शन होना संभवे नहीं तासों ज्ञानी पुरुष कदाचित् बहिर्मुख इंद्रियोंके विषयको देखे तथापि वह दूसरे पदार्थको 'वास्तविक है' ऐसे नहीं मानता; कारण यह कि–'विषय वस्तुरूप नहीं हैं. क्योंकि वे अनेक हैं. जो जो अनेक होवें वे वस्तुरूप नहीं होते. जैसे स्वप्न अनेकरूप है, उसीसे वह वस्तुभूत नहीं है, ऐसे अनुमानसे दूसरे (आत्मासे भिन्न) पदार्थका बाध कियाहुआ होता है. जैसे जागे पीछे संस्कारके हेतु स्फुरण होते और उसीसे अपने आप अवास्तविक जाने जाते स्वप्नके विषयको जागा हुआ पुरुष सत्य नहीं मानता. ऐसे ज्ञानी पुरुष संस्कारके हेतु स्फुरण होते और अवास्तविकरूप जानेहुए विषयको वस्तुरूप नहीं मानता ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! आत्माको बद्धावस्था छोड़ देती है और मुक्ता-

वस्था ग्रहण करती है तासों आत्मामें विकार होता होगा, ऐसी शंका नहीं करनी; क्योंकि बद्धावस्थामें गुणोंसे और कर्मोंसे विचित्र अज्ञानके कार्यरूप जो देहेंद्रियादिक, अध्याससे अपने स्वरूपमें अविवेकके हेतु मिलेहुए मान लिये गये होते हैं वेही देहेंद्रियादिक, मुक्तावस्थामें ज्ञानसे निवृत्त हो जाते हैं. आत्मा तो किसीरूपसे न तौ ग्रहण किया जाता है और न छोड़ा जाता है मुक्ति जो कियाका फल होवे तो आत्मामें विकार होवे परंतु कल्पित पदार्थोंकी जो निवृत्ति है वही मोक्ष है तासों बंध वा मोक्ष आत्माका स्पर्श बिलकुल नहीं करता. अतएव आत्मा निर्विकारही रहता है ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्यका उदय मनुष्योंकी आंखोंके अंधकारकोही दूर करता है परंतु घटादिक पदार्थ कि-जो प्रथमसेही विद्यमान हैं उनके कुछभी विकार नहीं करता. ऐसे उत्तम और निपुणतासे भरीहुई मेरे संबंधी आत्मविद्या मनुष्यकी बुद्धिके मोहको हटाती है परंतु आत्मामें किसी प्रकारकी अदल बदल

यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते॥ एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्या-त्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ॥ एकोद्वि-तीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरंति ॥ ३५ ॥

नहीं करती. आत्मा तौ घटादिक पदार्थकी नाईं प्रथमसे जिस स्थितिमें है उसी स्थितिमें रहता है ॥ ३४ ॥ यह सबको जानने-वाला आत्मा अपरोक्षताके हेतु निरंतर प्राप्तही है तासों नया प्राप्त होता है ऐसे नहीं है. स्वयंप्रकाशरूपही है तासों उसमें अ-ज्ञानरूप मल बिलकुल आयाही नहीं कि-जिसको निकालते समय आत्मामें विकार उत्पन्न हुआ कहा जाय. अजन्मा है तासों उसके उत्पत्तिरूप विकार नहीं हुआ है. वह आप ज्ञानस्वरूप है तासों उसके नया ज्ञान उत्पन्न कराकर, संस्कार दिया जाय ऐसे नहीं है. देश व कालसे परिच्छेदको प्राप्त नहीं होता तासों उसके अस्तित्व, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय वा नाशरूप कोई वि-कार नहीं है. एक स्वरूप है और उससे व्यतिरिक्त, कुछभी नहीं है तासों दूसराभी कोई विकारका कारण उसके बिलकुल नहीं है. यह आत्मा वाणी वा दूसरी इंद्रियोंका विषय नहीं है तथापि उसीकी प्रेरणासे वाणी और दूसरीभी इंद्रियां अपने २ काम करती हैं तासों आत्मा स्वयंप्रकाश, अजन्मा, ज्ञानस्वरूप और देश-कालके परिच्छेदसे रहित है ॥ ३५ ॥

केवल यानी अभिन्न आत्मामें जो भेद दीख पड़ता है वह सब मनकीही भ्रांति है; क्योंकि जैसे सर्पकी भ्रांतिका आश्रय रज्जु विना दूसरा कोईभी नहीं है ऐसे अपने आत्माविना भेद भ्रमका आश्रय दूसरा कोईभी नहीं है ॥ ३६ ॥ ' नाम व रूपोंसे ग्रहण करनेमें आता और पंचभूतात्मक यह द्वैत वास्तविक है और ब्रह्मका निरूपण करनेवाले वेदांतवाक्य यजमानकोही ईश्वर नियत करके, उसीकी स्तुति करते हैं. ' ऐसी बात पंडितपनका मिथ्याभिमान रखनेवाले मीमांसकलोकही करते हैं परंतु तत्त्ववेत्ता पुरुष नहीं करते; कारण यह कि-ऐसे जानना यह बात अत्यंत निःसार है. वस्तुतः द्वैत नाम रूपात्मक होनेसे तथा दृश्य होनेसे और पंचभूतात्मक होनेसे स्वप्नकी नाईं अवास्तविक हैं इत्यादि अनुमानोंसे तथा वेदकी श्रुतियोंसे द्वैतका बाध हो जाता है. ऐसेही वेदांतवाक्य

एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले ॥ आत्मन्नृते स्वामात्मानमवलंबो न यस्य हि ॥ ३६ ॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पंचवर्णमबाधितम् ॥ व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वयं पंडितमानिनाम् ॥ ३७ ॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युंजतः काय उत्थितैः ॥ उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥ ३८॥ योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ॥ तपोमंत्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः ॥ योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदान्शनैः ॥ ४० ॥

यज्ञादिकके विधिवाक्योंके साथ कुछभी संबंध नहीं रखते और यजमान अकर्ता, अभोक्ता और इंद्रियादिकसे रहित नहीं हैं तासों ऐसे आत्माका प्रतिपादन करनेवाले वेदांतवाक्य यजमानपर होना अघटित है ॥ ३७ ॥ इसप्रकार मैंने ज्ञानयोगका तथा उसके अंगोंका निरूपण किया. अब ज्ञानयोगमें निष्ठा रखनेवाले पुरुषको विघ्ननिवृत्तिके वास्ते कौन २ उपाय करने चाहिये वे कहता हूं. योग साधते साधते जिसका योग पक्व न हुआ होवे ऐसे योगीका शरीर जो बीचमें पैदा भयेहुए रागादिक विघ्नोंसे पराभवको प्राप्त हो जावे तो वहां वक्ष्यमाण उपाय करना ॥ ३८ ॥ सर्दी और गर्मी-आदि विघ्नोंको चंद्र व सूर्य-आदिकी धारणासे निवृत्त करना. वायु-आदि रोग उत्पन्न होवें तब उनको वायुकी धारणासहित आसनोंसे मिटाना. दुष्टग्रह और सर्पादिकसे भये हुए विघ्नोंको तप, मंत्र और औषधोंसे दूर करना ॥ ३९ ॥ कामक्रोधादिक कितनेएक विघ्नोंको मेरे ध्यानसे और नामकीर्तना-

दिकोंसे हटाना. दंभ और मान-आदि विघ्नोंको योगेश्वरोंके सेवनसे धीरे २ नष्ट कर देना ॥ ४० ॥ कितनेएक योगी इस देहको अनेक उपाय करके, जरा रोगादिकसे रहित और स्थिर युवा अवस्थावाला बनाकर, ज्ञानमें निष्ठा नहीं रखके, सिद्धियोंमें लग जाते हैं ॥ ४१ ॥ ऐसे करना यह निपुण पुरुषोंके आदर करनेके योग्य नहीं हैं. कारण यह कि-शरीर कभी न कभी अवश्य नाश हो जायगा इसमें कुछभी संशय नहीं तासों उसके वास्ते परिश्रम करना यह सर्वथा व्यर्थ है ॥ ४२ ॥ योगका निरंतर सेवन करते करते प्राणायामादिकके प्रभावसे शरीर समर्थ हो जाय तौभी मेरे परायण रहनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको समाधि त्याग कर, देहकी सिद्धिपर विश्वास नहीं रखना चाहिये ॥ ४३ ॥ इसप्रकार विघ्नोंके उपाय कहकर, मैंने योगसाधनकी

केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ॥ विधाय विविधोपायैरथ युंजंति सिद्धये ॥ ४१ ॥ न हि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ॥ अंतवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् ॥ तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान्योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥ योगचर्यामिमां योगी विचरन्मद्व्यपाश्रयः ॥ नांतरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ सुदुस्तरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ॥ यथांऽजसा पुमान्सिध्येत्तन्मे ब्रूह्यंजसाऽच्युत ॥ १ ॥

रीति कही- परंतु जो योगी मेरा शरण लेता है. उसके तौ विघ्न आनेकी शंकाभी नहीं रहती. मेरा आश्रय लेकर, इसप्रकार योग साधता हुआ निःस्पृह व स्वरूपसुखका अनुभव करनेवाला योगी किसी विघ्नसे दुःखी नहीं होता. सर्व विघ्नोंका मूल स्पृहा है और वह स्पृहा मेरा आश्रय लेनेवालेकी निवृत्त हो जाती है. तासों विघ्नोंसे प्रतिहत होकर, वह पुरुष स्वरूपके आनंदसे पूर्ण हो जाता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ उन्तीसवें अध्यायमें जिस भक्तियोगका पहले विस्तारपूर्वक निरूपण किया है उस भक्तियोगको भगवान् अपने भक्त उद्धवजीको पीछा संक्षेपसे कहेंगे ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि- हे श्रीकृष्ण ! मैं मानता हूं कि-जिसने अपना मन वश न कर लिया हो उस पुरुषसे आपके कथनानुसार योग साधना अतिकठिन है अतएव प्रयास किये विना मनुष्यको मोक्ष

मिल जाय ऐसा उपाय मुझको सरल रीतिसे समझा कर, कहो ॥ १ ॥ हे कमलनयन ! प्रायः मनको वश करनेके वास्ते योगीजन मनोनिग्रह करनेमें अतिबहुत प्रयत्न करते हैं तथापि वह वश नहीं होता तब थककर, विषादको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ अतएव सार-असारका विवेक करनेमें चतुर लोक सकल आनंदको परिपूर्ण करनहारे आपके चरणारविंदकाही सुखपूर्वक सेवन करते हैं. जो लोग योग और कर्मसे अभिमानी होकर, आपके चरणारविंदकी सेवा नहीं करते, वे लोग आपकी मायासे पराभव पाते हैं. आपके भक्तोंके आपकी माया उपद्रव नहीं करती तासों वे योग और कर्मोंसे अभिमानी नहीं होते. और दूसरे लोग आपकी मायासे मोहित होकर, केवल योग और कर्मोंका अभिमानही रखते हैं परंतु मुक्त नहीं होते. और आपके भक्त तो आपकी कृपासे

प्रायशः पुंडरीकाक्ष युंजंतो योगिनो मनः ॥ विषीदंत्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनंददुघं पदांबुजं हंसाः श्रयेरन्नरविंदलोचन ॥ सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबंधो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ॥ योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥ तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ॥ को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥

कृतार्थ हो जाते हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे सर्वबंधु ! जिनके आपके विना दूसरा शरण नहीं है ऐसे दासलोगोंके आप आधीन होकर, रहो यह कोई आश्चर्यकी बात है ? नहीं; क्योंकि-आपने रामावतारमें स्वयं, ब्रह्मादिक देवता जिनके चरणपीठमें उत्तम मुकुटोंके अग्र विसा करते हैं ऐसे होनेपरभी वानरोंके साथ प्रेमसे मित्रता करी ॥ ४ ॥ अतएव आप कि- जो आश्रित लोगोंके सर्व पुरुषार्थ सिद्ध करनेवाले और सर्व प्राणीमात्रके आत्मा होनेसे परमप्रिय और ईश्वर होनेसे अवश्य भजने योग्य हो. उनको तजकर, कौन पुरुष ऐश्वर्यके अर्थ वा मोक्षके निमित्त दूसरे देवतानका अथवा धर्मज्ञानादिक साधनोंका सेवन करे ? बलि और प्रल्हाद-आदि भक्तोंपर जो आपने उपकार किया है अथवा अंतर्यामीपनसे अपनेही आत्माका जो आपने उपकार किया है

उसको जो पुरुष जानता होवे वह तौ कदापि (कभीभी) आपको छोड़कर, दूसरेका आश्रय नहीं लेता. आपकी सेवा करनेपर आप स्वर्गादिक सुख देते हो तथापि उस सुखका कौन सेवन करे ? कारण यह कि–स्वर्गादिसुख, केवल विषयभोगके वास्ते और तदनंतर आपका विस्मरण करानेके वास्तेही हैं. आपके चरणरजके सेवक हम लोगोंको तौ धर्मादिक कोईभी साधन किये विनाभी जो चाहिये वह मिल जाता है तासों हम दूसरे साधनोंका अनुष्ठान क्यों करे ? ॥ ५ ॥ हे प्रभु ! जो आप बाहिर आचार्यरूपसे और भीतर अंतर्यामीरूपसे प्राणियोंकी विषयवासनाओंको निवृत्त करके उनको अपने स्वरूपका दर्शन देते हो उन आपके कियेहुए उपकारका स्मरण करते और जिनको परमानंद पूर्ण प्राप्त हो गया है ऐसे ज्ञानीलोग ब्रह्माके जितने बड़े आयु-

नैवोपयंत्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषाऽपि कृतमृद्धमुदः स्मरंतः ॥ योंऽतर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ॥ गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हंत ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमंगलान् ॥ यान्श्रद्धया चरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥ कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ॥ मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥

ष्यसेभी आपके कियेहुए उपकारका बदला नहीं दे सकते. आपका बदला तौ आपकी आत्यंतिक सेवा और आत्मनिवेदनसेही दिया जा सकता है ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–अतीव प्रीतिपात्र उद्धवजीने इसप्रकार भगवान्से प्रार्थना करी तब जगत् जिनका एक खिलौना है ऐसे और अपनी सत्व, रज और तमरूप शक्तियोंसे जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप तीन मूर्तियां धारण की हैं ऐसे, सर्व लोकोंके प्रभु श्रीकृष्ण भगवान्ने मंद मंद मनोहर मुसकुरा कर, प्रीतिसे इसप्रकार कहा ॥ ७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि– हे प्रिय उद्धव ! अब मैं तुमको मेरे अतिमंगलकारी सहजधर्म कहता हूं सो सुनो. जिन धर्मोंका श्रद्धासे अनुष्ठान करता हुआ पुरुष दुर्जय मृत्युको सहजमें जीत जाता है ॥ ८ ॥ मेरा स्मरण करते रहना. और जो कर्म करे वे सब मेरे निमित्त करना. धीरे २ मन और चित्त मेरेमेंही लगा देना. मेरे धर्मोंमेंही मन व चित्तकी रुचि राखनी ॥ ९ ॥

जिनमें मेरे साधुभक्त निवास करते हों ऐसे पवित्र देशोंमें रहना. देव,असुर और मनुष्योंमें जो मेरे भक्त हुए हैं और उन्होंने जो कर्म किये हैं वे कर्म करना॥ १०॥ आप इकल्ला अथवा दूसरोंको अपने साथ लेकर, गान, नृत्य—आदि मेरे आगे करना. और चक्रवर्तीकी विभूतियां छत्र-चमर-आदि मेरे अर्पण करके पर्वणीसंबंधी यात्रा और महोत्सव करने ॥ ११ ॥ निर्मल अंतःकरणवाले भक्तको उचित है कि-सर्व प्राणीमात्रमें और अपने आत्मामेंभी मुझको सदा विराजमान देखा करे. कि—जो मैं आकाशकी नाई असंग होनेके हेतु सर्वमें रहनेपरभी आवरणरहित और बाहिर व भीतर सदा परिपूर्ण हूं ॥ १२ ॥ हे महाप्राज्ञ ! इसप्रकार केवल ज्ञानरूप दृष्टि

देशान्पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ॥ देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥ पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ॥ कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरंतरपावृतम् ॥ ईक्षेताऽऽत्मनि चाऽऽत्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥ इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ॥ सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिंगके ॥ अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पंडितो मतः ॥ १४ ॥ नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ॥ स्पर्धाऽसूया तिरस्कारा साहंकारा वियंति हि ॥ १५ ॥ विसृज्य स्मयमानान्स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ॥ प्रणमेदंडवद्भूमावाश्वचांडालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ॥ तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

रखकर, सर्व प्राणीमात्रको मद्रूप मान कर, सर्वप्राणीमात्रका जो सत्कार करे उसको मैं पंडित मानता हूं ॥ १३ ॥ ब्राह्मणमें व अंत्यज जातिमें, चोरमें व ब्राह्मणोंके भक्तमें, सूर्यमें और चिनगारीमें, शांतमें और क्रूरमें जो पुरुष समदृष्टि होकर, मुझको देखे वह पंडित कहलाता है ॥ १४ ॥ जो पुरुष सर्व मनुष्योंमें वारंवार मेरी भावना करे उसकी समके ऊपरकी स्पर्द्धा, उत्तमके ऊपरकी ईर्ष्या और हीनके ऊपरका तिरस्कार तथा अपने आत्मासंबंधी अहंकार ये सब तुर्त अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥ हँसतेहुए अपने मित्रोंको, देहाभिमानसे होतेहुए ऊंच नीच पनके विचारको और उससे होतीहुई लज्जाको छोड़ कर, कुत्ते, चांडाल, बैल और गधेपर्यंत सर्व प्राणीमात्रको पृथ्वीपर पड़कर, दंडवत् प्रणाम करना ॥१६॥ जबलों सर्व प्राणीमात्रमें मेरी भावना उत्पन्न न होवे तबलों

पूर्वोक्त रीतिसे मन, वचन व कायकी वृत्तियोंसे उपासना करनी ॥ १७ ॥ इसप्रकार करनेसे सर्वमें ईश्वरबुद्धि होती है और ईश्वर-बुद्धि होनेसे ब्रह्मविद्या प्राप्त हो जाती है. और ब्रह्मविद्या प्राप्त होनेपर सर्व संशय निवृत्त हो जाते हैं. और संशय निवृत्त भये पीछे सर्व ब्रह्मरूपही देखनेमें आता है तदनंतर किसी क्रियाकी आवश्यकता नहीं ॥ १८ ॥ मैं मानता हूं कि-मन, वचन व कायकी वृत्तियोंसे सर्व प्राणीमात्रमें मेरा भाव रखना यही सर्व उपायोंमें श्रेष्ठ उपाय है ॥ १९ ॥ हे उद्धव ! मेरे संबंधी निष्काम धर्मके आरंभमें समयपर भूल चूक हो जाय तथापि उसमें किसी प्रकारकी हानि नहीं होती; कारण यह कि-निर्गुणपनके

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ॥ परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥ अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥ न ह्यंगोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ॥ मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥ यो यो मयि परे धर्मः कल्पते निष्फलाय चेत् ॥ तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥ २१ ॥ एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ॥ यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः ॥ समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥ अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ॥ एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥

लिये यही धर्म उत्तम है ऐसे मैंने स्वयं निश्चय किया है ॥ २० ॥ हे उद्धव ! भय और शोकादिकसे होतेहुए पलायन और चिल्लाने-आदि क्लेशोंके सदृश दूसराभी जो जो लौकिक व्यर्थ परिश्रम होता है वहभी, मैं कि-जो सर्वसे पर हूं उसमें निष्कामपनसे अर्पण कर देनेमें आवे तो धर्मरूपही हो जाता है. तब मेरे धर्मके आरंभमें किसी प्रकारकी हानि नहीं होती इस विषयमें अधिक क्या कहें ? ॥ २१ ॥ अवास्तविक और विनाशी मनुष्यदेहसे इसी जन्ममें सत्य और अविनाशी मेरे स्वरूपको प्राप्त होना यही बुद्धिमान् पुरुषोंकी बुद्धिकी चातुरी हैं. और विवेकी पुरुषोंका विवेक है ॥ २२ ॥ यह सर्व ब्रह्मवादका संग्रह कि-जो देवतानकोभी मिलना अतिदुर्लभ है. वह मैंने संक्षेप और विस्तारपूर्वक तुमसे कहा ॥ २३ ॥ मैंने अत्यंत स्पष्ट युक्तियोंवाला

ईश्वर अंतर्यामी भगवान्, भाग्यहीन मनुष्यके कियेहुए उद्यमकी नाई तुरंत उन ऋषिके निकटसे अंतर्धान हो गये ॥ ३३ ॥ हे शौनक ! भगवान्के पीछे वड़का पेड़, जल और जगत्का प्रलय ये सब क्षणमात्रमें अंतर्हित होगये. और मार्कंडेय अपने आश्रममें पूर्ववत् बैठ रहे ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दशवें अध्यायमें महादेवने पधार कर, प्रसन्न हो, मार्कंडेयको वरदान दिये. और फिर अत्यंत प्रीतिसे भाषण करके, उनका सत्कार किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि—नारायणके रचेहुए इस योगमायाके वैभवका इस प्र-

तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः ॥ तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ॥ वैभवं योगमायायास्तमेवशरणं ययौ ॥ १ ॥ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ प्रपन्नोऽस्म्यंघ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ॥ यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यंति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ॥ रुद्राण्या भगवान्रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ॥ पश्येमं भगवन्विप्रं निभृतात्मेंद्रियाशयम् ॥ ४ ॥ निभृतोदझषव्रातं वातापाये यथाऽर्णवम् ॥ कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥

कार अनुभव करके, वे मार्कंडेय इन भगवान्काही शरण लेकर, इस प्रकारसे बोले ॥ १ ॥ मार्कंडेयने कहा कि—हे हरि ! शरणागतोंके अभय देनेवाले आपके चरणमूलके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं. ज्ञानके समान प्रतीत होतीहुई जिन आपकी मायासे आपके भजनविना विद्वत्ताका अभिमान रखनेवाले पेरे जैसे लोक मोहित हो जाते हैं ॥ २ ॥ सूतजीने कहा कि—बैलपर, बिराजकर पार्वतीके साथ आकाशमें विचरते और गणोंसे घिरेहुए महादेवने एक दिन समाहित चित्तवाले इन मार्कंडेय मुनिको देखा ॥ ३ ॥ फिर पार्वतीने इन मुनिको देखकर, महादेवसे कहा कि—हे भगवन् ! जैसे वायु न होवे उस समय डरते २ जल और मगरसमूह—आदि स्थिर रहते हैं ऐसे जिसके देह, इंद्रियां और मन निश्चल हो गये हैं ऐसे समुद्रकी नाईं ......

जैसी स्थितिका था ॥ ...

शरीरके भीतर पैठ गये. और वहां उसके छोटेसे उदरमेंभी यह सब जगत् प्रलयसे पहले जैसी स्थितिका था ... और ईश्वर-
तिससे वे विस्मित होकर. मोहित हो गये ॥ २७ ॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, नक्षत्रगण, पर्वत, समुद्र, द्वीप, वर्ष (... और इन दोनों ...
शायें, देवता, दैत्य, वन, देश, नदियां, पुर (शहर), खाने, किसान लोगोंके गांव, गोकुल, आश्रम, वर्ण और इन दोनों ...
वृत्तियां ॥ २८ ॥ पंचमहाभूत, इन भूतोंसे भयेहुए पदार्थ, अनेक युग और कल्पोंकी कल्पना करानेवाला काल और दूसराभी
जो कुछ व्यवहारका कारण है वह सब कि-जो उस बालककी सत्तासेही सत्तावाला हो जैसा प्रतीत होता है. उस सबको मार्कं-

खं रोदसी भगणानद्रिसागरान्द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् ॥ वनानि देशान्सरितः पुराकरान्खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥ महांति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ॥ यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥ २९ ॥ हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ॥ विश्वं विपश्यन् श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तोन्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥ तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ॥ तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपांगनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥ अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ॥ अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥ तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ॥ अंतर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥

डेयने देखा ॥ २९ ॥ हिमालय, पुष्पवहा नाम नदी, अपना आश्रम और उसमें रहनेवाले ऋषिभी देखनेमें आये. मार्कंडेय यह सब
देखते थे इतनेमें तौ इस बालकके श्वासके फेंकनेसे वे समुद्रके जलमेंमें बाहिर आ पड़े ॥ ३० ॥ तहां पृथ्वीके ऊंचे भागमें उगा-
हुआ बड़ और उसके पत्तेके दोनेमें सोयाहुआ बालक देखनेमें आया. बालकने प्रेमके हेतु अमृतके समान मंदहास्यसहित ने-
त्रकी अनी यानी कटाक्षसे उनके सन्मुख देखा ॥ ३१ ॥ फिर अत्यंत क्लेश पायेहुए मार्कंडेयमुनि अपने हृदयमेंही विराजेहुए
भगवान्रूप बालकको नेत्रसे देखकर, उनका आलिंगन करनेके वास्ते उनके निकट गये ॥ ३२ ॥ इतनेमें तौ वे साक्षात् योगके

डेय मुनिने किसी समय पृथ्वीके ऊंचे भागपर फूल व पल्लवोंसे शोभायमान एक कोमल वड़का पेड़ देखा ॥ २० ॥ इस वड़के ईशानकोनकी शाखामें पत्तेके दोनेमें सोयाहुआ और कांतिसे अंधकारको हटाताहुआ एक बालकभी देखनेमें आया ॥ २१ ॥ कैसा है वह बालक ? कि-जिसका अमूल्य मरकतमणिकासा श्याम बरन है, शोभायमान कमलकासा मुख है. शंखसी गर्दन है. विशाल वक्षःस्थल है. सुंदर नासिका व सुंदर भौंह हैं ॥ २२ ॥ श्वाससे कंपायमान केशोंकी छबि छा रही है. भीतरकी तर्फ शंखकी नाईं आंटी खायेहुए सुंदर कानोंमें दाड़िमके फूल लगेहुए है. विद्रुम (मूंगा) केसे अरुण होंठकी कांतिसे अमृतसा

प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ॥ शयानं पर्णपुटके ग्रसंतं प्रभया तमः ॥ २१ ॥ महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपंकजम् ॥ कंबुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुंदरभ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्वासैजदलकाभातं कंबुश्रीकर्णदाडिमम् ॥ विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥ पद्मगर्भारुणापांगं हृद्यहासावलोकनम् ॥ श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४ ॥ चार्वंगुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणांबुजम् ॥ मुखे निधाय विप्रेंद्रो धयंतं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनांबुजः ॥ प्रहृष्टरोमाऽद्भुतभावशंकितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥ तावच्छिशोर्वैश्वसितेन भार्गवः सोंऽतःशरीरं मशको यथाऽऽविशत् ॥ तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुरा मुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७ ॥

स्वच्छ मंदहास्य कछुक अरुण प्रतीत हो रहा है ॥ २३ ॥ कटाक्ष कमलके गर्भकेसे अरुण हैं. सुंदर मंदहास्यपूर्वक देखना है. पीपलके पत्रकेसे उदरमें श्वाससे कंपायमान होतीहुई बलियों (पेटमें पड़ीहुई रेखावों) से चंचल और गंभीरनाभि शोभा दे रही है ॥ २४ ॥ वह बालक सुंदर अँगुलियोंवाले दोनों हाथोंसे कमलकेसे चरणको ऊंचा लेकर, मुखमें लेकर, चूस रहा था. इस बालकको देखकर, मार्कंडेयमुनि अति विस्मित हुए ॥ २५ ॥ इनके दर्शनसे परिश्रम निवृत्त होगया. तब आनंदके हेतु जिनके नेत्रकमल और हृदयकमल प्रफुल्लित हुए हैं और अद्भुतभावके देखनेसे जिनके रोम खड़े हुए हैं ऐसे मार्कंडेयमुनि डरते २ उस बालकको पूंछनेके लिये उसके निकट गये ॥ २६ ॥ इतनेमें तो ये मार्कंडेयमुनि बालकके श्वासके साथ मच्छरकी नाईं ...

देखकर,-घबरायेहुए मार्कंडेय मुनि अत्यंत त्रासको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ इस प्रकार मार्कंडेयमुनि देखतेहांं रहे ३
तो तरंगोंके हेतु महाभयंकर, वायुसे घूर्णित जलवाला और बरसतेहुए मेघोंसे पूर्ण होताहुआ, महासमुद्र द्वीप, खंड और
पर्वतोंके साथ संपूर्ण पृथ्वीके ऊपर फिर गया ॥ १४ ॥ पृथ्वी, अंतरिक्ष और स्वर्गमें रहनेवाले लोक तथा ज्योतिर्गण
व दिशायें इन सबके साथ त्रिलोकी जलमें बूड़ गयी. उस समय केवल एक मार्कंडेय मुनि अवशेष रहे. सो वे जटा-
को खुली छोड़कर जड़ और अंधकी नाई जलमें भ्रमण करने लगे ॥ १५ ॥ भूंख और प्याससे व्याप्त, मगर और तिर्मिंगिलोंसे

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभंजनाघूर्णितवार्महार्णवः ॥ आपूर्यमाणो वरषद्भिरंबुदैः क्ष्मामप्यधा-
द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥ सक्ष्मांतरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सहदिग्भिराप्लुतम् ॥ स
एकएवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटाजडांधवत् ॥ १५ ॥ क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिंगिलैरुपद्रु-
तो वीचिनभस्वता हतः ॥ तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥
क्वचिद्गतो महाऽवर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् ॥ यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योऽन्यघातिभिः
॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ॥ क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुता-
र्दितः ॥ १८ ॥ अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्म-
नः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः ॥ न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लव-
शोभितम् ॥ २० ॥

उपद्रवयुक्त, तरंगोंवाले पवनसे प्रहार कियेहुए, अपार अंधकारमें पड़ेहुए और भटकतेहुए तथा परिश्रम पातेहुए महामुनि आका-
श, दिशा व पृथ्वीकी सुध भूल गये ॥ १६ ॥ कहीं तो वे महाभँवरमें गिर रहे थे, कहीं तरंगोंसे ताड़ित हो रहे थे कहीं परस्पर
घात करनेवाले जलजंतु उनको खा रहे थे ॥ १७ ॥ वे कहीं शोक, कहीं मोह, कहीं दुःख, कहीं सुख, कहीं भय, कहीं मृत्युको
पा रहे थे. कहीं रोग-आदिसे पीड़ित हो रहे थे ॥ १८ ॥ भगवान्की मायासे आवृतचित्तवाले उन मुनिके उस जलमें भ्रमण
करते २ एक हजारखर्व यानी एक शंख वर्ष १००००००००००००० व्यतीत हो गये ॥ १९ ॥ इस समुद्रमें भटकतेहुए मार्क-

मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नवमें अध्यायमें भगवान्‌की मायाके दर्शनकी इच्छावाले और प्रलयके समुद्रमें वारंवार गोता खातेहुए मार्कंडेयमुनिको बालकरूप भगवान्‌के मायिक स्वरूपका दर्शन हुआ यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि–बुद्धिमान् मार्कंडेयमुनिने इस प्रकार नरके मित्र भगवान् नारायणकी स्तुतिकी. तब प्रसन्न होकर, नारायणने मार्कंडेयसे कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ ! तुम चित्तकी एकाग्रतासे, मेरी फलाभिसंधानरहित भक्तिसे तथा

सूत उवाच ॥ संस्तुतो भगवानित्थं मार्कंडेयेन धीमता ॥ नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भो भो ब्रह्मर्षिवर्योसि सिद्ध आत्मसमाधिना ॥ मयि भक्त्याऽनपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥ वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया ॥ वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ॥ वरेणैतावता ऽलं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥ ४ ॥ गृहीत्वाऽजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ॥ मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षगोचरः ॥ ५ ॥ अथाप्यंबुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ॥ द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

तप, स्वाध्याय और जितेंद्रियपनसे सिद्ध हुए हो ॥ २ ॥ तुमने जो नैष्ठिकब्रह्मचर्य धारण किया इससे हम तुमपर प्रसन्न हुए हैं. तुम्हारा कल्याण होगा. वर देनेवालोंके स्वामी हम तुमको वरदान देनेके वास्ते कहते हैं सो तुम मनवांछित वर मांगो ॥ ३ ॥ मार्कंडेयमुनिने कहा कि–हे देवदेवेश ! हे शरणागतोंके दुःख मिटानेवाले ! हे अच्युत आपने वरदान देनेके वास्ते कहा इससे आपने उत्कर्ष दिखाया. परंतु मेरे वरदानकी इच्छा नहीं है, आपने जो दर्शन दिया यही मुझको बहुत बड़ा वरदान मिल चुका ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक देवता जिन आपके लक्ष्मीवाले चरणकमलोंके दर्शनके योगके बलसे परिपक्व भयेहुए मनसे प्राप्त होकर, कृतार्थ होते हैं वे आप मेरे नेत्रगोचर हुए. अब इससे बढ़कर, दूसरा कौन वरदान है ? ॥ ५ ॥ तथापि हे कमदललो-

इस प्रकार मार्कंडेयमुनि देखतेहो रहे ३
देखकर,–घबरायेहुए मार्कंडेय मुनि अत्यंत त्रासको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ महासमुद्र द्वीप, खंड और
तौ तरंगोंके हेतु महाभयंकर, वायुसे घूर्णित जलवाला और बरसतेहुए मेघोंसे पूर्ण होताहुआ,
पर्वतोंके साथ संपूर्ण पृथ्वीके ऊपर फिर गया ॥ १४ ॥ पृथ्वी, अंतरिक्ष और स्वर्गमें रहनेवाले लोक तथा ज्योतिर्गण
व दिशायें इन सबके साथ त्रिलोकी जलमें बूड़ गयी. उस समय केवल एक मार्कंडेय मुनि अवशेष रहे. सो वे जटा-
को खुली छोड़कर जड़ और अंधकी नांई जलमें भ्रमण करने लगे ॥ १५ ॥ भूंख और प्याससे व्याप्त, मगर और तिमिंगिलोंसे

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभंजनाघूर्णितवार्महार्णवः ॥ आपूर्यमाणो वरषद्भिरंबुदैः क्ष्मामप्यधा-
द्द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥ सक्ष्मांतरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सहदिग्भिराप्लुतम् ॥ स
एकएवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटाजडांधवत् ॥ १५ ॥ क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिंगिलैरुपद्रु-
तो वीचिनभस्वता हतः ॥ तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥
क्वचिद्गतो महावर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् ॥ यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योऽन्यघातिभिः
॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ॥ क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुता-
र्दितः ॥ १८ ॥ अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्म-
नः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः ॥ न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लव-
शोभितम् ॥ २० ॥

उपद्रवयुक्त, तरंगोंवाले पवनसे प्रहार कियेहुए, अपार अंधकारमें पड़ेहुए और भटकतेहुए तथा परिश्रम पातेहुए महामुनि आका-
श, दिशा व पृथ्वीकी सुध भूल गये ॥ १६ ॥ कहीं तो वे महाभँवरमें गिर रहे थे, कहीं तरंगोंसे ताड़ित हो रहे थे कहीं परस्पर
घात करनेवाले जलजंतु उनको खा रहे थे ॥ १७ ॥ वे कहीं शोक, कहीं मोह, कहीं दुःख, कहीं सुख, कहीं भय, कहीं मृत्युको
पा रहे थे. कहीं रोग–आदिसे पीड़ित हो रहे थे ॥ १८ ॥ भगवान्‌की मायासे आवृतचित्तवाले उन मुनिके उस जलमें भ्रमण
करते २ एक हजारखर्व यानी एक शंख वर्ष १००००००००००००० व्यतीत हो गये ॥ १९ ॥ इस समुद्रमें भटकतेहुए मार्क-

चन ! हे पवित्र किर्तिवालोंके शिरोमणि ! मैं आपकी मायाको देखना चाहता हूं कि-जिस मायासे लोकपालसहित यह लोक सत् वस्तुमें भेदभाव देखता है ॥ ६ ॥ सूतजीने कहा कि-हे शौनक ! इस प्रकार नर-नारायण भगवान्‌की स्तुति करके अच्छी तरह पूजा की तब वे उस पूजाको अंगीकार कर "तथास्तु" ऐसे कह कर, मंदमंद मुसकाते बदरिकाश्रम पधारे ॥ ७ ॥ तदनंतर उसी मायाका चिंतवन करतेहुए और अग्नि, सूर्य, जल, चंद्र, पृथ्वी, आकाश और आत्मामें भगवान्‌का ध्यान करतेहुए मार्कंडेयमुनि अपने आश्रममें रहकर, मनोमय पदार्थोंसे सर्व स्थलमें भगवान्‌की पूजा करने लगे. कभी २ तौ प्रेमके पूरमें मग्न होकर, वे

सूत उवाच ॥ इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने ॥ तथेति सस्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेव चिंतयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ॥ वसन्नग्न्यर्कसोमांबुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥ ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ॥ क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९ ॥ तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः ॥ उपासीनस्य संध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥ १० ॥ तं चंडशब्दं समुदीरयंतं बलाहका अन्वभवन्करालाः ॥ अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनंत उच्चैरभिवर्षधाराः ॥ ११ ॥ ततो व्यदृश्यंत चतुःसमुद्राः समंततः क्ष्मातलमाग्रसंतः ॥ समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥ अंतर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् ॥ चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥

मुनि पूजाकोभी भूल जाते ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे शौनक ! एकदिन सायंकालमें पुष्पभद्रानदीके तटपर ये मुनि विराजे थे वहां हे शौनक ! भारी वायु चलने लगी ॥ १० ॥ प्रचंड शब्द करतीहुई प्रबल वायुके पीछे महाविकराल बादलकी घटा उठी. और बिजलियोंके साथ अति-उच्च कड़कड़ाट शब्द करतेहुए बादल रथके पहियोंसी स्थूल जलकी धारा बरसने लगी ॥ ११ ॥ फिर वायुके वेगके हेतु तरंगोंसे पृथ्वीको डुबाते हुए और भयंकर मगर तथा महाभयंकर भँवर और गंभीर शब्दवाले चारों समुद्र चारोंओर दीखने लगे ॥ १२ ॥ जरायुज-आदि चारही प्रकारके जगत्‌को जलसे, अत्यंत दमकती हुई दामिनियोंसे तथा कठोर वायुनसे, अपने साथ भीतर और बाहिर उपद्रुत हुआ देखकर, और पृथ्वीको जलमें बूड़ती

उनमें जो सत्वगुणमय शरीरकी लीला है उसीसे मनुष्योंको शांति प्राप्त होती है. दूसरी लीलाओंसे शांति नहीं मिलती. किंतु दुःख मोह और भयही प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ हे भगवन् ! भक्तलोग सत्वगुणकोही ईश्वररूप मानते हैं परंतु रजोगुण व तमोगुणको ईश्वररूप नहीं मानते. इसीलिये निपुण पुरुष आपकी निज इस नारायणनाम शुद्ध मूर्तिको और भक्तजीवोंकी इस नर नाम शुद्ध मूर्तिको भजते हैं. जिनका भजन करनेसे वैकुंठलोक और तत्रापि अभय तथा आत्मसुखकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥ वे नारायण और नरोत्तम ऋषिरूप आप कि-जो व्यापक पुरुष, सर्वरूप, सर्वके गुरु, परमदेव, शुद्ध, वाणीको नियममें रखनेवाले और वेदमार्गके प्रवर्त्तक भगवान् पुरुष हो तिनको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४७ ॥ जिन आपकी मायासे घिरीहुई बुद्धिवा-

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजंति ॥ यत्सात्वताः पुरुषरूपमुशंति तत्त्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥ ४६ ॥ तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै ॥ नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥ यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः संतं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ॥ तन्माययावृतमतिः स उ एव साक्षादाद्यश्च तेऽखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥ ४८ ॥ यद्दर्शनं निगम आत्मरहः प्रकाशं मुह्यंति यत्र कवयोऽजपरा यतंतः ॥ तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वंदे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० म० द्वाद० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ला और उसीके हेतु व्यर्थ इंद्रियोंके मार्गोंसे भटकनेवाली मतिवाला यह पुरुष अपनी इंद्रियोंमें, प्राणमें, हृदयमें और विषयोंमेंभी निरंतर विराजेहुए आपको नहीं जानता तिन आपको मैं प्रणाम करता हूं. हे प्रभु ! आदिपुरुष ब्रह्माकोभी सर्वके गुरु आपने वेद दिये तब उनको आपका ज्ञान हुआ है ॥ ४८ ॥ आपके रहस्यको प्रकाशित करनेवाला आपका ज्ञान वेदसेही होता है, वेदको त्याग कर दूसरे सांख्य-योगादिक उपायोंसे आपके जाननेके वास्ते यत्न करतेहुए ब्रह्मादिक विद्वान्भी मोहित हो जाते हैं; कारण यह कि-आपके स्वरूपका ज्ञान देहादिसंघातके हेतु आच्छादित होनेसे, सांख्यादि विवादोंके सर्व भेदादि विषयोंका जिन आपका स्वभाव अनुसरण करता है अतएव जैसा निरूपण करे वैसा हो सकता है, ऐसे, महापुरुष आपको

धारण करते हो ऐसे ये दो स्वरूपभी जगत्का पालन करनेके लिये, दुःख दूर करनेके वा जाता मोक्ष देनेके अर्थ आपने धारण किये हैं. जैसे पालन-आदि आपका काम है, ऐसे सृष्टि और लयभी आपकेही काम हैं. मकड़ी जैसे लाला (लार) को सरजकर, पीछी निगल जाती है ऐसे आप इस सकल जगत्को सरजकर, पीछा निगल जाते हो ॥ ४१ ॥ पालन करनहारे और स्थावर-जंगमके ईश्वर आपके चरणमूलके आश्रित पुरुषको कर्म, गुण और कालके मल छूभी नहीं सके तथा वेदका तात्पर्य जाननेवाले मुनिलोग जिसकी प्राप्तिके वास्ते जिसे प्रणाम करते हैं, पूजते हैं, निरंतर स्तुति करते हैं और ध्यान करते हैं; उस चरणमूलका मैं भजन करता हूं॥ ४२ ॥ हे प्रभु ! जिसके चारोंओरसे भय है ऐसे इस जनके मोक्षरूप आपके चरणकी प्राप्तिविना दूसरा को-

तस्याावितुः स्थिरचरेशितुरंघ्रिमूलं यत्स्थं न कर्म गुणकालरजः स्पृशंति ॥ यद्वै स्तुवंति विनमंति यजंत्यभीक्ष्णं ध्यायंति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥ ४२ ॥ नान्यं तवांघ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितो भिय ईश विद्मः ॥ ब्रह्माबिभेत्यलमतो द्विपरार्द्धधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥ ४३ ॥ तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदिचात्मगुरोः परस्य ॥ देहाद्यपार्थमसदंत्यमभिज्ञमात्रं विंदेत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥ ४४ ॥ सत्त्वंरजस्तम इतीश तवात्मबंधो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ॥ लीलाधृता यदपि सत्त्वमयी प्रशांत्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥ ४५ ॥

ईभी निर्भय स्थान हम नहीं जानते. जिनका स्थान दो परार्द्धपर्यंत रहता है ऐसे ब्रह्माजीभी आपकी भृकुटिके चढ़ानेरूप कालसे बहुत भयभीत रहते हैं तब उनके रचेहुए प्राणी डरें उसमें तो कहनाही क्या ? ॥ ४३ ॥ अतएव स्वरूपका आवरण करनेवाले, निष्फल, तुच्छ, विनाशी और अवस्तुभूत होनेसे स्वरूपसे भिन्न नहीं दीखनेवाले इस देह-आदिके भजनको छोड़ कर, सत्य ज्ञान स्वरूप, जीवके नियंता और सर्वसे जुदे आपके चरणमूलको मैं भजता हूं. जो पुरुष आपका भजन करता है उसको आपसेही सकल वांछित फल मिलते हैं ॥ ४४ ॥ हे आत्मबंधो ! हे ईश ! इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके कारणरूप सत्व, रज और तम ये तीन गुण यदपि आपकी मायाहीसे रचेहुए हैं और वे गुणमय शरीररूप लीलायें आपकीही कीहुई हैं तथापि

शरीरसे दंडकी नाई पड़कर, चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ नर-नारायणके दर्शन होनेके कारण आनंदसे देह, इंद्रिय और मन अत्यंत शांतिको प्राप्त हुए. तथा आनंदके हेतु रोम खड़े हो गये और नेत्रोंमें जल भर आया. तिससे वे मार्कंडेय मुनि भगवान्के सन्मुख नहीं देख सके ॥ ३६ ॥ तदनंतर खड़े हो, हाथ जोड़, मानों उत्सुकपनसे आलिंगन करते हों ऐसे नम्रता करके, गद्गदस्वरसे केवल 'नमोनमः' इतनेसे अक्षर नर-नारायणने कहे ॥ ३७ ॥ और उनके लिये आसन ले, बिछाय, चरण पखार, अर्घ्य, चंदन, धूप व पुष्पोंसे पूजा करी ॥ ३८ ॥ सुखपूर्वक आसनपर विराजेहुए, कृपा करनेमें अभिमुख ऐसे प-

स तत्संदर्शनानंदनिर्वृतात्मेंद्रियाशयः ॥ हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥ ३६॥ उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ॥ नमो नम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ॥ अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥ सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ॥ पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पंदते तमनु वाङ्मनइंद्रियाणि ॥ स्पंदंति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबंधुः ॥ ४० ॥ मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ॥ नानाबिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥ ४१ ॥

रमपूज्य नर-नारायण मुनिके चरणोंमें फिर प्रणाम करके, मुनिने यह वचन कहा ॥ ३९ ॥ मार्कंडेय मुनिने कहा कि-हे प्रभु ! प्राणीमात्रके, ब्रह्माके, महादेवके व मेरेभी प्राण जिनकी प्रेरणासे प्रवृत्त होते हैं और प्राणके पीछे वाणी, मन और इंद्रियांभी जिसकी प्रेरणासे प्रवृत्त होती हैं उन आपकी स्तुति मैं किस प्रकार कर सकूं ? यदपि ऐसे होनेसे कोईभी स्वतंत्र नहीं है तथापि आपके प्रवृत्त कियेहुए प्राण-आदिसे आपका भजन करनेवालोंपर आप पुष्कल कृपा करते हो. पिता-आदि तो केवल देहमात्रके बंधु हैं हे प्रभु ! आत्माके बंधु तौ आपही हो ॥ ४० ॥ जैसे जगत्की रक्षा क[illegible] दौड़ी, [illegible]स्ते आप दूसरे अनेक अवतार

[illegible] ९८

[illegible]सरमें मार्कंडेयको [illegible] वशीभूत जानकर

कामदेवने अपना तीक्ष्ण बाण चलाया. परंतु जैसे भाग्यहीनका उद्यम निष्फल चला जाता है ऐसे उन कामदेव-आदि सब इंद्रके नौकरोंका सब प्रयत्न वृथा गया ॥ २८ ॥ हे मुनि ! इसप्रकार मार्कंडेयके प्रतिकूल आचरण करतेहुए ये सब लोग मार्कंडेयके तेजसे जलने लगे तब बालक जैसे सर्पको जगा कर, भयके मारे पीछे लौट जायं ऐसे पीछे लौटे गये ॥ २९ ॥ हे शौनक ! इस प्रकार इंद्रके अनुचरोंने बहुत कुछ पराभव किया परंतु मुनिके मनमें किसीप्रकारका अहंकारका विकार नहीं हुआ. इस प्रकारसे होना महात्मा पुरुषोंके संबंधमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ३० ॥ गणसहित कामदेवको

त इत्थमपकुर्वंतो मुनेस्तत्तेजसा मुने ॥ दह्यमानानिववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥ २९ ॥ इतींद्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ॥ यन्नागादहमोभावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ॥ श्रुत्वा नु भावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥ ३१ ॥ तस्यैवं युंजतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥ ३२ ॥ तौ शुक्लकृष्णौ नवकंजलोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलांबरौ ॥ पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमंडलुं दंडमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥ पद्माक्षमालामुत जंतुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ॥ तपत्तडिद्वर्णपिशंगरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥ ३४ ॥ ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी ॥ दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामांगेन दंडवत् ॥ ३५ ॥

निस्तेज देख और मार्कंडेयका प्रभाव सुनकर, इंद्रको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ३१ ॥ इसप्रकार तप स्वाध्याय और जितेंद्रियपनसे मनको वशीभूत रखतेहुए इन मार्कंडेयमुनिपर अनुग्रह करनेके वास्ते नर-नारायण भगवान् वहां प्रगट हुए ॥ ३२ ॥ त्रिगुण यज्ञोपवीत, कमंडलु, बाँसका सरल दंड, कमल ककड़ीके बीजोंकी माला, जीव मर न जायं ऐसे उनको हटानेके लिये वस्त्रका झाडू और दर्भकी मुष्टि धारण किये, श्वेत व श्यामबरन, नवीन कमलकेसे नेत्रवाले, चतुर्भुज स्वरूप धारण किये, मृगचर्म और वल्कलरूप वस्त्र पहिने, हाथमें पवित्री लिये, साक्षात् तपोमूर्ति, देदीप्यमान बिजलीकीसी गौर कांतिवाले, लंबे, बड़े २ देवतानसे पूजित और विष्णु भगवान्के अवताररूप इन नर-नारायण ऋषिका दर्शन करके मार्कंडेय मुनिने बड़े आदरसे खड़े होकर,

लगी ॥ २० ॥ प्रदोषकालमें चंद्रका उदय हुआ. और कोमल पल्लव तथा गुच्छकवाले परस्परमें सघन गुथेहुए पेड़ और लताओंके समूहवाली वसंतऋतु वहां प्रगट हुई ॥ २१ ॥ गीत, वादित्र-आदि समुदायवाले गंधर्वोंको संगलिये अप्सराओंका यूथपति कामदेव हाथमें धनुष बाण लिये दृष्टिगोचर हुआ ॥ २२ ॥ अग्निके कुंडमें होमसे निपटकर ध्यानसे आंखें मूंदकर, विराजे हुए और मूर्तिमान् अग्निके समान असह्य तेजवाले मार्कंडेयमुनिको देखकर, वे इंद्रके अनुचर अपना २ चरित्र दिखाने लगे ॥ २३ ॥ मार्कंडेयके सन्मुख अप्सरायें नृत्य करने लगीं. गंधर्व गाने लगे. और मृदंग, वीणा व ढोल-आदि सुंदर बाजे बजाने

उद्यच्चंद्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ॥ गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥ २१ ॥ अन्वीयमानो गंधर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ॥ अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥ हुत्वाऽग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः ॥ मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमंतमिवानलम् ॥ २३ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ॥ मृदंगवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥ संदधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पंचमुखं तदा ॥ मधुर्मनोरजस्तोक इंद्रभृत्याव्यकंपयन् ॥ २५ ॥ क्रीडंत्याः पुंजिकस्थल्याः कंदुकैः स्तनगौरवात् ॥ भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥ २६ ॥ इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलंत्या अनुकंदुकम् ॥ वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥ २७ ॥ विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ॥ सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥ २८ ॥

लगे ॥ २४ ॥ उस समयमें कामदेवने शोषण, दीपन, संमोहन, तापन व उन्मादन नाम पांच मुखवाले अपने अस्त्रका धनुषमें संधान किया. वसंत, लोभ, और दूसरेभी इंद्रके भृत्य उन मुनिके मनको कंपायमान करने लगे ॥ २५ ॥ गेंदसे खेलतीहुई पुंजिकस्थली नाम अप्सरा कि-जिसकी कटि स्तनोंके भारसे अतीव लचक रही थी, जिसके केशपाशमेंसे माला शिथिल होकर, गिर रही थी ॥ २६ ॥ और जिसकी दृष्टि चौतर्फ घूम रही थी वह अप्सरा जब गेंद लेनेको दौड़ी, उस समयमें कटिमेखला टूट जानेसे वस्त्रभी छूट गया फिर वायुने उसके सूक्ष्म वस्त्रका हरण किया ॥ २७ ॥ इस अवसरमें मार्कंडेयको अपने वशीभूत जानकर

इस प्रकार तप, स्वाध्याय और जितेंद्रियताके साथ नैष्ठिक ब्रह्मचर्यको धारण करते हुए यह योगी मार्कंडेय, रागा-
दिदोषसे रहित अंतःकरणसे भगवान्‌का ध्यान करने लगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार महायोगके बलसे मनका नियमन करतेहुए महा-
योगी उन मार्कंडेयमुनिको छह मन्वंतररूप बहुत बड़ा काल व्यतीत हो गया ॥ १४ ॥ हे शौनक ! इस सातवें मन्वंतरमें यह
बात जानकर, पुरंदरनामे इस सातवें इंद्रने तपको देखके शंकित होकर, उनके तपके बीच विघ्न करनेको आरंभ किया ॥ १५ ॥
इंद्रने मुनिको तपसे भ्रष्ट करनेके वास्ते गंधर्व, अप्सरा, कामदेव, वसंतऋतु, मलयाचलकी वायु, लोभ और मदको पठाया

इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशांतरात्मना ॥ १३ ॥ तस्यैवं युं-
जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ॥ व्यतीयाय महान्कालो मन्वंतरषडात्मकः ॥ १४ ॥ एतत्पुरंदरो
ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलांतरे ॥ तपो विशंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥१५॥ गंधर्वाप्सरसः का-
मं वसंतमलयानिलौ ॥ मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तथा ॥ १६ ॥ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः
पार्श्व उत्तरे ॥ पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥ तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुम-
लतांचितम् ॥ पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजि-
तम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥१९॥ वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ॥ सु-
मनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तंभयन्स्मरम् ॥ २० ॥

॥ १६ ॥ हे विभु ! वे सब हिमालयके उत्तरभागमें उनका आश्रम कि–जहां पुष्पभद्रानाम नदी और चित्रानाम शिला है वहां
गये ॥ १७ ॥ यह मार्कंडेयमुनिका आश्रम कि–जिसमें पवित्र वृक्ष और लतायें शोभ रही हैं, पवित्र ब्राह्मणोंके कुल निवास कर
रहे हैं, जलाशय पवित्र और निर्मल विद्यमान हैं ॥ १८ ॥ मदोन्मत्त भौंरे गुंज रहे हैं, मदोन्मत्त कोयलें ‘कुहू कुहू’ ऐसे
कूज रही हैं. मदोन्मत्त मयूर नटकी नांई नृत्य कर रहे हैं. और दूसरेभी मदोन्मत्त पक्षियोंके गण व्याप्त हो रहे हैं ॥ १९ ॥
उसमें हिमसंबंधी निर्झरोंके बिंदुओंको लेकर, प्रविष्ट भयीहुई पुष्पोंकी उत्तमगंधिवाली और कामदेवको बढ़ातीहुई वायु बहने

लिये कौतुकभी है. इसलिये हे महायोगी ! आप हमारा यह संदेह निवृत्त करो क्योंकि आप पुराणोंमें परममान्य माने जाते हो ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा कि-हे महर्षि ! आपने जो यह प्रश्न किया है वह लोकोंके भ्रमको मिटानेवाला है. क्योंकि-इसमें कलियुगके मलको धोनेवाली नारायणकी कथाका वर्णन है ॥ ६ ॥ जब मार्कंडेयने गर्भाधानादि संस्कारोंके क्रमसे पिताके यज्ञोपवीतका संस्कार पाया तब वह ब्रह्मचर्यका व्रत धारण कर, वेद पढ़, तप व स्वाध्यायमें लग गये ॥ ७ ॥ उन शांत मार्कंडेयमुनिने नैष्ठिकब्रह्मचर्य धारण किया. तब वह जटा, वल्कल, वस्त्र, कमंडलु, दंड, उपवीत (जनेऊ) मेखला, कृष्णहरिण-

सूत उवाच ॥ प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ॥ नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कंडेयः पितुः क्रमात् ॥ छंदांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥ बृहद्व्रतधरः शांतो जटिलो वल्कलांबरः ॥ बिभ्रत्कमंडलुं दंडमुपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥ कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्धये ॥ अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्संध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥ सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ॥ बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नोचेदुपोषितः ॥ १० ॥ एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् ॥ आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च येऽपरे ॥ नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥

का चर्म, जप करनेकी माला और दर्भ धारण करने लगे. और धर्मकी वृद्धिके वास्ते शांतभावसे दोनों संध्याओंमें अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और अपने शरीरमें भगवान्की पूजा करते रहे ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ सायंकालमें और प्रातःकालमें भिक्षा लाकर, गुरुको दे दिया करते. और गुरु आज्ञा देता तब मौन रखकर, एकबार भोजन करते. और गुरु आज्ञा नहीं देता तो उपवासभी कर जाते ॥ १० ॥ इस प्रकार दश करोड़ ॥ १०, ००,००, ०००, वर्षपर्यंत तप और स्वाध्यायमें तत्पर रहकर, भगवान्का आराधन करनेसे वह मार्कंडेय महादुर्जय मृत्युको जीत गये ॥ ११ ॥ मार्कंडेयने मृत्युको जीत लिया इससे ब्रह्मा, भृगु, महादेव, दक्ष व दूसरेभी ब्रह्माके पुत्र, मनुष्य, देव, पितृ और सर्व प्राणीमात्र बहुत विस्मयको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

वराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्मांडपुराण ये अठारह पुराण कहलाते हैं ॥ २४ ॥ हे शौनक ! वेदव्यासजी और उनके शिष्य, प्रशिष्य तथा उनके शिष्योंने जो शाखाओंका विस्तार किया है उस संबंधी यह विषय मैंने आपको कहकर, सुनाया कि-जिसके वक्ता और श्रोता दोनोंका ब्रह्मतेज बढ़ता है ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ आठवें अध्यायमें मार्कंडेयकी तपश्चर्या, काम-आदि मोहक देवतानसे मोहका अभाव और नरनारायणकी स्तुति इनका वर्णन होगा ॥ १ ॥ शौनकने कहा कि- हे सूत ! हे साधु ! आप चिरंजीव रहो. हे वक्ता पुरुषोंमें उत्तम ! अपार संसारमें भटकतेहुए मनुष्योंके आप पार दिखानेवाले हो. तासों हमारे प्रश्नका उत्तर

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ॥ शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजो विवर्धनम् ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ शौनक उवाच ॥ सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतांवर ॥ तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥ आहुश्चिरायुषमृषिं मृकंडुतनयं जनाः ॥ यः कल्पांते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २ ॥ स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः ॥ नैवाधुनाऽपि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥ एक एवार्णवे भ्राम्यन्ददर्श पुरुषं किल ॥ वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एष नः संशयो भूयान्सूत कौतूहलं यतः ॥ तं नश्छिंधि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥

देओ ॥ १ ॥ मृकंडुके पुत्र मार्कंडेय ऋषिको लोक चिरंजीव कहते हैं. जिस समयमें सर्व जगत्का नाश हो जाता है उस कल्पांतमें एक मार्कंडेयऋषिका अवशेष रहना किस प्रकार संभवे ? ॥ २ ॥ क्योंकि भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ वे मार्कंडेयमुनि इस कल्पमें हमारे कुलमें उत्पन्न हुए हैं. सो भृगुकुलकी प्रवृत्ति भये पीछे आजतक प्राणियोंका प्राकृतिक वा नैमित्तिक कोईभी प्रलय हुआ नहीं है फिर इनको प्रलयमें अवशेष रहेहुए किस प्रकार मानें ? ॥ ३ ॥ फिर ऐसेभी कहा जाता है कि-यह मार्कंडेयमुनि प्रलयके समुद्रमें इकले भ्रमण कर रहे थे तहां वड़के पेड़के पत्तेके पुटमें एक अद्भुत बालक सोयाहुआ उनके देखनेमें आया. सो प्रलयमें यह वड़-आदिका रहना कैसे बन सकता है ? ॥ ४ ॥ हे सूत ! यह हमें बड़ा संदेह है और उसका उत्तर सुननेके

अविद्याके हेतु कर्म करनेवाला जीव कि-जिसे चैतन्यको मुख्य माननेवाले लोक ' अनुशयी ' कहते हैं और उपाधिको मुख्य माननेवाले लोक ' अव्याकृत ' कहते हैं. उसकी वासनायें इस जगत्की सृष्टि-आदि होनेमें कारणरूप होती हैं तासों उन्हें ' ऊति ' कहते हैं ॥ १८ ॥ परब्रह्म कि-जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिमें जीवपनसे वर्तनेवाले मायामय विश्व तैजस और प्राज्ञमें अनुस्यूत है और समाधि आदिमें उनसे जुदाभी है वह अपाश्रय कहलाता है ॥ १९ ॥ घटादिक पदार्थोंमें जैसे मिट्टी आदि वस्तु अनुस्यूत हैं और उनसे जुदीभी हैं ऐसे गर्भाधानसे मरणपर्यंतकी देहसंबंधी अवस्थाओंमें अधिष्ठानपनसे ब्रह्म अनु-

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ॥ यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥ व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥ पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ॥ बीजादि पंचतां तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥ २० ॥ विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ॥ योगेन वा तदाऽऽत्मानं वेदेहाया निवर्तते ॥ २१ ॥ एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ॥ मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महांति च ॥ २२ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् ॥ नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कांदसंज्ञितम् ॥ २३ ॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कंडेयं सवामनम् ॥ वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्मांडाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥

स्यूत है और इससे जुदाभी है सब नाम और रूपोंमें सत्पनसे यह ब्रह्महो रहा है ॥ २० ॥ जब तीन गुणोंकी वृत्तियोंको त्यागकर, स्वयमेव चित्त विरामको प्राप्त हो जावे अथवा योगके बलसे चित्त विरामको प्राप्त हो जावे तब यह ब्रह्म जाननेमें आता है और सब संसार निवृत्त हो जाता है ॥ २१ ॥ पूर्वोक्त लक्षणोंसे पहचाने जाते महापुराण और अल्पपुराण अठारह १८ हैं. ऐसे प्राचीन विद्वान् मुनि कहते हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, श्रीभागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कंदपुराण ॥ २३ ॥ भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कंडेयपुराण, वामनपुराण,

सर्ग–आदि दशोंके लक्षण कहते हैं. प्रधानके गुणोंका क्षोभ होनेपर महत्तत्त्वकी और महत्तत्त्वसे त्रिविध अहंकारकी तथा अहंकारसे देवता, इंद्रियां व पांच तत्त्वोंकी जो सृष्टि होती है उसे सर्ग कहा करते हैं ॥ ११ ॥ परमेश्वरने जिनको रचनेकी शक्ति दी है ऐसे इन महत्तत्त्व–आदिमेंसे प्रगट होता हुआ और एक बीजमेंसे पैदा होतेहुए दूसरे बीजकी नाईं प्रवाहरूपसे चलता हुआ यह उनका समुदायरूप स्थावर–जंगम रूप प्रपंच विसर्ग कहलाता है ॥ १२ ॥ जंगम प्राणियोंकी सामान्य रीतिसे स्थावर प्राणी आजीविका है. और जंगमप्राणीभी मांस खानेके रागके हेतु आजीविका हैं

अव्याकृतगुणक्षोभा महतस्त्रिवृतोहमः ॥ भूतमात्रेंद्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ॥ विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥ वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ॥ कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयाऽपि वा ॥ १३ ॥ रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्याऽनु युगे युगे ॥ तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यंते यैस्त्रयी द्विषः ॥ १४ ॥ मन्वंतरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ॥ ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥ राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ॥ वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥ १६ ॥ नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यंतिको लयः ॥ संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः ॥ १७ ॥

सो उनमें मनुष्योंके वास्ते रागसे अथवा शास्त्रके वचनोंपरसे जो आजीविका कही गयी है वह वृत्ति कहलाती है ॥ १३ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि और देवतानमें भगवान् अवतार धारण करके, युग युगमें जो लीला करते हैं वह जगत्की रक्षा कहलाती है. कि–जिन अवतारोंसे अधर्मियोंका नाश होता है ॥ १४ ॥ मनु, देवता, मनुके पुत्र, इंद्र, सप्तर्षि और भगवान्के अंशावतार ये छह मिलकर, मन्वंतर कहलाते हैं ॥ १५ ॥ शुद्ध राजाओंकी भूत, भविष्य और वर्तमान कालकी संतति 'वंश' कहलाता है. और उन राजाओंके तथा उनके वंशजोंके चरित्रको 'वंश्यानुचरित' कहते हैं ॥ १६ ॥ जगत्के नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यंतिक नाम मायासे भयेहुए चार प्रकारके लयको विद्वान् लोक 'संस्था' कहा करते हैं ॥ १७ ॥

आदिके॑सावर्णि आदि ॥ ३ ॥ तथा नक्षत्रकल्प, शांतिकल्प, कश्यप और आंगिरस—आदि शिष्य हुए. हे मुनि ! ये सब अथर्ववेदके आचार्य कहे गये. अब पुराणोंके आचार्योंका वर्णन करता हूं सो सुनो ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशंपायन और हारीत ये छह पुराणोंके आचार्य हुए ॥ ५ ॥ प्रथम वेदव्यासजीने पुराणोंकी छह ६ संहिता बनाकर, मेरे पिता रोमहर्षणको पढ़ायीं, और रोमहर्षणके मुखसे पूर्वोक्त छह जनोंने पढ़ीं. मैं कि—जो इन छ ६ ही जनोंका शिष्य हूं वह उनसे एक एक संहिता पढ़नेसे सब छहही संहिता पढ़ा हूं ॥ ६ ॥ पुराणोंकी जो चार मूल संहितायें हैं वे संहितायें कश्यप, मैं, सावर्णि और परशु-

नक्षत्रकल्पः शांतिश्च कश्यपांगिरसादयः ॥ एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ॥ वैशंपायनहारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥ अधीयंत व्याससशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ॥ एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यागाम् ॥ ६ ॥ कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ॥ अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ॥ शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥ सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षांतराणि च ॥ वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ॥ केचित्पंचविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥

रामजीका शिष्य अकृतव्रण ये चार जन व्यासजीके शिष्यसे पढ़े हैं ॥ ७ ॥ हे शौनक ! वेद और शास्त्रके अनुसारसे विद्वानोंने पुराणका जो लक्षण ठहेराया है वह ध्यान देकर, सुनो ॥ ८ ॥ सर्ग, विसर्ग, वृत्ति (स्थान) रक्षा (पोषण) मन्वंतर, वंश तथा वंशजोंका चरित्र (ईशानुकथा) संस्था (निरोध) मुक्तिहेतु (ऊति) और अपांश्रय ये दश विषय जिसमें होवें उसको विद्वान्लोग पुराण कहते हैं और हे शौनक ! कितनेएक आचार्य कहते हैं कि—सर्ग, विसर्ग, वंश, वंशजोंका चरित्र और मन्वंतर ये पांच विषय जिसमें होवें वह पुराण कहलाता है. इस मतभेदमें ऐसी व्यवस्था है कि—दशों विषयोंका जिसमें जुदा जुदा निरूपण होवे वह महापुराण और जिसमें दूसरोंका अंतर्भाव करके, पांच विषयोंकाही निरूपण होवे उसको अल्प पुराण जानना ॥ ९ ॥ १० ॥

ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ इन हिरण्यनाभ, पौष्यंजि और आवंत्यके पास पांचसौ ५०० शिष्य सामवेद पढ़े थे. ये सब यद्यपि उत्तरदिशाके निवासी थे तथापि कालके हेतु उनमेंके कितनेएक पूर्व दिशाके रहनेवाले कहलाये ॥ ७८ ॥ पौष्यंजिके लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुशीद और कुक्षि नाम दूसरेभी शिष्य थे इन्होंने सौ सौ संहिताओंको ग्रहण किया ॥ ७९ ॥ हिरण्यनाभके कृतनाम दूसरा शिष्य था उसने चौबीस संहिता अपने शिष्योंको पढ़ायीं. अवशेष रहीहुई संहितायें ज्ञानमान् आवंत्यने अपने शिष्योंको पढ़ायीं ॥ ८० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पंचशतानि वै ॥ पौष्यंज्यावंत्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते ॥ ७८ ॥ लौगाक्षिर्मांगलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ॥ पौष्यंजिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशति संहिताः ॥ शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवंत्य आत्मवान् ॥ ८० ॥ इति श्रीभा० महा० द्वाद० वेदशाखाप्रणयनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥॥ सूत उवाच ॥ अथर्ववित्सुमंतुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् ॥ संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥ शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ॥ वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ॥ कुमुदः शुनको ब्रह्मन्जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ॥ २ ॥ बभ्रुः शिष्योऽथांगिरसः सैंधवायन एव च ॥ अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथाऽपरे ॥ ३ ॥

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सातवें अध्यायमें अथर्ववेदका विस्तार, पुराणोंका विभाग और पुराणोंके लक्षण कहे जायंगे ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि—अथर्ववेदके ज्ञाता सुमंतुने अपने कबंध नाम शिष्यको अथर्ववेद पढ़ाया. और कबंधने दो विभाग करके, पथ्य और वेददर्श नाम दो शिष्योंको पढाया ॥ १ ॥ महाराज ! वेददर्शने अपनी संहिताके चार विभाग करके, शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनी नाम चार शिष्योंको पढ़ा या. और पथ्यने अपनी संहिताके तीन विभाग करके, कुमुद, शुनक और जाजलि नाम तीन शिष्योंको पढ़ाया ॥ २ ॥ शुनकके बभ्रु और सैंधवायन नाम दो शिष्य थे; ये दो संहिता पढ़े. सैंधवायन-

दर्शनद्वाराही उठाकर, प्रतिदिवस समय समयपर कल्याणरूप स्वधर्मनामक आत्मनिष्ठामें प्रवृत्त करते हो और राजाकी नाईं दुष्ट लोगोंको भय देतेहुए भ्रमण करते हो तिनको मैं वारंवार प्रणाम करता हूं ॥ ७० ॥ हे सूर्य ! आप कि–जिनके चारोंओर दिक्पाल देवता स्थल २ में कमलकोशवाली अंजलियोंसे अर्घ देते हैं तिनको मैं वारंवार प्रणाम करता हूं ॥ ७१ ॥ हे भगवन् ! आप ऐसे जगत्रक्षक हो इसलिये त्रिलोकीके अधिपतियोंसे वंदित आपके चरणारविंदके युगलको मैं दूसरे पुरुषोंसे अज्ञात और सारसे भरेहुए यजुर्वेदके मंत्रोंकी प्राप्तिकी इच्छासे आपका भजन करता हूं ॥ ७२ ॥ सूतजीने कहा कि–इस प्रकार याज्ञवल्क्यने

परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशांजलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वंदितमहमयातयाम यजूःकाम उपसरामीति ॥ ७२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो हरिः ॥ यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥ यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपंच शतैर्विभुः ॥ जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिनादयः ॥ ७४ ॥ जैमिनेः सामगस्याऽऽसीत्सुमंतुस्तनयो मुनिः ॥ सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ॥ सहस्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यंजिश्च सुकर्मणः ॥ शिष्यो जगृहतुश्चान्य आवंत्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥

स्तुति की तब उस स्तुतिसे प्रसन्न भयेहुए सूर्यनारायणने अश्वका रूप धरकर, याज्ञवल्क्यको उनकी प्रार्थनाके अनुसार ससार यजुमंत्र दिये ॥ ७३ ॥ याज्ञवल्क्यने इन सैकड़ों मंत्रोंमेंसे पन्द्रह शाखायें प्रगट करीं. सूर्यने अपनी केशवाली वा वेगसे दीनीं तासों ये शाखायें वाजसनेयी नामसे प्रख्यात हुई. ये शाखायें कण्व और माध्यंदिन ऋषियोंने ग्रहण कीं ॥ ७४ ॥ सामवेदपाठी जैमिनिमुनिने अपने सुमंतुनाम पुत्रको और सुन्वान् नाम पौत्रको एक एक संहिता पढ़ायी ॥ ७५ ॥ फिर दूसरा सुकर्मा नाम जैमिनिका एक महाबुद्धिमान् शिष्य था, उसने सामवेदरूप वृक्षके अनेक मंत्रोंमेंसे जुदी जुदी संहितायें बनाकर, एक सहस्र शाखा रचीं ॥ ७६ ॥ सुकर्मासे कौशल्य हिरण्यनाभ और दूसरा पौष्यंजि, वेदमें निपुण तीसरा आवंत्य इन तीन शिष्योंने संहिताओंको

याज्ञवल्क्यने स्तुति की कि–हे सूर्यनारायण ! भगवान् आदित्यस्वरूप आप कि–जो जरायुज–आदि चारों प्रकारके प्राणियोंके समूहरूप, ब्रह्मासे लेकर, स्तंब (घास–आदि उद्भिज्ज) पर्यंत सकल जगत्में हृदयके भीतर आत्म-स्वरूपसे और बाहिर क्षण, लव तथा निमेषरूप अनेक अवयववाले वर्षोंके समूहवाले कालरूपसे रहनेपरभी आकाशकी नाईं उपाधिसे आच्छादित नहीं होते. और प्रतिवर्ष जलके शोषणसे और बरसानेसे इकलेही इस जगत्की जीविका-को चलाया करते हो तिन्हें मैं वारंवार प्रणाम करता हूं ॥ ६७ ॥ हे देवोत्तम ! हे तपनेवाले ! हे वेद-

याज्ञवल्क्य उवाच ॥ ओं नमोभगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतानामंतर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ॥ ६७ ॥ यदुह वा व विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमंडलम् ॥ ६८ ॥ य इह वा व स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मन इंद्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्माऽंतर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥ य एवेमं लोकमतिकरालवदनांधकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितंमृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकंपया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥ ७० ॥

विधिसे तीनों समयमें स्तुति करतेहुए भक्त लोगोंके सकल पाप, दुःख और अज्ञानको भस्म करनहारे ! हे सूर्य ! आपका जो यह मंडल प्रतिदिवस तपा करता है तिसका हम अच्छेप्रकार सन्मुख होकर, ध्यान करते हैं ॥ ६८ ॥ हे सूर्य ! जो आप इस जगत्में अपने स्थानरूप स्थावर–जंगम अनेक जीवोंके अचेतनरूप मन, इंद्रिय और प्राणके समूहोंको अंतर्यामी आत्मरूपसे प्रेरते हो उनको हम वारंवार प्रणाम करते है ॥ ६९ ॥ हे सूर्य ! हे महादयालु आप कि–जो अत्यंत कराल मुखवाले अंधकार नामक अजगरके निगलेहुए और उसीसे शवकी भांति भानरहितोंसे हुए इस लोकको देखकर, दयाके हेतु

हे उद्धव ! स्नान और प्यारे अलंकारका, तो धातुआदिकी मूर्तिमेंही उपयोग करना. पृथ्वीमें पूजा करनी तब अंग और प्रधानभूत देवतानकी उन उन स्थानोंमें जुदे जुदे मंत्रोंसे स्थापना करनी. अग्निमें पूजा करे तब घृतसे परिप्लुत हविसे होम करना ॥ १६ ॥ सूर्यमें पूजा करे तब उपस्थान और अर्घ-आदिसे करे. जलमें पूजा करे तब तर्पण-आदिसे करे. यदि भक्त पुरुष श्रद्धा और प्रेमके साथ मेरेको जलमात्रभी अर्पण करे तो वह जल मुझको बहुत प्रिय लगता है ॥ १७ ॥ और जो अभक्त मनुष्य बहुत कुछ मेरेको अर्पण करे तथापि मैं उसपर प्रसन्न नहीं होता तब फिर गंध, धूप, दीप, पुष्प और अन्न-आदि सामग्रियां अर्पण करके, मेरी पूजा करनेसे तौ मैं क्योंकर प्रसन्न हो सक्ता हूं ? ॥ १८ ॥ ऐसे अधिकार-आदिकी व्यवस्था कह कर, अब

स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेवतूद्धव ॥ स्थंडिले सत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥ सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ॥ श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ गंधो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥ शुचिः संभृतसंभारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ॥ आसीनः प्रागुदग्वाऽर्चेदर्चायामथ संमुखः ॥ १९ ॥ कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ॥ कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥ तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ॥ प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ २१ ॥

पूजाका प्रकार कहते हैं. पवित्र हो, पूजाकी सामग्रियां साज कर, पूर्वदिशाकी ओर अग्रवाले दर्भोंसे आसन बनाय, उसपर पूर्व वा उत्तरकी तर्फ मुख रखकर, पूजा करनेको बैठना. और जो मूर्ति अचल होवे तौ उसके सन्मुख बैठना ॥ १९ ॥ फिर गुरु-आदिको नमस्कार कर, अपने शरीरमें न्यास किये पीछे मूर्तिमें न्यास करके, मूर्तिपर चढेहुए निर्माल्य-आदि पदार्थ दूर करनेद्वारा उस मूर्तिको स्वच्छ करना. जलसे भरेहुए पूर्णकुंभका और प्रोक्षण करनेके जलके पात्रका चंदन-पुष्प-आदिसे यथार्थरीतिसे संस्कार करना ॥ २० ॥ प्रोक्षणपात्रके जलसे पूजाके स्थलका, पदार्थोंका और अपने शरीरका प्रोक्षण करना. गुरुके उपदेशके अनुसार पाद्य, अर्घ्य और आचमनके वास्ते कल्पन कियेहुए तीन पात्रोंको जलसे और उन उन पदार्थोंसे सिद्ध करना

में, पृथ्वीमें, अग्निमें, सूर्यमें, जलमें, हृदयमें और ब्राह्मणमें मैं कि-जो अपना गुरुरूप हूं उसकी पूजाके पदार्थोंसे पूजा करनी चाहिये ॥ ९ ॥ प्रथम दतून कर, दंतशुद्धि किये पीछे अंगकी शुद्धिके वास्ते स्नान करना. यह स्नान वेदोक्त और तंत्रोक्त मंत्रोंसे मृत्तिका-आदि पदार्थ लेकर, करना ॥ १० ॥ ईश्वरमेंही संकल्प रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि- संध्योपासन-आदि कर्म कि- जो वेदविहित हैं उनका त्याग न करके, कर्मबंधनकी काटनेवाली मेरी पूजा करे ॥ ११ ॥ शिलाकी, काष्ठकी धातुकी, मिट्टी वा चंदन-आदिकी कीहुई, चित्रमयी, बालूकी, मणिकी, और मनोमयी इसप्रकार आठ प्रकारकी मूर्तियां पूजाके वास्ते कही गयीं हैं ॥ १२ ॥ हृदयमें पूजा करनी हो तौ मनोमयी मूर्तिकी पूजा करनी. स्थिर और चल भेदसे मूर्ति दो प्रकारकी होवे; तिसमें प्राणप्रतिष्ठा करनेसे मेरा

पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदंतोऽगशुद्धये ॥ उभयैरपि च स्नानं मंत्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥ १० ॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाऽऽचोदितानि मे ॥ पूजांतैः कल्पयेत्सम्यक् संकल्पः कर्मपावनीम् ॥ ११ ॥ शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥ चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमंदिरम् ॥ उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥ अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थंडिले तु भवेद्द्वयम् ॥ स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥ द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ॥ भक्तस्य च यथा लब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥

निवास होता है. हे उद्धव ! स्थिर मूर्तिकी सेवा करनी होवे तो प्रतिदिवस आवाहन और उद्वासन (विसर्जन) नहीं करना ॥ १३ ॥ चलमूर्तिमें आवाहन और विसर्जनके लिये विकल्प है. तहां शालिग्रामशिलामें आवाहन और उद्वासन (विसर्जन) कदापि नहीं करना. और बालूकी मूर्तियोंमें आवाहन और उद्वासन (विसर्जन) अवश्यही करना. परंतु दूसरी मूर्तियोंमें आवाहन करे तौभी ठीक और नहीं करे तौभी कुछ चिंता नहीं परंतु पृथ्वीमें पूजा करे तब आवाहन और विसर्जन करनेही चाहिये. मृत्तिकासे लीपकर बनायी हुई और चित्रकी मूर्ति विना दूसरी मूर्तियोंको स्नान कराना. मृत्तिका-आदिकी मूर्तियोंका स्नान करानेके एवजमें मार्जनही करना ॥ १४ ॥ सकाम भक्तको चाहिये कि- अतिसुशोभन पदार्थोंसे मूर्ति-आदिमें पूजा करे. और निष्काम भक्त तौ जैसे मिल जाय ऐसे चंदन-आदि पदार्थोंसे मेरी पूजा करे. हृदयमें मेरी पूजा करे. तब मनोमय पदार्थोंसेही करे ॥ १५ ॥

जिससे आप प्रसन्न होते हैं उसके विषयमें मुझे कहो ॥ १ ॥ नारदजी, भगवान् वेदव्यासजी और अंगिराके पुत्र बृहस्पति, आचार्य, ये सब मुनि वारंवार कहते हैं कि- 'आपका पूजनही मनुष्योंके लिये निश्चित कल्याणरूप है' ॥ २ ॥ महात्मा ब्रह्माजीने आपके मुखकमलमेंसे निकलाहुआ जो पूजाका प्रकार अपने भृगुआदि पुत्रोंको कहा था और सर्वोत्तम महादेवजीने जो पार्वतीको कहा था वह प्रकार मैं सुनना चाहता हूं ॥ ३ ॥ हे मानद ! सर्व वर्ण, सर्व आश्रम तथा स्त्रियों और शूद्रोंके वास्तेभी यही उत्तम साधन स्वीकार किया गया है यह मैं मानता हूं ॥ ४ ॥ इसलिये हे कमलदलनयन ! हे जगत्के

एतद्वदंति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥ नारदो भगवान्व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ॥ २ ॥ निःसृतं ते मुखांभोजाद्यदाह भगवानजः ॥ पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ॥ श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४॥ एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबंधविमोचनम् ॥ भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न ह्यंतोऽनंतपारस्य कर्मकांडस्य चोद्धव ॥ संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तांत्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ॥ त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ॥ यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥ अर्चायां स्थंडिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाऽप्सु हृदि द्विजे ॥ द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥

ईश्वरोंके अधिपति ! मैं कि- जो आपका भक्त और आपमेंही परमप्रेम रखनेवाला हूं इससे कर्मबंधनके छुड़ानेवाला यह विषय कहो ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि- हे उद्धव ! पूजाकी विधि कि- जिसके विषयमें अनेक ग्रंथ हैं और करनेसेभी जिसका पार नहीं आ सक्ता वह प्रकार सब कहूं तब तो उसका अंत आवे नहीं तासों संक्षेपसे अनुक्रमके अनुसार यथार्थ रीतिसे कहूंगा ॥ ६ ॥ वैदिक, तांत्रिक और मिश्रित ऐसे तीनप्रकारसे मेरी पूजा हुआ करती है. सो इन तीनोंमेंसे आपको अच्छी लगे उसी विधिसे पूजा करनी ॥ ७ ॥ जिसका अपने वेदकी शाखामें कहीहुई रीतिसे उपनयन संस्कार हुआ होवे उसको श्रद्धापूर्वक भक्तिसे जिसप्रकार मेरी पूजा करनी चाहिये वह रीति मैं कहता हूं सो सुनो ॥ ८ ॥ भक्तिमान् पुरुषको निष्कपटभावसे मूर्ति-

पुरुषके शीतभय और तम ये तीनों निवृत्त हो जाते हैं ऐसे साधुपुरुषोंकी सेवा करनेवाले पुरुषके कम[illegible] नमरणका भय और उसका मूलरूप अज्ञान ये तीनों निवृत्त हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे जलमें बूड़कर, तिरुं ऐसे बूड़ते हुए पुरुषोंके दृढ़ नाव परमगतिरूप है ऐसे इस भयंकर भवसागरमें ऊंची नीची योनियोंको प्राप्त होतेहुए जीवोंके ब्रह्मवेत्ता और शांत सत्पुरुष परमगतिरूप हैं ॥ ३२ ॥ जैसे प्राणियोंके लिये जीवनरूप अन्न शरण है जैसे पीड़ित पुरुषोंके लिये मैं शरण हूं. और जैसे मनुष्यों-के मरे पीछे धर्मरूप धन शरण है ऐसे संसारमें पड़नेसे डरनेवाले पुरुषोंके लिये सत्पुरुषलोग शरणरूप हैं ॥ ३३ ॥ सूर्य तो अच्छेप्रकार उदय होनेपरभी बाहिरी एक चक्षु इंद्रियकोही देता है और सत्पुरुष तो सगुण और निर्गुण ज्ञानरूप आंतरीय अनेक

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ॥ संतो ब्रह्मविदः शांता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥३२॥ अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ॥ धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य संतोऽर्वाग् बिभ्यतो रणम् ॥ ३३ ॥ संतो दिशंति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ॥ देवता बांधवाः संतः संत आत्माऽहमेव च ॥ ३४ ॥ वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिस्पृहः ॥ मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ॥ यस्मात्त्वां ये यथाऽर्चंति सात्त्वता सात्त्वतर्षभ ॥ १ ॥

चक्षुओंको देते हैं इसलिये देवता और बांधवरूपभी सत्पुरुषही हैं और आत्मा तथा मद्रूपभी सत्पुरुषही हैं ॥ ३४ ॥ जब पुरूरवा राजाकी ऐसे ज्ञानसे उर्वशीके दर्शनकीभी इच्छा निवृत्त होगयी तब यह आप संगमात्रको त्याग कर, आत्माराम होकर, इस पृथ्वीमें विचरने लगा ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामशर्मविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ सत्ताइसवें अध्यायमें शीघ्र चित्तको स्वस्थ रखनेवाला और सर्व फलोंकी प्राप्तिका कारणरूप पूजाका प्रकार सांग संक्षेपसे कहा जायगा ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे प्रभु ! हे यादवोत्तम ! जो अधिकारी भक्तलोक, जिस कारणसे और जिसप्रकारसे आपका पूजन करते हैं वे भक्तलोक, वह कारण और वह रीतिसहित आपकी पूजाका प्रकार कि-

पुरुषोंका संग कदापि नहीं करना चाहिये जब विद्वान् पुरुषभी इंद्रियोंका विश्वास नहीं करते तब मेरे जैसे अविवेकी पुरुषोंकी तो बातही कौन ?॥ २४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-इसप्रकार गान करताहुआ वह राजाधिराज पुरूरवा उर्वशीके लोकको त्याग कर और मैं कि- जो परमात्मा हूं उसे अपनेमेंही जानकर, ज्ञानसे मोह निवृत्त होनेके हेतु उपरामको प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि- नीचलोगोंके संगको त्यागकर, सत्पुरुषोंकी संगति करे; क्योंकि सत्पुरुष अपने वचनोंसे इसके मनकी आसक्तिको काट देते हैं ॥ २६ ॥ तीर्थ और देवतानके संगसेभी सत्पुरुषोंका संग उत्तम है. सो सत्पुरुषोंके लक्षण ये हैं

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं प्रगायन्नृपदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय ॥ आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ॥ संत एतस्य छिंदंति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥ २६ ॥ संतोऽनपेक्षा मच्चिताः प्रशांताः समदर्शिनः ॥ निर्ममा निरहंकारा निर्द्वंद्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥ तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ॥ संभवंति हि ता नृणां जुषतां प्रपुनंत्यघम् ॥ २८ ॥ ता ये शृण्वंति गायंति ह्यनुमोदंति चाऽऽदृताः ॥ मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विंदंति ते मयि ॥ २९ ॥ भक्तिं लब्धवतः साधो किमन्यदवशिष्यते ॥ मय्यनंतगुणे ब्रह्मण्यानंदानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवंतं विभावसुम् ॥ शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥

कि-जो लोक अपेक्षारहित, मेरेमें चित्त रखनेवाले, प्रणाम करनेवाले, समदृष्टिवाले, अहंताममतासे रहित, सुखदुःखादिकसे रहित और किसी वस्तुका परिग्रह नहीं करनेवाले होवें उनको सत्पुरुष जानना ॥ २७ ॥ हे महाभाग ! उद्धव ! इन भाग्यशाली पुरुषोंमें निरंतर मेरी कथामें प्रवृत्त रहा करतीं हैं कि- जो कथायें अपना सेवन करनेवाले मनुष्योंके पापोंको दूर करतीं हैं ॥ २८ ॥ मेरे परायण रहनेवाले जो पुरुष श्रद्धासे और आदरसे इन कथाओंको श्रवण करें, सराहें और गावें उनको मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥ २९ ॥ मैं कि- जो अनंत गुणवाला और आनंद व अनुभवरूप परब्रह्म हूं उसकी जिस पुरुषको भक्ति प्राप्त हो जावे उस साधुपुरुषके दूसरा फिर क्या अलभ्य अवशेष रहता है ? नहीं रहता ॥ ३० ॥ जैसे अग्निदेवताकी सेवा करनेवाले

रण यह कि-यह देह किसकी पूंजी है ऐसे कहा नहीं जा सकता. देहको माता-पिताका कहें तौभी चल स-
क्ता है; क्योंकि वे उसके पैदा करनेवाले हैं. देहको स्त्रीका कहें तौभी कह सक्ते हैं क्योंकि स्त्री उसको भोग
देती है. देहको स्वामीका कहें तौभी चले; क्योंकि स्वामी उसका पोषण करता है और वह स्वामीके आधीन रहता है. देहको
अग्निका कहें तौभी चले; क्योंकि देहकी आहुति अग्निमें होती है. देहको कुत्ते और कौओंका कहें तौभी चले, क्योंकि
यह उनकाभी भक्ष्य है. देहको आत्माका कहें तौभी चले; क्योंकि देहके कियेहुए शुभअशुभको आत्मा भोगता है. देहको मि-
त्रोंका कहें तौभी चले; क्योंकि उनका यह उपकारी है. इसप्रकार वास्तविक रीतिसे देह किसका है ? ऐसे निश्चय नहीं हो स-
क्ता ॥ १९ ॥ उस अपवित्र और अंतमें कीड़ा विष्ठा वा भस्मरूप होनेवाले देहमें ‘ अहो ! स्त्रीका मुख अतिसुंदर, सुंदर नासि-

तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ॥ अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियाः ॥ २० ॥
त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जाऽस्थिसंहतौ ॥ विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदंतरम् ॥ २१ ॥ अथापि
नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ॥ विषयेंद्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥ अदृष्टादश्रुता-
द्भावान्न भाव उपजायते ॥ असंप्रयुंजतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ॥ २३ ॥ तस्मात्संगो न
कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेंद्रियैः ॥ विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥

कावाला और अतिमनोहर मंदहास्यवाला है ’ ऐसेप्रकारसे आसक्त हो जाता है ॥ २० ॥ वस्तुतः विचार किया जाय तौ त्वचा,
मांस, रुधिर, नसें, मेद, मज्जा और अस्थिके समूहरूप देहमें रमण करनेवाले और विष्ठा, मूत्र व पूयमें रमण करनेवाले कीड़ोंमें
कितना अंतर है ? ॥ २१ ॥ विवेकी पुरुषको चाहिये कि-स्त्रीका जैसे शरीरसे संग न करे ऐसे स्त्रियोंका तथा स्त्रीलंपट पुरुषोंका
संग दर्शन आदिसेभी न करे; कारण यह कि-विषयका और इंद्रियका संग होनेसेही मन क्षोभको पाता है. संयोगभये विना क्षो-
भको नहीं पाता ॥ २२ ॥ चक्षु-आदिको बंद करनेपरभी जो मनका क्षोभ होता है वहभी विषयोंका पहले अनुभव नहीं किया
होवे तौ नहीं होता. कारण यह कि-विना देखे सुने पदार्थमें मनकी इच्छा बिलकुल नहीं होती. इसलिये जो इंद्रियोंको विष-
योंमेंसे रोंकता है उस पुरुषका मन निश्चल होकर, शांत हो जाता है ॥ २३ ॥ इसलिये इंद्रियोंद्वारा स्त्रियोंका और स्त्रीलंपट

स्वार्थको नहीं जाननेवाला और मूर्ख होनेपरभी पंडितपनका मिथ्या अभिमान रखनेवाला मैं कि-जो चक्रवर्तीपनको पाकर, बैल और गधेकी नाईं स्त्रियोंके वश हो गया हूं तिसे धिक्कार है ॥ १३ ॥ अनेक वर्षोंसे मैं उर्वशीके अधरामृतका सेवन करता रहा तथापि अग्नि जैसे आहुतियोंसे तृप्त नहीं होवे ऐसे मेरे मनमें प्रगट भयाहुआ यह कामदेव तृप्त नहीं भया ॥ १४ ॥ छिनाल स्त्रीसे हरण कियेहुए चित्तको आत्माराम पुरुषोंके ईश्वर और इंद्रियोंसे अगम्य एक भगवान् विना दूसरा कौन छुड़ानेको समर्थ है ? मैं तो कर्मोंसे देवतानका यजन करके दुःखही पाया तासों अब मैं तो परमेश्वरकाही भजन करूंगा. ईश्वरकी कृपा-विना दूसरोंके उपदेशसे मोह निवृत्त नहीं हो सकता ॥ १५ ॥ क्योंकि मैं कि-जो कुमति और अजितेंद्रिय हूं उसको उर्वशीने

स्वार्थस्याकोविदं धिङ्मां मूर्खं पंडितमानिनम् ॥ योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥ सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् ॥ न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं कोऽन्वन्यो मोचितुं प्रभुः ॥ आत्मारामेश्वरमृते भगवंतमधोऽक्षजम् ॥ १५ ॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ॥ मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ॥ रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेंद्रियः ॥ १७ ॥ क्वायं मलीमसः कायो दौर्गंध्याद्यात्मकोऽशुचिः ॥ क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः ॥१८॥ पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः॥ किमात्मनः किं सुहृदामिति योनावसीयते ॥१९॥

यथार्थ वचनोंसे उपदेशभी दिया तथापि मेरे मनमें रहाहुआ महामोह कथमपि (कोईतरहसेभी) निवृत्त नहीं हुआ ॥ १६ ॥ मैं उर्वशीपर अपराध लगाता हूं परंतु वह व्यर्थ है; क्योंकि मैं कि-जो मेरे अजितेंद्रियपनसेही दुःखी हुआ हूं उसका उर्वशीने क्या बुरा किया ? रज्जुके स्वरूपको नहीं जाननेवाले मनुष्यके रज्जुमें सर्पबुद्धि होवे उसमें बिचारी रज्जुका क्या अपराध ? जैसे यह अपराध केवल देखनेवालेका माना जाता है ऐसे यहभी अजितेंद्रियपनके हेतु मेराही अपराध है ॥ १७ ॥ मलिन दुर्गंधादिरूप और अपवित्र स्त्रीका देह तौ कहां ? और उस देहमें सुगंध और कोमलताआदि गुण कहां ? इस बीभत्स शरीरमें सुंदरताका जो अध्यास है वह केवल अज्ञानकल्पित है ॥ १८ ॥ तथा इस देहमें ममताभी कल्पितमात्र है. का-

अपनेको छोड़कर, उर्वशी जाने लगी तब मोहसे विव्हल होकर, यह राजा उन्मत्तकी नाईं नंगा और 'हे स्त्री ! हे घोरे ! ठहेर ठहेर' इसप्रकार विलाप करता उसके पीछे २ दौड़ा ॥ ५ ॥ प्रथम जिस समय नरलोकमें उर्वशी अपनेपास थी उस समय विषयोंका भोग करता हुआ यह राजा तृप्त नहीं होता था और उर्वशीसे आकृष्टचित्त होनेके कारण इस दशाको पहुँच गया था कि-वर्षकी कितनी रात्रियां गयीं और कितनी अवशेष रही इसकीभी इसकी सुध नहीं रही यानी सूर्यके उदय अस्तकी खबर नहीं थी ॥ ६ ॥ फिर उर्वशीके लोकको पाकर, उसको भोग भोगनेके अनंतर वैराग्य प्राप्त हुआ तब राजा पुरूरवाने कहा कि-अहो ! देखो, मेरे मोहका विस्तार. उर्वशीने मेरे कंठका आलिंगन किया तिससे मेरा चित्त कामदेवके वश होनेसे ऐसा मलिन

कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ॥ न वेद यांतीर्नायांतीरुर्वश्याकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥ ऐल उवाच ॥ अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ॥ देव्या गृहीतकंठस्य नायुःखंडा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥ नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाभ्युदितोऽमुया ॥ मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥ ८ ॥ अहो मे आत्मसंमोहो येनाऽऽत्मा योषितां कृतः ॥ क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥ सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ॥ यांतीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा ॥ योऽन्वगच्छं स्त्रियं यांतीं खरवत्पादताडितः ॥ ११ ॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ॥ किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ १२ ॥

हो गया है कि-मुझे रात दिन व्यतीत होनेका स्मरणभी नहीं रहा ॥ ७ ॥ उर्वशीसे ठगाया हुआ मैं सूर्यके उदयास्तको और अनेक वर्षोंके गयेहुए अहोरात्रोंकोभी नहीं जानता ॥ ८ ॥ अहो ! मेरे मनका मोह महाप्रबल है कि-जिसने चक्रवर्ती और राजाओंके मुकुटमणिरूप मेरे शरीरको स्त्रियोंके निकट क्रीड़ामृगसा बना दिया ॥ ९ ॥ राज्यसहित चक्रवर्ती मेरे शरीरको तृणकी भांति तजकर, जातीहुई स्त्रीके पीछे मैं उन्मत्तकी नाईं नग्न और रुदन करता हुआ दौड़ा ॥ १० ॥ मैं कि-जो गधेकी नाईं मुंहपर लातें खाता, छोड़कर, जातीहुई स्त्रीके पीछे गया उसके प्रभाव, बल और सामर्थ्य कहांसे रहें ? ॥ ११ ॥ जिसका मन स्त्रियोंने हर लिया होवे उसके विद्यासे, तपसे, संन्याससे एकांतमें निवास करनेसे और मौन रखनेसे क्या होना है ? ॥ १२ ॥

छब्बिसवें अध्यायमें दुष्ट लोकोंके संगसे योगनिष्ठामें विघ्न होता है और सत्संगसे जैसी चाहिये वैसी योगनिष्ठा प्राप्त होती है. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–जिससे मेरा स्वरुप जाननेमें आता है ऐसे इस मनुष्यदेहको पाकर, मेरी भक्तिरूप धर्ममें दृढ़ रहे तौ परमानंदरूप आत्मा मैं कि–जो शरीरमेंही नियंतापनसे रहा हूं उसे प्राप्त होता है ॥ १ ॥ ज्ञानकी निष्ठाके प्रभावके हेतु गुणमय लिंगशरीरसे मुक्त भयाहुआ पुरुष गुण कि–जो मायामात्र और वास्तविक रीतिसे प्रतीत हो रहे हैं उनमें रहनेपरभी इन अवास्तविक गुणोंके संगको प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ यद्यपि ऐसे है तथापि ज्ञानी पुरुषको उपस्थ और उदरको तृप्त करनेवाले पुरुषोंका संग कदापि नहीं करना चाहिये. ऐसे अनेक पुरुषोंका संग तौ अलग रहा परंतु उनमेंसे एककाभी

श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ॥ आनंदं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥ गुणमय्या जीवयोन्याविमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ॥ गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥ वर्तमानोऽपि न पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥ संगं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ॥ तस्यानुगस्तमस्यंधे पतत्यंधानुगांऽधवत् ॥ ३ ॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ॥ उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥ त्यक्त्वाऽऽत्मानं व्रजंतीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ॥ विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठति विक्लवः ॥ ५ ॥

अनुसरण करे तौ अंधेके पीछे चले जाते अंधेकी नाई वह पुरुष गाढ़ अंधकार यानी नरकमें पड़ता है ॥ ३ ॥ इलाका पुत्र, चक्रवर्ती और बड़ा प्रख्यात कीर्तिवाला पुरुरवा राजा प्रथम उर्वशीके विरहसे मोहित होगया था फिर वो उसी दशासे भ्रमण करता २ कुरुक्षेत्रमें जा निकला; वहां उसको यह अप्सरा मिली और उस अप्सराने कहा कि–' तू गंधर्वोंकी उपासना कर, तेरा मनोरथ सिद्ध होगा ' तब उसके कहनेके अनुसार पुरुरवाने गंधर्वोंकी उपासना की तब गंधर्वोंने उसे अग्नि दी उसके द्वारा देवतानका यजन करके, वह राजा गंधर्वलोकको प्राप्त हुआ. जब उस लोकमें जानेसे राजाका शोक निवृत्त होगया तब उसने वैराग्य प्राप्त होनेके कारण यह गाथा गायी ॥ ४ ॥ जबलों राजाको वैराग्य प्राप्त नहीं हुआ था तबलों राजाकी यह दशा थी कि–

स्थल, सुखरूप फल, दूसरे दो गुणोंको दबानेका समय इत्यादि काल, ज्ञान, कर्म, कर्ता, श्रद्धा, जाग्रत्-आदि अवस्था,
देवता-आदि आकृति और स्वर्गादिककी प्राप्तिरूप निष्ठा ये सब वस्तु तीन गुणमय हैं ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! ये कहेहुए पदा-
र्थही तीन गुणमय नहीं हैं. किंतु प्रकृति व पुरुषमय देखने सुनने और बुद्धिसे विचारनेमें आतेहुए जितने पदार्थ हैं वे सब
त्रिगुणमय हैं ॥ ३१ ॥ हे उद्धव ! जीवके सब जन्म, गुण और कर्म अभिमानरूप कारणसेही होते हैं. जो जीव चित्तसे होते-
हुए इन गुणोंको जीत गया होवे वह जीव अविच्छिन्न भक्तियोगसे मेरेमें निष्ठा पाकर, मोक्षके योग्य हो जाता है ॥ ३२ ॥
इसलिये यह मनुष्यदेह कि-जिसमें ज्ञान और विज्ञान होनेका संभव है यदि वह मिल जाय तो गुणोंमें जो आसक्ति है उसे

सर्वं गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ॥ दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥ एताः सं-
सृतयः पुंसो गुणकर्मनिबंधनाः ॥ येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ॥ ३२ ॥ भक्तियो-
गेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥ ३३ ॥ गुणसंगं वि-
निर्धूय मां भजंतु विचक्षणाः ॥ निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेंद्रियः ॥ ३४ ॥ रजस्तमश्चाभि-
जयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शांतधीः ॥ ३५ ॥ संपद्यते गुणैर्मुक्तो जी-
वो जीवं विहाय माम् ॥ जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ॥ मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्ना-
तरश्चरेत् ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ ॥

छोड़कर, विचक्षण पुरुषोंको चाहिये कि- मेरा भजन करें ॥ ३३ ॥ जितेंद्रिय हो, आसक्तिको त्याग, सावधान होकर, विद्वान्
पुरुषको चाहिये कि- मेरी भक्ति करे. शांतबुद्धिवाले मुनिको उचित है कि- सत्वगुणकी सेवासे रजोगुण व तमोगुणको
जीते ॥ ३४ ॥ और उपशमरूप सत्वगुणको धारण करके, उससे दया-आदि विक्षेप पैदा करनेवाले सत्वगुणकोभी जीते.
इसप्रकार हो जाय तो गुणोंसे मुक्त भयाहुआ जीव जीवपन देनेवाले लिंगशरीरको त्याग कर, मुझे प्राप्त हो जाता है ॥ ३५ ॥
लिंगशरीरसे और चित्तसे होतेहुए गुणोंसे मुक्त भयाहुआ तथा मैं कि-जो परब्रह्म हूं तिसीसे पूर्ण भयाहुआ जीव विषयोंका
भोग नहीं करता. और उनका स्मरणभी नहीं करता और उसीसे उसके फिर दूसरीवेर जन्ममरणरूप संसार नहीं होता ॥ ३६ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥

देहादिकसे भिन्न नहीं है ऐसा जो ज्ञान वह राजस और बालक व मूकके जैसा जो प्राकृत ज्ञान वह तामस तथा मेरे स्वरूपका जो ज्ञान वह निर्गुण ज्ञान कहलाता है. ऐसे ज्ञानभी चार प्रकारका है ॥ २४ ॥ वनमें रहना यह सात्विक वास, घरमें रहना यह राजस वास और द्यूतआदिके स्थलमें रहना यह तमोगुणी वास कहलाता है. और मेरे मंदिरमें रहना यह निर्गुण निवास जानो ॥ २५ ॥ आसक्तिरहित होकर, जो कर्म करे वह सात्विक कर्ता, अत्यंत आसक्तिसे अंध होकर, जो कर्म करे वह राजस कर्ता और पूर्वापरकी स्मृतिशून्य होकर, जो कर्म करे वह तामस कर्ता कहलाता है. तथा केवल मेरा आश्रय ले, अहंकाररहित होकर, जो कर्म करे उसे निर्गुण कर्ता जानो ॥ २६ ॥ परमेश्वरसंबंधी शास्त्रोंमें जो श्रद्धा हो वह सात्विक, कर्ममें श्रद्धा होवे वह

वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते ॥ तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागांधो राजसः स्मृतः ॥ तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी ॥ तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ ॥ २७ ॥ पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ राजसं चेंद्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदा शुचि ॥ ॥ २८ ॥ सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ॥ तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥ २९ ॥ द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ॥ श्रद्धाऽवस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्वएव हि ॥ ३० ॥

राजस और अधर्मको धर्म मानकर, जो श्रद्धा होवे वह तामस श्रद्धा कहलाती है. तथा मेरी सेवामें जो श्रद्धा होवे वह निर्गुण श्रद्धा कहलाती है ॥ २७ ॥ पथ्य (हितकारी) पवित्र और अनायाससे प्राप्त जो आहार वह सात्विक, इंद्रियोंको प्रिय लगे ऐसा चरका, फरका- आदि जो आहार वह राजस, दीनता देनेवाला तथा अशुद्ध जो आहार व तामस आहार कहलाता है. तथा मेरे भोग लगाया हुआ जो आहार वह निर्गुण आहार कहलाता है ॥ २८ ॥ आत्माको देहादिकसे जुदा जाननेसे जो सुख प्राप्त होवे वह सात्विक, विषयोंसे जो सुख प्राप्त होवे वह राजस और मोह व दीनतासे जो सुख प्राप्त होवे वह तामस सुख कहलाता है. तथा शुद्धब्रह्मके ज्ञानसे जो सुख प्राप्त होता है वह निर्गुण कहा जाता है ॥ २९ ॥ इसप्रकार आहारादिक पदार्थ, वनादि

द्रियोंको उपराम नहीं मिले, कर्मेंद्रियोंमें विकार बढ़े और मन भ्रमण किया करे तब रजोगुण बढ़ा है ऐसे जानना ॥ १७ ॥ जब अस्त होताहुआ चित्त चिदाभासको ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर, लीन हो जावे; संकल्परूप मनभी लीन हो जाय, अज्ञान उत्पन्न हो जाय तथा खेद होवे तब तमोगुणकी वृद्धि जाननी ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! प्रसंगप्राप्त कहता हूं कि–सत्वगुणकी वृद्धि होवे तब देवतानका बल बढ़ता है. रजोगुणकी वृद्धि होवे तब असुरोंका बल बढ़ता है. तमोगुणकी वृद्धि होवे तब राक्षसोंका बल बढ़ता है ॥ १९ ॥ जाग्रत्अवस्था सत्वगुणसे, स्वप्नअवस्था रजोगुणसे और सुषुप्तिअवस्था तमोगुणसे होती है. तीनों अवस्थाओं-में अनुस्यूत जो चौथा स्वरूप है वह तौ आत्माही है ॥ २० ॥ मनुष्य सत्वगुणसे ब्रह्मलोकपर्यंत ऊंचे ऊंचे लोकोंमें जाते हैं.

सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ॥ मनो नष्टं तमोग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८ ॥ एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ॥ असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ॥ प्रस्वापं तमसा जंतोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छंति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ॥ तमसाऽधोऽध आमुख्याद्रजसांऽतरचारिणः ॥ २१ ॥ सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यांति नरलोकं रजोलयाः ॥ तमोलयास्तु निरयं यांति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ॥ राजसं फलसंकल्पं हिंसा प्रायादितामसम् ॥ २३ ॥ कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ॥ प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥

और तमोगुणसे स्थावरपर्यंत नीची नीची योनियोंमें जन्म लेते हैं. और रजोगुणसे पीछा मनुष्यशरीरको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ सत्वगुणकी वृद्धिके समय मरेहुए मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं. रजोगुण बढ़ाहुआ हो उस समय मरेहुए मनुष्य मनुष्यलोकमें जाते हैं, और तमोगुणकी वृद्धिके समय मरेहुए मनुष्य नरकमें जाते हैं. और निर्गुण मनुष्य तौ जीते जी मुझको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ मेरी प्रीति प्राप्त होनेके उद्देशसे वा केवल दासभावसेही जो अपना वर्णाश्रमविहित कर्म किया जाय वह सात्विक कर्म कहलाता है. फलका अनुसंधान रखकर, जो कर्म किया जाय वह राजस कर्म कहलाता है. अतिबहुत हिंसावाला जो कर्म दंभ और मत्सर–आदिसे किया जाय वह तामस कर्म कहलाता है ॥ २३ ॥ आत्मा देहादिकसे भिन्न है ऐसा जो ज्ञान वह सात्विक, आत्मा

स्वभाववाला जानना ॥ १० ॥ जो सुखकी आशासे कर्म करके, मेरा भजन करे. उसको रजोगुणी स्वभाववाला जानना. जो हिंसाकी धारणा करके, मेरा भजन करे उसको तमोगुणी प्रकृतिवाला जानना ॥ ११ ॥ सत्व, रज और तम ये तीनों गुण जीवकेही हैं. मेरे नहीं हैं, कारण यह कि- ये गुण पांच महाभूतके कार्यरूप चित्तमेंही उत्पन्न होते हैं. तासों पंचमहाभूतोंकी उपाधिवालेकेही होने चाहिये, कि- जिन गुणोंसे जीव पदार्थोंमें आसक्त होकर, बँध जाता है. मैं तो गुणोंके नियंतापनसे सृष्टि आदि कार्य करता हूं अतएव उनमें आसक्त नहीं होता तासों नित्यमुक्त हूं. और इसीसे मेरा भजन करनेके वास्ते मैं बारंवार

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ॥ तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥
सत्त्वं रजस्तमइति गुणा जीवस्य नैव मे ॥ चित्तजा यस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥
यदेतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ॥ तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३ ॥
यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजःसंगं भिदावलम् ॥ तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥ यदा
जयेद्रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ॥ युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥ यदा
चित्तं प्रसीदेत इंद्रियाणां च निर्वृतिः ॥ देहेऽभयं मनो संगं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥ विकुर्वन् क्रियया चाधीरनिवृत्तिश्च चेतसाम् ॥ गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रांतं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥

कहता हूं ॥ १२ ॥ जब प्रकाशक, स्वच्छ और शांत सत्वगुण दूसरे दो गुणोंको दबाकर, बढ़ जाता है तब पुरुष सुख, धर्म, ज्ञान और शम, दम-आदिसे युक्त हो जाता है ॥ १३ ॥ संग व भेदका कारणरूप तथा प्रवृत्तिस्वभाववाला रजोगुण जब दूसरे दो गुणोंको दबाकर, बढ़ जाता है तब पुरुष दुःख, कर्म, यश और लक्ष्मीसे युक्त हो जाता है ॥ १४ ॥ विवेकसे भ्रष्ट करनेवाला, आवरणरूप और अनुद्यमरूप तमोगुण जब दूसरे दो गुणोंको दबाकर, बढ़ जाता है तब पुरुष शोक, मोह, निद्रा, हिंसा और आशासे युक्त हो जाता है ॥ १५ ॥ जब चित्त स्वच्छ होवे, इंद्रियोंका उपराम होवे, देहमें अभय होवे और मन संगरहित होवे तब मेरी प्राप्तिका आश्रय सत्वगुण बढ़ा है ऐसे जानना ॥ १६ ॥ जब मनुष्य क्रियासे विकार पाकर, विक्षेपमें पड़े, ज्ञानें-

अपनी प्रशंसामें प्रीति, उपहास, पराक्रम प्रसिद्ध करना और बलसे उद्यम ये रजोगुणकी वृत्तियां हैं ॥ ३ ॥ क्रोध, लोभ, झूंठ, हिंसा, मांगना, दंभ, भ्रम, कलह, शोक, मोह, दुःख, दीनता, तंद्रा (आलस्य), लंबी २ आशा, भय और जड़ता ये तमोगुणकी वृत्तियां हैं ॥ ४ ॥ ये सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी वृत्तियां बहुतसी तो कह दीं हैं और ऐसी जो औरभी होवें वे इसीके अनुसार जान लेनी. अब इकट्ठे भयेहुए गुणोंकी वृत्तियोंके विषयमें कहता हूं सो सुनो ॥ ५ ॥ हे उद्धव ! ' मैं और मेरा ' ऐसी जो बुद्धि होती है वह तीनों गुणोंका सन्निपात अर्थात् मेल यानी इकठ्ठापन है. मन, शब्दादि विषय, इंद्रियां और प्राणसे जो व्यवहार होता है वह सब तीनों गुणोंका सन्निपात समझना चाहिये ॥ ६ ॥ पुरुष जब धर्म, अर्थ और काममें आ-

क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दंभ क्लमः कलिः ॥ शोकमोहौ विषादार्ती निद्राशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥ सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ॥ वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ॥ व्यवहारः संन्निपातो मनोमात्रेंद्रियासुभिः ॥ ६ ॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः ॥ गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥ प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे ॥ स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हिसा ॥ ८ ॥ पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ॥ कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसायुतम् ॥ ९ ॥ यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ॥ तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव वा ॥ १० ॥

सक्त हो रहा हो तब जानना कि-यह जो इसका बर्ताव है वह इन तीनों गुणोंके सन्निपातसे हुआ है. जिस सन्निपातसे श्रद्धा, रति और धन प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ सकाम धर्ममें निष्ठा राखे, गृहस्थाश्रममेंही आसक्त होकर रहे और नित्य नैमित्तिक धर्ममेंभी निष्ठा राखे, तो इस बर्तावकोभी गुणोंके सन्निपातसे भयाहुआ जानना. कारण यह कि-सकाम धर्म रजोगुणमय हैं, घरमें आसक्ति तमोगुणमय है. और नित्यनैमित्तिक धर्ममें निष्ठा है सो सत्वगुणमय है ॥ ८ ॥ पुरुषको शमआदि वृत्तियोंपरसे सत्वगुणवाला जानना. कामादि-वृत्तियोंपरसे रजोगुणवाला और क्रोधादि-वृत्तियोंपरसे तमोगुणवाला जानना ॥ ९ ॥ जो पुरुष वा स्त्री निष्काम कर्म करके प्रेम और भक्तिसे मेरा भजन करे तब उसको सत्वगुणी

प्रलयपरसे सर्वके अधिष्ठानरूपसे और अवधिरूपसे सब प्रकार आत्माही जाना जाता हैं ॥ २७ ॥ जो मनुष्य इस प्रकार हृदयमें विचार करता रहे उसके मनमें भेदसंबंधी भ्रम किसीप्रकार नहीं रहता. जैसे आकाशमें सूर्योदय भये पीछे अंधकार किसीप्रकार नहीं रह सकता ॥ २८ ॥ मैं कि– जो भूतभविष्यका ज्ञाता हूं उसने यह संशयरूप ग्रंथिको काटनेवाला सांख्यविधिका निरूपण किया. कि–जिस सांख्यमें प्रतिलोमसे प्रलयका और अनुलोमसे सृष्टिका निरूपण किया जाता है ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥ ॥ पचीसवें अध्यायमें अपनी निर्गुणताका निश्चय होनेके वास्ते चित्तमेंसे उत्पन्न होतीहुई सत्वादिक गुणोंकी वृत्तियां अनेकप्रकारसे कही जायगीं

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ॥ मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २८ ॥ एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रंथिभेदनः ॥ प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २९ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ॥ तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥ शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ॥ तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥ काम ईहा मदस्तृष्णा स्तंभ आशीर्भिदा सुखम् ॥ मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥ ३ ॥

॥ १ ॥ श्रीभगवानने कहा कि–प्रकृतिसे पुरुष भिन्न है ऐसा जिसको ज्ञान हो गया हो उसकेभी जबलों बड़े प्रयत्नसे तीन गुणोंकी वृत्तियां जीतनेमें न आवें तबलों सुखदुःख निवृत्त नहीं होते अतएव इन वृत्तियोंका निरूपण करना आवश्यक है कि–जो निरूपण इन वृत्तियोंको जीतनेके वास्ते साधनरूप है. हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! उद्धव ! अब जुदे २ गुणोंमें जिसगुणसे यह मनुष्य–जैसा हो जाता है उस विषयमें मैं कहता हूं सो तुम सुनो ॥ १ ॥ शम, दम, तितिक्षा (सहनशीलता), विवेक, स्वधर्मनिष्ठा, सत्य, दया, पूर्वापरका अनुसंधान, संतोष, खरचनेका स्वभाव, विषयोंमें वैराग्य, आस्तिकता, अयोग्य कर्मोंका अदर्शन, दान, सरलता, विनय-आदि और आत्मामें प्रीति, ये सत्वगुणकी वृत्तियां हैं ॥ २ ॥ स्वर्गादिककी इच्छा, यज्ञादिक व्यापार, मद, लाभ होनेपरभी असंतोष, गर्व, धनादिककी इच्छासे देवादिककी प्रार्थना, भेदबुद्धि, विषयभोग, मदसे युद्धादिकका अभिनिवेश,

जुदे जुदे होने लग जाते हैं ॥ २१ ॥ शरीर अन्नसे बढ़ा है सो वह अन्न सौ वर्षकी अनावृष्टिसे क्षीण हो जाता है तब उसके विना शरीर रहे नहीं इसलिये कहते हैं कि-शरीर अन्नमें लीन हो जाता है. अन्न बीजमें लय पाता है. बीज पृथ्वीमें लय पाता है. पृथ्वी गंधमें लीन हो जाती है ॥ २२ ॥ गंध जलमें लीन हो जाता है. जल अपने गुणरूप रसमें लीन होता है. रस तेजमें लीन हो जाता है. तेज रूपमें लीन हो जाता है ॥ २३ ॥ रूप वायुमें और वायु स्पर्शमें तथा स्पर्श आकाशमें और आकाश शब्द-तन्मात्रामें और इंद्रियां अपने प्रवर्तक देवतानमें ॥ २४ ॥ और देवता अपने नियंतारूप मनमें लीन होते हैं. यदपि इंद्रियोंका लय राजसाहंकारमें और देवतानका लय सात्विकाहंकारमें कहना था; तथापि इंद्रियोंकी प्रवृत्ति देवतानके आधीन रहनेसे इंद्रि-

अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ॥ धाना भूमौ प्रलीयंते भूमिर्गंधे प्रलीयते ॥ २२ ॥
अप्सु प्रलीयते गंध आपश्च स्वगुणे रसे ॥ लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥ २३ ॥
रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चांबरे ॥ अंबरं शब्दतन्मात्र इंद्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥
योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ॥ शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥ २५ ॥
स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ॥ तेऽव्यक्ते संप्रलीयंते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥ २६ ॥ कालो
मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ॥ आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥ २७ ॥

योंका लय देवतानमें कहा गया. और देवताका लय जो मनमें कहा गया सो वह देवतानकी प्रवृत्ति मनके आधीन रहनेसे. शब्दतन्मात्राका लय तामसाहंकारमें और मनका लय सात्विकाहंकारमें होता है. सर्व जगतको मोहित करनेमें समर्थ अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होता है ॥ २५ ॥ ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिवाला महत्तत्त्व अपने कारणरूप गुणोंमें लीन होता है. गुण मायामें लीन होते हैं. माया कालके आधीन है तासों वह माया, जिसकी वृत्ति उपरत होगयी है, ऐसे कालमें लीन होती है, अर्थात् कालके साथ एकरूप होकर, रहती है ॥ २६ ॥ काल मायाके प्रवर्तक पुरुषमें लीन होता है. पुरुष अपनी प्रकृति लीन हो जानेके कारण पूर्ण स्वरूपसे आत्मामें रहता है. आत्मा आप केवलरूप होनेके कारण अपने स्वरूपमेंही रहता है. दू-सरे किसीमें लीन नहीं होता; कारण यह कि-जगतकी सृष्टि इसीमेंसे हुई है और लयभी इसीमें होता है. जगतकी सृष्टि और

' महत्तत्त्वादिकभी अपने अपने कार्यके-आदि और अंतमें रहते हैं तासों वेभी सत्य होने चाहिये, ऐसी शंका नहीं करनी, क्योंकि महत्तत्त्वादिक कारणपदार्थ अहंकार-आदि कार्यपदार्थको जो उत्पन्न करते हैं सो आत्माको लेकरही उत्पन्न करते हैं. जैसे मृत्तिकाका पिंड घड़ेको उत्पन्न करता है सो वह मृत्तिकाको ले करकेही करता है; मिट्टीविना उत्पन्न नहीं कर सकता. अतएव जैसे घट-आदि कार्योंका और पिंड-आदि अवांतर कारणोंका परमकारणरूप मृत्तिकाही सत्यस्वरूप है ऐसे जगत्‌रूप कार्यका और महत्तत्त्व-आदि कारणोंका परमकारणरूप एक परब्रह्मही सत्यस्वरूप है; क्योंकि यह नियम है कि-जो अवांतर कारण जिस परमकारणको लेकर, कार्यको प्रगट करे वहां सत्यस्वरूप वही कहा जायगा कि-जो परमकारण होगा. क्योंकि कार्यके और अवांतर कारणके आदि व अंतमें वही रहता है ॥ १८ ॥ कार्योंका उपादान कारणरूप प्रकृति, प्रकृतिका अधिष्ठाता

यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुते परम् ॥ आदिरंतो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥ १८ ॥ प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ॥ सतोऽभिव्यंजकः कालो ब्रह्म तत्रित्रयं त्वहम् ॥ १९ ॥ सर्गः प्रवर्त्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ॥ महान् गुणविसर्गार्थः स्थित्यंतो यावदीक्षणम् ॥ २० ॥ विराण्मयासाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ॥ पंचत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २१ ॥

पुरुष और गुणोंका क्षोभ करके, कार्योंको प्रगट करनेवाला काल ये तीनों मेरेही (ब्रह्मके) स्वरूप हैं. मुझसे भिन्न नहीं हैं. कारण यह कि-प्रकृति मेरी शक्ति है और काल व पुरुष मेरी अवस्थारूप है. प्रकृति पुरुष और काल यदपि किसीके कार्य नहीं हैं. किंतु जगत्‌के कारणरूप हैं. तथापि वे मुझसे भिन्न नहीं हैं तासों मैं अद्वितीय स्वरूपही हूं ॥ १९ ॥ जीवको भोग देनेके वास्ते प्रगट भयीहुई यह बड़ी सृष्टि जबलों स्थितिका अंत आवे तबलों पिता और पुत्रादिक रूपसे अविच्छिन्न चला करती है और यह स्थिति जबलों परमेश्वरका ईक्षण होवे तबलों रहती है ॥ २० ॥ यह सृष्टिविषय कहा गया अब प्रलयका विषय कहता हूं. जिसमें लोकोंकी अनेक सृष्टियां और अनेक प्रलय कल्पन किये जाते हैं ऐसे ब्रह्मांडके निकट, मेरा स्वरूपभूत काल पहूंचने लगता है तब भुवनोंके साथ यह ब्रह्मांड विसरना नाश होता है. यानी ब्रह्मांडरूपसे इकठे भयेहुए पंचमहाभूत

रहनेका स्थान हुआ. भुवर्लोक भूतआदिका स्थान हुआ. भूर्लोक मनुष्य-आदिका स्थान हुआ. और ज्ञानी लोगोंका स्थान तो इन तीनों लोकोंसे पर परब्रह्म है ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीने नाग और असुरोंका निवासस्थान पृथ्वीके तले यानी पाताल रचा है. त्रिगुणात्मक कर्म करनेसे जो गतियां होतीं हैं वे सब त्रिलोकीके भीतर हैं ॥ १३ ॥ योग, तप और संन्यास करनेसे महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोकमें योग्यताके अनुसार निर्मल गतियां प्राप्त होतीं हैं. और भक्तियोग साधनेवालेको वैकुंठलोककी गति प्राप्त होती है ॥ १४ ॥ मैं कि-जो कालशक्तिवाला और कर्मोंके फलका देनेवाला हूं उसकी शक्तिसे कर्मोंमें युक्त भयाहुआ यह जगत् इस संसाररूप गुणोंके प्रवाहमें कभी सत्यलोकपर्यंतकी उत्तम गतियोंको प्राप्त होता है. और कभी स्थावरप-

अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ॥ त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १३ ॥ योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ॥ महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ १४ ॥ मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥ अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति ॥ सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥ यस्तु यस्यादिरंतश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ॥ विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १७ ॥

र्यंतकी नीच गतियोंको प्राप्त होता है, वैकुंठविना दूसरी सब गतियां चंचल हैं तासों सबमें वैराग्य रखना योग्य है ॥ १५ ॥ छोटे, बड़े, कृश वा स्थूल जो पदार्थ हैं वे पदार्थमात्र प्रकृति और पुरुषसे व्याप्त हैं ॥ १६ ॥ जो पदार्थ जिसके आदि और अंतमें होता है वह पदार्थही उसके मध्यमेंभी होता है. जैसे घड़ेके आदि और अंतमें मृत्तिका है तो उसके मध्यमेंभी वही है. और कुंडल व कटकआदिके आदि व अंतमें सुवर्ण है तौ उनके मध्यमेंभी वही (सुवर्णही) है. घड़ेमें और कुंडलआदिमें मिट्टी और सुवर्ण नहीं बदलते तासों वे सत्य कहलाते हैं ऐसे जगत्में आत्मामें विकार नहीं होता तासों वह सत्य कहलाता है. घड़ा और कुंडलादिक विकार जैसे व्यवहारके वास्तेही हैं ऐसे जगत्भी केवल व्यवहारके वास्ते है. जैसे घट और कुंडलादिक मिट्टी और सुवर्णसे भिन्न नहीं हैं किंतु मृत्तिका और सुवर्णरूपही हैं ऐसे जगत्भी परमेश्वरसे भिन्न नहीं है किंतु परमेश्वररूपही है ॥ १७ ॥

उनसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ, जिसके ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिके हेतु दो प्रकार कहे जाते हैं. यह महत्तत्त्व विकारको प्राप्त हुआ तब उससे जीवोंके भ्रांतिका करनेवाला अहंकार उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ अहंकारके वैकारिक, तैजस और तामस ये तीन भेद हैं. तिनमें वैकारिक अहंकारसे इंद्रियोंके ग्यारह देवता और मन उत्पन्न हुए. तैजससे ग्यारह इंद्रियां प्रगट हुईं. तामससे शब्द, स्पर्श, रूप रस और गंध ये पांच तन्मात्रा प्रगट हुईं. यह अहंकार चिदाभाससे व्याप्त होनेके कारण जड़ और चैतन्यकी ग्रंथिरूप कहलाता है. देवता और मनका प्रकाश स्वभाव है तासों उनको वैकारिक सात्विक अहंकारका कार्य माना है. इंद्रियोंका प्रवृत्तिस्वभा-

तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ॥ ततो विकुर्वतो जातो योऽहंकारो विमोहनः ॥ ६ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ॥ तन्मात्रेंद्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिंद्रियाणि च ॥ तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥ मया संचोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ॥ अंडमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्नहं समभवमंडे सलिलसंस्थितौ ॥ मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चाऽऽत्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ॥ लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवःस्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ॥ मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ १२ ॥

व है तासों उनको वैकारिक तैजस (राजस) अहंकारका कार्य माना है. पंच महाभूतोंका आवरण स्वभाव है तासों उनको तामस अहंकारके कार्य माने हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ मेरी प्रेरणासे इन सब पदार्थोंने मिलकर अपनेमें शक्ति प्राप्त होनेके कारण मैं कि-जो अंतर्यामी हूं उसका आश्रयरूप अंड उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ जलमें रहेहुए उस अंडमें लीलासे नारायणरूप देह धारण करके मैं विराजमान रहा. मेरी नाभिमेंसे सर्व लोकोंका कारणरूप कमल उत्पन्न हुआ. और कमलमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुवे ॥१०॥ रजोगुणवाले और जगत्‌के कारणरूप उन ब्रह्माजीने मेरी अनुग्रहसे तप करके लोकपालसहित भूर्लोक (पातालसहित पृथ्वी) भुवर्लोक (अंतरिक्ष) और स्वर्लोक (स्वर्गसे ले. ब्रह्मलोकपर्यंत) इन तीनों लोकोंको रचा ॥ ११ ॥ स्वर्गलोक देवतानके

है. कि-जिससे सुख दुःखादि सर्व द्वंद्वोंका निराकरण हो जाता है ॥६१॥ मनका निग्रह करनेकी शक्ति न होवे तौभी जो पुरुष इस ब्रह्मनिष्ठाको प्राप्त करानेवाली भिक्षुगीताको सावधान होकर, धारण करे; श्रवण करे औरकरावे, वहभी सुखदुःख-आदिसे पराभव नहीं पावे ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ चौबीसवें अध्यायमें सांख्यद्वारा आत्मासे सर्व पदार्थ उत्पन्न होते हैं और पीछे आत्मामेंही लीन होते हैं ऐसा, चिंतवन करनेका उपदेश करके, मनका मोह निवारण किया जायगा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-अब मैं तुमको कपिल-आदि पूर्वाचार्योंका निर्णय किया हुआ सांख्य कहूंगा. कि-जिस सांख्यके जाननेसे पुरुष तुर्त भेदबुद्धिसे

य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ॥ धारयन् श्रावयन् शृण्वन् द्वंद्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ॥ यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वै कल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥ आसीज्ज्ञानमथो अर्थ एकमेवाविकल्पितम् ॥ यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ॥ वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ॥ ज्ञानं त्वन्यतमोभावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥४॥ तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ॥ मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥

भयीहुई सुखदुःखादिककी भ्रांतिको छोड़ देता है ॥ १ ॥ प्रलयमें और सबसे पूर्व सत्ययुग कि- जिसमें सबलोग ब्रह्मविद्यामें निपुण थे उसमें द्रष्टा और दृश्य सब एकरूपही थे. प्रलयमें कोई भेदभाव नहीं था ऐसे सत्ययुगमेंभी भेदकी स्फूर्ति न होनेसे सब ईश्वररूपही जाना जाता था. किसी प्रकारका भेद नहीं था ॥ २ ॥ केवल भेदरहित और सत्य यह व्यापक ब्रह्मही अपनी मायाके हेतु वाणीकी और मनकी प्रवृत्ति होवे ऐसे दृश्य और द्रष्टारूपसे दोप्रकारका हुआ ॥ ३ ॥ इन दृश्य और द्रष्टामें जो दृश्य पदार्थ है वह कार्य-कारणरूप प्रकृति है. और जो दूसरा द्रष्टा पदार्थ है वह पुरुष कहलाता है ॥ ४ ॥ मैंने जीवोंके अदृश्यके हेतु ईक्षणरूप द्वारसे प्रकृतिका क्षोभ किया तब उससे सत्व, रज और तम ये तीन गुण प्रगट हुए ॥ ५ ॥

आपही आत्माकाही अंश है तो जैसे ज्वालाकी गर्मी अग्निको नहीं लगती और हिमकणकी सर्दी हिमको नहीं लगती ऐसे कालसे होतेहुए सुखदुःखसे आत्माको किसी प्रकारका क्लेश होना संभवे नहीं. कारण यह कि—आत्मा असंग है तासों किसी प्रकार उसके सुख दुःखका संबंध नहीं है ॥ ५६ ॥ लोक और देवताआदि इन छह ६ दुःख सुखके कारणों विना यदि कोई पुरुष दूसराभी सुख—दुःखका कारण कल्पन करे तो वहभी, आत्मा कि—जो प्रकृतिसेभी पर है उसके किसीसे, किसी देशमें और किसी प्रकारसेभी सुख-दुख आदिका संबंध संभवे नहीं. इस संसारको देनेवाले अहंकारके हेतुही सुख-दुःखादिक प्रतीत होते हैं. वास्तविक नहीं. जो मनुष्य इसप्रकार जाने वह किसी पदार्थसे डरे नहीं ॥ ५७ ॥ इसलिये मैंभी अतिप्राचीन महर्षियोंकी धारण

न केनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वंद्वोपरागः परतः परस्य ॥ यथाहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥ एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ॥ अहं तरिष्यामि दुरंतपारं तमो मुकुंदांघ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ॥ निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकंपितोऽमूं मुनिराह गाथाम् ॥ ५९ ॥ सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्याऽऽत्मविभ्रमः ॥ मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ॥ मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥

कीहुई इस ब्रह्मनिष्ठाका आश्रय ले, जिसका अंत और पार आना कठिन है ऐसे संसाररूप अंधकारको पार हो जाऊंगा और ऐसी ब्रह्मनिष्ठा मुझको प्रभुके चरणकी सेवासे प्राप्त होवेगी ॥ ५८ ॥ भगवान्‌ने कहा कि— इस प्रकार धन नष्ट होनेसे वैराग्य प्राप्त होनेके कारण जिसका सब परिश्रम निवृत्त हो गया था ऐसा और संन्यास लेकर, पृथ्वीमें विचारताहुआ यह मुनि, नीच पुरुषोंके दुःख देनेपरभी स्वधर्मसे न डिग कर, इस गाथाको गाता रहा ॥ ५९ ॥ पुरुषको सुख दुःखका देनेवाला दूसरा कोईभी नहीं है, मित्र, उदासीन शत्रु और यह सब संसारभी अज्ञानके हेतु अपने मनकी भ्रांतिसे उत्पन्न किया हुआ है ॥ ६० ॥ इस लिये हे उद्धव ! मुझमें लगीहुई बुद्धिसे युक्त होकर, तुम सर्व प्रकारसे मनका निग्रह करो मनका निग्रह करना यही योगका मूल स्वरूप

हुए. उसमें दूसरेसे कुछभी नहीं हुआ कि-जिसपर कोप किया जाय. आत्मासे जुदा कुछभी नहीं है. और जो दीख पड़ता है वह वास्तविक रुप नहीं है फिर क्यों क्रोध करना ? कारण यह कि-सुखदुःखका निमित्त सुख वा दुःख कुछभी वास्तविक नहीं है ॥ ५३ ॥ ग्रह सुख-दुःखके कारण हों तो उसमेंभी आत्माको क्या? ग्रह तौ जन्म लेनेवाले देहकेही संबंधी हैं तासों जन्म-लग्नसे बारहवीं वा आठवीं-आदि राशिमें आये हों तौ वे देहको सुख दुःख देवें परंतु आत्मा कि-जो जन्माहुआ नहीं है उसको सुख दुःख नहीं देते. फिर ज्योतिषी लोग ग्रहोंकी परस्पर दृष्टि पड़नेसे पीड़ा होती है ऐसे कहते हैं, अंतरिक्षमें रहेहुए ग्रहोंकी क्रूरदृष्टि अंतरिक्षमें रहेहुए दूसरे ग्रहोंपर पड़ती है परंतु घरके कोनेमें रहेहुए पर पड़नी संभवे नहीं. तासों ग्रहोंकी पीड़ा ग्रहोंकेही होती है तो ग्रहोंसे और ऐसे लग्नमें उत्पन्न भयेहुए देहसे जुदा पुरुष किसपर क्रोध करे ? ॥ ५४ ॥ कर्म जो सुख दुःखके कारण

ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै ॥ ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदंति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४ ॥ कर्मास्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ॥ देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्ममूलम् ॥ ५५ ॥ कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ॥ नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात्क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वंद्वम् ॥ ५६ ॥

होवें तौ उसमेंभी आत्माको क्या ? कारण यह कि- आत्माके कर्मका संबंधही नहीं है. वास्तविक रीतिसे देखा जाय तौ आत्मासेभी कर्म होना संभवे नहीं और देहसेभी कर्म होना संभवे नहीं. एक पदार्थमेंही जड़त्व और अजड़पन होवे तो तासों कर्मका होना संभवे; क्योंकि कर्म करनेमें कर्ताके विकारीपन और अपने हितका अनुसंधान ये दोनों धर्म होने चाहिये, सो विकारीपन तौ जड़तावालेके संभवे और अपने हितका अनुसंधान अजड़पनवालेके संभवे, अब जो देह कर्म करता है ऐसे माना जाय तो वह जड़ होनेसे उसमें अपने हितका अनुसंधान संभवे नहीं. और आत्मा कर्म करता है ऐसे कहा जाय तौ वह अजड़ (शुद्ध ज्ञानस्वरुप) होनेसे उसमें विकारीपन संभवे नहीं इसप्रकार सुखदुःखका कारणरूप जो कर्म है वह आपही सिद्ध न हुआ तो फिर पुरुष किसपर क्रोध करे ? ॥ ५५ ॥ काल जो सुख दुःखका कारण हो तौ उसमें आत्माको क्या ? कारण यह कि- काल

केवल मनमात्रसे कल्पन कियेहुए इस देहको अहंतासे और पुत्रादिकके देहको ममतासे स्वीकार करनेके कारण अंधबुद्धिवाले मनुष्य 'यह मैं और यह दूसरा' ऐसी भ्रांतिसे इस अनंत और अपार संसाररूप अंधकारमें भटका करते हैं ॥ ५० ॥ इसप्रकार मनही सुख दुःखका कारण है, लोक, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म वा काल इनमेंका कोईभी सुख दुःखका कारण नहीं है. यदि लोग सुखदुःखके कारण होवें तौ उसमें आत्माको क्या ? कुछभी नहीं. सुखदुःखका भोक्तृत्व और सुखदुःखका कर्तृत्व आत्माके नहीं है. एक शरीर दूसरे शरीरको दुःख देकर, आप सुख पावे तौ वे सुख दुःख शरीरोंकोही हुए. परंतु आत्माको नहीं. कारण यह कि- अमूर्त और अक्रिय आत्मा किसी पदार्थका भोक्ता वा कर्ता संभवे नहीं. कदाचित् शरीरके सुख दुःख आत्मामें

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यंधधियो मनुष्याः ॥ एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरंतपारे तमसि भ्रमंति ॥ ५० ॥ जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र ह भौमयोस्तत् ॥ जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥ दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ॥ यदंगमंगेन निहन्यते क्वचित्क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ॥ न ह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात्क्रुध्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥

पर्यवसायी होवें ऐसा माना जाय; तथापि आत्मा सर्वमें ईश्वर होनेसे एकही है तासों किसपर कोप करना ? किसी समय अपने दांतसेही अपनी जीभ कट जाय तब उस वेदनामें किसपर कोप किया जाय ? ॥ ५१ ॥ देवता दुःखके कारण हों तौ भले होवें परंतु उसमें आत्माको क्या ? एकके हाथसे दूसरेके मुखको चपेट लगायी अथवा एकका मुख दूसरेके हाथको काट खाया तौ इस विकार पातेहुए हाथके देव इंद्रके और मुखके देवता अग्निके कलह हुआ तिसमें आत्माको क्या ? निर्विकार और अहंकाररहित आत्माके कुछभी संभवे नहीं. देवताभी सब शरीरोंमें अनेकानेक हैं तासों किसीपर क्रोध करना संभवे नहीं. अपने देहमेंही देवतानके आश्रय एक अंगके दूसरे अंगका प्रहार होवे तौ तहां पुरुष किसपर कोप करे ? ॥ ५२ ॥ सुखदुःखादिरूप परिणाम आत्माके होते हैं ऐसे मानकर, आत्मा सुखदुःखका कारणरूप स्वीकार किया जाय तौ ये सुखदुःख आत्माकेही स्वभावरूप

ईश्वर कि—जो क्रिया करते हुए मनके साथ नियंतापनसे रहनेवाला होनेपरभी उसकी क्रियाओंके संगसे रहित, ज्ञानमय और मेरा (जीवका) नियंता है वह तो केवल अखंडज्ञानसे देखा करता है और मैं (जीव) तो निजमें संसारको दिखलानेवाले मनको आत्मरूप मान कर, कर्मोंके और गुणोंके संगसे विषयोंका सेवन करनेके हेतु बँध गया हूं इससे सिद्ध हुआ कि—अविद्याके हेतु मनके अध्याससेही जीवके यह संसार भया है. किंतु निजसे नहीं है. कारण यह कि— अविद्यारहित ईश्वरके संसार देखनेमें नहीं आता किंतु अविद्यावाले जीवकेही दीख पड़ता है ॥ ४५ ॥ दान, नित्य नैमित्तिक कर्म, स्वधर्म, नियम, यम, एकादशी—आदि उत्तम व्रत और दूसरेभी सब सत्कर्म इन सबका फल मनका निग्रह होनाही है. और मनका निग्रहहोना यही बड़ा योग है ॥ ४६ ॥

अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥ मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान् जुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥ ४५ ॥ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि ॥ सर्वे मनोनिग्रहलक्षणांताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥ समाहितं यस्य मनः प्रशांतं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ॥ असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७॥ मनो वशेऽन्ये ह्यभवं स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ॥ भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्युंज्याद्वशे तं स हि देवदेवः ॥ ४८ ॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुंतुदं तन्न विजित्य केचित् ॥ कुर्वंत्यसद्विग्रहमत्रमर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून्विमूढाः ॥ ४९ ॥

जिस पुरुषका मन शांत और वशीभूत है उसके दान—आदि करनेसे क्या प्रयोजन है ? और जिसका मन वशीभूत न होनेसे भटक रहा है उसकेभी दान—आदि करनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होना है ? कहो ॥ ४७ ॥ कदाचित् कहोगे कि—दूसरी इंद्रियोंका जय फल है; सो नहीं. क्योंकि सब देवता अर्थात् इंद्रियां मनके वशीभूत हैं. परंतु मन किसी दूसरेके वशीभूत नहीं है. मनही बलवानोंसेभी महाबली और भयंकर देव है. तासों जो पुरुष मनको वश करे वह देवका देव कहा जाय ॥ ४८ ॥ जिसके राग—आदि वेगका सहन नहीं हो सकता ऐसे और मर्म वेधनेवाले इस मनरूप दुर्जय शत्रुको जीते विना कितनेएक मूर्खलोग इस संसारमें कितनेएक मनुष्योंके साथ वृथा वैर बांध लेते हैं और मनुष्योंमेंही मित्र, उदासीन और शत्रु मान लेते हैं ॥ ४९ ॥

अहो ! यह तौ पर्वतकी समान धीरजवाला और दृढ़ दीख पड़ता है अपने निश्चयको दृढ़ रख कर, बगुलेकी नाई यह अपना अर्थ सिद्ध कर रहा है॥ ३९ ॥ इसप्रकार कितनेएक उसकी हँसी करते और कितनेएक उसपर अधोवायु छोड़ते इस भिक्षुकको खेलके, पक्षीकी नाई लोग बांध देते और रोक देते ॥ ४० ॥ इसप्रकार दुर्जनकृत (ताड़ना आदि) देहकृत (ज्वरादि) और दैवकृत (सर्दी गर्मी आदि) जो जो दुःख प्राप्त होता उसे यह भिक्षु अपने अवश्य भोगनेका प्रारब्ध मानता॥ ४१ ॥ धर्ममेंसे भ्रष्ट करना चाहते हुए नीचलोक इसप्रकार पराभव करते रहे परंतु सात्विकी धृति रख कर, यह भिक्षु स्वधर्ममें स्थित हो, इस वक्ष्यमाण

अहो एष महासारो धृतिमान् गिरिराडिव ॥ मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥ इत्येके विहसंत्येनमेके दुर्वातयंति च ॥ तं बबंधुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥ एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् ॥ भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत ॥ ४१ ॥ परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ॥ पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥ द्विज उवाच ॥ नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्माग्रहकर्मकालाः ॥ मनः परं कारणमामनंति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥ मनो गुणान्वै सृजते बलीयांस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ॥ शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवंति ॥ ४४ ॥

गाथाको गाने लगा ॥ ४२ ॥ भिक्षुने कहा कि- ये लोक, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म वा काल ये मेरे सुखदुःखके कारण नहीं हैं. क्योंकि सुख दुःखका कारण तौ केवल एक मनही है कि जो मन संसाररूप चक्रको भ्रमण करता है ॥ ४३ ॥ अत्यंत बलवाला मन गुणोंकी वृत्तियोंको उत्पन्न करता है. गुणोंसे सात्विक, राजस और तामस ऐसे जुदे २ प्रकारके कर्म होते हैं. और कर्मोंसे सत्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी जन्म होते हैं. इस प्रकार मनही संसाररूप चक्रको भ्रमण कराता है ॥ ४४ ॥

१ सात्विकीधृत्या लक्षणं गीतासूक्तम् । धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ॥ योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी ॥ १ ॥ अर्थ-सात्विकी धृतिका लक्षण भगवानने अर्जुनके प्रति गीतामें कहा है कि- हे अर्जुन ! योगसे अव्यभिचारिणी ऐसी जिस धृति करके, प्राण, इंद्रिय और मन इन्होंके कर्म वश किये जावें वह सात्विकी धृति है ॥ १ ॥

त्याग, शांत और मौन रखनेवाला संन्यासी हुआ ॥ ३१ ॥ जिसने मन, इंद्रिय और प्राणको वश कर लिया है ऐसा यह भिक्षुक इस पृथ्वीपर विचरने लगा. आसक्तिरहित और अपनी श्रेष्ठताको नहीं दिखाता हुआ यह भिक्षुक केवल भिक्षाके वास्तेही नगर और गांवमें जाया करता ॥ ३२ ॥ हे उद्धव ! इस जरठ अवधूत भिक्षुको देखकर, नीचलोग अनेक तिरस्कारोंसे उसे दुःख देने लगे ॥ ३३ ॥ उसके पाससे कितनेएक तो त्रिदंड छीन लेते. कितने एक पात्र, कितनेएक कमंडलु, कितनेएक बैठनेका पाटा, कितनेएक जप करनेकी माला, कितनेएक कंथा (गूदड़ी) और कितनेएक लोग चीथड़े छीन लेते ॥ ३४ ॥ फिर उसे कहते

स चचार महीमेतां संयतात्मेंद्रियानिलः ॥ भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ॥ दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमंडलुम् ॥ पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कंथां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥ प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ॥ अन्नं च भैक्ष्यसंपन्नं भुंजानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयंति च पापिष्ठाः ष्ठीवंत्यस्य च मूर्धनि ॥ यतवाचं वाचयंति ताडयंति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥ तर्जयंत्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ॥ बध्नंति रज्ज्वा तं केचिद्बध्यतां बध्यतामिति ॥ ३७ ॥ क्षिपंत्येकेऽवजानंत एष धर्मध्वजः शठः ॥ क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥

कि– ' ले ' और वह देभी देते परंतु देकर, फिर पीछा ले लेते ॥ ३५ ॥ यह भिक्षुक भीख मांगकर, जो अन्न लाता वह नदीके तटपर जाकर, खाया करता ॥ ३६ ॥ वहां पापीलोग भोजन करतेसमय इसके ऊपर मूतते और कफ डालते इसने मौनव्रत धारण कर लिया था इसीसे उसको वे बलात्कारसे बोलानेकी चेष्टा कराते और जो नहीं बोलता तो इसे मारते ॥ ३६ ॥ दूसरे लोग फिर ' यह चोर है ' ऐसे कहकर, वचनोंसे उसका तिरस्कार करते कितनेएक लोग ' बांधो बांधो ' ऐसे कह कर, उसको रज्जुओंसे बांधते थे ॥ ३७ ॥ कितनेएक लोग, यह धर्मका ढोंग बनानेवाला और लोगोंको ठगानेवाला है ऐसे अवज्ञा करके, उसकी निंदा करते थे धन नष्ट होगया और संबंधियोंने परित्याग कर दिया तासों अब यह आजीविका ले, बैठा है ॥ ३८ ॥

में कि-जो धनकी व्यर्थ तृष्णासे प्रमादमें पड़ा था तिसके धन, अवस्था और बल कि-जिनसे विवेकी पुरुष पार लांघ जाते हैं वे तो जाते रहे. अब बुड्ढा भयाहुआ मैं क्या कर सकता हूं ? ॥ २५ ॥ लोक इसप्रकार अनर्थोंको जाननेपरभी धनकी व्यर्थ तृष्णासे क्यों क्लेश पा रहे हैं ? परंतु ऐसे जाना जाता है कि- अवश्य किसीकी मायासे यह लोक अत्यंत मोहित हो रहा है ॥ २६ ॥ यद्यपि धन- आदिसे सुख-आदि भोग मिलते हैं. परंतु जिसके निकट प्रतिदिवस मृत्यु चला आता है उसके धनोंसे, धन देनेवालोंसे, सुखोंसे, सुख देनेवालोंसे और फिर वारंवार जन्म देनेवाले कर्मोंसेभी क्या प्रयोजन है ? ॥ २७ ॥ मैं ऐसे मा-

व्यर्थयाऽर्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् ॥ कुशला ये न सिध्यंति जरठः किंनु साधये ॥ २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयाऽर्थेहयाऽसकृत् ॥ कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥ किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ॥ मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥ नूनं मे भगवाँस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ॥ येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥ सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽगमात्मनः ॥ अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥ तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ मुहूर्त्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावंत्यो द्विजसत्तमः ॥ उन्मुच्य हृदयग्रंथीन् शांतो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥

नता हूं कि-मुझपर सर्व देवमय भगवान् प्रसन्न हुए हैं, कि-जिन्होंने मुझे इस दशाको पहुंचा दिया है और फिर आत्माको संसारसे पार लंघानेवाला नौकारूप वैराग्यभी दिया है ॥ २८ ॥ अब जो बन सकेगा तौ आयुष्यके अवशिष्टसमयमें अपने स्वरूपमेंही संतोष रखकर और धर्मादिक साधनोंमें अप्रमत्त रहकर, अपनी देहको ब्रह्मविद्यासे लीन कर दूंगा ॥ २९ ॥ इस विषयमें त्रिलोकीके स्वामी देवता मुझपर कृपा करें. यह मत कहो कि-देवतानके अनुग्रह करनेपरभी जरठ तू क्या कर सकेगा ? क्योंकि खट्वांगराजा मुहूर्तमात्रमें चेतकर, ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ तो मुझकोभी अल्पसमयमें चेतनेसेभी सद्गति मिलेगी ऐसी मैं आशा रखता हूं ॥ ३० ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-यह मालवदेशमें रहनेवाला ब्राह्मण मनसे इसप्रकार निश्चय कर, अहंता-ममताको

चोरी, हिंसा, झूठ, दंभ, काम, क्रोध, अभिमान, मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, स्त्री, द्यूत और मद्यसेवन ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्योंके धनसे होते हैं. अतएव कल्याणकी इच्छावाले पुरुषको धननामक अनर्थका दूरसेही त्याग कर देना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ भाई, स्त्री, माता, पिता और संबंधी कि-जो स्नेहके कारण एक मन होकर, रहा करते हैं वेभी धनके वास्ते जुदे हो जाते हैं. इतनाही नहीं किंतु छदाम (बीसकौड़ी) के वास्ते तुर्त एक दूसरेके शत्रु हो जाते हैं ॥ २० ॥ थोड़ेसे धनके वास्ते जोशमें आयेहुए, स्पर्द्धा करतेहुए और अत्यंत प्रचंड कोपवाले ये लोक शीघ्रही एक दूसरेका स्नेह छोड़कर, तुरंत एक दूसरेको मारने लग जाते

स्तेयं हिंसाऽनृतं दंभः कामः क्रोधः स्मयो मदः ॥ भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥ एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ॥ तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥ भिद्यंते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥ एका स्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥ त्यजंत्याशु स्पृधो घ्नंति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥ लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् ॥ तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नंति यांत्यशुभां गतिम् ॥ २२ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ॥ द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥ देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बंधूंश्च भागिनः ॥ असंविभज्य चाऽऽत्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥

हैं ॥ २१ ॥ धनमें निष्ठा रखनेवालोंके केवल इस लोकमेंही अनर्थ होता है ऐसे नहीं है. किंतु परलोकमेंभी अनर्थही होता है. मनुष्यदेह कि-जिसके लिये देवताभी प्रार्थना करते हैं उसे पाकर, और उसमेंभी ब्राह्मणत्व पाकर, जो लोग अपने मनुष्यत्व और ब्राह्मणत्वका अनादर करके, आत्माका कल्याण नहीं करते; वे अशुभ गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ यह मनुष्यदेह कि-जो स्वर्ग और मोक्षका द्वार है उसे पाकर, जिसके शिरपर मृत्यु घूम रही है ऐसा कौन मनुष्य अनर्थके आश्रयरूप धनमें आसक्ति राखे ? ॥ २३ ॥ देवता, ऋषि, पित्रीश्वर, भूत, ज्ञाति और बंधु कि-जो दायाद हैं यानी भागके लेनेवाले हैं, उनको और अपने आत्माकोभी अन्न-आदिसे जो तृप्त नहीं करता वह यक्षकी नाई धनका पहरा देनेवाला पुरुष नीचयोनिमें पड़ता है ॥ २४ ॥

गया तासों खेती-आदि अनेक उपायोंसे जिसमें केवल परिश्रमही पड़ा था ऐसा उसका धन नष्ट हो गया ॥ १० ॥ हे उद्धव ! इस ब्राह्मणका धन कुछ तो ज्ञातिवालोंने ले लिया. कुछ चोर चुरा ले गये. कुछ घरमें आग लग जाने-आदि दैवसे नष्ट हो गया कुछ पुराना पड़ जानेसे खत्तोंमें डालाहुआ धान्य आदि विनष्ट हो गया. कुछ लोगोंने दबा लिया और कुछ राजाने ले लिया ॥ ११ ॥ इसप्रकार धन नष्ट हो जानेसे धर्म और कामभोगसे रहित वो ब्राह्मण स्वजनोंकी उपेक्षासे महाघोर कठिन चिंताको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ धन नष्ट होनेसे ताप और खेद पाताहुआ तथा जिसके आँसू मुखमें पैठ कर, गलेतक आ पहुंचे थे ऐसा वह ब्राह्मण धनके संबंधसे दीर्घ शोकमें पड़ गया, कि-जिससे उसको अतिमहान् वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ फिर वह

ज्ञातयो जगृहुः किंचित्किंचिदस्यव उद्धव ॥ दैवतः कालतः किंचिद्ब्रह्मबंधोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ॥ उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ॥ खिद्यतो बाष्पकंठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ स चाहेदमहो कष्टं वृथाऽऽत्मा मेऽनुतापितः ॥ न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥ प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ॥ इह चाऽऽत्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥ यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ॥ लोभः स्वल्पोऽपि तान् हंति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥ अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥ नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥

ब्राह्मण कहने लगा कि- 'अहो ! यह बहुत बुरा किया. मैंने मेरे देहको वृथा दुःख दिया. इतना बड़ा भारी मेरा धनका परिश्रम धर्म करने और सुख भोगनेमेंभी काम नहीं आया ॥ १४ ॥ बहुधा कदर्योंके धन कदापि सुखदायी नहीं होते इतनाही नहीं किंतु जीवनपर्यंत देहको तथा मनको परिताप देनेवाले और मरे पीछे नरक देनेवाले होते हैं ॥ १५ ॥ जैसे अतिसुंदर रूपको श्वित्र (फूल) यानी श्वेतकुष्ठ किंचित्मात्र होनेपरभी नष्ट कर देता है ऐसे यशस्वी पुरुषोंके पवित्र यशको और गुणवान् पुरुषोंके प्रशंसनीय गुणोंको स्वल्प लोभभी नष्ट कर देता है ॥ १६ ॥ धन उपार्जन करते समय और उपार्जन किये पीछे, बढ़तेसमय, रक्षा करते खरचते, नाश होते और उसके भोगके समयमेंभी मनुष्योंके परिश्रम, त्रास, चिंता और श्रमही रहता है ॥ १७ ॥

उसके वास्ते मैं ऐसा उपाय कहूंगा कि–जिस उपायसे सब दुःखोंका सहन हो सके इस विषयमें एक महापवित्र इतिहास कहा जाता है वह मैं तुमसे कहता हूँ सो सावधान हो कर, सुनो ॥ ४ ॥ दुर्जनलोग अत्यंत दुःख देने लगें तब धीरज रखकर, अपने कर्मोंके फलकी सुध करतेहुए एक भिक्षुकने इस विषयमें बहुत अच्छा विचार किया है ॥ ५ ॥ वह भिक्षुक पहले धनाढ्य था परंतु कष्टसे संचय कियेहुए धनका नाश हो जानेसे वह महादुखी और संतप्त हो गया. फिर वैराग्य आनेसे संन्यास लेकर, भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करने लगा; परंतु लोक पूर्वविद्रोहसे उसको अनेक प्रकारसे दुःख देने लगे तब उसने इस प्रसंगके उपयोगी गाथा गायी. यह बात कहनेके वास्ते उसका चरित्र कहते हैं. अवंती (उज्जैन) में लक्ष्मीसे अत्यंत धनाढ्य कोई एक

केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ॥ स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवंतिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया ॥ वार्त्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ॥ शून्यावसथ आत्माऽपि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यंते पुत्रबांधवाः ॥ दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥ तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः ॥ धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पंचभागिनः ॥ ९ ॥ तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कंधस्य भूरिद ॥ अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥

ब्राह्मण रहता था. वह ब्राह्मण खेती, बणिज व्यौपार–आदि वृत्ति करता था और वह कामी, लोभी, महाक्रोधी और कदर्य[१] था ॥ ६ ॥ वह ब्राह्मण अपने धर्मरहित घरमें ज्ञातियोंका वा अतिथियोंका वचनमात्रसेभी सत्कार नहीं करता. उचितसमयमें अपने आत्माकोभी भोगसे प्रसन्न नहीं करता ॥ ७ ॥ तब विषम भयेहुए उसके पुत्र, बांधव, स्त्रियां, कन्यायें और नौकरलोग उस दुष्ट स्वभाववाले कदर्यका प्रिय करना तो दूर रहा प्रत्युत द्रोह करने लगे ॥ ८ ॥ इसप्रकार यक्षकी नांई धनका संचय करनेवाले और ' इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट ' भयेहुए तथा धर्म व सुखसे रहित इस कदर्य ब्राह्मणपर गृहस्थके नित्य कर्तव्य पंचमहायज्ञोंके देवता कुपित हुए ॥ ९ ॥ हे भूरिद उद्धव ! देवतानके अनादरसे, उसका केवल धनमात्र मिलनेका जो पूर्वपुण्य था वहभी नष्ट हो

---

१ अपने आत्माको, धर्मके कामको, स्त्रीपुत्रादिकोंको, देवतानको, अतिथिको और भृत्यलोगोंको जो मनुष्य लोभके हेतु अत्यंत पीड़ा दे वह कदर्य कहलाता है.

यह तो मुझको बहुत कठिन दीख पड़ता है ॥ ५९ ॥ हे जगदात्मा ! आपके धर्ममें निरत, शात और केवल आपके चरणके शरण रहनेवाले पुरुषोंविना विद्वानोंसेभी ऐसे अपराधोंका सहन होना कठिन है ऐसे मैं मानता हूं. कारण यह कि-स्वभाव बड़ा बलवान् होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिका-नामभाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ तेईसवें अध्यायमें भिक्षुगीताके प्रकारसे तिरस्कारोंको सहन करनेका उपाय कि-जो बुद्धिसे मनका निग्रह करना यही है वह कहा जायगा ॥ १ ॥ " अब चार अध्यायोंमें सहनके उपाय कहे जायंगे. तहां ते-ईसवेंमें मनका जय, चौबीसवेंमें प्रकृति-पुरुषका विवेक, पचीसवेंमें गुणोंकी वृत्तियोंका जय और छब्बीसवेंमें विषयोंका संग छोड़

विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी ॥ ऋते त्वद्धर्मनिरतान् शांतांस्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥ इ-ति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ बादराय-णिरुवाच ॥ स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ॥ सभाजयन्भृत्यवचो मुकुंद-स्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ॥ दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥ न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः ॥ यथा तुदंति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥ कथयंति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ॥ तमहं वर्ण-यिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥

कर, सत्संग करना. यह कहा जायगा. " श्रीशुकदेवजीने कहा कि-इसप्रकार भगवत्भक्तोंमें मुख्य उद्धवजीने प्रार्थना की तब या-दवोंमें प्रधान और जिनके पराक्रम श्रवण करनेके योग्य हैं ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने दास उद्धवजीके वचनोंका सत्कार करके इसप्रकार कहा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे बृहस्पतिके शिष्य ! इस लोकमें ऐसा साधु कोईभी नहीं है कि-जो दुर्जनोंके कहेहुए दुर्वचनोंसे विदीर्ण भयेहुए अपने अंतःकरणको शांत रखनेके लिये समर्थ होवे ॥ २ ॥ कारण यह कि-मर्मस्थ-लमें लगेहुए नीचपुरुषोंके कठोर वचनरूप बाणोंसे पुरुषको जैसी व्यथा होती है ऐसी व्यथा मर्मस्थलमें लगेहुए दूसरे लोहमय बाणोंसे नहीं होती; तासों उन बाणोंसे पुरुषको कठोर वचनके जैसा परिताप नहीं होता ॥ ३ ॥ हे उद्धव ! ऐसे है तथापि

हो ऐसे प्रतीत होता है. इसप्रकार उपाधिका धर्म जैसे उपहितमें भासे है ऐसे ग्राहकके गुण ग्राह्यमें भासते हैं यह दृष्टांतसहित कहते हैं. जैसे चक्कर खानेवाले मनुष्यके नेत्रही फिरते हैं परंतु मानों पृथ्वी फिरती हो ऐसे मालूम होता है ऐसे आनंदादिक आत्माके गुण होनेपरभी मानों वे विषयोंके गुण हों ऐसे प्रतीत होता है ॥ ५३ ॥ हे उद्धव ! जैसे स्वप्नमें और मनोरथमें होता- हुआ विषयोंका अनुभव मिथ्या है ऐसे आत्माके होताहुआ विषयोंका अनुभवरूप संसारभी मिथ्या है ॥ ५४ ॥ जैसे स्वप्न सत्य न होनेपरभी उन विषयोंका चिंतवन करनेवाले पुरुषके उस अवस्थामें स्वप्नसंबंधी दुःख नहीं मिटते ऐसे अहंताममतारूप संसार

यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ॥ स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥ तस्मादुद्धव मा भुंक्ष्व विषयानसदिंद्रियैः ॥ आत्माग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ ५६ ॥ क्षिप्तोऽवमानितो- ऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ॥ ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥ निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकंपितः ॥ श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनाऽऽत्मानमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥ उद्धव उवाच ॥ यथैवमनुबुद्ध्येयं वद नो वदतां वर ॥ सुदुःसहमिमं मन्य आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥

सत्य न होनेपरभी विषयोंका चिंतवन करतेहुए पुरुषके अज्ञान अवस्थामें जन्म-मरण आदि नहीं मिटते. तासों उस अज्ञानको मिटानेका उपाय अवश्य करना चाहिये ॥ ५५ ॥ इसलिये हे उद्धव ! तुम दुष्ट इंद्रियोंसे विषयोंका भोग मत करो. और इस सं- साररूप भ्रांतिको आत्माके अज्ञानसेही उठीहुई जानो ॥ ५६ ॥ नीचपुरुष तिरस्कार करें, अपमान करें, हँसें, ईर्ष्या करें, ताड़ना दें, बांधें, जीविका उच्छिन्न कर दें ॥ ५७ ॥ शिरपर थूँके वा मूतें और दूसरेभी ऐसेही उपायोंसे ब्रह्मनिष्ठामेंसे भ्रष्ट करना चाहें और उससे आपको बहुत कष्ट होवे तथापि मुमुक्षु पुरुषको अपने यत्नसे अपना उद्धार करना चाहिये॥५८॥उद्धवजीने कहा कि-हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ! यह आपका कहाहुआ मेरे मनमें अच्छेप्रकार संपूर्ण रीतिसे उतर जाय ऐसे आप मुझे कहो. नीचलोग ऐसे २ दुःख देवें उसका सहन होना

को छोड़भी देता है ॥ ४७ ॥ यद्यपि जन्ममरणकी अवस्थामें मूर्छा आ जानेके हेतु अपने देहके जन्ममरण अपने देखनेमें नहीं आते परंतु पिताका देह जैसे मर गया ऐसे मेरा देहभी मर जायगा और पुत्रका देह जैसे जन्मा है ऐसे मेरा देहभी जन्मा है ऐसे विचार करना. जन्म-मरणवाले देहका जो द्रष्टा है उसके जन्म वा मरण बिलकुल नहीं होते ॥ ४८ ॥ वृक्षके बीजसे जन्मको और पक जानेसे मरणको जाननेवाला जो द्रष्टा है वह वृक्षसे भिन्न है ऐसे देहके जन्ममरणको जाननेवाला द्रष्टा देहसे भिन्न है. इसप्रकार देहादिकसे आत्माका यथार्थ विवेचन कर लेना चाहिये; क्योंकि वह विचार न करनेसे विषयोंके मोहजालमें पड़हुआ मूर्खपुरुष संसारको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ कर्मोंसे भ्रमण कराया जाता यह पुरुष सत्वगुणके संगसे ऋषि और देवतानका

आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ॥ न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वान् जन्मसंयमौ ॥ तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥ प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ॥ तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥ सत्त्वसंगादृषीन्देवान्रजसाऽसुरमानुषान् ॥ तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥ नृत्यतो गायतः पश्यन्यैथवानुकरोति तान् ॥ एवं बुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥ यथांऽभसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ॥ चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥ ५३ ॥

जन्म पाता है. रजोगुणके संगसे असुर और मनुष्यके जन्मको पाता है. तमोगुणके संगसे भूत और पशुपक्षीका जन्म पाता है. ॥ ५१ ॥ जैसे नाचते और गातेहुए लोगोंको देखताहुआ पुरुष उसमें रहेहुए स्वर और तालआदिकी गतिका तथा शृंगारआदि रसका अपने मनमें अनुवर्तन करता है ऐसे बुद्धिके गुणोंको देखताहुआ अकर्ता पुरुषभी उन गुणोंके बलसे उनको अपनेमें मान लेता है. अर्थात् अकर्ता होनेपरभी कर्मोंसे भ्रम जाता है ॥ ५२ ॥ इसप्रकार दृश्यका धर्म जैसे द्रष्टामें स्फुरता है ऐसे उपाधिका धर्म उपहितमें भासता है. यह दृष्टांतके साथ कहते हैं. जैसे जलमें प्रतिबिंबित भयेहुए वृक्ष जलके कांपनेसे मानों कांपते हों ऐसे प्रतीत होते हैं. ऐसे अंतःकरणके जन्ममरणादिक होनेसे उसमें अध्यास कियाहुआ आत्मा मानों जन्म मरण पाया करता

हैं. इस अनुमानसे जगत्की क्षणक्षणमें उत्पत्ति और क्षण २ में विनाश सिद्ध होता है ॥ ४३ ॥ जैसे ज्वाला क्षणक्षणमें बदलती जाती हैं परंतु उनके जैसीही दूसरी ज्वाला प्रगट होनेसे 'वह यह वोका वो दीपक है' ऐसी भ्रांति होती है. और जैसे जल क्षणक्षणमें बदलता जाता है परंतु उसके जैसाही दूसरा नया जल आ जानेसे 'वह यह वोका वो प्रवाह है' ऐसी भ्रांति होती है. ऐसे शरीरभी क्षणक्षणमें बदलते जाते हैं परंतु उनके जैसेही दूसरे शरीर होनेसे 'वह यह वोका वो पुरुष है' ऐसी अविवेकी मनुष्योंको मिथ्या प्रतीति होती है. और उसके हेतु 'यह वोका वो पुरुष है' ऐसे कहा जाता है ॥ ४४ ॥ उद्धवजीने पूंछा कि- देहमें अध्यासवाले पुरुषके कर्म, जन्म और मरण हैं और दूसरेके नहीं ऐसी व्यवस्था किसप्रकार संभवे ? देखो एकके एक घड़ेको एक पुरुष 'है' ऐसे माने और दूसरा 'नहीं है' ऐसे माने यह बात संभवे नहीं. तब श्रीभगवान्‌ने कहा कि- देहके अध्यासवालेकेभी

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ॥ सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥ मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ॥ म्रियते वाऽमरो भ्रांत्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ॥ वयो मध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥ एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ॥ गुणसंगादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥ ४७ ॥

कर्मआदि नहीं हैं. कारण यह कि- वास्तविक रीतिसे देखा जाय तौ जन्म-मरण-आदि आपही मिथ्या हैं. देहके अध्यासवाला पुरुषभी बीजभूत कर्मसे न तौ जन्म लेता है और न मरता है. किंतु अजन्मा होनेपरभी भ्रांतिके हेतु मानों जन्म पाता हो और अमर होनेपरभी भ्रांतिके हेतु मानों मरता हो ऐसे प्रतीत होता है. जैसे महाभूतरूप अग्नि कल्पपर्यंत वोका वो रहनेपरभी काष्ठका योग होनेमें मानों प्रगट होता हो और काष्ठका वियोग होनेसे मानो नष्ट होता हो ऐसे प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ उदरमें प्रवेश, उदरमें वृद्धि, जन्म, बाल्यपन, कुमारपन, यौवन, अवस्थाका मध्यपन, बुढ़ापा और मरण ये नौ अवस्थायें देहकी हैं ॥ ४६ ॥ देहकी इन मनःकल्पित ऊंची नीची अवस्थाओंको देहसंबंधी अविवेकके हेतु जीव अपनेमें मान लेता है और ईश्वरका अनुग्रह होनेसे कोई जीव 'अवस्थावाले देहका द्रष्टा अवस्थावाला नहीं होवे' ऐसे विवेकज्ञानसे इन अवस्थाओं-

का अभिमान निवृत्त होकर दूसरे देहका अभिमान होनेपर उस मनके अध्यासके हेतु आत्मा निजको पूर्वसिद्ध होनेपरभी नया जन्मा हो जैसा मानता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ मनकी दूसरे देहमें अभिनिवेश होनेरूप उत्पत्ति होनेपर उस मनके अध्यासके हेतु आत्माके निजमें उत्तम, मध्यम और नीचपन नहीं होनेपरभी भ्रमसे प्रकाशते हैं. और ऐसे होनेसे उस देहके संबंधमें बाहिरके विषयोंको और भीतरके सुख-आदि विषयोंको देखता है. स्वप्नमें जैसे मिथ्याभूतभी अनेक देह मनके अभिमानसे उत्पन्न होनेपर उस देहके संबंधमें बाहिरके विषयोंको और भीतरके सुखादि-विषयोंको देखता है. ऐसे इस प्रसंगमें जानना, जैसे कुपूत पुत्रका पिता पुत्रके अभिमानके हेतु पुत्रके शत्रु-मित्र-आदिको अपने शत्रु-मित्र-आदि मान लेता है. ऐसे आत्मा मनके अभिनिवेशके हेतु मनके साथ संबंध रखनेवाले देहआदिपदार्थोंको अपना मान लेते हैं॥ ४१ ॥ हे उद्धव! यह तो लोकप्रसिद्ध जन्ममरणका मैंने

स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ॥ तत्र पूर्वमिवाऽऽत्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥ इंद्रियाय न सृष्टयेदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ॥ बहिरंतर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥ ४१ ॥ नित्यदा ह्यंग भूतानि भवंति न भवंति च ॥ कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ ४२ ॥ यथाऽर्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ॥ तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥

निरूपण किया. अब तुमने जिस विषयमें प्रश्न नहीं किया है उस विषयमेंभी वैराग्यके वास्ते सूक्ष्म जन्म-मरणका निरूपण करता हूं. जिसका वेग देखनेमें नहीं आता ऐसे कालके हेतु शरीर क्षणक्षणमें उत्पन्न होते हैं. और क्षणक्षणमें मरते हैं. परंतु कालकी सूक्ष्मताके हेतु इस जन्ममरणको अविवेकी पुरुष नहीं जानते ॥ ४२ ॥ काल, जैसे परिणाम-आदिसे दीपकी ज्वालाओंकी, गति-आदिसे जल-के प्रवाहोंकी और रूप-आदिसे वृक्षके फलोंकी अवस्थाओंको क्षणक्षणमें बदलता जाता है ऐसे सर्व शरीरोंकी अवस्था, तेज, बल, काम और चतुरता-आदिको क्षण २ में बदलता जाता है. जगत् क्षणक्षणमें उत्पत्ति और नाश पाया करता है. कारण यह कि-यह जगत् अवस्थाओंका भेदवाला है. जो जो अवस्थाओंका भेदवाला है वह क्षणक्षणमें उत्पत्ति और नाश पाया करता है ऐसी व्याप्ति (नियम) है. जैसे ज्वाला-आदि पदार्थ अवस्थाओंके भेदवाले हैं तासों क्षण क्षणमें उत्पत्ति और नाश पाया करते

सक्ता है, पांच इंद्रियोंसे संयुक्त भयाहुआ लोगोंका कर्ममय मनही एक देहमेंसे दूसरे देहमें जाता है. इस मनसे अन्य आत्मा तौ अहंकारसेही उस मनका अनुसरण करता है. अर्थात् अध्यासके हेतु मनके जानेको अपना जाना मानता है ॥ ३५ ॥ मनके पूर्वदेहका वियोग और दूसरे देहका संयोग एक देहके स्मरणके वियोगसे और दूसरे देहके स्मरणके योगसे होता है ॥ ३६ ॥ कर्मोंके तंत्रमें रहनेवाला मन कर्मोंके प्राप्त कियेहुए इस लोकके और परलोकके विषयोंका ध्यान करनेपर ध्यान कियेहुए विषयोंमें लग जाता है. और पहिले विषयोंमेंसे दूर हो जाता है. और ऐसे होनेके अनंतर वह मनकी स्मृति अर्थात् आगे पीछेका अनुसंधान नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥ कर्मोंके प्राप्त कियेहुए दूसरे देहमें अत्यंत अभिनिवेश होनेपर वह देह उत्तम हो तौ हर्षादि

श्रीभगवानुवाच ॥ मनः कर्ममयं नृणामिंद्रियैः पंचभिर्युतम् ॥ लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥ ध्यायन्मनोऽनुविषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ ॥ उद्यत्सीदत्कर्मतंत्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥ विषयाभिनिवेशेन माऽऽत्मानं यत्स्मरेत्पुनः ॥ जंतोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यंतविस्मृतिः ॥ ३८ ॥ जन्मत्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ॥ विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥ ३९ ॥

किसी कारणसे और अधम हो तौ भय व शोक आदि किसी कारणसे जीवको प्रथम देहका अत्यंत विस्मरण हो जाय अर्थात् प्रथम देहका अहंकार सब निवृत्त हो जाय यही आत्माका मरण हुआ कहलाता है. आत्मा देहके जैसे नष्ट नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे बहुत देनेवाले उद्धव ! मनका दूसरे देहमें अभिनिवेश होनेपर, उसमें अत्यंत अहंकार उत्पन्न होता है तदनंतर मनके अध्यासके हेतु आत्माकेभी संपूर्ण रीतिसे " यह देह मैं हूं " ऐसा अभिमान होता है. सो यहां आत्माका जन्म कहलाता है. आत्मा देहकी भांति जन्म नहीं लेता. जैसे एक स्वप्नके पीछे दूसरा स्वप्न होता है और एक मनोरथके पीछे दूसरा मनोरथ होता है, तब वर्तमान स्वप्न और मनोरथमें लग जानेसे पहिले स्वप्न और मनोरथको भूल जानेपर मनके अध्यासके हेतु आत्मा निजको पूर्वसिद्ध होनेपरभी नया भया हो जैसा देखता है. ऐसे मनके पूर्वदेहका विस्मरण और दूसरे देहका स्मरण होनेपर अर्थात् एक देह-

और उससे उत्पन्न भयाहुआ देहादिविकल्प आत्माके अज्ञानके हेतुही प्रतीत भयाहुआ है, तासों आत्माका ज्ञान होवे तब उस अहंकार और विकल्पकी निवृत्ति होवे. यद्यपि कितनेएक वादियोंने अहंकार और विकल्पको सत्य करके, माना है तथापि इन वादियोंके सर्व विवाद भेदनिष्ठ हैं; कारण यह कि-ये विवाद आत्माको नहीं जाननेसेही उठे हैं. फिर ये सब विवाद आत्माका अस्तित्व सिद्ध करनेके वास्ते नहीं हैं किंतु अहंकार और विकल्पका अस्तित्व सिद्ध करनेके वास्ते हैं और उस अहंकार और विकल्पका अस्तित्ववादियोंकी परस्परकी युक्तियोंसेही बाधित हो जाता है. तासों उसपरसेही अहंकार और विकल्पका मोहमयपन सिद्ध होता है. उद्धवजीने कहा कि-तब यह निश्चित हुआ कि- अहंकार और विकल्प कोई वस्तु नहीं है, तो अब उनकी निवृत्ति करनेके वास्ते प्रयास करनेकाभी क्या प्रयोजन है ? जो वस्तु मिथ्या होती है वह वस्तु स्वयमेव (आपही) नहीं होती. तासों उसकी निवृत्ति करनेका परिश्रम क्यों करना ? तब श्रीभगवान्‌ने कहा कि- यद्यपि अहंकार और विकल्प मिथ्या हैं तथा-

उद्धव उवाच ॥ त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो ॥ उच्चावचान्यथादेहान् गृह्णंति विसृजंति च ॥ ३४ ॥ तन्ममाख्याहि गोविंद दुर्विभाव्यमनात्मभिः ॥ नह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः संति वंचिताः ॥ ३५ ॥

पि जो लोक अपने स्वरूपभूत मुझसे बहिर्मुख हैं उनके वे निवृत्त नहीं होते. केवल इतनाही नहीं किंतु उस अहंकार और विकल्पसे भयेहुए कर्मोंके हेतु वे लोक उच्च-नीच योनियोंमें जन्म-मरण पाया करते हैं. यह बात इसतरह है इसलिये मिथ्यातत्त्वकी निवृत्तिके वास्ते और मेरे स्वरूपको जाननेके वास्ते प्रयास करना आवश्यक है ॥ ३३ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे गोविंद ! हे प्रभु ! आपसे विमुखबुद्धिवाले लोक अपने कियेहुए कर्मोंसे जिसप्रकार उच्च-नीच देहको धारण करते और छोड़ते हैं वह प्रकार अज्ञानियोंकी समझमें आना अतिकठिन है तासों मुझे उपदेश करो. क्योंकि प्रायः जगत्‌में इस विषयके जाननेवाले पुरुष नहीं हैं; अतएव सबलोग मायासे वंचित हैं. इसमें मेरा प्रष्टव्य अंश इतनाही है कि- आत्मा व्यापक होनेसे उसके एक देहमेंसे दूसरे देहमें जाना किसप्रकार संभवे ? फिर आत्मा अकर्ता होनेसे उसके कर्मोंका होना किसप्रकार संभवे ? और आत्मा नित्य होनेसे उसके जन्म-मरण होना किसप्रकार संभवे ? ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि- लिंगशरीरके अध्याससे सब घट

देहादि-संघात अनेक भेदवाला है और आत्मा एकही है तासोंभी देह और आत्माके बीचमें अत्यंत भेद सिद्ध होता है. चक्षु न होवे तौ रूप सिद्ध नहीं होता, रूप न होवे तौ चक्षु सिद्ध नहीं होता, चक्षुकी प्रवृत्ति न होवे तौ उसका अधिष्ठाता देव सिद्ध नहीं होता, अधिष्ठाता देव न होवे तौ चक्षुकी प्रवृत्ति सिद्ध नहीं होती और चक्षुकी प्रवृत्ति न होवे तौ रूपज्ञान सिद्ध नहीं होता. ऐसेही त्वचा-आदि तीन तीन पदार्थोंमेंभी जानना. इसप्रकार अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतकी सिद्धि परस्परके आश्रयसे होती है. और आत्मा तौ आकाशमें रहेहुए सूर्यकी नाईं किसीके आश्रयकी अपेक्षा नहीं रखता. अतएव वह स्वयंसिद्ध है. तासों इन अध्यात्म-आदिके संघातरूप देहमें और आत्मामें अत्यंत विलक्षणता है. फिर आत्मामेंसे ये अध्यात्म-आदि उत्पन्न हुए हैं. तथा वे जुदे २ हैं. और आत्मा किसीमेंसे पैदा नहीं हुआ है. तथा एकरूप है तासोंभी देह और आत्माके बीच बहुत विलक्षणता है. फिरभी आत्मा अपने स्वतःसिद्ध ज्ञानसे इन अध्यात्मआदि सर्वको जा-

योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ॥ अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐंद्रियश्च ॥ ३२ ॥ आत्मा परिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठः ॥ व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥

नता है और अध्यात्मआदि सर्व आत्माको नहीं जानते तासोंभी देह और आत्माके बीच अत्यंत भेद सिद्ध होता है ॥ ३१ ॥ उद्धवजीने कहा कि-यह तो आपने फिरभी देह और आत्माके बीचमें विलक्षणता कही सो वह तौ मैं पहलेहीसे जान चुका हूं इसलिये मैं तो आपसे यह पूंछता हूं कि- देहादिकसे भिन्न आत्माकी प्राप्ति किस प्रकारसे होवे ? सो कहो. तब श्रीभगवान्‌ने कहा कि- देहादिकका अहंकार निवृत्त होवे तब आत्मप्राप्ति होती है; कारण यह कि-सात्विक, राजस और तामस यह तीन प्रकारका अहंकार कि- जो गुणोंके क्षोभककाल (ईश्वरका प्रभाव) रूप निमित्त कारणके हेतु प्रधानमेंसे उत्पन्न भयेहुए महत्तत्वमेंसे उत्पन्न भयाहुआ विकार है. सो वही यह अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूतरूप मोहमय देहादिक विकल्पका कारण है. अभिप्राय यह कि- देहादिकमेंसे अहंकारकी निवृत्ति होनेसे प्रकृतिसे पुरुष भिन्न हो जाता है ॥ ३२ ॥ उद्धवजीने कहा कि-तब यह अहंकार और उससे उत्पन्न भयाहुआ देहादिविकल्प किसप्रकार निवृत्त होवे ? तब श्रीभगवान्‌ने कहा कि- यह अहंकार

उनका भेद देखनेमें नहीं आता ॥ २६ ॥ हे कमलनयन ! आत्मा देहमें प्रतीत होता है और देह आत्माको लेकरही प्रतीत होता है अर्थात् 'मैं हूं' ऐसे दोनोंका अभेद प्रतीत होनेसे देह और आत्माको भेद देखनेमें नहीं आता. अतएव हे सर्वज्ञ ! मेरे मनमें यह बड़ा संशय है सो इसको युक्तिभरे वचनोंसे आपको काटना चाहिये ॥ २७ ॥ कारण यह कि–इस संसारमें जीवोंको ज्ञान आपकी कृपासेही होता है, और अज्ञानभी आपकी मायासेही हुआ है. आपकी मायाकी गतिको आपही जानते हो. दूसरा कोईभी नहीं जानता ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि–हे पुरुषश्रेष्ठ ! देह और आत्माके बीचमें बहुत विलक्षणता है; कारण यह कि–गुणोंके क्षोभसे भयाहुआ यह देह–आदि संघात विकारवाला है और आत्मा निर्विकार है ॥ २९ ॥ हे उद्धव !

एवं मे पुंडरीकाक्ष महांतं संशयं हृदि ॥ छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ॥ त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ॥ एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥२९॥ ममांग मायागुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते ॥ वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥ दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रंध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ॥ आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः ॥ एवं त्वगादिश्रवणादिचक्षुर्जिह्वादिनासादि च चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥

मेरी गुणमय मायाने गुणोंसे अनेक प्रकारके भेद और भेदके ज्ञानोंको रचा है. यद्यपि यह देह–आदि संघात अनेक भेदवाला है तथापि स्थूल मार्गसे उसके अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत ऐसे तीन भेद गिने जाते हैं ॥ ३० ॥ जैसे चक्षु अध्यात्म रूप अधिभूत, और चक्षुके गोलकमें प्रवेश कियाहुआ सूर्यका अंश अधिदैवत कहनेमें आता है. ऐसेही त्वचा, स्पर्श और वायु; श्रवण, शब्द और दिशा; जिव्हा, रस और वरुण; नासिका, गंध और अश्विनीकुमार; चित्त, चेतयितव्य और वासुदेव; मन, मंतव्य और चंद्र; बुद्धि, बोद्धव्य और ब्रह्मा, अहंकार, अहंकर्तव्य और रुद्र ये तीन तीन भेद जानने. इसप्रकार

कर, उनके साथ जगत्में प्रवेश किये हैं. तासों सकल भौतिक पदार्थोंका भूतोंमें और जीवका परमात्मामें अंतर्भाव माना गया है ॥ २० ॥ कितने एकके मतमें चारही तत्व हैं. उनमें आत्मा और आत्मासे उत्पन्न भयेहुए तेज, जल और पृथ्वी चार तत्व माने गये हैं. और उनसे इस सर्व कार्यकी उत्पत्ति हुई है. तासों सर्व कार्यमात्रका उनमें अंतर्भाव किया गया है ॥ २१ ॥ कितनेएकके मतमें सत्रह तत्व माने गये हैं. उनमें पांच महाभूत, पांच शब्दादि विषय, पांच इंद्रियां, मन और सत्रहवां आत्मा माना गया है ॥ २२ ॥ कितनेएकके मतमें सोलह तत्व माने हैं. उनमें आत्माकोही मनरूप कहा है. अर्थात् सत्रहमेंसे एक कम होनेसे सोलह रहते हैं. कितनेएकके मतमें तेरह तत्व हैं तिनमें पांच महाभूत, पांच इंद्रियां, मन, जीव और परमात्मा ये

चत्वार्येवेति तत्रापि तेजआपोन्नमात्मनः ॥ जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥ २१ ॥ संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेंद्रियाणि च ॥ पंचपंचैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ॥ भूतेंद्रियाणि पंचैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥ एकादशत्व आत्माऽसौ महाभूतेंद्रियाणि च ॥ अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥ इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ॥ सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ॥ अन्योऽन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥ २६ ॥

तेरह गिने जाते हैं ॥ २३ ॥ कितनेएकके मतमें ग्यारह तत्व हैं. तिनमें पांच महाभूत, पांच इंद्रियां और आत्मा ये ग्यारह गिने जाते हैं. कितनेएकके मतमें तत्व नवही हैं उनमें प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच महाभूत और आत्मा ये नव गिने जाते हैं. ॥ २४ ॥ इसप्रकार ऋषियोंने तत्वोंकी जो जुदी जुदी संख्या की है. वह प्रकृतिसे पुरुषको भिन्न जाननेके वास्ते है. ये सब मत न्यायसहित हैं. कारण यह कि–सर्वमें युक्तियां हैं. विद्वान्‌लोग चाहे जैसे करकेभी बैठा देते हैं तासों उनका ठाना हुआ कुछभी अघटित नहीं कहा जाता ॥ २५ ॥ उद्धवजीने कहा कि–हे कृष्ण ! जड़रूप प्रकृति (देह) और चैतन्यरूप पुरुष (आत्मा) यद्यपि स्वभावसेही विलक्षण अर्थात् भिन्न हैं तथापि उनमेंसे परस्परका त्याग करते समय परस्परकी प्रतीति नहीं होती, तासों

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच विषय और तीन गुण इस प्रकारसे मैंने अठ्ठाईस तत्व कहे. गति, भाषण, वीर्योत्सर्ग, मलोत्सर्ग और शिल्प ये पांच कर्मेंद्रियोंके फलरूप हैं तासों उनको तत्व न मानकर, अठ्ठाईसके भीतर नहीं गिने ॥ १६ ॥ अब तत्वोंकी संख्या देनेके प्रयोजनके विषयमें तुमने जो प्रश्न किया उसका उत्तर देता हूं. महत्तत्त्वसे ले, पृथ्वीपर्यंत सात कारणरूप तत्वों और श्रोत्रसे ले, गंधपर्यंत सोलह विकाररूप तत्वोंका रूप धारण करनेवाली प्रकृतिही सकल जड़ पदार्थोंका उपादान कारण होनेसे जगत्‌की उत्पत्ति आदिके समयमें सर्व देहादि आकारको धारण करती है और परिणामरहित तथा निमित्तकारणरूप पुरुष तो केवल साक्षीपनसे देखा करता है. तासों परिणाम पानेवाली प्रकृतिसे पुरुष भिन्न है यह बात सिद्ध करनेके वास्ते-

शब्दः स्पर्शो रसो गंधो रूपं चेत्यर्थजातयः ॥ गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥ सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ॥ सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥ व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ॥ लब्धवीर्याः सृजंत्यंडं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥ सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पंच खादयः ॥ ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेंद्रियासवः ॥ १९ ॥ षडित्यत्रापि भूतानि पंच षष्ठः परः पुमान् ॥ तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥

ही सर्व मतोंमें तत्वोंकी संख्या दी गयी है ॥ १७ ॥ प्रकृतिसे उत्पन्न भयेहुए और विकार पानेवाले महत्तत्त्वादिक पदार्थही पुरुषकी दृष्टिसे शक्ति पाकर, इकठ्ठे हो, प्रकृतिके आश्रयसे ब्रह्मांडको उत्पन्न करते हैं. इकठ्ठे होकर, उनके उत्पन्न कियेहुए देहादिक पदार्थ उन्हींमें अंतर्भूत हो जाते हैं. अतएव देहादिक पदार्थ जुदे तत्वरूप नहीं कहे जाते ॥ १८ ॥ कितनेएकोंके मतमें सातही तत्व हैं उनमें आकाश-आदि पंचमहाभूत, द्रष्टा जीव और दृश्यका आधाररूप ईश्वर ये सात तत्व माने जाते हैं. इस मतमें प्रकृति, महत्तत्त्व और अहंकार इन कारण तत्वोंका आकाश-आदिमें अंतर्भाव किया गया है. और इन सातोंसेही देह, इंद्रिय और प्राण-आदि सर्व कार्योंकी उत्पत्ति मानी गयी है ॥ १९ ॥ कितने एकके मतमें छहही तत्व हैं तिनमें पांच पंचमहाभूत और छठा परमात्मा ये छह तत्व माने गये हैं. इस मतमें परमात्मा अपने आत्मामेंसे उत्पन्न भयेहुए इन भूतोंसे इस जगत्‌को रच-

ईश्वरको भिन्न मानते हैं. उनके मतमें चौबीस जड़तत्त्व पचीसवाँ जीव, छब्बीसवाँ ईश्वर ऐसे छब्बीस तत्त्व हो जाते हैं ॥ १० ॥ वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो जीव और ईश्वर दोनों चैतन्यरूप होनेसे उनमें किंचित्मात्रभी विलक्षणता नहीं है तासों उनके भेदभावकी कल्पना करनी व्यर्थ है ऐसे माननेवालोंके मतमें पचीस तत्व होते हैं. ईश्वरके प्रसादसे प्राप्त होनेवाला ज्ञान सत्वगुणकी वृत्तिरूप होनेसे उसका जड़ तत्वोंमेंही अंतर्भाव माना हुआ है तासों ज्ञान जुदा तत्त्व नहीं माना जाता॥ ११॥ तीन गुणोंकी समता यह प्रकृतिका स्वरूप है. तासों स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके कारणरूप सत्व, रज और तम ये तीनोंगुण प्रकृतिकेही हैं. आत्माके नहीं; कारण यह कि– जीव अकर्ता है तासों सृष्टिआदिके कारणभूत गुणोंका आश्रयत्व उसमें नहीं घट सक्ता ॥ १२ ॥ अतएव ज्ञान कि– जो सत्वगुणमय है

पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ॥ तदन्यकल्पनापार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥ १२ ॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ॥ गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ॥ ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥ श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ॥ वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिः कर्माण्यंगोभयं मनः ॥ १५ ॥

वह जीवका धर्म नहीं है किंतु प्रकृतिकाही गुण है. ऐसा मानाहुआ है. ऐसेही कर्म यह रजोगुणकी वृत्ति है और अज्ञान यह तमोगुणकी वृत्ति है तासों उनकाभी प्रकृतिमेंही अंतर्भाव हो जानेसे उनको जुदा तत्वरूप नहीं मानते. स्वभाव यह महत्तत्त्वकाही स्वरूप है तासों उसका प्रकृतिमें अंतर्भाव होता है और काल यह तो ईश्वरकाही स्वरूप है तासों काल वा स्वभावभी जुदे तत्त्वरूप नहीं माने जाते. मैंने जो प्रथम (उन्नीसवें अध्यायमें) अठ्ठाईस तत्व कहे तिनमें पूर्वोक्त पचीस और उनसे अधिक तीन गुण ऐसे अठ्ठाईस हैं प्रकृति स्थिर है और गुणोंकी न्हासवृद्धि होती है तथा जाते आते हैं तासों प्रकृतिसे भिन्न माने हैं ॥ १३ ॥ हे उद्धव ! पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये नव ॥ १४ ॥ श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, घ्राण और जिव्हा ये पांच ज्ञानेंद्रियां, वाणी, हाथ, उपस्थ, पायु और चरण ये पांच कर्मेंद्रियां, ज्ञान और क्रियामय मन ये ग्यारह॥ १५॥

स्वीकारकिये पीछे मायिक तत्वोंकी जितनी संख्या कही जाय उतनीही युक्तिसे सिद्ध हो सक्ती है ॥ ४ ॥ " जैसे तू कहता है वैसे वह नहीं है किंतु जैसे मैं कहता हूं वैसे है " इस प्रकार यद्यपि उन तत्वोंके मूल कारणमेंभी ब्राह्मणलोक विवाद करते हैं. तथापि वास्तविक रीतिसे देखा जाय तौ अपने २ स्वभावके अनुसार परिणाम पायेहुए मायाके सत्वादिक गुणही उस विवादमें कारण हैं ॥ ५ ॥ कि- जिन गुणोंके क्षोभसे बाद करनेवालोंका विषयरूप यह भेद खड़ा हुआ है. जब शम और दम प्राप्त होता है तब यह भेद निवृत्त हो जाता है और भेदकी निवृत्तिके अनंतर विवादभी शांत हो जाता है ॥ ६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तत्वोंका एक दूसरेमें अंतर्भाव हो जाता है. तासों कहनेवालेकी जैसी इच्छा होती है उसीके अनुसार न्यून और अधिक संख्या

नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ॥ एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकारादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ॥ प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनुशाम्यति ॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ॥ पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नपि दृश्यंते प्रविष्टानीतराणि च ॥ पूर्वस्मिन्वापरस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥ पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ॥ यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥ ९ ॥ अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्याऽऽत्मवेदनम् ॥ स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥

हो सक्ती है ॥ ७ ॥ मृत्तिकामें जैसे घट-आदिका अंतर्भाव होता है ऐसे एक कारणरूप तत्वमें उसके कार्यरूप दूसरे तत्वोंका अंतर्भाव हो जाता है. और जैसे घटमें मृत्तिकाका समावेश हो जाता है ऐसे इस कार्यरूप तत्वमें उसके कारणरूप तत्वोंका समावेश हो जाता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार युक्तियां ठीक बैठतीं जातीं हैं तासों तत्वोंके कार्यकारणताके विषयमें और न्यूनाधिक संख्याके विषयमें वाद करनेवालोंमें जिसकी वाणी जिस इच्छासे प्रवृत्त होती है वह वैसी अपनी इच्छाको सिद्ध कर सक्ती है. अतएव हम सब विषयको संभवित मानते हैं॥ ९ ॥ जड़तत्वोंकी संख्याका भेद होनेके विषयमें तौ कारण कहा. अब जीव और ईश्वर कि-जो चैतन्यरूप हैं उनका भेद और अभेद माननेके विषयमें जो कारण है वह मैं कहता हूं. जीव कि- जो अनादि अविद्यासे युक्त है उसको अपने स्वरूपका ज्ञान अपनेआप होना संभवे नहीं तासों उसे ज्ञान देनेवाला सर्वज्ञ ईश्वर तासों अन्य होना चाहिये. ऐसे मानकर जो जीव तथ

कानामभाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ बाईसवें अध्यायमें तत्त्वकी संख्याओंके अविरोधका प्रकार, प्रकृति पुरुषका विवेक और जन्ममरणका प्रकार इत्यादि विषय कहे जायंगे ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि- आपने निर्णय किया कि- वेद प्रवृत्तिपर नहीं है किंतु निवृत्तिपर है. यदि ऐसा स्वीकार किया जाय तो इसमेंभी अवांतर अनेक विवाद हैं. देखिये ! कितनेएक विद्वान् तत्त्वोंकी संख्यामें विवाद करते हैं. कितनेएक बाहिरी पदार्थोंके सत्यत्व और मिथ्यात्वके विषे विवाद करते हैं. और कितनेएक विद्वान् आत्माके एकत्व और अनेकत्वके विषे विवाद करते हैं. सो इनमें सत्य कौन है ? वह मैं जानना चाहता हूं; इस लिये आपसे पूंछता हूं कि- हे जगदीश ! हे प्रभु ! ऋषियोंने शास्त्रोंमें तत्त्वोंकी कितनी संख्या कही है ? आप तो पहले कह चुके

उद्धव उवाच ॥ कति तत्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ॥ नवैकादश पंच त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥ केचित् षड्विंशतिं प्राहुरपरे पंचविंशतिम् ॥ सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ॥ एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥ गायंति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युक्तं च संति सर्वत्र भाषंते ब्राह्मणा यथा ॥ मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किंनु दुर्घटम् ॥ ४ ॥

हो कि- नव, ग्यारह, पांच और तीन यानी सब मिलकर, अठ्ठाईस तत्त्व हैं. यह मैंने आपके श्रीमुखसे सुना है ॥ १ ॥ कितनेएक कहते हैं कि- छब्बीस तत्त्व हैं, कितने एक पचीस बतलाते हैं, कितनेएक सात कहते हैं, कितनेएक नौ, कितनेएक छह, कितनेएक चार, कितनेएक ग्यारह ॥ २ ॥ कितनेएक सत्रह, कितनेएक सोलह, कितनेएक तेरह तत्त्व बतलाते हैं. हे आयुष्मन् ! ऋषियोंने इस प्रकार तत्त्वोंकी संख्याके जुदे जुदे अनेक भेद जिस प्रयोजनको कहनेकी इच्छासे वर्णन किये हैं वह प्रयोजन मुझे कहो ॥ ३ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि- ब्राह्मणोंने तत्त्वोंके संबंधमें जो जो कहा है उन सबमें युक्तियां हैं. मेरी मायाको स्वीकार करके, जो बातें बनावें उनकी बातोंमें किसी प्रकारकी दुर्घटता नहीं समझनी, जैसे मृगतृष्णाके जलकी. अर्थात् जलका स्वीकार किये पीछे उनके परिणामके विवादमें घुटनेजितना जल कहें तोभी चले और बीस बांस जल कहें तोभी चले ऐसे मायाको

क्षित तथा पारावाररहित है उसे आपही तो वह प्राण प्रगट करता है और आपही पीछा उपसंहार करता है ॥ ३८ ॥ ३९॥ ४०॥ वैदिक छंदोंके कुछ नाम कहते हैं- गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिछंदस, अत्यष्टि, अतिजगती और अतिविराट् ये सब छंद चार चार अक्षर बढ़ानेसे बनते हैं. जैसे चौवीस २४ अक्षरोंका गायत्री छंद, अठ्ठाईस २८ अक्षरोंका उष्णिक्, बत्तीसका ३२ अनुष्टुप्, ऐसे उत्तरोत्तर चार अक्षरोंको बढ़ाकर, छंदोंका लक्षण जानना ॥४१॥ फिर शब्दब्रह्मकी अर्थसे दुर्विज्ञेयता कहते हैं. यह वेदवाणी कर्मकांडमें विधिवाक्योंसे क्या विधान करती है ? देवताकांडमें मंत्रवाक्योंसे क्या प्रकाशित करती है ? ज्ञानकांडमें किसका अनुवाद करके, विकल्प बताती है ? इस प्रकार इस वाणीके निषेधरूप तात्पर्यको मेरे सिवाय दूसरा कोई-

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥ त्रिष्टुब् जगत्यतिच्छंदो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥४१॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ॥ इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥ ४२॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ॥ एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥ मायामात्रमनूद्यांते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

भी नहीं जानता ॥ ४२ ॥ तब उद्धवजीने कहा कि- कृपा करके, मुझको तौ आप कहो कि- इस वेदवाणीका तात्पर्य क्या है? तब श्रीभगवान्ने कहा कि- यह वेदवाणी मुझकोही तौ देवतारूप कहती है. यज्ञस्वरूप मेराही विधान करती है 'उस परमेश्वरसे आकाश उत्पन्न हुआ' इत्यादि वाक्योंसे विकल्प बताकर, पीछा निराकरण करती है, वहभी मैंही हूं; क्योंकि सब वेदोंका अर्थ यही है कि- परमेश्वर परमार्थरूप है और जो भेद है वह मायामात्र है. इस प्रकार मेरे स्वरूपका अनुवाद कर, मायिक वस्तुका निषेध करके, वेद निवृत्तव्यापार होता है. इसका भावार्थ यह है कि- अंकुरमें जो रस होता है वही उसके विस्तारभूत शाखा प्रशाखा फल पुष्पादिमें आता है. ऐसेही प्रणव (ॐकार) का जो परमेश्वर अर्थ है वही उसके विस्तारभूत कांडत्रयविषयक सर्व शाखासहित वेदोंका अर्थ है ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपि-

१ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ।

पावें; अन्य पुरुषोंके जाननेमें हितकी आशा तो दूर रही प्रत्युत वृथा कर्मत्याग करनेसे भ्रंश होनेकी आपदा सिवाय आ पड़ती है ॥ ३५ ॥ वेदके तात्पर्यार्थको समझना विद्वानोंके लियेभी अतिकठिन है; क्योंकि यह वेद ब्रह्मस्वरूपसे व अर्थसे अतिदुर्विज्ञेय है. वह सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दो प्रकारका है. तहां सूक्ष्म तो स्वरूपसेभी अतिदुर्विज्ञेय है; क्योंकि प्रथम तौ वह परा नामक प्राणमय है. दूसरा पश्यंती नामक मनोमय है. तीसरा मध्यमा नाम इंद्रियमय है, ये तीनों स्वरूप देहके भीतर सूक्ष्मरूपसे रहते हैं तासों इनका जानना अतिकठिन है. इसका चौथा वैखरी नाम स्वरूप है जिसे मनुष्य बोला करते हैं. समष्टि प्राणादिमय निर्विशेष वेद ब्रह्मका देश और कालसे परिच्छेद न होनेसे इसके पारकाभी अंत नहीं है. जैसे यह वेद ब्रह्मस्वरूपसे दूर्विज्ञेय है;

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेंद्रियमनोमयम् ॥ अनंतपारं गंभीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥ ३६ ॥ मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनंतशक्तिना ॥ भूतेषु घोषरूपेण बिसेषूर्णेवलक्ष्यते ॥ ३७ ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ॥ आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छंदोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ॥ ओंकाराद्व्यंजितस्पर्शस्वरोष्मांतस्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छंदोभिश्चतुरुत्तरैः ॥ अनंतपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपतेस्वयम् ॥ ४० ॥

ऐसे अर्थसेभी दुर्विज्ञेय है. क्योंकि यह अतिगंभीर और समुद्रकी नाईं दुर्विगाह्य है ॥ ३६ ॥ अनंतशक्ति और भूमा शुद्ध परब्रह्मसे उपबृंहित यानी अधिष्ठित यह शब्दब्रह्म जैसे कमलनालोंमें तंतु प्रतीत होते हैं ऐसे सर्व प्राणीमात्रमें नादरूपसे प्रतीत होता है. सो इस सूक्ष्म स्वरूपको मनीषी पुरुष चीन्हा करते हैं ॥ ३७ ॥ जैसे मकड़ी हृदयमेंसे लालाको उत्पन्न करके, मुखद्वारा प्रगट करती है ऐसेही यह वेदमूर्ति और अमृतमय समर्थ नादवाला प्राण स्पर्श आदि वर्णोंकी भले प्रकार कल्पना करनेवाले मनको निमित्त लेकर, हृदयाकाशसे वेदलक्षणा वैखरी नाम वाणीको प्रगट करता है कि–जो वैखरी वा बृहती नाम वाणी हृदयगत सूक्ष्म ओंकारसे व्यंजित भयेहुए स्पर्श (क से म पर्यंत) स्वर (अकारादि सोलह) ऊष्म (श ष स ह) और अंतस्थ (य र ल व) से भूषित व चित्र विचित्र लौकिक और वैदिक भाषाओंसे विस्तृत और उत्तरोत्तर चार चार अक्षर जिनमें अधिक हैं ऐसे छंदोंसे उपल-

---

१ क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म.

स्वप्नके सदृश और कर्णप्रिय परलोककी और इसलोककी कामनाओंका मनमें संकल्प करके, अपने द्रव्यको अनेक सकाम कर्मोंमें लगाते हैं और उससे वे उभयतोभ्रष्ट हो जाते हैं. जैसे कोई बनिया दुस्तर समुद्रआदिको उल्लंघ कर, बहुत धन-उपार्जन करनेकी इच्छासे अपने पास जो धन है उसको छोड़कर, उभयतोभ्रष्ट हो जाता है. यही दशा विषयी कामी पुरुषकी होती है ॥ ३१ ॥ रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुणकी निष्ठावाले लोग रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुणका सेवन करनेवाले इंद्रादिक देवतानकी जो उपासना करते हैं वह यद्यपि इंद्रादिक देवता मेरे अंश हैं तासों मेरीही मानी जाती है परंतु वह उपासना भेददर्शीपनसे विधिपूर्वक कीहुई नहीं मानी जाती ॥ ३२ ॥ विषयी पुरुषोंको बहँक जानेके कारण मेरी बातभी अच्छी नहीं

स्वप्नोपममसुं लोकमसंतं श्रवणप्रियम् ॥ आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजंत्यर्थान्यथा वणिक् ॥ ३१ ॥
रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः ॥ उपासत इंद्रमुख्यान्देवादीन्न तथैव माम् ॥ ३२ ॥
इष्ट्वेह देवतायज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ॥ तस्यां त इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥ एवं
पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ॥ मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्त्ताऽपि न रोचते ॥ ३४ ॥
वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकांडविषया इमे ॥ परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥

लगती. किंतु वे लोक घमंडी और अति अक्कड़ बनकर, मेरी वार्ताके बदले इस प्रकारके मनमें मनोरथ, करते हैं कि– 'यहां यज्ञोंद्वारा देवतानका यजन करके, स्वर्गमें जावेंगे और वहां अप्सरानके साथ रमण करेंगे. फिर, स्वर्गके भोग भोगे पीछे यहां आकर जन्म लेवेंगे सो यहां बड़े गृहस्थी और बड़े कुलवान् होवेंगे' इस प्रकार पुष्परूप स्वर्गादिसुखकी प्रतिपादक वाणीसे जिनके मन विक्षिप्त हो गये हैं वे पुरुष कदापि आवागवनसे छुटकारा नहीं पा सक्ते ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यद्यपि कर्म, ब्रह्म और देवताकांड-विषयक ये वेद ब्रह्म और आत्माकाही प्रतिपादन करते हैं, तथापि मंत्र वा मंत्रोंके द्रष्टा ऋषि परोक्षरीतिसेही पदार्थ-को प्रतिपादन करते हैं तासों ब्रह्मात्मविषय गूढ़ रहनेके कारण प्रगट प्रतीत नहीं होता. और परोक्ष रीतिसे कहनेका कारण यह है कि–परोक्ष मुझको अतिप्रिय है. तात्पर्य यह कि–जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं वेही तो जान सकें और अन्य पुरुष जानने न

तथा संन्यासीके वास्ते आसक्ति दोषरूप है परंतु वही गृहस्थीके पूर्वस्वीकृत होनेसे दोषरूप नहीं किंतु गुणरूप है; क्योंकि इसमें ' ऋतुमें स्त्रीगमन करे ' इत्यादि विधिवाक्य पाये जाते हैं. दोनों विषयोंमें दृष्टांत कहते हैं कि–जो पुरुष पहलेही नीचे सोया है वह नीचे नहीं गिरता ॥ १७ ॥ अतएव गुण दोष नियमविधिका तात्पर्य प्रवृत्तिके संकोचद्वारा केवल निवृत्तिमेंही है, क्योंकि जिस जिस वस्तुके यह पुरुष निवृत्त रहेगा उसीसे मुक्त हो जायगा. और मुक्त होना यही मनुष्योंका शोक, मोह और भयको मिटानेवाला कल्याणकारी धर्म है ॥ १८ ॥ यह गुणरूप है इसप्रकार विषयोंमें अध्यास रखनेसे मनुष्यकी विषयोंमें आसक्ति होती है. और आसक्ति करनेसे उस उस पदार्थमें कामना (इच्छा) होती है. और वांछित वस्तुमें जो विघ्न करता है उस-

यतो यतो निवर्तेत विमुच्येत ततस्ततः ॥ एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥ विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततो भवेत् ॥ संगात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥ कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ॥ तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतनाव्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥ तया विरहितः साधो जंतुः शून्याय कल्पते ॥ ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नाऽऽत्मानं वेदनापरम् ॥ वृक्षजीविकया जीवन्व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥ फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् ॥ श्रेयो विवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥

के साथ कामनाके हेतु मनुष्योंमें कलह होता है ॥ १९ ॥ और कलहसे असह्य क्रोध उत्पन्न होता है. क्रोधसे भले प्रकार मोह उत्पन्न हो जाता है. और मोहसे सर्वत्र व्यापक रहनेवाली चेतना यानी कार्याकार्यसंबंधी स्मृति शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ हे साधु! जब कार्याकार्यकी स्मृतिका नाश हो जाता है तब पुरुष शून्य यानी असत्तुल्य हो जाता है. और उससे स्वार्थका विभ्रंश यानी पुरुषार्थकी हानि हो जाती है और पुरुषार्थहीन पुरुष मूर्छित और मृतकतुल्य कहा जाता है ॥ २१ ॥ क्योंकि विषयोंमें अभिनिवेश[१] होनेसे उसे न तो आत्माका भान रहता है और न दूसरे पदार्थोंको पहचानता है अर्थात् जो वृक्षकी नाई व्यर्थ जीता है वह मूर्छिततुल्य है अतएव जो भस्त्रा (धौंकनी) की भांति सांस लेता है वह मृततुल्य समझा जाता है ॥ २२ ॥ प्रवृत्त कर्म स्वर्गादि फलका दाता होनेसे स्वार्थभ्रंशक नहीं. ऐसी शंका नहीं

१ अभिनिवेश अर्थात् यह अवश्य करना चाहिये ऐसा आग्रह. ॥

और अवस्था आदिके अनुसारसेही होती है ॥ १२ ॥ अस्पृश्य स्पर्शविषयक शुद्धि. कहकर अब लेपविषयक शुद्धि कहते हैं. जिस पाटा, वस्त्र और पात्रआदि वस्तुओंमे अमेध्यवस्तु लिप जाय उस पाटा आदिकी शुद्धि छीलने वा खटाईमें डालने आदिसे सब मानी जाती है जब उस अमेध्य वस्तुका लेप और गंध दूर हो जाय और वह पीछा पहले था वैसाका वैसा हो जाय. बस इसकी शुद्धि इतनी है कि–उसका गंध और लेप चला जाय. द्रव्यशुद्धि कहकर, कर्तृशुद्धि कहते हैं. स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, उपनयनआदि संस्कार संध्योपासनआदि कर्म और मेरे स्मरणसे अभिमानी कर्ताकी शुद्धि कही है सो इन साधनोंद्वारा शुद्ध होकर, त्रैवर्णिक और शूद्रकोभी अपना अधिकार प्राप्त कर्म करना चाहिये ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ यथावत् अंगोपांगसहित विनियोगके साथ मंत्रका जानना यह मंत्रकी शुद्धि कही जाती है. जो कर्म करे वह ईश्वरार्पण करना यह कर्मकी शुद्धि क-

अमेध्यलिप्तं यद्येन गंधं लेपं व्यपोहति ॥ भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः ॥ मत्स्मृत्या चाऽऽत्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद्द्विजः ॥ १४ ॥ मंत्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ॥ धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥ क्वचिद्गुणोऽपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः ॥ गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेऽवबाधते ॥ १६ ॥ समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ॥ औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७ ॥

हाती है. धर्मादिकके वास्ते शुद्धि अशुद्धि दिखाकर, उपसंहार करते हैं. देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मंत्र और कर्म ये छहही शुद्ध हों तो उससे धर्म सिद्ध होता है. और ये अशुद्ध हों तो उससे अधर्म सिद्ध होता है ॥ १५ ॥ यह गुणदोषका विभाग वास्तविक नहीं है, क्योंकि कहीं यानी आपदामें प्रतिग्रह गुण है तौभी समृद्धिमें निषिद्ध होनेसे दोष हो जाता है, और कहीं दोषभी विधिवलसे गुण–हो जाता है जैसे कुटुंबका परित्याग आदि सामान्य पुरुषके वास्ते दोषरूप है परंतु विरक्तपुरुषआदिके वास्ते दोषरूप नहीं, गुण दोषका जो नियामक शास्त्र है वह गुण दोषके भेदकोही बाधित करता है ॥ १६ ॥ कहीं दोषभी दोषरूप नहीं होता किंतु गुणरूप हो जाता है. जैसे सुरापानआदि अपतित पुरुषोंके पतनका हेतु होनेसे दोषरूप है तौभी पतित पुरुषोंके अधिकारका भ्रंशक नहीं होता; क्योंकि वह पहिलेसेही, पतित तौ हैही, इसलिये यहां दोषभी दोषरूप नहीं हुआ.

और अल्पपनसे मानी जाती है, जैसे द्रव्यसे-जल आदिसे शुद्धि और मूत्र आदिसे अशुद्धि, वचनसे-यह वस्तु शुद्ध है वा अशुद्ध ऐसा संदेह होवे तहां ब्राह्मणके वचनसे शुद्धि और अन्यथा अशुद्धि. संस्कारसे-प्रोक्षण आदिसे पुष्पआदिकी शुद्धि और सूँघनें आदिसे अशुद्धि. कालसे-दश १० दिन हो जानेसे नये जलकी शुद्धि और चातुर्मास्यमें तीन दिनसे नये जलकी शुद्धि और उससे पहले अशुद्धि. बड़ेपनसे-चांडालआदिका स्पर्श होनेपरभी तालाव आदिके जलकी शुद्धि और छोटेपनसे घड़े आदिमें रहेहुए जलकी उसीके स्पर्शसे अशुद्धि मानी जाती है ॥ १० ॥ तथा शक्ति व अशक्तिसे शुद्धि अशुद्धि मानी जाती है. जैसे सूर्यग्रहणआदिके सूतकमें अन्नआदि खानेके समर्थ पुरुषोंके लिये अशुद्धि और अशक्त पुरुषोंके लिये शुद्धि. बुद्धिसे-पुत्रजन्मआदि आशौचकी दश दिनके भीतर जाननेसे अशुद्धि और दश दिनके अनंतर जाननेसे शुद्धि. समृद्धिसे पुराने और मैले वस्त्र पहिरनेसे ध

शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने ॥ अघं कुर्वंति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितंतूनां रसतैजसचर्मणाम् ॥ कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२॥

नवान् पुरुषके लिये अशुद्धि और दरिद्रके लिये शुद्धि. और ये द्रव्य वचन आदि अशुद्धिद्वारा जो आत्माको पातक लगाते हैं वोभी देश और अवस्थाके अनुसारही लगाते हैं जैसे निर्भय देशमेंही तौ ये पापदाता होते हैं परंतु चोरआदिके उपद्रववाले देशमें नहीं. तैसे युवाआदि अवस्थामेंही तौ ये पापदायक होते हैं परंतु बाल्य और वृद्धत्वआदि अवस्थामें नहीं ॥ ११ ॥ द्रव्यशुद्धि अनेक प्रकारकी है जैसे-धान्यकी शुद्धि वायुसे, काठ यानी यज्ञके पात्र ग्रह चमस आदिकी शुद्धि जल व उष्णोदक आदिसे, अस्थि यानी हाथीदाँत आदिकी शुद्धि कालसे, रस यानी तैल घृत आदिकी शुद्धि तथा तैजस यानी सुवर्णआदिकी शुद्धि अग्निसे. तंतुनकी शुद्धि जलसे. चमड़ेकी शुद्धि कालसे. वा रंगनेसे. पार्थिव यानी पृथ्वीके विकार कीचड़, घट व ईट आदिकी शुद्धि काल आदिसे तथा ऐसेही अन्य पदार्थोंकी शुद्धि इन जुदे २ शुद्धिकारक पदार्थोंसे वा मिश्रित पदार्थोंसे काक, अंत्यजआदिके स्पर्शके तारतम्यसे देश, काल

१ देशं कालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् ॥ उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥ अर्थ- तैसेही स्मृतिमेंभी कहा है कि-देश, काल, आत्मा, द्रव्य, द्रव्यका प्रयोजन और उपपत्ति तथा अवस्था इनको जानके, शौच करे ॥ १ ॥

सब एकसे हैं ॥ ५ ॥ अतएव हे उद्धव ! इन सब समान वस्तुओंमें वेदने जो विषम नामरूप कल्पन किये हैं सो वे केवल इन जीवोंके स्वार्थकी सिद्धिके वास्ते यानी प्रवृत्तिको रोंकनेद्वारा धर्मादि चारों पुरुषार्थ सिद्ध करनेके वास्ते कल्पन किये हैं ॥ ६ ॥ हे उद्धव ! केवल देहमेंही यह बात नहीं है किंतु देश, काल, आदि सर्व वस्तुओंमें गुणदोषका विधान केवल कर्मोंके संकोचके वास्ते मैंने किया है ॥ ७ ॥ हे उद्धव ! इस प्रकार मैंने गुणदोषका विषय निरूपण किया. अब शुद्धि व अशुद्धिका विषय कहता हूं सो सुनो. जिस देशमें ब्राह्मणोंकी भक्ति न होवे और जहां कृष्णमृग न होवे वह देश देशोंमें अपवित्र गिना जाता है. और

वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ॥ धातुषूद्धव कल्प्यंत एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥६॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ॥ गुणदोषौविधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवे ॥ कृष्णसारोऽप्यसौ वीर कीकटासंकृतेरिणम् ॥ ८ ॥ कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ॥ यतो निवर्त्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥ द्रव्यस्य शुद्धयशुद्धीच द्रव्येण वचनेन च ॥ संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा ॥ १० ॥

जहां कृष्णमृगभी होवें परंतु सत्पुरुष न होवें वे अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र और मगधआदि देश अपवित्र गिने जाते हैं. परंतु यदि कीकट यानी अंगादि देशमेंभी सत्पुरुष होवें तौ वह पवित्र माना जाता है. तथा संमार्जनआदिसे रहित वा म्लेच्छप्राय देश और ऊपर ये सब प्रदेश अपवित्र माने जाते हैं ॥ ८ ॥ कालकी शुद्धि अशुद्धि दिखलाते हैं. जो काल द्रव्यकी संपत्तिसे वा स्वतएव (आपहीसे) यानी पूर्वाण्ह आदि कर्म करनेके योग्य है वह काल गुणरूप यानी पवित्र गिना जाता है. और जिस कालमें कर्म न बन सके, वह काल कर्मके अयोग्य होनेसे दोषवाला यानी अपवित्र माना जाता है ॥ ९ ॥ द्रव्यकी शुद्धि अशुद्धि दिखाते हैं. द्रव्यकी शुद्धि अशुद्धि द्रव्यसे, वचनसे, संस्कारसे, कालसे, बड़ेपनसे

१ अंगवंगकलिंगेषु सौराष्ट्रमगधेषु च ॥ तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥ त्रयोवर्णा द्विजातयः इतिस्मृतेः ॥ १ ॥ अर्थ-अंग, वंग, कलिंग इन देशोंमें और सौराष्ट्र तथा मगध देशोंमें तीर्थयात्राविना जाके, तीनो द्विजातिवर्ण अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पुनः संस्कार करनेके लायक होते हैं. ॥ १ ॥
२ तदुक्तम् -स वै पुण्यतमो देशःसत्पात्रो यत्र लभ्यते ॥ अर्थ सोही कहा है कि-वही अत्यन्त पवित्र देश है कि-जहां सत्पुरुष मिलता है ॥

उससे जो विरुद्ध है वह सब दोनोंके वास्ते दोषरूप है यह बात कही. अब यह बात कहते हैं कि- जो न तौ सिद्ध हैं और न साधक हैं. किंतु जो केवल काम्यकर्मकाही अनुष्ठान करते हैं उनके सब दोषोंका निरूपण करनेके वास्ते प्रथम बहिर्मुख लोगोंकी निंदा करते हैं. " श्रीभगवान्ने कहा कि- जो लोग भक्ति, ज्ञान, क्रियारूप मेरे इन तीनों मार्गोंको छोड़कर, चंचल प्राणोंसे तुच्छ विषयोंका सेवन करें वे बारंबार संसारको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ जैसे अग्निके तापका किसीके होना और किसीके न होना संभवे नहीं ऐसे उन्हीं कर्मोंसे किसीके गुणका होना और किसीके दोषका होना संभवे नहीं. ऐसी शंका करनी नहीं; क्योंकि अपने २ अधिकारमें जो निष्ठा राखनी उसे गुण और न राखनी उसे दोष कहते हैं. गुणदोषके विषयमें यही पक्का निश्चय किया गया है ॥ २ ॥ यह वस्तु योग्य है वा अयोग्य ऐसे संदेहद्वारा स्वाभाविक प्रवृत्तिको रोंकनेके निमित्त सब एकसी वस्तु-

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ॥ विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ॥ द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥ धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ ॥ दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥ भूम्यंब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पंच धातवः ॥ आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥

ओंमेंभी वेदमें शुद्धि और अशुद्धिका विधान किया है. और शुद्धि व अशुद्धिके निमित्त उन २ वस्तुओंमें गुण, दोष मान लिये गये हैं. और गुणदोषके निमित्त अर्थ और अनर्थ अथवा पाप पुण्य मान लिये गये हैं ॥ ३ ॥ हे उद्धव ! तहां शुद्धि व अशुद्धि धर्म, व्यवहार और निर्वाहके वास्ते गुणदोषरूप कहीगयी है. धर्मके वास्ते जैसे- शुद्धसे धर्म और अशुद्धसे अधर्म. व्यवहारके वास्ते जैसे-आशौचादि अशुद्धिमेंभी राजा आदिके व्यवहार देखनेके वास्ते यानी न्याय करनेके वास्ते शुद्धि और दूसरे कार्योंके वास्ते अशुद्धि. निर्वाहके वास्ते जैसे- आपदामें शरीरका निर्वाह हो जावे उतना पदार्थ लेनेसे शुद्धि और अधिक लेनेसे अशुद्धि. इस प्रकार धर्मरूप भार ढोनेवाले पुरुषोंके वास्ते मैंनेही मनु- आदिरूप धारण करके यह आचार दिखाया है ॥ ४ ॥ वास्तविक रीतिसे विचार कर देखते हैं तो सब वस्तु समान हैं; क्योंकि ब्रह्मासे ले, स्थावरआदि सर्व प्राणीमात्रके शरीरके आरंभक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच महाभूतही हैं तासों देह सबके एकसे हैं और आत्माभी ईश्वरके अंशरूप होनेसे

मोक्ष और मेरा धाम वैकुंठभी प्राप्त हो जाता है ॥ ३३ ॥ जो धीर साधुलोक मेरे एकांतभक्त हैं वे किसी फलकी वांछा नहीं रखते. यद्यपि मैं उनको कैवल्य मोक्ष देना चाहता हूं परंतु वे उसकीभी इच्छा नहीं करते ॥ ३४ ॥ निरपेक्षता रखनी यह सर्वोत्तम बड़ा कल्याणका फल और साधन कहलाता है अतएव जो मनुष्य निरपेक्ष रहकर, प्रार्थना न करे उसको मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ जिनके रागादि दोष निवृत्त होनेसे अंतःकरण समभावको प्राप्त हो गये हैं और उसीसे जो बुद्धिसे पर परमेश्वरको प्राप्त हो गये हैं ऐसे मेरे एकांत भक्तोंके गुणदोषसे होनेवाले पुण्यपापादिकोंसे कुछभी विकार नहीं होता ॥३६॥ जो मनुष्य इस प्रकार मेरे कहे-हुए मेरी प्राप्तिके साधनोंको धारण करें वे काल व मायाआदिसे रहित मेरा लोक कि–जिसको साक्षात् परब्रह्म कहते हैं उसे प्राप्त

न किंचित्साधवो धीरा भक्ताह्येकांतिनो मम ॥ वांछंत्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ॥ तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥ न मय्येकांतभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ॥ साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥ एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठंति मे पथः ॥ क्षेमं विंदंति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥ इति श्रीभा० महा० एका० विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ॥ क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषंतः संसरंति ते ॥ १ ॥

होजाते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते म० एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ इक्कीसवें अध्यायमें भक्ति, ज्ञान व कर्मके अनधिकारी कामी पुरुषोंके संबंधी द्रव्य, देशआदि पदार्थोंके गुणदोषोंका निरूपण किया जायगा ॥ १ ॥ " इस प्रकार गुणदोषकी व्यवस्थाके वास्ते योगत्रय कहे. तहां जो ज्ञान और भक्तिसे सिद्ध हो गये हैं उनके वास्ते न तौ कोई गुण है और न कोई दोष है. परंतु जो साधनावस्थावाले साधक निवृत्तिकर्मनिष्ठ हैं उनके वास्ते नित्य नैमित्तिक कर्मका करना अंतःकरणका शोधक होनेसे गुणरूप है और उसका न करना व निषिद्ध कर्म करना दोषरूप है. और उस दोषका निवृत्त करनेवाला प्रायश्चित्त गुणरूप है. और जिनका अंतःकरण शुद्ध है उन ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंके वास्ते तौ ज्ञानाभ्यासही सिद्धिका हेतु होनेसे गुणरूप है और जो भक्तिनिष्ठ हैं उनके वास्ते नित्य श्रवण कीर्तनआदि करनेरूप भक्तिही गुण है.

गया कि– योगीके स्वाभाविक प्रवृत्ति न होनेसे प्रायश्चितादिककी कोई आवश्यकता नहीं ॥ २६ ॥ अब भक्तिके अधिकारियोंके वास्ते भक्तियोग कहता हूं सो सुनो. जब मेरी कथाओंमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाय और सर्व कर्मोंमें निर्वेद यानी वैराग्य उत्पन्न हो जाय तथा विषयोंको दुःखरूप जान ले, परंतु उनका परित्याग किया जा सके नहीं ॥ २७ ॥ तब भक्तिसेही मेरा सर्व मनोरथ सिद्ध हो जायगा ऐसा दृढ निश्चय रख, श्रद्धायुक्त हो, प्रीतिके साथ मेरा भजन करे. तथा दुःखके परिणामरूप विषयोंका सेवन करनेपरभी उनकी निंदा करता रहे ॥ २८ ॥ हे मननशील उद्धव ! जो मनुष्य इस प्रकार कहेहुए भक्तियोगसे मेरा निरंतर भजन करे उसके हृदयमें मैं उपस्थित हो जाता हूं और मेरी स्थितिसे हृदयगत सर्व कामना नष्ट हो जातीं हैं ॥ २९ ॥ जब सर्वके अं-

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ॥ वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥ ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ॥ जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥ प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः ॥ कामा हृदय्या नश्यंति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्यकर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ॥ न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥ सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेंऽजसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वांछति ॥ ३३ ॥

तर्यामी ईश्वररूप मेरा साक्षात्कार हो जाता है तब अहंता ममतारूप हृदयकी ग्रंथि कट जाती है. और सब संदेह टूट जाते हैं और इसके सर्व कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ ३० ॥ अतएव मैं कहता हूं कि– जो योगी मेरेमें मन लगाकर, मेरी भक्तिको धारण करे उसके वास्ते बहुधा न तो ज्ञान और न वैराग्य कल्याणका साधन है. किंतु भक्तियोगही कल्याणका साधन है ॥ ३१ ॥ कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म और औरभी दूसरे अनेक साधनोंसे जो फल मिलता है ॥ ३२ ॥ वह सब फल मेरे भक्तको मेरी भक्तियोगके प्रभावसे विना आयास स्वयमेव प्राप्त हो जाता है, तथा जो वह कथंचित् चाहता है तो उसको स्वर्ग,

के अनुसार अनुलोभ प्रतिलोमसे महदादि सर्व पदार्थोंकी उत्पत्ति और प्रलयका ध्यान करना चाहिये. और वह ध्यानभी तबलों करना कि– जबलों मन निश्चल हो जाय ॥ २२ ॥ आगमापायी पदार्थोंका चिंतवन करनेसे अविवेकसे प्राप्त संसारमें जिस पुरुषको निर्वेद प्राप्त होनेके कारण वैराग्य प्राप्त हो जाय उस गुरुके उपदेश कियेहुए अर्थका विचार करनेवाले और उसी विचारित पदार्थका पुनः पुनः विचार करनेवाले पुरुषका देहादि पदार्थोंमेंसे अभिमान निवृत्त हो जाता है ॥ २३ ॥ यम आदि योगके मार्गोंसे, आत्मविचाररूप वेदांतविद्यासे वा मेरी अर्चा और उपासनासे परमात्मारूप मेरेमें मन लगाना. परंतु इससे अन्य उपाय नहीं करना ॥ २४ ॥ यदि योगीसे प्रमादके हेतु कुछ निंद्य कर्म बन जाय तौ उसके दोषको योगसेही भस्म करे परंतु दूसरा उपाय कदापि न करे ॥ २५ ॥ नित्य नैमित्तिक कर्म अंतःकरणके शोधक होनेसे गुणरूप और हिंसादिक कर्म अशुद्धिके हेतु हो-

निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ॥ मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिंतितस्यानुचिंतया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ॥ ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्मविगर्हितम् ॥ योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा सगुणः परिकीर्तितः ॥ कर्मणां जात्यशुद्धानामनेननियमः कृतः ॥ गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥

नेसे दोषरूप हैं. और उनका निवारण करनेवाले प्रायश्चित्तभी गुणरूप हैं सो प्रायश्चित्त किये विना योगसेही पापको किस प्रकार भस्म करे ? तहां कहते हैं कि– अपने अपने अधिकारमें जो निष्ठा राखनी वह गुण कहाता है; अर्थात् मनुष्यके प्रवृत्तिके सिवाय दूसरी कोईभी अशुद्धि नहीं है. क्योंकि वह स्वाभाविक प्रवृत्तिसेही मलिन हो रहा है. और उस प्रवृत्तिकी एकाएक निवृत्ति करनी अशक्य है. अतएव 'यह करना यह नहीं करना' ऐसे स्वाभाविक प्रवृत्तिके संकोचद्वारा अपने २ अधिकारमें निष्ठा रखनेका विधान निवृत्तिके लिये किया गया है. यानी गुणदोषकी विधि केवल संग छुड़ानेके अभिप्रायसे है अन्य अभिप्रायसे नहीं. गुणदोष विधि करनेसे इतना लाभ हुआ कि– जिनको निषेधका विषय जान लिया उन पदार्थोंमेंसे स्वयमेव आसक्ति छूट गयी. केवल विधि विषय गुणरूप पदार्थोंमेंही रही सो नभी धीरे २ (धीरे २) विचारके द्वारा निवृत्त हो जाती है तासों कहा

जाननेसे निरीह होकर, शांत हो जाता है ॥ १६ ॥ और सर्व फलोंकी मूलभूत, अतिदुर्लभ, अतिदृढ, इस मनुष्यदेहरूप नौकाको व गुरुरूप कनहारको तथा मुझरूप अनुकूल पवनकी प्रेरणाको पाकर, जो मनुष्य संसारसमुद्रसे पार न उतरे उसे आत्मघाती समझना चाहिये ॥ १७ ॥ इस प्रकार अविरक्त पुरुषके वैराग्यद्वारा ज्ञान व भक्तिका साधक कर्मयोग कहकर, अब विरक्त पुरुषके वास्ते ज्ञानयोग और ज्ञानप्राप्तिके पूर्व कुछ वर्जनयोग्य कृत्य कहते हैं. जब कर्मोंमें निर्वेद प्राप्त हो जाय और उनमें दुःख दीखनेसे वैराग्य उत्पन्न हो जाय और इंद्रियां वश हो जांय तब योगीपुरुष अभ्यास करके अपने मनको स्थिर करे ॥ १८ ॥ मनकी

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ॥ मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥ १७ ॥ यदारंभेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेंद्रियः ॥ अभ्यासेनाऽऽत्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥ १८ ॥ धार्यमाणं मनोयर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् ॥ अतंद्रितोऽनुरोधेन मार्गेणाऽऽत्मवशं नयेत् ॥ १९ ॥ मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेंद्रियः ॥ सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥ एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ॥ हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥ सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ॥ भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥

धारणा की जाय उस समय यदि मन भ्रमण करनेके कारण तुरंत स्थिर न होवे तौ सावधान रहकर, कुछ उसकी अपेक्षा पूरण करने द्वारा उसको अपने वश करे ॥ १९ ॥ प्राण व इंद्रियोंका जय होने परभी मनको ढीला नहीं छोड़ देना चाहिये. किंतु ज्यों बने त्यों सत्वगुणवाली बुद्धिसे मनको तो अपने वशही रखना चाहिये ॥ २० ॥ अनुवृत्तिद्वारा मनको जीतना यह बड़ा भारी योग कहलाता है, अनुवर्तनद्वारा मनके जयमें दृष्टांत कहता हूं सो सुनो, जैसे सवार दमन करने योग्य घोड़ेकी गतिको अपनी इच्छाके अनुसार चाहताहुआ पहले कुछ उसकी चालके अनुसार उसे जाने देता है. और फिर पीछे लगामको तानकरही जाता है परंतु उसकी अपेक्षा नहीं करता ऐसे मनको धीरे धीरे घोड़ेकी नाईं वश करना. चाहिये ॥ २१ ॥ तथा सांख्यशास्त्रकी रीति-

हे उद्धव ! जो मनुष्य स्वधर्ममें स्थित हो, फलकी कामनाको त्याग कर, यज्ञोंसे मेरा यजन करता रहे और निषिद्ध कर्मका आचरण नहीं करे तौ वह न तौ स्वर्गमें जावे और न नरकमें जावे ॥ १० ॥ किंतु इसी लोकमें रहता, स्वधर्ममें स्थित होनेसे निष्पाप और पवित्र होकर, या तो केवल ज्ञानको प्राप्त हो जाता है वा भगवदिच्छासे केवल ज्ञानसेभी अतिदुर्लभ मेरी भक्तिको प्राप्त हो जाता है ॥ ११ ॥ इसलोककी इच्छा स्वर्गवाले और नरकवाले दोनों करते हैं; क्योंकि यह लोक ज्ञान और भक्ति दोनोंका साधक है. उन दोनों शरीरोंसे कुछभी सिद्ध नहीं हो सक्ता ॥ १२ ॥ विवेकी पुरुषको चाहिये कि–न तौ स्वर्गकी गतिकी इच्छा करे और न नरककी गतिको चाहे. तथा इस लोककीभी इच्छा न राखे, क्योंकि देहकी आसक्तिसे यह मनुष्य अ-

स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीः काम उद्धव ॥ न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥ १० ॥ अस्मिँल्लोके वर्त्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ॥ ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥ स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छंति लोकं निरयिणस्तथा ॥ साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥ १२ ॥ न नरः स्वर्गतिं कांक्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ॥ नेमं लोकं च कांक्षेत देहावेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥ एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ॥ अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥ छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ॥ खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलंपटः ॥ १५ ॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वायुर्भयवेपथुः ॥ मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥

वधानशून्य हो जाता है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य इस बातको जानता है वह अर्थसिद्धिको देनेवाले इस शरीरकोभी मरणधर्मा जानकर, आलसको त्याग कर, मृत्युसे पहले २ अपने मोक्षके वास्ते यत्न करे ॥ १४ ॥ सावधान और मुक्तसंग पुरुष सुखको प्राप्त होता है उसमें दृष्टांत कहता हूं सो सुनो– यमराजके समान निर्दयी पुरुष जिसे काट रहे हैं ऐसे अपने घोंसलेवाले अपने निवासस्थान वृक्षमें जो पक्षी आसक्त नहीं होता वह उस वृक्षको छोड़कर, आनंदसे चला जाता है ॥ १५ ॥ ऐसेही रातदिनरूप बढ़ई जिसे काट रहे हैं ऐसी अपनी आयुको जानकर, भयसे कांपताहुआ जो मनुष्य मुक्तसंग हो जाता है वह परमात्माके जाननेसे निरीह होकर, शांत हो जाता है वह परमात्माके

षेधको प्रतिपादन करनेवाला वेदभी आपकाही वचन है. अब मनुष्योंका कल्याण किस प्रकार होवे ? क्योंकि इन आपकेही वचनोंमें परस्पर विरोध आता है ॥ ३ ॥ हे ईश्वर ! अनुपलब्ध अर्थ अर्थात् मोक्ष व स्वर्गादिक तथा साध्य व साधनोंको जाननेके निमित्त पित्रीश्वर, देवता और मनुष्योंके उत्तम चक्षु आपका वचनरूप वेदही है ॥ ४ ॥ गुणदोषमें जो भेददृष्टि है वह आपके वचनरूप वेदसे प्रतिपादन की जाती है. स्वतएव मान ली हो ऐसे नहीं है और आपनेही अपने श्रीमुखसे भेदका अपवाद किया है, अतएव मैं इस विषयमें भ्रमजालमें पड़ रहा हूं सो आप इस भ्रमको दूर करो ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि – विषयभेद न होनेपरभी अधिकारी भेदसे अविरोध कहनेको प्रथम भक्ति, ज्ञान और कर्मरूप योगत्रय कहता हूं सो सुनो. मनुष्योंके

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ॥ श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥ गुणदोषभिदा दृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः ॥ निगमेनापवादश्च भिदा या इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ॥ ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥ निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ॥ तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ ७ ॥ यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ॥ मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥

मोक्षके साधन कहनेकी इच्छासे मैंने भक्ति, ज्ञान और कर्मरूप तीन योग कहे हैं. इसके सिवाय दूसरा कहीं कोईभी साधन नहीं है ॥ ६ ॥ तहां दुःखबुद्धिसे कर्मोंके फलोंमें जो विरक्त हैं और उसीसे जिन्होंने साधनभूत कर्मोंका त्याग करदिया है उनके वास्ते ज्ञानयोग सिद्धिका देनेवाला है और जिनके चित्तमें निर्वेद उत्पन्न नहीं हुआ है उन कर्मफलकी आसक्तिवाले पुरुषोंके वास्ते कर्मयोग कल्याणकारी है ॥ ७ ॥ जिस पुरुषकी मेरी कथा आदिमें किसी भाग्योदयसे श्रद्धा उत्पन्न हो जावे तथा जिसको न तौ पूरा निर्वेद प्राप्त हुआ हो और जो न पूरा देहआदिमें आसक्त हो उसके वास्ते भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है ॥ ८ ॥ जबलों वैराग्य प्राप्त न होवे अथवा मेरी कथा सुनने आदिमेंभी श्रद्धा उत्पन्न न हो जावे तबलों यह मनुष्य कर्मयोगको साधा करे ॥ ९ ॥

असंतोषीको दरिद्री, अजितेंद्रियको कृपण (कंजूस) विषयोंमें अनासक्त बुद्धिवालेको ईश (समर्थ), विषयोंमें आसक्त पुरुषको तू अनीश जान ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! जो तुमने प्रश्न किये थे वे सब मैंने अच्छी तरह निरूपण किये. अब अधिक वर्णन करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि गुणदोषका लक्षण तो इतनाही है कि–गुणदोषोंका देखना यह तो दोष और गुणदोष देखनेका अभाव सो गुण॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ ॥ १९ ॥ बीसवें अध्यायमें गुणदोषकी व्यवस्थाके अर्थ अधिकारियोंके विभागसे भक्ति, ज्ञान और कर्मरूप तीन योगोंका वर्णन

दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेंद्रियः ॥ गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ४४ ॥ एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ॥ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥ गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ उद्धव उवाच ॥ विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥ अवेक्षतेऽरविंदाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ॥ द्रव्यदेशवयःकालान्स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥ गुणदोषभिदा दृष्टिमंतरेण वचस्तव ॥ निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥

किया जायगा ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि– हे कमलनयन ! परमेश्वररूप आपकी आज्ञारूप वेद विधिनिषेधमय है. सो वह विधिनिषेधरूप वेद, विहित और निषिद्ध कर्मोंके पुण्यपापरूप फलको प्रतिपादन करता है ॥ १ ॥ ऐसेही उत्तमअधमभावसे उसके अधिकारी वर्ण आश्रमोंके भेदको तथा प्रतिलोमज[1] और अनुलोमजरूप[2] भेदको व कर्मके योग्य व अयोग्य होनेसे द्रव्य, देश, अवस्था और काल इनके भेदको तथा कर्मके फलरूप स्वर्ग और नरकको गुण दोषरूपही प्रतिपादन करता है. अर्थात् विधिनिषेधरूप वेदमें सर्व पदार्थोंका भेद प्रतिपादन किया है ॥ २ ॥ गुणदोषमें भेददृष्टि न राखनी यह आपका वचन है और विधिनि-

१ उत्तम वर्णोंकी स्त्रियोंमें हीनवर्ण पुरुषोंसे जो उत्पन्न हैं वे प्रतिलोमज कहलाते हैं. अर्थात सूत वैदेहक आदि.
२ उत्तम वर्णके पुरुषोंसे हीनवर्णकी स्त्रियोंमें जो उत्पन्न हैं वे अनुलोमज कहलाते हैं. अर्थात मूर्धावसिक्त अम्बष्ठादि.

ऐसे बारहही तौ यम हैं और बारहही नियम हैं. हे उद्धव ! यदि मनुष्य इनको धारण करें तौ उनकी मनोवांछित कामना पूर्ण हो जाय ॥ ३५ ॥ बुद्धिकी मेरेमें निष्ठा होनी इसे शम कहते हैं, इंद्रियदमनको दम, दुःखके सहनेको तितिक्षा, जीभ और उपस्थके जयको धीरज ॥ ३६ ॥ भूतद्रोहके त्यागको उत्कृष्ट दान, भोगकी उपेक्षाको तप, स्वभावके विजयको शूरबीरता, ब्रह्मदर्शनको सत्य ॥ ३७ ॥ सत्य और प्रियवाणीको ऋत, कर्मोंकी अनासक्तिको शौच और त्यागको कबिलोग संन्यास कहते हैं॥ ३८ ॥ धर्मको वांछित धन, परमेश्वररूप मुझको यज्ञ, ज्ञानके उपदेशको दक्षिणा, मनोदमनरूप प्राणायामको परमबल॥ ३९ ॥ मेरे ईश्वरपनके भावको भग,

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ॥ पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहंति हि ॥ ३५ ॥ शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इंद्रियसंयमः ॥ तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥ ३६ ॥ दंडन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ॥ स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ॥ कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥ धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ॥ दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ॥ विद्यात्मनि भिदा बाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः ॥ दुःखं कामसुखापेक्षा पंडितो बंधमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पंथा मन्निगमः स्मृतः ॥ उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥ नरकस्तम उन्नाहो बंधुर्गुरुरहं सखे ॥ गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥ ४३ ॥

मेरी भक्तिको उत्तम लाभ, आत्मामें प्रतीत होतेहुए भेदके बाधको विद्या, अकर्तव्य कर्मोंमें हेय पनसे देखनेको न्ही ॥ ४० ॥ निरपेक्षता आदि गुणोंको श्री (शोभा), सुख दुःखके अनुसंधानके अभावको सुख, विषयसुखकी लालसाको दुःख, बंध और मोक्षके ज्ञाताको पंडित ॥ ४१ ॥ देह आदिमें अहंबुद्धिवालेको मूर्ख, मुझको प्राप्त करानेवाले निवृत्तिमार्गको पंथ, चित्तको विक्षिप्त करनेवाले प्रवृत्तिमार्गको कुपंथ, सत्वगुणके उदयको स्वर्ग ॥ ४२ ॥ तमोगुणकी वृद्धिको नरक, हे सखा उद्धव ! गुरु कि– जो मेराही स्वरूप है उसे बंधु, साधनसहित भोगके आयतन मनुष्यशरीरको घर, गुणसम्पन्नको आढ्य (धनवान्) ॥ ४३ ॥

नता हूं उनके अर्थभी विलक्षण होंगे. इसवास्ते हे शत्रुदमन ! प्रभु ! मैं आपसे पूछता हूं कि- यम कितने प्रकारका है ? और नियमके कितने भेद हैं ? शम किसे कहते हैं ? दम क्या है ? हे प्रभु कृष्ण ! तितिक्षा व धीरज किसे कहते हैं ? ॥ २८ ॥ दान, तप, शौर्य व सत्य किसे कहते हैं ? ऋत क्या है ? त्याग क्या है ? और इष्ट धन क्या है ? यज्ञ क्या है ? और दक्षिणा किसे कहते हैं ? ॥ २९ ॥ हे श्रीमन् ! मनुष्यके बल क्या है ? तथा हे केशव ! भगवल्लाभ क्या है ? तथा पराविद्या, परालक्ष्मी व परान्ही क्या है ? सुख क्या है ? और दुःख किसको हैं ? ॥ ३० ॥ पंडित किसे कहते हैं ? और मूर्ख कौन है ? मार्ग कौन हैं ? और उलटा रस्ता क्या है ? स्वर्ग क्या है ? और नरक क्या है ? बंधु कौन है ? और घर किसे कहते हैं ? ॥ ३१ ॥ आढ्य

किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ॥ कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥ पुंसः किंस्विद्बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव ॥ का विद्या न्हीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥ कः पंडितः कश्च मूर्खः कः पंथा उत्पथश्च कः ॥ कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्को बंधुरुत किं गृहम् ॥ ३१ ॥ क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ॥ एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो न्हीरसंचयः ॥ आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमा भयम् ॥ ३३ ॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् ॥ तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ ३४ ॥

(धनवान्) कौन है ? और दरिद्री किसे कहते हैं ? कृपण कौन है ? और ईश्वर कौन है ? हे सत्पुरुषोंके पति ! मैंने जो प्रश्न किये हैं वे और उनसे उलटे जो अशम आदि हैं उनके अर्थ मुझको कहो ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—अहिंसा, सत्यभाषण, मनसेभी पराई वस्तुका हरण न करना, आसक्ति नहीं रखनी, निंद्यकर्मोंसे लजाना, संग्रह नहीं करना, धर्मपर विश्वास रखना, ब्रह्मचर्य पालना, मौन रखना, स्थिरता रखनी, क्षमा राखनी, और किसीसे नहीं डरना. ये बारह यम हैं ॥ ३३ ॥ अब बारह, नियम सुनो. अंतःकरणकी पवित्रता, बाह्य यानी शरीरआदिकी पवित्रता, जप, तप, होम, श्रद्धा, अतिथिसत्कार, मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार, संतोष और गुरुसेवा ॥ ३४ ॥

चेष्टा करनी. वाणीसे मेरे गुणोंका कीर्तन करना. मन मेरे अर्पण करना. सर्व कामनामात्रका परित्याग करना ॥ २२ ॥ मेरे भजनमें जिस द्रव्यसे विरोध आवे उस द्रव्यका परित्याग करना. तथा भोग व सुखभी वह सेवन करना, जिससे मेरी सेवामें प्रतिबंध न आवे. जो कुछ याग, दान, होम, जप, तप, व्रत करे वह सब मेरे अर्थ करना ॥ २३ ॥ हे उद्धव ! जो मनुष्य इस प्रकार भक्तिके साधनरूप इन धर्मोंका आचरण करता हुआ अपनी आत्माभी मेरे अर्पण कर देवे उसको मेरी प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त हो जाती है. जो मेरा भक्त है उसके कोईभी साध्य वा साधनरूप अर्थ अवशेष नहीं रहता. सब प्रयोजन स्वयमेव सिद्ध हो जाते हैं ॥ २४ ॥ अधिक क्या कहूं. यह मनही अर्थ व अनर्थका कारण है. यह मनुष्य जब सत्वगुणसे उपबृंहित अपने

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ॥ इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ॥ २३ ॥ एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवाऽऽत्मनिवेदिनाम् ॥ मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥ २४ ॥ यदाऽऽत्मन्यर्पितं चित्तं शांतं सत्त्वोपबृंहितम् ॥ धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥ यदर्पितं तद्विकल्पे इंद्रियैः परिधावति ॥ रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ॥ गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच ॥ यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन ॥ कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥

शांत मनको मेरे अर्पण कर दे. तब इसको धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य ये सब प्राप्त हो जाते हैं॥२५॥ और यही रजोगुणनिष्ठ व असत् अभिनिवेशवाला मन विकल्प यानी देह घर आदिमें लगादिया जावे तौ वह इंद्रियोंके द्वारा इधर उधर विषयोंकी ओर दौड़ता है. और उससे अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ अब स्वाभीष्ट धर्मादिक शब्दोंकी व्याख्या करते हैं. जिससे मेरी भक्ति प्राप्त होवे वह धर्म, जिससे एक आत्माका होना अर्थात् अद्वैतता देखी जाय वह ज्ञान, विषयोंमेंसे आसक्तिका छूट जाना वह वैराग्य और अणिमाआदि सिद्धियोंका होना वह ऐश्वर्य कहलाता है ॥ २७ ॥ उद्धवजीने कहा कि– इन धर्मादिकोंके अर्थ जो मैं जानता था उससे विलक्षण निकले इसलिये मैं मानता हूं कि–औरभी जिन २ शब्दोंके अर्थ मैं जा-

कि ' यहां कुछभी नाना नहीं है ' प्रत्यक्ष प्रमाणसे देखते हैं तौभी आत्मासे अन्य दूसरा कुछभी नहीं दीखता, जैसे पटादि कार्य तंतु- आदिसे भिन्न देखनेमें नहीं. आते महाजनप्रसिद्धिकी ओर जायं तो मनु आदिनेभी अद्वैतही दिखाया है. और अनुमान करते हैं तौभी अद्वैतही सिद्ध होता है. जैसे यह सब परब्रह्मसे भिन्न नहीं है, क्योंकि परब्रह्मसे पैदा हुआ है. जो जिससे पैदा होता है वह उससे भिन्न नहीं होता. जैसे मिट्टी—आदिसे घट—आदि उत्पन्न होते हैं वे मिट्टी—आदिसे भिन्न नहीं. ऐसे इस

कर्मणां परिणामित्वादाविरिंचादमंगलम् ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ॥ पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥ श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ॥ परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥ आदरः परिचर्यायां सर्वांगैरभिवंदनम् ॥ मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥ मदर्थेष्वंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ॥ मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥

द्वैतको मिथ्याभूत जानकर, विकल्पसे विरक्त होना चाहिये ॥ १७ ॥ जैसे यह लोक विनाशी दीख पड़ता है ऐसे इस लोकके कर्मोंके परिणामसे सिद्ध होनेवाला स्वर्गसे ले ब्रह्मलोकपर्यंत ऊपरके लोकोंका सुखभी दुःखरूप यानी विनश्वर है ऐसे देखते रहना ॥ १८ ॥ हे अनघ ! तुम मेरे परमप्यारे हो. इसलिये भक्तियोग तो मैं तुमको पहलेही कह चुका हूं. अब फिरभी मेरी भक्तिके उत्तम साधन तुमको कहता हूं सो सुनो ॥ १९ ॥ मेरी अमृतसी कथामें श्रद्धा राखनी. निरंतर मेरा कीर्तन करना. मेरी पूजामें निष्ठा राखनी. स्तुतिपाठोंसे मेरी स्तुति करनी ॥ २० ॥ मेरी टहल करनेमें आदर रखना. सब अंगोंसे मुझको दंडवत् प्रणाम करना. मेरे भक्तोंकी अधिकतर पूजा करनी. सब प्राणीमात्रमें मेरी भावना करनी ॥ २१ ॥ मेरी सेवाके निमित्त शरीरकी

१ ' नेह नानास्ति किञ्चन. '

२ सुननेमें आदर रखना. ३ अर्थात् सुननेके बाद मेरी कथाका व्याख्यान देना.

४ निधाय दण्डवद्देहं प्रसार्य चरणौ करौ ॥ बध्वा मुकुलवत्पाणी प्रणामो दण्डसंज्ञितः ॥ १ ॥ पादौ शिरस्तथा हस्तौ निकुञ्च्य मुकुलाकृती ॥ मनो बुद्ध्यभिपातैश्च प्रणामोऽष्टांगसंज्ञितः ॥ २ ॥ अर्थ— दंडके सरीखे जमीनमें देह रखके, हाथ पांव फैलाय, मुकुल यानी किंचित फूली हुई कलीकी तरह हाथ बांधके, जो प्रणाम किया जाता है उसे दण्डप्रणाम कहते हैं ॥ १ ॥ और हाथ, पांय और शिर इनको किंचिद्विकसित कलिकाकी तरह समेट, मन और बुद्धिके अभिपातोंसे जो प्रणाम किया जाता है, उसे अष्टांग प्रणाम कहते हैं. सो इधर जो सब अंगोंसे प्रणाम करना कहा, सो [illegible] ॥ २ ॥

प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहंकार, पांचतन्मात्रा, ग्यारह इंद्रिय, पंचमहाभूत और तीन गुण ये अठ्ठाईस तत्त्व ब्रह्मासे ले, स्थावर-पर्यंत सर्वकार्योंमें अनुस्यूत हैं और इन अठ्ठाईस तत्त्वोंमें एक परब्रह्म अनुस्यूत है अर्थात् कार्यकारणरूप सर्व जगत् अपने परम-कारण (ब्रह्म) रूप है. ऐसे जो विचारसे देखनेमें आवे वह विचार ' ज्ञान ' कहलाता है ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १४ ॥ जैसे ज्ञानके समयमें एकमें अनुस्यूत भयेहुए सर्व पदार्थ देखनेमें आये होवें वैसे ये पदार्थ देखनेमें न आवें किंतु जिस एक तत्वमें वे अनुस्यूत हैं वही तत्व (परमकारणरूप परब्रह्म) इकल्ला देखनेमें आवे तब वही ज्ञान ' विज्ञान ' इस नामसे कहनेमें आता है. दिशासंबंधी अपरोक्ष भयीहुई भ्रांति जैसे निश्चित दिशाके परोक्षज्ञानसे नहीं मिटती ऐसे यह संसाररूप भ्रांति कि-जो अपरोक्ष है वह परब्रह्मके परोक्षज्ञानसे निवृत्त नहीं होती यानी जो परोक्षज्ञानवाला है वह पुरुष जगत्को ब्रह्मरूप जाननेप-

नवैकादशपंचत्रीन्भावान्भूतेषु येन वै ॥ ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥ एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावंते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात् ॥ पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत् ॥ १६ ॥ श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ॥ प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥ १७ ॥

रभी द्वैतकी सत्ताको ब्रह्मसे कछुक भिन्न मानता रहता है. और विज्ञान यानी अपरोक्षज्ञानवाला जीवन्मुक्त पुरुष तौ संस्कारमा-त्रसे अवशेष रहेहुए द्वैतभावको बाधित देखता है अतएव परोक्षज्ञानका नाम ' ज्ञान ' दिया गया है और अपरोक्ष ज्ञानका नाम ' विज्ञान ' दिया गया है. ' पदार्थ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयवाले हैं, कारण यह कि-वे सावयव हैं. जो जो सावयव होवे वह उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयवाला होवे. जैसे घड़ा सावयव है अतएव वह उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयवाला है. ' इस अनुमा-नसे ' पदार्थ उत्पत्ति आदिवाले हैं ' यह निश्चय होता है ॥ १५ ॥ उत्पत्तिमें तथा रूपांतरकी प्राप्तिमें व मध्यमें सर्वका आश्रय व कारण होनेसे जो कार्यसे कार्यांतरप्रति अनुस्यूत रहता है और उनके प्रलयमें जो फिर पीछा अ-वशिष्ट रहता है वही वास्तविक वस्तु मानी जाती है ॥ १६ ॥ वैराग्यके अर्थ कहते हैं. शास्त्रोंमें मुख्य चार प्रमाण माने जाते हैं. वेद, प्रत्यक्ष, महाजन प्रसिद्धि और अनुमान सो यह द्वैत चारों प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता. देखो, वेदमें कहा है

उद्धवजीने कहा कि– हे विश्वेश्वर ! हे सर्वमूर्ति ! वैराग्य और विज्ञानसहित यह पुरातन शुद्ध ज्ञान जिस प्रकारसे विपुल हो जावे यानी विस्तारयुक्त होवे ऐसी रीतिसे कहो. और आपका भक्तियोग कि– जिसे ब्रह्मादिक महात्माभी हेरा करते हैं उस विषयको मैं जानना चाहता हूं सो वह मुझे कहो ॥ ८ ॥ हे प्रभु ! इन अध्यात्मआदि त्रिविध तापोंसे मैं तपायमान हो रहा हूं और घोर भवाटवीमें पड़ाहुआ हूं अब यहां अमृतकी बर्षा करनहारे आपके चरणयुगलरूप छत्र विना दूसरा कोईभी शरण मुझे नहीं दीखता ॥ ९ ॥ हे महाप्रभाव ! यह जन इस संसारकूपमें गिराहुआ है तहां कालरूप सर्प इसे डँस गया है तथापि यह

उद्धव उवाच ॥ ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ॥ आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥ तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ॥ पश्यामि नान्यच्छरणं तवांघ्रिद्वंद्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥ दष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ॥ समुद्धरैनं कृपयाऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिंच महानुभाव ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ॥ अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥ निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः ॥ श्रुत्वा धर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥ तानहं तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ॥ ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥

तुच्छ सुखोंमें बड़ी भारी तृष्णा बाँधकर, बैठा है. सो अब आप इस जनपर कृपा कर, मोक्षके देनेवाले अपने बचनोंसे सेचन करके, इसका ताप शांत करो ॥ १० ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि– जिसके कोई शत्रु पैदा नहीं हुआ ऐसे महाराज युधिष्ठिरने पहले धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मजीसे हम सब लोगोंके सुनते इसी प्रकार प्रश्न किया था ॥ ११ ॥ जब भारतयुद्ध हो चुका तब सुहृदोंके मरनेसे विव्हल भयेहुए युधिष्ठिरने बहुतसे धर्म सुनकर, अंतमें यही मोक्षधर्मसंबंधी प्रश्न किया ॥ १२ ॥ तहां भीष्मजीने युधिष्ठिरको जो धर्म कहे वो हमनेभी सुने. अब ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, श्रद्धा और भक्तिसे बढ़ेहुए भीष्मजीके मुखसे सुनेहुए वे धर्म कहता हूं सो सुनो ॥ १३ ॥

लगता. तासों उस पुरुषके प्राप्त होनेको वा करनेको कुछ नहीं रहता ऐसे करना यही विद्वत्संन्यास कहलाता है ॥ २ ॥ ज्ञान और विज्ञानसे सिद्ध भयेहुए पुरुष मेरे उत्तम पदको जानते है और ज्ञानीपुरुष ज्ञानसे मुझको धारणा करता है अतएव ज्ञानीपुरुष मुझको अतिप्रिय लगते हैं ॥ ३ ॥ जो सिद्धी ज्ञानके लेशमात्रसे होती है वह सिद्धि तप, तीर्थ, जप, दान और दूसरे पवित्र पदार्थोंसे कदापि नहीं हो सक्ती ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! इस लिये मैं कि- जो निजका आत्मरूप हूं उसे ज्ञानकी पराकाष्ठा पर्यंत जानकर, उस ज्ञान और विज्ञानसे संपन्न होकर, भक्तिभावसे केवल मेरा भजन करो. दूसरे सर्वका त्याग करो ॥ ५ ॥ मैं कि- जो सर्व यज्ञोंका पति और आत्मा हूं उसका अपनेमेंही ज्ञान तथा विज्ञानरूप यज्ञसे यजन करके, मुनिलोग मद्रूप सिद्धिको प्राप्तहुए हैं

ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ॥ ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥ तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ॥ नालंकुर्वंति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मा भक्तिभावतः ॥ ५ ॥ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वाऽऽत्मानमात्मनि ॥ सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाऽऽश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायांऽतरापतति नाद्यपवर्गयोर्यत् ॥ जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किंस्युराद्यंतयोर्यदसतोस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥

॥ ६ ॥ हे उद्धव ! तुममें जो अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवतरूप तीन प्रकारका देहादिक द्वैतभाव देखनेमें आता है वह मायारूप है; परमार्थ नहीं है. क्योंकि-वह केवल मध्यदशामेंहि देखनेमें आता है. आदि और अंतमें नहीं दीख पड़ता. अतएव इस विकाररूप देहादिकके जन्म-आदि विकार होते हैं परंतु तुम कि-जो उसके अधिष्ठानरूप हो उनके क्या है ? कुछभी नहीं. घट आदि द्वैत पदार्थके आदि और अंतमें जो मृत्तिका आदि होते हैं वेही मध्यमें होवे हैं परंतु वस्तुतः घट-आदि पदार्थ वास्तविक नहीं ऐसे इस देहादिक द्वैत पदार्थके आदि व अंतमें जो ब्रह्म है वही मध्यमें है परंतु देहादिक द्वैत वस्तु नहीं है. तासों वास्तविक रीतिसे विचार किया जाय तौ देहादिककेभी जन्मादिक नहीं हैं. तब तुह्मारे तौ कहांसे होवें ? तासों तुम निर्विकार परब्रह्मरूपही हो ॥ ७ ॥

प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ और इस प्रकार वर्णाश्रमके धर्म पालनेसे चित्त शुद्ध होनेसे मेरा स्वरूप जाननेमें आता है. और ज्ञान व विज्ञानकी प्राप्तिसे वह तुर्त मुझको प्राप्त होता है यानी उसका मोक्ष हो जाता है ॥ ४६ ॥ यह वर्ण तथा आश्रमवालोंका आचारलक्षण धर्म उनको पितृलोक प्राप्त करनेवाला है परंतु यही धर्म यदि मेरे अर्पण किया जाय तौ सर्वोत्तम मुक्तिका साधनरूप हो जाता है ॥ ४७ ॥ हे उद्धव! स्वधर्म पालनेवाला भक्त मेरे परब्रह्मस्वरूपको जिस प्रकार प्राप्त होवे उस विषयमें तुमने जो मुझसे पूंछा वह सब मैंने तुमसे कहा ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ उन्नीसवें अ-

इति स्वधर्मनिर्णिक्त सत्त्वोनिर्ज्ञातमद्गतिः ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो न चिरात्समुपैति माम् ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ॥ स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम् ॥ यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एका० स्कं० अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ॥ मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः ॥ स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥ २॥

ध्यायमें पूर्व जो आश्रमधर्मसे ज्ञानादिकका निर्णय किया गया है उसका त्याग कहा जायगा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–जैसे आपनको अंधकार–आदिसे दिशाभ्रम हो जाता है वह वास्तविक नहीं है यह जानने परभी जबतक निश्चित दिशाका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता तबतक वह दूर नहीं होता ऐसे जबलों यह द्वैतभाव तर्कसे अवस्तुरूप जाननेपरभी अपरोक्ष अनुभवसे लीन न हो जावे तबलों ज्ञानका अभ्यास करना. परंतु परोक्ष ज्ञानकी निवृत्तिके अनंतर अनुभव और अनुभवपर्यंत शास्त्रश्रवणसे प्राप्त भयीहुई आत्मतत्वकी प्राप्तिसे जिस पुरुषका द्वैतभाव लीनप्राय हो गया होवे वह पुरुष द्वैतको और द्वैतकी निवृत्तिके साधनको मेरे स्वरूपमें केवल मायामात्र है ऐसे जानकर, ज्ञानके साधनका त्याग करे ॥ १ ॥ ज्ञानीके तौ अपेक्षित फलरूप मैंही हूं. तथा उसका साधनरूप व स्वर्गरूप और संसारकी निवृत्तिरूपभी मैंही हूं. मेरे विना उसे दूसरा कुछभी प्रिय नहीं

चाहिये कि- धैर्य रखकर, किसी ब्रह्मवेत्ता गुरुका शरण लेवे ॥ ३८ ॥ जबलग ब्रह्मज्ञान प्राप्त होवे तबलग श्रद्धा व आदर रख-
कर, ईर्ष्याका त्याग करके, गुरुको मेरा रूप जानकर, भक्तिसे उसकी सेवा करे ॥ ३९ ॥ जिसने छह इंद्रियोंका जय नहीं किया
होवे, जिसकी बुद्धि विषयोंमें अतिअसक्त होवे और जो ज्ञान व वैराग्यसे शून्य होवे वह संन्यासी उदरपूरणके वास्ते तीन दंड
उठाकर, फिरता है ॥ ४० ॥ मनके राग द्वेषादिक मल भस्म हुए विना जो मनुष्य संन्यास लेकर, धर्मका त्याग करता है वह
पूजा करनेयोग्य देवतानको अपनेको और अपनेमें रहेहुए मुझकोभी ठगाता है और ऐसे करनेसे इस लोकसे और परलोकसे भ्रष्ट
होता है ॥ ४१ ॥ शांति और अहिंसा ये संन्यासीके मुख्य धर्म हैं. तप और यजन ये वानप्रस्थोंके मुख्य धर्म हैं. प्राणियोंका

तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ॥ यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसं-
यतषड्वर्गः प्रचंडेंद्रियसारथिः ॥ ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदंडमुपजीवति ॥ ४० ॥ सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते
मां च धर्महा ॥ अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा
वनौकसः ॥ गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं संतोषो भूतसौ-
हृदम् ॥ गृहस्थस्याप्यृतौ गंतुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभा-
क् ॥ सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विंदतेऽचिरात् ॥ ४४ ॥ भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥ ४५ ॥

रक्षण और यजन ये गृहस्थके मुख्य धर्म हैं. आचार्यकी सेवा यह ब्रह्मचारीका मुख्य धर्म है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्य, तप, शौच,
संतोष और प्राणीमात्रके साथ मित्रभावसे बर्तना यह सर्व आश्रमवालोंका तथा गृहस्थकाभी धर्म है. तहां ऋतुकालमें अपनी
स्त्रीके साथ मैथुन करना यह गृहस्थीका ब्रह्मचर्य कहलाता है. मेरी उपासना करनी यह सबके वास्ते है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार
जो मनुष्य वर्णाश्रमके धर्म पालकर, निरंतर मेरा भजन करे. दूसरे स्त्री- पुत्रादिकोंमें प्रीति न राखे और सर्व प्राणीमात्रमें मेरी
भावना राखे, उस पुरुषको शीघ्र मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ४४ ॥ हे उद्धव ! मैं कि-जो सर्व लोकोंका बड़ा ईश्वर सर्वकी
उत्पत्ति तथा प्रलयका कारणरूप और श्वासमेंसे वेद उत्पन्न करनेवाला वैकुंठवासी हूं उसको वह पुरुष दृढभक्तिके प्रभावसे

किसीस्थलमें समयपर खानेको न मिले तौ धीरज रखना. परंतु घबराना नहीं. और मिल जाय तो प्रसन्न नहीं होना. कारण यह कि-मिलना और न मिलना दैवके आधीन है ॥ ३३ ॥ भिक्षाके वास्ते प्रयत्न करना; क्योंकि परमहंसकोभी प्राणका धारण तो अवश्य करनाही चाहिये. क्योंकि प्राण हों तौ तत्त्वका विचार होवे और तत्त्वज्ञान होवे तौ मुक्ति प्राप्त होवे ॥ ३४ ॥ अच्छा वा बुरा यदृच्छासे जो अन्न मिले वह खा लेना. अच्छा नहीं लेना यह आग्रहभी नहीं रखना. ऐसेही वस्त्र और शय्या-आदि जो कुछ यदृच्छासे मिल जाय परमहंस उसका ग्रहण करे ॥ ३५ ॥ मैं कि-जो ईश्वर हूं वह जैसे शौच, आचमन, स्नान और दूसरेभी नियम लीलासे धारण करता हूं परंतु वेदका दास बन कर, नहीं करता ऐसे ज्ञानीभी शौच, आचमन, स्नान और दूसरेभी नि-

अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ॥ लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतंत्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ॥ तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥ तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥ अन्यांश्च नियमाञ्ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ न हि तस्यविकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ॥ आदेहांतात्क्वचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥ ३७ ॥ दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥ ३८ ॥

यमोंको आपसे बन सके तबलग पाले परंतु वेदका दास बनकर न पाले ॥ ३६ ॥ सर्व नियम पालनेकी वेदकी आज्ञा उठाना चाहे तो ज्ञाननिष्ठामें हानि आपड़ती है. ज्ञानीके भेदकी प्रतीति नहीं होती और जो पहले होती है वहभी ज्ञानसे नष्ट हो जाती है. यद्यपि देह पड़ने पर्यंत किसी २ समय आहारादिकमें भेदप्रतीति देखनेमें आती है तथापि वह अवास्तविक रूपसे जानीहुई होती है तासों देह पड़े पीछे उसको विदेहमुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार विरक्त और परोक्ष ज्ञानवाले पुरुषोंके वास्ते संन्यास और संन्यासके धर्म मैंने कहे. अब इकले वैराग्यवाले और ज्ञानप्राप्तिकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये धर्म कहता हूं. जिस पुरुषके परिणाममें दुःख देनेवाले विषयोंमें वैराग्य उत्पन्न हो जाय और मेरी प्राप्तिका साधन जाननेमें न आया होवे उसे

कर, उनका स्मरणभी नहीं करना. स्मरण करनेसे वैराग्यमें प्रतिबंध पड़ता है ॥ २७ ॥ अब परमहंसके धर्म कहता हूं. वैराग्य पानेसे मोक्षकी इच्छा रखनेवाला परिपूर्ण ज्ञानवाला वा मोक्षकीभी इच्छा नहीं रखकर, मेरी भक्तिमें दृढ लगाहुआ मेरा भक्त दंडादिककी आवश्यकतावाले आश्रमोंके धर्मोंकी आसक्तिको छोड़कर, जितने बन पड़ें उतने आश्रमसंबंधी धर्मोंका पालन करे. अर्थात् शास्त्रके वचनोंका अत्यंतदासभाव न रखकर, विचरता रहे ॥ २८ ॥ विवेकी होनेपरभी बालककी नांई मान वा अपमानका विवेक न रखकर, क्रीड़ा करता रहे. विचक्षण होनेपरभी जड़की भांति फलका अनुसंधान न रखकर, विचरे. पंडित होनेपरभी उन्मत्तकी नांई लोकोंको प्रसन्न रखनेकी अपेक्षा न रखताहुआ बोले. और वेदके अर्थमें निष्ठा रखनेवाला होनेपरभी लोकों-

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽवाऽमद्भक्तोवानपेक्षकः ॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ॥ वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतो न स्यान्न पाखंडी न हैतुकः ॥ शुष्कवादविवादेन कंचित्पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥ नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं चोद्वेजयेन्न तु ॥ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित् ॥ ३१ ॥ एकएव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ॥ यथेंदुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥

का संग न हो जाय इसलिये बैलकी भांति नियमरहित स्थितिमें रहे ॥ २९ ॥ वेदसंबंधी अनेक वादविवादमें निष्ठा नहीं राखै. पाखंडी नहीं होवे. वेदविरुद्ध केवल तर्कमें निष्ठा नहीं राखै. और प्रयोजनरहित बातके विवादमें कोईभी पक्ष नहीं पकड़े ॥ ३० ॥ किसी मनुष्यसे उद्वेग नहीं राखै. धैर्य रखकर, किसीको उद्वेग नहीं देवे. दुर्वचनको सहन करै. किसीकी अवज्ञा (अनादर) नहीं करै और पशुकी भांति इस देहके उद्देशसे किसीके साथ वैर नहीं करै ॥ ३१ ॥ जलके भिन्न भिन्न पात्रोंमें जैसे चंद्रमा एक रहता है ऐसे अपनेमें और सर्व प्राणीमात्रमें एकही परमात्मा रहते हैं. तासों आत्मदृष्टिसे जैसे वैर रखनेका कारण बिलकुल है नहीं ऐसे देहदृष्टिसेभी वैर रखनेका कारण नहीं है; क्योंकि सर्व देहमात्रभी कारण स्वरूपसे एकही है ॥ ३२ ॥

संतोष, धैर्य और समदृष्टि रखकर, इस पृथ्वीमें अकेला विचरना ॥ २० ॥ निर्जन और निर्भय स्थानमें बैठकर, मेरी भावनासे अंतःकरणको शुद्ध करके, संन्यासी मेरे साथ अभेद बुद्धिसे केवल आत्माका चिंतवन करे ॥ २१ ॥ ज्ञानमें निष्ठा रखकर, अपने बंध और मोक्षका विचार करे कि– 'इंद्रियोंका विक्षेप यही तो बंध और इंद्रियोंका निग्रह यही मोक्ष है' ॥ २२ ॥ इसलिये छः इंद्रियोंको नियममें रखकर, संन्यासी मेरी भावना करताहुआ विचरे. क्षुद्र विषयोंमें वैराग्य रखनेसे मनमें महासुखकी प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥ भिक्षाके वास्तेही नगर, गांव, व्रज और संघोंमें जाना. सर्वदा पवित्र देश, नदियां, पर्वत,

विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ॥ आत्मानं चिंतयेदेकमभेदेन मया मुनिः ॥ २१ ॥ अन्वीक्षेताऽऽत्मनो बंधं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ॥ बंध इंद्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्ग मद्भावेन चरेन्मुनिः ॥ विरक्तः क्षुद्रकामेभ्यो लब्ध्वाऽऽत्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥ पुरग्रामव्रजान्सार्थान्भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ॥ पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ॥ संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलांधसा ॥ २५ ॥ नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति ॥ असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ॥ सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥ २७ ॥

वन व आश्रमोंवाली पृथ्वीमें अकेले विचरना ॥ २४ ॥ प्रतिदिवस वानप्रस्थोंके आश्रमोंमेंसे भिक्षा लायी जाय तो अति-उत्तम है. कारण यह कि– वानप्रस्थोंका अन्न कि– जो शिलवृत्तिसे उपार्जन किया जाता है वह खानेसे अंतःकरण शुद्ध हो जाता है. और मोहकी निवृत्ति होनेसे मोक्षभी मिल जाता है ॥ २५ ॥ मिष्टान्नादिक वस्तु जो देखनेमें आवे उसे वास्तविक नहीं समझना. क्योंकि–वह सब विनाशको प्राप्त होती है. इसलिये इस लोककी और परलोककी आसक्ति छोड़कर, उन लोकोंके वास्ते जो काम किये जाते हैं उनसे निवृत्त रहना ॥ २६ ॥ यह ममताका आस्पद जगत् अहंकारका आस्पद, शरीर और उनसे होनेवाले सुख ये सब भगवानकी मायामात्र हैं. ऐसे विचारसे उनका त्याग करके, केवल आत्मामें निष्ठा रख-

आदिमें आकर, उस रूपसे विघ्न करते हैं. तासों उस समयमें स्त्री—आदिके प्रियवचनोंका आदर न करते संन्यास धारण करना ॥ १४ ॥ संन्यासीके कौपीनके सिवाय दूसरा वस्त्र रखनेकी इच्छा होवे तौ जिससे कौपीन ढक जाय केवल उतना मात्र दूसरा वस्त्र राखै. दंड और पात्रके सिवाय दूसरी कोईभी वस्तु जिसका प्रेषोच्चारसे पहलेही त्याग हुआ है उसको आपत्कालके विना नहीं राखै ॥ १५ ॥ पृथ्वीको नेत्रसे देखकर, पाँव धरै. जल वस्त्रसे छानकर, पीवे. सत्यसे पवित्र वचन बोले. विचार करनेसे जो मनमें शुद्ध दीखे वह करै ॥ १६ ॥ हे उद्धव ! मौन रखना यह वाणीका दंड है. सकाम कर्म नहीं करना यह देहका दंड है. प्राणायाम करना यह मनका दंड है. ये तीन दंड जिसके होवें वही दंडी संन्यासी कहलाता है. परंतु इन तीनों दंडोंको न रख-

बिभृयाचेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दंडपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥ १५ ॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतंसमाचरेत् ॥ १६ ॥ मौनानीहा-निलायामा दंडा वाग्देहचेतसाम् ॥ न ह्येते यस्य संत्यंग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥ १७ ॥ भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् ॥ सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥ १८ ॥ बहिर्जलाशयं गत्वा त-त्रोपस्पृश्य वाग्यतः ॥ विभज्य पावितं शेषं भुंजीताशेषमाहृतम् ॥ १९ ॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेंद्रियः ॥ आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ॥ २० ॥

कर, केवल बांसकी लकड़ियां रखनेसे दंडी संन्यासी नहीं कहलाता ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंमेंही प्रतिग्रह, (दान) याजन, (यज्ञ कराना) अध्यापन (पढ़ाना) और शिलरूप (खेतमें पड़े दानोंको बीनलाना) चार प्रकारकी वृत्तिके भेदसे जो चार वर्ण गि-ननेमें आये हैं उनकी भिक्षा लेनी. और उनमेंभी उत्तम उत्तमकी नहीं मिले तौ फिर अभिशाप पायेहुए और पतितादिकोंको त्याग कर, दूसरोंकी लेनी. प्रथमसे नहीं विचारेहुए सात घरोंमेंसेही भिक्षा लेनेके वास्ते जाना. और उनमें जितना मिले उतने-हीसे संतोष रखना ॥ १८ ॥ भिक्षा लाकर, गाँवसे बाहिर जलाशयपर जाकर, आचमन ले तथा अन्नको प्रोक्षणादिकसे शुद्ध कर, जितना लाया हो उतना सब मौन रखकर, खालेना यानी भोजनसे बच जाय इतना नहीं लाना उतनेमेंभी यदि कोईभी आकर, मांगे तौ उसे कछुक दिये पीछे जो अवशेष रहे वह खाना ॥ १९ ॥ निस्संगत्व, जितेंद्रियपन, आत्मामेंही क्रीड़ा, आत्मामेंही

दर्श, पूर्णमास और चातुर्मास यज्ञ गृहस्थाश्रमकी नाईं करे. ऐसे वेदवादियोंने निर्णय किया है ॥ ८ ॥ इस प्रकार जीवनपर्यंत तप करनेसे जिसका मास सूख जानेसे सारे शरीरमें नसें दीखने लग जायं वह वानप्रस्थ पुरुष मैं कि- जो तपोमय हूं उसका आराधन करनेसे महर्लोक-आदिको पाकर, अनुक्रमसे मुझको प्राप्त होता है. अंतःकरण शुद्ध होकर, यथार्थ भक्ति उत्पन्न हो जाय तौ महर्लोकमें जाना नहीं पड़ता. किंतु यहीं मुक्ति हो जाती है ॥ ९ ॥ कष्ट भोगकर, कियेहुए और परमकल्याणरूप मोक्षको देनेवाले इस तपका संसारके तुच्छ सुखके वास्ते जो उपयोग करे उससे बढ़कर, दूसरा संसारमें मूर्ख कौन है ? इस प्रकार जीवनपर्यंत रहनेसे मोक्ष हो जाता है ॥ १० ॥ परंतु आयुका तृतीय भाग पूर्ण हो जाय तब वैराग्य मंद होनेपरभी वा-

एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसंततः ॥ मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ॥ कामायाल्पीयसे युंज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥ यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन्समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥ यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यङ्न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ॥ अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥ विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ॥ विघ्नान्कुर्वंत्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥ १४ ॥

नप्रस्थाश्रमको त्याग कर, संन्यास लेनेका अधिकार है. जो आयुके तृतीय भागसे पहलेही जरा अवस्थासे देहमें कांपनी उठ जाय और वानप्रस्थके धर्म पालनेमें अशक्त हो जाय और अच्छे प्रकार वैराग्य पैदा न हुआ होवे, तो वह अग्नियोंका अपने आत्मामें आरोप कर, अर्थात् अग्निहोत्रको त्यागकर, मेरेमें मन लगाकर, अग्निमें प्रवेश करे ॥ ११ ॥ और कर्मके फलरूप तथा परिणाममें नरकके तुल्य दुःखरूप सर्व लोकोंमें पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हो जाय तौ अग्निहोत्रका त्याग कर, वानप्रस्थाश्रममेंसे संन्यास लेवे ॥ १२ ॥ संन्यास लेना हो तब शास्त्रमें कहा है उस प्रमाण आठ श्राद्ध कर तथा प्राजापत्य नामक इष्टि (यज्ञसे) मेरा यजन कर, अग्नियोंका अपने आत्मामें आरोप कर, सर्व तृष्णाका त्याग करके, लेवे ॥ १३ ॥ ब्राह्मण जब संन्यास लेनेको तय्यार होता है तब ' यह हमारे स्थानोंको उल्लंघ कर, परब्रह्मको प्राप्त होवेगा ' ऐसे असहनभावसे देवता स्त्री-

त्तर वर्ष पूर्ण होनेपर इंद्रियां क्षीण हो जातीं हैं तासों पीछे यदि वैराग्य मंद होवे तौभी संन्यास लेनेका अधिकार हो जाता है ॥ १ ॥ वानप्रस्थ वनमें उत्पन्न भयेहुए पवित्र कंद, मूल और फलोंसे अपना निर्वाह करै. वल्कल वस्त्र, तृण, पत्ते और मृगचर्म पहिरै ॥ २ ॥ केश, रोम, नख और दाढ़ी मूंछ इनको नहीं धोवे यानी मैलसे भरे रहने देवे. दांत स्वच्छ नहीं करै. तीनों समयमें जलमें घुसकर, मुसलवत् स्नान कर लेना परंतु मैल नहीं उतारै. पृथ्वीपर सोवे ॥ ३ ॥ उष्णकालमें पंचाग्निकी आतापना लेवे. वरसादमें खुली जगह बैठकर, सब वर्षा सहनकरने रूप 'अभ्रावकाश' नाम व्रत धारण करै और शीतकालमें कंठपर्यंत

कंदमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥ वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्दतः ॥ न धावेदप्सुमज्जेत त्रिकालं स्थंडिलेशयः ॥ ३ ॥ ग्रीष्मे तप्येत पंचाग्नीन्वर्षास्वासारषाड्जले॥ आकंठमग्नः शिशिर एवं वृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापि वा ॥ उलूखलाश्मकुट्टोवा दंतोलूखलएव वा ॥ ५ ॥ स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ॥ देशकालबलाभिज्ञो नाददीतान्यदाहृतम् ॥ ६ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालचोदितान् ॥ न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥ अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ॥ चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥

जलमें बूड़ा रहनेरूप 'उदकवास' नाम व्रत धारण करै ॥ ४ ॥ अग्निपक्व पदार्थ खावे अथवा कालसे पकाहुआ पदार्थ खावे. ऊखलमें कूटकर अथवा पत्थरसे कूटकर खावे. अथवा दांतको ऊखल बनाकर, यानी दांतसेही चबाकर, खावे ॥ ५ ॥ अपनी जीविकाका साधन सब अपनेआप वनमें जाकर, लावे. देश, काल और अपने बलकी योग्यता देखकर, नया अन्न-आदि मिल जाय तब पुराना पदार्थ त्याग देवे ॥ ६ ॥ वानप्रस्थआश्रमवाला पुरुष वनमें उत्पन्न भयेहुए धान्यादिक पदार्थोंसे उस २ समयमें कहेहुए चरु और पुरोडाशसे होम करै. परंतु वेदमें कहा है. वैसे पशुको मारकर, यजन नहीं करै ॥ ७ ॥ वानप्रस्थभी अग्निहोत्र,

१ अर्थात् सूर्यके साथ चारों दिशाओंमें अग्नियां रखके, अपनी देहको तपावे.

इस प्रकार विचार करनेसे उनसे मुक्त भयाहुआ, पुरुष अहंता-ममताको छोड़कर, घरमें पाहुनेके नाई रहता घरोंसे बंधनको प्राप्त नहीं होता ॥ ५३ ॥ इस प्रकार गृहस्थाश्रमसंबंधी कर्मोंसे मेरीही पूजा करताहुआ भक्तिमान पुरुष चाहे घरमेंही रहे, चाहे वनमें जाय अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम धारण करै. और प्रजा होवे तौ गृहस्थाश्रममेंसे संन्यास आश्रम धारण करै ॥ ५४ ॥ घरमें आसक्तिवाला, पुत्र व धनकी तृष्णासे आतुर, स्त्रीमें लंपट और दीनबुद्धि जो मूढ़ गृहस्थ होवे वह 'मैं और मेरा' ऐसे अध्यासकरके बँध जाता है ॥ ५५ ॥ अहो ! मेरे माता, पिता वृद्ध हैं ' स्त्रीके बालक बच्चे हैं. और विचारे बालक मेरे विना

इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् ॥ न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥ ५३ ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ॥ तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५४ ॥ यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ॥ स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥ ५५ ॥ अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः ॥ अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवंति दुःखिताः ॥ ५६ ॥ एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ॥ अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोऽधं विशते तमः ॥ ५७ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ॥ वन एव वसेच्छांतस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

अनाथ हैं. दीन और दुःखी ये लोक मेरे विना किस प्रकार जीवेंगे ? ॥ ५६ ॥ इस प्रकार घरकी वासनासे चारों ओरसे बद्धहृदय और विषयोंसे अतृप्त यह मूढ़बुद्धि गृहस्थ निरंतर उन्हींका ध्यान करनेसे मरे पीछे तामसी योनिमें जन्म पाता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एका० रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ अठारहवें अध्यायमें वानप्रस्थ तथा संन्यासीका धर्म और अधिकारके अनुसार उनकी विशेषताभी कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि- वानप्रस्थआश्रममें रहनेकी इच्छा होवे तो अपनी स्त्रीके पुत्रोंको भलामन दे अथवा स्त्रीको साथमें ले, अपनी आयुका तृतीयभाग यानी सौ १०० वर्षकी आयुके हिसाबसे पछत्तर वर्ष पूर्ण होवें तहांतक शांतपनसे वनमें रहै. पछ-

(शिकार) करके, आपना निर्वाह करना. अथवा विपत्में रहे तबलग ब्राह्मणकी वृत्ति कि–जो वेद पढ़ाने आदिकी है वह करनी परंतु दासभाव (नौकरी) तौ कदापि नहीं करना. कि– जो कुत्तेकी वृत्ति कही गयी है ॥ ४७ ॥ वैश्य जीविका विना दुःख पाता हो तौ उसको दासभाव यानी नौकरीरूप शूद्रकी वृत्तिसे अपनी आपदा काटनी चाहिये और शूद्र जीविका विना सीदायमान हो तौ तौ वह चटाई–आदि बनानेरूप जो प्रतिलोम जातिवालोंकी वृत्ति है उससे अपनी आपदासे पार उतरे. आपदा निवृत्त भये पीछे किसी वर्णकोभी आपत्कालसंबंधी पूर्वोक्त नीच कर्मसे अपनी जीविकाकी इच्छा नहीं राखनी ॥ ४८ ॥ गृहस्थको चाहिये कि– वेदाध्ययनरूप ब्रह्मयज्ञसे ऋषियोंका, स्वधाकारके पित्रीश्वरोंका, स्वाहाकारसे देवतानका, बलिदेनेसे भूतोंका और अन्नजलादि

शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियाम् ॥ कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४८ ॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ॥ देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥ ४९ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ॥ धनेनापीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥ ५० ॥ कुटुंबेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुंब्यपि ॥ विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५१ ॥ पुत्रदाराप्तबंधूनां संगमः पांथसंगमः ॥ अनुदेहं वियंत्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५२ ॥

देनेसे मनुष्योंका अपने वैभवके अनुसार प्रतिदिवस पूजन करे और उनमें ईश्वरदृष्टि राखे ॥ ४९ ॥ जो शक्ति होवे तौ उद्यमविना प्राप्त भयेहुए अथवा आपनी वृत्तिसे न्यायमार्गसे प्राप्त भयेहुए शुद्ध धनसे अपने पोष्यवर्गको किसी प्रकारसे पीड़ा न होवे ऐसी रीतिसे यज्ञ करे ॥ ५० ॥ गृहस्थी आप कुटुंबी होवे तथापि कुटुंबमें आसक्त नहीं होना. ईश्वरकी निष्ठा रखनेमें प्रमाद नहीं करना. चतुर मनुष्यको चाहिये कि–स्वर्गादिकके सुखकोभी इस लोकके सुखकी नांई नाशवान् जाने कि– जिससे इसलोककी और परलोककी कामनाओंमें आसक्ति न होवे. और तज्जनित प्रमादभी न होवे ॥ ५१ ॥ पुत्र, स्त्री, सुहृद् और बंधुनका समागम पांथ यानी मुसाफिर लोगोंके समागमके जैसा है; कारण यह कि–जैसे निद्रा जानेसे उसके पीछे स्वप्न चला जाता है ऐसे ये लोक देहके जानेपर सब चले जाते हैं ॥ ५२ ॥

किंतु जीवनपर्यंत कष्ट सह और तप करके, मरे पीछे परभवनमें अनंत सुख भोगनेके वास्ते है ॥ ४१ ॥ पूर्वोक्त रीतिसे शिल यानी खेतमेंसे दाने बीनकर, ले आना अथवा उंछ यानी दुकान-आदिमें बिखरे पड़ेहुए दाने बीनना. इन दो वृत्तियोंसेही संतोष मानने वाला, अतिथिकी पूजा करने-आदि बड़े और स्वच्छ धर्मको पालनेवाला और घर-आदिमें जो आसक्ति है उसे छोड़कर, मेरेमें मन लगानेवाला जो ब्राह्मण अथवा दूसराभी कोई मेरा भक्त है वह शांति यानी मोक्षको प्राप्त हो जाता है ॥ ४२ ॥ धन विना दुःख पातेहुए ब्राह्मणको अथवा मेरे पराथण मेरे भक्तको जो लोक दरिद्रमेंसे तिराते हैं उनको मैं तुर्त सर्व कष्टोंमेंसे पार उतार दूंगा, जैसे नौका समुद्रमेंसे मनुष्योंको पार उतार देती है ॥ ४३ ॥ राजाका तो यह आवश्यक धर्म है कि-पिता जैसे बच्चोंको

शिलोंछवृत्त्या परितुष्टचित्तो धर्मं महांतं विरजं जुषाणः ॥ मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शांतिम् ॥ ४२ ॥ समुद्धरंति ये विप्रं सीदंतं मत्परायणम् ॥ तानुद्धरिष्ये न चिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४३ ॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ॥ आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४४ ॥ एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ॥ विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिंद्रेण सह मोदते ॥ ४५ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ॥ खड्गेन वा पदाक्रांतो न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४६ ॥ वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि ॥ चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ ४७ ॥

कष्टमेंसे छुड़ाता है ऐसे सर्व प्रजाको कष्टमेंसे छुड़ाना चाहिये. और जैसे गजपति दूसरे हाथीयोंको कीचड़मेंसे निकालकर अपने आप कीचड़मेंसे निकलता है ऐसे राजाको चाहिये कि-प्रजाको विपत्तियोंमेंसे निकाल कर, आप धीरज रखकर, अपनेआप विपत्तियोंमेंसे बाहिर निकले ॥ ४४ ॥ इस प्रकार चलनेवाला राजा यहीं सकल पापमात्रसे मुक्त होकर, सूर्यके समान तेजस्वी विमानमें बैठकर, इंद्रके साथ आनंद करता है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण आजीविका विना सीदायमान हो तौ उसको वैश्यकी वृत्तिसे क्रयविक्रय यानी व्यौपार कर कर, अपनी आपदासे पार उतरना चाहिये. और अतिकठिन आपदा आपड़े तौ शस्त्र बांधने रूप क्षत्रियकी वृत्तिसे आपदासे पार होवे. परंतु दासभाव करनेकी वृत्ति (नौकरी) कि- जो कुत्तेकी वृत्ति कहलाती है वह कदापि नहीं करे ॥ ४६ ॥ क्षत्रिय वृत्ति विना सीदायमान हो तौ उसको वैश्यके व्यवहारसे विपत्तिसे पार उतरना चाहिये अतिकठिन आपदा आपड़े तो मृगया

आश्रममेंसे पूर्व आश्रममें नहीं जावे. यानी उलटा आश्रम धारण नहीं करे. जैसे ब्रह्मचर्यसे गृहस्थमें आना योग्य है परंतु वानप्रस्थ वा संन्याससे गृहस्थ करना उचित नहीं. ऐसे गृहस्थसे ब्रह्मचर्य धारण करनाभी अयोग्य है. तथा आश्रमविनाभी नहीं रहना ॥ ३७ ॥ गृहस्थाश्रम धारण करनेकी इच्छा होवे तो अपने समान वर्णवाली, कुल तथा लक्षणसे अनिंदित और अपनेसे अवस्थामें छोटी स्त्रीके साथ विवाह करना. कामके हेतु जो दूसरे वर्णकी कन्या व्याहनेकी इच्छा होवे तो अपने वर्णकी कन्याके साथ व्याह भये पीछे व्याहनी. उसमेंभी वर्णका क्रम रखना. यानी ब्राह्मणको ब्राह्मणकी कन्याके साथ विवाह किये पीछे, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्राके साथ विवाह करना उचित है. और क्षत्रियको क्षत्रियाके साथ विवाह भये पीछे–वैश्या और शूद्राके साथ तथा वैश्यको वैश्याके साथ विवाहे पीछे शूद्राके साथ विवाह करना उचित है. नीच वर्णके पुरुषके वास्ते

गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ॥ यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३८ ॥ इ- ज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ३९ ॥ प्र- तिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक् तयोः ॥ ४० ॥ ब्रा- ह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ॥ कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ॥ ४१ ॥

ऊंचे वर्णकी कन्याके साथ विवाहका निषेध है. तासों ब्राह्मणसे चारों वर्णकी कन्या और क्षत्रियसे क्षत्रिया-आदि तीन वर्णकी कन्या, वैश्यसे वैश्या-आदि दो वर्णकी कन्या और शूद्रसे केवल शूद्राही व्याही जा सक्ती हैं ॥ ३८ ॥ यजन, वेदाध्ययन और दान ये द्विजलोगोंके यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके आवश्यक धर्म हैं. वेद पढ़ाना, प्रतिग्रह (दान) लेना और यज्ञ कराना ये तीन ब्राह्मणकीही जीविका हैं ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रह (दान) लेनेसे तप, तेज, और यशका नाश होता है तासों दान लेना अनुकूल न लगे तो ब्राह्मणको यज्ञ कराने और वेद पढ़ानेहीसे अपना निर्वाह करना योग्य है. और यज्ञ कराने और वेद पढ़ानेमेंभी दीनता करना-आदि दोष देखनेमें आवे तो खेतमें क्षेत्रस्वामीके छोड़े हुए कण लाकर, अपनी जीविका करनी, यज्ञ कराना और पढ़ाना ये उत्तम वृत्ति है, परंतु इससेभी शिलवृत्ति यानी दाने बीन कर, ले आना. यह वृत्ति अतिउत्तम है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणको आजीविकाके संकोचका सहन करना चाहिये; क्योंकि–ब्राह्मणका यह देह संसारके तुच्छ सुख भोगनेके वास्ते नहीं है

कि-भेदबुद्धिको त्यागकर, अग्नि, गुरु, अपना शरीर और सर्व प्राणियोंमें मेरे ब्रह्मस्वरूपकी उपासना करै ॥ ३१ ॥ जो गृहस्थी न होवें उनको स्त्रियोंके दर्शन, स्पर्शन, भाषण और ठठ्ठा-हांसी-आदिका त्याग करना. और मिथुन भयेहुए यानी घरमें युगलरुपसे रहेहुए स्त्री-पुरुषोंका दूरसेही त्याग कर देना. अर्थात् उनको देखनाभी नहीं ॥ ३२ ॥ शौच, आचमन, स्नान, संध्योपासन, सरलता, तीर्थसेवन, जप, अस्पृश्यका त्याग, अभक्ष्यका त्याग, अयोग्य भाषणका त्याग, ॥ ३३ ॥ सर्व पदार्थोंमें मेरी भावना और हे उद्धव ! मनोनिग्रह, वाणीनिग्रह और कायनिग्रह ये सब आश्रमोंके साधारण धर्म हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करनेसे अग्निकी भांति प्रकाशताहुआ ब्राह्मण जो निष्काम होवे तौ अंतःकरणरुप लिंगशरीर तीव्रतपके

स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ॥ प्राणिनो मिथुनीभूता न गृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३२ ॥ शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् ॥ तीर्थसेवाजपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥ ३३ ॥ सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनंदन ॥ मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥ ३४ ॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिवज्वलन् ॥ मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥ ३५ ॥ अथानंतरमावेक्ष्यान्यथा जिज्ञासितागमः ॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वास्नायाद्गुर्वनुमोदितः ॥ ३६ ॥ गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥ ३७॥

प्रभावसे दग्ध हो जानेके कारण वह मेरा भक्त हो जाता है ॥ ३५ ॥ नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके वास्ते जिसका संकल्प नहीं है वह ब्रह्मचारी कि-जिसे दूसरे आश्रमोंमें जानेका निषेध नहीं है उसको चाहिये कि-वेदका अर्थ यथार्थरीतिसे ध्यानमें आजाय तब गुरुकी संमतिसे गुरुसे आज्ञा मांग, गुरुदक्षिणा देकर, आपभी अभ्यंग आदि-करके, समावर्तनका स्नान करै ॥ ३६ ॥ फिर विषय भोगनेकी इच्छा होवे तौ गृहस्थाश्रम करना. अंतःकरण शुद्ध होनेकी इच्छा होवे तौ वनमें जाना यानी वानप्रस्थाश्रम धारण करना. और आप ब्राह्मण होवे तथा अंतःकरण शुद्ध हो गया होवे तौ संन्यास लेना. जो मेरा भक्त होवे उसके तौ किसी प्रकार आश्रमकी आवश्यकता नहीं है. परंतु जो अभक्त होवे उसको चाहिये कि-एक आश्रममेंसे दूसरे आश्रममें जावे, परंतु पिछले

कदाचित् अपने आप स्खलित हो जावे तो जलमें नहाय, प्राणायाम कर, गायत्री मंत्रका जप करना ॥ २४ ॥ सावधान और पवित्र रहकर अग्नि, आचार्य, सूर्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और देवतानकी उपासना करनी. मौन रखकर, जप और संध्या करनी. प्रातःसंध्या और सायंसंध्याके वास्ते मौनकी आवश्यकता है. मध्याह्नसंध्याके वास्ते नहीं ॥ २५ ॥ आचार्यको मेरा स्वरूप जानना. अतएव कदापि उसकी अवज्ञा नहीं करनी. और गुणमें दोषका आरोप नहीं करना; क्योंकि गुरु सर्वदेवमय है ॥ २६ ॥ सायंकालमें अथवा प्रातःकालमें भिक्षा तथा औरभी दूसरा जो कुछ मिला हो वह लाकर, गुरुके निवेदन करना. गुरु आज्ञा देवे तो जितेंद्रियपनसे उस वस्तुका उपयोग करना ॥ २७ ॥ आचार्यकी सेवा करे तब सर्वदा उससे नीच मनुष्यकी नांई उसके समी-

अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुरान् शुचिः ॥ समाहितउपासीत संध्ये च यतवाग् जपन् ॥ २५ ॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ॥ न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २६ ॥ सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ॥ यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुंजीत संयतः ॥ २७ ॥ शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत् ॥ यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृतांजलिः ॥ २८ ॥ एवं वृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ॥ विद्यासमाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखंडितम् ॥ २९ ॥ यद्यसौ छंदसां लोकमारोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् ॥ गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३० ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ॥ अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३१ ॥

पमें बैठना. गुरु जाय तब पीछे २ जाना. सोवे तब सावधानीके साथ उसके निकटमें सोना. गुरु थक जाय तब पांव चापने आदि सेवा करनी. और बैठा हो तब हाथ जोड़कर, उसकी किसी आज्ञाकी राह देखता समीपमें बैठे रहना ॥ २८ ॥ इस प्रकार विद्या समाप्त होवे तबलग भोगको त्याग कर और अखंडित नियम रखकर, गुरुके घर रहना ॥ २९ ॥ जिस ब्रह्मचारीको गृहस्थाश्रम करना होवे उसके नियम कहे. अब नैष्ठिक ब्रह्मचारीके लक्षण कहते हैं. ब्रह्मचारीके महर्लोकमें जानेकी और तदनंतर ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छा होवे तो जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करके, अधिक पढ़नेके वास्ते अथवा पढ़ेहुएके निष्क्रयके वास्ते अपना देह गुरुके अर्पण कर देना ॥ ३० ॥ वेदाभ्याससे तेजस्वी भयेहुए पापरहित नैष्ठिक ब्रह्मचारीको चाहिये

आस्तिकपन यानी वेद-देवता-आदिमें श्रद्धा, दानमें निष्ठा, निष्कपटता, ब्राह्मणोंकी सेवा और धनकी वृद्धि होनेपरभी संतोष नहीं रखना, ये वैश्योंकी प्रकृतियां हैं ॥ १७ ॥ गो, ब्राह्मण, देवता इनकी निष्कपट रीतिसे सेवा करनी और उसमें जो मिले उसीसे संतुष्ट रहना ये शूद्रकी प्रकृतियां हैं ॥ १८ ॥ अपवित्रता, असत्यभाषण, चोरी, नास्तिकपन, शुष्क वैर, काम, क्रोध और तृष्णा यह चांडाल-आदि निकृष्ट जातिवालोंका स्वभाव है ॥ १९ ॥ अहिंसा, सत्यभाषण, चोरीका अभाव, काम, क्रोध, लोभका त्याग, सर्व प्राणीमात्रका हित व प्रिय करनेकी चेष्टा यह वर्णोंका साधारण धर्म है ॥ २० ॥ अब चार आश्रमोंमें प्रथम ब्रह्म-

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदंभो ब्रह्मसेवनम् ॥ अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ॥ तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥ अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ॥ कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽतेवसायिनाम् ॥ १९ ॥ अहिंसासत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ॥ भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २० ॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ॥ वसन् गुरुकुले दांतो ब्रह्माधीयीत चाहुतः ॥ २१ ॥ मेखलाजिनदंडाक्षब्रह्मसूत्रकमंडलून् ॥ जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान् दधत् ॥ २२ ॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारेच वाग्यतः ॥ न च्छिंद्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥ २३ ॥ रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ॥ अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥ २४ ॥

चारीके धर्म कहता हूं. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन वर्णोंमें जन्मेहुए पुरुषको गर्भाधान-आदि संस्कारोंके क्रमसे उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार कि-जो मनुष्यका दूसरा जन्मरूप है वह हुए पीछे जितेंद्रियपनसे गुरुके घरमें रहना चाहिये. और गुरु बुलाये तब वेद पढ़ना और उसके अर्थका विचार करना ॥ २१ ॥ मेखला, मृगचर्म, दंड, जप करनेकी माला, यज्ञोपवीत और कमंडलु ये रखना, तैल-आदि नहीं लगानेसे केशोंकी जटा बना देना, दांत और वस्त्रोंको स्वच्छ नहीं रखना, आसनको नहीं रँगना, दर्भ धारण करना ॥ २२ ॥ स्नान भोजन, होम, जप व मलमूत्रके त्यागसमयमें मौन रखना, नखोंको नहीं काटना तथा कांख और उपस्थके रोमभी नहीं काटने ॥ २३ ॥ गृहस्थविना दूसरे आश्रमवालेको कदापि वीर्य स्खलित नहीं करना.

पहले सत्ययुगमें मनुष्योंका केवल एक हंसनाम वर्ण था. और प्रजा जन्मसेही कृतकृत्य होतीं थीं. तासों इस युगका नाम 'कृतयुग' कहते हैं ॥ ९ ॥ पहले वेद एक ॐकाररूपही था. वृषका रूप धारण करनेवाला अर्थात् चारों चरणोंवाला मेरा ध्यानरूप एक धर्म था. अतएव तपकी निष्ठावाले निष्पापलोक शुद्धस्वरूप मेरी उपासना करते थे ॥ १० ॥ हे महाभाग ! फिर त्रेतायुगके प्रारंभमें ईश्वर स्वरूप मेरे हृदयमेंसे श्वासरूपकरी वेदत्रयीरूप विद्या प्रगट हुई. और उस विद्यामेंसे जिसमें होता, उद्गाता और अध्वर्युका काम पड़ता है ऐसा मेरा स्वरूपभूत यज्ञ उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ विराट्पुरुषरूप मेरे मुख, बाहु,

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ॥ कृतकृत्या प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥ ९ ॥
वेदः प्रणवएवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ॥ उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥ १० ॥ त्रेता-
मुखे महाभाग प्राणान्मेहृदयात्त्रयी ॥ विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मुखः ॥ ११ ॥ विप्रक्षत्रि-
यविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ॥ वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १२ ॥ गृहाश्रमो जघ-
नतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ॥ वक्षःस्थानाद्वनेवासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १३ ॥ वर्णानामाश्र-
माणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ॥ आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥ १४ ॥ शमो दम-
स्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ॥ मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १५ ॥ तेजो बलं
धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ॥ स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥

जंघा और पांवसे अनुक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उत्पन्न हुए कि-जो अपने २ आचारसे परस्पर भिन्न २ जाननेमें आते हैं ॥ १२ ॥ विराट् पुरुषरूप मेरे जघनसे गृहस्थाश्रम, हृदयसे ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थ और मस्तकमेंसे संन्यास आश्रम प्रगट हुआ ॥ १३ ॥ मनुष्योंके ये वर्ण और आश्रमोंके स्वभाव अपनी २ जन्मभूमिके अनुसार होते हैं, अर्थात् मेरे उत्तम अंगमेंसे उत्पन्न भयेहुएका उत्तम और मेरे उससे निकृष्ट अंगमेंसे प्रगट भयेहुएका निकृष्ट स्वभाव हुआ ॥ १४ ॥ शम, दम, तप, शौच, संतोष, क्षांति, सरलता, मेरी भक्ति, दया और सत्य ये ब्राह्मणकी प्रकृतियां हैं ॥ १५ ॥ प्रताप, बल, धीरज, शूरवीरता, सहनशीलता, उदारता, उद्यम, स्थिरता, ब्राह्मणभक्ति और ऐश्वर्य ये क्षत्रियोंकी प्रकृतियां हैं ॥ १६ ॥

धन है,' परंतु ऐसे कर्म करनेवालोंको अवश्य भक्ति प्राप्त हो जाती है ऐसा नियम देखनेमें नहीं आता, तासों वर्ण व आश्रमके आचारवालोंका तथा उस आचारके अधिकारसे रहित सर्व मनुष्योंका स्वधर्म कहो कि-वह धर्म जिस प्रकार करनेसे मनुष्योंकी आपमें भक्ति उत्पन्न हो जावे. हे कमलनयन ! यह मैं सुनना चाहता हूं सो आपको अवश्य कहना चाहिये ॥ २ ॥ हे शत्रुद-मन ! हे महाबाहु ! प्रभु ! माधव ! यह धर्म संप्रदायसे जाना जाय ऐसे नहीं है; कारण यह कि-आपने हंसके रूपसे प्रथम ब्रह्माजीको जो उत्तम और सुखरूप धर्म कहा रहा वह धर्मका संप्रदाय यद्यपि पहले उपदेश कियाहुआ है तथापि अभी मध्य कालमें बहुत समय व्यतीत होनेके हेतु बहुत करके मनुष्यलोकमें नष्टसा हो गया है तासों पृथ्वीपर नहीं होगा ! ॥ ३ ॥ ४ ॥

पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ॥ यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥ स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ॥ न प्रायोभविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥ वक्ता कर्त्ताऽविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ॥ सभायामपि वैरिंच्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥ कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन ॥ त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥ तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ धर्म्य एष तव प्रश्नो नैश्रेयसकरो नृणाम् ॥ वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ८ ॥

हे अच्युत ! पृथ्वीमें धर्मका वक्ता, कर्ता और रक्षा करनेवाला आप विना दूसरा कोईभी नहीं है; इतनाही नहीं किंतु ब्रह्माकी सभा कि-जिसमें मूर्तिमान् वेद विराजते हैं उसमेंभी आप विना दूसरा कोईभी कहनेवाला करनेवाला वा रक्षक नहीं होगा ॥ ५ ॥ हे मधुसूदन ! आप कि- जो धर्मके कर्ता, वक्ता औ रक्षक हो, वे आप भूतलको त्याग कर, स्वधाम पधार जाओगे तब इस नष्ट भयेहुए स्वधर्मको दूसरा कौन कहेगा ? इसलिये हे सर्व धर्मके ज्ञाता प्रभु ! आपकी भक्तिका साधनरूप धर्म, मनुष्योंमें जिसको जिस प्रकारसे करना चाहिये वह हमें कहो ॥ ६ ॥ ७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि- हे उद्धव ! यह तुम्हारा प्रश्न धर्म-संयुत और वर्ण व आश्रमके आचारवाले मनुष्योंका परमकल्याण करनेवाला है. सो इसका उत्तर मैं देता हूं सो सुनो ॥ ८ ॥

ऐश्वर्य, लज्जा, दान, सौंदर्य, भाग्य, बल, सहनशक्ति और विज्ञान होवे वह वह पदार्थ मेरी विभूतिरूप है. ऐसे जानो ॥ ४० ॥ ये सब विभूतियां संक्षेपसे मैंने तुमसे कहीं, परंतु वे मेरेमें चित्त लग जानेके वास्तेही कल्पना करके कहीं हैं, तासों इनमें अति-अभिनिवेश[१] नहीं करना. ये सब विभूतियां मनके विकाररूपही हैं. आकाशका पुष्प वा शशका शृंगआदि पदार्थ जैसे केवल कथनमात्र हैं. किंतु सत्य नहीं ऐसे ये विभूतियांभी केवल कथनमात्र हैं. सत्य नहीं, क्योंकि परमसत्य तौ केवल एक ईश्वरही है ॥ ४१ ॥ तासों वाणी, मन प्राण और इंद्रियोंका निग्रह करो और बुद्धिका सत्वगुणसंपन्न बुद्धिसे निग्रह करो. ऐसे करोगे तौ

एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेणविभूतयः ॥ मनोविकारा एवैते यथा वाचाऽभिधीयते ॥ ४१ ॥ वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेंद्रियाणिच ॥ आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः ॥ तस्य व्रतं तपो दानं स्रवत्यामघटांबुवत् ॥ ४३ ॥ तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ॥ मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० महा० एकादशस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ उद्धव उवाच ॥ यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ॥ वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥ ययाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ॥ स्वधर्मेणारविंदाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

पीछे आवागमनमें नहीं आओगे ॥ ४२ ॥ जो संन्यासी बुद्धिसे भलीभांति वाणी व मनका निग्रह नहीं करे उसका व्रत, तप और ज्ञान कच्चे घड़ेमेंके जलकी नाईं चूकर, बह जाता है ॥ ४३ ॥ इस लिये मेरेमें तत्पर रहकर, मेरी भक्तिवाली बुद्धिसे मन, वचन और इंद्रियोंका निग्रह करो; क्योंकि ऐसे करनेसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ सत्रहवें अध्यायमें भक्तिके साधनरूप स्वधर्मविषयमें उद्धवजीने प्रश्न किया, तब श्रीकृष्णने हंसावतारके कहेहुए धर्मोंमेंसे ब्रह्मचारी और वानप्रस्थके धर्म कह कर, सुनाये. यह कथा होगी ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि—आप प्रथम कह चुके हो कि—' धर्मरूप कर्म भक्तिका तथा मोक्षका सा-

१ ये अवश्य करना चाहिये ऐसा आग्रह.

स्वरुप है. तेजस्वियोंमें अग्नि मेरा स्वरुप है. सूर्य, चंद्रमा और तारागणकी प्रभा मेरा स्वरुप है. आकाशका पर नाम सूक्ष्म शब्द मेरा स्वरुप है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणोंके भक्तोंमें बलिराजा मेरा स्वरुप है. वीरपुरुषोंमें अर्जुन मेरा स्वरुप है. पदार्थोंकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयरूप मैं हूं ॥ ३५ ॥ गति, भाषण, मलोत्सर्ग, ग्रहण, आनंद, स्पर्श, स्वाद, श्रवण, सूंघना और देखना इन दश इंद्रियोंके धर्मोंमें जो देखना है वह मैं हूं. सर्व इंद्रियोंकी उन उन विषयोंको ग्रहण करनेकी जो शक्ति है वह मेरा स्वरुप है ॥ ३६ ॥ पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेजकी तन्मात्रा, अहंकार, महत्तत्त्व, पंच महाभूत, पुरुष, प्रकृति, रजोगुण, तमोगुण और उनसे पर परब्रह्म यह सर्व मैंही हूं ॥ ३७ ॥ इन तत्त्वोंकी गणना, उनके लक्षणोंका ज्ञान और उनका नि-

ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ॥ भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानंदस्पर्शलक्षणम् ॥ आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेंद्रियेंद्रियम् ॥ ३६ ॥ पृथिवी वायुराकाशआपो ज्योतिरहं महान् ॥ विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ॥ ३७ ॥ मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिनाविना ॥ सर्वात्मनाऽपिसर्वेण न भावो विधते कचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ॥ न तथा मे विभूतीनां सृजतोंऽडानि कोटिशः ॥ ३९ ॥ तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ॥ वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र समेंऽशकः ॥ ४० ॥

श्चय मैंही हूं, मैं कि- जो जीव ईश्वररूप, गुण-गुणिरूप, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञरूप और सर्वका नियंता होने परभी सर्वरूप हूं तिसके विना किसी स्थलमें कोईभी पदार्थ नहीं है. सब मेराही स्वरुप है ॥ ३८ ॥ पूर्व जैसे निर्द्धारण व संबंधके साथ ज्यों विभूतियां कहीं त्यों क्यों नहीं कहते ? साधारण रीतिसे क्यों कहते हो ? तब कहते हैं कि-पृथिवी-आदि भूतोंके परमाणुओंकी गणना अतिबहुत कालसे मैं करसकता हूं और करके, कहभी सकता हूं. परंतु मेरे रचेहुए करोड़ों ब्रह्मांडोंकी गणना मुझसेभी की जाय वा कही जाय ऐसे नहीं है. और जब ऐसे है तब ब्रह्मांडोंमें रहीहुई विभूतियोंकी गणना तो किस प्रकार हो सके ? ॥ ३९ ॥ तथापि विशेष रीतिसे ध्यानमें आ जाय ऐसे प्रकारसे सर्वका संक्षेप करके, मैं कहता हूं कि- जिस जिसमें प्रभाव, संपत्ति, कीर्ति,

शाखमासरूप वसंतऋतु मेरा स्वरूप है. महीनोंमें मार्गशीर्ष मेरा स्वरूप है. नक्षत्रोंमें अभिजित्[1] मेरा स्वरूप हैं ॥ २७ ॥ युगोंमें सत्ययुग मेरा स्वरूप है. धीर पुरुषोंमें देवल और असितमुनि मेरा स्वरूप हैं. वेदका विभाग करनेवाले व्यासोंमें द्वैपायन नाम व्यास मेरा स्वरूप है. विद्वानोंमें ज्ञानी शुक्राचार्य मेरा स्वरूप है ॥ २८ ॥ उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियोंकी गति, अगति, विद्या व अविद्या इन छः पदार्थोंको जाननेवालोंमें वासुदेव मैं हूं. और भगवत्‌भक्तोंमें हे उद्धव ! तू मेरा स्वरूप है. किंपुरुषोंमें हनुमान् मेरा स्वरूप है. विद्याधरोंमें सुदर्शन मेरा स्वरूप है ॥ २९ ॥ रत्नोंमें पद्मराग (माणिक) म हूं. सुंदर पदार्थोंमें कमलकोश

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ॥ द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ॥ किंपुरुषाणां हनुमान्विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ ॥ २९ ॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ॥ कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविःष्वहम् ॥ ३० ॥ व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ॥ तितिक्षास्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्वताम् ॥ सात्त्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परा ॥ ३२ ॥ विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गंधर्वाप्सरसामहम् ॥ भूधराणामहं स्थैर्यं गंधमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥ अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः॥ प्रभासूर्येंदुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः॥ ३४॥

मेरा स्वरूप है. दर्भजातियोंमें कुश मेरा स्वरूप है. हविके पदार्थोंमें गौका घृत मेरा स्वरूप है ॥ ३० ॥ उद्योगी पुरुषोंकी धन-आदि संपत्ति मेरा स्वरूप है. द्यूत खेलनेवालोंका कपटद्यूत मेरा स्वरूप है. सहनशील पुरुषोंकी सहनशीलता मेरा स्वरूप हैं. धैर्यवालोंका धैर्य मेरा स्वरूप है ॥ ३१ ॥ बलवानोंकी देहशक्ति और इंद्रियशक्ति मेरा स्वरूप है. वैष्णवोंका भक्तिसे कियाहुवा कर्म मेरा स्वरूप है, भक्तोंके पूजनेके योग्य वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वराह, नृसिंह और ब्रह्मा, इन नव मूर्तियोंमें वासुदेव नाम उत्तम मूर्ति मैं हूं ॥३२ ॥ गंधर्वोंमें विश्वावसु मैं हूँ. अप्सरानमें पूर्वचित्ति मैं हूँ. पर्वतोंकी स्थिरता मेरा स्वरूप है. पृथ्वीकी अविकृत गंधतन्मात्रा मेरा स्वरूप है ॥ ३३ ॥ जलका मधुर रस मेरा

१ उत्तराषाढाका चौथा चरण और श्रवणका पहला.

निवासस्थानोंमें मेरु मेरा स्वरूप है. गहनों स्थलोमें हिमालय मेरा स्वरूप है. वनस्पतियोंमें पीपल मेरा स्वरूप है. औषधियोंमें यव मेरा स्वरूप हैं ॥ २१ ॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ मेरा स्वरूप है. वेदार्थनिष्ठोंसें बृहस्पति मेरा स्वरूप है. सर्व सेनापतियोंमें स्वामिकार्तिक मेरा स्वरूप है. सन्मार्ग प्रवृत्त करनेवालोंमें भगवान् ब्रह्मा मेरा स्वरूप है ॥ २२ ॥ यज्ञोंमें ब्रह्मयज्ञ मेरा स्वरूप हैं. व्रतोंमें अहिंसा मेरा स्वरूप है. शुद्ध करनेवाले मार्जन, छीलने और घसने आदिमें वायु, अग्नि, सूर्य, जल और ब्राह्मणोंका वचनरूप शुद्ध करनेवाला मैं हूं ॥ २३ ॥ अष्टांग योगमें समाधि मेरा स्वरूप है. विजयकी इच्छावालोंका जो विचार है वह मैं हूं विवेक आ-

धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ॥ वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः ॥ २१ ॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ॥ स्कंदोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ॥ वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥ योगानामात्मसंरोधो मंत्रोऽस्मि विजिगीषताम् ॥ आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां तु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ॥ नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥ धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ॥ गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाऽभिजित ॥ २७ ॥

दि निपुणतामें ब्रह्मविद्या मेरा स्वरूप है. अख्याति, अन्यथाख्याति, शून्याख्याति, असत्‌ख्याति और अनिर्वचनीयख्यातियोंमें विवाद करनेवालेका 'यह ऐसे है वा ऐसे है ?' इस प्रकारका जो अपार विकल्प है वह मैं हूं ॥ २४ ॥ स्त्रियोंमें शतरूपा मेरा स्वरूप है. पुरुषोंमें स्वायंभुव मनु मेरा स्वरूप है. मुनियोंमें नारायण मेरा स्वरूप है. ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मेरा स्वरूप है. ॥ २५ ॥ धर्मोंमें प्राणीमात्रको अभयदान मेरा स्वरूप है. अभयस्थानमें आत्मनिष्ठा मेरा स्वरूप है. अभिप्रायको गुप्त रखनेके साधनोंमें प्रियवचन और मौन मेरा स्वरूप है. स्त्रीपुरुषोंके जोड़ोंमें प्रजापति कि- जिनके देहके दो अर्ध भागोंसे जोड़ा उत्पन्न हुआ वह मैं हूँ ॥ २६ ॥ अनिमिष (अप्रमत्त रहनेवालोंमें) वर्षरूप जो काल है वह मेरा स्वरूप है. ऋतुओंमें चैत्र और वै-

१ चक्रवर्ती टीकाकारने इस शब्दका अर्थ काल लिखा है. और विजयध्वजी टीकामें कालावयव लिखा है.

मेरा स्वरूप है. अक्षरोंमें अकार मेरा स्वरूप है. छंदोंमें गायत्री छंद मेरा स्वरूप है ॥ १२ ॥ सब देवोमें इंद्र म हूं. वसुनाम आठ देवोंमें हव्यवाट् नाम वसु मैं हूं. बारह आदित्योंमें विष्णु नाम आदित्य मैं हूं. रुद्रोंमें नीललोहितनाम रुद्र मैं हूं ॥ १३ ॥ब्रह्मऋषियोंमें भृगु मैं हूँ. राजऋषियोमें मनु मै हूं देवऋषियोंमें नारद मैं हूँ. गौनमें कामधेनु मैं हूँ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वरोंमें कपिल देव मैं हूं. पक्षियोंमें गरुड़ मैं हूँ. प्रजापतियोंमें दक्ष मैं हूँ. पित्रीश्वरोंमें अर्यमा मैं हूँ॥ १५॥ हे उद्धव ! दैत्योंमें दैत्यपति प्रल्हादको मेरा स्वरूप जान. नक्षत्र और औषधियोंका स्वामी चंद्रमा मेरा स्वरूप है. यज्ञ और राक्षसोंका पति कुबेर मेरा स्वरूप है ॥ १६ ॥ गजराजोंमें ऐरावत

इंद्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ॥ आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ॥ देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ॥ प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितृणामहमर्यमा ॥ १५ ॥ मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्रादमसुरेश्वरम् ॥ सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥ ऐरावतं गजेंद्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ॥ तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७॥ उच्चैःश्रवास्तुरंगाणां धातूनामस्मि कांचनम् ॥ यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥ नागेंद्राणामनंतोऽहं मृगेंद्रः शृंगिदंष्ट्रिणाम् ॥ आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥ तीर्थानां स्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् ॥ आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥

मेरा स्वरूप है. जलजंतुओंका प्रभु वरुण मेरा स्वरूप है. प्रकाशनेवाले और तपानेवालोंमें सूर्य मेरा स्वरूप है. मनुष्योंमें राजा मेरा स्वरुप है ॥ १७ ॥ घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा (इंद्रका घोड़ा) मेरा स्वरूप है. धातुनमें सुवर्ण मेरा स्वरूप है. दंड देनेवालोंमें यमराज मेरा स्वरूप है. सर्पोंमें वासुकी सर्प मेरा स्वरूप है ॥ १८ ॥ नागराजोंमें अनंत (शेषजी) मेरा स्वरूप है. सींग व दाढ़ोंवालोंमें सिंह मेरा स्वरूप है. आश्रमोंमें चौथा यानी संन्यासआश्रम मेरा स्वरूप है. वर्णोंमें प्रथमवर्ण यानी ब्राह्मण मेरा स्वरूप है ॥ १९ ॥ तीर्थ और प्रवाहोंमें गंगा मेरा स्वरूप है. सर यानी स्थिर जलाशयोंमें समुद्र मेरा स्वरूप है. आयुधोंमें धनुष मेरा स्वरूप है. धनुषधारियोंमें त्रिपुरके नाश करनेवाले महादेव मेरा स्वरूप हैं॥ २० ॥

संयुक्त जो विभूतिया होवें वे सब मुझे कहो. तीर्थोंके स्थानरूप आपके चरणकमलको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि– हे प्रश्न जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! कुरुक्षेत्रमें शत्रुओंके साथ युद्धकी अभिलाष वाले अर्जुनने इसीप्रकार मुझसे प्रश्न किया था यह तुम्हारा प्रश्न नरके अवताररूप अर्जुनके प्रश्नके सदृश होनेसे अतिउत्तम है ॥ ६ ॥ राज्यके निमित्त अपने ज्ञातिवालोंका वध करना यह अतिनिंदनीक और अधर्मरूप है ऐसे जाननेसे उसकी बुद्धि 'मैं मारूंगा और ये लोक मरेंगे' ऐसे प्राकृत विचारसे करुणासे व्याप्त हो गयी उसीसे वह उत्तम पुरुष अर्जुन युद्ध करनेसे निवृत्त होकर, बैठ गया ॥ ७ ॥ उस समय उस पुरुषसिंह अर्जुनको रणभूमिमें युक्तिसे मैंने समझाया कि– 'कौन मारता है ? और कौन मरता है ? आत्मा नित्य है तासों न तो कोई किसीको

श्रीभगवानुवाच ॥ एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥ ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ॥ ततो निवृत्तो हंताऽहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७ ॥ स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ॥ अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ॥ अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥ अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ॥ गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥ गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ॥ सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥ हिरण्यगर्भो वेदानां मंत्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ॥ अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छंदसामहम् ॥ १२ ॥

मारता है और न कोई मरता है' उस उपदेशके प्रसंगमें उसनेभी ऐसेही मुझसे प्रश्न किया रहा जैसे अभी तुम करते हो और उससे जो मैंने कहा है वही मैं तुमसे कहता हूं सो सुनो ॥ ८ ॥ हे उद्धव ! इन सर्व पदार्थोंका आत्मा, मित्र और ईश्वर मैंही हूँ. सर्व पदार्थरूप और सर्वकी उत्पत्ति, स्थिति व संहारका कारणरूप मैंही हूँ ॥ ९ ॥ गतिवालोंकी जो गति है वह मैं हूँ. वश करनेवालोंमें काल मेरा स्वरूप है. तीन गुणोंकी समतारूप जो प्रकृति है वह मैं हूं. द्रव्यमें जो स्वाभाविक गुण है वह मैं हूं ॥ १० ॥ गुणवाले पदार्थोंमें क्रियाशक्ति प्रधान जो महत्तत्त्व है वह मैं हूं बडोंमें महत्तत्व मेरा स्वरूप हैं. सूक्ष्म पदार्थोंमें जीव मेरा स्वरूप हैं. दुर्जन पदार्थोंमें मन मेरा स्वरूप है ॥ ११ ॥ वेदोंके पढानेवाले ब्रह्माजी मेरा स्वरूप हैं. मंत्रोंमें 'अउम्' इन तीन वृत्तिवाला ओंकार

बाहिर और भीतर व्यापक हूं अतएव सर्वका प्रभु मैं हूं ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सोलहवें अध्यायमें ज्ञान, वीर्य और प्रभाव-आदिकी वृद्धिके हेतु जिनमें भगवान्का आविर्भाव है उन विभूतियोंका वर्णन किया जायगा. अजितेंद्रिय पुरुषोंसे चित्तको भीतर रोककर, ध्यानका होना अशक्य है. तासों उनके उस ध्यानकी योग्यता प्राप्त करनेके वास्ते विभूति-आदिका निरूपण करनेमें आवेगा ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि-आदि और अंतसे रहित, स्वतंत्र और सर्व पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके अधिष्ठानरूप अर्थात् सर्वके उपादानकारणरूप साक्षात् परब्रह्म आप हो ॥ १ ॥ हे भगवन्! कारण यह है कि-जिनका मन जीतनेमें न आया होवे उनके जान-

उद्धव उवाच ॥ त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यंतमपावृतम् ॥ सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ॥ उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥ येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः॥ उपासीनाः प्रपद्यंते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥ ३ ॥ गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावनः ॥ न त्वां पश्यंति भूतानि पश्यंतं मोहितानि ते ॥ ४ ॥ याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते ॥ ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदांघ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥

नेमें नहीं आतेहुए आपको वेदका अभिप्राय जाननेवाले पुरुष ऊंचे नीचे सर्व पदार्थोंमें यथार्थभावसे जानकर, ब्राह्मण लोग आपकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥ आप सर्वके कारणरूप हो तासों आप सर्वात्मक हो परंतु आपके कहेहुए पूर्वोक्त पंचभूतोंके दृष्टांतपरसे पूंछना पड़ता है कि-पंचभूत जैसे कितनेएक शरीरोंमें किसी किसी गुणके हेतु अधिक रहें हैं और कितनेएक शरीरोंमें सामान्यरूपसे रहें हैं ऐसे आप कौन २ पदार्थोंमें अधिक और कौन २ पदार्थोंमें सामान्यरूपसे रहे हो? बड़े बड़े महर्षि जिन जिन पदार्थोंमें भक्तिपूर्वक आपकी उपासना करनेसे मोक्षको प्राप्त होते हैं मुझको उन उन पदार्थोंके नाम कहो ॥ ३ ॥ हे भूतभावन! आप प्राणियोंमें अंतर्यामीरूपसे गूढ़ रहे हो तथा आपके मोहित कियेहुए प्राणी आप कि- जो सर्वके द्रष्टा हो उन्हें नहीं देखते, अतएव आपकी विभूतियोंके विषयमें पूछता हूं ॥ १४ ॥ हे महाविभूति! पृथ्वीमें, स्वर्गमें, पातालमें और दिशाओंमें आपकी विशेष शक्तिसे

अथवा अनेक धारणा करनेके प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं हैं; क्योंकि– इंद्रियां, प्राण और मनका दमन करके उनको जीत लेनेवाले मुनिको, वशिता सिद्धिके प्रकरणमें कहीहुई मेरी एक धारणा करनेहीसे कोईभी सिद्धि अतिदुर्लभ नहीं रहती ॥ ३२ ॥ यदपि ऐसे है तथापि सिद्धियोंकी अभिलाषा नहीं राखनी क्योंकि उत्तम योग साधनेवाला जितेंद्रिय, शांत और श्वास व अंतःकरणको जीतनेवाला योगी कि– जो तुर्त मुझको प्राप्त होनेका अधिकारी है उसके इन सिद्धियोंमें लग जानेसे कालक्षेप होता है इसी कारण ये सिद्धियां विघ्नरूप कहलाती हैं. तासों निष्काम रहकर, ईश्वरके उपाधिरहित चौथे स्वरूपकीही धारणा करनी. दूसरी सकाम धारणाओंको त्याग देना ॥ ३३ ॥ इस जगत्में जन्म, औषधि, तप व मंत्रोंसे जितनी सिद्धियां प्राप्त होती हैं वे सब सिद्धियां

जितेंद्रियस्य दांतस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ॥ मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अंतरायान्वदंत्येता युंजतो योगमुत्तमम् ॥ मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमंत्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ॥ योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्माऽऽतरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ॥ यथा भूतानि भूतेषु बहिरंतः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० महा० एकाद० भगवदुद्धवसंवादे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

पूर्वोक्त चतुर्थ स्वरूपकी धारणारूप योगसे प्राप्त हो जाती हैं परंतु उस योगसे जो सालोक्य–आदि सिद्धियां प्राप्त होती हैं वे दूसरे उपायोंसे नहीं मिल सक्तीं ॥ ३४ ॥ सर्व सिद्धियोंका प्रभु मैं हूं; कारण यह कि– उनकी उत्पत्ति और पालना मैंही करता हूं सिद्धियोंका प्रभु मैं हूं इतनाहीं नहीं किंतु मोक्ष, मोक्षका साधन ज्ञान, ज्ञानका साधनरूप धर्म और धर्मका उपदेश करनेवाले ब्रह्मा–आदि देव इन सबका प्रभु मैंही हूं इस लिये सिद्धियोंकी अपेक्षा नहीं रखकर, मुझको प्राप्त होना यही योगका मुख्य फल है. ऐसे जानो ॥ ३५ ॥ सर्व जीवोंका आत्मा मैं हूं; कारण यह कि–मैं सर्वका अंतर्यामी हूं और मैं भीतर रहता हूं तथापि परिच्छिन्न नहीं हूं तिसका कारण यह कि–बाहिर और भीतर दोनों ठौर मैंही हूं इसी कारण मेरे किसीसे आवरण नहीं होता. जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज शरीरोंमें जैसे पंचमहाभूत बाहिर और भीतर व्यापक हैं ऐसे मैं सर्व शरीरोंमें और पंचभूतोंमेंभी

देवसहक्रीडानुदर्शनरूप सिद्धिको प्राप्त होवे. देवलोकोंके क्रीडास्थानमें विहार करनेकी इच्छा होवे तौ पूर्वोक्त ध्यान करना; क्योंकि उसके करतेही सत्वगुणकी अंशरूप देवांगना विमान लेकर, निकट आ जातीं हैं. अर्थात् यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ २५ ॥ मैं कि- जो सत्यसंकल्पवाला हूं तिसमें मनकी धारणा करनेसे मेरा भक्त योगी जब जिस प्रकारका बुद्धिसे संकल्प करे तब उसी प्रकारका फल पानेरूप यथासंकल्प नाम सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ २६ ॥ मैं कि- जो सर्वका नियंता और स्वतंत्र हूं उसमें मनकी धारणासे मेरे स्वभावको प्राप्त होवे तौ वह पुरुष अप्रतिहताज्ञा सिद्धिको प्राप्त होवे. यानी मेरी आज्ञाका जैसे किसी स्थलमें भंग नहीं होता. ऐसे उसकी आज्ञाका भंगभी किसी स्थलमें नहीं होता ॥ २७ ॥ त्रिकालज्ञ ईश्वरमें मनको धारण

यथा संकल्पयेद्बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ॥ मयि सत्ये मनो युंजंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ॥ कुतश्चिन्नविहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥ मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ॥ तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ॥ मद्योगश्रांतचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥ मद्विभूतीरभिध्यायन् श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः ॥ ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥ उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः ॥ सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठंत्यशेषतः ॥ ३१ ॥

करे तौ मेरी भक्तिसे शुद्ध अंतःकरणवाले योगीको तीनों कालकी वास्तुओंको तथा अपने जन्म-मरणको जाननेरूप त्रिकालज्ञत्व सिद्धि प्राप्त होवे, परचित्ताद्यभिज्ञता सिद्धिभी इसी पूर्वोक्त धारणासे प्राप्त होती है ॥ २८ ॥ मैं कि- जो अग्नि और सूर्य आदिके उपघातसे रहित हूं उसमें मनकी धारणा करे तौ मुनिका योगमय भयाहुआ शरीर अग्नि, सूर्य, जल वा विषसे किसी प्रकारकी हानिको प्राप्त नहीं होता. यानी जलजंतुओंको जैसे जल उपघात नहीं करता, ऐसे योगीके शरीरको अग्नि-आदिभी उपघात करनेवाले नहीं होते. यह प्रतिष्टंभनाम सिद्धि कहलाती है ॥ २९ ॥ अद्वंद्वनाम सिद्धिभी इस पूर्वोक्त धारणासेही मिलती है. श्रीवत्स और शस्त्रोंसे सजेहुए मेरे अवतारोंका ध्वज, छत्र और चामरके साथ ध्यानकरे तो वह योगी अपराजयनाम सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ ३० ॥ इस प्रकार जुदी जुदी योगसंबंधी धारणाओंसे मेरे उपासक योगीको पूर्वोक्त सकल सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं ॥ ३१ ॥

आदित्यमें चक्षुको और चक्षुमें आदित्यको युक्त करके, उन दोनोंके संयोगमें मनसे मेरा ध्यान करनेवाला, सूक्ष्मदृष्टिवाला योगी जगत्‌को देखनेरूप दूरदर्शन नाम सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ २० ॥ मनको, देहको और इन दोनोंका अनुसरण करनेवाले वायुको, मेरे स्वरूपमें अच्छे प्रकार जोड़कर, मेरी धारणा की जाय तौ उस धारणाके प्रभावसे मनोजवसिद्धिको प्राप्त होवे यानी जहां मन जाय वहां पहुँचे ॥ २१ ॥ मैं कि- जो अंचित्यशक्ति और अनेक प्रकारके आकारवाला हूं उसमें मनकी धारणा की जाय तौ उस धारणाके प्रभावके आश्रयसे वह योगी जब जब मनको उपादानकारणरूप बनाकर, जिस जिस देवादि-रूपको प्राप्त होना चाहे, तब तब वह मनवांछित आकार पानेरूप कामरूप सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ २२ ॥ पराई कायामें प्रवेश

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ॥ मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ॥ मद्धारणाऽनुभावेन तत्राऽऽत्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ॥ तत्तद्भवेन्मनो रूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥ परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ॥ पिंडं हित्वा विशेत्प्राणौ वायुभूतः षडंघ्रिवत् ॥ २३ ॥ पार्ष्ण्याऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकंठमूर्धसु ॥ आरोप्य ब्रह्मरंध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥ विहरिष्यन् सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ॥ विमानेनोपतिष्ठंति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥

करना होवे तब योगी उस कायमें अपने आत्माका चिंतवन कर, अपने स्थूल देहको छोड़कर, लिंगशरीररूप उपाधिको साथ लेकर, भ्रमर जैसे एकफूलमेंसे दूसरे फूलमें विनापरिश्रम पैठ जाता है ऐसे वायुरूप मार्गसे वह पराई कायामें अनायाससे प्रवेश करसकनेरूप परकाय-प्रवेशन नाम सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ २३ ॥ पार्ष्णि (पांवका पिछला भाग यानी एंड़ी) से गुदाको दबाकर, प्राणरूप उपाधिवाले आत्माको अनुक्रमसे हृदय, वक्षःस्थल, कंठ और मस्तकमें चढ़ाकर, ब्रह्मरंध्ररूप द्वारसे मनद्वारा पराईकायामें ले जाकर, अपने स्थूलदेहका त्याग करे तब परकाय-प्रवेशन होता है. स्वच्छंदमृत्यु नामक सिद्धिभी पूर्वोक्त धारणाके प्रभावसेही प्राप्त होती है तिसमें प्राणरूप उपाधिवाले आत्माको अनुक्रमसे हृदय, वृक्षःस्थल, कंठ और शिरमें चढ़ाकर, ब्रह्मरंध्ररूप द्वारसे मनद्वारा ब्रह्ममें ले जाकर, अपने स्थूलदेहका त्याग करना ॥ २४ ॥ मेरी मूर्तिरूप शुद्धसत्त्वगुणका ध्यान करे तौ

स्वरूपमें सर्व प्रकारसे मनकी धारणा करनेवाला पुरुष सर्व इंद्रियोंकी अधिष्ठातृत्वरूप प्राप्ति सिद्धिको प्राप्त होवे. मेरेमें मन रखनेके प्रभावसेही यह सिद्धि प्राप्त होती है. तासों इसमें कारणकी अत्यंत एकता होनेकी कोई आवश्यकता नहीं ॥ १३ ॥ क्रियाशक्तिवाले महत्तत्त्वका आकार देकर, मनको उस उपाधिवाले मेरे स्वरूपमें धारण करे. वह पुरुष मैं कि– जो उस महत्तत्त्वरूप उपाधिवाला हूँ उसकी, सर्वोत्तम प्राकाश्य सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १४ ॥ जो पुरुष तीन गुणवाली मायाके नियंता अंतर्यामी विष्णुमें मनकी धारणा करे वह पुरुष, जीवोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेरूप ईशितासिद्धिको प्राप्त होवे. ईश्वरमें मायाकी प्रेरणा करनेरूप ईशितासिद्धि कि–जिससे जगत्की सृष्टि–आदि क्रिया हो सकती हैं वह तौ मेरे मेंही रहती है ॥ १५ ॥ विराट्, हिर-

महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ॥ प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विंदते व्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥ विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ॥ स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ॥ मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन्विशदं मनः ॥ परमानंदमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ॥ धारयन् श्वेततां याति षडूर्मिरहितो नरः ॥ १८ ॥ मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ॥ तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः श‍ृणोत्यसौ ॥ १९ ॥

ण्यगर्भ और कारणरूप उपाधियोंसे रहित ईश्वरका चौथा नारायणरूप कि–जिसमें सर्व प्रकारका ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्यनामक छः भग रहेहुए हैं उसमें मनकी धारणा करनेवाले और मेरे धर्मको पालनेवाले योगीको वशितासिद्धि मिले ॥ १६ ॥ मैं कि–जो निर्गुण ब्रह्म हूं तिसमें अपने स्वच्छ मनकी धारणा करनेवाला योगी परमानंदरूप प्राकाम्यसिद्धि कि– जो सुखकी सीमारूप है उसको प्राप्त होवे ॥ १७ ॥ मैं कि– जो श्वेतद्वीपका पति, सत्वगुणमय और धर्ममय हूं उसमें मनकी धारणा करनेवाला योगी शुद्धरूप होकर, अनूर्मिमत्वसिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १८ ॥ समष्टि प्राणरूप मेरे स्वरूपमें मनसे नादका चिंतवन करनेवाला जीव आकाशमें ज्ञाता होकर, प्राणियोंकी विचित्र वाणियोंको सुननेरूप दूरश्रवण नाम सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १९ ॥

रानके साथ जो क्रीड़ा करते हैं उन क्रीड़ाओंकी प्राप्ति) यथा संकल्पसंसिद्धि (संकल्पके अनुसार प्राप्ति) और अप्रतिहताज्ञा (किसी स्थलमें आज्ञाका भंग न होना.) ये दश सत्त्वगुणकी वृद्धिसे मिलनेवाली सिद्धियां हैं ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्व (तीनोंकालका ज्ञान होना) अद्वंद्व (शीत और उष्णादिकसे पराभव नहीं पाना) परचित्ताद्यभिज्ञता (पराये चित्त आदिको जानना) प्रतिष्टंभ (अग्नि, सूर्य, जल वा विष आदिसे शरीरको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचना) और अपराजय (किसी स्थलमें न हारना) ये पांच क्षुद्र सिद्धियां हैं ॥ ८ ॥ योगधारणासे होनेवाली सिद्धियोंमेंसे ये मुख्य २ सिद्धियां मैंने तुमसे नाममात्रसे कहीं. अब जिन २ धारणासे जो २ सिद्धि जिस २ प्रकारकी प्राप्त होती है वह मैं कहता हूं सो सुनो ॥ ९ ॥ मनको भूतसूक्ष्म

स्वच्छंदमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ॥ यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहता गतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वंद्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ॥ अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टंभोऽपराजयः ॥ ८ ॥ एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ॥ यया धारणया यास्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥ भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ॥ अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥ महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनोदधत् ॥ महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रंजयन् ॥ कालसूक्ष्म्यार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ॥ सर्वेंद्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥

यानी पंचमहाभूतोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधरूप सूक्ष्म तन्मात्राके आकार बनाकर, उस मनको इस भूतसूक्ष्मरूप उपाधिवाले मेरे स्वरूपमें जो पुरुष धारण करे वह, सूक्ष्मरूपका उपासक मेरी अणिमासिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १० ॥ मनको ज्ञानशक्तिवाले महत्तत्त्वका आकार देकर, उस महत्तत्त्वरूप उपाधिवाले मेरे परस्वरूपमें मनको जो पुरुष धारण करे वह पुरुष महिमासिद्धिको प्राप्त होवे. आकाशादि भूतरूप उपाधिवाले मेरे स्वरूपमें मनकी धारणा करनेवाला पुरुषभी उस उस भूतकी महत्तारूप महिमासिद्धिको प्राप्त होवे ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतोंके परमाणुरूप उपाधिवाले मेरे स्वरूपमें मनकी धारणा करनेवाला योगी परमाणुके समान होनेकर लघिमासिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १२ ॥ सात्विक अहंकाररूप उपाधिवाले मेरे

धारणासे कौन कौन और कैसे प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है और सिद्धियां कितनी हैं ? वह कहो. योगियोंको सिद्धियोंके देनेवाले आपही हो. तासों आपके विना दूसरा इस विषयको यथार्थरीतिसे जाननेवाला नहीं होना चाहिये ॥ २ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–योगके पारगामी पुरुषोंने सिद्धियां और धारणा अठारह २ कहीं हैं. अठारह सिद्धियोंमें आठ सिद्धियां तौ मुख्यत्वसे यानी पूर्ण रीतिसे मुझमेंही रहीं हैं. और मेरी सारूप्य मुक्तिको पायेहुए दूसरे पुरुषोंमेंभी रही हैं परंतु कछुक न्यून अंशसे रही हैं, अवशेष रहीहुई दश सिद्धियां तौ सत्वगुणकी वृद्धिसे प्राप्त होनेवाली हैं तासों दूसरे योगियोंकोभी प्राप्त हो जाती हैं ॥ ३ ॥ अणिमा (बड़े शरीरमेंसे अणु यानी अत्यंत छोटा शरीर कर लेना) महिमा (अति छोटे शरीरमेंसे बड़ा शरीर कर लेना)

उद्धव उवाच ॥ कया धारणया कास्वित्कथंस्वित्सिद्धिरच्युत ॥ कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ॥ तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैवगुणहेतवः ॥ ३ ॥ अणिमामहिमामूर्तेर्लघिमाप्राप्तिरिंद्रियैः ॥ प्राकाश्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥ गुणेष्वसंगोवशिता यत्कामस्तदवस्यति ॥ एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् ॥ मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥

लघिमा (भारी शरीरसे हलका कर लेना) प्राप्ति (सर्वप्राणियोंकी इंद्रियोंके साथ उन उन इंद्रियोंका देवरूपसे संबंध) प्राकाश्य (परलोकके तथा इस लोकके सकल विषयोंमें भोग देखनेका सामर्थ्य) ईशिता (ईश्वरमें मायाकी और दूसरोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेका सामर्थ्य) ॥ ४ ॥ वशिता (विषयोंका भोगमें असंग) और प्राकाम्य (जिस जिस सुखकी प्राप्तिकी इच्छा होवे उस उस सुखकी पराकाष्ठाको पहुँचना) हे उद्धव ! ये आठ सिद्धियां मेरेमें स्वाभाविक और निरतिशय हैं ॥ ५ ॥ सत्वगुणकी वृद्धिसे मिलनेवाली दश सिद्धियोंके नाम कहता हूं. अनूर्मिमत्व (इस शरीरमें क्षुधा, पिपासादिकका न होना) दूरश्रवण (दूरसे सुनना) दूरदर्शन (दूरसे देखना) मनोजव (मन जाय वहां शरीरका पहुँचना) कामरूप (मनवांछितरूपकी प्राप्ति) परकायप्रवेशन (दूसरेके शरीरमें पैठना) स्वच्छंद मृत्यु (अपनी इच्छाके साथ मरण) देवानांसहक्रीडानुदर्शनम् (देवता अप्स-

सहायतासे मेरे सर्वअंगयुक्त स्वरूपमें अच्छीतरह लगावे ॥ ४२ ॥ अब यद्रूप स्वरूपका ध्यान करना उस विषयमें कहता हूं. सर्व अंगोंमें व्याप्त भयेहुए उस चित्तको, खैंचकर फिर एक अंगमें लगाना. और दूसरे अंगोंका ध्यान छोड़ते जाना, उसमेंभी सबसे पीछे सुंदर मंदहास्ययुक्त मुखमें बहुत देरतक चित्तको लगाये रहना ॥ ४३ ॥ चित्त मेरे मुखमें अच्छी तरह स्थिर हो जाय तब उसको मुखमेंसे खैंचकर, मेरा सर्व कारणरूप स्वरूप कि–जिसका पहले वर्णन करचुके हैं उसमें लगा देना, फिर इस कारणस्वरूपके ध्यानकोभी त्याग कर, शुद्ध ब्रह्ममें आरूढ़ होकर, किसीकाभी चिंतवन नहीं करना. (ध्याता और ध्येयके विभागको त्याग देना) ॥ ४४ ॥ इस प्रकार समाधिपर्यंत ध्यान करनेवाला पुरुष मुझकोही अपने स्वरूपमें देखता है. और अप-

तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ॥ नान्यानि चिंतयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥ ४३ ॥ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ॥ तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ ४४ ॥ एवं समाहितमतिर्मामेवाऽऽत्मानमात्मनि ॥ विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युंजतो योगिनो मनः ॥ संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जितेंद्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ॥ मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठंति सिद्धयः ॥ १ ॥

नेको, तेजमें जैसे तेज लीन हो जाता है ऐसे सर्वात्मक मेरे स्वरूपमें, संयुक्त भयाहुआ देखता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार अत्यंत तीव्र ध्यानसे मनका समाधान करतेहुए योगीका अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत रूप वा दृश्य, द्रष्टा तथा दर्शनरूप भ्रम तुर्त भलीभांति निवृत्त हो जायगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ पन्द्रहवें अध्यायमें धारणाका अनुसरण करनहारी और विष्णुपदकी प्राप्ति होनेमें विघ्नरूप मानीहुई सिद्धियोंका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–इंद्रियोंको और श्वासको जीतनेवाले और स्थिर चित्तवाले तथा चित्तकी मेरेमें धारणा करते हुए योगीके निकट सिद्धियां आती हैं ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि– हे कृष्ण ! किस किस प्रकारकी

करे तौ उस पुरुषके एक मासके भीतर प्राणवायु वश हो जाय ॥ ३५ ॥ ध्यान करनेकी रीति कहकर अब जैसे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये उसके विषयमें कहता हूं. देहके भीतर हृदयकमल कि–जो ऊंचे नालवाला, नीचे मुखवाला और कदलीके फूलकी भांति विना खिलाहुआ है, उसे नीचे नालवाला, ऊंचे मुखवाला और प्रफुल्लित तथा आठ पंखुरीवाला और कर्णिकासहित मनमें चिंतकर ॥ ३६ ॥ उस कर्णिकामें सूर्य, चंद्र और अग्निका एक दूसरेके ऊपर ऊपर चिंतवन करना. उस अग्निके बीचमें वक्ष्यमाण ध्यानके शुभ विषयरुप मेरे स्वरूपका चिंतवन करना ॥ ३७ ॥ योग्य समान अवयव, शांत, सुंदर मुखसंयुक्त, सुंदर लंबी

हृत्पुंडरीकमंतस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ॥ ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ॥ वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमंगलम् ॥ ३७ ॥ समंप्रशांतं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ॥ सुचारुसुंदरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ हेमांबरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥ ४० ॥ द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदायुतम् ॥ सर्वांगसुंदरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥ ४१ ॥ सुकुमारमभिध्यायेत्सर्वांगेषु मनोदधत् ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ॥ बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥

चार भुजाओंसे शोभायमान, अतिरमणीय सुंदर कंठ व सुंदर कपोलसे विराजमान, स्वच्छ मंदहास्यकरके शोभमान ॥ ३८ ॥ कानोंमें पहिनेहुए एकसे देदीप्यमान मकराकृत कुंडलोंसे शोभायमान, सुवर्णकेसे पीत पट ओढ़े, मेघकेसे श्याम बरन, वक्षःस्थलके दक्षिणभागमें श्रीवत्स और वामभागमें लक्ष्मीको लसाये ॥ ३९ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म व वनमालासे विभूषित, पैरोंमें नूपुर पहिरे, कौस्तुभ मणिकी कांतिसे देदीप्यमान ॥ ४० ॥ देदीप्यमान किरीट, कड़े, कटिमेखला व भुजबंध धारण किये, सर्व अंगोंमें सुंदर, मनोहर, प्रसन्नताके हेतु प्रफुल्लित मुख व नेत्रकरि शोभमान ॥ ४१ ॥ अतिसुकुमार ऐसे मेरे स्वरूपके सब अंगोंमें मन लगाकर, चिंतवन करना. धीरपुरुषको चाहिये कि– मनद्वारा इंद्रियोंको विषयोंमेंसे खैंचकर, उस मनको बुद्धिकी

संगियोंके संगको दूरहीसे छोड़कर, धीर होकर, निर्भय और एकांतस्थलमें बैठ कर, आलस्यको छोड़, मेरा चिंतवन करो ॥ २९ ॥ स्त्रियोंके संगसे और उनके संगियोंके संगसे पुरुषके जैसा क्लेश और बंधन होता है ऐसा बंधन और क्लेश दूसरेके प्रसंगसे नहीं होता. इसलिये कामशास्त्रमें कहेहुए मार्गोंको दूरसे तर्क कर देना चाहिये ॥ ३० ॥ उद्धवजीने कहा कि— हे कमलनयन प्रभु ! मुझे तौ आपका दासभावरूप पुरुषार्थ मिल चुका है. तासों यदपि मेरे मोक्षकीभी इच्छा नहीं है तथापि जिसके मोक्षकी इच्छा होवे उसको जिस प्रकारसे, जैसा और यद्रूप आपके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये वह मुझे कहो ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि— अतिऊंचाभी नहीं और अतिनीचाभी नहीं ऐसा कंबलादिकका आसन बनाकर, उसपर जैसे आपको अनुकूल होवे, वैसे

न तथाऽस्य भवेत्क्लेशो बंधश्चान्यप्रसंगतः ॥ योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३० ॥ उद्धव उवाच ॥ यथा त्वामरविंदाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ॥ ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ॥ हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाऽग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुंभकरेचकैः ॥ विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेंद्रियः ॥ ३३ ॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घंटानादं बिसोर्णवत् ॥ प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥ ३४ ॥ एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ॥ दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥ ३५ ॥

बैठकर, शरीरको बराबर रखकर, चित्तकी स्थिरताके वास्ते अपनी नाककी अनीके सामने दृष्टि रखकर और दोनों हाथोंको खोलेमें धरकर ॥ ३२ ॥ पूरक, कुंभक और रेचकके क्रमसे अथवा विपरीत क्रम (रेचक, कुंभक और पूरक) से प्राणके मार्गको शुद्ध करना. विषयोंमेंसे इंद्रियोंको खैंचकर, धीरे २ इस प्रकार अभ्यास करना ॥ ३३ ॥ एक सगर्भ और दूसरा अगर्भ ऐसे प्राणायाम दो प्रकारके हैं. उनमें सगर्भ यानी ओंकारसहित प्रणायामके विषयमें कहता हूं. ओंकार कि— जो मूलाधारसे ले, ब्रह्मरंध्रके छोरतक कमलके नालके तंतुकी नाईं सूक्ष्म और अविच्छिन्न है उसको मनमें प्राणसे प्रगट करके फिर उस ॐकारमें घंटाके नादसदृश उदात्तनाद स्थिर करना ॥ ३४ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन तीनों समयमें दश दश वार ओंकारसहित प्राणायामका अभ्यास

जिस पुरुषकी वाणी गद्‌गद स्वरवाली हो जाय तथा चित्त वारंवार द्रवीभूत हो जाय और जो पुरुष लाज छोड़-कर किसीसमय रोवे, किसीसमय हँसे, किसीसमय ऊंचे स्वरसे गावे और किसीसमय नृत्य करे वह मेरी भ-क्तिवाला पुरुष सर्व लोगोंको पवित्र करता है; तब अपने आत्माको पवित्र करे उसमें तो कहना ही क्या? ॥ २४ ॥ जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेसेही अपने अंतर्गत मैलका त्याग करता है और पीछा अपने स्वरूपको प्राप्त होता है ऐसे चित्तभी मेरी भक्तिके योगसेही अपनी कर्मवासनाओंका त्याग करता है. और पीछा मद्रूप हो जाता है ॥ २५ ॥ मेरी पवित्र

वाग्गद्गदाद्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ॥ विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥ यथाऽग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ॥ आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ २५ ॥ यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ॥ तथा तथा पश्यति वस्तुसूक्ष्मं चक्षुर्यथैवांजनसंप्रयुक्तम् ॥ २६ ॥ वि-षयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ॥ मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥ तस्मादस-दभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम् ॥ हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥ स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ॥ क्षेमे विविक्त आसीनश्चिंतयेन्मामतंद्रितः ॥ २९ ॥

कथाके श्रवण और वर्णनसे ज्यों ज्यों मन निर्मल हो जाय त्यों त्यों सूक्ष्म वस्तुरूप परब्रह्म उसके देखनेमें आवे. नेत्र अंजनसे स्वच्छ होता जावे त्यों त्यों सूक्ष्म पदार्थ देखनेमें आवे ॥ २६ ॥ जिस आत्मज्ञानसे मुक्ति हो वह आत्मज्ञान मेरी भक्ति विना नहीं होता. चित्त मद्रूप होजाय यही ज्ञान कहलाता है. और ऐसा ज्ञान मेरा भजन करनेवाले पुरुषको स्वयमेव प्राप्त हो जाता है. दूसरे किसी यत्नकी अपेक्षा नहीं रहती. जैसे विषयोंका ध्यान करनेवालेका चित्त विषयोंमेंही लगारहता है ऐसे मेरा स्मरण करनेवालेका चित्त मुझमेंही लगा रहता है ॥ २७ ॥ इस लिये दूसरे साधन और फल कि- जो स्वप्न और मनोरथकी भांति असत्कल्पनारूप हैं उनको त्यागकर, मेरे भजनसे शुद्ध भयेहुए चित्तको मेरेमेंही स्थिर करो ॥ २८ ॥ स्त्रियोंके और स्त्रियोंके

जाता हूं ॥ १६ ॥ किसी वस्तुका परिग्रह नहीं रखनेवाले, जिनका मन केवल मुझमें लगा हुआ है ऐसे, शांत, निरभिमान, सर्व जीवों-पर प्रेम रखनेवाले और जिनके चित्तका विषय स्पर्श नहीं करते ऐसे और जो मेरे भक्त मुझे प्रसन्न रखते हैं वेही निरपेक्षपनके सुखको जानते हैं दूसरे कोईभी नहीं जानते ॥ १७ ॥ ऐसे उत्तम भक्तकी बात तौ एक तर्फ रही. परंतु मेरा प्राकृत भक्तभी कृतार्थ है. जिसकी इंद्रियां जीतीहुई नहीं हैं ऐसा मेरा प्राकृतभक्त विषयोंसे आकृष्ट होता है यानी खैंचा जाता है तौभी प्रायः भक्तिके सामर्थ्यके कारण विषयोंसे पराभव नहीं पाता ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! अत्यंत लड़काहुआ अग्नि जैसे काष्ठोंको भस्म कर देता है ऐसे मेरी भक्ति सर्व

निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः शांता महांतोऽखिलजीववत्सलाः ॥ कामैरनालब्धधियो जुषंति यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेंद्रियः ॥ प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥ यथाऽग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ॥ तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥ भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ॥ भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ॥ मद्भक्त्याऽऽपेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ॥ विनानंदाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाशयः ॥ २३ ॥

पापोंको भस्म कर देती है ॥ १९ ॥ जिस प्रकार बढ़ीहुई मेरी भक्ति मुझे वश करती है वैसे योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप वा दानभी मुझे वश नहीं करते ॥ २० ॥ प्रिय आत्मारूप मैं श्रद्धासे उत्पन्न भयीहुई भक्तिसेही सत्पुरुषोंके वश हो जाता हूं. मेरी भक्ति चांडाल लोगोंको जातिदोषसेभी पवित्र कर देती है ॥ २१ ॥ सत्य और दयासे युक्त धर्म और तपसे संयुक्त विद्याभी मेरी भक्तिसे रहितचित्तको संपूर्ण प्रकारसे शुद्ध नहीं कर सकती ॥ २२ ॥ शरीरमें रोम खड़ेहुए विना, चित्त द्रवीभूत भये विना और आनंदके अश्रुओंके विंदु पड़े विना, भक्तिकी किसप्रकार खबर पड़े ? और भक्तिविना अंतःकरण किसप्रकार शुद्ध होवे ? ॥ २३ ॥

और दूसरे लोग यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम तथा यामोंको पुरुषार्थ कहते हैं ॥ १० ॥ इन सब लोगोंको अपने २ कर्मसे जो लोक फलरूपतासे मिलते हैं वे सब आदि अंतवाले, परिणाममें दुःखसे भरेहुए, तुच्छ आनंदवाले और शोकसे व्याप्त हैं ॥ ११ ॥ हे उद्धव ! इसलिये भक्ति सर्वोत्तम है. मेरेमें मन रखनेवाले तथा दूसरे सर्वविषयोंमें तृष्णारहित पुरुषको मेरे परमानंदरूप स्वरूपकी स्फूर्तिसे जो सुख प्राप्त होता है वह सुख विषयोंमें लगेहुए पुरुषोंको कहांसे मिल सके ? दूसरोंको तो परिच्छिन्नसुख मिलता है. और भक्तको तौ परिपूर्ण सुख मिलता है ॥ १२ ॥ निरभिमान, जितेंद्रिय, शांत, मेरी प्राप्तिसेही सदा संतोष रखनेवाले और समदृष्टि पुरुषके वास्ते सब दिशायें सुखमयी हैं ॥ १३ ॥ अपने चित्तको मुझमें अर्पण करनेवाला भक्त ब्रह्माकी पद-

आद्यंतवंत एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ॥ दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानंदाः शुचार्पिताः ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ॥ मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥ अकिंचनस्य दांतस्य शांतस्य समचेतसः ॥ मयाऽऽसंतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥ न पारमेष्ठ्यं न महेंद्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽन्यत् ॥ १४॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ॥ न च संकर्षणो न श्रीर्नैवाऽऽत्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥ निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शनम् ॥ अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥

वी, इंद्रका आसन, चक्रवर्तीपन, पातालका राज्य और दूसरेभी जो कोई पदार्थ हैं उनकी इच्छा नहीं रखता. इनकी तौ क्या बात है ? परंतु मेरा भक्त मेरे विना योगकी अणिमादि सिद्धियां और मोक्षकीभी इच्छा नहीं रखता ॥ १४ ॥ जैसे भक्तको मैं प्रिय हूं ऐसे मुझको भक्त प्रिय है. हे उद्धव ! मुझे जैसे तुम प्यारे लगते हो ऐसा ब्रह्मा कि– जो मेरा पुत्र है वहभी प्यारा नहीं लगता. महादेव मेरे स्वरूपभूत हैं. परंतु वेभी तुमजैसे प्रिय नहीं हैं. बलदाऊजी भाई हैं तौभी तुम्हारेजैसे प्रिय नहीं हैं. लक्ष्मीजी स्त्री हैं तौभी तुमजैसी प्रिय नहीं हैं और मेरी मूर्तिभी मुझे ऐसी प्रिय नहीं है जैसे तुम हो ॥ १५ ॥ तृष्णारहित, शांत, निर्वैर और समबुद्धिवाले भक्तके पीछे मैंभी ‘ इस भक्तके चरणकी रजसे मुझमें रहेहुए ब्रह्मांडोंको पवित्र करूं ’ ऐसे भावसे चला

स्वभावके अनुसार लोकोंने अज्ञानसे मुख्य मान राखे हैं. वस्तुतः वे सब क्षुद्रफल देनेवाले हैं. प्रलयमें कालसे नाशको प्राप्त भयीहुई यह वेदरूप वाणी, कि- जिससे मुझमें मन लग जाय ऐसे धर्मका निरूपण है. वह वाणी मैंने पहले ब्रह्माजीको कही. ब्रह्माजीने अपने ज्येष्ठपुत्र मनुको कही. और मनुसे महाऋषि भृगु आदि सात प्रजापतियोंने ग्रहण की ॥ ३ ॥ ४ ॥ उन प्रजापतियोंसे उनके पुत्र देव, दानव, यक्ष, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर, चारण, किंदेव, किन्नर, नाग, राक्षस और किंपुरुष आदिने सीखा ॥ ५ ॥ रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुणसे भयीहुई उनकी वासनायें अनेक प्रकारकी हैं, कि- जिन वासनाओंसे प्राणियोंके जुदे

तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ॥ ततो भृग्वादयोऽगृण्हन्सप्तब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ॥ मनुष्याः सिद्धगंधर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥ किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः ॥ बह्व्यस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥ ६ ॥ याभिर्भूतानि भिद्यंते भूतानां मतयस्तथा ॥ यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवंति हि ॥ ७ ॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यंते मतयो नृणाम् ॥ पारंपर्येण केषांचित्पाखंडमतयोऽपरे ॥ ८ ॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ॥ श्रेयो वदंत्यनेकांतं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥ धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ॥ अन्ये वदंति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥ केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥ १० ॥

२ शरीर और जुदी२ बुद्धियां हुई हैं. इन सबोंने जैसी २ अपनी वासना रही उसीके अनुसार वेदवाक्योंका व्याख्यान जुदा २ किया है ॥ ६ ॥ ७ ॥ इसप्रकार कितनेएक मनुष्योंकी बुद्धियां स्वभावकी विचित्रताके हेतु जुदी पड़ती हैं. कितनेएक पढ़े लिखे न होवें तोभी उनकी बुद्धियां पुरातन रूढीके हेतु जुदी पड़ती हैं. और कितनेएकोंकी बुद्धियां तौ वेदसे विरुद्धपाखंड विषयमेंही लगी रहती हैं ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! मेरी मायासे मोहितबुद्धिवाले पुरुष अपने २ कर्म और रुचिके अनुसार भिन्न २ प्रकारके कल्याणके साधन कहते हैं ॥ ९ ॥ मीमांसक लोक धर्मको, साहित्य शास्त्री यशको, वात्स्यायनआदि कामशास्त्री कामको, योगका अभ्यास करनेवाले लोक सत्य, दम और शमको. राजनीतिवाले ऐश्वर्यको. चार्वाक लोग (नास्तिक) दान व भोगको

जितेंद्रियपन इन साधनोंसे प्राप्त होनेवाला जो पदार्थ है वह मैं हूं ॥ ३९ ॥ मैं कि–जो निर्गुण, अपेक्षारहित, सर्वका बंधु, प्रिय
और आत्मरूप ईश्वर हूं उसमें समता और असंगपनआदि सकलगुण सदा रहे हैं, तासों मेरे वचनोंपर दृढविश्वास राखो ॥ ४० ॥
इस प्रकार मैंने संदेह निवृत्त कर दिया, तब सनकादि मुनियोंने परमभक्तिसे मेरा सत्कार किया और स्तोत्रोंसे स्तुति की ॥ ४१ ॥
इन महात्मा ऋषियोंने मेरी अच्छीतरह पूजा और स्तुति की. तदनंतर मैंभी ब्रह्माजीके देखते २ वहांसे पीछा निजधामको लौटा
॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

मां भजंति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ॥ सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासंगादयोऽगुणाः ॥ ४० ॥ इ-
ति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः ॥ सभाजयित्वा परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहं
पूजितः सम्यक् संस्तुतः परमर्षिभिः ॥ प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥ इति श्री-
भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ उद्धव उवाच ॥ वदंति कृष्ण श्रे-
यांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ॥ तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥ भवतोदाहृतः स्वामि-
न्भक्तियोगोऽनपेक्षितः ॥ निरस्य सर्वतः संगं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ का-
लेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ॥ मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥

चौदहवें अध्यायमें भक्तिही उत्तम साधन है दूसरा कुछभी उत्तम साधन नहीं है, इस विषयका तथा साधनसहित ध्यानयोगका
वर्णन होगा ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि– हे कृष्ण ! वेदवेत्ता पुरुष अनेक साधन कहते हैं सो ये प्रत्येक साधन मुख्य हैं वा उनमें
एक मुख्य है ? ॥ १ ॥ हे स्वामी ! जिससे मन सर्वमेंसे संग छोड़कर, आपमें लग जाय ऐसा निष्काम भक्ति-योगसाधन है ऐसे
आपने कहा और दूसरे लोग फिर दूसरे साधन बतलाते हैं तासों मैं पूछता हूं कि– ये प्रत्येक साधन फल देनेमें मुख्य हैं वा
उनमें कितनेएक तौ मुख्य और कितनेएक उनके अंगभूत हैं. प्रत्येक साधन फल देनेवाले हों तौभी सबके फल तुल्य हैं ? वा
कुछ अंतर है ? ॥ २ ॥ भगवान्‌ने कहा कि– सर्वोत्तम फल देनेवाली होनेसे भक्तिही मुख्य है. और दूसरे साधन तौ अपने २

अनुभवको निश्चल करनेके लिये तृष्णारहित चुपचाप तथा मन, वाणी व कायके व्यापारसे रहित होना. 'देहधारीकी द्वैत-दृष्टि सर्वथा निवृत्त हो जाय ऐसे संभवे नहीं.' तासों पीछा द्वैत हो जायगा ऐसी शंका नहीं राखनी. कारण यह कि-आहार-आदि आवश्यक कर्मोंमें यद्यपि द्वैत देखनेमें आवे तथापि उसका अवस्तुबुद्धिसे जब त्याग कर दिया है तब वह पीछा मोह उत्पन्न नहीं कर सकता ॥ ३५ ॥ जीवन्मुक्तके देह पड़ जानेतक मात्र संस्कारसेही द्वैतका अवभास रहता है परंतु वह मोहको उत्पन्न नहीं कर सकता. मदिराके मदसे भानशून्य भयाहुआ पुरुष जैसे पहिनेहुए वस्त्रको वा रहेहुएको नहीं जानता, ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानीपुरुषभी इस विनाशी देहको अनायाससे उठाहुआ, उठकर वहीं खड़ा भयाहुआ. बाहिर गयाहुआ, वा बाहिरसे पीछा आयाहुआ नहीं देखता. क्योंकि वह स्वरुपको जान चुका है ॥३६॥ देह कि-जो पालन करनेपरभी मरनेको सज्ज हो जाता

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदांधः ॥ ३६ ॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्मयावत्स्वारंभकं प्रतिसमीक्षतएव सासुः ॥ तं सप्रपंचमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥ मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः ॥ जानीत मागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥ अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ॥ परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥

है, उसको जीवन्मुक्त पुरुष नहीं संभालता, तासों देहका पात हो जायगा? ऐसी शंका नहीं करनी. कारण यह कि-प्रारब्ध कर्मके हेतु चलताहुआ यह देह जबलों निजको उत्पन्न करनेवाला प्रारब्ध कर्म बना रहेगा तबलों प्राण और इंद्रियोंके साथ रहकर जीता रहेगा. तब जीवतेहुए देहमें किसी समय ज्ञानी आसक्त हो जायगा? ऐसी शंका नहीं करनी. कारण यह कि-समाधिपर्यंत योगको प्राप्त भयाहुआ और उसीसे जिसने परमार्थवस्तु जान ली है ऐसा पुरुष, स्वप्नके सदृश इस देहमें पीछा आसक्त नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे विप्रो! सांख्य और योगमार्गका जो रहस्य है वह मैंने आपसे कहा है. आपको ज्ञानका और धर्मका उपदेश करनेके वास्तेही मैं विष्णु आया हूं ऐसे जानो ॥ ३८ ॥ (इससे यह जाना जाता है कि-हंस भगवान्‌ने सनकादिकोंको वर्णाश्रमधर्मकाभी उपदेश किया था) हे द्विजश्रेष्ठो! योग, सांख्य, जाननेमें आताहुआ धर्म, पालनेमें आताहुआ धर्म, प्रभाव, लक्ष्मी, कीर्ति और

जानना. शास्त्रमें जाग्रत्का द्रष्टा विश्व, स्वप्नका द्रष्टा तैजस और सुषुप्तिका द्रष्टा प्राज्ञ है. ऐसे जुदे जुदे नाम दिये गये हैं परंतु उन नामोंवाला द्रष्टा एकही है. कारण यह कि- जो मैं स्वप्नोंको देखता रहा और उसके पीछे कुछभी नहीं जानता रहा वही मैं अभी जागता हूं ऐसी स्मृति होती है. तासों सब अवस्थाओंमें एककाही अन्वय है, विश्वादिक नामका व्यवहार तौ अवस्था-रूप उपाधिके भेदको लेकर हुआ है. बाल्य और यौवन आदि अवस्थाओंमेंभी इसी रीतिसे आत्माकी एकता जाननी. ये तीन अवस्थायें कि- जो गुणोंके हेतु मनकेही होती हैं वे मेरे अज्ञानसे मुझमें मैंने मान राखीं हैं ऐसे विचार कर आत्मस्वरूपका निश्चय करतेहुए तुम अनुमानोंसे और सद्गुरुके उपदेशोंसे तीक्ष्ण भयेहुए ज्ञानरूप खड्गसे सर्व संशयोंके स्थानरूप अहंकारको काटकर मैं कि- जो हृदयमेंही रहा हुआ हूं उसको भजो ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ जिनसे ज्ञानरूप खड्ग तीक्ष्ण होता है वे अनु-

एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ॥ संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजतऽमाऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥ ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ॥ विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥ दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवे निजसुखानुभवो निरीहः ॥ संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥

मान दिखाता हूं. यह द्वैत जो है वह भ्रांतिमात्र है. कारण यह कि- वह मनका विलासरूप है दीखता है और नष्ट होता है. जो जो मनका विलासरूप दीखनेवाला तथा नाश होनेवाला है वह भ्रांतिरूपही है. और युक्ति यह द्वैत भ्रांतिरूप सिद्ध होता है कारण यह कि-अतिचंचल है. जो जो अतिचंचल होवे वह भ्रांतिरूपही होवे जैसे कि-अलातचक्र (जिसका छोर जलता होवे ऐसी लकड़ी वा किसी पदार्थको घुमाते हैं तब जो चक्राकार दीखता है वह) तासों भ्रांतिरूप है. ब्रह्ममें इस अनेक प्रकार-वाले द्वैतकी भ्रांति होती है तासों भ्रांतिका अधिष्ठानरूप एक ब्रह्मही मानों अनेक प्रकारवाला हुआ हो ऐसे प्रकाशता है. वास्तविक रीतिसे विचारकर देखते हैं तो गुणोंके परिणामसे भयाहुआ यह अध्यात्म, अधिदैवत और अधिभूतरूप भेद केवल मायामात्र है. जैसे कि-स्वप्न ॥ ३४ ॥ इस लिये दृश्यमेंसे दृष्टिको खैंचकर, अपने स्वरूपसुखका अनुभव करना. और उस

दुःखरूप है, ऐसे जानकर, तीनों अवस्थाओंसे जुदे चौथे स्वरूपमें रहकर बुद्धिके अध्यासको और उसकी कीहुई भोगकी चिंताको छोड़ देना चाहिये ॥ २९ ॥ जबलौं पुरुषकी भेददृष्टि युक्तियोंसे निवृत्त न हो जाय तबलौं वह पुरुष कर्मादिकमें जागता यानी जानकर होनेपरभी, स्वप्नमें अपनेको जागता मानतेहुए मनुष्यकी भांति स्वप्नोंकोही देखता है. ऐसे जानना; क्योंकि उसे यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ है ॥ ३० ॥ 'वर्ण, आश्रम और उन संबंधी कर्मादिककी भेददृष्टि जो वेदने निरूपण की है वह कैसे विवृत्त होवे'? ऐसी शंकाभी नहीं रखनी; कारण यह कि-देहादिक पदार्थ अनित्य हैं तासों उन पदार्थोंके कियेहुए वर्णाश्रमादि भेद व स्वर्गादि फल और उन फलोंके देनेवाले कर्म (अर्थात्) जो कुछ आत्मासे अन्य है वह सब अनित्य है. अर्थात् आत्मासे भिन्न कुछभी नहीं है. स्वप्न अवस्थाको देखतेहुए जीवके (स्वप्नमें देहादिक मिथ्या होनेसे) जैसे

यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः ॥ जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृताभिदा ॥ गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्भुंक्ते समस्तकरणैर्हृति तत्सदृक्षान् ॥ स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयास्त्रिगुणवृत्तिदृगिंद्रियेशः ॥ ३२ ॥

उस स्वप्नसंबंधी देहादिकके कियेहुए भेद, फल और कर्म, मिथ्या हैं ऐसे आत्माके जो पूर्व कहे गये हैं वे सब मृषा यानी मिथ्या हैं. अज्ञानवाले पुरुषके वास्तेही वेद है पर ज्ञानीके वास्ते नहीं ऐसे जानो ॥ ३१ ॥ अब जिन युक्तियोंसे भेददृष्टि निवृत्त होती है वे युक्तियां कहता हूं. जाग्रत् अवस्थामें जिनकी क्षणक्षणमें स्थिति बदलती है, ऐसे बाहिरी देहादिक पदार्थोंको सर्व इंद्रियोंसे जो भोगता है. स्वप्न अवस्थामें जिनकी स्थिति क्षणक्षणमें बदलती है ऐसे तथा मनमेंही उत्पन्न भयेहुए जाग्रत् अवस्थामें देखेहुए पदार्थोंके सदृश वासनामय देहादिक पदार्थोंको जो भोगता है. और सुषुप्ति अवस्थानमें इन सबको समेट लेता है वह एकही है. कारण यह कि- वह तीनों अवस्थाओंका द्रष्टा है. यद्यपि जाग्रत् अवस्थाको सब इंद्रियां देखती हैं. स्वप्न अवस्थाको मन देखता है. और सुषुप्ति अवस्थाको जाग्रत् तथा स्वप्नके अवशेष संस्कारवाली बुद्धि देखती है ऐसे जाना जाता है; तथापि उन सब इंद्रियोंका मनका व बुद्धिका नियंता आत्माही है. तासों आत्माही इन सब अवस्थाओंका द्रष्टा है ऐसे

परस्परसे भिन्न नहीं हैं किंतु सम हैं. तासों 'तुम कौन हो?' ऐसा तुम्हारा प्रश्न व्यर्थ और केवल कथनमात्र है. मन, वचन, दृष्टि और दूसरी इंद्रियोंसेभी जो कुछ ग्रहण करनेमें आता है वह मैंही हूं मुझसे भिन्न कुछभी नहीं है ऐसे तुम तत्त्वविचारसे जानो. इस वाक्यसे 'मैं सर्वात्मक हूं' इस प्रकार प्रश्नका उत्तरभी साथका साथ दिया गया ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे पुत्रो! विषयोंमें प्रवेश करनेवाला चित्त और चित्तमें प्रवेश करनेवाले विषय ये दोनों, जीव कि- जो मद्रूप है उसकी अध्यास की हुई जो उपाधि तद्रूप हैं. जीवके स्वरूपभूत नहीं हैं ॥ २५ ॥ तासों चित्त और विषय कि- जो गुंथेहुए हैं उन दोनोंको अनित्य समझ कर निजस्वरूपमें ब्रह्मत्वकी भावना की जाय तो रागादिक न होनेसे चित्त और विषय स्वयमेव जुदे पड़ जांयगे. विषयोंके संस्कारके हेतु वारंवार विषयोंमें प्रवेश करताहुआ जो चित्त और वासनारूपसे चित्तमें प्रगट होतेहुए विषय

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ॥ जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥ गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ॥ गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ॥ तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥ यर्हि संसृतिबंधोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ॥ मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥ अहंकारकृतं बंधमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ॥ विद्वान्निर्विद्य संसारचिंतां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥

इन दोनोंका आप ब्रह्मरूप होकर त्याग करो ॥ २६ ॥ 'जीव कि- जो जाग्रत् आदि अवस्थावाला है तिसके परब्रह्मपन कैसे घटे?' ऐसी शंका नहीं करनी; क्योंकि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों अवस्था बुद्धिकी वृत्तियां हैं और ये स्वाभाविक नहीं है किंतु अनुक्रमसे सत्व, रज और तमोगुणसे होती हैं. जीव तो उन अवस्थाओंका साक्षी है, तासों वह अवस्थाओंसे रहित है ऐसा निश्चय जानना ॥ २७ ॥ अपनेमें बुद्धिका जो अध्यास हुआ है उसीसे मैं जागता हूं और 'मैं सोया हूं' इत्यादि प्रतीति होती है. वस्तुतः आत्माके अवस्थाके साथ कुछभी संबंध नहीं हैं, तासों साक्षीस्वरूपमें रहकर जब यह मिथ्याभूत बुद्धिके अध्यासका त्याग करे, तब चित्तसे विषय और विषयोंसे चित्त अपने आप अलग हो जाते हैं ॥ २८ ॥ अपने अहंकारका कियाहुआ बंधही आनंदादिकका आवरण करके अनर्थका कारण हुआ है और यह सब संसार

इस प्रश्नका अभिप्राय और उत्तर जाननेकी इच्छासे ब्रह्माजीने मेरा ध्यान किया, तब उस समयमें हंसरूप धरकर, मैं उनके सन्मुख गया (हंसरूप धरनेका अभिप्राय यह था कि- हंस जैसे जल और दूधको विलग कर देता है ऐसे मैं गुण और चित्तको अलग करनेके वास्ते समर्थ हूं) ॥ १९ ॥ मुझे देखकर उन सनकादिकोंने ब्रह्माजीको अग्रणी बनाकर, मेरे निकट आकर मेरे चरणोंमें प्रणाम करके मुझसे पूंछा कि- 'तुम कौन हो ?' ॥ २० ॥ हे उद्धव ! तत्त्व जाननेकी इच्छावाले मुनियोंने इस प्रकार प्रश्न किया तब मैंने उनसे जो कहा वह मैं कहता हूं सो सुनो ॥ २१ ॥ (देहादिकसे भिन्न आत्मा जाननेमें आवे तौ उस आत्मामें निष्ठा रखनेवालेके रागादिक होनेका संभव न होनेके कारण स्वयमेव विषय और चित्त जुदे पड़जाते हैं ऐसे कहनेके वास्ते प्रश्नका खंडन करनेके मिषसे प्रथम आत्मा और अनात्माका विवेक करवाते हैं) मैंने कहा कि- तुम आत्माको लेकर पूंछते हो ? वा

स मामचिंतयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ॥ तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ॥ यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ॥ कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वामिक आश्रयः ॥ २२ ॥ पंचात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ॥ को भवानिति वः प्रश्नो वाचारंभो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपींद्रियैः ॥ अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमंजसा ॥ २४ ॥

आत्माकी उपाधिरूप भूतसमूहको लेकर, पूंछते हो ? आत्माको लेकर पूंछते हो तौ परमार्थरूप आत्मामें भेद न होनेसे 'तुम कौन हो ?' ऐसा पूछना, कि- जो अनेकोंमेंसे एकका निश्चय करनेरूप है वह संभवता नहीं और मैं कि-जो उत्तर देनेवाला हूं वह मैं कौन विशेष लेकर तुमको उत्तर देऊं ? जाति वा गुणादिरूप कोई विशेष आत्मामें होवे तो उसे लेकर उत्तर दिया जाय कि-'मैं अमुक जातिका वा अमुक गुणवाला हूं' परंतु आत्मामें ऐसा कोईभी विशेष नहीं हैं, तासों उत्तर दिया जाय ऐसे है नहीं; क्योंकि प्रथम तुम्हारा प्रश्नही संभवे नहीं. 'मूलं नास्ति कुतः शाखा ?' ॥ २२ ॥ आत्माके उपाधिरूप भूतसमूहको लेकर पूंछते हो ? तौभी देव और मनुष्य आदिके सर्व शरीर पंचभूतात्मक ताके हेतु परस्परसे भिन्न नहीं है और परम कारण (परब्रह्म) रूपसेभी

नित्य आसनको जीतना. और नित्य तीनवार प्राणायाम करनेका नियम रखना और सावधान होकर धीरे २ मुझमें मन लगाना कि- जिसके करनेसे मन विषयोंमें जाताहुआ रुक जाय ॥ १३ ॥ सर्वविषयोंमेंसे मनको खैंचकर, साक्षात् मेरे स्वरूपमेंही परिपूर्ण रीतिसे लगा देना यही मुख्य योग है. ऐसे मेरे शिष्य सनकादिकोंने निर्णय किया है. तासों विषयोंसे गुंथाहुआ मन विषयोंसे जुदा होकर ईश्वरनिष्ठ हो जावै ॥ १४ ॥ उद्धवजीने कहा कि- हे केशव ! सनकादिक कि- जो अतिवृद्ध हैं तिनको आपने इस अवतारमें शिष्य किये हो ऐसे तौ संभवे नहीं. तासों आपने सनकादिकोंको कब और किस रूपसे योगका उप-

अप्रमत्तोऽनुयुंजीत मनो मय्यर्पयन् शनैः ॥ अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ॥ सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धा वेश्यते यथा ॥ १४ ॥ उद्धव उवाच ॥ यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ॥ योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ॥ पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकांतिकीं गतिम् ॥ १६ ॥ सनकादय ऊचुः ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ॥ कथमन्योऽन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः ॥ ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥

देश किया वह समय और वह रूप मैं जानना चाहता हूं सो आप कहो ॥ १५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि- ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न भएहुए पुत्र सनकादिकोंने अपने पिता ब्रह्माजीसे योगकी सूक्ष्म पराकाष्ठाके विषयमें प्रश्न किया ॥ १६ ॥ सनकादिकोंने कहा कि- हे प्रभु ! ब्रह्माजी ! चित्त अपने स्वभावसेही रागादिकोंके हेतु विषयोंमें प्रवेश करता हैं और अनुभूत विषय वासनारूपसे चित्तमें प्रवेश करते हैं, अब विषयोंका त्याग करनेकी इच्छावाला मुमुक्षु पुरुष आपसमें इन दोनोंको किस प्रकार जुदे करे ? ॥ १७ ॥ भगवान्ने कहा कि- इस प्रकार सनकादिकोंने प्रश्न किया तब जगत्के सरजनहारे बड़े देव ब्रह्माजी विचार करने लगे. परंतु उनकी बुद्धि दूसरे कामोंमें लगीहुई थी तासों उनके प्रश्नका बीज ध्यानमें नहीं आया ॥ १८ ॥

उद्धवजीने कहा कि– हे कृष्ण ! जितेंद्रियपनसे सात्विक पदार्थोंका सेवन करनेमें इतना बड़ा परम पुरुषार्थ है और रजोगुणी व तमोगुणी विषय दुःखरूप हैं ऐसे जाननेपरभी बहुतसे लोग कुत्ते, गधे और बकरेकी नाईं उन विषयोंका सेवन करते हैं इसका क्या कारण है ? (कुत्ते तिरस्कार पातेहुए सेवन करते हैं. गधे लातें खातेहुए गधीके पीछे दौड़ते हैं, बकरे मारनेके लिये लाये जानेपरभी निर्लज्जता करते हैं) ॥ ८ ॥ भगवान्ने कहा कि– विवेकरहित मनुष्यके देहादिकमें ' मैं हूं ' ऐसी अन्यथा बुद्धि परिपूर्ण रीतिसे व्याप जाती है और उस अन्यथा बुद्धिके हेतु सत्वगुणके कार्यरूप मनमें दुःखरूप रजोगुण व्याप

उद्धव उवाच ॥ विदंति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ॥ तथाऽपि भुंजते कृष्ण तत्कथं श्वखरराजवत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहमित्यन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ॥ उत्सर्पति रजोघोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ॥ ततः कामो गुणध्यानादुःसहः स्याद्धि दुर्मते ॥ १० ॥ करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेंद्रियः ॥ दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहितः ॥ ११ ॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः पुनः ॥ अतंद्रितो मनो युंजन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२ ॥

जाता है ॥९॥ रजोगुण व्याप जानेसे मनमें संकल्प और विकल्प उठते हैं. संकल्प विकल्प उठनेसे दुर्बुद्धि मनुष्यको दुष्ट विषय प्यारे लगते हैं. और इससे अति दुःसह तृष्णा उत्पन्न होती है॥१०॥तृष्णा उत्पन्न होनेसे रजोगुणके वेगसे मोहित भयाहुआ यह अजितेंद्रिय पुरुष कर्मोंको परिणाममें दुःखरूप जाननेपरभी तृष्णाके वश होकर. विषय भोगनेके वास्ते उन्हीं कर्मोंको करता है. तासों देहादिकमें मिथ्या अभिनिवेश होनेसेही यह विषयोंको भोगता है यह जानो ॥११॥ यदपि किसी समय रजोगुण विक्षेप उत्पन्न करे और तमोगुण मोह उत्पन्न करे तथापि विवेकी पुरुषको चाहिये कि–प्रमाद छोड़कर मनको रोंके और विषयोंमें दोषदृष्टि राखे जिससे विषयोंमें आसक्ति नहीं होवे ॥ १२ ॥ विषयोंमें दोषदृष्टि राखनेपरभी मनका निरोध न हो सके तौ उसका यह सहज उपाय है कि– आलस्य छोड़कर,

तद्यथा–भस्मीभूतशरीरस्य पुनरागमनं कुतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ॥ १ ॥ अर्थ– जैसे कि– कोई २ नास्तिक ऐसे कहते हैं कि– जले हुये शरीरका पीछे आगमन कहांसे हो सकता है ? इसलिये सबप्रयत्नोंसे कर्ज लेके, घी पीना चाहिये उन्हीं लोगोंको इधर कहा है ॥ १ ॥

केवल सात्विक पदार्थोंकाही सेवन करे. जैसे कि- निवृत्तिशास्त्र कि-जो सात्विक हैं उन्हीका सेवन करना. परंतु जो रजोगुणी
प्रवृत्तिशास्त्र और तमोगुणी पाखंडशास्त्र हैं उनका सेवन नहीं करना. तीर्थका जल कि-जो सात्विक है उसीका सेवन करना. परंतु
रजोगुणी सुगंधी जल और तमोगुणी मदिरा आदिका जल तिसका सेवन नहीं करना. निवृत्तिवाले लोक कि-जो सात्विक हैं
उन्हींका सेवन करना. परंतु रजोगुणी प्रवृत्तिवाले वा तमोगुणी दुराचार लोगोंका सेवन नहीं करना. एकांतदेश कि-जो सात्विक
है उसका सेवन करना परंतु रजोगुणी राजमार्ग वा तमोगुणी द्यूतके प्रदेशका सेवन नहीं करना. प्रभातादिक कालकी कि-जो
सात्विक है उसीका ध्यानादिकमें सेवन करना परंतु रजोगुणी प्रदोषकाल वा तमोगुणी मध्यरात्रका काल तिसका सेवन नहीं कर-
ना. नित्यकर्म कि-जो सात्विक हैं उन्हींका सेवन करना परंतु रजोगुणी काम्यकर्म वा तमोगुणी अभिचारादि तिनका सेवन नहीं
करना. वैष्णव वा शैव दीक्षारूप जन्म कि-जो सात्विक है तिसका सेवन करना परंतु रजोगुणी शाक्तदीक्षा, वा तमोगुणी क्षुद्र-
दीक्षारूप जन्म तिसका सेवन नहीं करना. विष्णुका ध्यान कि-जो सात्विक है तिसका सेवन करना परंतु रजोगुणी स्त्रीका ध्यान

वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ॥ एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

वा तमोगुणी शत्रुका ध्यान है तिसका सेवन नहीं करना. प्रणवादिक सात्विक मंत्रोंका सेवन करना परंतु रजोगुणी काम्यमंत्र वा
तमोगुणी क्षुद्रमंत्रोंका सेवन नहीं करना, मनको शुद्ध करनेवाले सात्विक संस्कारका सेवन करना परंतु रजोगुणी देहके संस्कारका
वा तमोगुणी मांसादिक संस्कारका सेवन नहीं करना. इस प्रकार करनेसे सत्वगुणकी वृद्धि होती है और उससे भक्तिरूप धर्म सिद्ध
होता है. और भक्तिरूप धर्मसे ज्ञान उत्पन्न होता है. यद्यपि महावाक्यके श्रवणसेही ज्ञान उत्पन्न होता है तथापि आत्माकी अ-
परोक्षता और स्थूलदेह तथा सूक्ष्मदेहके कारणरूप गुणोंका त्याग होनेपर्यंतका ज्ञान भक्तिरूप धर्मसे प्राप्त होता है ॥ ६ ॥
' गुणोंके क्षोभसे उत्पन्न भयाहुआ देह अपने आश्रयरूप गुणोंको अपनेसेही उत्पन्न भयीहुई विद्यासे निवृत्त करके आपभी किस प्रकार
निवृत्त हो जाता है? ऐसी शंका नहीं करनी; क्योंकि बांसके आपसमें रगड़ खानेसे उत्पन्न भयाहुआ अग्नि जैसे निजसे प्रगट भयीहुई
ज्वालाओंसे बांसके बनको दग्ध करकर पीछे आपभी शांत हो जाता है ऐसे गुणोंके क्षोभसे उत्पन्न भयाहुआ देह निजसे उत्पन्न भयीहुई
विद्यासे गुणोंको भस्म करके आपभी शांत हो जाता है ॥ ७ ॥

भाषाटीकाया द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ तेरहवें अध्यायमें सत्वगुणकी वृद्धिसे विद्याके उदयका क्रम और हंसका इतिहास तथा चित्त व गुणोंको जुदा २ करनेकी युक्ति, यह कहा जायगा ॥ १ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि– तीन गुणोंकी वृत्तियां उपद्रव करती हों तबतक पूर्वोक्त ब्रह्मविद्या उत्पन्न नहीं होती तासों इन वृत्तियोंकी निवृत्ति करके ब्रह्मविद्या उत्पन्न करनेका प्रकार कहता हूं. जो आनंदादिककी नाईं सत्वादिक गुण आत्माके धर्म होवें तो वे आत्माके स्वरूपभूत होनेसे निवृत्त न होनेसे विद्याकी उत्पत्ति न होवे. परंतु सत्व, रज और तम ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं आत्माके नहीं हैं, तासों सत्त्व गुणको बढाकर, रजोगुण तथा तमोगुणकी वृत्तियोंका नाश करना और सत्य तथा दयादिरूप जो सत्त्वगुण है तिसका उपशमरूप सत्त्वगुणसेही नाश करना ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ सत्त्वंरजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चाऽत्मनः ॥ सत्त्वेनान्यतमौहन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥ सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ॥ सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मो रजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ॥ आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३ ॥ आगमोऽपः प्रजादेशः कालः कर्म च जन्म च ॥ ध्यानं मंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ॥ निंदंति तामसं तत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये ॥ ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥

वृद्धिंगत भयेहुए सत्वगुणसे पुरुषको मेरी भक्तिरूप धर्म प्राप्त होता है. यह सत्वगुण सात्विकपदार्थोंके सेवनसे बढता है. और उसकी वृद्धिसे भक्तिरूप धर्म प्राप्त होता है ॥ २ ॥ सत्वगुणकी वृद्धिसे उत्पन्न भयाहुआ भक्तिरूप सर्वोत्तम धर्म रजोगुण तथा तमोगुणको नष्ट कर देता है. और इन दोनों गुणोंका नाश होनेपर राग द्वेषादिक रजोगुण और प्रमाद तथा आलस्यादिरूप तमोगुणसे उत्पन्न होता हुआ अधर्मभी नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ शास्त्र, जल, लोक, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र और संस्कार ये दश पदार्थ तीनों गुणोंको बढाते हैं ॥ ४ ॥ इन पदार्थोंमें विद्वान्‌लोग जिन पदार्थोंकी प्रशंसा करते हैं उनको सात्विक पदार्थ जानना. विद्वान्‌लोग जिन पदार्थोंकी निंदा करते हैं उनको तामस पदार्थ जानना. और विद्वान्‌लोग जिन पदार्थोंकी स्तुति वा निंदा कुछभी नहीं करते उनको राजस पदार्थ जानना ॥ ५ ॥ पुरुषको चाहिये कि–सत्वगुणकी वृद्धिके वास्ते

तंतुओंसे भिन्न नहीं है. ऐसे यह सब जगत् सकल प्रकारसे ईश्वरमें रहा है और ईश्वरसे भिन्न नहीं है. इस प्रकार समष्टि व्यष्टिरूप और अविद्यासे आत्मामें अध्यास कर लियाहुआ प्रपंचरूप वृक्षही जीवके कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि संसारका कारणरूप है तासों यथार्थरीतिसे आत्माका सत्यत्व और प्रपंचका अनित्यत्व जाननेमें आवे तब कर्मादिक सर्वका त्याग करना ऐसे मैंने कहा है. यह अनादि और प्रवृत्तिरूप स्वभाववाला प्रपंचरूप वृक्ष पुष्प व फल (भोग व मोक्ष, अथवा कर्म व उनका फल) को उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥ इस वृक्षके दोबीज (पुण्य और पाप) हैं, सैंकड़ों मूल (वासना) हैं. तीन नाल (गुण) हैं. पांच स्कंध (भूत) हैं, ग्यारह शाखा (इंद्रियां) हैं. तीन त्वचा (वात, पित्त, कफ) हैं, दो फल (सुख, दुःख) हैं. इस

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कंधः पंचरसप्रसूतिः ॥ दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥ अदंति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ॥ हंसाय एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयंवेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥ एवं गुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ॥ विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चाऽऽत्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

वृक्षमेंसे पांच रस (शब्दादि विषय) उत्पन्न होते हैं. इस वृक्षमें दो पक्षियों (जीव व ईश्वर) का घोंसला है. यह वृक्ष सूर्यके मंडलपर्यंत व्याप्त है. सूर्यके मंडलको भेदकर जाय, उसके संसार नहीं रहता ॥ २२ ॥ इस वृक्षके एक फल (दुःख) को गाँवमें रहनेवाले गिद्धपक्षी (कामी गृहस्थी) खाते हैं. और दूसरा फल (सुख) वनमें रहनेवाले हंस पक्षी (विवेकी संन्यासी) खाते हैं. इस प्रकार परमात्मा कि- जो आपही अपनी मायासे अनेक रूपसे जाननेमें आता है उसे गुरुनके उपदेशसे जो जानें वेही वेदके वास्तविक अर्थको जानते हैं, ऐसे जानो ॥ २३ ॥ इस प्रकार गुरुकी उपासना करनेहीसे उत्पन्न भयीहुई भक्तिसे तीक्ष्ण कियेहुए ब्रह्मविद्यारूप कुल्हाड़ेसे सावधानीके साथ और धीरताके साथ लिंगशरीरको काटकर और परमात्माको प्राप्त होकर, फिर सर्व साधनोंको त्याग देओ ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम-

य १ और उपध्मानीय १.) ये वैखरी वाणीका स्वरूप है. ॥ १७ ॥ जैसे अग्नि आकाशमें अस्फुट गर्मीरूपसे सदा रहा है, परंतु वही अग्नि बलसे काष्ठमें मथन करनेसे पवनकी सहायतासे छोटी चिनगारीरूप प्रगट होता है. फिर वही कंडेका थोड़ासा भूसा पड़नेसे कछुक विशेष रूपसे प्रतीत होता है. और तदनंतर वही अग्नि घृतकी आहुती पड़नेसे भभक कर, बढ़ जाता है. यानी अग्नि जैसे चाररूपसे प्रगट होता है ऐसे मैं (परब्रह्म) भी परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी ऐसे चार रूपसे प्रगट होता हूं. वाणी जैसे अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, स्थूल और अतिस्थूल इन चार रूपसे प्रगट हुई. और वह मेराही स्वरूप है ॥ १८ ॥ ऐसे हाथकी वृत्तिरूप कर्म, पांवकी वृत्तिरूप गति, पायु और उपस्थकी वृत्तिरूप विसर्ग, सूंघना, रसन, दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, मननकी

यथाऽनलः खेऽनिलबंधुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ॥ अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥ एवं गदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च ॥ संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजः सत्त्वतमो विकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः ॥ विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तंतुवितानसंस्थः ॥ य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥

वृत्तिरूप संकल्प, बुद्धि तथा चित्तकी वृत्तिरूप विज्ञान, अहंकारकी वृत्तिरूप अभिमान, प्रधानकी वृत्तिरूप समष्टि प्राण और सत्व, रज, तमका विकाररूप सकल प्रपंचभी अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, स्थूल, और अतिस्थूल, इन चार रूपसे प्रगट भयाहुआ है. और यह मेराही स्वरूप है. इस प्रकार होनेसे प्रपंच परमेश्वरसे भिन्न नहीं है ॥१९॥यह ईश्वर कि–जो प्रथम भिन्न भिन्न रूपसे प्रगट नहीं भयाहुआ और एकही था वही ईश्वर कालके हेतु मायाशक्तिका आलिंगन करनेसे मानों इंद्रियादि–रूपसे अनेक प्रकारका हुआ हो ऐसे जान पड़ता है. यही ईश्वर तीनों गुणोंका आश्रयरूप लोकात्मक कमलका बीजरूप है. जैसे एक बीज क्षेत्रको पाकर, अनेक प्रकारका हो जाता है ऐसे ये आदिकारण ईश्वरभी कालगतिसे मायाको अंगीकार करके, सकल प्रपंचरूप हो जाते हैं. इसलिये जगत् ईश्वरकी मायासेही विलसित है तासों ईश्वरमेंही रहा है ईश्वरसे भिन्न नहीं है ॥ २० ॥ जैसे वस्त्र तंतुओंमें ओतप्रोत होकर, रहता है. और

'आत्मामें कर्तृत्व और भोक्तृत्वआदि धर्म हैं वा नहीं ?' और कर्म करना वा त्याग देना ? यह संशय मिटता नहीं कि– जि-
ससे मेरा मन भ्रमण करता है ॥ १६ ॥ भगवान्ने कहा कि– प्रभुही अपनी मायाके हेतु प्रपंचरूपसे प्रकाशते हैं और उसी
प्रपंचके अध्यासके हेतु जीवलोकोंके अनादि अविद्यासे कर्तृत्व और भोक्तृआदि भयेहुए हैं और उसीसे विधिनिषेधका अधि-
कार हुआ है, यह सब होवे तबतक अंतःकरणकी शुद्धिके वास्ते कर्म करनेके वास्ते मैंने कहा है, अंतःकरण शुद्ध भये पीछे जो
कर्म भक्तिमें विक्षेप करनेवाले हों उनका आदर त्याग कर, दृढ़ विश्वाससे भगवान्का भजन करना यह मैंने कहा है. और ज्ञान उत्पन्न हुए
पीछे तौ कुछभी करनेके वास्ते नहीं रहता. ऐसा सिद्धांत है. वह यथार्थ रीतिसे समझमें आ जाय इस लिये उनमेंके (ईश्वरमेंसे
जीवको जन्ममरण देनेवाला प्रपंच किसप्रकारसे उठा है ?) इस प्रथम विषयके विषयमें कहता हूं. यह अपरोक्ष परमात्मा कि
जो शरीरमेंके आधारादिक चक्रोंमें नादादिरूपसे मानों प्रगट हुआ हो ऐसे प्रतीत होता है, वह प्रथम नादवाले प्राणरूपसे आ-

श्रीभगवानुवाच ॥ स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ॥ मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य
रूपं मात्रास्वरोवर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥

धारचक्रमें प्रवेश करता है, तब ' परा वाणी' ऐसे नामसे कहलाता है, आधारचक्रमें सदा अखंड और अस्फुट अक्षरवाला जो
नाद चलता रहता है वह परा वाणी है, ऐसे जानो. फिर यह परा वाणीरुप नादात्मक परमेश्वर मणिपूरचक्रमें आकर, ' पश्यंती
वाणी' ऐसे नामसे जाना जाता है. उच्चारण किये पहले मनसे अक्षर देख लेनेमें आते हैं, तासों उसे ' पश्यंती ' इस नामसे
कहते हैं, तदनंतर वेही परमात्मा विशुद्धिचक्रमें आते हैं तब ' मध्यमा वाणी ' ऐसे नामसे कहनेमें आते हैं. पश्यंतीसे ऊपर
और स्पष्ट वैखरीके स्थानसे नीचे रहनेके हेतु ' मध्यमा ' ऐसा नाम दिया है. तापीछे येही परमात्मा मुखमें आते हैं तब अ-
तिस्थूल होकर, ' वैखरी ' ऐसे नामसे कहलाती है. विखर यानी अत्यंत स्पष्ट, इससे इसका नाम ' वैखरी ' ऐसा दिया गया
है. ह्रस्वादिक मात्रा, उदात्तादिक स्वर, और अकारादिक तिरसठ अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, ये तीन तीन प्रकारके यानी बारह
भेद १२ लृ, ए, ऐ, ओ, औ, ये दो दो प्रकारके यानी दशभेद १०, व्यंजन ३३, यम ४, अनुस्वार १, विसर्ग, १ जिव्हमूली-

मुझमें लगाहुआ है ऐसी और मेरे विरहके हेतु तीव्र दुःखसे दुःखित भयीहुई गोपियोंको मेरे सिवाय दूसरा कोईभी पदार्थ सुखदायी नहीं दीख पड़ा ॥ १० ॥ अत्यंत प्रिय मैं वृंदावनमें विचरता रहा उसके साथ रहनेसे गोपियोंकी जो रात्रियां आधे क्षणकी नाई व्यतीत हुई, वेही रात्रियां पीछा मेरा वियोग होनेसे कल्पके समान बहुत बड़ी हो पड़ीं ॥ ११ ॥ जैसे समाधिमें मुनियोंको अपने नामरूपका भान नहीं रहता ऐसे गोपियोंकी बुद्धिभी आसक्तिसे मेरेमें लग गयी तब उनको पति पुत्रादिकका तथा अपने देहका, और इस लोकका वा परलोकका भान नहीं रहा. किंतु समुद्रमें जैसे नदियां मिल जातीं हैं वैसे मेरे स्वरूपमें लीन हो गयी ॥ १२ ॥ इस प्रकार केवल मेरी कामना रखनेवाली सैकड़ों स्त्रियां और हजारों अबलायें यदपि मेरे स्वरूप-

तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृंदावनगोचरेण ॥ क्षणार्धवत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥ तानाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमतस्तथेदम् ॥ यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥ मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ॥ ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ॥ १३ ॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यंश्रुतमेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ॥ याहि सर्वात्मभावेन मया स्याह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच ॥ संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर ॥ न निवर्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥

को नहीं जानती थीं, तथापि मैं कि–जो उनसे जारबुद्धिसे जानाहुआ परब्रह्म हूं उसे सत्संगकी महिमाके प्रभावसे प्राप्त हुई ॥ १३ ॥ हे उद्धव मेरे भजनका प्रभाव ऐसा है अतएव तुम श्रुति, स्मृति, विधि, निषेध, प्रवृत्तकर्म, निवृत्तकर्म सुननेका और सुनाहुआ छोड़कर, मैं कि–जो सर्व प्राणीमात्रका एकही आत्मा अंतर्यामी हूं उसीका 'सर्व जगत् भगवत्‌रूप हैं' ऐसे भावसे शरण लो. और मुझे प्राप्त होकर, संसारके सर्व भयसे मुक्त हो ओ ॥ १४ ॥ १५ ॥ उद्धवजीने कहा कि–हे योगेश्वरोंके ईश्वर! आपने प्रथम 'स्वधर्ममें सावधान रहकर, कर्म करनेको कहा. और अब कहते हो कि– 'सर्वको त्याग कर, मेरा शरण लो' सो यह आपकी बाणी सुननेसे हमारे मनमें संदेह होता है कि–

युगोंमेंभी वैश्य, शूद्र, स्त्रियां और अंत्यज कि–जो रजोगुणी और तमोगुणीप्रकृतिवाले हैं वेभी उस उस युगमें केवल सत्संगसे मुझको प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ वृत्रासुर, प्रल्हाद आदि, वृषपर्वा, बलिराजा, बाणासुर, मयदानव, बिभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जांबवान्, गजेंद्र, जटायुपक्षी, तुलाधार वैश्य, धर्म व्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियां, यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंकी स्त्रियां और दूसरेभी बहोत लोग सत्संगसेही मेरे पदको प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ इन्होंने वेदका अध्ययन नहीं किया, अध्ययनके वास्ते महात्मा पुरुषोंकी उपासनाभी नहीं की, न व्रत किये और तपभी नहीं किया. तथापि सत्संगसे (मेरे और

बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ॥ वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ बिभीषणः ॥ ५ ॥ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ॥ व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥ ६ ॥ ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ॥ अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ॥ येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ॥ ८ ॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ॥ व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ॥ विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥

मेरे भक्तोंके संगसे) मुझको प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥ गोपियां, गैयां, वृक्ष, मृग, नाग और दूसरेभी मूढबुद्धि जीव सत्संगसे प्राप्त भयेहुए केवल भावसे कृतार्थ होकर, मुझको अनायासपूर्वक प्राप्त हुए हैं. वृत्रासुरादिकोंके कदाचित् दूसरे साधनभी होवें परंतु गोपियां और गैयांआदिकोंके तो दूसरे कोईभी साधन नहीं थे ॥ ८ ॥ योग, सांख्य, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, वेदाध्ययन और संन्यासके वास्ते यत्न करनेवालेभी जिस मेरे स्वरूपको नहीं पासकते उस स्वरूपको ये पूर्वोक्त प्राणी केवल सत्संगसे प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥ अक्रूरजी बलदेवजीके साथ मुझे मथुरा ले आये, तब दृढ भावसे जिनका मन

और शांत मेरे स्वरूपका ध्यान करके, जितेंद्रियपन रखकर, मंत्रोक्त प्रकारसे मेरा पूजन करना ॥ ४६ ॥ जितेंद्रिय रहनेवाला जो पुरुष यजन और बावली, कूप आदि कराकर, पूर्वोक्त प्रकारसे मेरी पूजा करै, उसे मेरी दृढ भक्ति प्राप्त हो जाती है. और दृढ भक्तिवालोंको साधुजनोंकी सेवाके प्रभावसे मेरा ज्ञान प्राप्त हो जाता है ॥४७ ॥ हे उद्धव! प्रायः सत्संगसे होतेहुए भक्तियोगके विना संसारको पार उतारनेके वास्ते दूसरा कोईभी सरल उपाय नहीं है. सत्पुरुषोंका उत्तम आश्रय मैं हूं. तासों सत्संगसे तुर्त मेरी प्राप्ति हो जाती है ॥ ४८ ॥ हे उद्धव! अब तुम श्रद्धासे सुनते हो इसलिये एक विषय जो यदपि अतिरहस्य-

इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ॥ लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७॥ प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव ॥ नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥४८॥ अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनंदन ॥ सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ॥ ४९ ॥ ॥ इति श्रीभा० महा० एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ॥ न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः ॥ यथाऽवरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥ २॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ॥ गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोंऽत्यजाः ॥ रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥

रूप और सर्वसे गोप्य है तथापि वह मैं तुमको कहूंगा तुम मेरे दास, बंधु और सखा हो ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ बारहवें अध्यायमें प्रथम साधुके संगकी महिमा और पीछे कर्म करनेकी तथा कर्मका त्याग करनेकी व्यवस्था कही जायगी ॥ १ ॥ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि- संपूर्ण संगको निवृत्त करनेवाला सत्संग जिस प्रकार मुझे वश करता है ऐसे प्रकारसे योग, तत्त्वविवेक, धर्म, वेदाध्ययन, तप, संन्यास, यज्ञ, बावली, कूप आदि करानेरूप पूर्त, दक्षिणा, व्रत, देवपूजा, मंत्र, तीर्थ, नियम वा यम, ये सब मुझे वश नहीं करते ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ हे उद्धव! दैत्य, राक्षस, मृग, पक्षी, गंधर्व, अप्सरायें, नाग, सिद्ध, चारण, यक्ष, विद्याधर और मनु-

दीपकका प्रकाशभी अपने काममें नहीं लेना. दूसरे देवतान्के निवेदन कियाहुआ पदार्थ मेरे उपयोगमें नहीं लाना ॥ ४० ॥ लोकमें जो जो वस्तु आपको बहुत प्रिय लगती होवें और अत्यंत उत्कंठाकी पात्र होवें वे पदार्थ मेरे अर्पण करने. इस प्रकार निवेदन कियाहुआ पदार्थ अक्षय फल देता है ॥४१॥ हे उद्धव! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, हृदयाकाश, पवन, जल, पृथ्वी और आपना आत्मा तथा सर्व प्राणी ये ग्यारह मेरी पूजाके स्थान हैं ॥४२॥ हे उद्धव! वेदहीमें कहेहुए सूक्तोंसे उपस्थान-आदि करके सूर्यमें मेरी पूजा करनी. अग्निमें हविष्य होम

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ॥ तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानंत्यायकल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ॥ भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥ ४२ ॥ सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाऽग्नौ यजेत माम् ॥ आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वंग यवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बंधुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ॥ वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थंडिले मंत्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ॥ क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शंखचक्रगदांबुजैः ॥ युक्तं चतुर्भुजं शांतं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥ ४६ ॥

कर, मेरी पूजा करनी. उत्तम ब्राह्मणमें आतिथ्य करके, मेरी पूजा करनी. गौनमें घास-आदि डालनेसे मेरी पूजा करनी. ॥ ४३ ॥ वैष्णवमें बंधुके समान सत्कार करके, मेरी पूजा करनी, हृदयाकाशमें ध्यानकी निष्ठा रख कर, मेरी पूजा करनी. वायुमें प्राणदृष्टिसे मेरी पूजा करनी. जलमें जलआदि पदार्थोंसे तर्पण-आदिद्वारा मेरी पूजा करनी ॥ ४४ ॥ पृथ्वीमें रहस्यमंत्रके न्याससे मेरी पूजा करनी अपने आत्मामें उसे भोग देकर, मेरी पूजा करनी सर्व प्राणियोंमें समता रख कर, मैं कि-जो उनमें विद्यमान क्षेत्रज्ञरूप हूं तिसकी पूजा करनी ॥ ४५ ॥ इन स्थानोंमें शंख, चक्र, गदा और कमलसे युक्त चार भुजावाले

तद्यथा-विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् ॥ पितृभ्यश्चैव तद्देयं तदानंत्याय कल्पते ॥ १ ॥ विष्णुशेषं तु योदद्याद्धरये परमात्मने ॥ रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनः ॥ २ ॥ अर्थ-विष्णुजीको जो अन्न निवेदन किया हो उस अन्नकरके अन्य देवताका यजन करना चाहिये. और वही (विष्णुनिवेदित) पदार्थ पितरोंको-भी देना उसका अनन्त फल होता है ॥ १ ॥ और जो पुरुष पितरोंको देके, बचा पदार्थ परमात्मा हरिभगवान्के अर्थ देवे तो उसके पितर अधोगामी होकर, दुःखभागी होते हैं ॥ इत्यादि वचनोंसे देवान्तरनिवेदित पदार्थ विष्णुजीको देना मना है. और विष्णुनिवेदित पदार्थ पितरादि अन्य देवोंको अवश्य देना कहा है ॥ २ ॥

मेरी कथा सुननेमें श्रद्धा राखनी. मेरा ध्यान करना. जो कुछ मिले वह सब मेरे अर्पण कर देना. दासभावसे शरीरका निवेदन करना ॥ ३५ ॥ मेरे जन्म और कर्मका वर्णन करना. मेरे जन्माष्टमीआदि उत्सवोंका अनुमोदन करना. गान, नृत्य और सभाओंसे मेरे मंदिरोमें उत्सव करना ॥ ३६ ॥ वर्षमें जो जो उत्सवके दिन आवें उनमें यात्रा और महानैवेद्य करना. वेदसंबंधी तथा तंत्रसंबंधी दीक्षा लेनी. मेरे व्रत धारण करने ॥ ३७ ॥ मेरी मूर्ति स्थापन करनेमें श्रद्धा राखनी. मेरेवास्ते

मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ॥ सर्वलाभोपहरणं दास्येनाऽऽत्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ॥ गीततांडववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥ यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ॥ वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्यचोद्यमः ॥ उद्यानोपवनाक्रीडपुरमंदिरकर्मणि ॥ ३८ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमंडलवर्तनैः ॥ गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥ ३९ ॥ अमानित्वमदंभित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ॥ अपि दीपावलोकं मे नोपयुंज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥

उपवन, विहारस्थान, नगर और मंदिर बनानेके काममें सामर्थ्य होवे तौ आप बनवाना. और सामर्थ्य न होवे तौ दूसरोंके साथ मिलकर, उद्यम करना ॥ ३८ ॥ निष्कपट भावसे झाडू देना, लीपना, जल–आदिसे छिरकाव करना. और मंडल व मांडने आदि मडां कर, दासकी नाई मेरे मंदिरकी सेवा करनी ॥ ३९ ॥ अभिमान और दंभ नहीं रखना. अपना कियाहुआ उपकार किसीको कहकर नहीं दिखाना. मेरे अर्पण कियेहुए पदार्थका अपनेवास्ते उपभोग नहीं करना. अन्य पदार्थ तौ रहा परंतु

१ धर्मः क्षरति कीर्तनादिति स्मृतेः ॥ अर्थ–क्योंकि–कीर्तन करने यानी कहनेसे धर्म चला जाता है ऐसा स्मृतिमें कहा है ॥

२ अर्थात् स्थावर पदार्थ अथवा रागप्राप्त विषयका भोग न करना. परंतु भक्तिसे तो भगवन्नैवेद्यादि स्मृतिके वचनोंसे अवश्य ग्राह्य हैं. तद्यथा–षड्भिर्मासोपवासैस्तु यत्फलं परिकीर्तितम् ॥ विष्णोर्नैवेद्य सिक्थेन पुण्यं तद्भुञ्जतां कलौ ॥ १ ॥ हृदिरूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः ॥ पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः ॥ २ ॥ अर्थ–छह महीने उपवास करनेसे जो फल कहा है सो फल भगवान्की नैवेद्यके सीथ खानेवालोंको होता है ॥ १ ॥ और जिस मनुष्यके हृदयमें भगवान्का रूप, मुखमें नाम, पेटमें नैवेद्य और चरणोदक व निर्माल्य मस्तकमें रहता है वह साक्षात् विष्णुही है ॥ २ ॥ अथवा ऐसा अर्थ करना कि–दूसरेको निवेदन किया पदार्थ हमको न देना

क्षमावान्, सत्यसंध, ईर्ष्यादिकसे रहित, सुखदुःखमें समान, यथाशक्ति सर्वका उपकार करनेवाला ॥ २९ ॥ विषयोंसे जिसका मन क्षोभित नहीं होवे ऐसा, जितेंद्रिय, कोमलचित्त, सदाचार पालनेवाला, परिग्रहको त्यागनेवाला, इस लोकके सुखके वास्ते किसी प्रकारकी क्रिया नहीं करनेवाला, मितभोजन करनेवाला, शांत, स्वधर्ममें स्थिर, मेरेही आश्रयसे रहनेवाला, मनन करनेवाला ॥ ३० ॥ सावधान, निर्विकार, कष्टके समयमेंभी धैर्य रखनेवाला, क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा तथा मृत्युको अपने स्वरूपमें नहीं माननेमाला, मानकी इच्छा नहीं रखनेवाला, दूसरोंको मान देनेवाला, दूसरोंको ज्ञान देनेमें चतुर, किसी-को नहीं ठगनेवाला, करुणासेही सर्व प्रवृत्ति करनेवाला और सम्यक्रीतिसे ज्ञानवान् ॥ ३१ ॥ ऐसा जो पुरुष होवे वह साधु

कामैरहतधीर्दांतो मृदुः शुचिरकिंचनः ॥ अनीहो मितभुक् शांतः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमान् जितषड्गुणः ॥ अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मया दिष्टानपि स्वकान् ॥ धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः ॥ भजंत्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥ मल्लिंगमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ॥ परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥

कहलाता है. वेद कि–जो मेरा स्वरूप है उसके कहेहुए स्वधर्मपालनेमें अंतःकरणकी शुद्धि होनेआदि गुण हैं और नहीं पालनेमें दोष हैं ऐसे अच्छे प्रकार जानने परभी ' ये धर्म प्रभुके ध्यानमें विक्षेप करनेवाले हैं और मैं नहीं पालूंगा तौभी ये सब धर्म भक्तिसेही सिद्ध हो जायंगे ' ऐसे दृढ निश्चयसे अथवा भक्तिकी दृढताके हेतु निजके धर्मका अधिकार रुक जानेसे उन सब धर्मोंका त्याग करके, जो पुरुष मेरा भजन करे उसकोभी उत्तम साधु समझना चाहिये ॥ ३२ ॥ मैं कि–जो देश कालादिकके परिच्छेदसे रहित, सर्वका आत्मा और सच्चिदानंदरूप हूं, उसे जानकर और फिर मननादिकसे विशेष जानकर, जो पुरुष दृढ और एक भावसे भजते हैं उनकोभी मैं उत्तम साधु मानता हूं ॥ ३३ ॥ अब मेरी भक्तिका लक्षण कहता हूं. मेरी मूर्तियोंका और मेरे भक्तजनों-का दर्शन, स्पर्शन और पूजन करना. इनकी सेवा, स्तुति और गुण– तथा कर्मोंका कीर्तन करना. नम्रता राखनी ॥ ३४ ॥

हे उद्धव ! जो मनुष्य श्रद्धासे परममंगलरूप और लोकोंको पवित्र करनेवाली मेरी कथा श्रवण किया करे, मेरे जन्म और कर्मोंका वारंवार गान, स्मरण और अनुकरण किया करे, मेरी प्रीतिके वास्तेही धर्म, अर्थ और कामका सेवन करे और मेरेही आश्रय रहे. उस पुरुषको मैं कि-जो सनातन हूं तिसमें निश्चल भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ २३ ॥ २४ ॥ इस प्रकार साधुके संगसे प्राप्त भयीहुई मेरी भक्तिसे वह भक्त मेरा ध्यान किया करता है. और साधु पुरुषोंके दिखायेहुए स्वरूपको अवश्य अनायाससे प्राप्त हो जाता है. अर्थात् मनुष्य भक्तिसेही कृतार्थ होता है ॥ २५ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे उत्तमश्लोक प्रभु ! अपनी

श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः ॥ गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ २३ ॥ मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः ॥ लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥ सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता ॥ स वै मे दर्शितं सद्भिरंजसा विंदते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच ॥ साधुस्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो ॥ भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥ २६ ॥ एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ॥ प्रणतायाऽऽनुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ अवतीर्णोऽसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ॥ सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥

२ बुद्धिसे बनेहुए साधु अनेक हैं, परंतु आप कैसे लक्षणवालेको साधु मानते हो ? भक्तिभी लोकमें अनेक प्रकारकी है परंतु किस प्रकारकी भक्ति आपमें उपयोगी होती है ? और सत्पुरुष किस प्रकारकी भक्तिका आदर करते हैं ? ॥ २६ ॥ हे पुरुषाध्यक्ष ! हे लोकाध्यक्ष ! हे जगत्प्रभो ! यह बात अत्यंत रहस्य है तासों मैं कि-जो आपका प्रणत भक्त, स्नेही और शरणांगत हूं तिसे आपको अवश्य कहनी चाहिये ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! आकाशकी नाई असंग, प्रकृतिसे पर, परमपुरुष और परम ब्रह्म, आप भक्तोंकी इच्छाके हेतु परिच्छिन्न शरीर धारण करके प्रगट हुए हो तासों आपसे यह लाभ लेना मैं चाहता हूं ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-साधुके वक्ष्यमाण तीस ३० लक्षण हैं. पराये दुःखको नहीं संहनेवाला, किसी प्राणीका द्रोह नहीं करनेवाला,

समझना ॥ १७ ॥ वे मुक्त पुरुषके जो लक्षण कहेगये येही मुमुक्षुपुरुषके साधन हैं. जो पुरुष वेदमें यथार्थ रीतिसे निपुण होकर, पंडित बन गया हो. परंतु पूर्वोक्त साधनोंसे वेदके अर्थमें निष्ठा रख कर, परब्रह्मके ध्यानादिक नहीं करे उसका शास्त्राभ्यासका श्रम व्यर्थ गया समझना चाहिये. जिसबहुत दिनोंकी प्रसूत भयीहुई गौमेंसे पीछा दूध मिलनेका संभव न होवे उसको दूध मिलनेकी आशासे रखनेवाले पुरुषके श्रमका फल जैसे परिश्रमही है ऐसे पूर्वोक्त पुरुषके शास्त्राभ्यासके श्रमका फलभी परिश्रमही है. उसमेंसे कुछभी पुरुषार्थ सिद्ध होना नहीं है ॥ १८ ॥ हे उद्धव ! जो मनुष्य दुग्धदोह गौको, कामनारहित स्त्रीको, क्षण २ में दुःख देनेवाले देहको, इस लोक और परलोकके साधनसे रहित पुत्रको, पात्रको नहीं दिये जाते अपकीर्ति और पाप देनेवाले

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ॥ श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥ गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ॥ वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९ ॥ यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ॥ लीलाऽवतारेप्सितजन्म वा स्याद्वंध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥ २० ॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ॥ उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥ यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥

धनको और मेरे वर्णनरहित वाणीको राखे, उस मनुष्यको दुःखीसे दुःखी अर्थात् महादुःखी समझना चाहिये ॥ १९ ॥ हे उद्धव ! जिस वाणीमें इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करनेरूप मेरे पवित्र चरित्रका अथवा लीलासे धरेहुए अवतारोंमें जगत्के प्यारे अवतारका वर्णन नहीं आवे, उस वंध्यावाणीको बुद्धिमान्को राखना उचित नहीं ॥ २० ॥ इसप्रकार निश्चय कर, विचारके, बलसे देहादिकके अध्यासको दूर कर और सर्वव्यापक मेरे स्वरूपमें शुद्ध मन लगाकर, तृप्तिको प्राप्त होना, परंतु केवल पंडिताई रखकर, तृप्त नहीं हो जाना ॥ २१ ॥ परब्रह्ममें मनको इस प्रकार निश्चल रखनेकी तुम्हारी शक्ति न होवे तौ ऐसे करनाभी छोड़कर, निष्काम हो, जो कर्म करो वे सब मेरे अर्पण करो ॥ २२ ॥

पुरुष कैसे भोग भोगता है ? और मुक्त पुरुष किस प्रकार भोग भोगता है ? इत्यादि प्रश्नका उत्तर हुआ ' ॥ ११ ॥ १२ ॥ वैराग्यसे तीक्ष्ण भयीहुई ब्रह्मविद्यासे जिसके असंभावनाआदि दोष कट गये होवें ऐसा ज्ञानी पुरुष, जागताहुआ मनुष्य जैसे स्वप्नसे निवृत्तिको प्राप्त होता है ऐसे देहादिप्रपंचसे निवृत्ति पाता है. अर्थात् मुक्तपुरुष देहादिकके अभिमानको छोड़ देता है और बद्धपुरुष देहादिकका अभिमान रखता है ॥ १३ ॥ जिस पुरुषकी प्राण, इंद्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्तियां संकल्पसे रहित होगयी होवें वह पुरुष देहमें रहनेपरभी देहके गुणोंसे मुक्त है. अर्थात् मुक्त पुरुष संकल्पसे रहित भयीहुई प्राणादिकोंकी वृत्तियोंसे विहार करे. और बद्धपुरुष संकल्पोंसे भरीहुई प्राणादिकोंकी वृत्तियोंसे विहार करे ऐसे जानना. इस प्रकार बद्ध और मुक्त पुरुषका

वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः ॥ प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥ १३ ॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेंद्रियमनोधियाम् ॥ वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः ॥ १४ ॥ यस्याऽऽत्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया ॥ अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥ न स्तुवीत न निंदेत कुर्वतः साध्वसाधु वा ॥ वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥ १६ ॥ न कुर्यान्न वदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ॥ आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥

भेद कि–जो उनके निजके जाननेमें आवे वह कहा गया ॥ १४ ॥ अब जिन लक्षणोंसे वे पुरुष दूसरोंके जाननेमें आते हैं वे लक्षण कहता हूं सो सुनो. पीड़ा देनेवाले दुर्जन अथवा दूसरे प्राणी देहको पीड़ा देवें अथवा कोई मनुष्य यदृच्छासे किसी स्थलमें कछुक देहकी पूजन करे उससे जिस पुरुषका मन विकारको प्राप्त न होवे उसे मुक्त समझना चाहिये और जो पुरुष विकारको प्राप्त हो जावे उसे बद्ध समझना ॥ १५ ॥ गुण दोषसे रहित भयाहुआ और समदृष्टिवाला जो मुनि अच्छा करनेवाले अथवा अच्छा बोलनेवालोंकी स्तुति न करे और बुरा करनेवाले वा बोलनेवालोंकी निंदा न करे उसे मुक्त समझना चाहिये और इससे विपरीत पुरुषको बद्ध समझना चाहिये ॥ १६ ॥ आप न तौ किसीका भला करे और न बुरा करे, न बोले और उस बातका विचार करे और ऐसी वृत्ति रखकर, आत्मारामपनसे जड़की नाईं विचरे उसे मुक्त समझना चाहिये. और इससे विपरीतको बद्ध

है, ऐसे अज्ञानी जीवभी वास्तविक रीतिसे देहमें नहीं रहाहुआ होनेपरभी देहके सुख दुःखादिकोंको अपनेमें मान लेनेके हेतु देहमें रहाहुआ है ॥ ८ ॥ इंद्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होनेपरभी राग-द्वेषादिकसे रहित भयाहुआ मुक्त जीव 'मैं इन विषयोंका ग्रहण करता हूं' ऐसे नहीं मानता. कारण यह कि-इंद्रियां विषयोंका जो ग्रहण करतीं हैं वह, गुणके कार्य गुणका ग्रहण करते हैं उसमें ज्ञानी पुरुष अपने कुछभी लाप लेप नहीं मानता ॥ ९ ॥ अज्ञानी पुरुष तौ पूर्वकर्मके आधीन रहनेवाले इस शरीरमें रहकर, इंद्रियोंसे होतेहुए कार्योंमें 'मैं कर्ता हूं' ऐसा अहंकार करनेके हेतु बंध जाता है. ज्ञानी मुक्त पुरुष सुख दुःखसे रहित

इंद्रियैरिंद्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ॥ गृह्यमाणेष्वहंकुर्यान्न विद्वान्यस्त्वविक्रियः ॥९॥ दैवाधीने शरीरेऽस्मिन् गुणभाव्येन कर्मणा ॥ वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्ताऽस्मीति निबध्यते ॥ १० ॥ एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने ॥ दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥ न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान् ॥ प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सविताऽनिलः ॥ १२ ॥

और निरभिमान होकर, देहमें बरतते है. और अज्ञानी बद्धपुरुष सुखदुःखसे सहित और साभिमान होकर, देहमें बरतते हैं यह बद्ध और मुक्त पुरुषके वर्तावमें भेद है ॥ १० ॥ 'इंद्रियोंके कर्म वृथा मुझे बांधते हैं' ऐसे जानकर, विरक्त भयाहुआ ज्ञानी पुरुष यदपि शयन, आसन, फिरना, नहाना, देखना, छूना, सूंघना, भोजन करना, सुनना, आदि क्रियाओंमें इंद्रियोंको भोग देता है तथापि उन क्रियाओंको अपनेमें नहीं माननेसे साक्षीभावसे रहता है अर्थात् अज्ञानीकी भांति उन क्रियाओंमें नहीं बँधता. जैसे आकाश सर्वमें रहनेपरभी किसीमें नहीं बंधता, जैसे सूर्य जलआदिमें प्रतिबिंबित होनेपरभी जलआदिमें नहीं बँधता. और जैसे वायु सर्वमें विचरनेपरभी किसीमें नहीं बँधती, ऐसे ज्ञानीपुरुषभी देहमें रहनेपरभी देहमें नहीं बंधता. इससे 'बद्ध

---

१ तदुक्तं गीतास्वपि । तत्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥ गुणा गुणेषु वर्त्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ १ ॥ अर्थ-सो गीतामेंभी भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि-हे महाबाहो ! तत्वज्ञ पुरुषतो गुण और कर्मके विभागोंमें 'गुण गुणोंमें वर्तमान रहते हैं' ऐसा मानके, मोहित नहीं होता ॥ १ ॥

२ एतदप्युक्तम् गीतासु । प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥ अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ १ ॥ अर्थ-यहभी गीतामें कहा है कि-स्वभावसे किये जाते कर्मोंको अहंकारसे हतबुद्धि मनुष्य मैं करता हूं ऐसे मानता है ॥ १ ॥

तिनमें पहला भेद इस प्रकारसे है कि-एकही शरीरमें रहेहुए जीव व ईश्वरमें, जैसे जीवका धर्म तो शोक है और ईश्वरका धर्म आनंद है. जीव नियम्यपनसे रहा है और ईश्वर नियंतापनसे रहा है ॥ ५ ॥ इसमें दृष्टांत कहते हैं. वृक्षमें घोंसला बनाकर, रहने परभी पक्षी जैसे वृक्षसे जुदे हैं ऐसे जीव और ईश्वर शरीररूप वृक्षमें हृदयरूप घोंसला बनाकर, रहने परभी शरीरसे जुदे हैं. ये दोनों चैतन्यरूपसे सदृश हैं. और साथ रहनेसे तथा एकमत होनेसे परस्पर सखाभी हैं. इनके शरीररूप वृक्षमें रहनेका कारण जो माया हैं वह अनिर्वचनीय है, यानी वह ऐसे प्रकारकी है ऐसे कहनेमें नहीं आ सकती, इनमें जीवरूप पक्षी शरीररूप वृक्षके फल (कर्मफल) को खाता है, (भोगता है) और दूसरा ईश्वररूप पक्षी इस फलको नहीं खाता, तथापि अपने आनंदसे तृप्त रहता है. और ज्ञानादिक शक्तियोंसे जीवकी अपेक्षा महाबलिष्ठ है ॥ ६ ॥ ईश्वर जो कर्मोंका फल नहीं भोगने-

सुपर्णावेतौसदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ॥ एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ॥ योऽविद्ययायुक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥ देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद्यथोत्थितः ॥ अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥

वाला और सर्वज्ञ है, वह अपनेको जानता है और जीवकोभी जानता है. और कर्मका फल भोगनेवाला जीव कि- जो अल्पज्ञ है वह अपने स्वरूपको यथार्थ रीतिसे नहीं जानता. और ईश्वरकोभी नहीं जानता. इस लिये जीव कि-जो अविद्यासे युक्त है वह अनादिकालसे बद्ध है और ईश्वर कि- जो मायासे युक्त होनेपरभी मायाके सत्वगुणकी वृद्धिके हेतु सर्वज्ञ है, वह अनादि कालसे मुक्त है. मायामें आवरण कर्तृत्व और आश्चर्य मोहकर्तृत्व नहीं है तासों ईश्वर निरंतर मुक्तही है ॥ ७ ॥ अब जीव जीवके बीचमें क्या भेद है ? वो कहते हैं. जैसे स्वप्नमेसे उठाहुआ प्राणी स्मरणमें रहेहुए स्वप्नसंबंधी देहमें रहनेपरभी स्वप्न अवस्थाके सुख दुःखादिकोंका अभाव होनेसे उस देहमें रहाहुआ नहीं है ऐसे ज्ञान प्राप्त होनेसे मोक्ष पायाहुआ जीव संस्कारमात्रसे देहमें रहाहुआ होता है तथापि उस देहके संबंधी सुख दुःखादिकोंको अपनेमें नहीं माननेके हेतु उस देहमें रहाहुआही नहीं है. और जैसे स्वप्नके समयमें स्वप्नके देहमें रहाहुआ जीव वास्तविक रीतिसे उस देहमें नहीं रहाहुआ होनेपरभी उस देहमें रहाहुआ

ग्यारहवें अध्यायमें हरिभगवान्‌से बद्ध, मुक्त, साधु और भक्तिके लक्षण कहे जायंगे ॥ १ ॥ भगवान्‌ने कहा कि– तुम्हारे प्रश्नके अनुसार बद्धत्वका और मुक्तत्वका जो विरोध है वह केवल प्रतीति मात्रसे है वास्तविक रीतिसे नहीं; कारण यह कि– बंध और मोक्ष ये दोनों मेरे आधीन रहेहुए सत्वादि गुणरूप उपाधिके हेतु हैं पर वस्तुतः नहीं. वास्तविक न होनेका कारण यह है कि– उपाधिरूप सत्वादिक गुण आपही मायाकल्पित हैं, माया विना दूसरा इनका कुछभी मूल नहीं है. जो पदार्थ मायाकल्पित हैं वे रज्जु सर्पकी नांईं केवल प्रतीतिमात्र हैं तासों बंध और मोक्ष ये दोनों स्वरूपमेंही हैं ऐसा मेरा मत है, मैं गुणोंके परतंत्र नहीं हूं किंतु उनका नियंता हूं. तासों मेरे बंध वा मोक्ष कुछभी नहीं हैं. जीवकेभी वस्तुतः पूर्वोक्त रीतिके अनुसार बंध वा मोक्ष नहीं हैं. परंतु जीव आप अज्ञानसे गुणरूप उपाधिके परतंत्र भयाहुआ है तासों उसके बंध और मोक्ष केवल

श्रीभगवानुवाच ॥ बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ॥ गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बंधनम् ॥ १ ॥ शोकमोहौ सुखं दुःखं देहापत्तिश्च मायया ॥ स्वप्नो यथाऽऽत्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥ विद्याऽविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ॥ मोक्षबंधकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥ बंधोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥ अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ॥ विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥ ५ ॥

प्रतीत होते हैं ॥ १ ॥ स्वप्न जैसे केवल बुद्धिकाही विवर्त है, ऐसे शोक, मोह, सुख, दुःख और जन्ममरणादिक संसारभी अज्ञानके हेतु बुद्धिकाही विवर्त है किंतु वास्तविक नहीं है ॥ २ ॥ हे उद्धव ! प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला ज्ञान और बंध देनेवाला अज्ञान ये दोनों मेरी (ईश्वरकी) अनादि शक्तियां हैं. और ये दोनों मायारचित हैं, ऐसे जानो ॥ ३ ॥ हे महामति उद्धव ! मैं जबलों अज्ञानको प्रवृत्त करता हूं तबलों मेरे अंशरूप जीवके बंध प्रतीत होता है. और जब ज्ञान देता हूं तब मोक्षकी स्फूर्ति होती है यानी बंध अनादि है और मोक्ष नित्य है ॥ ४ ॥ अब बद्ध और मुक्तके बीचमें क्या भेद है ? इस विषयके तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देतां हूं सो सुनो; हे तात ! एक तो जीव व ईश्वरका भेद और दूसरा जीवका जीवसे भेद, ऐसे दो प्रकारका भेद है.

उद्धवजीने कहा कि- हे विभु ! आपने सिद्धांत किया कि ' आत्मा एकही है उसके गुणोंके कार्यरूप देहके संबंधके हेतुही संसार होता है. और निजस्वरूप जाननेसे मुक्ति होती है. ' इस विषयमें मैं पूछता हूं कि- देहादिक अत्यंत टल जाय तब मुक्ति होती है, वा देहादिकमें रहते मुक्ति होती है ? प्रथमपक्षमें देहादिक अत्यंत टल जानेसे ज्ञानका साधनही न रहनेसे मुक्ति किस प्रकार होवे ? और दूसरे पक्षमें देहादिकमें रहेछते उन देहादिकसे होतेहुए कर्मोंमें और सुखादिकमें बँधे विना किस प्रकार रहे ? ' आकाशकी नाईं आत्मा आवरणरहित होनेके कारण नहीं बँधता. ' ऐसे आपका मत हो तौ ऐसा होकर, प्रथमसे क्यों बंधा ? कि- जिससे उसके मुक्तिकी अपेक्षा रहती है ॥ ३५ ॥ ' देहादिक होनेपरभी उनमें अहंकार करनेसे बँध जाता है और अहंकार छोड़ देनेसे मुक्त हो जाता है ऐसे आपका मत होतौ ' अमुक पुरुष मुक्त है और अमुक पुरुष बद्ध है ' ऐसे जाननेमें अनेके वास्ते कहो कि-' बद्ध पुरुष किस प्रकार बरते ? किस प्रकार विहार करे ? किसप्रकार भोग भोगे ? क्या छोड़ देवे ?

उद्धव उवाच ॥ गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ॥ गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥ कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ॥ किं भुंजीतोत विसृजेच्छयीताऽऽसीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ॥ नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा० म० ए० भगवदुद्धवसंवादे दशमोध्यायः ॥ १० ॥

किस प्रकार सोवे ? कैसे बैठे ? और कैसे चले ? ऐसेही मुक्तपुरुष कैसे बरते ? कैसे विहार करे ? कैसे भोग भोगे ? क्या छोड़ देवे ? कैसे सोवे ? कैसे बैठे ? और कैसे चले ? तथा ये दोनों पुरुष कौन २ लक्षणोंसे दूसरोंके जाननेमें आवें ?' ॥ ३६ ॥ हे प्रश्नके उत्तर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे अच्युत ! फिर मेरे मनमें दूसरीभी भ्रांति ह कि 'एकही आत्मा देहादिकके अनादि संबंधके हेतु अनादि कालसे बद्ध है. ऐसे मानना पड़ता है, और ऐसे मानकर, फिर उसका मोक्ष होता है ऐसे मानें तौ मुक्ति उत्पन्न भयीहुई होनेके हेतु मुक्तिमें अनित्यता आ जाती है. तासों वही आत्मा निरंतर मुक्तही है ऐसेभी मानना पड़ता है. तब एकके एक समयमेंही बद्धत्त्व और मुक्तत्व ये दोनों, एक साथ होने कैसे संभवे ' ? तासों इस प्रश्नकाभी मुझे उत्तर देओ ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

निवृत्तिका मार्ग धारण करना यही योग्य
इसप्रकार प्रवृत्तिमार्ग अनर्थका कारण होनेसे वैराग्य धारण करके उससे निवृत्त होकर, है, 'इससे वैराग्य नहीं संभवता.' यह मीमांसकोंका मत जैसे विचारविरुद्ध है ऐसे 'आत्मा कर्ता है' यह मतभी ठीक नहीं; क्योंकि इंद्रियांही कर्म करती हैं, किंतु आत्मा नहीं करता. और आत्माही इंद्रियोंको प्रवृत्त कराकर कर्म करता है ऐसे नहीं जानना. कारण यह कि– सत्वआदि गुणही इंद्रियोंको प्रवृत्त कराते हैं परंतु आत्मा प्रवृत्त करानेवाला नहीं है, 'आत्मा भोक्ता है' यह जो उनका कथन है वहभी ठीक नहीं क्योंकि इंद्रियादिक उपाधिके संयोगसे अहंकारके हेतुही आत्मामें कर्मफलोंका भोक्तृत्व दीख पड़ता है. परंतु वास्तविक नहीं ॥ ३१ ॥ आत्मा अनेक हैं यह जो उनका कहना है वोभी ठीक नहीं. कारण यह कि–अहंकारादि कार्यरूप उपाधिके हेतुही आत्मामें अनेकत्व दीख पड़ता है. और जौलौं वो उपाधि रहती है तौलौं

गुणाः सृजंति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ॥ जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुंक्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ॥ नानात्वमात्मनो यावत्पारतंत्र्यं तदैव हि ॥ ३२ ॥ यावदस्यास्वतंत्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ॥ य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यंति शुचाऽर्पिताः ॥ ३३ ॥ कालआत्मागमोलोकः स्वभावो धर्म एव च ॥ इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥

वह रहता है. यह अनेकत्व जबलौं दीखता है तबलौंही आत्माके परतंत्रत्व है ॥ ३२ ॥ और जबलग परतंत्रता है तबलगही कालका भय रहता है. जो लोग देहाभिमानसे होते हुए भोगको और कर्मको अपने आत्मामें मानते हैं वे उन उन लोकोंकी अनित्यताके हेतु शोकको प्राप्त होकर, दुःखी और मोहित होते हैं ॥ ३३ ॥ स्वर्गादिक लोक अनित्य हैं इतनाही नहीं; किंतु अज्ञानसे मेरे स्वरूपमें कल्पित होनेके कारण मायामयभी हैं. मायाका क्षोभ होनेपर मेरे स्वरूपमेंही काल, जीव, वेद, लोक, स्वभाव और धर्मादिक कई पदार्थोंकी कल्पना हुई है. वास्तविक रीतिसे कोईभी पदार्थ मुझसे भिन्न नहीं है. इस प्रकार है, तासों मीमांसकोंका मत इस पक्षमें ठीक नहीं. और प्रवृत्ति ठीक नहीं, किंतु निवृत्तिही ठीक है. यह सब कथन वैराग्यके अर्थ है. वस्तुतः सर्व पदार्थ ईश्वरजनित और जीव ईश्वरांश तथा सर्वका कर्ता ईश्वर है ईश्वरसे भिन्न कुछभी नहीं ॥ ३४ ॥

इस मनुष्यके समीपमें गंधर्वलोग इसके यशका गान करते हैं ॥ २४ ॥ किंकिणी यानी घूघरोंके समूहसे शोभायमान और मनकी रुचिके अनुसार जानेवाले विमाननमें बैठकर, देवतानके उद्यानोंमें स्त्रियोंके साथ विहार करताहुआ और आनंदमग्न वह पुरुष वहांसे पड़नेकी अपनी बातको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जबलों पुण्य पूर्ण होवे तबलों वह स्वर्गमें आनंद उड़ाता है. परंतु जब पुण्य क्षीण हो जाते हैं तब कालसे चलायमान होकर, अपनी इच्छा न होनेपरभी नीचे गिर जाता है ॥ २६ ॥ इस प्रकार विधि प्रमाण सकाम कर्म करनेवालेके वास्ते कहा गया परंतु विधिको उल्लंघ कर, अधर्ममें प्रवृत्त होनेवाले पुरुषकी तौ इस प्रकार गति होती है सो सुनो, ' यदि नीच पुरुषोंके संगसे अथवा अजितेंद्रियपनसे विषयोंमें लगाहुआ, कृपण, भोगकी

स्त्रीभिः कामगयानेन किंकिणीजालमालिना ॥ क्रीडन्न वेदाऽऽत्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ॥ क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः संगादसतां वाऽजितेंद्रियः ॥ कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥ पशूनविधिनाऽलभ्य प्रेतभूतगणान्यजन् ॥ नरकानवशो जंतुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥ २८ ॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः ॥ देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥ ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्द्धपरायुषः ॥ ३० ॥

तृष्णासे व्याकुल और स्त्रियोंमें लंपट पुरुष अधर्मरत होकर, प्राणीनकी हिंसा करै और धनादिकके लालचके हेतु ॥ २७ ॥ अविधिसे पशुओंको मारकर, प्रेत और भूतगणका यजन करै तौ वह पुरुष परतंत्रतासे नरकमें पड़ कर, फिर स्थावरका जन्म पाता है ' ॥ २८ ॥ कर्ममें प्रवृत्त पुरुषको सुख नहीं मिलता और निवृत्तिभी प्राप्त नहीं होती. क्योंकि वह देह धर कर जिनमें परिणामसे दुःखही है ऐसे कर्म करता है और पीछा उन कर्मोंके निमित्त दूसरा देह धारण करता है. इस प्रकार मरणसे मुक्त नहीं ऐसे प्राणीको कौन सुख प्राप्त होता है ? कोईभी नहीं ॥ २९ ॥ लोक नित्य होनेसे और लोकपाल अमर होनेसे लोकपालोंको सुख है ऐसेभी नहीं जानना, क्योंकि लोकोंकोभी मैं कि- जो कालरूप हूं तिसका भय रहता है. और कल्पपर्यंत जीनेवाले लोकपालोंकोभी वह भय रहता है. जिसकी दो परार्द्धपर्यंतकी बड़ी आयु है वह ब्रह्माभी मुझसे डरता रहता है ॥ ३० ॥

करनेसे सुख रहेगा ऐसेभी नहीं है, ॥ १९ ॥ कारण यह कि जिसके शिरपर मौत घूम रही है उसे कौन धन अथवा कौन भोग सुख देवे ? मनुष्यका बध करनेवाले अपराधीको फाँसी देनेके वास्ते बधके स्थानमें ले जानेके समयमें उसको मनवांछित खान पान आदि दिये जाय तौभी निकटमें विद्यमान मृत्यु जैसे उसे सुख नहीं दे सकती ऐसे मनुष्योंके निरंतर शिरपर घूमनेवाली मृत्यु किसी प्रकारका सुख आनेही नहीं देती ॥ २० ॥ इस प्रकार इस लोकमें जैसे सुख नहीं है ऐसे परलोकमेंभी नहीं है. कारण यह कि– स्वर्गादिक लोकमेंभी पराये सुखकी असहनता, पराये गुणोंमें दोषका आरोप, सुखका नाश और दूसरेको प्राप्त होताहुवा सुख आपको प्राप्त न होनेका दुःख इस लोककी भांति रहताही है. तासों स्वर्गादिक परलोकभी इस लोककी नांई दोषोंसे भराहुआ है फिर जैसे कृषि सफल होनेमेंभी अनेक विघ्न आड़े आपड़ते हैं. ऐसे यज्ञादिसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादिकमेंभी

कोन्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरंतिके ॥ आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥
श्रुतं च दृष्टवद्दुष्टं स्पर्द्धाऽसूयाऽत्ययव्ययैः ॥ बह्वंतरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥ २१ ॥ अंत-
रायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ॥ तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेह
देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ॥ भुंजीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपु-
ण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ॥ गंधर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥

कर्मकी भूल चूक होनेआदि अनेक विघ्न आड़े पड़ते हैं तासों स्वर्गादिकभी निःसार हैं ॥ २१ ॥ ‘ विघ्नोंकी आड़ न लागे तो कर्म करनेका फल स्वर्गादिकका सुख जैसा चाहिये वैसा मिले ’ ऐसे अंगीकार करें तौभी उस सुखका परिणामसे नाश होनेका दुःख तौ किसी प्रकारसे मिटही नहीं सकता. वह इस प्रकारसे कि विघ्नोंको आड़े नहीं पड़ने देते जो कर्म यथार्थ करनेमें आवे तो उससे प्राप्त होनेवाले स्थानमें इस प्रकार जाता है. वह मैं कहता हूं सो सुनो ॥ २२ ॥ यज्ञ करनेवाला पुरुष यहां यज्ञोंसे इंद्रादिक देवतानका यजन करके स्वर्गलोकमें जाता है. वहां अपने उपार्जन कियेहुए दिव्य भोगोंको देवताकी नांई भोगता है ॥ २३ ॥ अपने पुण्यके प्रभावसे सर्व भोगोंसे संपन्न भयेहुए सुंदर विमानमें मनोहर वेष धारण करके, अप्सरानके साथ विहार करतेहुए

ज्ञानमय नहीं है किंतु आत्मामें अनेक प्रकारके अनित्य ज्ञानोंका परिणाम हुआ करता है ज्ञानका फेरफाररूप विकार होनेसे क्या आत्मा अनित्य हो जाता है ? नहीं; कारण यह कि– ज्ञानरूप विकार आत्माके नित्यपनमें किसी प्रकार आड़ मारे ऐसा नहीं है. मुक्तिमें तौ आत्मा इंद्रियादिकोंसे रहित हो जाता है तासों उसमें ज्ञानका परिणाम नहीं होनेसे प्रत्युत जीव जड़ हो जाय तासों मुक्तिप्राप्ति पुरुषार्थरूपही नहीं, तासों, प्रवृत्तिही अच्छी है, निवृत्ति ठीक नहीं ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे उद्धव ! तुम इन मीमांसकोंके मतके अनुसार मानते हो चलो, घड़ीभर इस प्रकार मान लें, तौभी प्रवृत्तिका मार्ग अनर्थका कारणरूपही ठहरता है; क्योंकि सर्व प्राणीमात्रके देहके योगके हेतु वर्ष और मास आदि कालके अवयवोंसे होते हुए जन्म-मरणादिक कि– जो वारंवार हुआ करते हैं वे मीमांसकोंके मतके अनुसार निवृत्त नहीं होते ॥ १६ ॥ मीमांसकोंके मतके अनुसार कर्मके

एवमप्यंग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ॥ कालावयवतः संति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातंत्र्यं च लक्ष्यते ॥ भोक्तुश्च दुःखसुखयोः कोन्वर्थो विवशं भजेत् ॥ १७ ॥ न देहिनां सुखं किंचिद्विद्यते विदुषामपि ॥ तथा च दुःखमूढानां वृथाऽहंकरणं परम् ॥ १८ ॥ यदि प्राप्तिं विघातं च जानंति सुखदुःखयोः ॥ तेप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥ १९ ॥

करनेवाले और भोगनेवाले जीवकी परतंत्रता नहीं मिटती और ऐसे है तो परतंत्र पुरुषके किसी प्रकारके पुरुषार्थकी प्राप्तिभी नहीं होती ऐसे मानना चाहिये. जीव जो स्वतंत्र होवे तौ उसके दुष्ट कर्म होने वा दुःखके भोग प्राप्त होने संभवे नहीं ॥ १७ ॥ जो अच्छे प्रकार कर्म करना जानते हैं वे सुखीही होते हैं और जो नहीं जानते वे दुःखीही होते हैं ऐसा नियमभी नहीं है. कारण यह कि– विद्वान् लोगोंकेभी किसी स्थलमें अल्प सुखभी देखनेमें नहीं आता. और मूढ़लोगोंकेभी किसी स्थलमें किंचिन्मात्र दुःखभी देखनेमें नहीं आता तासों ‘ हम कर्म करनेमें कुशल होनेसे सुखी हैं ’ ऐसा उन लोगोंको केवल अहंकार मात्रही वृथा है ॥ १८ ॥ कदाचित् अंगीकार करें कि ‘ ये लोक सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके उपायोंको जानते हैं ’ तथापि ये लोक ऐसा उपाय नहीं जानते कि– जिससे साक्षात् मृत्यु टल जाय, मृत्यु न आनेकी बात जुदी रही परंतु जीवनपर्यंत तौ कर्म

देनेवाला होता है ॥ १२ ॥ निपुण शिष्यकी ग्रहण कीहुई और निपुण गुरुकी दीहुई यह अतिपवित्र ब्रह्मविद्या गुणोंके कार्यरूप संसारको और जिनमेंसे बनाहुआ यह जगत् जीवके संसारका निमित्तरूप होता है उन गुणोंकोभी भस्म करके फिर काष्ठरहित अग्निकी भांति आपभी शांत हो जाती है. तासों कार्यका, कारणका और विद्याकाभी व्यवधान न रहनेसे जीव साक्षात् परमानंदरूप हो जाता है ॥ १३ ॥ आत्मा स्वयं प्रकाश, ज्ञानमय, नित्य और एकही है. आत्माके कर्तृत्व और भोक्तृत्वआदि धर्म देहरूप उपाधिके हेतुही प्राप्त होते हैं, आत्मा विना दूसरे सर्व पदार्थ अनित्य और मायामय हैं. तासों पुरुष सर्वसे विरक्त होकर, आत्मज्ञानसे मुक्तिको प्राप्त होता है. ऐसा सिद्धांत है तहां मीमांसक कहते हैं कि- मैं हूं ऐसी प्रतीतिसे जाननेमें आताहुआ आत्मा प्रत्येक शरीरमें भिन्न है और कर्मोंका कर्ता तथा सुख दुःखका भोक्ताभी वही है. इस आत्माका स्वरूपभूत

वैशारदी साऽतिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् ॥ गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत्स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाऽग्निः ॥ १३ ॥ अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ॥ नानात्वमथ नियत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसे सर्वभावानांसंस्थाह्यौत्पत्तिकी यथा ॥ तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥

कोई दूसरा निर्विकार परमात्मा नहीं है. भोगके स्थानरूप लोक, भोगका काल, भोगके उपायरूप कर्मोंको बतानेवाला वेद, ये सब भोगके साधन और भोग भोगनेवाला आत्मा ये अनित्य होवें तौ वैराग्य होना संभवे परंतु वे सब नित्य हैं तासों वैराग्य होना संभवे नहीं. भोग्य पदार्थ बीचमें टूट जाते हों. अथवा मायामय होवें तौभी वैराग्यका होना संभवे परंतु जगत्के भीतरके चंदन माला आदि सर्व पदार्थोंकी स्थिति प्रवाहरूपसे नित्य है और यथार्थरूप है, तासों वैराग्यका होना संभवे नहीं, अभी जिस स्थितिमें जगत् देखनेमें आता है उस स्थितिमें किसी समय नहीं था ऐसे नहीं. इसलिये जगत्का कर्त्ता कोई ईश्वरभी नहीं है. आत्मा स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं है किंतु आत्मामें अनेक प्रकारके ज्ञानका फेरफार होता है. जैसे कि एक क्षणमें घटका ज्ञान होता है और दूसरे क्षणमें पटका ज्ञान होता है और तीसरे क्षणमें तीसरे पदार्थका ज्ञान होता है इत्यादि. इस प्रकार घटपटादि वस्तुओंके हेतु ज्ञानभी नया नया उत्पन्न होता है और फिर वह पहले पहले ज्ञानसे जुदा पड़ता है तासों आत्मा नित्य

सूक्ष्म और स्थूल देह कि-जो दृश्य है उससे उसका द्रष्टा आत्मा जुदा है. जैसे कि- जलानेके काष्ठसे उसका जलानेवाला अग्नि जुदा है. फिर स्थूल और सूक्ष्म शरीर कि-जो जड़ है उससे उसका जाननेवाला स्वयंप्रकाश आत्मा जुदा है. जैसे कि-जिसको प्रकाश मिलता है ऐसे काष्ठसे उसे प्रकाशित करनेवाला अग्नि जुदा है. ऐसे विचारसे आत्माको देहादिकसे जुदा जानना कि-जिसके जाननेसे स्त्री पुत्रादिकोंमेंसे ममता निवृत्त हो कर,उदासीनता आ जाय ॥ ८ ॥ काष्ठके भीतर पैठाहुआ अग्नि जैसे काष्ठके निमित्तही नाश, उत्पत्ति, अणुत्व, बृहत्व और नानापनको प्राप्त होता है परंतु स्वयं नाशादिकको प्राप्त नहीं होता ऐसे देहके भीतर रहाहुआ आत्माभी देहके हेतुही अनित्यताआदि देहके गुणोंको प्राप्त होता है परंतु स्वयं अनित्यताआदिको नहीं प्राप्त होता.

विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षितास्वदृक् ॥ यथाऽग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान् गुणान् ॥ अंतः प्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥ योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ॥ संसारस्तन्निबंधोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयाऽऽत्मानमात्मस्थं केवलं परम् ॥ संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादंतेवास्युत्तराऽरणिः ॥ तत्संधानं प्रवचनं विद्यासंधिः सुखावहः ॥ १२ ॥

वास्तविक रीतिसे आत्मा नित्य, अनादि, मुक्त, तथा एक है. और देह अनित्य उत्पन्न भयाहुआ, बद्ध तथा अनेक हैं. तासों आत्मा देहसे जुदा है ॥ ९ ॥ अग्निके तौ काष्ठके संयोगसे काष्ठके धर्म प्राप्त होते हैं परंतु आत्मा तौ असंग है तासों उसके देहका अथवा देहके धर्मोंका संबंध किस प्रकार संभवे ? और संबंध हुआ हो तौ उसकी निवृत्ति किसप्रकारसे होवे ? ऐसी शंका नहीं करनी; क्योंकि यह स्थूल और सूक्ष्म देह कि- जो ईश्वरके आधीन मायाके गुणोंसे रचाहुआ है उसके अध्यासके हेतुही जीवके संसार हुआ है तासों स्वरूपके ज्ञानसे वह संसार निवृत्त हो जाता है ॥ १० ॥ इसीलिये देहादिकमें रहेहुए केवल और परमात्माके विचारहीसे अच्छे प्रकार आत्माको जानकर, धीरे धीरे देहादिकमें वस्तुबुद्धिका त्याग करना ॥ ११ ॥ गुरुरूप नीचेकी अरणि, शिष्यरूप ऊपरकी अरणि और उपदेशरूप बीचका मथन करनेका काष्ठ इन तीनोंमेंसे ब्रह्मविद्यारूप जो अग्नि उत्पन्न होता है वह अग्नि परमसुखका

कुलके धर्मका पालन करना ॥ १ ॥ शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषको चाहिये कि– विषयोंमें लगेहुए लोक विषयोंको ध्रुव मानकर, जो जो उद्योग करते हैं उन सब उद्योगोंके फल विपरीत होते हैं इसे देखता रहे; क्योंकि इससे निष्कामता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ इंद्रियोंसे जो जो विषय जाननेमें आते हैं वे सब अध्रुव हैं कारण यह कि– वे अनेक प्रकारके होते हैं. 'जो जो अनेक प्रकारके होवें वे सब अध्रुव हैं. जैसे कि– मनसे उत्पन्न होतेहुए स्वप्न और मनोरथ अनेक प्रकारके होनेसे अध्रुव हैं' ऐसा अनुमान करनेसेभी निष्कामपन प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ मेरे तत्पर भयेहुए मनुष्यको चाहिये कि– सकाम कामका त्याग करे और नित्य तथा नैमित्तिक कर्म कि– जो निष्काम हैं वेही करे. और आत्मविचारमें अच्छे प्रकार प्रवृत्तिभये पीछे तौ नित्य तथा नैमित्तिक कर्म-

सुप्तस्य विषया लोको ध्यायतो वा मनोरथः ॥ नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ॥ जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ॥ मदभिज्ञं गुरुं शांतमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ॥ असत्वरार्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥ जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ॥ उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवाऽऽत्मनः ॥ ७ ॥

का आदरभी नहीं करे ॥ ४ ॥ मेरे परायण पुरुषको चाहिये कि– अहिंसादिक यमोंका अच्छे प्रकार सेवन करे. और स्नानादिक नियमोंको तौ आत्मविचारमें अड़चन न आवे ऐसे प्रकारसे बने तहांतक सेवे. और यमोंमेंभी आदर छोड़कर, शांत और मद्रूप तथा मेरे जाननेवाले गुरुकी सेवा करे ॥ ५ ॥ गुरुकी सेवा करनेवाले पुरुषको उचित है कि– मान, मत्सर, आलस्य और स्त्री पुत्रादिकोंमें ममता, इनका त्याग करना. गुरुमें दृढ़ प्रेम रखना. व्यग्रता नहीं रखनी. यथार्थ तत्त्वका विचार करना. ईर्षा नहीं रखनी. व्यर्थ नहीं बोलना ॥ ६ ॥ स्त्री, संतान, घर, क्षेत्र, स्वजन और धन इत्यादिमें उदासीन रहना. और विचार करना कि– 'सर्व शरीरोंमें आत्मा एकही है तासों सबको सबके स्त्री पुत्रादिकोंसे जो सुख मिलता है वह मुझकोही मिलता है तासों मेरे स्त्री पुत्रादिकमें मुझे ममता क्यों रखनी चाहिये ? ऐसे विचारसे स्त्री पुत्रादिकमें उदासीन रहकर, गुरुकी सेवा करनी ॥ ७ ॥

दीपककी प्राप्तिसे मैं सर्व प्रकारसे काम करनेको समर्थ हूं तथापि सर्व संग छोड़कर, अहंकाररहित हो, इस पृथ्वीपर विचरता हूं ॥ ३० ॥ यद्यपि ज्ञान देनेवाला गुरु एकही करना चाहिये तथापि उस गुरुसे ज्ञान लिये पीछे अपनी बुद्धिसे उपदेशके अनुकूल दूसरे दृष्टांत न लें तौ एक गुरुसे लियाहुआ ज्ञान स्थिर जमें नहीं और अच्छे प्रकार बढ़ेभी नहीं तासों दृष्टांतरूपसे मैंने अनेक गुरु किये हैं. इस अद्वितीय ब्रह्मको कितने एक ऋषि कहते हैं कि- ब्रह्म प्रपंचरहित है और कितने एक कहते हैं प्रपंचसहित है. कितने एक फिर दूसरे प्रकारोंसेभी कहते हैं. तासों उनसे होतीहुई असंभावना और विपरीत भावना आदिको मिटानेके वास्ते अपनी बुद्धिसे अनेक दृष्टांत लेने योग्य हैं ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि- यदुराजाके प्रणाम और प्रार्थना परसे गंभीर बुद्धिवाले

न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥ ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधार्षिभिः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामंत्र्य गभीरधीः ॥ वंदितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ ॥ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ॥ सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भगवदुद्धवसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ॥ वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥१॥ अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ॥ गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारंभविपर्ययम् ॥ २ ॥

ये ब्राह्मण दत्तात्रेयजी इस प्रकार कहनेके अनंतर यदुराजासे आज्ञा ले, प्रसन्न हो, जैसे आये वैसेही यदृच्छासे पीछे चले गये ॥ ३२ ॥ अपने दादा यदुराजाने गुरु दत्तात्रेयजीके वचन सुनकर, सर्व संगको त्याग कर, केवल परब्रह्ममें चित्त लगाया. अपने कुलमें ऐसे २ महात्मा हो चुके हैं तासों अपने कुलको बहुत मान मिलता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ दशवें अध्यायमें महात्माके देहके संबंधसेही संसार है परंतु वस्तुतः नहीं एतद्विषयक दूसरे मतोंका खंडन कर कर, भगवान् वर्णन करेंगे, इस प्रकार अन्वयव्यतिरेकसे देहात्मविवेक हो जाय तब उसको तत्वज्ञान प्राप्त होनेके वास्ते प्रथमसे साधनोंका उपदेश है ॥ १ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि- पंचरात्रादि शास्त्रोंमें मेरे कहेहुए वैष्णवधर्मोंमें सावधान रहकर, उन धर्मोंमें विरोध न आवे ऐसे प्रकारसे निष्काम पनसे वर्ण, आश्रम और

पुत्र, धन, पशु, भृत्य, घर और संबंधियोंके वर्गोंको बढ़ाता है और उनका पोषण करता है वह देह अपना आयुष्य पूर्ण होनेपर नष्ट हो जाता है, तासों देहमें दुःख भोगनेरूपही फल रहा है, देहका नाश होनेपरभी दुःखकी समाप्ति नहीं होती; क्योंकि वृक्ष जैसे बीजको उत्पन्न करके, नष्ट हो जाता है, ऐसे देहभी दूसरे देहके बीजरूप कर्मको उत्पन्न करके, नाशको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ बहुतसी सपत्नियां जैसी एक पतिको चारों ओरसे खैंचने लगतीं हैं ऐसे इस देहको अथवा देहाभिमानी पुरुषको एक ओरसे जीभ रसके वास्ते खैंचती है. दूसरी तर्फसे तृषा जलके वास्ते खैंचती है. तीसरी ओरसे शिश्न मैथुनके वास्ते खैंचता है. चौथी ओरसे चर्म स्पर्शके वास्ते खैंचता है. पांचवी ओरसे पेट अन्नके वास्ते खैंचता है. छठी ओरसे घ्राण सुगंधिके वास्ते खींचता है. सातवीं ओरसे चपल चक्षु रूपके वास्ते खैंचती है. और इसके उपरांत फिर कर्मेंद्रियांभी अपने २ विषयोंके वास्ते खैंचतीं हैं. तासों देहको दुःखरूप

जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्क च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति ॥ २७ ॥ सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ॥ तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवांते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ॥ तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्युयावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥ एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ॥ विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोऽनहं कृतिः ॥ ३० ॥

जानकर, मैं वैराग्यको प्राप्त हुआ हूं ॥२७॥ प्रभुने अपनी शक्तिरूप मायासे वृक्ष, सरीसृप (पेटसे चलनेवाले), पशु, पक्षी, डांस और मछली-आदि अनेक प्रकारके शरीर रचे, परंतु तिनमें किसीकी बुद्धि परमात्माको अपरोक्ष करनेमें समर्थ नहीं. ऐसे जानकर, हृदयमें संतुष्ट नहीं हुए. अंतमें मनुष्यदेह कि- जिसकी बुद्धि परमात्माको अपरोक्ष करनेमें समर्थ है उसे सृजकर, प्रभु प्रसन्न हुए. तासों मनुष्यदेह कि- जो अतिदुर्लभ है उसे पाकर, ईश्वरमें निष्ठा रखनी चाहिये ॥ २८ ॥ अनेक अनेक जन्मोंके अंतमें यह मनुष्य-देह कि- जो अपने शिरपर मृत्यु घूमनेसे अनित्य होनेपरभी पुरुषार्थ देनेवाला है, उसे यदृच्छासे पाकर, धीर पुरुषको चाहिये कि वह देह मेर नहीं तिससे पहलेही तुर्त कल्याणके वास्ते यत्न करे. विषयसुख तो पशु-आदि जन्ममेंभी मिलसकता है तासों उसके वास्ते यत्न नहीं करना ॥ २९ ॥ इस प्रकार अनेक गुरुओंसे प्राप्त भयीहुई शिक्षाके प्रभावसे मनमें वैराग्य और ज्ञानरूप

गुंथ रहा है. और उसीके हेतु महत्तत्त्वका ' सूत्र ' ऐसा नाम कहलाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ (२४) भ्रमरीसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. हे राजा ! भ्रमरी पकड़कर, जिस कीड़ेको दरमें बंद कर, देती है. वह कीड़ा भयके हेतु भ्रमरीकाही ध्यान करता २ जैसे अपने पूर्वरूपको न छोड़कर, आप भ्रमरीरूप बन जाता है, ऐसे प्राणीभी स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे, जिस जिस वस्तुमें अपने मनको एकाग्र करे उस उस वस्तुरूप वह आप बन जाता है. कीड़ा जब अपने उसी शरीरसे भ्रमरीरूप बन जाता है, तब भगवान्‌का ध्यान करनेवाला पुरुष दूसरे शरीरसे भगवद्रूप हो जाय इसमें क्या आश्चर्यकी

यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ॥ स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥२२॥ कटिः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः ॥ याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्यजन् ॥ २३ ॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ॥ स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥ देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततात्युदर्कम् ॥ तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथाऽपि पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसंगः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ॥ स्वांते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥ २६ ॥

बात है ? ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे प्रभु ! इस प्रकार इन चौबीस गुरुओंसे यह शिक्षा मैंने ली है, अब मैंने मेरे देहसे जो शिक्षा ली है वह कहता हूं सो सुनो ॥ २४ ॥ यह देह मेरा पचीसवां गुरु है; कारण यह कि- मुझे वैराग्य और विवेक इस देहकी शिक्षासे मिले हैं. यह देह जन्म-मरणको और परिणाममें निरंतर दुःख भोगरूप फलको धारणकर रहा, है. तासों मुझे वैराग्य हुआ है. और तत्त्वोंका यथार्थ विचार करनेरूप विवेकभी इसी देहसे प्राप्त हुआ है. इस प्रकार यह देह अत्यंत उपकारी है; तथापि तिसपर प्रीति न रखकर, ' यह कुत्ते और काकका भक्ष्य है ' ऐसा निश्चय करके, मैं सर्व संग छोड़कर, विचरता हूं ॥ २५ ॥ धन कि-जिसमें केवल पहलेही सुख देखनेमें आता है उसका संचय करनेवाला पुरुष जिस देहको प्रसन्न रखनेकी इच्छासे, स्त्री,

क्योंकि घरका आरंभ करना यह अत्यंत दुःखदायी है और देह अध्रुव होनेसे निष्फलभी है ॥ १५ ॥ (२३) मकड़ीसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. मकड़ी जैसे हृदयमेंसे निकले हुए तारको मुखसे विस्तार कर, उसमें रमण करके, पीछा उस तारको निगल जाती है उसके किसी दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं है. ऐसे ईश्वर अपने स्वरूपमेंसेही जगत्को रचकर, उसमें विहार करके, उस जगत्को पीछा निगल जाता है यानी आपमें लीन करलेता हैं. इसमें किसी दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं है. अपनी मायासे प्रथम रचेहुए इस जगत्को दूसरे किसी साधनकी अपेक्षा विना कल्पांत समयमें कालशक्तिसे संहार करके, सजातीय (एक वृक्ष दूसरे वृक्षसे जुदा है यह भेद) विजातीय (वृक्ष निजसे दूसरी जातिके पर्वतादिकोंसे भिन्न है यह भेद) तथा स्वगत (एकही वृक्षमें

एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ॥ संहृत्य कालकलया कल्पांत इदमीश्वरः ॥१६॥ एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ॥ कालेनाऽऽत्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ॥ सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ॥ केवलानुभवानंदसंदोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ॥ संक्षोभयन्सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजंतीं विश्वतोमुखम् ॥ यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्त्रतः ॥ तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥

शाखा, पत्र और पुष्प आदिका भेद) भेदसे रहित और सर्वके अधिष्ठानरूप, प्रभु, आदिपुरुष, अपने स्वरूपमेंही रहे है. इस समयमें भगवान्का प्रभावरूप काल, जगत्की कारणरूप सत्त्वगुणादिक शक्तियोंको प्रधानमें लीन कर लेता है तब उपाधिरहित, स्वयंप्रकाश, अनुभवात्मक आनंदके समूहरूप, ‘ मोक्ष ’ ऐसे नामसे कहनेके योग्य, आदिपुरुष, प्रधान तथा पुरुषके ईश्वर और ब्रह्मादिक तथा दूसरेभी मुक्त जीव जिसको प्राप्त होते हैं ऐसा एक परमात्माही रहता है. ये परमात्मा अपने प्रभावरूप केवल कालहीसे अपनी त्रिगुणात्मक मायाको क्षोभित करके, प्रथम उस मायामेंसे महत्तत्त्वको उत्पन्न करता है. हे रागद्वेषादि शत्रुओंका दमन करनेवाले राजा ! इस महत्तत्त्वकोही तीन गुणोंके कार्यरूप और निजमेंसे उत्पन्न भयेहुए अहंकाररूप द्वारसे अनेक प्रकारके जगत्को उत्पन्न करनेवाला कहते हैं. यह समष्टिरूप महत्तत्त्व कि- जिससे जीव जन्मांतर पाया करता है इसीमें यह जगत्

उसमें उसका चित्त ऐसा लग गया कि-उस समयमें उसके समीपमें होकर, गाजों बाजोंके साथ राजा निकला उसकीभी उसे खबर नहीं रही. ऐसे जिसका चित्त ब्रह्माकार हो जाय वह योगी किसी पदार्थके पदार्थको वा मनोगत सुखदुःखादिकोंकोभी नहीं जाने. देखो, आसन जीतनेसे श्वास जीता जाता है और श्वास जीतनेसे मन निश्चल हो जाता है. क्षणमात्र मन निश्चल भये पीछेभी विषयोंकी वासनासे मनमें विक्षेप उठनेका अथवा सुषुप्तिमें जैसे सर्वथा मन लीन हो जाता है ऐसे लीन हो जानेका भय रहता है, तासों दृढ़ वैराग्यसे मनमें विक्षेपको उठने नहीं देना. और आलस्य छोड़कर, अभ्यासके योगसे उस मनको परमानंदरूप भगवान्‌में स्थिर रखना. इस प्रकार मनको एक परमानंद भगवान्‌में जोड़ देना कि- जिसमें स्थिति मिलनेसे मन धीरे २ आपही आप विषयोंकी वासनाओंको त्याग देवे. और रजोगुण तथा तमोगुण कि- जो विक्षेप तथा लय होनेके मूलरूप हैं उनकोभी वृद्धिंगत भये हुए उपशमरूप सत्वगुणसे हटा कर मनको ऐसा वश करै कि-वह गुण तथा उनके कार्योंसे रहित हो जानेपर

एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ॥ अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥
गृहारंभोऽतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ॥ सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १५ ॥

वृत्तिरहित होकर, मात्र ध्येय स्वरूपसे स्थितिको प्राप्त हो जावे. वृत्तियोंसे रहित भया हुआ मन ब्रह्माकारतासे रहे यही 'असंप्रज्ञात' नाम समाधि कहलाती है. इस प्रकार जिसका मन ब्रह्माकार होगया होवे ऐसे योगीको द्वैतकी स्फूर्ति बिलकुल नहीं रहती ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ (२२) सर्पसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. सर्प जैसे अकेला फिरता है, अपना एक ठिकाना नहीं रखता, सावधान रहता है, एकांतमें निवास करता है, गति परसे जहरीला और विना जहरीला जाननेमें नहीं आता, किसीको अपने साथ नहीं रखता और बहुत कम बोलता है ऐसे मुनिकोभी चाहिये कि- इकल्ला विचरे, अपना एक ठिकाना न राखे. सावधान रहे, एकांतमें निवास करे, किसी प्रकारसे अपनी रीति भांति दूसरेके जाननेमें न आने देवे, किसीको अपने साथमें न राखे और कम बोले ॥ १४ ॥ फिर सर्प जैसे अपने वास्ते बिल नहीं बनाता किंतु किसी दूसरेके कियेहुए बिलमें बैठकर सुखपूर्वक बढ़ा करता है ऐसे योगीकोभी चाहिये कि-अपने वास्ते घर नहीं बनाकर, दूसरोंके बनायेहुए स्थानमें रहकर, बढ़ा करे;

छोड़कर बाहिर गये थे. तहां उस समयमें उसका संबंध करनेके वास्ते वरके पक्षके लोग कि– जिनके साथ पहले गृहस्थने बात चीत कर राखी थी, वे दूसरे गाँवसे उसीके घर आगये; तब वह कन्या उनकी आपही सरभरा करने लगी ॥ ५ ॥ हे राजा ! उनको भोजन करानेके वास्ते वह कन्या एकांतमें धान कूटने लगी तब उसके हाथमेंकी चूरियां खण खण करने लगीं ॥ ६ ॥ तब कन्याने जाना कि ' यह मैं आप धान कूटनेको बैठी हूं यह ठीक नहीं और इस बातसे ये लोक मेरे नैहरको दरिद्र जान जायंगे तासों उस बुद्धिमती कुमारीने लज्जित होकर, दोनों हाथोंमेंसे चूरियां उतार दीं, केवल एक एक हाथमें दो दो चूरियां राखीं ॥

तेषामभ्यवहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिव ॥ अवघ्नंत्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ॥ बभंजैकैकशः शंखान्द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥ उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नंत्याः स्म शंखयोः ॥ तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम ॥ लोकाननुचरन्नेतांल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्त्ता द्वयोरपि ॥ एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥ मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः ॥ वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतंद्रितः ॥ ११ ॥ यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् ॥ सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिंधनम् ॥ १२ ॥ तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किंचिद्बहिरंतरं वा ॥ यथेषुकारो नृपतिं व्रजंतमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ इसप्रकार करके (धान कूटने) लगी तौभी वे दो दो चूरियां खण खण करने लगीं. तब उसने एक एक चूरी और उतार दी. फिर एक एक चूरी रही तब शब्द नहीं हुआ ॥ ८ ॥ हे अरिंदम यदु ! मैं कि– जो लोकोंका तत्त्व जाननेके वास्ते इस जगत्में विचर रहा हूं तिसने इस कन्यासे यह उपदेश लिया कि– ॥ ९ ॥ बहुत जन साथ रहनेसे कलह होवे और दोजन साथ रहें तो बात हुये विना रहे नहीं, तासों योगीको चाहिये कि– कुमारीके कंकणकी नाईं अकेला विचरै ॥ १० ॥ (२१) बाण बनानेवालेसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. एक बाण बनानेवाला मनुष्य बाण बना रहाथा तहां उस बाणको बराबर बनानेके वास्ते

इसमेंसे मैंने फलितार्थ इतना लिया है कि– आशा रखनी यही महादुःख है और आशासे निवृत्त रहना यही महासुख है. क्योंकि पिंगलाने पतिकी आशा छोड़ दी, तभी उसे सुखसे निद्रा आयी ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नवमें अध्यायमें कुरर–आदिसे तथा देहसे जो शिक्षा ली वह सुनकर, यदु राजा कृतार्थ हुआ. यह कृष्णजीने कहा ऐसी कथा होगी ॥ १ ॥ दत्तात्रेयजीने कहाकि– (१८) एक कुरर (टिटोड़ा) अपनी चोंचमें मांस लेकर जाता था उसे दूसरे बलवान् पक्षी कि जिनके पास मांस नहीं था वे मारने लगे. इससे मैंने यह शिक्षा ली कि– जो जो बहुत प्यारी बस्तु होवे उसका परिग्रह करना यही महादुःखदायी है ऐसे जान

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ॥ यथा संछिद्य कांताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे पिंगलोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ॥ अनंतं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥ १ ॥ सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ॥ तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविंदत ॥ २ ॥ न मे मानावमानौ स्तो न चिंता गेहपुत्रिणाम् ॥ आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥ द्वावेव चिंतया मुक्तौ परमानंद आप्लुतौ ॥ यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परंगतः ॥ ४ ॥ क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् ॥ स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बंधुषु ॥ ५ ॥

कर, जो पुरुष परिग्रहका त्याग करै वह पुरुष अनंत सुखको पाता है ॥ १ ॥ २ ॥ (१९) बालकसे शिक्षा पायी सो कहते हैं. बालकके जैसे मान वा अपमान नहीं है तथा घर व लड़कों बालोंकी जो चिंता होती है वहभी नहीं है, ऐसे मेरेभी मान वा अपमान नहीं है. और घर व लड़कों बालोंकी जो चिंता होती है वहभी नहीं है. मैं अपने साथही तौ क्रीडा करता हूं, और अपनेमेंही प्रीति रखकर, बालककी नाईं जगत्‌में विचरता हूं ॥ ३ ॥ एक तौ अज्ञानी और उद्यमरहित बालक तथा दूसरा गुणसे पर ईश्वरको पाया हुआ पुरुष ये दोही चिंतासे मुक्त और परमआनंदमें मग्न हैं ॥ ४ ॥ (२०) कुमारीसे जो शिक्षा पायी वो कहते हैं. एक गाँवमें एक गृहस्थकी कुमारी कन्याके घरके बंधुलोग किसी कार्यके प्रसंगसे उसको घरमें

हैं उन्होंने मैं कि- जो भार्या हूं तिसका क्या भला किया ? कुछभी नहीं; तासों इसलोक और परलोकमें परमेश्वरविना दूसरा कोईभी सेवन करनेके योग्य नहीं है, ॥ ३५ ॥ किसी प्राचीन शुभकर्मके योगसे भगवान् मुझपर प्रसन्न हुए. ऐसे सूचित होता है, कि- जिससे मुझको इस नीच आशामेंसे सुख देनेवाला वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ मेरा भाग्य जो मंद होता तो मुझे इस प्रकार निर्वेद देनेवाले क्लेश कदापि कभीभी नहीं होते. जिस वैराग्यसे पुरुष घरआदि बंधनको छोड़कर, शांतिको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ तासों प्रभुने यह वैराग्य देनेरूप मेरा जो उपकार किया है उसे शिरपर चढ़ाकर और पामर लोकोंके योग्य दुष्ट आशाओंको छोड़ कर, मैं उन्हीं प्रभुका शरण लेती हूं ॥ ३८ ॥ संतोष और इस विषयपर श्रद्धा रखकर, जो कुछ मिला है

नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा ॥ निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३६ ॥ मैवं स्युर्मंदभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ॥ येनानुबंधं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३७ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः ॥ त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥ ३८ ॥ संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती ॥ विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ३९ ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ॥ ग्रस्तं कालाहिनाऽऽत्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४० ॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाऽखिलात् ॥ अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कांततर्षजाम् ॥ छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥ ४२ ॥

उसीसे निर्वाह करती हुई मैं अब प्रिय आत्माके साथही विहार करूंगी. ॥ ३९ ॥ जीव कि- जो संसाररूप कूपमें पड़ा हुआ और विषयोंसे अंधा भयाहुआ तथा कालरूप सर्पसे ग्रसित भयाहुआ है, उसे भगवान् विना दूसरा कौन बचा सक्ता है ? ॥ ४० ॥ मैं कोई रक्षाके वास्ते भगवान्को भजूंगी ऐसे नहीं है क्योंकि- जब कालरूप सर्पसे ग्रसित भयेहुए इस जगत्को देखे और उससे सावधान होकर, इस लोक और परलोकके भोगसे वैराग्य पावे, तब आपही अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हो जाता है. तासों मैं केवल प्रेमसे भगवान्का भजन करूंगी ॥ ४१ ॥ दत्तात्रेयजीने कहा कि- यह पिंगला वेश्या इस प्रकार निश्चय कर, कांतकी तृष्णासे उत्पन्न भयीहुई दुष्ट आशाको काट कर, शांतिको प्राप्ति हो, शय्यामें जाकर, सोयी ॥ ४२ ॥

पिंगलाने कहा कि-विवेक न होनेके कारण मैं कि-जिसने मनका जय नहीं किया है उसके मनके मोहके विस्तारको देखो कि-जिससे मैं तुच्छ पुरुषसे कामनाकी इच्छा रखती हूँ ॥ २९ ॥ ये अपरोक्ष अंतर्यामी ईश्वर कि-जो निरंतर समीपमें रहनेवाले, धन देनेवाले और आनंद देनेवाले हैं उन्हें छोड़कर, मैं कामनाको नहीं देनेवाले, प्रत्युत दुःख, भयादिक, शोक तथा मोहके देनेवाले तुच्छ पुरुषका मूर्खतासे सेवन करतीहूं ॥ ३० ॥ अहो ! मैं कि-जो स्त्रियोंमें लंपट, लोभी और शोक करनेयोग्य पुरुषसे अपने शरीरको बेंचकर, धन और रतिकी इच्छा करती हूं. कि-जिसने संकेतवृत्तिरूप अतिनीच धंधेसे मेरे अंतःकरणको वृथा परिताप

पिंगलोवाच ॥ अहो मे मोहविततिं पश्यताविजितात्मनः ॥ या कांतादसतः कामं कामये येन बालिशा ॥ २९ ॥ संतं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ॥ अकामदं दुःखभयाधिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३० ॥ अहो मयाऽऽत्मा परितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्याऽतिविगर्ह्यवार्तया ॥ स्त्रैणान्नराद्यार्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥ ३१ ॥ यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचारोमनखैः पिनद्धम् ॥ क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति काऽन्या ॥ ३२ ॥ विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ॥ याऽन्यमिच्छंत्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥ ३३ ॥ सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ॥ तं विक्रीयाऽऽत्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३४ ॥ कियत्प्रियं ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः ॥ आद्यंतवंतो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३५ ॥

दिया ॥ ३१ ॥ पुरुषका शरीररूप घर कि-जिसमें वंश (आडसल), वंश्य (पीडा) और स्थूणा (खंभा) ये सब हड्डीके बनेहुए हैं. नौ मोहरियां (नरदवे) चलती (बहते) हैं और जो विष्ठा और मूत्रसे भराहुआ है. ऊपरकी तर्फ चमड़ा, रोम और नखोंसे मढ़ाहुआ है, तिसे मेरेविना दूसरी कौन स्त्री कांत समझकर सेवे, ? ॥ ३२ ॥ इस महाज्ञानी विदेह राजाके नगरमें मैं एकही मूढ़ बुद्धिवाली और दुष्ट हूं; क्योंकि स्वरूपको देनेवाले इन अविनाशी अंतर्यामीको छोड़कर, दूसरेसे भोगकी इच्छा करती हूं ॥ ३३ ॥ ये ईश्वरही प्राणीमात्रके मित्र और परमप्रिय आत्मरूप हैं तासों मेरा मन देनेके बदले उन्हें मोल लेकर, मैं अब उन्हींके साथ लक्ष्मीजीकी नाईं रमण करूंगी ॥ ३४ ॥ विषय, विषयोंको देनेवाले पुरुष और देवताभी कि- जो आदि अंतवाले और कालके ग्रासरूप

सुनो ॥ २२ ॥ यह वेश्या एक दिन पुरुषको अपने रतिस्थानमें ले जानेके वास्ते उत्तम सोलह श्रृंगार साजकर, सायंकालके समय घरके द्वारसे बाहिर बैठी ॥ २३ ॥ हे पुरुषोंमें उत्तम राजा ! मार्गमें धनवान् पुरुषोंको आते देखकर, धनकी लोभिन वह वेश्या उन पुरुषोंको निजको मूल्य दें ऐसे और सुरत (मैथुन) करनेके योग्य मानती थी ॥ २४ ॥ जो आये वे चले गये तब, संकेतवृत्तिसे जीविका करनेवाली वह वेश्या फिर विचार करने लगी कि– ' अबभी कोई बहुत द्रव्य देनेवाला धनवान् पुरुष मेरे समीप आ जायगा ' ॥ २५ ॥ इस प्रकार दुष्ट आशाके मारे जिसे निद्रा नहीं आयी ऐसी वह वेश्या बैठी बैठी वहांसे उठकर,

सा स्वैरिण्येकदा कांतं संकेत उपनेष्यती ॥ अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥
मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ॥ तान् शुल्कदान्वित्तवतः कांतान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥
आगतेष्वपयातेषु सा संकेतोपजीविनी ॥ अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥ एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलंबती ॥ निर्गच्छंती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥ तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः ॥ निर्वेदः परमो जज्ञे चिंताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ॥ निर्वेद अशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ २८ ॥

घरमें गयी और घरमें जाकर, पीछी बाहिर आयी, घड़ीएक घरमें घुसती है और घड़ीएक बाहिर आती है ऐसे करते करते आधीरात आगयी ॥ २६ ॥ धनकी आशासे जिसका मुख कुम्हिला रहा और सूख रहा था ऐसी वह दीन चित्तवाली वेश्या चिंता करती करती महानिर्वेदको प्राप्त हो गयी. यानी ' यह धंधा बहुत कर लिया, बस अब इतनाही बहुत है ' ऐसे उसको अलंबुद्धि प्राप्त हो गयी कि– जिससे सुख प्राप्त हो जाता है ॥ २७ ॥ जिसके मनमें निर्वेद उत्पन्न हुआ है ऐसी इस वेश्याने उस समयमें जो गाया यानी कहा वह मैं तुमसे अक्षर अक्षर कहता हूं सो सुनो. हे राजा ! निर्वेद (अब बस ऐसी बुद्धि) खड्गकी नांई पुरुषकी आशारूप पाशोंका काटनेवाला है, जबलग निर्वेद उत्पन्न न होवे तबतक देहका बंधन छोड़ देनेकी इच्छा नहीं होवे ॥ २८ ॥

---

१ कवित्त–प्रथम सकल शुचि मंजन अमलवास यावक सुदेश केशापशन सुधारिबो ॥ अंगराग भूषण विविध मुखवास राग कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो ॥ बोलनि हँसनि मृदु चातुरी चलनि चारु पल पल पतिव्रतप्रीति प्रतिपालिबो ॥ केशवदास सविलास करहु सुमुखि आछे इहि विधि सोलह शिंगारनि शिंगारिबो ॥ १ ॥

योगी खा लेते हैं. अर्थात् योगीको उद्यम विनाभी भोग मिल जाते हैं यह मैं पारधीसे सीखा हूं, ॥ १६ ॥ (१५) हरिणसे सीखा वो कहते हैं. हरिण जैसे पारधीके गायनसे मोहित हो जाता है, ऐसे बनमें विचरनेवाला संन्यासीभी गान गीत सुने तौ उसमें मोहित हो कर, बँध जाता है. तासों संन्यासीको कदापि विषयसंबंधी गान नहीं सुनना चाहिये ॥ १७ ॥ मृगीका पुत्र ऋषि ऋष्यशृंग वेश्यानके विषयसंबंधी नाच, वाद्य और गानके सेवनसे वेश्याओंका खिलौनासा बनकर, उनके वश हो गया॥ १८॥ (१६) मछलीसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. मछली जैसे जीभके रसके लोभसे कांटेसे विंधकर, मरजाती है, ऐसे रससे मोहित

ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् ॥ शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥ नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ॥ आसां क्रीडनकावश्य ऋष्यशृंगो मृगीसुतः ॥ ॥ १८ ॥ जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ॥ मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥ इंद्रियाणि जयंत्याशु निराहारा मनीषिणः ॥ वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥ तावज्जितेंद्रियो न स्याद्विजितान्येंद्रियः पुमान् ॥ न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिंगला नाम वेश्याऽऽसीद्विदेहनगरे पुरा ॥ तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनंदन ॥ २२ ॥

भयाहुआ देहाभिमानी मनुष्यभी अत्यंत दुःख देनेवाली जीभके लालचसे मरण पाता है ॥ १९ ॥ विद्वान् पुरुष आहारको छोड़कर, दूसरी इंद्रियोंको तुर्त जीत सक्ते हैं. परंतु उनसे जिह्वाका जय नहीं होता क्योंकि आहारका त्याग करनेसे प्रत्युत जिव्हाका लालच बढ़ता है ॥ २० ॥ दूसरी इंद्रियोंको जीत लेवे तो भले, परंतु जबलों रसना इंद्रिय नहीं जीती जाय, तबलों मनुष्य जितेंद्रिय नहीं कहा जाता. और रसना (जिव्हा) जीती गई तौ सब इंद्रियां जीती गयीं ऐसे समझना चाहिये. इसलिये रसकी आसक्ति छोड़कर, योगीको औषधकी नांई अन्न खाना चाहिये ॥ २१ ॥ (१७) पिंगला नाम वेश्यासे शिक्षा पायी वो कहते हैं. पहले विदेह राजाके नगरमें एक पिंगलानाम वेश्या रहती थी. हे राजा ! उससे जो मैंने शिक्षा पायी है वो मैं कहता हूं सो

१ यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥ तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १ ॥ अर्थ–संन्यासी और ब्रह्मचारी यह दोनों पके हुये अन्नके स्वामी हैं. इस लिये उन्हें अन्न न देके, जो खा लेवे तो चान्द्रायण व्रत करे. ऐसा स्मृतिमें कहा है. ॥ १ ॥

आगामी दिनके वास्ते अन्नादिकका संग्रह नहीं करे. मधुमक्षिकाकी नाईं जो अन्नादिकका संग्रह करे तौ उस अन्नके साथ आपभी मर जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ (१३) हाथीसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. जैसे हाथी पकड़नेवालोंके सन्मुख ठाढ़ी कीहुई हथिनीके लालचसे तृणआदिसे ढकेहुए गढ़ेके अंदर पड़कर, बँध जाता है ऐसे पुरुषभी स्त्रीके अंगके स्पर्श करनेके लालचसे बँध जाता है. तासों योगीको सच्ची स्त्रीका तो क्या ? परंतु काठकी पुतलीकाभी स्पर्श नहीं करना चाहिये. और वह स्पर्श हाथसे तौ क्या ? पर पाँवसेभी नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ और जो स्त्रीके अंगका स्पर्श करे तौ हथिनीका संग करताहुआ हाथी दूसरे बलवान् हाथियोंसे जैसे मारा जाय. ऐसे दूसरे बलवानोंके हाथसे मारा जाय ॥ १४ ॥ (१४) मधुहासे शिक्षा पायी सो कहते हैं. जैसे शहद ले जानेवाला पारधी बड़े कष्टसे संग्रह कीहुई शहदकी मक्खियोंके शहदको ले जाता है और भोगता है. ऐसे लोभीलोगोंका बड़े कष्टकरके संग्रह किया हुआ धन कि- जो देवतानके वा उपभोगके काममें नहीं आता, उसे दूसरा बलवान् पुरुष भोगता है और उससे छीनकर, तीसरा फिर ले जाता है. और उससे लूटकर फिर चौथा बलवान् ले जाकर, भोगता है. वृक्षके कोटरआदि गुप्त स्थलमें शहद होवे उसे जैसे पारधी (बहलिया) जानता है और ले लेता है. ऐसे लोभी मनुष्यका गुप्त स्थलमें छिपा रक्खा हुआ धनभी दूसरे लोग जानते हैं और हरलेते हैं. तासों योगीको वस्तुका संग्रह कथमपि (कोईतरहसेभी) नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥ मधुमक्षिकाओंने महाकष्टसे संग्रह कियेहुये शहदका उपभोग न किया हो तिससे पहले जैसे पारधी ले जाते हैं और भोगते हैं. ऐसे गृहस्थीलोग कि- जो महासंकट सहकर उपार्जन किये हुए धनसे वरसंबंधी सुखकी इच्छा रखते हैं, उनके रींध कर तैयार किये हुए अन्नको उन्होंने खाया न होवे तिससे पहले

पदाऽपि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ॥ स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अंगसंगतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ॥ बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसंचितम् ॥ भुंक्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ १५ ॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ॥ मधुहेवाग्रतो भुंक्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥

उसके विलासोंमें लालचके मारे महामोहमें पड़ जाता है॥ ७॥ स्त्री, सुवर्ण, आभरण और वस्त्रआदि पदार्थ कि- जो मायारचित हैं, उनमें उपभोगबुद्धिसे ललचाकर, उनसे अंधा भयाहुआ यह मूढ़पुरुष पतंगकी नाईं नाशको प्राप्त होता है. तासों योगीको चाहिये कि- इन वस्तुओंमें लोभ नहीं करै॥ ८॥ (१२) मधुकृत् दो प्रकारका है भ्रमर और शहदकी मक्खी. तहां भ्रमरसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. भौंरा जैसे पुष्कल सुगंधके लोभसे एकही कमलमें रहता है. और सूर्य अस्त होता है तब वह कमल बंद होजानेसे उसमें बँध जाता है. ऐसे योगीभी अच्छे २ पदार्थोंके लोभसे एकही घरका आश्रय कर ले; तौ उसमें बँध जाता है. तासों गृहस्थोंको नहीं सताते योगीके देहका जितनेसे निर्वाह हो जाय उतनाही अल्प आहार करना चाहिये. और वोभी

योषिद्धिरण्याभरणांबरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः॥ प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः॥ ८ ॥ स्तोकं स्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता॥ गृहानहिंसन्नातिष्ठेद्वृत्तिं माधुकरीं मुनिः॥ ९॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः॥ सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः॥ १०॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम्॥ पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः॥ मक्षिका इव संगृह्णन्सह तेन विनश्यति॥ १२॥

एक ठौरसे नहीं, किंतु जुदे २ घरोंसे ले आना चाहिये. भ्रमरकी भांति अत्यंत लोभमें नहीं पड़ना चाहिये॥ ९॥ भ्रमर जैसे छोटे बड़े सब पुष्पोंमेंसे सार लेता है ऐसे विद्वान् योगीकोभी चाहिये कि- छोटे बड़े सब शास्त्रोंमेंसे सार सार ले लेवे॥ १०॥ मधुमक्खीसे शिक्षा पायी वो कहते हैं शहदकी मक्खी जैसे शहदका संग्रह करती है तौ उसे मरना पड़ता है, ऐसे योगीभी जो सायंकालके वास्ते वा आगामी दिनके वास्ते अन्नादिकका संग्रह करे तौ उसे मरनाही पड़ता है. तासों योगीके हाथमें जितना अन्न समावे उतनाही वह लेवे परंतु उससे अधिक न लेवे. और अन्न भरनेका पात्र केवल अपना उदरही तौ राखे परंतु दूसरा कुछभी पात्र न राखे. सायंकालके वास्ते वा

खाकर, संतुष्ट रहता है, ऐसे मुनिकोभी चाहिये कि– उद्यमरहित रहकर, अच्छा, बुरा, अल्प, अधिक जो कुछ मिले वही खाकर, संतुष्ट रहे. जैसे उद्यम विना कियेभी प्रारब्धके अनुसार अपने आप दुःख आ प्राप्त होता है ऐसे सुखभी स्वयमेव प्राप्त हो जाता है; क्योंकि इंद्रियसंबंधी सुख स्वर्ग और नरकमें होताही है, तासों सुखके वास्ते उद्यम करनेमें मनुष्यको अपनी आयु वृथा नहीं गँवानी चाहिये. यदि खानेको नहीं मिले तबभी उद्यम न करते प्रारब्धके ऊपर आस्था रखकर, अजगरकी नाईं निराहार रह, बहुत दिनतक सो रहना; परंतु उद्यम नहीं करना ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ इंद्रिय, मन और शरीरका बल होवे तौभी देहको उद्यमरहित रखकर, सो रहना और आत्मप्राप्तिरूप स्वार्थमें लक्ष्य रखना. इंद्रियां परिपूर्ण होवें तौभी उनका कोईभी व्यापार नहीं करना. यह

शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ॥ यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥ ओजः-सहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ॥ शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेंद्रियवानपि ॥ ४ ॥ मुनिः प्रसन्नगंभीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ॥ अनंतपारोह्यक्षोभ्यः स्तिमितोदइवार्णवः ॥ ५ ॥ समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ॥ नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेंद्रियः ॥ प्रलोभित ः पतत्यंधे तमस्यग्नौपतंगवत् ॥ ७ ॥

शिक्षा मैंने अजगरसे पायी है ॥ ४ (१०) अब समुद्रसे शिक्षा पायी सो कहते हैं. निश्चल जलवाला समुद्र जैसे बाहर प्रसन्न और भीतर गंभीर तथा जिसका तलस्पर्श अथवा अतिक्रम न हो सके ऐसा व अंत और पारसे रहित और क्षोभरहित है, ऐसे योगीकोभी बाहिर प्रसन्न, भीतर गंभीर, तलस्पर्श वा अतिक्रम करनेको अशक्य, स्वरूपके आविर्भावके हेतु कालसे तथा देशसे होते अंत और पारसे रहित और रागद्वेषादिकोंको त्याग कर, निर्विकार रहना चाहिये ॥ ५ ॥ फिर समुद्र जैसे वर्षाऋतुमें अनेक नदियां मिलनेपरभी नहीं बढ़ता. और ग्रीष्मऋतुमें उतनी नदियां नहीं मिलने परभी नहीं घटता, ऐसे योगीभी नारायणपरायण रहकर, वैभवादिक मिलनेसे प्रसन्न न होवे और न मिलनेसे अप्रसन्न न होवे ॥ ६ ॥ (११) पतंगसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. पतंग जैसे अग्निका रूप देखकर, लालचके मारे उसमें पड़ता है, ऐसे अजितेंद्रिय पुरुष प्रभुकी मायारूप स्त्रीका रूप देखकर,

शून्य घरमें मुझे रखकर, अपने अच्छे पुत्रोंके साथ स्वर्गमें जाती है ॥ ६९ ॥ दीन, रंडुआ, दुःखपूर्वक जीनेवाला, जिसकी संतान नष्ट होगयी है, ऐसा अकेला मैं अब इस उजड़े घरमें किसवास्ते जीनेकी इच्छा करूं ? ॥ ७० ॥ इस प्रकार विलाप करता यह मूर्ख और दीन कपोत इसप्रकार इन लोकोंको जालमें फँसेहुए और मृत्युके ग्रासरूप भयेहुए, तड़पते देखता २ आप भी जालमें जा पड़ा ॥ ७१ ॥ इस गृहस्थी कपोतको बच्चे और मादीके साथ लेकर, अपना काम हो जानेसे यह क्रूर पारधी (बहलिया) अपने घर गया ॥ ७२ ॥ जो कुटुंबी मनुष्य अशांत चित्तवाला, सुखदुःखादि द्वंद्वपदार्थोंमें लगाहुआ, कृपण

सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ॥ जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवाऽऽवृतान् शिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ॥ स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ॥ कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥ एवं कुटुंब्यशांतात्मा द्वंद्वारामः पतत्रिवत् ॥ पुष्णन्कुटुंबं कृपणः सानुबंधोऽवसीदति ॥ ७३ ॥ यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ॥ गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सुखमैंद्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च ॥ देहिनां यद्यथादुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ १ ॥ ग्रासं सुमृष्टं विरसं महांतं स्तोकमेव वा ॥ यदृच्छयैवाऽऽपतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥

और कुटुंबका भरण पोषण करनेवाला होवे, वह मनुष्य इसतरह कपोतकी भांति अपने परिवारके साथ दुःखी होता है ॥ ७३ ॥ घरकी आसक्ति पशु पक्षियोंकोभी अनर्थ देती है तब मनुष्यको देवे उसमें तो क्या कहना ? तासों मुक्तिके खुले द्वाररूप मनुष्यजन्मको पाकर, जो जन कपोतकी भांति घरमें आसक्त होकर रहे, वह जन चढ़कर पड़ा ऐसे विद्वान लोक जानते हैं ॥ ७४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ आठवें अध्यायमें भगवानने अजगरादि नव गुरुनसे दत्तात्रयजीने जो शिक्षा ली वो उद्धवजीसे कही यह कथा होगी ॥ १ ॥ गुरु दत्तात्रेयजीने कहा कि– महाराज ! (१) जैसे अजगर उद्यमरहित रहकर, अच्छा, बुरा, अल्प, अधिक जो कुछ यदृच्छासे मिले उसीको

बच्चोंके वास्ते अन्न लेनेको वनमें गये. और अन्नके लालचसे बहुत बेरतक बनमें फिरे ॥ ६२ ॥ पीछेसे कोई वनमें विचरने-
वाला पारधी (चिड़ीमार) चला आया उसने यदृच्छासे घोंसलेके समीपमें उन बच्चोंको उड़ते देखकर, जाल फैलाकर,
पकड़ लिया ॥ ६३ ॥ बच्चोंके भरण- पोषणमें निरंतर जिनका उत्साह लगा हुआ था ऐसे वे दोनों कपोती और कपोत
वनमें गये. सो वहांसे खानेके वास्ते चारा लेकर, पीछे घोंसलेके निकट आये ॥ ६४ ॥ वहां अपने बच्चोंको जालमें बंधेहुए
और चिल्लाते देखकर, अतिदुःखित भयीहुई कपोती चिल्लाती २ उनके समीप जानेको दौड़ी ॥ ६५ ॥ वारंवार स्नेहसे

दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः ॥ जगृहे जालमातत्य चरतः स्वालयांतिके ॥ ६३ ॥ कपो-
तश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ॥ गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ६४ ॥ कपोती स्वा-
त्मजान्वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान् ॥ तानभ्यधावत्क्रोशंती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥ साऽ-
सकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ॥ स्वयं चावध्यत शिचा बद्धान्पश्यंत्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥ क-
पोतश्चाऽऽत्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् ॥ भार्यां चाऽऽत्मसमां दीनो विललापातिदुःखि-
तः ॥ ६७ ॥ अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ॥ अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥
अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ॥ शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥

बँधीहुई और भगवान्‌की मायासे दीनचित्तवाली बिचारी वह कपोती बच्चोंको जालमें फँसेहुए देखकर, स्मृतिभ्रष्ट हो जानेके
कारण आपभी जालमें फँसगयी ॥ ६६ ॥ प्राणोंसेभी अतिप्रिय बच्चोंको और अपनेको जैसी चाहिये ऐसी स्त्रीको बँधी हुई देखकर,
अत्यंत दुःखी भयाहुआ बिचारा कपोत विलाप करने लगा ॥ ६७ ॥ अहो ! मैं कि- जो अति-अल्प पुण्यवाला और दुर्मति हूं
तिसका यह सत्यानाश मिल गया, तिसे देखो. मैं अबतक तृप्त नहीं हुआ था और मेरे मनोरथ पूर्ण नहीं हुए थे. तिससे पह-
लेही धर्म, अर्थ और काम देनेवाला घर विध्वंस होगया ॥ ६८ ॥ जैसी चाहिये वैसी अनुकूल रहनेवाली और पतिव्रता यह स्त्री

स्थी जोड़ेने परस्पर दृष्टिके साथ दृष्टि, अंगके साथ अंग और बुद्धिके साथ बुद्धि बांध दी ॥ ५४ ॥ ये दोनों सोना, बैठना, फिरना, खड़े रहना, बातें करनी, रमना और खाना इत्यादिकमें निःशंक होकर, संग संग रहतेहुए वनकी पंक्तियोंमें विचरते थे ॥ ५५ ॥ हे राजा ! कपोतको प्रसन्न करती और उसकी अत्यंत प्रेमपात्र बनीहुई कपोती जो जो वस्तु चाहती वह वह पदार्थ वह अजितेंद्रिय कपोत दुःख पाकरभी ला दिया करता ॥ ५६ ॥ इस पतिव्रता कपोतीके पहलीबेर गर्भ रहा और समय-पर अपने घोंसलेमें अपने पतिके पास उसने अंडे दिये ॥ ५७ ॥ इन जलसे भरेहुए अंडोंमें समय पाकर, भगवान्‌की

शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ॥ मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यं यं वांछति सा राजंस्तर्पयंत्यनुकंपिता ॥ तं तं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेंद्रियः ॥ ५६ ॥ कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ॥ अंडानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥ तेषु काले व्यजायंत रचितावयवा हरेः ॥ शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दंपती पुत्रवत्सलौ ॥ शृण्वंतौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥ तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ॥ प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योऽन्यं विष्णुमायया ॥ विमोहितौ दीनधियौ शिशून्पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थं तौ कुटुंबिनौ ॥ परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥

मायाकी अचिंत्य शक्तिसे कोमल २ अंग और रोमवाले बच्चे पैदा हुए ॥ ५८ ॥ प्रसन्न भयेहुए और पुत्रोंपर प्रेम रखने-वाले वे स्त्री-पुरुष अपने बच्चोंका भरण पोषण करते उनका भाषण सुनकर, प्रिय लगे ऐसे तुतराते बोलनेसे सुख पाते रहे ॥ ५९ ॥ इन आनंदमें रहते हुए बच्चोंकी कोमल २ परें, कूजन और बचपनकी भोली चेष्टा और माता पिताके सन्मुख आना, इत्यादिसे वे कपोती और कपोत बहुत प्रसन्न होते थे ॥ ६० ॥ हृदयमें परस्पर स्नेहसे बंधेहुए, भगवान्‌की मायासे मोहित भयेहुए और दीन बुद्धिवाले ये पक्षी अपने छोटे २ बच्चोंका पोषण करते थे ॥ ६१ ॥ तहां एकदिन ये दोनों कुटुंबी पक्षी

विकार गुप्त रीतिसे चले जाते कालके हेतु देहकेही होते हैं परंतु आत्माके नहीं होते॥ ४८ ॥ सिंहावलोकनसे फिर अग्निकी शिक्षा
कहते हैं-अग्निकी ज्वालायें जैसे क्षण क्षणमें नाश होतीं जातीं हैं और क्षण २ में उत्पन्न होतीं जातीं हैं परंतु वे अपने जाननेमें
नहीं आतीं. ऐसे प्रवाहके समान अविच्छिन्न वेगवाले कालसे आत्माके शरीर क्षण २ में नष्ट होते हैं और क्षण २ में उत्पन्न होते
हैं, परंतु वे अपने जाननेमें नहीं आते. तासों देहोंको क्षणभंगुर जानकर, योगीको वैराग्य रखना चाहिये ॥ ४९ ॥ (७) सूर्यसे
शिक्षा पायी वो कहते हैं. सूर्य जैसे आठ महीनोंमें अपनी किरणोंसे जलको खैंचते हैं और वर्षाऋतुमें पीछा किरणोंसे देते हैं.
परंतु उसमें लेने और देनेका अभिनिवेश नहीं रखते. ऐसे योगीकोभी चाहिये कि- इंद्रियोंसे अपेक्षित पदार्थोंका ग्रहण करे और

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथाऽर्चिषाम् ॥ ४९ ॥
गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुंचति ॥ न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुद्ध्य-
ते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ॥ लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥ ना-
तिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ॥ कुर्वन्विंदेत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥ क-
पोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ कपोत्या भार्यया सार्द्धमुवास कतिचित्समाः ॥ ५३ ॥ क-
पोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ॥ दृष्टिं दृष्ट्यांगमंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबंधतुः ॥ ५४ ॥

कोई मांगनेको आवे तब देवे, परंतु उसमें अभिनिवेश[1] नहीं राखे ॥ ५० ॥ फिर सूर्य जैसे आकाशमें अपने स्वरूपमें रहते हैं वहां
भिन्न २ नहीं है. परंतु जलके कूंड़े आदि पदार्थोंमें प्रतिबिंब पड़नेसे भिन्न २ रूप दीखता है, ऐसे आत्मा अपने स्वरूपमें भिन्नरूप
नहीं है परंतु देहादिकोंमें रहता है तब स्थूलबुद्धिवालोंको ईश्वर होनेपरभी भिन्न दीखता है ऐसे योगीको विचारना चाहिये
॥ ५१ ॥ (८) कपोत (कबूतर) से जो शिक्षा पायी वो कहते हैं. किसी पुरुषको किसी स्थलमें अतिप्रीति वा रमण
करनेआदिमें अतिआसक्ति नहीं करनी चाहिये. और जो करे तो दीन बनकर, कपोतकी भांति दुःखी होता है ॥ ५२ ॥ कोई
एक कपोत वनमें वृक्षमें घोंसला बनाकर, अपनी स्त्री कपोतीके साथ कितनेएक वर्षतक रहा ॥ ५३ ॥ स्नेहसे बद्धहृदय इस गृह-

१ हमें यह कार्य अवश्य करना है ऐसे आग्रहयुक्त मनके संयोगको अभिनिवेश कहते हैं.

भक्षण करने परभी दोषसे रहित रहता है ॥ ४५ ॥ फिर अग्नि जैसे कहीं गुप्त और कहीं स्पष्ट तथा कल्याणकी इच्छावालोंके उपासना करनेके योग्य है व हवि देनेवालोंके भूत भविष्यके पापोंको भस्म करके, परेच्छासे सर्व स्थलमें भक्षण करता है, ऐसे योगीकोभी चाहिये कि– किसी जगह गुप्त और कहीं प्रगट और कल्याणकी इच्छावालोंके उपासना करनेके योग्य रहे तथा अन्न देनेवालोंके भूत, भविष्य पापोंको भस्म करके, परेच्छासे सर्व स्थलमें भक्षण करे ॥ ४६ ॥ फिर अग्नि जैसे काष्ठोंमें रहनेसे उस उस काष्ठके सदृश लंबा छोटा आदि रूपवाला प्रतीत होता है परंतु वस्तुतः वैसे रूपवाला नहीं है, ऐसे आत्माभी अपनी अविद्यासे रचेहुए इन उच्च नीच देहोंमें रहनेसे उच्च नीचतावाला प्रतीत होता है परंतु वास्तविक रीतिसे उच्च वा नीच नहीं है ऐसे योगी विचार करे ॥ ४७ ॥ (६) चंद्रमासे शिक्षा पायी सो कहते हैं. जैसे बढ़ना, घटना, उत्पत्ति और नाश इत्यादि सर्व

क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेयइच्छताम् ॥ भुंक्ते सर्वत्र दातृणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥
स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ॥ प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७॥ विसर्गाद्याः
श्मशानांता भावा देहस्य नात्मनः ॥ कलानामिव चंद्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥

चंद्रमाकी प्रकाशरूप कलाओंकेही होता है परंतु चंद्रमाके उनमेंसे कुछभी नहीं है (चंद्रमा जलमय मंडल है. और सूर्य तेजोमय मंडल है. ये दोनों एक नक्षत्रपर आ जाते हैं तब चक्षुको एकदेशमें रहेहुए सूर्यमंडलका व्यवधान पड़नेसे चंद्रमा नहीं दीखता, यही अमावास्या कहलाती है. फिर साठ घड़ीसे चंद्रमा दूसरे नक्षत्रपर जाय और सूर्य तो तेरह दिनोंमें दूसरे नक्षत्रपर जाय. तासों प्रतिपदासे ले विषम रीतिसे रहेहुए सूर्यमंडलका प्रतिदिन पन्द्रहवां पन्द्रहवां भाग जलमय मंडलमें प्रतिबिंबित भयाहुआ दीख पड़ता है वह कला कहलाती है. ऐसे होते २ पन्द्रहवें दिन तेरह नक्षत्रका अंतर पड़नेसे सत्ताईस नक्षत्ररूप राशिचक्रके मध्यमें चंद्रमा और सूर्य दोनों एक दूसरेके सन्मुख आ जाते हैं तब पृथ्वीकी छायासे लांछित भयाहुआ संपूर्ण प्रतिबिंब दीख पड़ता है वह पूर्णिमा कहलाती है. पूर्णिमाके दिन अमावास्याके प्रतिबिंबके साथ सोलह कलावाला चंद्रमा कहलाता है. पीछा प्रतिपदासे ले ये दोनों मंडल विषम होनेसे प्रतिदिन एक कला घटती चली जाती है) ऐसे जन्मसे मरणपर्यंतके छः ही

वायु जैसे सुगंधि और दुर्गंधिवाली प्रतीत होती है परंतु वस्तुतः उसमें सुगंधि दुर्गंधि नहीं है ऐसे आत्मा पृथ्वीके विकाररूप देहादिकमें रहनेसे जन्म मरणादिकवाला प्रतीत होता है, परंतु वास्तविक रीतिसे उस धर्मवाला नहीं है यह मैं बाहिरी वायुसे सीखा हूं ॥ ४१ ॥ (३) आकाशसे जो शिक्षा पायी वो कहते हैं. आकाश जैसे सर्वमें व्याप्त है तथापि उसके किसीका संग नहीं है और उसका परिच्छेदभी नहीं है, ऐसे देहके भीतर रहनेपरभी योगीको चाहिये कि- ब्रह्मस्वरूपकी भावनासे अपने आत्माको स्थावर जंगममें अनुस्यूततासे व्याप्त और वहभी मणियोंमें सूत्रकी नाई नहीं; किंतु सर्व अंशमें व्याप्त समझकर, उस आत्माके किसी देहादिकका संग या किसी पदार्थसे परिच्छेद नहीं है ऐसे बिचारे ॥ ४२ ॥ फिर आ

पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ॥ गुणैर्न युज्यते योगी गंधैर्वायुरिवाऽऽत्मदृक् ॥ ४१ ॥ अंतर्हितश्च स्थिरजंगमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ॥ व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसंगमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ॥ न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ॥ मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ॥ सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥

काशके जैसे वायु प्रेरित और जाने आनेवाले मेघ वा रजआदि पदार्थोंका स्पर्श नहीं है, ऐसे कालके सृजेहुए पृथ्वी, जल और तेजमय पदार्थ कि-जो जाते हैं और आते हैं उनका जिनके स्पर्श नहीं है ऐसे योगीको जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ (४) जलसे सीखा वो कहते हैं. जल जैसे स्वच्छ स्वभावसे स्निग्ध, मधुर, मनुष्योंके पवित्र होनेका स्थान और दर्शन, स्पर्शन तथा कीर्तनसेभी पवित्र करनेवाला है. ऐसे योगीकोभी स्वच्छ, स्वभावसे स्निग्ध, मधुर भाषण करनेवाला, मनुष्योंके पवित्र होनेका स्थान और दर्शन, स्पर्शन व कीर्तनसेभी पवित्र करनेवाला होना चाहिये ॥ ४४ ॥ (५) अग्निसे शिक्षा पायी वो कहते हैं. अग्नि जैसे तेजस्वी, प्रतापसे दीप्त, क्षोभकरनेको अशक्य और उदरमात्र पात्रवाला होनेसे सर्वभक्ष होनेपरभी दोषसे रहित रहता है, ऐसे योगीभी ज्ञानके अतिशयसे तेजस्वी, तपसे दीप्त, मोहित करनेको अशक्य और उदरमात्र पात्रवाला होनेसे सर्व वस्तुका

दबाते हैं, तथापि पृथ्वी अपने नियमसे चलायमान नहीं होती. तैसे दैवाधीन प्राणी धीर पुरुषको दुःख देवें तौभी तिनके दैवाधीनपनको जाननेवाले उस पुरुषको अपने नियमसे चलायमान न होना चाहिये, यह पृथ्वीसे सीखा है ॥ ३७ ॥ पर्वतभी पृथ्वीरूप है तिससे मैंने यह सीखा है सो सुनो. पर्वतकी वृक्ष, तृण और झरनेआदिको उत्पन्न करनेवाली सकल क्रियायें निरंतर परोपकारके वास्तेही हैं. और पर्वतका जन्मभी परोपकारके वास्तेही है, वैसे साधु पुरुषकोभी चाहिये कि– अपनी सकल क्रियायें और जन्मभी परोपकारके वास्ते राखे. वृक्षभी पृथ्वीरूप हैं तासों तिनसे जो शिक्षा पाई है वो कहते हैं. वृक्ष जैसे निरंतर पराधीन रहकर, निर्वाह करते हैं अर्थात् दूसरे, लोक आपको काटडालें अथवा उखेड़कर, ले जायं तथापि वह उसे स्वीकार करता है ऐसे साधुकोभी पराधीन रहना चाहिये, यानी दूसरे मार डारें अथवा उठा ले जायं तौभी उसका स्वीकार और सहन

शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकांतसंभवः ॥ साधुःशिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥ प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेंद्रियप्रियैः ॥ ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ॥ गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥

करना ॥ ३८ ॥ (२) वायु दो प्रकारकी है प्राण और बाह्य, तहां प्राणवायुसे जो शिक्षा पायी है वो कहते हैं. प्राण जैसे केवल आहार मिलनेसे संतुष्ट होजाता है परंतु रूपरसादिक इंद्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा नहीं रखता, ऐसे योगीकोभी आहारमात्र मिलनेसेही संतोष रखना, पर उस उसमें अच्छे या बुरे आहारकी अथवा दूसरे विषयोंकी अपेक्षा नहीं रखनी. आहार नहीं करै तौ मन विव्हल हो जाय और तिससे ज्ञानका नाश हो जाय तासों देहके निर्वाहके वास्ते जैसा आहार मिले ऐसा आहार कर लेना पर उसमें अच्छे आहारकी अथवा दूसरे विषयोंकी अपेक्षा नहीं राखनी; क्योंकि जो ऐसी अपेक्षा राखे तौ वाणी और मन विक्षिप्त हो जायं ॥ ३९ ॥ जैसे वायु बनमें होवे तब प्रसन्न नहीं होती और अग्निमें होवे तब अप्रसन्न नहीं होती, तैसे गुणदोषसे रहित बुद्धिवाले योगीकोभी चाहिये कि– शीत और उष्ण इत्यादि अनेक धर्मवाले विषयोंमेंसे अनुकूल विषय मिले तब तौ किसी प्रकारसे प्रसन्न न होवे और प्रतिकूल मिले तब किसी प्रकारसे अप्रसन्नभी नहीं होवे ॥ ४० ॥

ठाढे हाथीकी नाई कुछभी तापको प्राप्त नहीं होते. ऐसा परम आनंद आपको कहासे प्राप्त हुआ ? ॥ २९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप कि- जो विषयभोगसे और स्त्रीपुत्रादिकसेभी रहित हो. तिनके चित्तमें ऐसा आनंद किस कारणसे रहता है ? उसका कारण हम पूंछते हैं सो आप कहो ॥ ३० ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि- ब्राह्मणोंके भक्त और सुबुद्धि यदुराजाने इस प्रकार आदर सत्कार करके प्रश्न किया. तब गुरु दत्तात्रेयजीने प्रणत यदुराजासे कहा ॥ ३१ ॥ दत्तात्रेयजी बोले कि- हे राजा ! मेरे बुद्धिसे

त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानंदकारणम् ॥ ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ॥ पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ संति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ॥ यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान् शृणु ॥ ३२ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चंद्रमा रविः ॥ कपोतोऽजगरः सिंधुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ॥ कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ॥ शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥ यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ॥ तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ॥ तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥

ग्रहण किये हुए गुरु बहुत हैं. जिन गुरुनसे शिक्षा पाय, मुक्त होकर, मैं विचरता हूं उन गुरुनके नाम कहता हूं सो सुनो ॥ ३२ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्रमा, सूर्य, कपोत अजगर सर्प, समुद्र, पतंग, शहदकी मक्खी हाथी ॥ ३३ ॥ शहद ले जानेवाला, हरिण, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर (टिटोड़ी) बालक, कुमारी, बाण बनानेवाला, सर्प, मकरी और भ्रमरी ॥ ३४ ॥ इन चौबीसोंको मैंने गुरु बनाया है. इनकी वृत्तियोंपरसे मैंने अपनी शिक्षा ली है ॥ ३५ ॥ हे पुरुषसिंह ! हे ययातिके पुत्र यदु ! जिससे मैंने जिस रीतिसे जो शिक्षा ली है वह मैं कहता हूं सो सुनो ॥ ३६ ॥ (१) पृथ्वीको प्राणीमात्र

१ यानी मैं अपनी बुद्धिसेही सार २ ग्रहण किया हूं कुछ उन्होंने मेरे लिये उपदेश नहीं किया भावार्थ यह है कि-उक्त चौबीसवें श्लोकके अनुकूल इन्होंके उदाहरण ले मैं आपीआप ज्ञानको प्राप्त हुवा हूं.

यथार्थ रीतिसे हेर लेते हैं. सो इस प्रकार कि- " बुद्धिआदि जड़ पदार्थोंका प्रकाश एक स्वयंप्रकाश वस्तुविना नहीं बन सकता, तासों सर्व दृश्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला जो स्वयंप्रकाश वस्तु है वह आत्मा है. " इस विषयमें इसप्रकार अनुमानभीहोता है कि-बुद्ध्यादिक पदार्थ, एक स्वतंत्र कर्तासे प्रेरित हैं, क्योंकि वे साधनरूप हैं. जो जो साधनरूप होता है वह दूसरे स्वतंत्र कर्तासे प्रेरित होता है, जैसे वसुला और कुल्हाड़ीआदि साधनरूप हैं, तासों ये बढ़ईसे प्रेरित हैं इसी तरह बुद्धिआदि दृश्य पदार्थोंका प्रेरक जो स्वतंत्र कर्ता है वह आत्मा है. ऐसा अनुमान करके सावधान पुरुष, मुझे हेर लेते हैं॥ २३ ॥ आपने आप उदाहरण लेकर विचार करनेसेभी ज्ञान प्राप्त हो जाता है. इस विषयमें गुरुदत्तात्रेय और महातेजस्वी यदुराजाका संवादरूप पुरातन इतिहास कहनेमें

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥ अवधूतं द्विजं कंचिच्चरंतमकुतोभयम् ॥ कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥ यदुरुवाच ॥ कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ॥ यामासाद्य भवाँल्लोके विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥ प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ॥ हेतुनैव समीहंते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥ त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ॥ न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥ जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ॥ न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गंगांभस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥

आता है ॥ २४ ॥ अवधूत वेषवाले, महाविद्वान् और सर्वदा यौवन अवस्थावाले गुरु दत्तात्रेयजी, कि-जो निर्भय रीतिसे जगतमें विचरते थे, उन्हें देखकर, धर्मवेत्ता यदुराजाने इस रीतिसे पूंछा ॥ २५ ॥ यदुने कहा कि- हे ब्रह्मन् ! आप कि- जो कुछभी कर्म नहीं करते तिनको इस प्रकार सर्व लोकोंसे विलक्षण और निपुण बुद्धि कहांसे प्राप्त हुई ? जिस बुद्धिको पाकर, आप विद्वान् होनेपरभी बालककी भांति लोकमें विचरते हो, ॥ २६ ॥ प्रायः मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और आत्मविचारमें प्रवृत्त हैं. और तिनमेंभी आयुष्य, यश वा लक्ष्मीकी कामनाहीसे प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ आप तौ समर्थ, ज्ञानवान्, निपुण, सुरूप और अमृतकासा मधुर भाषण करनेवाले, होनेपरभी जड़, उन्मत्त और पिशाचकी नाईं कुछभी कार्य नहीं करते. और न कुछभी चाहते हो ॥ २८ ॥ सबलोक काम और लोभरूप दावानलसे जल रहे हैं. तिनमें आप अग्निसे मुक्त होकर, गंगाजलमें

भिन्न मानते हैं ॥ १७ ॥ कितनेएक दुष्ट स्वभाववाले हैं, कितनेएक सेवन करनेपरभी फल देनेके समयमें नष्ट हो जाते हैं. कितनेएक बिलकुल अज्ञ हैं. कितनेएक रक्षा करनेमें असमर्थ हैं. और कितनेएक स्थानसे भ्रष्ट हो जाते हैं. और आप तौ निर्दोष, सर्व देश कालमें अविनाशी, सर्वज्ञ, रक्षा करनेमें समर्थ और कलादिकके बाधसे रहित वैकुंठलोकमें सदा वास करनेवाले हो, तासों विषयोंसे खेद पाया हुआ और दुःखोंसे तपा हुआ मैं, आप कि- जो नरके सखा नारायण हो तिनके शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ १८ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि- बहुधा इस जगत्‌में लोकके तत्त्वकी परीक्षा करनेवाले मनुष्य आपही अपने आत्माको

तस्माद्भवंतमनवद्यमनंतपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुंठविकुंठधिष्ण्यम् ॥ निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥ समुद्धरंति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥ यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते ॥ २० ॥ पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः ॥ आविस्तरां प्रपश्यंति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः ॥ बह्व्यः संति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥ अत्र मां मार्गयंत्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ॥ गृह्यमाणैर्गुणैर्लिंगैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥

विषयोंकी वासनाओंमेंसे निकाल लेते हैं. गुरुके उपदेशकी कुछभी अपेक्षा नहीं रखते ॥ १९ ॥ पशुआदिके शरीरमेंभी हित अहित जाननेमें आपही अपना गुरुरूप होता है. और मनुष्यके शरीरमें तौ विशेषकरके होताही है; कारण यह कि-मनुष्यके शरीरमें प्रत्यक्ष और अनुमानसे अपना स्वरूप जानना सुगम पड़ता है ॥ २० ॥ पशुआदिकी अपेक्षा मनुष्यमें ज्ञानादिक सर्व शक्तियां अतीव अधिक होती हैं. तासों मनुष्यशरीरमें आत्मा अतीव प्रत्यक्ष है. ऐसे सांख्य और योगमें निपुण बुद्धिवाले धीर पुरुषोंने निश्चय किया है ॥ २१ ॥ एक, दो, तीन और चार पांववाले, व बहुत पैरवाले तथा पांवरहित अनेक अनेक शरीर रचेहुए हैं; तिनमें मनुष्यका शरीर मेरे प्रिय है ॥ २२ ॥ इस मनुष्यशरीरमें मैं कि- जो बुद्धिआदि दृश्य पदार्थोंसे भिन्न हूं तिसे सावधान पुरुष

आज्ञा की. तव महावैष्णव उद्धवजीने प्रणाम करके तत्त्व जाननेकी इच्छासे इस प्रकार भगवान्से प्रार्थना की ॥ १३ ॥ उद्धवजीने कहा कि– हे योगेश्वर ! हे योगके ज्ञाता पुरुषोंके गुप्त निधिरूप ! हे योगरूप ! हे योगके उत्पादक ! आपने मेरे कल्याणके वास्ते जो संन्यास लक्षण त्याग कहा, वह केवल आपकी महिमाके गौरवसे कहा, परंतु मेरे अधिकारको विचार कर नहीं कहा; कारण यह कि– जैसे आरोग्यके वास्ते सर्वस्व, दान करनेमें आता है परंतु वह दान किये पीछे जो धन मिले वह लेनेके वास्ते छुट्टी है ऐसे इसमें एकवेर त्याग किये पीछे, पीछे जो घर आदि मिलें उन्हे लेनेकी छुट्टी होवे तौ ऐसा त्याग मुझसे बन सकै परंतु इसमें तौ पीछा कुछ लिया जायही नहीं अतएव ऐसा त्याग जो आपने कहा वह मेरे जैसे पुरुषसे बन सकै नहीं ॥ १४ ॥

उद्धव उवाच ॥ योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसंभव ॥ निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥ त्यागोऽयं दुष्करो भूमन्कामानां विषयात्मभिः ॥ सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरितिमे मतिः ॥ १५ ॥ सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबंधे ॥ तत्त्वंजसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्ननुशाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥ सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ॥ सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥

हे भूमन् ! हे सर्वात्मन् ! जिनका चित्त विषयोंमें लगाहुआ है उन पुरुषोंसे ऐसा त्याग बनना अतिकठिन है. तिसमेंभी जो आपके अभक्त हैं उनसे तौ बनना अत्यंतही कठिन है, ऐसे मैं मानता हूं ॥ १५ ॥ आपने त्याग करनेके वास्ते मुझे उपदेश किया, पर मैं तो मूढ़बुद्धि और आपकी मायाके रचेहुए देह पुत्रादिकमें अहंता ममतासे बूड़ा हुआ हूं. तासों हे भगवन् ! आपके कहेहुए विषयको जिस रीतिसे मैं दास अनायाससे समझ जाऊं और साध लूं, ऐसी रीतिसे शनैः शनैः उपदेश करो ॥ १६ ॥ हे ईश्वर ! आत्मा कि– जो सत्य और स्वयंप्रकाश है तिसका मुझे उपदेश करनेवाला आप विना दूसरा कोईभी देवतानमेंभी मेरे देखनेमें नहीं आता; कारण यह कि– ये सर्व ब्रह्मादिक प्राणीमात्र आपकी मायासे मोहित होनेके कारण विषयोंको आपसे

विधिनिषेधका प्रतिपादन करनेकेवास्ते वेदही भेदकी सत्यता कहता है ऐसे कथंचित् प्रतीत होता है; तथापि वस्तुतः विचार कर देखते हैं तौ जिसकी बुद्धिमें गुण दोष होवे उसीके वास्ते कर्म, अकर्म और विकर्मरूप विधिनिषेधका भेदभाव है. ज्ञानीके वास्ते नहीं; क्योंकि ज्ञानी तौ सदा अभेदभावसेही देखता है ॥ ८ ॥ इसलिये इंद्रियोंके समूहको और चित्तको वश करके, इस जगत्-को अपने आत्मामें देखो और आत्माका अधीश्वर जो मैं हूं तिसमें वितत देखो. अर्थात् आत्माको ब्रह्मरूपसे देखो ॥ ९ ॥ इस-प्रकार निश्चय करके कर्म नहीं करनेसे कदाचित् देवता विघ्न तौ नहीं करैं ? ऐसी शंका मत राखो. क्योंकि वेदके तात्पर्यका[१] नि-श्चय और उसके अर्थका अनुभव[२] होनेसे आत्माके अनुभवसेही संतुष्ट रहोगे. और सकल देवताआदिकभी आत्मरूपही हैं ऐसे

तस्माद्युक्तेंद्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ॥ आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञान-विज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ॥ आत्मानुभवतुष्टात्मा नांतरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥ दोषबुद्ध्यो-भयातीतो निषेधान्न निवर्तते ॥ गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथाऽर्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृ-च्छांतो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ॥ पश्यन्मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ॥ उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥

जानोगे तब कोईभी विघ्न उपद्रव नहीं करेगा. आत्माका अनुभव न होवे तबतक वर्णाश्रमकी रीतिके अनुसार कर्म करनेही चाहिये और अनुभव हुए पीछे तौ कोईभी विघ्न उपद्रव नहीं कर सकता ॥ १० ॥ इससे यह नहीं जानना कि– ' ज्ञानी पुरुष यथेष्ट आचरण करे ' क्योंकि जैसे बालक संकल्प विकल्पसे रहित होनेपरभी कोई कर्म करता है और कोई कर्म नहीं करता. तैसे गुण दोषके विचारसे रहित भयाहुआ ज्ञानीभी पूर्वसंस्कारसे निषिद्ध कर्म बिलकुल नहीं करता. परंतु उसमें दोष जानकर नहीं करता, ऐसे नहीं किंतु पूर्व संस्कारसे करता है. वहभी प्रायः वेदोक्त कर्मही करता है. पर उसमें गुण दोष जान-कर नहीं ॥ ११ ॥ इस प्रकार ज्ञान और विज्ञानका निश्चयवाला, सर्व प्राणियोंका स्नेही, शांत और जगत्को मद्रूप यानी ब्रह्मरूप देखताहुआ पुरुष पीछा आवागवनमें नहीं आता ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि– महाराज ! इसप्रकार भगवान्ने

१ वेदके तात्पर्यका यथार्थ निश्चय. २ वेदार्थमें अनुभव होना.

सातवें अध्यायमें उद्धवजीको आत्मज्ञान देनेके वास्ते अवधूतके इतिहासमें कहेहुए गुरुनमेंसे आठ गुरुनका भगवान्‌ने वर्णन किया ॥ १ ॥ भगवान्‌ने कहा कि- हे उद्धव ! तुम जो कहते हो वह करनेकी मेरी इच्छा है. ब्रह्मा, शिव और लोकपाल देवता मेरे वैकुंठवासकी इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मैं अंशके साथ जो कार्य करनेके वास्ते प्रगट हुआ हूँ वह सब देवतानका कार्य कर चुका हूं ॥ २ ॥ शापसे भस्म भयाहुआ यह कुल परस्परके कलहसे नष्ट हो जायगा. और इस पुरीको सातवें दिन समुद्र डुबादेगा ॥ ३ ॥ हे सज्जन ! मैं इस मनुष्यलोकका त्याग करूंगा उस समय तुर्तही इस लोकको कलियुग अत्यंत दबालेगा. और सब मंगल नष्ट हो जायगा ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! मेरी तजी हुई इस पृथ्वीमें तुमभी मत रहना; क्योंकि कलियुगमे लोगोंकी अधर्ममें प्रीति हो जायगी ॥ ५ ॥ इसलिये तुम तौ स्वजन और बंधुनमेंसे स्नेह छोड़कर, मुझमें अच्छीतरह मन लगाकर, समदृष्टि हो, पृथ्वीमें विचरो ॥ ६ ॥ मन, वाणी, चक्षु और श्रवणादिक इंद्रियोंसे ग्रहण करनेमें आता जो यह जगत् है वह सब मनोमय होनेसे मायारूप है और क्षणभंगुर है ऐसे जानो ॥ ७ ॥ जिस पुरुषका मन विक्षिप्त है उसकी भ्रांतिसे भेदमें गुण दोष बुद्धि रहती है, तासों गुण दोषका विषयरूप भेद वास्तविक नहीं होनेसे सर्वमें समदृष्टि राखनी. यदपि

श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ॥ ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकांक्षिणः ॥ १ ॥ मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ॥ यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणाऽर्थितः ॥ २ ॥ कुलं वै शापनिर्दग्धं नंक्ष्यत्यन्योऽन्यविग्रहात् ॥ समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ यर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः ॥ भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनाऽपि निराकृतः ॥ ४ ॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ॥ जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबंधुषु ॥ मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग्विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ॥ नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ॥ ७ ॥ पुंसोऽयुक्तस्य नानाऽर्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ॥ कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

और भोजन करना इत्यादि सर्वसमयमें आपकी सेवा की है ऐसे हम परमप्रिय आत्मरूप आपका किस प्रकार त्याग कर सकें ? ॥ ४५ ॥ मैं कोई मायाके भयसे यह प्रार्थना नहीं करता हूं किंतु आपका विछोह हमसे नहीं सहा जाता इसलिये यह प्रार्थना है. आपके भोगेहुए चंदन, माला, वस्त्र व अलंकारोंको पहिरनेवाले और आपका उच्छिष्ट खानेवाले हम दासलोक आपकी मायाको तौ अवश्य तिरही जायंगे ॥ ४६ ॥ हे महायोगिन् ! वायुका भक्षण कर कर रहनेवाले, तपका परिश्रम करनेवाले, ब्रह्मचर्य पालनेवाले, शांत और निर्मल संन्यासीलोग ब्रह्मचर्यादिकके क्लेश भोगकर, बड़ी कठिनतासे आपके ब्रह्मरूप

त्वयोपभुक्तस्रग्गंधवासोऽलंकारचर्चिताः ॥ उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥ वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमंथिनः॥ ब्रह्माख्यं धाम ते यांति शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥४७॥ वयं त्विह महायोगिन् भ्रमंतः कर्मवर्त्मसु ॥ त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरंतः कीर्तयंतस्ते कृतानि गदितानि च ॥ गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडंबनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विज्ञापितो राजन् भगवान्देवकीसुतः ॥ एकांतिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

धामको प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ और हम कि- जो कर्मके मार्गमें भटकते हैं वे तौ आपके भक्तोंके साथ आपकी वार्ता करनेहीसे दुस्तर संसारको तिर जायगे ॥ ४८ ॥ आपके चरित्र, भाषण, गति, उत्तम मंद हास्य, अवलोकन, परिहास कि- जो मनुष्य लोकके अनुकरणरूप हैं उनका स्मरण व कीर्तन करनेहीसे हम तिर जायंगे. तासों मायाके भयसे यह मेरी प्रार्थना नहीं है. किंतु आपका परित्याग नहीं हो सकता इसीसे है ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- हे राजा ! इस प्रकार उद्धवजीने विज्ञप्ति की. तब देवकीके पुत्र भगवान्‌ने अपने प्यारे और सांचे भक्त उद्धवजीसे कहा ॥ ५० ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायाम् षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

तर्पण कर, अनेक गुणवाले अन्नसे उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराकर ॥ ३७ ॥ उन सुपात्र ब्राह्मणरूप क्षेत्रोंमें महादानरूप बीज बोकर, नौकासे जैसे समुद्रको तिरैं ऐसे दानसे सर्व दुःखोंको तिर जायंगे ॥ ३८ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेवजीने कहा कि– हे कुलनंदन ! इस प्रकार भगवान्‌ने आज्ञा की, तब यादवलोक तीर्थमें जानेकी इच्छासे रथ जुड़वाने लगे ॥ ३९ ॥ यह देख, भगवान्‌के वचन सुन, भयंकर उत्पातोंको देखकर, निरंतर भगवान्‌का अनुसरण करनेवाले उद्धवजीने जगत्‌के ईश्वरोंकेभी ईश्वर श्रीकृष्णसे एकांतमें मिल, मस्तकसे, उनके चरणमें प्रणाम कर, हाथ जोड़, इस प्रकार विनती की ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उद्धवजीने

तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महांति वै ॥ वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनंदन ॥ गंतुं कृतधियस्तीर्थं स्यंदनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥ तन्निरीक्ष्योद्धवो राजन् श्रुत्वा भगवतोदितम् ॥ दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्त उपसंगम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ प्रांजलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥ उद्धव उवाच ॥ देव देवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ॥ विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ॥ त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् ॥ कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाऽशनादिषु ॥ कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥

कहा कि– हे देवदेव ! हे ईश ! हे योगेश्वर ! हे श्रवण और कीर्तनसे पवित्र करनहारे ! आप अवश्य इस कुलका संहार करके, मनुष्यलोकका त्याग करोगे ऐसे सूचित होता है; क्योंकि ईश्वरताके हेतु समर्थ होनेपरभी आपने ब्राह्मणोंके श्रापका उपाय नहीं किया ॥ ४२ ॥ हे नाथ ! हे केशव ! मैं आपके चरणकमलको आधे क्षणभरभी त्याग सकूं ऐसे नहीं है. तासों मुझेभी स्वधाममें ले चलो ॥ ४३ ॥ हे कृष्ण ! मनुष्योंके महामंगलरूप और कानको अमृततुल्य लगे ऐसे आपके चरित्रका स्वाद लेनेसे लोकोंकी दूसरी सर्व प्रकारकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है ॥ ४४ ॥ जिन्होंने शय्या, आसन, चलना, खड़ा रहना, नहाना, क्रीड़ा

इस उच्छृंखल यदुकुलसे लोकोंका नाश हो जाय ॥ ३० ॥ हे अनघ ब्रह्माजी ! अभी ब्राह्मणोंका शाप दिलवाकर, कुलका नाश करनेका आरंभ कर दिया है, सो इस कार्यसे निपट कर, वैकुंठ जाऊंगा. तब तुम्हारे लोकोंमें होकर, जाऊंगा ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- इस प्रकार भगवान्‌ने कहा तब ब्रह्माजी उन्हें प्रणाम कर, सर्व देवतानके साथ ब्रह्मलोक सिधारे ॥ ३२ ॥ तदनंतर द्वारकामें बड़े २ उत्पात होने लगे. उन्हें देख कर, एकत्रित भयेहुए वृद्ध २ यादवोंसे भगवान्‌ने कहा ॥ ३३ ॥ श्रीभगवान् बोले कि-इस द्वारकामें बड़े २ उत्पात होते हैं और अपने कुलको ब्राह्मणोंका दुरत्यय श्रापभी हुआ है ॥ ३४ ॥ इसलिये

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापतः ॥ यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदंते तवानघ ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् ॥ सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥ अथ तस्यां महोत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् ॥ विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एते वै सुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठंतीह सर्वतः ॥ शापश्च नः कुलस्याऽऽसीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ॥ प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव माचिरम् ॥ ३५ ॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ॥ विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥ वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ॥ भोजयित्वोशिजोविप्रान्नानागुणवतांऽधसा ॥ ३७ ॥

हे आर्यो ! आपनको यहां नहीं रहना चाहिये; क्योंकि आपन जीना चाहते हैं. आपन महापवित्र प्रभासक्षेत्रमें आजके आज चलो विलंब मतकरो ॥ ३५ ॥ ये देवतानके अंश यादव अपने अधिकारोंकेही योग्य हैं. परंतु तुर्त मोक्षके योग्य नहीं और द्वारकामें मरेंगे तो मुक्त हो जायगे तासों इन लोकोंको कल्याणरूप फल देनेवाले प्रभास क्षेत्रमेंही ले जाना चाहिये ऐसे अभिप्रायसे भगवान्‌ने उनको प्रभासमें ले जाना ठहेराया. दक्षके श्रापके हेतु क्षयरोगसे पीड़ित चंद्रमाका प्रभासमें स्नान करनेसे तुर्त रोगका दुःख निवृत्त होगया. और पीछी कलाकी वृद्धि होने लगी ॥ ३६ ॥ आपनभी उस प्रभासमें न्हाय, पितृ तथा देवतानका

धारण करके, सब उसी प्रकार किया ॥ २१ ॥ आपने सत्यप्रतिज्ञ सत्पुरुषोंमें धर्मका स्थापन किया और सर्व लोगोंका पाप-हरण करनेवाली कीर्तिको दिशाओंमें विस्तार कर, यदुके वंशमें अवतार लेकर, सर्वोत्तम रूपके धारण करनेवाले आपने जगत्के कल्याणके वास्ते महापराक्रमवाले चरित किये ॥ २२ ॥ २३ ॥ जिन चरित्रोंका निरंतर श्रवण और कीर्तन करनेसे हे ईश ! कलियुगमें सज्जनपुरुष अनायाससे-संसारसे पार उतर जायंगे ॥ २४ ॥ हे पुरुषोत्तम ! प्रभु ! आपको यदुवंशमें अवतार लिये सवासौ १२५ वर्ष हो चुके हैं, हे सर्वके आधार ! अब आपके देवतानका कार्य करनेमें कुछभी बाकी नहीं रहा है और आपका

धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसंधेषु वै त्वया ॥ कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ॥ शृण्वंतः कीर्तयंतश्च तरिष्यंत्यंजसा तमः ॥ २४ ॥ यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ॥ शरच्छतं व्यतीयाय पंचविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥ नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ॥ कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ॥ सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुंठ किंकरान् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ॥ कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥ तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ॥ लोकं जिघृक्षद्रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥ यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ॥ गंतास्म्यनेन लोकोयमुद्वेलेन विनंक्ष्यति ॥ ३० ॥

कुलभी ब्राह्मणोंके श्रापसे नष्ट हो जैसा हो चुका है ॥ २५ ॥ २६ ॥ तासों आपकी इच्छा हो तौ उत्तम स्वधाममें पधारो. अथवा हे प्रभु ! हमारे लोकोंमें होते लोकोंकी तथा हम लोकपालोंकी रक्षा करो ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि- हे देवेश्वर आप जो कहते हो वह मैंने विचार रक्खा है, आपका सर्व कार्य मैंने किया. पृथ्वीका भार उतारा ॥ २८ ॥ और यादवोंका कुल कि जो वीर्य तथा शौर्यवाली लक्ष्मीसे लोकोंका नाश कर डारे ऐसा है उसेभी महासमुद्रको जैसे वेला (तट) रोक राखे ऐसे मैंने रोक रक्खा है ॥ २९ ॥ अब गर्वित भयेहुए यादवोंके कुलका संहार किये विना जो मैं स्वधाममें चला जाऊं तौ

हे इंद्रियोंके अधिपति ! मायासे क्षोभित भयीहुई इंद्रियोंकी वृत्तियोंसे प्राप्त किये जाते विषयोंका आप सेवन करते हो. तथापि उनसे आप लिप्त नहीं होते. अतएव स्थावर जंगमके स्वामी आपही हो दूसरे पुरुष तौ विषयोंका सेवन करना छोड़ बैठे हैं. तथापि वासनामात्रसे बँध जाते हैं ॥ १७ ॥ मंद हास्यसे शोभायमान कटाक्षसे सूचित कियेहुए अभिप्रायसे मनका हरण करनेवाली भ्रकुटिके मंडलसे प्रेरित रतिसंबंधी विचारोंसे प्रबल भयेहुए और कामदेवकोभी मोहित करनेवाले कामकलादिक साधनोंसे सोलहसहस्र रानियांभी आपके चित्तको क्षोभयुक्त नहीं कर सकीं. तासों आप विषयोंसे लिप्त नहीं हो ॥ १८ ॥ अतएव आपकी

तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ॥ अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहितसौरतमंत्रशौंडैः ॥ पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येंद्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हंतुम् ॥ आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमंगसंगैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशंति ॥ १९ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् ॥ अभ्यभाषत गोविंदं प्रणम्यांबरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ॥ त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥

अमृततुल्य कथारूप नदियां और आपके चरण पखारनेके जलरूप गंगादिक नदियां त्रिलोकीका पाप धोनेको समर्थ हैं. तहांभी वेदमें प्रतिपादन किया हुआ कथारूप तीर्थ श्रवण करनेसे पवित्र करता है. और चरणसे उत्पन्न भयेहुए गंगादिक तीर्थ नहानेसे पवित्र करते हैं, अपने आश्रमधर्ममें रहेहुए लोक पूर्वोक्त दोनों प्रकारसे दोनों तीर्थोंका सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–आकाशमें खड़े महादेव तथा देवतानके सहित ब्रह्माजीने इस प्रकार स्तुति की. और प्रणाम करके, प्रार्थना की ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा कि– हे प्रभु ! हे सर्वके आत्मा ! भूमिका भार उतारनेके वास्ते पहले हमने विनती की. तब आपने अवतार

करते हो उनका चरण सदा हमारी अशुभ वासनाओंको भस्म करे. ॥ १२ ॥ हे व्यापक ! जो आपका चरण बलिराजाको बांधनेके समयमें दूसरा पैग भरते समय सत्यलोकपर्यंत पहुंचकर. ध्वजाके जैसे दीखता था और तीन प्रकारसे पड़तीहुई गंगाकी धारा उसकी मानों पताकायें होवें ऐसी प्रतीत होतीं थीं तथा जिस चरणने देवतानकी सेनाको अभय देकर स्वर्गमें रक्खी और असुरोंकी सेनाको भयभयीत करके पातालमें पठाय दिया. वह आपका चरण हम कि-जो भजन कर रहे हैं उनके पापको दूर करे. और हमें पवित्र करे ॥ १३ ॥ सर्वके प्रवर्तक और प्रकृति पुरुषकेभी नियंता आप पुरुषोत्तम कि जिनके, परस्पर द्वे-

केतुस्त्रिविक्रमयुतास्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ॥ स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥ नस्योतगाव इव यस्य वशे भवंति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ॥ कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥ अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ॥ सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥ त्वत्तः पुमान्समधिगम्य ययाऽस्य वीर्यं धत्ते महांतमिव गर्भममोघवीर्यः ॥ सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आंडकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥

षादिकसे पीड़ित होतेहुए ब्रह्मादिकभी नाकमें नथनीसे नाथेहुए बैलोंकी नांई वश्य हैं उनका चरण हमारा कल्याण करे ॥ १४ ॥ इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयके कारणरूप आप हो; क्योंकि प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्वकेभी आप नियंता कहलाते हो. सर्वके नाशमें प्रवृत्त भयाहुआ गंभीर वेगवाला और सर्दी, गर्मी और चातुर्मास्यरूप तीन भागवाला जो यह वर्षरूप काल है वहभी, आपकाही स्वरूप है, तासों आप उत्तम पुरुष हो. ॥ १५ ॥ अमोघ शक्तिवाले पुरुषने आपसेही शक्ति पाकर, मायाके साथ रहकर, इस जगत्के गर्भके सदृश महत्तत्त्वको पैदा किया है. और महत्तत्त्वनेभी आपसेही शक्ति पाकर, उस मायासे अनुस्यूत रहकर, अपनेही स्वरूपमेंसे वह पुष्कल प्रकाशवाला ब्रह्मांड कि-जिसके ऊपर आठ आवरण हैं उसे उत्पन्न किया है ॥ १६ ॥

हे स्तुति करने योग्य ! हे उत्तम ! सत्वगुणकी वृद्धिवाले सत्पुरुषोंको, आपके यशके श्रवण करनेसे वृद्धिंगत भई हुई श्रद्धासे जैसी शुद्धि प्राप्त होती है ऐसी शुद्धि, रागी पुरुषोंको उपासना, शास्त्रश्रवण, वेदाध्ययन, दान, तप व कर्मोंसे नहीं मिलती. तासों आत्माराम होनेपरभी आपके जो कर्मका करना है वह परमपवित्र यश विस्तारनेके वास्ते है ॥ ९ ॥ आपके यशमें श्रद्धा रखनेहीसे शुद्धि हो जाती है, तो हमने तौ आपके चरणारविंदका दर्शन किया है. तासों आपका चरणारविंद हमारी अशुभ वासनाओंको अग्निके समान भस्म करे. जिस चरणारविंदका मुमुक्षुलोग प्रेमसे द्रवीभूत भयेहुए हृदयमें चिंतवन करते हैं, भक्तलोक आपके जैसा ऐश्वर्य पानेके वास्ते वासुदेवादि-व्यूहमें जिसकी पूजा करते हैं, भक्तोंमें कितनेएक धीर पुरुष वैकुंठकी प्राप्तिके

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ॥ सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥ स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय योमुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः ॥ यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिंत्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ॥ अध्यात्मयोगउत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ॥ यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥

वास्ते तीनों कालमें पूजते हैं ॥ १० ॥ यज्ञ करनेवाले लोग हाथ बांध कर, उसमें हवि लेकर, वेदमें कहे हुए इंद्रादि देवरूपसे यज्ञसंबंधी अग्निमें चिंतवन करते हैं; योगीजन मनके निग्रहरूप योगके द्वारा सिद्धियां पानेकी इच्छासे चिंतवन करते हैं. और महावैष्णव मुक्त लोक सर्व प्रकारसे पूजते हैं. ॥ ११ ॥ मुमुक्षु, भक्त, धीरभक्त, यज्ञ करनेवाले, योगी और महावैष्णव मुक्तलोग, इन छहोंमें महावैष्णवोंपर आपकी लक्ष्मीजीकी अपेक्षाभी अधिक प्रीति है. हे प्रभु ! ' मैं जिस वक्षःस्थलमें रहती हूं उसी वक्षःस्थलमें यह वनमाला पर्युषित होनेपरभी रहती है' ऐसी असहनतासे लक्ष्मीजी यदपि सपत्नीकी भांति वनमालासे ईर्ष्या करतीं हैं तथापि यह वनमाला भक्तोंकी अर्पण कीहुई है ऐसी प्रीतिसे आप भक्त लोगोंकी वनमालासे कीहुई पूजाको अच्छे प्रकार अंगीकार

रुद्र, विश्वेदेवता, साध्यदेवता ॥ २ ॥ गंधर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितृ, विद्याधर और किन्नर ॥ ३ ॥ ये सब लोक श्रीकृष्णचंद्रके श्रीअंगके दर्शन करनेकी इच्छासे द्वारका गये. जिस श्रीअंगसे मनुष्योंके मनको रमण करानेवाले भगवान्ने सर्वलोकके पापको मिटानेवाले यशका लोकोंमें विस्तार किया ॥ ४ ॥ बड़ी २ समृद्धियोंसे संपन्न और देदीप्यमान द्वारकामें जिनके नेत्र तृप्त नहीं होते ऐसे देवतानने अद्भुत स्वरूपवाले श्रीकृष्ण भगवान्का दर्शन किया ॥ ५ ॥ स्वर्गके उद्यानोंके पुष्पोंसे श्रीकृष्णचंद्रको आच्छादित करते इन देवतानने विचित्र पद और अर्थवाली वाणीसे जगदीश्वरकी इस प्रकार स्तुति

गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ॥ ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥ द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ॥ वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ॥ यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ॥ व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयंतो यदूत्तमम् ॥ गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नताः स्म ते नाथ पदारविंदं बुद्धींद्रियप्राणमनोवचोभिः ॥ यच्चिंत्यतेंऽतर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयाऽऽत्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुंपसि तद्गुणस्थः ॥ नैतैर्भवानजितकर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥

की ॥ ६ ॥ देवतानने कहा कि- हे नाथ ! आपका चरणारविंद कि-जिसे कर्मरूप दृढ पाशसे मुक्त होना चाहते पुरुष अपने अंतःकरणमें भाव भक्तिसे चिंतवन करते हैं, उसे हम बुद्धि, इंद्रिय, प्राण, मन और वचनसे होते हुये साष्टांग प्रणामसे नमस्कार करते हैं. तासों हमारा अहो भाग्य है ॥ ७ ॥ हे अजित ! मायाके गुणोमें नियंतृतासे रहे हुए आप कि जो-मनसेभी तर्कणा करनेमें नहीं आसकता ऐसे इस जगत्को तीन गुणवाली मायासे अपने स्वरूपमेंही रचते हो, पालते हो और संहार करते हो, तथापि इन कर्मोंसे लिप्त नहीं होते, कारण यह कि-आवरणरहित अपने आत्मसुखमेंही रमण करनेवाले होनेसे रागादि-दोषसे रहित हो. इसप्रकार आप कर्म करनेपरभी आत्मारामपनसे रहते हो. तासों मुमुक्षुलोग आपके चरणका चिंतवन करते हैं ॥ ८ ॥

आसनादिक क्रियाओंमें वैरसे भगवान्‌का ध्यान करते रहे. और भगवान्‌की गति, विलास और कटाक्षआदिमें उनकी बुद्धि तदाकार होनेसे वेभी सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुए. तब जिनकी बुद्धि स्नेहसे तदाकार भयी होवे उनकी तौ बातही क्यों करनी ? ॥ ४८ ॥ सर्वके आत्मा, ईश्वर, सर्वसे पर, अविनाशी और मायाके हेतु मनुष्यभावसे जिनका ऐश्वर्य गुप्त है ऐसे श्रीकृष्णचंद्रको आप अपने पुत्र मत जानो ॥ ४९ ॥ पृथ्वीके भारभूत दैत्यरूप राजाओंको मारनेके वास्ते और सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेके निमित्त अवतार लिये हुए भगवान्‌की कंसवधआदिरूप कीर्ति यद्यपि भगवान्‌की महिमाकी तर्फ देखें तौ कोई आश्चर्यरूप नहीं है, तथापि मनुष्योंके मुक्तिकी प्राप्तिके वास्ते लोकमें आश्चर्यरूपसे वर्णन करनेमें आती है ॥ ५० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि— यह बात सुनकर, अति-

माऽपत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ॥ मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ ४९ ॥ भूभारासुरराजन्यहंतवे गुप्तये सताम् ॥ अवतीर्णस्य निर्वृत्त्यै यशो लोके वितन्यते ॥ ५० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ॥ देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ॥ स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ ब्रह्माऽत्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ॥ भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥ इंद्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ॥ ऋभवोंऽगिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥

विस्मित भयेहुए भाग्यशाली वसुदेव और भाग्यशालिनी देवकीने अपना मोह त्याग दिया ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य सावधान हो कर, इस पवित्र इतिहासका अभ्यास करे वह पुरुष मोहसे मुक्त होकर, जीवन्मुक्त होजाता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छठे अध्यायमें ब्रह्मादिकोंने स्तुति करके स्वधाममें पधरावनेकी विनती की— तदनंतर उद्धवजीनेभी अपनेको स्वधाममें लेजानेके वास्ते भगवान्‌से प्रार्थना की, यह कथा होगी ॥ १ ॥ शुकदेवजीने कहा कि—फिर सनकादि देवता और प्रजापतियोंसे वेष्टित ब्रह्माजी और भूतगणोंसे वेष्टित भूत और भविष्यत्‌के स्वामी महादेवजी ॥ १ ॥ मरुत् देवतानसे वेष्टित महाराज ! इंद्र, वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अंगिरस,

कीर्तनके समान दूसरा कोईभी बड़ा लाभ नहीं है. जिस कीर्तनसे परमशांति प्राप्त हो जाती है. और आवागवन मिट जाता है ॥ ३७ ॥ अतएव हे राजा ! सत्य, त्रेता और द्वापरयुगकी प्रजा चाहती है कि– हमको कलियुगमें जन्म मिले, और कलियुगमें नारायणके परमभक्तभी होवेंगे ॥ ३८ ॥ महाराज ! कलियुगमें नारायणके भक्त कहीं २ होवेंगे. परंतु द्रविड़देशमें तो बहुत होवेंगे. कौन वह द्रविड देश ? कि– जहां ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, महापवित्र कावेरी और महानदी प्रतीची ये नदियां हैं. हे राजा ! जो मनुष्य इन नदियोंका जल पीवेंगे प्रायः वे निर्मल अंतःकरण होकर वासुदेव भगवान्‌के परमभक्त हो जायंगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे राजा ! जिस मनुष्यने भेददृष्टि छोड़कर, सर्व जगत् भगवान्‌रूप है ऐसे भावसे शरणागतोंके रक्षक भगवान्‌का शरण लिया है उस पुरुषके ऊपर

कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छंति संभवम् ॥ कलौ खलु भविष्यंति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥ क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ॥ ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ॥ ये पिबंति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ॥ प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन् ॥ सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुंदं परिहृत्य कर्तम् ॥ ४ ॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ॥ विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

देव, ऋषि, प्राणी, कुटुंब, पित्रीश्वरोंका ऋण नहीं रहता. और उसीसे उसके वैश्वदेवादिक पंचमहायज्ञ करनेकी आवश्यकता नहीं रहती ' अपनेसे नीच वर्णवाला जो मनुष्य निर्धन होनेसे ऋण देनेको समर्थ न होवे तो उत्तमवर्णको चाहिये कि– उससे अपना काम करावे. ' ऐसी धर्मशास्त्रकी मर्यादाके अनुसार भेदबुद्धि रखनेवाला अभक्त मनुष्य, देव और ऋषिआदि सबका ऋणी होनेसे किंकर होकर, रहता है. और उसीसे उसको पंचयज्ञ करने पड़ते हैं ॥ ४१ ॥ जैसे ज्ञानीके वेदविहित कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं ऐसे पापकी निवृत्तिके वास्ते प्रायश्चित्त करनेकीभी आवश्यकता नहीं. जो मनुष्य देहादिकके अभिमानको छोड़कर, भगवान्‌के चरणारविंदका भजन करे उसकी पापमें प्रवृत्ति होनी संभवे नहीं. तथापि कदाचित् प्रमादादिकसे कोईभी

पाप हो जाय तो उस भक्तके हृदयमें विराजमान भगवान्‌ही उसके सकल पापोंको निवृत्त कर देते हैं. इस बातका यमराज स्वीकार नहीं करें ऐसेभी नहीं जानना, क्योंकि यमआदिकेभी स्वामी भगवान्‌ही हैं. यदपि श्रुति और स्मृति भगवान्‌की आज्ञा रूपही हैं तथापि ऐसा भक्त भगवान्‌को प्यारा है, तासों उसके कियेहुए आज्ञाभंगकोभी भगवान् सहन करते हैं ॥ ४२ ॥ नारदजीने कहा कि– मिथिलाके अधिपति निमिराजाने तथा उसके उपाध्यायोंनें इसप्रकार भगवत्संबंधी धर्म सुन, प्रसन्न हो, इन जयंतीके पुत्र नव योगेश्वरोंकी पूजा की ॥ ४३ ॥ फिर सब लोकोंके देखते ये योगेश्वर अंतर्धान हो गये और निमिराजाभी उन धर्मोंका पालन करके,

नारद उवाच ॥ धर्मान्भागवतानित्थं श्रुत्वाऽथ मिथिलेश्वरः ॥ जायंतेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो-ह्यपूजयत ॥ ४३ ॥ ततोऽतर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥ त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवतान् श्रुतान् ॥ आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसंगो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥ युवयोः खलु दंपत्योर्यशसा पूरितं जगत ॥ पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥ ४६ ॥ दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः ॥ आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौंड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ॥ ध्यायंत आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधिया पुनः किम् ॥ ४८ ॥

परम गतिको प्राप्त हुआ ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! तुमभी इन मुझसे सुने हुए भगवत्संबंधी धर्मोंको श्रद्धा और वैराग्यपूर्वक पालोगे तौ मुक्तिको प्राप्त होओगे. ॥ ४५ ॥ यह तौ एक शास्त्रसंबंधी पद्धति तुमसे मैंने कही, परंतु तुम तौ दोनों स्त्री–पुरुष भगवान्‌के संगसेही कृतार्थ भये हो. परमेश्वर विष्णु भगवान् तुम्हारे पुत्ररूप हुए हैं. तासों आपकी कीर्तिसे सकल जगत् व्याप्त हो रहा है ॥ ४६ ॥ दर्शन, आलिंगन, भाषण, शयन, आसन और भोजनसे भगवान्‌में पुत्रस्नेह रखनेके हेतु तुमने अपना अंतःकरण पवित्र कर लिया है. तासों दूसरोंकी भांति तुम्हारे अंतःकरण शुद्ध करनेका प्रयत्न करना पड़े ऐसे नहीं है. आपके तौ पुत्रको रमानेहीसे भगवत्संबंधी सर्व धर्म सिद्ध हो चुके ॥ ४७ ॥ शिशुपाल, पौंड्रक और शाल्वआदि राजा शयन और

चव्वालीसवें अध्यायमें, मल्ल और कंसादिकोंका मर्दन और कंसकी स्त्रियोंको सात्वना और मातापिताका दर्शन, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– ऐसे बात होनेपर जिन्होंने पहलेहीसे निश्चय कर रक्खा था ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण चाणूरसे भिड़े और बलदेवजी मुष्टिकसे ॥ १ ॥ आपसमें हाथोंसे हाथ और पांवोंसे पांव बांध, जीतनेकी इच्छासे बलात्कारसे एक दूसरेको खैंचने लगे ॥ २ ॥ एक दूसरेकी अरतिमें अरति घुटनोंमें घुटना, सिरमें सिर, छातीमें छाती, आपसमें भिड़ाने लगे ॥ ३ ॥ चौतर्फ घुमाना, धक्का देना, हाथमें लेकर दाबना, नीचे पछाड़ना, छोड़कर आगे बढ़ना, पीछा हटना, ऐसी

श्रीशुक उवाच ॥ एवंचर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः ॥ आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥ हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्धा पद्भ्यामेव च पादयोः ॥ विचकर्षतुरन्योऽन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥ अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ॥ शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योऽन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरंभावपातनैः ॥ उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योऽन्यं प्रत्यरुंधताम् ॥ ४ ॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ॥ परस्परं जिगीषंतावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ॥ ऊचुः परस्परं राजन्सानुकंपावरूथशः ॥ ६ ॥ महानयं बताधर्म एषां राजसभासदाम् ॥ ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छंति पश्यतः ॥ ७ ॥ क्व वज्रसारसर्वांगौ मल्लौ शैलेंद्रसन्निभौ ॥ क्व चातिसुकुमारांगौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥

क्रियानसे एक दूसरेको रोकते थे ॥ ४ ॥ घुटना और पांव समेटकर, पड़े हुएको सरकाना, हाथसे उठाकर ले जाना, गला आदि पकड़, चिपटे हुएको दूर करना पांव वगैरःको समेटना, ऐसी ऐसी क्रियानसे ये दोनो जयकी इच्छासे एक दूसरेके शरीरको पीड़ित करते थे ॥ ५ ॥ महाराज ! इस बली और निबलके युद्धको देख, इकट्ठीहुई सब स्त्रियोंके यूथके यूथ करुणासहित परस्पर कहने लगे ॥ ६ ॥ कि– ये राजाके सभाध्यक्ष बड़ा अन्याय करते हैं, जो राजाके देखते बलवान और निबलके युद्धको स्वयं स्वीकार करते हैं ॥ ७ ॥ वज्रके समान कठोर जिनके सब अंग हैं ऐसे, पर्वतसे मल्ल तौ कहाँ ? और अतिसुकुमार शरीर

१ दोहा–शिरसों शिर भुजसों भुजा, दृष्टि दृष्टिसों जोरि ॥ चरण चरण गहि झपटके, लपटत झपट झकोरि ॥ १ ॥

गौ और बछरोंको पालनेवाले लोक वनमें निरंतर आनंद करते हैं. और मल्लयुद्धकी क्रीड़ा करते गैया चराते हैं. यह बात प्रसिद्धही है ॥ ३४ ॥ इसी लिये तुम्हें और हमें राजाको प्रसन्न रखना चाहिये. राजा जिसपर प्रसन्न रहता है, उसपै सब प्राणी प्रसन्न रहते हैं; क्योंकि राजा सर्वप्राणीरूप है ॥ ३५ ॥ यह बात सुन, श्रीकृष्णचंद्रने उसका सत्कार कर, युद्धको अपना अभीष्ट मान, देशकालके अनुसार यह वचन कहा कि– ॥ ३६ ॥ तुम और वनमें रहनेवाले हम राजा कंसकी प्रजा हैं. हां, सदा राजाको प्रसन्न रखनाही चाहिये और जो ऐसी आज्ञा मिले, उसे बड़ा अनुग्रह समझना चाहिये ॥ ३७ ॥ लेकिन हम बालक

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ॥ वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडंतश्चारयंति गाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे ॥ भूतानि नः प्रसीदंति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥ तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः ॥ नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनंद्य च ॥ ३६ ॥ प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः ॥ करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ॥ भवेन्नियुद्धं माऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥ ३८ ॥ चाणूर उवाच ॥ न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ॥ लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्वभृत् ॥ ३९ ॥ तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै ॥ मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधोनाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥

हैं, हमारे बराबर बलवालोंके साथ जैसा योग्य होगा, वैसे खेलेंगे, क्योंकि मल्लयुद्ध योग्यरीतिसे होवे तो, मल्लोंके सभासदोंको अधर्मका स्पर्श न होवे ॥ ३८ ॥ चाणूर बोला कि– तू न तो बालक है, न किशोर है और बलरामभी बलवानोंमें श्रेष्ठ है, जिसने हजार हाथियोंके बलके बराबर बलवाला कुवलयापीड़ हाथी लीलाहीसे मार गिराया ॥ ३९ ॥ इस लिये तुम, बलवानोंके साथ युद्ध करो, इसमें कोई अधर्म नहीं है, हे कृष्ण ! मुझसे तू भिड़ और मुष्टिकसे बलराम ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥

नियोंको लोहू लगेहुए होनेसे बीभत्स, योगियोंको परम तत्व, यादवोंको पर देवता, ॥ १७ ॥ महाराज ! कुवलयापीड़को मरा जान और उनकोभी दुर्जय समझ, यद्यपि कंस शूर वीर था, तौभी तिस समय तो कंस बहुत भयभीत हो गया ॥ १८ ॥ वे दोनों भाई रंगके बीच जैसे उत्तम वेष धारण किये दो नट शोभा देते हों. तैसे शोभायमान लगते थे. कैसे हैं वे ? बड़ी जिनकी भुजा हैं, जो विचित्र वेष, आभूषण, माला व वस्त्र धारण किये हैं और अपनी छबिसे देखनेवालोंको मनको हरण करते हैं ॥ १९ ॥ उन उत्तम पुरुष दोनों भाइयोंको देख, मंचोंपर बैठेहुए नगर व देशोंके लोग तथा राजा, आनंदके वेगसे प्रफुल्लित

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ॥ कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥ १८ ॥ तौ रेजतू रंगगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगंबरौ ॥ यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपंतौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्षतावुत्तमपूरुषो जना मंचस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥ पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां श्लिष्यंत इव बाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुः परस्परं ते वै यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥ २२ ॥ एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ॥ अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ ॥ एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ॥ कालमेतं वसन्गूढो ववृधे नंदवेश्मनि ॥ २४ ॥

नेत्र मुख हो, नेत्रोंसे उनके मुखका पान करने लगे. यानी आदरसहित देखने लगे. और देखते देखते तृप्त नहीं हुए ॥ २० ॥ वे लोग नेत्रोंसे मानों पीते हों, जीभसे मानों चाटते हों, नासिकासे मानों सूंघते हों, भुजासे मानों मिलते हों, ऐसे मालूम होते थे ॥ २१ ॥ और भगवान्के रूप, गुण, मधुरता और प्रौढ़पनने मानों स्मरण दिलाया हो, वैसे वे लोग जैसा देखा और जैसा सुना, तदनुसार आपसमें कहने लगे ॥ २२ ॥ ये दोनों साक्षात् हरि भगवान् नारायणके अंश वसुदेवजीके घरमें अंशसे इहां प्रगट हुए हैं ॥ २३ ॥ यह तो देवकीसे प्रगट हुआ था. फिर गोकुल ले जाया गया था, इतने समयतक नंदरायजीके घरमें गुप्त

रहकर, बड़ा हुआ है ॥ २४ ॥ इसने पूतनाका वध किया. बौंड़ररूप दैत्य, यमलार्जुनवृक्ष, शंखचूड़, केशी, धेनुक औरभी ऐसे ऐसे दैत्य मार, ॥ २५ ॥ ग्वालोंके साथ गौनको इसने दावानलसे बचाया, कालिय सर्पका दमन किया, इंद्रको विमद किया ॥ २६ ॥ इसने सात दिनतक एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वत धारण किया और वर्षा, वायु, बिजलियोंसे गोकुलकी रक्षा करी ॥ २७ ॥ गोपियां, सदा आनंदित हास्ययुक्त जिसका देखना है ऐसे इसके मुखका दर्शन करतीं करतीं आनंदसे विना श्रम अनेक प्रकार तापोंको तिर गयीं ॥ २८ ॥ इनसे रक्षा किया हुआ यदुराजाका यह वंश बहुत सुख्याति पाय, लक्ष्मी, यश महत्वपनको प्राप्त

पूतनाऽनेन नीतांऽतं चक्रवातश्च दानवः ॥ अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥ २५ ॥ गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ॥ कालियो दमितः सर्प इंद्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ॥ वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥ २७ ॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ॥ पश्यंत्यो विविधांस्तापांस्तरंति स्माश्रमं मुदा ॥ २८ ॥ वर्द्धंत्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ॥ श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥ अयं चास्याग्रजः श्रीमान्रामः कमललोचनः ॥ प्रलंबो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ॥ कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ हे नंदसूनो हे राम भवंतौ वीरसंमतौ ॥ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥ प्रियं राज्ञः प्रकुर्वत्यः श्रेयो विंदंति वै प्रजाः ॥ मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥

होगा. ऐसे कहते हैं ॥ २९ ॥ और यह इसका बड़ा भाई श्रीमान् बलराम कमलसे जिसके नेत्र हैं इसने प्रलंब वत्सासुर और बकआदि दैत्योंका वध किया ॥ ३० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि– लोग आपसमें इस भांति कहते थे और बाजे बजते थे, उस समय चाणूर मल्लने श्रीराम कृष्णको बतलाकर, यह वक्ष्यमाण बचन कहा कि– ॥ ३१ ॥ हे नंदपुत्र ! हे राम ! तुम दोनोंको वीरपुरुषोंके मान्य और मल्लयुद्धमें कुशल सुनकर, राजाने मल्लयुद्ध देखनेको यहां बुलाये हैं ॥ ३२ ॥ प्रजा जो मन, बचन, कर्मसे राजाको प्रसन्न रखती है, वह सुखी रहती है, नहीं तो विपरीत फल भुगतना पड़ता है ॥ ३३ ॥

मृतक हाथीको छोड़, दात हाथमें लिये, रंगभूमिमें भगवान् दाखिल हुए. उस समय दात तो अपने कंधेपर धरा हुआ था और लोहू और मदके छींटे शरीरपर लग रहे थे. व पसीनेके छोटे छोटे बिंदु मुखकमलपर शोभा देते थे ॥ १५ ॥ महा-

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दंतपाणिः समाविशत् ॥ अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिंदुभिरंकितः ॥ विरूढस्वेदकणिकावदनांबुरुहो बभौ ॥ १५ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ॥ रंगं विविशतू राजन्गजदंतवरायुधौ ॥ १६ ॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ॥ मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगंगतः साग्रजः ॥ १७ ॥

राज ! वे दोनों भैय्या रामकृष्ण हाथीके दांतरूप श्रेष्ठ आयुध धारण किये कितने एक गोपोंसे वेष्टित हो, रंगभूमिमें प्रविष्ट हुए ॥ २६ ॥ उस समय भगवान्का स्वरूप अभिप्रायानुसार सबको मालूम होने लगा. मल्लोंको वज्ररूप, मनुष्योंको उत्तम मनुष्य, स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामदेव, गोपोंको स्वजन, दुष्ट राजानको दंड देनेवाला, अपने माता पिताको बालक, कंसको मृत्यु, अज्ञा-

---

१ न कहो कि– यह कुवलयापीड़ हाथी कौन है ? जो कि– साक्षात् श्रीकृष्णजीके हाथ मारा गया. तहां कहे हैं. कि– यह एक लक्ष हाथियोंके समान बलवाला, बड़ा धनुर्धर, पहाड़सदृश मन्दगति नाम बलिदानवका पुत्र था. सो कोई दिन रंगयात्रामें जाता हुवा हाथीके समान झूमता हुवा निकला कि– जिसके धक्कोंसे कितनेही लोग पड़गये. उन्हींमें कहीं महात्मा अतिवृद्ध त्रित नामके मुनि थे. सो ऐंभी इसके भुजाओंके झोंकेसे पड़गये. तब क्रुद्ध हुये मुनिने इसे श्राप दिया कि– रे बलमदमत्त ! जिससे तू मदान्ध गजके जैसे मनुष्योंको गिराता जाता है इसीसे गज होगा. इतनेके कहतेही उसने दैत्यदेह छोड़, हाथी बन, मुनिके चरणकी शरण हो, त्राहि २ पुकारा. तब प्रसन्न हो, मुनिने कहा कि– तू डरै मत. यदपि मेरा बचन तो मिथ्या न होगा परंतु जा जब मथुरापुरीमें श्रीकृष्ण आयेंगे और तेरेको मारेंगे तब तेरी मुक्ति होगी. बस वही दैत्य विन्ध्याचल पहाड़में दश हजार हाथियोंके समान बलवाला हाथी हुवा, जिसे जरासंधने बड़े उपायसे पकड़, कंसकी सादीमें दहेज दिया जो कि–श्रीकृष्णजीके हाथ मृत्यु पाय, परम धामको सिधारा ॥ ग० ॥

२ मल्लोंको वज्ररूप मालूम होते इत्यादि १० विशेषणोंसे एक श्रीकृष्णमें रौद्र, अद्भुत, शृंगार, हास्य, वीर, करुण, भयानक, बीभत्स, शांत और वात्सल्य ये दश रस अनुक्रमसे दिखलाये.

कृष्णपै चलाया ॥ ५ ॥ हाथीने दौड़कर, जल्दी श्रीकृष्णचंद्रको सूंडसे पकड़ लिया. आप सूंडसे निकल मुष्टिका प्रहार कर, उसके पैरोंमें छुप गये ॥ ६ ॥ उनको न देख, भारी क्रोध करने लगा और नाकसे सूंघते सूंघते फिर भगवान्‌को पकड़ लिया. फिर भगवान् जबरदस्तीसे सूंडसे छूट, बाहिर निकल गये ॥ ७ ॥ और उस बलवान् हाथीकी पूँछ पकड़, पच्चीस धनुष पिछले पावनको खींच कर ले गये. जैसे गरुड़ सांपको लीलाहीसे ले जाता है ॥ ८ ॥ इधर उधर बायें दाहिने फिरते और चक्कर खातेहुए हाथीके साथ भ्रमण करते भगवान् कैसे शोभा देते थे, कि– मानों बछेरेकी पूंछ पकड़े बालक भ्रमण करता है ॥ ९ ॥ फिर भगवा-

करींद्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् ॥ कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्यांघ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ॥ परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥ पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पंचविंशतिम् ॥ विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८ ॥ सपर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ॥ बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९ ॥ ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ॥ प्राद्रवन्पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥ १० ॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ॥ तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दंताभ्यां सोऽहनत्क्षितिम् ॥ ११ ॥ स्वविक्रमे प्रतिहते कुंजरेंद्रोऽत्यमर्षितः ॥ चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥ तमापतंतमासाद्य भगवान्मधुसूदनः ॥ निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥ पतितस्य पदाऽऽक्रम्य मृगेंद्र इव लीलया ॥ दंतमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥

न्‌ने उस हाथीके सन्मुख आ, हाथसे प्रहार किया, भागतेहुए भगवान्‌ने पदपदमें स्पर्श कर देते उसे गिरा दिया ॥ १० ॥ भगवान् दौड़ते दौड़ते लीलासे पृथ्वीपर पड़, पीछे तुर्त उठ खड़े हुए हाथीने उन्हें पड़ेहुए मान, क्रोध कर, दांतोंसे जमीनपर प्रहार किया ॥ ११ ॥ अपना पराक्रम व्यर्थ जानेपर, वह गज अतिक्रोधयुक्त हुआ और महावतोंके ललकारनेसे फिर क्रोध कर, श्रीकृष्णके सन्मुख दौड़ा ॥ १२ ॥ मधुसूदन भगवान्‌ने उसे आता देख, हाथसे सूंड़ पकड़, पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १३ ॥ पड़े हुएके ऊपर भगवान्‌ने सिंहके जैसे पांव रख, लीलासे उसका दांत उखाड़, उसी दांतसे हाथी और महावतोंका वध किया ॥ १४ ॥

ऐसे, बाजे बाजने लगे. और मल्ल अपने उस्तादोंके साथ अलंकृत हो, बड़े गर्वके साथ आने लगे ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, ये सब सुंदर बाजोंकी आवाज सुन, मल्लभूमिमें आ उपस्थित हुए ॥ ३७ ॥ कंसके बुलाये नंदरायजीआदि सब गोप भेंटें दे, एक मंचपर बैठ गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकाना-मभाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥ तेंतालीसवें अध्यायमें कुवलयापीड़ हाथीको मार, राम कृष्ण रंगमें पधारे, उनकी शोभाका वर्णन और चाणूरसे संभाषण यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! 'हमने धनुषका भंगआदि

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ॥ त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ नंद-गोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥ निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मंच आविशन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे मल्लरंगोपवर्णनंनाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ॥ मल्लदुंदुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥ रंगद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ॥ अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥ बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ॥ उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥ अंबष्ठांबष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम माचिरम् ॥ नोचेत्सकुंजरं त्वाऽद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥ एवं निर्भर्त्सितोंऽबष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ॥ चोदयामास कृष्णाय कालांतकयमोपमम् ॥ ५ ॥

कर्म कर, अपना ऐश्वर्य सूचन करादिया है, तौभी हमारे माता पिताको यह नहीं छोड़ता और हमेंभी मारना चाहता है, इसीसे हमको इस मामेको मारनेमें किसी प्रकारका दोष नहीं है.' इस तरह पहले दिनही जिन्होंने अपनी पवित्रता कर ली थी ऐसे, श्रीकृष्ण और बलदेवजी मल्लोंके नक्कारोंका शब्द सुन, देखनेको आये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचंद्र रंगभूमिके द्वारपर आ, देखते हैं तो कुवलयापीड़नाम हाथी खड़ा है और महावत उसे प्रेर रहा है ॥ २ ॥ देखतेही कमर कस, कुटिल केश सँवार, भगवानने मेघसी गंभीर वाणीसे महावतको कहा ॥ ३ ॥ हे महावत ! हे महावत ! हमें मार्ग दे दे, जल्दी रस्ता छोड़ दे; नहीं तो हाथीके साथ तुझे आज यमराजके वर पहुंचावेंगे, यानी मार डारेंगे ॥ ४ ॥ इसप्रकार झिड़कने पर उस महावतने हाथीको कोपित कर, श्री-

दुष्टबुद्धि देखने लगा ॥ २७ ॥ प्रतिबिंबके रहतेभी अपने सिरका न दीखना, अँगुलीआदि आंखके बीचमें न देतेभी चंद्र आदि प्रकाशवाले पदार्थोंके दो रूप दीखने ॥ २८ ॥ प्रतिबिंबमें छिद्र प्रतीत होने, अँगुलीसे कान बंद करनेपर प्राणका घोष न सुनना, वृक्षोंमें सुनहरी रंग दीखना, अपने पांवोंका न दीखना ॥ २९ ॥ स्वप्नमें प्रेतसे मिलना, गधेपै चढ़ना, जहर खाना, जपाके लाल पुष्प पहिरना, तेल लगाय, नंगा अकेला जाना ॥ ३० ॥ औरभी इसीतरहके स्वप्न और जाग्रतसंबंधी सगुन देखे, जिससे

अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि ॥ असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥२८॥ छिद्रप्रतीतिश्छायाया प्राणघोषानुपश्रुतिः ॥ स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्ने प्रेतपरिष्वंगः खरयानं विषादनम् ॥ यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगंबरः ॥ ३० ॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ॥ पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिंतया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ॥ कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥ आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ मंचाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ॥ यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४ ॥ कंसः परिवृतोऽमात्यै राजमंच उपाविशत् ॥ मंडलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ॥ मल्लाः स्वलंकृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समासत ॥ ३६ ॥

मरणकी चिंतासे डरके मारे निद्रा जाती रही ॥ ३१ ॥ महाराज ! ज्यों रात व्यतीत हुई, सूर्य जलसे बाहिर निकला, त्यों कंसने मल्लयुद्ध क्रीड़ाका बड़ा भारी उत्सव करवाया ॥ ३२ ॥ आदमी रंगभूमि सिंगारने लगे, तूर्य और भेरी बाजन बाजने लगे, मंचभी माला, पताका, वस्त्र और तोरण इनसे शोभायमान किये गये ॥ ३३ ॥ उनपर ब्राह्मण क्षत्रियआदि सब पुरी और मुल्कोंके लोग सुखपूर्वक बैठ गये. और राजाभी अपने अपने आसनोंपर बैठे ॥ ३४ ॥ कंस तो अपने अमात्योंसे वेष्टित हो, मंडलेश्वर राजानके बीच राजमंचपर बैठा, लेकिन मन भीतरसे बहुत घबराता था ॥ ३५ ॥ जिनमें मल्लताल सबसे ऊंचा सुनाई देता था

इच्छासे भगवानको घेर लिया. और बकने लगे कि,–पकड़ो, पकड़ो, मारो मारो ॥ १९ ॥ उनका बुरा अभिप्राय देख, रामकृष्णने क्रोध कर, उसी धनुषके टुकड़े ले, उन्हें मार डाला ॥ २० ॥ और कंसकी भेजीहुई सेनाको मार, उस धनुषशालासे बाहिर निकल, पुरीकी संपदा देखते आनंदपूर्वक विचरने लगे ॥ २१ ॥ उनका वह अद्भुत पराक्रम, प्रभाव, दृढ़ता और रूप देख, पुरके लोगोंने जाना कि,–ये कोई उत्तम देव हैं ॥ २२ ॥ उनके स्वच्छंद फिरते फिरते सूर्य अस्त हो गया. तब रामकृष्णभी गोपोंसे वेष्टित हो, पुरीसे पीछे डेरे आये ॥ २३ ॥ गोपियोंने भगवानके बिछुरते

अथ तान्दुरभिप्रायान्विलोक्य बलकेशवौ ॥ क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥ बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ॥ निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥ २१ ॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः ॥ तेजः प्रागल्भ्यं रूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ॥ कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥ २३ ॥ गोप्यो मुकुंदविगमे विरहातुराया आशासताऽऽशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ॥ संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥ २४ ॥ अवनिक्तांघ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ॥ ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥ कंसस्तु धनुषो भंगं रक्षिणां स्वबलस्य च ॥ वधं निशम्य गोविंदरामविक्रीडितं परम् ॥ ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ॥ बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥ २७ ॥

समय विरहसे आतुर हो, जो जो कामना पूर्ण होनेकी उम्मेद की थीं, वे सब कामना मथुरामें सत्य हुई, क्योंकि पुरुषोंमें भूषणरूप श्रीकृष्णचंद्रका शरीर कि–जिसका लक्ष्मीजीने अपने भक्त ब्रह्मादिक देवतानको छोड़ आश्रय लिया है, उनकी शोभा देखते थे ॥ २४ ॥ हाथ पांव धोय, दूधमें पूरी चूर, भोजन कर, कंसका कर्तव्य समझ, उस रात्रीमें तो सुखपूर्वक वहीं रहे ॥ २५ ॥ कंस तो धनुषका भंग व पहरेदार और अपनी सेनाका वध वहभी केवल राम कृष्णका खेल था, कोई पराक्रम नहीं था, यह सुन ॥ २६ ॥ डर गया और उसे दीर्घ प्रजागर हो गया व स्वप्न और जाग्रतमें मृत्युके सूचक बहुतसे खोटे निमित्त वह

रुकी ओर देख, हँसकर कहा कि—॥ ११ ॥ हे सुंदर भौंहवाली ! कार्य सिद्ध होनेके अनंतर पुरुषोंके संतापको हरण करनेवाले तेरे घरपर आऊंगा; क्योंकि स्त्रीहीन मुसाफिर हम लोगोंके तो तेराही मुख्य आश्रय है ॥ १२ ॥ उसे मधुर वाणीसे विसर्जन कर, मार्गमें जाते समय महाजन लोगोंने अनेक भेंटें, बीड़ा, माला, चंदनआदिसे बलदेवजीके साथ श्रीकृष्णका सत्कार किया ॥ १३ ॥ उनके दर्शनसे उत्पन्न हुआ जो कामदेव उसके क्षोभसे स्त्रियोंकी यह दशा हो गयी कि,—न तो अपने शरीरका और न वस्त्र, केशपाश और वलय शिथिल होने व गिरनेका ज्ञान रहा, चित्रमें लिखी पुतलियोंसी हो गयीं ॥ १४ ॥ फिर भगवान्

एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ॥ साधितार्थोऽगृहाणां नः पांथानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥ विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे वणिक्पथैः ॥ नानोपायनतांबूलस्रग्गंधैः साग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥ तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः ॥ विस्रस्तवासः कबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥ १४ ॥ ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ॥ तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैंद्रमिवाद्भुतम् ॥ ॥ १५ ॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ॥ वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥ करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ॥ नृणां विकृष्य प्रबभंज मध्यतो यथेक्षुदंडं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥ धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ॥ पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥ तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः ॥ गृहीतुकामा आबवुर्गृह्यतां बध्यतामिति ॥ १९ ॥

पुरके लोगोंको धनुषका स्थान पूंछते पूंछते वहां गये और इंद्र धनुषसा अद्भुत धनुष देखा, ॥१५॥ जिसकी बहुतसे पहरेदार रक्षा करते थे, पूजा होती थी, बड़ी समृद्धि पास रक्खी हुई थी, लोगोंके मना करते भगवान् श्रीकृष्णने बलात्कारसे धनुष ले लिया ॥१६॥ बाएं हाथसे लीलाहीसे ऊंचा उठाय, पनच चढ़ाय, सब लोगोंके देखते देखते खैंचके एक क्षणभरमें बीचसे तोड़ डाला, जैसे मदोन्मत्त हाथी ऊखका दंड तोड़ डारे ॥ १७ ॥ धनुष टूटा, उस समय उसका शब्द आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग, दिशा सबमें भर गया. इसको सुनकर, कंस भयभीत हुआ ॥ १८ ॥ उसके चौकीदारोंने अनुचरोंसहित क्रोध कर, हाथोंमें शस्त्र ले, पकड़नेकी

तुरंतही इससे तेरा कल्याण होगा ॥ २ ॥ कुब्जा बोली कि–हे सुंदर! मैं त्रिवक्रानाम कंसकी दासी हूं, लेपनका चंदन तैयार करनेंमे कंसके बहुत मान्य हूं. मेरे हाथका घिसाहुआ चंदन कंसको बहुत प्यारा लगता है, तो उस चंदनके योग्य तुम विना दूसरा कौन है ? ॥ ३ ॥ रूप, सुकुमारता, मधुरता, हँसना, भाषण, देखना इनसे मोहितचित्त हो, कुब्जाने उन दोनों भाइयोंके वास्ते सघन चंदन अर्पण किया ॥ ४ ॥ अपने वर्णसे जुदा पीला–आदि रंगवाला चंदन नाभिसे ऊपर सब शरीरमें लगाया. तिससे अतिशय शोभा बढ़ी ॥ ५ ॥ भगवानने प्रसन्न हो, अपने दर्शनका फल दिखलाते तीन ठौरसे टेढ़ी सुमुखी कुब्जाको

सैरंध्र्युवाच ॥ दास्यस्म्यहं सुंदर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ॥ मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥ रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ॥ धर्षितात्मा ददौ सांद्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥ ततस्तावंगरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ॥ संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरंजितौ ॥ ५ ॥ प्रसन्नो भगवान्कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ॥ ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥ ६ ॥ पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यंगुल्युत्तानपाणिना ॥ प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥ सा तदर्जुसमानांगी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ॥ मुकुंदस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ ८ ॥ ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् ॥ उत्तरीयांतमाकृष्य स्मयंती जातहृच्छया ॥ ९ ॥ एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥ १० ॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः ॥ मुखं वीक्ष्यानुगोपानां प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥

सरल करनेका विचार किया ॥ ६ ॥ भगवानने अपने चरणोंसे उसके पांवके अग्रको चाप, दो अंगुली ऊँची कियेहुए हाथसे उसकी ठोड़ी पकड़, ज्यों उसके शरीरको ऊंचा किया ॥ ७ ॥ त्यों वह सरल, बराबर अंगवाली, बड़ा जिसका कटिभाग और स्तन हैं ऐसी, तुर्त भगवान्के स्पर्शसे उत्तम स्त्री बन गयी ॥ ८ ॥ फिर रूप, गुण, उदारतासे युक्त कामदेवसे व्याप्त कुब्जाने भगवान्के दुपट्टेकी कोर ऐंच, हँसकर, कहा कि–॥ ९ ॥ हे वीर ! आओ घरको चलें, मैं आपको छोड़ नहीं सक्ती, आपसे क्षोभित चित्त मुझपर हे पुरुषोत्तम ! आप कृपा करें ॥ १० ॥ ऐसे कुब्जाके प्रार्थना करनेपर, श्रीकृष्णचंद्रने बलदेवजीके देखते गोपोंके मु-

और शरणागत सुदामाको वरदान दिये ॥ ५० ॥ उसनेभी उन्हीं सर्वात्मा भगवान्‌की अचल भक्ति, उनके भक्तोंमें मित्रता और प्राणिमात्रपर परम दया मांगी ॥ ५१ ॥ उसे वैसाही वरदान दे, कुटुंबको बढ़ानेवाली लक्ष्मी, बल, आयु, यश और कांति दे, बलदेवजीके साथ वहांसे चले ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकाना-

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ॥ तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥ बलमायुर्यशः कांतिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे पुरप्रवेशोनाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ व्रजन्राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीतांगविलेपभाजनाम् ॥ विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यांतीं प्रहसन्रसप्रदः ॥ १ ॥ का त्वं वरोर्वेतदुहानुलेपनं कस्यांगने वा कथयस्व साधु नः ॥ देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते न चिराद्भविष्यति ॥ २ ॥

मभाषाटीकायां एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ बइयालीसवें अध्यायमें कुब्जाको ऊँचा कर, सीधाकरना, धनुषका भंग, उसके चौकीदारोंका वध, कंसको अरिष्ट, रंगका उत्सव इत्यादि कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–फिर राजमार्गसे पधारते सुखदाता भगवानने हाथमें चंदनका प्याला लिये जाती तरुण सुमुखी कुब्जाको देख, हँसकर, पूंछा कि–॥ १ ॥ हे वरोरु तू कौन है ? हे अंगना ! यह चंदन किसके वास्ते है ? हमें ठीक ठीक कह, जो तू हमें यह उत्तम चंदनका लेप देवेगी, तो

१ अहो ! यह जातका माली सुदामा कौन है ? जिसने कि–घरबैठे प्रभुको पाय, अविचल भक्ति पाई. तहां कहैं कि–यह पूर्वजन्ममें श्रीकुवेरजीके चैत्ररथ नाम बगीचेका रहनेवाला, सत्संगती, शान्त, दानी और बड़ा वैष्णव हेममाली नामका माली था. सो कोई समय आनन्दकन्द यदुनन्द श्रीकृष्ण चन्द्रजीकी प्राप्तिके लिये पाँचहजार वर्ष बराबर नित्य नियमसे तीनसौ सुगन्धित कमलोंसे शिवजीका पूजन करता था. ऐसे एक रोज शंकरजी प्रसन्न हो, 'वरंब्रूहि' (वरदान मांग) ऐसे इसे बोले. तब इस मालीने प्रदक्षिणा कर, दंड प्रणाम कर, सामने खड़े हाथ जोड़, शिर झुकाय, अपना मनचीता यह वर मांगा कि–हे प्रभो ! दीनदयालु शंकर !! आपके वरदानसे मैं यही चाहता हूं कि–घरबैठे श्रीकृष्णजीको दर्शन ले, अविचल भक्ति पाऊं. इतना सुनतेही शिवजीने कहा–'तथास्तु' (ऐसेही होगा) इसीसे यह घरबैठे श्रीकृष्णजीको दर्शन पाय अविचल भक्ति ले, कृतार्थ हुवा ॥ ग० ॥

स्मृति और इंद्रियोंकी चतुरता दी ॥ ४२ ॥ फिर आप सुदामानाम मालीके घर पधारे, उनका दर्शन होतेही उसने तुर्त उठ, पृथ्वीपर शिरसे प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ उनके वास्ते आसन लाय, पाद्य अर्पण कर, फिर ग्वालोंके साथ माला, बीड़ा, चंदन आदि पूजाकी सामग्रीसे पूजा करी ॥ ४४ ॥ और बोला कि–हे प्रभु ! आज हमारा जन्म सफल और पवित्र हुआ, आपके पधारनेसे मेरे पितर, देवता, ऋषि, सब मुझपर प्रसन्न हुए ॥ ४५ ॥ आप जगत्के परमकारण हो, इहां जगतके क्षेम और

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ॥ तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यं चार्थार्हणादिभिः ॥ पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ॥ पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ४५ ॥ भवंतौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ॥ अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥ ४६ ॥ न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ॥ समयोः सर्वभूतेषु भजंतं भजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ॥ पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभिप्रेत्य राजेंद्र सुदामा प्रीतमानसः ॥ शस्तैः सुगंधैः कुसुमैर्माला विरचिता ददौ ॥ ४९ ॥ ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ॥ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥

कुशलके वास्ते अंशके साथ अवतार लिया है ॥ ४६ ॥ जगतके आत्मा, सबके सुहृद, सब प्राणियोंमें समदृष्टि आपके कहींभी विषमदृष्टि नहीं है. हां, जो आपको भजता है, उसे आपभी भजते हो ॥ ४७ ॥ वे आप मुझ दासको आज्ञा करें, मैं आपका क्या काम करूं ? मुझे क्या आज्ञा है ? आप मनुष्यको जो आज्ञा करते हैं, वह मनुष्यपर बड़ी कृपा समझी जाती है ॥ ४८ ॥ महाराज ! सुदामाने राजी हो, इस तरह विनती की. और भगवानके अभिप्रायको जान, श्रेष्ठ सुगंधि पुष्पोंकी माला बनाय, भगवानको दी ॥ ४९ ॥ उन मालानसे ग्वालोंके संग सिंगार किये राम कृष्णने प्रसन्न हो, प्रणत

सुध भूल गई. पीछेभी यही दिलमें मनोरथ रहा कि– फिरभी जो एक बखत मौका गँठे कि– जिसमें मैं इन प्रभुको फेर कपड़े पहनाऊं. बस उसी दर्जीने फेर मथुरापुरीमें जन्म पाय, अपने मनोरथके साथ सारूप्य मुक्ति पाई ॥ ग०

हैं और लूट लेते हैं ॥ ३६ ॥ इसतरह बकवाद सुन, भगवान् श्रीकृष्णने क्रोधमें आ, उस धोबीका शिर अपने हाथके अग्रसे धड़से नीचे गिरा दिया ॥ ३७ ॥ उसके सब अनुचर ज्योंके त्यों वस्त्रोंके गट्ठे छोड़, मार्गमें चारोंतर्फ भाग गये और भगवान्ने वस्त्र ले लिये ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजीने अपने मनमाने वस्त्र पहन, शेष वस्त्र गोपोंको दिये, कछुक धरतीपर डार दिये

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ॥ रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान् विसृज्य वै ॥ दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वाऽऽत्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा ॥ शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ॥ विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥ नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ॥ स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥ तस्य प्रसन्नो भगवान्प्रादात्सारूप्यमात्मनः ॥ श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतींद्रियम् ॥ ४२ ॥

॥ ३९ ॥ फिर दरजीने बड़े आनंदसे उनके लिये पोशाख बनायी, जिसमें तरह तरहके रंगीन वस्त्र और आभूषण यथायोग्य लगाये ॥ ४० ॥ अनेक लक्षणोंवाले वेषोंसे राम-कृष्ण ऐसे शोभायमान लगते थे, जैसे उत्सवमें सिंगार करायेहुए श्वेत और कृष्ण बालगज शोभा देवें ॥ ४१ ॥ उस पर प्रसन्न हो, भगवान्ने उसे सारूप्य मुक्ति दी, इस लोकमें परम लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य,

---

१ न कहो कि-यह धोबी कौन है ? जिसने कि- दुर्वचनभी कहकर, योगिदुर्लभ गति पाई. तहां कहैं हैं कि- यह वही धोबी है कि- जिसने सीताजीकोभी कलंक लगाया. इसकी ऐसी कथा है कि- यह पूर्वजन्ममें श्रीअयोध्याजीमें जन्मा था. सो जब रामचन्द्र रावणको मार, सीताजीको लाय, राज्यासनमें बिराजे. तद एक हरकारेके द्वारा प्रभुको ऐसी खबर मिली कि- पुरीमें सब कोई आपकी कीर्तिका गान कर रहे हैं. परंतु उक्त धोबीमात्र अपनी स्त्रीपर गुस्सा हो, उसे आपकी अपकीर्तिभरे बचन सुना रहा है. कहता है कि- मैं राम नहीं जो कि- कितने एक दिन रावणके यहां रहीहुईभी सीताको फिरभी रखलिया मैं कभी तुझे घरमें न रक्खूंगा तू क्यों मेरी बेमर्जी ४ रोज पिताके घर रही ? इतनी बात प्रभुके कानमें पड़ी कि- इन्होंने भोर होतेही लक्ष्मणके द्वारा वाल्मीकि मुनिके आश्रमके नगीच अपनी प्रियाका परित्याग किया. परंतु आपने प्रजा दयालु होनेके कारण बध्य उस धोबीको कुछभी दंड न दिया. उसीने फिरभी मथुरामें जन्म पाय, दुर्वचन कह, भगवत्‌के हाथ मीच पाय, मोक्ष पाई ॥ ग०

२ न कहो कि- भला यह दर्जी कौन है कि- जिसने प्रभुको कपड़े पहनाय, सारूप्य मुक्ति ली. तहां कहै हैं कि-यहभी पूर्वजन्ममें जनकपुरीका रहनेवाला हरिभक्त दर्जीही है जो कि- रामजीके व्याहमें भगवत्‌के लिये चुन २ के, कपड़े सीके, प्रभुको पहराने लगा उस समय यह रामरूपमें ऐसे मग्न हुवा कि- तन धनकी

भगवान्‌को हृदयमें पधराय, उनको आलिंगन कर, आपके प्रथम भगवान्‌की प्राप्ति न होनेसे मनमें जो भारी व्यथा थी उसे छोंड़ दी, ॥ २८ ॥ महलोंके सिखरोंपर चढ़, प्रीतिसे प्रफुल्लित मुखकमल हो, स्त्रियोंने राम-कृष्णके ऊपर फूल बरसाये ॥ २९ ॥ प्रसन्न हुए ब्राह्मणलोग जहां तहां जलके पात्रसहित दही, अक्षत, माला, चंदन और भेंटोंसे इन दोनों भाइयोंका सत्कार करने लगे ॥ ३० ॥ पुरीके लोग कहने लगे कि- अहो ! गोपियोंने ऐसा क्या भारी तप किया ? जो मनुष्यलोकको परमआनंद देनेवाला इन भगवानका नित्य दर्शन करती हैं ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने किसी आतेहुए रँगरेज धोबीको देख, उससे अतिउत्तम धुले-

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखांबुजाः ॥ अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गंधैरभ्युपायनैः ॥ तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् ॥ या ह्येतावनुपश्यंति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥ रजकं कंचिदायांतं रंगकारं गदाग्रजः ॥ दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानिच ॥ ३२ ॥ देह्यावयोः समुचितान्यंग वासांसि चार्हतोः ॥ भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ॥ साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥ ३४ ॥ ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ॥ परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ याताऽऽशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा ॥ बध्नंति घ्नंति लुंपंति दृप्तं राजकुलानि वै ॥ ३६ ॥

हुए वस्त्र मांगे ॥ ३२ ॥ हे अंग ! हमें हमारे लायक वस्त्र दे, क्योंकि हम इन वस्त्रोंके लायक हैं, बेशक जो तू हमें देगा, तो तेरा परम कल्याण होगा ॥ ३३ ॥ सर्वप्रकारसे परिपूर्ण भगवानकी याचना सुन, वह धोबी क्रोधमें आ, तिरस्कार करके, बोला. क्योंकि वह राजाका नौकर था, अतएव वह मदोन्मत्त था ॥ ३४ ॥ हे छकेहुए लोको ! अरे ! तुम नित जंगल और पहाड़ोंमें रहकर, ऐसेही वस्त्र पहनते हो, तुम राजाके द्रव्योंकी क्यों प्रार्थना करते हो ? ॥ ३५ ॥ हे मूर्खो ! जल्दी चले जाओ, जो तुम्हारे जीनेकी इच्छा होवे तो, आयंदे कभी ऐसी प्रार्थना मत करना, क्योंकि गर्वयुक्त पुरुषको राजकीय लोग बांध देते हैं. मारते

लगी हुई हैं ॥ २३ ॥ अपने मित्रोंके साथ राम कृष्ण उस पुरीमें राजमार्गसे दाखिल हुए, उस समय हे राजा ! पुरकी स्त्रियां बड़े उत्साहके साथ जल्दी दर्शनको आयीं. और महलोंपर चढ़ी ॥ २४ ॥ किसीने त्वराकेमारे वस्त्र और गहना उलट पुलट पहिर लिया. कितनी एक जोड़मेंसे एकको भूल गयीं. कितनी एकने कानपर एक एक पत्र लगाया. कितनी एकने एक नूपुर तो पहरा और दूसरेका ठिकानाही नहीं, कितनी एकने एक आंखमें सुरमा डाला, एकमें डालाही नहीं ॥ २५ ॥ कोई

तां संप्रविष्टौ वसुदेवनंदनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवाऽऽरुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ॥ कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नांक्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥ २५ ॥ अश्नंत्य एकास्तदपास्य सोत्सवा अभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ॥ स्वपंत्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययंत्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविंदलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकैः ॥ जहार मत्तद्विरदेंद्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ॥ आनंदमूर्तिमुपगुह्य दृशाऽऽत्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनंतमरिंदमाधिम् ॥ २८ ॥

भोजन करतीं थीं वे भोजन छोड़, कोई तेलमर्दन करातीं थीं वे विना स्नान किये, जो सोतीं थीं वे शब्द सुनतेही तुर्त उठ, माता जो पुत्रोंको स्तनपान कराती थीं वे बच्चोंको छोड़ कर, आयीं ॥ २६ ॥ मदोन्मत्त गजराजके समान चालवाले, लक्ष्मीजीको प्रीति देनेवाले, श्रीअंगसे दृष्टिको आनंद देते, कमलनयन श्रीकृष्णचंद्र प्रौढलीलासहित अपने हँसने और देखनेसे उनके मनका हरण करते थे ॥ २७ ॥ हे कामदेवके जीतनेवाले महाराज ! वारंवार सुननेके कारण उन्हींमें जिनका मन लग रहा था, ऐसी, उनके देखने और हँसने रूप अमृतके सेचनसे मान पायीहुई और रोमांचित हुई हुई स्त्रियोंने नेत्ररूप द्वारसे आनंदमय

---

१ रागिनी भैरवी– वह देखो आवत बनमाली ॥ घनतनुश्याम पीत पट सुन्दर शोभित नयन विशाली ॥ जिन पहलेही पलना पौढ़त पय पीवत पूतना विघाली ॥ अघ बक बच्छ अरिष्ट केशि मथि जलते काढ़ेउ काली ॥ जिहिं हति शकट प्रलम्ब तृणासुर इन्द्रप्रतिज्ञा टाली ॥ इतने पर अंधो नहिं मानत कपटी कंस कुचाली ॥ अब विधुबदन बिलोकि सुलोचनि श्रवणनि सुनत जुआली ॥ धन्य तीय गोकुलकी सूरज प्रगट प्रतिज्ञा पाली ॥ १ ॥

हुए ॥ १९ ॥ और उस मथुरापुरीको देखा. कैसी है वह मथुरापुरी, कि–जिसमें स्फटिक मणिके ऊँचे गोपुर और द्वार हैं, बड़े सोनेके कपाट और तोरण लग रहे हैं, तांबे और लोहेके धानके कोठे हैं जो चौतर्फ खाई (शहरपनाह) होनेसे बड़ी दुर्गम है. उद्यान व सुंदर पवनोंसे शोभायमान है ॥ २० ॥ सुवर्णके चौहट्टे, धनवानोंके घर, घरमेंके बगीचे, एक पेशा करनेवाले कारीगरोंके रहनेकी जगह, घर इनसे शोभायमान, वैदूर्य मणि, हीरा, स्फटिकमणि, नीलमणि, विद्रुम (मूंगा), मोती

ददर्श तां स्फाटिकतुंगगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ॥ ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णशृंगाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ॥ वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥ जुष्टेषु जालामुखरंध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ॥ संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतंडुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुंभैर्दधिचंदनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ॥ सवृंदरंभाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहांसपट्टिकैः ॥ २३ ॥

हरितमणि इनसे जड़ेहुए, झरोखोंके छिद्र, छज्जे, वेदी तथा मणियोंसे बंधी भूमियोंमें कबूतर और मोर जिसमें नाद कर रहे हैं तथा राजमार्ग, बाजार और आंगनमें जल छिड़का जाता है और फूल, अंकुर और तंदुल बिखरे हुए हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रत्येक घरके द्वार दोनों बाजू चांवलोंके ढेरपर धरे जलभरे सपल्लव कुंभोंसे शोभायमान हैं. जिनपर चारोंओर फूलोंकी माला रक्खी हुई हैं. उनके कंठमें वस्त्र डाला हुआ है. दही और चंदन उनके लगायाहुआ है. ऊपर दूसरा पात्र रख, उसमें अनेक दीपक संजोये हैं, ध्वजा लग रही हैं. और आसपासमें फलोंके गुच्छकसहित केले और सुपारीके वृक्ष लगाये हुए हैं. पट्टियां जुदीही

१ रागिनी टोड़ी–मथुरा कैसी आजु बनी ॥ मानों पतिको आगम जान्यो सजि शिंगार घनी ॥ भूषण चित्र बिचित्र देखियत शोभित सुन्दर अंगनि ॥ मानों कोटि कोटि कटि किंकिणि ध्वजपर बसन सुरंगिनि ॥ सुनि अतिसघन कराल घोष मैं पांयन नूपुर बाजत ॥ उर अंचल चंचल अति राजत दामिनि ध्वजा बिराजत ॥ ऊंचे अटन नक्षत्रनकी छबि जनु युवती मग फूली ॥ कनककलश कुच प्रगट देखियत आनँदकंचुकि भूली ॥ विद्रुम फटिक पानचीऊपर जालरंध्रकी रेख ॥ मनहुँ तुम्हारे दर्शनकारण नयननि तजी निमेख ॥ अवलोकहु यहि भांति रमापति पुरी परमरुचिरूप ॥ सूरदास प्रभु कंस मारके होउ यहांके भूप ॥ १ ॥

ल ! आपका भक्त जो मैं हूं तिसका त्याग करना आपको उचित्त नहीं है ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज ! पधारो, हमारे घर चलो हमें सनाथ करो, बलदाऊजी और मित्रवर्ग जो गोपाल हैं, उन्हेंभी संग ले लो; क्योंकि आप मेरे परमस्नेही हो ॥ १२ ॥ आपकी चरणरजसे हम गृहस्थियोंके घर पवित्र करो, जिनके चरणोंके धोनेके जलसे पितर, अग्नि और देवता सब तृप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ देखो ! बलिराजा आपके चरणोंका युगल धोय, सराहनेयोग्य हुआ और अतुल ऐश्वर्यको प्राप्तहो, फिर भक्तलोगोंकी गतिको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ आपके चर

आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज ॥ सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥ पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ॥ यच्छौचेनानुतृप्यंति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥ अवनिज्यांघ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो बलिर्महान् ॥ ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकांतिनां तु या ॥ १४ ॥ आपस्तेंऽघ्र्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकान् शुचयोऽपुनन् ॥ शिरसा धत्तः याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥ देव देव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोस्तु ते ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ॥ यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ॥ पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्माऽऽवेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्णे भगवान्कृष्णः संकर्षणाऽन्वितः ॥ मथुरां प्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥

णोंका जल परम पवित्र है. और त्रिलोकीको पवित्र करता है. जिसको शिवजी शिरमें धारण करते हैं. और सगरके पुत्र जिसके प्रभावसे स्वर्गगामी हुए ॥ १५ ॥ हे देव ! हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे पुण्यकारी श्रवण कीर्तनवाले ! हे यदुश्रेष्ठ ! हे उत्तमश्लोक ! हे नारायण ! आपको मेरा प्रणाम है ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि– मैं बलदेवजीके साथ आपके घर आऊँगा, परंतु यदुकुलके वैरी कंसको मार, मित्रोंका प्रिय करूंगा ॥ १७ ॥ जद भगवानने ऐसा कहा तद अक्रूरजी उदाससे हो, पुरीमें प्रवेश कर, कंसको इतला दे, अपने घर गये ॥ १८ ॥ फिर दुपहरीके अनंतर श्रीकृष्णचंद्रजी बलदेवजीके साथ ग्वालोंको संग ले, मथुरापुरी देखनेको अंदर प्रविष्ट

उनसे श्रीकृष्णचंद्रने पूंछा कि-आपने पृथ्वीमें या आकाशमें वा जलमें कुछ अद्भुतसा देखा? आपने कुछ अद्भुत देखा हो, वैसा आपकी आकृतिपरसे मालूम होता है ॥ ३ ॥ अक्रूरजीने कहा कि-पृथ्वीमें आकाशमें वा जलमें यहां जितने अद्भुत हैं, वे सब आप जो सर्वरूप हो तिनमें रहेही हैं, जब आपकेही मुझे दर्शन हुए, तब कौन अद्भुत मैंने न देखा? अपितु सब अद्भुत मेरे देखनेमें आये ॥ ४ ॥ हे परमेश्वर! जब मैं आपहीका दर्शन करता हूं, जिनमें सब अद्भुत रहे हैं, तब पृथ्वी, आकाश वा जलमें आप विना दूसरा क्या अद्भुत देखा होगा? ॥ ५ ॥ अक्रूरजीने इतना कह, रथको चलाया, संध्या पड़ते राम-कृष्णको मथुरामें

तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूर उवाच ॥ अद्भुतानीह यावंति भूमौ वियति वा जले ॥ त्वयि विश्वात्मके तानि किं मे दृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥ यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ॥ तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन्किं मे दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ ५॥ इत्युक्त्वा चोदयामास स्यंदनं गांदिनीसुतः ॥ मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥ ६ ॥ मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः ॥ वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ॥ ७ ॥ तावद्व्रजौकसस्तत्र नंदगोपादयोऽग्रतः ॥ पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षंतोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्समेत्याऽऽह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान्प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ॥ वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूर उवाच ॥ नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ॥ त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥

ले आये. महाराज! मार्गमें गांवोंके लोग जहाँ तहाँ इकठे हो, राम-कृष्णका दर्शन कर, बहुत प्रसन्न हुए, और अपनी दृष्टिको पीछी नहीं हटा सके ॥ ७ ॥ अक्रूरजीका रथ पहुंचा. तिससे पहलेही नंद-आदि सब व्रजवासी मथुराके उपवनके समीप आ, उसकी राह देखते ठहरे रहे ॥ ८ ॥ उनके सामिल हो, जगन्नाथ भगवान् श्रीकृष्ण नम्र अक्रूरजीका हाथ अपने हाथसे पकड़, मानों हँसी करते हों ऐसे बोले कि- ॥ ९ ॥ आप रथको संग ले, पुरीमें जायं, घरमें प्रवेश करें, हम तो विश्राम कर, फिर पुरी देखेंगे ॥ १० ॥ अक्रूरजी बोले कि-हे प्रभु! मैं आपके विना पुरीमें कभी प्रवेश नहीं करूंगा, हे नाथ! हे भक्तवत्स-

बहिर्मुख हो, देहाभिमुख दौड़ता हूं ॥ २६ ॥ मैं कृपणबुद्धि काम व कर्मसे क्षोभप्राप्त मनको नहीं रोकसक्ता, क्योंकि वह बलवान् इंद्रियोंसे इधर उधर बहुत खैंचा हुआ है ॥ २७ ॥ हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! विषयी पुरुषोंको दुर्लभ ऐसे आपके चरणके शरण आया हूं और आपके शरण आना यहभी आपकी कृपाहीसे हुआ है, ऐसे मानता हूं, जिस समय जीवका संसार निवृत्त होना होता है; तभी महात्मापुरुषोंकी सेवासे आपके भजनमें मन लगता है ॥ २८ ॥ विज्ञानमूर्ति, सबके ज्ञानके कारण, काल, कर्म, स्वभाव-आदिके नियंता, परिपूर्ण, अनंतशक्ति परब्रह्म आपको प्रणाम है

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ॥ रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोऽहं तवांघ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ॥ पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्व-य्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ पुरुषेश प्रधा-नाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ २९ ॥ नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धेऽक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्त-मोऽध्यायः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ॥ भूयः समाहर-त्कृष्णो नटो नाट्यमिवाऽऽत्मनः ॥ १ ॥ सोऽपि चांतर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वा चाऽऽवश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥

॥ २९ ॥ सबके आश्रय, अधिष्ठाता, आपको मेरा प्रणाम है. हे इंद्रियोंके स्वामी ! हे प्रभु आपको मैं नमस्कार करता हूं. मैं आपका शरणागत हूं आप मेरा पालन करें ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्व-दीपिकानामभाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥ एकतालीसवें अध्यायमें पुरीमें प्रवेश करतेही रजकको मार, सुदामा-नाम माली व दरजीको वरदान दिये, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-स्तुति करतेहुए अक्रूरजीको जलमें अपने स्वरूपका दर्शन दे, फिर भगवान् कृष्णने अपना स्वरूप अंतर्धान किया. जैसे नट अपने स्वाँगको समेट लेता है ॥ १ ॥ वे भी अंतर्धान हुआ देख, तुर्त जलसे बाहिर निकल, आवश्यक जो कर्तव्य था वह सब कर, विस्मय करते करते रथके निकट आये ॥ २ ॥

आपको प्रणाम है ॥ १८ ॥ हे साधुलोगोंके भयके हरण ! अद्भुत नृसिंहमूर्ति आपको प्रणाम है, त्रिलोकीको मापनेवाले वामनरूप आपको प्रणाम है ॥ १९ ॥ गर्विष्ठ क्षत्रियकुलरूप वनके छेदन करनहारे परशुराममूर्ति आपको प्रणाम है, रावणके मारनेवाले रामचंद्रमूर्ति आपको प्रणाम है ॥ २० ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध चतुर्व्यूहमूर्ति भक्तोंके पति आपको प्रणाम है ॥ २१ ॥ शुद्धस्वरूप दैत्योंको मोहित करनहारे बुद्धमूर्ति आपको प्रणाम है, म्लेच्छरूप क्षत्रियोंके संहार करनहारे कल्किमूर्ति आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह जीवलोक आपकी मायासे मोहित हो, अहंता-ममतारूप दुराग्रहसे कर्ममार्ग-

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं क्रांतत्रिभुवनाय च ॥१९॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ॥ नमस्ते रघुवर्याय रावणांतकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ॥ म्लेच्छप्रायक्षत्रहंत्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥ भगवञ्जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहं चाऽऽत्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ॥ भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ॥ द्वंद्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥ यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ॥ अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाऽहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥

में भ्रमण करता है ॥ २३ हे विभु ! मैंभी स्वप्नके तुल्य जो आत्मा, पुत्र, घर, स्त्री, धन, स्वजन-आदि हैं, तिनमें मूर्खतासे सत्य बुद्धिकर, भ्रमण करता हूं ॥ २४ ॥ अनित्य कर्मफलको नित्य माननेवाला, अनात्मा देहको आत्मा माननेवाला, दुःखरूप घर-आदिको सुख माननेवाला, सुख दुःखादिकहीमें रमण करनेवाला अज्ञानसे व्याप्त, मैं आत्माको परम प्रेमके आस्पद आपको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जैसे मूर्खमनुष्य शैवालसे ढके जलको छोड़, मृगतृष्णाकी ओर दौड़ता है. तैसे मैंभी आपसे

जीव पोहे हुए हैं, वे गुण प्रकृतिमें और प्रकृति आपमें ॥ ११ ॥ गुणोंसे अलिप्तबुद्धि, सर्वके आत्मा, सबकी बुद्धियोंके साक्षी, आपको मैं प्रणाम करता हूं अविद्याकृत यह संसार तो देव, मनुष्य, पशु पक्षी इनके शरीरमेंही प्रवृत्त होता है. अतएव इनमें और आपमें बड़ा अंतर है ॥ १२ ॥ अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी चरण, सूर्य नेत्र, आकाश नाभी, दिशा कान, स्वर्ग शिर, देवता भुजा, समुद्र कुक्षि, वायु प्राण और बल कल्पित है ॥ १३ ॥ वृक्ष और ओषधियां रोम, मेघ शिरके बाल पर्वत नख और हड्डियां हैं, रातदिन पलक, प्रजापति लिंग, वर्षा आपका वीर्य माना जाता है ॥ १४ ॥ हे अविनाशी ! अनेक जीवोंसे

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ॥ गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरंघ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौः कं सुरेंद्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ॥ निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥ त्वय्यव्ययात्मन्पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ॥ यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुंबरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥ यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ॥ तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायंति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ॥ हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मंदरधारिणे ॥ क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥ १८ ॥

व्याप्त ये सब लोक और लोकपाल, पुरुषरूप आपहीमें कल्पित हैं, जैसे जलमें जलचर और उदुंबर यानी गूलरके फलमें मच्छड़ अनंत रहते हैं, तैंसे मनकी वृत्तिसे व्यंग आपमें अनंत ब्रह्मांड विचरते रहते हैं ॥ १५ ॥ आप क्रीड़ा करनेके वास्ते जो जो रूप धारण करते हो, उन्हींके यशको आनंदसे गाय गाय, लोग शोचरहित हो जाते हैं ॥ १६ ॥ प्रयोजनसे मत्स्यरूप धारण कर, प्रलयके समुद्रमें विचरनेवाले आपको प्रणाम है, मधु कैटभ दैत्यको मारनेवाले हयग्रीवमूर्ति आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ मंदराचलको धारण करनहारे, व्यापक कच्छपमूर्ति आपको प्रणाम है, पृथ्वीका उद्धार करनेकी क्रीड़ा करनहारे वराहावताररूप

नेमें आतेहुए ये माया-आदि पदार्थ, सर्वके आत्मा आपके स्वरूपको नहीं जानते. और जीव, जो, सबको व आत्माको जानता है, वहभी-मायाके गुणोंसे बंधा हुआ है तासों गुणसे पर आपके स्वरूपको नहीं जानता ॥ ३ ॥ उत्तम योगीजन साक्षात् महापुरुष और अंतर्यामी ईश्वररूप आपका भजन करते हैं. जो आप गोलक इंद्रिय, देवता इन तीनोंके साक्षी हो ॥ ४ ॥ कर्मयोगवाले कितनेएक द्विज-लोग अनेकरूप देवतानके नामसे बड़े बड़े यज्ञ कर कर, वेदत्रयीरूप कर्मकांडकी विद्यासे आपका यजन करते हैं ॥ ५ ॥ कई ज्ञानी लोग सर्व कर्मोंको त्याग, उपशमको धारण कर, ज्ञानमूर्ति आपका ज्ञानयज्ञसे यजन करते हैं ॥ ६ ॥ कई दूसरे आपकी

त्वां योगिनो यजंत्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ॥ साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४ ॥ त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ॥ यजंते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥ एके-त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः ॥ ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजंति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥ अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते ॥ यजंति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्यैकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥ त्वा-मेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ॥ बह्वाचार्यविभेदेन भगवान्समुपासते ॥ ८ ॥ सर्व एव य-जंति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ १९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा न-द्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ॥ विशंति सर्वतः सिंधुं तद्वत्त्वां गतयोंऽततः ॥ १० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥ ११ ॥

कहीहुई पंचरात्रकी विधिप्रमाण संस्कारको प्राप्त हो, यानी वैष्णवदीक्षा धारण कर, आपके रूपसे आत्माका चिंतवन करते वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध भेदसे अनेक मूर्ति और नारायणरूपसे एकमूर्ति आपकाही यजन करते हैं ॥ ७ ॥ हे भगवन्! फिर दूसरे नाना आचार्यरूप शिवजीके कहेहुए पाशुपतादिक मार्गोंसे शिवमूर्ति आपहीकी उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभु ! जो दूसरे देवतानके भक्त हैं और दूसरोंमें उनकी बुद्धि हैं, वेभी सब सर्व देवतारूप और ईश्वर आपहीका यजन करते हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभु ! जैसे पर्वतमेंसे निकलीहुई नदियां मेघके जलसे पूर्ण हो, आखिर चारोंओरसे समुद्रमें जा मिलतीं हैं तैसे सब मार्ग आखिर आपमें आ मिलते हैं ॥ १० ॥ सत्व, रज, तम, ये आपकी प्रकृतीके गुण हैं, इन गुणोंमें ब्रह्मा-आदि स्थावरपर्यंत सब

यगर्भ वचनोंसे जिनकी स्तुति करते हैं ॥ ५४ ॥ ऐसे और श्री, पुष्टि, वाणी, कांति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, माया, शक्ति इन सबसे सेवित ॥ ५५ ॥ उनका दर्शन कर, अक्रूरजी अतिप्रसन्न हुए, शरीर रोमांचित हुआ और भावसे नेत्र व अंतःकरण आर्द्र हो गये ॥ ५६ ॥ उससमयभी धीरज रख, परमभक्तियुक्त हो, शिरसे प्रणाम कर, हाथ जोड़, सावधान हो, अक्रूरजी गद्गद वाणीसे धीरे धीरे स्तुति करने लगे ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पू० रामश्यामविरचि-

श्रिया पुष्ट्या गिरा कांत्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ॥ विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥ विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ॥ हृष्यत्तनूरुहोभावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥ गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत्सत्त्वमालंब्य सात्वतः ॥ प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृतांजलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियाने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ अक्रूर उवाच ॥ नतोऽस्म्यहं त्वाऽखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥ यन्नाभिजातादरविंदकोशाद्ब्रह्माऽविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इंद्रियाणि ॥ सर्वेंद्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽगभूताः ॥ २ ॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ॥ अजोऽनुबद्धः सगुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥

तायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ चालीसवें अध्यायमें, अक्रूरजीने श्रीकृष्णको ईश्वरोंका ईश्वर मान, प्रणाम कर, सगुण निर्गुण भेदसे भक्तिसे स्तुति की, यह कथा होगी ॥ १ ॥ अक्रूरजी बोले कि– हे कृष्ण ! सब कारणोंके कारण, आदिपुरुष, अविनाशी, नारायण आप कि–जिनकी नाभिमेंसे प्रगट भये कमलकोशमेंसे लोकोंका सरजनहार ब्रह्मा प्रगट होवे है उन्हें मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहंकार, माया, पुरुष, मन, इंद्रियां, सब विषय, देवता कि–जो जगतके कारणरूप हैं, वे सब आपके अंगभूत हैं ॥ २ ॥ जड़ और जड़ताके कारण, प्रत्यक्षादिकसे जान-

१ लक्ष्मी. २ जिसके प्रवेशसे स्वल्पाहारीभी मनुष्य पुष्ट हो जाते हैं. और जिसके प्रवेशाभावसे बहु आहारीभी मनुष्य पुष्ट नहीं होते. ३ सरस्वती. ४ पृथ्वी. ५ सर्वसामर्थ्यरूपा.

नका स्वरूप जो मेघसा श्यामवर्ण, पीले पीतांबर पहिरे, चतुर्भुज, शांत, कमलके पत्तेसमान अरुण नेत्र, ॥ ४६ ॥ प्रसन्न और सुंदर मुख, सुंदर हाससहित दृष्टि लगाये, सुंदर भौंह, ऊँची नाक, सुंदर कान, सुंदर कपोल, अरुण अधर, ॥४७॥ लंबे व पुष्ट भुजा, ऊँचे कंधे, वक्षःस्थलमें लक्ष्मीको धारण किये, शंखसी त्रिवलीयुक्त कंठ, गंभीर नाभि, पीपलके पत्तेके समान तिरछा नीची रेखायुक्त उदर, ॥ ४८ ॥ मोटा कटिभाग व श्रोणिभाग, हथेलीके दाहिने भागके समान ऊरू (साथल) युगल धारण किये, सुंदर

चारु प्रसन्नवदनं चारु हासनिरीक्षणम् ॥ सुभ्रून्नसं चारु कर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥ प्रलंबपीवरभुजं तुंगांसोरस्थलश्रियम् ॥ कंबुकंठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८ ॥ बृहत्कटितटश्रोणि करभोरुद्वयान्वितम् ॥ चारु जानुयुगं चारु जंघायुगलसंयुतम् ॥ ४९ ॥ तुंगगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ॥ नवांगुल्यंगुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजम् ॥ ५० ॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकांगदैः ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुंडलैः ॥ ५१ ॥ भ्राजमानं पद्मकरं शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ५२ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ॥ स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥

दो घुटने व सुंदर दो जंघावोंसे संयुक्त, ॥ ४९ ॥ ऊँचे गुल्फ, लाल नखोंके समूहकी कांतिसे वेष्टित व कोमल अंगुली व अंगूठेरूप पंखुरीनसे शोभायमान चरणकमल, ॥ ५० ॥ अमूल्य मणियोंके समूहसे जटित किरीट, कटक, अंगद, कटिसूत्र, यज्ञोपवीत, हार, नूपुर, कुंडल, इनसे देदीप्यमान ॥ ५१ ॥ कमल हाथमें लिये, शंख, चक्र, गदा, धारण किये, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह धरे, कौस्तुभ मणिसे भ्राजमान वनमाला पहिरे, ॥ ५२ ॥ सुनंद नंद-आदि पार्षद सनकादिक, ब्रह्माजी, रुद्रआदि देवता, मरीचि आदि नव ऋषि, ॥ ५३ ॥ प्रह्लाद, नारद, वसु-आदि भागवत, ये सब निर्मल अंतःकरणसे जुदे जुदे अभिप्रा-

चरित्रोंका गान करतीं दिन गुजारतीं थीं ॥ ३७ ॥ महाराज ! भगवान्‌भी बलदाऊजी और अक्रूरजीके साथ पवनसे वेगवान रथसे पापमोचिनी यमुनाके तीरपै पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहां हाथ पैर धोय, नीलमणिसा निर्मल मधुर जल पी, वृक्षोंकी झांड़ीमें हो, बलदाऊजीके साथ भगवान् रथमें आ विराजे ॥ ३९ ॥ अक्रूरजीने उन दोनों भाईनसे आज्ञा मांग, रथपै बिठलाय, यमुनाजीके देहपै आय, विधिपूर्वक स्नान किया ॥ ४० ॥ उस जलमें डुबकी लगाय, अक्रूरजी ज्यों सनातन परब्रह्मका ध्यान करने लगे त्यों उन्हीं रामकृष्णको सामिल जलमें देखा ॥ ४१ ॥ अक्रूरजी सोचने लगे कि-वे तो रथमें बैठे थे, वसुदेवजीके पुत्र यहां कैसे

भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥ रथेन वायुवेगेन कालिंदीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ॥ वृक्षषंडमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामंत्र्य निवेश्य च रथोपरि ॥ कालिंद्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥ निमज्ज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्मसनातनम् ॥ तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥ तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुंदुभेः ॥ तर्हि स्वित्स्यंदने नस्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥ तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ॥ न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहीश्वरम् ॥ सिद्धचारणगंधर्वैरसुरैर्नतकंधरैः ॥ ४४ ॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नीलांबरं बिसश्वेतं शृंगैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्संगे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ पुरुषं चतुर्भुजं शांतं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥

आये ? शायद रथमें न हों, ऐसा विचार, जलसे बाहिर निकलकर, ज्यों देखा ॥ ४२ ॥ त्यों वहाँभी जैसे पहिले बैठे थे, वैसेके वैसे बैठे देखे, तद सोचने लगे कि-क्या जलमें मुझे ये दोनों भाई झूंठ मूंठही प्रतीत होते हैं ? ऐसा विचार कर, फिर ज्यों जलमें डुबकी मारी, त्यों ॥ ४३ ॥ जलमें फिर शेषजीके दर्शन हुए, जिनकी रातिदिन सिद्ध, चारण, गंधर्व और असुर शिर झुंकाय स्तुति कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ कैसे हैं वे शेष देव कि-हजार जिनके मस्तक हैं, हजारही फणोंपर मुकुट धारण किये हैं व नीलवस्त्र पहिरे कमलनालके समान श्वेतवर्ण जैसे शिखरोंसे शोभायमान कैलास पर्वत विराजे तैसे विराजे हैं ॥ ४५ ॥ उनकी गोदीमें भगवा-

सांझसमय बलरामजीके साथ ग्वालोंसे वेष्टित हो, बंसी बजाते और जिनके केश व माला गौनके खुरोंकी रजसे भरे रहते हैं, ऐसे भगवान् व्रजमें पधारते, मंदहास्यपूर्वक कटाक्षसहित दृष्टिसे अपने चित्तको हर लेते हैं, उन भगवानके विना आपन किस भांति जी सकें ? ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि– इसभांति बोलतीं, विरहातुर और जिनका चित्त श्रीकृष्णहीमें आसक्त है, ऐसी व्रजांगना लज्जाको त्याग, हे गोविंद ! हे दामोदर ! हे माधव ! ऐसे ऊंचे स्वरसे रोने लगीं, ॥ ३१ ॥ फिर सूर्योदय होतेही स्त्रियोंके रोते रोते अक्रूरजीने संध्योपासनादि कर्म कर, रथको चलाया ॥ ३२ ॥ फिर नंद–आदि सब गोप गोरससे भरे घड़े व

योऽह्नक्षये व्रजमनंतसखः परीतो गोपैर्विशन्खुररजश्छुरितालकस्रक् ॥ वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ॥ विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेवं रुदंतीनामुदिते सवितर्यथ ॥ अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥ गोपास्तमन्वसज्जंत नंदाद्याः शकटैस्तथा ॥ आदायोपायनं भूरि कुंभान्गोरससंभृतान् ॥ ३३ ॥ गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरंजिताः ॥ प्रत्यादेशं भगवतः कांक्षंत्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ॥ सांत्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥ ता निराशा निववृतुर्गोविंदविनिवर्तने ॥ विशोका अहनी निन्युर्गायंत्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥

बहुत भेटें ले, गाड़ोंमें बैठ, उनके पीछे चले ॥ ३३ ॥ गोपियां अपने प्यारे श्रीकृष्णके पीछे जातीं थीं, तहां श्रीकृष्णचंद्रने पीछा फिर देखनेआ दिसे उन्हें कुछ प्रसन्न किया अतएव वे भगवानका प्रत्युत्तर मिलनेकी आज्ञा रख, ठाढ़ी रहीं ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने अपने प्रयाणमें उन्हें वैसी दुःखी देख, ' मैं आऊँगा ' ऐसे प्रेमभरे वचन दूतद्वारा कहलाय, उनकी सांत्वना की ॥ ३५ ॥ जौलों रथकी ध्वजा और रथकी रज दीखती रही, तौलों वे गोपियां चित्रमें कढ़ी पुतलियोंसी निश्चल मालूम हुईं, क्योंकि उनके चित्त तो भगवानके साथ थे ॥ ३६ ॥ फिर वे भगवान्के पीछे लौटनेकी आस छोड़, पीछी लौट आयीं व सोचको तज, प्यारेके

रहनेवालीं हैं, उनके पास पीछे कैसे आवेंगे ? ॥ २४ ॥ आज मथुरामें दाशार्ह, भोज, अंधक, वृष्णि, सात्वतवंशी यादवोंकी दृष्टिको अवश्य बड़ा लाभ होगा, कि—जो लक्ष्मीके प्यारे गुणोंके धाम श्रीकृष्णका मार्गमें दर्शन करेंगे ॥ २५ ॥ ऐसे क्रूर कर्म करनेवाला निर्दय मनुष्यका 'अक्रूर' ऐसा नाम नहीं होना चाहिये, क्योंकि अतिक्रूर स्वभाववाला यह मनुष्य अत्यंत दुःखी आपनको सांत्वना दिये विना प्राणोंसेभी प्रिय श्रीकृष्णको आपन न देख सकें, ऐसे दूर स्थलमें ले जायगा ॥ २६ ॥ अरे ! क-ठोरचित्त ये श्रीकृष्ण रथमें विराजे, फिर ये मदोन्मत्त ग्वाल इनके पीछे गाड़ोंमें बैठ, जल्दी करते हैं. इस अनीतिको देख,

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजांधकवृष्णिसात्वताम् ॥ महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्र-क्ष्यंति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥ मैतद्विधस्याकरुणस्य नामभूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ॥ योसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥ अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयंति दुर्मदाः ॥ गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७॥ निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबांधवाः ॥ मुकुंदसंगान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्दैवे-न विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥ यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमंत्रलीलाऽवलोकपरिरंभणरासगो-ष्ठ्याम् ॥ नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरंतम् ॥ २९ ॥

वृद्धभी कोई नाहीं नहीं करता, इस समय किसी ग्वालके अकस्मात् वज्रपातके समान दूसरा कोई अनिष्ट विघ्नभी नहीं होता, जिससे इनको रुकना पड़े हाय!!! आज दैवही हमारे प्रतिकूल चेष्टा करता है ॥ २७ ॥ आपन सब सामिल हो, भगवानको रोंक दे, कुलवृद्ध व बांधव अपना क्या कर डारेंगे ? आधे क्षणभरभी जिनका तजना नहीं बन सकता, ऐसे भगवानके प्रसंगका वियोग दे, जिनके चित्तको दैवने दीन कर डारा है ऐसी, आपनको अब मृत्युकाभी क्या डर है ? ॥ २८ ॥ हे गोपियो ! रासक्रीड़ाकी सभामें स्नेहभरा जो भगवानका सुंदर मंदहास्य, सुंदर विचार, लीलापूर्वक दर्शन व आलिंगनकी प्राप्ति उससे जिन आपनने बहु-तसी रातें क्षणके समान व्यतीत करीं, वे आपन भगवान्‌विना विरहके अपार दुःखको किस तरह तिर सकेंगीं ? ॥ २९ ॥

परभी वृथा वियोग कर देता है, इसीसे तेरी क्रीड़ा बालककी क्रीड़ासी है. अर्थात् तू मूर्ख है ॥ १९ ॥ अरे ! जो तू श्यामके-शोंसे आच्छादित, सुंदर कपोल व ऊंची नासिकावाले, शोक मिटानेवाले, मंद हास्यके लेस मात्रसेभी सुंदर, भगवानके मुखारविंदका एकवार दर्शन कराय, पीछा अदृश्य करता है. हमने तेरा क्या बिगाड़ा ? ॥ २० ॥ तू क्रूर है. उस विना दूसरे किसीसे ऐसा काम बने नहीं. अतएव अक्रूरका नाम धर, तूही आया है. अरे ! तेरी दी हुई आंख तूही मूर्खके जैसे ले लेता है. जिस तेरी दीहुई आंखसे भगवानके एक एक अंगमें तेरी तमाम सृष्टिकी सुंदरता हम देखतीं हैं ॥ २१ ॥ अरे !

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुंतलावृतं मुकुंदवक्रं सुकपोलमुन्नसम् ॥ शोकापनोदस्मितलेशसुंदरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ २० ॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ॥ येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥ न नंदसूनुः क्षणभंगसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ॥ विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ॥ याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यंत्यपांगोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥ तासां मुकुंदो मधुमंजुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि ॥ कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥२४॥

रे ! ! श्रीकृष्णभी हमारी ओर नहीं देखते, एक क्षणभरमें स्नेहको छोड़ दिया. हाय ! इसको तो नयाही नया प्यारा लगता है, देखो, हम तो वर, स्वजन, पुत्र, पति, सबको छोड़, साक्षात् दास्यभावको प्राप्त हुई हैं. और केवल उसीके कारण दुःखी हैं ॥ २२ ॥ मथुराकी स्त्रियोंके अवश्य आजकी रातका प्रभात शुभसगुनवाला हुआ होगा. और उनके मनोरथभी सत्य हुए. देखो. जो स्त्रियां मथुरामें पधारे भगवानका मुख कि- जो कटाक्षसे वृद्धिंगत और स्मितके कारण आसवरूप है उसका पान करेंगीं ॥ २३ ॥ हे स्त्रियो ! श्रीकृष्णचंद्र, यद्यपि मा-बाप-आदिके पराधीन हैं और धीर हैं, तोभी उन स्त्रियोंके मदके समान मीठे भाषणोंसे इनका चित्त हरण हो जायगा. व उन स्त्रियोंके लाजभरे मंदहास्य व विलासोंसे भ्रम जायँगे. तासां आपन जो गाँवकी

मुल्कके लोग जाते हैं ऐसे नंदरायजीने अपने गोकुलके अंदर डौंड़ी पिटवा दी ॥ १२ ॥ कृष्णही जिनका एक जीवन हैं वे, गोपियां रामकृष्णको मथुरा ले जानेको अक्रूरजी आये हैं ये बात सुन, अत्यंत दुखी हो गयीं ॥ १३ ॥ कितनी एक गोपियोंकी तो यह दशा हुई कि-उसके सुननेसे हृदयमें जो ताप हुआ,उससे श्वासके मारे मुखकी कांति मलिन हो गयी, कितनी एकके वस्त्र, वलय (कंकण) व केशकी गांठ ये छूट पड़ी ॥ १४ ॥ कितनी एककी यह दशा हुई कि-भगवानके ध्यानसे सब इंद्रियों-

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ॥ स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रंथ्यश्च काश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ॥ नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥ स्मरंत्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ॥ हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥ गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ॥ शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७ ॥ चिंतयंत्यो मुकुंदस्य भीता विरहकातराः ॥ समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ॥ तांश्चाकृतार्थान्वियुनंक्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥

की वृत्तियां जातीं रहीं व मुक्त होनेपर जैसे देहका भान जाता रहता है, तैसे देहका भान भूल गयीं ॥ १५ ॥ दूसरी स्त्रियां भगवानके स्नेह व मंदहास्यकी प्रेरी मनोहर विचित्र पदयुक्त वाणीका स्मरण कर, मूर्छित हो गयीं ॥ १६ ॥ भगवान्‌की सुंदर गति, चेष्टा, स्नेहके साथ हास्यसहित देखना, शोकके मिटानेवाले हास्यवचन, सर्वोत्तम चरित व ॥ १७ ॥ लीलाका चिंतवन करतीं, विरहसे कायर, भगवानमें चित्त लगाये, गोपियोंके जूथके जूथ मिल मिल आंसू डारतीं कहने लगीं ॥ १८ ॥ गोपियां बोलीं कि- हे विधाता ! तेरे कहींभी दया नहीं है. अरे ! जीवोंके आपसमें मित्रता व प्रेम बँधाय, उनके पूर्ण सुख न भोगने

---

१ रागिनी ललित-सब मुरझानी री वलिबेकी सुनत भनक ॥ गोपी ग्वाल नयन जल ढारत गोकुल ह्वै रह्यो बुन्द छनक ॥ यह अक्रूर कहांते आयो दाहन लाग्यो देह कनक ॥ सूरदास स्वामीके बिछुरत घटत नहीं वहै प्राण तनक ॥

कुशल क्षेमसे तो हुआ है ? आपका भला हो, अपने ज्ञाति व बंधुनमें आरोग्य तो है ? क्यों किसीके कुछ दुःखतो नहीं है ? ॥ ४ ॥ हे अक्रूरजी ! ऐसा प्रश्नभी नहीं बनसक्ता; क्योंकि कुलका रोगरूप मामा कंस वृद्धिंगत है, तहा अपने बंधुनका व उसकी प्रजानका क्या कुशल पूंछूं ? ॥ ५ ॥ अहो हमारे वास्ते निरपराधी हमारे माता पिताको बहुत कष्ट हुआ. मेरे वास्ते उनके पुत्र मारे गये और उनको कैद हुई ॥ ६ ॥ हे सोम्य ! मैं चाहता था कि-आपलोगोंका मुझे दर्शन होवे, सो आज अच्छा हुआ, जो हमारे बंधु आपका हमें दर्शन हुआ. हे तात ! आपके पधारनेका जो कारण होवे सो कहें, ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेव-

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ॥ कंसे मातुलनाम्न्यंग स्वानां नस्तत्प्रजासु च॥ ५ ॥ अहो अस्मदभूद्भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ॥ यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बंधनं तयोः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याऽद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य कांक्षितम् ॥ संजातं वर्ण्यतां तात तवाऽऽगमनकारणम् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ॥ वैरानुबंधं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ॥ यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्माऽऽनकदुंदुभेः ॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ॥ प्रहस्य नंदं पितरं राज्ञादिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥ गोपान्समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ॥ उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यंतां शकटानि च ॥ ११ ॥ यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यांति जानपदाः किल ॥ एवमाघोषयत्क्षत्रा नंदगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥

जी बोले कि-भगवान्‌के पूछनेपर अक्रूरजीने सब हाल कह, सुनाया कि,-वह कंस यादवोंसे बैर रखता है. व वसुदेवजीकाभी मारनेका उद्योग उसने किया था ॥ ८ ॥ और जो संदेशा लाये थे, वा जिस लिये उन खुदको दूत बनाकर, भेजाथा और नारदने जो कहा था, कि-श्रीकृष्णचंद्र वसुदेवजीके पुत्र हैं. सो सब कुछ कहा ॥ ९ ॥ अक्रूरजीके बचन सुन, शत्रुनके नाश करनहारे रामकृष्णने हँसकर, पिता नंदरायजीसे राजाकी आज्ञा निवेदन की ॥ १० ॥ उन्होंनेभी गोपोंको आज्ञाकी कि-सब गोरस ले लो, भेटें लो और गाड़े जोड़ो ॥ ११ ॥ कल मथुरापुरीको चलेंगे, राजाको गोरस देंगे. और बड़ा भारी उत्सव देखेंगे. देखो, ये सब

वेत्ता बलदेवजीने प्रीतिसे फिर बीड़ा, चंदन, फूलोंकी माला अर्पण कर, परमप्रीति प्रगट करी ॥ ४० ॥ सत्कार करनेके अनंतर नंदरायजीने अक्रूरजीसे पूंछा कि–निर्दय कंसके जीते, हे अक्रूरजी ! आपलोग जैसे कसाईके घर बकरी रहती है, तैसे किसतरह रहते हैं ? ॥ ४१ ॥ जिस प्राण तृप्त करनेवाले (हिंस्र) खल कंसने पुकारती अपनी बहनके छोटे छोटे बालकही मार डारे. उस दुष्टकी प्रजा आप हैं, सो आपको क्या कुशल पूंछें ? ॥ ४२ ॥ इसतरह मधुर वाणीसे नंदरायजीने बहुत सत्कार किया. अक्रूरजीकाभी ऐसे प्रश्न सुन, मार्गका खेद दूर हुआ ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचि-

पप्रच्छ सत्कृतं नंदः कथं स्थ निरनुग्रहे ॥ कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥ योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशंत्या असुतृप् खलः ॥ किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थं सूनृतया वाचा नंदेन सुसभाजितः ॥ अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभा० महा० दश० पूर्वार्धेऽक्रूरागमनंनामाऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यंके रामकृष्णोरुमानितः ॥ लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ॥ तथाऽपि तत्परा राजन्नहि वांछंति किंचन ॥ २ ॥ सायंतनाशनं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ सुहृत्सुवृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तात सौम्याऽऽगतः कच्चित्स्वागतं भद्रमस्तु वः ॥ अपि स्वज्ञातिबंधूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥

तायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ उनचालीसवें अध्यायमें भगवानके मथुरापुरी पधारनेपर गोपियोंने विलाप किया और अक्रूरजीको यमुनामें वैकुंठका दर्शन हुआ, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–पलंगपर सुखसे बैठेहुए, अक्रूरजीके सब मनोरथ पूर्ण हुए, जो उन्होंने मार्गमें किये थे; क्योंकि रामकृष्णने उनका बहुत आदर सन्मान किया ॥ १ ॥ जब कि लक्ष्मीके धाम भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं. तब क्या दुर्लभ रहता है ? तौभी महाराज ! जो भगवद्भक्त हैं, वे कुछ नहीं चाहते ॥ २ ॥ भगवान् देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचंद्रने संध्यासमय भोजन कर कंससंबंधी बंधुनमें बर्ताव व औरभी कंस क्या करना चाहता है ? यह बात पूंछी ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचंद्र बोले कि–हे तात ! हे सौम्य ! भला आपका पधारना

प्रधानपुरुष, आद्य, जगतके कारण, जगतके पति, पृथ्वीके वास्ते अपने अंशके साथ अवतार धारण किये ॥ ३२ ॥ महाराज ! अपनी प्रभासे दिशानका अंधकार दूर करते, जैसे मरकत मणि व रूपेके पर्वत सुवर्णसे व्याप्त होकर, शोभा देते हों वैसे शोभायमान, रामकृष्णको देख ॥ ३३ ॥ वे अक्रूरजी रथसे तुर्त उतर, स्नेहसे विव्हल हो, रामकृष्णके चरणोंमें दंडके समान आ पड़े ॥ ३४ ॥ महाराज ! भगवानके दर्शनके आनंदसे आंखोंमें अश्रु भर आये, गात पुलकित हो गया. व उत्कंठासे अपना नामभी न ले

प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ॥ अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशो वितिमिरा राजन्कुर्वाणौ प्रभया स्वया ॥ यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥ रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ॥ पपात चरणोपांते दंडवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ पुलकाचितांग औत्कंठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगांकितपाणिना ॥ परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ संकर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाऽथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ॥ प्रक्षाल्य विधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥ निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रांतमादृतः ॥ अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहारद्विभुः ॥ ३९ ॥ तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गंधमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥ ४० ॥

सके ॥ ३५ ॥ भगवान् उनका अभिप्राय जान, प्रसन्न हो चक्रके चिन्हवाले अपने हाथसे उन्हें आपनी ओर खैंच, उनसे मिले; क्योंकि आप भक्तवत्सल हैं ॥ ३६ ॥ उदारचित्त बलदेवजीभी प्रणत अक्रूरजीसे मिल, हाथसे उनके दोनों हाथ पकड़, छोटेभाईके साथ अपने घरको ले गये ॥ ३७ ॥ फिर आगत स्वागत कर, कुशल पूंछ, उत्तम आसन दे, विधिपूर्वक पांव धोय, मधुपर्क अर्पण किया ॥ ३८ ॥ अतिथि अक्रूरजीको नम्रवचन निवेदन कर, पांव चापे, फिर आदरयुक्त बलदेवजीने परिश्रम दूर होनेके बाद बहुत गुणयुक्त पवित्र अन्न श्रद्धासे हाजिर किया, सो भोजन करवाया ॥ ३९ ॥ जब वे भोजनकर चुके, तब परमधर्म-

ऐसे भगवान्के चरण गोकुलमें देखे, जो पृथ्वीके अलंकाररूप थे. और जिनमें कमल यव, अंकुशआदि चिह्न प्रतीत होते थे ॥ २५ ॥ उनके दर्शन होतेही अक्रूरजीके आनंदसे बहुत संभ्रम बढ़ा प्रेमसे रोंवें खड़े होगये, नेत्र आंसूनकी कलासे व्याकुल होगये, तद वे रथसे तुर्त उतर, उन चरण चिह्नोंमें लोटने लगे और विचारने लगे कि, अहो ! यह भगवानके चरणोंकी रज है, यह कैसा दुर्लभ लाभ हुआ ? ॥ २६ ॥ देहधारियोंका इतनाही पुरुषार्थ है, जो दंभ, भय, शोकको त्याग, भगवानके चिह्न दर्शन व श्रव-

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः ॥ रथादवस्कंद्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यंघ्रिरजांस्यहो इति ॥ २६ ॥ देहंभृतामियानर्थो हित्वा दंभं भियं शुचम् ॥ संदेशाद्यो हरेर्लिंगदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥ ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ॥ पीतनीलांबरधरौ शरदंबुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥ किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ॥ सुमुखौ सुंदरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥ ध्वजवज्रांकुशांभोजैश्चिह्नितैरंघ्रिभिर्व्रजम् ॥ शोभयंतौ महात्मानावनुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥ उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ॥ पुण्यगंधानुलिप्तांगौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥

ण–आदिसे, संदेशको ले जाते अक्रूरजीने कर दिखलाया, वैसे दूसरेभी करें ॥ २७ ॥ अक्रूरजीने व्रजमें गैयां दुहनेको जाते, पीत पट ओढ़े, नीलवस्त्र धारण किये, शरदके कमलसे नेत्रवाले, राम कृष्णको देखा ॥ २८ ॥ किशोर अवस्था, श्याम व श्वेतवर्ण, लक्ष्मीके आश्रय, बड़ी बांहवाले, सुंदर मुख, बालक हाथीसे पराक्रमी, सर्वोत्तम सुंदर, ॥ २९ ॥ ध्वज, वज्र, अंकुश व कमलके चिन्हवाले चरणोंसे पृथ्वीको शोभायमान करते. महात्मा, अनुकंपाजन्य जो मंद मुसुकान व दृष्टि उससे युक्त ॥ ३० ॥ उदार व सुंदर जिनकी लीला है, वनमाला पहिरे, रत्नोंके हार धारण किये, पवित्र सुगंधि चंदन चरचे, स्नान किये, निर्मल वस्त्र पहने, ॥ ३१ ॥

---

२ रागिनी आशा– सुफलकसुत हरिदर्शन पायो ॥ रहि न शक्यो रथपर सुखव्याकुल भयो वहै मनभायो ॥ भुवपर दौरि निकट हरि आयो चरणनि चित्त लगायो ॥ पुलक अंग लोचन जलधारा श्रीप्रहशिरपरशायो ॥ कृपासिन्धु करि कृपा मिले हँसि लियो भक्त उर लाय ॥ सूरदास यह सुख सोइ जानै कहौं कहा में गाय ॥ १ ॥

तौ उसी क्षण तुरंत सर्व पापोंसे और आशंकानसे मुक्त हो, मैं परमआनंदको प्राप्त होऊंगा ॥ १९ ॥ जिसके भगवान् सिवाय दूसरा कोई इष्टदेव नहीं है ऐसा, अतिस्नेही, ज्ञातिवर्गमें चचा जो मैं हूं. तिससे ये भगवान अपनी लंबी बांह पसार कर, मिलेंगे. उसी क्षण मेरी आत्मा पवित्र हो जायगी और कर्मबंधनभी शिथिल हो जायगा ॥ २० ॥ मैं प्रणाम कर, हाथ जोड़, खड़ा होऊंगा. उस समय मुझे छातीसे लगाय, बड़े यशस्वी भगवान् जद 'हे अक्रूर ! चचा !' ऐसे कह बतलावेंगे, तभी मेरा जन्म सफल होगा, भगवान् जिसका अनादर करें, उसके जन्मको धिक्कार है ॥ २१ ॥ यद्यपि उसके न तो कोई प्यारा है, न सुहृद

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ॥ आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे बंधश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥ लब्धांगसंगं प्रणतं कृतांजलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ॥ तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो योधिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ तथापि भक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२ ॥ किं चाग्रजो माऽवनतं यदूत्तमः स्मयन्परिष्वज्य गृहीतमंजलौ ॥ गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबंधुषु ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संचिंतयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ॥ रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥ २५ ॥

ह, न प्रिय है, न अप्रिय है, न उदासीन है, तौभी, परमात्मा भक्तोंको भजते हैं, जैसे कल्पवृक्ष आश्रित पुरुषोंकाही पुरुषार्थ सिद्ध करता है ॥ २२ ॥ जब मैं प्रणाम कर, हाथ जोडूंगा, तब मेरा हाथ पकड़, हास्यपूर्वक आलिंगन कर, घरमें ले जाय, सब भांति सत्कार कर, बड़े भाई बलदाऊजी अपने बंधुविषयक कंसका हाल पूछेंगे ? ॥ २३ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि– महाराज ! श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजी इसतरह श्रीकृष्णके विषय विचार करते रथसे इधर गोकुल पहुंचे. उधर सूर्यनारायण अस्ताचल पहुँचे. यानी सूर्यास्त हुआ ॥ २४ ॥ सब लोकपाल जिनके चरणकमलोंकी रजको मुकुटसे धारण करते हैं,

रथमेंसे उतर, इन प्रधानपुरुष रामकृष्णके चरण कि-जिनका योगिजनभी स्वरूपकी प्राप्तिके वास्ते केवल बुद्धिहीसे ध्यान करते हैं, तिनको मैं साक्षात् प्रणाम करूंगा. और उनके साथ जो उनके मित्र ग्वाल होंगे, उनकोभी प्रणाम करूंगा ॥ १५ ॥ मैं चरणमूलमें पडूंगा, उस समय श्रीकृष्णचंद्र, अपना हस्तकमल जो कालरूप सर्पके वेगसे डरेहुए व शरण इच्छते हुए मनुष्योंको अभय देनेवाला है, उसे मेरे शिरपर धरेंगे ? ॥ १६ ॥ इंद्र और बलि जिस हस्तकमलमें पूजनरूप दान अर्पण कर, त्रिलोकीके

अप्यंघ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपंकजम् ॥ दत्ताभयं कालभुजंगरंहसा प्रोद्वेजिताना शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥ समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्रयेंद्रताम् ॥ यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगंधिकगंध्यपानुदत ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ॥ योंऽतर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥ अप्यंघ्रिमूलेऽवहितं कृतांजलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ॥ सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीतविशंक ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥

स्वामी हुए. और सौगंधिक नाम कमलके समान सुगंधित जिस हस्तकमलने रासक्रीड़ामें अपने स्पर्शसे व्रजांगनानके परिश्रम दूर किया ॥ १७ ॥ जोभी मैं कंसका भेजाहुआ दूत हूं, तौभी भगवान् मुझपर 'यह वैरीका है' ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं. और सबके अंतर्यामी हैं. तासों अपने नित्यज्ञानसे मेरे मनकी और बाहिरकी चेष्टाको जाने हैं. मैं बाहिरसे कंसका अनुसरण करता हूं. और भीतरसे कृष्णका अनुसरण करता हूं. यह सब भगवान् जानते हैं ॥ १८ ॥ आहा ! जब मैं सावधान हो, हाथ जोड़, उनके चरणके समीप प्राप्त होऊंगा. तब हँस कर, कृपाऽमृतसे भरी आर्द्र दृष्टिसे भगवान् मेरी ओर देखेगें,

---

१ राग भैरव– आज देखिहौं वे चरण ॥ शीतल सुभगसकलसुखदाता दुसहदवन दुखहरण ॥ अंकुशकुलिशकमलध्वजचिन्हित अरुण कंजके रंग ॥ गावोरत वन जात पाइहौं गोप सखनके संग ॥ जाको ध्यान धरत सुर मुनिजन शिव विरंचि सब ईश ॥ तेई चरण प्रकट करि परसौं इनकर अपने शीश ॥ निरखि स्वरूप रहै नाहिं सकिहौं रथते उतरि हौं धाय ॥ सूरदासप्रभु उभय भुजा भरि हँसि भेंटि हैं उठाय ॥ १ ॥

भार उतारनेको मनुष्यत्व प्राप्त हुए, लावण्यके धाम, विष्णु भगवान्का मुझे दर्शन होवेगा जो दर्शन हो जाय तो अनायाससे मेरे नेत्र सफल न होवें ऐसे नहीं, अपितु सफल होवेंही ॥ १० ॥ जो ईश्वर अपनी दृष्टिहीसे कार्यों तथा कारणोंके कर्ता होतेभी अहंकाररहित और अपने नित्य स्वरूपके साक्षात्कारके कारण अज्ञानभेद व भ्रमसे रहितभी हैं, तथापि स्वाधीन मायासे अपनीही दृष्टिके प्रभावसे प्राण, इंद्रिय व बुद्धिके साथ आपहीमें रचे हुए जीवोंको, मानों वृंदावनके वृक्षोंमें और गोपियोंके घरोंमें लीलासे कर्म करते हों और आसक्त होगये हों, ऐसे मालुम होते हैं ॥ ११ ॥ जिस परमात्माके, सब लोगोंके पापों-

य ईक्षिताऽहंरहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसाऽपास्ततमोभिदाभ्रमः ॥ स्वमाययात्मन्रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलामीवहभिः सुमंगलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ॥ प्राणंति शुंभंति पुनंति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥ स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ॥ यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो गायंति देवा यदशेषमंगलम् ॥ १३ ॥ तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकांतं दृशिमन्महोत्सवम् ॥ रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥ अथावरूढः सपदीशयो रथात्प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ॥ धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन्वनौकसः ॥ १५ ॥

के नाश करनहारे, महामंगलरूप गुण, जन्म व कर्मोंको वर्णन करनेवाली वाणी जगतको जिलाती है, शोभा देती है और पवित्र करती है और ऐसे वर्णनसे रहित वाणी अलंकारादियुक्त हो, तौभी वस्त्रआदिसे अलंकृत शवके समान मानी जाती है ॥ १२ ॥ आपकी बांधीहुई वर्णाश्रमकी मर्यादानके पालन करनहारे वे भगवान् लोकपालोंको सुख देनेके वास्ते यादवोंके वंशमें अवतार धारण कर, यशको बिस्तारते व्रजमें विराजे हैं, जिनके सर्व मंगलरूप यशको देवतालोग गाया करते हैं ॥ १३ ॥ महात्मापुरुषोंके गुरु व गतिरूप, त्रिलोकीमें सर्वोत्तम, नेत्रवालोंको परमआनंददायक, लक्ष्मीका वांछित आश्रय, ऐसे स्वरूपको धारण किये भगवान्का मुझे आज दर्शन होवेगा, क्योंकि प्रातःकालमें मुझे अच्छे शकुन हुए हैं ॥ १४ ॥ दर्शन होतेही तुर्त

दुर्लभ है, जैसे शूद्रको वेदका उच्चारण ॥ ४ ॥ अथवा ऐसे नहीं, मुझ नीचकोभी भगवान्‌के दर्शन हो जायं, क्योंकि जैसे नदीमें बहतेहुए तृणोंमेंसे कभी कोई तीरपरभी पहुंच जाय, तैसे कर्मबससे कालसे ले जायेहुए जीवोंमेंसेभी कभी कोई एक तिर जाय ॥ ५ ॥ आज मेरा अमंगल नष्ट हुआ, आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो योगेश्वरोंके ध्यान करने योग्य भगवान्‌के चरणकमलोंको मैं नमस्कार करूंगा ॥ ६ ॥ अहो ! आज कंसने मोपर बड़ी कृपा की, जिसके भेजनेसे मुझको अवतार धरेहुए हरि भगवानके चरणोंका दर्शन होगा. जिनके नखमंडलकी कांतिसे अंबरीष–आदि सब दुरत्यय संसारको तिर गये ॥ ७ ॥

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ॥ ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामंगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ॥ यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयांघ्रिपंकजम् ॥ ६ ॥ कंसो बताऽद्याकृतमेत्यनुग्रहं द्रक्ष्येंऽघ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ॥ कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन्यन्नखमंडलत्विषा ॥ ७ ॥ यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ॥ गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुंकुमांकितम् ॥ ८ ॥ द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकंजलोचनम् ॥ मुखं मुकुंदस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरंति वै मृगाः ॥ ९ ॥ अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ॥ लावण्यधाम्नो भवितोपलंभनं मह्यं न न स्यात्फलमंजसा दृशः ॥ १० ॥

कैसा है वह चरणकमल कि–जिसकी ब्रह्मा, महादेवआदि देवता, देवी लक्ष्मी व भक्तोंसहित मुनिलोग पूजन करते हैं. अर्थात् परम ऐश्वर्य, परम सौभाग्य व परमपुरुषार्थरूप है, फिर दयालुपनसे अनुचरोंके साथ गैयां चरानेको वनमें विचरता है और प्रेमहीसे सुलभ है, क्योंकि गोपियोंके स्तनोंकी केसरसे रंजित है ॥ ८ ॥ आज अवश्य मुझे भगवानके मुखका दर्शन होगा, क्योंकि हरिण आज मेरे दाहिने आते हैं. कैसा है वह मुख, कि सुंदर कपोल व नासिका जिसमें सोभरहे हैं, मंद हाससहित जिसमें देखना है, कमलसे अरुण जिसमें नेत्र हैं व घूंवरवारे बालोंसे जो आच्छादित हो रहा है ॥ ९ ॥ अपनी इच्छासे भूमिका

दोनों हाथोंसे पकड़, पृथ्वीपर पटक, अंतरिक्षमें खड़े देवतानके देखते देखते गला घोट, पशुकी मौत मारा ॥ ३३ ॥ फिर गुफाकी शिला दूर कर, गोपोंको कष्टसे बाहिर निकाल, देवता व गोपोंसे स्तुति किये जाते, भगवान् अपने गोकुलमें पधारे ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ अड़तीसवें अध्यायमें, अक्रूरजी जैसा मनमें विचार करते गोकुल गये, रामकृष्णने वैसाही घर ले जाय, उनका सत्कार किया.

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः ॥ स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे व्योमासुरवधोनाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥ उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नंदगोकुलम् ॥ १ ॥ गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यंबुजेक्षणे ॥ भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिंतयत् ॥ २ ॥ किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ॥ किं वाऽथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥ ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥

यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाबुद्धिमान् अक्रूरजीभी उस रात मथुरामें रह, प्रात होतेही रथमें बैठ, नंदरायजीके गोकुलको रवाना हुए ॥ १ ॥ वे महाभाग मार्गमें जाते कमलनयन भगवान्‌की परमभक्ति प्राप्त होनेके कारण मनमें ऐसा विचार करने लगे ॥ २ ॥ कि–मैंने ऐसा कौन कल्याणका काम किया वा कौन परम तप किया ? वा सत्पात्रको कौन दान दिया ? कि–जो आज मुझे भगवान्‌के दर्शन होवेंगे ॥ ३ ॥ मैं जानता हूं कि–विषयासक्त जो मैं हूं, उसे भगवान्‌का दर्शन होना बड़ा

१ यह व्योमासुर पूर्वजन्मका कौन था ? और कैसे इसने उत्तम गति पाई ? तहां कहें हैं कि–यह काशीजीका भीमरथ नामका राजा है. जो कि–बड़ा धनुर्धर, यज्ञकरनेवाला, दानी और गुमानी था. सो कुछकालके बाद इसने अपने पुत्रको राज दे, मलयाचल पहाडमें जाय, एक लाख बरस तप किया. सो कोई दिन इसके आश्रममें शिष्योंसहित पुलस्त्यमुनि गये. सो यहमानी आये हुये पुलस्त्यजीको देख, न तो उठा और न प्रणाम किया. तब क्रुधित हो, उक्त मुनिने इसे श्राप दिया कि–रे दुर्बुद्धि ! जा तू राक्षस होगा. इतना सुनतेही गिड़गिड़ता रोता हुआ यह राजा मुनिके चरणके शरण गया, तब प्रसन्न हुये मुनिने कहा–अच्छा जा घबड़ाय मत. द्वापरके अन्तमें श्रीकृष्ण भगवान्‌के हाथ तेरी गति ऐसी होगी जो कि–बड़े बड़े योगिराजोंकोभी दुर्लभ है. इसीसे इसकी उत्तम गति भई ॥ ग०

आनंदयुक्त हो, यदुपति श्रीकृष्णचंद्रको प्रणाम कर, आज्ञा ले, चले ॥ २५ ॥ गोविंद भगवान् श्रीकृष्णचंद्रभी युद्धमें केशी दैत्यको मार, व्रजको सुखी करते, प्रसन्न ग्वालोंके साथ पशुओंका पालन करने लगे ॥ २६ ॥ एक समय वे ग्वाल पर्वतकी चोटियोंपर गैयां चराते चोर व पालक बन, छिपनेकी क्रीड़ा करने लगे ॥ २७ ॥ महाराज ! वहां कितने एक तो चोर बने व कितने एक पालक व कितने एक मेष बने. जो चोर बने थे, वे मेषरूप बनेहुए ग्वालोंको पकड़ पकड़, निर्भय ले जाते थे

भगवानपि गोविंदो हत्वा केशिनमाहवे ॥ पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २६ ॥ एकदा ते पशून्पालाश्चारयंतोऽद्रिसानुषु ॥ चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥ २७ ॥ तत्राऽऽसन्कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप ॥ मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २८ ॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ॥ मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरयितो बहून् ॥ २९ ॥ गिरिदर्यां विनिःक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ॥ शिलया पिदधे द्वारं चतुःपंचावशेषिताः ॥ ३० ॥ तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ॥ गोपान्नयंतं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३१ ॥ स निजं रूपमास्थाय गिरींद्रसदृशं बली ॥ इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३२ ॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ॥ पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३३ ॥

॥ २८ ॥ मयदैत्यका पुत्र बड़ा मायावी व्योमासुरनाम दैत्य गोपालका बेष बनाय, चोर बन, बहुतसे मेष बने ग्वालोंको बहुधा ले जाने लगा ॥ २९ ॥ वह बड़ा दैत्य उनको ले जाय, ले जाय, पर्वतकी गुफामें डार, शिलासे दरवाजा बंद कर देता. जब सिर्फ चार पांच ग्वाल बाकी रह गये ॥ ३० ॥ तद सत्पुरुषोंके शरण देनेवाले भगवानने उसका कृत्य देख, गोपोंको ले जाते उसे पकड़ा, जैसे सिंह पराक्रम कर, तेंदुएको पकड़ ले ॥ ३१ ॥ उस बलवान् दैत्यने बड़े पर्वतके समान अपना रूप धारण किया. व आत्माको छुड़ानेके वास्ते बहुत प्रयत्न किया. पर पकड़नेसे आतुर हो गया. व समर्थ न हुआ ॥ ३२ ॥ भगवान्नने उसे

पराजय ॥ १७ ॥ जिनका पराक्रमही मूल्य है ऐसी राजकन्यानका विवाह और हे जगत्पति! द्वारकामें पापसे नृगराजा-का मोक्ष ॥ १८ ॥ जांबवतीके साथ स्यमंतक मणिका पीछा लाना, यमराजके लोकसे मरेहुए गुरुके पुत्रका देना ॥ १९ ॥ फिर पौंड्रकका वध, कासीका जलाना, दंतवक्रका मरण व राजसूय यज्ञमें शिशुपालका वध ॥ २० ॥ औरभी द्वारकामें विराजे विराजे आप जो कछु चरित्र करोगे, उन सबको मैं देखूंगा. जिनको भूमिपर कविलोक गाया करेंगे ॥ २१ ॥ फिर कालमूर्ति, भूमिका

उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ॥ नृगस्य मोक्षणं पापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥ १८ ॥ स्यमंतकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १९ ॥ पौंड्रकस्य वधं पश्चात्काशीपुर्याश्च दीपनम् ॥ दंतवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ २० ॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् ॥ कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २१ ॥ अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ॥ अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २२ ॥ विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवांछितम् ॥ स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायागुणप्रवाहं भगवंतमीमहि ॥ २३ ॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ॥ क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ॥ प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २५ ॥

भार उतारनहारे, आप अर्जुनके सारथी हो, कई अक्षौहिणीसंख्यावाली सेनाका संहार कराओगे. सो मैं देखूंगा ॥ २२ ॥ केवल ज्ञानैकमूर्ति अतएव अपनी परमानंदरूप स्वरूपस्थितिहीसे पूर्णकाम, सत्यसंकल्प, चैतन्यशक्तिसे मायाका कार्यरूप संसारप्रवाह-जिससे सदा निवृत्त रहे है, ऐसे अतएव अखंडैश्वर्य, आप जो हो, तिनके हम शरण प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ ईश्वर, स्वतंत्र, अपनी मायासे सर्व प्रकारके विशेषोंकी कल्पना करनेवाले, क्रीडाके वास्ते अभी मनुष्यदेह धारण करनहारे, यदु, वृष्णि व सात्वतोंमें अग्रणी आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इसप्रकार भागवतश्रेष्ठ नारदजी भगवानके दर्शनसे

विस्मित हो, फूल बरसाये व स्तुति की ॥ ९ ॥ महाराज ! नारदजी जो भगवद्भक्तोंमें अतिश्रेष्ठ हैं, वे आय, अक्लिष्ट कर्म करन-हारे भगवानसे एकांतमें यह बचन बोले॥ १० ॥ कि-हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे प्रमाणरहित स्वरूप ! हे योगेश ! हे जगदीश्वर ! हे वासुदेव ! हे सबके निवास ! हे यदुश्रेष्ठ ! हे प्रभु ! ॥ ११ ॥ आप सब जीवोंके अंतर्यामी हो, जैसे अग्नि काठमें गुप्तरूप हो रहता है तैसे आपभी सबके अंदर गुप्त रूपसे रहते हो, आप बुद्धिकेभी साक्षी हो, आप महापुरुष हो. अतएव जीव आपके स्वरूपको नहीं जान सक्ते, ईश्वरभी आपही हो ॥ १२ ॥ आप स्वतंत्र हो. अतएव साधनकी अपेक्षा आपको नहीं है, आप तो

देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरो नृप ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ १० ॥ कृष्ण कृष्णा-प्रमेयात्मन्योगेश जगदीश्वर ॥ वासुदेवाखिलावास सात्वतांप्रवर प्रभो ॥ ११ ॥ त्वमात्मा सर्वभू-तानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ॥ गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ १२ ॥ आत्मनाऽऽत्माश्र-यः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ॥ तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १३ ॥ स त्वं भूधर-भूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ॥ अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥ १४ ॥ दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः ॥ यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजंत्यनिमिषा दिवम् ॥ १५ ॥ चाणूरं मुष्टि-कं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ॥ कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १६ ॥ तस्यानु शं-खयवनमुराणां नरकस्य च ॥ पारिजातापहरणमिंद्रस्य च पराजयम् ॥ १७ ॥

अपनी मायाशक्तिसेही गुणोंको सरजते हो व उन्हींसे सत्यसंकल्प, ईश्वर, आप इस जगतको रचते हो, पालते हो व संहार करते हो ॥ १३ ॥ वे आप अभी राजाओंके रूपसे प्रगट भयेहुए दैत्य, प्रथम व राक्षसोंके नाशके निमित्त व धर्मकी मर्यादाकी रक्षाके निमित्त अवतार धर, प्रगट भये हो ॥ १४ ॥ वह बहुत अच्छा हुआ. जो इस अश्वरूप दैत्यको लीलासे आपने मारा, जिसके हिनहिनाहटका शब्द सुनतेही देवता लोग भय खाय, स्वर्ग छोड़, भाग जाते थे ॥ १५ ॥ हे विष्णु ! परसों चाणूर, मुष्टिक व दूसरे मल्ल, कुवलयापीड़ हाथी व कंस, इनको आपके हाथसे मरेहुए देखूं गा ॥ १६ ॥ उसके बाद शंखासुर, कालयवन, मुरदैत्य, नरकासुर, इनका वध, कल्पवृक्षका हरण, इंद्रका

पी जायगा, ऐसे मुंह फाड़, बड़ा कोपित हो, भगवान्‌के सन्मुख आया व पिछले पांवोंसे कमलनयन भगवान्‌को दुलात मारने लगा ॥ ४ ॥ उसे बचाय, भगवान क्रोधकर, उसके दोनों पांव दोनों हाथोंसे पकड़, धुमाय, अवज्ञाके साथ सौ धनुष दूरीपर गिराय, जैसे गरुड़ सर्पको फेंककर, खड़ा रहता है, तैसे खड़े रहे ॥ ५ ॥ वह सचेत हो, फिर उठ, खड़ाहुआ व क्रोधकर, मुंह फाड़, तुरंत भगवानपै आया, भगवानने अपना बायां हाथ जैसे सर्पके बिलमें घुसारें, तैसे हँसते हँसते उसके मुंहमें घुसा

तद्वंचयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ॥ सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतांतरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ५ ॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽप-तद्धरिम् ॥ सोप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ६ ॥ दंता निपेतुर्भगव-द्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशो यथा ॥ बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथाऽमयः संववृधे उपे-क्षितः ॥ ७ ॥ समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ॥ प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्त-लोचनः पपात लेंडं विसृजन्क्षितौ व्यसुः ॥ ८ ॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ॥ अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसूनवर्षैर्दिविजैरभिष्टुतः ॥ ९ ॥

दिया ॥ ६ ॥ भगवानकी भुजाका स्पर्श होतेही केशीके दांत ऐसे गिर गये, जैसे तपेहुए लोहेके स्पर्शसे गिर जाते हैं. श्रीकृष्ण-का हाथ कि-जो उसके शरीरके अंदर था. वह उपेक्षा किये हुए रोगके समान बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ बढ़ती हुई श्रीकृष्णकी भुजासे उसका सांस बंद हो गया, शरीरमें पसीना पसीना हो गया, आंखें निकल पड़ीं, पांव पछाड़ता व लीद करता वह दैत्य प्राणमुक्त हो, जमीनपर गिरा ॥ ८ ॥ प्राणमुक्त उस दैत्यके पककर, फटी हुई ककड़ीके सदृश शरीरसे महाभुज भगवानने अपनी भुजा निकाल ली. यद्यपि उन्होंने शत्रुको अनायाससेही मारा. पर उनको कुछ गर्व न हुआ, उस समय देवताननें

१ यह केशीनामका दैत्य पूर्वजन्ममें कुमुद नामका इन्द्रजीका सेवक था. सो जब इन्द्रने वृत्रासुरको मारा और ब्रह्महत्या लगी तब इन्होंने अश्वमेध यज्ञ करी. उसमें श्यामकर्ण और मनसमान वेगवाला घोड़ा छोड़ा गया उसे देख,चढ़नेकी इच्छासे यह कुमुद घोड़ेको चुराके, अतलमें हो रहा. पीछे देवतोंको खबर लगी तब वे लोग पाशोंसे बांध, इन्द्रजीके पास लेगये तद देखतेही इस चोरको इन्द्रने श्राप दिया कि- चोर तू घोड़ा हो दो मन्वंतरपर्यन्त पृथ्वीपर रहेगा वही यह केशी हुवा. ॥ ग० ॥

मनसूबे ठानता है, पर दैव जिनको ढिसमिस कर देना चाहता हैं, उनके लिये हर्ष व सोच की प्राप्ति अवश्य होती है, तौभी मैं तो आपकी आज्ञा करूंहीगा ॥ ३९ ॥ वह कंस अक्रूरजीको ऐसे आज्ञा दे, मंत्रियोंको बिदा कर, अपने घरमें घुसा. अक्रूरजी अपने घर आये ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ सैंतीसवें अध्यायमें केशीके मरनेके बाद नारदजीने होनेवाले चरित्रोंसे स्तुति की व भगवानने खेलतेर व्योमासुरको मारा, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-कंसका भेजाहुआ केशी दैत्य गोकुलमें आया, मनके

श्रीशुक उवाच ॥ एवमादिश्य चाक्रूरं मंत्रिणश्च विसृज्य सः ॥ प्रविवेशगृहं कंसस्तथाऽक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धेऽक्रूरसंप्रेषणंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन्मनोजवः ॥ सटावधूताभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥१॥ विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहांबुदोपमः ॥ दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नंदस्य जगाम कंपयन् ॥ २ ॥ तं त्रासयंतं भगवान्स्वगोकुलं तद्धेषितैर्वालविघूर्णितांबुदम् ॥ आत्मानमाजौ मृगयंतमग्रणीरुपाह्वयत्स व्यनदन्मृगेंद्रवत् ॥ ३ ॥ स तं निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ॥ जघान पद्भ्यामरविंदलोचनं दुरासदश्चंडजवो दुरत्ययः ॥ ४ ॥

समान वेगवाला यह दैत्य टापसे पृथ्वीको विदारता, केशवालीसे बिखरेहुए बादल व विमानोंसे आकाशको संकीर्ण करता, हीनहिनाहटसे सबको डराता था ॥ १ ॥ बड़ी जिसकी आंखें हैं, विकराल जिसका मुखकोटर है, बड़ा जिसका गेला है, ऐसा श्याम सघनबादलके समान वह दुष्ट दैत्य कंसका हित करना मनमें विचार, नंदरायजीके व्रजको कंपायमान करता वहां गया ॥ २ ॥ हिनहिनाटसे निजगोकुलको त्रास देते, पूंछसे बादलोंको चक्कर खिलाते, युद्धके अर्थ श्रीकृष्णचंद्रको ढूंढ़ते हुए उस दैत्यको भगवानने आगे बढ़कर बुलाया, केशीभी भगवानका बचन सुन, सिंहके समान गर्जना करने लगा ॥ ३ ॥ दूसरेका मारा न मरे ऐसा, उद्यत होनेपर पराभव करनेको अशक्य, बड़ा दौड़ने वाला वह घोड़ा भगवान्‌को देख, मानों आकाशको

आवें ॥ ३० ॥ विष्णुके आश्रित देवताननें उनके हाथ मेरी मृत्यु ठहरायी है, इसलिये भेंटसहित नंदादिक गोपोंके साथ उन्हें ले आओ ॥ ३१ ॥ यहां आनेपर कालके समान हाथीद्वारा मरवा डारूंगा, अगर छूट जायंगे तो, बिजलीसे मल्लोंके हाथ मरवाऊंगा ॥ ३२ ॥ उनके मरनेके बाद दुखी वसुदेव—आदि उनके बंधु वृष्णि, भोज, दशार्होंको मारूंगा ॥ ३३ ॥ राजका लोभी बुड्ढा पिता उग्रसेन, उसका भाई देवक और दूसरेभी जो मेरे वैरी हैं, उन्हें मारूंगा ॥ ३४ ॥ हे मित्र ! फिर यह पृथ्वी निष्कंटक

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुंठसंश्रयैः ॥ तावानय समं गोपैर्नंदाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥ घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ॥ यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान्वसुदेवपुरोगमान् ॥ तद्बंधून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ॥ तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकंटका ॥ जरासंधो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शंबरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ॥ तैरहं सुरपक्षीयान्हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥ एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ॥ धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥ राजन्मनीषितं सध्र्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ॥ सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥ मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ॥ युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥

हो जायगी. जरासंध तो मेरा ससुरही है. द्विविद मेरा प्रिय मित्र है ॥ ३५ ॥ शंबर, नरक, बाण, येतो मेरे परममित्र हैं. इनसे देवतानके पक्षके राजानको मार, पृथ्वीका राज करूंगा ॥ ३६ ॥ यह जानकर, बालक रामकृष्णको यहां जल्दी ले आओ, धनुर्याग व यदुपुरीकी शोभा देखनेका बहाना बतला देना ॥ ३७ ॥ अक्रूरजी बोले कि—हे राजा ! आपने सलाह तो ठीक विचारी, जिससे आपका मृत्यु टल जाय, परंतु इतना अभिनिवेश (यह कार्य अवश्य करना है ऐसा आग्रह) न रख कर, कार्यकी सिद्धि व असिद्धिमें समभाव रहना चाहिये; क्योंकि—कार्य सिद्ध होना दैवके हाथ है ॥ ३८ ॥ आदमी कई आले दर्जेके

सुनो ॥ २१ ॥ २२ ॥ नंदरायजीके व्रजमें वसुदेवजीके पुत्र रामकृष्ण हैं, उनसे मेरा मृत्यु है, ऐसाविधाताने बतलाया है ॥ २३ ॥ इसलिये जब वे यहां आजायं, तद तुम मल्लयुद्धसे उन्हें मार देना. मल्लभूमिके चारोंओर अनेक प्रकारके मंच तैयार करवाओ ॥ २४ ॥ पुर व मुल्कके लोग यथेष्ट आवें व इस युद्धको देखें. किसीको मना मत करो. हे महावत ! भद्र ! तू कुवलयापीड हाथीको मल्लभूमिके दरवाजेपर ले जाना, उससे उन मेरे वैरियोंको मार डारना ॥ २५ ॥ विधिपूर्वक चौदसको धनुर्यागका प्रारंभ

नंदव्रजे किलाऽऽसाते सुतावानकदुंदुभेः ॥ रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ मंचाः क्रियंतां विविधा मल्लरंगपरिश्रिताः ॥ पौरा जानपदाः सर्वे पश्यंतु स्वैरसंयुगम् ॥ २४ ॥ महामात्र त्वया भद्र रंगद्वार्युपनीयताम् ॥ द्वीपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ २५ ॥ आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ॥ विशसंतु पशून्मेध्यान्भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतंत्रज्ञ आहूय यदुपुंगवम् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥ भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ॥ नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ॥ यथेंद्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥ गच्छ नंदव्रजं तत्र सुतावानकदुंदुभेः ॥ आसाते ताविहानेन रथेनाऽऽनय माचिरम् ॥ ३० ॥

करो. मनोरथ पूर्ण करनहारे महादेवजीके निमित्त पवित्र पशु अर्पण करो ॥ २६ ॥ केवल अर्थके सिद्धांतको जाननेवाला कंस ऐसे आज्ञा दे, यदुश्रेष्ठ अक्रूरजीको बुलाय, अपने हाथसे उनका हाथ पकड़ बोला कि- ॥ २७ ॥ हे दानपति ! मेरे वास्ते आप मित्रका कर्तव्य जो हो सो करें, क्योंकि भोज व वृष्णियोंमें मेरे आपके जैसा आदरपात्र व हित करनेवाला नहीं है ॥ २८ ॥ हे अक्रूरजी ! अतएव जैसे प्रभु इंद्रने विष्णुका शरण ले, अपना स्वार्थ सिद्ध किया, तैसे मैंनेभी बड़े कामके खेनेवाले आपका आश्रय लिया है ॥ २९ ॥ आप नंदरायजीके व्रजमें पधारें, वहां वसुदेवजीके पुत्र रहते हैं, उन्हें इस रथमें बैठाय, जल्दी ले

समय देवता लोग फूल बरसाय, भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ ऐसे वृषासुरको मार, अपनी जातिवालोंसे स्तुति किये जाते, गोपियोंके नेत्रोंको आनंद देनेवाले वे भगवान् बलरामजीके साथ व्रजमें पधारे ॥ १५ ॥ अद्भुतचरित्र श्रीकृष्णके हाथ अरिष्टासुरके मरनेपर देवदर्शन भगवान् नारदजी कंसके पास आ, बोले कि- ॥ १६ ॥ कन्या तो यशोदाकी बेटी थी, श्रीकृष्ण देवकीके पुत्र हैं, बलरामजी रोहिणीजीके पुत्र हैं, वसुदेवजीने उन दोनोंको डरते अपने मित्र नंदरायजीके पास रख छोड़े हैं, जिन्होंने तुम्हारे मनुष्य मारे. जों कंसने यह बात सुनी, तो क्रोधसे उसकी इंद्रियां क्षोभित होगयीं ॥ १७ ॥ १८ ॥ वसुदेव-

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ॥ विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥ १५ ॥ अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ कंसायाथाऽऽह भगवान्नारदो देवदर्शनः ॥ १६ ॥ यशोदा-याः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ॥ रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥ १७ ॥ न्यस्तौ स्वमित्रे नंदे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ निशम्य तद्भोजपतिः कोपात्प्रचलितेंद्रियः ॥ १८ ॥ नि-शातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा लो-हमयैः पाशैर्बबंध सहभार्यया ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥ २० ॥ प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥ २१ ॥ अमात्यान्हस्तिपां-श्चैव समाहूयाऽऽह भोजराट् ॥ भो भो निशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ ॥ २२ ॥

जीको मारनेकी इच्छासे तेज तेग हाथमें ली, तब “ जो तू वसुदेवजीको मार डारेगा तो उसके पुत्र भाग जायंगे, इसी लिये अभी इनको नहीं मारना चाहिये ऐसी सलाह दे, नारदजीने कंसको निवृत्त किया, वसुदेवजीके पुत्रोंको आपनी मृत्यु समझ, ॥ १९ ॥ देवकीके साथ वसुदेवजीके पैरोंमें लोहेकी बेड़ियां डार, कैद कर दिया. नारदजीके जानेके बाद कंसने केशीनाम दैत्यको बुलाय, बतलाया ॥ २० ॥ और कहा कि- तू रामकृष्णको मार, ऐसी भलामन दे, उसे भेजा. फिर मुष्टिक, चाणूर, शल-तोशलक आदि मल्ल, अमात्य व महावतोंको बुलाकर, कंसने कहा कि-अरे ! रे ! वीर ! हे चाणूर ! हे मुष्टिक ! यह बात

नाश करनेवाला तो मैं हूं ऐसे कह, ताल ठोंक, तलशब्दसे अरिष्टासुरको कोपित कर, ॥ ८ ॥ भगवान् हरि मित्रके कंधेमें अपनी बांह डाल, ठाढ़े रहे, वह अरिष्टासुरभी इसतरह कोपित हो, खुरसे पृथ्वीको खोदता, पूंछ उठानेसे बादल बिखेरता, क्रोध कर, कृष्णपै आया ॥ ९ ॥ सींगका अग्र आगे रख, रुधिरसी रक्त आंखें स्तब्ध कर, कटाक्षसे तिरछा देख, वह दैत्य इंद्रके हाथसे छूटे वज्रके समान जल्दीसे भगवान्‌के सामने दौड़ा ॥ १० ॥ भगवान् उसके सींग पकड़, अठारह पैग पीछा हटा ले गये, जैसे

सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ॥ उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत ॥ ९ ॥ अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ॥ कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिंद्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वा शृंगयोस्तं वा अष्टादशपदानि सः ॥ प्रत्यपोवाह भगवान्गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥ सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ॥ आपतत्स्विन्नसर्वांगो निःश्वसन् क्रोधमूर्छितः ॥ १२ ॥ तमापतंतं स निगृह्य शृंगयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ॥ निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमंबरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत ॥ १३ ॥ असृग्वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ॥ जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरंतो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥

हाथी सामनेके हाथीको ले जाय ॥ ११ ॥ भगवान्‌से हटाकर, पछाड़ाहुआ, सब शरीरमें पसीना जिसके हो आया है ऐसा, वह दैत्य तुर्त पीछा खड़ा हो, क्रोधमें आ, हंफता हुवा भगवान्‌के ऊपर आया ॥ १२ ॥ आते हुए उस दैत्यके दोनों सींग पकड़ पैरोंसे दबाय, पृथ्वीपर पटक, भीगे वस्त्रके समान उसका निष्पीड़न किया और सींग उखेड़, उसीसे प्रहार किया, जिससे वह गिरगया ॥ १३ ॥ मुखसे लोहू उगलता, मूत्र व विष्ठा करता, पांव पछाड़ता, अस्थिरनेत्र वह दैत्य, कष्ट पाय, मर गया. उस

१ यह वृषभासुरभी पूर्व जन्ममें वरतन्तु नामका उत्तम ब्राह्मण श्रीबृहस्पतिजीका शिष्य था. सो कोई दिन यह विद्याध्ययनके लिये गया और गुरूके सामने बैलके समान पांव फैलाय कर, बैठ गया तब कुधित भये गुरुने श्राप दिया कि- रे दुष्ट ! तू बैलसमान पांव फैला कर, बैठा इस लिये तू बैल होगा. इतना सुनतेही वह बैल होगया. फेर दैत्योंकी संगत होनेसे दैत्यभावको प्राप्त हुवा. परंतु दीनउद्धारक प्रभु श्रीकृष्ण भगवान्‌के हाथ लगतेही वह देह छोड़, विप्ररूप हो, भगवत्‌की स्तुति कर, विमानमें शवार हो, स्वर्गको गया ॥ ग०

जीवित मन केवल कृष्णहीमें था ऐसी, महाभाग्यशाली गोपियां भगवानकी लीलानको गाय गाय, दिनमेंभी प्रसन्न रहा करतीं थीं ॥ २६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ॥ ३५ ॥ ॥ छत्तीसवें अध्यायमें अरिष्टासुरके मरनेपर नारदजीके कहनेसे कंसने रामकृष्णको वसुदेवजीके पुत्र जान, अक्रूरजीको आज्ञा करी, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– फिर बैलका रूप बनाय, अरिष्टासुर व्रजमें आया. जो बड़ी ककुद (लाठ) वाले अपने मोटे शरीरसे जमीनको खुरोंसे विदीर्ण कर, कंपायमान करता था ॥ १ ॥ अतिकठोर रांभता, पैरसे पृथ्वी

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥ महीं महाककुत्कायः कंपयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥ रंभमाणः खरतरं पदा च विलिखन्महीम् ॥ उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥ २ ॥ किंचित्किंचिच्छकृन्मुंचन्मूत्रयंस्तब्धलोचनः ॥ यस्य निर्ह्रादितेनांग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥ पतंत्यकालतो गर्भाः स्रवंति स्म भयेन वै ॥ निर्विशंति घना यस्य ककुद्यचलशंकया ॥ ॥ ४ ॥ तं तीक्ष्णशृंगमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्संत्यज्य गोकुलम् ॥ ५ ॥ कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविंदं शरणं ययुः ॥ भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ ६ ॥ माभैष्टेति गिराश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ गोपालैः पशुभिर्मंद त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥ बलदर्पहाऽहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥ ८ ॥

को खोदता व पूंछको उठाय, सींगोंके अग्रसे तट तोड़ता, ॥ २ ॥ कछुक कछुक हगता व मूतता, आंखें स्तब्ध किये आया. महाराज ! जिसका कठोर शब्द सुनते ही भयसे गौनके व स्त्रियोंके गर्भ, विना समयभी पड़ जाते व झर जाते थे. और जिसकी ककुद (लाठ) पर बादल, पहाड़, समझकर, बैठते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस तीखे सींगोंवाले बैलको देख, गोप गोपियां डरीं. महाराज ! पशुभी डरके मारे गोकुल छोड़ पलाय गये ॥ ५ ॥ वे सब हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसे पुकारते पुकारते श्रीकृष्णके शरण आये, भगवाननेभी गोकुलको डरसे भाजता हुआ देख ॥ ६ ॥ मत डरो, ऐसे उनको सांत्वना दे, वृषासुरको अपने निकट बुलाया कि– 'हे मंद ! हे नीच ! गोपाल व पशुनको डरानेसे क्या होगा ? ॥ ७ ॥ तेरे जैसे दुष्टचित्त दुष्टोंका बल व गर्वका

जलको थंभित कर रखतीं हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ नारायणके समान अचल लक्ष्मीवाले, ग्वाल व देवादिकभी जिनके चरित्र गाया करते हैं ऐसे भगवान, जद वनमें विचरते पर्वतोंके तटोंमें चरतीं गैयानको बंसीकी टेर सुनाय, बुलाते हैं; तद भारसे जिनकी शाखा नम रहीं हैं ऐसी, वनकी लता मानों अपने मनमें प्रगट हुए विष्णुका सूचन करतीं हों, तैसे प्रेमसे पुष्ट हो, फूल-फलसे संपन्न होकर मकरंदकी धारा बरसाने लगतीं हैं और उनके पति वृक्षोंकोभी वैसाही आनंद होता है ये सब विष्णुभक्तिके लक्षण हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ वनमालानमें दिव्य गंधवाली तुलसीके मकरंदसे मत्त जो भौंरे उनके ऊंचे व अनुकूल गानको मान देते

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः ॥ वनचरो गिरितटेषु चरंतीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥ वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यंजयंत्य इव पुष्पफलाढ्याः ॥ प्रणतभार-विटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥ ९ ॥ दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगंधतुलसीम-धुमत्तैः ॥ अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन्यर्हि संधितवेणुः ॥ १० ॥ सरसि सारसहंसविहंगा-श्चारुगीतहृतचेतस एत्य ॥ हरिमुपासत ते यतचित्ता हंत मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥ सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥ हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरंभति विश्वम् ॥ १२ ॥ महदतिक्रमणशंकितचेता मंदमंदमनु गर्जति मेघः ॥ सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥

और रूपवानोंके मुकुटमणि भगवान् जिस समय मुरलीनाद करते हैं, तद तालावमें सारस, हंस व दूसरेभी पक्षी उस सुंदर गानसे मोहितचित्त हो, वहां आ, आंखोंको मूंदि, मौन धर, चित्तको रोंकि, भगवानके पास बैठते हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे गोपियो ! मोतियोंकी मालासे बने कर्णाभरणसे विलसित, भगवान् बलदाऊजीके साथ, पर्वतोंके तटोंमें विचरते स्वयं आनंद-मूर्ति जगतको आनंदित करते, जिस समय वेणुनादसे जगतको पूर्ण करते हैं, तद मेघ उन महात्माके अपराधसे भय पा, न तो आगे बढ़ता है, न ऊंची गर्जना करता है, किंतु मंद मंद वेणुनादके पीछे पीछे गर्जना करता है व जगतकी पीड़ा निवृत्त होनेके वास्ते आपके समान मित्र भगवानके ऊपर छायासे छत्र कर, सूक्ष्म सूक्ष्म बिंदुरूप पुष्पोंकी वर्षा करे है ॥ १२ ॥ १३ ॥

गोपियोंने कहा कि-हे गोपियो ! बाएं कंधेपर बायां कपोल रख, चंचल भौंहवाले भगवान्, वेणुको अपने अधरपै रख, जिस समय उसके स्वरोंके छिद्रोंपर कोमल अँगुली फिराय फिराय, बजाते हैं. तिस समय सिद्ध लोगोंकी स्त्रियां अपने पति पास होतेभी उस गानको सुन, विस्मययुक्त हो, कामदेवके बाणसे परवश होकर, लज्जाके साथ मोहको प्राप्त होती हैं. और उनको अपने नीवीमोक्ष यानी नाड़ा छूट जानेकाभी भान नहीं रहता ॥ २ ॥ ३ ॥ हे स्त्रियो ! यह अचंभा सुनो ! हारके समान उज्वल हास्यवाले; आर्त लोगोंको सुख देनेवाले, जिनके वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजी बिजलीके समान चंचल होतेभी स्थिर रहती हैं ऐसे भगवान् जिस समय बंसी

गोप्य ऊचुः ॥ वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुंदः ॥ २ ॥ व्योमयानवनिताः सहसिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥ काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥ हंत चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ॥ नंदसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥ वृंदशो व्रजवृषामृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ॥ दंतदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवाऽऽसन् ॥ ५ ॥ बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडंबः ॥ कर्हिचित्सबल आलि सगोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुंदः ॥ ६ ॥ तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदांबुजरजोऽनिलनीतम् ॥ स्पृहयतीर्वयमिवाऽबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

बजाते हैं, तिस समय उसकी आवाजसे चित्त हरण होनेसे, झुंडके झुंड व्रजके बैल, मृग, गायें ये सब दूरहीसे दांतोंहीमें कौल रख, कान ऊंचे कर, मानों नींद लेते हों और चित्रमें लिखे हुए हों, ऐसे हो जाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे सखि ! मोरपिच्छ, गुच्छक धातु व पत्तोंसे कछनी कस, मल्लका अनुकरण करनहारे, बलदाऊजी और ग्वालोंके संग जद श्रीकृष्णचंद्र बंसी बजाय, गैयानको बुलावें हैं, तद नदियां मानों पवनकी प्रेरी उनके चरणारविंदकी रज इच्छतीं हों वैसे अपनी गति बंद कर देतीं हैं, पर वेभी हमारे जैसी कम पुण्यवान् हैं, तासों उस रजको नहीं पा सक्तीं, यानी केवल अपने तरंगरूप हाथोंको प्रेमसे हिलातीं हैं व

नों आईयोंको देख, उद्विग्न हो, स्त्रीगणको छोड़, वह मूर्ख प्राण बचानेकी इच्छासे भगा ॥ २९ ॥ जहां जहां वह गया, वहां पीछेके पीछे भगवान् कृष्ण गये, क्योंकि आपके उसके शिरकी मणि लेनेकी इच्छा थी और बलदेवजी स्त्रियोंकी रक्षा करते रहे ॥ ३० ॥ महाराज ! दूर जानेपरभी तुर्त उसे पहुँच, उस दुष्टका शिर चूड़ामणिके साथ प्रभुने एक मुक्कीसे तोड़ डाला ॥ ३१ ॥ ऐसे शंखचूंड़को मार, प्रकाशमान मणि ले, सब स्त्रियोंके देखते प्रसन्न हो, बलदेवजीको दी ॥ ६२ ॥

तमन्वधावद्गोविंदो यत्र यत्र स धावति ॥ जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥ अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ॥ जहार मुष्टिनैवांग सहचूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शंखचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥ अग्रजायाददत्प्रीत्या पश्यंतीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे शंखचूडवधोनाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥ कृष्णलीलाः प्रगायंत्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥

पैंतीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णके वनमें पधारनेपर गोकुलकी स्त्रियोंने युगलगीत गाय गाय, दुःखसे दिन बिताये यह कथा होगी ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि–भगवानके वनमें पधारनेपर गोपियां कि–जिनका चित्त भगवानमें आसक्त हो रहा था, वे कृष्णकी लीलाका गान करतीं, दुखसे दिन बितातींथीं ॥ १ ॥

---

१ यह शंखचूड़ कौन था ? और कैसे भगवत्के हाथसे मृत्यु पाई ? तहां कहे हैं कि– यह गोलोकनिवासी पूर्वजन्मका श्रीदामा नामका गोप है. सो जिस समय श्रीकृष्ण विरजाके साथ विहार करते थे उस वखत यह पहरेपर था. इतनेमें सखियोंको संग लिये राधा वहां आन पहुंचीं तद इसने जाने न दिया इसपर सखियोंने श्रीदामाको वेत्रोंसे मारा तब बड़ा हल्ला गुल्ला भया. यह सुन, भगवान् अंतर्ध्यान हुये और विरजा नदी होकर, वही. फेर श्रीदामाको संग ले, प्रभु राधाजीके मन्दिरमें पधारे और विनयके बचन कहे तथापि राधाने बहुत कटुक कहे. यह सुन, श्रीदामाने कहा कि– हे माता ! तू इतना मान मत करे क्योंकि वे प्रभु तेरे सरीखी कितनीहीं सखियां बनाशक्ते हैं. इतना सुनतेही क्रोधभरी प्रियाजीने श्राप दिया कि– रे दुष्ट ! तू पिताकी तो प्रशंसा और माताकी निन्दा करता है इसलिये जा राक्षस होगा. यह सुन, इसनेभी श्राप दिया कि– हे राधे ! तुमको प्रभुसे बहुत मान मिलनेसे यह अरमान है इसलिये तुमभी मनुष्यदेह धारण कर, अपने प्रियके वियोगके दुःखको सौ १०० बरस भोगो गी. इतनेमें श्रीकृष्णजीने सामदामकरके, कहा कि– हे प्रिये ! वस्तुतः तो हमारा तुम्हारा वियोग कभी न होगा परंतु लोकदृष्टिसे रहेगा. फेर उस गोपसे कहा कि– हे पुत्र ! तूभी अंशसे राक्षस होगा. परंतु जब मेरे रास करते समय तू गोपीको ले, भगेगा तब मेरे हाथसे मृत्यु पाय, अपने पूर्णरूपमें मिलेगा. वही यह शंखचूड़ हुवा और भगवत्के हाथ मृत्यु पाय, निजरूपमें लीन हुवा.

रातिमें वनके अंदर क्रीड़ा करते थे ॥ २० ॥ स्नेहसे बँधीहुई स्त्रियां आपकी लीला मनोहर रीतिसे गा रहीं थीं और आप दोनों भाई सुंदर आभूषण धारण किये, अंगमें चंदन लगाये, वनमाला पहरे, निर्मल वस्त्र ओढ़े, रात्रिका आगमन कि-जिसमें तारे व चंद्रमाका उदय हो रहा है, मल्लिकाके गंधसे मतवाले भौंरे गुंज रहे हैं, कुमुदका सुगंध लिये बयार चल रही है, उसको सराहते, सब प्राणियोंके मन और कानोंके मंगलकारी जैसे हो तैसे एकसाथ स्वरके मंडलोंकी मूर्छना करते गान करने लगे ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ महाराज ! गोपियां उस गीतको सुन, मूर्छित हो गयीं. कुछभी सुध न रही, चाहे शरीरपरसे वस्त्र गिरगया व

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ॥ स्वलंकृतानुलिप्तांगौ स्रग्विणौ विरजोऽबरौ ॥ २१ ॥ निशामुखं मानयंतावुदितोडुपतारकम् ॥ मल्लिकागंधमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥ २२ ॥ जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमंगलम् ॥ तौ कल्पयंतौ युगपत्स्वरमंडलमूर्छितम् ॥ २३ ॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्छिता नाविदन्नृप ॥ स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४ ॥ एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत् ॥ शंखचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् ॥ क्रोशंतं कालयामास दिश्युदीच्यामशंकितः ॥ २६ ॥ क्रोशंतं कृष्णरामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ॥ यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥ २७ ॥ माभैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ॥ आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥ स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ॥ विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥

केशोंमेंसे पुष्पोंकी माला गिरगयी ॥ २४ ॥ ऐसे इच्छा-अनुसार मदोन्मत्तकी तरह उन दोनों भाइयोंके क्रीड़ा करते व गान करते, शंखचूड़नाम कुबेरका अनुचर आया ॥ २५ ॥ महाराज ! उन दोनोंभाइयोंके देखते आपही जिसके नाथ हैं ऐसे स्त्रीगणको पुकारते निडर हो, उत्तर दिशाकी तर्फ ले, जाने लगा ॥ २६ ॥ हे कृष्ण ! हे राम ! ऐसे पुकारती हुई स्त्रियोंको व्याघ्रसे पकड़ी हुई गायोंके समान देख, दोनों भाई उसके पीछे दौड़े ॥ २७ ॥ हाथमें सालके वृक्ष ले, मत डरो, मत डरो, ऐसे अभयशब्द कहते वेगवाले दोनों भाई जल्दीसे उस नीच यक्षके पास तुर्त पहुंचे ॥ २८ ॥ काल व मृत्युके समान आ पहुंचे उन दो-

एक समय कुरूप अंगिरागोत्रवाले ऋषियोंको देख, रूपसे घमंडमें आ, मैंने उनकी हँसी की, तद हँसी कियेहुए उन ऋषियोंने मेरेही अपराधसे मुझे इस नीच योनिमें पहुँचाया ॥ १३ ॥ उन दयालु महात्मानने जो शाप दिया, वह मेरे वास्ते तो अनुग्रहही हुआ क्योंकि जगद्गुरु आपके चरणस्पर्शसे मैं निष्पाप हुआ ॥ १४ ॥ संसारसे डरेहुए शरणागत पुरुषोंका भय दूर करनहारे आपसे मैं आज्ञा मांगता हूं; क्योंकि हे दुःखनाशन ! मैं तो आपहीके चरणस्पर्शके प्रभावसे शापसे मुक्त हुआ हूं ॥ १५ ॥ हे महायोगी ! हे महापुरुष ! हे सत्पुरुषोंके पति ! हे सर्व लोकपालोंके ईश्वर ! हे देव ! मैं आपके शरणागत हूं, मुझे

ऋषीन्विरूपानंगिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ॥ तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥ शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ॥ यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४ ॥ तं त्वाऽहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ॥ आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥ १५ ॥ प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन्महापुरुष सत्पते ॥ अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥ १६ ॥ ब्रह्मदंडाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युतदर्शनात् ॥ यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥ सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ १७ ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवंद्य च ॥ सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नंदश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ॥ समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं नृपाऽऽययुस्तत्कथयंत आदृताः ॥ १९ ॥ कदाचिदथ गोविंदो रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥

आज्ञा होवे ॥ १६ ॥ हे अच्युत ! आपके दर्शनसे मैं ब्रह्मदंडसे शीघ्रही छूट गया हूं. जो आपका नाम लेता है, वहभी सब श्रोता व आप दोनोंको पवित्र करता है, तो मैंने तो आपके दर्शन किये, मेरे छूटनेमें तो संदेहही क्या ? ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– ऐसे भगवानसे अनुज्ञा ले, परिक्रमा दे, दंडवत कर, सुदर्शन स्वर्ग गया. और नंदरायजी कष्टसे छूटे ॥ १८ ॥ महाराज ! श्रीकृष्णचंद्रके इस वैभवको देख, व्रजवासी मनमें आश्चर्य करने लगे व उस वनमें जो नियम लिया था, उसे समाप्त कर, उसी बातको आदरपूर्वक कहते पीछे व्रजमें आये ॥ १९ ॥ कभी अद्भुतपराक्रम राम व कृष्ण दोनों भाई व्रजांगनानके बीच

दान दिये और प्रार्थना की कि-देव हमपर प्रसन्न होवे ॥ ३ ॥ व्रत धारण कर, जल पी, वहीं सरस्वतीके तीरपै वे नंदसुनंदआदि सब बड़भागी गोप उसरात ठहेर गये ॥ ४ ॥ एक बड़ा सर्प उसी वनमें कितनेही दिनोंका भूखा, दैवयोगसे चला आया. और सोतेहुए नंदरायजीको उसने ग्रसा॥५॥ज्यों सांपने ग्रसा त्यों नंदरायजी चिल्लाये, कि-हे कृष्ण ! हे कृष्ण हे तात ! यह बड़ा सर्प मुझे ग्रसता है, शरणागत मुझे छुड़ाओ ॥ ६ ॥ उनकी चिल्लाहट सुन, सब ग्वाल जल्दी उठ, ग्रसेहुए नंदरायजीको देख, घबराय, जलती लकड़ियोंसे उस सांपको मारने लगे ॥ ७ ॥ जलती लकड़ियोंसे खूब मारनेपरभी उस सर्पने नंदरायजीको नहीं

ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः ॥ रजनीं तां महाभागा नंदसुनंदकादयः ॥ ४ ॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन्विपिनेऽतिबुभुक्षितः ॥ यदृच्छयाऽऽगतो नंदं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥ स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ॥ सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्य चाक्रंदितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ॥ ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रांताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुंचत्तमुरंगमः ॥ तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्य भगवान्सात्वतांपतिः ॥ ८ ॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ॥ भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ॥ दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥ को भवान्परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ॥ कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः ॥ श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरन् दिशः ॥ १२ ॥

छोड़ा, तद भक्तपति भगवानने आ, उसको चरण छुवाया ॥ ८ ॥ ज्यों भगवान्‌का चरणस्पर्श हुआ, त्यों उसके सब पाप निवृत्त हुए. सर्पशरीर जाता रहा, विद्याधरोंके पूजनेके योग्य स्वरूप मिला ॥ ९ ॥ सोनेकी माला पहने, देदीप्यमान शरीर धारण किये, सामने उपस्थित, नमस्कार करते उस पुरुषसे भगवानने पूंछा कि- ॥ १० ॥ तुम कौन हो ? तुम्हारी परमशोभा प्रकाशमान हो रही है,अतएव तुम्हारा दर्शन अद्भुत भासे है और परवश होके, इस निंद्य गतिको कैसे प्राप्त हुए ?॥ ११ ॥ सर्पने कहा कि-मैं लक्ष्मी व रूपकी संपदासे जगद्विख्यात सुदर्शन नाम विद्याधर हूं, सो विमानमें बैठ सब दिशानमें घूम करता था ॥ १२ ॥

केवल शृंगाररसमें रुचि है, उनका चित्त लगनेके वास्ते यह क्रीड़ा की गयी ॥ ३७ ॥ जदपि गोपोंकी स्त्रियां भगवानके पास गयीं थीं, तौ भी भगवान्‌की मायासे मोहित हो, उन व्रजवासियोंने अपनी अपनी स्त्रियोंको अपने पास सोती हुई समझा, इसीसे श्रीकृष्णचंद्रपै उनको द्वेषभाव नहीं आया, ऐसे ऐश्वर्यके न होते ऐसा आचरण करनेवालोंको पापीही समझना चाहिये ॥ ३८ ॥ भगवान्‌की प्यारी गोपियां ब्राह्ममुहूर्तमें भगवानकी आज्ञासे इच्छाविनाभी अपने अपने घर गयीं ॥ ३९ ॥ व्रजवनितानके साथ इस भगवानकी क्रीड़ाको जो श्रद्धासहित श्रवण करे अथवा वर्णन करे, उस धीरपुरुषकी भगवानमें दृढ़ भक्ति हो जावे

नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ॥ मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्स्वान्स्वान्दारान् व्रजौकसः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ॥ अनिच्छंत्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ॥ भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनंनाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ॥ आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृप तेंऽबिकाम् ॥ २ ॥ गावो हिरण्यं वासांसि मधुमध्वन्नमादृताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥

और तुर्त हृदयके रोगरूप कामदेवका पराभव हो जाय ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ चौंतीसवें अध्यायमें सर्पसे ग्रसे हुए नंदरायजीको व अंगिरा ऋषिके शापसे विद्याधरको छुड़ाया और शंखचूड़नाम दैत्यको मारा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—एक समय सब ग्वाल देवयात्राके उत्साहसे बैलोंसे जुड़े गाड़ोंमें बैठ, अंबिकाके वनमें गये ॥ १ ॥ महाराज ! वहां सरस्वतीमें स्नान कर, पूजाकी सामा ले, गोपोंने भक्तिसे महादेवजीका व देवीका पूजन किया ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंको गौ, सुवर्ण, वस्त्र, सहद, मिष्टान्न ये आदरपूर्वक

जैसे महादेवने समुद्रसे पैदाहुए विषको पिया, पर दूसरा पीवे तो तुर्त मर जावे ॥ ३१ ॥ वास्तवमें ईश्वरोंका कहना सत्य है, तैसे कहीं कहीं आचरणभी ठीक है. बुद्धिमानको वही आचरण करना चाहिये, जो उनके वचनोंसे युक्त हो ॥ ३२ ॥ महाराज ! उन निरहंकारी ईश्वरोंके न तो धर्म आचरणसे प्रयोजन है, न अधर्माचरणसे अनर्थ है, केवल प्रारब्ध कर्मको बिताना इतनाही उनको कर्त्तव्य है ॥ ३३ ॥ भला जब दूसरे महात्मानकेभी पाप पुण्यका कुछ संबंध नहीं है, तद पशु, पक्षी, मनुष्य देवताआदि सर्व जीवोंके नियंता भगवानके तो पुण्य पापका संबंध कैसे बने ? ॥ ३४ ॥ देखो ! मुनिलोगभी जिनके चरणकमलोंकी रजकी

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाऽचरितं क्वचित् ॥ तेषां यत्स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ ३२ ॥ कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ॥ विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥ ३३ ॥ किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ॥ ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥ यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबंधाः ॥ स्वैरं चरंति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बंधः ॥ ३५ ॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ योंतश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ॥ भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥

सेवासे तृप्त हो, योगाभ्यासके प्रभावसे सब कर्मबंधनोंको काट आसक्ति छोड़, स्वच्छंद विचरते हैं, तद स्वेच्छासे अवतार धारण करनेवाले भगवानके बंधनका कामही क्या ? ॥ ३५ ॥ यह समाधान गोपियोंको परस्त्री मानकर है; परंतु यथार्थमें विचार करें तो भगवानके कोई परस्त्रीही नहीं है, क्योंकि गोपियोंके, उनके पतियोंके और सब जीवोंके, जो अन्तर्यामी और बुद्धि-आदिके साक्षी हैं, वेही लीलासे देह धारण कर प्रगट हुए हैं, ये कोई आपन जैसे नहीं हैं, जिससे दोष लगे ॥ ३६ ॥ भगवानने पूर्णकाम हो, ऐसी क्रीड़ा की, इसका कारण यह है, कि-जीवोंपै अनुग्रह करनेको आपने मनुष्यदेह धारण किया था, उस देहको धारण कर, ऐसी क्रीड़ा करी कि- जिनको सुनै, सुननेवालेका मन तत्पर हो जावे, यानी उन्हींमें लग जावे, जिनकी

आत्माराम होतेभी, गजराजकी तरह जलक्रीड़ा करी ॥२४॥ फिर जल व स्थलके पुष्पोंका सुगंधि पवन जिसके सब दिशामंडलमें व्याप्त हो रहा है ऐसे यमुनाजीके उपवनमें भौंर व स्त्रियोंके गणके संग भगवान विचरने लगे. जैसे मदझरता गजराज हथिनियोंके संग डोले ॥ २५ ॥ इस तरह उन सत्यसंकल्प भगवानने चंद्रमाकी किरणोंसे विराजमान रात्रियोंमें शरदऋतुमें करनेकी जो जो लीला, साहित्यग्रंथोंमें लिखी हैं वे सब, स्नेहभरी स्त्रियोंके संग, अपने वीर्यको स्खलित न करते करी ॥ २६ ॥ परीक्षितने कहा कि– जगतके ईश्वर भगवान्‌का अंशके साथ जो अवतार है, सो धर्मके स्थापन करने और अधर्मके नाश करनेके

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगंधानिलजुष्टदिक्तटे ॥ चचार भृंगप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद्विरदः करेणुभिः ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ॥ सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ॥ अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥ स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता ॥ प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ॥ २८ ॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् ॥ किमभिप्राय एतं नः संशयं छिंधि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥ नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः ॥ विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथाऽरुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ ३१ ॥

वास्ते है ॥ २७ ॥ तो हे ब्रह्मन् ! धर्मकी मर्यादाओंके वक्ता, कर्ता व पालन करनेवाले होकर, उन भगवानने परस्त्रीगमनरूप प्रतिकूल कर्म (अधर्म) कैसे किया ? ॥ २८ ॥ हे मुनि ! पूर्णकाम यदुनाथने यह निंद्य कर्म किस अभिप्रायसे किया ? सो यह हमारा संदेह आप काटिये ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–ईश्वरोंके धर्मका उल्लंघन व साहस देखा गया है, परंतु तेजवानोंको दोष नहीं; जैसे अग्नि सब कुछ भक्षण करता है, पर उसे कोई दोष नहीं लगाता ॥ ३० ॥ परंतु असमर्थ पुरुष उनके बराबर आचरण करनेका कभी मनमेंभी विचार न लावें, क्योंकि जो मूर्खतासे आचरण करता है, तो तुर्त नष्ट हो जाता है.

जितनी गोपियां थीं, उतनेही स्वरूप धारण कर. यदपि भगवान आत्माराम हैं, तथापि लीलासे उनके साथ रमण करने लगे ॥ २० ॥ हे राजा ! अतिविहार करते करते जद वे गोपियां थक गयीं, तद प्रेमसे भगवानने सुखकारी अपने हाथसे उनके मुख पोंछे; क्योंकि आप परमदयालु हैं ॥ २१ ॥ झलकते सोनेके कुंडल व केशोंकी कांतिसे कपोलोंपरकी शोभाके कारण, अमृतसा आचरण करते मंदहास्यसहित देखनेसे भगवान्‌को मान देतीं, भगवानके नखस्पर्शसे परम सुख पातीं, गोपियां भगवान्‌के

कृत्वा तावंतमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ॥ रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामतिविहारेण श्रांतानां वदनानि सः ॥ प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शंतमेनांग पाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुंडलकुंतलत्विड्गंडश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ॥ मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥ ताभिर्युतः श्रममपोहितुमंगसंगघृष्टस्रजः सकुचकुंकुमरंजितायाः ॥ गंधर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः श्रांतो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥ सोंऽभस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोंऽग ॥ वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेंद्रलीलः ॥ २४ ॥

पवित्र चरित्र गातीं थीं ॥ २२ ॥ लोक तथा वेदकी मर्यादका उल्लंघन करनहारे भगवान्, जद रास करते करते थक गये, तद परिश्रम दूर करनेको, गोपियोंके साथ जलमें धसे, जैसे तट तोड़नेवाला हाथी हथिनियोंके साथ जलमें धसे, उस समय अंगके संगसे मर्दन की हुई व स्तनकी केसरसे रंगीहुई, मालासंबंधी भौंरे गंधर्वके समान गान करते करते उनके पीछे पीछे चले ॥ २३ ॥ महाराज ! बहुत हास्य करतीं तरुण स्त्रियोंने चारोंओरसे जल उछाल उछाल भगवानको भिगोय, प्रेमसहित भगवानकी ओर देखा, उस समय विमानमें बैठे देवतालोग पुष्पोंकी वर्षा करते भगवानकी स्तुति करने लगे. इसतरह भगवानने

१ रागिनी विहाग– यमुनाजल क्रीड़त नँदनन्दन ॥ गोपीवृन्द मनोहर चहुँ दिशि मध्य अरिष्टनिकन्दन ॥ पकरे पाणि परस्पर छिरकत शिथिल सलिल भुजचन्दन ॥ मानहु युवतियूथ अहिपतिको लग्यो अंक दै बन्दन ॥ कच भरि कुटिल सुदेश अंबुकण चुवत अंग गतिमन्दन ॥ मानहु भरि गंडूष कमलते डारत अतिआनन्दन ॥ भुज भरि अंक अगाध चलत लै ज्यों लुब्धक [illegible] नेति नेति श्रुति छन्दन ॥ १ ॥

कमलको अपने स्तनोंपर धरा ॥ १४ ॥ लक्ष्मीके एकांतवल्लभ श्रीकृष्णचंद्रको पति पा, सब गोपियां कि-जिनके गलोंमें भगवा-नकी भुजा पड़ रही हैं, वे भगवानका गान करतीं क्रीड़ा करने लगीं ॥ १५ ॥ वहां स्त्रियोंसहित गंधर्व और किन्नरादिक कि-जो बाजे बजाते थे और गवैये बन गान करते थे, वे सारे रसके आवेशसे मोहित हो, नाचने लग गये, तद कंकण व नूपुर जि-समें बाजेका काम चलाते थे और भौंरेही जिसमें गवैयोंका काम करते थे, ऐसी उस रासमंडलीमें गोपियां भगवानके साथ नृत्य करतीं थीं, जिनके कानोंपरके कमल, अलकोंसे अलंकृत कपोल व प्रस्वेदकी बूंदें इनकी शोभा मुखपै छा रही थी, नृत्य करते समय जो फूलोंकी माला पड़तीं थीं, उससे ऐसा मालूम होता था कि-' तालकी गतिसे प्रसन्न हो, मानों केश शिर हिलाय,

गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कांतं श्रिय एकांतवल्लभम् ॥ गृहीतकंठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायंत्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटंककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ॥ गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥ एवं परिष्वंगकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ॥ रेमे रमेशो व्रजसुंदरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमः ॥ १७ ॥ तदंगसंगप्रमुदाकुलेंद्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा ॥ नांजः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ॥ कामार्दिताः शशांकश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥

चरणोंपर पुष्पोंकी वर्षा करते हैं ' ॥ १६ ॥ जैसे गोपियां भगवानके साथ नानाप्रकारके विलासोंसे क्रीड़ा करतीं थीं, तैसे लक्ष्मीपति भगवानभी आलिंगन कर, स्पर्श, स्नेहभरी दृष्टि, उत्तम विलास व हाथसे उन व्रजांगनानके संग रास करते थे. जैसे बालक प्रतिबिंबोंके साथ खेले, तैसे भगवान गोपियोंके संग खेल करते थे ॥ १७ ॥ महाराज ! भगवानका अंगसंग प्राप्त होनेके आनंदसे परवश जिनकी सब इंद्रियां हैं व जिनकी माला व आभरण सरक गये हैं, ऐसी व्रजांगनानको, अपने केश, वस्त्र व स्तनऊपरका वस्त्र यानी कंचुकी ये जो सब शिथिल होते जाते थे, उनका सँभालनाभी मुश्किल हो पड़ा था ॥ १८ ॥ भग-वानकी रासक्रीड़ा देख, देवांगनाभी कामातुर हो, मोहित हो गयीं, चंद्रमा नक्षत्रमंडलसहित विस्मित हो गया ॥ १९ ॥

णके संग चरणोंके रखने, हाथोंके कँपाने, स्मितसहित भ्रूविलास यानी भ्रकुटी चढ़ानेसे तथा मानों टूट जायगी ऐसी लचकती कमर, चंचल स्तन, कपोलोंपर चंचल कुंडल, इनसे जैसे मेघमंडलमें बिजलियां शोभा देतीं हैं तैसे गान करतीं थीं, जिनके मुखपर स्वेदकी बूंदें झलक रहीं थीं व केश और नाड़ेकी ग्रंथि शिथिल हो रही थी ॥ ८ ॥ रतिमें प्रीतिवाली, रक्त-कंठ, वे गोपियां भगवानके स्पर्शसे मुदित हो नृत्य करतीं, उच्च स्वरसे गान करने लगीं, जिनके गीतसे यह सारा जगत भरगया ॥ ९ ॥ कोई गोपी भगवानके साथ स्वरकी गतियां न मिलाते उसी क्षण ध्रुव तालसे अपने स्वरको ऊंचा ले गयी. इस बातसे

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकंठ्यो रतिप्रियाः ॥ कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचि-त्समं मुकुंदेन स्वरजातीरमिश्रिताः ॥ उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ॥ तदेव ध्रुवमु-न्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥ १० ॥ काचिद्रासपरिश्रांता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ॥ जग्राह बाहु-ना स्कंधं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांऽसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ॥ चंदनालिप्तमाघ्रा-य हृष्टरोमा चुचुंब ह ॥१२॥ कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुंडलत्विषमंडितम् ॥ गंडं गंडे संदधत्या अदा-त्तांबूलचर्वितम् ॥ १३ ॥ नृत्यंती गायती काचित्कूजन्नूपुरमेखला ॥ पार्श्वस्थाऽच्युतहस्ताब्जं श्रांता-ऽधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥

भगवानने बहुत प्रसन्न हो, वाह ! वाह ! कह, आदर कर, उसे बहुत मान दान दिया ॥ १० ॥ कोई रासक्रीड़ासे थक कर, पासमें खड़े भगवानके कंधेको भुजासे पकड़, ठहर गयी; जिसके वलय व मल्लिकाके पुष्प शिथिल हो रहे थे ॥ ११ ॥ वहां कोई-कमलसा सुगंधि चंदनसे चर्चित भगवानकी भुजको अपने कंधेपर धरा देख, सूंघ, रोमांचित हो, चुंबन करने लगी ॥ १२ ॥ नृत्यसे चंचल कुंडलोंकी कांतिसे भूषित अपने कपोलको भगवानके कपोलपर धर ठाढ़ी किसी गोपीको, आपने जूंठन बीड़ा दिया ॥ १३ ॥ जिसके नूपुर व मेखला झणकार कर रहे हैं ऐसी किसी गोपीने भगवानके पास खड़ी हो, नाचने व गानेसे थक कर, भगवानके हस्त-

१ कवित्त—साजिकै साज समाज सबै सजनी मुखसों सरसावै लगीं ॥ अगँ अगं अनंगउमंग महासुख रंगतरंग बढ़ावै लगीं ॥ तिरछी अब नैनन सैन तेकैं झुकि झूमि झुकें छबि छावै लगीं ॥ दुरिजावै लगीं तरसावै लगीं [illegible] ॥ ९ ॥

नने रासक्रीडाका प्रारंभ किया ॥ २ ॥ गोपियोंके मंडलसे मंडित रासोत्सव प्रारंभ हुआ, उस समय भगवान् अपनी अचिंत्य
योगशक्तिके प्रभावसे दो दो गोपियोंके बीच प्रविष्ट हुए और उन्होंने अपने पासमें खड़ी दोनों गोपियोंके गलेमें हाथ डाले, प्र-
त्येक गोपी ऐसे मानने लगीं कि-भगवान् मेरेही पास हैं इस तरह रासोत्सव शुरू हुआ, इतनेमें उत्सुकतासे चित्त हरण होनेके

रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमंडलमंडितः ॥ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥ प्रविष्टेन गृ-
हीतानां कंठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥ यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसंकुलम् ॥ दिवौकसां सदाराणा-
मौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥ ततो दुंदुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ जगुर्गंधर्वपतयः सस्त्रीका-
स्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥ वलयानां नूपुराणां किंकिणीनां च योषिताम् ॥ सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमु-
लो रासमंडले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ॥ मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो
यथा ॥ ७ ॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुंडलैर्गंडलोलैः ॥
स्विद्यन्मुख्यः कवररशनाग्रंथयः कृष्णवध्वो गायंत्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥

कारण, अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ देवता देखने आये. जिनके सैंकड़ों विमानोंकी आकाशमें भारी भीड़ भई ॥ ३ ॥ ४ ॥
फिर दुंदुभी बाजने लगे, फूल बरसने लगे, स्त्रियोंके साथ गंधर्वपति भगवानका निर्मल यश गाने लगे ॥ ५ ॥ रासमंडलके
अंदर श्रीकृष्णसहित स्त्रियोंके वलय, नूपुर और घुंघरूनका भारी तुमुल शब्द हुआ ॥ ६ ॥ वहां भगवान् देवकीके पुत्र उनके
संग अतिशोभा देने लगे, जैसे सुवर्णकी मणियोंके बीच नील मणि ॥ ७ ॥ वहां जैसे भगवान् शोभा देते थे, तैसे वेभी श्रीकृ-

१ कवित्त–त्रिविध समीर बहै शीतल सुगन्ध मंद निरतत नंदलाल व्रजबाल साथ हैं ॥ कुण्डल झलक कान मुखसे अलापै तान नथकी चलनि वो हलनि
बेंदी माथ है ॥ रंग रंग सारी जामैं जड़ी है किनारी छबि होत न्यारी न्यारी मानो जोरे रूरे हाथ हैं ॥ नूपुरझनक कर कंकणखनक वनमालकी भनक
केलिकर यदुनाथ हैं ॥ १ ॥

नका त्याग किया है, उनका ध्यान निरंतर मुझमें रहनेके वास्ते, मैं अंतर्द्धान हुआ और अदृश्य रहकर, तुम्हारे प्रेमके वचन सुनता था, इसीलिये हे प्यारी स्त्रियो ! मुझपर तुमको दोषारोपण न करना चाहिये ॥ २१ ॥ अस्तु तावत्, तुम जो मेरे साथ निर्दोष रीतिसे संयुक्त हो, उनका देवतानकी उमर यानी बहुतकालसे प्रत्युपकार करनेको मैं समर्थ नहीं हूं, जो तुम अजर घररूप शृंखलानको काट, मेरा सेवन करती हो, यह तुम्हारा ऋण तुम्हारी सुशीलताहीसे उतरना चाहिये, मैं नहीं उतार सक्ता ॥ २२ ॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषाऽपि वः ॥ या माऽभजन्दुर्जरगेहशृंखलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रासक्रीडायां गोपीसांत्वनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥ जहुर्विरहजं तापं तदंगोपचिताशिषः ॥ १ ॥ तत्राऽरभत गोविंदो रासक्रीडामनुव्रतैः ॥ स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ तेंतीसवें अध्यायमें गोपियोंकी मंडलीके बीच ठाढ़े हो, हरि भगवानने जल व स्थलकी क्रीड़ासे उन प्रियानको रमण कराया ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! ऐसे भगवानके अतिकोमल वचन सुन, गोपियोंने पूर्ण मनोरथ हो, विरहका ताप तज दिया ॥ १ ॥ वहां प्रसन्नचित्त व आज्ञाकारी, परस्पर बाळाजोड़ी लगाये खड़ीं, स्त्रियोंमें, रत्नरूप व्रजांगनानके साथ भगवा-

---

१ जब भगवान् अन्तर्धान हो, फेर आये तब गोपियोंने पूंछा कि– आप कहां गये थे. तब श्रीकृष्णजीने कहा कि– हे गोपियो ! एक हंस नामका ब्राह्मण समुद्रके अन्दर श्वेतद्वीपमें तप करता था. जो कि– मेरा निष्काम भक्त था. और तप करते २ जिसे दो मन्वन्तर व्यतीत हो गये थे. सो उसे आज एक पौंड्रनामक दैत्य दोकोशकी लंबी मछलीका रूप धारण कर, निगल गया था. सो यह जान, वहां जाय, अपने चक्रसे उस दैत्यका शिर काट, हंस मुनिको निकाल, पीछे श्वेतद्वीपको जाय, क्षीरसागरके अन्दर शेषशयनमें सोगये. परंतु सोतेमेंभी मैने तुम्हारा दुःख जान, भक्तवत्सलताके कारण निद्राका त्याग कर, फेर वहां आगमन किया. इतनी कथा सुन, गोपियोंने कहा कि– महाराज ! वही शेषशायीरूप हमेंभी दिखलाइये. बस इतना सुनतेही भक्तवश भगवानने नटके समान वहीरूप दिखाया कि– जिसके चारों तरफ क्षीरसागर लहर रहा है और उसके बीच शेषशयनमें आठ भुजावाले भगवान् पौढ़े हैं और लक्ष्मीजी पैर दाब रहीं हैं. ऐसे इस रूपके दर्शन कर, गोपियोंने विस्मित हो, अपने आत्माको कृतार्थ मान, धन्य [illegible] ॥

वाले भगवान्का सत्कार व भलेप्रकार प्रशंसा कर, कुछ क्रोधमें आ, बोलीं ॥ १५ ॥ गोपियोंने कहा कि-कितने एक तो भजने-वालोंको पीछा भजते हैं, कितने एक नहीं भजनेवालोंकोभी उनकी अपेक्षा न रखकर भजते हैं, कितने एक न तो भजनेवालोंको और न न भजनेवालोंको यानी दोनोंको नहीं भजते, सो इसका विवेचन हमको अच्छीतरह समझाकर, कहो ॥ १६ ॥ भगवानने कहा कि-हे सखियो ! जो आपसमें भजते हैं वे केवल स्वार्थके लिये उद्यम करते हैं, वहां कोई सुहृदपन वा धर्म नहीं है; क्यों-कि वह भजना केवल स्वार्थके अर्थ है. दूसरी कोई बात नहीं ॥ १७ ॥ जो नहीं भजनेवालोंको भजते हैं वे दयालु और स्नेही

गोप्य ऊचुः ॥ भजतोऽनुभजंत्येक एक एतद्विपर्ययम् ॥ नोभयांश्च भजंत्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मिथो भजंति ये सख्यः स्वार्थैकांतोद्यमा हि ते ॥ न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥ १७ ॥ भजंत्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा ॥ धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥ भजतोऽपि न वै केचिद्भजंत्यभजतः कुतः ॥ आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥१९॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जंतून्भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ॥ यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिंतयाऽन्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ॥ मया परोक्षं भजता तिरोहितं माऽसूयितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

हैं. जैसे माता, पिता, हे सुंदरियो ! दयालु हो, भजनेमें सत्य धर्म रहा है, स्नेहसे भजनेमें सत्य प्रेम रहा है ॥ १८ ॥ कितने एक भजनेवालोंकोभी नहीं भजते, फिर नहीं भजनेवालोंकी तो बातही क्या ? वे चार प्रकारके हैं. आत्माराम, पूर्णकाम, अकृ-तज्ञ और गुरुद्रोही ॥ १९ ॥ हे सखियो ! मैं तो इनमेंसे किसी प्रकारका नहीं हूं, परमदयालु और परमस्नेही हूं क्योंकि भजने-वालोंका मुझमें निरंतर ध्यान रहनेके वास्ते मैं भजनेवालोंकोभी नहीं भजता, जैसे निर्धनपुरुष अपना धन जानेपर उसकी चिं-तासे ऐसा व्याप्त हो जाता है, कि-उसे भूख प्यासकाभी भान नहीं रहता, केवल धनहीकी चिंता बनी रहती है ॥ २० ॥ ऐसे-ही तुम कि-जिन्होंने मेरे वास्ते योग्य अयोग्य न देखनेसे लोकका, धर्माधर्म न देखनेसे वेदका और स्नेहका त्याग करनेसे बंधु-

१ भगवानकी अकृतज्ञता उन्हींके मुखसे कहलानेके अभिप्रायसे लोकोंके वृत्तांतकी तरह पूंछा कि-

हका ताप मिट गया. जैसे मुमुक्षुलोग ईश्वरको प्राप्त हो, तापरहित हो जाते हैं ॥ ९ ॥ हे तात ! निश्चिंत उन गोपियोंसे आवृत भगवान् ज्यादा शोभा देने लगे, जैसे सत्वआदि शक्तियोंके साथ परमात्मा शोभायमान हैं ॥ १० ॥ फिर प्रभु प्रफुल्लित कुंद और मंदारके सुगंधि पवनके कारण भौंरे जिसमें गुंज रहे हैं ऐसे यमुनाके तटपर उन सबनको ले गये ॥ ११ ॥ शरदऋतुके चंद्रमाकी किरणोंके समूहसे रात्रिका अंधकार मिट गया यमुनाजीने अपने हाथोंके सदृश तरंगोंसे कोमल बालू बिथराय दी ॥ १२ ॥ उस समय उनके मनोरथ ऐसे पू० हुए, कि–जैसे कर्मकांडमें श्रुतियां परमेश्वरको न देखतीं, उन उन कामनाओंसे अ-

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ॥ व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥ ताः समादाय कालिंद्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ॥ विकसत्कुंदमंदारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥ शरच्चंद्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ॥ कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥ तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथांतं श्रुतयो यथा ययुः ॥ स्वैरुत्तरीयैः कुचकुंकुमांकितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबंधवे ॥ १३ ॥ तत्रोपविष्टो भगवान्स ईश्वरो योगेश्वरांतर्हृदि कल्पितासनः ॥ चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४ ॥ सभाजयित्वा तमनंगदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ॥ संस्पर्शनेनांककृतांघ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥

पूर्णसी रहतीं हैं और ज्ञानकांडमें परमेश्वरका दर्शन कर, उसके आनंदसे पूर्ण हो, कामनाओंका त्याग करतीं हैं; पूर्णकाम होनेपरभी गोपियोंने अपने अंतर्यामी भगवानके वास्ते अपने कुचोंकी केसरके चिन्हवाले उत्तरीय वस्त्रोंसे आसन बनाया ॥ १३ ॥ योगेश्वरोंके हृदयके अंदर जिनका सदा आसन बना हुआ है ऐसे, वे परमेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् गोपियोंसे मान पा, गोपियोंकी मंडलीके बीच विराजते त्रिलोकीकी शोभाका एकही पद ऐसे अपने शरीरको धारण करते शोभा देने लगे ॥ १४ ॥ उनके चरण और हाथोंको गोदमें ले, चापतीं हुई गोपियां हास्य व लीलासहित दर्शन व विलाससहित भृकुटीमें कामदेवके उद्दीपन करने

गोपियां गातीं, विचित्र प्रकारसे विलाप करतीं, कृष्णके दर्शनकी लालसासे सुस्वर रोने लगीं ॥ १ ॥ तद मंदहास्यसहित जिनका मुखारविंद है ऐसे साक्षात् कामदेवकोभी मोहित करनेवाले भगवान् पीतांबर पहिरे, वनमाला धारण किये, गोपियोंके मध्य प्रगट हुए ॥ २ ॥ इस प्यारेको आया देख, सब स्त्रियां प्रीतिसे प्रफुल्लितदृष्टि हो, एक साथ उठ खड़ी हुई. जैसे प्राणके आनेपर करचरणादिक इंद्रियां सचेत हो जाती हैं ॥ ३ ॥ किसीने भगवानका करकमल आनंदसे अपनी अंजलीमें लिया, किसीने चंदनसे शोभायमान भगवानके कंधेको अपने कंधेपर धरा ॥ ४ ॥ किसी गोपीने अंजलीमें भगवानका चबायाहुआ बीड़ा लिया,

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः ॥ पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥ तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः ॥ उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवाऽऽगतम् ॥ ३ ॥ काचित्करांबुजं शौरेर्जगृहेंऽजलिना मुदा ॥ काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चंदनभूषितम् ॥ ४ ॥ काचिदंजलिनाऽगृह्णात्तन्वी तांबूलचर्वितम् ॥ एका तदंघ्रिकमलं संतप्तास्तनयोरधात् ॥ ५ ॥ एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरंभविह्वला ॥ घ्नंतीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥ अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखांबुजम् ॥ आपीतमपि नातृप्यत्संतस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥ तं काचिन्नेत्ररंध्रेण हृदि कृत्य निमील्य च ॥ पुलकांग्युपगुह्याऽऽस्ते योगीवाऽऽनंदसंप्लुता ॥ ८ ॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ॥ जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥

किसीने कामज्वरसे संतप्त हो, भगवानके चरणकमलको अपने स्तनोंपर धरा ॥ ५ ॥ कोई भृकुटी चढ़ाय, प्रणयकोपके आवेशसे विव्हल हो, होंठ डंस, मानोंकटाक्षोंसे मारती हो, तैसे देखने लगी ॥ ६ ॥ दूसरी निमिषरहित नेत्रोंसे भगवानके मुखकमलका अच्छीतरह दर्शन कर चुकी थी, तौभी वारंवार सेवन करती तृप्त नहीं हुई, जैसे संत लोग भगवानके चरणकी सेवा करते तृप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ कोई गोपी नेत्रोंके छिद्रद्वारा भगवानको हृदयमें धर, आंखे, मूंदि, भगवान्का आलिंगन कर, पुलकितगात हो, योगीजनके समान आनंदमें मग्न हो गयी ॥ ८ ॥ वे सब भगवान्के दर्शनके परमोत्सवसे आनंदयुक्त हुईं. और उनका विर-

आपके वियोगमें तो हमें इतना दुःख और संयोगमें इतना सुख है कि, क्षणभरभी अंतर नहीं सह सकतीं ॥ १५ ॥ देखो ! पति, पुत्र, संबंधी, भाई, बंधु, इन सबको छोड़, मोहित हो, हे अच्युत ! हम हमारे आगमनको जाननेवाले आपके निकट आयीं हैं, सो हे कितव ! रात्रिसमय स्त्रियोंका त्याग आप विना दूसरा कौन करे ?॥ १६ ॥ कामोद्दीपक एकान्तका संकेत, हास्यसहित मुख, प्रेमसहित देखना, लक्ष्मीजीका धाम विशाल वक्षःस्थल, इन्हें देख, हमारा मन वारंवार मोहित होता जाता है ॥ १७ ॥ हे कृष्ण ! आपका प्रागव्य जगतका मंगल करनेवाला है, तिसमेंभी व्रजवासियोंके तो विशेषकर सब दुःखोंका हरने-

पतिसुतान्वयभ्रातृबांधवानतिविलंघ्य तेंऽत्यच्युतागताः ॥ गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥ बृहदुरःश्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥ व्रजजनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहंत्र्यलं विश्वमंगलम् ॥ त्यज मनाक् नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥ यत्ते सुजातचरणांबुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥ तेनाटवीमटसि यद्व्यथते न किंस्वित्कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रासक्रीडायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच॥इति गोप्यः प्रगायंत्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा ॥ रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

वाला है, इसलिये आपकी कामनासे व्याप्तचित्त हमें, अपने भक्तजनोंके मनकी पीड़ाका नाश करनेवाली जो गुप्त औषध है, वह थोड़ीसी दीजिये ॥ १८ ॥ हे प्रिय ! जिस आपके सुकुमार चरणकमलको हम हमारे कठिन स्तनोंपर डरती डरती धीरेसे रखती हैं, उससे आप अटवीमें फिरते हो, सो कंकरआदिसे कैसे पीड़ित न होता होगा, ऐसे हम कि-जिनके जीवनरूप आपही हैं, उनकी बुद्धि मोहित होती है ॥ १९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ बत्तीसवें अध्यायमें विरहके वचनसे जिनका हृदय द्रवीभूत हो गया है, ऐसे हरि वहां प्रगट हुए और आपने उनका मान कर, सांत्वना की, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- महाराज ! इस तरह

क्या कहना ? इसलिये कृपा कर दर्शन दीजिये ॥ ९ ॥ हे प्रिय ! हे कपटी ! आपका हँसना, प्रेमसहित देखना, ध्यानहीसे मंगलरूप आपकी क्रीड़ा, मनको मोहित करनेवाली जो आपकी एकांतकी बातें, ये सब हमारे मनको क्षोभित करती हैं ॥ १० ॥ हे कांत ! जब आप पशु चरानेको व्रजसे जाते हो, उस समय हे नाथ ! कमलसा सुंदर आपका चरण कंकर और तृणोंके अंकुरोंसे खिन्न होता होगा, ऐसे जानकर हमारा मन अस्वस्थ हो जाता है, ऐसे हमारे प्रेम रखनेपरभी आप क्यों कपट करते हो ? ॥ ११ ॥ हे वीर ! सांझसमय कृष्ण केशोंसे वेष्टित और गोरजसे व्याप्त कमलसा मुख धारण करते, वारंवार दर्शन दे, हमारे

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ॥ रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयंति हि ॥ १० ॥ चलसि यद्व्रजाचारयन्पशून्नलिनसुंदरं नाथ ते पदम् ॥ शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कांत गच्छति ॥ ११ ॥ दिनपरिक्षये नीलकुंतलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ॥ घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमंडनं ध्येयमापदि ॥ चरणपंकजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥ सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुंबितम् ॥ इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥ अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥ कुटिलकुंतलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥

मनमें कामदेवको उद्दीपन करते हो, पर संग नहीं देते, यही आपका कपट है ॥ १२ ॥ हे मनकी पीड़ा मिटानेवाले ! हे रमण ! ब्रह्माजीसे पूजित, पृथ्वीका मंडनरूप, प्रणत पुरुषोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, आपदामें ध्यानमात्रहीसे उसको निवृत्त करनेवाला, सेवासमयभी सुखदायी, जो आपका चरणकमल है, उसे हमारे स्तनोंपर धरो ॥ १३ ॥ हे वीर कामदेवका उद्दीपक, शोकका मिटानेवाला, स्वरभरी बंसीसे भले प्रकार चुंबित, चक्रवर्तीआदि सुखोंको भुलानेवाला आपका अधरामृत हमें दीजिये ॥ १४ ॥ जब आप दिनमें वनमें पधारते हो, उस समय आपके दर्शन विना हमारा एक निमिष युगके बराबर बीतता है, संध्यासमय घूंघरवाले बालवाले आपके श्रीमुखका दर्शन करती हैं, उस समय पलकें बनानेवाला ब्रह्मा हमें मूर्ख मालूम होता है, अर्थात्

यशोदाके पुत्र नहीं हो, आप तो सर्व प्राणियोंके अंतर्यामी हो, जगतकी रक्षाके वास्ते जद ब्रह्माजीने आपसे प्रार्थना की, तद यादवकुलमें प्रगट हुए हो, जगतके पालनके निमित्त अवतार ले, भक्तोंकी उपेक्षा करना, यह अत्यंत अनुचित्त है ॥ ४ ॥ हे यादवोत्तम ! हे कांत ! संसारके भयसे शरण आयेहुए पुरुषोंको अभय देनेवाला, मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, लक्ष्मीजीका पाणिग्रहण करनेवाला आपका करकमल हमारे शिरपर धरो ॥ ५ ॥ हे व्रजवासियोंके आर्तिहर ! हे वीर ! हे मंदहास्यसे अपने भक्तोंके गर्व भंजन ! हे सखा ! हम दासियोंको आप भजिये और आपके सुंदर मुखकमलका दर्शन दीजिये ॥ ६ ॥ आपका चरण, जो प्रणत प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाला, कृपाके कारण गायोंके पीछे फिरनेवाला, सौभाग्यके कारण लक्ष्मीका

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात ॥ करसरोरुहं कांत कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥ व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥ भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥ फणिफणार्पितं ते पदांबुजं कृणु कुचेषु नः कृंधि हृच्छयम् ॥ ७ ॥ मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥ विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥ ८ ॥ तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥ श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणंति ते भूरिदाजनाः ॥ ९ ॥

धाम, पराक्रमके कारण सर्पके फणपर विराजमान है, उस आपके चरणकमलको हमारे कुचोंपर धर, कामदेवको शांत करो ॥ ७ ॥ हे कमलनयन ! हे वीर ! आपकी सुंदर वाक्यवाली, गंभीर, मधुरवाणीसे मोहित इन हम दासियोंको अधरामृतसे संजीवन करो ॥ ८ ॥ आपके विरहमें हमारी मृत्यु आ चुकीभी, परंतु आपके कथामृतको पातेहुए सुकृतीजनोंने बचायी, वस्तुतः आपकी कथा अमृतरूप है; क्योंकि संतप्त पुरुषोंको जिलाती है, ब्रह्मवेत्ताभी उसकी स्तुति करते हैं, काम्य कर्मोंका नाश करती है, केवल श्रवण करनेसे मंगल करती है, सदा शांत है, ऐसी आपकी अमृतरूप कथाको जो विस्तारपूर्वक निरूपण करते हैं, वे जीवदान देनेवाले हैं, जद आपके कथामृतका निरूपण करनेवालेभी अतिधन्य हैं, तो जो आपका दर्शन करते हैं, उनका तो

ण करतीं थीं, भगवानसंबंधींही लीला करती थीं, तद्रूप हो, भगवानकेही गुण गाय रही थीं ॥ ४३ ॥ फिर यमुनाजीके तीरपर आ, कृष्णका ध्यान करतीं, श्रीकृष्णके पधारनेकी अभिलाषासे सब सामिल हो, कृष्णहीको गाने लगीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ एकतीसवें अध्यायमें वे निरास हो, फिर तटपर आ, कृष्णहीका गान करतीं, उनके आनेको प्रार्थना करतीं हैं. यह कथा होगी ॥ १ ॥ गोपियोंने कहा कि-हे प्यारे ! आपके अवतार लेनेसे व्रजका अधिक उत्कर्ष हुआ, आपके प्रगट होनेके कारण यहां लक्ष्मीजी निरंतर विराजती हैं, ऐसे सब व्रजमें आनंद छा रहा है. तिसमें आपकी गोपियां जो केवल आपहीके वास्ते प्राण धारण करती हैं, वे आपको ढूंढ़तीं

पुनः पुलिनमागत्य कालिंद्याः कृष्णभावनाः ॥ समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिताः ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणंनाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि ॥ दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥ सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥ विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ॥ वृषमयात्मजाद्विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥ न खलु गोपिकानंदनो भवानखिलदेहिनामंतरात्मदृक् ॥ विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥

दुखी हैं, सो आप दर्शन दीजिये ॥ १ ॥ हे सुरतनाथ ! हे मनोरथ पूर्ण करनहार ! शरद ऋतुके तालावमें भले प्रकार पैदा हुए विकसित कमलके गर्भकी शोभाको हरण करनेवारी जो आपकी दृष्टि है, तासों हम बेमोलकी दासियोंको जो आप मारते हो, क्या वह वध नहीं है ? शस्त्रसे जो वध होवे क्या वही वध कहलाता है ? दृष्टिसे जो वध होवे क्या वह वध नहीं कहलाता ? सो दृष्टिसे हरेहुए हमारे प्राण पीछे देनेको दर्शन दो ॥ २ ॥ हे ऋषभ ! आपने ठौर ठौर वारंवार हमारी रक्षा की है, देखो विषके जलसे जो मृत्यु हुई तिससे, अघासुरसे, बरसा, पवन और बिजली पड़नेसे, अरिष्टासुरसे, व्योमासुरसे, दूसरेभी कालिय आदि सब सब प्रकारके भयसे आपहीने बचाया है तो अभी कैसे उपेक्षा करते हो ? ॥ ३ ॥ हे सखा ! आप कोई

दूसरी स्त्रियोंको वनमें छोड़ जिस गोपीको साथ ले गये थे ॥ ३५ ॥ उसके मनमें ऐसा अभिमान हुआ कि–मेरी जैसी कोई स्त्री नहीं है, मैं सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हूं. देखो, इच्छा करती हुई सब गोपियोंको छोड़, यह प्यारा मेकोही भजे है ॥ ३६ ॥ फिर वनके प्रदेशमें कुछ दूर जा, घमंडमें आ, भगवान्से बोली कि– मैं तो चल नहीं सकती, जहां आपकी इच्छा हो, वहां आप ले चलें ॥ ३७ ॥ ऐसे कहनेपर श्रीकृष्णचंद्रने प्यारीसे कहा कि–अच्छा, मेरे कंधेपर चढ़ जाओ, ऐसे कहनेपर ज्यों वह चढ़नेको तैयार हुई त्यों, भगवान् अंतर्द्धान हुए. अब वह स्त्री घबरायी ॥ ३८ ॥ हा नाथ ! हा रमण ! हा प्यारे ! हा महाभुज !

सा च मेने तदाऽऽत्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ॥ हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥ ३६ ॥ ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ॥ न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३७ ॥ एवमुक्तः प्रियामाह स्कंध आरुह्यतामिति ॥ ततश्चांतर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ॥ दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥ अन्विच्छंत्यो भगवतो मार्गं गोप्योविदूरतः ॥ ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४० ॥ तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ॥ अवमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥ ४१ ॥ ततोऽविशन्वनं चंद्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ॥ तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ॥ तद्गुणानेव गायंत्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥ ४३ ॥

तुम कहां हो ? तुम कहां हो ? हे सखा ! दीन दासी मोपै कृपा कर, दर्शन दीजिये ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–भगवानके मार्गको ढूंढ़तीं गोपियोंने निकटहीमें प्यारेके विरहसे मोहित और दुःखी सखी देखी ॥ ४० ॥ भगवान्से पहले मान मिला फिर बुराईसे अपमान हुआ, यह बात उसके मुखसे कही सुन, गोपियोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ४१ ॥ फिर जहांतक चंद्रमाका प्रकाश दीख पड़ा, तहांतक उसे संग ले, आगे वे स्त्रियां बढ़ीं, जद आगे जाते जाते अंधकार आगया, उसे देख पीछी लौटीं ॥ ४२ ॥ उस समयभी उनको अपने घर याद नहीं आये, क्योंकि उनका मन भगवानहीमें लग रहा था, भगवानसंबंधीही भाष-

रजकण बडे धन्य हैं, जिनको ब्रह्मा, महादेव, देवी लक्ष्मी, येभी पाप छुटानेको शिरपर धारण करते हैं. जो आपन इनको शिरपर धारण करेंगी तो, आपनकोभी ब्रह्मादिकोंके जैसे भगवान् मिल जायंगे ॥ २९ ॥ उसके इन चरणोंको देख, हमें बड़ा क्षोभ होता है, जों गोपियोंमेंसे भगवान्को उड़ा लेजाय, एकांतमें अकेली भगवानका अधरामृत पी रही है ॥ ३० ॥ यहां तो उसके चरण नहीं दीख पड़ते, परंतु इसका कारण यह होना चाहिये, कि-जब तृणके अंकुरोंसे उसका कोमल चरणतल पीड़ित हो गया है, तब प्यारेने प्यारीको कंधेपर उठाया है ॥ ३१ ॥ (हे गोपियो ! सखीको उठानेके भारसे जमीनमें अधिक

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वंत्युच्चैः पदानि यत् ॥ एकापहृत्य गोपीनां रहो भुंक्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यंते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः ॥ खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥ (इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ॥ गोप्यः पश्यत कृष्यस्य भाराक्रांतस्य कामिनः ॥ अत्रावरोपिता कांता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥ १ ॥) अत्र प्रसूनावचयः प्रियाऽर्थे प्रेयसा कृतः ॥ प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥ ३२ ॥ केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कांतामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥ रेमे तया चाऽऽत्मरत आत्मारामोऽप्यखंडितः ॥ कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवं दर्शयंत्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ॥ यां गोपीमनयत्कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ३५ ॥

धसे हुए कामी कृष्णके पगको देखो, इहां पुष्पके हेतुसे सखीको अवश्य उठाया है ॥ १ ॥) यहां प्यारेने प्यारीके वास्ते फूल बीने हैं, देखो, एंड़ी ऊंची करनी पड़ी है.जिससे पूरे पग न मंडते पांवोंके अग्रही उभड़ रहे हैं ॥ ३२ ॥ यहां जरूर कामीने कामिनीकी चोटी गूंथी है क्योंकि उसकी चोटीमें फूल गुंथते श्रीकृष्णको यहां अवश्य बैठना पड़ा है ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-जदपि भगवान् आत्मरत, आत्माराम, स्त्रियोंके विलासोंसे अखंडित हैं. तोभी उन्होंने कामी पुरुषोंकी दीनता और स्त्रियोंका दुष्टपन दिखलानेको उनके साथ ले, रमण किया ॥ ३४ ॥ ऐसे वे गोपियां भगवान्को ढूंढ़ती बेचेत हो, विचरतीं थीं, अब भगवान्

अपने उत्तरीय वस्त्रको ऊंचा उठाया ॥ २० ॥ महाराज ! एक दूसरीके शिरपर चढ, पांवोंसे दबाय, बोली कि- हे दुष्ट सर्प ! चलाजा, दुष्टोंको दंड देनेवाला मैं प्रगट होगया हूं ॥ २१ ॥ वहां एक बोली कि- हे गोप ! उल्बण दावानलको देखो, जल्दी तुम तुम्हारी आंखें मूंदि लो. मैं तुम्हारी रक्षा सहजमें करूंगा ॥ २२ ॥ वहां एक गोपीको दूसरीने मालासे ऊखलमें बांध दिया, वह गोपी डरतीहुई मुंह ढंक, भयका अनुकरण करने लगी ॥ २३ ॥ ऐसे वृंदावनकी लता और वृक्षोंसे कृष्णको पूछतीं, गोपियोंने वनके प्रदेशमें परमात्माके चरण देखे ॥ २४ ॥ ये चरण तो अवश्य महात्मा श्रीकृष्णके मालूम होते हैं; क्योंकि

आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ॥ दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दंडधृक् ॥ २१ ॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ॥ चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममंजसा ॥ २२ ॥ बद्धाऽन्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले ॥ भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडंबनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृंदावनलतास्तरून् ॥ व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥ पदानि व्यक्तमेतानि नंदसूनोर्महात्मनः ॥ लक्ष्यंते हि ध्वजांभोजवज्रांकुशयवादिभिः ॥ २५ ॥ तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छंत्योऽग्रतोबलाः ॥ वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि याताया नंदसूनुना ॥ अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥ अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ यन्नो विहाय गोविंदः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८ ॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविंदांघ्र्यब्जरेणवः ॥ यान्ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥

इनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश, यवआदि सब चिन्ह दीख पड़ते हैं ॥ २५ ॥ उन उन चरणोंके पीछे पीछे चलतीं आगे भगवानके मार्गको ढूंढ़तीं गोपियां एक स्त्रीके चरणोंसे मिले भगवानके चरण देख, दुःखी हो बोलीं कि- ॥ २६ ॥ भगवानके साथ यह कौन गयी है ? ये किसके चरण हैं ? जिसने भगवानके कंधे पर अपना पहुँचा रक्खा है. इसका भगवानके साथ जाना ऐसा मालूम होता है, जैसे हाथीके साथ हथिनी ॥ २७ ॥ परमेश्वर हरि भगवानका पक्का आराधन तो इसने किया है, जो हमें छोड़, प्रसन्न हो, भगवान् जिसे एकांतमें ले गये ॥ २८ ॥ हे सखियो ! अहो ! यह भगवान्के चरणोंके

भी) अपने बड़े भाग्यसे भगवान्के नखका स्पर्श मिलनेसे रोमांचित होतीं हैं, इसलिये इन लताओंसे पूंछना चाहिये; क्योंकि अपने पतिके समागममें कभी ऐसे रोमांच होनेका संभव नहीं ॥ १३ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह उन्मत्तकी तरह वचन कहतीं, भगवानके ढूंढ़नेसे विह्वल हुई गोपियां तद्रूप हो, भगवानकी उन उन लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ भगवानके समान लीला करतीं एक गोपी पूतनारूप बनी, दूसरी कृष्णरूप हो स्तनपान करने लगी, एक बालकरूप बन रोने लगी और शकटरूपी दूसरी गोपीके लात मारी. एक बालककी भावना कर, बैठी. जिसे दूसरी दैत्यरूप बन, हर ले गयी ॥ १५ ॥

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ॥ लीला भगवतस्तास्ता ह्यनु चक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥ कस्याश्चित्पूतनायंत्याः कृष्णायंत्यपिबत्स्तनम् ॥ तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वा जहारान्यामेकां कृष्णार्भभावनाम् ॥ रिंगयामास काप्यंघ्री कर्षती घोषनिःस्वनैः ॥ १६ ॥ कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायंत्यश्च काश्चन ॥ वत्सायतीं हंति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥ आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुवर्ततीम् ॥ वेणुं क्वणंती क्रीडंतीमन्याः शंसंति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यांचित्स्वभुजं न्यस्य चलंत्याहापरानन्नु ॥ कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥ माभैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतंत्युन्निदधेंऽबरम् ॥ २० ॥

एक गोपी घुंघरूका शब्द सुन, अपने चरणोंको घसीटती घुटनोंसे रेंगने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियां तो राम कृष्ण बनीं, कितनी एक गोपरूप बनीं, एक वत्सरूप बनी, जिसे एक कृष्णरूप गोपी मारने लगी एक बकरूप गोपीको ॥ १७ ॥ दूसरी मारनेलगी. जैसे श्रीकृष्णभगवान दूर चरतीहुई गायोंको बुलाया करते थे, तैसे एक गोपी गायोंको बुलाय, उनका अनुकरण करती, वेणु बजाती, क्रीड़ा करती थी. उसकी दूसरी वाह ! वाह ! कर प्रशंसा करती थीं ॥ १८ ॥ एक गोपी किसीपर अपनी भुजा रख, चलतीहुई, दूसरी गोपियोंसे बोली कि- 'मैं कृष्ण हूं मेरी सुंदर गति देखो' ऐसे उन्हींमें चित्त लगाये थी ॥ १९ ॥ मत डरो; पवन और बर्षासे मैंने तुम्हारी रक्षा करी; ऐसे कह, प्रयत्न करती एक गोपीने एक हाथसे

करते इधर हो पधारे हैं ? ॥ ८ ॥ हे आम ! हे प्रियाल ! हे पनस ! हे असन ! हे कोविदार ! हे जामुन ! हे अर्क ! हे विल्व ! हे बकुल ! हे आम्र ! हे कदंब ! हे नीप ! हे परोपकारार्थ जन्म लेनेवाले यमुनाके तीरपर विराजमान वृक्षो ! शून्यचित्त हमको कृष्णकी पदवी बतलाओ ॥ ९ ॥ हे पृथ्वी ! तैंने ऐसा क्या तप किया ? कि-जिससे तू भगवानके चरणस्पर्शके आनंदसे रोमांचित हो, शोभा दे रही है; क्या अभी भगवान्‌के चरणस्पर्शसे तेरे यह आनंद हुआ है ? या वामनावतारमें तीन पैंग अर्पण किये उसके प्रतापसे ? या वराहमूर्तिके आलिंगनसे हुआ है ? ॥ १० ॥ हे हरिणी ! हे सखी ! अपने अवयवोंसे तुम्हारी

चूतप्रियालपनसासनकोविदारजंब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदंबनीपाः ॥ येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसंतु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥ किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवांघ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकितांगरुहैर्विभासि ॥ अप्यंघ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरंभणेन ॥ १० ॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ॥ कांतांगसंगकुचकुंकुमरंजितायाः कुंदस्रजः कुलपतेरिह वाति गंधः ॥ ११ ॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदांधैः ॥ अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाऽभिनंदति चरन्प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥ पृच्छतेमालता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ॥ नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥

दृष्टिको आनंद देते भगवान् प्यारीके साथ यहां तुम्हारे पास आये ? क्योंकि श्रीकृष्णचंद्रकी पहनीहुई कुंदपुष्पकी माला कि-जो प्यारीका अंगसंग करते समय, उसके स्तनोंकी केसरसे रंगीहुई होगी, उसकी सुगंध यहां आती है ॥ ११ ॥ हे वृक्षो ! एक हाथ प्यारीके कंधेपर धर, दूसरे हाथमें कमल लिये यहां विचरते, तुलसीसंबंधी मदोन्मत्त भौंरे जिनके पीछे उड़ा करते हैं, ऐसे भगवान् स्नेहदृष्टिसे क्या तुह्मारे प्रणामको स्वीकार करते हैं ? ॥ १२ ॥ कोई बोली कि-हे सखियो ! ये लतायें श्रीकृष्णसे अवश्य मिलीं होंगी, क्योंकि अपने पति (वृक्ष) के बाहु (शाखा) का आलिंगन किये हैं, तौभी (अपने पतिके समीपमें-

भगवान्को न देखकर, एकायक संताप करने लगीं. जैसे हथिनियां यूथपति गजराजके विना संतप्त होतीं हैं ॥ १ ॥ भगवानकी गति, अनुराग, मंद मुसकुराहट, विलाससहित देखना, मनोहर भाषण, विहार विलास इनसे जिनके चित्तका हरण हो गया है, अतएव तद्रूप गोपियां भगवानकी लीलानका अनुकरण कर, क्रीड़ा करने लगीं ॥ २ ॥ प्यारे श्रीकृष्णकी गति ! मंद मुसकुराहट, देखना और भाषणादिकमें जिनके शरीर तन्मय हो गये थे, अतएव भगवानके समान क्रीड़ा और विलास करतीं, भगवद्रूप गोपियां ' मैंही कृष्ण हूं ' ऐसे परस्पर निवेदन करने लगीं ॥ ३ ॥ सामिल हो, उच्चस्वरसे भगवान्काही गान करतीं गोपियां

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ॥ आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥ गायंत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ॥ पप्रच्छुराकाशवदंतरंबहिर्भूतेषु संतं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥ दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ॥ नंदसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥ कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचंपकाः ॥ रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥ कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये ॥ सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥ मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके ॥ प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥

उन्मत्तकी तरह एक वनसे दूसरे वनमें ढूंढ़ने लगीं. और भगवान् जो सर्व पदार्थोंमें बाहिर और भीतर व्यापक हैं, उनके समाचार वृक्षोंसे पूछने लगीं ॥ ४ ॥ हे पीपल ! हे वट ! प्रेम और हाससे विलसित अवलोकनसे चोरकी तरह हमारे मनका हरण कर जानेवाले नंदरायजीके पुत्रको तुमने कहीं देखा ? ॥ ५ ॥ हे कुरबक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे केशर ! मानवतियोंका मान हरनेवाला जिनका मंदहास्य है ऐसे बलदाऊजीके छुटभैया कृष्णको जाते तुमने कहीं देखा ? ॥ ६ ॥ हे कल्याणि तुलसि ! हे गोविंदके चरणोंकी प्यारी ! भौंरोंके साथ तुझे धारण करते तेरे अतिप्यारे अच्युतको तैंने कहीं देखा ? ॥ ७ ॥ हे मालति ! हे मल्लिके ! हे जाति ! हे यूथिका ! क्या तुमने कहीं भगवानको देखा ? क्या हाथके स्पर्शसे तुम्हारे प्रीति उत्पन्न

उदार हास और दांत शोभायमान हैं ऐसे भगवान् विशेष शोभायमान हुए. जैसे तारागणसे वेष्टित चंद्रमा ॥ ४३ ॥ सैकड़ों स्त्रियोंके यूथपति भगवान्, स्त्रियोंसे गान कियेजाते आप गान करते, वैजयंती मालाको धारण करते वनको शोभा देते वनमें विचरते थे ॥ ४४ ॥ फिर गोपियोंके साथ ठंढी बालूके रेतवाले यमुनाजीके तटपै आय, उसकी तरंगोंका आनंद और कुमुदकी सुगंधिवायुसे बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४५ ॥ हाथ पसरना, आलिंगन करना, हाथ, अलक, जांघ, नीवी, स्तन इनका स्पर्श, हासके वचन, नखोंके अग्रका चुभोंना, क्रीड़ा, देखना, हँसना, इनसे व्रजांगननाके कामदेवको उद्दीपन करते भगवान्ने उनको रमण करा-

उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः ॥ मालां बिभ्रद्वैजयंतीं व्यचरन्मंडयन्वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ॥ रेमे तत्तरलानंदकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ॥ क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुंदरीणामुत्तंभयन्रतिपतिं रेमयांचकार ॥ ४६ ॥ एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥ तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥ प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवांतरधीयत ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंतर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगनाः ॥ अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

या ॥ ४६ ॥ ऐसे महात्मा श्रीकृष्ण भगवान्से उनको बहुत मान मिला, तद मानवती उन गोपियोंने अपने आत्माको भूमंडलमें सबसे अधिक समझा ॥ ४७ ॥ उन गोपियोंकी कुछ स्वतंत्रता और अभिमान देख, गर्वगंजन करने और प्रसन्न होनेको भगवान् वहीं अंतर्धान हुए ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ तीसवें अध्यायमें उन्मत्तकी तरह अनियमित रीतिसे वन वनमें घूमतीं विरहसंतप्त गोपियोंने भगवान्का अन्वेषण किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–ज्यों भगवान् अंतर्धान हुए, त्यों सब व्रजांगना

योगीजनोंके समान आपकी सेवाकी आशासे घरबार छोड़, आपके चरणमूलमें पड़ीं हैं, हे पुरुषभूषण ! आपके ! सुंदर मंदहास्यसे उत्पन्न हुए तीव्र कामदेवसे तपी हुई हमको दासीपन दीजिये ॥ ३८॥ अलकोंसे आच्छादित, कपोलोंपर चंचल कुंडलसे शोभायमान अधरामृतसे भरा आपका मुखारविंद, मंदहाससहित दृष्टि, अभय देनेवाले आपके दोनों भुजदंड और लक्ष्मीजीका मुख्य प्रीतिमात्र आपका वक्षःस्थल इन सबको देख, हम आपकी दासियां होतीं हैं ॥ ३९ ॥ हे प्रिय ! आपने व्यभिचारको निंदनीय कहा है, परंतु आपके सुंदर पदवाले और दीर्घमूर्छनावाले वेणुगीतको सुन और त्रिलोकीमें सर्वोत्तम सुंदर आपके रूपका दर्शन कर, मोहित हो, कौन स्त्री अपने उत्तम पातिव्रत्यधर्मसे भ्रष्ट न होवे ? देखो, जिस गीतको सुन, स्वरूपका दर्शन कर, गौ, पक्षी

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुंडलश्रीगंडस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ॥ दत्ताभयं च भुजदंडयुगं विलोक्य वक्षःश्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥ का स्त्र्यंग ते कलपदायतमूर्छितेन संमोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ॥ त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथाऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ॥ तन्नो निधेहि करपंकजमार्तबंधो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः॥ प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥ ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुंददीधितिर्व्यरोचतैणांक इवोडुभिर्वृतः ॥ ४३॥

वृक्ष, मृग इनकेभी रोंवें खड़े हो जायं हैं. केवल आपका द्योतक शब्द सुनकरभी स्वधर्मका त्याग करना उचित है. तद् आपके अनुभवसे त्याग करनेमें तो कहनाही क्या ? ॥ ४० ॥ जैसे आदिपुरुष नारायण देवलोककी पीड़ाका हरण करते हैं, तैसे आप अवश्य व्रजकी पीड़ा और भयको दूर करो; क्योंकि आपने इसीवास्ते अवतार धारण किया है, अतएव हे दीनबंधु ! हम दासियोंके कामदेवसे तपे स्तनोंपर और मस्तकपर करकमल धरो ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्रने उनके इसतरह कायरताके वचन सुन, यदपि आप आत्माराम हैं, तथापि हँसकर दयाभावसे गोपियोंको रमण कराय ॥ ४२ ॥ प्रियके दर्शनसे प्रफुल्लित मुख, इकठी हुई उन गोपियोंसे वेष्टित हो, उदार जिनकी लीला है और कुंदके समान जिनके

इसलिये हमपर कृपा करो. हे कमलनयन! चिरकालसे धरी हुई हमारी आशा मत तोड़ो ॥ ३३ ॥ क्योंकि हमारा चित्त आजतक घरमें सुखसे लगता था. उसको आपने हरलिया और हाथ जो घरके काममें थे, उनकाभी हरण किया. बाकी रहे पांव सो वेभी आपके चरणमूलको छोड़, एक कदम पीछे नहीं हटते कहो अब हम व्रजमें कैसे जायं? वा क्या करें? ॥ ३४ ॥ हे कृष्ण! आपके हास्य, दर्शन और मधुर गीतसे पैदा हुए हमारे कामदेवकी अग्निको आपके अधरामृतरूप पिचकारीसे शांत करो. हे सखा! नहीं तो हम एकतो कामाग्नि और दूसरा विरहानल इन दोनोंसे दग्धशरीर हो, योगीजनोंके समान आपके

चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ॥ पादौ पदं न चलतस्तवपादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४ ॥ सिंचांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ॥ नोचेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥ यर्ह्यंबुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमंग स्थातुं त्वयाऽभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥ श्रीर्यत्पदांबुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ॥ यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेंऽघ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ॥ त्वत्सुंदरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ ३८ ॥

ध्यानसे आपके चरणोंके निकट पहुंचेंगीं ॥ ३५ ॥ हे कमलनयन! वनमें रहनेवाले जिनको प्रिय हैं ऐसे आपके चरणारविंद कि– जिनकी सेवा लक्ष्मीजीकोभी किसी समय मिलती है, उनका जबसे हमने स्पर्श किया और स्पर्श करनेमें जो आनंदका अनुभव किया, तबसे हम दूसरेके पास खड़ीभी नहीं रह सक्तीं, यानी हमें हमारे तुच्छ पति प्रिय नहीं लगते ॥ ३६ ॥ लक्ष्मीजी, कि–जिनकी दृष्टि अपने ऊपर पड़नेके लिये दूसरे देवता प्रयासही करते हैं, वह स्वयं आपके वक्षःस्थलमें सौतरहित स्थान पानेपरभी आपके चरणारविंदकी रज, कि–जिसमें तुलसी सौतके समान भाग लेनेवाली है और जिस रजको सर्व दासलोग सेवन करते हैं, उसकी इच्छा करतीं हैं, तो लक्ष्मीजीके समान हमनेभी वह रज पालिया है ॥ ३७ ॥ हे दुःख दूर करनहारे! हमपर कृपा करो; क्योंकि

सुन, अनुरागवाली और जिन्होंने श्रीकृष्णहीके वास्ते सब सुख छोड़ दिये हैं, ऐसी गोपियां रोनेसे उपहत हुए अपने नेत्र पोंछि, कुछ कोपके आवेशसे गद्गदकंठ हो, बोलीं कि– ॥ ३० ॥ हे विभु ! आपको ऐसे क्रूर वचन न कहने चाहिये. हे स्वच्छंद ! हम आपकी भक्त हैं और सब विषय छोंड़, आपके चरणमूलमें आयीं हैं, सो आप हमें अंगीकार करो. छोंड़ो मत. जैसे आदिपुरुष परमेश्वर मुमुक्षु पुरुषोंको अंगीकार करता है ॥ ३१ ॥ हे प्यारे ! धर्मके ज्ञाता आपने जो कहा कि– पति, संतान, संबंधियोंका अनुसरण करना यही स्त्रियोंका स्वधर्म है, तो वह सब स्वधर्म आपके सेवनहीसे हमारा सिद्ध होगा; क्योंकि सब उपदेशके वाक्य ईश्वरकी सेवाके परायण हैं और आपही सब जीवोंके आत्मा होनेसे ईश्वर, प्रिय, बंधु हो. अथवा आप जो धर्मके उपदेशक

गोप्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ॥ भक्ता भजस्व दुरवग्रह मात्यजास्मान्देवो यथाऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ॥ अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बंधुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वंति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥ तन्नः प्रसीद परमेश्वर मास्म छिंद्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविंदनेत्र ॥ ३३॥

होओ और हम जो धर्म जाननेकी इच्छा रखतीं होवें, तद धर्मके ज्ञाता आपने जो कहा वह योग्य माना जावे, परंतु आप तो धर्मके उपदेशक नहीं हो, वरन सर्वके आत्मा हो और हम धर्म जानना नहीं चाहतीं, किंतु धर्मका फलरूप आपकी सेवाहीको चाहतीं हैं, इसलिये आपका कहना योग्य नहीं. अथवा पतिआदिकी सेवा करनी यह धर्म है, ऐसे जो आपने कहा. वह आपकी सेवासे हमारे सिद्ध हो जायगा, क्योंकि पतिआदि सर्वका अधिष्ठान जो आत्मा है सो तो आपही हो. शास्त्रमें लिखा है कि– अधिष्ठानरूप आप विना दूसरा कोई पति पुत्रादिक बिलकुल हैही नहीं. तासों आपके सेवनसे इन सबका सेवन स्वयं हो जायगा ॥ ३२ ॥ हमें आत्मरूप लोककी प्राप्ति हो चुकी. अब प्रजासे हमारे क्या प्रयोजन है ? अतएव निपुण पुरुष अपने आत्मरूप सदा प्रिय आपहीमें प्रीति रखते हैं. पीड़ा देनेवाले पति पुत्रादिकमें प्रीति रखनेसे क्या प्रयोजन है ? हे परमेश्वर !

म्हारा चित्त वशीभूत हो गया है, जिससे तुम आयी हो, तो ठीकही है, क्योंकि जीवमात्र मुझसे प्रीति करते हैं ॥ २३ ॥ परंतु स्त्रियोंका परमधर्म यही है, कि– निष्कपट हो, पतिकी सेवा करना, हे कल्याणियो ! और उनके बंधुनकी सेवा करना और बालकका पालन करना ॥ २४ ॥ चाहे पति दुष्टस्वभाव, दुर्भाग्य, वृद्ध, मूर्ख, रोगी, निर्धन हो तथापि पातकहीन पतिका स्त्रियोंको त्याग करना न चाहिये. जिनकी परलोक सुधारनेकी इच्छा हो ॥ २५ ॥ क्योंकि कुलस्त्रीके जार पुरुषका संग, स्वर्गका

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥ तद्बंधूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ॥ पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ॥ जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥ २६ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविंदभाषितम् ॥ विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद्बिंबाधराणि चरणेन भुवं लिखंत्यः अस्त्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजंत्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ॥ नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्संरंभगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥

नाश करनेवाला, यशको मिटानेवाला, तुच्छ, कष्ट देनेवाला, भयकारक और सब ठौर निंदनीक है ॥ २६ ॥ जैसा भाव मुझमें श्रवण, दर्शन ध्यान, कीर्तनसे रहता है, वैसा पास रहनेसे नहीं रहता, इसलिये तुम घरको चली जाओ ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– गोपियां श्रीकृष्णचंद्रके ऐसे कड़े वचन सुन, विषादको प्राप्त हुई, संकल्प नष्ट होनेसे अपार चिंतामें पड़ीं ॥ २८ ॥ शोचके निःश्वाससे जिनके बिंबाफलसे अधर सूख,रहे हैं, ऐसे मुख नीचे कर, चरणके अँगूठेसे जमीनको लिखतीं, काजलसहित अश्रुपातसे कुचोंकी केसर धोतीं ऐसी गोपियां बहुत दुःखसे भरींहुई चुप खड़ी हो गयीं ॥ २९ ॥ प्यारे कृष्णके अप्रियकेसे वचन

गोपियोंको निकट आयीं देख, वाणीके विलासोंसे उनको मोहित करते बोले ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने कहा कि- हे बड़भागि-
नियों ! तुम भलें आयीं, मैं तुम्हारा क्या प्रिय काम करूं ? सबको संभ्रमसहित आयीं देखकर, कहा कि-
व्रजमें कुशल तो है ? तुम्हारे आनेका कारण कहो ॥ १८ ॥ गोपियोंको मंदहास्य करतीं देखकर, कहा कि-
यह रात्रि डरावनी है, इसमें भयंकर जंतु रहते हैं, इसलिये हे सुंदरीयो ! व्रजको तुम पीछी लौट जाओ , स्त्रियोंको

श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ॥ व्रजस्यानामयं कच्चिद्ब्रूताऽऽगम-
नकारणम् ॥ १८ ॥ रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ॥ प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सु-
मध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ॥ विचिन्वंति ह्यपश्यंतो माकृध्वं बंधुसा-
ध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररंजितम् ॥ यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥
तद्यात माचिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः ॥ क्रंदंति वत्सा बालाश्च तान्पाययत दुह्यत ॥ २२ ॥ अ-
थवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यंत्रिताशयाः ॥ आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयंते मयि जंतवः ॥ २३ ॥

यहां नहीं रहना चाहिये ॥ १९ ॥ तुम्हारे माता, पिता, पुत्र भाई, और पति तुम्हें न देखकर ढूंढ रहे हैं, तुम बंधुन-
को कष्ट मत करो ॥ २० ॥ यह बात सुन, गोपियां कुछ प्रणयकोपसे दूसरी ओर देखने लगीं, उन्हें देखकर, कहा कि- चंद्रमा-
की किरणोंसे रंजित कुसुमित वन तुमने देखही लिया है, जो यमुनाजीके पवनकी लीला यानी मंदगतिसे कंपायमान वृक्षोंके
पल्लवोंसे शोभायमान है ॥ २१ ॥ इसलिये तुम जल्दी व्रजमें जाओ. हे सतियो ! अपने पतियोंकी सेवा करो, बालक और बछरे
पुकार रहे हैं, उन्हें प्याओ. और गायोंका दोहन करो ॥ २२ ॥ क्रोधसे क्षुभित दृष्टि देखकर, कहा कि- अथवा मेरे स्नेहसे तु-

---

१ देखिदशा व्रजवधुनकी, बोले श्रीव्रजराज ॥ निर्जनवन निशिमें चली, यह न उचित है काज ॥ १ ॥ जाहु व्रजहिं व्रजबाल सब, बन बसि अनुचित होइ ॥ गृहजन पुरजन अन्यजन; उचित कहैं नहिं कोइ ॥ २ ॥

१ दोहा- युवतिनके पति देव है, और देव नहिं सेव ॥ सेव करो तेहि देवकी, तीनि देवकी सेव ॥ १ ॥ क्रूर कपूतहु भाग्यविन, रोगी जड़ मतिहीन ॥ दीन कुरूप छली अबल, व्यभिचारी गुनहीन ॥ २ ॥ सोरठा- पतिव्रताको धर्म, बड़ो सुलभ सब धर्ममें ॥ पतिसेवा यक कर्म, पतिआज्ञा सोई करै ॥ १ ॥ दोहा- गृहीकर्म गुरुजनटहल, पतिसेवा पतिबैन ॥ चारि कर्म तिय जो करै, लहै मुक्ति वर अैन ॥ ३ ॥

उनके सब बंधन कटगये. और गुणमयी शरीर उनका छूट गया परीक्षितने कहा कि– हे मुनि ! वे कृष्ण भगवानको केवल जार जानती थीं, ब्रह्मपनसे बिलकुल उनको भाग नहीं था, फिर विषयोंमें लंपट उन गोपियोंका संसारसे उपराम कैसे हुआ ? ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले किं– मैं पहले तुमसे कह चुका हूं कि जद शिशुपाल श्रीकृष्णसे वैर करताहुआभी सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुआ. तद जो भगवानमें प्रीति करते हैं, उनका मोक्ष तो क्यों न होना चाहिये ? ॥ १३ ॥ महाराज ! अव्यय,

राजोवाच ॥ कृष्णं विदुः परं कांतं न तु ब्रह्मतया मुने ॥ गुणप्रवाहो परमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथागतः ॥ द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ॥ अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ॥ नित्यं हरौ विदधतो यांति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ॥ योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वांतिकमायाता भगवान्व्रजयोषितः ॥ अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥

अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियंता भगवानका जो प्रागट्य है, सो मनुष्योंके कल्याणके अर्थ है. अतएव श्रीकृष्णको जीवतुल्य कहना संभवेही नहीं ॥ १४ ॥ भगवानमें किसी तरह आसक्ति करो, मोक्ष होवेहीगा; काम, क्रोध, भय, स्नेह, संबंध, भक्ति; इनमेंसे एकभी जो करते हैं, वे भगवन्मयी हो जाते हैं ॥ १५ ॥ अज योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णके विषे तुम ऐसे आश्चर्य मत करो, क्योंकि इनसे स्थावरआदिकीभी मोक्ष होवे है ॥ १६ ॥ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण उन

१ पति पुत्रादिकभी वस्तुतः परब्रह्मही हैं तोभी उनको परब्रह्म न जाननेसे उनका भजन करनेवालोंको जैसे मोक्ष नहीं होता तैसे श्रीकृष्णजी यद्यपि परब्रह्मही हैं तोभी उनको परब्रह्म न जानकर, केवल कामनासे जाननेवाली गोपियोंका मोक्ष न होना चाहिये वह किस प्रकार हुआ ?

२ जीवमें ब्रह्मत्व आवरणसहित है और श्रीकृष्णमें ब्रह्मत्व आवरणरहित है इसीसे श्रीकृष्णको ब्रह्मरूप जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं रहते केवल उनकी भक्ति करनेहीसे गोपियोंकी मुक्ति हुई.

महाराज ! वे गोपाल उन्हें परमेश्वर मान, जीमें उत्कंठा करने लगे कि– क्या परमेश्वर हमेंभी निजधाम ब्रह्मपदको प्राप्त करेंगे ? ॥ ११ ॥ सर्वके साक्षी वे भगवान् अपने आपही उनके संकल्पको जान, उनका संकल्प सिद्ध करनेके लिये कृपा कर, विचार करने लगे कि– ॥ १२ ॥ यह जीव इस संसारमें अविद्या यानी देहादि अहंबुद्धिसे इच्छा करता है, उससे कर्म और कर्मोंसे उच्च नीच यानी देवतिर्यक्आदि योनियोंमें भ्रमण करता अपनी गतिको नहीं जानता है ॥ १३ ॥ परमदयालु हरि भगवान्ने ऐसा विचार कर, गोपोंको प्रकृतिसे पर अपना ब्रह्मस्वरूप और वैकुंठलोक दिखलाया ॥ १४ ॥ सत्य, ज्ञान-

ते त्वौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ॥ अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इति स्वानां स भगवान्विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ॥ संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिंतयत् ॥ १२ ॥ जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ॥ उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥ इति संचिंत्य भगवान्महाकारुणिको हरिः ॥ दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसःपरम् ॥ १४ ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं यद्ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ यद्धि पश्यंति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५ ॥ ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ॥ ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥ नंदादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानंदनिर्वृताः ॥ कृष्णं च तत्र छंदोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥

रूप, अनंत, स्वयंप्रकाश, सनातन, ब्रह्मस्वरूप कि– जिसको ज्ञानीलोग गुणोंके अपायमें एक चित्त हो देखते हैं, उनको कृपाहीसे दिखला दिया ॥ १५ ॥ वे तो ब्रह्महृदमें पहुँचतेही मग्न हो गये, फिर भगवान् श्रीकृष्णने उनको उठाया, तद उन्होंने वैकुंठलोक देखा, जहां पहले अक्रूरजी गये थे ॥ १६ ॥ और वहां वेद जिनकी स्तुति करते हैं, ऐसे भगवानके दर्शन कर, नंदरायको आदि दे, सब गोप यह लीला देख, परमआनंदित हुए. और विस्मय करने लगे ॥ १७ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥

कारने लगे, ज्यों भगवान्‌ने यह सुना कि- पिताको वरुण ले गये, त्यों हे राजा ! अपने भक्तोंके अभयदाता भगवान् तुर्त उनके पास पहुँचे ॥ ३ ॥ वरुणने भगवान्‌को पधारे देख, बड़ी सामाके साथ पूजा की और उनके दर्शनका बड़ा उत्सव मान, बोले ॥ ४ ॥ वरुणने कहा कि- हे प्रभु ! आज मेरा शरीर सफल हुआ, आज मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ, हे भगवन् ! आपके चरणोंके सेवक मार्गका पार यानी मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ भगवान, ब्रह्ममूर्ति, परमात्मा आपको हमारा प्रणाम है. जहां ज-

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ॥ महत्या पूजयित्वाऽऽह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥ वरुण उवाच ॥ अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ॥ न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥ अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ॥ आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षंतुमर्हति ॥ ७ ॥ ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ॥ गोविंद नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ॥ आदायागात्स्वपितरं बंधूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥ नंदस्त्वतींद्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ॥ कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

गतकी सृष्टिकी कल्पना करनेवाली मायाका नामतक नहीं सुना जाता है ॥ ६ ॥ अनजान, कार्यको न समझनेवाला, मूर्ख मेरा सेवक इस आपके पिताको ले आया है. सो आप क्षमा कीजिये ॥ ७ ॥ हे कृष्ण ! आप सर्वके साक्षी हैं. सो मोपरभी कृपा करनी चाहिये, हे पितावत्सल ! हे गोविंद ! आप इस अपने पिताको ले, पधारें ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-ईश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी इस तरह प्रार्थना करी, तद बंधुनको आनंद देते भगवान् अपने पिताको ले, पीछे आये ॥ ९ ॥ नंदरायजीने अतींद्रिय लोकपालके ऐश्वर्यको देख, श्रीकृष्णमें उनकी नम्रता देख, विस्मितहो, जातिवालोंसे कहा ॥ १० ॥

वे जगतका मल हरण करनेवाला भगवद्यश गाने लगे और अप्सराननें आनंदित हो, नाच किया ॥ २४ ॥ मुख्य मुख्य देवतानने स्तुति की और अद्भुत पुष्पोंकी वर्षा करी, तीनों लोक परमआनंदको प्राप्त हुए, तिस समय गायोंने अपने झरतेहुए दूधसे पृथ्वीको तर कर दिया ॥ २५ ॥ नदियोंमें कई प्रकारके रस बहने लगे, वृक्षोंसे मकरंद चूने लगा, अन्न विना करसनपक गये और पर्वतोंमें मणियां प्रगट हो गयीं ॥ २६ ॥ हे तात ! हे कौरव ! कृष्णका अभिषेक होतेही जो जंतु स्वभावसे क्रूर थे, वेभी निर्वैर हो गये ॥ २७ ॥ ऐसे वह इंद्र गैयां और गोकुलके पति गोविंदका अभिषेक कर, आज्ञा ले देवादिकोंसे वेष्टित हो,

तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ॥ लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा-गामनयत्पयोद्रुताम् ॥ २५ ॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः ॥ अकृष्टपच्यौषधयो गिरयो बिभ्रदुन्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनंदन ॥ निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥ इति गोगोकुलपतिं गोविंदमभिषिच्य सः ॥ अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे इंद्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ स्नातुं नंदस्तु कालिंद्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद्भृत्यो वरुणस्यासुरोंऽतिकम् ॥ अविज्ञायाऽऽसुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥ चुक्रुशुस्तमपश्यंतः कृष्ण रामेति गोपकाः ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ तदंतिकं गतो राजन्स्वानामभयदो विभुः ॥ ३ ॥

स्वर्गको चला ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ आठाईसवें अध्यायमें वरुणके घरसे नंदरायजीका लाना, गोपोंको वैकुंठका दिखलाना. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—नंदरायजीने एकादशीका निराहर व्रत किया था, सो भगवान्का पूजन कर, द्वादशीको स्नान करनेके वास्ते ज्यों यमुनाजीके जलमें घुसे ॥ १ ॥ त्यों एक वरुणका सेवक दैत्य उन्हें पकड़, वरुणके पास ले गया; क्योंकि वे आसुरी वेलाको न जानकर, रातमें जलमें घुस गये थे ॥ २ ॥ नंदरायजीको न देखकर, सब गोप हे राम ! हे कृष्ण ! ऐसे पु-

हेइंद्र अब तुम जाओ तुम्हारा कल्याण हो, मेरी आज्ञामें रहो; गर्व छोड़, अपने अधिकारोंमें सावधान होकर, रहो ॥ १७ ॥ फिर उदारचित्त कामधेनुने अपने संतानोंसहित श्रीकृष्णको प्रणाम कर, गोपरूप परमेश्वरको सन्मुख कराय, बोली ॥ १८ ॥ सुरभिने कहा कि– हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगी ! हे विश्वके आत्मा ! हे विश्वके उत्पन्न करनहारे ! हे अच्युत ! लोकनाथ आपसे हम सनाथ हैं. यानी इंद्रने हमें दुखी किया, परंतु आपने हमारी रक्षा करी ॥ १९ ॥ हे जगतके स्वामी ! आप हमारे

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ॥ स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तंभवर्जितैः ॥ १७ ॥ अथाऽऽह सुरभिः कृष्णमभिवंद्य मनस्विनी ॥ स्वसंतानैरुपामंत्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वसंभव ॥ भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इंद्रो जगत्पते ॥ भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥ इंद्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ॥ अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन्भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृष्णमुपामंत्र्य सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ॥ जलैराकाशगंगाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥ २२ ॥ इंद्रः सुरर्षिभिः सार्कं नोदितो देवमातृभिः ॥ अभ्यषिंचत दाशार्हं गोविंदं इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुंबुरुनारदादयो गंधर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुरांगनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥

परमदैवत हो, सो आप गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु इन सबके कल्याणके लिये हमारे इंद्र हो जाओ ॥ २० ॥ हमको ब्रह्माजीकी आज्ञा है इसलिये हम आपका इंद्रपदवीके लिये अभिषेक करेंगे. हे विश्वात्मा ! पृथ्वीका भार उतारनेको आपने अवतार धारण किया है ॥ २१ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्‌की आज्ञा ले, सुरभिने अपने दूधसे और ऐरावत हाथीकी सूंडसे लाये आकाशगंगाके जलसे अभिषेक किया ॥ २२ ॥ इंद्रनेभी देवमातानकी प्रेरणासे देवर्षियोंके साथ भगवानका अभिषेक किया और गोविंद यह नाम ठहराया ॥ २३ ॥ वहां तंबुरु नारदआदि सब गंधर्व, सिद्ध, चारण, आये

१ अहमिन्द्रो हि देवानां त्वं गवामिंद्रतां गतः ॥ गोविंद इति लोके त्वां गास्यंति भुवि मानवाः ॥ १ ॥

ईश ! फिर मेरी ऐसी दुष्मति न होवे ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज ! यह आपका अवतार जो भूमिपर हुआ है, सो स्वयं भाररूप और दूसरे बहुत भार पैदा करनेवाले सेनापतियोंके नाशके वास्ते और हे देव ! आपके चरणसेवियोंके कल्याणके वास्ते है ॥ ९ ॥ महात्मा, सर्वांतर्यामी, वासुदेव, यादवोंके पति श्रीकृष्ण भगवान् आपको मेरा प्रणाम है ॥ १० ॥ भक्तोंकी इच्छासे जिन्होंने शरीर धारण किया है, ऐसे विशुद्ध ज्ञानमूर्ति, सर्वके बीजरूप, सब प्राणियोंके आत्मरूप, सर्वरूप, आपको मेरा प्रणाम है ॥ ११ ॥ हे भगवान् ! वर्षा और वायुसे गोकुलका नाश करनेके वास्ते अभिमानवाले मैंने यह अकृत्य किया; क्योंकि यज्ञभंग होनेपर मुझे तीव्र क्रोध आगया ॥ १२ ॥ हे

तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ॥ चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥ स्वच्छंदोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥ मयेदं भगवन्गोष्ठनाशायासारवायुभिः ॥ चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥ त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तंभो वृथोद्यमः ॥ ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ॥ मेघगंभीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया तेऽकारि मघवन्मखभंगोऽनुगृह्णता ॥ मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येंद्रश्रिया भृशम् ॥ १५ ॥ मामैश्वर्यश्रीमदांधो दंडपाणिं न पश्यति ॥ तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥

ईश ! आपने बड़ा अनुग्रह किया, जिससे मेरा उद्यम निष्फल होनेसे गर्व जाता रहा, अब ईश्वर, गुरु और आत्मरूप आपके मैं शरण प्राप्त हुआ हूं ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– ऐसे जब इंद्रने भगवान्‌की स्तुति की, तब हँसकर, भगवान्‌ने मेघकी गंभीर वाणीसे यह कहा ॥ १४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि–हे इंद्र ! हमने तुमपर अनुग्रह करनेको यज्ञका भंग किया है, तुम देवतानका राज पा, बहुत गाफिल हो गये थे, सो मेरा स्मरण दिलानेको मैंने यह किया है ॥ १५ ॥ क्योंकि ऐश्वर्य और लक्ष्मीके मदसे अंधा पुरुष दंड हाथमें लिये मुझे नहीं देखता. परंतु जिसपर मैं कृपा करना चाहता हूं, उसकी संपदा भ्रष्ट कर देता हूं ॥ १६ ॥

नाथका मद छोड़, हाथ जोड़, बोले ॥ ३ ॥ इंद्र बोले कि– आपका स्वरूप शुद्धसत्वमय, शांत, सर्वज्ञ, रजोगुण तथा तमोगुणरहित है, यह मायामय संसार जो अज्ञानहीसे बँधा हुआ है, वह आपके नहीं है ॥ ४ ॥ तद संसारके संबंधसे किये हुए और फिर अन्य देहके कारण लोभादिक जो अज्ञताके सूचक हैं, वे तो कहांसे होवें ? तथापि आप धर्मकी रक्षाके निमित्त और दुष्टोंका निग्रह करनेके वास्ते दंड धारण करते हो ॥ ५ ॥ आप जगतके पिता, गुरु, नियंता, दुरत्यय, कालमूर्ति हो, जगतके हितके

इंद्र उवाच ॥ विशुद्धसत्त्वं तव धाम शांतं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ॥ मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबंधः ॥ ४ ॥ कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिंगभावाः ॥ तथाऽपि दंडं भगवान्बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः कालउपात्तदंडः ॥ हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥ ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ॥ हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजंत्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ॥ क्षंतुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥

लिये जगतके ईश्वर हम हैं ऐसे अभिमानियोंके मदको दूर करते दंड दे, अपनी इच्छानुसार शरीर धारण कर, लीला करते हो ॥ ६ ॥ जो मो जैसे जगदीश्वरपनका अभिमान रखनेवाले मूर्ख हैं, वे भयके समयमेंभी निर्भय, आपको देख, तुर्त उस अभिमानको त्याग, गर्वरहित हो, उत्तम उत्तम मार्गका सेवन करते हैं. इसीसे आपकी जो लीला है वहभी दुष्टपुरुषोंके दंडरूप है ॥ ७ ॥ ऐश्वर्यके मदसे व्याप्त, आपके प्रभावसे अनजान, अज्ञानी और अपराधी मुझपर, हे प्रभु ! आपको क्षमा करनी चाहिये; कि–हे

१ रागिनी हिंडोल– जय वृन्दावनचन्द श्यामघन नेति नेति श्रुति गायो ॥ सुर गन्धर्व सिद्ध चारण सब लै सँग सुरपति आयो ॥ अंजुलि बांधि करत विनती बहु वरणन शीस नवायो ॥ तव गुण अगम अपार अगोचर तेज तिहूं पुर छायो ॥ ईश फणीश गिरा ब्रह्मादिक काहू पार न पायो ॥ कर उबटन तन मंजन मघवा पट भूषण पहिरायो ॥ पुनि गोविन्दनाम हरिको रखि सब शृंगार बनायो ॥ धूप दीप नैवेद्य आरती हरिपदरज शिर लायो ॥ रंगलाल करि विनय अमरपति अमरावती सिधायो ॥ १ ॥

व्रजवासी लोग ऐसे नंदरायजीके वचन सुन, विस्मय छोड़, आनंदित हो, नंदरायजीकी और कृष्णकी पूजा करने लगे, क्योंकि उन्होंने अप्रमाण तेजवाले कृष्णका प्रभाव आंखोंसे देख लिया और कानोंसे सुन लिया था ॥ २४ ॥ यज्ञभंगके कोपसे इंद्रके वृष्टि करते अशनि, ओले, कठिन, पवन इनसे जिसमें ग्वाल, पशु, स्त्रियां ये सब पीड़ित हो रहे थे, ऐसे गोकुलको अपना शरणागत देख, अपनी बड़ाई प्रकट करते जिन दयालु भगवानने गोवर्द्धन पर्वतको उठाय, बालक जैसे छत्राकको धारण करे, तैसे एक हाथसे उस पर्वतको धारण कर, गोकुलकी रक्षा करी. और इंद्रका अभिमान दूर किया. वे गैयानके इंद्र श्रीकृष्ण भग-

इति नंदवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ॥ दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ॥ मुदिता नंद-मानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः ॥ २४ ॥ देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रिआत्मशरणं दृष्ट्वाऽनुकंप्युत्स्मयन् ॥ उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलींध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठम-पान्महेंद्रमदभित्प्रीयान्न इंद्रो गवाम् ॥ २५ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे ष-ड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥ गोलोकादा-व्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥ विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ॥ पस्पर्श पादयोरेनं किरीटे-नार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥ नष्टत्रिलोकेशमद इंद्र आह कृतांजलिः ॥ ३ ॥

वान् हमपर प्रसन्न होवें ॥ २५ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ सत्ताईसवें अध्यायमें श्रीकृष्णका प्रभाव देख, सुरभि और इंद्रसे कियाहुआ अभिषेकका महोत्सव वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– गोवर्धनको धारण कर, धारासंपातसे गोकुलकी रक्षा करी, तद गोलोकसे सुरभि और स्वर्गसे इंद्र दोनों आये ॥ १ ॥ अपराधी इंद्र लज्जित हो, एकांतमें समीप आ, सूर्यसे तेजवान् किरीटसे भगवान्का चरणस्पर्श करने लगे ॥ २ ॥ इन अमिततेज श्रीकृष्ण भगवान्का प्रभाव इन्होंने देख सुन लिया था, सो त्रिलोकी-

१ यह अर्धश्लोक अधिक है. सर्वत्रको संमत नहीं है. परंतु प्राचीन पुस्तकोंमें उपलब्ध है.

२ दोहा– गिरिवर धार्‍यो लखि सुरभि, सीहत सुरेश लजाय ॥ आय श्यामचरणनि पर्‍यो, अस्तुति करत बनाय ॥ १ ॥

हे गोपो ! मेरा वचन सुनो और बालकमें जो तुम्हारे शंका है उसे छोड़ दो, इस बालकका उद्देश करके, गर्गाचार्यजीने जो मुझसे कहा है वह मैं कहता हूं ॥ १५ ॥ प्रतियुग शरीर धारण करतेहुए इस बालकके तीन वर्ण हुए; शुक्ल, रक्त, पीत, अब कृष्णपनको प्राप्त हुआ है ॥ १६ ॥ कभी यह तुम्हारा पुत्र वसुदेवजीका पुत्र हुआ, इसलिये इसे श्रीमान् वासुदेवजी ज्ञानीलोक कहते हैं ॥ १७ ॥ तेरे पुत्रके नामरूप अनेक हैं. जो गुण और कर्मोंके अनुसार हैं, उन्हें मैं जानता हूं, दूसरे लोग नहीं जानते ॥ १८ ॥ यह गोप और गोकुलका आनंदकारी बालक तुम्हारा कल्याण करेगा. तुम इससे सब दुःखोंको स-

वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवाऽऽत्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १७ ॥ बहूनि संतिनामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनंदनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ २० ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नंद कुमारोऽयं नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्याऽनुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥

हजमें तिर जाओगे ॥ १९ ॥ हे व्रजपति ! पहले जिस समय राजा न था, उस समय चोरोंसे पीड़ित साधुजनोंकी इसने रक्षा करी. जिससे वे साधुलोग वृद्धिंगत हुए. और उन्होंने चोरोंको जीत लिया ॥ २० ॥ जो महाभाग मनुष्य इसमें प्रीति करेंगे, कभी शत्रु उनका तिरस्कार नहीं कर सकेंगे, जैसे विष्णुके पक्षवालोंका दैत्य ॥ २१ ॥ हे नंदरायजी ! इस कारणसे यह तुम्हारा पुत्र गुण, लक्ष्मी, कीर्ति, प्रभावसे नारायणके बराबर है. इसलिये इसके कर्मोंमें विस्मय न करना चाहिये ॥ २२ ॥ ऐसे मुझे आज्ञा कर, गर्गाचार्यजी अपने घरको गये. तबसे बड़े बड़े काम करनेवाले श्रीकृष्णको मैं साक्षात् नारायणका अंश मानता हूं॥ २३ ॥

उसे गला घोट, मार डाला ॥ ६ ॥ कभी माताने माखनकी चोरीमें ऊखलमें बांध दिया, तद दोनों यमलार्जुन वृक्षोंके बीच होकर, जातेहुए इसने हाथोंसे उन दोनोंको गिरादिया ॥ ७ ॥ जब बालकोंसे वेष्टित हो, बलदाऊजीके साथ वनमें बछरे चरा रहे थे, उस समय मारनेकी इच्छा कर, जो बकासुर नाम दैत्य आया, उस बैरीकी चोंच दोनों हाथोंसे पकड़ चीर डाला ॥ ८ ॥ बछरोंमें बछेरेका रूप बनाय, मारनेकी इच्छासे जो दैत्य आया, उसे लीलासे मार, उससे कपित्थके वृक्ष गिराये ॥ ९ ॥ बलदेवजीके साथ धेनुकासुर और उसके बंधुनको मार, परिपक्व फलयुक्त तालवनको निर्भय कर

कचिद्वैयंगवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ॥ गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७ ॥ वने संचारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः ॥ हंतुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥ वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशंतं जिघांसया ॥ हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया ॥ ९ ॥ हत्वा रासभदैतेयं तद्बंधूंश्च बलान्वितः ॥ चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलंबं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ॥ अमोचयद्व्रजपशून्गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥ ११ ॥ आशीविषतमाहींद्रं दमित्वा विमर्द्य ह्रदात् ॥ प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥ दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन्सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ॥ नंद ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥ १३ ॥ क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ॥ ततो नो जायते शंका व्रजनाथ तवाऽऽत्मजे ॥ १४ ॥ नंद उवाच ॥ श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शंका च वोऽर्भके ॥ एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥ १५ ॥

दिया ॥ १० ॥ बलशाली बलदेवजीके हाथ क्रूर प्रलंबनाम दैत्यको मराय, दवानलसे व्रजके पशु और गोपोंको छुड़ाया ॥ ११ ॥ इसने अतिक्रूर विषवाले नागराजका दमन कर, मदहीन उस सर्पको बलात्कारसे यमुनाजीसे बाहिर निकाल, यमुनाजलको निर्विष किया ॥ १२ ॥ हे नंदरायजी ! हम सब व्रजवासियोंका अनुरागभी इस आपके पुत्रमें ऐसा है कि–जिसे छोड़ न सकें. और हममें इसकाभी, यह आपसका स्नेह स्वाभाविक कैसे है ? ॥ १३ ॥ कहां तो सात वर्षका बालक ? कहां बड़े पर्वतका उठाना ? हे व्रजनाथ ! इस कारण हमको आपके पुत्रविषे शंका होती है ॥ १४ ॥ नंदरायजीने कहा कि–

बाजने लगे, तुंबुरुआदि गंधर्वपति गाने लगे ॥ ३२ ॥ फिर हे महाराज ! प्रेमयुक्त गोपोंसे वेष्टित हो, बलरामजीसहित हरि गोकुलमें पधारे, ऐसे ऐसे मनोहर भगवानके चरित्रोंको गाती गोपियां व्रजमें आयीं ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ छब्बीसवें अध्यायमें कृष्णके अद्भुत चरित्रोंसे विस्मययुक्त गोपोंको देख, नंदरायजीने गर्गाचार्यजीके बचन सुनाय, उनका ऐश्वर्य वर्णन किया ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- वे गोप ऐसे ऐसे कृष्णचंद्रके चरित्र देख, भगवानके प्रभावको न जानकर, मनमें आश्चर्य आन, नंदरा-

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्सगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ॥ तथाविधा स्वस्य कृतानि गोपिका गायंत्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥ अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ॥ कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ॥ कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३ ॥ तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ॥ पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४ ॥ हिन्वतोऽधःशयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ॥ अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥ एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ॥ दैत्येन यस्तृणावर्तमहन्कंठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥

यजीके निकट आ, बोले कि- ॥ १ ॥ ' बालकके जो ये अतिअद्भुत चरित्र हैं, इसीसे हमको संशय होता है कि- निजस्वरूपके आयोग्य ग्रामीण पुरुषोंमें इसका जन्म लेना कैसे संभवे है ? ॥ २ ॥ यह बालक सात वर्षकी अवस्थामें लीलाहीसे एक हाथसे बड़े पर्वतको धारण किये कैसे ठाढ़ा रहा ? जैसे गजराज कमलको उठाता है ॥ ३ ॥ बचपनमें आंखें मीचकर, महाबलवाली पूतनाका स्तन उसके प्राणोंके साथ जैसे काल, शरीरकी यौवन अवस्थाको पी जाता है तैसे पी गया ॥ ४ ॥ तीन महीनोंकी अवस्थामें गाड़ेके नीचे सोतेहुए इस बालकने रुदन करके जो ऊपरकी तर्फ पांव उछाले, उनकी चोटसे गाड़ा उलटा गिर गया ॥ ५ ॥ एक वर्षका यह बालक बैठा हुआ था, उस समय तृणावर्त नाम दैत्यनें आकाश मार्गसे जो हरण किया,

इंद्रको बड़ा विस्मय हुआ प्रतिज्ञा भ्रष्ट होनेसे अभिमान जातारहा, तब अपने मेघोंको मना किया ॥ २४ ॥ जब आकाशमेंसे बादल बिखर गये, सूर्य निकल गया, भयंकर पवन और वृष्टि बंद होगयी तब देखकर, गिरिधारीने गोपोंसे कहा कि– ॥ २५ ॥ बाहिर निकलो. घबराओ मत. हे स्त्री धन और बालकोंसहित गोपो ! पवन और वृष्टि बंद होगयी है और नदियोंमेंभी जल कम रह गया है ॥ २६ ॥ तब वे स्त्री बालक और वृद्ध सब गोप गाड़ोंमें सामान भर अपने अपने गोधनको ले बाहिर

खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ॥ निशाम्योपरतं गोपान्गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ॥ उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ॥ शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८ ॥ तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरंभणादिभिः ॥ गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदा रोहिणी नंदो रामश्च बलिनांवरः ॥ कृष्णमालिंग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ३० ॥ दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगंधर्वचारणाः ॥ तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥ शंखदुंदुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ॥ जगुर्गंधर्वपतयस्तुंबुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥

निकले ॥ २७ ॥ भगवान् प्रभुनेभी उस पर्वतको सब लोगोंके देखते लीलाहीसे उसी स्थानपर पीछा रख दिया ॥ २८ ॥ उस समय प्रेमके वेगसे परिपूर्ण व्रजवासी आलिंगनआदिसे यथायोग्य मिले. गोपियोंने दही, अक्षत, जल इनसे स्नेहसहित आदरपूर्वक पूजा करी और श्रेष्ठ आशीर्वाद दिये ॥ २९ ॥ यशोदा, रोहिणी, नंदरायजी, बलवानोंमें श्रेष्ठ बलदाऊजी ये सब स्नेहसे कायर हो, श्रीकृष्णचंद्रसे मिले और उन्होंने आशिष दी ॥ ३० ॥ हे राजा ! अंतरिक्षमें देवगण, साध्य, सिद्ध, गंधर्व, चारण, इन्होंने प्रसन्न हो, स्तुति करी और पुष्पोंकी वर्षा करी ॥ ३१ ॥ महाराज ! देवतानके बजाये अंतरिक्षमें शंख और दुदुंभी

ग्रहण करलिया है और मेरेही शरणागत हैं, उसकी मेरे योगबलसे मैं रक्षा करूंगा. शरणागतकी रक्षा करना यह तो मेरा नियमही है ॥ १८ ॥ ऐसे कह, जैसे बालक छत्राक (छतरीके आकर पौधा धरतीके फूल) को उखाड़ उठाले, तैसे भगवान्‌ने लीलापूर्वक एक हाथसे गोवर्धन पर्वतको उठाय, धारण किया ॥ १९ ॥ फिर भगवान्‌ने गोपोंसे कहा कि– हे अंब ! हे तात ! हे व्रजवासियो ! अपनी गायोंके संग सुखसे इस पर्वतके गढ़ेमें प्रवेश करो ॥ २० ॥ मेरे हाथसे

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ॥ दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥ १९ ॥ अथाऽऽह भगवान्गोपान्हेऽम्ब तात व्रजौकसः ॥ यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥ २० ॥ न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ॥ वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥१२॥ तथा निर्विवि शुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ॥ यथाऽवकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२ ॥ क्षुत्तृड्व्यथां सुखा-पेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः॥ वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥ २३ ॥ कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येंद्रोऽतिविस्मितः ॥ निस्तंभो भ्रष्टसंकल्पः स्वान्मेघान्संन्यवारयत् ॥ २४ ॥

यह गिर जाय ऐसा भय तुम कभी मत करना, बस, अब तुम्हारा वायु और वर्षाका भय गया, उससे तुम्हारी मैंने रक्षा करी ॥ २१ ॥ कृष्णके कहनेपर विश्वास ला, वैसेही उस पर्वतके गढ़ेमें धन, शकट मंडल और अनुजीवियोंसहित यथा अवकाश घुस गये ॥ २२ ॥ भूख–प्यासका दुख और सुखकी अपेक्षाको छोड़, उन व्रजवासियोंने जिनकी ओर दृष्टि लगा रक्खी थी ऐसे भगवान्‌ने सात दिनतक बराबर पर्वतको धारण किया, एक पैगभी नहीं खसे ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णके योगका प्रभाव देख,

---

१ रागिनी देशकार– श्याम धर्‍यो गोवर्धन नखपर देख सखी मन लाय ॥ सातदिना घन वर्षत थाके सुरपति रह्यो लजाय ॥ सुन्दर बांये करपर लीन्हो गोवर्धनहिं उठाय ॥ कोइ मूशल कोइ लकुट लगावत सब मिल करत सहाय ॥ परममुदित सब व्रजके वासी मनमोहनगुण गाय ॥ रँगीलाल गिरि धर्‍यो धरणिपर मोहन वेणु बजाय ॥ १ ॥

कड़ाट शब्द होने लगे, तेज मरुद्गणोंकी प्रेरणासे ओले पड़ने लगे ॥ ९ ॥ बरसादकी धारा सैंतीरसी मोटी बादलोंमेंसे अखंड पड़ती थी, जिससे तमाम पृथ्वी जलमें डूब गयी, कहीं ऊंच नीच स्थल नजर नहीं पड़ा ॥ १० ॥ अतिबरसाद और तेज पवनसे पशु सब कांपने लगे, गोप गोपियां जाड़ेसे दुखी हो, श्रीकृष्णके शरण आयीं ॥ ११ ॥ बरसादसे पीड़ित वे सब अपने शिर और बच्चोंको अपने शरीरसे ढंक, कांपते कांपते भगवान्‌के चरणमूलमें प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ और बोले कि-हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे प्रभु ! हे भक्तवत्सल ! जिसके आपही नाथ हैं ऐसे इस गोकुलकी और हमारी क्रोधयुक्त इन्द्रसे रक्षा करो ॥ १३ ॥

स्थूणा स्थूला वर्षधारा मुंचत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ॥ जलौघैः प्लाव्यमानाभूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥ अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ॥ गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविंदं शरणं ययुः ॥ ११ ॥ शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ॥ वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ॥ त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥ शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ॥ निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेंद्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ॥ स्वयागे निहतेऽस्माभिरिंद्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ॥ लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥ न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ॥ मत्तोऽसतां मानभंगः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥ तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ॥ गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥

जद गोकुलको ओले गिरनेसे हन्यमान और बेहोश देखा तो, आपने जान लिया कि-यह कृत्य क्रोध कियेहुए इंद्रका है ॥ १४ ॥ हमने इसके यज्ञका विध्वंस किया, इसीलिये व्रजका नाश करनेको यह इंद्रबिना ऋतु, ऐसी उल्बण बड़े पवनके साथ पत्थरोंकी वर्षा करता है ॥ १५ ॥ यहां अपनी सामर्थ्यसे इसका उपाय करूंगा और मूर्खतासे लोकपालाभिमानियोंके लक्ष्मीजन्य मदका हरण करूंगा ॥ १६ ॥ सत्व गुणवाले देवतानको समर्थपनका अभिमान न होना चाहिये; परंतु वह हुआ, इसीसे उन दुष्ट लोगोंका मान भंग करूंगा, तभी उनपर अनुग्रह होगा ॥ १७ ॥ अतएव गोकुल कि-जिसका मैंही नाथ हूं, मैंने

पर क्रोध किया ॥ १ ॥ इंद्रने प्रलय करनेवाले मेघोंके सावर्तक नाम गणको आज्ञा दी, और 'मैंही ईश्वर हूं' ऐसे गर्विष्ठ इंद्रने क्रोध करके, यह वचन कहा कि– ॥ २ ॥ अहो! जंगली गोपोंके लक्ष्मीके मदकी महिमा, कि–जिन्होंने मनुष्य श्रीकृष्णका शरण ले, देवतोंका अपराध किया ॥ ३ ॥ जैसे ब्रह्मविद्याको त्याग, नाममात्रसे नौकासदृश, अदृढ़ क्रियासे होनेवाले यज्ञोंसे संसारसमुद्रको तिरनेकी इच्छा करे ॥ ४ ॥ तैसे वाचाल, बालक, पंडितंमन्य, अविनीत, अज्ञ, मरणधर्मा कृष्णका शरण ले, गो-

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चांतकारिणाम् ॥ इंद्रः प्राचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥ यथाऽदृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौनिभैः ॥ विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षंति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पंडितमानिनम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ एषां श्रियाऽवलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ॥ धुनुत श्रीमदस्तंभं पशून्नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥ अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ॥ मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नंदगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबंधनाः ॥ नंदगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥ विद्योतमाना विद्युद्भिस्तनंतः स्तनयित्नुभिः ॥ तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥

पोंने मेरा अप्रिय किया है ॥ ५ ॥ लक्ष्मीके मदसे मदोन्मत्त, श्रीकृष्णके बहँकायेहुए, इनके लक्ष्मीके मदसे जो गर्व है, उसे दूर करो, यानी पशुओंका नाश करो ॥ ६ ॥ मैंभी तुह्मारे पीछेही ऐरावत हाथीपर चढ़, व्रजमें आता हूं नंदरायके व्रजके नाशकी इच्छासे महापराक्रमी मरुद्गणोंको साथ ले आता हूं ॥ ७ ॥ इतनी कथा सुनाय, शुकमुनि बोले कि–ऐसे इंद्रकी आज्ञा पाय, मेघोंने मुक्तबंधन हो, बड़े वेगसे धारासंपातसे नंदरायजीके गोकुलको पीड़ित कर दिया ॥ ८ ॥ बिजलियां चमकने लगीं, कड़-

१ रागिनी देवगंधार–गरजत घन बरसत पानी ॥ सब गोपवधू अकुलानी ॥ निरखि विनोद कोप अतिकीन्हो सुरनायक अभिमानी ॥ घिरि आये अति मेघ भयंकर मारुत प्रबल उड़ानी ॥ मूशलधारसमान परत जल विधिगति जात न जानी ॥ घोर घोर चपला दुखदाई शिला अमित बरसानी ॥ व्रजमंडल बूड़न अब चाहत सकल प्रजा घबड़ानी ॥ या अवसर घनश्याम उबारो सुनि व्रज आरत वानी ॥ गिरि उठाय कर धरयो कन्हाई हरिविलाश सुखदानी ॥ १ ॥

ले, पर्वतकी प्रदक्षिणा की ॥ ३३ ॥ सुंदर आभूषण बनाये गोपियां बैल जुतेहुए गाडोंमें बैठ, ब्राह्मणोंके, आशीर्वाद लेतीं श्रीकृ-ष्णके चरित्र गातीं थीं ॥ ३४ ॥ गोपोंके प्रतीतिके वास्ते दूसरा बड़ा स्वरूप धारण कर, भगवान् श्रीकृष्णने ' मैं पर्वत हूं ' ऐसे कहते बहुत बलिदान भक्षण किया ॥ ३५ ॥ व्रजके लोगोंके साथ आप श्रीकृष्णभी ' अहो ! देखो इस पर्वतने देह धारण करके, आपनपर अनुग्रह किया ॥ ३६ ॥ यह पर्वत अपना अपमान करनेवाले वनवासियोंको यथेष्ट रूप (सर्पादिक रूप) धारण

अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः ॥ गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायंत्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रंभणं गतः ॥ शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरिबलिमादद्बृहद्वपुः ॥ ३५॥ तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रेऽऽत्मनाऽऽत्मने ॥ अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥ ए-षोऽवजानतो मर्त्यान्कामरूपी वनौकसः ॥ हंति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥ ३७ ॥ इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥ यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥ इति श्रीभा० महा० दशम० पूर्वार्धे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रस्तदाऽऽत्म-नः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥ गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नंदादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥

करके, मार डारे हैं; इसीलिये अपने और गौनके कल्याणके वास्ते इसे आपण प्रमाण करें ' ॥ ३७ ॥ ऐसे भगवानकी प्रेरणासे पर्वत, गौ, ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक यज्ञ कर, वे गोप श्रीकृष्णचंद्रके साथ व्रजमें गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ पचीसवें अध्यायमें, इंद्रने क्रोध कर, व्रजका नाश करनेको वर्षा की, तद प्रभुने गोवर्धनपर्वत धारण कर, वर्षासे गोकुलकी रक्षा करी, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्री-शुकदेवजी बोले कि–महाराज ! इन्द्रने उस अपनी पूजाको विहत देख, जिनके भगवान श्रीकृष्णही नाथ हैं उन नंदादिक गोपों-

१ कर्मही फल देनेमें समर्थ हैं ईश्वर कर्मोंके परतंत्र है पूर्वसंस्कारही कर्म करातेहैं, देवता और ईश्वर कर्मके अंगभूत हैं, मुख्य नहीं पर्वत और गोआदिही देवता हैं, और गुणही उत्पत्ति स्थिति संहारके कर्ता हैं; ये छ मत श्रीकृष्णनें केवल देवतानको क्षोभ होनेके कारण कहेहैं परंतु श्रीकृष्णको इष्ट नहीं है ऐसे समझना चाहिये क्योंकि ये वास्तविक रीतिसे शास्त्रविरुद्ध हैं.

२ दोहा–गिरिवरपूजा देखि हग, वासव भयो अबोध ॥ प्रलयकालके मेघ सब, पठये व्रज करि क्रोध ॥ १ ॥

यज्ञ प्रारंभ करो, जो इंद्रके यज्ञके निमित्त तैयारी की है, उसीसे यह यज्ञ सिद्ध करो ॥ २५ ॥ खीरसे ले दारतक सब प्रकारकी सामग्री बनाओ. हलुवा, लपसी, मालपुवा, पूरी, कचौरी करो. और दूध दही जो है सो सब ले लो ॥ २६ ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके हाथ अग्नियोंमें होमका आरंभ करो. और उनको अनेक प्रकारका अन्नदान, गोदान और दक्षिणा देओ ॥ २७ ॥ औरभी जो दीन, कुत्ते, चांडाल, पतित इत्यादि हैं उनकोभी यथायोग्य देओ, गौनको घास डारो; पर्वतको बलिदान देओ ॥ २८ ॥ अच्छे आभू-

पच्यंतां विविधाः पाकाः सूपांताः पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥ हूयंतामग्नयः सम्यक् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ अन्नं बहुविधं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाऽऽश्वचांडालपतितेभ्यो यथाऽर्हतः ॥ यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥ स्वलंकृता भुक्तवंतः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥ २९ ॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणाद्रीनां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता ॥ प्रोक्तं निशम्य नंदाद्याः साध्वगृह्णंत तद्वचः ॥ ३१ ॥ तथा च व्यदधुः सर्वं यथाऽऽह मधुसूदनः ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥ उपहृत्य बलीन्सर्वानादृता यवसं गवाम् ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥

षण पहन, भोजन कर, चंदन चरच, अच्छे नये सुथरे वस्त्र धारण कर, गो, ब्राह्मण, अग्नि, पर्वत इनकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ हे तात ! मेरा तो यह मत है, यदि आपको रुचे तो कीजिये. यह गौ, ब्राह्मण, पर्वतोंका यज्ञ मुझे अतिप्रिय हैं ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इंद्रके गर्वका विध्वंस करनेकी इच्छा करते कालमूर्ति भगवान्का यह बचन सुनें, नंद आदि-गोपोंने अच्छीतरह मंजूर किया ॥ ३१ ॥ जैसी भगवानने आज्ञा करी, वैसेही सब सामान तैयार किया. फिर स्वस्तिवाचन कराय, उस पदार्थसे पर्वत और ब्राह्मणोंके आगे ॥ ३२ ॥ सब प्रकारकी बलि अर्पण कर, आदरपूर्वक गायोंको घास डलाय, गायोंको आगे

१ दोहा-सुनि कान्हाके वचनको, व्रजजन मन हर्षाय ॥ चलत देर कीन्ही नहीं, उर आनँद न समाय ॥ १ ॥

करना, यही कर्तव्य है, यदि 'देवतानके नाम ले, पदार्थ होमना यदी कर्म है, इसलिये देवता विना कर्मसिद्धि कैसे होगी ?' ऐसे तुम्हारे मनमें हो, तोभी देवता कर्मके अंगभूत हैं, परंतु मुख्य तो किसीप्रकार नहीं. ईश्वरको कर्मफलदाता समझो तोभी उसको कर्ममें अंगत्व आवे है. वास्तविक विचारमें तो जिससे जिसकी आजीविका अनायाससे चले, वही उसका देवता है ॥ १८ ॥ जैसे छिनाल स्त्री जार पुरुषकी सेवासे कल्याण प्राप्त नहीं होती. तैसे जो मनुष्य एककी दीहुई आजीविका खाकर, दूसरेका सेवन करे, वहभी उसकी सेवासे सुख नहीं पाता ॥ १९ ॥ ब्राह्मणको चाहिये कि– वेदाध्ययनसे जीविका करे, क्षत्रिय पृथ्वीकी रक्षा करके, वैश्य वार्तासे और शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवासे ॥ २० ॥ वार्ता चार प्रकारकी है– खेती, गोरक्षा, व्यौपार, सूद लेना. उन-

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ॥ न तस्माद्विंदते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥ वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ॥ वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते ॥ वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥ रजसोत्पद्यते विश्वमन्योऽन्यं विविधं जगत् ॥ २२ ॥ रजसा चोदिता मेघा वर्षंत्यंबूनि सर्वतः ॥ प्रजास्तैरेव सिद्ध्यंति महेंद्रः किं करिष्यति ॥ २३ ॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥ तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ॥ य इंद्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥

मेंसे हमारी निरंतर गोरक्षाही जीविका है ॥ २१ ॥ अपनी आजीविका गायोंके आधीन है, परंतु गायोंकी जीविका इंद्रके आधीन है, यहभी न समझना; क्योंकि सत्व, रज, तम इन तीन गुणोंसे जगतकी स्थिति, उत्पत्ति, संहार होते हैं. राजोगुणसे यह विविध सब जगत आपसमें स्त्री पुरुषके संयोगसे पैदा होता है ॥ २२ ॥ रजोगुणकी प्रेरणासे मेघ चौतर्फ पानी बरसते हैं. उन्हींसे प्रजा जीती रहती है, इंद्र इसमें क्या करेगा ? ॥ २३ ॥ हमारे रहनेको न तो नगर, न देश, न गांव है, किंतु हमारे तौ वनही घर है, हे तात ! हमतो नित्य जंगल और पहाड़ोंमें रहते हैं, वनके रहनेवाले हैं ॥ २४ ॥ इसलिये गौ, ब्राह्मण, पर्वत इनका

श्रीभगवान बोले कि–कर्महीसे जीव पैदा होता है, और कर्महीसे लीन होता है, सुख, दुःख, भय, क्षेम, कुशल ये सब कर्महीसे होते हैं॥ १३ ॥ कई कहते हैं कि–ईश्वर, जीवोंके कियेहुए कर्मोंका फल देता है, ऐसे घड़ीभर स्वीकार करें, तोभी ईश्वर, कर्मोंके परतंत्र हुआ; क्योंकि जो जैसा कर्म करेगा, उसको वैसाही फल दे सकेगा. परंतु जो कर्म नहीं करे, उसको वह कुछ फल नहीं दे सक्ता. इसतरह स्वयंसिद्ध होता है कि–फलकी सिद्धि तो कर्महीसे है. अतएव कर्म परतंत्र रहनेसे अजागलस्तनके समान व्यर्थ ईश्वरका

श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा जायते जंतुः कर्मणैव विलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥ अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् ॥ कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४ ॥ किमिंद्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ॥ अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतंत्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ॥ स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥ देहानुच्चावचान् जंतुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥ तस्मात्संपूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ॥ अंजसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥

क्या काम है ? ॥ १४ ॥ यहां इंद्रका क्या काम है ? क्योंकि जीव अपने अपने कर्मोंके अनुसार बर्तते हैं. जीवोंके पूर्व जन्मके संस्कारजन्य कर्मोंको इंद्र बिलकुल मिटा नहीं सक्ता ॥ १५ ॥ लोग पूर्वसंस्कारके आधीन होनेसे पूर्वसंस्कारहीका अनुसरण करते हैं. देवता, दैत्य, मनुष्य, ये सब पूर्वसंस्काराधीन हैं, अतएव कर्मकी प्रवृत्ति संस्काराधीन है, तो उस प्रवृत्तिमें अंतर्यामीकीभी कुछ अपेक्षा नहीं ॥ १६ ॥ प्राणी कर्महीसे उच्च नीच शरीरोंको प्राप्त होता है और छोड़ता है, कर्मही शत्रु, मित्र, उदासीन गुरु और ईश्वर है ॥ १७ ॥ इसीलिये पूर्वसंस्काराधीन रहकर, अपने कर्मका पूजन करना और अपने कर्मका अनुष्ठान

१ रागिनी खम्माच– विधि रच्यो कर्मरेखा प्रधान याबात तात मन करि विचार ॥ यम काल वरुण धनदादि देव सब सेवत निशिदिन कर्मसार ॥ नित विचरत नभ द्विजराज दिवाकर अहिपति धारे धरणिभार ॥ जल वर्षत वासव अखिल महीतल कर्म लिखी नहिं सकत टार ॥ जगत देत कर्मफल अज रमेश हर सिरजत पालत फेरि करत संहार ॥ त्रैलोक चराचर जीव सबै नित भोगत विधिगत शीस धार ॥ श्रीकृष्णवचन वर परमज्ञान मन मुदित भये व्रजपति उदार ॥ बहु हरिविलाश भोजन बनाय सब चले हर्षि पूजन पहार ॥ १ ॥

साधुपुरुषोंके मित्र, उदासीन वा शत्रु बिलकुल नहीं होते, इसीसे उनके 'यह अपना और यह पराया' ऐसी दृष्टि नहीं होती, कदाचित् भेददृष्टि होय तोभी उदासीनको शत्रुकी तरह छोड़ देना, परंतु जो मित्र होवे वह तो अपने समानही है, तासों उसको अवश्य विचारमें साथ लेना चाहिये ॥ ५ ॥ यह मनुष्य जो काम करता है, वह जानके और विना जानेभी करता है, तहां जैसी सिद्धि जाननेवालेकी होती है, वैसी अनजानकी नहीं होती ॥ ६ ॥ अब आपने यह अनुष्ठान करना विचारा है, वह शास्त्रसे विचारा है वा लौकिक आचारसे ? यह मैं पूंछता हूं. सो आप उपपत्तिसहित कहो ॥ ७ ॥ नंदरायजीने कहा कि-भग-

अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥ उदासीनोरिवद्वर्ज्य आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमुपतिष्ठति ॥ विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ ॥ तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ॥ अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥ नंद उवाच ॥ पर्जन्यो भगवानिंद्रो मेघास्तस्याऽऽत्ममूर्तयः ॥ तेऽभिवर्षंति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ॥ द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजंते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवंति त्रिवर्गफलहेतवे ॥ पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥ य एवं विसृजेद्धर्मं पारंपर्यागतं नरः ॥ कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य नंदस्य तथाऽन्येषां व्रजौकसाम् ॥ इंद्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥

वान इंद्र मेघरूप हैं, मेघ उनकी प्रियमूर्तियां हैं, वे जीवोंको जिलानेवाला तृप्ति देनेवाला जल बरसते हैं ॥ ८ ॥ हे प्यारे ! हम और दूसरे मनुष्यभी मेघपति इंद्रका उन्हींके बसाये जलसे सिद्ध हुए पदार्थोंसे यज्ञद्वारा यजन करते हैं ॥ ९ ॥ यजन करते जो शेष रह जाता है, उससे धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धिके वास्ते अपनी आजीविकाकी कल्पना करते हैं, केवल खेतीआदि पुरुषार्थोंसे कुछ नहीं होता, क्योंकि मनुष्योंके पुरुषार्थोंका फल देनेवाला मेघही है ॥ १० ॥ ऐसे परंपरागत धर्मको जो मनुष्य काम, लोभ, भय वा द्वेषसे छोड़ देता है, वह कभी शुभ फल नहीं पाता ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-नंदरायजीका और दूसरे व्रजवासियोंका यह वचन सुन, इंद्रको क्रोधयुक्त कराने और उसका गर्व मिटानेको भगवानने पितासे कहा ॥ १२ ॥

भक्त हैं, जिनकी भक्तिसे हमारीभी हरिमें दृढ बुद्धि हुई ॥ ४९ ॥ हमारा अकुंठबुद्धि कृष्ण भगवान् जो आप तिन्हें प्रणाम है, हम जिसकी मायासे मोहितबुद्धि हो, कर्ममार्गमें भ्रमण करते हैं ॥ ५० ॥ आपकी मायासे मोहितांतःकरण और प्रभावको न जाननेवाले हम लोगोंका अपराध वे आदिपुरुष क्षमा करें ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्के अपराधी उन ब्राह्मणोंको अपने अपराधका स्मरण करनेसे राम कृष्णके दर्शनकी इच्छा हुई, परंतु कंससे डरते नहीं गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे ॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥ ५० ॥ स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ॥ अविज्ञातानुभावानां क्षंतुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥ इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥ दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे यज्ञपत्न्युद्धरणंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः॥ अपश्यन्निवसन्गोपानिंद्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपि भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नंदपुरोगमान् ॥ २ ॥ कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः ॥ किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥ एतद्ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ॥ न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥

चौवीसवें अध्यायमें, इंद्रके यज्ञको तर्कोंसे निवृत्त कर, कृष्णने गोवर्धन पर्वतके यज्ञका उत्सव करवाया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-श्रीकृष्णचंद्रने वहां बलदाऊजीके साथ देखा कि- सब ग्वाल इंद्रके यज्ञकी तैयारीका उद्यम कर रहे हैं ॥ १ ॥ भगवान् तो सबके आत्मा और सर्वज्ञ हैं, उस बातको जानते हैं, तोभी नम्र हो, नंदआदि वृद्ध वृद्ध गोपोंसे पूंछा कि- ॥ २ ॥ हे पिताजी ! आप मुझे आज्ञा करें, आपके यह क्या गड़बड़ आगयी है ? इससे क्या फल मिलता है ? किसके उद्देशसे किया जाता है ? किस अधिकारीसे और किस साधनसे यह यज्ञ सिद्ध हो सक्ता है ? ॥ ३ ॥ हे पिताजी ! मुझे सुननेकी बड़ी इच्छा है, सो यह आप कहें, यहां जो साधुपुरुष सब जगह आत्माको देखते हैं उनके कोईभी कृत्य गोप्य नहीं हैं ॥ ४ ॥

हो, स्वार्थको भूले जाते हैं ॥ ४० ॥ अहो ! जगद्गुरु कृष्ण भगवानमें स्त्रियोंकीभी भक्ति देखो, जिसने घररूप मृत्युपाशोंको काट दिया ॥ ४१ ॥ इनके न तो उपनयन (जनेऊ) संस्कार है, न गुरुके समीप रहना है, न तप है, न आत्मविचार है, न शौच है, न संध्योपासनादि शुभ अनुष्ठान हैं ॥ ४२ ॥ तोभी योगेश्वरेश्वर उत्तमश्लोक कृष्ण भगवानमें जैसी इनकी दृढ़ भक्ति है, तैसी हम संस्कारादिवालोंकीभी नहीं है ॥ ४३ ॥ अहो ! जो हम स्वार्थको भूल, घरके काममें गाफिल पड़े थे, उन हमको सत्पुरुषोंकी गति करनेवाले भगवानने बिलकुल ग्वालोंके वचनोंसे चेताया है ॥ ४४ ॥ नहीं तो मोक्षआदि सर्व काम-

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ॥ दुरंतभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४१ ॥ नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ॥ न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥ ४२ ॥ अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥ ४३ ॥ ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ॥ अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४४ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषांपतेः ॥ ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडंबनम् ॥ ४५ ॥ हित्वाऽन्यान्भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् ॥ आत्मदोषापवर्गेण तद्याञ्चा जनमोहिनी ॥ ४६ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यं मंत्रतंत्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ ४७ ॥ स एष भगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥ जातो यदुष्वित्यश्टृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४८ ॥ अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ॥ भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥ ४९ ॥

नाके पति, पूर्णकाम भगवानके आपन पामर जीवोंसे क्या प्रयोजन था ? केवल यह ईश्वरकी मनुष्यबिडंबना है ॥ ४५ ॥ देखो लक्ष्मीजी दूसरोंको छोड़, चरणस्पर्शकी आशासे जिनका अपने चंचलता गर्व आदि दोषोंका त्याग कर सेवन करती हैं; उनकी याचना केवल लोगोंको मोहित करनेवाली है ॥ ४६ ॥ देश, काल, जुदे जुदे पदार्थ, मंत्र, तंत्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता यजमान, यज्ञ, धर्म ; ये सब जिनके स्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ वे ये साक्षात् योगेश्वरेश्वर विष्णु यदुनमें प्रगट हुए ऐसा हमने सुना है, तोभी हम मूर्खोंको उनका चेता नहीं है ॥ ४८ ॥ अहो ! हम बड़े धन्य हैं, क्योंकि जिन हमारी स्त्रियां ऐसी भगवद्-

श्रीशुकदेवजी बोले कि–ऐसे कहनेपर वे मुनिपत्निया पीछी यज्ञवाटको गयीं और उन ब्राह्मणोंनेभी बिना दोषदृष्टि अपनी स्त्रियोंके साथ यज्ञ समाप्त किया ॥ ३३ ॥ वहां एक स्त्रीको पकड़, पतिने रोक रक्खी थी, वह जैसा भगवान्‌का स्वरूप सुना था, वैसाही ध्यान कर, हृदयमें भगवानका आलिंगन कर कर्मोंसे बँधे देहको छोड़, चैतन्यरूप भगवद्रूपको प्राप्त हुई ॥ ३४ ॥ भगवान् गोविंदनेभी उसी चार प्रकारके अन्नसे गोपोंको भोजन कराय, फिर आपने भोजन किया ॥ ३५ ॥ ऐसे लीलासे मनुष्यशरीर भगवानने मनुष्यलोकाका अनुकरण करते, रूप और वाणीकृत चरित्रोंसे गो और गोपियोंको रमण कराते, क्रीड़ा करी ॥ ३६ ॥ पीछेसे

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ॥ ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३३ ॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवंतं यथाश्रुतम् ॥ हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबंधनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविंदस्तेनैवान्नेन गोपकान् ॥ चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥ एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ॥ रेमे गोगोपगोपीनां रमयन्रूपवाक्कृतैः ॥ ३६ ॥ अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन्कृतागसः ॥ यद्विश्वेश्वरयोर्याञ्चामहन्मनृविडंबयोः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ॥ आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥ ३८ ॥ धिग्जन्म न स्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम् ॥ धिक्कुलं धिक्क्रिया दाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ॥ यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४० ॥

वे अपराधी ब्राह्मण पीछा स्मरण कर, पछतावा करने लगे. हाय ! हम कैसे अपराधी हैं? जो जगदीश्वर मनुष्यकी विडंबना कर रहे हैं, उनकी याचनाको हमने मान नहीं दिया ॥ ३७ ॥ स्त्रियोंकी भगवान् कृष्णमें अलौकिक भक्ति देख और आपको उससे रीता देख, संतप्त हो, धिक्कार देने लगे ॥ ३८ ॥ शौक्र, सावित्र और दैक्ष्य त्रिगुण हमारे जन्मको धिक्कार है, हमारी विद्याको धिक्कार है, व्रतको धिक्कार है, बहुत ज्ञातापनको धिक्कार है, कुलको धिक्कार है, कर्मकुशलताको धिक्कार है, जो हम भगवानसे विमुख हैं ॥ ३९ ॥ अहो ! भगवानकी माया योगियोंकोभी मोह करनेवाली है. हे ब्राह्मणो ! जो हम मनुष्योंके गुरु

ये सब जिसके संबंधसे प्रिय लगते हैं, उससे बढ़कर, दूसरा कौन प्यारा है ? ॥ २७ ॥ इसलिये अब तुम यज्ञवाट जाओ, तुम कृतार्थ हुई, तुम्हारे पति गृहस्थी हैं, सो तुम जाओगी, तब तुम्हारे साथ वे ब्राह्मण अपना यज्ञ पूर्ण करेंगे ॥ २८ ॥ यों सुन, यज्ञपत्नियोंने कहा कि–हे विभु ! आपको ऐसा क्रूर वचन नहीं कहना चाहिये, आप अपनी ' मेरा भक्त नष्ट नहीं होता ' इस प्रतिज्ञाको सत्य करो, हमतो चरणसे फेंकीहुई अर्थात् तिरस्कारसेभी दीहुई तुलसीकी मालाके सदृश धारण करने यानी दासी होनेको सब बंधुनको छोड़, आपके चरणमूलमें प्राप्त हुई हैं॥ २९॥ जो हम घरको जायं तो, आगे न तो हमारे पति हमें स्वीकार

तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ॥ स्वसत्रं पारयिष्यंति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ॥ प्राप्ता वयं तुलसिदामपदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलंघ्य समस्तबंधून् ॥ २९ ॥ गृह्णंति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबंधुसुहृदः कुत एव चान्ये ॥ तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिरिरंदम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः ॥ लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते॥ ३१ ॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यंगसंगो नृणामिह ॥ तन्मनो मयि युंजाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥

करेंगे, न माता पिता, न पुत्र, न भाई, न बंधु, न सुहृद, भला फिर दूसरे कहांसे स्वीकार करेंगे ? इसलिये हे शत्रुदमन ! आपके चरणाग्रमें पातितदेह जो हम हैं, उनकी दूसरी गति यानी स्वर्गादिकभी न होनी चाहिये, सो हमें तो दास्यभावही मिले, यह कृपा आप हमपै करें ॥ ३० ॥ श्रीभगवानने कहा कि– मेरी आज्ञा है, इसलिये तुम्हारे पति तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे, न पिता, न भाई, न पुत्र आदि और न लोग; देवतानको प्रत्यक्ष दिखलाकर, कहा कि–देवताभी मेरी आज्ञा मंजूर करते हैं ॥ ३१ ॥ तबभी उन्होंने कहा कि–हम आपको नहीं छोड़ सक्तीं, तद भगवानूने कहा कि–यहां मनुष्योंका अंगसंग है वह प्रीति वा अनुरागके लिये नहीं है, इसलिये तुम मोमें मन लगाओ, जल्दी मोको प्राप्त होओगी ॥ ३२ ॥

और पुत्रोंने निषेधभी किया, पर वे काहेको रुकें, उनका तो दीर्घकालसे उत्तमश्लोक भगवानमें अंतःकरण लग रहा था ॥ २० ॥ उन्होंने अशोकवृक्षके नव पल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके तीरपर उपवनमें विचरते गोपोंसे वेष्टित बलदेवजीसहित श्रीकृष्णको देखा ॥ २१ ॥ श्यामवर्ण, पीतांबर पहरे, वनमाला, मोर पिच्छ, धातु, मूंगा इनसे नटके सदृश वेष बनाये, सखाके गलेमें एक हाथ डाले, दूसरे हाथसे कमलको लीलासे भ्रमण कराते, कानोंमें कमल लगाये, कपोलोंपर अलकें बिथुराये, मुखकमलसे मंद मंद हँसते ॥ २२ ॥ महाराज! कानको कृतार्थ करनहारे, अतिप्रिय, गुण अनेक बेर सुननेसे अपने मन

यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमंडिते ॥ विचरंतं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ॥ विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥ प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरंध्रैः ॥ अंतः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाऽभिमतयो विजहुर्नरेंद्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ॥ विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ॥ यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥ नन्वद्धा मयि कुर्वंति कुशलाः स्वार्थदर्शिनः ॥ अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥ प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः ॥ यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः कोन्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥

जिनमें लग रहे थे उन भगवानको नेत्ररूप द्वारोंसे अपने हृदयमें बिठलाय, चिरकालतक आलिंगन कर, उन स्त्रियोंने तापका त्याग किया; जैसे अहंवृत्तियां सुषुप्तिके साक्षी प्राज्ञको प्राप्त हो, सब ताप छोड़ देतीं हैं ॥ २३ ॥ सब आस छोड़, अपने दर्शनकी इच्छासे आयीं उन स्त्रियोंको देख, सबको बुद्धिके साक्षी भगवान् हँसते मुख बोले कि- ॥ २४ ॥ हे महाभाग स्त्रियो! भले आयीं, आओ, बैठो. हमें कुछ आज्ञा करो हम क्या करें? जो तुम हमारे दर्शनकी इच्छासे आयी हो सो, यह तुमको उचित है ॥ २५ ॥ क्योंकि स्वार्थके समझनेवाले विचक्षण पुरुष आत्मा व प्रियरूप मुझमें फलाभिसंधानरहित निरंतर यथार्थ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥ २६ ॥ क्योंकि आत्मा सबसे प्रिय है. देखो! प्राण, बुद्धि, मन, ज्ञाति, शरीर, स्त्री, पुत्र, धन वगैरः

ष्णके पास आ, वैसेही कहा ॥ १२ ॥ भगवान् जगदीश्वर यह बात सुन, हँसे, कार्यार्थी बेउम्मेद नहीं होते और याचकका तिरस्कार होताही है, इस लौकिक मर्यादाको दिखलाते भगवानने फिर गोपोंसे कहा ॥ १३ ॥ कि-तुम बलदाऊजीके साथ मेरे आनेकी खबर उनकी स्त्रियोंको दो, वे तुमको मनमांगा अन्न देंगीं, क्योंकि उनकी बुद्धि मोमें लग रही है और मोसों बड़ो स्नेह राखे हैं ॥ १४ ॥ तद पत्नीशालामें जा, देखें तो ब्राह्मणोंकी स्त्रियां बन ठन बैठी हैं, उनके निकट जाय, गोपोंने नमस्कार कर, नम्रताके साथ यह वचन कहा ॥ १५ ॥ कि-हे विप्रपत्नियो ! हम आपको प्रणाम करते हैं, हमारे वचन सुनिये. श्रीकृ-

तदुपाकर्ण्य भगवान्प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ व्याजहार पुनर्गोपान्दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥ मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ॥ दास्यंति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथ पत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृताः ॥ नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ॥ इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन्सगोपालैः सरामो दूरमागतः ॥ बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ श्रुत्वाच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ॥ अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥ निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बंधुभिः सुतैः ॥ भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥

ष्णचंद्र यहां निकट आ पहुंचे हैं, उन्होंने हमें यहां भेजे हैं ॥ १६ ॥ वे ग्वाल और बलरामजीके साथ गैयां चराते दूर चले आये हैं, इसलिये अनुचरोंसहित भोजन करना चाहते हैं, सो उन्हें आप अन्न दें ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णचंद्र निकट पधारे, यह बात सुनतेही उनको बड़ा संभ्रम हुआ, क्योंकि सदा उनके दर्शनकी उत्कंठा लग रही थी, कारण भगवानकी कथासे उनका मन पहलेहीसे हरण हो गया था ॥ १८ ॥ तुर्त भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, यह चार प्रकारका बहुत स्वादु और सौरभवाला अन्न पात्रोंमें ले, सब स्त्रियां प्यारेके सन्मुख चलीं, जैसे नदियां समुद्रमें जातीं हैं ॥ १९ ॥ यदपि उनके पति, भाई, बंधु,

१ सुगंधवाला.

जा, हाथ जोड़, पृथ्वीपर दंडवत् प्रणाम कर, ब्राह्मणोंसे उसीप्रकार याचना करी ॥ ५ ॥ कि–हे ब्राह्मणो ! सुनो ! आपका कल्याण हो, हम जातिके गोप हैं और बलरामजीके भेजेहुए श्रीकृष्णकी आज्ञासे यहां आये हैं, सो आप जानो ॥ ६ ॥ यहां समीपहीमें रामकृष्ण दोनों गैयां चराते चले आये हैं. उन्हें भोजनकी इच्छा होगयी है, इसलिये वे आपसे भात चाहते हैं, सो जो आपकी श्रद्धा होवे तो हे धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! उन याचना करनेवाले भाइयोंको भात देओ ॥ ७ ॥ हे उत्तमब्राह्मणो ! कदाचित् आप कहेंगे कि–हम दीक्षित हैं, हमारा अन्न नहीं खाना चाहिये, तो वहां यह निर्णय है कि–जबसे दीक्षा प्रारंभ हो,

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्याऽऽदेशकारिणः ॥ प्राप्तान् जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयंतावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ॥ तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥ दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ॥ अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥ इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वंतोऽपि न शुश्रुवुः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यं मंत्रतंत्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ १० ॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवंतमधोक्षजम् ॥ मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥ ११ ॥ न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परंतप ॥ गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥ १२ ॥

तबसे अग्नीषोम देवका पशु मरे तिसके पहले दीक्षितका अन्न खानेका दोष है, पर पशु मरनेके अनंतर नहीं, तैसे सौत्रामणि नामक यज्ञविना दीक्षितका अन्न खानेमें कोई दोष नहीं ॥ ८ ॥ इस भगवानकी याचनाको उन्होंने सुनी अनसुनी की, क्योंकि वे क्षुद्र जो स्वर्गादिक फल तिसमें आशावाले, क्लेशकारी कर्मोंके करनहारे, अतएव मूर्ख और हम ज्ञानमान हैं ऐसा मान रखते थे ॥ ९ ॥ देखो ! देश, काल, जुदे जुदे पुरोडाशादिक द्रव्य, मंत्र, प्रयोग, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ, धर्म ये सब जिसका स्वरूप हैं ॥ १० ॥ उस साक्षात् परब्रह्म इंद्रियागोचर भगवान्को उन मूर्ख घमंडियोंने बिलकुल नहीं पहिचाना; क्योंकि वे उनको मनुष्यही जानते थे ॥ ११ ॥ हे परंतप ! जब उन्होंने न तो हां की और न ना की, तब गोपोंने निराश हो, रामकृ-

समूहोंसे जिनकी टहनिया नम्र हो रही हैं उन वृक्षोंके बीच हो, यमुनापर गये ॥ ३६ ॥ महाराज ! वहां मधुर शीतल, निर्मल जल गैयानको पिलाय, फिर स्वयं गोपोंनेभी इच्छानुसार मधुर जल पिया ॥ ३७ ॥ हे राजा ! यमुनाजीके उपवनमें यथेष्ट गैयानको चराते गोप क्षुधासे आतुर हो, रामकृष्णके पास आ, यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ तेईसवें अध्यायमें, गोपोंद्वारा

तत्र गाः पाययित्वाऽपः सुमृष्टाः शीतलाःशिवाः॥ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७॥ तस्या उपवने कामं चारयंतः पशून्नृप ॥ कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२ ॥ ॥ गोपा ऊचुः ॥ राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छांतिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान्देवकीसुतः ॥ भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ सत्रमांगिरसंनाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया॥ ३॥ तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः॥ कीर्तयंतो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम्॥ ४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचंत ते तथा॥ कृतांजलिपुटा विप्रान्दंडवत्पतिता भुवि ॥ ५ ॥

अन्न मांगनेके मिससे ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंपर कृपाकर, उनके पतियोंको कृष्णचंद्रने पश्चात्ताप करवाया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ गोपोंने कहा कि–हे राम ! राम ! हे महावीर्य ! हे कृष्ण ! हे दुष्टोंको दंड देनेवाले ! यह भूख हमें बाधा करती है, आपको इसे शांति करनी चाहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– ऐसे जद गोपोंने भगवानसे प्रार्थना करी, तद भगवान् देवकीपुत्रने अपनी भक्त ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंपर प्रसन्न होनेकी इच्छासे यह कहा कि– ॥ २ ॥ तुम वहां यज्ञमें जाओ, जहां वेदके ज्ञाता ब्राह्मणलोग स्वर्गकी इच्छासे आंगिरस नाम यज्ञ करते हैं ॥ ३ ॥ हे गोपो ! वहां जाकर, मेरा और बड़े भाई बलरामजीका नाम ले कहना कि–उन दोनों भाइयोंने हमें भेजा है, फिर उनसे भात मांग लेना ॥ ४ ॥ जद भगवानने ऐसे कहा तो, उन्होंने वहां

साथ रासक्रीड़ा करोगीं, जिसलिये तुमने देवीकी पूजा की है ॥ २७ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि- जिनका मनोरथ परिपूर्ण हो गया है, ऐसी कुमारिका भगवानकी यह आज्ञा सुन, उनके चरणारविंदका ध्यान करतीं, बड़े कष्टसे व्रजमें गयीं ॥ २८ ॥ फिर भगवान देवकीपुत्र गोपोंको संग ले, गैयां चराते बलरामजीसहित वृंदावनसे दूर निकल गये ॥ २९ ॥ ग्रीष्मके सूर्यके घाममें अपनी छायासे छत्रसे बनेहुए वृक्षोंको देख, व्रजावासिनसे कहा कि- ॥ ३० ॥ हे स्तोक ! हे कृष्ण ! हे अंशु ! हे श्रीदामा ! हे सुबल ! हे अर्जुन ! हे विशाल ! हे ऋषभ ! हे तेजस्वी ! हे देवप्रस्थ ! हे वरूथप ! ॥ ३१ ॥ इन

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ॥ ध्यायंत्यस्तत्पदांभोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥ २८ ॥ अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः ॥ वृंदावनाद्गतो दूरं चारयन्गाः सहाग्रजः ॥ २९ ॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ॥ आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण हे अंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन ॥ विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥ पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकांतजीवितान् ॥ वातवर्षातपहिमान्सहंतो वारयंति नः ॥ ३२ ॥ अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ॥ सुजनस्येव येषां वै विमुखा यांति नार्थिनः ॥ ३३ ॥ पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ॥ गंधनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान्वितन्वते ॥ ३४ ॥ एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ॥ प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ॥ ३५ ॥ इति प्रवालस्तवकफलपुष्पदलोत्करैः ॥ तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥ ३६ ॥

बड़भागियोंको देखो कि- जिनका जीना केवल दूसरोंके भलेके वास्ते है, देखो ये आप बरसा, पवन और जाड़ा सहते हैं और हमारे सब दूर करते हैं ॥ ३२ ॥ अहो ! इनका जन्म बहुत अच्छा है, जिनसे सब प्राणियोंकी जीविका बनती है, जिनके यहांसे कभी याचक विमुख होकर, नहीं जाते, जैसे सुजनके द्वारसे ॥ ३३ ॥ जो पत्र, पुष्प, फल, छाया, मूल, बकल, काठ, गंध, गोंद, भस्म, अस्थिकोंपल, आदिसे सबकी इच्छा पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ देहधारियोंमें यहां उन्हीं देहधारियोंका जन्म सफल है कि-जो प्राण, धन, बुद्धि और वाणीसे सदा सबका भला करें ॥ ३५ ॥ कोंपल, गुच्छक, फल, पुष्प और पत्तोंके

उस व्रतकी परिपूर्णताकी इच्छासे सब कर्मोंके फलरूप भगवानको प्रणाम किया; क्योंकि वेही पापोंके शोधक हैं ॥ २० ॥ उनको इस तरह प्रणत देख, भगवान् देवकीपुत्रने प्रसन्न हो, करुणा कर, उनको वस्त्र दे दिये ॥ २१ ॥ भगवानने गोपियोंको छला, उनकी लाज ली, हँसी करी, खिलोनेके सदृश बनायीं और वस्त्र लेलिये, तौभी उन्होंने कृष्णपै दोषदृष्टि न करी, क्योंकि वे प्यारेके संगसे आनंदमें मग्न होगयीं थीं ॥ २२ ॥ प्यारेके संगमसे ऐसी बश हो गयीं और उनका चित्त ऐसा हरण होगया कि-वस्त्र पहने पीछेभी वहासे चल न सकीं, बरन उनकी ओर लज्जासहित देखतीं रहीं ॥ २३ ॥ भगवान् दामोदरने उनके व्रतका

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिता क्रीडनवच्च कारिताः ॥ वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन्प्रियसंगनिर्वृताः ॥ २२ ॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः ॥ गृहीतचित्ता नोचेलुस्तास्मिन्लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥ तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया ॥ धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥ संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ॥ मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ॥ भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥ २६ ॥ यातावला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ॥ यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥ २७ ॥

तास्तथाऽवनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः ॥ वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥

संकल्प जान लिया कि- इन्होंने चरणस्पर्शकी इच्छासे व्रत किया है, इसलिये उन स्त्रियोंसे कहा कि- ॥ २४ ॥ हे साधुस्त्रियो ! मैंने तुम्हारा संकल्प जान लिया है, यदपि लाजके मारे तुम नहीं कहती, जिसलिये तुमने मेरा पूजन करा है, वह तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होने योग्य है; क्योंकि उसमें मेरी संमति है ॥ २५ ॥ जिन्होंने मुझमें चित्त लगाया है, उनकी इच्छा पूर्ण होनेपर-भी दूसरी इच्छाको उत्पन्न नहीं करती, प्रत्युत शांत करती है, जैसे भूंजाहुआ वा ओटायाहुआ बीज फिर दूसरे बीजको पैदा नहीं करता ॥ २६ ॥ हे अबलाओ ! तुम व्रजमें जाओ, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा. हे सतियो ! आगामी रात्रियोंमें तुम मेरे

१ दोहा- शरदरैनि शुभ लगन है, करौं रास तुमसंग ॥ श्रीमुखवचनप्रमाण सुनि, कीन्हो सबनि उमंग ॥ १ ॥

रहीं हैं ॥ १४ ॥ प्रौढा बोलीं कि– हे श्याम ! सुंदर ! हम तेरी दासियां हैं, जो तू कहे वो हम करें, हे धर्मज्ञ ! यातो हमें हमारे वस्त्र दे दे, नहीं तो राजासे जाकर, पुकारेंगीं ॥ १५ ॥ यह बात सुन, भगवानने कहा कि– यदि तुम मेरी दासियां हो और मेरा कहना मंजूर करती हो, तो हे मंद हास्यवाली स्त्रियो ! यहां आकर, अपने अपने वस्त्र ले जाओ ॥ १६ ॥ तद जा-

श्यामसुंदर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ नोचेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच॥भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ॥ अत्राऽऽगत्य स्ववासांसि प्रतीच्छंतु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततो जलाशयात्सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ॥ पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥ भगवानाहता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ॥ स्कंधे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ ॥ यूयं विवस्त्रा यदपोधृतव्रता व्यगाहतैतत्तदुदेव हेलनम् ॥ बद्धांजलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहितव्रजाबला मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ॥ तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥ २० ॥

ड़ेके मारे कापतीं मुरझाई हुई सब कुमारिका अपने दोनों हाथोंसे योनिको ढक, जलसे बाहर निकलीं ॥ १७ ॥ उनका शुद्ध भाव देख, भगवान प्रसन्न हुए और उनको आहत देख, उनके वस्त्र कंधेपर धर, मंद मुसक्याकर प्रीतिपूर्वक बोले कि–॥ १८ ॥ तुमने व्रत धारण करके, जो विना वस्त्र स्नान किया, यह देवताका अपराध हुआ, इस पापकी निवृत्तिके वास्ते तुम शिरपर हाथ जोड़, नीचीहो, प्रणाम करो. फिर वस्त्र लेओ ॥ १९ ॥ व्रजांगनानने भगवानका यह वचन सुन, नग्नस्नान करनेसे व्रतभंग समझ,

१ ईषत् अक्षतयोनी ऐसा श्रीधरस्वामीने लिखा है. और चक्रवर्तीटीकाकारने लिखा है कि–कुलवधू स्त्रियोंका लज्जाका त्याग मरणतुल्य होता है, इसीसे आहत यानी मृततुल्य थीं. और बालप्रबोधनीटीकाकारने लिखा है कि– “ हन् हिंसागत्योः ’. हन् यह धातु हिंसा और गत्यर्थमें है तो इधर गत्यर्थ लेना तो यह अर्थ होगा कि–आहत यानी आई हुई.

२ अप्स्वग्निर्देवताश्चानुतिष्ठन्ति अतो नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यान्न ष्ठीवेन्न विवसनः स्नायात् गुह्यो वा एषो अग्निरिति श्रुतेः ॥ अर्थ– क्योंकि ऐसी श्रुति है कि– जलोंमें अग्नि और देवता वसते हैं और यह अग्नि जो कि–जलोंमें रहते हैं वे गुप्त हैं. इसीसे जलोंमें मूतना नहीं, हगना नहीं, थूंकना नहीं तथा नग्नस्नानभी करना नहीं ॥

योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् कृष्ण इस बातको समझ, मित्रोंसे वेष्टित हो, उनकी कार्यसिद्धिके लिये वहां पधारे ॥ ८ ॥ तुर्त उनके वस्त्र ले, कदंबपर चढ़, बालक और आप दोनों हँसने लगे. और उनसे हास्यका वचन कहने लगे कि- ॥ ९ ॥ हे अबलाओ ! यहां आकर, अपनी इच्छानुसार अपने अपने वस्त्र ले लो ! मैं सच कहता हूं. कोई ठट्ठेकी बात नहीं हैं, क्योंकि तुम व्रत करनेसे कृश होगयी हो, ॥ १० ॥ मैंने आजतक कभी झूंठ नहीं कहा है. इस बातको ये सब जानते हैं. हे सुंदरियो ! चाहे एक एक आकर, ले

भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ ८ ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ॥ हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ ९ ॥ अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् ॥ सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ १० ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥ एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥ ११ ॥ तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥ व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ १२ ॥ एवं ब्रुवति गोविंदे नर्मणाक्षिप्तचेतसः ॥ आकंठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥ माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नंदगोपसुतं प्रियम् ॥ जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४ ॥

जाओ, या साथही ले जाओ ॥ ११ ॥ यों कह, श्रीशुकदेवजी बोले कि- श्रीकृष्णचंद्रकी यह ठट्ठेकी बात देख, प्रेममें मग्न गोपियां आपसमें देख हँस पड़ीं. लज्जाके मारे बाहिर नहीं निकलीं ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके ऐसे बचन कहनेपर उनका चित्त हँसीसे मोहित होगया, पर गलेतक ठंढे जलमें खड़ीं खड़ीं कांपने लगीं. तद मुग्धा बोलीं ॥ १३ ॥ कि- हे प्यारे ! आप अन्याय न करें. हम प्यारे व्रजमें सराहने योग्य नंद गोपके पुत्र आपको जानतीं हैं, हमें वस्त्र देदीजिये; क्योंकि जाड़ेके मारे, हम कांप

२ रागिनी टोड़ी- हमारे अम्बर देहु मुरारी ॥ ले सब चीर कदम चढ़ बैठे हम जलमांझ उघारी ॥ तटपर विना वसन क्यों आवें लाज लगति है भारी ॥ चोली हार तुमहिंको दीन्हे चीर हमहिं देउ डारी ॥ सुन्दर श्याम कमलदललोचन हम हैं दासि तुम्हारी ॥ जो कछु कहो सोई हम करि हैं चरणकमलपर वारी ॥ अंग अंग कंपत मनमोहन विनती सुनहु हमारी ॥ सूरश्याम कछु छोह करो जू शीतगई तनु भारी ॥ १ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥

बाईसवें अध्यामें, वस्त्रहरणकी लीलासे कुमारिकानको वरदान दे, भगवान् यज्ञशालाके पास पधारे, यह कथा होगी ॥ १ ॥
श्रीशुकदेवजी बोले कि– हेमंत ऋतुमें पहले महीने यानी अगहनमें नंदरायजीके व्रजकी कुमारिकाओंने हविष्यान्न खाकर, जगदंबाके पूजनका व्रत धारण किया ॥ १ ॥ महाराज ! यमुनाजलमें न्हाय, अरुणोदय होते, जलके निकट बालूकी देवीकी मूर्ति बनाय, सुगंधि गंध, पुष्प, भेंट, धूप, दीप, कोंपल, फल, अक्षत और ऊंच नीच सामग्रीसे पूजा किया करतीं ॥ २ ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ हेमंते प्रथमे मासि नंदव्रजकुमारिकाः ॥ चेरुर्हविष्यं भुंजानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्यांऽभसि कालिंद्या जलांते चोदितेऽरुणे ॥ कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥ २ ॥ गंधैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतंडुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नंदगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ इति मंत्रं जपंत्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ ४ ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥ भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नंदसुतः पतिः ॥ ५ ॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ॥ कृष्णमुच्चैर्जगुर्यांत्यः कालिंद्यां स्नातुमन्वहम् ॥ ६ ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निःक्षिप्य पूर्ववत् ॥ वासांसि कृष्णं गायंत्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ ७ ॥

और प्रार्थना करतीं कि– हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि ! हे अधीश्वरि ! हे देवि ! हमें नंदरायके पुत्र पति दे, हम प्रणाम करतीं हैं. वे कुमारिकायें इस मंत्रका जप किया करतीं और पूजन करतीं ॥ ४ ॥ ऐसे कृष्णमें चित्तवाली कुमारिकानने एक महीनेकेतक व्रत किया और देवीका पूजन किया हमको नंदजीका पुत्र वर मिले ॥ ५ ॥ सबेरे उठ एक दूसरीके नामसे बुलाय, परस्पर हाथ पकड़ ऊंचे स्वरसे कृष्णका गान करतीं प्रत्यह यमुनाजीको स्नानके वास्ते जाया करतीं ॥ ६ ॥ एकदिन पूर्ववत् नदीके तीरपर आ, वस्त्र उतार, श्रीकृष्णका गान करतीं जलमें आनंदपूर्वक खेलने लगीं ॥ ७ ॥

१ दोहा– नन्दनँदन पतिहोनहित, गोपिन कीन्ह विचार ॥ सूरसुताअसनान करि, मार्गशीर्ष आचार ॥ १ ॥ तुलसी-पूजहिं शिशु शिव, पूजहिं विधिवत नेम ॥ बहु अस्तुति करि पांवहीं, पतिहित दृढ़ करि प्रेम ॥ २ ॥

धूपमें बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ व्रजके पशुनको चराते, वेणुनाद करते, अपने मित्र भगवान्‌का दर्शन कर, मेघ उन-
पर प्रेमसे वृद्धिंगत हो, पुष्पसमान बूंदें बरसाता अपने शरीरसे छत्रछाया करता है ॥ १६ ॥ प्रथम प्रियानके चर्चित केसर कि-
जो पीछे रतिसमयमें भगवान्‌के चरणारविंदमें लगकर, उसकी लालीसे अधिक शोभा पाता है वह भगवान्‌के वनमें विचरनेके
कारण घासमें लग जाय है, उसे देख, कामातुर भीलनियां उस केसरको घासपरसे ले ले, अपने मुख और स्तनोंपर चुपर चुपर,
अपने कामज्वरको शांत करतीं हैं. अतएव ये धन्य हैं. हम जैसीको तो ऐसाभी कामशांतिका उपाय प्राप्त नहीं होता ॥ १७ ॥ हे

दृष्ट्वाऽतपे व्रजपशून्सहरामगोपैः संचारयंतमनुवेणुमुदीरयंतम् ॥ प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात्स्ववपुषांऽबुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥ पूर्णाः पुलिंद्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन दयिता-
स्तनमंडितेन ॥ तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिंपंत्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥ हं-
तायमद्रिरबलाहरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ॥ मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीय-
सुयवसकंदरकंदमूलैः ॥ १८ ॥ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥
अस्पंदनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥ एवंविधा भगवतो
या वृंदावनचारिणः ॥ वर्णयंत्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते
महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ ॥

सखियो ! यह गोवर्द्धनपर्वत अवश्य भगवान्‌को कोई बड़ा भक्त मालूम होता है, क्योंकि इसके रामकृष्णको चरणस्पर्श होतेही
तृणादिक बाहिर निकल आ जानेके मिससे रोम खड़े होते मालूम होते हैं और जल, अच्छीघास गुफा, कंद मूल इनसे गैयां और गो
पनके संग इन दोनों भाइयोंको मान देता है ॥ १८ ॥ गैयानके नेते शिरपर बांधे, पाश कंधोंपर डारे, गोपपन प्रगट करते, ये दोनों
भाई जब ग्वालनके संग बनमें गैया चराते हैं, तिस समय उनका मधुर पदवाला वेणुनाद सुन, जीवोंमें जो जंगम हैं वे स्थावरकी तरह
स्थिर हो जायं हैं और वृक्षआदि जो स्थावर हैं उनमें रोमांचआदि जंगमका धर्म दीख पड़े है, यह बड़ी आश्चर्यकी बात है ॥ १९ ॥ इतनी
कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि– ऐसे वृंदावनमें विचरते भगवान्‌की क्रीड़ानको आपसमें वर्णन करतीं गोपियां भगवन्मय हुईं ॥ २० ॥

करतीं हैं और वहभी अपने पति कृष्णमृगोंके समक्षमें करतीं हैं. हमारे पति तो ऐसे क्षुद्र हैं कि-आपन उनके समक्ष ऐसे करें तो कभी सहन न करें ॥ ११ ॥ दूसरी बोली कि-हे गोपियो ! एक आश्चर्यकी बात तो सुनो, स्त्रियोंके उत्सवकारक रूप और वेषको धारण किये भगवान्के दर्शन कर, उनकी बजायी बंसीका विचित्र गीत सुन, विमानोंमें बैठीं जातीं, देवांगना यद्यपि अपने भर्तारोंके अंकमें बैठी हैं तोभी कामदेवसे व्याकुल हो ऐसी मोहित होगयी हैं कि-उनके केशपाशमेंसे पुष्प पड़े जाय हैं और नीबी खुली जाय है॥ १२ ॥ गैयां और बछरे भगवानके मुखसे निकले वेणुगीतरूप अमृतको ऊंचे किये कानरूप पात्रसे जो पीते हैं, उस समय बछरोंके मुखमेंका दूधका कवल और गैयानके घासका कवल मुंहका मुंहहीमें रहजाय है. अर्थात् वे सब

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ॥ देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकवरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबंत्यः ॥ शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविंदमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशंत्यः ॥१३॥ प्रायो बतांब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ॥ आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वंत्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥ नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुंदगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ॥ आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णंति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥

क्रिया भूल जायं हैं, और आंखोंमें आंसू चले आवे हैं; क्योंकि वे गोविंदका दृष्टिद्वारा मनमें आलिंगन कर रही हैं ॥ १३ ॥ हे माता ! इस वनमें जो पक्षी हैं सो बहुधा मुनि होने चाहिये, क्योंकि जैसे मुनि लोग भगवान्का दर्शन हो ऐसी रीतिसे वेदोक्त कर्मोंके फलका त्याग कर, वे वेदकी शाखानके आश्रित हो, उनकी कोंपलरूप कर्महीका ग्रहण करते सुखी हो, भगवान्काही वर्णन सुनते हैं, तैसे ये पक्षीभी भगवान्का दर्शन हो, वैसे फलादिकनका अंतर छोड़. वृक्षकी शाखानपर बैठ, उनके कोंपलकेही आश्रित हो, सुखसे आंखें मींच तथा बोल चाल बंद कर, भगवान्के मुरलीके नादहीको सुनते हैं ॥१४॥ सचेतन जीवोंकी वार्ता तो एक ओर, परंतु नदियांभी उस भगवान्के वेणुनादको सुन, जलकी भँवरसे सूचित कामदेवके कारण भग्नवेग हो, अपने तरंगरूप हाथोंसे भगवान्के चरणारविंदमें कमल अर्पण कर, आलिंगनके साथ आच्छादन करतीं, उन्हींको धारण करतीं हैं ॥ १५॥

करतीं क्षण क्षण चित्तसे परमानंदमूर्ति भगवान्का आलिंगन करतीं थीं ॥ ६ ॥ गोपियोंने कहा कि–हे सखियो ! हम उन्हीं चक्षुवालोंके चक्षुको सफल जानतीं हैं, दूसरेको नहीं कि–जिन्होंने ग्वालबालोंके संग पशुओंको वनमें ले जाते, बंसी बजाते, स्नेह-भरे कटाक्ष चलाते, रामकृष्णके मुखका आदरसहित दर्शन किया ॥ ७ ॥ दूसरी बोली कि–आमकी कोंपल, मोरपिच्छ, गुच्छक, कमल और उत्पलोंकी विचित्र मालानसे शोभायमान, नील और पीत पटके विचित्र वेष बनाये, बलरामजी और कृष्णचंद्र कभी ग्वालबालोंकी सभाके बीच गान करते ऐसे शोभा देते हैं कि–जैसे नट नाट्यशालामें शोभायमान हो ॥ ८ ॥ दूसरी बोली कि–हे गोपियो ! इस मुरलीने ऐसा क्या पुण्य किया है ? कि–जो केवल गोपियोंहीके भोग्य भगवान्के अधरामृतको स्वतंत्र

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ॥ मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रंगे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ॥ भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽर्याः ॥ ९ ॥ वृंदावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदांबुजलब्धलक्ष्मि ॥ गोविंदवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥ धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नंदनंदनमुपात्तविचित्रवेषम् ॥ आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसारैः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥

होकर, येथष्ट पी रही है; सोभी ऐसीतरह कि–जिसमें थोड़ासा केवल रसमात्र शेष रहे उसे देख, ये उसकी माताके ठौर नदियां कमलोंके मिससे रोमांचित्त हो रहीं हैं और वृक्ष अपने वंशमें पुण्यात्माको जन्मा देख, रसके मिससे आंसू डार रहे हैं, जैसे कुलवृद्ध अपने वंशमें भगवत्सेवकको देख, रोमांचित हो, आनंदके अश्रु गिराते हों ॥ ९ ॥ दूसरी बोली कि–हे सखि ! यह वृंदावन स्वर्गसेभी पृथ्वीकी कीर्तिको अधिक विस्तारे है, क्योंकि देवकीके पुत्रके चरणारविंदके धरनेसे उसे अधिक शोभा मिली है. और इस वृंदावनमें भगवान्की मुरलीका नाद सुन, उसे मंद गर्जनावाला सवनघन मान, मोर नाचने लगते हैं, उस नाचको देख, दूसरे सब प्राणी अपनी अपनी क्रियाको छोड़, निश्चल हो रहे हैं. ऐसा आनंद दूसरे किसी लोकमें नहीं है ॥ १० ॥ दूसरी बोली कि–हे सखि ! ये मूढ़मति हरिणियांभी धन्य हैं कि–जो बंसीकी टेर सुन, स्नेहदृष्टियोंसे विचित्र वेष बनाये नंदकुमारका सन्मान

कोई एक व्रजांगना श्रीकृष्णके परोक्षमें अपनी सखियोंके आगे उसका वर्णन करने लगी ॥ ३ ॥ महाराज ! भगवान्की लीला-का स्मरण करतीं उन गोपियोंने वर्णन करनेका आरंभ किया, परंतु कामदेवके वेगसे मन व्याकुल हो जानेके कारण वर्णन नहीं

तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरंत्यः कृष्णचेष्टितम् ॥ नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयंतीं च मालाम् ॥ रंध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृंदैर्वृंदारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥ इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम् ॥ श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयंत्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेश यतोवयस्यैः ॥ वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥

कर सकीं ॥ ४ ॥ शिरपर मोरपिच्छका मुकुट, कानोंमें करनेका पुष्प, शरीरपर सुवर्णसा पीतपट, कंठमें वैजयंती माला धारण किये, नटसा सुंदर शरीर बनाये, अपने अधरामृतसे वेणुके छिद्रोंको पूर्ण करते भगवान् आपके चरणचिन्होंसे रमणीक वृंदावनमें पधारे जिस समय ग्वालसमूह आपका यश गाय रहेथे ॥५॥ महाराज ! सकल जीवोंका मन हरण करनेवाला वेणुगीत सुन, सब व्रजांगना उसका वर्णन

---

१ ॥ कवित्त बाजी-उठि धाई बाजी देखनेको द्वार आई बाजी मुरझाई सुनि तान गिरिधरकी ॥ बाजी न धरत धीर बाजी न सँभारें चीर बाजिनकी विरह अनल अतिभरकी ॥ बाजी हँसि बोलैं बाजी करत कलोलैं बाजी संग लागि डोलैं सुधि रही नाहीं घरकी ॥ बाजी कैहें कहां बाजी बाजी कैहें कहूं बाजी बाजी कहैं बाजी बंशी सांवरे सुघरकी ॥ १ ॥

२ कवित्त-खग मोहे मृग मोहे नग मोहे नाग मोहे पन्नग पाताल मोहे धुनि सुनि जासुरी ॥ सुर मोहे नर मोहे सुरन सुरेश मोहे मोहि रहे मुनिके असुर अरु आसुरी ॥ भनत गुमान कहौ मोहिबेको कहा बाचि चर औ अचर मोहे उमँगि हुलासुरी ॥ गोपिनके वृन्द मोहे आनँद मुनीन्द्र मोहे चन्द्र मोहे चन्द्रके कुरङ्ग मन बांसुरी ॥ १ ॥ कवित्त-भूल्यो खानपान भूल्यो पट परधान सब लोग नको भूलिगयो बासु औ निवासुरी ॥ चकि रहीं गैयां चारु चोंचन चिरइयां दाबि चितवनि चलाचुख चेतवितु नासुरी ॥ है धरी नटीसी है परीसी वृषभानुजाई जीवत जनावे बेग आवे दृग आंसुरी ॥ कान्हरस कैसेकै छँड़ाई मेरी वीर कवि कबकी विषाशिनि बगारे विष बांसुरी ॥ २ ॥

वैदिक यज्ञोंसे और इंद्रियोंके सुखकारक लौकिक उत्सवोंसे, पके धान्यकी समृद्धिवाली पृथ्वी शोभा देतीही थी, परंतु श्रीकृष्ण और बलदेवजीके विचरनेके कारण तो बहुतही शोभा देती थी ॥ ४८ ॥ जैसे मंत्र और योगादिकसे सिद्ध पुरुष आयुषके बंधनसे रुक रहे होवें, वे समय आनेपर देव आदि शरीर पाते हैं, तेसे वर्षासे रुकेहुए व्यौपारी, संन्यासी, राजा और ब्रह्मचारी शरदऋतुमें अपने अपने अर्थोंको प्राप्त हुए. व्यौपारी व्यौपार करने लगे, संन्यासी स्वच्छंद फिरने लगे, राजा दिग्विजय करने निकले और ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करने लगे ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीदिकानामभाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रेपदिरे ॥ वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिंडान्काल आगते ॥४९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे शरद्वर्णनंनाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगंधिना ॥ न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ॥ मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूजवेणुम् ॥ २ ॥ तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ॥ काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥

इक्कीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णके सुंदर वृंदावनमें पधारनेपर उनका वेणुनाद सुन, गोपियोंका गाया हुआ वेणुगीत वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-ऐसे भगवान् गैयां और गोपोंको संग ले, वृंदावनमें पधारे जहां शरदऋतुके कारण जल निर्मल भर रहा था. और कमलसमूहकी सुगंधि लिये पवन व्याप्त हो रहा था ॥ १ ॥ फूलेहुए वनकी पंक्तियोंके मदोन्मत्त भौंरे और पक्षियोंके संघ, जिसके तलाव, नदियां और पर्वतोंमें नाद कर रहे थे. उस वनमें जाय, बलरामजी व ग्वालबालोंको संग लिये गैयां चराते, भगवानने बंसीकी टेर करी ॥ २ ॥ कामोद्दीपक उस बंसीकी टेरको सुन,

१ दोहा-एक समय निशि शरदकी, वृन्दाविपिन विहार ॥ मुरलीधुनि कीन्ही ललित, केशव कृष्ण मुरार ॥ १ ॥

जाते हैं तैसे, शरद आनेपर समुद्र निश्चलजल हो, अपना घोष छोड़, चुप हो गया ॥ ४० ॥ जैसे योगीलोक इंद्रियरूप द्वारसे जाते हुए ज्ञानको इंद्रियोंका रोध कर, पकड़ रखते हैं, तैसे किसान लोगोंने अनेक मार्गोंसे जाते जलको दृढ़ मेंड़ोंसे बांध, केदारों (खेतों) में भर लिया ॥ ४१ ॥ जैसे बोध देहाभिमानका और भगवान् व्रजस्त्रियोंका ताप हरते हैं, तैसे चंद्रमाने शरदके सूरजकी किरणोंसंबंधी जीवोंका ताप मिटा दिया ॥ ४२ ॥ जैसे रजोगुण–तमोगुणरहित, शुद्धसत्वगुणयुक्त और वेदार्थका दिखानेवाला चित्त शोभित होवे, तैसे मेघरहित, शरदके निर्मल तारागणके प्रकाशवाला आकाश शोभा देने लगा ॥ ४३ ॥ जैसे

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्कर्षका दृढसेतुभिः ॥ यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत ॥ देहाभिमानजं बोधो मुकुंदो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ॥ सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥४३॥ अखंडमंडलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ॥ यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ॥ जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥ गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् ॥ अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥ उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ॥ राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैंद्रियैश्च महोत्सवैः ॥ बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥

यदुपति श्रीकृष्णचंद्र भूमिपर यादवमंडलसे आवृत हो, शोभा देवें. तैसे संपूर्णमंडल चंद्रमा तारागणसे आवृत हो, आकाशमें शोभा देनेलगा ॥ ४४ ॥ जैसे श्रीकृष्णचंद्रका आलिंगन कर, गोपियोंका ताप निवृत्त हो जाय, तैसे पुष्पित वनके समशीतोष्ण पवनका आलिंगन कर सब लोगोंका ताप दूर हुआ ॥ ४५ ॥ गैयां, हरिणियां, पक्षी और स्त्रियोंके पीछे शरऋतुके प्रभावसे उनकी इच्छा विनाभी उन उन जातिके नर लग गये, तिससे वे गर्भवती होने लगीं, जैसे ईश्वराराधनकी क्रियायें आराधन करनेवालेकी इच्छा विनाभी फलवती हो जातीं हैं ॥ ४६ ॥ महाराज ! जैसे चोरविना दूसरे सब लोग राजाके उदयसे निर्भय होते हैं, तैसे कुमुदविना दूसरे सब कमल सूर्योदयसे प्रफुल्लित होने लगे ॥ ४७ ॥ पुर और गांवोंमें नवीन अन्न खानेके लिये

गये, जल निर्मल हो गया और पवन मंद बहने लगा ॥ ३२ ॥ जैसे भ्रष्टोंके चित्त फिर योगके सेवनसे स्वच्छ हो जाते हैं, तैसे शरद ऋतुमें कमल पैदा होनेसे जल निर्मल हुआ ॥ ३३ ॥ जैसे भगवद्भक्ति चारों आश्रमवाले पुरुषोंका दुःख दूर करती है. तैसे शरदने इन चारोंके चारों दुःख दूर किये, जैसे आकाशके बादल, जीवोंकी संकड़ाई, जमीनका कीच और जलका मल ॥ ३४ ॥ जैसे शांत मुनि- लोग तृष्णाका त्याग कर, स्वच्छ हो. शोभा देते हैं तैसे मेघ अपना सर्वस्व छोड़, सुफेद हो, शोभा देने लगे ॥ ३६ ॥ जैसे ज्ञानी- लोक अपना ज्ञानरुप अमृत किसी अधिकारीको देते हैं और किसीको नहीं, तैसे पर्वत अपना निर्मल जल कहीं छोड़ते

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ॥ भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥ व्यो- म्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पंकमपां मलम् ॥ शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥ स- र्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ॥ यथा त्यक्तैषणाः शांता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥ गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ॥ यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥ नैवाविंदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ॥ यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुंबिनः ॥ ३७ ॥ गाधवा- रिचरास्तापमविंदन् शरदर्कजम् ॥ यथा दरिद्रः कृपणः कुटुंब्यविजितेंद्रियः ॥ ३८ ॥ शनैः शनैर्जहुः पंकं स्थलान्यामं च वीरुधः ॥ यथाऽहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥ निश्चलांबुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ॥ आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥

थे और कहीं नहीं ॥ ३६ ॥ जैसे कुटुंबी मूर्खपुरुष अपनी नित्य क्षय होती आयुष्यको नहीं जानते, तैसे उथले जलमें रहनेवा- ले जलजंतु क्षीण होतेहुए जलको नहीं जानते थे ॥ ३७ ॥ जैसे दरिद्री, कृपण और अजितेंद्रिय कुटुंबी पुरुष संसारके तापको प्राप्त होवें, तैसे उथले जलमें रहनेवाले जंतु शरदके सूर्यका ताप पाने लगे ॥ ३८ ॥ जैसे धीर पुरुष धीरे धीरे आत्मासे भिन्न शरीरआदि पदार्थोंमेंसे अहंता छोड़ते हैं, तैसे लताओंने धीरेधीरे कच्चेपनका त्याग किया. और जैसे अनात्मपदार्थोंमेंसे धीरे धीरे ममता छोड़ते हैं, तैसे स्थलोंने कीचका त्याग किया ॥ ३९ ॥ जैसे अंतःकरणके उपराम पाते मुनि वेदघोषको छोड़, चुप हो

जैसे पुरोहितकी प्रेरणासे राजालोग समय समयपर प्रजाको सुख देते हैं, तैसे वायुकी प्रेरणासे मेघगण जीवोंको अमृतके समान जल देते थे ॥ २४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचंद्र समृद्ध उस वनमें, जहां खजूर और जांबुन पके हुए थे, गैयां और गोपोंसे वेष्टित हो, बलदेवजीको संग ले, पधारे ॥ २५ ॥ भारी आयनके भारसे गैयां धीरे धीरे चलतीं थीं, परंतु जब भगवानने बुलायीं तो, वे सब जिनके स्तनोंमेंसे दूध झर रहा था. प्रीतिसे जल्दी २ चलीं ॥ २६ ॥ वनवासी आनंदमें मग्न थे, वनकी पंक्तियोंमेंसे रस टपकता था; पर्वतसे जलकी धारायें बहतीं थीं और उनका शब्द सुनायी देता था, समीपही गुफायें थीं भगवान श्रीकृष्णचंद्र उन

व्यमुंचन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ॥ यथाऽशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ॥ २४ ॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजंबुमत् ॥ गोगोपालैर्वृतो रंतुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥ धेनवो मंदगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ॥ ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥ २६ ॥ वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ॥ जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७ ॥ क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ॥ निर्विश्य भगवान्रेमे कंदमूलफलाशनः ॥ २८ ॥ दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलांतिके ॥ संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणाऽन्वितः ॥ २९ ॥ शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ॥ तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥ प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् ॥ भगवान्पूजयां चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवं निवसतोस्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छांब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥

सबको देख ॥ २७ ॥ कहीं वृक्षकी खोहमें, कहीं गुफामें घुसकर, वर्षामें खेलते थे और कंद, मूल, फल खाते थे ॥ २८ ॥ कभी जलके समीप शिलापर बैठ, अपने साथ भोजन करनेवाले गोपोंके संग बलदेवजीसहित भगवान घरसे लायाहुआ दहीभात खाते थे ॥ २९ ॥ उस समय अघाकर, बैल और बछरे हरी घासपर बैठ, आंखे मीच पागुर करते थे. और गैयां आयनके भारसे थककर, बैठीहुई पागुर करतीं थीं ॥ ३० ॥ भगवान् सब जीवोंको आनंद देनेवाली उस वर्षाकी संपदाको अपनी सामर्थ्यसे समृद्ध देख, उसकी प्रशंसा करते थे ॥ ३१ ॥ ऐसे रामकृष्णके व्रजमें रहते वर्षाऋतुके अनंतर शरद् ऋतु आयी, जिसके आतेही बादल बिखर

जैसे अभ्यास न करने और समय व्यतीत हो जानेसे ब्राह्मणोंका पढ़ा हुआ वेद संदिग्ध हो जाता है. तैसे लोकोंका आना जाना न होने और घाससे ढक जानेसे मार्ग संदिग्ध हो गये ॥ १६ ॥ जैसे क्षणिक स्नेहवाली छिनाल स्त्रियां गुणवान् पुरुषोंमें स्थिरता नहीं करतीं, तैसे लोगोंके बंधरूप मेघोंमें बिजली स्थिर नहीं रहती थी ॥ १७ ॥ जैसे गुणोंकी गड़बड़वाले प्रपंचमें आत्मा निर्गुण है तथापि शोभा देता है, तैसे गर्जनाकी गड़बड़वाले आकाशमें इंद्रधनुष रज्जुरहित था, तोभी शोभा देता था ॥ १८ ॥ जैसे आत्माहीसे प्रकाशित हुए अहंकारसे आच्छादित आत्मा दीपित नहीं होता, तैसे अपनी चंद्रिकासे प्रकाशित हुए मेघसे आच्छन्न

मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ॥ नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ १६ ॥ लोकबंधुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ॥ स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्वियति माहेंद्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ॥ व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥ १८ ॥ न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ॥ अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनंदन् शिखंडिनः ॥ गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनागमे ॥ २० ॥ पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ॥ प्राक्क्षामास्तपसा श्रांता यथा कामानुसेवया ॥ २१ ॥ सरस्स्वशांतरोधस्सु न्यूषुरंगापि सारसाः ॥ गृहेष्वशांतकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यंत सेतवो वर्षतीश्वरे ॥ पाखंडिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥ २३ ॥

चंद्रमा दीपित नहीं होता था ॥ १९ ॥ जैसे घरमें संताप पायेहुए विरक्त पुरुष वैष्णव लोगोंके समागममें प्रसन्न हो, उनका वाणीसे अभिनंदन करते हैं, तैसे गरमीसे तपे मोर मेघागमनके उत्सवसे प्रसन्न हो, उनका केकासे अभिनंदन करते थे ॥ २० ॥ जैसे प्रथम तप करनेसे दुर्बल और थकेहुए पुरुष संसारके विषयसुखका भोग करनेसे प्रफुल्लित होवें, तैसे गरमीसे दुर्बल अनेकरूप देह धरे वृक्ष अपने मूलसे पानी पी, प्रफुल्लित हुए ॥ २१ ॥ महाराज ! जैसे अनेक प्रकारके कर्तव्य कर्मोंकी पीड़ासे भरे घरोंमें संसारी पामर पुरुष रहते हैं, तैसे कीच और कांटोंसे भरे जिनके तट हैं ऐसे तलावोंमें सारसपक्षी रहते थे ॥ २२ ॥ जैसे कलियुगमें पाखंडियोंके मिथ्यावादसे वेदमार्ग नष्ट होजायं हैं, तैसे इंद्रके वर्षा करते जलके प्रवाहोंसे पुल टूट गये ॥ २३ ॥

जैसे कलियुगमें पापके प्रभावसे वेद गुप्त होकर, पाखंड प्रकाशते हैं, तैसे प्रदोषसमयमें अंधकारसे ग्रह गुप्त हो गये और खद्योत (जुगुनू) प्रकाशने लगे ॥ ८ ॥ जैसे चुप होकर, सोते हुए शिष्य, नित्यकर्मके अंतमें आचार्यका शब्द सुन, पढ़ना प्रारंभ करते हैं तैसे मेघका शब्द सुन, मेंडक बोलेने लगे ॥ ९ ॥ जैसे अजितेंद्रिय पुरुषका शरीर, धन और दौलत सब उलटे रस्ते जाते हैं, तैसे तुर्त बहनेवालीं छोटीं नदियां उलटे मार्ग चलने लगीं ॥ १० ॥ जैसे राजाकी सेना विचित्र वर्ण और छत्रकी छायावाली मालूम होती है, तैसे हरी घाससे हरी, इंद्रगोप (बीरबहूटी) से लाल और उच्छिलींध्र जो चातुर्मास्यमें छत्रके आकार पैदा होती है उससे छत्रकी छायावाली

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांति न ग्रहाः ॥ यथा पापेन पाखंडा न हि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मंडूका व्यसृजन्गिरः ॥ तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ॥ पुंसो यथाऽस्वतंत्रस्य देहद्रविणसंपदः ॥ १० ॥ हरिता हरिभिः शष्पैरिंद्रगोपैश्च लोहिता ॥ उच्छिलींध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥ ११ ॥ क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ॥ धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥ जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ॥ अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३ ॥ सरिद्भिः संगतः सिंधुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ॥ अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ॥ अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥ १५ ॥

दीखने लगी ॥ ११ ॥ खेतोंमें धानकी समृद्धि देख, किसान आनंदमग्न हुए और लाभ होना देवाधीन है ऐसे न जान, धान्यसंग्रह करनेवाले व्यापारी दुःखी हुए ॥ १२ ॥ जैसे हरिभक्त भगवानकी सेवा कर, सुंदर स्वरूपको प्राप्त होवें, तैसे जल स्थलके रहनेवाले सब नवीन जलसे वनसे सुंदर स्वरूपको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ जैसे अपक्वयोगीका चित्त कामवासना और विषयोंसे युक्त हो, क्षोभित हो जाता है; तैसे समुद्रमें नदियोंके मिलनेसे पवनप्रेरित लहरें उठने लगीं. और वह क्षोभको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ जैसे भगवच्चित्त भक्तलोक दुःख पड़नेसे व्यथा नहीं पाते, तैसे पर्वत वर्षाकी धारा पड़नेसे व्यथित नहीं हुए ॥ १५ ॥

बीसवें अध्यायमें वर्षा और शरदऋतुके वर्णनसे गोप और बलरामजीसहित श्रीकृष्णचंद्रकी वर्षाऋतुसंबंधी लीला कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- गोपोंने इन दोनों भाइयोंका यह अद्भुत चरित जो आपका दावानलसे बचाना और प्रलंबासुरका मारना सो स्त्रियोंसे कहा ॥ १ ॥ गोपवृद्ध और गोपियां यह बात सुन, विस्मय करने लगे. और व्रजमें आयेहुए रामकृष्णको देवोत्तम समझने लगे ॥ २ ॥ पीछे सर्व जीवोंकी उत्पन्न करनेवाली और जीवन देनेवाली वर्षाऋतु आयी. सूर्य, चंद्रमाके परिधि (मंडल) होने लगे. आकाशमें गड़बड़ाट होने लगा ॥ ३ ॥ आकाशमेंसे घनश्याम घटा छा गयी, जिसमें दामिनी दमक रही थी और कड़कड़ाट शब्द हो रहे थे. उस समय आकाश तीन गुणोंसे आच्छादित जीवके स्वरूपके समान शोभा देता था ॥ ४ ॥ राजा जैसे समयपर प्रजासे धन ले, पीछा देता है; तैसे सूर्यनारायणभी आठ महीनोंतक पृथ्वीका जलरूप धन अपनी किरणोंसे ले, समयपर पीछा छोड़ने लगे ॥ ५ ॥ दयालु पुरुष जैसे दुःखीको देख, उसको सुखी करनेके वास्ते दयासे कंपित हो, अपना जीवनभी त्याग देते हैं, तैसे बड़े बड़े बादल बिजलीरूप नेत्रसे इस जगतको तप्त देख, वेगवान पवनसे कंपित हो, जीवन (जल) छोड़ने लगे ॥ ६ ॥ जैसे सकाम पुरुषका शरीर प्रथम तप करनेसे दुर्बल हो, फिर तपका फल पाय, पुष्ट हो जाय, तैसे पृथ्वी जो ग्रीष्मऋतुसे दुर्बल हो गयी थी, वहभी पीछा मेघका जल पाय, पुष्ट हुई ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥ गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलंबवधमेव च ॥ १ ॥ गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥ ततः प्रवर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ॥ विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥ सांद्रनीलांबुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥ अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु ॥ स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥ तडित्वंतो महामेघाश्चंडश्वसनवेपिताः ॥ प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥ तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही ॥ यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥

जैसे मनुष्य मृत्युके भयसे पीड़ित हो, हरिके शरण जा, प्रार्थना करते हैं ॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महावीर हे राम ! हे अमितपराक्रम ! दावानलसे जलते हुए हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! हम आपके बंधु हैं हमको दुख नहीं होना चाहिये, हे सर्वधर्मज्ञ ! हमारे तो आपही नाथ और परमशरण हैं ॥ १० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–भगवान हरि बंधुनके ऐसे दीन वचन सुन, बोले कि–हे गोपो ! मत डरो, आंखे बंद कर लो ॥ ११ ॥ वैसेही आंखें बंद करनेपर योगेश्वर भगवानने मुखसे उस उल्बण अग्निका पान कर, उनको उस कष्टसे छुड़ाया ॥ १२ ॥ फिर

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामितविक्रम ॥ दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥ नूनं त्वद्बांधवाः कृष्ण न चार्हत्यवसीदितुम् ॥ वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य कृपणं बंधूनां भगवान्हरिः ॥ निमीलयत माभैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥ तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ॥ पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥ ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भांडीरमापिताः ॥ निशाम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥ १३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायाऽनुभावितम् ॥ दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ॥ वेणुं विरणयन्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपीनां परमानंद आसीद्गोविंददर्शने ॥ क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत् ॥ १६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे दावाग्निपानं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥

जो उन्होंने आंखें खोलीं तो, पीछे वे उसीक्षण भांडीर वटपै आ पहुंचे. और आपको और गैयानको मुक्त देख, अचरज करने लगे ॥ १३ ॥ जिसमें योगमायाका प्रभाव प्रकट हो रहा है ऐसा श्रीकृष्णचंद्रका योगका प्रभाव कि–जो दावानलसे आपको बचाना उसे देख, गोपोंने जानलिया कि–यह देवता है ॥ १४ ॥ सांझके समय बलदेवजीके संग श्रीकृष्णचंद्र गैयानको घेर गोपोंसे स्तुति कराते, बेनु बजाते गोकुलमें पधारे ॥ १५ ॥ भगवानके दर्शन होतेही गोपियोंको परमआनंद हुआ. जिन गोपियोंके जिन भगवान विना एक क्षणभी सौ युगके बराबर बीतता था ॥ १६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥

उन्नीसवें अध्यायमें, मुंजारण्यमें पैठे हुए गोप और गैयानकी भगवाने दावानल पीकर, रक्षा करी. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्री-शुकदेवजी बोले कि-जब गोप खेलमें लग गये, तब उनकी गायें स्वेच्छापूर्वक चरतीं चरतीं तृणके लोभसे दूर निकलकर, अन्य वनमें चलीं गयीं ॥ १ ॥ अजा (बकड़ियें), गायें, भैंसें ये सब वनसे वनको जातीं, दावसे प्यासी हो पुकारतीं २ मुंजारण्यमें पैठ गयीं ॥ २ ॥ वे सब राम कृष्णआदि गोप पशुओंको न देखकर, दुःखी हो गये. बहुत कुछ गायोंकी तलाश की परंतु पता नहीं लगा ॥ ३ ॥ तद आजीविकासाधन नष्ट हो जानेसे उनके होश जाते रहे. परंतु गायोंके खुर और दांतोंसे कटी घास,

श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥ स्वैरं चरंतो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशंत्यो वनाद्वनम् ॥ इषीकाटवीं निर्विविशुः क्रंदंत्यो दावतर्षिताः ॥ २ ॥ तेऽपश्यंतः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ॥ जातानुतापा न विदुर्विचिन्वंतो गवां गतिम् ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरंकितैर्गवाम् ॥ मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥ मुंजाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रंदमानं स्वगोधनम् ॥ संप्राप्य तृषिताः श्रांतास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥ ५ ॥ ता आहूता भगवता मेघगंभीरया गिरा ॥ स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समंताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत्क्षयकृद्वनौकसाम् ॥ समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजंगमान्महान् ॥ ७ ॥ तमापतंतं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ॥ ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥

देखते गायोंके खुरोंके चिन्हवाले मार्गमें पीछे पीछे चले ॥ ४ ॥ मुंजाके वनमें मार्ग भूले हुए पुकारते अपने गोधनको पाय, प्यासे और थके हुए गोपोंने उस गोधनको पीछा घेरा ॥ ५ ॥ मेघके समान गंभीरवाणीसे जब भगवानने उन्हें बुलायीं, तद वे गैं अपने नामका शब्द सुन, आनंदित हो, पीछा नाद करने लगीं ॥ ६ ॥ वहां यदृच्छासे चारोंओर वनवासियोंकी नाश करनेवाली बड़ी दानावल लगी. जो उसके सहायक वायुसे बढ़ रही थी और उलबण ज्वालावोंसे स्थावर-जंगमको भस्म करती थी ॥ ७ ॥ चारोंओरसे आती हुई उस दावालनको देख, गैयां और गोप डरे. और बलरामजीसहित श्रीकृष्णके शरण आ, ऐसे बोले कि-

बड़ा शब्द करता अचेत हो, विनाप्राण होकर, गिर गया. जैसे इंद्रके शस्त्रके प्रहारसे पर्वत गिरजाय ॥ २९ ॥ बलवान् बलदेवजीके हाथ प्रलंबासुरको मरा देख, गोपोंने बड़ा आश्चर्य किया. और साधु साधु ऐसा शब्द कहते॥ ३० ॥ आशीर्वाद देते प्रेमसे

दृष्ट्वा प्रलंबं निहतं बलेन बलशालिना ॥ गोपाः सुविस्मिता आसन्साधुसाध्विति वादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोऽभिगृणंतस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ॥ प्रेत्यागतमिवाऽऽलिंग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥ पापे प्रलंबे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥ अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधुसाध्विति ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे प्रलंबवधोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥

व्याकुलचित्त उन गोपोंने प्रशंसाके योग्य बलदेवजीकी प्रशंसा करी और मानों मरकर, पीछे आये हों वैसे मिले ॥ ३१ ॥ पापी प्रलंबके मरनेसे देवता परमआनंदित हुए. बलदेवजीपर पुष्पोंकी बरसा करी. और वाह ! वाह ! कह, प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द०पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥

---

१ यह रणमदमत्त प्रलंबासुर कौन था ? और बलदाऊके हाथ मुक्ति कैसे पाई ? तहां कहैं हैं कि– शिवजीकी पूजाके लिये अपने चैत्ररथ नाम वनमें फूलोंकी रखवालीके निमित्त कुबेरजीने कितने एक यक्षोंको रक्खा. और कहा कि– इस मेरे वनमेंसे कोईभी फूल लेने न पावे. खूब चौकसी रखने. इसके बाद यदपि वे यक्षलोक अपने स्वामीके आज्ञानुकूल बहुत हुसियारीके साथ उस बनके चारों तर्फ पहरा देते थे. तथापि मनोहर होनेके कारण चोर लोक फूलोंकी चोरी करनी नहीं छोंड़े. तब तो महाबलवान् यक्षोंके राजा कुबेरने क्रुधित हो, यह श्राप दिया कि–आजसे जो कोई देव या मनुष्य मेरे बगैर पूंछे इस वनमेंसे एकभी फूल लेवेगा तो वह तुर्त राक्षस होगा. इसके कितनेएक दिनोंके बाद तीर्थयात्रामें फिरता और रास्तेमें बीणा बजा २ कर, श्रीविष्णु नारायणके गुणोंसंबन्धी मनोहर गायन करता हुवा ऐसा यह हूहू नाम गन्धर्वका पुत्र विजय नामका गन्धर्व दैवी इच्छासे उस बनमें आ पड़ा और अनजानमें उसनें ज्यों फूल लिया कि–बस तुर्त सुन्दर गन्धर्वरूप छोड़, महाभयावना राक्षस बनगया. पीछे कारण जान, महात्मा श्रीकुबेरजीके शरण जाय, साष्टाङ्ग दण्डवत् कर, हाथ जोड़, बड़ी प्रार्थना करी. तद कुबेरनेभी प्रसन्न हो, इसे वर दिया. कि–हे गन्धर्व ! तू बड़ा शांतात्मा और विष्णुभक्त है इससे शोच मत कर. तेरा कल्याण होगा. जब द्वापरयुगको अंत आयेगा तब श्रीबलदाऊजीके हाथ तेरी मुक्ति होगी इसमें संशय नहीं. वही यह हूहू [illegible] से श्रीदाऊजीके हाथसेमर, उत्तम मोक्ष पाया ॥ ग०

नाम वटके पास चले गये ॥ २२ ॥ जब बलरामजीकी तरफके श्रीदामा, वृषभआदिक गोप जीतगये, तब महाराज ! कृष्ण-आदिक उनको चढ़ाकर, ले गये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्‌ने हारकर, श्रीदामाको उठाया, भद्रसेनने वृषभको, प्रलंबासुरने बलरामजीको ॥ २४ ॥ वह प्रलंबासुर श्रीकृष्णचंद्रको बलवत्तर मान, उनकी दृष्टि बचानेके लिये बहुत जल्दी चलता हुआ मुकर्रर जगहसे दूर चला गया ॥ २५ ॥ जब पर्वतके समान भारी बलदेवजीका भार उठानेसे उसका बेग बंद हो गया तब तुर्त उसने अपना दैत्यशरीर धारण किया, उस समय वह सुवर्णके भूषण पहिरे ऐसे शोभा दे रहा था, जैसे चंद्रमाको धारण किये दामि-

रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ॥ क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ॥ वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलंबो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुंगवः ॥ वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥ २५ ॥ तमुद्वहन्धरणिधरेंद्रगौरवं महाऽसुरो विगतरयो निजं वपुः ॥ स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवांबुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य तद्वपुरलमंबरेचरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ॥ ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुंडलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥ २७ ॥ अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहाय सार्थमिव हरंतमात्मनः ॥ रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ॥ महारवं व्यसुरपतत्समीरयन् गिरिर्यथा मघवत आयुधा हतः ॥ २९ ॥

नीकी दमकसे बादल शोभायमान हो ॥ २६ ॥ आकाशपर्यंत पहुँचे ऐसा ऊंचा, अतिवेगसे दीप्त, दृष्टिवान्, भौंहतक जिसकी उग्र दाढ़ें पहुंच रहीं हैं और केश जिसके जलरहे हैं ऐसे किरीट कुंडल और कड़ोंकी कांतिसे अद्भुतरूप इस दैत्यके शरीरको देख, बलदेवजी कुछ डरे ॥ २७ ॥ फिर स्मृति आतेही निर्भय हो, बलदेवजीने अपने सार्थको छुड़ाय ले जातेहुए दैत्यपर क्रोध कर, इंद्रने जैसे वज्रके वेगसे पर्वतपर प्रहार किया था, तैसे उसके शिरपर दृढ़ मुष्टिसे प्रहार किया ॥ २८ ॥ प्रहार होतेही तुर्त उसका शिर बिखर गया, मुंहसे लोहू बहने लगा और वह दैत्य

प्रशंसा करते हैं ॥ १३ ॥ कभी बेलोंसे, कभी कुंभीके फलोंसे, कभी आमलोंसे, कभी मुट्ठियोंसे, कभी छूने न देनेसे, कभी आंख मिचोलीसे, कभी पशु-पक्षियोंके अनुकरणसे, ॥ १४ ॥ कभी मेंडकके बराबर कूदनेसे, कभी अनेक प्रकारके हास्योंसे, कभी झूलोंसे, कभी राजाकी रमतसे ॥ १५ ॥ ऐसे वे दोनों भाई लोकप्रसिद्ध अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते वन, नदी, पर्वतकी गुफा, कुंज, कानन और सरोवरोंमें फिरते हैं ॥ १६ ॥ गोपोंके साथ उस वनमें पशु चराते, राम कृष्णको हर ले जानेकी इच्छासे प्रलंबनाम असुर

क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुंभैः क्वचामलकमुष्टिभिः ॥ अस्पृश्यनेत्रबंधाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ॥ कदाचित्स्पंदोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाऽभिक्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुंजेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥ पशूंश्चारयतो गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ॥ गोपरूपी प्रलंबोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः॥ अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिंतयन् ॥ १८॥ तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् ॥ हे गोपा विहरिष्यामो द्वंद्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ॥ कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ॥ यत्राऽऽरोहंति जेतारो वहंति च पराजिताः ॥ २१ ॥ वहंतो वाह्यमानाश्च चारयंतश्च गोधनम् ॥ भांडीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२॥

गोपका रूप बनाय, वहां आया ॥ १७ ॥ सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण उसको जानते थे. तोभी उसके वधका विचार कर, आपने उसके साथ मित्रता करना मंजूर किया ॥ १८ ॥ आप तो सब खेल जानते हैं, सो श्रीकृष्णचंद्रने सब गोपालोंको वहां बुलाकर, कहा कि- हे गोपो ! हम ठीक ठीक दो टोले बनाकर खेलेंगे ॥ १९ ॥ वहां राम-कृष्णको नायकबनाया उनमेंसे कई गोप श्रीकृष्णकी तरफ रहे और कई बलदेवजीकी तरफ रहे ॥ २० ॥ चढ़ने और चढ़ानेआदि कई प्रकारके खेल खेलने लगे, जिसमें हारें वे चढ़ाकर, ले जायं और जीतें वे चढ़ें ॥ २१ ॥ ऐसे चढ़ते चढ़ाते गायोंको चराते कृष्णआदि सब गोप भांडीरक-

मिश्रित, शीतल, कल्हार कमल और उत्पलकी रजका हरनेवाला सुगंध मंद पवन चलता था, अतएव अतिहरित तृणमय उस वनमें कहीं वनवासियोंको ग्रीष्मकी अग्नि और सूर्यका ताप नहीं मालूम होता था ॥ ५ ॥ जहां तीरपर पहुँचते अगाध जलवाली नदियोंके तरंगोंसे तीरकी मिट्टीके साथ दूसरी मिट्टीभी चारोंओर द्रवीभूत रहती है, ऐसी पृथ्वीके रसको और हरियालीको सूर्यकी किरणें जो विषके समान उल्बण हैं, वोभी नहीं हर सकीं थीं ॥ ६ ॥ पुष्पोंसे समृद्ध यह सुन्दर वन, कि-जहां विचित्र पशुपक्षी नाद कर रहे हैं, मयूर और भौंरे गाय रहे हैं, कोयल और सारसें बोल रहीं हैं, ॥ ७ ॥ उसमें बलदेवजीके साथ भगवान् श्रीकृष्ण क्रीड़ा

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समंततः ॥ न यत्र चंडांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ॥ गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः ॥ वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥ प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ॥ रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ॥ वेणुपाणितलैः शृंगैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः ॥ ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥ भ्रामणैर्लंघनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ॥ चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२ ॥ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ॥ शशंसतुर्महाराज साधुसाध्विति वादिनौ ॥ १३ ॥

करनेकी इच्छासे बंसी बजाते गैयाही जिनके धन हैं ऐसे गोपोंसे वेष्टित हो पधारे ॥ ८ ॥ राम कृष्ण आदि सब गोप प्रवाल, मोरपिच्छ, गुच्छक, माला, धातु इनके गहने बनाय, कभी नृत्य करते हैं, कभी युद्ध करते हैं और कभी गाते हैं ॥ ९ ॥ जब श्रीकृष्णचंद्र नृत्य करते हैं, तब कई गाते हैं, कई बंसी, करताल और सींग बजाते हैं, दूसरे प्रशंसा करते हैं ॥ १० ॥ महाराज ! गोपकी जातिसे गुप्त हो, देवतालोग गोपरूप धारण कर, राम कृष्णकी स्तुति करते हैं जैसे नट नटकी तारीफ किया करते हैं ॥ ११ ॥ कभी कभी काकपक्ष (पट्टा) धारण किये ये दोनों भाई चकरी खाना, कूदना, फेंकना, खम ठोंकना, खेंचना, बाहुयुद्ध करनाआदि अनेक अनूठे अनूठे खेल खेलते हैं ॥ १२ ॥ महाराज ! कभी दूसरे नाचते हैं, तब आप गाते हैं और बजाते हैं और वाह ! वाह ! कहते हैं और

रूप परमेश्वर श्रीकृष्णके शरण गये ॥ २२ ॥ हेकृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाराज ! हे राम ! हे अमितपराक्रम ! यह महाघोर अग्नि हमें भस्म करे डारता है. जो हम आपके हैं ॥ २३ ॥ हे प्रभु ! इस महादुस्तर कालरुप अग्निसे हम मित्रोंकी रक्षा कीजिये, आपके निर्भय पदको हम नहीं छोड़ सक्ते ॥ २४ ॥ ऐसे अपने भक्तोंकी विह्वलता देख, जगदीश्वर अनंतशक्तिधर अनंत भगवान उस घोर अग्निको पी गये ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वा० रामश्मामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ अठारहवें अध्यायमें गुणोंसे वसंतके समान लक्षित ग्रीष्म ऋतुमें भगवानने लीलाहीसे बलरामजीके

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ॥ एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ॥ न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥ इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥ तमग्निमपिबत्तीव्रमनंतोऽनंतशक्तिधृक् ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे दावाग्निमोचनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥ अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमंडितम् ॥ १ ॥ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ॥ ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयान्शरीरिणाम् ॥ २ ॥ स च वृंदावनगुणैर्वसंत इव लक्षितः ॥ यत्राऽऽस्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ॥ शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्द्रुममंडलमंडितम् ॥ ४ ॥ सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकंजोत्पलरेणुहारिणा ॥ न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवन्ह्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥

हाथ प्रलंबासुरको मरवाया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—फिर कृष्णचंद्र प्रसन्नचित्त बंधुनसे वेष्टित हो, उनसे गाये जाते गोसमूहसे शोभायमान व्रजमें पधारे ॥ १ ऐसे गोपालनके मिससे मायासे व्रजमें दोनों भाइयोंके क्रीड़ा करते ग्रीष्म नाम ऋतु आया जो देहधारियोंको अतिप्रिय नहीं है ॥ २ ॥ परंतु वहभी वृंदावनके गुणोंसे वसंतके समान मालूम होता था. जहां बलरामजीके साथ साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान विराजते थे ॥ ३ ॥ जहां झरनोंके शब्दके आगे झिल्लीका शब्द सुनाई नहीं देता था. और निरंतर झरनोंकी बूंदोंसे लहलहे वृक्षोंका समूह शोभा दे रहा था ॥ ४ ॥ जहां नदी व तालावोंके झरने और लहरोंसे

हो, प्रीतिसे मिले ॥ १४ ॥ हे कौरव ! यशोदा रोहिणी, नंदरायजी, गोपियां, गोप ये सब श्रीकृष्णको प्राप्त हो, लब्धचेष्ट हुए. और इनका मनोरथ परिपूर्ण हुआ ॥ १५ ॥ और बलरामजी श्रीकृष्णसे मिलकर, हँसे; क्योंकि आप इनके प्रभावको जानते हैं. गैयां, बैल और बछरे परम आनंदको प्राप्त हुए. और जो वृक्ष सूख गये थे, वे पीछे हरे हो गये ॥ १६ ॥ उस समय ब्राह्मणलोग व गुरु सस्त्रीक आय, नंदरायजीसे कहने लगे कि– बहुत अच्छा हुआ, जो आपका पुत्र कालियका ग्रसा बच गया

यशोदा रोहिणी नंदो गोप्यो गोपाश्च कौरव॥ कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिंग्य जहासास्यानुभाववित् ॥ नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥ नंदं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ॥ ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवाऽऽत्मजः ॥ १७ ॥ देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ॥ नंदः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् ॥ १८ ॥ यशोदाऽपि महाभाग नष्टलब्धप्रजा सती ॥ परिष्वज्यांकमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥ १९ ॥ तां रात्रिं तत्र राजेंद्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः ॥ ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिंद्या उपकूलतः ॥ २० ॥ तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ॥ सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥ तत उत्थाय संभ्रांता दह्यमाना व्रजौकसः ॥ कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥

॥ १७ ॥ कृष्णके छुटकारेके हेतु आप ब्राह्मणोंको दान दीजिये. हे राजन् ! तब नंदरायजीने प्रसन्न हो, गौ और सुवर्णदान दिया ॥ १८ ॥ सती यशोदाभी बड़ी भाग्यशाली है कि–जिसका पुत्र मरकर, पीछा मिल गया उसने पुत्रको गोदमें ले, वारंवार आनंदके अश्रु गिराये ॥ १९ ॥ महाराज ! व्रजवासी और गैयां भूख, प्यास और श्रमसे थक गये थे, इसलिये वही यमुनाके तीरपर उस रात रह गये ॥ २० ॥ तब ग्रीष्मऋतुके कारण वनमें उत्पन्न हुआ जो दवानल उसने सोते व्रजको चारों-ओरसे घेर आधी रातके समय जलानेका प्रारंभ किया ॥ २१ ॥ तब व्रजवासी घबराकर उठे, और जलतेहुए मायासे मनुष्य-

शस्त्र हैं, उस समय इसकी जीभ बड़ी कराल, नेत्र स्तंभित और उग्र मालुम होते थे ॥ ६ ॥ तब तो भगवान्‌के आसन, उग्र पराक्रम, उसगरुड़ने बड़े क्रोधमें आ, इसे पीछा हटाय, बड़े वेगसे सुवर्णके सदृश चमकते अपने बांए पक्षसे इसपर प्रहार किया ॥ ७ ॥ गरुड़के पक्षप्रहारसे यह कालिय अतिविव्हल हो, यमुनाजीके दहमें पैठ गया; क्योंकि यहां गरुड़की गतिभी नहीं और अगाधतासे दुरासदभी था ॥ ८ ॥ अगम्य होनेमें कारण कहते हैं. एक समय वहां गरुड़ आया, भूख लगरही थी, सो अपने प्रिय भक्ष्य मत्स्यको सौभरि ऋषिके मना करते बलात्कारसे खा गया ॥ ९ ॥ मत्स्यपतिके मर जानेसे जब सब मत्स्य दुखी हो

तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्प्रचंडवेगो मधुसूदनासनः ॥ पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीवविव्हलः ॥ ह्रदं विवेश कालिंद्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ॥ निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति ॥ सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥ तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ॥ अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥ कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रांतं दिव्यस्रग्गंधवाससम् ॥ महामणिगणाकीर्णं जांबूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ॥ प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे ॥ १४ ॥

गये उन्हें दीन देख, सौभरिऋषिने कृपा कर, वहांके जलचरोंका कुशल चाहते कहा कि- ॥ १० ॥ 'यदि गरुड़ यहां आकर, मत्स्योंको खावेगा तो, तुर्त प्राणहीन हो जायगा, अर्थात् मर जायगा. यह मैं सत्य कहता हूं' ॥ ११ ॥ इस बातको केवल कालियही जानता था. और कोई सर्प नहीं जानता था, इसलिये गरुड़से डरता यहां रहा. और श्रीकृष्णने निकाल दिया ॥ १२ ॥ जब श्रीकृष्णचंद्र दिव्यमाला, चंदन, वस्त्र पहिरे, अमूल्य मणिगणसे व्याप्त, सुवर्णसे अलंकृत दहसे बाहर निकले ॥ १३ ॥ तब भगवान्‌को प्राप्त हो, सब गोप जैसे इंद्रियां प्राणको प्राप्त हो सचेत होतीं हैं, तैसे सचेत और आनंदसे पूर्णचित्त

वास्ते महीने महीनेमें गरुड़के निमित्त वृक्षके मूलमें बलिदानं रखनेका ठराव किया था ॥ २ ॥ वे नागलोक अमावास्याके अ-मावास्या अपनी रक्षाके निमित्त महात्मा गरुड़को अपना अपना भाग दिया करते थे ॥ ३ ॥ यह कद्रूका पुत्र कालिय, विष

स्वं स्वं भागं प्रयच्छंति नागाः पर्वणि पर्वणि ॥ गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥
विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ॥ कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥४॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो
राजन्भगवान्भगवत्प्रियः ॥ विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ तमापतंतं तरसा विषायुधः
प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ॥ दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोऽग्रलोचनः ॥ ६ ॥

और वीर्यसे घमंडमें आ, गरुड़को कुछ पदार्थ न गिनकर, उस बलिदानको आप खा गया ॥ ४ ॥ हे राजा ! यह बात सुन, भगवानका प्यारा भगवान् गरुड़ क्रोधकर, इसे मारनेकी इच्छासे बड़े वेगसे इसके पीछे दौड़ा ॥ ५ ॥ जिसके विषही शस्त्र हैं ऐसा यहभी उसे आता देख, अपने अनेक मस्तक उठाय, सामने चला और गरुड़को दांतोंसे डँसा; क्योंकि इसके तो दांतही

---

१ यह ऐसी कथा है कि- सर्पोंकी माता कद्रू और गरुड़ादि पक्षियोंकी माता विनता ये दोनों कश्यपजीकी स्त्रियां थीं सो इनसे आपसमें सपत्नभावसे वैर बहुत रहता था ऐसे रहते २ एक दिन कद्रूने विनतासे पूंछा कि- सूर्यके घोड़ोंकी पूंछ काली है या सफेद ? तब विनताने कहा सफेद और कद्रूने कहा नहीं, काली है; ऐसे उन दोनोंमें बहुत झगड़ा हुआ पीछे उन्होंने ऐसा ठहेराव किया कि- जो हारे वह दासी बनके, रहे. इसतरह ठहराव करके, कद्रूने अपने स्थानमें आ, अपने पुत्र सर्पोंसे पूंछा कि-पुत्रो ! सूर्यके घोड़ोंकी पूंछ कैसी है. ? उन्होंने कहा सफेद. तब तो कद्रू लगी रोने पीटने. तब सर्पोंने पूंछा माता ! क्या है ? तब उसने जैसा वि-नतासे कौल किया था वह सब कहा तब उन्होंने कहा इसमें मत डरो ऐसा कह, सूर्यके घोड़ोंकी पूंछमें लिपट गये तो उनकी पूंछ काली दिखने लगी. तब कद्रूने विनतासे कहा कि-चलो सूर्यके घोड़ोंकी पूंछ देखें ऐसा कहके, दोनों देखनेको चलीं तो देखा कि- घोड़ोंकी पूंछ काली है तो कद्रूने कहा कि-क्यों ? दासी है या नहीं तब उसने कहा कि- मैं तेरी दासी बेशक हूं इसमें क्या कहना ? पीछे विनता कद्रूकी दासी होकर, रहने लगी. लेकिन सौतने अपमान किया इसका चिंतन करते विनताने कश्यपजीकें पास जा, उनकी बहुत दिनतक सेवा की तद उनके प्रतापसे इसके ' अरुण गरुड़ ' दो पुत्र हुये. गरुड़ने पैदा होतेही मातासे कहा क्या हुकुम है ? तब विनताने कहा कि- पुत्र ! मैं कद्रूकी दासी होके, रही हूं सो तू मेरा दासीभाव छुटाय दे. माताका वचन सुन, गरुड़ कद्रूके पास गये तो उसने कहा कि- अमृत ला दो तो तुम्हारी माताका दासीभाव छूटे. गरुड़ने वैसाही किया और माताका दासीभाव छूटा उसी वैरकी याद करते गरुड़ कद्रूके पुत्र सर्पोंको नित्य खाया करते. यह देख, सब सर्प ब्रह्माजीकी शरण गये. ब्रह्माजीने कहा कि-गरुड़को बलि नियत करो. तभीसे सर्पोंसे गरुड़की बलि नियत की, इति ॥

नका पूजन करा ॥ ६४ ॥ दिव्य वस्त्र, माला, रत्न, अमूल्य आभरण, दिव्य चंदनका लेपन और बड़ी कमलोंकी मालासे गरुड़-ध्वज जगन्नाथ भगवानकी पूजा कर, प्रसन्न हो, आज्ञा मांग, परिक्रमा दे, वंदन कर स्त्री, पुत्र, बंधुनको संग ले, समुद्रके द्वीपमें गया ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ उसी क्षण यमुनाजीका जल क्रीड़ाके लिये मनुष्यरूप भगवानकी कृपासे बिषरहित अमृतसा हो गया

दिव्यांबरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपिभूषणैः ॥ दिव्यगंधानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥ ६५ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवंद्य तम् ॥ ६६ ॥ सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ॥ तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् ॥ अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे कालियनिर्यापणंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः ॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमंजसम् ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः ॥ वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥ २ ॥

॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ सत्रहवें अध्यायमें, कालियको समुद्रके द्वीपमें पठाया और निज दुःखसे थककर सोते बंधुनकी दावानलसे रक्षा करी, यह कथा होगी ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि-कालियने अपना नागोंका स्थान रमणकद्वीप क्यों छोड़ दिया ? और उस इकलेने गरुड़का क्या अप्रिय किया ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- महाराज ! गरुड़के भक्ष्यरूप नाग लोकोंने पहले गरुड़की पीड़ा निवृत्त होनेके

होगा. इतनेहीमें निजभक्तोंको आपसमें श्राप देते जान, भगवान् विष्णुजीने वहांपर आय, दोनोंको शांत्वना दी और कहा, कि-यदपि तुम दोनों मेरे दोनों भुजावोंके समान बराबर भक्त हो तथापि क्या करूं ? मेरा वचन हो तो मैं पलटा शक्ता हूं परंतु भक्तका नहीं ऐसा मेरा नियम है. इसलिये हे वेदशिरा मुनि ! नाग तो तू होगा लेकिन जब तेरे शिरोंपै मेरे चरणोंका स्पर्श होगा तबसे तेरेको गरुड़का भय छूट जायगा. इसके बाद फेर अश्वशिराको कहा कि-तूभी शोच मत कर. मेरी बात सुन. क्योंकि तेरा कागरूप तो रहेगा परंतु योगसिद्धियोंके साथ त्रैकालिक (भूत, भविष्य, वर्तमान) ज्ञान तेरे रहेगा ऐसे कह, भगवान् तो निजधाम पधारे इसके पीछे नीलगिरिमें 'अश्वशिरा' मुनि तो महायोगीन्द्र, अनन्य रामोपाशक कागभुशुंड हुये. और वेदशिरामुनि कालीनाग हुये. इसीसे इसके मस्तकोंपै भगवत्‌ने स्वचरणविन्यास करा. ॥ ग० ॥

मुझसे जो आपके विचारमें आवे सो करो ॥ ५९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले
जगदीश्वर सर्वज्ञ आपही कारण हो, हमपर अनुग्रह वा निग्रह जो आपके विचारमें आवे सो करो ॥ ५९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले
कि–कार्यार्थ मनुष्यरूप भगवान् यह बचन सुन, बोले कि–हे सर्प ! तू यहां मत रहे, जल्दी समुद्रको चला जा ॥ ६० ॥ और
अपने साथ अपने बंधु, पुत्र और स्त्रियोंको ले ले. इस नदीका गैयां और मनुष्य उपभोग करेंगे. जो मनुष्य इस मेरी आज्ञाको जो
मैंने तुझसे कही है, दोनों संध्याके समय स्मरण करेगा, याकीर्तन करेगा; उसे तुम्हारा भय नहीं होगा ॥ ६१ ॥ मेरे क्रीड़ाके स्थान इस

श्रीशुक उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः ॥ नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि माचिरम् ॥ स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यते नदी ॥ ६० ॥ य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ कीर्तयन्नुभयोः संध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ॥ उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ॥ यद्भयात्ससुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलांछितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥

दहमें स्नान कर, जो मनुष्य जलसे देवताआदिकका तर्पण करेगा और उपवास कर, मेरा स्मरण करता पूजन करेगा, वह सब
पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ६२ ॥ जिस गरुड़के भयसे तूने रमणकद्वीपको छोड़ इस दहका आश्रय लिया है, अब वह
तुझे नहीं खायगा क्योंकि तेरे सिरपर मेरे चरणोंका चिन्ह है ॥ ६३ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले
कि–अद्भुतचरित भगवान श्रीकृष्णने जब ऐसा कहा, तद नाग और नागपत्नियोंने आदरसहित आनंदपूर्वक भगवा-

१ यह कालिय नाग कौन था ? और इसके मस्तकोंपै भगवत्‌के चरणोंका स्पर्श कैसे भया ? क्योंकि जिस चरणारविन्दकी रज बहुत जन्मोंसे योगियोंकोभी दुर्लभ है, तहां कहे हैं, कि–पूर्वकालमें स्वायंभुव मन्वन्तरके मध्य, विन्ध्याचल पहाड़में कोईएक भृगुवंशावतंश 'वेदशिरा' नामके मुनि तप करते थे, इतनेमें वहांही दूसरे कोई 'अश्वशिरा' नाम मुनि तप करनेके लिये गये. इन्हें देखतेही लाल नेत्र कर, क्रोधसे 'वेदशिरा' मुनिने कहा कि– मेरे आश्रमके पास तू तप मत कर, करेगा तो सुखी न होगा. और तेरे तप करनेलायक क्या यही जगा है ? दूसरी पृथ्वी डूब गयी ? यह सुन, क्रोधसे लाल आंखें कर, 'अश्वशिरा'–ने उत्तर दिया. कि–यह संपूर्ण पृथ्वी महाप्रभु श्रीविष्णुजीकी है और इसमें न मालुम कितनेएक महात्मावोंने तप किया हो. तिसपर तू खाली ममता बांध, वृथा क्रोध करता है और सर्पके जैसे फुंकारता है इससे जा तू सदा सर्परूप हो रहेगा. वहांभी तेरेको गरुड़जीसे भय होगा. यह श्राप सुन, क्रोधसे जलते हुये 'वेदशिरा' मुनिने कहा कि–अरे रे दुष्टबुद्धि ! जिससे तूने थोड़े अपराधमें कागड़ेके समान कांव २ करके, मेरे लिये इतना बड़ा उग्र श्राप दिया अतएव जा तूभी काग

इस मूर्खपर आपको क्षमा करनी चाहिये ॥ ५१ ॥ हे भगवन् ! अनुग्रह कीजिये, यह नाग मरता है, सत्पुरुषोंके शोचनीय हम स्त्रियोंपर कृपा कर, पतिरूप प्राण दीजिये ॥ ५२ ॥ हमको जो आज्ञा करनी हो सो कीजिये, हम आपकी दासियां हैं, आपकी आज्ञाका जो श्रद्धासे पालन करता है वह सब भयसे मुक्त हो जाता है ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-ऐसे जब नागपत्नियोंने भगवानकी स्तुति करी, तब चरणप्रहारसे भग्नसिर मूर्छित नागको छोड़ दिया ॥ ५४ ॥ शनैः शनैः वह दीन

अनुगृह्णीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः ॥ स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५२ ॥ विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ॥ यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्समभिष्टुतः ॥ मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥ प्रतिलब्धेंद्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ॥ कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राह कृतांजलिः ॥ ५५ ॥ वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ॥ स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ५६ ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् ॥ नानास्वभाववीर्यौजो योनिबीजाशयाकृति ॥ ५७ ॥ वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवः ॥ कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥ ५९ ॥

कालिय सचेत हो, हाथ जोड़, कष्टसे श्वास लेता श्रीकृष्णचंद्र हरि भगवानसे अर्ज करने लगा कि- ॥ ५५ ॥ हे नाथ ! हम जन्महीसे खल, तमोगुणी, बड़े क्रोधी हैं, स्वभावका छूटना अशक्य है, कि-जिससे लोगोंको मिथ्या आग्रह बँध रहा है ॥ ५६ ॥ हे विधाता ! गुणोंसे विविधप्रकारसे रचा हुआ और जिसके स्वभाव, शक्ति, बल, योनि, बीज, संस्कार और आकृतियां ये सब भिन्न भिन्न हैं ऐसा, यह जगत आपहीका रचा हुआ है ॥ ५७ ॥ हे भगवन् ! उसमें हम तो जन्महीसे बड़े क्रोधी सर्प हैं और आपहीसे मोहित किये गयेहैं, सो आपकी दुस्त्यज मायाको कैसे छोड़ सकें ? ॥ ५८ ॥ आपकी मायाके त्यागमें

सिद्ध ज्ञानमान, वेदके कारण, प्रवृत्तिनिवृत्तिके प्रतिपादक, वेदरूप आपको प्रणाम है ॥ ४४ ॥ रामकृष्णरूप, वसुदेवके पुत्र यानी संकर्षण वासुदेव प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप, भक्तोंके पति, चतुर्मूर्ति आपको प्रणाम है ॥ ४५ ॥ अंतःकरणके प्रकाशक, गुणोंसे अपने स्वरूपके आच्छादक, चित्तादिकोंकी वृत्तियोंसे उपलक्ष्य, चित्तादिकनके साक्षी व अगोचर ॥ ४६ ॥ अतर्क्यमहिमावाले, सर्व कार्योंकी उत्पत्ति और प्रकाशद्वारा लखनेके योग्य, इंद्रियोंके प्रवर्त्तक, आत्माराम और आत्मारामताही जिनका स्वभाव है ऐसे, आपको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ स्थूलसूक्ष्मकी गतिके ज्ञाता, अतएव सर्वत्र अनासक्त, सर्वके अधिष्ठाता, निषेधके

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतांपतये नमः ॥४५॥ नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च ॥ गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥४६॥ अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ॥ हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥ अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ॥ तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥ तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शांता अशांता उत मूढयोनयः ॥ शांताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सये हतः ॥ ५० ॥ अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ॥ क्षंतुमर्हसि शांतात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५१ ॥

अवधिरूप, जगतरूप विवर्तके अधिष्ठान अध्यास और अपवादके साक्षी, विद्या और अविद्यासे अपवाद और अध्यासके हेतु आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ हे प्रभु ! कालशक्तिके धारक वस्तुतः क्रियारहित आप इस जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार करते हो. अमोघचरित्र आप अपनी इच्छासे उन उन संस्काररूपसे रहे स्वभावोंको प्रतिबोधन करते क्रीड़ा करते हो ॥ ४९ ॥ त्रिलोकीमें शांत, अशांत और मूढ़ अर्थात् सात्विक, राजस, तामस जितने शरीर हैं, वे सब आपहीके क्रीड़ाके साधनरूप हैं. तथापि अभी आपको शांतस्वरूपही प्रिय हैं; क्योंकि सत्पुरुषोंके धर्मपालनकी इच्छासे प्रवृत्ति करते आपने अभी उन्हींकी रक्षाके निमित्त अवतार लिया है ॥ ५० ॥ स्वामीको एकबेर अपनी प्रजाका अपराध अवश्य क्षमा करना चाहिये. हे शांतमूर्ति ! अनजान

व्रत धारण कर,सब कामना छोड़, बहुत असेंतक तप किया है ॥ ३६ ॥ क्योंकि जो आपकी चरणरजके शरण हैं, वे न तो स्वर्ग, न चक्रवर्ती राज, न ब्रह्मलोक, न पातालका राज, न योगकी सिद्धियां और न मोक्ष चाहते हैं ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! अन्य पुरुषोंसे दुर्लभ ऐसी आपकी चरणरजको तमोगुणसे उत्पन्न और क्रोधवश यह नाग विना श्रमही प्राप्त हुआ. संसारचक्रमें भ्रमण करता प्राणी जिस चरणरजकी इच्छा करतेही अपेक्षित संपत्तिको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ उन भगवान्, महात्मा, आकाशादिक पंचभूतोंके आश्रयरूप, अंतर्यामी, सर्वके आदिकारण, परमकारण परमात्माको हम प्रणाम करतीं हैं ॥ ३९ ॥ ज्ञान तथा विज्ञानके निधि, ब्रह्म, अनंतशक्ति,

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वांछंति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तदेष नाथाप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ॥ संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥ अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥ ४० ॥ कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ॥ विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेंद्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥ त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनंताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ॥ नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥ नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमोनमः ॥ ४४ ॥

निर्गुण, निर्विकार, प्रकृतिके प्रवर्तक आपको प्रणाम करतीं हैं ॥ ४० ॥ कालरूप कालशक्तिके आश्रयरूप, कालके अवयवोंके साक्षी, विश्वरूप, विश्वके द्रष्टा और विश्वके कर्त्ता, विश्वके हेतु आपको प्रणाम है ॥ ४१ ॥ पंच महाभूत, तन्मात्रा, इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और चित्त इन सबके आत्मा अर्थात् सर्वकारकरूप, त्रिगुण अहंकारसे अपने अंशरूप जीवोंके अनुभवका आच्छादन करनहारे, आपको प्रणाम है ॥ ४२ ॥ अनंत, सूक्ष्म, कूटस्थ, सर्वज्ञ, अनेक वादोंके अनुसरण करनहारे, वाच्य (अभिधेय) वाचक (अभिधान) की शक्ति भेदसे नानारूपसे प्रतीयमान आपको प्रणाम है ॥ ४३ ॥ चक्षुरादि इंद्रियोंके इंद्रियरूप, स्वतः

हैं ऐसे कालिय नागको देख, जिनके वस्त्र, आभूषण और केशबंध शिथिल हो गये हैं ऐसी अत्यंत आर्त इसकी नागपत्नियां भगवानके शरण आयीं ॥ ३१ ॥ अतिउद्विग्नचित्त, पतिव्रता, पतिको दुःखसे छुड़ानेकी इच्छावालीं उन नागपत्नियोंने अपने बच्चोंको आगे कर, शरण देनेवाले भगवानके शरण आ, हाथ जोड़, अपने शरीरको पृथ्वीपर पटक, यानी दंडकी तरह साष्टांग प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ नागपत्नियां बोलीं कि- इस अपराधीको जो दंड किया सो न्यायप्राप्त है; क्योंकि आपका अवतार दुष्टोंको दंड देनेके वास्ते है, आप जो दंड देते हो सो फलका विचार करकेही देते हो; क्योंकि आप तो शत्रु और पुत्रपर सम-

तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ॥ साध्व्यः कृतांजलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२॥ नागपत्न्य ऊचुः ॥ न्याय्यो हि दंडः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ॥ रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो दंडोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ॥ यद्दंदशूकत्वममुष्य देहिनः ॥ क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥ ३४ ॥ तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन ॥ धर्मोऽथवा सर्वजनानुकंपया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥ ३५ ॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवांघ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ॥ यद्वांछया श्रीर्ललनाचरत्तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥

दृष्टि हो ॥ ३३ ॥ यह आपने हमारे ऊपर अनुग्रहही किया है, क्योंकि आपके दंडसे अपराधीका अपराध निवृत्त हो जाता है, इस प्राणीको जिससे सर्पशरीर मिला वह पाप आपके कोपसे शांत हुआ. इसलिये आपके क्रोधकोभी अनुग्रहही मानना चाहिये ॥ ३४ ॥ इसने पूर्वजन्ममें ऐसा क्या तप वा धर्म किया है? जिससे सबके जिलानेवाले आप इसपर प्रसन्न हुए हो. अवश्य इसने मान छोड़, दूसरोंको मान दिया है और सब लोगोंपर दया करी है, नहीं तो आप कभी प्रसन्न न होते ॥ ३५ ॥ इस बातको हम नहीं जानतीं कि-किसके प्रभावसे यह आपके चरणरजके स्पर्शका अधिकारी हुआ, जिस चरणरजकी इच्छासे लक्ष्मीजीनेभी

अरुण हो रहे थे ॥ २६ ॥ जब आप नृत्य करनेको उद्युक्त हुए, तब तिन्हें देख, भगवदीय गंधर्व, सिद्ध, देव, चारण, अप्सरा, ये सब आनंदपूर्वक तुरत मृदंग, पणव, आनक आदि अनेक प्रकारके बाजे, गीत, पुष्प, भेंट स्तुतिसे सेवा करने आ उपस्थित हुए ॥ २७ ॥ हे अंग ! जिसके सौ मुख्य मस्तक हैं ऐसा कालिया नाग, यद्यपि उसकी आयुष्य क्षीण होगयी थी, तथापि घूमाकिया. औ उसका जो जो शिर नीचा नहीं नमता यानी उसने जो शिर उठाया, उसीको दुष्टदमन भगवानने अपने चरण-पातसे मर्दन किया. उस काल वह नाग मुख और नाकमेंसे लोहूका वमन करता महाकष्टको प्राप्त हुआ ॥ २८ ॥ क्रोधसे ऊंचा

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगंधर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ॥ प्रीत्या मृदंगपणवानकवाद्यगीतपुष्पो-पहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥ यद्यच्छिरो न नमतेऽग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्द खरदंडधरों-घ्रिपातैः ॥ क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ्नस्तो वमन्परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥ तस्या-क्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ॥ नृत्यन्पदाऽनुनमयन्दमयांबभूव पु-ष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः ॥ २९ ॥ तच्चित्रतांडवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्न-गात्रः ॥ स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥ कृष्णस्य गर्भज-गतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ॥ दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबंधाः ॥ ३१ ॥

श्वास लेता और नेत्रोंमेंसे गरल उगलता यह नाग शिरोंमेंसे जिस जिस शिरको उठाता है, उसी शिरको नृत्य करते भगवानने अपने चरणसे नमाय नागका दमन किया. उस समय गंधर्वादिक देवतानने जो पुष्पोंकी वर्षा की तिससे गोपोंको आप पुराण-पुरुषके जैसे दृष्टि आये ॥ २९ ॥ महाराज ! भगवानके विचित्र तांडवसे जिसके फणरूप छत्र टूट पड़े ऐसा, वह नाग मुखोंमेंसे रक्त उगलता, भग्नशरीर हो, श्रीकृष्णचंद्रको चराचरके गुरु, पुराणपुरुष और नारायण समझ, मनसे उनके शरणागत हुआ ॥ ३० ॥ जिनके उदरमें सकल जगत है ऐसे भगवानके बहुत भारसे पीड़ित और पैनी (एंडी) के प्रहारसे जिसके फणरूप छत्र टूट गये,

श्रीकृष्णके प्रभावको जानते हैं ॥ २२ ॥ ऐसे अपने गोकुलको अनन्य शरण देख, अपने वास्ते स्त्री, बालक सहित सबको अतिदुःखी जान, मनुष्यपदवीका अनुकरण करते भगवान दो घड़ी उसी स्थितिमें रहकर, फिर सर्पके बंधनसे छूट गये ॥ २३ ॥ जो आपने शरीर बढ़ाया, तो उसका शरीर पीड़ित होने लगा, तब वह सर्प बंधनको छोड़, क्रोधकर, अपने फण उठाय, श्वास लेता केवल श्रीकृष्णचंद्रको देखता खड़ा रहा. कैसा है वह सर्प, कि- जिसके नाकमेंसे जहर निकल रहा है. आंवांके समान

इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ॥ आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरंगबंधात् ॥ २३ ॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजंगः ॥ तस्थौ श्वसन् श्वसनरंध्रविषांबरीषः स्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥ २४ ॥ तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ॥ क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेंद्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमाक्षमाणः ॥ २५ ॥ एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः ॥ तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादांबुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥ २६ ॥

संतप्त और स्तब्ध नेत्र हैं और मुखमेंसे ज्वाला निकलरहीं हैं ॥ २४ ॥ दो शिखावाली जीभसे दोनों गलाफोंको चाट रहा है ऐसे अतिविकराल विषाग्निसे भरित दृष्टिवाले इस सर्पके चारोंओर क्रीड़ा करते भगवान् गरुड़के समान फिरने लगे और वहभी अवसर देखता हुआ भगवानके चौतर्फ फिरने लगा ॥ २५ ॥ ऐसे फिरते फिरते जब उसका पराक्रम नष्ट होगया, तब उन्नतस्कंध सर्पको नीचा नमाय, वे आदिपुरुष उसके मोटे शिरोंपर चढ़ बैठे, यदपि उसके शिर चंचल हैं, तोभी उनपर नृत्य करने लगे; क्योंकि आप तो सर्व कलाओंके आदिगुरु हैं, उस समय भगवानके चरणकमल उसके मस्तकके रत्नसमूहके स्पर्शसे अति-

१ रागिनी खम्माच ॥ नाचत हरि उरगशीस थिरक थिरक आली ॥ नटवरवर वेष धरे मुक्ताफल माल गरे मोरमुकुट शीस धरे अँखियन कछु लाली ॥ बाजत बंशी विशाल गावत स्वर भर रसाल शोभानिधि नन्दलाल अमितभाग्यशाली ॥ नूपुर पद देत मान तोरत अहिशीस तान परत चरण गिरिसमान रुधिर वमत काली ॥ कद्रूसुत अतिअधीन पाहि पाहि करत दीन हम जड़ खल भक्तिहीन वृथा देह पाली ॥ अब तो प्रभु समुझ दास कीजे मोहिं जनि निराश शरणागत हरिविलाश सुधि ले वनमाली ॥ १ ॥

उनके लल्सा लग रही थी ॥ १५ ॥ भगवान् बलरामजी उन्हें ऐसे कायर देख, हँसे; परंतु कुछ न बोले; क्योंकि आप तो अपने छोटेभाईका प्रभाव जानते हैं ॥ १६ ॥ वे प्यारे कृष्णको ढूंढ़ते ढूंढ़ते भगवानके लक्षणवाले चरणोंसे सूचित मार्गसे यमुनाजीके तटपै पहुंचे ॥ १७ ॥ हे अंग ! वे लोग तहाँ तहाँ कमल, यव, अंकुश, वज्र ध्वजा इन चिन्होंवाले भगवान्के चरणोंको दूसरोंके पाँवोंके बीचमें देखते देखते जल्दी गये, जैसे योगीजन वेदके मार्गमें परमतत्वको ढूंढ़ा करते हैं ॥ १८ ॥ वे सब ह्रदके अंदर दूसरे सर्पशरीरसे वेष्टित निश्चेष्ट श्रीकृष्णको व जलाशयके समीप मूर्छा पायेहुए गोपोंको और पुकार डारते पशुनको

तांस्तथा कातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः ॥ प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ॥ भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥ ते तत्र तत्राब्जयवांकुशाशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः ॥ मार्गे गवामन्यपदांतरांतरे निरीक्षमाणा ययुरंग सत्वराः ॥ १८ ॥ अंतर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयांते ॥ गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च संक्रंदतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनंते तत्सौहृदः स्मितविलोकगिरः स्मरंत्यः ॥ ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥ ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवंत्यः ॥ तास्ताव्रजप्रियकथाः कथयंत्य आसन्कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशतो नंदादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् ॥ प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥ २२ ॥

देख, आर्त हो, महामोहको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ जिनका मन अनंत भगवानमें अनुरक्त है ऐसी गोपियां भगवानका स्नेह, मंदहास्य, कटाक्ष और वचनोंका स्मरण करती प्रियतमको सर्पग्रस्त देख, दुःखसे अतितप्त हो, अपने प्यारे विना त्रिलोकीको शून्य देखने लगीं ॥ २० ॥ यशोदाजी पुत्रके पीछे जो जलमें गिरने लगीं, तो उन्हें पकड़, आंसू डारतीं, बराबर दुःख करतीं, उन व्रजमेंकी प्यारी भगवानकी लीलाओंका वर्णन करतीं, भगवानके मुखके सन्मुख दृष्टि दे, गोपियां मृतकके समान हो गयीं ॥२१॥ जिनके प्राण श्रीकृष्णही हैं ऐसे नंदादिक गोपोंको ह्रदमें गिरते देख, भगवान् बलरामजीने मना किया, क्योंकि आप तो

भुजदंडसे ताड़ित जलका शब्द सुनतेही, अपने घरका तिरस्कार हुआ समझ, उसका सहन न करता वह सर्प आया ॥ ८ ॥ दर्शनीय, सुकुमार, मेघबरन, श्रीवत्सका चिन्ह धारण किये, पीतपट ओढ़े, मंद मुसक्यानसहित सुंदर मुख, कमलके गर्भके सदृश चरणवारे भगवान्‌को निर्भय क्रीड़ा करते देख, मर्मस्थानोंमें डँस, क्रोध कर, अपने शरीरसे लपेट लिया ॥ ९ ॥ उन्हें सर्पके शरीरसे वेष्टित और निश्चेष्ट देख, उनके प्यारे मित्र गोप अतिदुःखी हुए. और भयसे चेतनाहीन होकर, गिरगये; क्योंकि उनके तो आत्मा, मित्र, धन, स्त्री और भोग सब कृष्णकेही अर्पण थे ॥ १० ॥ गैया, बैल, छोटे बछरे

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुंदरास्यम् ॥ क्रीडंतमप्रतिभयं कमलोदरांघ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥ तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ॥ कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥ गावो वृषा वत्सतर्यः क्रंदमानाः सुदुःखिताः ॥ कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदत्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ॥ उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नंदपुरोगमाः ॥ विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ॥ तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वेंऽग पशुवृत्तयः ॥ निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥

ये सब दुःखी हो, रांभने लगे, सब डरते हुए कृष्णचंद्रमें दृष्टि दे, मानों रोते हों ऐसे ठाढ़े रहे ॥ ११ ॥ फिर व्रजमें तुरंतही अतिदारुण, तुर्त भय दिखलानेवाले बड़े बड़े उत्पात क्या पृथ्वीमें क्या आकाशमें और क्या शरीरमें, सबमें होने लगे ॥ १२ ॥ नंदआदि गोप उन उत्पातोंको देख, भयसे उद्विग्नचित्त हुए; क्योंकि उन्होंने जान लिया कि—आज कृष्णचंद्र बलरामजीविना गौ चराने वनमें गये हैं ॥ १३ ॥ वा अनजान गोप उन उत्पातोंसे श्रीकृष्णको मृत्युको प्राप्त समझ, दुःख, शोच और भयसे आतुर होगये; क्योंकि उनके प्राण और मन उन्ही कृष्णके आधीन हैं ॥ १४ ॥ हे अंग ! तमाम पशुवृत्तिवाले क्या स्त्री, क्या बालक और क्या वृद्ध, सबके सब दीन हो. गोकुलसे बाहर निकले; क्योंकि—कृष्णके दर्शनकी

उदार चरितरूप अमृतका सेवन करता कौन नर तृप्त हो जाय ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–यमुनाजीमें एक कालियका ह्रद था, जिसमें उसके विषकी अग्निसे जल खौलता रहता था और परिंद ऊपरसे गिर जाते थे ॥ ४ ॥ और चराचर जीव जिस ह्रदके तीरपर जातेही जहरीले जलकी तरंगके जलबिंदुमिश्रित पवनके लगतेही मर जाते ॥ ५ ॥ उग्रवेग, जहरही जिसका पराक्रम है ऐसे उस सर्पको और उससे दुष्ट यमुनाजीको देख, श्रीकृष्ण चंद्र, कि–जिन्होंने केवल दुष्टोंका निग्रह करनेको अवतार धारण किया है,

श्रीशुक उवाच ॥ कालिंद्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद्विषाग्निना ॥ श्रप्यमाणपयो यस्मिन्पतंत्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥ विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ॥ म्रियंते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥ ५ ॥ तं चंडवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ॥ कृष्णः कदंबमधिरुह्य ततोऽतितुंगमास्फोट्य गाढरशनोन्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसितांबुराशिः ॥ पर्यक्प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन्धनुःशतमनंतबलस्य किं तत् ॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदंडघूर्णवार्घोषमंगवरवारणविक्रमस्य ॥ आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥

वे लंगोट कस, खम ठोंक, वहांसे बहुत ऊंचे एक कदंबके[1] वृक्षपर चढ़, जहरीले जलमें कूद पड़े ॥ ६ ॥ तिस समय उस कालियदहका जल पुरुषश्रेष्ठ भगवानके कूदनेके वेगसे क्षोभित हुआ जो सर्प तिसके विषके प्रभावसे बहुत ऊंचा चढ़ गया. जहरके प्रभावसे कषाय और भयंकर लहरें आने लगीं. और जल चारों ओर सौ सौ धनुष[2] फैल गया. महाराज ! इसमें क्या आश्चर्यकी बात है ? क्योंकि भगवान् अनंतबल हैं ॥ ७ ॥ हे अंग ! जिनका उत्तम हाथीसा पराक्रम है ऐसे दहमें विहार करते भगवानके

---

१ इस वृक्षके जहरसे न जलनेका एक कारण तो भगवानके भावी चरणस्पर्शका प्रताप है. दूसरा–गरुड़ जिस समय अमृत लेकर, आये उस समय इसपर बैठे तिनको प्रभाव है यह कथा पुराणांतरमें है.

२ अष्टभिर्यवमध्यैः स्यादङ्गुलं तैस्त्रिभिर्भवेत् ॥ तालं त्रितालको हस्तो हस्तौ द्वौ किष्कुरुच्यते ॥ किष्कुद्वयं धनुः प्रोक्तमिति ज्ञेयम् ॥ अर्थ–यवके आठ मध्यभागोंसे एक अंगुल होता है, उन तीन अंगुलोंसे ताल होता है, तीन तालोंसे एक हस्त होता है, दो हस्तोंको किष्कु कहते हैं और दो किष्कुवोंका धनुष होता है. ऐसे जानना ॥

सके मारे जहरसे दूषित यमुनाजीका दुष्ट जल पिया ॥ ४८ ॥ जहरके जलका स्पर्श करतेही हे राजा ! वे सब दैवसे चेतनाहीन यानी मूर्छित हो, जलके समीप मरकर; गिर गये ॥ ४९ ॥ उन्हें इस दशाको प्राप्त हुए देख, योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवानने अमृत बरसनेवारी अपनी दृष्टिसे सबको पीछा जीवित किया; क्योंकि उनके स्वामी आपही हैं ॥ ५० ॥ वे सब सचेत हो, जलके समीपसे उठ, परस्पर देख देख, आश्चर्य करने लगे ॥ ५१ ॥ हे राजा ! उन्होंने यह भगवानकी कृपादृष्टिका प्रभाव समझा, कि-जो विष पी, मरेहुए अपने शरीरका पीछा उठ जाना, यानी सजीवित होना ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशम-

विषांभस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ॥ निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलांते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥ ५० ॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलांतिकात् ॥ आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥ अन्वमंसत तद्राजन् गोविंदानुग्रहेक्षितम् ॥ पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे धेनुकवधोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ॥ तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ कथमंतर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् ॥ स वै बहुयुगावासं यथाऽसीद्विप्र कथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छंदवर्तिनः ॥ गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥

स्कंधे पूर्वार्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ सोलहवें अध्यायमें यमुनाजीके ह्रदमें कालियका निग्रह, उसकी स्त्रियोंकी स्तुति, फिर भगवानका उनपर अनुग्रह ; यह कथा कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-यमुनाजीको कालिय सर्पसे दूषित देख, विभु श्रीकृष्णचंद्रने उसकी शुद्धि करनेका विचार कर, उस सर्पको वहांसे निकाल दिया ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! भगवानने गहरे जलके भीतर उस सर्पको कैसे दंड दिया ? और वह यमुनाजीमें बहुत युगोंतक किस कारणसे रहता था ? सो कहो ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! स्वच्छंदचारी उन भूमा भगवान्‌के गोपालपनके

त व्रजमें पधारे ॥ ४१ ॥ उन श्रीकृष्णचंद्रके दर्शन करनेकी इच्छासे इकट्ठी हो, गोपियां सन्मुख आयीं, कैसे हैं भगवान् कि जिनके केशोंमें गैयानके खुरोंकी रज लग रही है मोरपिच्छ और वनके पुष्प गुथे हुये हैं, सुंदर नेत्र और सुंदर हास्य है, मुरली बजाय रहे हैं और अनुचर पीछे पीछे यश गाय रहे हैं ॥ ४२ ॥ भगवान्के मुखरूप मधुका नेत्ररूप भौंरोंसे पान कर, व्रजकी स्त्रियोंने दिनके विरहका ताप दूर किया. गोपियोंने लज्जासहित हास और विनयपूर्वक कटाक्षसे जो सत्कार किया, उसे

तं गोरजश्छुरितकुंतलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ॥ वेणुं क्वणंतमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुंदमुखसारघमक्षिभृंगैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ॥ तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपांगमोक्षम् ॥ ४३ ॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ॥ यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥ गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ॥ नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गंधमडितौ ॥ ४५ ॥ जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ॥ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥ एवं स भगवान्कृष्णो वृंदावनचरः क्वचित् ॥ ययौ राममृते राजन्कालिंदीं सखिभिर्वृतः ॥ ४७ ॥ अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥ ४८ ॥

अंगीकार कर, आप व्रजमें पधारे ॥ ४३ ॥ पुत्रवत्सल यशोदा और रोहिणी अपने पुत्रोंकी इच्छानुसार समय समयपर उत्तम तैयारियां तैयार रखतीं थीं ॥ ४४ ॥ वहां व्रजमें स्नान और मर्दनादिकसे इन दोनों भाइयोंका परिश्रम मिट गया, तब सुंदर वस्त्र और दिव्य पुष्पोंकी माला पहन, दिव्य चंदन चरच ॥ ४५ ॥ बड़े प्यारसे मातानका लायाहुआ मिष्टान्न भोजन कर, सुंदर शय्यामें लेट, आनंदसे पौढ़े ॥ ४६ ॥ ऐसे वे श्रीकृष्ण भगवान् वृंदावनमें विहार किया करते. महाराज ! एक दिवस बलरामजीके विना सब सखागणको संग ले, भगवान् यमुनाजीपर पधारे ॥ ४७ ॥ वहां गैयों और गोपोंने ग्रीष्मकी धूपसे पीड़ित हो, प्या-

इस दैत्यके शरीरके पछाड़नेसे कंपायमान, पासके ताड़कोभी कंपित करता बड़े शिरवाला वह ताड़का बड़ा वृक्ष गिरपड़ा उससे दूसरा गिरपड़ा और उससे तीसरा ॥ ३३ ॥ बलरामजीने जो लीलाहीसे, गधोंको चलाया, उनके शरीरोंसे सब तालवृक्ष ऐसे कांपने लगे, कि-मानों महावायुसेही कंपायमान कियेगये हैं ॥ ३४ ॥ अनंत और जगदीश्वर बलदेवजीके पराक्रममें कोई यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि सब जगत् उनमें ओतप्रोत है, जैसे तंतुओंमें पट ॥ ३५ ॥ फिर धेनुकके नाती, जिनका बंधु मरगया है, वे

तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः॥ पार्श्वस्थं कंपयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ॥ तालाश्चकंपिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनंते जगदीश्वरे ॥ ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तंतुष्वंग यथा पटः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णं च रामं च जातयो धेनुकस्य ये॥ क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबांधवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया ॥ गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥ फलप्रकरसंकीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः ॥ रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥ तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य विबुधादयः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः ॥ तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥ कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥

सब गधे क्रोध कर, राम-कृष्णपर दौड़े ॥ ३६ ॥ जो जो गधे आये, उनके पिछले पांव पकड़ पकड़, रामकृष्णने लीलाहीसे ताड़वृक्षोंपे फेंकदिये ॥ ३७ ॥ उस समय पृथ्वी फलोंके ढेरसे, मरेहुये गधोंसे लोथोंकी और ताड़ोंकी शाखाओंसे ऐसी शोभा देने लगी, जैसा बादलसे आकाश ॥ ३८ ॥ रामकृष्णका यह बड़ा चरित देख, देवताआदिनने पुष्प बरसाये, बाजे बजाये और स्तुति करी ॥ ३९ ॥ फिर मनुष्य, निर्भय हो, फल खाने लगे, धेनुकके मरनेपर वनमें पशुभी घास निडर चरने लगे ॥ ४० ॥ जिनका पवित्र श्रवण कीर्तन है, अनुचर गोप स्तुति कर रहे हैं, ऐसे कमलदलनयन भगवान् श्रीकृष्ण बलभद्रसहि-

हे कृष्ण ! हे राम ! वे फल हमें दो, हमारा चित्त उनके सुगंधसे मोहित होगया है हमारी बड़ी इच्छा है, यदि आपका जी चाहे तो पधारें ॥२६॥ ऐसे मित्रोंके वचन सुन, मित्रोंको प्रसन्न करनेकी इच्छासे दोनों भाई हँसकर, गोपोंके साथ तालवनमें पधारे ॥ २७॥ बलरामजी वनमें जाय, हाथोंसे तालके वृक्षोंको कँपाय, फल गिराने लगे; जैसे मत्त हाथी पराक्रम कर, गिराता हो ॥ २८ ॥ फलोंके

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गंधलोभितचेतसाम् ॥ वाञ्छाऽस्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥ २६ ॥ एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ॥ प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७ ॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्संपरिकंपयन् ॥ फलानि पातयामास मतंगज इवौजसा ॥ २८ ॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः ॥ अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकंपयन् ॥ २९ ॥ समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ॥ निहत्योरसि काशब्दं मुंचन्पर्यसरत्खलः ॥ ३० ॥ पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः ॥ चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥ स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ॥ चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥

गिरनेका शब्द सुनतेही वह गधारूप दैत्य वृक्षोंसहित पृथ्वीतलको कंपायमान करता दौड़कर, आया ॥ २९ ॥ तुरत आय, बलरामजीके वक्षःस्थलमें पिछले दोनों पावोंसे लात मार, रींकता हुआ यह बलवान् दुष्ट दैत्य चारों ओर फिरने लगे ॥ ३० ॥ महाराज ! क्रोधाविष्ट इस गधेने पीछा आ, उलटे मुंह खड़ा हो, क्रोधसे बलभद्रपर पिछले पांव चलाये ॥ ३१ ॥ बलरामजीने एक हाथसे उसके पिछले पांव पकड़, फिराय, फिराय, उसके प्राण निकाल, उसे ताड़के वृक्षोंमें पछाड़ा ॥ ३२ ॥

---

१ यह धेनुकासुर कौन था ? और गधेका रूप कैसे पाया ? तथा कृष्णने इसे क्यों न मारा ? और बलदेवें दाऊसे क्यों मारा गया ? तहां कहे हैं कि–यह साहसिक नामका बलिनाम दानवका पुत्र था. सो कोई दिन इसने दश १०००० हजार स्त्रियें संगमें ले, गंधमादन पहाड़में जाय, क्रीड़ा करी. तो गाजे बाजे तथा औरतोंके पाजेब वगैरःके शब्दोंसे उसकी कन्दरामें बैठे हुए दुर्वासा मुनिका भगवत्सम्बंधी ध्यान छूट गया. तद सहजक्रोधशील मुनिने खड़ाऊं पहन, कन्दरासे बाहर निकल, इसे देख, श्राप दिया कि–रे दुष्ट ! जिससे तू गधेकी समान रमता है इससे जा तू गधा होगा, फेर उद्धार करते कहा कि–चार लक्ष ४००००० वर्षके बाद बलदेवजीके हाथसे तेरी मुक्ति होगी. इसीसे बलदेवजीने मारा. कृष्णजीने न मारा. दूसरे भगवानने प्रल्हादको वर दिया. था कि–तुम्हारा वंश अब हम नहीं मारेंगे ॥ ग० ॥

पत्तेआदिके पंखे बनाय, हवा कर रहे हैं ॥ १७ ॥ महाराज ! स्नेहसे आर्द्रबुद्धि कितने एक ग्वाल उन महात्माके मनोहर अनुरूप चरित धीरे धीरे गाय रहे हैं ॥ १८ ॥ ऐसे चरित्रोंसे गोपबालपनका विडंबन करते श्रीकृष्णचंद्र कि-जिनकी अपना स्वभाव गुप्त रखनेपरभी ईश्वरपनकी लीला दृष्टि आती थी और लक्ष्मी जिनके चरणकमलोंको लड़ा रही है. उन्होंने ग्रामीण लोगोंके साथ क्रीड़ा करी ॥ १९ ॥ बलराम और श्रीकृष्णका सखा श्रीदामानाम गोप और सुबल, स्तोक, कृष्णादिक गोप प्रेमसहित यह वक्ष्यमाण वचन बोले कि- ॥ २० ॥ हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! दुष्टोंको दंड देनेवाले ! हे कृष्ण ! यहांसे थोड़ी

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ॥ गायंति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥ एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडंबयन् ॥ रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९ ॥ श्रीदामानाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ॥ सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥ राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥ २१ ॥ फलानि तत्र भूरीणि पतंति पतितानि च ॥ संति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥ २२ ॥ सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ॥ आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् ॥ न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यंतेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ॥ एष वै सुरभिर्गंधो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥

दूरपर तालवृक्षोंकी पंक्तिसे भराहुआ एक बड़ा भारी बन है ॥ २१ ॥ वहां बहुतसे फल पड़े हुए हैं और पड़ते हैं, परंतु दुष्ट धेनुकासुरसे रुके हुए हैं ॥ २२ ॥ हे राम ! हे कृष्ण ! वह दैत्य बड़ा बलवान् गधेका रूप किये रहता है और उससे पास उसके समान बलवाले उसकी जातिके दूसरे बहुतसे दैत्य रहते हैं, जिनसे वह सदा घिरा रहता है ॥ २३ ॥ हे शत्रुके नाशक ! मनुष्योंको खानेवाले इस दैत्यके भयसे कोई मनुष्य उस वनमें नहीं जाता और पशु पक्षीभी उसको छोड़कर, बैठे हैं ॥ २४ ॥ वहां कभी नहीं खाये ऐसे सुगंधित फल हैं, यह सुगंध चारों ओरसे फैला हुआ चला आता है ॥ २५ ॥

प्रसन्नचित्त पर्वतके समीपकी नदियोंके तीरोंपै गैयानको चराते श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ क्रीड़ा करते थे ॥ ९ ॥ माला पहिरे बलदेवजीके साथ ग्वाल जिनके चरित गायरहे हैं ऐसे भगवान कभीतो मदांध भौरोंको गाते देख, आपभी उनके साथ गाते हैं, ॥ १० ॥ कभी हंसोंका शब्द सुन, उनका अनुकरण करते हैं, कभी बालकोंको हँसाते मयूरको नृत्य करता देख, आपभी उसके समान नाचते हैं, ॥ ११ ॥ कभी मेघके सदृश गंभीर और गोप गैयानको प्रिय लगे ऐसी वाणीसे नाम ले ले दूर गये पशुओंको प्रीतिपूर्वक बुलाते हैं ॥ १२ ॥ कभी चकोर, क्रौंच, चकवा, भारद्वाज, मोर इनका शब्द सुन, वैसाही शब्द करते हैं, कभी व्या-

क्वचिद्गायति गायत्सु मदांधालिष्वनुव्रतैः ॥ उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्व-चिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् ॥ अभिनृत्यति नृत्यंतं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥ ११ ॥ मे-घगंभीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् ॥ क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोर-क्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ॥ अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित्क्री-डापरिश्रांतं गोपोत्संगोपबर्हणम् ॥ स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतो गाय-तः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ॥ गृहीतहस्तौ गोपालान्हसंतौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥ क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ॥ वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपबर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ॥ अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥

घ्र सिंहोंको देख, भागते गोप गैयानको देख, आपभी भयभीत हो जैसे भागते हैं ॥ १३ ॥ किसीसमय क्रीड़ाके परिश्रमसे थके हुए बलदेवजी ग्वालके गोदकी तकिया बनाय पोढ़ते हैं, वा समय आप पांव दाबनेआदि चेष्टासे उनका परिश्रम दूर करते हैं ॥ १४ ॥ किसीसमय आपसमें हाथ पकड़ ठाढ़े और हँसते ये दोनों भाई परस्पर नाचते, गाते, कूदते, युद्ध करते ग्वालबालोंकी स्तुति करते हैं ॥ १५ ॥ कभी मल्लयुद्धके परिश्रमसे थके आप वृक्षके मूलका आश्रय ले, ग्वालके गोदकी तकि-या बनाय, कोमल पत्तोंकी शय्यामें पौढ़ते हैं ॥ १६ ॥ कई निष्पाप ग्वालबाल इन महात्मा श्रीकृष्णके पैर दाब रहे हैं, कई

साथ फल फूलके बहुत भारसे जिनकी शाखानके अग्र पांवोंमें लगरहे थे, ऐसे वृक्षोंको देख, आनंदसे मानों मुसकुराते भगवानने अपने अग्रज बलरामजीसे कहा ॥ ४ ॥ श्रीभगवानने कहा कि-अहो ! देवोत्तम ! ये वृक्ष अपने वृक्षजन्मके देनेवाले पापके नाशके लिये अपनी शिखाओंसे फल, फूलरूप पूजनके पदार्थ ले, आपका चरणारविंद जो देवतानकेभी पूज्य है, उसे प्रणाम करते हैं ॥ ५ ॥ हे आदिपुरुष ! सर्वलोगोंके तीर्थके समान आपकी कीर्तिका गान करते ये भौंरे अनुपद आपकी सेवा करते हैं, इसलिये प्रायः ये भौंरे आपके सेवकोंमेंसे मुख्य मुनि मालुम होते हैं; क्योंकि अपने दैवतरूप आप वनमें मनुष्यबेष बनाय

श्रीभगवानुवाच ॥ अहो अमी देववरामरार्चितं पादांबुजं ते सुमनः फलार्हणम् ॥ नमंत्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायंत आदिपुरुषानुपदं भजंते ॥ प्रायो अमी मुनिगता भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥ नृत्यंत्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वंति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ॥ सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥ ७ ॥ धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशा द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ॥ नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽतरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृंदावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ॥ रेमे संचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥

गुप्त रहे हो, तो येभी भौंरोंके रूपसे गुप्त होकर, आपकी सेवा करते हैं; हे अनघ ! यहांभी आपको नहीं छोड़ते ॥ ६ ॥ हे स्तुत्य ! आपके समीप ये मयूर नृत्य करते हैं; हरिणियां आनंदपूर्वक दृष्टिद्वारा गोपियोंके समान आपका प्रिय आचरण करतीं हैं; कोयलें मधुरशब्दोंसे आपकी सेवा करतीं हैं; तासों ये वनवासी धन्य हैं; अपने पास जो कुछ हो तो घर आयेको अर्पण करना, यही सत्पुरुषोंका स्वभाव है ॥ ७ ॥ आज यह पृथ्वी, घास और लता आपके चरणस्पर्श करनेसे धन्य हुये. ये वृक्षबेलि आपके नखस्पर्शसे धन्य हुये. नदी, पर्वत, पक्षी, पशु आपकी कृपाभरी दृष्टिसे धन्य हुए. गोपियां लक्ष्मीकेभी वांछनीय आपका वक्षःस्थल मिलनेसे धन्य हुईं ॥ ८ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-ऐसे वृंदावनकी शोभाको देख,

विषयोंको जो मनुष्य सुने अथवा गान करे, उसके सकल पुरुषार्थ सिद्ध होयं ॥ ६० ॥ ऐसेही आंखमिचोवल, सेतुबंध, बंदरोंके साथ कूदनाआदि अनेक कुमार अवस्थाकी लीलाओंसे श्रीकृष्ण और बलरामजीने व्रजमें कुमार अवस्था व्यतीत करी ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ पंद्रहवें अध्यायमें गायोंको बचाय, धेनुकासुरको मारा और कालिय नागके विषसे ग्वालोंकी रक्षा करी यह कथा होवेगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसंमतौ ॥ गाश्चारयंतौ सखिभिः समं पदैर्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥ पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥ तन्मंजुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःप्रख्यपयःसरस्वता ॥ वातेन जुष्टं शतपत्रगंधिना निरीक्ष्य रंतुं भगवान्मनोदधे ॥ ३ ॥ स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ॥ स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४ ॥

बोले कि-फिर पौगंड अवस्थामें वे दोनों भाई, व्रजमें गैयानके पालन करने योग्य हुए तहां गैयांनको चराते वे दोनों भाई मित्रोंके साथ वृंदावनको अपने चरणोंसे अतिपवित्र करते थे ॥ १ ॥ आपके यशका गान करते ग्वालबालोंसे वेष्टित, बंसी बजाते भगवान् गैयानको आगे कर, विहार करनेकी इच्छासे पशुओंके हितकारी पुष्पोंसे समृद्ध वनमें बलरामजीके साथ पधारे ॥ २ ॥ सुंदर शब्द करते भौंरे, मृग, पक्षियोंसे व्याप्त और महत्पुरुषोंके मनके समान स्वच्छ जलसे भरे तालावोंमेंसे आते कमलकी सुगंधियुक्त पवनसे सेवित उस वनको देख, भगवानने क्रीड़ा करनेको मन किया ॥ ३ ॥ तहां तहां अरुण पल्लवोंकी शोभाके

१ तद्गोचारणारंभदिनं तु पाद्मे उक्तम् । शुक्लाष्टमी कार्तिके तु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः ॥ तद्दिनाद्वासुदेवोऽभूद्गोपः पूर्वं तु वत्सपः ॥ अर्थ-वह गोचारणके प्रारंभका दिन पद्मपुराणमें कहा है. तद्यथा-कार्तिक महीनेमें जो शुक्लपक्षकी अष्टमी होती है. उसे विद्वज्जनोंने गोपाष्टमी कहा है. क्योंकि-पहले उसी दिनसे वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान गाई बछरे चरानेवाले हुये हैं ॥ १ ॥

आत्माही अतिप्रिय है और स्थावर जंगम सब जगतपर जो प्रेम होवे है, सो उसीके कारण होवे है ॥ ५४ ॥ ऐसे सकल प्राणियोंका प्रेमपात्र जो आत्मा है, सो श्रीकृष्णभी हैं. तासों उनपर प्रेमका होना संभवे है; वे श्रीकृष्णभी जगतके कल्याणार्थ जैसे देहधारी हों वैसे मायासे भासे हैं ॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णचंद्र केवल प्राणियोंहीके आत्मा नहीं हैं, किंतु जड़ पदार्थोंकेभी आत्मा हैं; वस्तुतः सर्व जगतके कारण श्रीकृष्णही हैं. ऐसे जाननेवाले पुरुषोंको सब चराचर भगवद्रूपही भासे है; क्योंकि कोईभी वस्तु यहां भगवानसे भिन्न नहीं है ॥ ५६ ॥ सब पदार्थोंका परमार्थसे विचार करिये तो कोईभी पदार्थ अपने अपने कारणोंसे भिन्न

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ॥ जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाऽऽभाति मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥ सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ॥ तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ॥ भवांबुधिर्वत्सपदं परंपदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥ ५८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ यत्कौमारे हरिकृतं पौगंडे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाद्वलजेमनं च ॥ व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥

नहीं है और जो जो कारण हैं सो भगवानसे भिन्न नहीं तासों कारणोंकेभी परमकारण भगवान् हैं, तासों भगवानसे कोई वस्तु भिन्न नहीं हो सकती. यदि भिन्न है ? तौ भला दिखलाओ ॥ ५७ ॥ पवित्रकीर्ति भगवानके चरणकमलरूप नाव, कि-जो महात्मापुरुषोंका आश्रय है, जो लोग उसका आश्रय करते हैं, वे संसारको वत्सपदके समान करते हैं, वैकुंठको प्राप्त होते हैं और विपत्तियोंका स्थान जो पुनर्भव उसे कभी प्राप्त नहीं होते ॥ ५८ ॥ हरि भगवानने कुमार अवस्थामें जो चरित्र किया, सो बालकनने पौगंड अवस्थामें गाया, उसका कारण जो तुमने पूंछा था सो सब यह मैंने कहा ॥ ५९ ॥ भगवानने मित्रोंके साथ क्रीड़ा करी, अघासुरको मारा, हरियाली भूमिमें भोजन किया, शुद्ध सत्वात्मकरूप दिखलाया, ब्रह्माजीने बहुत स्तुति करी, इन सर्व

कीर्ति गाय रहे हैं और जिनका दर्शन गोपियोंकी दृष्टिके वास्ते उत्सवरूप है ॥ ४७॥ उस समय व्रजमें बालक ऐसे कहने लगे कि-आज इन यशोदा और नंदनंदनने अजगरको मारा और इस अजगरसे हमारी रक्षा करी, ॥ ४८ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! व्रजवासियोंका अपने औरस पुत्रोंमें जैसा पहले प्रेम न था, इतना प्रेम पराये पुत्र श्रीकृष्णमें कहांसे हुआ ? सो कहो ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-महाराज ! सब प्राणियोंको मुख्य अपना आत्माही प्रिय है, संतान और धनआदि दूसरे पदार्थोंमें जो प्यार है, सो तो आत्माकी वल्लभताके निमित्तही है ॥ ५० ॥ हे राजेंद्र ! जैसा प्यार अहंताके आस्पद अपने

अद्यानेन महान्व्यालो यशोदानंदसूनुना ॥ हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् ॥ योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः ॥ इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥ तद्राजेंद्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ॥ न तथा ममतालंबि पुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ॥ यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥ देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नाऽऽत्मवत्प्रियः ॥ यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥

शरीरमें अधिक होय है, तैसा ममताके आस्पद पुत्र, धन, घरआदिमें नहीं होता; सो यहभी शरीरमें आत्माके अध्यासकी अधिकताके कारण है ॥ ५१ ॥ हे राजसत्तम ! जो पुरुष देहको आत्मा मानते हैं, उन पुरुषोंकोभी जैसा देह प्यारा है, तैसे देहके पीछे लगे पुत्र धनआदि प्यारे नहीं होते ॥ ५२ ॥ यदि देहभी ममताका आस्पद हो जाय, तो यह देह आत्माके समान प्रिय नहीं रहता, क्योंकि जब देह बहुत जीर्ण हो जाय, यानी मरनेका निश्चय हो जाय, तोभी जो जीनेकी बलवत्तर आशा रहती है, सो केवल आत्माके प्रेमास्पदत्वके कारण है ॥ ५३ ॥ इससे यह सिद्ध होता है कि-सब प्राणियोंको अपना

देवता, ब्राह्मण, पशु, समुद्र इनके वृद्धि करनहार ! (चंद्रसमान) हे पाखंडरूप अंधकारके नाशक ! हे पृथ्वीमें राक्षसतुल्य जो कंसादिक उनके द्रोही ! हे सूर्यपर्यंत सकलके पूज्य ! हे भगवन्! कल्पपर्यंत आपको मेरा प्रणाम है॥ ४०॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– ऐसे प्रिय भगवान्‌की स्तुति कर, तीन प्रदक्षिणा दे, चरणोंमें प्रणाम कर, ब्रह्माजी अपने लोकको सिधारे ॥ ४१॥ फिर श्रीकृष्णचंद्र ब्रह्माकी संमति ले, पूर्ववत् ठाढ़े, बछरों और अपने मित्रोंको यमुनाजीके तीरपर ले आये ॥ ४२ ॥ हे राजा ! यदपि एक बरस बीतगया था, वहभी अपने प्राणनाथ भगवान्‌के विना, तोभी भगवतमायासे मोहित उन बालकोंने उस समयको आधे क्षणके सम स–

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ॥ नत्वाऽभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ॥ वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथा पूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥ एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चांतरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥ किं किं न विस्मरंतीह मायामोहितचेतसः ॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ॥ नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥ ४५ ॥ ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ॥ दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रितांगः प्रोद्दामवेणुदलशृंगरवोत्सवाढ्यः ॥ वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥

मझा ॥ ४३ ॥ जिस भगवान्‌की मायासे मोहित यह सब जगत निरंतर अपने आत्माकोभी भूलाहुआ है, उस मायासे मोहितचित्त लोक यहां क्या क्या न भूल जायं ? ॥ ४४ ॥ मित्रोंने श्रीकृष्णचंद्रसे कहा कि–आप बड़े जल्दी आये, बहुत ठीक पधारे, अबतक हमने तो एक कवलभी नहीं खाया, इधर आओ, अच्छी तरह आरोगो ॥ ४५ ॥ फिर भगवान् हास्य करते, बालकोंके साथ भोजन कर, अजगरका चर्म दिखलाते वनमेंसे व्रजमें पधारे ॥ ४६ ॥ मोरपिच्छ, पुष्प, वनकी धातु जो गेरूआदि उनसे शरीरको विचित्र बनाये, बंसी और सींगका शब्द कर बड़ा उत्सव करते, बछरानको प्यारके शब्दोंसे बुलाते, व्रजमें पधारे. कैसे हैं भगवान् कि–जिनकी ग्वालबाल पवित्र

जको श्रुतिभी अद्यापि हेर रही है ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् जिनके अखिल जीवितरूप हैं, उन व्रजवासियोंकी चरणरजका मिलना बड़ा अलभ्यलाभ है॥ ३४ ॥ हे देव ! 'आप इन व्रजवासियोंको किसी समयमेंभी सर्वफलरूप आपके स्वरूपसे अधिक दूसरा क्या फल देवेंगे ?' इस विचारमें भ्रमण करता हमारा मन मोहको प्राप्त है. आपके स्वरूपदानसे आप इन लोकोंसे उरिण नहीं हो सक्ते, क्योंकि. भक्तके, सदृश वेष बनाकर,आयी पूतनाभी आपके स्वरूपहीको सकुटुंब प्राप्त हुई, तो जिन व्रजवासियोंके धाम, धन, मित्र, प्रिय, देह, पुत्र, प्राण और अंतःकरण ये सब आपके वास्तेही हैं, यदि उनकोभी पूतनाजितनाही लाभ मिले तो हे देव ! पूरा नहीं हो सक्ता

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देवरातेति नश्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ॥ सद्वेषादिव पूतनाऽपि सकुला त्वामेव देवापिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥३५॥ तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् ॥ तावन्मोहोंऽघ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥ प्रपंचं निष्प्रपंचोऽपि विडंबयसि भूतले ॥ प्रपन्नजनतानंदसंदोहं प्रथितुं प्रभो ॥ ३७ ॥ जानंत एव जानंतु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ॥ मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ॥ त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ॥ उद्धर्मशार्वरहरक्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥

॥ ३५ ॥ हे कृष्ण ! रागद्वेषादिक तबतक चोरका काम करते हैं, घर तबतक कारागृहरूप (जेहलखाना) है, मोहभी तबतक पगकी बेड़ी है जबतक आपकी सांची भक्ति बन न आवे ॥ ३६ ॥ हे प्रभु ! आप प्रपंचरहित हो, तथापि शरणागत लोगोंको आनंद समूह देनेको अवतार धारण करते हो ॥ ३७ ॥ हे प्रभु ! आपको जानते हों सो भले जाने, परंतु मैं तो अधिक क्या कहूं ? मेरे मन, वचन, शरीर, आपके महिमाको विषय नहीं कर सक्ते ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! मुझे सत्यलोकमें जानेकी आज्ञा दीजिये आप सर्वके द्रष्टा हो, सो आप सब जानो हो, जगतके स्वामी आपही हो इसलिये ममताका विषय यह जगत और यह शरीर मैंने आपके अर्पण किया है, ॥ ३९ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे यादवोंके कुलरूप कमलको प्रीति देनहार ! (सूर्यसमान) हे पृथ्वी,

ही है; तथापि आपके चरणारविंदयुगलकी जराभी कृपा मिले, तभी आपकी महिमाका तत्व ज्ञात होता है, कृपा विना बहुत कालतक चाहे विचार कियाकरे, पर किसीके जाननेमें नहीं आता ॥ २९ ॥ हे नाथ! इसलिये इस जन्ममें अथवा पशुपक्षी- आदि अन्य जन्ममें मेरा ऐसा भला भाग्य होवे कि-जिससे मैं आपके भक्त लोगोंमेंसे हरएक होकर, आपके चरणारविंदका सेवन करूं ॥ ३० ॥ अहो! व्रजकी गैयां और गोपियां बड़ी भाग्यशाली हैं; क्योंकि जिन्हें तृप्त करनेको यज्ञभी अद्यापि समर्थ नहीं होते; हे विभो! उन आपने स्वयं बछरों और पुत्रोंका रूप धारण कर, जिनका दुग्धरूप अमृत बहुतही प्रेमपूर्वक पिया ॥ ३१ ॥ अहो! नंदरायके व्रजवासियोंका बड़ा भाग्य है, बड़ा भाग्य है; क्योंकि परमानंद, पूर्ण, सनातन, साक्षात् परब्रह्म जिनके मित्र हैं ॥ ३२ ॥

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वाऽन्यत्र तु वातिरश्चाम् ॥ येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥ अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ॥ यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥ अहो भाग्यमहोभाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम् ॥ यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्मसनातनम् ॥ ३२ ॥ एषां तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ॥ एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्युदजमध्वमृतासवं ते ॥ ३३ ॥ तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोभिषेकम् ॥ यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुंदस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥

हे अच्युत! इन व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमा तो अपूर्व और अकथनीयही है, परंतु दशइंद्रिय, मन, बुद्धि, अहंकारके अधिष्ठाता हम तेरह देव, जिनमें महादेव मुख्य हैं, वेभी महा भाग्यशाली हैं; क्योंकि इन व्रजवासियोंके इंद्रियमय प्यालोंसे आपके चरणारविंदके मकरंदरूप मधुर आसवका वारंवार पान करते हैं, जब एक एक इंद्रियके अभिमानी हमभी आपके चरणकी कीर्ति, शोभा, सुगंधताआदि एक एक भागके सेवनसेभी कृतार्थ हैं, तब सकल इंद्रियोंसे सकल पदार्थोंके सेवन करनेवाले व्रजवासियोंके भाग्यकी महिमाकी तो क्या बात? ॥ ३३ ॥ इसलिये मनुष्यलोकमें, तत्रापि वनमें तहांभी गोकुलमें, चाहे किसी योनिमें जन्म हो, वहभी बड़ा भाग्य है; क्योंकि गोकुलमें जन्म होनेसे किसी गोकुलवासी जनकी चरणरज शिरपर पड़े, जिन परमात्माकी चरणर-

स्वात्मरूप आपको जो लोग, गुरुही जो सूर्य उससे प्राप्त जो ज्ञानरूप चक्षु, उससे अपना स्वरूपभूत जानजाते हैं वे संसाररूप झूंठे समुद्रको मानों तिरही जाय हैं ॥ २४ ॥ आत्मस्वरूपहीको आत्मरूप न जाननेवालोंको उसी अज्ञानसे यह सब प्रपंच प्रगट भासे है और वही प्रपंच आत्मस्वरूपको निजरूप जाननेसे लीन होय है. जैसे रज्जुको रज्जुरूप न जाननेसे सर्परूप भासे है और वही सर्प रज्जुको रज्जुरूप जाननेसे लीन होय है जैसे रज्जुमें सर्पशरीरका अध्यास और अपवाद है, ऐसेही सिद्धांतमेंभी केवल अज्ञानसे अध्यास और ज्ञानसे अपवाद है ॥ २५ ॥ बंध और मोक्ष केवल अज्ञानकल्पित हैं, अतएव ये दोनों सत्यज्ञानस्वरूप आत्मासे भिन्न नहीं हैं, अखंड अनुभवरूप, केवल शुद्ध आत्माका विचार करते जैसे सूर्यमें रात्रि वा दिवस कुछ नहीं है

आत्मानमेवाऽऽत्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपंचितम् ॥ ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥ २५ ॥ अज्ञानसंज्ञौ भवबंधमोक्षौ द्वौ नाम नान्यो स्त ऋतज्ञभावात् ॥ अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥ २६ ॥ त्वामात्मानं परं मत्वापरमात्मानमेव च ॥ आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता ॥ २७ ॥ अंतर्भवेऽनंतभवं तमेव ह्यतत्त्यजंतो मृगयंति संतः ॥ असंतमप्यंत्यहिमंतरेण संतं गुणं तं किमुयंति संतः ॥ २८ ॥ अथापि ते देव पदांबुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ॥ जानंति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥

तैसे आत्मामें अज्ञान वा बंधन कुछ नहीं है, अतएव न तो ज्ञान है और न मोक्ष है इस हेतुसे यदि संसार वास्तविक हो तो, उसे तिरना संभवे, परंतु वैसा नहीं है, तासों मानों 'तिरही जायं हैं' ऐसा कहा ॥ २६ ॥ आप जो आत्मा हो, उनमें देहादिकका अध्यास और देहादिकमें आत्माका अध्यास कर, यहीं खोयेहुए आत्माको बाहर ढूंढ़ना; अहो यह अज्ञानी पुरुषोंकी कैसी मूर्खता है ? क्योंकि घरमें गया हुआ पदार्थ वनमें ढूंढ़ा नहीं जाता ॥ २७ ॥ हे अनंत ! विवेकी पुरुष तो इस शरीरमेंही अतत्वभागका त्याग करते आपको ढूंढ़ते हैं, क्योंकि समीपमें सर्प न रहतेभी उसका निषेध किये विना समीपमें रहीभी सांची रज्जु जाननेमें नहीं आती ॥ २८ ॥ हे देव भगवन् ! ऐसे यद्यपि ज्ञानहीसे मोक्ष होता है और उस ज्ञानका मिलना सुगम-

आप जो योगमायाको फैलाय, क्रीड़ा करते हो, उन्हें त्रिलोकीमें कौन जानता है ? कि–कहां हैं ? किसप्रकारसे हैं ? कब हैं ? और कितनी हैं ? ॥ २१ ॥ इसलिये यह सब जगत जो केवल आपके नित्य, सुख, चैतन्यमय अनंतस्वरूपमें मायासे उत्पन्न होने और पीछा लय होनेके कारण मानों नित्य, सुख, चैतन्यरूप हो ऐसा भासे है, परंतु वास्तविकतासे असत्स्वरूप, स्वप्न-सदृश, प्रतिभासरहित दुःखसेभी दुखरूप अर्थात् दुःखमयही है ॥ २२ ॥ सत्य तो एक आपही हो, क्योंकि आत्मा हो; जो दृश्य है वह मायारूप है, आत्मा दृश्य नहीं इसलिये सत्य है. जिसमें विकार हो वह मायारूप, परंतु आपके स्वरूपमें

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ॥ त्वय्येव नित्यसुखबोधत-नावनंते मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्यो-तिरनंत आद्यः ॥ नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरंजनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥ एवं-विधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ॥ गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते त-रंतीव भवानृतांबुधिम् ॥ २४ ॥

जन्मादिक विकार नहीं हैं इसलिये आप सत्य हो, सर्वके कारणरूप हो तासों आपके जन्म नहीं है. कार्यसे पहले विद्यमान हो तासों कारणरूप हो. सबसे प्रथम हो तासों पुरुष कहलाते हो. सनातन हो तासों जन्मके अनंतर आपको अस्तित्व मिला है ऐसा नहीं है. पूर्ण हो तासों आपकी वृद्धि नहीं होती, निरंतर सुखरूप हो तासों आपके कोई विपरिणाम नहीं होता. अक्षर हो तासों आपका क्षय नहीं होता, अमृत हो तासों विनाश नहीं होता. अनंत और अद्वैत हो तासों आपके देशकालका परिच्छेद नहीं. स्वयंप्रकाश हो तासों ज्ञानसाधनद्वारा आपकी प्राप्ति नहीं होती. उपाधिरहित असंग हो तासों कोई वस्तु आपमेंसे नि-कसे ऐसे नहीं है. निरंजन हो तासों आपके स्वरूपमें किसी प्रकारका संस्कारभी संभवे नहीं ॥ २३ ॥ ऐसे सकल आत्मानकेभी

१ अमृतत्व उपपादन करनेके वास्ते उत्पत्ति, प्राप्ति, विकृति, संस्काररूप चतुर्विध क्रियाफलको वारण किया है. सो ऐसे है. आद्य कहनेसे उत्पत्ति वारण भयी. प्राप्ति, क्रिया और ज्ञान दोनोंसे होवेहै. तहां क्रियाप्राप्ति आत्मपदसे वारण करी, स्वयंप्रकाश पदसे ज्ञानप्राप्ति करी, उपाधिरहित कहनेसे विकृति वारण करी और निरंजन कह-नेसे संस्कारभी वारण करा.

परिच्छेद होना संभवे, परंतु वह तो मायाहीसे उत्पन्न है, ऐसी भांति आपने इसी अवतारमें प्रगट दिखलाया है जो बाहर दृश्यमान यह सब प्रपंच आपने अपनी माताको अपने उदरमें दिखलाया, उससे आपने प्रपंचका मायापनही स्फुट प्रगट किया ॥ १६ ॥ आपके उदरमें जैसा सब जगत् दीखता है, वैसाही बाहरभी दीख पड़ता है और फिर वहभी आपके साथ, भला यह सब मायाविना बने ? जो बाहिर रहे जगतका आपमें प्रतिबिंब दीख पड़ा हो तो वह बहिर्गतसे उलटा दीखना चाहिये और मुकुरस्थानीय आप हो सो आपका उसमें दीखना न संभवे. इसलिये सर्वथा जगतको मायात्वही सिद्ध होवे है ॥ १७ ॥ एक आप विना सकल जगत्का मायापन आपने मुझकोही क्या अभी नहीं दिखलाया ? क्योंकि प्रथम आप एक थे, पश्चात् सब

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ॥ तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ १७ ॥ अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ॥ तावंतोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावंत्येव जगंत्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥ १८ ॥ अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्माऽऽत्मना भासि वितत्य मायाम् ॥ सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोंऽत इव त्रिनेत्रः ॥ १९ ॥ सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य॥जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥ को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ॥ क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥

ग्वाल और वत्सरूप हो गये, थोड़े अर्समें फिर सबके सब चतुर्भुज हो गये जिनकी मेरे साथ सब तत्त्व सेवा करते दृष्टि आये फिर उतनेही ब्रह्मांडरूप बनगये, इसलिये परिच्छेदरहित अद्वैत परब्रह्महो अवशेष रहता है ॥ १८ ॥ आपके स्वरूपको न जाननेवाले लोगोंको, प्रकृतिमें स्थित आपही स्वतंत्रतासे मायाको फैलाये भासते हो. सो कैसे सो दिखलाते हैं-सृष्टिसमयमें मानों ब्रह्मारूप, पालनसमयमें मानों विष्णुरूप और संहारसमयमें मानों रुद्ररूप भासते हो ॥ १९ ॥ हे ईश्वर ! हे प्रभो ! हे विधाता ! देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु, पक्षी और जलजंतुओंमेंभी अजन्मा आपके जो अवतार होवे हैं, वे दुष्ट लोगोंके दुर्मदके खंडनके वास्ते और सत्पुरुषोंपर अनुग्रहके वास्ते होय हैं ॥ २० ॥ हे भूमन् ! हे भगवन् ! हे परमात्मन् ! हे योगेश्वर !

इसभांति स्थूल सूक्ष्म अथवा कार्य कारण शब्दसे कहनेमें आता यह सब जगत आपके उदरसे बाहिर नहीं, तो उसमें मैंभी अंतर्गत आया, इसलिये मेरा अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ १२ ॥ हे ईश्वर ! प्रलयसमयमें एकत्रित हुए समुद्रोंके जलमें नारायणके उदरके नाभिनालमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न होय है, ऐसे जो कहनेमें आता है, वह बिलकुल झूंठ नहीं है, क्या मैं आपमेसे पैदा नहीं हुआ हूं ? हां, पैदा हुआही हूं, मैं आपका पुत्र हूं आपको मोपर अवश्य क्षमा करनी चाहिये ॥ १३ ॥ क्या आप नारायण नहीं हो ? क्योंकि नार यानी जीवसमूह, वह जिसका अयन आनी आश्रय है, वह नारायण कहलाता है, तद सर्व प्राणियोंके आत्मा होनेसे आपमें नारायणपन बने है अथवा नार यानी जीवसमूहका अयन यानी प्रवर्तन जिससे होवे, वह नारायण, तद आप सर्व प्राणियोंके प्रवर्तक होनेसे आपमें नारायणत्व घटे है अथवा नार यानी जीवसमूहके अयन यानी जानने-

जगत्रयांतोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ॥ विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् वै मृषा किं त्वीश्वरत्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥ नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽखिललोकसाक्षी ॥ नारायणोंऽगं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥ तच्चेजलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ॥ किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥ अत्रैव मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपंचस्य बहिः स्फुटस्य ॥ कृत्स्नस्य चांतर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥

वाला जो हो सो नारायण, तद आप सर्वलोकके साक्षी हो तासों आपमें नारायणपन संभवे है. अथवा नर यानी पुरुष, उससे उत्पन्न जो जल सो नार, उसमें अयन यानी रहनेवाला जो वह नारायण, यदि ऐसा प्रसिद्ध अर्थ लिया जाय तोभी नारायण तो आपही हो; क्योंकि जलमें रहनेवाली जो मूर्ति है सो आपहीकी है. वस्तुतः विचार कर देखिये तो जलसे परिछिन्न वह मूर्तिभी सत्य नहीं है, किंतु आपकी मायारूपही है ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! आपकी वह जगदाश्रय जलमेंकी मूर्ति सत्य होय तो, मैंने कमलके नालके अंदर बैठकर, सौ वर्षतक अन्वेषण किया, तभी वह देखनेमें क्यों न आयी ? और हृदयमेंभी क्यों न दीख पड़ी ? और फिर तप करनेपर तुरतही क्यों देखनेमें आयी ? इसलिये यह सब आपकी मायाही है, आपकी मूर्तिके किसीदेशका परिच्छेद बनेही नहीं ॥ १५ ॥ हे मायाके दूर करनहार ! जो जलादि प्रपंच आपसे भिन्न होय तद उससे आपका

परमाणुभी गिन लिये हैं, वेभी आपके गुणोंका पार नहीं पा सक्ते ॥ ७ ॥ इसलिये आपकी कृपा कब होवेगी, ऐसे मानपूर्वक राह देखता, तपआदिसे क्लेश न पाता, आसक्तिरहित हो, अपने कर्मफलका भोग करता, मनुष्य मन, वाणी, शरीरसे आपको प्रणाम करता प्राणधारण करे, वही मुक्तिपदका दायभागी होता है ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! मेरी दुर्जनता देखिये, आप जो मायावियोंकोभी मोहित करनेवाले परमात्मा हो, उनपरभी अपनी माया फैलाय, मैंने अपना ऐश्वर्य देखनेकी इच्छा की, जैसे अग्निके सामने ज्वाला क्या चीज है ? वैसे आपके सामने मैं क्या वस्तु हूं ? ॥ ९ ॥ हे अच्युत ! इसीलिये आप मोपर क्षमा करें,

तत्तेऽनुकंपां सुसमीक्षमाणो भुंजान एवात्मकृतं विपाकम् ॥ हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ ८ ॥ पश्येश मेऽनार्यमनंत आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ॥ मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ ९ ॥ अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ॥ अजाऽवलेपांधतमोऽधचक्षुष एषोऽनुकंप्यो मयि नाथवानिति ॥ १० ॥ काहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टितांडघटसप्तवितस्तिकायः ॥ क्वेदृग्विधा विगणितांडपराणुचर्या वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥ उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोऽक्षजागसे ॥ किमस्ति नास्ति व्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनंतः ॥ १२ ॥

मैं तो रजोगुणसे उत्पन्न, अनजान, इसीसे मैं 'अजन्मा जगत्कर्ता हूं' ऐसे मदके गाढ़ अंधकारसे अंधदृष्टि हूं, ताहीसों मुझे आपसे भिन्न ईश्वरताका अभिमान है, परंतु आपको ऐसा विचार कर, दया रखनी चाहिये कि- ब्रह्मा यद्यपि दूसरे स्थानमें प्रभुतासे वर्ते है, तोभी मेरा तो दासही है ॥ १० ॥ मैं जो प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीसे वेष्टित ब्रह्मांडमें अपने सात वितस्तिप्रमाण शरीरका हूं सो कहां ? और ऐसे ऐसे अनगिनत ब्रह्मांडरूप परमाणु जिनके रोमकूपरूप झरोखोंमें फिराकरते हैं ऐसे आपकी महिमा कहां ? इसलिये मुझे अतितुच्छ जान, मोपै कृपा कीजिये ॥ ११ ॥ हे अधोक्षज ! गर्भगत बालक जो लात मारे और पांव उछाले, क्या वह उसकी अपनी माताका अपराध किया ऐसा कहा जाय ?

हे विभो ! कल्याणके प्रवाह प्रगट करनेवाली आपकी भक्तिको छोड़ जो लोग केवल ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त क्लेश करते हैं, उनके केवल यह क्लेशही शेष रहता है और कुछ नहीं. जैसे भूसा कूटनेवालेके फल हाथ नहीं लगता ॥ ४ ॥ हे भूमन् ! हे अच्युत ! इस लोकमें पहिले बहुतसे योगीजन योगसे ज्ञानको न प्राप्त होकर, तदनंतर अपनी चेष्टा और कर्म आपके अर्पण करनेसे प्राप्त हुई और कथासे अपने समीप आयी आपकी भक्तिहीसे आत्मज्ञानको प्राप्त हो, अनायाससे आपके पदको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ हे परिच्छेदरहित ! ऐसे

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यंति ये केवलबोधलब्धये ॥ तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥ पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ॥ विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेंऽजोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥ तथाऽदिभूमन्महिमागुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलांतरात्मभिः ॥ अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥ ६ ॥ गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ॥ कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिकाद्युभासः ॥ ७ ॥

आपके सगुण और निर्गुण दोनो स्वरूपोंका ज्ञान होना कठिन है, तोभी आपके निर्गुण स्वरूपकी महिमा तो किसी प्रकार जितेंद्रिय पुरुष आत्माकार अंतःकरणके साक्षात्कारसे, निर्विकारतासे, विषयभावसे और स्वप्रकाशतारूपहीसे जान सक्के हैं, परंतु यह वह है ऐसे कथमपि नहीं जान सक्के ॥ ६ ॥ आप गुणोंके अधिष्ठाता हो, आपने जगतके हितार्थ अवतार धारण किया है, आपके गुणोंकी गणना करनेको कौन समर्थ है ? जिन अतिनिपुण पुरुषोंने अनेक जन्मोंसे पृथ्वीके रजःकण, आकाशमेंके हिमकण और नक्षत्रआदिके किरणोंके

---

१ त्वद्भक्तानां संसारे पतनं नैव भवति इति संबोधनेन सूचितम् । यथोक्तम् काशीखंडे । न च्यवन्तेऽथ मद्भक्ता महति प्रलये यदि ॥ अतोऽच्युतः स्मृतो लोके ऽहमेको विष्णुरव्ययः ॥ १ ॥ अर्थ– तुम्हारे भक्तोंका संसारमें गिरना नहीं होता यह सम्बोधनसे सूचित हुआ. ॥ जैसे काशीखंडमें खुद विष्णुजीने कहा है कि–जिससें हमारे भक्त महाप्रलयमेंभी च्युत नहीं होते इससे लोकमें अविनाशी और सर्वव्यापक हम एकही अच्युत, ऐसे कह जाते हैं ॥ १ ॥

तक भगवान्के चरणोंमें पड़ते रहे ॥ ६३ ॥ फिर धीरेसे उठ, आंखें पोंछ, भगवान्की ओर देख, गरदन नीचीकर, हाथ जोड़, विनयसहित, सावधान ब्रह्माजी कांपते कांपते गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकाया त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ चौदहवें अध्यायमें अद्भुत चरित्र देख, उसका निश्चय करनेको अशक्त ब्रह्माजीने मोहित होनेपर भगवानकी स्तुति करी, यह कथा होवेगी ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि-हे स्तुति करने योग्य ! नंदनंदन जो आप हैं तिन्हे मै प्रणाम करूं हूं, आप कैसे हैं, मेघसे श्याम शोभितवर्ण, बिजलीसे पीले पीतांबर पहरे, गुंजाके कर्णभूषण और मयूरपिच्छसे शोभायमान, बनमाला पहिरे, कवल, बेत, सींग और वंशी इन चिन्होंसे

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुंदमुद्वीक्ष्य विनम्रकंधरः ॥ कृतांजलिः प्रश्रयवान्समाहितः स वेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदंबराय गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥ वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥ १ ॥ अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ॥ नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण साक्षात्तवैव किमुताऽऽत्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥ ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमंत एव जीवंति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ॥ स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥

सुशोभित और कोमल जिनके चरणारविंद हैं ॥ १ ॥ हे देव ! मुझपर अनुग्रह करनेवाली और भक्तोंकी इच्छाअनुसार स्वरूप धारण करनेवाली, यह आपकी मूर्ति कि-जो पंचभूतमय नहीं है, किंतु शुद्ध सत्वमय है, इस अवतार लिये स्वरूपकीभी महिमा में स्वयं ब्रह्माभी (अथवा कोईभी) जाननेको समर्थ नहीं हूं (है) तद आप जो केवल आत्मसुखके अनुभवमात्र हो, उनके अवतारी स्वरूपकी महिमाको मनोनिरोध करनेसेभी न जान सकूं (सके), इसमें क्या कहना ? ॥ २ ॥ हे अजित ! ज्ञानमें थोड़ाभी परिश्रम न करते, जो लोग सत्पुरुषोंकी गायी हुई कानमें आयी आपकी कथाको सुन, अपने स्थानमें बैठे, देह, वाणी मनसे नमस्कार वा सत्कार करते जीते हैं उन लोगोंके, त्रिलोकीमें जिनका कोई जय नहीं करसक्ते वे, आप बहुधा वश्य हो जाते हो ॥ ३ ॥

उनकी दर्शन करनेकी शक्तिभी जाती रही, तद भगवान् श्रीकृष्णने यह बात जान, तुर्त मायारूप परदा दूर कर लिया ॥ ५७ ॥ तदनंतर मानों मरकर, पीछे उठे हों ऐसे ब्रह्माजीने बाह्यदृष्टिको पाय, बड़ी कठिनतासे नेत्र खोल, आत्माके साथ इस जगतको देखा ॥ ५८ ॥ तुर्त चारों ओर नजर दे देखा तो सामने विद्यमान, समंततः प्रियपदार्थोंसे भरा हुआ और मनुष्योंके जीविकाके हेतु वृक्षोंसे व्याप्त वृंदावन देखनेमें आया ॥ ५९ ॥ जहां स्वाभाविक दुष्ट वैरवाले मनुष्य और सिंहादिक मानों आपसमें मित्र हों ऐसे होकर, रहते थे और भगवान्के निवाससे क्रोध लोभआदि सब जिसमेंसे भागगये थे ॥ ६० ॥ तहां पहलेके जैसे ग्वाल-

ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ॥ कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहाऽऽत्मना ॥ ५८॥ सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ॥ वृंदावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥ ५९ ॥ यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः ॥ मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥ ६० ॥ तत्रोद्व-हत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनंतमगाधबोधम् ॥ वत्सान्सखीनिव पुरा परितो विचिन्वदे-कं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदंडमि-वानिपात्य ॥ स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरंघ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥ उत्था-योत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ॥ आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥ ६३ ॥

कुलके बालकभावका नाटक करते श्रीकृष्णचंद्रको देखा, जो भगवान् अद्वैतरूप होकर, बछरोंको, ढूंढ़ते थे और एक व अगाधबोध होकर, मित्रोंको ढूंढ़ते थे, अनंत होकर, चारों ओर फिरते थे, सर्वके कारणरूप हो, बालकपन धरते थे और पर ब्रह्म होकर, हाथमें दही भातका कौल लिये थे ॥ ६१ ॥ ऐसे भगवान्के दर्शन कर, ब्रह्माजीने तुर्त अपने वाहन हंससे उतर, कनकदंडके समान अपने शरीरसे साष्टांग प्रणाम कर, चारों मुकुटोंकी कोटिसे चरणयुगलको छू, प्रणाम कर, आनंदसे अश्रुके सुं-दर जलसे अभिषेक किया ॥ ६२ ॥ ज्यों ज्यों प्रथम देखेहुए महिमाका वारंवार स्मरण करते रहे. त्यों त्यों उठ २ कर बहुत देर-

ये कटाक्षसहित वीक्षणोंसे मानों रजोगुणसे अपने भक्तोंके मनोरथोंको सरजते मालूम होते थे ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीसे ले स्तंब-(तृण) पर्यंत सर्व स्थावर जंगम मूर्तिमान होकर, नाच और गायनआदि अनेक प्रकारके पूजाके प्रकारोंसे पृथक् पृथक् सेवा करते थे ॥ ५१ ॥ अणिमाआदि अष्टसिद्धि, मायाआदि विभूति और महत्तत्त्वआदि चौबीस तत्त्व इनसे वे वेष्टित थे ॥ ५२ ॥ काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म और गुणादिक पदार्थ मूर्तिमान् हो, प्रत्येककी सेवा करते थे इन सबकी स्वतंत्रता भगवान्‌की महिमाके सामने नष्ट हो गयी थी ॥ ५३ ॥ ये सब सत्य, ज्ञानरूप, अनंत आनंदमात्र और एकरस मूर्तिवाले तथा आत्मज्ञानही जिनकी

आत्मादिस्तंबपर्यंतैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ॥ नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणि-माद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ॥ चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥ ५२ ॥ काल-स्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ॥ स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञा-नानंतानंदमात्रैकरसमूर्तयः ॥ अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥ एवं सकृद्ददर्शा-जः परब्रह्मात्मनाऽखिलान् ॥ यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिकुतुको-द्वृत्य स्तिमितैकादशेंद्रियः ॥ तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यंतीव पुत्तिका ॥ ५६ ॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ॥ अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजा जवनिकाम् ॥ ५७ ॥

चक्षु है ऐसे महात्माभी जिनके माहात्म्यका स्पर्श नहीं करसके, ऐसे दृष्टिमें आते थे ॥ ५४ ॥ इसतरह ब्रह्माजीने एक वार सब-को परब्रह्ममय देखा, जिस परब्रह्मके प्रकाशसे यह सब जगत् प्रकाशित होता है ॥ ५५ ॥ जिनकी उनके तेजसे सर्व इंद्रियां जड़ हो गयीं हैं ऐसे ब्रह्माजी फिर पीछे आश्चर्यसे ऐसे निश्चल हो गये जैसे व्रजकी अधिष्ठाता देवीके समीप चार मुखकी पुतली खड़ीहै ॥ ५६ ॥ इसतरह अतर्क्य, स्वप्रकाश, सुखमय, प्रकृतिसे पर और ब्रह्मसे भिन्न वस्तुका निषेध करनेद्वारा उपनिषदोंसे जिसके स्वरूपका ज्ञान हो सक्ता है, ऐसे असाधारण महिमावाले स्वरूपमें 'यह क्या ?' ऐसे ब्रह्माजी मोहित हो गये. और

मालुम होते हैं. ' ॥ ४२ ॥ ऐसे बहुत देरतक विचार कर, ये ब्रह्माजी किसी भांति नहीं जान सके कि–इनमें सत्य कौन ? और असत्य कौन ? ॥ ४३ ॥ इसतरह ब्रह्माजी, जगतको मोहित करनेवाले और स्वयं मोहरहित भगवान्‌को अपनी मायासे मोहित करते आपही मोहित हुए ॥ ४४ ॥ अँधेरी रातमें नीहार (कुहरा) का अंधकार जैसे जुदा आवरण नहीं कर सक्ता, किंतु उसीमें लीन हो जाता है और खद्योत (जूगुनू) का प्रकाश दिनमें जुदा प्रकाश नहीं कर सक्ता, तैसे बड़े मनुष्योंपर दूसरा कोई साधारण मनुष्य माया चलाना चाहे तो वह नीचकी माया बड़े पुरुषका कुछभी नहीं कर सक्ती, प्रत्युत उसी चलाने

एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ॥ सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥ ४३ ॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ॥ स्वयैव मायया॒जोपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥ तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ॥ महतीतरमायैश्यं निहंत्यात्मनि युंजतः ॥ ४५ ॥ तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ॥ व्यदृश्यंत घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ किरीटिनः कुंडलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सांगददोरत्नकंबुकंकणपाणयः ॥ नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥ ४८ ॥ आंघ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥ कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरि पुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥ चंद्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः ॥ स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥ ५० ॥

वालेकी सामर्थ्यका नाश करती है ॥ ४५ ॥ ब्रह्माजीके देखते तुरत दूसरा आश्चर्य हुआ. बछरे, उनके पालक बालक, छड़ी, सींगआदि सब पदार्थ मेघके समान श्यामवर्ण पीले पीतांबर पहिरे ॥ ४६ ॥ चतुर्भुज, हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये, किरीट पधराये, कुंडल, हार और वनमाला धारण किये ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सकी प्रभासे प्रकाशित भुजबन्ध भुजामें बांधे, रत्नमय शंखके समान तीन धारावाले कंकण करमें पहिरे, नूपुर, कटक, कटिमेखला और मुंदरीयोंके धारण करनेसे देदीप्यमान, ॥ ४८ ॥ बड़े पुण्यवान् पुरुषोंसे अर्पण की हुई तुलसीकी सुकुमार और नवीन मालानसे पांवसे शिरतक परिपूर्ण ॥ ४९ ॥ चंद्रिकाके समान स्वच्छ मंदहास्योंसे अपने भक्तोंके मनोरथोंका मानों सत्वगुणसे पालन करते और ललाई लि

अपूर्व प्रेम अभी बालकोंपरभी बढ़ा है, इतनाही नहीं पर मेरे मनमेंभी वत्स और बालकोंपर प्रेम बढ़ता चला जाता है, इसका क्या कारण होगा ? ॥ ३६ ॥ क्या यह माया देवतानकी है ? वा मनुष्योंकी ? वा दैत्योंकी ? यह माया कैसी है ? और कहांसे आयी ? दूसरोंकी तो संभवे नहीं; क्योंकि इससे मैंभी मोहित हो गया हूं. इसलिये बहुधा यह मेरे स्वामी श्रीकृष्णकी माया होनी चाहिये ॥ ३७ ॥ इसतरह सोच विचार, बलरामजीने ज्ञानदृष्टिसे देखा तो, तमाम बछरे और अपने मित्र सब श्रीकृष्णरूप देखनेमें आये ॥ ३८ ॥ तद उन्होंने भगवान्से पूंछा कि– ' आपन जिन बछरोंका पालन करते हैं वे ऋषियोंके अंश हैं और बालक देवतानके अंश हैं यह मेरे ध्यानमें है, परंतु अभी वैसा देखनेमें नहीं आता, अभी तौ जुदे जुदे इन सबमें एक-

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ॥ प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी॥ ३७॥ इति संचिंत्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ॥ सर्वानाचष्ट वैकुंठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥ नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीशभिदाश्रयेऽपि ॥ सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत ॥ ३९ ॥ तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ॥ पुरोवदब्दं क्रीडंतं ददृशे सकलं हरिम् ॥ ४० ॥ यावंतो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि॥ मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥ ४१ ॥ इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ॥ तावंत एव तत्राब्दं क्रीडंतो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥

आपही भास रहे हो, इसलिये जैसा हो वैसा साफ साफ कहो ' तद भगवान्के संक्षेपसे वार्ता कहतेही बलरामजीके मनमें वह सब बनाव समझमें आया ॥ ३९ ॥ यहां तो इतनेमें एक वर्ष बीत गया, पर ब्रह्माजीका तो केवल एक त्रुटि (चुटकी बजाना) इतनाही काल हुआ. इतने कालमें ब्रह्माजीने पीछा आकर देखा तो, वहां एक वर्षपर्यंत आगे खेलते थे, वैसेही अपने अनुचरोंके संग भगवान्को क्रीड़ा करते देखा ॥ ४० ॥ देखकर, ब्रह्माजी तर्क करने लगे कि– ' गोकुलमें जितने बालक और वत्स थे वे सब मेरे मायारूपशयनमें सोये पड़े हैं, वे अबतक उठे नहीं ॥ ४१ ॥ फिर ये मेरी मायासे मोहित जो हैं. उनसे भिन्न बालक और बछरे यहां कहांसे आये ? अहो ! जितने मैं ले गया हूं, उतनेही उसी स्थलमें बरसभर भगवान्के साथ क्रीड़ा करते

घास चर रहीं थीं उन्होंने व्रजके समीपमें चरते अपने बछरोंको देखा तो ॥ २९ ॥ देखतेही सबकी सब उनके स्नेहके वश हो, अपने देहकी सुध भूल गयीं, उनके स्तनोंमेंसे दूध टपकने लगा, ग्वाल और विषम मार्गका रंचभी ध्यान न रखकर, ऐसे दौड़ीं कि-मानों दोही पांवोंसे चल रही हैं और गर्दन ककुद (लाठ) पर लगाय, मुंह और पूंछको उठाय, बड़े बेगसे हुंकारशब्द करतीं बछरानके पास पहुँचीं ॥ ३० ॥ ये गैयां यद्यपि इनके दूसरे छोटे वत्स थे तथापि गोवर्धनसे नीचे आ, इन वत्सोंसे मिल, इनको स्तनपान कराने लगीं और मानों गिल जायंगी ऐसी भांति लगीं चाटने ॥ ३१ ॥ गैयानके रोकनेका परिश्रम व्य-

दृष्ट्वाऽथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा सगोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ॥ द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥ ३० ॥ समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ॥ गिलंत्य इव चांगानि लिहंत्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ॥ दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ॥ उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ॥ कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥ व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कंठ्यमनुक्षणम् ॥ मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिंतयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥ व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥

र्थ जाते लज्जासहित क्रोधभरित ग्वाल विषम मार्गमें क्लेश पाय, नीचे आये; वहां बछरनके संग अपने पुत्र दृष्टिमें आये ॥ ३२ ॥ उनको देखतेही वे ग्वाल भरेहुए प्रेमरसमें मग्न हुए और उनका प्यार अधिक बढ़ गया, क्रोध शांत हो गया, तद अपने पुत्रोंको हाथोंसे उठाय, छातीसे लगाय, उनके मस्तक सूंघ परमआनंदित हुए ॥ ३३ ॥ फिर बालकोंके आलिंगनसे परमआल्हादित बड़े गोप धीरे धीरे बड़ी कठिनतासे उन बालकोंके पाससे चले. परंतु बालकोंके स्मरणसे उनके नेत्रोंमें जल भर आया ॥ ३४ ॥ जिन्होंने स्तनपान करना छोड़ दिया था, ऐसे बच्चोंपरभी क्षण क्षणमें होती व्रजके प्रेमकी वृद्धि देख, उसके कारणको न जानकर, बलरामजी विचार करने लगे ॥ ३५ ॥ कि- प्रथम व्रजका सर्वात्मा श्रीकृष्णके ऊपर जैसा प्रेम था, तैसा

आसवके समान मादक था, वह पान कराया ॥ २२ ॥ हे राजा ! ऐसे उस उस समयकी क्रीड़ाके नियमप्रमाण सायंकालमें वर पहुँचे और सुंदर अपने आचरणोंसे आनंद देते हुए भगवान्का मातानने मर्दन, स्नान, लेपन, अलंकार, रक्षाके तिलक और भोजनआदिसे लालन किया ॥ २३ ॥ गैयानकोभी मोह हुआ सो कहते हैं. तद तुरत गैयां व्रजमें आय, अपने हुंकार शब्दोंसे बुलाये और मिले अपने अपने छोटे छोटे बछरानको वारंवार चाटतीं आपनेमेंसे झरता दूध पिलावने लगीं ॥ २४ ॥ गैयां और गोपियोंका मातृभाव तो पूर्ववत् रहा, परंतु इस समय स्नेह अधिक बढ़ गया. तथा इनमें भगवानकी बालभावना तो पूर्व-

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ॥ संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं-गतो याम यमेन माधवः ॥ २३ ॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ॥ स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहंत्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृताऽस्मिन्सर्वा-स्नेहर्धिकां विना ॥ पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्या-ब्दमन्वहम् ॥ शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥ इत्थमात्मात्मनाऽऽत्मानं वत्सपा-लमिषेण सः ॥ पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदा चारयन्वत्सान्सरामो व-नमाविशत् ॥ पंचषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥ ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ॥ गोवर्धनाद्रिशिरसि चरंत्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥

वत् रही लेकिन 'यह मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूं' ऐसा मोह न रहा ॥ २५ ॥ व्रजवासियोंका प्रथम यशोनंदन श्रीकृष्णचंद्रमें अपने पुत्रोंसेभी अधिक जैसा निःसीम स्नेह था तैसा स्नेह इससमय एक बरसपर्यंत प्रतिदिन अपने पुत्रोंमें बढ़ा ॥ २६ ॥ इस तरह श्रीकृष्णचंद्रने वत्सपालक होकर, वत्स और बालकोंके मिससे अपनेही स्वरूपको आपही पालन करते एक वर्षपर्यंत वनमें और व्रजमें क्रीड़ा करी ॥ २७ ॥ एक वर्ष पूरा होनेमें पांच वा छः रात्रि शेष रहीं थीं तद एक दिन भगवान् बलरामजीके साथ बछरे चरानेको वनमें पधारे थे वहां बलरामजीके ऐसा देखनेमें आया ॥ २८ ॥ 'गैयां जो बहुत दूर गोवर्धन पर्वतके शिखरपर

बालकभी नहीं है, तद आप वनमें उन दोनोंको चौतर्फ ढूंढ़ने लगे ॥ १६ ॥ सर्वज्ञ भगवान्‌ने बनके अंदर कहींभी बछरे और बालकोंको न देखकर, तुर्त जानलिया कि-यह सब कृत्य ब्रह्माजीका है ॥ १७ ॥ फिर जगत्कर्ता ईश्वर श्रीकृष्ण वत्सों और ग्वालोंकी मातानको तथा ब्रह्माजीकोभी प्रसन्न रखनेके लिये आपही सर्व वत्स और बालकरूप हुये. जो मैं चुप रहूंगा तो वत्स और बालकोंकी मातानको खेद होगा, यदि उन्हें ले आऊं तो ब्रह्माको मोह न होवे. इस विचारसे उभयरूप हुए॥ १८॥ जितने बालक और वत्स जैसा उनका छोटा शरीर, जैसे उनके छोटे छोटे हाथ पांवआ दि अंग, जितनी उनके पास लकड़ी, सींग,

क्वाप्यदृष्ट्वाऽन्तर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ॥ सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥ १७ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ॥ उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषांबरम् ॥ यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोऽगवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥ स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान्प्रतिवार्याऽऽत्मवत्सपैः ॥ क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २० ॥ तत्तद्वत्सान् पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ॥ तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयः सुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥

वेणु, पत्ता और छीका वगैरः, जितने गहने कपड़े, जैसा उनका स्वभाव, गुण, नाम रूप और अवस्था और जैसे उनके विहारादिक थे, उसीप्रमाण ‘ सब जगत् विष्णुमय है’ ऐसी जो प्रसिद्ध वाणी है उसी वाणीके अनुसार यथार्थ रूपसे सर्वस्वरूप भगवान् शोभित हुए ॥ १९ ॥ आपही निजरूप ग्वालोंसे निजरूप बछरानको घेरकर, आत्मरूप विहारोंसे क्रीड़ा करते सर्वात्मा भगवान् व्रजमें पधारे ॥ २० ॥ महाराज ! उन उन बछरानको जुदे जुदे ले जाय, उन उन गोष्ठोंमें प्रवेश कराय, वे वे बालकरूप भगवान् उन उन घरोंमें प्रविष्ट हुए ॥ २१ ॥ मुरलीका शब्द सुनतेही तुरंत उठी उनकी मातानने उन्हें अपने पुत्र मान, परब्रह्महीको अपने हाथोंसे उठाय आलिंगन कर, उनके स्नेहसे टपकते अपने स्तनका दूध कि-जो अमृतके समान मधुर और

भोजन करनेके पदार्थका स्वाद दिखाते, हँसते, हँसाते भगवान्‌के साथ भोजन करते थे ॥ १० ॥ इन बालकोंमें यज्ञभोक्ता भगवान् भोजन करते थे. इस समय पेट और फेंटाके बीचमें बंसी लिये सींग और बेंत बायीं कांखमें ले, बायें हाथमें सचिक्कण दहीभातका कौल ले, उसके योग्य फल अंगुलियोंकी संधियोंमें लिये भगवान् कर्णिकाके समान सबके सन्मुख विराजते थे और अपने हास्य वचनोंसे सब सुहृद्गणको हँसाते थे. इस बाललीलाको देवता लोग देख रहे थे ॥ ११ ॥ महाराज ! इस तरह ग्वालबालोंके भोजन करते और श्रीकृष्णचंद्रमें उनका चित्त लगजाते बछरे तृणके लोभसे बनके अंदर दूर चलेगये ॥ १२ ॥ तद उनको भयभीत देख,

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभि स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ भारतैवं वत्सपेषु भुंजानेष्वच्युतात्मसु ॥ वत्सास्त्वंतर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भी भयम् ॥ मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाऽद्रिदरीकुंजगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ॥ विचिन्वन् भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥ १४ ॥ अंभोजन्मजनिस्तदंतरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मंजु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ॥ नीत्वाऽन्यत्र कुरूद्वहांतरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाऽघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥ ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ॥ उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समंततः ॥ १६ ॥

भगवान् कि-जिनसे जगतका भय (मृत्यु) डरता है वे बोले कि-‘ हे मित्रो ! भोजन छोड़ कर उठो मत, मैं अभी बछरोंको यहां ले आता हूं ’ ॥ १३ ॥ ऐसे कह, हाथमें कौल लिये पर्वत गुफा, कुंज, विषमस्थलोंमें अपने बछरोंको ढूंढ़ते ढूंढ़ते पधारे ॥ १४ ॥ हे कुरुकुलदीपक, ! इस अवसरमें ब्रह्माजी कि-जो प्रथम मायासे बालकरूप भगवान्‌का किया अघासुरका मोक्ष देख, परमविस्मयको प्राप्त हो, आकाशमें ठाढ़े थे वे प्रभुकी दूसरीभी सुंदर महिमा देखनेके अभिप्रायसे यहांसे बालकोंको और वहांसे बछरोंको हर, दूसरे स्थलमें ले जाय, अंतर्ध्यान होगये ॥ १५ ॥ तब कृष्णचन्द्र बछरोंको न देख, पीछा तटपर आय, देखें तो

भगवानने इसतरह बछेरे और ग्वालबालोंकी अघासुरके मुखरूप मृत्युसे रक्षा कर, उनको नदीके तीरपर ला, कहा कि- ॥ ४ ॥ 'अहो ! हे मित्रो ! यह तट अपने क्रीड़ाका निधान और अतिरमणीय है, यहांकी बालू कोमल और स्वच्छ है. प्रफुल्लित कमलवाले सरोवरकी सुगंधिके लोभसे प्राप्त भौंरे और पक्षियोंके जलमें होते हुए शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे शोभायमान वृक्ष चारों ओर व्याप्त हो रहे-हैं ॥ ५ ॥ यहां आपन भोजन करें, दिन चढ़गया है, भूखं लगगयी है. बछेरे यहीं जल पी, निकटहीमें धीरे धीरे घास चरा करेंगे'

तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ॥ सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगंधहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधाऽर्दिताः ॥ वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरंतु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥ तथेति पाययित्वाऽर्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ॥ मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥ कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमंडलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ॥ सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथांऽभोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरंकुरैः फलैः ॥ शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभोजनाः ॥ ९ ॥ सर्वे मिथो दर्शयंतः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ॥ हसंतो हासयंतश्चाभ्यवजन्हुः सहेश्वराः ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ भगवान्के इन वचनोंको स्वीकार कर, सब ग्वालबाल बछरोंको जल पिलाय, हरे घासवाले प्रदेशमें रोंक, छींके खोल, भगवानके साथ आनंदसे भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ वनमें भगवान्के चारों ओर बहुतसी पंक्तियोंके मंडल बनाय, सन्मुख मुख कर, साथ बैठेहुए, प्रफुल्लित जिनकी दृष्टि है ऐसे ग्वालबाल कमलकी कर्णिकाके पत्तोंके समान शोभायमान लगते थे ॥ ८ ॥ कितनेएक बालकोंने तो फूलोंके, कितनेएकोंने फूलकी पंखुरियोंके, कितनेएकोंने पत्तोंके, कितनेएकोंने अंकुरोंके, कितने एकोंनें फलोंके, कितनेएकोंनें छीकोंके, कितनेएकोंने वृक्षकी छालके. कितनेएकोंने शिलाओंके वासन बनाय, भोजन किया ॥ ९ ॥ सब अपने अपने जुदे जुदे

उत्साह है, बहुतकरके यह भगवानकीही माया होनी चाहिये, इसमें संशय नहीं ॥ ४२ ॥ हे गुरु ! हम क्षत्रबंधु हैं, तौभी आपसे पवित्र कथारूप अमृतपान करते हैं, इसलिये बड़े भाग्यशाली हैं ॥ ४३ ॥ सूतजीने कहा कि—हे भगवद्भक्तोंमें उत्तमोत्तम शौनकजी! इस तरह परीक्षितके प्रश्नसे भगवान्‌का स्मरण करातेही प्रथम तो शुकदेवजीकी सब इंद्रियां भगवान्‌में लीन हो गयीं, फिर किसीप्रकार कष्टसे बहिर्वृत्तिमें आय, शुकदेवजीने धीरजसे उत्तर दिया ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ तेरहवें अध्यायमें, ब्रह्माजीके मायाकरके बछरे और

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबंधवः॥ यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथाऽमृतम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानंतहृताखिलेंद्रियः ॥ कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्ध द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥ सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ॥ प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥ २ ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ३ ॥

बालकोंका हरण करनेपर भगवानने उन्हींका स्वरूप करके, एक वर्षपर्यंत पहलेके जैसीही लीला करी, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे भागवतोत्तम ! हे महाभाग ! तैंने अच्छा प्रश्न किया. क्योंकि, भगवानकी कथा सुननेपरभी तू वारंवार नयीके जैसी करता है ॥ १ ॥ सार ग्रहण करनेवाले सत्पुरुषोंकी वाणी कान और चित्त ये सब भगवान्‌की कथाहीमें लगे रहते हैं, तौभी जैसे स्त्रीलंपट पुरुषोंका स्वभाव स्त्रियोंकी वार्ताको क्षणक्षणमें नवीन जैसी करनेका होता है, तैसे उन सत्पुरुषोंका स्वभाव प्रतिक्षण भगवान्‌की वार्ता अच्छीतरह नयी जैसी करनेका होता है ॥ २ ॥ महाराज ! सावधान होकर, सुनो; यह बात गुह्य है, तौभी तुमसे मैं कहता हूं; क्योंकि गुरुको स्नेहवाले शिष्यसे गुह्यवार्ताभी कहनी चाहिये ॥ ३ ॥

महिमा देख, विस्मययुक्त हुए ॥ ३५ ॥ महाराज ! वृंदावनमें सूखा हुआ यह अजगरका अनूठा चर्म व्रजवासियोंके बहुत अर्से- तक खेलनेको गुफारूप हो गया ॥ ३६ ॥ आपको मृत्युसे छुड़ाना, अघासुरका संसारसे मोक्ष यह भगवान्‌का कुमार अवस्थाका चरित देख, विस्मय करते बालकोंने भगवानकी पौगंड अवस्था अर्थात् पांचवां वर्ष बीत जानेके बाद एक बरसके अर्सेसे यह चरित भगवानने आज किया ऐसे कहा ॥ ३७ ॥ मायासे मनुष्यबालकरूप, तथ्यमें सर्वके आदिकारण परमात्मा श्रीकृष्णभगवानके स्पर्शसे पाप धोय, अघासुरभी असत्पुरुषोंको अतिदुर्लभ ऐसे भगवद्रूपको प्राप्त हुआ. यह बात कोई अचरजकी नहीं है ॥ ३८ ॥

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृंदावनेऽद्भुतम् ॥ व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ॥ मृत्योः पौगंडके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥ नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ॥ अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापाऽऽत्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥ सकृद्यदंगप्रतिमांऽतराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ॥ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोंऽतर्गतो हि किं पुनः ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ॥ प्रपच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कालांतरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ॥ यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगंडकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥ तद्ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूलं गुरो ॥ नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥

क्योंकि जिनकी केवल मनोमय मूर्ति प्रल्हादादिक भक्तोंने एकबार बलात्कारसे मनमें धारण करी और उसीने उनको मुक्ति दी, तद् निरंतर आत्मसुखके अनुभवसे मायाका तिरस्कार करनेवाले इन्ही भगवान्‌के अघासुरके शरीरमें प्रवेश करनेसे मोक्ष होय इसमें तो फिर क्या अचरज ? ॥ ३९ ॥ सूतजीने शौनकादिक ऋषियोंसे कहा कि—हे ब्राह्मणो! इस तरह निजपालक भगवान्‌का विचित्र चरित्र सुन, उसीमें जिसका चित्त लगरहा ऐसे राजा परीक्षितने व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीसे फिरभी उसी प्रसंगसंबंधी प्रश्न किया ॥ ४० ॥ राजा परीक्षित बोला कि—हे ब्रह्मन् ! भगवानने कुमारअवस्थामें जो लीला करी वह बालकोंने पौगंडअवस्थामें गायी, यह अन्य कालमें हुई बातका उस कालमें होना कैसे संभवे ? ॥ ४१ ॥ हे गुरु ! महायोगी ! यह विषय मुझसे कहो, क्योंकि यह सुननेका मुझको बड़ा

पवनका मार्ग रुक जानेसे उसके शरीरके भीतर भराहुआ और रुकाहुआ वायु उसके ब्रह्मरंधको भेदकर, बाहिर निकल गया ॥ ३१ ॥ पवनके साथही उसकी सब इंद्रियां बाहिर निकल गयीं, तद मरेहुए ग्वालबाल और बछरानको अपनी अमृत बरसनेवाली दृष्टिसे जिलाय, उन्हींके साथ श्रीकृष्णभगवान् उसके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२ ॥ इस अजगरके मोटे शरीरमेंसे निकलाहुआ, महाअद्भुत अपने प्रकाशसे दशों दिशाओंको प्रज्वलितकरता शुद्ध तेज कि–जो भगवान्के बाहर निकलनेकी राह

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ॥ दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुंदो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ॥ प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ॥ गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥ तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमंगलस्वनान् ॥ श्रुत्वा स्वधाम्नोऽत्यज आगतोऽचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥

देख देखता आकाशमें रुकरहा, जद भगवान बाहिर आये, तद वह देवतानके देखते भगवान्में प्रविष्ट हुआ ॥ ३३ ॥ तद देवताननें अतिप्रसन्न हो फूल बरसाये, अप्सराननें नृत्य किया, गंधर्व गाने लगे, बाजे बजानेवाले बाजे बजाने लगे, पार्षदगण जयशब्द करने लगे, इसतरह अपने कार्यके कर्त्ता भगवानकी सबोंने पूजा करी ॥ ३४ ॥ ब्रह्माजी ये अद्भुत स्तोत्र, सुंदर बाजे गायन और जयघोषादिक अनेक उत्सवके मंगलशब्द अपने धामके पास सुन, तुरत वृंदावनमें आय, श्रीकृष्णचंद्रकी

---

१ यह अघासुर कौन था ! और कैसे मोक्ष पाया ? तहां कहे हैं कि– यह शंखासुरका पुत्र है. जो कि– महाबलवान् जवान् कामदेवसमान, रूपवान् था. सो कोई दिन मलयाचल पहाड़पर जाते हुये अष्टावक्र मुनि जो कि– आठ जगे टेढ़े थे उन्हें देख, अहो ! यह कौन ऐसा महाकुद्रूप है ? ऐसे कहता हुवा यह अघासुर खूब हँसा. तब मुनिने क्रोधकर, इसे श्राप दिया कि– पृथ्वीमें सर्पोंकी जात टेढ़ी चलनेवाली होती है इसलिये रे अधम दैत्य ! तू सर्प हो. इतना सुनतेही यह दैत्य महा गिड़गिड़ाय, हा हा खाय, मुनिके पावोंमें पड़ा. तद मुनिने प्रसन्न हो, फेर वर दिया. कि– कोटिकामदेवके समान सुरूपवान् भगवान् श्रीकृष्णजी जब तेरे पेटमें पैठेंगे तब तेरी यह सर्पयोनि छूटेगी. इसीसे इसने देवदुर्लभ मोक्ष पाया. ॥ ग०

लोगोंकी परस्पर भूलसे होती हुई बात सुन, वास्तवमें सत्य बात असत्य मालूम होती है, ऐसे सोच, उन मित्रोंको रोकनेका विचार किया ॥ २५ ॥ इतनेमें तो वे बालक बछरोंसहित अघासुरके पेटके अंदर पहुंचे. ये उदरमें आगये, तथापि अपने दोनों सहोदरोंके वधका स्मरण करता अघासुर, श्रीकृष्णचंद्रके प्रवेशकी प्रतीक्षा कर रहा था; तासों उसने वत्ससहित उन बालकोंको न निगला ॥ २६ ॥ सबके अभयदाता भगवान् अपने हाथसे निकलेहुए कि-जिनका दूसरा कोई स्वामी नहीं है, ऐसे दीन प्राणि-

तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरांतरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ॥ प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकांत-स्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् ॥ दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७ ॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ॥ द्वयं कथं स्यामिति संविचिंत्य ज्ञात्वाऽविशत्तुंडमशेषदृग्घरिः ॥ २८ ॥ तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ॥ जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबांधवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ॥ चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ॥ ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ॥ पूर्णोऽतरंगे पवनो निरुद्धो मूर्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥

योंको मृत्युके समान अघासुरकी जठराग्निमें घासरूप अथवा कवलहुए जान, दयासे पीड़ित हो, दैवके कर्त्तव्यसे विस्मय पाय, विचार करने लगे ॥ २७ ॥ कि- ‘ अब यहां क्या करना चाहिये ? यह दुष्ट अघासुर तो न बचे और ये सज्जन न मरें, ये दोनों बात कैसे बनें ? ’ ऐसे सोच विचार, उसके उपायका निश्चय कर, सर्वद्रष्टा हरि उसके मुखमें प्रविष्ट हुए ॥ २८ ॥ इस समय बादलकी ओट दे, खड़े देवता हाहाकार करने लगे और अघासुरके संबंधी कंसादिक राक्षस प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥ यह हाहाकार सुन, अविनाशी श्रीकृष्ण भगवान् यह अघासुर कि-जो बालक और बछरानके संग आपको चूर्ण करना चाहता था, उसके गलेमें बढ़े ॥ ३० ॥ उनके बढ़नेसे उसका गला घुटगया, इधर उधर तड़फड़ाने लगा, आंखें बाहर निकल पड़ीं और

भूलसे वृंदावनकी संपत्ति समझ, सब बालक खेलते खेलते उसे विपरीत समझ, अजगर सर्पके फटे मुखकी उत्प्रेक्षा करने लगे ॥ १८ ॥ कि– ' अहो ! मित्रो ! यह जो सामने दीख पड़ता है, वह किसी प्राणीके सदृश है या नहीं ? तिसपरभी आपनको गिल जानेके लिये फटेहुए अजगरके मुखके समान लगता है वा नहीं ? सो कहो ॥ १९ ॥ सचमुच सूर्यकी किरणोंसे लाल बादल ऊपरके होंठसे समान और उस बादलकी छायासे लाल मालूम होता हुआ यह स्थल नीचेके होंठके समान दिखायी देता है ॥ २० ॥ ये बायीं और दाहिनी पर्वतकी दोनों गुफा गलफरके समान, ये ऊंचे शिखरकी पंक्तियां अजगरकी दाढ़ोंके

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरःस्थितम् ॥ अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुंडायते न वा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् ॥ अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययाऽरुणम् ॥ २० ॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ॥ तुंगशृंगालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥ आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति ॥ एषामंतर्गतं ध्वातमेतदप्यंतराननम् ॥ २२ ॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत ॥ तद्दग्धसत्त्वदुर्गंधोप्यंतरामिषगंधवत् ॥ २३ ॥ अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनंक्ष्यति ॥ क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसंतः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिंत्येत्य मृषाऽमृषायते ॥ रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥

समान, ॥ २१ ॥ यह लंबा चौंड़ा मार्ग जीभके सदृश, शिखरोंके अंदरका यह अँधेरा अजगरके मुखके मध्यभागके समान ॥ २२ ॥ दावानलसे गर्म यह कठोर वायु श्वासके समान मालुम होता है. इसे देखो. दावालनसे जले प्राणियोंका दुर्गंध अजगरके खाये मांसकी बदबूके समान मालूम होता है ॥ २३ ॥ इसमें आपन घुसेंगे, तद क्या यह आपनको गिल जायगा ? और गिल जायगा तो क्या बककी तरह यह कृष्णके हाथसे तुरंत नष्ट हो जायगा, ? ऐसे कहते, भगवान्‌के सुंदर मुखके सामने देखते. ये बालक ताली देकर, हँसते हँसते चले ॥ २४ ॥ इसे राक्षस जानते सर्वजीवोंके अंतर्यामी भगवान्‌ने इसतरह अनजान

सहके, मनको वश करनेवाले योगीजनोंकोभी जिनके चरणकी रज मिलनी दुर्लभ है वेही आप भगवान् जिनकी दृष्टिके सामने प्रत्यक्ष विराजे, उन व्रजवासिनके भाग्यका अब कहांतक वर्णन करूं ? ॥ १२ ॥ तदनंतर इन लोगोंकी सुखपूर्वक क्रीड़ाका असहन करता हुवा अघासुरनाम बड़ा दैत्य आया, अमृतपान करनेवाले अमर भी अपने जीवनकी इच्छासे जिसके छिद्रकी सदा राह देखते हैं ॥ १३ ॥ उस कंसके पठाये बकासुर और पूतनाके छोटे भाई अघासुरने श्रीकृष्णचंद्रआदि सब बालकोंको देखके, विचार किया कि– ' इसने मेरे दो सहोदरोंका नाश किया है, इसलिये उनकी एवजमें इस कृष्णका,

अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ॥ नित्यं यदंतर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ॥ अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥ १४ ॥ एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ॥ प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिंता प्रजाऽसवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम्॥ धृत्वाऽद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६ ॥ धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननांतो गिरिशृंगदंष्ट्रः ॥ ध्वांतांतरास्यो वितताध्वजिव्ह रुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृंदावनश्रियम् ॥ व्यात्ताजगरतुंडेन ह्युत्प्रेक्षंते स्म लीलया ॥ १८ ॥

इसकी सेना जो ग्वालबाल व बछेरे हैं, उनके संग वध करूंगा ॥ १४ ॥ ये सब जब मेरे सहोदरोंके तिल, जलरूप हो जायंगे, तब व्रजवासी मरनेके सदृश हो जायंगे, प्राण गये पीछे देहकी क्या चिंता ? देह धारियोंके प्राण तो बालकही हैं ॥ १५ ॥ ऐसा निश्चय कर, यह खल अघासुर सबको गिल जानेकी आशासे अजगरका बड़ा अद्भुत रूप करके, मार्गमें सो गया. यह अजगर एक योजन लंबा, बड़े पर्वतके जैसा मोटा, गुफाके समान मुंह फाड़े पड़ा था ॥ १६ ॥ नीचेका होंठ जमीनपर और ऊपरका बादलको छुये था. गलफर गुफाके समान, दाढ़ें पर्वतके शिखरके समान, मुंहके अंदरका भाग अंधकारके समान, जीभ लंबी सड़कके सदृश, श्वास कठोर पवनके समान और आंखें दवानलके समान जैसी गर्म थीं ॥ १७ ॥ इस अजगरको देख, उसे

और सुवर्णका शृंगार किये थे, तथापि फल, कोंपल, गुच्छा, पुष्प, मोरपिच्छ और धातुनसे शृंगार बना रहे थे ॥ ४ ॥ आपसमें छीकाआदि पदार्थ चुराते, जाननेपर तुरत दूरसे फेंक देते थे और उस जगह जो खड़े होते, वे फिर हँसके दूसरे देते थे ॥ ५ ॥ यदि बनकी शोभा देखनेको भगवान् दूर चले जायं तद 'मैं पहले, मैं पहले' ऐसे कहके उन्हें छूते थे और खेलते थे ॥ ६ ॥कई बेणु बजारहे हैं, कई सींगका शब्द कररहे हैं, कोई भौंरोंके साथ गा रहे हैं और कई कोयलोंके साथ टहूकादे रहे हैं ॥ ७ ॥ पक्षियोंकी छायाके साथ दौड़ते, हंसोंके साथ अच्छी तरह चलते, बगपांतिके साथ बैठते, मोरोंके साथ नाचते, ॥ ८ ॥

मुष्णंतोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ॥ तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसंतश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥ केचिद्वेणून्वादयंतो ध्मांतः शृंगाणि केचन ॥ केचिद्भृंगैः प्रगायंतः कूजंतः कोकिलैः परे ॥ ७ ॥ विच्छायाभिः प्रधावंतो गच्छंतः साधु हंसकैः ॥ बकैरुपविशंतश्च नृत्यंतश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥ विकर्षंतः कीशबालानारोहंतश्च तैर्द्रुमान् ॥ विकुर्वंतश्च तैः साकं प्लवंतश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलंघंतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः ॥ विहसंतः प्रतिच्छायाः शपंतश्च प्रतिस्वनान् ॥ १० ॥ इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ॥ मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुंजाः ॥ ११ ॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः ॥ स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमहो व्रजौकसाम् ॥ १२ ॥

बंदरोंकी पूंछें खैंचते, पूंछ न छोड़ उनके साथ वृक्षोंपर चढ़ते, उनके साथ मुख मोड़ते और वृक्षोंपर कूदते ॥ ९ ॥ मेंड़कोंके साथ ठेका देते, नदी झरनोंमें न्हाते, अपनी छायाको हँसते और प्रतिध्वनिको गाली देते ॥ १० ॥ जिन्होंनें बडा भारी पुण्य किया है ऐसे ग्वाल बाल इसतरह भगवान् कि-जो विद्वानोंके ब्रह्मसुख और अनुभवरूप हैं, भक्तोंके परम दैवतरूप हैं और मायामोहित पुरुषोंके लिये मनुष्यके बालकरूप हैं उनके साथ क्रीड़ा करते थे, अहो! भाग्य है, गोपोंका कि-ब्रह्मवेत्तानको तो भगवान्का केवल अनुभवही होता है, भक्तोंको केवल भजनही, परंतु इन ग्वालबालोंमें सखाभावसे इनके साथ क्रीड़ा करी॥ ११ ॥ बहुतजन्मतक कष्ट

जैसे फनगा नष्ट होता है, तैसे नष्ट होजाते हैं ॥ ५६ ॥ अहो ! वेदवेत्तानके वचन कभी असत्य नहीं होते, महात्मा गर्गाचार्यने जो कहा था, वैसाही अनुभव करनेमें आया " ॥ ५७ ॥ इस तरह आनंदसे श्रीकृष्ण बलरामजीकी बातें करते, आनंद पाते नंदादिक गोपोंनें संसारकी वेदना न जानी ॥ ५८ ॥ इसतरह छुपना, सड़क बांधना, बानरकी तरह कूदना, इत्यादि कुमार अवस्थाके खेलोंसे इन दोनों भाइयोंने कुमार अवस्था बितायी ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्त्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ बारहवें अध्यायमें, अजगरके रूपसे आय, ग्वालबाल और बछरों-

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः संति कर्हिचित् ॥ गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥५७ ॥ इति नंदादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ॥ कुर्वंतो रममाणाश्च नाविंदन् भववेदनाम् ॥ ५८ ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे वत्सबकवधोनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥ प्रबोधयन् शृंगरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥ तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ॥ स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ॥ चारयंतोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥ ३ ॥ फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः ॥ काचगुंजामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥

को निगल जानेवाले अघासुरके गलेमें रहकर, उसका वध किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- किसीदिन वनमें भोजन करनेके विचारसे भोर होतेही उठ, सुंदर सींगके शब्दसे अपने मित्र ग्वालबालनको जगाय, बछरानके यूथको आगे कर, भगवान् व्रजसे निकले ॥ १ ॥ उनके साथ आपके स्नेही ग्वालोके हजारों बालक अच्छे अच्छे छीके. बेत, सींग और बांसुरी लिये हजारसेभी अधिक संख्यावाले अपने अपने बछरोंके यूथ आगे कर, आनंदके साथ निकले ॥ २ ॥ श्रीकृष्णके असंख्यात बछरानके संग अपने बछरानको यूथ कर, उनको चराते ये बालक जहां तहां क्रीड़ा करते थे ॥ ३ ॥ ये काच, गुंजा (घूंघची) मणि,

आतेहुए कंसके मित्र बकासुरको उसकी चोंचके दोनों भागोंको दोनों हाथोंसे पकड़, बालकोंके देखते लीलामात्रसे तूलीके समान चीरं डाला ॥ ५१ ॥ उससमय स्वर्गवासी देवताननें बकासुरके बधकर्ता भगवानके ऊपर नंदनवनके मल्लिका आदि पुष्पोंकी वृष्टि करी, दुंदुभि तथा शंखनाद करने लगे और स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे, जिसको देखके, ग्वालबाल विस्मित हुए ॥ ५२ ॥ जैसे इंद्रियगण प्राणोंको पाय सुखी होवे, तैसे बकासुरके मुहसे मुक्त भगवानको पाय, बलभद्रादिक सब बालक सुखी हुए और स्थानपर पधारे,

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन्नंदनमल्लिकादिभिः॥ समीडिरे चानकशंखसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥ ५२ ॥ मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवेंद्रियो गणः ॥ स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः ॥ ५३ ॥ श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ॥ प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षंत तृषितेक्षणाः ॥ ५४ ॥ अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ॥ अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५५ ॥ अथाप्यभिभवंत्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ॥ जिघांसयैनमासाद्य नश्यंत्यग्नौ पतंगवत् ॥ ५६ ॥

भगवानसे मिल, बछरोंको इकट्ठे कर, व्रजमें आय, वह वार्ता सबसे कहने लगे॥ ५३ ॥ यह बात सुन, विस्मययुक्त और बहुत प्रीतिसे आदरयुक्त गोप और गोपियां परलोकसे पीछा आयाहो जैसे तृष्णाभरित नेत्रोंसे देखने लगे और बोले ॥ ५४ ॥ कि–"अहो ! इस बालकके ऊपर बड़ी बड़ी घातें आयीं, परंतु जो घात करने आये, उन्हींका बुरा हुआ, क्योंकि पहले उन्होंने दूसरोंको भय उत्पन्न किया ॥ ५५ ॥ ये लोग भयंकररूप हैं, तौभी इस बालकका पराभव नहीं करसक्ते, मारनेकी इच्छासे इसके समीप आय, अग्निमें पड़,

१ यह बकासुर कौन था ? और कैसे परमधाम पाया ? तहां कहे हैं कि– यह उत्कल नाम हयग्रीव दैत्यका बेटा था. जो कि– रणमें देवतावोंको जीतके, इन्द्रका छत्र लेलिया था और राजावोंके राजभी ले, सौ १०० वर्ष अखंड राज करा. सो कोई दिन इसने जाजलि मुनिके आश्रमके निकट सिन्धु और सागरके संगममें जाल छोड़, मच्छी मारना शुरू किया. उस समय मुनिने उसे रोंकाभी तथापि मदोन्मत्त इसने न माना. मारतेही रहा. तब महातपस्वी मुनिने क्रोध कर, इसे श्राप दिया. कि–रे दुष्ट ! जिससे तू बगुलेकी भांति मच्छी मार मार खाता है इसीसे जा बगुला होगा. इतना कहतेही तुर्त इसने बगुला हो, मुनिकी शरण जा, चरण पकड़, स्तुति कर, क्षमा मांगी. तद प्रसन्न हो, जाजलिमुनिनें उद्धार करते यह कहा कि–जब वृन्दावनमें श्रीकृष्ण भगवान् तुझे मारेंगे तब तू उन्हींके रूपमें मिल जायगा. इसीसे यह तद्रूप भया. ॥ ग०

उस दैत्यको देख, विस्मय करते बालक वाह ! वाह ! कहनेलगे, और अतिप्रसन्न देवताननें पुष्पोंकी वर्षा करी ॥ ४४ ॥ सब लोगोंके मुख्य पालक ये दोनों भाई वत्सपाल होयके, प्रातःकालका भोजन साथ लिये बछरोंको चराते फिरते थे ॥ ४५ ॥ एकदिन सब बालक अपने बछरोंको घेरके, पानी पिलानेके लिये जलाशयके पास गये और बछरोंको जल पिलाय, आपनेभी जल पिया ॥ ४६ ॥ वहां उन बालकोंने वज्रसे टूटे गिरे पर्वतके शिखरके समान बैठा हुआ एक बड़ा जीव देखा और घबराये ॥ ४७ ॥ यह बड़ा बक (बगलाका)

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ देवाश्च परिसंतुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४४ ॥ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ॥ सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयंतौ विचेरतुः ॥ ४५ ॥ स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यंत एकदा ॥ गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥ ४६ ॥ ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ॥ तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृंगमिव च्युतम् ॥ ४७ ॥ स वै बकोनाम महानसुरो बकरूपधृक् ॥ आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुंडोऽग्रसद्बली ॥ ४८ ॥ कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ॥ बभूवुरिंद्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४९ ॥ तं तालुमूलं प्रदहंतमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ॥ चच्छर्द सद्योऽतिरुषाऽक्षतं बकस्तुंडेन हंतुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ५० ॥ तमापतंतं स निगृह्य तुंडयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ॥ पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ५१ ॥

रूप धारण करनेवाला बकासुर नाम दैत्य था, तीखी चोंचवाला यह बलवान् बकासुर आयके, जल्दी कृष्णको निगल गया ॥ ४८ ॥ बलरामआदि सब बालक श्रीकृष्णको मोटे बकासुरसे निगले देख, प्राणरहित इंद्रियोंके समान अचेत हो गये ॥ ४९ ॥ नंदरायके पुत्र कि-जो ब्रह्माकेभी पिता हैं, उन्होंने उसका तालु अग्निके समान जलाना शुरू किया, तद उसने तत्काल बेवात किये उगल दिया, पर फिर पीछा बहुत क्रोधमें होके, चोंचसे उन्हे मारने आया ॥ ५० ॥ सत्पुरुषोंके पति और देवतानके आनंदकन्द भगवानने इस

ऐसे बाललीला और मनोहर वचनोंसे व्रजवासिनको आनंद देते रामकृष्ण योग्य कालमें वत्सपाल हुए ॥ ३७ ॥ क्रीड़ाके अनेक साधन रखते दोनों भाई ग्वालबालोंके साथ व्रजभूमिके नगीचमें बछरे चराने लगे ॥ ३८ ॥ कभी मुरली बजावें हैं, कभी बीन और आमलेआदि पदार्थोंके गोफन चलावे हैं, कभी घुंगरुवाले पावनसे प्रहार करे हैं, कभी कमरी ओढ़के, बालकही वृष बने हैं ॥ ३९ ॥ कभी आपभी वृषरूप बनाय नाद करते हैं और आपसमें लड़ते हैं, कभी हंस, मोरआदि जन्तुओंका शब्दसे अनु-

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छंतौ बालचेष्टितैः ॥ कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३७ ॥ अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ॥ चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३८ ॥ क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ॥ क्वचित्पादैः किंकिणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ ३९ ॥ वृषायमाणौ नर्दंतौ युयुधाते परस्परम् ॥ अनुकृत्य रुतैर्जंतूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ ४० ॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ॥ वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४१ ॥ तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ॥ दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवाऽऽसदत् ॥ ४२ ॥ गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलांगूलमच्युतः ॥ भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ॥ सकपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४३ ॥

करण करते प्राकृत बालकके समान फिरते हैं ॥ ४० ॥ किसीसमय यमुनाजीके तीरपर अपने बराबरके मित्रोंके साथ बछरे चराते रामकृष्णको मारनेकी इच्छासे एक दैत्य आया ॥ ४१ ॥ बछरेके रूपसे बछरोंके टोलेमें मिलेहुए दैत्यको देख, बलरामजीको उसे दिखाते भगवान् अजानके समान धीरे धीरे उसके पास पहुँचे ॥ ४२ ॥ भगवान्ने उसके पूंछके साथ,पिछले पैर पकड़,घुमाय प्राण निकाल, कपित्थ (कैथा) के वृक्षके ऊपर पछाड़ा. उससे कपित्थके वृक्ष गिरनेलगे और उनके साथ महाकाय वह गिरा ॥ ४३ ॥

१ यह वत्सासुर कौन है ? और कैसे भगवत्के हाथ मोक्ष पाई ? तहां कहे हैं कि-यह देवविजयी मुरु नाम दैत्यका प्रमील नामका बेटा है. जो कि-कोई दिन ब्राह्मणका रूप धर वसिष्ठमुनिके आश्रममें जाय उन्होंकी मनोहर नन्दिनी नाम कामधेनु गौको देख, ज्यों लेना चाहा. त्योंहीं गऊने श्राप दिया कि-रे दुष्ट ! जिससे तू ऋषियोंकी गाय लेना चाहता है इससे जा बछरा हो इतना कहतेही वह तुर्त बछरा हो, मुनि और गौकी परिक्रमा दे, त्राहि ३ पुकारा तद वह गौ प्रसन्न हो उद्धार करती यह कही कि-जब तू वृंदावनमें बछरोंमें मिलेगा और श्रीकृष्णजी तुझे मारेंगे तब तेरी मुक्ति होगी. इसीसे इसने भगवान्के हाथ मोक्ष पाया ॥ ग०

वृंदावननाम वन पशुओंके अनुकूल और नया वन है और गोप गोपियां तथा गैयानके सेवन करनेके योग्य है, इसमें पर्वत तृण और लता ये सब अच्छे हैं ॥ २८ ॥ इससे वहां आजही चले चलें, इसलिये तुम सबकी रुचि हो तो गाड़े जोड़ो, देरी मत करो, गोधनको प्रथमसे आगे चलने दो ॥ २९ ॥ यह बात सुन, एकमति होके, सब ग्वाल वाह ! वाह ! ऐसे कहके, अपने अपने गाड़े जोड़, उनपर सर सामान लादके, चले ॥ ३० ॥ महारा ज ! वृद्ध बालक और स्त्रियोंको गाड़ोंमें बिठलाय, सब सरसामानको गोड़ोंमें भर, सावधान होय, धनुष हाथोंमें लिये, गोप गोधनको आगे कर, चारोंओरसे सींग बजाते और तुतारीका बड़ा शब्द

नवं वृंदावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २८ ॥ तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युंक्त माचिरम् ॥ गोधनान्यग्रतो यांतु भवतां यदि रोचते ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विवतिवादिनः ॥ व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥ ३० ॥ वृद्धान्बालान् स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च ॥ अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ ३१ ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृंगाण्यापूर्य सर्वतः ॥ तुर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३२ ॥ गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुंकुमकांतयः ॥ कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककंठ्यः सुवाससः ॥ ३३ ॥ तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ॥ रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३४ ॥ वृंदावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ॥ तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचंद्रवत् ॥ ३५ ॥ वृंदावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ॥ वीक्ष्याऽऽसीदुत्तमा प्रीति राममाधवयोर्नृप ॥ ३६ ॥

करते, पुरोहितोंको साथ ले, वृंदावनमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ गाड़ोंमें बैठी, स्तनोंपर चर्चित नवीन केसरसे सुशोभित, सुंदर वस्त्र पहने, गलेमें पदक (चौकिन) का कठुला पहने, सब गोपियां आनंदसे भगवान्‌की लीला गाने लगीं ॥ ३३ ॥ तथा यशोदा और रोहीणीजीभी भगवान् और बलभद्रके साथ एक गाड़ामें बैठीं शोभायमान होरही थीं और उनकी बातें सुननेमें तत्पर थीं ॥ ३४ ॥ वृंदावन कि–जो सर्वकालमें सुखदायी है उसमें प्रवेश करके वहां गाडोंसे अर्धचंद्राकार गोकुलका वासस्थान बनाया ॥ ३५ ॥ महाराज ! वृंदावन, गोवर्द्धनपर्वत और यमुनाजीका तट देखके, रामकृष्णको उत्कट आनंद हुआ ॥ ३६ ॥

पहराये हैं. तो तुमभी न्हाय, भोजन कर, फिर खेलो ॥ १९ ॥ शुकदेवजी बोले कि–हे नृप ! स्नेहसे बँधीहुई है बुद्धि जिनकी ऐसी यशोदाजीने संपूर्ण ब्रह्मादि देवताओंसे जो श्रेष्ठ भगवान् उनको 'अपना पुत्र' ऐसे मान, बलदेवजीसहित दोनोंके हाथ पकड़, अपने घरमें ले जाय उदयिक (ह्विलाना भोजन करना, अलंकार पहिराना, इत्यादि) मंगल कार्य किये ॥ २० ॥) इतनीकथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि–गोपोंमेंसे वृद्ध नंदादिक गोप व्रजमें बड़े बड़े उत्पात होते देखके, सब इकठे हो, गोकुलके हितके कृत्यका विचार करने लगे ॥ २१ ॥ तहां उपनंदनाम गोप कि–जो देश कालके तत्वका जाननेवाला, ज्ञान और अवस्थासे बड़ा,

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ॥ हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ २० ॥) गोपवृद्धा महोत्पातानतुभूय बृहद्वने ॥ नंदादयः समागम्य व्रजकार्यममंत्रयन् ॥ २१ ॥ तत्रोपनंदनामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ॥ देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २२ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ॥ आयांत्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २३ ॥ मुक्तः कथंचिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ॥ हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥ २४ ॥ चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ॥ शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥ २५ ॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरंतरं प्राप्य बालकः ॥ असावन्यतमो वाऽपि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २६ ॥ यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ॥ तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २७ ॥

बलभद्र और श्रीकृष्णचंद्रके प्रिय करनेवाला था, उसने कहा कि– ॥ २२ ॥ आपनको गोकुलकी हित करनेकी इच्छा हो, तो यहांसे निकल जाना चाहिये; क्योंकि यहां बालकोंके नाश करनेवाले बड़े बड़े उत्पात आते हैं ॥ २३ ॥ बालकोंकी मारनेवाली राक्षसीके हाथसे यह बालक किसीप्रकार छूटा है, शकट गाड़ा शिरपर न गिरा, यहभी बिलकुल ईश्वरका अनुग्रहही है ॥ २४ ॥ एक दैत्य बौंड़रके रूपसे इसको निराधार आकाशमें ले गया और पीछा शिलापर गिरा, वहांभी इसकी देवतानने रक्षा करी ॥ २५ ॥ वृक्षोंके बीचमें आनेपरभी यह अथवा दूसरा कोई बालक न मरा, यहभी ईश्वरनेही रक्षा करी ॥ २६ ॥ इसलिये अब दूसरा कोई औत्पातिक अनर्थ व्रजमें न आवे उससे पहले बालकोंको लेकर, परिवारसहित आपन दूसरी ठौर चलें ॥ २७ ॥

धान्य डालनेके अनंतर दोनों हाथ फलसे पूर्ण किये और उन्होंने उसका भाड रत्नसे पूर्ण किया ॥ ११ ॥ यमलार्जुन वृक्षोंको उखाड़, बालकोंके साथ क्रीड़ामें अत्यंत मग्न श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजीको रोहिणी देवीने पुकार कर बुलाया ॥ १२ ॥ परंतु वे दोनो खेलनेमें अत्यंत निमग्न हैं, इससे नहीं आते ऐसा देख, पुत्रवत्सल यशोदाको उन दोनोंको बुलानेके लिये रोहिणीजीने भेजा ॥ १३ ॥ पुत्रस्नेहसे झर रहे हैं पयोधर जिसके ऐसी यशोदा बालकोंके साथ खेलनेवाले सुत कृष्णको अग्रज जो बलराम उनके सहित पुकारने लगी कि– ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कमलनयन ! हे तात ! आओ, स्तनपान

सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ॥ रामं च रोहिणी देवी क्रीडंतं बालकैर्भृशम् ॥ १२ ॥ नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासंगेन पुत्रकौ ॥ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ १३ ॥ क्रीडंतं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ॥ यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १४ ॥ कृष्ण कृष्णारविंदाक्ष तात एहि स्तनं पिब ॥ अलं विहारैः क्षुत्क्षांतः क्रीडाश्रांतोऽसि पुत्रक ॥ १५ ॥ हे रामागच्छ ताताऽऽशु सानुजः कुलनंदन ॥ प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥ १६ ॥ प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ॥ एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥ १७ ॥ धूलिधूसरितांगस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ॥ जन्मर्क्षं तेऽद्य भवति विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १८ ॥ पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ॥ त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १९ ॥

करो, क्योंकि खेलते खेलते थक गये हो और हे पुत्र ! क्षुधासे श्रांत हुए हो तो अब खेलसे बस करो ॥ १५ ॥ हे राम ! हे प्यारे ! हे कुलनंदन ! जलदी छोटे भैयाके साथ आवो, तुमने सबेरेही बेग भोजन किया था इसलिये अब तुमको भोजन करना उचित है ॥ १६ ॥ हे दाशार्ह ! व्रजराज नंदरायजी भोजन करने बैठे हैं, सोभी आपकी राह देखे हैं, अब तुम आओ और हम दोनोंको प्रसन्न करो. इतना कहनेपर न आये, तब यशोदाने बालकोंसे कहा कि–हे बालको ! तुम अपने २ घरको जाओ ॥ १७ ॥ फिरभी यशोदाजी पुत्रसे कहती हैं, हे पुत्र ! तुह्मारा शरीर धूरसे भरा है. सो तुम स्नान करो और आज तुह्मारी जनमगांठ है सो ब्राह्मणोंको गौदान देओ ॥ १८ ॥ तुमारे बराबरके लरिकानको देखो कि–उनकी माताओंने न्हिलाय, धुलाय, आभूषण

के, भयचकित होगये ॥ २ ॥ दामनसे बँधे बालकको ऊखल खैंचते देखा तौभी, यह किसका काम है ? कहांसे हुआ ? अहो बड़ा अचरज है ! उत्पात ! ऐसे भयभीत होगये ॥ ३ ॥ बालकोंने कहा कि- इस कृष्णके बीचमें आने और तिरछे पड़ेहुए ऊखलके खैंचनेसे ये वृक्ष इसीने गिराये, केवल इतनाही नहीं इन वृक्षोंमेंसे दो पुरुषभी निकले हमने देखे ॥ ४ ॥ ग्वालोंमेंसे कितनेएक ग्वालोंने तो बालकके वृक्षोंका उखेड़ना संभवे नहीं ऐसे समझके, बालकोंका कहना नहीं माना और कितनेएक ग्वालोंके मनमें संदेह होगया ॥ ५ ॥ दामसे बँधे और ऊखलको घसीटते अपने पुत्रको देख, नंदरायजीने हसित-

उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं च बालकम् ॥ कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ॥ बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलं विकर्षंतं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ॥ विलोक्य नंदः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥ गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ॥ उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयंत्रवत् ॥ ७ ॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ॥ बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥ ८ ॥ दर्शयंस्तद्विदांलोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ॥ व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥ (क्रीणीहि भो फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ॥ फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ १० ॥ फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् ॥ फलैरपूरयद्रत्नैः फलभांडमपूरि च ॥ ११ ॥

मुख होकर, छोड़ दिया ॥ ६ ॥ गोपियोंके बढ़वा देनेसे किसीसमय बालकके समान भगवान नृत्य करते, किसीसमय गाते और किसीसमय काठकी पुतलीके समान उनके अधीन रहते ॥ ७ ॥ कभी उनकी आज्ञासे पट्टे, पायली, पादुका उठाते ऐसेही अपने भक्त ग्वालबालनको प्रसन्न करनेके लिये बांह ठोकते ॥ ८ ॥ लोकोंमें विचक्षणपुरुषोंको "मैं भक्तवश हूं" ऐसे दिखाते भगवान्ने अपनी बाललीलानसे व्रजको आनंदित किया ॥ ९ ॥ (एक समय फल लो ! ऐसी मालिनकी अवाज सुन, तुर्त कृष्णभगवान् कि-जो फल देनेवाले हैं, वे फल लेनेको धान्य लेकर, चले ॥ १० ॥ मालिनने उनके

हँसकर, उन दोनों यक्षोंसे कहा ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि- दयालु नारदजीने, तुम जो लक्ष्मीके मदसे अंध होरहे थे, उनपर अपनी वाणीसे लक्ष्मीका मद निवृत्त करके, पदच्युतरूप अनुग्रह किया, इस बातको मैं पहलेहीसे जातना था ॥ ४० ॥ स्वधर्मवर्ती, ब्रह्मवेत्ता और उनमेंभी फिर मुझमें चित्त अर्पण करनेवाले महात्मानके दर्शनसे जैसे सूर्यके दर्शनसे नेत्रोंके बंधन नहीं रहते तैसे पुरुषके बंधन रहे नहीं ॥ ४१ ॥ इसलिये अब हे नलकूबर ! तुम मेरे परायण होयके, अपने स्थानको जाओ, तुम्हारा वांछित और संसार काटनेवाला परमप्रेम मुझमें उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ इतनी कथा सुनाय,

श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ॥ यच्छ्रीमदांधयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ॥ दर्शनान्नो भवेद्बंधः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम् ॥ संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ बद्धोलूखलमामंत्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे नारदशापोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोपा नंदादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥ तत्राऽऽजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घाताभयशंकिताः ॥ १ ॥ भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ॥ बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-ऊखलमें बँधेहुए भगवानने इसप्रकार कहा, तब वे दोनों परिक्रमा दे, वारंवार प्रणाम कर, आज्ञा ले, उत्तर दिशामें गये ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ इस ग्यारहवें अध्यायमें वृंदावनमें आय, बालकोंके साथ वत्स पालन करते भगवानने वत्सासुर और बकासुरका वध किया यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे कुरुवर ! वृक्षपातका शब्द सुन, वज्रपातके भयसे भयभीत नंदादिक गोप वहां आये ॥ १ ॥ पृथ्वीपर पड़े यमलार्जुनको देख, पड़नेका कारण उनके प्रत्यक्ष होतेभी उसको नहीं जान-

तिनको देहादिकनसे आवृत मनुष्य कैसे जानसके ? ॥ ३२ ॥ वासुदेव, सर्वके कर्ता और स्वयं प्रकाशित कियेहुए गुणोंसे जिनकी महिमा आच्छादित हो रही है ऐसे, आप परब्रह्मको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ आप सर्व शरीरोंमें रहकरभी शरीरके संबंधसे रहित हो, जिनके अवतार अन्य प्राणियोंमें न संभवें ऐसे और जिनसे तुल्य अथवा अधिक कोई नहीं ऐसे उन उन पराक्रमोंसे जाने जाते हैं ॥ ३४ ॥ सब लोगोंको कल्याण और मोक्ष देनेके लिये सर्वसुखाधिपति आपने अभी अपने अंशके

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥ यस्यावतारा ज्ञायंते शरीरेष्वशरीरिणः ॥ तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ३४ ॥ स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ॥ अवतीर्णोऽशभागेन सांप्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमः परमकल्याण नमः परममंगल॥ वासुदेवाय शांताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥ अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ ॥ दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ॥ स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः ॥ दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९ ॥

साथ अवतार धारण किया है ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप ! हे परममंगलरूप ! वासुदेव, शांत और यदुपति आपको हम वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ३६ ॥ हे भूमन् भगवान् ! हम आपके दासानुदास हैं, हमें आज्ञा फरमाइये, हमको नारदजीकी कृपासे भगवान् आपके दर्शन हुए हैं ॥ ३७ ॥ हमारी वाणी आपके गुणानुवादमें, कर्ण आपकी कथा सुननेमें, हाथ आपकी सेवा करनेमें, मन आपके चरणस्मरणमें, शिर आपके निवासरूप जगतके प्रणाम करनेमें और दृष्टि आपके स्वरूपभूत सत्पुरुषोंके दर्शनमें तत्पर रहाकरै ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि- दामनसे ऊखलमें बंधेहुए गोकुलेश्वर भगवानने ऐसी उनकी स्तुति सुन,

सत्य करूंगा ॥ २५ ॥ ऐसे विचारसे श्रीकृष्ण भगवान् उन दोनों यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमेंसे निकले, आपके प्रवेशमात्रसे तिरछे ऊखलको कि- जो उदरमें रस्सीसे बंधाहुआ था, उसे बालकरूप भगवानके खैंचते, ये दोनों वृक्ष मूलसे उखड़ पड़े भगवानके पराक्रमसे उनके स्कंध (डालें) शाखा (टहनियां) और पत्ते कांपने लगे, भारी भयंकर शब्द हुआ, तुरंतही वे दोनों वृक्ष पृथ्वीपर गिरे ॥ २६ ॥ २७ ॥ इन दोनों वृक्षोंमेंसे मूर्तिमान् अग्निके समान दो देव निकसे, इनकी कांतिसे दिशा शोभायमान होरही थीं, मदरहित ये दोनों देव हाथ जोड़के, सर्वलोकनाथ श्रीकृष्ण भगवानके पास आय, प्रणाम कर, स्तुति करने लगे

इत्यंतरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ॥ आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलितांघ्रिबंधौ ॥ निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कंधप्रवालविटपौ कृतचंडशब्दौ ॥ २७ ॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरंतौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ॥ कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धांजली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥ त्वमेकः सर्वभूता[illegible] देहास्वात्मेंद्रियेश्वरः ॥ त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥ त्वं महान्प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ॥ कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥

॥ २८ ॥ नलकूबर मणिग्रीव बोले कि- हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! आप आदि परमपुरुष हो. स्थूल सूक्ष्मरूप यह जगत् आपका रूप है, ऐसे ब्रह्मवेत्ता जानते हैं ॥ २९ ॥ सब जीवोंके देह, प्राण, अहंकार और इंद्रियोंके नियंता एक आप हो, अविनाशी ईश्वर विष्णु भगवान् आप हो, अतएव काल आपकी लीला है ॥ ३० ॥ महत्तत्त्व और रज, सत्व, तमोगुणमय साक्षात् प्रकृति ये दोनों आपके स्वरूप हैं, सर्वके अध्यक्ष और सब शरीरविकारके ज्ञाता पुरुष आप हो ॥ ३१ ॥ इंद्रियोंसे गृह्यमाण प्रकृतिके पदार्थोंसे आपका ग्रहण नहीं होता, जीवादिकनकी उत्पत्तिसे पहलेही स्वतःसिद्ध जो आप हैं,

तदनंतर हिंसाभी निवृत्त हो जातीहै ॥ १६ ॥ समदृष्टि साधुपुरुषोंका समागमभी दरिद्रीहीको होता है और उनके प्रसंगके प्रभावसे उसकी तृष्णा निवृत्त होके, वह तुर्त शुद्ध होजाता है ॥ १७ ॥ समचित्त और भगवान्‌के चरणाभिलाषी साधुपुरुषोंको दरिद्रीही प्रिय लगता है, क्योंकि धनगर्वित, असदाश्रित (नीचोंके उपासक) नीच पुरुषोंको वे उपेक्षा करने योग्यही मानते हैं ॥ १८ ॥ इसलिये ये दोनों कि–जो वारुणी मदिरासे मत्त, लक्ष्मीके मदसे अंध, स्त्रीलंपट और अजितेंद्रिय हैं, इनका अज्ञानसे हुए मदको मैं दूर करूंगा ॥ १९ ॥ अज्ञानव्याप्त और मदोन्मत्त ये दोनों लोकपालके पुत्र होके, अपने शरीरको नग्न नहीं जा-

दरिद्रस्यैव युज्यंते साधवः समदर्शिनः ॥ सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुंदचरणैषिणाम् ॥ उपेक्ष्यैः किं धनस्तंभैरसद्भिरसदाश्रयैः १८ ॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदांधयोः ॥ तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥ १९ ॥ यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ॥ न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥ २० ॥ अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ॥ स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥ वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ॥ वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ॥ नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ॥ जगाम शनकैस्तत्र यत्राऽऽस्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ॥ तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥

नते ॥ २० ॥ इसलिये ये स्थावर होनेके योग्य हैं, जिससे फिर ऐसे न हो जायं और मेरी कृपासे उस जन्ममेंभी इनको स्मरण बनारहे ॥ २१ ॥ देवतानके सौ बरस बीतनेके अनंतर मेरे अनुग्रहसे भगवद्दर्शन पायके, पीछे देवरूपको प्राप्त होवेंगे और देवतारूपमेंभी इनको भक्ति प्राप्त होवेगी ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–ऐसे कहकर, वे नारदजी नारायणके आश्रमको गये और नलकूबर मणिग्रीव यमलार्जुन हुए ॥ २३ ॥ वैष्णवोत्तम नारदजीके वचन सत्य करनेको जहां यमलार्जुन थे, तहां भगवान् धीरे धीरे पधारे ॥ २४ ॥ नारदजी मेरे परमप्रिय हैं, इसलिये इन दोनों कुबेरके पुत्रोंके विषयमें जो कहा है, वह मैं उसी प्रमाण

वस्तुतः यह देह किसीका है ? अन्नदाताका कहें तोभी झूंठ नहीं, पिताका कहें तोभी झूंठ नहीं, माताका कहें तोभी झूंठ नहीं और दौहित्रको मातामह (नांना) ने पुत्र करके रक्खा हो तो मातामहका है ऐसे कहनेमेंभी हरकत नहीं, कोई बलवान् पुरुष दास बनाकर, रक्खे तो उसका है ऐसेभी कहें तो झूंठ नहीं, मोल लेनेवालेका कहें तोभी झूंठ नहीं, निदान जलानेसे अग्निका कहनेमें क्या दोष है ? और कदाचित् कुत्तेभी खा जायं जिससे कुत्तोंका कहें तोभी झूंठ नहीं, ॥ ११ ॥ इसतरह यह साधारण देह कि जिसकी उत्पत्ति अव्यक्तसे है और उसीमें नाश है, उसको अपना रूप मानिके, कौन विद्वान् भूतद्रोह करे ? देहाभिमा-

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेकुर्मातुरेव च ॥ मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ॥ को विद्वानात्मसात्कृत्वा हंति जंतूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदांधस्य दारिद्र्यं परमंजनम् ॥ आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥ यथा कंटकविद्धांगो जंतोर्नेच्छंति तां व्यथाम् ॥ जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाऽविद्धकंटकः ॥ १४ ॥ दरिद्रो निरहस्तंभो मुक्तः सर्वमदैरिह ॥ कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥ नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः ॥ इंद्रियाण्यनुशुष्यंति हिंसाऽपि विनिवर्तते ॥ १६ ॥

नसे हिंसा करनी यहतो मूढ़काही काम है ॥ १२ ॥ मूर्खपुरुष कि–जो लक्ष्मीके मदसे अंध होजाय, उसके दारिद्र्यही उत्तम अंजनरूप है; क्योंकि दरिद्री अन्यप्राणियोंको आपके समान देखता है इसलिये किसीसे द्रोह नहीं करता ॥ १३ ॥ जिस पुरुषके कांटा लगा हो, वह दूसरेके कांटा लगनेकी इच्छा नहीं करता, अपने मनमें विचार करता है कि–जैसे मुझको कांटा लगनेका दुःख हुआ है, ऐसेही सबको होता है और जिसके कांटा न लगाहो, वह कांटेका दुःख क्या जानेगा ? कि–कांटेका दुःख कैसा होता है ? ॥ १४ ॥ सब प्रकारके मदसे मुक्त और अहंकाररहित दरिद्रीपुरुष यदृच्छासे कष्ट पाता है, तो वह कष्टही उसके लिये बड़ा तपरूप होजाता है ॥ १५ ॥ सदा भूंखसे दुर्बल शरीर और अन्नको इच्छते दरिद्रीपुरुषकी इंद्रियां निर्बल हो जाती हैं.

१ तदुक्तं गीतासु । विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ॥ रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ १ ॥ अर्थ–सोही गीतामें कहा है कि–जो प्राणी निराहार है यानी भोजन नहीं करता किन्तु भूंखाही रहता है उसकी इन्द्रियोंके जितने विषय हैं वे सब आपही निवृत्त हो जाते हैं. और विषय निवृत्त होनेपर परमात्माको देखके, तृष्णाभी निवृत्त हो जाती है ॥ १ ॥

सुशोभित गंगाजीके प्रवाहमें प्रविष्ट होयके, तरुण स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कररहे थे, जैसे हथिनियोंके साथ गजराज ॥ ४ ॥ हे राजन् ! वहां यदृच्छासे देवर्षि नारदजी आ निकले, उन्होंने उनको देखके, 'मत्त हैं' ऐसा जानलिया ॥ ५ ॥ नग्न स्त्रियोंने नारदजीको देखके, लज्जित होकर, उनके शापके भयसे तुर्त वस्त्र पहनलिये; परंतु वे तो वस्त्रहीन वैसेही मादरजात नग्न खड़े रहे ॥ ६ ॥ मदमत्त और लक्ष्मीके मदसे अंध उन दोनों देवकुमारोंको देखकर, उनपर अनुग्रह करनेके लिये शाप देतेहुए नारदजी यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ ७ ॥ नारदजी बोले कि-प्रियविषय सेवन करनेवाले पुरुषोंके लक्ष्मीके मदविना कुलीनता

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ॥ अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशंकिताः ॥ वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥ तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदांधौ सुरात्मजौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ नह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ॥ श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यंते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ॥ मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्युनश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यंते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥

वा विद्वत्ता आदिसे हुआ दूसरा किसीप्रकारका मद अथवा रजोगुणका कार्य बुद्धिभ्रंशक नहीं है; किंतु लक्ष्मीका मदही बुद्धिको भ्रष्ट करताहै कि-जिस लक्ष्मीके मदके साथ स्त्री द्यूत (जुआ) और मद्यपानका व्यसन रहता है ॥ ८ ॥ इसी क्षणभंगुर देहको लक्ष्मीके मदसे अजर और अमर माननेवाले अजितेंद्रियलोक निर्दय होके, पशुओंको मारते हैं ॥ ९ ॥ नरदेव और भूदेव कहनेपरभी यह देह कि-जो अंतमें सड़े तो, कृमिरूप, खाया जाय तो विष्ठारूप और जलायाजाय तो भस्मरूप होने वाला है, उसके लिये जीवोंसे द्रोह करनेवाला पुरुष क्या अपने स्वार्थको जानता है ? क्योंकि प्राणिद्रोहसे तो नरकही होता है ॥ १० ॥

१ गंगां पुण्यजलां प्राप्य त्रयोदश विवर्जयेत् ॥ शौचमाचमनं चैव निर्माल्यं मलकर्षणम् ॥ १ ॥ तैलसंमर्दनं क्रीड़ां प्रतिग्रहमथो रतिम् ॥ अन्यतीर्थाभिलाषश्च अन्यतीर्थप्रशंसनम् ॥ २ ॥ वस्त्रत्यागं तथा स्नातं संहारं चैव वर्जयेत् ॥ ३ ॥ इति पाद्मे ॥ अर्थ-पवित्र जलवाली गंगाजीको पाके, मनुष्यको चाहिये कि- इन तेरह १३ बातोंको न करे. जैसे कि-शौच आचमन निर्माल्य यानी उच्छिष्ट छोड़ना मलत्याग तेलकी मालिस करके स्नान जलसंतरणादिक्रीड़ायुक्त स्नान, किसीका दिया दान लेना, रति दूसरे तीर्थकी अभिलाषा दूसरे तीर्थकी प्रशंसा ॥ २ ॥ नग्न स्नान तथा कपड़े जलका पीत, संहार (चोरी) ये सब वर्ज देवे ॥ ३ ॥ ऐसा पद्मपुराणमें लिखा है

लोकोंको और देहाभिमानरहित ज्ञानी लोगोंकोभी सहजमें नहीं मिलते ॥ २१ ॥ जब माता यशोदा घरके कामकाजमें लगी, तब बंधेहुए श्रीकृष्ण भगवानने यमलार्जुन वृक्ष, कि-जो पूर्वजन्ममें कुबेरके पुत्र यक्ष थे उनको देखा ॥ २२ ॥ पहले वे नलकूबर और मणिग्रीव नामसे प्रसिद्ध और बड़े लक्ष्मीवान् थे उनको लक्ष्मीके मदसे नारदजीका शाप हुआ, जिससे वे वृक्षत्वको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ दशवें अध्यायमें रेंगतें रेंगते श्रीकृष्णचंद्रने दोनों यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें जाय, उनको

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ॥ अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥ नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियाऽन्वितौ ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे गोपीप्रसादोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ राजोवाच ॥ कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥ यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ॥ कैलासोपवने रम्ये मंदाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ॥ स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥ अंतः प्रविश्य गंगायामंभोजवनराजिनि ॥ चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥ ४ ॥

गिराया और उनमेंसे दो देवताओंने निकलके स्तुति करी, यह कथा होगी ॥ १ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि-हे भगवन् ! इन नलकूबर मणिग्रीवको नारदजीने शाप दिया जिसका कारण कहो ? इन्होंने कोनसा निंदनीय काम किया ? जिससे देवर्षि नारदजीको क्रोध हुआ ॥ १ ॥ यह प्रश्न सुन, श्रीशुकदेवजी बोले कि-महादेवके अनुचर होयके, अतिगर्वित ये दोनों कुबेरके पुत्र मदोन्मत्त होके, कैलास पर्वतके सुंदर उपवनमें गंगाके किनारे फिर रहे थे ॥ २ ॥ वारुणी मद पीनेसे जिनके नेत्र मदसे घूर्णित होरहे थे, और पुष्पवाटिकामें फिररहे थे, वहां उनके पीछे स्त्रियां गातीं फिरतीं थीं ॥ ३ ॥ कमलोंके वनकी पंक्तिसे

अपराधी उस अपने बालकको बाधते वह रज्जु दो अंगुल कम होगयी, तब यशोदाने उससे दूसरी और सांध दी ॥ १५ ॥ वहभी जब दो आंगुल ओछी होगयी, तब तीसरी सांध दी, तो वहभी दो आंगुल ओछी हुई, इसतरह जितनी जेवड़ी लीं, उन सबोंसे पूरा न पड़ा ॥ १६ ॥ घरकी सब जेवड़ी सांध दीं तोभी ओछीही होतीं गयीं, तिससे दूसरी गोपियां हँसने लगीं और आपभी लगीं हँसने और विस्मय करने ॥ १७ ॥ पीछे अपनी माताको परिश्रममेंसे पसीना हो आया और शिखामेंसे पुष्पमाला

तद्दामबध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ॥ द्व्यंगुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥ यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे ॥ तदपि द्व्यंगुलं न्यूनं यद्यदादत्त बंधनम् ॥ १६ ॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ॥ गोपीनां सुस्मयंतीनां स्मयंती विस्मिताऽभवत् ॥ १७ ॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्त्रस्तकबरस्त्रजः ॥ दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत्स्वबंधने ॥ १८ ॥ एवं संदर्शिताह्यंग हरिणा भृत्यवश्यता ॥ स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ १९ ॥ नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया ॥ प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥ २० ॥ नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ॥ ज्ञानिनां चाऽऽत्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥

सरक गयी, यह देखके, कृपासे श्रीकृष्ण भगवान् रज्जुसे बंधगये ॥ १८ ॥ महाराज ! भगवान् कि–जिनके लोकपाल और देवतासहित यह सब जगत अधीन है, उन्होंने स्वयं स्वतंत्र होनेपरभी ऐसी भांति भक्तवश्यता दिखायी ॥ १९ ॥ मोक्षप्रद भगवानकी कृपा ब्रह्मा, शिव और वक्षःस्थलमें विराजमान लक्ष्मीपर नहीं हुई ऐसे नहीं है, परंतु यशोदापर जो कृपा हुई वह किसीको न मिली ॥ २० ॥ यशोदाके पुत्र श्रीकृष्ण भगवान् जैसे भक्तिमानोंको सहजमें मिलते हैं, तैसे देहाभिमानी तपस्वी आदि-

१ रागिनी तिलंग ॥ यशुमति रिस करि रज्जु अकर्षै ॥ सुतहिं सक्रोध देखि माताके मनहभिन अतिहर्षै ॥ उफनत क्षीर जननि दुचिती करि यहिविधि भुजा छोंड़ायो ॥ भाजन फोरि दही सब डारेउ माखन मुख लपटायो ॥ लै आई जेवरी अब बांधों मर्म जानि न बँधावै ॥ अंगुल द्वै घटि होत सबनिसों पुनि पुनि और मँगावै ॥ नारदशाप भयो यमलार्जुन इनको अब जु उधारों ॥ सूरदास प्रभु कहत भक्तहित युगयुग जन्म सँवारों ॥ १ ॥

२ ॥ दोहा श्रमित जानिकै मातको, तब वश भये मुरारि ॥ ऊखलसों बांधे तुरत जननी उर रिस धारि ॥ १ ॥

पुत्रको देखके, उसे पकड़नेको धीरे धीरे पीछेसे आयीं ॥ ८ ॥ लकड़ी लेकर, आतीहुई माताको देखके, भगवान् तुर्त ऊखलपर-से उठके भयभीतसे हो, दौड़े. यशोदा उनके पीछे दौड़ीं परंतु पहुंचसकीं नहीं, क्योंकि तपसे तदाकार किया हुआ प्रवेश करनेके योग्य योगियोंका मनभी उनको नहीं पहुंचसक्ता है ॥ ९ ॥ वेगके लिये शिखा शिथिल हो गयी, तासों आगे आगे पुष्प पड़ने लगे, पीछे पीछे यशोदा दौड़ीं जातीं थीं, परंतु मोटे तथा चंचल नितंबके भारसे दौड़ नहीं सकतीं थीं, ऐसी सुंदर मध्यभाग वाली यशोदाने मुशकिलसे पहुंचकर, श्रीकृष्णको पकड़ लिया ॥ १० ॥ जिनमें अंजन फैल रहा है ऐसे नेत्रोंको अपने हाथोंसे

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ॥ गोप्यन्वधावन्नयमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ ९॥ अन्वंचमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रांतगतिः सुमध्यमा ॥ जवेन विस्रंसितकेशबंधनच्युतप्रसूनाऽनुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसं तं प्ररुदंतमक्षिणी कर्षंतमंज-न्मषिणी स्वपाणिना ॥ उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयंत्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ॥ इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥ १२ ॥ न चांतर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ॥ पूर्वापरं बहिश्चांतर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥ तं मत्वाऽऽत्म-जमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम् ॥ गोपिकोलूखले दाम्ना बबंध प्राकृतं यथा ॥ १४ ॥

मलते और भयसे विव्हल जिनके नेत्र हैं ऐसे, अपराध करनेंवाले, रोते, ऊंची निगाह देते श्रीकृष्णका हाथ पकड़, यशोदाने उसको डरानेको धमकी दी ॥ ११ ॥ बालकपर कृपालु और भगवानकी शक्तिको न जाननेवाली यशोदाने अपने पुत्रको भय-भीत समझके लकड़ी डारि दीनी और उनको दाम (रस्सी) से बांधनेकी इच्छा करी ॥ १२ ॥ जिसके अंतर, बाहिर आगे वा पीछे कुछभी नहीं है और जो जगतके भीतर, बाहिर, आगे तथा पीछे रहता है और जो जगतरूप है ॥ १३ ॥ उस अव्यक्त और मनुष्यरूप भगवान्को पुत्र मानिके, यशोदाने जैसे प्राकृत बालकको बांधे, तैसे ऊखलमें रस्सीसे बांध दिया ॥ १४ ॥

स्नेहसे स्तनसे दूध टपक रहा था, शरीर हाल रहा था, नेता खींचनेके परिश्रमसे हाथोंमें कंकण और कानोंमें कुंडल हिलरहे थे, मुखकमलपर पसीना आरहा था और गुंथीहुई चोटीमेंसे मालतीके पुष्प निकल निकलके गिर रहे थे ॥ ३ ॥ दधिमंथन करते माताके पास स्तनपानकी इच्छासे आयके, प्रीति बढ़ाते भगवान्‌ने नेता पकरिके उनको मना किया ॥ ४ ॥ भगवान्‌को गोदीमें बिठायके, यशोदाजी स्नेहसे प्रस्रुत (झरता) अपना स्तनपान करातीं मंद मुसकानसहित श्रीकृष्णका मुख देखती थीं,

तांस्तन्यकाम आसाद्य मथ्नंतीं जननीं हरिः ॥ गृहीत्वा दधिमंथानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥ तमंकमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ॥ अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥ ५ ॥ संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधिमंथभाजनम् ॥ भित्वा मृषाऽश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयंगवमंतरं गतः ॥ ६ ॥ उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ॥ भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥ ७ ॥ उलूखलांघ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ॥ हैयंगवं चौर्यविशंकितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥

इतनेमें चूल्हेपै चढ़े दूधका उफान आता देख, भगवान् यदपि तृप्त नहीं हुए थे तोभी उनको छोड़कर, दौड़के बेगसे वहां गयीं ॥ ५ ॥ भगवानको इससे क्रोध हुआ, लाल होंठ फरकने लगे, झूंठे आंसू आगये और दांतोंसे होंठ डसिके पत्थरसे मट्ठेकी मथनी फोरि डारी, घरके अंदर जायके, एकांतमें मक्खन खाने लगे ॥६॥ बहुत औटायेहुए दूधको चूल्हेसे नीचे उतार यशोदा पीछी मंथनमंदिरमें आयीं, वहां देखें तो मट्ठेकी मथनी फूटी पड़ी है, उसे देख, ‘ यह मेरे पुत्रका काम है ’ ऐसे समझके, भगवानको वहां न देखके, हँस पड़ी ॥ ७ ॥ पीछे औंधे ऊखलपर बैठे छीकेमें रहे मक्खनको ले बंदरोंको देते और चोरी करनेसे चकितनेत्र

१ रागिनी सुघरई ॥ यशुमति करति मथान ॥ अंकमें निज बाल लीन्हे पय करावति पान ॥ स्रुतु तजि उठि गई यशोदा क्षीर उफनत जान ॥ माठ इस हरि भंग कीन्हो लगे माखन खान ॥ नन्द नारि सकोप धाई लख्यो कौतुक आन ॥ दाम ऊखल उदर बांध्यो जान गोरसहान ॥ जासु डर विहुँ. लोक कांपत सुर असुर बलवान ॥ हरिबिलास दयालु सोई भक्तबस भगवान् ॥ १ ॥

'हम दोनों पृथ्वीमें जन्में, तहां जगन्नाथ विष्णु भगवानमें हमारी परमभक्तिहोनी चाहिये, कि-जिससे अनायास दुर्गतिको तिर जायं' ॥४९॥ब्रह्माके 'तथास्तु' कहतेही यह महाकीर्तिमान द्रोणवसु व्रजमें नंदराय हुआ. और उसकी स्त्री धरा यशोदा हुई ॥ ५० ॥ महाराज! यद्यपि सब गोपी ग्वालोंकीभी भगवान्में भक्ति थी, तथापि नंदराय और यशोदाके तो पुत्ररूप भये हुए भगवान्में ब्रह्माजीके वरदानसे बहुतही भक्ति हुई॥५१॥ परमात्माश्रीकृष्णचंद्र ब्रह्माजीकी आज्ञा सत्य करनेको, बलभद्रके साथ व्रजमें रहते अपनी लीलासे उन व्रजवासियोंको प्रसन्न करते थे ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां

जातयोनौं महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ॥ भक्तिः स्यात्परमा लोके ययाऽञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥ अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः ॥ जज्ञे नंद इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत् ॥ ५० ॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ॥ दंपत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥ कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥ सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गृहदासीषु यशोदा नंदगेहिनी ॥ कर्मांतरनियुक्तासु निर्ममंथ स्वयं दधि ॥ १ ॥ यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ॥ दधिनिर्मंथने काले स्मरंती तान्यगायत ॥ २ ॥ क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकंपं च सुभ्रूः ॥ रज्ज्वाकर्षश्रमभुजलसत्कंकणौ कुंडले च स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममंथ ॥ ३ ॥

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ नवमें अध्यायमें, दूधके उफान आते जा, दूध उतार, पीछी आ, यशोदाने मथनीको फूटी देख, यह काम कृष्णका कियाहुआ है ऐसे जान, उनको रस्सीसे बांधदिया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-एक दिन घरकी दासियां दूसरे काममें लगरहीं थीं, तद नंदरानी यशोदा आप दहीमंथन करनेलगी ॥ १ ॥ भगवान्के जो जो बालचरित्र, यहां कहे हैं, उन सबका स्मरण करके, दधिमथनसमयमें यशोदा गान करती थी ॥ २ ॥ इस समय सुंदर भौंहें चलायमान करती यशोदाने पुष्ट नितंबोंपर पहनेहुए रेशमी वस्त्रको कटिमेखलासे बांध लिया था, पुत्रके

इस व्रजनाथके तमाम धनकी मालिक इनकी भार्या यह मैं यशोदा हूं, यह मेरे पति, यह मेरा पुत्र और गोपी, ग्वाल तथा गोधन ये सब मेरे हैं. ऐसी कुबुद्धि जिसकी मायासे हुई है, वह ईश्वर मेरे शरणरूप हैं ॥ ४२ ॥ इसतरह यशोदाको तत्त्वज्ञान होतेही उन भगवान्ने पीछी पुत्रस्नेहरूपी अपनी माया फैला दी ॥ ४३ ॥ मायासे तुर्त स्मरण जाता रहा. तद वह गोपी यशोदा अपने पुत्रको गोदीमें बिठाय, पूर्ववत् वृद्धिंगत स्नेहसे आर्द्रचित्त होगयी ॥ ४४ ॥ जिनके स्वरूपको कर्मकांडरूप तीनों वेद इंद्रादिरूप कहते हैं, उपनिषद् ब्रह्म कहते हैं, सांख्य पुरुष कहते हैं, योग परत्मात्मा और भक्तलोग भगवान् कहते हैं उनको यशोदाने पुत्र माना ॥ ४५ ॥

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ॥ गोप्यश्च गोपाः सह गोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ॥ वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥ सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् ॥ प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद्यथा पुरा ॥ ४४ ॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ॥ उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यताऽऽत्मजम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ नंदः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ॥ यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं परिः ॥ ४६ ॥ पितरौ नान्वविंदेतां कृष्णोदाराभेके हितम् ॥ गायंत्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ॥ करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥

यों सुन, परीक्षितने प्रश्न किया कि-हे ब्रह्मन् ! नंदरायजीने ऐसा भारी कौनसा श्रेयस्कर कर्म किया ? और भाग्यशाली यशोदा कि-जिसका स्तनपान स्वयं श्रीकृष्णजीने किया, उसने कौनसा पुण्य किया ? ॥ ४६ ॥ लोकोंके पापोंका नाश करनेवाली भगवानकी बाललीला कि-जिसको कविलोग अबतक गाते हैं, उस लीलाका अनुभव, जिनपर कृपा करके, जिनके यहां प्रगट हुए उन माता पिताको नहीं मिलते, नंदराय और यशोदाको मिला इसका कारण क्या है ? ॥ ४७ ॥ यों सुन, श्रीशुकदेवजीने परीक्षितसे कहा कि-आठ वसुनमेंसे उत्तम द्रोणवसु और उसकी स्त्री धरासे ब्रह्माजीने गोपालनआदिकी आज्ञा करी, उस आज्ञाको अंगीकार करके उन दोनोंने वर मांगा कि- ॥ ४८ ॥

माने है, तो प्रत्यक्ष मेरा मुख देखले ' ॥ ३५ ॥ जो ऐसे होय तो मुख फैलाव ऐसे यशोदाके कहतेही हरि भगवान् कि–जो अखंड ऐश्वर्यवाले और लीलासे मनुष्यके बालकरूप हैं, उन्होंने अपना मुख फैला दिया ॥ ३६ ॥ उस मुखमें यशोदाने स्थावर जंगम जगत, अंतरिक्ष, दिशा, पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूगोल, प्रवाह, पवन, अग्नि, चंद्र, तारा, ॥ ३७ ॥ स्वर्ग, जल, तेज, वायु, आकाश, इंद्रियोंके देवता, इंद्रिय, मन, शब्दादिक पांच विषय, तीनों गुण, ॥ ३८ ॥ जीव, काल, स्वभाव , कर्मके संस्कार और उससे होनेवाले चराचर शरीरोंके भेद इन सबको देखा. इसतरह पुत्रके छोटेसे मुखमें सब विचित्र जगत् और उसके साथ व्रज और व्रजमें अपने शरीरको देखकर, यशोदाको संदेह हुआ ॥ ३९ ॥ कि–क्या यह स्वप्न है ? नहीं, यह स्वप्नतो नहीं है. तब क्या

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ॥ व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः ॥ साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नींदुतारकम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ॥ वैकारिकाणींद्रियाणि मनोमात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ॥ सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शंकाम् ॥ ३९ ॥ किं स्वप्न एतदुत देवमाया किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ॥ अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥ अथो यथावन्नवितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरंजसा ॥ यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणताऽस्मितत्पदम् ॥ ४१ ॥

भगवान्की माया है ? नहीं नहीं मायाभी नहीं; क्योंकि वह होय तो दूसरोंकेभी देखनेमे आनी चाहिये. तब जैसे दर्पणमें मुख विपरीत दिखाता है तैसे क्या यह मेरी बुद्धिकाही मोह है ? नहीं, ऐसेभी नहीं है; क्योंकि ऐसे होय तो दर्पणमें जैसे दर्पण दिखायी नहीं देता तैसे इस पुत्रके मुखमें यह पुत्र दीखना न चाहिये; और बाहिर तथा भीतर एकरूपसे जगत्की प्रतीत न होनी चाहिये. अथवा इस मेरे पुत्रका स्वाभाविक कोई ऐश्वर्य है ? ॥ ४० ॥ मुझे तौ यह अंतिमपक्षही प्रवल प्रतीत होता है; अतएव यह जगत कि–जो चित्त, मन, कर्म और वचनसे अंजसा यथार्थ विचारमें नहीं आसक्ता, वह जिसके आश्रय है और जिसके द्वारा जिस (उपादान) से प्रतीत होय है, उस परमेश्वरके चरणारविंदको मैं प्रणाम करती हूं ॥ ४१ ॥

ऊखलआदि घरके चोरीकी तदबीर लगाता है; बासन छींकोंमें ऊंचे रक्खे होयें तो, उनमें रक्खी हुई वस्तु पहिंचानके उनमें छेद करदेता है छेद करनेकी रचनामें बड़ा चतुर है, तासों जैसो पदार्थ होय वैसोही छेद करेहै, यदि हम अंधियारे घरमें धरें तो अपने अंगमें अनेक मणि पहन, आयके, प्रकाश कर देवे है ॥ ३० ॥ कभी 'अरे चोर' ऐसे कहते हम आक्षेप करें तब पीछा कहें कि-तुमही चोर हो. मैंतो घरको मालिक हूँ ऐसे तीन पांच करे है, लीपे पोते घरनमें मूति जाय, हगि जाय है, ऐसे चोरीके उपायमें तदबीर किया करे, अब देखो तुह्मारे आगे गरीबसा खड़ा है. याप्रकार गोपियोंने डरपाया, उस समय भयसंयुक्त

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ॥ इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥
एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ॥ कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥
सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ॥ यशोदा भयसंभ्रांतप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३ ॥ कस्मान्मृदमदांतात्मन्भवान्भक्षितवान् रहः ॥ वदंति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥
नाहं भक्षितवानंब सर्वे मिथ्याऽभिशंसिनः ॥ यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥

नेत्रवाले श्रीमुखकी शोभा देखिबेके निमित्त गोपियोंने सब बातें कहकर दिखायीं, तब यशोदा हंस पड़ी, परंतु उसने पुत्रको धमकानेकी इच्छा नहीं करी ॥ ३१ ॥ एक दिन क्रीड़ा करते बलभद्रआदि बच्चोंने यशोदासे कहा कि-'कृष्णने मिट्टी खायी' ॥ ३२ ॥ हितेच्छु यशोदाने, जिसके नेत्र भयसे चकित हो गये ऐसे श्रीकृष्णका हाथ पकड़, उलाहना देकर, कहा कि-'हे चपल गात्र (चंचल)! तैंने छिपकर मिट्टी क्यों खायी ? ये तेरे मित्र बालक कहते हैं और ये तेरे बड़ेभाई बलदेवजीभी कहे हैं' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्ण बोले कि-'हे मय्या ! मैंने मिट्टी नहीं खायी ये सब झूंठ बोलें हैं, जो तुझे इनका कहना सत्य

१ रागिनी रामकली- मो देखत यशुमत तव ढोटा अबहीं माटी खाई ॥ यह सुनके रिसकर उठधाई बांह पकर ले आई ॥ यक करसों भुज गहि ठाढ़ी भई यक कर लीन्हे सांटी ॥ मारतिहौं तोहिं अबहिं कन्हैया बेगि उगल नहि मांटी ॥ व्रजलड़िका सब तेरे आगे झूठी कहत बनाई ॥ मेरे कहे नहीं तू माने दिखरावौं मुख माई ॥ अखिलब्रह्मांडखंडकी महिमा दिखरायेउ यदुराई ॥ सिन्धु सुमेरु नदी वन पर्वत चकित भई नँदरानी ॥ करते सांटी गिरत न जानी भुजा छांड़ि अकुलानी ॥ सूरदास कह मुदित यशोमति बलिगई सारंगपानी ॥ १ ॥

नके मनकी अतिअव्यवस्था हुई ॥ २५ ॥ हे राजर्षे ! पीछे थोड़े दिनोंमें बलभद्र और श्रीकृष्णचंद्र गोकुलमें घुटने घिसे विना अनायासपूर्वक पांवनसे फिरने लगे ॥ २६ ॥ पीछे बलभद्रसहित श्रीकृष्णभगवान अपने समान अवस्थाके बालक मित्रोंके साथ गोपियोंके आनंद उत्पन्न करते क्रीड़ा करने लगे ॥ २७ ॥ भगवानकी प्यारी बाल्यावस्थाकी चपलता देखके सब घरोंसे मिली और गोपियां आयीं यशोदाके सुनते ऐसे कहनेलगीं ॥ २८ ॥ ' हे यशोदा ! हमारा चित्त घरके काम काजमें बहुत लगाहुआ

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ॥ अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरंजसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ॥ सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥ २७ ॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ॥ शृण्वत्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥ वत्सान्मुंचन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ॥ मर्कान् भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भांडं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥ हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यंतर्निहितवयुनः शिक्यभांडेषु तद्वित् ॥ ध्वांतागारे धृतमणिगणं स्वांगमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥

होय, तब यह तेरा पुत्र किसीसमय, दोहनसमयविनाभी हमारे बछरोंको छोड़ देवे है, जो हम उपालंभ (उलहना) देवे हैं, तो हँस देता है, चोरीके उपाय करके, मीठे मीठे पदार्थ दही दूध चुराके खाजाय है, इतनाही नहीं आपके खाते जो बचता है, वह बानरोंको बांट देता है, जो वे न खाय तो बासन फोरडारे है, किसी समय कुछभी चीज न मिले तो हमपै क्रोधकर हमारे पालनेमें सोते बालकोंको रुलायके भाजि जाय है; ॥ २९ ॥ जो हाथ न पहुंचे तो पाटा,

---

१ इसतरह घरके सुखकी पराकाष्ठा दिखायी.

२ रागिनि देश ॥ महरि तुम मानहुं मेरी बात ॥ ढूंढ़ि ढूंढ़ि सब घरको गोरस हरेउ तुम्हारे तात ॥ जो कहो कैसे लयो छीके ते ग्वालकंध दै लात ॥ घर नहीं पियत दूध धौरीको कैसो तेरो खात ॥ असंभावं बोलत है आई ढीठ ग्वालिनी प्रात ॥ ऐसो नहीं अचगरो मेरो कहा बनावत बात ॥ कहा कहौं मैं कह सकुचति हौं कहा दिखाऊं गात ॥ हैं गुण बड़े सूरप्रभूकेरे ह्यां लरिका व्है जात ॥

गोकुलमें घुटनोंसे और हाथोंसे रेंगते क्रीड़ा करने लगे ॥ २१ ॥ ये दोनों भाई जिस समय व्रजके कीचमें चरणयुगल खींचके बिचरते हैं, उस समय पाँवनकी पैंजनी और कमरकी किंकिनीकी झनकारका सुंदर शब्द सुनके मनमें आनंदित होयं हैं और रस्ते जाते लोगोंको देखके, दो चार कदम उनके पीछे चलेजायें हैं, फिर पीछे भोले बालकके समान डरके अपनी मातानके पास भाजि आवे हैं ॥ २२ ॥ माता यशोदा और रोहिणी अपने पुत्र श्रीकृष्ण बलभद्रको हाथनते उठाय, छातीमें लगावे हैं, जिनके कहीं तो व्रजका कीच लिपट रहा है कहीं केसर लग रही है, उससे सुंदर जो दोनों भाई तिनको स्नेहसे स्तन जिनके दूधसे खसि आये हैं

तावंघ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपंतौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ॥ तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरंति मात्रोः ॥ २२ ॥ तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवंत्यौ पंकांगरागरुचिरावुपगृह्य दोर्भ्याम् ॥ दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥ २३ ॥ यर्ह्यंगनादर्शनीयकुमारलीलावंतर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ॥ वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षंत्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसंत्यः ॥ २४ ॥ शृंग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकंटकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ॥ गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥

ऐसी मातानने स्तनपान कराया. स्तनपान करतेहुए श्रीकृष्ण बलदेवके मुखमें भोरी मुसकानि ओर छोटी छोटी दतुरियांवाले मुखारविंदको देखके अति आनंदको प्राप्त होय हैं ॥ २३ ॥ जब इनकी कुमार अवस्थाकी लीला स्त्रियोंके देखने योग्य हुई, तब व्रजमें बछरोंकी पूंछ पकड़नेसे बछरोंसे चारों ओर खींचेजाते इन बालकोंके देखके गोपियां अपने घरके कामको भूलजायं हैं, और हँसतीहुई हर्षको प्राप्त होंय हैं ॥ २४ ॥ क्रीड़ामें लगेहुए और अत्यंत चपल अपने पुत्रोंका सींगवाले पशु, दाढ़ोंवाले जीव, अग्नि, जल सांप, पक्षी और कांटोंसे रोकनेकी और घरके काम करनेकी जब रोहिणी और यशोदाकी शक्ति नहीं रही, तब उन दोनों माता-

१ रागिनी बिलावल ॥ किलकत कान्ह घुटरुवन धावत ॥ मणिमय कनक नन्दके आंगन मुखप्रतिबिंब पकरबे धावत ॥ कबकहुं निरख हरि आप छांहको करसों पकरन चाहत ॥ किलकत हँसत लसत है दँतुली पुनि तिहिं अब गाहत ॥ कनक भूमिपर पदछाया यह उपमा एक हि राजत ॥ कर कर पद प्रतिमन वसुधामँह कमल बैठका साजत ॥ बालदशा छवि निरखि यशोदा पुनि पुनि नन्द बुलावत ॥ अंचलतर ले ढांक सूर कह॰ प्रभुकहँ दूध पिलावत ॥ २ पाठांतर (असि) खड्ग.

लोग इसका 'वासुदेव' ऐसा नामभी कहते हैं. मुनिने पहले यह शब्द सामान्य रीतिसे कहा, तिससे नंदरायजीने माना कि, ये ऋषि मेरे पुत्रके पूर्वजन्मकी बात कहते हैं ॥ १४ ॥ गुण और कर्मानुसार तुह्मारे पुत्रके नाम और रूप बहुत हैं, जिन सबोंको मैंभी नहीं जानता हूं तैसे और लोकभी नहीं जानते हैं ॥ १५ ॥ ग्वाल और गायनको आनंदित करनेवाला यह तुम्हारा पुत्र तुमलोगोंका कल्याण करेगा और इसके प्रभावसे सब दुःखको अनायाससे तिरोगे ॥ १६ ॥ हे व्रजनाथ ! प्रथम कोई

बहूनि संति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनंदनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंजस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवंत्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नंदात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्या ऽनुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥ १९ ॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ नंदः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥ कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ ॥ जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिंगमाणौ विजह्रतुः ॥ २१ ॥

राजा न था उससमय चोरोंसे दुखी सज्जनोंकी इस तुह्मारे पुत्रने रक्षा और वृद्धि करी, जिससे वे चोरोंको जीत गये ॥ १७ ॥ जो महाभाग्यशाली मनुष्य इस तुह्मारे पुत्रमें प्रीति करेंगे, उनका दैत्य जैसे विष्णुके पक्षवालों (देवतावों) का पराभव नहीं करसक्ते हैं, तैसे नहीं करसकेंगे ॥ १८ ॥ हे नंद ! यह तुह्मारा पुत्र गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और प्रभावसे नारायणसमान है. इसलिये सावधान होयके, इसकी रक्षा करना ॥ १९ ॥ यों कह, श्रीशुकदेवजी बोले कि—ऐसे आज्ञा कर, गर्गाचार्यके अपने घर जानेपर, प्रसन्न नंदरायजीने अपने सर्व मनोरथ पूर्ण हुए माने ॥ २० ॥ कुछ काल व्यतीत होनेपर बलभद्र और श्रीकृष्णचंद्र

---

१ वसवश्चेन्द्रियाणीति तदेवाश्रित्तमेव हि ॥ तस्मिन्यश्चेष्ठते सोऽपिवासुदेव इतिस्मृतः ॥ १ ॥ वासुदेवोयं ब्रह्मेति श्रुतिश्च— अर्थ—आठो वसु और संपूर्ण देवता तथा चित्त इन्हें वसु कहते हैं इन्होंमें जो वसै उसे वासुदेव कहते हैं ॥ १ ॥ वासुदेव यह ब्रह्म है. ऐसी श्रुतिभी है तथापि गर्गजीने छिपाकर, वसुदेवका पुत्र ऐसा कहा.

यह बात सुन नंदरायजी बोले कि– ' इस गोत्रजमें मेरे लोगोंसेभी गुप्त कहकर एकांतमें स्वस्तिवाचन करके, इस पुत्रका संस्कार करो; जिस संस्कारकी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनके आवश्यकता है ॥ १० ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इसतरह नंदरायजीकी प्रार्थनासे गर्गाचार्यने एकांतमें गुप्त रहकर, इन दोनों बालकोंका नामकरण किया. कि–जिसके करनेकी इच्छासे आप

नंद उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोत्रजे ॥ कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संप्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ॥ चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥ गर्ग उवाच ॥ अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः ॥ आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ॥ यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशंत्युत ॥ १२ ॥ आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवाऽऽत्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥

आये थे ॥ ११ ॥ गर्गाचार्य बोले कि–यह रोहिणीका पुत्र अपने गुणोंसे सुहृदोंको रमण करावेगा, इसलिये ' राम कहा जायगा. और बल अधिक होनेसे 'बल' कहा जायगा, यादवोंको एकमत रखनेसे संकर्षणभी कहा जायगा ॥ १२ ॥ यह जो तुह्मारा पुत्र है सो युग युगमें अवतार धारण करता है. और इसके श्वेत, रक्त तथा पीत वर्ण हुए. अभी कृष्णवर्ण हुआ है. इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' ऐसा कहा जायगा ॥ १३ ॥ पहले किसीसमय यह तुह्मारा श्रीमान् पुत्र वसुदेवका पुत्र हुआ था, इससे ज्ञानी-

१ तदुक्तं गर्गेण नन्दं प्रति । ककारः कमलाकान्त ऋकारो राम इत्यपि ॥ षकारः षड्गुणपतिः श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥ १ ॥ णकारो नारसिंहोऽयं मकारो ह्यक्षरोऽग्निभुक् ॥ विसर्गौ च तथा ह्येतौ नरनारायणावृषी ॥ संप्रलीनाश्च षट्पूर्णा यस्मिन् शब्दे महामुनौ ॥ परिपूर्णतमे साक्षात्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥ अर्थ–वही गर्गजीने नन्दजीसे कहाहै कि–कृष्ण इसनामसे जो ककार है वह लक्ष्मीकान्तका रूपहै और ऋकार यह रामरूप है. तथा षकार यह छे ऐश्वर्यसंपन्न श्वेतद्वीपनिवासी भगवान्का रूप है ॥ १ ॥ और णकार यह नृसिंहजीका रूप है. तथा अकार यह अक्षर (अजन्मा) सर्वका भोक्ता अग्निका रूप है. और तैसेही येह दोनों विसर्ग नरनारायणके रूप हैं ॥ २ ॥ ऐसे येह छहों पूर्णरूप जिस महामुनि (ज्ञानी) में लीन हों अर्थात् जिसके अंशसे येह सब अवतारादि होतेहैं उसीको कृष्ण ऐसा नाम होता है ॥ ३ ॥

महाराज! महातपस्वी और यदुवंशियोंके पुरोहित गर्गाचार्य वसुदेवजीकी प्रेरणासे नंदजीके व्रजमेंगये ॥ १ ॥ उनको देख, अतिप्रसन्न नंदरायजीने सन्मुख खड़ेहो, हाथ जोड़, उनको परमेश्वररूप जान, पूजा करी ॥ २ ॥ अतिथि-सत्कारके अनंतर सुखपूर्वक बैठे मुनिसे मधुर वाणीसे अभिनंदनपूर्वक नंदरायजीने कहा कि-' हे ब्रह्मन्! आप परिपूर्णरूप हो, आपके लिये हम क्या करें? ॥ ३ ॥ हे भगवन्! महात्मा पुरुषोंका विचरना दीनचित्त गृहस्थियोंके निरंतर कल्याणके लिये है, स्वार्थके निमित्त कभी नहीं होता ॥ ४ ॥ जो इंद्रियोंके अगोचर ज्ञानका साधन ज्योंतिषशास्त्र है वह आपने साक्षात्

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृतांजलिः ॥ आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥ सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ॥ नंदयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करावाम किम् ॥ ३ ॥ महद्विचलनं नृणां गृहीणां दीनचेतसाम् ॥ निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतींद्रियम् ॥ प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥ ५ ॥ त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ॥ बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदूनामहमा-चार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ॥ सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥ कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुंदुभेः ॥ देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ इति संचिंतयन् श्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ॥ यदि हंता गताशंकस्तर्हि तन्नो भवेदघम् ॥ ॥ ९ ॥

बनाया है, जिससे मनुष्य पूर्वजन्मके तथा वर्तमान जन्मके भूत और भावी फलको जानसक्ता है ॥ ५ ॥ आप ज्योतिषशास्त्रके कर्ता और वेदवेत्तानमेंभी श्रेष्ठ हो, तिससे इन दोनों बालकोंका संस्कार कीजिये; क्योंकि ब्राह्मण जन्मसेही मनुष्योंका गुरु है ॥ ६ ॥ इतनी बात सुन, गर्गाचार्य बोले कि-'मैं यादवोंका आचार्य हूं और पृथ्वीमें सदा प्रख्यात हूं इस लिये यदि मैं आपके पुत्र-का संस्कार करूं, तो पापबुद्धि कंस आपके पुत्रको देवकीका पुत्र माने ॥ ७ ॥ वसुदेवजीके साथ आपकी मैत्रीहै, सोभी कंस जानता है और देवकीकी कन्याका वचन सुनके, देवकीका ' आठवाँ गर्भ स्त्री बिलकुल न होना चाहिये ' ऐसेभी विचार किया करता है, इसलिये ऐसी शंकासे वह जो आपके पुत्रको मारे तो इसमें हमारा बड़ा अन्याय होय ' ॥ ८ ॥ ९ ॥

पुरुष अपने पापसे मरजाता है और साधु पुरुष अपनी समतासे भयमेंसे छूट जाता है ॥ ३१ ॥ आपनने तप, ईश्वरपूजन, पूर्त्त (बापी कूपआदि करना), इष्ट (पंचयज्ञ अग्निहोत्रादिक), दान और जीवोंपर दया ऐसा क्या किया होगा ? जिसके प्रभावसे यह बालक कि- जो मरगया था सो, अपने बंधुवोंको प्रसन्न करता पीछा आया. यह बहुत अच्छा हुआ ॥ ३२ ॥ गोकुलमें इसतरहके बहुत अचरज देखके, विस्मयको प्राप्त हुए नंदरायजीको वसुदेवजीके वचनपर अतिविश्वास हुआ ॥ ३३ ॥ एकदिन स्नेहसे आई यशोदा बालकको ले, अपनी गोदीमें बैठाय, उसे जिसमेंसे दूध टपकता था ऐसा, स्तनपान कराने लगी ॥ ३४ ॥

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ॥ यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबंधून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वाऽद्भुतानि बहुशो नंदगोपो बृहद्वने ॥ वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥ एकदाऽर्भकमादाय स्वांकमारोप्य भामिनी ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥ पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ॥ मुखं लालयती राजन् जृंभतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥ खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येंदुवह्निश्वसनांबुधींश्च ॥ द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजंगमानि ॥ ३६ ॥ सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥ संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥३७॥ इति श्रीभा० म० द० पू० तृणावर्तमोक्षोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ॥ व्रजं जगाम नंदस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

प्रायः स्तनपान किये पीछे बालकके सुंदर मंदहास्यवाले मुखको यशोदा लड़ा रही थी, महाराज! उस समय जो बालकने जंभाई खाई तो उसके मुखमें यशोदाने इस जगत्को देखा ॥ ३५ ॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारामंडल, दिशा, सूर्य, चंद्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियां, वन और स्थावर जंगम जीव इन सबको देखा ॥ ३६ ॥ महाराज ! सब ब्रह्मांडको देखके, तुर्त कांपने लगी और विस्मयको प्राप्त होय मृगनयनी यशोदाने अपने नेत्र मूंदि लिये ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ आठवें अध्यायमें, भगवान्का नामकरण किया, भगवान्ने बाललीलाके उत्सवमें मिट्टीभक्षणके प्रसंगमें विश्वरूप दिखाया, यह कथा वर्णन होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-

दाका रुदन सुनकर अति संतापवाली आंसुनसे जिनके मुख भरे रहे ऐसी गोपियां उस स्थानमें भगवानको न देखके, रोने लगीं ॥ २५ ॥ बघूलेका रूप धरनेवाले दैत्य तृणावर्तका, भगवानका हरण करके, आकाशमें जाते बहुतभार लगनेसे, वेग शांत होगया और आप अधिक उंचा नहीं जा सका ॥ २६ ॥ भार लगनेसे तृणावर्तने ऐसे माना कि–' मैं किसी पत्थरको उठा लायाहूं ' इससे अद्भुत बालकको छुड़ाने लगा, तोभी भगवान्‌ने उसका कंठ ऐसा पकड़ लिया था, कि–किसीतरह वह नहीं छुड़ासका ॥ २७ ॥ कंठ पकड़नेसे चेष्टा चलीगयी, नेत्र बाहिर निकल पड़े, गला घुटनेसे चिल्ला न सका. और प्राणरहित होकर, बालक-

तृणावर्तः शांतरयो वात्यारूपधरो हरन् ॥ कृष्णं नभोगतो गंतुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥ तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ॥ गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ॥ अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥ तमंतरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ॥ पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥ प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लंबमानम् ॥ तं स्वस्तिमंतं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ गोप्यश्च गोपाः किल नंदमुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥ अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ॥ हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥

सहित गोकुलमें गिरा ॥ २८ ॥ अंतरिक्षमेंसे वह विकराल दैत्य शिलाऊपर पड़ा, जिसके सब अवयव रुद्रके बाणसे विद्ध त्रिपुरासुरके नांई बिखर गये थे उसे रोतीं और इकट्ठी हुईं स्त्रियोंने देखा ॥ २९ ॥ यद्यपि राक्षस बालकको आकाशमार्गसे ले गया था, तोभी मृत्युके मुखसे मुक्त कुशल, उस राक्षसकी छातीपर लपटे हुये श्रीकृष्णचंद्रको ले, उसे उसकी माताको दे, सब गोपियां विस्मयको प्राप्त हुईं ॥ ३० ॥ जिनके मनोरथ पूर्ण हुए हैं ऐसे नंदादिक गोप और गोपियां अति आनंदको प्राप्त हुए. और परस्पर कहनेलगे कि–'राक्षसका माराहुआ यह बालक पीछा आया यह बड़ा अचरज हुआ, यह निश्चय है कि–हिंसक, खल-

हुए ब्रह्मांड के भारसे पीड़ित और विस्मित, यशोदा पुत्रको पृथ्वीपर धरके, परमेश्वरका ध्यान करती जगद्-व्यवहारमें लगगयी ॥ १९ ॥ कंसका सेवक और उसीका भेजाहुआ तृणावर्तनाम दैत्य वायुके बौंडरके स्वरूपसे आके, पृथ्वीपर बैठे हुए बालक भगवान्को उड़ा लेगया ॥ २० ॥ इस वायुके बगूलेसे सब गोकुल घिरगया. और रजसे सबके नेत्र मूंदगये, भयंकर शब्दसे दिशा और कोन गर्जने लगे ॥ २१ ॥ एक मुहूर्त्ततक सब गोकुल धूलि और अंधेरेसे घिर रहा'

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ॥ चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ॥ ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशोदिशः ॥ २१ ॥ मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसा वृतम् ॥ सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥ नापश्यत्कश्चनाऽऽत्मानं परं चापि विमोहितः ॥ तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥ इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ॥ अतिकरुणमनुस्मरंत्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका चयथा गौः ॥ २४ ॥ रुदितमनु निशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ॥ रुरुदुरनुपलभ्य नंदसूनुं पवनउपारतपांसुवर्षवेगे ॥ २५ ॥

यशोदाने आकर देखा तो, उसने अपने पुत्रको जहां रक्खा था वहां नहीं देखा ॥ २२ ॥ तृणावर्तके फेंकेहुए कंकरोंके उपद्रवसे और मोहके होनेसे कोई मनुष्य अपने वा पराये शरीरको नहीं देख सका ॥ २३ ॥ इसतरह कठोर वायुके बगूलेसे धूरिकी वर्षाके आगे पुत्रका पता नहीं लगा तिससे पृथ्वीपर गिरीहुई पुत्रका स्मरण करती अबला यशोदा माता, जिसका बछरा मरगया हो ऐसी गौके समान, अत्यंत करुणा प्रगट हो ऐसे शोच करने लगी ॥ २४ ॥ पवनसे प्रेरी रजोवृष्टिका वेग जब बंद हुआ, तब यशो-

१ यह तृणावर्त राक्षस पूर्वजन्ममें बड़ा धर्मात्मा हरिभक्त पांडुदेशका राजा था. सो यह हजार स्त्रियोंके साथ नर्मदानदीके तटमें क्रीड़ा करता था कि– इतनेमें दुर्वासा मुनि आये. सो इसने इन्हें प्रणाम न किया. इससे कुपित हुये मुनिने श्राप दिया कि–जा तू राक्षस हो. इतना सुन, झट पांव पड़ा. विनती किया. तब प्रसन्न हो, मुनिने शापोद्धार करते कहाकि–श्रीकृष्णजीके अंगस्पर्शसे मुक्ति होगी ॥ ग०

नते थे ॥ १० ॥ यशोदाने ग्रहकी शंकासे इस रुदन करते बालकको ले, ब्राह्मणोंसे वेदमंत्रोंसे स्वस्तिवाचन कराया, स्तनपान कराया ॥ ११ ॥ बलवान् ग्वालोंने सर्व सामग्रीसहित इस गाड़ेको पीछा पूर्ववत् स्थापन किया. और ब्राह्मणोंने ग्रहादिकका होम करके दही, अक्षत, दर्भ तथा जलसे पूजन किया ॥ १२ ॥ जो असूया (गुणमें दोष प्रगट करना), झूंठ, दंभ, ईर्षा, हिंसा और अभिमानसहित तथा सत्यस्वभाववाले होते हैं, उनके दियेहुए आशीर्वाद व्यर्थ नहीं होते ॥ १३ ॥ इस अभिप्रायसे सावधान मनवाले नंदरायने उत्तम ब्राह्मणोंसे सामवेद, ऋग्वेद तथा यजुर्वेदके मंत्रोंसे संस्कार कियेहुए और पवित्र औषधवाले जलसे

रुदंतं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता ॥ कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥ पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ॥ विप्रा हुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशांबुभिः ॥ १२ ॥ येऽसूयाऽनृतदंभेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ॥ न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥ इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ॥ जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नंदगोपः समाहितः ॥ हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥ गावः सर्वगुणोपेता वासः स्रग्रुक्ममालिनीः ॥ आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुंजत ॥ १६ ॥ विप्रा मंत्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः ॥ ता निष्फला भविष्यंति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ १७ ॥ एकदाऽऽरोहमारूढं लालयंती सुतं सती ॥ गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥ भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ॥ महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥

पुत्रका अभिषेक तथा स्वस्तिवाचन कराया ॥ १४ ॥ पीछे अग्निमें होम कराय, उत्तम गुणकारी अन्न ब्राह्मणोंको दिया. ॥ १५ ॥ सर्व गुणवाली और वस्त्र, पुष्प, माला तथा सुवर्ण मालावाली गायां पुत्रके अभ्युदयके लिये ब्राह्मणोंको दी. और उन्होंने पीछा आशीर्वाद दिया ॥ १६ ॥ मंत्रवेत्ता योग्य ब्राह्मणोंने जो जो आशीर्वाद दिये, वे वैसेही होंगे कभी व्यर्थ होयं ही नहीं यह बात प्रसिद्ध है ॥ १७ ॥ एक दिन गोदीमें लेके, पुत्रको रमाती यशोदा पुत्रका पर्वतके सिखरके समान भार कि–जो श्रीकृष्णने गोदीसे उतरनेको बढ़ाया था उसे नहीं सह सकी ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके उदरमें रहे-

उछाले ॥ ॥ ६ ॥ तले सोते छोटे बालकके लाल कोमल चरण चलातेही गाड़ा टूटगया. अनेक प्रकारके रसोंसे भरे काँसाआदि धातुओंके पात्र जो गाड़ेमें थे, सो बिखरगये, और पहिया, धुरी और जुवाड़ा ये सब छिन्न भिन्न हो गये ॥ ७ ॥ करवट लेनेके उत्सवमें इकट्ठी हुई यशोदाआदि स्त्रियां और नंदादिक गोप इस अद्भुत आश्चर्यको देखके, व्याकुल हुए. और कहने लगे कि–

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वंघ्रिहतं व्यवर्तत ॥ विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ॥ नंदादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥ (इति ब्रुवंतोऽतिविवादमोहिता जनाः समंतात्परिवव्रुरार्तवत्) ॥ ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपींश्च बालकाः ॥ रुदताऽनेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ॥ अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥

'गाड़ा आपही कैसे उलट गया' ॥ ८ ॥ जिनको निश्चय नहीं हुआ ऐसे गोप गोपियोंको बच्चोंने कहा कि–' इस बालकने रुदन करते करते अपने पांवसे इसे फेंक दिया है इसमें कुछ संदेह नहीं है ' ॥ ९ ॥ परंतु गोप गोपियोंने बालकोंके कहनेपर विश्वास नहीं किया और कहा कि– ' ये बालक हैं, इनके कहनेका क्या भरोसा? ' क्यों कि इस बालकके अपरिमित बलको वे नहीं जा-

---

१ इसीको सकटासुर कहते हैं. यद्यपि भागवतमें सकटासुर नाम तथा वधभी नहीं कहा है तथापि पुराणान्तर यानी गर्गसंहितामें उत्कच नामसे इसकी कथा है. जैसे-कि– उसी गाड़ामें कंसका पठाया हुवा उत्कच नाम दैत्य आ बैठा और ज्योंही प्रभुके ऊपर गाड़ा पाड़ने चाहा त्योंही श्रीकृष्णजीने लातसे मारा वह गाड़ा और दैत्य दोनो गिरे पीछे वह दैत्य विमल रूपहो, सौ घोड़े जोड़े ऐसे रथमें शवार हो, परधाम गोलोकको सिधारा. अब यहांभी शंका होती है कि–इसकाभी ऐसा क्या शुभकर्म था कि–जिससे इन्होंने ऐसी गति पाई. तहां कहे हैं कि–यह पूर्वजन्ममें हिरण्याक्ष दैत्यका पुत्र उत्कच नामका था सो कोई लोमश मुनिके आश्रममें गया. वहां सब झाड़ चूर २ कर दिया. इतनेमें लोमशमुनिको क्रोध हुवा सो इन्होंने श्राप दिया कि–जा तू विदेह होजा यानी पवनरूप रहेगा. यह सुन, दैत्य घबड़ाया कापता हुवा मुनिके चरणके शरण हुवा और कहाभी कि–हे महाराज ! मैं आपका प्रभाव नहीं जानता था इसलिये मेरा अपराध क्षमापण कर, मुझे देह दीजिये. यह सुन, मुनिको दया लगी तो इन्होंनें कहा जा कृष्णावतारमें भगवत्के चरणका स्पर्श होनेसे तेरी मुक्ति होगी. इसीसे इसनेभी गोलोकमें सालोक्य मुक्ति पाया ॥ ग० ॥

इस सातवें अध्यायमें, गाड़ेको उछालदिया, तृणावर्तको गिरादिया और मुखमें ब्रह्मांड दिखाया, यह कथा कही जायगी ॥ १ ॥ परीक्षित राजाने कहा कि-हे प्रभो ! भगवान् ईश्वर जिस जिस अवतारसे जो जो चरित्र करते हैं, वे सब मेरे कान और मनको प्रिय लगते हैं ॥ १ ॥ तौभी जो मुझपर आपकी कृपा होय तौ जिसके सुननेसे पुरुषके मनकी ग्लानि तथा अनेक प्रकारकी तृष्णा निवृत्त होय, थोड़े कालमें अंतःकरण शुद्ध होय, भगवान्में प्रीति होय, और वैष्णव जनोंके साथ मैत्री होय, वही मनोहर चरित्र कहो ॥ २ ॥ अब मनुष्यदेह धारण करके, मनुष्यज्ञातिका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान्की औरभी अद्भुत बाललीला कहो

राजोवाच ॥ येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥ करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः ॥ भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ॥ मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुंधतः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लुवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ॥ वादित्रगीतद्विजमंत्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥ नंदस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ॥ अन्नाद्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥ औत्थानिकोत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः ॥ नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदंस्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ यों सुन, श्रीशुकदेवजी बोले कि-कितनेएक दिन पीछे भगवान्ने करवट लिया, उस उत्सवका अभिषेक था उसीदिन भगवान्के जन्मनक्षत्रका योग था, इसलिये इस बड़े समारंभमें इकठी हुई स्त्रियोंके बीच यशोदाने बाजे, गीत और ब्राह्मणोंके मंत्रसहित स्वस्तिबाचनसे अपने पुत्रका अभिषेक किया ॥ ४ ॥ भगवान्को न्हवाय, अन्नादिक, वस्त्र, माला, प्रियवस्तु तथा गायें देके, पूजित ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करवाय, भगवान्के नेत्रनमें निद्रा आती जानके, उनको यशोदाने धीरेसे एक शकटके नीचे पालनेमें पौढ़ाया ॥ ५ ॥ उत्सवसंबंधी उत्साहहीमें यशोदाका मन लगरहा था और उससे इस उत्सवमें आयेहुए व्रजवासियोंका सन्मान कर रही थी, इसलिये यशोदाने पुत्रका रुदन नहीं सुना, भगवान्ने स्तनपानकी इच्छासे रोते रोते अपने पांव

भक्तोंके हृदयमें रहनेवाले और लोकवंदित देवतानकेभी वंदनीय, चरणोंसे जिसके अंगको दबाके, भगवानने स्तनपान किया, वह राक्षसीभी माताके योग्य गति स्वर्गको प्राप्त हुई, तब गायां गोपियां कि-जिनके स्तनोंका दूध स्वयं भगवानने पिया उनको सद्गतिकी प्राप्ति होय उसमें तो कहनाही क्या ? ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ क्योंकि पुत्रके स्नेहसे टपकता जिनका दूध देवकीके पुत्र मोक्षादिक सर्व पुरुषार्थ देनेवाले भगवानने पिया ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! वे माता जो निरंतर भगवान्‌में पुत्रदृष्टि रखती थीं, उनके अज्ञानसे होनेवाला संसार फिर संभवेही नहीं ॥ ४० ॥ मुर्देके धूमकी सुगंध सूंघ कर, यह क्या है ? और कहांसे हुआ ? ऐसे

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वंद्याभ्यां लोकवंदितैः ॥ अंगं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम् ॥३७॥ यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ॥ कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥ ३८ ॥ पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ॥ भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥ तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ॥ न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसंभवः ॥ ४० ॥ कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ॥ किमिदं कुत एवेति वदंतो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ॥ श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥ नंदः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३ ॥ य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्याऽऽर्भकमद्भुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविंदे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

कहते कहते नंदादिक व्रजवासी व्रजमें आये ॥ ४१ ॥ वे व्रजमें ग्वालोंके कहनेसे पूतनाका आगमन आदिक और उसका मरण और बालकका कुशल रहना सुनके अतिआश्चर्ययुक्त हुए ॥ ४२ ॥ यों कह शुकदेवजी बोले कि-महाराज ! उदारबुद्धि नंदरायजी मानों मरकर, पीछा आया हो ऐसे, अपने पुत्रको पासमें ले, उसका सिर सूंघ, परम आनंदको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य श्रीकृष्णचंद्रकी पूतनाका मोक्षरूप इस अद्भुत बाललीलाको श्रद्धासे सुने वह परमेश्वरमें प्रीतिको प्राप्त होवे ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥

जो विष्णुका नाम लेनेसे डरते हैं वे सब नष्ट हो जावो ॥ २९ ॥ इस प्रकार स्नेहबद्ध गोपियोंने जिसकी रक्षा करी, एसे पुत्रको यशोदाने स्तनपान कराय सुलाया ॥ ३० ॥ इतनेमें मथुरासे व्रजमें आये नंदादिक गोप पूतनाके देहको देखके, अतिआश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥ और कहने लगे कि-'वसुदेवजी तो ऋषि वा योगेश्वर प्रकट हुए हैं; क्योंकि उन्होंने जैसा कहा था वैसाही उत्पात देखनेमें आया ॥ ३२ ॥ पीछे उन ग्वालोंने पूतनाके शरीरको कुल्हाड़ोंसे काटके, सब अवयव दूर दूर फेंक दिये और

श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ॥ पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥ तावन्नंदादयो गोपा मथुराया व्रजंगताः ॥ विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥ नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वा समासतः ॥ स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहाऽऽनकदुंदुभिः ॥३२॥ कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ॥ दूरे क्षिप्त्वाऽवयवशो न्यदहन्काष्ठधिष्ठितम् ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ॥ उत्थितः कृष्णनिर्भुक्त सपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ॥ जिघांसयाऽपि हरये स्तनं दत्वाऽऽप सद्गतिम् ॥ ३५ ॥ किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ॥ यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्ता स्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥

शेषभागको लकड़ोंमें धर जला दिया ॥ ३३ ॥ भगवानके उपभोग करनेसे जिसके पाप तुर्त नष्ट होगये ऐसे इस पूतनाके देहके-जलते उसमेंसे अगरके समान सुगंधी धूम निकला ॥ ३४ ॥ लोकोंके बालकोंको मारनेवाली और रुधिर पीनेवाली त मारनेकी इच्छासेभी भगवान्‌को स्तनपान करायके मुक्त हुई ३५ ॥ भला तद प्रेमवाली मातानका मोक्ष होय इसमें तो क्या कहना! तथा श्रद्धा और भक्तिसे श्रीकृष्णचंद्रको प्रियवस्तु अर्पण करनेवाले मोक्षको प्राप्त होय इसमेंभी क्या कहना ? ॥ ३६ ॥

१ यह पूतना कौन है ? जो कि-जहर दे, अमृत (मोक्ष) पाया इसपर यह इतिहास है कि-यह पूर्वजन्ममें बलिराजाकी रत्नमालानामकी कन्या थी सो इसने अपने पिताके यज्ञमें आयेहुये वामन भगवान्‌में पुत्रके जैसा प्रेम अपने मनमें किया और कहाभी कि-जो ऐसा सुन्दर बालक मेरे होवे तो मैं उसे स्तन पिलाऊं और जन्म २ का ताप गमाऊं ऐसी इसकी मनोकामना अंतर्यामी वामनजीने जान उसे मनसेही वर देदिया उसी सबबसे द्वापरांतमें पूतना हो कृष्णजीको स्तन पिलाय, मोक्ष पाई और जन्म २ के ताप गमाई ॥ ग ० ॥

२ गायां और गोपियां वत्सहरणकी लीलामें भगवानकी माता हुई थीं इस अभिप्रायसे 'मातरः' यह बहुवचन दिया.

अज भगवान् तेरे पैरोंकी, मणिमान् घुटनोंकी, यज्ञ साथलोंकी, अच्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्षःस्थलकी, इंद्र कंठकी, विष्णु भुजाकी, उरुक्रम मुखकी और ईश्वर मस्तककी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधर भगवान् तेरे आगे, गदाधर भगवान् पीछे, धनुषधारी मधुहा भगवान् और खड्गधारी अजन भगवान् तेरे दोनों पार्श्वोंमें, शंखधर उरुगाय भगवान् कोनोंमें, उपेंद्र भगवान् ऊपर, तार्क्ष्य भगवान् नीचे, हलधर भगवान् चारोंतर्फ रहें ॥ २३ ॥ हृषीकेश इंद्रियोंकी, नारा-

अव्यादजोऽघ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ॥ हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कंठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥ चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ॥ कोणेषु शंख उरुगाय उपर्युपेंद्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समंतात् ॥ २३ ॥ इंद्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ॥ श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः ॥ क्रीडंतं पातु गोविंदः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥ व्रजंतमव्याद्वैकुंठ आसीनं त्वां श्रियःपतिः ॥ भुंजानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयंकरः ॥ २६ ॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूश्मांडा येऽर्भकग्रहाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥ कोटरारेवतीज्येष्ठापूतनामातृकादयः ॥ उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेंद्रियद्रुहः ॥ २८ ॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ॥ सर्वे नश्यंतु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥

यण प्राणोंकी, श्वेतद्वीपके स्वामी चित्तकी, योगेश्वर भगवान् मनकी ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ तेरी बुद्धिकी, पर भगवान् अहंकारकी रक्षा करें. खेलते गोविंद भगवान्, सोते माधव भगवान् ॥ २५ ॥ चलते वैकुंठ भगवान्, बैठते लक्ष्मीपति और भोजन करते यज्ञभोक्ता भगवान् तेरी रक्षा करें, कि-जो सब ग्रहोंके भयकारक है ॥ २६ ॥ डाकिनी, राक्षसियां, कूष्मांड, बालग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक ॥ २७ ॥ कोटरा, रेवती, अलक्ष्मी, पूतना, मातृका प्रभृति, उन्माद अपस्मार औरभी अनेक जो देह, प्राण तथा इंद्रियोंके द्रोही हैं ॥ २८ ॥ ये सब नाशको प्राप्त होवें. स्वप्नमें देखेहुए उत्पात और वृद्ध तथा बालकोंके ग्रह कि-

लंबे पसर गये ॥ १३ ॥ यों सुनाय, श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजेंद्र ! इस पूतनाके शरीरने गिरते गिरते छःकोसके भीतरके वृ-क्षोंका चूर्ण कर दिया यह बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १४ ॥ इस भयंकर पूतनाके मुंहमें हलके समान लंबी और भयंकर दाढ़ें, पर्व-तकी गुफाके समान नाक, पर्वतसे पड़े ढोलके समान स्तन, बिखरेहुए और लाल केश ॥ १५ ॥ अंधकूपके जैसे गहरे नेत्र, नदी-के तटके तुल्य भयंकर नितंब, सड़क बंधी होय जैसे बाहु, साथल और पांव, सूखे जलरहित तलावके जैसा पेट ॥ १६ ॥ ऐसे भयंकर पूतनाके शरीरको देख, गोप और गोपियां कि–जिनके हृदय, कान और मस्तक प्रथमही उसके शब्दसे फूट गये थे,

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यंतरद्रुमान् ॥ चूर्णयामास राजेंद्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥ ईषामात्रो-ग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकंदरनासिकम् ॥ गंडशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णाऽरुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥ अंधकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ॥ बद्धसेतुभुजोर्वंघ्रिं शून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ॥ पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥ बालं च तस्या उरसि क्रीडंतम-कुतोभयम् ॥ गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बाल-स्य सर्वतः ॥ रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरज-साऽर्भकम् ॥ रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः ॥ २० ॥ गोप्यः संस्पृष्टसलिला अंगेषु कर-योः पृथक् ॥ न्यस्याऽऽत्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥

अतिव्याकुल हुए ॥ १७ ॥ गोपियोंने बड़े संभ्रमसे तुर्त आयके, बालक श्रीकृष्णचंद्र कि– जो उसकी छातीपर निर्भय खेलरहे थे, उन्हें उठा लिया ॥ १८ ॥ यशोदा और रोहिणीके साथ उन सब गोपियोंने उस बालकके ऊपर गौकी पूंछ फिरानेआदि क्रियाओंसे सब भांति अच्छीतरह रक्षा करी ॥ १९ ॥ बालकको गोमूत्र, गायोंकी रज और गोबरसे न्हिलायके, उसके बारह अंगोंमें भगवानके नामोंसे रक्षा करी ॥ २० ॥ पहले कुछ घबरायी हुई थीं तासों विधिवत् नहीं हुई. कुछ पीछे स्वस्थ होयके, गोपियोंने आचमन ले, अपने शरीरमें प्रथम जुदे जुदे अंगन्यास तथा करन्यास करके, पीछे बालकके अंगोंमें बीजन्यास किया ॥ २१ ॥

नेत्र बंद करलिये, पीछे मूर्खमनुष्य जैसे रज्जु समझते सोते साँपको ले लेवे, तैसे पूतनाने कालरूप भगवानको गोदीमें ले लिया ॥ ८ ॥ म्यानसे छिपी तरवारकी नाईं ऊपरसे कोमल और भीतरसे बहुत अतितीक्ष्ण बुरे काम करनेवाली पूतनाको घरमें आयी देख तथा उसको उत्तम स्त्री जान, रोहिणी और यशोदा कि-जो उसकी कांतिसे मोहको प्राप्त होगयीं, केवल खड़ी खड़ी देखती-ही रहीं ॥ ९ ॥ उस स्थानमें दुष्ट पूतनाने बालक श्रीकृष्णचंद्रको गोदीमें लिया और उनके मुखकमलमें भयंकर और दुर्धर ज-हरसे भराहुआ आपना स्तन दिया; तद क्रोधयुक्त हो, श्रीकृष्णचंद्रने स्तनको दोनों हाथोंसे जोरसे दबाय, उस पूतनाके प्राणोंके

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यांतराकोशपरिच्छदासिवत् ॥ वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोरांकमादाय शिशोर्ददाव-थ ॥ गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥ सा मुंच मुंचाल-मिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाऽखिलजीवमर्मणि ॥ विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा ॥ रसा दि-शश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ॥ १२ ॥ निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्या-दाय केशांश्चरणौ भुजावपि ॥ प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३ ॥

साथ पान किया ॥ १० ॥ सर्व मर्मस्थानोंमें पीड़ित पूतना 'छोड़ दे छोड़ दे अब बस!' ऐसे कहने लगी. जिसकी आंखें फटगयी हैं, शरीरमें पसीना भर आया है, ऐसी वह राक्षसी वारंवार हाथ पैर पछाड़ती रोने लगी ॥ ११ ॥ अतिगंभीर वेगवा-ले उस पूतनाके शब्दोंसे पर्वतोंसहित पृथ्वी और ग्रहोंसहित आकाश चलायमान हुआ. पाताल और दिशाओंमेंसे परछंद उठने लगे और वज्रपात होनेकी शंकासे मनुष्य पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १२ ॥ इस तरह स्तनकी व्यथासे मरती वह राक्षसी मरणसमय अपना प्रथमरूप पाय, वज्रसे मरे वृत्रासुरके समान वज्रमें गिरगयी, उसका मुंह फटगया, केश बिखर गये और हाथ पांव

वजीके वचन असत्य न होयं ऐसे मार्गमें विचार करते, उत्पात होनेकी शंकासे नंदरायजी भगवान्का ध्यान करने लगे ॥ १ ॥ कंसकी पठाईहुई और बालकोंको मारनेवाली, पूतना पुर, गाँव और व्रजआदिकनमें बालकोंको मारती फिरती थी ॥ २ ॥ भगवान्के श्रवण मननादिक कि-जो राक्षसोंके नाश करनेवाले हैं वे जहां न होयं वहां राक्षसियां अपना काम कर सक्ती हैं ॥ ३ ॥ नभचारी (राक्षसी), स्वच्छंद फिरनेवाली, वह पूतना एक दिन नंदरायजीके व्रजमें आय, मायासे अपने शरीरका उत्तम स्त्रीके समान वेष बनाय, भीतर प्रविष्ट हुई ॥ ४ ॥ इसकी शिखामें मल्लिकाके पुष्प गुंथरहे थे, बड़े नितंब और स्तनोंके भारसे कमर लच-

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ॥ शिशूंश्चचार निघ्नंती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥ न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ॥ कुर्वंति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥ सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नंदगोकुलम् ॥ योषित्त्वा माययाऽऽत्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥ ४ ॥ तां केशबंधव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितंबस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ॥ सुवाससं कंपितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुंतलमंडिताननाम् ॥ ५ ॥ वल्गुस्मितापांगविसर्गवीक्षितैर्मनोहरंतीं वनितां व्रजौकसाम् ॥ अमंसतांभोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ ६ ॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नंदगृहेऽसदंतकम् ॥ बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥ विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचराऽऽत्मा स निमीलितेक्षणः ॥ अनंतमारोपयदंकमंतकं यथोरगं सुप्तमबुद्धि रज्जुधीः ॥ ८ ॥

क रही थी, सुंदर वस्त्र पहिने थी और हलकते कुंडलोंकी कांतिसे झलकते केशोंसे मुख शोभ रहा था ॥ ५ ॥ सुंदर मंदहास्य और कटाक्ष चलानेके साथ जो चितवन तिससे ग्वालोंके मन हर लीने, तिससे किसी गोपने उसको रोकी नहीं और हाथमें कमल था, इसलिये गोपियोंने जाना कि-मानों लक्ष्मी अपने पति विष्णुके दर्शन करने आई है ॥ ६ ॥ बालकोंको ढूंढ़ती इस बालग्रहरूप पूतनाने यदृच्छासे नंदरायजीके घरमें बालक कि-जो अपना बड़ा स्वाभाविक तेज गुप्त रखनेसे भस्मसे ढके हुए अग्निके समान और दुष्ट जीवोंके लिये कालरूप था, उसे देखा ॥ ७ ॥ स्थावर जंगमके आत्मा श्रीकृष्णभगवान्ने उस बालहत्यारी पूतनाको जानके

तुह्मोंको पिता करके मानता है, उसको अच्छी तरह तो राखो हो ?॥ २७॥ पुरुषके धर्म अर्थ और काम जो अपने संबंधियोंके उपयोगी होयं तो वे सफल कहे जायं और संबंधी क्लेश पावें तो वे धर्मादिक किसी कामके नहीं ॥ २८ ॥ यह बात सुनके, नंदरायजीने कहा कि–अहो ! देवकीसे उत्पन्न तुह्मारे बहुतसे पुत्र कंसने मारे और एक सबसे छोटी लड़की रही, वहभी स्वर्गमें गयी !!! ॥ २९ ॥ मनुष्योंकी निष्ठा अवश्य अदृष्टऊपरही है (पुत्रादिकनका सुख देनेवाला दैव जब निवृत्त होय तबही पुत्रप्रभृति नष्ट होते हैं) अदृष्टही सर्वोपरि है (पुत्रादिक जुदे हो गये होयं तौभी दैवही उनको पीछा मिला देता है) इस तरहसे अपने सुख दुः-

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ॥ न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥ नंद उवाच ॥ अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ॥ एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या साऽपि दिवं गता ॥ २९ ॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ॥ अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥ वसुदेव उवाच ॥ करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ॥ नेह स्थेयं बहुतिथं संत्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति नंदादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे नंदवसुदेवसंगमो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिंतयन् ॥ हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशंकितः ॥ १ ॥

ख का कारण दैवही है. ऐसे जो जाने वह किसी प्रकार मोहित नहीं होता ॥ ३० ॥ यह सुन, वसुदेवजीने कहा कि–तुम वार्षिक कर राजाको दे चुके और हमारे साथभी मिलचुके; इसलिये अब तुह्मारेको यहां बहुतदिन रहना ठीक नहीं; क्योंकि गोकुलमें उत्पात होते होयंगे ॥ ३१ ॥ इतनी कथा कह, श्रीशुकदेवजी बोले कि–याप्रमाण वसुदेवजीके वचन सुन, नंदादिगोप बैलोंके गाड़े जोड़, वसुदेवजीसे आज्ञा ले, गोकुलको गये ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ इस छठे अध्यायमें, वसुदेवजीके वचनसे व्रजमें जाते नंदरायजी मार्गमें मरी हुई राक्षसीको देख और उसके, मरणकी बात सुनके, विस्मयको प्राप्त हुए, यह कथा होयगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–वसुदे-

गये ॥ १९ ॥ अपने परममित्र नंदरायजीको आये और कंसको कर देचुके देख, वसुदेवजी उनके डेरे गये ॥ २० ॥ प्राणको आया देख, जैसे देह खड़ा हो जाता है, तैसे वसुदेवजीको आये देख, जल्दी खड़े होके, प्रेमसे विव्हल नंदरायजी प्रीतिसे अतिप्रिय मित्र वसुदेवजीसे बांह पसारके, मिले ॥ २१ ॥ हे राजन् ! पूजन करनेके बाद सुखसे बैठे और जिनका मन अपने पुत्रमें लग रहा था ऐसे, वसुदेवजीने आदरभावसे आरोग्य पूंछा ॥ २२ ॥ और कहा कि-हे भाई ! वृद्ध प्रजारहित और प्रजाकी आशाभी जिन्होंने छोड़दी थी ऐसे तुह्मारे अभी पुत्र हुआ यह बहुत अच्छा हुआ ॥ २३ ॥ इस संसारचक्रमें फिरते तुमने आज पुन-

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नंदमागतम् ॥ ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ॥ प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः ॥ प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्टया भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ॥ प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥ २३ ॥ दिष्टया संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः ॥ उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥ नैकत्र प्रियसंवादः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ॥ ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५ ॥ कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यंबुतृणवीरुधम् ॥ बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥ २६ ॥ भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ॥ तातं भवंतं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥

र्जन्म पाया हो ऐसे हमारे देखनेमें आये, यह बहुत अच्छा हुआ; क्योंकि प्यारेका दर्शन दुर्लभ है ॥ २४ ॥ जलके प्रवाहसे बहते तृण और काष्ठआदिकी स्थिति जैसे एक ठिकाने नहीं रहती तैसे विचित्र प्रारब्धवाले संबंधियोंका प्रियसंवासभी एक ठिकाने नहीं रहता ॥ २५ ॥ बहुत जल, तृण और लतायुक्त पशुओंका हितकारी महान्वन कि- जहां सुहृदसहित आप वास करते हो, वह महान्वन निरोग तौ है ? इस आशयसे तौ वसुदेवजीका यह प्रश्न है कि-यदि जल, तृण बहुत होयंगे और रोगरहित वन होगा तो, निरोग दूध मेरे पुत्र पीवेंगे ॥ २६ ॥ हे भाई मेरा पुत्र कि-जो अपनी माताके साथ तुह्मारे व्रजमें रहता है और

वरको जाते शोभा देतीं भयीं, जिनकी शिखामेंसे मार्गमें फूलनकी वृष्टि होरही है, स्तन डोल रहे हैं, कुंडल झलक रहे हैं हार हलक रहे हैं, वह शोभा देखतेही बनि आवे ॥ ११ ॥ 'बहुत समयपर्यंत रक्षा कर' ऐसे बालकको आशीर्वाद देतीं, हलदीका चूर्ण तथा तेल और पानीसे लोगोंको भिगोंतीं गीत गातीं आतीं थीं ॥ १२ ॥ जगन्नाथ श्रीकृष्णचंद्रके व्रजमें पधारतेही इस महोत्सवमें विचित्र बाजन बजने लगे ॥ १३ ॥ और प्रसन्नचित्त ग्वाल परस्पर घी, दूध और जल डारते तथा लेपन करते परस्पर माखन फेंकने लगे ॥ १४ ॥ उदारचित्त नंदरायजीने सूत, मागध, बंदीजन औरभी जो विद्योपजीवी थे, उनको वस्त्र, अलंकार,

ता आशिषः प्रयुंजानाश्चिरं पाहीति बालके ॥ हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिंचंत्यो जनमुज्जगुः ॥ १२ ॥ अवाद्यंत विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ॥ कृष्णे विश्वेश्वरेऽनंते नंदस्य व्रजमागते ॥ १३ ॥ गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृतांबुभिः ॥ आसिंचंतो विलिंपंतो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥ नंदो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् ॥ सूतमागधबंदिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥ तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥ विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६ ॥ रोहिणी च महाभागा नंदगोपाभिनंदिता ॥ व्यचरद्दिव्यवासःस्रक्कंठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥ तत आरभ्य नंदस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ॥ हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥ गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ॥ नंदः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥

गाय और धन दिया ॥ १५ ॥ उदारचित्त नंदरायजीने विष्णुकी आराधना और अपने पुत्रके कल्याणके लिये जो जो जिस जिस कामनासे आये थे, उनको वही वस्तु देके, यथायोग्य पूजन करा ॥ १६ ॥ नंदरायजीने जिनका अभिनंदन किया है ऐसी महाभाग्यशाली रोहिणीजी दिव्यवस्त्र, माला और कंठाभरणभूषित इस महोत्सवमें फिर रहीं थीं ॥ १७ ॥ महाराज ! तबसे भगवान्‌के विराजनेसे उत्पन्न हुए अपने असाधारण गुणोंसे नंदरायजीका गोकुल सब संपदा और लक्ष्मीके रमण करनेका स्थान हुआ ॥ १८ ॥ हे कुरुकुलदीपक ! एक समय गोकुलकी रक्षाके निमित्त गोपोंको आज्ञा करके, नंदरायजी कंसको वार्षिक कर देनेको मथुरामें

स्नानसे, अपवित्र पदार्थसे लिपाहुआ पदार्थ धोनोसे, गर्भादिक संस्कारोंसे, इंद्रियादिक तपसे, ब्राह्मणादिक यजनसे, धन दानसे, मन संतोषसे और आत्मा ब्रह्मविद्यासे पवित्र होते हैं' ॥ ४ ॥ ब्राह्मण, सूत (पौराणिक), मागध (भाट), बंदी (चारण) ये सब मांगलिक वचन कहनेलगे, गवैया गाने लगे और भेरी (बड़ीढक्का) नगारे वारंवार बजने लगे ॥ ५ ॥ व्रजमें द्वार आंगन और घरोंके भीतरके भाग ये सब झाडे और छिरकाये. विचित्र ध्वजाओंमें पताकानकी माला लगायीं वस्त्र और पत्तोंकी वंदनवारोंसे द्वार सुशोभित किये गये ॥ ६ ॥ गाय, बैल, बछरे इनको हरदी और तैलसे रंगे, विचित्र धातु (गेरू खरियाआदि) लगाये,

सौमंगल्यगिरो विप्राः सूतमागधवंदिनः ॥ गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुंदुभयो मुहुः ॥ ५॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहांतरः ॥ चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥ गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ॥ विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकांचनमालिनः ॥ ७ ॥ महार्हवस्त्राभरणकंचुकोष्णीषभूषिताः ॥ गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥ गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ॥ आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पांजनादिभिः ॥ ९ ॥ नवकुंकुमकिंजल्कमुखपंकजभूतयः ॥ बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥ गोप्यः सुमृष्टमणिकुंडलनिष्ककंठ्यश्चित्रांबराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ॥ नंदालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुंडलपयोधरहारशोभाः ॥ ११ ॥

मोरछल लगायी, झूलें ओढ़ायीं और सुवर्णकी माला पहिरायीं ॥ ७ ॥ महाराज ! सब ग्वाल सुंदर वस्त्र, आभूषण, अंगरखा, पाग पहर, अनेक प्रकारकी भेंटें हाथोंमें लेकर, आये ॥ ८ ॥ यशोदाके पुत्रका जन्म सुनकर, प्रसन्नमन गोपियोंने वस्त्र, आभूषण और अंजनआदिसे अपना शरीर अलंकृत किया ॥ ९ ॥ नवीन केसर चरचनेसे मुखकमल जिनके शोभायमान हैं, जिनका पुष्ट नितंब है और स्तन चलायमान होरहे हैं, वे गोपियां भेंटें लेकर, जल्दी नंदरायजीके घरको चली ॥ १० ॥ उज्ज्वल मणिनके जड़ाऊ कुंडल पहिरे, पदक (चौकी) का हार गलेमें पहिरे, हाथमें कंकन पहिरे, विचित्र वस्त्र पहिरे, गोपियां नंदरायजीके

१ कवित्त–फूल गये गोप ग्रह गोपिनको भूलगये हुलसी मचाई माते प्रेमसरसाईमें ॥ कीच मची दधिकी अधिक गैलगैलनमें रंग रस अंग पागे आँनँदबधाईमें ॥ छोटीसी चोटी कछोटी कटि मोटी भई गोपी सबै चोपी रूपसागर कन्हाईमें ॥ राजी दिल मोहन विनोदन जो विहँस नंद नाचे आज आंगन कन्हाईकी बधाईमें ॥ १ ॥

कामरूप (वांछितरूप) धारण करनेवाले और परायोंका नाशही जिनको प्यारा है ऐसे दैत्योंको सब दिशानमें साधुलोकोंके नाश करनेकी आज्ञा करके, कंस घरको गया ॥ ४४ ॥ राजस स्वभाववाले, तमोगुणसे मूढबुद्धि और जिनकी मृत्यु निकट आगयी ऐसे, ये दैत्य सत्पुरुषोंसे द्वेष करनेलगे ॥ ४५ ॥ महात्मा लोगोंका अपराध करनेसे पुरुषोंकी आयुष्य, लक्ष्मी, यश, धर्म, शुभलोक, सुख और सर्व प्रकारके कल्याण नष्ट होते हैं ॥ ४६ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पांचवें अध्यायमें नंदरायने पुत्रका जातकर्म और बड़ा

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ॥ कामरूपधरान्दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ॥ सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥ आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥ हंति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नंदस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ॥ आहूय विप्रान्देवज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ॥ कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥ धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते ॥ तिलाद्रीन्सप्तरत्नौघशातकौंभांबरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ॥ शुध्यंति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥ ४ ॥

उत्सव किया, फिर मथुरा जायके, वसुदेवजीसे मिलनेका आनंद पाया, यह कथा कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–पुत्रका जन्म होनेसे आनंदयुक्त उदारचित्त नंदरायने न्हाय, पवित्र होय, सिंगार धरि, ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुलाय, स्वस्तिवाचन कराय, पुत्रका जातकर्म संस्कार कराया. और पितृ तथा देवतानका पूजन कराया ॥ १ ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंको अलंकृत दो लक्ष गाय और रत्नसमूहसहित तथा जरीके वस्त्रोंसे वेष्टित सात तिलोंके पर्वत दिये ॥ ३ ॥ ' पृथ्वी प्रभृति पदार्थ कालसे, देहादिक

१ कवित्त–पूत सपूत जन्यो यशुदा इतनी सुनिकै वसुधा सब दौरी ॥ देवनके मन हर्ष भयो सुनि धावत गावत मंगल गौरी ॥ नंद कछू जो दियो इतनो घनश्याम कुबेरहुकी मति बौरी ॥ स्वाहिं देखत व्रजाहिं लुटाह दियो न बची बछिया छछिया न पिछौरी ॥ १ ॥

तौभी हम विचार करते हैं कि- शत्रुतासे देवतानकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; इसलिये हम कि-जो आपके सेवक तिनको देवतानका मूल उखाड़नेको आज्ञा करो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ जैसे शरीरमें हुए रोगकी उपेक्षा करनेसे यदि वह जमजाय तो फिर मनुष्योंसे उसका उपाय नहीं हो सक्ता और जैसे इंद्रियवर्ग स्वतंत्र छोंड़दिया जाय तो फिर उसका निग्रह नहीं हो सक्ता, तैसे शत्रुभी बद्धबल होजाय तो फिर वह डिगाया नहीं डिगता ॥ ३८ ॥ देवतानका मूल विष्णु हैं और विष्णु जहां सनातन धर्म होय वहां रहता है और धर्मका मूल वेद, गौ, ब्राह्मण, तप, यज्ञ और दक्षिणा ये हैं ॥ ३९ ॥ इसलिये हे राजन् ! सर्वथा वै-

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ॥ ततस्तन्मूलखनने नियुंक्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥ यथाऽमयोंऽगे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ॥ यथेंद्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥ मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ॥ तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥४० ॥ विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ॥ श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनुः ॥ ४१ ॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ॥ तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः स चतुर्मुखाः ॥ अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं दुर्मंत्रिभिः कंसः सह संमंत्र्य दुर्मतिः ॥ ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

दिक, तपस्वी और याज्ञिक ब्राह्मणोंको, तथा यज्ञमें उपयोगी होयं ऐसे घी, दूधआदि देनेवाली गैयानको हम मारें ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, गौ, वेद, तप, सत्य, इंद्रियनिग्रह, मनका शमन, श्रद्धा, दया, तितिक्षा (दुःखका सहन) और यज्ञ ये सब विष्णुके शरीररूप हैं ॥ ४१ ॥ यह विष्णुही सब देवतानका स्वामी, दैत्योंका शत्रु और गुप्त रहनेवाला है, ब्रह्मा और शिवसहित सर्व देवतानका मूलभी यही है, इसलिये ऋषियोंका मारना यही विष्णुके वधका उपाय है ॥ ४२ ॥ इतना कह, श्रीशुकदेवजीने कहा कि-कालपाशसे घिरेहुए दुष्टबुद्धि असुर कंसने इसतरह दुष्ट मंत्रियोंके साथ विचार करके, ब्रह्महिंसाको अपना हितकरके, माना ॥ ४३ ॥

सने मंत्रियोंको बुलाकर, उसने वे सब समाचार कहे, जो योगमायाने कहे थे ॥ २९ ॥ स्वामीके कहे वचन सुनकर, उसके मंत्री दैत्य कि–जो देवतानके शत्रु, देवताओंपर क्रोध करनेवाले और ओछी बुद्धिवाले थे, उन्होंने कंससे कहा कि– ॥ ३० ॥ हे यादवेंद्र! यदि ऐसा होय तो पुर, गाँव और व्रजआदिमें दसदिनके अंदरके और दसदिनके ऊपरके जन्मेहुए जो बालक हों, उनको आजही हम मार डारें ॥ ३१ ॥ देवता कि– जो युद्धमें डरपोंक और आपके धनुषकी प्रत्यंचाके शब्दसे निरंतर उद्विग्न रहते हैं वे उद्यम करके, क्या करेंगे ?॥ ३२ ॥ आप बाण चलाते हो, तब आपके बाणोंसे चारों ओर हन्यमान देवता जीनेकी अभिलाषासे युद्ध

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ॥ देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥ एवं चेत्तर्हि भोजेंद्र पुरग्रामव्रजादिषु ॥ अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ४१ ॥ किमुद्यमैः करिष्यंति देवाः समरभीरवः ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समंततः ॥ जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥ केचित्प्रांजलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ॥ मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताः स्म इति वादिनः ॥ ३४ ॥ न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ॥ हंस्यन्यासक्तमुखान्भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ॥ रहोजुषा किं हरिणा शंभुना वा वनौकसा ॥ किमिंद्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ ३६ ॥

छोंड़कर, भाग जाते हैं ॥ ३३ ॥ कितनेएक देवतालोग शस्त्र छोंड़के, दीन होय, हाथ जोड़, ठाढ़े रहते हैं. और कितने एक कि–जिनकी काछ छूट गयी है और चोटी फहराय रही है, " डर गयें हैं, डर गये हैं " ऐसे कहने लगते हैं ॥ ३४ ॥ जो शस्त्र, अस्त्र भूल गये हैं, जिनके रथ टूटगये हैं, जो भयसे घिरेहुए हैं और दूसरोंके साथ युद्ध कररहे हैं, जिनके धनुष टूट गये हैं और जो युद्ध छोड़ कर, बैठ गये हैं; उनको आप नहीं मारते ॥ ३५ ॥ निर्भय स्थानमें शूर वीर और युद्ध न होय वहां बड़ाई हांकनेवाले देवतानसे, गुप्त रहनेवाले विष्णुसे, वनवासी शिवसे, अल्प पराक्रमी इंद्रसे वा तप करते ब्रह्मासे अपना क्या होना है ?

भोगने पड़ते हैं ॥ २१ ॥ जबतक अपने स्वरूपको नहीं जाने, किंतु ' मैं मारता हूं और मैं मरता हूं, ' ऐसे माने तबतक यह देहाभिमानी अज्ञानी मनुष्य प्रायश्चितका अधिकारी है ॥ २२ ॥ हे दीनवत्सल ! साधुओ ! मेरा अपराध क्षमा करो, ऐसे कहते रोतेहुए कंसने बहन बहनोईके पांव पकड़ लिये ॥ २३ ॥ और योगमायाके वचनका विश्वास करके, अपना स्नेह दिखानेको उनको बंधनमेंसे छोड़ दिया ॥ २४ ॥ ऐंसे पछताते भाईपर देवकीने क्षमा करी और वसुदेवजीने बैर छोड़ दिया और हँसके,

यावद्धतोऽस्मि हंताऽस्मीत्यात्मानं मन्यतेस्वदृक् ॥ तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ॥ इत्युक्त्वाऽश्रुमुखः पादौ श्यालस्स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विश्रब्धः कन्यकागिरा ॥ देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥ भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षांतरोषा च देवकी ॥ व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥ एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ॥ मिथो घ्नंतं न पश्यंति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ॥ देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मंत्रिणः ॥ तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥

उससे कहा कि- ॥ २५ ॥ ' हे महात्मा कंस ! जैसे तू कहता है वैसेही है, देहधारियोंको देहाभिमान अज्ञानहीसे हुआ है, कि-जिससे यह अपना और यह पराया ऐसी बुद्धि होती है ॥ २६ ॥ शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ और मोहवाले तथा मदोन्मत्त देहाभिमानी लोग 'ईश्वरही पदार्थोंका पदार्थोंसे परस्पर नाश करता हैं' इस बातको नहीं जानते और आपसेंही ' मारनेवाला और मरनेवाला मानते हैं' ॥ २७ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजीने कहा कि-इसतरह प्रसन्न होयके, देवकी और वसुदेवजीसे शुद्ध अंतःकरणसे बतलायाहुआ कंस उनकी आज्ञा लेकर, अपने घरको गया ॥ २८ ॥ रात्रि व्यतीत हुए पीछे कं-

देवीके वचन सुनके, अतिविस्मित कंसने देवकी और वसुदेवजीको कैदसे छोड़ नम्र होकर, कहा कि- ॥ १४ ॥ अहो बहन! अहो भाम! बड़ी शोककी बात है!! राक्षस जैसे अपने पुत्रोंका मारडारता है, तैसे मुझ पापीने तुम्हारे पुत्र मारे ॥ १५ ॥ वह मैं निर्दय, ज्ञाति और संबंधियोंका त्याग करनेवाला, खल, ब्रह्मघातीके समान जीताहुआभी मराहुआ हूं. सो मैं कौनसे लोकोंमें जाऊंगा? ॥ १६ ॥ केवल मनुष्यही झूठ बोलें ऐसे नहीं है किंतु देवताभी असत्य बोलते हैं. जिनके विश्वाससे मुझ पापीने बहनके बालक मारे ॥ १७ ॥ हे महाभाग्यशाली! तुम्हारे पुत्र कि-जिन्होंने अपने प्रारब्धका भोग किया है, उनका सोच मत

तयाऽभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ॥ देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥ अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ॥ पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥ स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ॥ काँल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ॥ यद्विश्रंभादहं पापः स्वसुर्निहतवान् शिशून् ॥ १७ ॥ मा शोचतं महाभागावात्मजान्स्वकृतं भुजः ॥ जंतवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥ १८ ॥ भुवि भौमानि भूतानि यथा यांत्यपयांति च ॥ नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥ यथाऽनेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ॥ देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानऽपि ॥ माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विंदतेऽवशः ॥ २१ ॥

करो; क्योंकि दैवाधीन जीव निरंतर एक स्थानपै साथ नहीं रह सक्ते हैं ॥ १८ ॥ जैसे पृथ्वीमें पृथ्वीके विकाररूप घटादिक पदार्थ होय हैं और बिलाय जाय हैं, परंतु पृथ्वीमें कुछभी फेरफार न होते वैसेकी वैसी बनी रहती है, तैसे देह जन्में हैं और मरे हैं, उनमें आत्माका फेरफार न होते एकरूपही रहता है ॥ १९ ॥ याप्रमाण जो मनुष्य यथार्थ नहीं समझता है उसकी देहमें आत्मबुद्धि होती है, कि-जिससे भेद होता है और भेदसे पुत्रादिनके देहसे योग तथा वियोग होताहै और उससे संसृति (अहंता ममता) निवृत्त नहीं होती ॥ २० ॥ इसलिये हे कल्याणरूपिणी! तेरे पुत्रोंको मैंने मारे हैं, तौभी उनका तू सोच मत कर, क्योंकि सब जीवोंको परतंत्रतासे अपने किये कर्म

हे प्रभो ! मैं तेरी छोटी बहन, गरीब मंदभाग्य हूं और मेरे पुत्र मरगये हैं, सो हे भाई ! यह अंतिम प्रजा तू मुझे देनेको योग्य है ॥ ६ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–इस तरह पुत्रीको छातीसे लगाय, अत्यंत गरीबके समान रुदन करती देवकीने प्रार्थना करी, तौभी दुष्ट कंसने भर्त्सन करके, हाथसे छीनली ॥ ७ ॥ स्वार्थसे स्नेहको उखाड़नेवाले कंसने बहनकी कन्याको कि–जो केवल जन्मीही थी, उसे पकड़के, शिलापर पछाड़ी ॥ ८ ॥ विष्णुकी छोटी बहन यह देवी कंसके हाथमेंसे उछलके, तुर्त आकाशमें गयी, वहां साक्षात् योगमायारूपसे दीखनेमें आयी. जिसके मोटे आठ भुजोंमें धनुष, शूल, बाण, ढाल,

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ॥ दातुमर्हसि मंदाया अंगेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपगुह्यात्मजामेवं रुदंत्या दीनदीनवत् ॥ याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥ तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ॥ अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥ सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यंबरं गता ॥ अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥ दिव्यस्रगंबरालेपरत्नाभरणभूषिता ॥ धनुःशूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥ सिद्धचारणगंधर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ॥ उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किं मया हतया मंद जातः खलु तवांतकृत् ॥ यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ॥ १२ ॥ इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ॥ बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥

खड्ग, शंख, चक्र और गदा ये आठ आयुध धारण करनेको थे; और दिव्य पुरुषोंकी माला, वस्त्र, अरगजा, रत्नजटित आभूषण इनसे शोभायमान थी ॥ ९ ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग ये सब बहुत बलिदान दे रहे थे और स्तुति करते थे उस समय देवीने कहा कि– ॥ ११ ॥ हे मंद ! मेरे मारनेसे क्या होगा ? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु कि–जो तेरा प्राण लेनेवाला है वह तौ दूसरे किसी स्थानमें प्रगट हो चुका. इसलिये बिचारे दीन प्राणियोंको वृथा मत मारे ॥ १२ ॥ भगवती योगमाया कंसको इस प्रकार कहके, पृथ्वीमें बहुत नामवाले काशीआदि स्थानोंमें बहुत नामोंसे प्रसिद्ध हुई ॥ १३ ॥

अपने घर आये ॥५२॥ इस कन्याको देवकीके शयनमें धरके, पीछे अपने पावमें बेड़ी डालिके, वसुदेवजी पूर्ववत् बैठ गये ॥ ५३॥ नंदरायकी स्त्री यशोदाको अपनेको कोई एक बालक हुआ इतनाही ज्ञान हुआ; परंतु श्रमसे और योगमायाने स्मृति हरिलीनी तासों यह पुत्र है वा कन्या है ऐसा निश्चय नहीं हुआ ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ इस चतुर्थ अध्यायमें चंडीके वचन सुनके, अतिभयभीत कंसने दुष्ट मंत्रियोंके साथ विचार करके, ‘ बालप्रकृतिनको मारना ’ इसीको अपना हित माना यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेव-

यशोदा नंदपत्नी च जातं परमबुध्यत ॥ न तल्लिंगं परिश्रांता निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बहिरंतःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ॥ आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोयमिति विह्वलः ॥ सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥ तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ॥ स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हंतुमर्हसि ॥ ४ ॥ बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ॥ त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥

जी बोले कि–बाहिरके और अंतःपुरके द्वार पूर्ववत् बंद होगये. पीछे बालकका शब्द सुनके द्वारपाल उठे ॥ १ ॥ और उन्होंने तुर्त जायके, देवकीके प्रसव होनेकी बात कही. जिसकी कंस उद्वेगके साथ रहा देखता था ॥२॥ ‘ यह तो मृत्यु है ’ ऐसे विव्हल कंस तुर्त तल्प (शय्या) से उठकर, खुलेकेश, ठोकर खाताहुआ प्रसूतिगृहमें गया ॥ ३ ॥ सती और कृपण देवकीने करुणा उत्पन्न होवे ऐसी रीतिसे उस भाईसे कहा कि– ‘ हे कल्याणरूप ! इस कन्याको मत मारो, यदि जीती रहेगी, तो तेरे पुत्रको व्याह दूंगी ॥ ४ ॥ हे भाई ! तैंने दैवकी प्रेरणासे मेरे अग्निके समान तेजस्वी बहुत पुत्र मारे. अब यह एक कन्या तौ मुझे दे ॥ ५ ॥

१ भगवानके रूपको देखतेही बेडी छूटगई. और मायाका अंगीकार करतेही बंधन हुआ. तस्मात् मायासे बचकर, परमेश्वरको अनन्यशरण होना. ऐसा बालबोधिनीका आशय है.

रूप है उसे इहां लावो॥ १॥ऐसी) भगवत्की प्रेरणासे वसुदेवजीने प्रसूतिघरमेंसे पुत्रको ले, जब बाहिर जानेकी इच्छा करी, तब नंद-
की स्त्री यशोदाने अजन्मा योगमायाको प्रगट किया ॥ ४७ ॥ इस योगमायाने द्वारपालोंका सब ज्ञान और सर्व वृत्तियां हर
लिया और पुरके लोगोंकोभी निद्रावश करदिया. तब वसुदेवजी अपने हाथमें भगवानको लेकर चले, मथुराके सब द्वार कि–जिनके
बड़े कपाट लोहेकी कीलेवाली सांकलोंसे बंद कियेहुए और बहुत मजबूत थे ॥ ४८ ॥ वे सब वसुदेवजीके आतेही अपने आप

तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वास्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ॥ द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्क-
पाटाऽऽयसकीलशृंखलैः ॥ ४८ ॥ ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यंत यथा तमो रवेः ॥
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ४९ ॥ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा-
गंभीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ॥ भयानकावर्तशताकुलानदी मार्गं ददौ सिंधुरिव श्रियः पतेः ॥ ५० ॥
नंदव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान् गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ॥ सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुता-
मुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५१ ॥ देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ॥ प्रतिमुच्य पदोर्लो-
हमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५२ ॥

ऐसे खुलगये कि–जैसे सूर्यके उदयसे अंधकार दूर होय है. और मंद मंद गर्जना करते मेघ बरसने लगे, पीछे पीछे शेषजी फण-
रूप छत्रसे जलका निवारण करते चले ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इस समय वारंवार मेघ बरसनेसे यमुनाजी भरपूर थीं, जिसमें गंभीर
जलके प्रवाहके वेगसे तरंगें उछल रहीं थीं, तासों फेन चढ़ रहे थे और जलमें सैकड़ों भयंकर भारी भँवर पड़ रहे थे, तौभी उस
नदीने, रामचंद्रजीको जैसे समुद्रने मार्ग दिया तैसे वसुदेवजीको मार्ग दिया ॥ ५१ ॥ वसुदेवजी नंदरायजीके व्रजमें आये, तब वहां
सब ग्वालनको मायाके मोहसे सोते देख, यशोदाके शयनमें अपने पुत्रको सुलाय, वहांसे यशोदाजीकी कन्याको लेके, पीछे

१ कवित्त–प्रभुको ले वसुदेव चले सो विचार कियो तब नन्द घरेलैं ॥ जाय कलिन्दीमें ठाढ़े भये. वसुदेव डरे जल आये गरेलैं ॥ चरणनको यमुना उमहीं
जल बाढ़ो जबै वसुदेव शिरेलैं ॥ हूंकतहीं यदुनन्दनके यमुनाजी वहीं तरवाके तरेलैं ॥ १ ॥

होकर, मोक्षकी प्रार्थना नहीं करी ॥ ३९ ॥ मेरे जैसा पुत्र होनेका वरदान देके, मेरे गये पीछे तुम दोनों कि–जिनका मनोरथ पूर्ण हुआ है, संसारसंबंधी सुख भोगने लगे ॥ ४० ॥ शील, उदारता और गुणोंमे मेरे सदृश दूसरे किसीको न देखते, 'पृश्निगर्भ' इस नामसे महा तुह्मारा पुत्र हुआ ॥ ४१ ॥ पीछे तुम दोनों अन्य जन्ममें कश्यप और अदिति हुए. वहांभी 'उपेंद्र' इस नामसे तुह्मारे यहां मैंने अवतार लिया. इस अवतारमें मेरा शरीर छोटा था, इससे वामन नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥४२॥ इस तुह्मारे

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान्भोगानभुंजाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ॥ उपेंद्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाऽथ वाम् ॥ जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिंगे न जायते ॥ ४४ ॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ॥ चिंतयंतौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥ ४५ ॥ (यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥ १ ॥) श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ॥ पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥ ४६ ॥ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ॥ यदा बहिर्गंतुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नंदजायया ॥ ४७ ॥

तीसरे जन्ममेंभी इसी शरीरसे फिरभी प्रगट हुआ हूं. हे सति ! यह बात मैंने यथार्थ कही है ॥ ४३ ॥ मेरे पूर्वजन्मके स्मरणके लिये यह रूप मैंने तुमको दिखाया है; क्योंकि जो मैं मनुष्यशरीरसे प्रगट होता, तो तुमको मेरा ज्ञान नहीं होता ॥ ४४ ॥ तुम पुत्रभावसे और ब्रह्मभावसे वारंवार मेरा चिंतवन करतेहुए स्नेह रक्खो, तिससे तुमको मोक्षकी प्राप्ति होयगी ॥ ४५ ॥ इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि–इतना कह, श्रीभगवान् चुप होगये और मातापिताके देखते देखते अपनी मायासे तुर्त प्राकृत बालक बनगये ॥ ४६ ॥ पीछे (जो तुम कंससे डरते हो तो मुझे गोकुलमें ले चलो और यशोदाकी कन्या कि–जो मेरी माया-

शोभायमान, चतुर्भुज और अलौकिक रूप अंतर्धान करो ॥ ३० ॥ सृष्टिकालमें जो यह जगत् दीख पड़ता है, उस सबको प्रलयकालमें संकोच विना अपने शरीरमें धारण करते हो, वे आप मेरे गर्भमें रहे !!! यह बात लोगोंके हास्यास्पद होय ऐसी है ॥ ३१ ॥ यह बात सुन, श्रीभगवानने कहा कि–हे सती ! तू पूर्वजन्ममें स्वायंभुव मन्वंतरमें पृश्नि नाम थी, तब ये वसुदेवजी सुतपानाम निर्दोष प्रजापति थे ॥ ३२ ॥ जब ब्रह्माने तुमको प्रजा रचनेको आज्ञा करी, तब तुम दोनों इंद्रियोंको वश करके, बड़ा तब करने लगे ॥ ३३ ॥ वर्षा, वायु, धूप, सर्दी, गर्मी इन कालके गुणोंका सहन किया. प्राणायाम करके, मनके

विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशांते यथाऽवकाशं पुरुषः परो भवान् ॥ बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडंबनं हि तत् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति ॥ तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवां वै ब्रह्मणाऽदिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ॥ सन्नियम्येंद्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ॥ सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥ शीर्णपर्णानिलाहाराबुपशांतेन चेतसा ॥ मत्तः कामानभीप्संतौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषाऽनघे ॥ तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥ प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दंपती ॥ न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥

मैल मिटाये ॥ ३४ ॥ झड़ेहुए पत्ते और पवनका आहार करके रहे और मुझसे वरप्राप्तिकी अभिलाषासे शांतचित्त होकर, मेरा आराधन करने लगे ॥ ३५ ॥ इस तरह मुझमें चित्त रखकर, तीव्र और अत्यंत दुष्कर तप करते तुमको देवतानके बारह हजार वर्ष व्यतीत हुए ॥ ३६ ॥ हे निष्पाप ! तब तप, श्रद्धा और निरंतर भक्तिसे हृदयमें ध्यान किया हुआ वरदायकोंका अधिपति मैं प्रसन्न होकर, वर देनेको इसी शरीरसे तुह्मारे सामने आ बोला कि–' वर मांगो ' ऐसे कहतेही तुमने मुझसा पुत्र वर मांगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ क्योंकि–तुमने संसारके विषयसुख भोगे नहीं थे और संतानभी नहीं हुआ था, इसलिये मायासे मोहित

त और क्रियारहित जो स्वरूप कहनेमें आता है, वही आप बुद्ध्यादिकनके प्रकाशक साक्षात् विष्णु हो ॥ २४ ॥ कालके वेगसे ब्रह्माके दो परार्धके अंतमें लोकोंका नाश होते, पंचमहाभूत अपनी अपनी तन्मात्राओंमें प्रवेश करते और तन्मात्रा प्रधानमें लीन होते, प्रधानको जाननेवाले आपही एक अवशिष्ट रहते हो ॥ २५ ॥ हे प्रकृतिप्रवर्तक ! यह महान् काल कि-जिससे आदिमें निमेष और अंतमें वर्ष है तथा जिसके परिवर्तनसे जगत्का परिवर्तन होता है वह काल आपकी लीलारूप कहलाता है, इसलिये अभयके स्थानरूप आपके मैं शरण प्राप्त हुई हूं ॥ २६ ॥ हे आदिपुरुष ! मृत्युरूप सर्पसे डरा हुआ पुरुष दौड़ता दौ-

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ॥ व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥ २५ ॥ योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबंधो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ॥ निमेषादिर्वत्सरांतो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ॥ त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥ स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहाऽसि ॥ रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥ जन्म ते मय्यसौ पापो माविद्यान्मधुसूदन ॥ समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥

ड़ता सब लोकोंमें जाता है, तौभी उसको निर्भय स्थान नहीं मिलता, परंतु जब किसी प्रकारके भाग्योदयसे आपके चरणारविंदमें आ पड़ता है, तब निश्चिततासे सो रहता है और मृत्युभी इसको देखकर, पलायमान होजाता है ॥ २७ ॥ दुष्ट कंससे उद्विग्न जो हम तिनकी रक्षा करो, आप भक्त लोगनके त्रासके मिटानेवाले और जाननेवाले हो, ध्यानका धाम जो यह ईश्वरस्वरूप है, इसको चर्मचक्षुवालोंके सामने प्रगट नहीं करें ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन ! यह पापी कंस मेरे शरीरसे आपके जन्मको न जाने क्योंकि अधीरचित्तवाली मैं आपके कारण कंससे उद्विग्न रहती हूं ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् ! शंख, चक्र, गदा तथा पद्म करके

विचारकर, देखें तो कथनमात्र विना देहादिक सब झूठेही हैं, इसलिये झूंठे देहादिनको जो पुरुष सत्य माने वह अज्ञानी है ॥ १८ ॥ हे विभो ! आप निरीह, निर्गुण और निर्विकार हो और आपहीसे इस जगतके जन्म, स्थिति और संहार होय हैं, आप ईश्वर और ब्रह्मरूप हो, तातें आपमें कुछ विरोध नहीं है, आपका आश्रय लेके, गुणही सृष्टिको रचते हैं, परंतु गुणोंके आश्रय आप हो, तातें सेवकके कार्यका जैसे राजामें आरोप किया जाता है, तैसे कर्तापनका आरोप आपमें करनेमें आत है ॥ १९ ॥ वे आप अपनी मायासे त्रिलोकीकी रक्षाके समय सत्वगुणसे श्वेतवर्ण, सृष्टिके समय रजोगुणसे रक्तवर्ण और

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदंत्यनीहादगुणादविक्रियात् ॥ त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नोविरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥ स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ॥ सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्य लोकस्य विभो-रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ॥ राजन्यसंज्ञाऽसुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥ अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ॥ स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ॥ देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥ २३ ॥ देवक्युवाच ॥ रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ॥ सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥

प्रलयके समय तमोगुणसे कृष्णवर्ण धारण करते हो ॥ २० ॥ हे सर्वेश्वर ! वे आप इस जगतके पालन करनेकी इच्छासे मेरे घरमें प्रगट हुए हो. हे नाथ ! आप 'राजा' ऐसी संज्ञा धारण कियेहुए करोड़ों दैत्योंके यूथपतियोंसे चलायमान सेनाओंका नाश करोगे ॥ २१ ॥ हे देवेश ! इस दुष्ट कंसने हमारे घरमें आपका जन्म होनेका भविष्य सुनके, आपके बड़े भाईयोंको मार डारे हैं और वह अभी अपने मनुष्योंके कहनेसे आपका अवतार हुआ सुनतेही हथियार हाथमें उठाके आता होगा ॥ २२ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि-महापुरुषोंके लक्षणवाले इस पुत्रको देखके, कंससे भयभीत देवकीने भगवान्की स्तुति करी ॥ २३ ॥ देवकीने कहा कि-हे प्रभु आपका अप्रकट, कारणरूप, ब्रह्म, निर्गुण चैतन्यरूप, निर्विकार, सत्तामात्र, विशेषरहि-

द्बुद्धिवाले वसुदेवजी अपना शरीर झुकाय, हाथ जोड़, निर्भय हो, उनकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ वसुदेवजी बोले कि- 'केवल अनुभव और आनंदही जिनका स्वरूप है ऐसे, सर्वजननकी बुद्धिके द्रष्टा, अर्थात् साक्षी और प्रकृतिसे पर पुरुष आप साक्षात् विदित हुए हो ॥ १३ ॥ आप वेही हो कि- जो प्रथम मायासे त्रिगुणात्मक जगत्को रचके, उसके पीछे उसमें प्रवेश न करते सद्रूपसे प्रविष्टके समान लक्ष्यमें आते हो ॥ १४ ॥ जैसे महत्तत्व अहंकार, पंचतन्मात्रा (शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध) कि- जो जुदे जुदे पड़े होयं तो कार्य विशेष करनेको समर्थ नहीं होय हैं, वे षोड़श विकारों (पंचभूत, ग्यारह इंद्रिय) के साथ मिलके, ब्रह्मांडको उत्पन्न करते हैं ॥ १५ ॥ और उत्पन्न करे पीछे ब्रह्मांडमें प्रविष्ट हुये जैसे जाननेमें आते हैं, तथापि वा-

वसुदेव उवाच ॥ ॥ विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ केवलानुभवानंदस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाऽग्रे त्रिगुणात्मकम् ॥ तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४ ॥ यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ॥ नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयंति हि ॥ १५ ॥ सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यंतेऽनुगता इव ॥ प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥ १६ ॥ एवं भवान्बुद्ध्यनुमेय लक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ॥ अनावृतत्वाद्बहिरंतरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥ य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ॥ विनाऽनुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥

स्तविक रीतिसे वे प्रथम कारणरूपसे प्रविष्टही थे. इसलिये सृजेहुए कार्यमें उनका पीछेसे प्रवेश संभवे नहीं, तैसे आपका प्रवेश पीछेसे संभवे नहीं ॥ १६ ॥ इंद्रिय कि- जिनके स्वरूपका अनुमान रूपादिकके ज्ञानऊपरसे करनेमें आता है, उनसे ग्रहण करनेमें आते कार्य पदार्थोंके साथ यद्यपि कारणरूपसे आप रहे हो, ताते आपकाभी ग्रहण होना चाहिये, तथापि उन इंद्रियोंसे कार्य पदार्थोंके साथ आपका ग्रहण करनेमें नहीं आता. और सर्वरूप, सर्वात्मा, व्यापक और परमार्थ वस्तुरूप आप परिच्छेद (मान) रहित हो, ताते आपके स्वरूपमें बाहिर भीतरपनका भेद नहीं है; इसीलिये आपका कार्योंमें प्रवेश वटे नहीं ॥ १७ ॥ आत्माके दृश्य गुण जो देहादिक उनको जो पुरुष आत्मासे भिन्न व सत्य माने वह अज्ञानी है; क्योंकि

तारके सूचक दुंदुभि बाजे बजने लगे ॥ ५ ॥ किन्नर और गंधर्व गाने लगे, सिद्ध और चारण स्तुति करने लगे, विद्याधरोंकी स्त्रियां और अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ ६ ॥ मुनि और देवता आनंदसे पुष्पवृष्टि करने लगे, समुद्रके पीछे पीछे मेघ मंद मंद गर्जने लगे ॥ ७ ॥ और गाढ़ अंधकारसे व्याप्त मध्यरात्रमें पूर्वदिशासे जैसे संपूर्ण चंद्र प्रकट होय, तैसे देवरूपिणी देवकीमें सर्वांतर्यामी भगवान् ईश्वररूपसेही प्रगट हुए ॥ ८ ॥ इस अद्भुत बालकको वसुदेवजीने देखा, जिस बालकके नेत्र कमलसदृश, चार भुजा जिनमें शंख, गदा और चक्र ये शस्त्र धरे हुए, श्रीवत्सका चिन्ह, कंठमें कौस्तुभमणि, पी-

जगुः किन्नरगंधर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ॥ मंदं मंदं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥ निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशींदुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतं बालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदाद्युदायुधम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीतांबरं सांद्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुंडलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुंतलम् ॥ उद्दामकांच्यंगदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥ स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुंदुभिस्तदा ॥ कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥ अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नतांगः कृतधीः कृतांजलिः ॥ स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयंतं गतभीः प्रभाववित् ॥ १२ ॥

तांबर पहरे, सघनघनके समान सुंदर श्यामवर्ण, अमूल्य वैदूर्य मणिसे खचित किरीट और कुंडलोंकी कांतिसे जिनके अनेक केश झलक रहे और अतिउत्तम कटिमेखला, बाजूबंद और कंकणादिक शोभरहे ऐसे, अपने पुत्ररूपसे अवतार लिये. भगवान्को देखके, श्रीकृष्णचंद्रके अवतारके उत्सवके संभ्रममें पड़े हुए और विस्मयसे जिनके नेत्र प्रफुल्लित हो रहे ऐसे, वसुदेवजीने तिस समय न्हायके, दश हजार गोदानका मानसिक संकल्प द्विजनको देनेके लिये किया ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ हे भारत ! अपने पुत्र कि- जिनकी कांतिसे प्रसूतिका घर प्रकाशमान हो रहा था उनको, परमपुरुष जानके, उनके प्रभावको प्रगट करते, शु-

इस तृतीयाध्यायमें भगवान् निजरूपसे प्रगट भये और मातापिताने स्तुति करी तथा भयभीत वसुदेवजी भगवान्‌को गोकुलमें लेगये, यह कथा कही जायगी ॥ १॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-पीछे जब सब शुभकाल और अत्यंतसुंदर समय आया, चंद्रमा रोहिणी नक्षत्रपर आया, नक्षत्र, ग्रह और तारा ये सब अनुकूल हुए ॥ १॥ दिशा स्वच्छ होगयीं, आकाश निर्मल होगया, नक्षत्रगण निर्मल उदित हुआ,

श्रीशुक उवाच ॥ अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥ यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शांतर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ॥ मही मंगलभूयिष्ठा पुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥ नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ॥ द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥ ३ ॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगंधवहः शुचिः ॥ अग्नयश्च द्विजातीनां शांतास्तत्र समिंधत ॥ ४ ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ॥ जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुंदुभयो दिवि ॥ ५ ॥

पृथ्वीमें राजधानी, गांव, व्रज और खानोंमें मंगलकी बहुतायत हुई ॥ २ ॥ नदियोंका जल स्वच्छ होगया, जलाशयोंमें कमलोंकी शोभा बढ़ी, वनराजियोंके पुष्पोंके गुच्छनमें पक्षी और भौंरे नाद करने लगे ॥ ३ ॥ शीतल, सुगंध और मंद वायु बहने लगी, द्विजनकी अग्नि शांतियुक्त अतिदीप्त हुई ॥ ४ ॥ कंसआदि विना अन्य प्राणीमात्र और देवतानके मन प्रसन्न हुए, स्वर्गमें ईश्वरावर-

---

१ रागिनी तोड़ी ॥– आयो समय महासुखकारी ॥ सबगुणसंयुत मनरंजित अतिशय परम सुशोभा धारी ॥ रोहिणीनखतसाथ शुभग्रह सब कह कहिये उपमा मतिहारी ॥ दिशा प्रसन्न हँसत नभ निर्मल तारनकी बाढ़ी छवि न्यारी ॥ मंगलमय धरणी सब राजति पुर आकर व्रज गांव सुखारी ॥ नदी प्रसन्न सलिल तालनकी कमलनसों भइ शोभा भारी ॥ द्विज अलिकुल सन्नाद करत हैं बनराजी फूलनि फुलवारी ॥ पुष्पगंध लै बह्यो महाप्रभु वायु सुविधि शुचि त्रिविध बयारी ॥ द्विज तपसिनकी शांत अग्नि सब प्रगट भई कुण्डनते सारी ॥ असुरद्रोही सब साधूजनके मन सुप्रसन्न भये ता वारी ॥ अजनजनमको समय जानके बजति लजति सुरदुंदुभि भारी ॥ गाइ उठे गंधव अरु किन्नर वारण साधु तुष्टि मन धारी ॥ नाचन लागीं देवअप्सरा अतिप्यारी सब सुरवरनारी ॥ मुनिजन देव महाआनंदित वर्षि पुष्प नभ भरि भरि थारी ॥ गरके गरजनके पीछे मंद मंद गरजे जलधारी ॥ आधीरात उदित भये चन्दा आनँद करत हरत अँधियारी ॥ देवरूपिणी देवकिजूते प्रगट भये श्रीगिरिवरधारी ॥ निरखि नैन आनन्द शिथिल भये हरीचन्द मूरति बलिहारी ॥ १ ॥

हुआ ॥ ३८ ॥ हे नित्यमुक्त परमेश्वर ! आप कि–जो अजन्मा हो उनके जन्म लेनेका कारण केवल क्रीड़ा विना दूसरा कोई हमारे विचारमें नहीं आता; क्योंकि जीवकेभी जन्म मरण और स्थिति केवल आपके स्वरूपाज्ञानसे होय हैं परंतु वास्तविक नहीं हैं तद आपके तौ ये जन्मादिक नहीं होवें इसमें क्या कहना ? ॥ ३९ ॥ हे यदुनमें उत्तम ! मत्स्य, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राजा, ब्राह्मण और देवतानमें अवतार धारण करके आपने दूसरे समयमें जैसे हमारी और त्रिलोकीकी रक्षा करी है तैसे अबभी करो और पृथ्वीका भार उतारो. हे ईश ! हम आपको प्रणाम करते हैं' ॥ ४० ॥ देवकीसे कहते हैं कि– ' हे मा-

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ॥ भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥ त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वंदनं ते ॥ ४० ॥ दिष्ट्यांऽब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ॥ माऽभूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥ ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रति ययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥

ता ! हमारा कल्याण करनेको तेरे उदरमें स्वयं, सर्व अंशसे परमपुरुष भगवान् पधारे हैं. यह बहुत अच्छा हुआ. अब कंस कि–जिसकी मृत्यु आगयी है उससे मत डर. तेरे पुत्र भगवान् यादवोंकी रक्षा करेंगे' ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–परमपुरुष भगवान् कि–जिनका स्वरूप दृष्टिगोचर होय ऐसा नहीं है तिनकी याप्रमाण यथायोग्य स्तुति करके, देवतालोग ब्रह्मा तथा महादेवको आगे करके, (हमको ठगिके ये दोनों देव इहां रहेंगे ऐसे मानके, उनको आगे किये) पीछे स्वर्गको गये ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥

धरके, फिरते हैं ॥ ३३ ॥ आप जगतके पालनसमयमें जीवोंको शुभ कर्मोंका फल देनेको शुद्धसत्वगुणमय शरीर धारण करते हो कि-जिस शरीरके द्वारा ब्रह्मचारी वेदाध्ययनसे, गृहस्थी कर्मयोगसे, वानप्रस्थ तपसे, संन्यासी समाधिसे आपका पूजन करते हैं. जो आप अवतार धारण न करें तौ पूजन न बननेसे कर्मोंके फलकी सिद्धि होय नहीं ॥ ३४ ॥ यह सत्वगुणमय आपका शरीर न होय तौ अज्ञाननाशक विज्ञानका नाश हुये विना रहेही नहीं. क्योंकि ये बुद्ध्यादिक पदार्थ जिसके हैं और जिससे प्रकाशे हैं वे परिपूर्ण सर्वसाक्षी भगवान् आप हैं इसतरह बुद्ध्यादिकनके प्रकाशरूपरसे आपके स्वरूपका अनुमान होय है. परंतु आपका

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ॥ वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ॥ गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥ न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ॥ मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियंत्यथापि हि ॥ ३६ ॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिंतयन्नामानि रूपाणि च मंगलानि ते ॥ क्रियासु युष्मच्चरणारविंदयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥ दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ॥ दिष्ट्यांकितां त्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकंपिताम् ॥ ३८ ॥

स्वरूप नेत्रसे प्रत्यक्ष दीखे नहीं ॥ ३५ ॥ उन साक्षीस्वरूप आपके मार्गका केवल अनुमान होय है. क्योंकि, आपके नाम और रूप जो कि-मन और वचनके अगोचर हैं. गुण, जन्म, कर्म ऊपरसे निरूपण किये जांय ऐसे नहीं हैं, तौभी, हे देव ! उपासक लोक उपासनादिकक्रियामें आपको प्रत्यक्ष देखते हैं यह वार्ता प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ आपके महामंगलिक नाम और रूपोंको स्मरण करता, सुनता, कहता और चिंतवन करताहुआ जो पुरुष देवार्चनादिक क्रियानमें आपके चरणारविंदमेंही चित्त रखते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे विभो ! यह बहुत ठीक हुआ जो आपके चरणरूप पृथ्वीका भार उतारनेको आप ईश्वरने जन्म लिया. आपके सुंदर पादारविंदके चिन्होंसे अंकित पृथ्वीको और आपके दयापात्र स्वर्गको हम देखेंगे; यह बहुत अच्छा

मायासे जिसका ज्ञान आच्छादित होगया है वे लोग जगतको आपसे भिन्न देखते हैं परंतु विद्वान् वैसे नहीं देखते ॥ २८ ॥ केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा आपही स्थावर जंगम लोकके पालन करनेको सत्वगुणवाले, धार्मिकोंके सुखदायी और अधर्मियोंके नाश करनेवाले स्वरूप वारंवार धारण करते हो ॥ २९ ॥ हे कमलनयन ! सर्वजीवोंके निवास आपही हो तिससे आपके विषय कितनेएक महात्मा समाधिद्वारा चित्तको लगायके, महत्पुरुषोंकी सिद्ध कीहुई आपके चरणाविंदरूप नावके आश्रयसे संसाररूपी समुद्रको गौके बछड़ेके खुरके खड्डेके जलके तुल्य करें हैं ॥ ३० ॥ हे स्वयंप्रकाश ! ये महादयालु लोग इस भयंकर और दुस्तर

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ॥ सत्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥ त्वय्यंबुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके ॥ त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वंति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥ स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ॥ भवत्पदांभोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥ येऽन्येऽरविंदाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य कृच्छ्रेण परंपदं ततः पतंत्यधोऽनादृतयुष्मदंघ्रयः ॥ ३२ ॥ तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यंति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ॥ त्वयाभिगुप्ता विचरंति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥

भवसागरको आपके चरणारविंदरूप नावसे स्वयं पार उतरके, उस नावको पीछी यहीं छोड़ गये हैं. आपके चरणारविंदरूप नौकासे लोक पार क्यों उतर गये ? कि-आप भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हो ॥ ३१ ॥ हे कमलनयन ! जो दूसरे लोग 'हम मुक्त हैं' ऐसे मानके आपकी भक्ति नहीं करते हैं उसीसे अशुद्ध-बुद्धि होते हैं और आपके चरणारविंदका अनादर करनेवाले हैं वे अनेक जन्मोंके तपके प्रभावसे उत्तम कुल और शास्त्रश्रवणादिकको प्राप्त होयकेभी पीछे विघ्नोंसे पराभवको प्राप्त होते हैं. निदान तिर्यक् योनिको प्राप्त होय हैं ॥ ३२ ॥ हे माधव ! जो लोग आपहीमें स्नेह बांधके, रहे हैं और आपहीके हैं वे लोग इन लोकोंकी नांई मार्गमेंसे कभी भ्रष्ट नहीं होते, बल्कि हे प्रभो ! आपके कियेहुए रक्षणसे निर्भय होयके, बड़े बड़े अनेक विघ्नोंके शिरपर पग

तमभाव यानी मारनेसे निवृत्त होयके भगवानके जन्मकी राह देखता रहा ॥ २३ ॥ बैठते, सोते, उठते, भोजन करते और पृथ्वीपर फिरते भगवानकाही चिंतवन करताहुआ कंस सर्व जगतको भगवद्रूप देखने लगा ॥ २४ ॥ ब्रह्मा, सदाशिव, नारदादिक मुनि और अनुचरोंसहित देवतालोग वहां आयके, मनोरथ पूर्ण करनेवारे भगवानकी सुंदर वाणीकरके स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि-हे प्रभु ! आप सत्यसंकल्प, सत्यसे प्राप्त होनेवाले, तीनों कालमें सत्य पंचभूतनके उत्पादक, पंचभूतोंमें रहनेवाले, पंचभूतोंका नाश होतेभी अवशिष्ट रहनेवाले, समदृष्टि तथा शुभवाणीके प्रवर्त्तक और ऐसीभांति सर्वप्रकारसे सत्यरूप हो.

आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुंजानः पर्यटन्महीम् ॥ चिंतयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रेत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ॥ देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ २५ ॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ॥ सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पंचविधः षडात्मा ॥ सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥ त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ॥ त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यंति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८ ॥

तिनके हम शरण प्राप्त हुए हैं ॥ २६ ॥ यह ब्रह्मांडरूप आदिवृक्ष कि-जिसमें एक (प्रकृति) आश्रय है, दो (सुख और दुःख) फल हैं, तीन (सत्व, रज, तम) मूल हैं, चार (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष,) रस हैं, पांच (इंद्रियां) जाननेके प्रकार हैं, छः (राग, द्वेष, क्षुधा, पिपासा, लोभ और मोह) स्वभाव हैं, सात (धातु) त्वचा हैं, आठ (पंचभूत, मन, बुद्धि और अहंकार) शाखा हैं, नव (द्वार) छिद्र हैं, दश (प्राण) पत्ते हैं और दो (जीव तथा अंतर्यामी) पक्षी हैं ॥ २७ ॥ इस जगतकी उत्पत्ति आपसे हुई है, लय आपमें होय है और स्थितिभी आपमेंहीहै, इसलिये सबब्रह्मांड आपसे भिन्न नहीं है आपकी

१ यहांसे गर्भस्तुतिका आरंभ हुवा. २ भगवानने जो प्रतिज्ञा करी सो सत्य करी तासों देवता प्रसन्न होके, सत्यत्वरूपसेही प्रथम स्तुति करते हैं. ३ अजी ! तुमभी लोकपाल मेरे सदृश हो काहेको मेरे शरण आये हो ऐसी शंका निवृत्त करनेको कहते हैं कि आपही एक सर्वेश्वर हो; क्यों कि सर्व सृष्टिआदिके आपही कारण हो. हम तौ केवल आपके शरणागत हैं. जगतरूप द्वैत आपसे भिन्न नहीं है ऐसे प्रतिपादन करनेको द्वैतप्रपंचका वृक्षके रूपकसे निरूपण करते हैं.

पीछे जगत्के मंगलकारी, सर्वके आत्मा और परिपूर्ण ऐश्वर्यवान् भगवान् कि- जो देवकीमें प्रथमहीसे थे उनको वसुदेवजीने अपने मनसे देवकीमें धरे. महाराज ! जैसे पूर्वदिशा आनंदकारी चंद्रको धारण करे तैसे देवकीनेभी उन भगवान्को मनसेही अपने शरीरमें धरलिये ॥ १८ ॥ वह देवकी सर्व जगत्के निवास भगवान्का निवासरूप हुई तौभी कंसके घरमें रुकनेसे, घड़ेमें रुकेहुए दीपकके समान और विद्या छुपानेवारे खलपुरुषोंमें रुकीहुई सद्विद्याके समान अन्य लोकनको आनंद नहीं दे सकी ॥ १९ ॥ उदरमें भगवानके पधारनेसे कांतिसे घरको शोभित करती और सुंदर मंदहास्य करती उस देवकीको

ततो जगन्मंगलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ॥ दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽनंदकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे ॥ भोजेंद्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभया जितांतरां विरोचयंतीं भवनं शुचिस्मिताम् ॥ आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ २० ॥ किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतंत्रो न विहंति विक्रमम् ॥ स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हंत्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥ स एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यंतनृशंसितेन ॥ देहे मृते तं मनुजाः शपंति गंता तमोंऽधं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ २२ ॥ इति घोरतमाद्भावात्सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः ॥ आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबंधकृत् ॥ २३ ॥

देखके कंसने विचार किया कि 'मेरा प्राणहरण करनेवाला विष्णुरूप सिंह इसके उदररूप गुफामें अवश्य आ चुका है; क्योंकि पहले यह देवकी ऐसी तेजस्विनी नहीं थी' ॥२०॥ कंसने अपने मनमें विचार किया कि-अब मैं शीघ्र इसके लीये क्या उपाय करूं ? यह तौ देवतानका कार्य करनेको आया है, इसलिये निश्चय मुझे मारेगा, अब इस देवकीको मैं मारूं तौ, एक तौ यह स्त्रीजात, दूसरे बहिन और उसमेंभी फिर गर्भिणी इसके बधसे अभी मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयुष्यका नाश हो जायगा ॥ २१ ॥ जो पुरुष अतिक्रूरतासे बरते वह जीवतेही मृतक है. और उसके जीतेभी मनुष्य दुर्वचनोंसे धिक्कार करते हैं कि- ' यह देहाभिमानी पुरुष मरे पीछे अवश्य नरकमें पड़ेगा ' ॥ २२ ॥ भगवान्के साथ वैरानुबंध करनेवाला कंस आप मारनेको समर्थ था तौभी ऐसे विचारसे इस घोर-

पुत्र होऊंगा. और तू नंदकी स्त्री यशोदाके उदरसे प्रगट होवेगी ॥ ९ ॥ तू सकाम पुरुषोंकी उत्तम ईश्वरी और सर्व वांछितफल देनेवाली है तेरी मनुष्य धूप, उपहार (नैवेद्य) और बलिदानोंसे पूजा करेंगे ॥ १० ॥ पृथ्वीमें मनुष्य तेरे स्थान (मंदिर) बनावेंगे. और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, ॥ ११ ॥ कुमुदा, चंडिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अंबिका ऐसे नाम करेंगे ॥ १२ ॥ गर्भके खींचनेसे पृथ्वीमें उस पुत्रका नाम 'संकर्षण' ऐसा कहा जायगा, जगत्को रमानेसे 'राम' और अत्यंत बलवान् होनेसे 'बल' ऐसाभी कहनेमें आवेगा ॥ १३ ॥ याप्रमाण

अर्चिष्यंति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ॥ धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥ नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ॥ दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११ ॥ कुमुदा चंडिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ॥ माया नारायणीशानी शारदेत्यंबिकेति च ॥ १२ ॥ गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ॥ रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥ संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ॥ प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत् ॥ १४ ॥ गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ॥ अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ॥ आविवेशांशभागेन मन आनकदुंदुभेः ॥ १६ ॥ स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ॥ दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥

भगवान्‌की आज्ञा होतेही बड़े आदरसे उनके वचनका स्वीकार कर, भगवान्‌को प्रदक्षिणा करके, मायाने पृथ्वीमें जायके, उसीप्रमाण किया ॥ १४ ॥ योगमायाने देवकीका गर्भ जब रोहिणीमें प्राप्त किया तब 'अहो !!! देवकीका गर्भ गिरगया' ऐसा लोकोंमें आक्रोश हुआ ॥ १५ ॥ भक्तोंको अभय देनेवाले विश्वात्मा भगवान्‌भी परिपूर्णरूपसे वसुदेवके मनमें पधारे. (साधारण जीवोंके समान वीर्यका संबंध भगवान्‌के नहीं है, तासों मनमें पधारनेका कहा है) ॥ १६ ॥ भगवान्‌की मूर्ति धारण करते और उससे सूर्यके समान देदीप्यमान वसुदेवजी अन्यजीवोंके दुर्धर्ष और निकट जायिबेको अशक्य हुए ॥ १७ ॥

विश्वात्मा भगवान्नेभी यादव कि– जिनके नाथ आपही हैं उनके कंसजन्य भयको जानके, योगमायाको आज्ञा करी ॥ ६ ॥ कि– ' हे भद्रे ! हे देवि ! तू ग्वाल और गैयाओंसे शोभित व्रजमें जा, वसुदेवजीकी स्त्री रोहिणी नंदरायजीके गोकुलमें है और दू-

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ॥ यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥ गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ॥ रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽस्ते नंदगोकुले ॥ अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसंति हि ॥ ७ ॥ देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥ ८ ॥ अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ॥ प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नंदपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥

सरी वसुदेवजीकी स्त्रियांभी कंसके उद्वेगसे गुप्त स्थानोंमें रहती हैं ॥ ७ ॥ अभी देवकीके उदरमें मेरे अंशरूप शेषनाग आये हैं, उनको वहांसे खींचके रोहिणीके उदरमें स्थापन कर ॥ ८ ॥ हे शुभस्वरूपे ! पीछे मैं अंशभाग (परिपूर्णरूप) से देवकीका

---

१ यहां पर यह सुन, योगमायाके संशय हुवा कि– खींचनेसे तो गर्भही नाश हो जावे तो ? सो इसी संशयनिवृत्तिके लिये भगवत्‌ने मेरे अंशरूप कहा क्योंकि भगवदंश होनेसे मरणका भय नहीं.

२ प्रश्न– कईक लोग यहांपर अंशभाग कहनेसे और प्रथममें " कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् " अर्थात् कृष्णजी तो स्वयं परिपूर्ण भगवान् हैं यह पूर्वापर विरोध कहते हैं? उ०– जो अंश यानी अपनी शक्तियोंसे ब्रह्मादि तृणपर्यंतमें भाग अर्थात् व्याप रहा है वह सर्वव्यापी अर्थात् परिपूर्ण १. अथवा उ० – २ दुसरा–जो अंश यानी ज्ञान-ऐश्वर्य-बल अपनी शक्तियोंसे अपने भक्तोंको भाग नाम युक्त करै वह भक्तवत्सल स्वयं भगवान् २. अथवा उ०– ३ तीसरा–जो अंश यानी पुरुषरूपसे मायाका भाग नाम सेवन करै वह लीलानरतनुधारी भगवान् अर्थात् परिपूर्ण ३. अथवा उ०– ४ चौथा–जो अंश यानी अपनी मायासे अपनेही पूर्ण स्वरूपके गुण अवतारआदि भाग नाम भेद करता है अर्थात् कृष्णहीके अंशकलाआदि अन्य मत्स्यादि अवतार हैं ४. अथवा उ०– ५ पांचवां–जिसके अंश यानी मत्स्य कूर्मआदि अवतारमात्रही भाग नाम मन–वाणीके गोचर हो शक्ते हैं परंतु साक्षात् वह नहीं सो परिपूर्णरूप ५. अथवा उ०– ६ छठा–जो अंश यानी ज्ञान बलआदि रूपसे भक्तोंमें सदाकाल भाग नाम वर्तमान रहता है अर्थात् सर्वशक्तिमान् ६. अथवा उ०– ७ सातवां–अंश यानी वासुदेव १ संकर्षण २ प्रद्युम्न ३ अनिरुद्ध ४ ऐसे चार भाग नाम रूपोंसे यह चतुर्व्यूहावतार यह परिपूर्णावतार है ७. ऐसे यह सात अर्थोंमेंसे जो एकभी अर्थ जिसे मालूम हो उसे पूर्वापरका विरोध कभी न होगा क्योंकि सिद्धांतका ज्ञान होनेसे पुनः शंकाका स्थानही नहीं रहता.

हिंसक और लोभी राजा बहुधा मा, बाप, भाई और संबंधीयोंकोभी मारडारते हैं ॥ ६७ ॥ ' मैं पूर्वजन्ममें कालनेमि नाम बड़ा दैत्य था और उस जन्ममें विष्णुके हाथसे मारागया और पीछा यहीं जन्मा हूं, ऐसे कंस जानता था इसलिये उसने यादवोंके साथ विरोध किया ॥ ६८ ॥ यदु, भोज, अंधक कुलके अधिपति अपने पिता उग्रसेनको कैदमें रखके, महापराक्रमी कंस स्वयं शूरसेनदेशका राज्य करने लगा ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः॥ १॥ ॥ इस द्वितीयाध्यायमें कंसको मारनेके लिये देवकीके गर्भगत भगवान्की ब्रह्मादिक देवतानने स्तुति करी और देवकीकी सांत्वना

आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ॥ महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥ उग्रसेनं च पितरं यदुभोजांधकाधिपम् ॥ स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रलंबबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥ मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ॥ यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपांचालकेकयान् ॥ शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥ ३ ॥ एके तमनुरुंधाना ज्ञातयः पर्युपासते ॥ हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनंतं प्रचक्षते ॥ गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५ ॥

करी, यह कथा कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-प्रलंबासुर, बकासुर, चाणूरमल्ल, तृणावर्तदैत्य, अघासुर, मुष्टिकमल्ल, अरिष्टासुर, द्विविदवानर, पूतना, केशीदैत्य, धेनुकासुर और अन्यभी बाणासुर और नरकासुरप्रभृति दैत्यरूप राजानकी सहायतासे बलवान् कंस यादवोंका कदन करने लगा. इस कंसको जरासंधका बड़ा आश्रय था ॥ १ ॥ २ ॥ कंससे पीड़ित यादव, कुरु, पांचाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह, काशी और कोसल देशोंमें चले गये ॥ ३ ॥ और कितनेएक यादव कंसका अनुसरण करके उसीकी सेवा करने लगे. कंसने देवकीके छः पुत्र मार डारे. पीछे विष्णुके धाम शेषनाग कि-जिनको अनंत कहते हैं वे देवकीके सातवें समयके गर्भमें आये. यह गर्भ देवकीके हर्ष शोकको बढ़ानेवाला हुआ ॥ ४ ॥ ५ ॥

ति देखकर, प्रसन्नचित्त कंसने हंसके यह कहा कि- ॥ ५९ ॥ इस बालकको पीछा ले जाओ; क्योंकि इससे मुझे भय नहीं है. तुह्मारे आठवें गर्भसेही मेरी मृत्यु निश्चित रची है ॥ ६० ॥ वसुदेवजी ' ठीक ' ऐसा कहके, पुत्रको लेकर, पीछे लौटगये. पर कंसके उस वचनका सत्कार नहीं किया; क्योंकि कंस दुष्ट है, और अनवंस्थितचित्त यानी उसका मन उसमें नहीं है ॥ ६१ ॥ महाराज ! याप्रकार कंसकी शांति देवतानके कार्यके अनुकूल नहीं है, ऐसे समझके, नारदजीने आयके, कंससे कहा कि-व्रज-

प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ॥ अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥ ६० ॥ तथेति सुतमादाय ययावानकदुंदुभिः ॥ नाभ्यनंदत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१ ॥ नंदाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ॥ वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ॥ ज्ञातयो बंधुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसाय भगवान् शशंसाभ्येत्य नारदः ॥ भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ॥ देवक्यागर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥ ६५ ॥ देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ॥ जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशंकया ॥ ६६ ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ घ्नंति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥

में नंदादिक जो ग्वाल और उनकी स्त्रियां तथा यदुकुलमें वसुदेवजीआदि यादव और उनकी देवकीआदि स्त्रियां और इन दोनोंके ज्ञाति, बंधु और इनके स्नेही जो तेरा अनुसरण करते रहते हैं, वे सबही प्रायः देवतारूप हैं. और देवताननें पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका नाश करनेका उद्यम किया है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इतना कहकर, नारदजीके गये पीछे यादवोंको देवतारूप मानके, अपने वधके लिये देवकीके गर्भसे विष्णु प्रगट होयगे, ऐसे विचारके, कंसने देवकी और वसुदेवके पगमें बेरी डारी. और विष्णुकी शंकासे उनके ज्यों ज्यों पुत्र होते गये त्यों वे सब मारडारे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ पृथ्वीमें अपने प्राण पोषनेवारे मानी

[१]क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टः रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे ॥ अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः ॥ १ ॥ अर्थ-क्षणमें क्रुद्ध (गुस्सा) तथा क्षणमें प्रसन्न यानी क्षणक्षणमें प्रसन्न और नाराज होनेवाले ऐसे अनवस्थितचित्त यानी क्षणिकबुद्धियोंकी जो प्रसन्नता है वहभी भयकारीही समझनी ॥ २ ॥

कंससे कहा ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले कि–हे सौम्य ! जो भय आकाशवाणीने दिखाया है, वह भय तू मत रख; क्योंकि वह भय इससे नहीं है किंतु इसके पुत्रोंसे है, सो उन्हें मैं तेरे अर्पण कर दूंगा ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–वसुदेवजीके वचनोंका सार समझके, कंस बहनके वधसे निवृत्त हुआ. और वसुदेवजीभी प्रसन्न होकर, कंसकी प्रशंसा करके, अपने घरको गये ॥ ५५ ॥ पीछे प्रसवकाल प्राप्त हुआ, तब भगवत्भक्त देवकीने आठ८ पुत्र और एक १ कन्या एक एक वर्षके अँसेसे उत्पन्न किये ॥ ५६ ॥ असत्य भाषणसे अत्यंत विह्वल वसुदेवजीने प्रथम प्रकटहुए कीर्तिमान्‌नाम पुत्रको कष्टपूर्वक कंसको दिया

वसुदेव उवाच ॥ न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीरवाक् ॥ पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ॥ वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥ अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ॥ पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥ कीर्तिमंतं प्रथमजं कंसायानकदुंदुभिः ॥ अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥ किं दुःसहं तु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ॥ किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ॥ कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥

॥ ५७ ॥ अपने बचनको निबाहनेवाले पुरुष, जिसका सहन न करें ऐसा, कुछभी नहीं है, इससे वसुदेवजीने पुत्रको मृत्युके हाथमें दिया, एक ईश्वर विना अन्य कुछभी सत्य नहीं ऐसे जाननेवारे मनुष्यको किसी पदार्थकी अपेक्षा नहीं रहती, तिससे वसुदेवजीने पुत्रलालनसुखकी अपेक्षा छोड़दी, मैं खुद पुत्रको लेजाऊंगा तौ कंस छोड़ देगा, ऐसा वसुदेवजीके मनमें बिलकुल नहीं था; क्योंकि कदर्य[1] (नीच) पुरुष न करे ऐसा कोई काम नहीं है, जिनका चित्त भगवानमें है वे जिसका त्याग न करसकें ऐसा कुछभी नहीं है, तिससे देवकीनेभी पुत्रको त्याग किया ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! वसुदेवजीकी यह समता और सत्यमें स्थि

१ आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रान्दारांश्च पीडयेत् । पीडयेद्भृत्यवर्गांश्च स कदर्य इति स्मृतः ॥ १ ॥ अर्थ–जो आप अपने आत्मा तथा धर्मकार्य और पुत्र, स्त्री, पोष्यवर्ग इन्होंको पीड़ित करता है यानी न खावे न खिलावे न धर्मकरै वही कदर्य कहा है ॥ १ ॥

निश्चय किया ॥ ४७ ॥ 'बुद्धिमान् मनुष्यको, अपनी बुद्धि जहांतक पहुंचे वहांतक मौतको हटाना चाहिये और ऐसे करते यदि न बचे तौ उसमें मनुष्यका अपराध नहीं है ॥ ४८ ॥ इसलिये देवकीके जो पुत्र होंगे उन्हें कंसको देना मनमें ठहराय, हाल इस बिचारी स्त्रीको छुड़ालेऊं. देवकीके पुत्र होनेके अनंतर जो भावी होगा वह होगा पर अभी तुर्त तौ यह जीती रह जायगी. और इतने समयमें यदि कंस मरजाय तो फिर कुछ मृत्युका दुःखही नहीं ॥ ४९ ॥ कदाचित् पुत्र होय और कंस न मरे, तौ मेरे पुत्रहीसे कंसका मरण होय ऐसे विपरीतभी क्यों न बने ? क्योंकि इसका आठवाँ गर्भ तुझको मारेगा ऐसे कहनेवाली ईश्वरकी गति अपार है. इसलिये अभीके विचारानुसार जो प्राप्त मृत्यु टलजाय और पीछे समयांतरमें आवे तौ मेरा अप-

मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ॥ यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥ प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् ॥ सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ ॥ विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया ॥ उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति ॥ एवं हि जंतोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥ एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ॥ पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥ ५२ ॥ प्रसन्नवदनांभोजो नृशंसं निरपत्रपम् ॥ मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

राध नहीं. अथवा ऐसेभी होय कि–मेरे पुत्रके हाथसे होनेवाला कंसका मृत्यु अभी देवकीका वध होय तौ रुकजाय, वह पीछा इस विचारसे (देवकीके बचानेके विचारसे) सिद्ध होजाय; क्योंकि प्राणियोंका अदृष्ट विचारमें आना कठिन है ॥ ५० ॥ वनमें वृक्षोंको और गांवमें घरोंको भस्म करता अग्नि, समीपके वृक्ष और घरोंको छोड़कर दैवयोगसे दूर होवें उनको जलादेता है तौ इस विषयमें जैसे दैवविना दूसरा कोई नियामक नहीं है. और वह अदृष्ट प्रथमसे विचारमें नहीं आता, ऐसे जीवोंके जन्ममरणका अदृष्टभी विचारमें नहीं आता ॥ ५१ ॥ ऐसे अपनी बुद्धि पहुंची वहांतक बिचार करके, वसुदेवजीने बड़े मानसे पापी कंसका सत्कार किया ॥ ५२ ॥ पीछे मनमें कचुवाते कंसके विश्वासके लिये वसुदेवजीने प्रफुल्लितमुख होकर, हंसते २ निर्लज्ज और क्रूर

जीव जन्म लेता है. शंका–यदि मनही कर्ता है तौ, उसीको जन्म लेना उचित है परंतु अकर्ता आत्माको नहीं. समाधान–तथापि आत्मा उस मनको 'मैं हूं' ऐसे करके मानता है इसीलिये आत्मा उसी मनके साथ जन्म लेता है ॥ ४२ ॥ कोईएक देहमात्र तौ अवश्य मिल जायगा, परंतु इस अतिप्रिय राजाके शरीरके रक्षणके लिये अकृत्य करनाभी उचित है. कदाचित् ऐसी शंका होय तौ कहते हैं–जैसे जलसे भरे मिट्टीके पात्रोंमें प्रतिबिंबरूपसे रहे चंद्रादिक तेज, वायुके वेगसे कंपायमान दीखते हैं. इसी रीतिसे अपनी अविद्यारचित देहोंमें रागके कारण प्रविष्ट आत्मा अभिनिवेशको प्राप्त होता है. अर्थात् आत्मामें देहादिकका अध्यास होनेसे जैसे कृशत्व और स्थूलत्व आदि देहादिके धर्म आत्मामें प्रतीत होते हैं तैसे, देहादिकमें आत्माको

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ॥ एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥४३॥ तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः ॥ आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतोभयम् ॥ ४४ ॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ॥ हंतुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सल ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ॥ न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६ ॥ निर्बंधं तस्य तं ज्ञात्वा विचिंत्यानकदुंदुभिः ॥ प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

अध्यास होनेसे प्रेमपात्रत्व आदि आत्माके धर्म देहादिकमें प्रतीत होय हैं. इसलिये राजाके देहमें वा सूकरके देहमें प्रियत्व समान होनेसे मृत्यु बचानेका उपाय करना व्यर्थही है ॥ ४३ ॥ सामवचनसे समझाके, अब भेदसे समझाते हैं;–इसलिये ऐसी स्थितिवाले प्राणीको अपने कल्याणकी इच्छा होय तो किसीसे द्रोह न करना चाहिये; क्योंकि द्रोह करनेवालेको शत्रुसे और यमसेभी भय उत्पन्न होय है ॥ ४४ ॥ फिर सामवचनही कहते हैं, यह बिचारी तेरी छोटी बहन कल्याणरूप बालक देवकी, कि–जो काठकी पुतलीके समान परतंत्र है; उसे दीनदयाल तेरेको मारना अयोग्य है ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे कौरव्य ! इसतरह वसुदेवजीने साम और भेदसे समझाया, तौभी राक्षसोंका अनुसरण करनेवाला यह क्रूर कंस देवकीके वधसे निवृत्त नहीं हुआ ॥ ४६ ॥ देवकीको मारनेका कंसका आग्रह देख, कुछ विचार करके, वसुदेवजीने अवसर चुकानेको मनमें यह

देहके विषयहीमें स्वीकार और परित्याग दिखानेको दूसरा दृष्टांत कहते हैं; देखेहुए (राजादिक) और सुनेहुए (इंद्रादिक) देह कि–जिसमें संस्कार लगेहुए हैं ऐसे मनसे उसी देहका चिंतवन करताहुआ पुरुष स्वप्नमें उसीप्रकारके देहको देखता है, पीछे थोड़ी देरमें उसीदेहको ' मैं हूं ' ऐसे करके मानता है और पीछे जाग्रत देहकी स्मृति भूल जाता है और इसीप्रकारके संस्कार-वाले मनसे वैसेही देहका मनोरथ करताहुआ पुरुष, जाग्रतमेंभी इसीप्रकारके देहको देखता है. पीछे स्वल्पकालमें उसी देहको

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ॥ दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्प्रपद्य-ते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥ यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ॥ गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥

' मैं हूं ' ऐसे करके मानता है. और पीछे अपने देहकी स्मृति विस्मृत होजाता है. वैसे इहांभी कर्मोंके आधीन होकर, पूर्व-देहका त्याग करता है ॥ ४१ ॥ विचित्र देह देनेवाले अनेक कर्म कियेहुए होते हैं, उनमेंसे प्रथम अमुक देहप्राप्ति होनेका क्या कारण है ? ऐसी शंका दूर करनेको कहते हैं; मरणसमयमें पंचभूतही जो कि–मायासे अनेक प्रकारके देहरूपसे बनायेहुए हैं, उनमें फल देनेको तैय्यार हुए कर्मोंसे प्रेरित नानाप्रकारके विकारोंसे भराहुआ मन देव, मनुष्य वा पशु–पक्षी आदिकनके जिस जिस देहप्रति दौड़े है. और दौड़ता हुआ जिस जिस देहका अभिनिवेश (मैं हूं ऐसा अभिमान) करलेता है उस उस देहमें

---

१ यहांपर यह दृष्टांत है, जैसे कि–देवीकोटनाम नगरमें एक देवशर्मा नाम ब्राह्मण था, उसने मेषकी बड़ी संक्रांतिको सत्तूसे भरा एक सिकोरा पाया. वह उसे ले कुम्हारके बर्तनोंसे भरे मंडपके एक स्थानमें धूपसे व्याकुल हो सोया, तो सत्तूकी रक्षाके लिये हाथमें एक दंडा ले, सोचने लगा कि–जो मैं सत्तूका सिकोरा बेंच दश कौड़ी पाऊं तो उन कोड़ीयोंसे यहांही पड़े सराई आदि ले, अनेक प्रकार उस बढ़े धनसे बार २ सुपारी कपड़े आदि ले बेंच, लाखों रुपये कमाय, चार बिवाह करूंगा, जब सपत्नी (सौतें) लड़ाई करेंगी तब मैं क्रोधमें भर लाठी मारूंगा. यों कह ज्यों लाठी मारी त्योंही सत्तूका सिकोरा तथा औरभी बर्तन फूट चूर २ हुये. तो उस शब्दसे आयेहुए कुम्हारने उस प्रकारके बर्तन देख, ब्राह्मणको अनादर कर, मंडपसे बाहर निकाल, कहा–अये ब्राह्मण ! तूने यह क्या किया ? तब उसने कहा–तेरे तो बर्तनही फूटे लेकिन मेरा तो हुआकिया घर गया। इसीमाफक देहान्तरकी प्राप्तिभी समझने.

कि-' रे मूर्ख ! यह देवकी कि-जिसको तू लेजाता है, इसका अष्टम गर्भ तुझको मारेगा ' ॥ ३४ ॥ यह बाणी सुनके, उस खल, पापी और भोजके कुलको दूषित करनेवाले कंसने बहनको मारनेके लिये उद्युक्त हो, खड्ग हाथमें ले, केशपाश पकड़े ॥ ३५ ॥ ऐसा बुरा काम करनेको तय्यार हुए क्रूर और निर्लज्ज कंसको धीमा डारिबेको स्तुतिसे, युक्तियोंसे और करुणाउत्पादक वचनोंसे महाभाग्यशाली वसुदेवजी सांत्वन करते बोले ॥ ३६ ॥ वसुदेवजीने कहा कि-हे कंस ! तू शूरपुरुषोंसे प्रशंसनीय गुणवाला और भोजके कुलकीर्ति करनेवाला है. सो विवाहके उत्सवमें इस स्त्रीजाति और फिर बहनको मारना कैसे चाहता है ? ॥ ३॥ मरणके भयसे मारता होवे तो मृत्यु किसीका मिटाया नहीं मिटता; क्योंकि प्राणियोंके देहके साथ मरण सृजाहुआ है. और

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ॥ भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥ तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ॥ वसुदेव उवाच ॥ श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान् भोजयशस्करः ॥ स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ॥ अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥ देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ॥ देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ॥ यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ ४० ॥

जियादा जीनेको मारता होवे तौ हे वीर ! मृत्यु आज अथवा सौ वर्षके अनंतर अवश्य होनेवाला है; उसमें केवल विलंब डारिबेको पाप करना उचित नहीं ॥ ३८ ॥ और यह देह पड़े पीछे जो दूसरा देह न मिले तौ पाप करकेभी देहका पालन करना उचित है; परंतु ऐसे नहीं है. क्योंकि परवश प्राणी मरणसमयमें कर्मवशसे यत्नविनाही प्रथम दूसरे देहको प्राप्त होकर, पीछे पूर्वदेहका त्याग करता है ॥ ३९ ॥ जैसे चलता हुआ मनुष्य पृथ्वीपर आगेके एक पैरसे देहको टिकाकर, पीछे दूसरा पांव उठाता है. और जैसे तृणकीट अन्य तृणको पकड़के, पीछे प्रथम तृणका त्याग करता है वैसे कर्ममार्गमें चलता जीवभी दूसरे देहको प्राप्त होके, पीछे प्रथम देहको छोड़ता है ॥ ४० ॥

श्वासना करके, अपने सर्वोत्तम ब्रह्मलोकको सिधारे ॥ २६ ॥ प्रथम यादवोंका अधिपति राजा शूरसेन मथुरापुरीमें रहकर, माथुर और शूरसेननाम देशोंको भोगता था ॥ २७ ॥ तबसे मथुरापुरी सब यदुवंशी राजाओंकी राजधानी हुई. कि-जिस मथुरामें भगवान् नित्य सन्निहित हैं ॥ २८ ॥ शूरसेनके पुत्र वसुदेव किसीदिन इस नगरीमें विवाह करके, नवविवाहिता स्त्री देवकीके साथ अपने घर जानेको रथमें बैठे ॥ २९ ॥ वा समय उग्रसेनका पुत्र कंस अपनी बहन देवकीको प्रसन्न करनेके लिये घोड़ोंकी

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् ॥ माथुरान् शूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साभूत्सर्वयादवभूभुजाम् ॥ मथुरा भगवान्यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ॥ देवक्या सूर्यया सार्द्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥ चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ॥ अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥ दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ॥ दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुंदुभयः समम् ॥ प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥

बाग पकड़के हांकिबेको बैठा. और उसके साथ दूसरे सैकड़ों सोनेके रथ थे ॥ ३० ॥ पुत्रीपर प्रीतिवान् देवकने अपनी पुत्री देवकीको बिदाके समय सुवर्णमालावाले चारसौ ४०० हाथी, पंद्रह सहस्र १५००० घोड़े, अठारहसौ रथ १८०० और शृंगारसहित सुंदर सुकुमार दोसौ २०० दासियां दायजेमें दीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ वर-बहूके यानसमयमें मंगलके लिये शंख, तूर्य, मृदंग और दुंदुभि एकसाथ बाजने लगे ॥ ३३ ॥ इतनेमें मार्गमें रथ हांकतेहुए कंसको 'हे कंस !' ऐसे पुकारके, आकाशवाणीने कहा

---

१ मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा । तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते ॥ इति गोपालतापिनीश्रुतिः ॥ १ ॥ अर्थ-जिस ब्रह्मज्ञान अथवा भक्तियोगसे जगत् बाधित यानी मिथ्या प्रतीत होता है उन दोनों भक्तिज्ञानोंका सारभूत प्रसिद्ध फल श्रीकृष्णजी जिसमें नित्य विराजते हैं वही मथुरा पुरी कही है ॥ १ ॥

पृथ्वीने ब्रह्माके पास खड़ी होके, उनसे अपना दुःख निवेदन किया ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी इस बातको सुनकर पृथ्वी, देवता और महादेवको साथ लेके, क्षीरसमुद्रके तीरपर गये ॥ १९ ॥ वहां जाय, समाधि धर, जगन्नाथ, देवनके देव, मनोरथोंके परिपूर्ण करनवाले श्रीविष्णुजीकी पुरुषसूक्तके मंत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ वासमय समाधिहीमें हृदयाकाशमें भगवत्प्रेरित वाणीको सुनकर, ब्रह्माने देवतानसे कहा कि–' हे देवताओ ! मुझसे भगवान्के वचन सुनो. और पीछे उसीप्रमाण करो. विलंब मत करो ॥ २१ ॥ अपनी विनतीसे प्रथमही भगवान्ने पृथ्वीके दुःखको ध्यानमें ले लिया है; इसलिये ईश्वरनकेभी ईश्वर ये भगवान् अपनी काल-

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ॥ जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥ तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ॥ गां पौरुषीं मे श्रृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ॥ स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ॥ जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवंतु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् ॥ आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥

शक्तिसे जितनेमें पृथ्वीका भार उतारनेको पृथ्वीमें अवतार धारण करके बिराजें, इतनेमें तुमभी अपने अपने अंशोंसे यादवोंमें जन्म लेओ ॥ २२ ॥ साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वसुदेवजीके घरमें अवतार लेंगे. उनको प्रसन्न करनेको तुह्मारी स्त्रियांभी जन्म लेवें ॥ २३ ॥ सहस्रवदन, स्वप्रकाश, अनंत और भगवान्के अंशरूप शेषनाग भगवान्के प्रिय करनेको प्रथम अवतार धारण करेंगे ॥ २४ ॥ विष्णुकी माया कि–जिससे सर्व जगत् मोहित है. वहभी प्रभुकी आज्ञासे कार्य करनेको अवतार धारण करेगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–प्रजापतिनके पति समर्थ ब्रह्मा देवतानको या प्रमाण आज्ञा कर, वचनसे पृथ्वीकी आ-

हे सर्वज्ञ मुनि! यह और इसके उपरांतभी जो कुछ भगवत्‌चरित्र होंय वे, सब मुझको कहने चाहिये, क्योंकि इस विषयमें मेरी श्रद्धा है ॥ १२ ॥ मैंने यद्यपि अन्न और जल छोड़दिये हैं, तौभी आपके मुखारविंदसे झरता हुआ भगवान्‌की कथारूप अमृतपान करता हूं; इससे भूख और प्यास जो कि-अन्यसे असह्य हैं वे[1] मुझको कुछभी बाधा नहीं करतीं ॥ १३ ॥ सूतजीने शौनकादिक ऋषियोंसें कहा, कि-हे शौनक मुनि! वैष्णवनमें मुख्य भगवान् शुकमुनि यह उत्तम प्रश्न सुनके, परीक्षितराजाकी प्रशंसा करके,

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ॥ वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥ १२ ॥ नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ॥ पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भृगुनन्दनसाधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ॥ प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ॥ वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ॥ वक्तारं प्रच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ॥ आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥ गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ॥ उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥ १८ ॥

कलियुगके दोषका नाश करनेवाला भगवत्‌का चरित्र कहने लगे ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे उत्तम राजर्षि! तुम्हारी बुद्धिने निश्चय अतिउत्तम किया है, कि-जिससे भगवान्‌की कथामें तुम्हारी नैष्ठिकप्रीति हुई है ॥ १५ ॥ गंगाजल जैसे सर्वको पवित्र करता है वैसे, भगवत्‌कथासंबंधी प्रश्नभी वक्ता, प्रश्नकर्त्ता और श्रोता इन तीनोंको पवित्र करता है ॥ १६ ॥ गर्वित राजालोग कि-जो वास्तविक रीतिसे दैत्यही थे उनके अनेक सैन्योंके बड़े भारसे दबीहुई पृथ्वी गायका रूप धरके, ब्रह्माके शरण गयी ॥ १७ ॥ खिन्न और दया उत्पन्न होय ऐसी रीतिसे पुकारती, रुदन करती और आंखमें अश्रु जिसके मुखमें भरेहुए थे ऐसी,

---

१ श्रुताभिलषिता ध्याता पीता दृष्टावगाहिता। गंगा तारयते पुंसामुभौ वंशौ भवार्णवात् ॥ १ ॥ अर्थ-सुनने, अभिलाष करने, ध्यान, पान, दर्शन, स्नानआदि करनेसे श्रीभागीरथी गंगा पुरुषोंके उभय कुल यानी मातृकुल, पितृकुल दोनोंको संसारसमुद्रसे तार देती हैं. ॥ १ ॥

सैन्यरूप महासागरको मेरे दादे पांडव, भगवद्रूप नावके आश्रयसे बछेरेके खुरके खड्डेके समान मनके, तिरगये ॥ ५ ॥ भगवानने केवल पांडवनकी रक्षा करी इतनाही नहीं; परंतु मेरे इस शरीरकीभी उन्होंनेही रक्षा करी है. कौरव और पांडवोंकी संततिका बीजरूप यह मेरा शरीर कि–जो अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे बल गया था. उसे भगवान्‌ने अपने शरण प्राप्त हुई मेरी माताके उदरमें प्रवेश करके, चक्र धारण करके, बचाया ॥ ६ ॥ हे विद्वन्‌ ! मायासे मनुष्यरूप ये भगवान्‌ कि–जो सर्व प्राणियोंमें अंतर्यामीरूप जानिवेवारेनको उस रूपसे मोक्ष देवे हैं. और बहिर्दृष्टिवारेनको कालरूपसे मरण देवे हैं, उनके पराक्रम कहो. अंतर्दृष्टिसे उनके पराक्रमही मुझे सुनने चाहिये ॥ ७ ॥ शेषनागके अवताररूप बलभद्रको एकबार, तौ आपने रोहिणीका पुत्र कहा.

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं संतानबीजं कुरुपाण्डवानाम्‌ ॥ जुगोप कुक्षिंगत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥ वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ॥ प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन्‌ ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ॥ देवक्या गर्भसंबन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ॥ क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ॥ भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धातदर्हणम्‌ ॥ १० ॥ देहं मानुषमाश्रित्य कतिवर्षाणि वृष्णिभिः ॥ यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥

और दूसरी बेर देवकीका पुत्र कहा, सो दूसरे देहविना उनके देवकीके गर्भका संबंध कहांसे हुआ ? ॥ ८ ॥ भगवान्‌ मुकुंद कि–जिनको कंसका भय लगना तौ संभवेही नहीं, वे अपने पिताका घर छोड़, व्रजमें किसवास्ते पधारे ? भक्तोंके रक्षक इन भगवान्‌ने अपनी ज्ञातिके साथ कौनसे स्थलमें निवास किया ? ॥ ९ ॥ भगवान्‌ने व्रजमें तथा मथुरामें रहकर, कौन कौनसी लीला करी? और अपना मामा कंस कि–जो किसीकदर मारने योग्य न था, उसको अपने हाथसे क्यों मारा ? ॥ १० ॥ हे प्रभो मनुष्यदेह धारण करके, भगवान्‌ कितने वर्षपर्यंत मथुरामें यादवोंके साथ रहे ? और उनके कितनी स्त्रियां थीं ? ॥ ११ ॥

इस प्रथम अध्यायमें देवकीके पुत्रसे अपना मरण होगा, यह बात सुन, भयभीत कंसने देवकीके छः पुत्र मारे, यह कथा कही जायगी ॥ १ ॥ परीक्षितराजाने कहा—आपने चंद्रवंश तथा सूर्यवंशका विस्तार और उन दोनों वंशोंमें उत्पन्न भयेहुए राजाओंका परमअद्भुत चरित्र कहा ॥ १ ॥ हे मुनिवर ! धर्मशील यदुराजाका वंश तौ बहुत विस्तारसे कहा. अब इस वंशमें बलभद्रके साथ अवतार धारण किये विष्णु भगवान्के पराक्रम हमको कहो ॥ २ ॥ जगत्पालक विश्वात्मा भगवान्ने यदुवंशमें अवतार धारण करके, जो पराक्रम किये हैं वे, विस्तारपूर्वक हमको कहो ॥ ३ ॥ मुक्त, मुमुक्षु और विषयी ऐसे तीन-

नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ राजोवाच ॥ कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥ राज्ञां चोभय-वंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ॥ तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः ॥ कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विनापशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहा मे समरेऽमरंजयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिंगिलैः ॥ दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥

प्रकारके लोक इस जगत्में हैं, उनमेंसे किसीकोभी भगवान्की कथामें अलंबुद्धि नहीं होती; क्योंकि तृष्णारहित मुक्तपुरुष उसे गाया करते हैं. यह कथा संसारकी औषधरूप है; इसीसे मुमुक्षु लोकोंकेभी संसारमेंसे छूटनेका यही उपाय है. कान और मनको सुखकर होनेसे विषयी पुरुषोंकाभी सर्वोत्तम विषय यही है. इसीलिये आत्मघाती अथवा पशुघाती पुरुषविना दूसरा कौन मनुष्य भगवान्की कथासे विरक्त होवे ? ॥ ४ ॥ हमको तौ भगवान्की कथा निरंतर सुननीही चाहिये; क्योंकि हमारे कुलके दैवत तौ श्रीकृष्णचंद्रही थे. युद्धमें देवतानकोभी जीतनेवाले भीष्मजी—आदि अतिरथिरूप बड़े मत्स्योंके होनेसे दुस्तर कौरवोंके

१ चक्रवर्ती टीकामें ऐसे लिखा है कि—इस वंशमें अवतार धारण किये विष्णुभगवानका चरित्र कुछ अंशसे हमको कहो. श्रीधर लिखे है.कि—अंशका कथन केवल प्रतीतिके. अभिप्रायसे है २ नूनं दैवेन विहिता ये चाच्युतकथासुधाम् । हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथां पुरीषमिव विड्भुजः ॥ १ ॥ अर्थ—जे भगवत्कथारूप अमृत त्यागके, अन्य असद्गाथायें सुनते हैं वे निश्चय दैवसे हतभाग्य मैला खानेवाले कीड़ोंके जैसे विष्ठाही खा रहे हैं ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषया सहितः
नवमस्कंधः समाप्तः ॥

लासे व सर्व अंगोंसे अतिरमणीय अपनी मूर्त्तिसे सब जगत्को रमण कराया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जिसमें कानोंके मकराकृत सुंदर कुंडल शोभा दे रहे हैं और उनकी कांतिसे सुंदर कपोलोंकी छबि छा रही है और सुंदर विलाससहित हास्य प्रगट हो रहा है और नित्य उत्सव बन रहा है, ऐसे श्रीकृष्णचंद्रके मुखारविंदका आनंदपूर्वक नेत्रोंसे दर्शन करते नगरके स्त्री-पुरुष तृप्त नहीं होते थे. और दर्शनमें विघ्न करनेवाली पलकोंपर बड़ा क्रोध करते थे ॥ ६५ ॥ ये श्रीकृष्ण भगवान् प्रथम अपने पुरुषोत्तम स्वरूपसे प्रगट हो, फिर मनुष्यका स्वरूप धारण कर, पिताके घरसे व्रजमें पधारे. वहां पधारकर, व्रजवासियोंके मनोरथ पूर्ण कि

यस्याऽऽननं मकरकुंडलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् ॥ नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबंत्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ ६५ ॥ जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुतशतानिकृतोरुदारः ॥ उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मनिगमं प्रथयन् जनेषु ॥ ६६ ॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामंतःसमुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ॥ दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टादशसाहस्र्यां नवमस्कंधे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ समाप्तश्चायं नवमस्कंधः ॥ ९ ॥ ॥

ये, शत्रुओंका संहार किया,हजारों स्त्रियोंसे व्याह किया, उन स्त्रियोंमें हजारों पुत्र उत्पन्न किये और लोकोंमें अपने वेदमार्गको फैलानेके वास्ते अनेक यज्ञोंसे अपने स्वरूपकाही यजन किया ॥ ६६ ॥ पृथ्वीका अतिगुरुतर भार उतारनेके वास्ते इन श्रीकृष्ण भगवानने कौरवपांडवोंमें परस्पर कलह उत्पन्न कर, उनके द्वारा युद्धमें सब राजाओंकी सेना एकत्र करके, अपनी दृष्टिहीसे सब सेनाका संहार करके, जगतमें अर्जुनका जय प्रसिद्ध किया और अंतके समय द्वारकामें उद्धवजीको ब्रह्मविद्याका उपदेश कर, अपने स्वरूपहीसे निजधाम पधारे ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

श्वर हरि भगवान् आप अवतार धारण करते हैं ॥ ५६ ॥ महाराज ! असंग, ईश्वर, साक्षी, और सर्वव्यापक इन भगवान्के अपनी मायाके सिवाय दूसरा कोईभी जन्म वा कर्मका कारण नहीं है ॥ ५७ ॥ सृष्टि, स्थिति और प्रलयके वास्ते स्वीकार किया- हुआ जिनकी मायाका चेष्टितही शरीरआदि उत्पन्न करके तद्द्वारा धर्मआदिका संपादन करनेसे जीवके अनुग्रहरूप होवे हैं. और अपने श्रवणसे जन्मादिकको रोंककर, मोक्षकोभी देता है, उन भगवान्के कर्मआदिकी परतंत्रतासे जन्म-मरणादिकका होना संभवे नहीं ॥ ५८ ॥ केवल राजाओंके चिन्ह धारण करनेवाले अक्षौहिणियोंके पति, दैत्योंके भारसे दबीहुई पृथ्वीका भार उता-

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ॥ आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७ ॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ॥ अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥ अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलांछनैः ॥ भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥ कर्माण्यपरिमेयाणि मनसाऽपि सुरेश्वरैः ॥ सह संकर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ॥ श्रोत्रांजलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकैः ॥ श्लघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृंजयपांडुभिः ॥ ६३ ॥ स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ॥ नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वांगरम्यया ॥ ६४ ॥

रनेके वास्ते जिन्होंने बलरामजीके साथ अवतार धारण किया है ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्ने देवताओंकेभी मनसे अतवर्य ऐसे २ काम किये ॥ ५९ ॥ ६० ॥ कलियुगमें पैदा होनेवाले अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये महापवित्र, और दुःख, शोक व अज्ञानको निवृत्त करनेवाली अपनी कीर्तिका विस्तार किया ॥ ६१ ॥ सत्पुरुषोंके कानोंके अमृतरूप इस भगवानके जसरूप उत्तम तीर्थमें जो मनुष्य एक वारभी कानरूप अंजलिसे आचमन करे वह कर्मोंकी वासनासे मुक्त हो जाये ॥ ६२ ॥ भाज, वृष्णि, अंधक, मधु, शूरसेन, दशार्हवंशी, यादव और कुरु, सृंजय पांडुवंशी राजालोग जिनके चरित्रकी निरंतर प्रशंसा करते हैं, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्ने स्नेहभरे मंदहास्यसहित अवलोकनके कारण अतिउदार जो अपने वाक्य तिनसे और पराक्रमयुक्त ली

भद्र और भूतआदि बारह १२ पुत्र हुए ॥ ४७ ॥ मदिरा नाम स्त्रीमें नंद, उपनंद, कृतक और शूरआदि पुत्र हुए और कौशल्या (भद्रा) नाम स्त्रीमें एक कुलनंदन केशी नाम पुत्र हुआ ॥ ४८ ॥ रोचना नाम स्त्रीमें हस्त और हेमांगदआदि पुत्र हुए, इलानाम स्त्रीमें उरु और वल्कआदि उत्तम पुत्र हुए ॥ ४९ ॥ धृतदेवा नाम स्त्रीमें एक विपृष्ट नाम पुत्र हुआ, महाराज ! शांतिदेवा नाम स्त्रीमें श्रम और प्रतिश्रुतआदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५० ॥ उपदेवा नाम स्त्रीमें कल्प व वर्षआदि दश पुत्र

नंदोपनंदकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ॥ कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनंदनम् ॥ ४८॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमांगदादयः ॥ इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ॥४९॥ विपृष्टो धृतदेवायामेक आनकदुंदुभेः ॥ शांतिदेवात्मजा राजन् श्रमप्रतिश्रुतादयः ॥ ५० ॥ राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवसुता दश ॥ वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१ ॥ देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ॥ वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव ॥ वसुदेवस्तु देवक्यामष्टपुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥ कीर्तिमंतं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ॥ ऋजुं संमर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥ ५४ ॥ अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल ॥ सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥ ५५ ॥ यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ॥ तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६ ॥

हुए, श्रीदेवा नाम स्त्रीमें वसु, हंस और सुवंशआदि छः पुत्र हुए ॥ ५१ ॥ देवरक्षिता नाम स्त्रीमें गदआदि नव पुत्र हुए, जैसे धर्मके वसु नाम आठ पुत्र हुए, वैसे वसुदेवजीके सहदेवा नाम स्त्रीमें पूरु व विश्रुतआदि आठ पुत्र उत्पन्न हुए, उदारचित्त वसुदेवजीके देवकीनाम स्त्रीमें आठ ८ पुत्र हुए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन, भद्र, शेषजीके अवतार संकर्षण ॥ ५४ ॥ ये सात पुत्र और आठवें तौ साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम आपही प्रगट हुए. महाराज ! और तुह्मारी दादी महाभाग सुभद्रा नाम एक कन्या हुई ॥ ५५ ॥ जब जब इस संसारमें धर्मका क्षय और पापकी वृद्धि होती है तब २ सर्वे-

उसमें संतर्दनआदि पांच केकयदेशके राजा पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ अवंतीके राजा जयसेनके वसुदेवजीकी बहन राजाधिदेवी नाम स्त्रीमें विंद और अनुविंद नाम दो पुत्र हुए और चेदिदेशके राजा दमघोषने श्रुतश्रवाके साथ व्याह किया ॥ ३९ ॥ उसमें शिशुपाल नाम पुत्र हुआ, जिसके जन्मकी कथा, मैं पहले कह आया हूं, वसुदेवजीके भाई देवभागके कंसा नाम स्त्रीमें चित्रकेतु और बृहद्बल नाम दो पुत्र हुए ॥ ४० ॥ वसुदेवजीके भाई देवश्रवाके कंसावती नाम स्त्रीमें सुवीर और इषुमान् नाम दो पुत्र हुए, वसुदेवजीके भाई आनकके कंका नाम स्त्रीमें सत्यजित् औ पुरुजित् नाम दो पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ वसुदेवजीके भाई सृंजयके राष्ट्र-

राजाधिदेव्यामावंत्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ॥ दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९ ॥ शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य संभवः ॥ देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥ कंसावत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ॥ कंकायामानकाज्जातः सत्यजित्पुरुजित्तथा ॥ ४१ ॥ सृंजयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ॥ हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा ॥ तक्षपुष्करशालादीन्दुर्वाक्ष्यां वृक्ष आदधे ॥ ४३ ॥ सुमित्रार्जुनपालादीन् शमिकात्तु सुदामिनी ॥ कंकश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥ ४४ ॥ पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ॥ देवकी प्रमुखा आसन्पत्न्य आनकदुंदुभेः ॥ ४५ ॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् ॥ वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥ ४६ ॥ सुभद्रो भद्रवाहश्च दुर्मदो भद्र एव च ॥ पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥ ४७ ॥

पाली नाम स्त्रीमें वृष और दुर्मर्षणआदि पुत्र हुए श्यामकके शूरभूमि नाम स्त्रीमें हरिकेश और हिरण्याक्ष नाम दो पुत्र हुए ॥ ४२ ॥ वत्सकके मिश्रकेशी नाम अप्सरामें वृकआदि पुत्र हुए. वृकके दुर्वाक्षी नाम स्त्रीमें तक्ष, पुष्कर शालआदि पुत्र हुए ॥ ४३ ॥ शमीकके सुदामिनी नाम स्त्रीमें सुमित्र, अर्जुन व पालआदि पुत्र हुए, कंकके कर्णिका नाम स्त्रीमें ऋतधामा व जय ये दो पुत्र हुए ॥ ४४ ॥ वसुदेवजीके पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि औरभी स्त्रियां थीं ॥ ४५ ॥ वसुदेवजीके रोहिणी नाम स्त्रीमें बल, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतआदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥ पौरवी नाम स्त्रीमें सुभद्र, भद्रवाह, दुर्मद,

पिता शूरने अपनी पृथा (कुन्ती) नाम कन्या अपना मित्र कुंतिभोज कि-जो अपुत्र था, उसे कन्याकी तौरपर रेखनेको दी, इसलिये इसे कुंतीभी कहते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इस पृथाने दुर्वासा ऋषिको प्रसन्न किया, तब दुर्वासाने देवहूती (जिस देवताको बुलावे वही देवता आ जाय ऐसी) नाम विद्या दी, उस विद्याके चमत्कारकी परीक्षा करनेके वास्ते उसने परमपावन सूर्यनारायणका आवाहन किया ॥ ३२ ॥ आवाहन करतेही सूर्यनारायण उसके समीप आये तब उन्हें देख, विस्मययुक्त हो, कुंतीने कहा कि-' हे देव ! यह प्रयोग तौ मैंने केवल चमत्कार देखनेके वास्ते किया

साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् ॥ तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥ ३२ ॥ तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मयमानसा ॥ प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥ अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् ॥ योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४॥ इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ॥ सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं सा त्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ॥ प्रपितामहस्तामुवाह पांडुर्वै सत्यविक्रमः ॥ ३६॥ श्रुतदेवां तु कारूषोवृद्धशर्मा समग्रहीत् ॥ यस्यामभूद्दंतवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ३७ ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविंदत ॥ संतर्दनादयस्तस्यां पंचासन्कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥

है, सो अभी तौ आप पधारो और मेरा अपराध क्षमा करें ॥ ३३ ॥ तब सूर्यने कहा कि-' हे देवि ! मेरा दर्शन अमोघ है, सो मैं तुझमें पुत्र उत्पन्न करूंगा, हे सुमध्यमे ! तू क्वांरी है, इसलिये जिस तरह तेरी योनि दूषित न होवेगी, वैसे मैं करदूंगा॥ ३४॥ ऐसे कह, कुंतीमें गर्भ धारण करके, सूर्यनारायण तौ आकाशमें चले गये और कुंतीके तुर्तही मानों दूसरा सूर्य हो वैसा कुमार प्रगट हुआ ॥ ३५ ॥ लोकनिंदासे डरती कुंतीने उसबालकको पेटीमें बंद करके, गंगाजीके जलमें छोड़ दिया. इस कुंतीका तुह्मारे परदादे सत्यपराक्रम पांडुने पाणिग्रहण किया ॥ ३६ ॥ वसुदेवजीकी दूसरी बहन श्रुतदेवा करूषदेशके राजा वृद्धशर्मासे व्याही गयी, जिसमें सनकादिकोंके श्रापसे दैत्य दंतवक्र पैदा हुआ ॥ ३७ ॥ श्रुतकीर्तिका केकयदेशके राजा धृष्टकेतुने पाणिग्रहण किया,

व देववर्द्धन ये चार पुत्र हुए और धृतदेवा शांतिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवी, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी ये सात कन्या हुईं, जिनका वसुदेवजीने पाणिग्रहण किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ उग्रसेनजीके कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान् ये नव पुत्र हुए ॥ २४ ॥ और कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू, राष्ट्रपालिका ये पांच कन्या हुईं, जो वसुदेवजीके छोटे भाइयोंसे व्याही गयीं ॥ २५ ॥ चित्ररथके पुत्र विदूरथके शूर, शूरके भजमान, उसके शिनि और शिनिके स्वयंभोज, उसके

शांतिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥ २३ ॥ कंसः सुनामा न्यग्रोधः कंकः शंकुः सुहूस्तथा ॥ राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयोः ॥ २४ ॥ कंसा कंसवती कंका शूरभू राष्ट्रपालिका ॥ उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥ शूरो विदूरथादासीद्भजमानः सुतस्ततः ॥ शिनिस्तस्मात्स्वयंभोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥ देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ॥ देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥ तस्यां स जनयामास दशपुत्रानकल्मषान् ॥ वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥ सृंजयं श्यामकं कंकं शमीकं वत्सकं वृकम् ॥ देवदुंदुभयोनेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥ वसुदेवं हरेः स्थानं वदंत्यानकदुंदुभिम् ॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पंच कन्यकाः ॥ कुंतेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१ ॥

हृदीक ॥ २६ ॥ और हृदीकके देवबाहु, शतधनु, कृतवर्मा और देवमीढ ये चार पुत्र हुए. देवमीढके शूर नाम पुत्र हुआ. शूरके मारिषानाम स्त्रीमें वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक ॥ २७ ॥ २८ ॥ सृंजय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक व वृक, ये दश पुत्र हुए जिन वसुदेवजीके जन्मसमयमें देवताओंके दुंदुभि बजे, इसलिये हरिभगवान्के प्रादुर्भावके आश्रय वसुदेवजीकोआनकदुंदुभिभी कहते हैं और शूरके पृथा (कुंती) श्रुतदेवा श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ये पांच कन्या हुईं. पृथा (कुन्ती) के

दो पुत्र हुए, अनमित्रके निम्न ॥ १२ ॥ निम्नके सत्राजित् और प्रसेन ये दो पुत्र हुए, अनमित्रके दूसरे पुत्र शिनिके सत्यक ॥ १३ ॥ सत्यकके युयुधान (सात्यकि) उसके जय, जयके कुणि, कुणिके युगंधर नाम पुत्र हुआ, अनमित्रके तीसरे पुत्र वृष्णिके ॥ १४ ॥ श्वफल्क और चित्ररथ ये दो पुत्र हुए, श्वफल्कके गांदिनी नाम स्त्रीमें ॥ १५ ॥ आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुविद, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न, गंधमाद और प्रतिबाहु ये बारह और अक्रूर मिलकर, तेरह

सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ॥ अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥ १३ ॥ युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ॥ युगंधरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥ श्वफल्कश्चित्ररथश्च गांदिन्यां च श्वफल्कतः ॥ अक्रूरप्रमुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसंगः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ॥ धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गंधमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ॥ तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥ देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ॥ पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनंदनाः ॥ १८ ॥ कुकुरो भजमानश्च शुचिः कंबलबर्हिषः ॥ कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥ कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुंबुरुः ॥ अंधको दुंदुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥ तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्द्धनः ॥ तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥

पुत्र हुए और सुवीरा नाम एक कन्या हुई. अक्रूरके देववान् और उपदेव ये दो पुत्र हुए ॥ १७ ॥ अक्रूरके चचे चित्ररथके पृथु व विदूरथआदि बहुतसे यदुनंदन हुए ॥ १८ ॥ सात्वतके छठे पुत्र अधंकके कुकुर, भजमान शुचि और कंबलबहिर्ष, ये चार पुत्र हुए, कुकुरके वन्हि और वन्हिके विलोमा ॥ १९ ॥ और विलोमाके कपोतरोमा और उसके अनु, कि-जिसका तुंबुरु नाम गंधर्व मित्र था, अनुके अंधक, अंधकके दुंदुभि, उसके अरिद्योत और उसके पुनर्वसु नाम पुत्र हुआ ॥ २० ॥ पुनर्वसुके आहुक नाम पुत्र और आहुकी नाम कन्या हुई. आहुकके देवक और उग्रसेन ये दो पुत्र हुए ॥ २१ ॥ महाराज ! देवकके देववान्, उपदेव, सुदेव,

व्योम, ॥ ३ ॥ उसके जीमूत, उसके विकृति, उसके भीमरथ, उसके नवरथ, उसके दशरथ, ॥ ४ ॥ उसके शकुनि, शकुनिके करंभि, उसके देवरात, उसके देवक्षत्र, उसके मधु, उसके कुरुवश, उसके अनु ॥ ५ ॥ हे आर्य ! उसके पुरुहोत्र, उसके आयु, उसके सात्वत और सात्वतके भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि देवावृध, अंधक और महाभोज ये सात पुत्र हुए. हे प्रभु ! भजमानके एक स्त्रीमें तो निम्लोचि, किंकिण और वृष्णि, ये तीन पुत्र हुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ और दूसरी स्त्रीमें शतजित्, सहस्रजित् और

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ॥ ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥ करंभिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ॥ देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ॥ भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोंऽधकः ॥६ ॥ सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ॥ भजमानस्य निम्लोचिः किंकिणो धृष्टिरेव च ॥७॥ एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ॥ शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥ ८ ॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः-श्लोकौ पठंत्यमू ॥ यथैव शृणुमो दूरात्संपश्यामस्तथांऽतिकात् ॥ ९ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥ येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ॥ महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसन् तदन्वये ॥ ११ ॥ वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परंतप ॥ शिनि स्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥

अयुतजित् नाम तीन पुत्र हुए, ॥ ८ ॥ सात्वके पाचवें पुत्र देवावृधके बभ्रुनाम पुत्र हुआ; इन देवावृध और बभ्रुके विषयमें दो श्लोक कहे जाते हैं सो ये हैं- " देवावृध और बभ्रुको जैसे दूरसे सुनतेथे, वैसेही समीप आनेपर, देखनेमें आये, ॥९॥ बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है और देवावृध देवतानके समान है, छह हजार पैंसठ और आठ यानी छह हजार तेहत्तर ६०७३ पुरुष बभ्रु तथा देवावृधके उपदेशसे मोक्षको प्राप्त हुए " सात्वतका सातवां पुत्र महाभोज बड़ा धर्मात्मा हुआ, उसके वंशमें भोज नाम एक कुल उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ ११ ॥ हे परंतप ! सात्वतके चतुर्थ पुत्र वृष्णिके सुमित्र, उसके युधाजित् उसके शिनि और अनमित्र ये

सकता था. एक समय शत्रुके घरसे भोज्या नाम कन्याका हरण कर, ॥ ३४ ॥ उसे रथमें बिठला कर, आ रहथा, उसे देखकर, शैब्याने क्रोध करके, कहा कि– 'हे कपटी ! मेरे बैठनेके रथमें इसे तू किसे बैठा लाया है ?' ॥ ३५ ॥ ज्यामघराजान उससे डरते २ कहा कि– 'यह तेरे पुत्रकी बहू है' शैब्या हँसती २ बोली कि– 'मैं वंध्या हूं और मेरे सौतभी नहीं है, सो मेरे पुत्रकी बहू कैसे संभवे ?' ॥ ३६ ॥ ज्यामघने कहा कि–'रानी ! तेरे जो पुत्र होगा, यह बहू उसके काम आवेगी' इस समय, देवता और पितर कि–जिनको ज्यामघके ऊपर बड़ी दया आयी; क्योंकि उस राजाने पहले उनका बहुत कालतक आराधन

रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ॥ ३५ ॥ स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयंती पतिमब्रवीत् ॥ अहं वंध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ॥ ३६ ॥ जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ अन्वमोदंत तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ॥ ३७ ॥ शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥ स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां विदर्भो जनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥ तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनंदनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ॥ उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥ क्रथस्य कुंतिः पुत्रोऽभूद्धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ॥ ततो दशार्हो नाम्नाऽभूत्तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥

किया था सो उन्होंने 'तथास्तु' ऐसा कहा ॥ ३७ ॥ तासों शैब्याको गर्भ रहा और उसके प्रसवसमयमें सुंदर कुमार प्रगट हुआ, इस कुमारका नाम विदर्भ कहलाता था; इसने अपने पिताकी लायीहुई सतीनाम कन्यासे व्याह किया ॥ ३८ ॥ इति श्रीभा॰महा॰नव॰रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ चौबीसवें अध्यायमें विदर्भके तीन पुत्रोंकी उत्पत्ति और रामकृष्णतक अनेक प्रकारके वंश कहे जायंगे ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–विदर्भराजाके भोज्या नाम स्त्रीमें कुश, क्रथ और रोमपाद ये तीन पुत्रहुए, तिनमेंसे रोमपाद कुलको आनंद देनेवाला हुआ ॥ १ ॥ महाराज ! रोमपादके बभ्रु, बभ्रुके कृति, उसके उशिक, उसके चेदि और उसके दमघोषआदि पुत्र हुए ॥ २ ॥ क्रथके कुंति, उसके धृष्टि, उसके निर्वृति, उसके दशार्ह, उसके

ऊर्जित ये पाच पुत्र बचे ॥ २६ ॥ जयध्वजके तालजंघ और उसके सौ पुत्र १०० हुए; जो तालजंघ नाम क्षत्रियोंका कुल और्वऋषिके प्रतापसे सगरके हाथ मारागया ॥ २७ ॥ तालजंघके पुत्रोंमें सबसे बड़ा वीतिहोत्र था, सहस्रार्जुनके पुत्र मधुके सौ १०० पुत्र हुए, उनमें वृष्णि सबसे बड़ा था, इन वृष्णि मधु व यदुके नामसे उनके वंशज माधव वृष्णि और यादव कहे जाते हैं. यदुके पुत्र क्रोष्टुके वृजिनवान्, ॥ २८ ॥ २९ ॥ उसके श्वाहि, उसके रुशेकु, उसके चित्ररथ, उसके शशबिंदु नाम पुत्र हुआ; यह

जयध्वजात्तालजंघस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ क्षत्रं यत्तालजंघाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥ २७ ॥ तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद्वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २८ ॥ माधवा वृष्णयो राजन्यादवाश्चेति संज्ञिताः ॥ यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥ २९ ॥ श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ॥ शशबिंदुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥ ३० ॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ॥ तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥ ३१ ॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ॥ तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥ ३२ ॥ धर्मो नामोशनास्तस्य हयमेधशतस्य याट् ॥ तत्सुतो रुचकस्तस्य पंचासन्नात्मजाः शृणु ॥ पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषु पृथुज्यामघसंज्ञिताः ॥ ३३ ॥ ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ नाविंदच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्यामहारषीत् ॥ ३४ ॥

शशबिंदु बड़ा योगी और बड़ा वैभवका भोक्ता हुआ ॥ ३० ॥ इसके पास चौदह महारत्न थे और यह चक्रवर्ती राजा किसीसे कभी पराभव नहीं पाया; इस महायशा राजाके दश हजार रानियां थीं ॥ ३१ ॥ जिनमें एक एक स्त्रीके लक्ष लक्ष पुत्र हुए यानी एक अरबपुत्र हुए. शशबिंदुके पुत्रोंमेंसे छह ६ पुत्र मुख्य थे, उनमेंसे पृथुश्रवाके धर्मनाम पुत्र हुआ ॥ ३२ ॥ उसके उशना पुत्र हुआ, जिसने सौ १०० अश्वमेध यज्ञ किये, उशनाके रुचक, उसके पांच पुत्र हुए सो सुनो; पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ ॥ ३३ ॥ ज्यामघके संतान नहीं था, तौभी शैब्या नाम अपनी स्त्रीके भयसे दूसरी स्त्री नहीं व्याह

महाराज ! अब ययातिके ज्येष्ठपुत्र यदुका वंश कि-जो महापवित्र और मनुष्योंके सब पापोंका हरण करनेवाला है, उसे कहता हूं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य यदुका वंश सुने, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाय; क्योंकि जहां परमात्मा हरि भगवान्‌ने मनुष्यका स्वरूप धरकर अवतार लिया है ॥ १९ ॥ यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु ये चार पुत्र हुए; सहस्रजित्‌के शतजित् ॥ २० ॥ शतजित्‌के महाहय, वेणुहय और हैहय ये तीन पुत्र हुए, हैहयके धर्म, धर्मके नेत्र नेत्रके कुंती ॥ २१ ॥ उसके सोहंजि, उसके महिष्मान् उसके भद्रसेनक, उसके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुए. धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा

ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥ १८ ॥ यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः ॥ १९ ॥ यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः ॥ २० ॥ महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥ धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुंतेः पिता ततः ॥ २१ ॥ सोहंजिरभवत्कुंतेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥ दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ॥ कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥ २२ ॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ॥ दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगमहागुणः ॥ २३ ॥ न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यंति पार्थिवाः ॥ यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥ २४ ॥ पंचाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः ॥ अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २५ ॥ तस्य पुत्रसहस्रेषु पंचैवोर्वरिता मृधे ॥ जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥ २६ ॥

और कृतौजा ये चार पुत्र हुए ॥ २२ ॥ कृतवीर्यके अर्जुन (सहस्रार्जुन) नाम पुत्र हुआ. यह राजा सातो द्वीपोंका मालिक हुआ. और भगवान्‌के अंशावतार गुरु दत्तात्रेयजीसे इसे योगकी सिद्धियां प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ कोईभी राजा यज्ञ, दान, तप, योग, शास्त्राभ्यास पराक्रम और जयआदिसे सहस्रार्जुनसे बराबरी नहीं कर सकता था ॥ २४ ॥ पचासी हजार ८५००० वर्षपर्यंत बलमें किसीतरहकी हानि न पहुंचते उसने छः इंद्रियोंके अखंड विषयोंका भोग किया और जो सहस्रार्जुनका स्मरण करता उसीसे उनका नाश नहीं होता ॥ २५ ॥ उसके हजारों पुत्र थे, परंतु परशुरामजीके युद्धमेंसे केवल जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और

इस रोमपादके चतुरंग और उसके पृथुलाक्ष पुत्र हुआ, पृथुलाक्षके बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु ये तीन पुत्र हुए ॥ १० ॥ बृहद्रथके बृहन्मना, उसके जयद्रथ, उसके विजय और विजयके संभूति नाम स्त्रीमें धृति नाम पुत्र हुआ ॥ ११ ॥ धृतिके धृतव्रत, उसके सत्कर्मा और उसके अधिरथ नाम पुत्र हुआ , यह अधिरथ गंगाजीके तीरपर क्रीड़ा कर रहा था, वहां जलमें बहतीहुई, एक पेटी नजर आयी, उसे बाहिर निकाल, खोलकर देखी तौ, उसमेंसे एक (कर्णनाम) बालक निकला, जिसे इस राजाने आप अपुत्र था इस लिये अपना पुत्र बना लिया ॥ ॥ १२ ॥ पांडवोंकी माता कुंती क्वांरी थी, उस समय सूर्यसे इसके

चतुरंगो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः॥ १० ॥ आद्याद्बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥ ११॥ ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥ योऽसौ गंगातटे क्रीडन्मंजूषांतर्गतं शिशुम् ॥ १२ ॥ कुंत्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत्सुतम् ॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ॥ १३ ॥ द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः॥ आरब्धस्तस्य गांधारस्तस्य धर्मसुतो धृतः ॥ १४ ॥ धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ १५॥ तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ त्रिभानुस्तत्सुतोस्यापि करंधम उदारधीः ॥ १६ ॥ मरुतस्तत्सुतो पुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ दुष्यंतः स पुनर्भेजे स्वं वंशं रज्यकामुकः ॥ १७ ॥

पुत्र उत्पन्न हुआ, उसे पेटीमें बंद कर, इसने गंगाजीके अंदर वह पेटी बहा दी, कि-जो पेटी अधिरथ राजाके हाथ लगी, पेटीमेंसे जो पुत्र निकला, वह ' कर्ण ' ऐसे नामसे विख्यात हुआ, कर्णके वृषसेन नाम पुत्र हुआ ॥ १३ ॥ ययातिके पुत्र द्रुह्युके बभ्रु, उसके सेतु, उसके आरब्ध, उसके गांधार, उसके धर्म, उसके धृत ॥ १४ ॥ उसके दुर्मना, उसके प्रचेता और प्रचेताके सौ पुत्र हुए, वे सब उत्तरदिशामें रहते म्लेच्छोंके अधिपति हुए ॥ १५ ॥ ययातिके पुत्र तुर्वसुके वन्हि, उसके भर्ग, उसके भानुमान, उसके त्रिभानु, उसके उदारबुद्धि करंधम ॥ १६ ॥ उसके मरुत नाम पुत्र हुआ. इसके पुत्र नहीं था, इसलिये पौरववंशी दुष्यंतसे उसने पुत्रका अनुभव किया और वह दुष्यंत राजा इच्छासे पीछा अपने पौरववंशको . प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

सभानर, चक्षु और परोक्ष ये तीन पुत्र हुए, उनमेंसे सभानरके कालनर, उसके सृंजय, ॥ १ ॥ उसके जनमेजय, उसके महाशील उसके महामना नाम पुत्र हुआ; महामनाके उशीनर और तितिक्षु दो पुत्र हुए, उशीनरके शिबि, वन, शमि और दक्ष ये चार पुत्र हुए ॥ २ ॥ शिबिके वृषादर्भ, सुवीर भद्र और कैकय ये चार पुत्र हुए. उशीनरके भाई तितिक्षुके रुशद्रथ ॥ ३ ॥ उसके हेम, उसके सुतपा, उसके बलि नाम पुत्र हुआ, बलिकी स्त्रीमें दीर्घतमा नाम ऋषिके वीर्यसे अंग, वंग, कलिंग, सुह्म, पुंड्र और अंध्र नाम छह क्षेत्रज पुत्र हुए; इन्होंने अपने २ नामसे पूर्व दिशाके अंग वंगआदि छह देश बसाये ॥ ४ ॥ ५ ॥ अंगके खनपान,

जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ॥ उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ॥ २ ॥ वृषादर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेय आत्मजाः ॥ शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ॥ ३ ॥ ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोभवत् ॥ अंगवंगकलिंगाद्याः ब्रह्मपुंड्रांध्रसंज्ञिताः ॥ ४ ॥ जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते ॥ ५ ॥ खनपानोंऽगतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजः ॥ ६ ॥ रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ शांतां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यश्रृंग उवाह ताम् ॥ ७ ॥ देवे ऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः ॥ स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ ८ ॥ प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजः प्रजाः ॥ ९ ॥

उसके दिविरथ, उसके धर्मरथ और उसके चित्ररथ पुत्र हुआ ॥ ६ ॥ चित्ररथका दूसरा नाम रोमपाद था और इसके संतान नहीं था रामचद्रजीके पिता दशरथजीने अपने मित्र रोमपादको अपनी कन्या शांता, कन्याकी तरह रखनेके वास्ते दीनी, उसका ऋष्यशृंग ऋषिने पाणिग्रहण किया ॥ ७ ॥ रोमपादके देशमें वर्षा नहीं हुई, तब कितनीएक वेश्यायें नृत्य, गीत, वादित्र, विलास, आलिंगन और पूजा भेंटोंसे मोहित कर, इस ऋष्यशृंग ऋषिको कि-जो हरिणीका पुत्र था रोमपाद राजाके नगरमें ले आयीं ॥ ८ ॥ इस ऋष्यशृंग ऋषिने दशरथ राजा कि-जो पहले अपुत्र था, उसे इंद्रकी इष्टि करायी, कि-जिससे दशरथजीके चार पुत्र हुए ॥ ९ ॥

बृहद्रथ, उसके सुदास, उसके शतानीक, ॥ ४२ ॥ उसके दुर्दमन, उसके बहीनर, उसके दंडपाणि, उसके निमि और उसके क्षेमक नाम पुत्र होगा ॥ ४३ ॥ देवता और ऋषिलोग जिसका सत्कार करते हैं; ऐसे भरद्वाजके पुत्र बृहत्क्षत्रका वंश कहा, सो यह वंश कलियुगमें क्षेमक राजासे नाश हो जायगा ॥ ४४ ॥ अब जरासंधके वंशके जो राजा होनेवाले हैं उनके नाम कहता हूं. जरासंधके पुत्र सहदेवके मार्जारि, उसके श्रुतश्रवा होगा ॥ ४५ ॥ उसके अयुतायु, उसके निरमित्र, उसके सुनक्षत्र, उसके बृहत्सेन, उसके कर्मजित् ॥ ४६ ॥ उसके सृतंजय, उसके विप्र, उसके शुचि,

शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ दंडपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ ४४ ॥ अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥ भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ ४५ ॥ ततो युतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥ सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद्बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ॥ ४६ ॥ ततः सृतंजयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः ॥ ४७ ॥ द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥ सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुंजयः ॥ बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च सुतास्त्रयः ॥ सभानरात्कालनरः सृंजयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥

उसके क्षेम, उसके सुव्रत, उससे धर्मसूत्र, उसके शम ॥ ४७ ॥ उसके द्युमत्सेन, उसके सुमति, उसके सुबल, उसके सुनीथ, उसके सत्यजित, उसके विश्वजित् और उसके रिपुंजय नाम पुत्र होगा; ये बृहद्रथ-(जरासंधके पिता) के वंशके राजा जो होनेवाले हैं वे हजारवर्षतक राज्य करेंगे (इसके पिछले राजा द्वादशस्कंधमें कहे जायंगे.) ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ तेईसवें अध्यायमें ययातिके पुत्र अनु, द्रुह्यु और तुर्वसुका वंश कहे पीछे ज्यामघ राजातक यदुका वंश कहा जायगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-ययातिके चतुर्थ पुत्र अनुके

भारतमें कुरुकुलका क्षय होनेपर, अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे तुम्हाराभी नाश होता था, पर भगवान्‌के प्रभावसे तुम मृत्युसे जीते बचे ॥ ३४ ॥ महाराज ! तुम्हारे जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन नाम ये चार पुत्र हैं ॥ ३५ ॥ इनमेंसे जनमेजय आपको तक्षकसर्पसे मरे जानकर, क्रोधसे सर्पयागका आरंभ कर, उस यागकी अग्निमें सर्पोंको होमेगा ॥ ३६ ॥ सब पृथ्वीको जीतकर, कावषेय कुलके ' तुर 'नाम ब्राह्मणको पुरोहित बनाकर, अश्वमेध यज्ञ करेगा और दूसरेभी यज्ञ करेगा

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ॥ श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ॥ सर्पान्वै सर्पयागाग्नौ सहोष्यति रुषान्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ॥ समंतात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७ ॥ तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ॥ अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥ सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ॥ असीमकृष्णस्तस्यापि निमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्या कौशांब्यां साधु वत्स्यति ॥ उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥ तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ॥ सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखी नलः ॥ ४१ ॥ परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ॥ नृपंजयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥ ४२ ॥

॥ ३७ ॥ इस जनमेजयके शतानीक नाम पुत्र होगा, वह याज्ञवल्क्य ऋषिसे तौ तीन वेद पढ़ेगा और कृपाचार्यसे अस्त्रविद्या सीखेगा और शौनकसे ब्रह्मविद्या प्राप्त होगा ॥ ३८ ॥ शतानीकके सहस्रानीक, उसके अश्वमेधक, उसके असीमकृष्ण, उसके निमिचक्र नामपुत्र होगा ॥ ३९ ॥ हस्तिनापुर गंगाके प्रवाहसे बह जायगा तब यह निमिचक्र कौशांबी नगरीमें भली भांति निवास करेगा, निमिचक्रके उक्त, उसके चित्ररथ उसके कविरथ ॥ ४० ॥ उसके वृष्टिमान्, उसके सुषेण, उसके सुनीथ,उसके नृचक्षु, उसके सुखीनल, ॥ ४१ ॥ उसके परिप्लव, उसके सुनय, उसके मेधावी, उसके नृपंजय, उसके दूर्व, उसके तिमि, उसके

वीर्यकी स्त्रियोंमें धृतराष्ट्र पाडु और विदुर, ये तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ २५ ॥ महाराज! धृतराष्ट्रके गांधारी नाम स्त्रीमें सौपुत्र हुए उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था और दुःशला नाम एक कन्या हुई ॥ २६ ॥ अरण्यमें मृगरूपसे रममाण ऋषि तथा ऋषिपत्नीके श्रापसे पांडुराजा मैथुनसे रुक रहा, तद इस पांडुकी स्त्री कुंतीमें धर्म, वायु और इंद्रके अंशसे युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन ये तीन महारथ पुत्र हुए ॥ २७ ॥ और माद्री नाम दूसरी स्त्रीमें अश्विनीकुमारोंसे नकुल और सहदेव ये दो पुत्र हुए. इन पाचों पांडवोंसे द्रौपदी नाम स्त्रीमें पांच पुत्र हुए, जो तुम्हारे काके थे ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरसे प्रतिविंध्य, भीमसे श्रुतसेन, अर्जुनसे

गांधार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ॥ तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥ २६ ॥ शापान्मैथुनरुद्धस्य पांडोः कुंत्यां महारथाः ॥ जाता धर्मानिलेंद्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥ २७ ॥ नकुलः सहदेवश्च माद्यां नासत्यदस्रयोः ॥ द्रौपद्यां पंच पंचभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरात्प्रतिविंध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ॥ अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथापरे ॥ युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिंबायां काल्यां सर्वगतस्ततः ॥ सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयासूत पार्वती ॥ ३१ ॥ करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथाऽर्जुनः ॥ इरावंतमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ॥ सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥

श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीक ॥ २९ ॥ महाराज ! सहदेवसे श्रुतकर्मा नाम पुत्र हुआ. युधिष्ठिरके दूसरी स्त्री पौरवीमें देवक नाम पुत्र हुआ, भीमसेनके हिडिंबामें घटोत्कच पुत्र हुआ और काली नाम स्त्रीमें सर्वगत पुत्र हुआ; सहदेवके पर्वतके राजाकी कन्या विजयामें सुहोत्र नाम पुत्र हुआ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ नकुलके करेणुमती नाम स्त्रीमें निरमित्र नाम पुत्र हुआ, अर्जुनके उलूपीनाम नागकन्यामें इरावान्, मणिपूरके राजाकी कन्या चित्रांगदामें बभ्रुवाहन और सुभद्रामें तुह्मारा पिता अभिमन्यु नाम पुत्र हुआ, इनमेंसे बभ्रुवाहन कि-जो अर्जुनका पुत्र था, तौभी उसके नानेके किये पुत्रिकाधर्म (ठैरावके) अनुसार वह नानेका पुत्र हो कर रहा; अभिमन्युके उत्तरा नाम स्त्रीमें महावीर और सब अतिरथियोंको जीतनेवाले तुम पुत्र उत्पन्न हुए हो ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

देवापि पतित होनेके कारण राजके योग्य न रहा, तब शंतनुभी पीछा लौट आया और उसका कुछभी दोष न रहनेसे वर्षाभी हो गयी, यह देवापि अभी योग धारण करके, कलापग्राममें रहता है ॥ १७ ॥ जब कलियुगमें चंद्रवंश नष्ट हो जायगा तब सत्ययुगके प्रारंभमें पीछा चंद्रवंशको स्थापित करेगा, बाल्हीकके सोमदत्त और सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल ये तीन पुत्र हुए ॥ १८ ॥ शंतनुके गंगामें सकल धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, महावैष्णव विद्वान् और वीरपुरुषोंके यूथोंमें अग्रणी आत्मवान् भीष्म नाम पुत्र हुए ॥ १९ ॥ जिन भीष्मने युद्धमें परशुरामजीकोभी प्रसन्न किया. शंतनुके धीमरकी कन्या सत्यवतीमें चित्रांगद

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ॥ बाल्हीकात्सोमदत्तोभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः॥१८॥ शलश्च शंतनोरासीद्गंगायां भीष्म आत्मवान् ॥ सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥ वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ॥ शंतनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्रांगदः सुतः ॥ २० ॥ विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्रांगदो हतः ॥ यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥ वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ॥ हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥ २२ ॥ मह्यं पुत्राय शांताय परं गुह्यमिदं जगौ ॥ विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥ २३ ॥ स्वयंवरादुपानीते अंबिकांबालिके उभे ॥ तयो रासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥ २४ ॥ क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ॥ धृतराष्ट्रं च पांडुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ २५ ॥

और विचित्रवीर्य ये दो पुत्र हुए, उनमेंसे चित्रांगद तो, चित्रांगद नाम एक गंधर्वके हाथ मारागया. शंतनु राजाकी दूसरी स्त्री सत्यवती जब क्वांरी थी तब उसमें पराशरऋषिसे साक्षात् भगवान्‌की कलारूप वेदव्यासजी प्रगट हुए कि–जिन्होंने वेदकी रक्षा की. कि–जिनसे मैं भागवत नाम पुराण पढ़ा हूं, इन वेदव्यासजीने अपने शिष्य पैलआदि ऋषियोंको इस परम गुह्य भागवतका उपदेश न करते मैं जो उनका पुत्र हूं उसे शांतस्वभाव जानकर, उपदेश किया. विचित्रवीर्यने भीष्मजीकी स्वयंवरमेंसे बलात्कारसे लाईहुई अंबिका और अंबालिका नाम काशिराजकी दो कन्याओंके साथ व्याह किया, वह उनमें ऐसा आसक्तचित्त हो गया कि–क्षयरोगसे अपुत्रही मर गया ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ फिर वेदव्यासजीने अपनी माता सत्यवतीके कहनेसे अपने अपुत्र भाई विचित्र-

नाम पुत्र पैदा हुआ. कुरुके पुत्र परीक्षितके संतान नहीं हुवा. कुरुके पुत्र जन्हुके सुरथ ॥ ९ ॥ और सुरथके विदूरथ, उसके सार्वभौम, उसके जयसेन, उसके राधिक, उसके अयुत, ॥ १० ॥ उसके क्रोधन, उसके देवातिथि, उसके ऋष्य, उसके दिलीप और दिलीपके प्रतीप पुत्र हुआ ॥ ११ ॥ प्रतीपके देवापि, शंतनु और बाल्हीक ये तीन पुत्र हुए, पिताके राजको छोड़कर, देवापि तौ वनमें चलागया ॥ १२ ॥ तद शंतनु राजा हुआ, जो पूर्वजन्ममें 'महाभिष' नाम था. यह शंतनु राजा अपने हाथसे जिसका स्पर्श करता वह मनुष्य वृद्ध होता सोभी युवा हो जाता ॥ १३ ॥ और परमशांतिको प्राप्त हो जाता, तासों उसका

ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततोऽभवत् ॥ जयसेनस्तत्तनयो राधिकोतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥ ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च ॥ ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥ ११ ॥ देवापिः शंतनुस्तस्य बाल्हीक इति चात्मजाः ॥ पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥ १२ ॥ अभवच्छंतनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः ॥ यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥ १३ ॥ शांतिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शंतनुः ॥ समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४ ॥ शंतनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ता त्वमग्रभुक् ॥ राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५ ॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छंदयामास सोऽब्रवीत् ॥ तन्मंत्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥ १६ ॥ वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह ॥ देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥ १७ ॥

'शंतनु' नाम पड़ा. जब इसके राजमें बारह वर्षतक वर्षा न हुई, ॥ १४ ॥ तद ब्राह्मणोंने शंतनुसे कहा कि-तू तेरे बड़े भाईके जीते उसके अधिकारका राज्य करता है, तासों तू परिवेत्तापनका दोषभागी है सो उस दोषकी निवृत्तिके वास्ते बड़े भाई देवापिको राज देवे तौ वर्षा होवे ॥ १५ ॥ इसतरह ब्राह्मणोंने कहा तद शंतनुने नगर और देशकी वृद्धिके वास्ते बड़े भाईको समझाकर, राज्य देनेकी तैयारी करी, तद शंतनुके मंत्रियोंने इस बातको ठीक न समझकर, उससे पहलेही कितने एक ब्राह्मणोंको भेज, उनके द्वारा पाखंडमतका उपदेश कराय, देवापिको वेदमार्गसे भ्रष्ट करके, नास्तिक बना दिया ॥ १६ ॥ फिर शंतनुने देवापिके पास जाकर, प्रार्थना की तद देवापिने बहुत कुछ बेदकी निंदा की, उसीसे वह

और उसके सोमक नाम पुत्र हुआ, उसके सौ १०० पुत्र हुए तिनमें सबसे बड़ा तो जंतु और सबसे छोटा पृषत नाम पुत्र था पृषतके द्रुपद और द्रुपदके द्रौपदी नाम कन्या और धृष्टद्युम्नआदि पुत्र हुए ॥ १ ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नके, धृष्टकेतु ये भर्म्याश्वके पंचालवंशी राजा कहेगये. महराज ! पूर्वोक्त हस्तीके पुत्र अजमीढ़के चौथा वंश और चला. अजमीढ़के ऋक्ष, ऋक्षके संवरण नाम पुत्र हुआ, ॥ ३ ॥ सूर्यकी कन्या तपतीमें इस संवरणके कुरु नाम पुत्र हुआ, जो कुरुक्षेत्रका अधिपति था, कुरुके परीक्षित, सुधनु, जन्हु और निषधाश्व ये चार पुत्र हुए ॥ ४ ॥ सुधनुके सुहोत्र नाम पुत्र हुआ, उसके च्यवन, उसके कृती और उसके

तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुतः ॥ द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नाद्धृष्टकेतुर्भार्म्याः पंचालका इमे ॥ योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ॥ परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोः सुताः ॥ ४ ॥ सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोथ ततः कृती ॥ वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥ कुशांबमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ॥ बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥ ६ ॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जह्नुः ॥ अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥ ७ ॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसंधिते ॥ जीव जीवेति क्रीडंत्या जरासंधोऽभवत्सुतः ॥ ८ ॥ ततश्च सहदेवोऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ परीक्षिदनपत्योऽभूत्सुरथो नाम जाह्नवः ॥ ९ ॥

उपरिचर वसु नाम पुत्र हुआ. उपरिचरके बृहद्रथ, कुशांब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिपआदिपुत्र हुए जो चेदिदेशके राजा थे. बृहद्रथके कुशाग्र, उसके ऋषभ, उसके सत्यहित, उसके पुष्पवान् और उसके जह्नु नाम पुत्र हुआ, इस बृहद्रथके दूसरी स्त्रीमें देहका आधा एक तरफका भाग और आधा एक तरफका भाग ऐसे दो खंड पैदा हुआ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ इन दोनों खंडोंको बृहद्रथकी स्त्रीने बाहिर फेंक दी वहां जरा नाम राक्षसीने 'जीव जीव ' ऐसे कहकर, उन्हे सांध दी, जिससे जरा नाम राक्षसीने उसे सांधा तिससे उसपुत्रका जरासंध नाम हुआ ॥ ८ ॥ जरासंधके सहदेव, उसके सोमपि और उसके श्रुतश्रवा

अजमीढ़के नलिनी नाम स्त्रीमें नील नाम पुत्र हुआ, नीलके शाति, शांतिके सुशांति, उसके पुरुज, उसके अर्क और उसके भर्म्याश्व नाम पुत्र हुआ और उसके मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु, कांपिल्य व संजय ये पांच पुत्र हुए, भर्म्याश्वने कहा कि–'ये मेरे पांच पुत्र पांच देशोंकी रक्षा करनेके वास्ते समर्थ हैं' तासों ये पंचाल नामसे प्रसिद्ध हुए. मुद्गलसे मौद्गल्यगोत्री ब्राह्मण उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलके एक मिथुन पैदा हुआ, उसमें जो पुत्र था, वह तौ दिवोदास और जो कन्या थी वह अहल्या थी, अहल्याके गौतमजीसे शतानंद नाम पुत्र हुआ ॥ ३४ ॥ शतानंदके धनुर्वेदमें निपुण सत्यधृति नाम पुत्र हुआ और उसके शरद्वान् नाम पुत्र हुआ. उर्वशी अप्सराके देखनेसे इस शरद्वान् मुनिका वीर्य कासके गुच्छेमें पड़ा,

यवीनरो बृहदिषुः कांपिल्यः संजयः सुताः ॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पंचाना रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥ विषयाणामलमिमे इति पंचालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद्ब्रह्मनिर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानंदस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ॥ शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल॥ शरस्तंबे पतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ ३५ ॥ तद्दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छंतनुर्मृगयां चरन् ॥ कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥३६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच॥ मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृपः ॥ सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जंतुजन्मकृत् ॥ १ ॥

उससे एक सुंदर मिथुन उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ शंतनु राजा मृगयाके वास्ते वनमें गया था, वहां यह मिथुन उसके नजर आया वह कृपा करके उस मिथुनको ले आया, इन मिथुनमें जो पुरुष था वह तौ कृपाचार्य और जो कन्या थी वह द्रोणाचार्यकी स्त्री कृपी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ बाईसवें अध्यायमें दिवोदासका वंश कहे पीछे ऋक्षके वंशमें जरासंध, युधिष्ठिर और दुर्योधनआदि पुत्र हुए यह कथा कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! दिवादासके मित्रेयु, उसके च्यवन, उसके उदास, उसके सहदेव

और उसके सौ १०० पुत्र हुए ॥ २४ ॥ इस नीप राजाके कृत्वी नाम शुकदेवजीकी [1]कन्यामें ब्रह्मदत्त नाम पुत्र हुआ, इस योगी ब्रह्मदत्तके सरस्वती नाम स्त्रीमें विष्वक्सेन नाम पुत्र हुआ ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तने जैगीषव्यके उपदेशसे एक योगका ग्रंथ बनाया, विष्वक्सेनके उदक्स्वन नाम पुत्र हुआ और उसके भल्लाद नाम पुत्र हुआ, ये बृहदिषुके वंशके राजा कहे गये ॥ २६ ॥ बृहदिषुके चचे द्विमीढ़के यवीनर, उसके कृतिमान्, उसके सत्यधृति, उसके दृढ़नेमि, उसके सुपार्श्व, ॥ २७ ॥ उसके सुमति,

स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ॥ स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥ २५ ॥ जैगीषव्योपदेशेन योगतंत्रं चकार ह ॥ उदक्स्वनस्ततस्तस्माद्भल्लोदो बार्हदीषवाः ॥ २६ ॥ यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ॥ नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७ ॥ सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः संनतिमांस्ततः ॥ कृती हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८ ॥ संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ॥ तस्य क्षेम्याः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुंजयः ॥ २९॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ॥ नलिन्यामजमीढस्य नीलः शांतिः सुतस्ततः ॥ ३० ॥ शांतेः सुशांतिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ॥ भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पंचासन्मुद्गालादयः ॥ ३१ ॥

उसके सन्नतिमान और उसके कृती नाम पुत्र हुआ, इस कृतीराजाने हिरण्यनाभसे योगविद्या सीखकर अपने शिष्योंको प्राच्य सामकी छह संहिता विभागकर, पढ़ायी ॥ २८ ॥ कृतीके नीप, उसके उग्रायुध, उसके क्षेमा, उसके सुवीर उसके रिपुंजय ॥ २९ ॥ और उसके बहुरथ नाम पुत्र हुआ, हस्तीके पुत्र पुरुमीढ़के संतान नहीं था, हस्तीका ज्येष्ठ पुत्र अजमीढ़ कि–जिसके एक वंशमें प्रियमेधआदि ब्राह्मण पुत्र हुए और दूसरे वंशमें बृहदिषुआदि क्षत्रिय पुत्र हुए. अब तीसरा वंश कहता हूं सो सुनो.

---

[1] शुकदेवजी तौ नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे उनकी कन्या कहनेसे शंका होती है, पर उसका समाधान यह है कि–जब शुकदेवजी जन्मतेही संन्यास ले, वनमें चले और पीछे पीछे व्यासजी चले और अत्यंत करुणा करी. तद योगिराज शुकदेवजीने पिताको प्रसन्न रखनेके लिये एक छायाशुक प्रगट करदिया. वह छायाशुक बेदव्यासजीके पास रहने लगा. इस छायाशुकने पितरोंकी वीरणी नाम कन्याके साथ विवाह किया. उसमें इनके यह कृत्वीनाम कन्या हुई कि–जिसके ब्रह्मदत्त नाम पुत्र हुआ.

कुत्ते आदिका स्वरूप धारण कर आये थे, उन्होंने रंतिदेव राजाको अपने २ स्वरूपसे दर्शन दिया ॥ १५ ॥ आसक्तिरहित और निस्पृह राजाने उन्हें प्रणाम कर, वासुदेव भगवान्‌की भक्तिसे फिर नमस्कारही किया, पर कुछ नहीं मांगा ॥ १६ ॥ महाराज ! अनन्यभक्त उस राजाने अपना चित्त केवल परमेश्वरहीमें लगा दिया था, तासों उसकी गुणमय माया स्वप्नसमान बिलाय गयी ॥ १७ ॥ उस रंतिदेव राजाके प्रसंगके प्रभावसे रंतिदेवके अनुसरण करनेवालेभी सब लोग योगी और नारायणके परमभक्त हुए ॥ १८ ॥ मुन्यके गर्गनाम पुत्र हुआ, उसके शिनि और शिनिके गार्ग्य नाम पुत्र हुआ, ये क्षत्रियोंमेंसे ब्राह्मण पैदा हुए, मन्युके

स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसंगो विगतस्पृहः ॥ वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे नमः परम् ॥ १६ ॥ ईश्वरालंबनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ॥ माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसंगानुभावेन रंतिदेवानुवर्त्तिनः ॥ अभवन्योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥ गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत ॥ दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोभूद्धस्तीयद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ॥ अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१ ॥ अजमीढाद्बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ॥ बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥ तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित्समजायत ॥ रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४ ॥

पुत्र महावीर्यके दुरितक्षय पुत्र हुआ और उसके त्रय्यारुणी, कवि और पुष्करारणी ये तीन पुत्र हुए. जो ब्राह्मणगतिको प्राप्त हुए. मन्युके पुत्र बृहत्क्षत्रके हस्ती नाम पुत्र हुआ, जिसने हस्तिनापुर बसाया ॥ १९ ॥ २० ॥ हस्तीके अजमीढ़, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़, ये तीन पुत्र हुए, अजमीढ़के वंशमें प्रियमेधआदि ब्राह्मण पुत्र हुए ॥ २१ ॥ अजमीढ़के दूसरा बृहदिषुनाम पुत्र हुआ, उसके बृहद्धनु उसके बृहत्काय, उसके जयद्रथ, ॥ २२ ॥ उसके विशद, उसके सेनजित और सेनजितके रुचिराश्व, दृढ़हनु, काश्य और वत्स ये चार पुत्र हुए ॥ २३ ॥ रुचिराश्वके पार, और पारके पृथुसेन नाम पुत्र हुआ, पारके दूसरा नीपनाम पुत्र हुआ

लिये एक दूसरा अतिथि चला आया और उसने कहा कि,–हे राजा ! मैं और मेरे कुत्ते सब भूखे हैं, तासों हमें अन्न दीजिये, ॥ ८ ॥ उस राजाने शेष जो अन्न रहा था, वहभी बड़े आदरभावसे उन्हें देकर, कुत्तोंको और उनके स्वामीको प्रणाम किया ॥ ९॥ तदनंतर केवल जलमात्र शेष रहा सो वहभी कितना कि–जिससे केवल एक आदमी तृप्त हो. राजा उसे पीने लगा, इत नेमें एक चांडाल आया और बोला कि–' मुझ नीचको जल दीजिये, ॥ १० ॥ महाराज ! अति परिश्रम-भरी उसकी करुण वाणी सुनकर, राजाने दयासे अतिसंतप्त होकर, अमृतसा यह वक्ष्यमाण वचन कहा कि– ॥ ११ ॥ 'मैं परमेश्वरसे न तौ अष्टसिद्धियुक्त ऐश्वर्य मांगता हूं और न मुझे मोक्षकी इच्छा है, मेरी तौ

स आदृत्यावसिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम् ॥ तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानी-यमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ॥ पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥ १० ॥ तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ॥ कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥ न कामयेऽहं ग-तिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ॥ आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामंतः स्थितो येन भवंत्यदुःखाः ॥ १२ ॥ क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ॥ सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जंतो-र्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३ ॥ इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ॥ पुल्कसायाददा-द्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥ तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ॥ आत्मानं दर्श-यांचक्रुर्मायाविष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥

ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि–सब प्राणियोंके अंदर रहकर, सबका दुःख मैं भोगा करूं जिससे सब सुखी हो जांय. सब जीवोंका दुःख निवृत्त होवे इसे मैं मेरा दुःख मिटना समझता हूं ॥ १२ ॥ इस कृपण प्राणीको मैं जीवनका हेतु जल दूंगा, तिससे इसकी भूख, प्यास, शरीरका श्रम, दीनता , थकाहट, क्लम, शोक, विषाद और मोह ये सब निवृत्त हो जांयगे ॥ १३ ऐसा कह कर, वह आप प्याससे मरता था परंतु स्वभावसे करुण व धीर राजाने चांडालको जल दिया ॥ १४ ॥ फल चाहनेवाले पुरुषोंको फल देनेवाले त्रिलोकीके नाथ, ब्रह्मादिक देवता कि–जो भगवान्‌की मायासे

नाम वितथ हुआ. इस भरद्वाजके मन्यु, उसके बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पांच पुत्र हुए, नरके संकृति पुत्र हुआ ॥ १ ॥ महाराज ! संकृतिके गुरु और रंतिदेव दो पुत्र हुए, रंतिदेवका यश इस लोकमें और परलोकमें दोनों जगह गाया जाता है ॥ २ ॥ वह राजा जो अकस्मात् धन आ जाता, उसीसे अपना निर्वाह किया करता और जो कुछ पास होता वह सब देदिया करता और जो नया मिलता उसीको भोगके काममें लाता, अतएव इसके पास कुछ नहीं रहता, तौभी धीरजको कभी नहीं छोड़ता, एक समय कुटुंबसहित आप अतिदुःखी होगया ॥ ३ ॥ यानी अड़तालीस दिन बीत गये जिसमें पीनेको जलभी न मिला

गुरुश्च रंतिदेवश्च संकृतेः पांडुनंदन ॥ रंतिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥ २ ॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ॥ निष्किंचनस्य धीरस्य सकुटुंबस्य सीदतः ॥ ३ ॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल ॥ घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुंबस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ॥ अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥ तस्मै संव्यभजत्सोन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ॥ हरिं सर्वत्र संपश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥ अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ॥ विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७ ॥ याते शूद्रे तमन्योगादतिथिः श्वभिरावृतः ॥ राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८ ॥

उनचासवें दिन प्रात होनेही घृत, खीर और लपसी व जल ये अकस्मात् आ प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ इसके कुटुंबकी तौ यह दशा थी कि—भूख और प्याससे कांपता था और बड़ा कष्ट पाता था सो कुटुंबके साथ इसने भोजनकी तैयारी की— इतनेमें एक ब्राह्मण अतिथि बन कर, आया ॥ ५ ॥ सबमें जिसकी भगवद्दृष्टि है ऐसे, उस राजाने श्रद्धासे आदरपूर्वक इस ब्राह्मणको अपने अन्नमेंसे भोजन कराया, वह ब्राह्मण भोजन करके चला गया तद ॥ ६ ॥ महाराज ! शेष अन्नसे राजा भोजनकी तैयारी करता था इतनेमें एक शूद्र आ निकला, तद हरिका स्मरण करके उसेभी अपने अन्नमेंसे विभाग दे दिया ॥ ७ ॥ शूद्र गया, इतनेमें कुत्ते

बृहस्पति किसी समय चोरीसे मैथुन करने लगे, तद दूसरे गर्भका अवकाश न रहनेसे, उसके गर्भमें रहे पुत्रने गाली देकर, बृहस्पतिको मना किया तौभी उसका कहना न मान कर, क्रोधसे बृहस्पतिने उस गर्भको 'तू अंधा हो' ऐसा श्राप देकर, बलात्कारसे वीर्यसेचन किया. बृहस्पतिके श्रापसे वह दीर्घतमा अंधा हो गया, परंतु अपनी एँड़ीके प्रहारसे बृहस्पतिका वीर्य उसने योनिसे बाहिर निकाल दिया, तद वह बृहस्पतिका वीर्य पृथ्वीपर पड़ा और उससे तुर्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ इस पुत्रको छोड़कर, ममता जाने लगी, तद बृहस्पतिने उससे कहा कि-' अरे ! मूढ़ स्त्री ! तू और मै आपन दोनोंसे यह पुत्र पैदा हुआ है तासों तू इसका पोषण कर, ममता बोली कि-हे बृहस्पति ! आपन दोनोंसे यह पुत्र अन्यायके रस्ते पैदा हुआ है तासों इसका तुम पोषण करो, इस तरह विवाद करते ये दोनों बृहस्पति और ममता इसे छोड़कर, जाते रहे. तासों इस पुत्रका

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम् ॥ नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३६ ॥ मूढे भरद्वाजमिमं भरद्वाजं बृहस्पते ॥ यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३७ ॥ चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥ व्यसृजन्मरुतो बिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥ महावीर्यो नरो गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥

नाम ' भरद्वाज' हुआ, क्योंकि- ' भर '(पोषणकर) और ' द्वाज' (दोनोंसे उत्पन्न) ऐसा शब्द उनके विवादमें कहा गया था. महाराज ! अपने पतिके त्यागके डरसे शंकायुक्त ममता उस परवीर्यज पुत्रको छोड़ने लगी, तद देवतानने बृहस्पति और ममताके विवादको श्लोकके रूपमें रचकर, एक श्लोक कि-जिससे इसपुत्रका नाम पड़ा वह ममताके पास कहा और समझाया कि-' यह पुत्र तेराभी है तासों तेरा पति त्याग नहीं करेगा ' ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इसतरह देवताओंने प्रेरणा की तथापि, ' यह व्यभिचारसे उत्पन्न पुत्र व्यर्थही है ' ऐसे जान, उसे छोड़कर, ममता चलीगयी, तद मरुत देवतोंने उस पुत्रको पाल कर, बड़ा किया और उन्होंने भरतके वंशको जाता देखकर, भरतको दिया ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ इक्कीसवें अध्यायमें भरतका वंश कहते उसमें रंतिदेव और अजमीढ़आदि राजाओंकी कीर्तिका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-वंश व्यर्थ जाने लगा तद दिया गया इसलिये इसका दूसरा

वैसे इस भरतराजाके बड़े कामोंको न तो कोई पूर्वज पहुंचे और न पहुंचेंगे ॥ २८ ॥ महाराज ! इस राजाने किरात, हूण, यवन, अंध्र, कंक, खश और शक जातिके सब अधम राजाओंका और म्लेच्छोंका दिग्विजयमें संहार किया ॥ २९ ॥ पहले देवतानको जीतकर, जो बलवान् दैत्य पातालमें जा रहे और देवतानकी स्त्रियोंको छीनकर, पातालमें हर लेगये, उन देवांगनाओंको भरत पीछी ले आया ॥ ३० ॥ आकाश और पृथ्वी, भरतकी प्रजाके सब मनोरथ पूर्ण करते थे, सत्ताईस सहस्र वर्षतक चारों दिशाओंमें उसने अखंड राज्य किया ॥ ३१ ॥ यह चक्रवर्ती राजा अपना लोकपालोंके समान ऐश्वर्य, चक्रवर्तीपनकी लक्ष्मी, अस्खलित आज्ञा और प्राण ये सब मिथ्या हैं ऐसा विचार कर, मनमें वैराग्य रखता था ॥ ३२ ॥ हे राजा ! उसके विदर्भवंशकी अतिप्यारी तीन स्त्रियां थीं, इनके जो जो पुत्र होते उन्हें देखकर, ' ये पुत्र मेरे जैसे नहीं हैं ' ऐसे भरत राजा कहता, तब ' व्यभिचारकी शंकासे हमारा त्याग कर, देगा ' ऐसे भयसे वे स्त्रियां उन पुत्रोंको मार डालतीं ॥ ३३ ॥ इसतरह वंश जाने लगा, तब वंश रखनेके वास्ते भरतराजाने मरुत्सोम नामका यज्ञ करके, मरुतदेवताओंका यजन किया, तब मरुतदेवोंने उसे भरद्वाज नाम पुत्र दिया ॥ ३४ ॥ महाराज भरद्वाज नाम इसतरह पड़ा है कि—अपने भाई उतथ्यकी ममता नाम स्त्रीमें

किरातहूणान्यवनानंध्रान्कंकान्खशान् शकान् ॥ अब्रह्मण्यान्नृपांश्चाहन्म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् ॥ २९ ॥ जित्वा पुराऽसुरा देवान्ये रसौकांसि भेजिरे ॥ देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३० ॥ सर्वकामान्दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ॥ समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥ स सम्राट् लोकपालाख्यमैश्वर्यमाधिराट्श्रियम् ॥ चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३२ ॥ तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः ॥ जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ॥ ३३ ॥ तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ॥ मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३४ ॥ अंतर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ॥ प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३५ ॥

निर्णेता यमराजकी सभासे यह न्याय होता है कि-पिताको पुत्र मिले, क्योंकि वंशको रखनेवाला पुत्र पिताको पुंनाम नरकसे तिरा देता है. तासों पुत्र कहलाता है और शकुंतलाके गर्भ रखनेवाले तुम हो, यह बात शकुंतला सत्य कहती है' इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजीने कहा कि-महाराज! आकाशवाणीके कहनेसे दुष्यंतने पुत्र और स्त्रीको स्वीकार किया॥ २२॥ दुष्यंतके मरे पीछे भरत बड़ा कीर्तिमान् चक्रवर्ती राजा हुआ, भगवान्‌के अंशसे प्रगट हुए इस भरतका यश पृथ्वीपर ऋग्वेदके मंत्रोंसे गाया जाता है॥ २३॥ इसके दाहिने हाथमें तौ चक्रका चिन्ह था और चरणोंमें कमलकोशका चिन्ह था. महाभिषेककी विधिसे अभिषिक्त इस चक्रवर्ती राजाने मामतेय (ममताके) पुत्र दीर्घतामस नाम मुनिको पुरोहित बनाकर, गंगाजीके तीरपर पचपन ५५

पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः॥ महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि॥ चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः॥ २३॥ ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्विभुः पंचपंचाशता मेध्यैर्गंगायामनुवाजिभिः॥ मामंतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः॥ २४॥ अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबंध प्रददद्वसु॥ भरतस्य हि दौष्यंतेरग्निः साचीगुणेचितः॥ सहस्रं बद्वशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा विभेजिरे॥ २५॥ त्रयस्त्रिंगच्छतं ह्यश्वान्बद्ध्वा विस्मापयन्नृपान्॥ दौष्यंतिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ॥ २६॥ मृगान् शुक्लदतः कृष्णान्हिरण्येन परीवृतान्॥ आदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश॥ २७॥ भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः॥ नैवापुर्नैव प्राप्स्यंति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा॥ २८॥

अश्वमेध यज्ञ किये और अतिधन देनेवाले इस राजाने यमुनाजीके तीरपर अठत्तर ७८ पवित्र घोड़े बांधे, यानी ७८ अश्वमेध यज्ञ किये. इस दुष्यंतके पुत्र भरतने प्रशस्त गुणवाले प्रदेशमें अग्निचयन (एक वेदोक्त कर्म) किया. जिसमें हजार ब्राह्मण कि-जिनमें एक एकको एक एक बद्ध (तेरह हजार चौरासी १३०८४) गायें मिलीं॥ २४॥ २५॥ एकसौ तेंतीस १३३ घोड़े बांधकर, राजाओंको विस्मित करता यह राजा वैभवमें देवताओंसेभी आगे बढ़ निकला, क्योंकि यह हरि भगवान्‌को प्राप्त हुआ था॥ २६॥ इस राजाने मष्णारनाम कर्ममें श्वेत दांतवाले, कृष्णवर्ण और सुवर्णसे सिंगारेहुए चौदह लाख १४००००० मृगजातिके हाथी दिये॥ २७॥ जैसे कोईभी पूर्वज पुरुष हाथसे स्वर्गको न तौ पहुंचे और न पहुंचेंगे,

इच्छा हो तौ भोजन करो, और जो आपकी मरजी हो तौ यहां रहो' ॥ १४ ॥ दुष्यन्तने कहा कि–'हे सुभ्रु ! तू कुशिकके वंशमें प्रगट हुई है, सो तेरी जो यह बात है सो ठीक है; क्योंकि राजाओंकी कन्या अपने सदृश वरको स्वयं (आप) ही वरा करती हैं' ॥ १५ ॥ शकुन्तलाने हामी भरी, तद देशकालके विभागके जाननेवाले उस दुष्यंतने गांधर्वविवाहकी रीतिसे उसके साथ व्याह किया ॥ १६ ॥ अमोघवीर्य उस राजर्षिने रानी शकुंतलामें गर्भ धारण किया और दूसरे दिन भोर होतेही वह अपने नगर चल दिया; फिर शकुंतलाके प्रसवके समयमें पुत्र पैदा हुआ ॥ १७ ॥ कण्वमुनिने वनमें उस कुमारके जातकर्मादिक सब

दुष्यंत उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ॥ स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥ १५ ॥ ओमित्युक्ते यथा धर्ममुपयेमे शकुंतलाम् ॥ गांधर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥ १६ ॥ अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ॥ श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १७ ॥ कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुदिताः क्रियाः ॥ बध्वा मृगेंद्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १८ ॥ तं दुरत्ययविक्रांतमादाय प्रमदोत्तमा ॥ हरेरंशांशसंभूतं भर्त्तुरंतिकमागमत् ॥ १९ ॥ यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिंदितौ ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥ २० ॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यंतमावमंस्थाः शकुंतलाम् ॥ २१ ॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुंतला ॥ २२ ॥

संस्कार किये और वह बालक पराक्रमसे सिंहोंको पकड़ पकड़ कर, उनके साथ खेला करता ॥ १८ ॥ भगवान्‌के अंशांशसे प्रगटहुए उस महापराक्रमी बालकको साथ लेकर, वह शकुंतला अपने पतिके निकट आयी ॥ १९ ॥ जब राजाने निर्दोष अपने स्त्री पुत्रको स्वीकार नहीं किया, तद सब लोगोंके सुनते आकाशवाणीने कहा कि– ॥ २० ॥ माता तौ एक चमड़ेका ठाम है, वस्तुतः पुत्र तौ पिताकाही होता है, क्योंकि जो जिससे पैदा हुआ तौ वह तद्रूपही हुआ. हे दुष्यंत तू पुत्रका पोषण कर और शकुंतलाका अपमान मत करे ॥ २१ ॥ हे राजा ! माता और पिताके बीचमें पुत्रके बाबत विवाद हो तौ, धर्मके

और अप्रतिरथ ये तीन पुत्र हुए; अप्रतिरथके कण्व, ॥ ६ ॥ उसके मेधातिथि, उसके प्रस्कण्वआदि ब्राह्मण पुत्र हुए; सुमतिके रैभ्य और उसके दुष्यंत नाम पुत्र हुआ ॥ ७ ॥ दुष्यंत मृगयाको गया था सो कण्वमुनिके आश्रममें जा निकला. वहां लक्ष्मीके समान अपनी कांतिसे आश्रमको शोभायमान करती एक शकुंतला नाम कन्या बैठी हुई उसके नजर आयी ॥ ८ ॥ इस देवमायासी स्त्रीको देखकर, दुष्यंत तुर्त मोहित हो गया. कितनेएक सुभट लोगोंसे वेष्टित राजाने उसे देख, अतिआनंदित हो, पंथ चलनेका परिश्रम निवृत्त होनेपर कामसे संतप्त हो, उस वरारोहा (सुंदरी) को हंसकर, मधुर वाणीसे पूंछा ॥ ९ ॥ १० ॥ कि-

तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥ पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्यो दुष्यंतस्तत्सुतो मतः ॥ ७ ॥ दुष्यंतो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ॥ तत्रासीनां स्वप्रभया मंडयंतीं रमामिव ॥ ८ ॥ विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ॥ बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ ९ ॥ तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तपरिश्रमः ॥ पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ १० ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे ॥ किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ ११ ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ॥ न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥ १२ ॥ शकुंतलोवाच ॥ विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ॥ वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं करवाम ते ॥ १३ ॥ आस्यतां ह्यरविंदाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ॥ भुज्यतां संति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १४ ॥

'हे कमलके पत्रसे नेत्रवाली ! हे सुंदरी ! तू कौन है ? और किसकी कन्या है ? इस निर्जन वनमें तू क्या करना चाहती है ? ॥ ११ ॥ हे सुंदरी ! मैं तो जानता हूं कि- तू अवश्य राजकन्या है; क्योंकि मेरा चित्त तुझमें लग रहा है और यह निश्चित है कि-पूरुवंशियोंका चित्त कभी अधर्ममें नहीं जाता है ' ॥ १२ ॥ शकुन्तलाने कहा कि-' हां ! मैं विश्वामित्रजीकीही कन्या हूं. मेनका अप्सरा मुझे जन्मतेही वनमें छोड़कर. चली गयी थी, परंतु हे वीर ! इस बातको तो महात्मा कण्व जानते हैं. हमे क्या आज्ञा है ? ॥ १३ ॥ हे कमलनयन ! विराजो और हमारी ओरसे पूजा स्वीकार करो; वनके व्रीहि तैयार हैं सो जो

इसी तरह ईश्वराधीन संबंधीलोग भगवान्‌की मायाकी रचनासे इकठे हुए हैं ऐसा निश्चय करके ॥ २७ ॥ सबको स्वप्नसमान जानकर, आसक्ति छोड़, भगवानमें मन लगाकर, देवयानीने अपना लिंगशरीर तज दिया ॥ २८ ॥ जिनमें मन लगाकर, देवयानीने लिंगशरीरका त्याग किया उन, सर्वपदार्थोंके निवासरूप, सबके रचनेवाले, अंतर्यामी शांत और सर्वव्यापक आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ वीसवें अध्यायमें पूरु-कि-जिसे अपने पिता ययातिकी कृपासे चक्रवर्ती राज मिला उसके वंशमें दुष्यंतके पुत्र भरतका वंश कहा जाय-

सर्वत्र संगमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ॥ कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिंगमात्मनः ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ सर्वभूताधिवासाय शांताय बृहते नमः ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोसि भारत ॥ यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥ जन्मेजयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ॥ प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥ तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्माद्बहुगवस्ततः ॥ संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ३ ॥ ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थंडिलेयुः कृतेयुकः ॥ जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ॥ घृताच्यामिंद्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयोरंतिभारोऽभूत्त्रयस्तस्यात्मजा नृप ॥ सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥

गा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे भारत ! पूरु राजाका वंश कि-जिसमें राजर्षि और ब्राह्मणभी उत्पन्न हुए हैं और जिसमें तुम पैदा हुए हो, अब उसके विषे कथा कहता हूं सो सुनो ॥ १ ॥ पूरुके जनमेजय, उसके प्रचिन्वान्, उसके प्रवीर, उसके नमस्यु उसके चारुपद ॥ २ ॥ उसके सुद्यु, उसके बहुगव, उसके संयाति, उसके अहंयाति और उसके रौद्राश्व पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ रौद्राश्वके घृताची नाम अप्सरामें ऋतेयु,कुक्षेय, स्थंडिलेयु, कृतेयु, जलेयु, संततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और वनेयु ये दश पुत्र हुए ॥४॥ ये सब जैसे इंद्रियां मुख्य प्राणके आधीन रहती हैं वैसे रौद्राश्वके आधीन थे ॥ ५ ॥ महाराज ! ऋतेयुके रंतिभार और रंतिभारके सुमति, ध्रुव

ब्रह्ममें मन लगाय, सुखदुःखादिक तथा अहंकाररहित हो, हिरणोंके साथ विचरूंगा ॥ १९ ॥ जो कुछ देखने और सुननेमें आता है उस सबको मिथ्या जानकर, उसका न तौ चिंतवन करना चाहिये और न सेवन करना चाहिये; इन पदार्थोंके चिंतवन और सेवनसे स्वरूपका अज्ञान और जन्म-मरणरूप संसृति होती है, इसतरह जो जानता है उसे आत्मज्ञान होता है ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-ययाति राजाने इसतरह देवयानीसे कहकर, निःस्पृह हो, पूरुको उसकी युवा अवस्था दे, अपनी जरा अवस्था पीछी लीनी ॥ २१ ॥ फिर द्रुह्युको अग्निकोणका, यदुको दक्षिणका, तुर्वसुको पश्चिमका और अनुको उत्तरदिशा-

दृष्टं श्रुतमसद्बुध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ॥ संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ॥ दत्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतः स्पृहः ॥ २१ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ॥ प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ भूमंडलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ॥ अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान्षड्वर्गं विषयेषु सः ॥ क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥ स तत्र निर्मुक्तसमस्तसंग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिंगः ॥ परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ॥ स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥ सा संनिवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ॥ विज्ञायेश्वरतंत्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥ २७ ॥

का राज्य दे, अतियोग्य पूरुको सकल भूमंडलका राज्य दे, राज्याभिषेक कर, उसके अख्तियारमें सब बड़े भाइयोंको रखकर, वनमें गया ॥ २२ ॥ २३ ॥ महाराज ! पक्ष आनेपर जैसे पक्षी अपने घोसलेकी अपेक्षा नहीं रखते, वैसे जिनसे अनेक वर्षोंतक विषयभोगका अनुभव किया था, उन इंद्रियोंकी उसनेभी अपेक्षा छोड़ दीनी ॥ २४ ॥ वनमें जाकर, जिसने सब संग छोड़ दिये थे तथा स्वरूपानुभवसे जिसने लिंगशरीरका त्याग कर दिया था, वह प्रख्यात ययाति राजा निर्मल परब्रह्मरूप भगवत्स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ स्त्रीपुरुषसंबंधी स्नेहके कारण कृपणताके बचन जान, पतिकी यह गाथा सुनकर, हँसीमें कहा हो वैसे इस गाथाको देवयानीने निवृत्तिमार्गकी उत्तेजनरूप जानी ॥ २६ ॥ और जैसे मुसाफिर लोग प्रपा-(पौसरे) पै इकठे हो जाते हैं,

रेके लटकतेहुए वृषण काट गिराये और उपायके ज्ञाता उस ब्राह्मणने मतलबके लिये पीछे सांधभी दिये ॥ १० ॥ जिसके वृषण सँधगये ऐसा वह बकरा कुएंमेंसे मिली बकरीके साथ बहुत दिनोंसे विषयभोग किया करता है, तौभी हे देवयानी ! अबतक संतोष नहीं पाता है ॥ ११ ॥ हे सुंदरि ! इसी तरह कृपण और तेरे प्रेमसे बँधाहुआ व तेरी मायासे मोहित मैंभी मेरे स्वरूपको नहीं जानता हूं ॥ १२ ॥ पृथ्वीमें जितना धान्य व जितना सुवर्ण और जितने पशु और जितनी स्त्रियां हैं, वे सब एकको मिलजाय; तौभी जो पुरुष तृष्णासे हत है, उसके मनको राजी नहीं करते हैं ॥ १३ ॥ विषयभोगसे तृष्णा कभी शांत नहीं-

संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ॥ कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥ तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयंत्रितः ॥ आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥ यः पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ न दुह्यंति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातुकामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ १४ ॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमंगलम् ॥ समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ॥ तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७ ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् ॥ तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८ ॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ॥ निर्द्वंद्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥

होती, किंतु जैसे घृतसे अग्नि बढ़ती है वैसे उलटी वृद्धिंगत होती है ॥ १४ ॥ जब पुरुष किसी प्राणीपर बुरा अभिप्राय न रक्खे और समदृष्टि होवे तभी उसको सब दिशायें सुखसमय होतीं हैं ॥ १५ ॥ जो दुष्टबुद्धि पुरुषोंसे छोड़ी नहीं जाती और जो जीर्ण होनेपरभी जीर्ण नहीं होती, उस दुःख देनेवाली तृष्णाको जो सुख चाहे तौ उसे तुर्त छोड़ देवे ॥ १६ ॥ माता, बहिन या बेटी, किसीके साथ एकांतमें न बैठना चाहिये, क्योंकि इंद्रियोंका समूह बड़ा बलवान् है, सो विद्वानकोभी खींच लेता है ॥ १७ ॥ मुझे वारंवार विषयसेवन करते हजार वर्ष हो गये हैं तौभी वड़ीवड़ीमें तृष्णा पैदा होती है ॥ १८ ॥ इसलिये मैं इसे छोड़कर, पर-

अपने कर्मोंके आधीन कुएंमें पड़ीहुई एक बकरी देखनेमें आई ॥ ३ ॥ वह कामी बकरा उसे बाहेर निकालनेका उपाय सोचने लगा, आखिर उसने सींगोंके अग्रसे उस कुएंके तटको तोड़कर, रस्ता बनाया ॥ ४ ॥ उस रूपवान् बकरीने कुएंसे निकलकर, उसीको वर लिया, पुष्ट दाढ़ी मूछवाले, मैथुनमें चतुर और वीर्यसेचन करनेवाले इस मोटे बकरेको उस बकरीसे बराहुआ देख कर, दूसरीभी अनेक बकरियोंने उसे वर करना चाहा ॥ ५ ॥ इसतरह बहुतसी बकरियोंका रतिसुख बढ़ानेवाला और कामदेव-

तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिंतयन् ॥ व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषणाग्र्येण रोधसि ॥ ४ ॥ सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल ॥ तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कांतकामिनीः ॥ ५ ॥ पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ॥ स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्द्धनः ॥ रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥ तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजान्यया ॥ विलोक्य कूपसंविग्ना नामृष्यद्बस्तकर्म तत् ॥ ७ ॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ॥ इंद्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८ ॥ सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ॥ कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि संधितुम् ॥ ९ ॥ तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा ॥ लंबंतं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥

रूप ग्राहसे गिलाहुआ, यह एक मोटा बकरा उनके नाथ रमण करने लगा. और अपना स्वरूप भूल गया ॥ ६ ॥ कुएमेंसे मिलीहुई बकरी उस बकरेको दूसरी प्यारी बकरियोंके साथ रमण करता देखकर, उसके उस कर्मको न सह सकी ॥ ७ ॥ कामी व क्षणमात्र स्नेह रखनेवाले, विषयासक्त, इस सुहृद्रूप शत्रुका काम करनेवाले बकरेको छोड़कर, दुःख पाती वह बकरी अपने रक्षकके निकट गयी ॥ ८ ॥ स्त्रीलंपट वह कृपण बकराभी उस बकरीके पीछे २ उसे राजी करनेको गया और बहुत देरतक 'बोंबो'[१] किया करा, परंतु वह बकरी मानी नहीं ॥ ९ ॥ वहां उस बकरीका मालिक एक ब्राह्मण था, उसने क्रोध करके, उस बक-

---

१ बकरेकी बोलीका अनुकरण.

देह और पदार्थोंसे प्रतिदिन अपने पतिके लिये एकांतमें परमप्रीति प्राप्त करती थी ॥ ४७ ॥ सर्वदेवमय व सर्ववेदमय भगवान् कि-जिनके स्वरूपमें आकाशमें बादलके समान रचाहुआ और स्वप्न माया और मनोरथके समान यह जगत् मानो जुदाहीहो ऐसे प्रतीत होता है इंद्रियोंके उपरममें नहीं भासता है उन भगवान्का ययातिराजाने बहुल दक्षिणावाले यज्ञोंसे यजन किया ॥ ४८ ॥४९ ॥ सबके अंतर्यामी, प्रभु और अत्यंत सूक्ष्मरूप इन भगवान्कोही हृदयमें रख, निष्काम होकर, इसने वासुदेव और नारायणका यजन किया ॥ ५० ॥ इसतरह वह चक्रवर्ती ययाति राजा हजारों वर्षतक अपनी अतिचपल इंद्रियां कि-जिनमें छठा मनभी शामिल

अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥ यस्मिन्निदं विरचितं-व्योम्नीव जलदावलिः ॥ नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥ तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ॥ नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥ एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनः सुखम् ॥ विदधानोपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिंद्रियैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमाचरन्कामान्स्त्रैणोपह्नवमात्मानः ॥ बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥ श्रृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ॥ धीरा यस्यानुशोचंति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥ बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः ॥ ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥

है, उन छओंसे विषयसुख भोग किया परंतु तृप्त नहीं हुआ ॥ ५१ ॥ इति श्रीभा० म० नव० रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ उन्नीसवें अध्यायमें अपना बकरेके समान चरित देवयानीको सुनाकर, वैराग्ययुक्त ययाति मोक्षको प्राप्त हुआ यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसतरह विषयभोग करता स्त्रीके परतंत्र राजा ययाति विषयभोगसे हुई अपने स्वरूपकी भूल जानकर, वैराग्ययुक्त हो, देवयानीसे यह इतिहास कहने लगा ॥ १ ॥ ययातिने कहा कि-हे देवयानी ! मैं जैसा ग्राममें रहनेवाला गंवार कामी कि-जिसके आचरणका वनमें रहनेवाले धीरपुरुष शोच किया करते हैं, उसके आचरणके विषयमें यह गाथा सुन ॥ २ ॥ " कोई एक बकरा वनमें विचरता अपना हित ढूंढ रहा था, सो उसके

अबतक विषयोंसे तृप्त नहीं हुआ हूं तासों तेरी अवस्थासे मैं कितनेएक वर्ष रमण करूंगा ' ॥ ३९ ॥ यदुने कहा कि–बीचमेंही आपकी जरा लेकर, मैं रहना नहीं चाहता, क्योंकि विषयसुखको परिपूर्ण जाने विना पुरुषकी विषयतृष्णा नहीं मिटती ॥ ४० ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि–महाराज इसतरह यदु बिलकुल नट गया तद, ययातिराजाने अपने दूसरे पुत्र तुर्वसुसे कहा, फिर द्रुह्यु और अनुसे पूंछा तौ वेभी धर्मको नहीं जाननेवाले और यौवनको नित्य जाननेवाले नट गये ॥ ४१ ॥ तब सबसे छोटा होतेभी गुणोंसे बड़े पूरुसे कहा कि–' हे वत्स ! तू तेरे बड़े भाइयोंके जैसे मत नट जाना ॥ ४२ ॥ पिताके ऐसे वचन सुन,

यदुरुवाच ॥ नोत्सहे जरसा स्थातुमंतरा प्राप्तया तव ॥ अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ॥ प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ॥ न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच ॥ को नु लोके मनुष्येंद्र पितुरात्मकृतः पुमान् ॥ प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विंदते परम् ॥ ४३ ॥ उत्तमश्चिंतितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ॥ अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्त्तोच्चरितं पितुः ॥ ४४ ॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ॥ सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥ ४५ ॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक्पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ यथोपजोषं विषयान् जुजुषेऽव्याहतेंद्रियः ॥ ४६ ॥ देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ॥ प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥

पूरुने कहा कि–हे मनुष्येंद्र ! पिता कि–जिसने जन्म दिया है उसके उपकारका बदला कौन पुरुष दे सकता है ? कि–जिस पिताकी कृपासे मोक्षभी मिल सकता है ॥ ४३ ॥ जो पिताके विचारेहुए कामको करे वह तौ उत्तम पुत्र और जो कहाहुआ काम करे वह मध्यम और जो विना श्रद्धा करे वह अधम और जो कहनेपरभी नहीं करता वह तौ पिताकी विष्ठारूपही है ॥ ४४ ॥ इसतरह प्रसन्न होकर, पूरुने अपने पितासे अपने पिताकी जरा ली. महाराज ! वहभी पुत्रसे युवाअवस्था पाकर, यथायोग्य विषयभोग करने लगा ॥ ४५ ॥ सातों द्वीपोंका पति राजा ययाति अच्छीतरह पिताके समान प्रजाका पालन करता, इंद्रियोंकी शक्ति क्षीण न होते यथायोग्य विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ४६ ॥ प्यारी देवयानीभी, मन, वचन,

राजकुमारीने ऋतुकालमें संतानके वास्ते प्रार्थना की, तद ययातिराजाको शुक्राचार्यजीके वचनका स्मरण था तौभी 'ऐसे समय-में स्त्रीकी इच्छा परिपूर्ण करनी यही धर्म है' ऐसा विचार करके, यतातिराजाने यह प्रसंग दैवप्राप्त जानकर, उसके साथ संगम किया ॥ ३२ ॥ देवयानीके यदु और तुर्वसु दो पुत्र हुए और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाके द्रुह्यु, अनु और पूरु ये तीन पुत्र हुए ॥ ३३ ॥ वृषपर्वाकी कन्यामें अपने पतिसे गर्भ रहा जानकर, क्रोधसे व्याप्त मानवती देवयानी अपने पिताके घर चली आयी ॥ ३४ ॥ कामी ययातिराजा वचनोंसे उसे मनाता उसके पीछे पीछे आया, परंतु पांव चापने–आदि उपायोंसेभी उसे मना नहीं

राजपुत्र्याऽर्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ॥ स्मरन् शुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥ गर्भसं-
भवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ॥ देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः
कामी वचोभिरुपमंत्रयन् ॥ न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः
स्त्रीकामाऽनृतपूरुष ॥ त्वां जरा विशतां मंद विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥ ययातिरुवाच ॥ अतृप्तो-
ऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते ॥ व्यत्यस्यतां यथा कामं वयसा योऽभिदास्यति ॥ ३७ ॥
इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ॥ यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥
मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ॥ वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९ ॥

सका ॥ ३५ ॥ शुक्राचार्यजीने कुपित होकर, उसे कहा कि–'हे स्त्रीकाम ! असत्य पुरुष ! हे मंद ! मनुष्योंको विरूप करनेवा-ली जरा तुझे प्राप्त हो जावें' ॥ ३६ ॥ ययातिने कहा कि–हे ब्रह्मन् ! आपकी कन्यामें सुखभोग करता अबतक मैं तृप्त नहीं हुआ हूं, सो अपनी युवा अवस्था देनेको जो कबूल करे उसे मैं मेरी जरा अवस्था दे सकूं और उसकी युवा अवस्था ले सकूं ऐसा कर दीजिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि–शुक्राचार्यजीने उसतरह कबूल किया. तद ययातिने अपने बड़े पुत्र यदुसे कहा कि–' हे तात ! हे यदु ! तेरे नानेकी दीहुई यह जरा अवस्था तौ तू ले और तेरी युवा अवस्था मुझे दे, हे वत्स ! मैं

और जो शर्मिष्ठाने कहा और किया वह सब अपने पितासे कहा॥ २४॥ तद महात्मा शुक्राचार्यजी उदास हो, पुरोहितके कामकी निंदा करते और उंच्छवृत्तिकी प्रशंसा करते अपनी कन्याके साथ पुरसे बाहिर निकसे ॥ २५ ॥ शुक्राचार्यजीकी शत्रुओंके पक्षमें जानेकी इच्छा है ऐसे जानकर, वृषपर्वा दैत्य उन्हें प्रसन्न करनेको आया और अपना शिर उनके चरणोंमें रखकर, मार्गमें आड़ा पड़ गया ॥ २६ ॥ तद क्षणार्द्धमन्यु महात्मा शुक्राचार्यजीने अपने शिष्यसे कहा कि–हे राजा ! देवयानीकी इच्छा परिपूर्ण करो, क्योंकि मैं इसे यहां नहीं छोड़ सक्ता ॥ २७ ॥ महाराज ! वृषपर्वाने शुक्राचार्यजीका कहना कबूल किया, तद देवयानीने

दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ॥ स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ॥ गुरुं प्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥ क्षणार्द्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ॥ कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७ ॥ तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ॥ पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८ ॥ स्वानां तत्संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ॥ देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशना॥ तमाह राजञ्छर्मिष्ठा माधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥ विलोक्यौशनसीं राजन् शर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ॥ तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥

अपना अभिप्राय प्रगट किया कि–‘ मेरे पिता मुझे जहां दें और मैं जहां जाऊं वहां शर्मिष्ठा अपनी दासियोंके साथ मेरी दासी बनकर, मेरे पीछे चले तो मैं रहूं नहीं तो नहीं ’ ॥ २८ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि–पृथ्वीनाथ ! अपने कुटुंबवालोंके कष्ट है सो जो शुक्राचार्यजी रहें, तभी वह कष्ट निवृत्त होवे नहीं तो नहीं ऐसा विचार कर, शर्मिष्ठा अपनी हजार सखियोंके साथ दासीकी तरह देवयानीकी सेवा करने लगी ॥ २९ ॥ शुक्राचार्यजीने अपनी कन्या शर्मिष्ठाके साथ ययातिको देकर, कह दिया कि–‘ हे राजा ! शर्मिष्ठाको कभी शय्याके अंदर न लेना ’ ॥ ३० ॥ महाराज ! एक समय देवयानीको पुत्रसहित देखकर, शर्मिष्ठाने एकांत देखकर, अपने ऋतुकालमें इसी अपनी सखीके पति ययातिराजाकी प्रार्थना की ॥ ३१ ॥

वास्ते अपना उत्तरीय वस्त्र दिया. हाथसे हाथ पकड़, दयापरायण राजाने उसे बाहिर निकाली ॥ १९ ॥ महाराज ! तब शुक्रकी कन्या देवयानीने प्रेमभरी वाणीसे उस राजाको कहा कि–'हे परपुरंजय ! महाराज ! आपने मेरा पाणिग्रहण कर लिया है ॥ २० ॥ सो अब आप जिसका पाणिग्रहण कर चुके हो, उसका दूसरेके साथ पाणिग्रहण न होना चाहिये; हे वीर ! यह जो अपना समागम बना है सो पुरुषकृत नहीं है किंतु दैवकृत है ॥ २१ ॥ क्योंकि मेरा तौ कुएंमें पड़ना और आपका अचानक दर्शन होना, यह

तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ॥ राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजय ॥ २० ॥ हस्तग्राहोऽपरो माभूद्गृहीतायास्त्वया हि मे ॥ एष ईशकृतो वीर संबंधो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥ यदिदं कूपलग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ॥ कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्यमशपं पुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ॥ मनस्तु तद्गतं बुध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ २३ ॥ गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ॥ न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥

दैवकृत नहीं तौ फिर क्या है ? हे महाभुज ! ब्राह्मणके साथ मेरा तौ पाणिग्रहण नहीं होगा; क्योंकि बृहस्पतिके पुत्र कचका मुझे श्राप है कि–"तुझे ब्राह्मण पति नहीं मिलेगा," उसका कारण यह हुआ कि–मैं उसे पहले श्राप दे चुकी थी ॥ २२ ॥ ययाति राजा यह बात बिलकुल नहीं चाहता था परंतु दैवसे प्राप्त जान और उसकी और अपने मनको लगा देखकर, उसके वचनको स्वीकार किया ॥ २३ ॥ स्वीकार करके, ययातिराजा चलागया, तब देवयानी रोती २ अपने पिताके निकट आयी

१ कच बृहस्पतिका पुत्र था. यह संजीविनी विद्या सीखनेके लिये शुक्राचार्यजीके पास आया था. जब यह विद्यापढ़गया तो एक दिन इसका तरुण अतिमनोहर स्वरूप देख, कामातुर हो, देवयानीने कचसे कहा कि–'मैं तुझे वरती हूं सो तू मुझे स्वीकार कर' यह सुन, कचने देवयानीसे कहा कि–'तू गुरुपुत्री है' इसलिये मैं तुझको वर नहीं सक्ता, तू मेरेपर कृपादृष्टि रख' यह सुन, अपना मनोरथ भ्रष्ट होनेके कारण अपना वचन न माननेसे देवयानीने उसे श्राप दिया कि–'तूने मेरी प्रार्थनापर ध्यान नहीं दिया, इसवास्ते तेरी संजिविनी विद्या निष्फल हो जायगी' ऐसा कठिन श्राप सुन, कचने पीछा देवयानीको श्राप दिया कि–'तूने मुझको निष्कारण श्राप दिया है इसवास्ते तुझे ब्राह्मणपति नहीं मिलेगा.' इति.

योग्य काम देखो, कि-जैसे कुत्ती यज्ञमें हविष्य अन्न खा जाय, तैसे इसने हमारे पहिरनेके वस्त्र पहन लिये हैं ॥ ११ ॥ ब्राह्मण कि-जिन्होंने तपसे इस जगतको सरजा है, जो परपुरुष भगवान्के मुखरूप हैं, जो परमात्माको जानते हैं, जिन्होंने महासुखकारक वेदमार्ग दिखलाया है ॥ १२ ॥ और जिन्हें लोकपाल देवता और लक्ष्मीके निवास पवित्र करनेवाले जगतके आत्मा भगवान्भी वंदन करते हैं और प्रणाम करते हैं ॥ १३ ॥ तत्रापि(तहांभी)हम भृगुवंशी हैं और इसका पिता दैत्य हमारा शिष्य है, सो जैसे शूद्र वेदको धारण करता है वैसे इस असतीने हमारे पहिरनेका वस्त्र धारण कर लिया ॥ १४ ॥ इसतरह देवयानी गालियां देने लगी, तद

यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ॥ धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पंथाश्च दर्शितः ॥ १२ ॥ यान्वंदंत्युपतिष्ठंते लोकनाथाः सुरेश्वराः ॥ भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥ वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥ एवं शपंतीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ॥ रुषा श्वसन्कुरंगीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५ ॥ आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ॥ किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाऽऽचार्यसुतां सतीम् ॥ शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ॥ प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८ ॥ दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥

शर्मिष्ठाभी दबीहुई सर्पिणीके समान क्रोधसे श्वास लेती, होंठ डसकर, बोली कि-॥ १५ ॥ 'हे भिक्षुकी ! अपनी स्थितिको न जानकर, तू बहुत बकवाद कर रही है, क्या तू हमारे घरोंमें कुत्तीके समान टुकड़ेकी परवाह नहीं रखती है? ॥ १६ ॥ शर्मिष्ठाने इस तरहके कई कठोर वचन कहे और शुक्राचार्यजीकी कन्या देवयानीका तिरस्कार किया और क्रोधसे वस्त्र छीन कर, उसे कुएंमें पटक दी ॥ १७ ॥ वह शर्मिष्ठा तौ अपने घर चली गयी, पश्चात् ययाति राजा मृगयाके लिये फिरता २ दैवइच्छासे वहां आ निकला, जलके वास्ते कुएंपै गया तौ उस कुएंके अंदर देवयानीको देखा ॥ १८ ॥ नग्न उस देवयानीको ययातिने पहिरनेके

कि राजमें आसक्त पुरुषको आत्मस्वरूपका बोध नहीं होता है ॥ २ ॥ पिता नहुषको इंद्राणीका अपराध करनेसे जब अगस्त्य आदि ब्राह्मणोंने स्वर्गसे गिरा दिया और वह अजगरयोनिको प्राप्त हुआ, तब ययाति राजा हुआ ॥ ३ ॥ इस ययातिने अपने चारों छोटे भाइयोंको चारोंदिशाओंमें भेज दिया वह शुक्राचार्यजीकी और वृषपर्वाकी कन्यासे व्याह कर, पृथ्वीका पालन करने लगा ॥ ४ ॥ राजाने कहा कि—महात्मा शुक्राचार्यजी तो ब्राह्मण और राजा ययाति क्षत्रिय. यह क्षत्रिय और ब्राह्मणका प्रतिलोम (उलटा) विवाह किसतरह हुआ ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—एक समय दानवेंद्र वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नाम कन्या,

पितरि भ्रंशिते स्थानादिंद्राण्या धर्षणाद्द्विजैः ॥ प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः॥ ३ ॥ चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातृन्भ्राता यवीयसः ॥ कृतदारो जुगोपोर्वी काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबंधुश्च नाहुषः ॥ राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा दानवेंद्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ॥ सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥ देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले ॥ व्यचरत्कलगीतालिनलिने पुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ॥ तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिंचतीर्मिथः॥ ८ ॥ वीक्ष्य व्रजंतं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ॥ सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययात् ॥ स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥ अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसांप्रतम् ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥

अपनी हजार सखियां और गुरुकन्या देवयानीको संग ले, पुरके बाहिर बागके अंदर विचरती थी जहां फूलेहुए वृक्षोंका समूह शोभा दे रहा था और तलावके तीरपर भौंरे मधुर गान कर रहे थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ वे कमलनयन कन्यायें जलाशयपर आ, तीरपै वस्त्र उतार, परस्पर जल उछालतीं क्रीड़ा करने लगीं ॥ ८ ॥ पार्वतीके साथ नंदिकेश्वरपर विराजकर, जातेहुए महादेवको देखकर, उन सब स्त्रियोंने लज्जित हो, तालावसे बाहिर निकलकर, वस्त्र पहिन लिये ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाने अपने वस्त्र जानकर, अनजामें देवयानीके वस्त्र पहिन लिये, तद कोप करके, देवयानी यह वक्ष्यमाण वचन बोली कि—॥ १० ॥ ' अहो ! इस दासीका अ-

रनेके वास्ते प्रार्थना की, तद दैत्योंको मारकर, रजिने इंद्रको स्वर्गका राज दिया, फिर प्रल्हादआदि दैत्योंके भयसे इंद्रने रजिके चरणोंमें गिरकर, पीछा स्वर्गका राज रजिको सौंप दिया. और अपना शरीरभी रजिके अर्पण किया, जब रजि मरगया. तद इंद्रने पीछा अपना राज मांगा तो रजिके पुत्रोंने नहीं दिया और यज्ञके भागभी उन्होंने लेने शुरू कर दिये, तब बृहस्पतिद्वारा अभिचारकी विधिसे अग्निमें होम करवाय, उसके द्वारा रजिके पुत्रोंको धर्मसे भ्रष्ट करके, इंद्रने सबोंको मारलिया, सो उनमेंसे एकभी बाकी न रहा, आयुका पुत्र जो क्षत्रवृद्ध था उसके पौत्र कुशके प्रति, उसके संजय, उसके जय, ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसके

आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशंकितः ॥ पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥ १४ ॥ त्रिविष्टपं महेंद्राय यज्ञभागान्समाददुः ॥ गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः ॥ १५ ॥ अवधीद्भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ॥ कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥ १६ ॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ॥ सहदेवस्ततो हीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ संकृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः ॥ क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥ १८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे चंद्रवंशानुवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ॥ षडिमे नहुषस्यासन्निंद्रियाणीव देहिनः ॥ १ ॥ राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ॥ यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुद्ध्यते ॥ २ ॥

कृत, उसके हर्यवन, उसके सहदेव, उसके हीन, उसके जयसेन ॥ १७ ॥ उसके संकृति, उसके जय और उसके महारथी क्षत्रधर्मा नाम पुत्र हुआ, ये क्षत्रवृद्धके वंशके राजा कहे गये. अब आयुके पुत्र नहुषका वंश सुनो ॥ १८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ अठारहवें अध्यायमें नहुषका पुत्र ययाति कि–जिससे पांच पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे पुत्रने जरा अवस्था लीनी उसका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–नहुषके यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति ये छह ६ पुत्र हुए, जो देहधारीके छह इंद्रियां होतीं हैं, वैसे थे ॥ १ ॥ इनमें सबसे बड़ा यति, राज्यके परिणामको अनर्थरूप जानता था, तासों पिताने राज्य देना चाहा, पर उसने नहीं लिया, क्यों-

आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र) प्रवृत्त किया ॥ ४ ॥ ये भगवान्‌के अवतार, स्मरणमात्रसे रोगकी पीड़ा शांत करनहारे और यज्ञके भागके भोक्ता हुए. धन्वंतरिके केतुमान्, उसके भीमरथ और भीमरथके दिवोदास ॥ ५ ॥ उसके द्युमान् नाम पुत्र हुआ, जो प्रतर्दन शत्रुजित् कुवलयाश्व और ऋतध्वज इन नामोंसेभी प्रसिद्ध था, उसके अलर्कआदि पुत्र हुए ॥ ६ ॥ महाराज! साठ हजार और साठसौ यानी छासठ ६६००० हजार वर्षतक अलर्कके सिवाय दूसरे किसी राजाने जवान रह कर, पृथ्वीका पालन नहीं किय ॥ ७ ॥ अलर्कके संतति, उसके सुनीथ, उसके सुकेतन, उसके धर्मकेतु, उसके सत्यकेतु ॥ ८ ॥ उसके धृष्टकेतु, उसके सुकुमार,

यज्ञभुग्वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्तिनाशनः ॥ तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः ॥ स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः ॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥ षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च ॥ नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७ ॥ अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनीथोथसुकेतनः ॥ धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ॥ वीतिहोत्रस्य भर्गोतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९ ॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ॥ रंभस्य रभसः पुत्रो गंभीरश्चाक्रियस्ततः ॥ १० ॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ॥ शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥ ततः शांतरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ॥ रजेः पंचशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥ देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेंद्राय ददाद्दिवम् ॥ इंद्रस्तस्मै पुनर्दत्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥ १३ ॥

उसके वीतिहोत्र, उसके भर्ग और उसके भार्गभूमि नाम पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ ये काशिराजाके वंशज अपने परदादे क्षत्रवृद्धके वंशमें मिलते हैं. आयुके पुत्र रंभके रभस, उसके गभीर और उसके अक्रिय नाम पुत्र हुआ ॥ १० ॥ इस अक्रियके क्षेत्रमें ब्राह्मण उत्पन्न हुए. इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि—महाराज ! अब अनेनाःका वंश सुनो. आयुके पुत्र अनेनाःके शुद्ध, उसके शुचि, उसके त्रिककुद्, उसके वर्द्धसारथि ॥ ११ ॥ उसके शांतरय नाम पुत्र हुआ, वह आत्मज्ञानी था इसलिये कृतार्थ होनेसे उसने पुत्र उत्पन्न नहीं किया, आयुके पुत्र रजिके महाप्रतापी पांचसौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ देवताओंने रजिसे दैत्योंको मा-

चलेंगे ' ॥ ३४ ॥ ऐसे कहकर, उन सभोंने वेदके कितनेएक मंत्रोंके द्रष्टा शुनःशेपको ज्येष्ठ मानकर, कहा कि-हम आपसे छोटे हैं तब विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर, पुत्रोंसे कहा कि-'तुम पुत्रवान् होओगे; क्योंकि तुमने मेरा मन रखकर, मुझे पुत्रवान् किया ॥ ३५ ॥ हे पुत्रो ! इस देवरात (शुनःशेप) को अब तुम तुह्मारे जैसे कुशिकवंशीही जानो, क्योंकि-यह मेरा पुत्र हुआ है तुम सब इसका अनुसरण करके, चलो ' विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय और क्रतुमान्आदि औरभी कितने एक पुत्र हुए ॥ ३६ ॥ इसतरह विश्वामित्रजीके अनेक पुत्र हुए तासों कौशिकगोत्र अनेक प्रकारका हुआ और उनमें देवरात सबसे बड़ा

ज्येष्ठं मंत्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वंचो वयं स्म हि ॥ विश्वामित्रः सुतानाह वीरवंतो भविष्यथ ॥ ये मानं मेऽनुगृह्णंतो वीरवंतमकर्त माम् ॥ ३५ ॥ एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित॥ अन्ये चाष्टक-हारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥ एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् ॥ प्रवरांतरमापन्नं त-द्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥श्रीशु-क उवाच ॥ यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः ॥ नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रंभश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥ अनेना इति राजेंद्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ॥ क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥ २ ॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ॥ शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ का-श्यस्य कामिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमः पिता ॥ धन्वंतरिर्दैर्घ्यतम आयुर्वेदप्रवर्त्तकः ॥ ४॥

गिना गया, तासों यह भृगुवंशी था तौभी इससे कौशिकगोत्रका प्रवरांतर कल्पन किया गया॥ ३७॥ इति श्रीभा० म० नवमस्कंधे रामस्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः॥ १६ ॥ ॥ सत्रहवें अध्यायमें पुरुरवाके ज्येष्ठ पुत्र आयुके पांच पुत्रोंमेंसे क्षत्रवृद्ध-आदिचार पुत्रोंके वंशका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-पुरुरवाके ज्येष्ठपुत्र जो आयु था उसके नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, रंभ और अनेनाः ये पांच पुत्र हुए ॥ १ ॥ महाराज ! क्षत्रवृद्धका वंश सुनो. क्षत्रवृद्धके सुहोत्र पुत्र हुआ सुहोत्रके काश्य, कुत्स और गृत्समद ये तीन पुत्र हुए, गृत्समदके शुनक पुत्र हुआ, उसके शौनक नाम पुत्र हुआ, जो ऋग्वेदियोंमें उत्तम महामुनि गिने जाते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ काश्यके काशि, उसके राष्ट्र, उसके दीर्घतमा उसके धन्वंतरि नाम पुत्र हुआ, जिन्होंने

चरित गाया करते हैं ॥ २६ ॥ जगत्के आत्मा, ईश्वर, हरिभगवान्‌ने इस तरह भृगुवंशियोंमें अवतार ले, अनंत राजाओंको मार, पृथ्वीका भारी भार उतार दिया है ॥ २७ ॥ गाधिराजाके विश्वामित्र नाम पुत्र हुआ, जो प्रदीप्त अग्निके समान बड़े तेजवान् थे. इन विश्वामित्रने तप करके, क्षत्रियपनको छोड़कर, ब्रह्मतेज संपादन किया ॥ २८ ॥ महाराज विश्वामित्रजीके सौ पुत्र हुए उनमेंसे मध्यम पुत्रका नाम मधुच्छंदा था तासों सब पुत्र मधुच्छंदा नाम कहलाये ॥ २९ ॥ भृगुवंशी अजीगर्त मुनिका पुत्र 'शुनःशेप कि-जो हरिश्चंद्र राजाके यज्ञमें पुरुषपशुरूपसे बेंचा गया था और प्रजापति-आदि देवतानकी स्तुति कर, यज्ञमें बलिदानरूप

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ॥ २७ ॥ गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ॥ तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥ विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप ॥ मध्यमस्तु मधुच्छंदा मधुच्छंदस एव ते ॥ २९ ॥ पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवम् ॥ आजीगर्त्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥ यो वै हरिश्चंद्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ॥ स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबंधनात् ॥ ३१ ॥ यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ॥ देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः स भार्गवः ॥ ३२ ॥ ये मधुच्छंदसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ॥ अशपत्तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥ स होवाच मधुच्छंदाः सार्द्धं पंचशता ततः ॥ यन्नो भवान्संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥

बधसे मुक्त हुआ था और देवतानने इस तरह बचाया इसलिये गाधिके वंशजोंमें जिसका नाम 'देवरात' कहलाया था उसे अपना पुत्र ठहेराकर, विश्वामित्रजीने अपने अंगज पुत्रोंसे कहा कि-'तुम इस शुनःशेपको ज्येष्ठ यानी बड़ा भाई करके, मानों ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ मधुच्छंदासे जो विश्वामित्रजीके बड़े पुत्र थे उन्होंनें इस बातको अयोग्य समझके, बिलकुल स्वीकार नहीं किया, तद क्रोधित होकर, विश्वामित्रजीने उन्हें श्राप दिया कि- 'हे दुर्जनो ! तुम म्लेच्छ हो जाओ' ॥ ३३ ॥ फिर मधुच्छंदा और उससे कनिष्ठ पचास ५० पुत्रोंने विश्वामित्रजीसे कहा कि- 'आप जो आज्ञा फरमाते हैं, उसके अनुसार हम

रेणुकाने दुःखके आवेशसे इक्कीस बेर छाती कूटी, तासों प्रभु परशुरामजीने इक्कीस बेर पृथ्वीको निछत्री करके, कुरुक्षेत्रमें रक्तके नौ ९ ह्रद बनाये ॥ १९ ॥ पिताका शिर ले, धड़से सांध कर, सर्वदेवमय और आत्मरूप ईश्वरका यज्ञ करके, यज्ञमें यजन किया ॥ २० ॥ होताको पूर्वदिशा, ब्रह्माको दक्षिणदिशा, अध्वर्युको पश्चिमदिशा और उद्गाताको उत्तर दिशा दी ॥ २१ ॥ दूसरे ऋषियोंको अवांतर दिशा यानी कोन दिये, कश्यपजीको पृथ्वीका मध्यभाग दिया, आर्यावर्त और बाकी जो पृथ्वीका

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥ स्यमंतपंचके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान्नव ॥ १९ ॥ पितुः कायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि ॥ सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥ ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवांतरदिशः कश्यपाय च मध्यतः ॥ आर्यावर्त्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥ २३ ॥ स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ॥ ऋषीणां मंडले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥ जामदग्न्योऽपि भगवान्रामः कमललोचनः ॥ आगामिन्यंतरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेंद्राद्रौ न्यस्तदंडः प्रशांतधीः ॥ उपगीयमानचरितः सिद्धगंधर्वचारणैः ॥ २६ ॥

भाग रहा वह सब सभासदोंको दिया ॥ २२ ॥ फिर ब्रह्मनदी सरस्वतीमें अवभृथ स्नान कर, सब पापसे मुक्त हो, जैसे बादलसे रहित सूर्य प्रकाशताहै वैसे प्रकाशने लगे ॥ २३ ॥ परशुरामजीके पिता जमदग्नि तौ स्मृतिरूप चिन्हवाला शरीर पाकर, सप्तर्षियोंके मंडलमें सातवें ऋषि हुए ॥ २४ ॥ महाराज ! कमलनयन भगवान् परशुरामजीभी आगामी मन्वंतरमें सप्तर्षि होंगे ॥ २५ ॥ ये परशुरामजी अबतक शांतचित्त हो, क्षत्रियोंको मारनेका आग्रह छोड़, महेंद्रपर्वतपर विराज रहे हैं. जहां सिद्ध, गंधर्व व चारण ये सब आपका

---

१ कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥ जमदग्निर्भरद्वाजो इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ १ ॥ अर्थ–कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भरद्वाज ये सप्तर्षि कहे हैं ॥ १ ॥

पाकर, वैर लेनेको वे आश्रममें आये ॥ १० ॥ उत्तमश्लोक भगवान्में चित्त लगाये अग्निहोत्रशालामें विराजमान् जमदग्निको देखकर, उन पापी क्षत्रियोंने उन्हें मार डारे ॥ ११ ॥ परशुरामजीकी माताने करुणकी तरह बहुत कुछ प्रार्थना की, परंतु वे अतिक्रूर क्षत्रियाधम बलात्कारसे उनका शिर काट कर, ले गये ॥ १२ ॥ दुःख व शोकसे आर्त अपने हाथोंसे छाती माथा कूटती वह रेणुका 'हे राम ! हे राम ! हे तात ! आ' इसतरह मुक्तकंठ हो, पुकारने लगी ॥ १३ ॥ दूर रहे परशुरामजी 'हा राम ! ' ऐसा आर्तशब्द सुनकर, जल्दी आश्रममें आये और पिताको मरे देख,

दृष्ट्वाऽग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ॥ भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः ॥ प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबंधवः ॥ १२ ॥ रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नंत्यात्मानमात्मना ॥ राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥ तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्त्तवत्स्वनम् ॥ त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥ १४ ॥ तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ॥ हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽऽस्मान्स्वर्गतो भवान् ॥ १५ ॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ॥ प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रांताय मनो दधे ॥ १६ ॥ गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम् ॥ तेषां स शीर्षभी राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७ ॥ तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ॥ हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमंगलकारिणि ॥ १८ ॥

॥ १४ ॥ दुःख, रोष, अमर्ष, आर्ति और शोकके वेगसे विमोहित हो, 'हा तात ! हा साधो ! हा धर्मिष्ठ ! हमें छोड़कर, हाय, हाय ! आप स्वर्ग पधारे' ॥ १५ ॥ इसतरह विलाप कर, पिताका देह भाइयोंके सिपुर्द कर, अपने हाथमें परशु ले, परशुधरने क्षत्रियोंका अंत करनेका विचार किया ॥ १६ ॥ महाराज ! ब्रह्महत्यासे श्रीहीन माहिष्मती पुरीमें जाकर, परशुरामजीने उनके शिर काट २, बीचमें एक बड़ा भारी पर्वत बनाया ॥ १७ ॥ और ब्राह्मणोंके अभक्त क्षत्रियोंको त्रास देनेवाली, उनके रुधिरसे महाभयंकर नदी प्रगट करी, पिताके वधको निमित्त करके, सब क्षत्रिय जो कि अन्यायसे वर्ते थे, उनकोभी मारना शुरू किया ॥ १८ ॥

क्रीड़ा करते देखा ॥ २ ॥ जल लेनेके वास्ते नदीपर गयी थी, सो वहां उसे देखने लग गयी; इसीसे होमके समयका स्मरण नहीं रहा और कुछ इसकी चित्ररथ गंधर्वमें इच्छाभी प्रगट हो गयी ॥ ३ ॥ फिर देरी होनेसे कालका अतिक्रम देखकर, मुनिके श्रापसे डरती रेणुका तुर्त आ, मुनिके आगे कलश रख, हाथ जोड़, ठाड़ी रही ॥ ४ ॥ पत्नीका व्यभिचार जानकर, क्रोध करके, मुनिने कहा कि– हे पुत्रो ! इस पापिनीको मार डारो ' पर यह जमदग्निकी आज्ञा किसीने न मानी ॥ ५ ॥ तब जमदग्निने परशुरामजीसे कहा तो उन्होंने माता और भाई सबको मार दिया; क्योंकि ये अपने पिताके तप और समाधिका प्रभाव अच्छी

विलोकयंति क्रीडंतमुदकार्थं नदीं गता ॥ होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथे स्पृहा ॥ ३ ॥ कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशंकिता ॥ आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृतांजलिः ॥ ४ ॥ व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ॥ घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥ रामः संबोधितः पित्रा भ्रातॄन्मात्रा सहावधीत् ॥ प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक्समाधेस्तपसश्च सः ॥ ६ ॥ वरेण च्छंदयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चाऽस्मृतिं वधे ॥ ७ ॥ उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवांजसा ॥ पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥ ८ ॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्मरंतः स्वपितुर्वधम् ॥ रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥ ९ ॥ एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ॥ वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥

तरह जानते थे ॥ ६ ॥ फिर प्रसन्न होकर, जमदग्निने वरदान देनेको कहा तो, परशुरामजीनेभी अपने भाई और माता पीछे जीते हो जायं और अपने हाथ मरनेका उनको स्मरण न रहे ऐसा, वर मांगा ॥ ७ ॥ जैसे सोता हुआ आदमी नींद लेकर, कुशलपूर्वक उठता है वैसे ये सबके सब कुशलपूर्वक उठे. परशुरामजी अपने पिताके तपके प्रभावको जानते थे, तासों उन्होंने बंधुजनोंका वध किया ॥ ८ ॥ महाराज ! जो सहस्रार्जुनके पुत्र थे, वे अपने पिताके वधका स्मरण करते रहे, परंतु परशुरामजीके पराक्रमसे तिरस्कृत होकर, कहीं चैन नहीं पाते ॥ ९ ॥ एक समय परशुरामजी तो भाईयोंके साथ वनमें चले गये; तो मौका

सहस्रार्जुन मर गया, तद उसके दश हजार पुत्रही डरते सब भाग गये ॥ ३५ ॥ शत्रुओंको मारनेवाले परशुरामजी बछेरेसहित अपनी धेनुको ले, आश्रममें आ, क्लेश पायीहुई गौको अपने पिताको अर्पण किया ॥ ३६ ॥ और आपने जो चरित किया वह अपने पिता और भाइयोंसे कहा, वह सुनकर, जमदग्नि बोले ॥ ३७ ॥ हे राम ! हे राम ! हे महाबाहु ! सर्वदेवमय राजाको तैंने वृथा मारा, यह तैंने बड़ा पाप किया ॥ ३८ ॥ हे तात ! हम ब्राह्मण हैं, क्षमा रखनेसे जगत्में पूज्य हुए हैं, ब्रह्माजी भी इसी क्षमाके प्रतापसे ब्रह्मपदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंकी लक्ष्मी तौ सूर्यकी प्रभाके समान क्षमाहीसे शोभा देती है,

अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ॥ समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६ ॥ स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ॥ वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ राम राम महाबाहो भवान्पापमकारषीत् ॥ अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥ वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयाऽर्हणतां गताः ॥ यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमियात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ॥ क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥ ४० ॥ राज्ञो मूर्द्धावसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ॥ तीर्थसंसेवया चांहो जह्यंगाच्युतचेतनः ॥४१॥ इति श्रीभा० महा० नव० पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनंदन ॥ संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गंगायां पद्ममालिनम् ॥ गंधर्वराजं क्रीडंतमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥

जो क्षमा रखते हैं उनपर ईश्वर हरि भगवान् तुर्त प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४० ॥ राज्याभिषिक्त राजाका वध ब्रह्महत्यासेभी भारी है. सो अब तुम भगवान्में चित्त लगाय, यम नियम धारण कर, तीर्थयात्रासे पापका नाश करो ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते म० नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सोलहवें अध्यायमें जमदग्निको सहस्रार्जुनके पुत्रोंने मारा, इसलिये परशुरामजीने वारंवार क्षत्रियोंका वध किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! पिताकी आज्ञा शिरपर चढ़ाकर, परशुरामजी बारह महीनातक तीर्थयात्रा कर, पीछे आश्रममें आये ॥ १ ॥ महाराज ! एक समय रेणुका जल लेनेको गंगाजीपै गयी, वहां कमलोंकी माला पहिने गंधर्वराज चित्ररथको अप्सरानके साथ

ये शस्त्र, धारण किये, मृगचर्म पहिने, सूर्यसी देदीप्यमान जटा शिरपर धरे, वेगके साथ आते पुरीमें प्रवेश करते उन परशुरामजीको देखकर ॥ २९ ॥ राजाने हाथी, घोड़े, रथ व प्यादोंवाली गदा, तलवार, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति, इन शस्त्रोंसे अतिभयंकर सत्रह अक्षौहिणी भेजी, सो भगवान् परशुरामजीने विनाही सहाय सब सेना काट गिरायी ॥ ३० ॥ और मन व पवनसा जिनका वेग है ऐसे, शत्रुकी सेनाके संहार करनेवाले परशुरामजीका जिधर जिधर परशु चलता है उधरही योधायोंके हाथ, साथल और गले कट रहे हैं, सारथी व वाहन मर रहे हैं, पृथ्वीपर पड़ रहे हैं ॥ ३१ ॥ रुधिरके समूहसे कीच जिसमें

अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ॥ अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥ यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः ॥ ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः॥ विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आपतद्रुषा ॥ ३२॥ अथार्जुनः पंचशतेषु बाहुभिर्धनुःषु बाणान्युगपत्स संदधे ॥ रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥ पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेंघ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ॥ भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृंगमिवाहरत् ॥ हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥

हो रहा है ऐसे रणखेतमें, परशुरामजीके कुठार और बाणोंसे जिसके ध्वजा, ढाल, धनुष और शरीर कट गये हैं ऐसी अपनी सेनाको पड़ी देखकर, सहस्रार्जुन क्रोध कर, युद्ध करने आया ॥ ३२ ॥ सहस्रार्जुन एकसाथ पांचसौ धनुषोंमें पांचसौ बाण संधान कर, परशुरामजीके ऊपर चलाने लगा, तब शस्त्र धारण करनेवालोंमें अग्रणी व एक धनुषधारी परशुरामजीने अपने बाणोंसे एकसाथ उस सहस्रार्जुनके सब बाण काट गिराये ॥ ३३ ॥ फिर अपने हाथोंसे पर्वत व वृक्ष उठाकर, युद्धमें वेगसे सन्मुख दौड़ते आते सहस्रार्जुनको देखकर, तीक्ष्ण धारवाले अपने कुठारसे परशुरामजी, उसकी भुजाओंको जैसे सर्पके फण काटते हैं वैसे बलात्कारसे काटने लगे ॥ ३४ ॥ हाथ कट गये, तब जैसे पर्वतका शिखर उड़ा देते हैं वैसे उसका शिर उड़ा दिया. पिता

राजाने अपने हजार हाथोंसे नदीके वेगको रोंक लिया ॥ २० ॥ तौ हटकर, पीछे जाते नदीके जलसे रावणका डेरा बूड़ गया, तद वीरताका अभिमान रखनेवाला रावण, इस राजाके पराक्रमको न सह कर, उससे युद्ध करने गया ॥ २१ ॥ वहां स्त्रियोंके सामने उस अपराधी रावणको लीलाहीसे पकड़कर, माहिष्मती नाम अपनी पुरीमें कैद कर दिया और फिर जैसे बंदरको छोड़ देते हैं वैसे छोड़ दिया ॥ २२ ॥ वह सहस्रार्जुन एकसमय गहन वनमें शिकार करता विचरता दैवइच्छासे जमदग्नि मुनिके आश्रममें चला आया ॥ २३ ॥ मुनिने उस राजाका सेना, अमात्य और वाहनोंके साथ कामधेनुके प्रभावसे पाहु‌ऽ.चार किया ॥ २४ ॥ वह राजा वहा

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतः सरिज्जलैः ॥ नामृष्यत्तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ॥ माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२ ॥ स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने ॥ यदृच्छयाश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३ ॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ॥ स सैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥ २४ ॥ स वीरस्तत्र तद्दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ॥ तन्नाद्रियाताऽग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥ २५ ॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ॥ ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रंदतीं बलात् ॥ २६ ॥ अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ॥ श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥ २७ ॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ॥ अन्वधावत दुर्द्धर्षो मृगेंद्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥ तमापतंतं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ॥ ऐणेयचर्मांबरमर्कधामभियुतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९ ॥

अपने ऐश्वर्यसेभी ऋषिका अधिक सामर्थ्य देखकर, चित्तमें प्रसन्न नहीं हुआ और उस हैहयराजाने मुनिकी धेनु लेनेका इरादा किया ॥ २५ ॥ और ऋषिकी धेनु ले, जानेके वास्ते मनुष्योंको हुक्म दे दिया, तद वे पुरुष पुकारती हुई उस बछेरेसहित गौको बलात्कारसे माहिष्मती पुरी ले गये ॥ २६ ॥ राजाके जानेके अनंतर परशुरामजी आश्रममें आये उसकी दुष्टताके समाचार सुनकर, उनको ऐसा क्रोध हुआ कि–मानों काले सांपके चोट लगी ॥ २७ ॥ घोर परशु, भाथे ढाल व धनुष लेकर, वे महातेजस्वी परशुरामजी उसके पीछे ऐसे दौडे कि–मानों सिंह हाथियोंके यूथपतिपर चला है ॥ २८ ॥ धनुष बाण और परशु

पवित्र और लोकोंको पवित्र करनेवाली कौशिकी नाम नदी हुई. जमदग्निने रेणुकी कन्या रेणुकाके साथ व्याह किया ॥ १२ ॥ उसमें जमदग्निके वसुमान्‌आदि पुत्र हुए, जिनमेंसे परशुरामजी सबसे छोटे थे ॥ १३ ॥ हैहय नाम क्षत्रियोंके कुलके कालरूप ये परशुरामजी भगवान्‌के अंशरूप कहलाते हैं, जिन्होंने इक्कीस बेर पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोंके अभक्त व भूमिपै भाररूप दुष्ट क्षत्रियोंको रजोगुण और तमोगुणसे आवृत देखकर, थोड़ासा अपराध करनेपरभी सबका वध किया ॥ १५ ॥ परीक्षितने पूंछा कि—अजितेंद्रिय राजाओंने परशुरामजीका क्या अपराध किया ? कि—जिससे क्षत्रियकुलका वारंवार नाश हुआ

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ॥ यवीयान् जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलांतकम् ॥ त्रिःसप्तकृत्वा य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४ ॥ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ॥ रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ॥ कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ॥ दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ॥ अव्याहतेंद्रियौजःश्रीतेजोवीर्ययशोबलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ॥ चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥ १९ ॥ स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवांभसि मदोत्कटः ॥ वैजयंतीं स्रजं बिभ्रद्रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥

॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि— हैहयवंशी क्षत्रियोंके अधिपति व क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने नारायणके अंशरूप दत्तात्रेयजीका परिचर्याआदिसे आराधन किया ॥ १७ ॥ जिससे उसे एक सहस्र बाहु मिले और शत्रुलोग इसका पराभव नहीं कर सक्ते थे व इंद्रियोंकी शक्ति, लक्ष्मी, तेज, वीर्य, यश और बल किसीसे खंडित नहीं होता था. यह सब दत्तात्रेयजीकी कृपासे उसे मिला था ॥ १८ ॥ योगेश्वरपन तथा ऐश्वर्य कि—जिसमें अणिमा—आदि सब सिद्धियां रहीं हैं वहभी दत्तात्रेयजीकी कृपासे मिल गया था और किसीस्थलमें उसकी गति नहीं रुकती थी. तासों वह लोकोंमें पवनके समान विचरा करता था ॥ १९ ॥ एक दिन रेवानदीके जलमें स्त्रियोंमें रत्नरूप स्त्रियोंके साथ वह विहार कर रहा था, वहां मदोन्मत्त और वैजयंती माला धारण किये सहस्रार्जुन

पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ उसकी सत्यवती नाम कन्या ऋचीक नाम ऋषिने मांगी, तद उन्हे अयोग्य वर समझकर, गाधि राजाने ऋचीक ऋषिसे कहा कि– ॥ ५ ॥ 'चंद्रमाके समान श्वेत वर्ण और एकतर्फसे श्याम जिनके कान हैं ऐसे श्यामकर्ण हजार घोड़े हमें कन्याके मूल्यके देओ तौभी हमारी कन्याका पूर्ण मूल्य नहीं होगा; क्योंकि–हम कुशिकवंशी हैं' ॥ ६ ॥ गाधिने यह वचन कहा तद गाधिका अभिप्राय जानकर, वे ऋषि वरुणके समीप गये. वहांसे घोड़े ला, उसे दे, उस सुमुखीसे व्याह किया ॥ ७ ॥ सत्यवती और सत्यवतीकी माता इन दोनोंने संतानकी इच्छासे ऋषिसे प्रार्थना की तद एक चरु तौ ब्राह्मणके मंत्रोंसे और दूसरा

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ॥ वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चंद्रवर्चसाम् ॥ सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६ ॥ इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणांतिकम् ॥ आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥ स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ॥ श्रपयित्वोभयैर्मंत्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥ तावत्सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ॥ श्रेष्ठं मत्वा तया यच्छन्मात्रे मातुरदत्स्वयम् ॥ ९ ॥ तद्विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ॥ घोरो दंडधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या मैवंभूदिति भार्गवः ॥ अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ॥ रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥

क्षात्रमंत्रोंसे मंत्र, रींध तय्यार कर, ऋषि स्नान करने गये ॥ ८ ॥ इतनेमें सत्यवतीकी माताने कन्याके चरुको श्रेष्ठ समझकर, सत्यवतीसे उसका चरु मांगा, तद सत्यवतीने अपना चरु तौ अपनी माताको दिया और माताका चरु आपने खाया ॥ ९ ॥ यह बात जानकर, मुनिने अपनी स्त्रीसे कहा कि–'तूने बहुत बुरा काम किया. तेरा पुत्र तौ बड़ा घोर दंड धारण करनेवाला होगा और तेरा भाई उत्तम ब्रह्मज्ञानी होगा ॥ १० ॥ तद सत्यवतीने प्रार्थना की कि–ऐसा नहीं होना चाहिये. तद मुनिने कहा कि–खैर पुत्र नहीं तौ पौत्र होगा, फिर सत्यवतीके जमदग्निनाम पुत्र हुआ ॥ ११ ॥ जमदग्निकी माता जो सत्यवती थी वह अत्यंत

प्राप्तिकी इच्छासे पुरूरवाने सर्वदेवमय परमात्मा, यज्ञेश्वर हरि भगवान्का उस अग्निसे यजन किया ॥ ४७ ॥ पहले सर्व वाणीका बीजरूप एक ओंकारही वेदरूप था, एक नारायणही देव माने जाते थे, उनके सिवाय दूसरा कोईभी देव नहीं माना जाता था आहवनीयआदि विभाग न होनेसे जो लोकका अग्नि है, वही एक अग्नि गिना जाता था और एकही वर्ण था; चार वर्ण, नहीं थे ॥ ४८ ॥ महाराज ! त्रेतायुगके आरंभमें पुरूरवासेही तीन वेद प्रगट हुए हैं, अग्निको पुत्ररूप मानकर, तद्द्वारा पुरूरवा राजा गंधर्वलोकको प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटी-

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥ देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥ अग्निना प्रजया राजा लोकं गांधर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ॥ आयुः श्रुतायुः सत्यायुरयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥ श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः ॥ रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ कांचनो होत्रकस्ततः ॥ तस्य जन्हुः सुतो गंगां गंडूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ३ ॥ ततः कुशः कुशस्यापि कुशांबुर्मूर्त्तयो वसुः ॥ कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत्कुशांबुजः ॥ ४ ॥

कायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ पंद्रहवें अध्यायमें पुरूरवाके वंशमें गाधि राजा हुआ और गाधिके दौहित्र पुत्र परशुरामजीने क्रोधसे सहस्रार्जुनका वध किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे छह पुत्र हुए. आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥ श्रुतायुके वसुमान्, सत्यायुके श्रुतंजय, रयके एक, जयके अमित ॥ २ ॥ विजयके भीम, उसके कांचन, उसके होत्रक, उसके जन्हु नाम पुत्र हुआ, जो गंगाजीको एक चुल्लू करके पी गया, जन्हुके पूरु, उसके बलाक, उसके अजक ॥ ३ ॥ उसके कुश कुशके कुशांबु, मूर्तय, वसु और कुशनाभ ये चार पुत्र हुए, कुशांबुके गाधि

जानकर, पुरूरवा पीछा अपने नगर आया, वर्ष पूरा हुआ, तब पीछा वहा गया और पुत्रोंकी माता उर्वशीसे मिलकर, एक रात उसके साथ रहा, जाते समय उर्वशीने उस राजाको दीन व विरहातुर देखकर, कहा कि-॥ ४० ॥ ४१ ॥ इन गंधर्वोंकी स्तुति कर, ये मुझे तुझको देदेंगे. महाराज! उसने गंधर्वोंकी स्तुति की तौ प्रसन्न होकर, गंधर्वोंने उसको एक अग्निस्थाली दी, इस स्थालीको उर्वशी मानताहुआ वह राजा वनमें फिरता रहा. निदान उसने जान लिया कि-' यह तौ उर्वशी नहीं है किंतु स्थाली है ' ॥ ४२ ॥ तद उस स्थालीको वनमें धरकर, अपने घर चला गया, वहांभी रातमें निरंतर उसी स्थालीका

उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् ॥ अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥ गंधर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यंति मामिति ॥ तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥ उर्वशीं मन्यमानस्तां-सोऽबुद्ध्यत चरन्वने ॥ ४२ ॥ स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहांस्तान्ध्यायतो निशि ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्त्तत ॥ ४३ ॥ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः ॥ तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥ उर्वशीं मंत्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ॥ आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्मंथनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ॥ त्रय्यास विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥ तेनाऽयजत यज्ञेशं भगवंतमधोक्षजम् ॥ उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥

चिंतवन किया करता, सो त्रेतायुगके प्रवृत्त होते इसके मनमें कर्मकांडका उपदेश करनेवाली वेदत्रयी प्रगट हुई ॥ ४३ ॥ फिर जहां आपने स्थली धरी थी वहां जाकर, देखा तौ शमी (छिउकुर) के गर्भमें पीपलको उगाहुआ देखा, उस पीपलसे दो अरणी बनाकर, उर्वशीके लोक जानेकी इच्छासे अग्नि मथने लगा ॥ ४४ ॥ ' यह जो नीचेकी अरणी है सो उर्वशी है और जो ऊपरकी अरणी है सो मैं हूं, तथा इन दोनों अरणियोंके बीचमें जो मथन करनेका दंड है वह उपस्थ है, ' ऐसे ध्यान करते राजाने मथन किया ॥ ४५ ॥ इस मथनसे सर्व भोग्य वस्तु देनेवाला अग्नि उत्पन्न हुआ, यह अग्नि कि-जो वेदोक्त संस्कारसे आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि एन प्रगट हुआ, उसे पुरूरवाने अपना पुत्र ठहेराया ॥ ४६ ॥ उर्वशीके लोककी

उर्वशी जाती रही, पुरुरवा शयनमें आकर देखे तौ वहां उर्वशीको न देखकर, खेदको प्राप्त हुआ और केवल उसीमें चित्त रहनेसे विव्हल वह राजा सोच करता उन्मत्तकी तरह पृथ्वीमें घूमने लगा ॥ ३२ ॥ एक दिन कुरुक्षेत्रमें सरस्वतीके तीरपर हँसतेमुख उस उर्वशी और उसकी पांच सखियोंको देखकर, पुरुरवा सुंदर वचन बोला कि– ॥ ३३ ॥ अहो ! हे निर्दय स्त्री ! ठाढ़ी रह, ठाढ़ी रह मुझे सुख दिये विना छोड़ देना तेरे वास्ते ठीक नहीं है, आओ आपन बातें करें, ॥ ३४ ॥ हे देवि ! यह मेरा सुंदर शरीर कि–जो तेरे वास्ते इतनी दूर आया है, वह यहां मरे जाता है, जो तू कृपा नहीं करेगी तौ वृक (भेंड़िये) और

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्या च तत्सखीः ॥ पंच प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३ ॥ अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४ ॥ सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादंत्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच ॥ मा मृथा पुरुषोसि त्वं मा स्म त्वाऽद्युर्वृका इमे ॥ क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ॥ घ्नंत्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविश्रंभमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ॥ नवं नवमभीप्संत्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८ ॥ संवत्सरांते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ॥ वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यंत्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥ अंतर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् ॥ पुनस्तत्र गतोऽब्दांत उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥

गिद्ध इस देहको खा जायंगे ॥ ३५ ॥ राजाके ऐसे वचन सुन, उर्वशी बोलीकि–' तू मरे मत तू पुरुष है तासों धीरज रख, इंद्रियोंके वश हो, खराब होना ठीक नहीं है. स्त्रियोंकी मित्रता कहींभी स्थिर नहीं होती, स्त्रियोंका हृदय तौ वृक (भेंड़िया) कासा हुआ करता है ॥ ३६ ॥ निर्दय, क्रूर, असहन स्वभाववाली और जिनको साहसही प्रिय है ऐसी, स्त्रियां थोड़ीसी बातके वास्तेभी पति या भाई, जो उसीका विश्वास कर रहा है, उसेही मार डालतीं हैं ॥ ३७ ॥ स्नेहरहित, छिनाल और अपनी मनमानी रीतिसे चलनेवाली स्त्रियां मूर्ख पुरुषोंको खोटा विश्वास (धोखा) देकर, नये २ पतिकी इच्छा करतीं हैं ॥ ३८ ॥ हे राजा ! एक वर्षके अनंतर तू एक रात मेरे साथ रहेगा और तेरे दूसरेभी पुत्र होवेंगे ॥ ३९ ॥ इस बातसे उर्वशीको सगर्भा

नेके स्थल चैत्ररथआदि बागोंमें इच्छापूर्वक रमण करने लगा॥ २४ ॥कमलके केसरसी सुगंधिवाली उस देवीके साथ रमण करता वह राजा उसके मुखकी सुगंधसे ऐसा आनंदमग्न हो गया कि–बहुतसे दिन बीत गये, जिसकी बिलकुल खबर नहीं रही॥ २५॥ स्वर्गमें उर्वशीको न देखकर, इंद्रने गंधर्वोंसे कहा कि–'उर्वशीबिना मेरा यह स्थान अतिशोभा नहीं देता है सो तुम जाकर, तलाश करो.' जब इंद्रकी ऐसी आज्ञा हुई॥ २६ ॥ तद गंधर्व आधीरातके समय आकर, अंधकार फैल जानेपर उन उर्वशीके भेड़ीके बच्चोंको कि–जिन्हें उर्वशीने राजाको सौंप रक्खे थे लेकर, मार्ग पड़े॥ २७ ॥ हर ले जाते अपने पुत्रोंकी चिल्लाहट सुनकर, उर्वशी

रममाणस्तया देव्या पद्मकिंजल्कगंधया ॥ तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५ ॥ अपश्यन्नुर्वशीमिंद्रो गंधर्वान्समनोदयत् ॥ उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६ ॥ त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ॥ उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ २७ ॥ निशम्याक्रंदितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ॥ हताऽस्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ २८ ॥ यद्विश्रंभादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ॥ यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान्॥ २९ ॥ इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुंजरः ॥ निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥ ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतंत स्म विद्युतः॥आदाय मेषावायांतं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥ ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२ ॥

बोली कि–'नपुंसक होते आपको वीर माननेवाले इस नीच मालिकने मेरी बड़ी खराबी की,॥ २८॥ इसके विश्वाससे मैं खराब हुई और मेरे बच्चोंको चोर ले गये, जो यह पुरुष होकर, जैसे दिनमें स्त्री डरती सोया करती है, वैसे रात्रिमें त्रास खाकर, सोया पड़ा है'॥ २९ ॥ जैसे हाथीको प्रतोत्रों (आंगुशों) से बेधते हैं वैसे उर्वशी उसको वाणीरूप बाणोंसे बींधने लगी, तद वह वस्त्र विना पहिरे, नग्नही खड्ग हाथमें ले, रातमें गंधर्वोंके पीछे दौड़ा॥ ३० ॥ तद गंधर्व बच्चोंको छोड़कर बिजलीरूप हो चमकने लगे, तासों पुरुरवा कि–जो बच्चोंको लेकर, पीछा आता था, उसे उर्वशीने नग्न देखलिया॥ ३१ ॥ कौल टूटनेसे

वाणीसे कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ राजाने कहा कि–' हे वरारोहे ! भले आयी, आओ विराजो, हमें क्या आज्ञा है ? मेरे साथ रमण कर; मैं यह मांगता हूं कि–अपने दोनोंके बीचमें सदा प्रीति बनी रहे ' ॥ १९ ॥ तद उर्वशीने कहा कि–हे सुंदर ! आपमें किस स्त्रीका मन व दृष्टि आसक्त न हो जाय ? क्योंकि आपकी दृष्टिमें आनेके अनंतर रमण करनेकी इच्छा रहते फिर छोड़ा जाय ऐसा नहीं है ॥ २० ॥ पर हे मान देनेवाले महाराज ! मैं पहलेहीसे आपसे कौल कर लेती हूं कि–' ये दो मेरे मेंढ़ीके बच्चे हैं सो ये आपको मेरी थापनकी तौरपर रखने होंगे और मैं घृतके सिवाय दूसरा कुछभी न खाऊं-

मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ॥ निशाम्य पुरुषश्रेष्ठं कंदर्पमिव रूपिणम् ॥ १७ ॥ धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदंतिके ॥ स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ॥ संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वती समाः ॥ १९ ॥ उर्वश्युवाच ॥ कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुंदर ॥ यदंगांतरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥ २० ॥ एतावुरणकौ राजन्न्यासौ रक्षस्व मानद ॥ संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥ २१ ॥ घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात् ॥ विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥ २२ ॥ अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ॥ को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥ २३ ॥ तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयंत्या यथार्हतः ॥ रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥ २४ ॥

गी व मैथुनके सिवाय, अन्य समयमें वस्त्रहीन नहीं देखूंगी. इतनी बात तबतक आप पालेंगे, तबतक मैं आपके साथ रमण करूंगी; यह नीति है कि–जो उत्तम पुरुष होता है उसे स्त्रियां अपना वर बनातीं हैं ' इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजीने कहा कि–पृथ्वीनाथ ! उदारचित्त राजाने वह सब स्वीकार किया ॥ २१ ॥ २२ ॥ और बोला कि–' अहो ! तेरा रूप और भाव कैसा आश्चर्यकारी है, कि–जिसे देखतेही मनुष्यलोक मोहित हो जाते हैं, उस अपने आप आयीहुई तुझ देवीका कौन मनुष्य अनुसरण न करे ? ' ॥ २३ ॥ महाराज रमण करती उस उर्वशीके साथ वह पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवा यथायोग्य देवतानके विहार कर-

करूंगा ॥ ९ ॥ पतिके वचन सुन, लज्जित ताराने कनकसा कांतिमान् कुमार त्याग दिया, उसे देखकर, इधर तौ बृहस्पतिने चाहा कि–इस कुमारको मैं ले लूं और चंद्रमाने चाहा कि–' मैं लूं ' ॥ १० ॥ दोनोंके बीच इस बालकके बाबत इस तरह जाहिर विवादभी होने लगा कि–' यह मेरा है तेरा नहीं ' तद ऋषि और देवताननेे तारासे पूंछाभी, परंतु उसने शर्मके मारे कुछभी नहीं कहा ॥ ११ ॥ खोटी बातसे शर्माते कुमारने क्रोध करके, अपनी मातासे कहा कि–' हे बुरे आचरणवाली ! तू क्यों नहीं बोलती ? अपना पाप जो हो सो मुझसे जल्दी कह दे ॥ १२ ॥ फिर ब्रह्माजीने ताराको एकांतमें बुलाय सांत्वना देकर, पूंछा; तद

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ॥ स्पृहामांगिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥ ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः ॥ पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥ कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ॥ किं नावोचस्यसद्वृत्ते आत्माऽवद्यं वदाशु मे ॥ १२ ॥ ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सांत्वयन् ॥ सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्याभिधां नृप ॥ बुद्धया गंभीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४ ॥ ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५॥ श्रुत्वोर्वशींद्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणा ॥ तदंतिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥

धीरेसे बोली कि–' चंद्रमाका है तासें वह पुत्र चंद्रमाने लिया ' ॥ १३ ॥ महाराज ! ब्रह्माजीने इस कुमारकी बुद्धि देखकर, उसका ' बुध ' नाम रक्खा. जिस पुत्रसे चंद्रमा परमआनंदको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ बुधके वीर्यसे इलानाम स्त्रीमें, पुरूरवानाम पुत्र हुआ जिसका हम पहले वर्णन कर चुके हैं, नारदजीने इंद्रकी सभामें जाकर, इस पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील, धन व पराक्रमका वर्णन किया और गाया, उसे सुनकर, कामदेवके बाणोंसे पीड़ित उर्वशी नाम अप्सरा कि–जो मित्रावरुणके श्रापसे मनुष्यदेहको प्राप्त हुई थी वह ललना पुरूरवा राजाको पुरुषोंमें श्रेष्ठ और कामदेवके समान रूपवान् देखकर मनमें धीरज, धर उस राजाके समीपमें आ, उपस्थित हुई; इस अप्सराको देखकर, आनंदसे प्रफुल्लित नेत्र और पुलकित गात पुरूरवाने मधुर

उत्पन्न हुए कहलाते हैं ॥ १ ॥ नारायणके नाभि-ह्रदके कमलमेंसे ब्रह्माजी प्रगट हुए; उनके अत्रिनाम पुत्र हुए, जो पिताके स-मान गुणवान थे ॥ २ ॥ अत्रिके नेत्रमेंसे चंद्र नाम पुत्र पैदा हुआ, कि-जिस अमृतमय चंद्रमाको ब्रह्माजीने ब्राह्मण, औषधि व नक्षत्रोंका अधिपति बनाया ॥ ३ ॥ इस चंद्रमाने त्रिलोकीको जीत कर, राजसूय नाम यज्ञ किया और उस गर्वसे बृहस्पतिकी स्त्री ताराको बलात्कारसे हर लेगया ॥ ४ ॥ बृहस्पतिने कितनीवेर चंद्रमासे मांगी, पर मदसे जब चंद्रमाने ताराको नहीं छोड़ी, तद उसके वास्ते देवता और दैत्योंके बीच भारी युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ बृहस्पतिके द्वेषसे दैत्योंके साथ शुक्राचार्यजी चंद्रमाके पक्षमे

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ॥ जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥ तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ॥ विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३ ॥ सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ॥ पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद्बलात् ॥ ४ ॥ यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ॥ नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥ शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ॥ हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो महेंद्रो गुरुमन्वयात् ॥ सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथांगिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ॥ तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदंतर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥ त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ॥ नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सांतानिकः सति ॥ ९ ॥

बंध गये और महादेव कि-जो बृहस्पतिके पिता अंगिराके पास विद्या पढ़े थे, वे स्नेहसे अपने पार्षदोंके साथ अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिके पक्षमें बंधे ॥ ६ ॥ सब देवतानके साथ इंद्रभी बृहस्पतिके पक्षमें बंधे, इसतरह होते २ ताराके वास्ते संग्राम हुआ उसमें देवता और दैत्य, दोनोका भारी विनाश हुआ ॥ ७ ॥ फिर बृहस्पतिकी प्रार्थनासे ब्रह्माजीने चंद्रमाको झिड़ककर, तारा बृहस्पतिको दिवाय दीनी, पर बृहस्पतिने जान लिया, कि-यह गर्भवती है ॥ ८ ॥ इसलिये बृहस्पतिने कहा कि-' हे दुर्बुद्धि ! दूसरेका राखा हुआ यह गर्भ मेरे क्षेत्रमेंसे जल्दी बाहिर डालदे, हे सति ! मेरे दूसरे संतानकी इच्छा है, तासों मैं तुझ स्त्रीको भस्म नहीं

महाराज ! केशिध्वज ब्रह्मविद्यामें निपुण था ॥ २० ॥ और खांडिक्य कर्मविद्यामें निपुण था, यह खांडिक्य केशिध्वजसे डरता भाग गया. केशिध्वजके भानुमान्, उसके शतद्युम्न , ॥ २१ ॥ उसके शुचि, उसके सनद्वाज, उसके ऊर्ध्वकेतु, उसके अज, अजके पुरुजित् ॥ २२ ॥ उसके अरिष्टनेमि, उसके श्रुतायु, उसके सुपार्श्वक, उसके चित्ररथ, उसके क्षेमधि, ॥ २३ ॥ उसके समरथ, उसके सत्यरथ, उसके उपगुरु और उसके उपगुप्त नाम पुत्र हुआ, जो अग्निके अंशसे प्रगट हुआ था ॥ २४ ॥ उपगुप्तके वस्वनंत, उसके युयुधान, उसके सुभाषण, उसके श्रुत, श्रुतके जय, जयके विजय, उसके ऋत, ॥ २५ ॥ ऋतके शुनक, शुनकके

खांडिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः ॥ भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः ॥ २२ ॥ अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ॥ ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधीर्मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥ तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ॥ आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः २४ ॥ वस्वनंतोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः ॥ श्रुतस्ततो जयस्तस्माद्विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५ ॥ शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ॥ बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६ ॥ एते वै मिथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ॥ योगेश्वरप्रसादेन द्वंद्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः ॥ यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यंते पुण्यकीर्त्तयः ॥ १ ॥

वीतहव्य, उसके धृति, धृतिके बहुलाश्व और उसके महाजितेंद्रिय कृतिनाम पुत्र हुआ ॥ २६ ॥ महाराज ! ये मिथिल अथवा जनकके वंशके राजा याज्ञवल्क्य आदि योगेश्वरोंके प्रतापसे ब्रह्मविद्यामें निपुण और घरमें रहनेपरभी संसारके बंधनोंसे मुक्त हुए ॥ २७ ॥ इति श्रीभा०महा०नवमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥

चौदहवें अध्यायमें बृहस्पतिकी स्त्री तारामें चंद्रमासे बुध पुत्र हुआ. और उसके उर्वशी अप्सरामें आयु आदि छह पुत्र हुए यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! अब चंद्रमाका पवित्र वंश सुनो, जिसमें पवित्रकीर्ति पुरूरवा-आदि राजा

मिराजा रहा करेगा और उस रहनेके निशानकी तौरपर आखोंका निमेषण (मूंदना) व उन्मेषण (खोलना) हुआ करेगा ॥ ११ ॥ इतनी कथा सुनाय, श्रीशुकदेवजी बोले कि- किसी राजाके न होनेसे मनुष्योंको त्रास होगा ' ऐसा विचार कर, मुनि लोगोंने निमिके शरीरका मथन किया ' तद उसमेंसे एक बालक उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ यह बालक जन्मा, इसलिये इसका नाम जनक पड़ा, मरेहुए शरीरसे पैदाहुआ इसलिये वैदेह कहलाया और मथन करनेसे पैदा हुआ इसलिये मिथिल कहलाया, कि-जिसने मिथिलापुरी बसायी ॥ १३ ॥ महाराज ! जनकके उदावसु, उसके नंदिवर्द्धन, उसके सुकेतु, उसके देवरात, ॥ १४ ॥

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः ॥ देहं ममंथुः स्म निमेः कुमारः समजायत ॥ १२ ॥ जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः ॥ मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥ तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नंदिवर्द्धनः ॥ ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४ ॥ तस्माद्बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृतिपिता ॥ सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥ मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ॥ देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः ॥ १६ ॥ कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाऽथ तत्सुतः ॥ स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥ ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ॥ सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ॥ धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥ कृतध्वजात्केशिध्वजः खांडिक्यस्तु मितध्वजात् ॥ कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ २० ॥

उसके बृहद्रथ, उसके महावीर्य, उसके सुधृति उसके धृष्टकेतु, उसके हर्यश्व, उसके मरु, ॥ १५ ॥ मरुके प्रदीपक, उसके कृतिरथ, उसके देवमीढ़, उसके विश्रुत, उसके महाधृति, ॥ १६ ॥ उसके कृतिरात, उसके महारोमा, उसके स्वर्णरोमा, उसके ह्रस्वरोमा ॥ १७ ॥ और उसके सीरध्वज नाम पुत्र हुआ, यह राजा यज्ञ करनेके लिये पृथ्वीको हल चलाकर, साफ कर रहा था, वहां हलके अग्र (सीता) से सीताजीका प्रागट्य हुआ, इसलिये उसका सीरध्वज नाम पड़ा ॥ १८ ॥ सीरध्वजके कुशध्वज, उसके धर्मध्वज, धर्मध्वजके दोपुत्र हुए. कृतध्वज और मितध्वज ॥ १९ ॥ उनमेंसे कृतध्वजके केशिध्वज और मितध्वजके खांडिक्य;

वसिष्ठजी पीछे आये तौ अपने शिष्य निमिराजाका अपराध देखकर, उन्होंने श्राप दिया कि–'पंडितंमन्य निमिराजाका देह पडजाओ' ॥ ४ ॥ निमिराजानेभी अधर्मवर्ती गुरु वसिष्ठजीको पीछा श्राप दिया कि–'आपभी लोभसे धर्म नहीं जानते, इसलिये आपकाभी शरीर पड़ जाओ' ॥ ५ ॥ याप्रकार श्राप देकर, ब्रह्मवेत्ता निमिराजाने अपना देह त्याग दिया और वसिष्ठजीकाभी शरीर पड़ गया, महाराज! उर्वशीके दर्शनसे वीर्य स्खलित होनेपर मित्रावरुणने अपना वीर्य जो घड़ेमें सींचा, उससे वसिष्ठजीका फिर दूसरा जन्म हुआ ॥ ६ ॥ निमिराजाके शरीरको ब्राह्मणोंने सुगंधिवस्तुमें रख छोड़ा ताकि सड़ न जाय, सो जब

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्त्तिने ॥ तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥ इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ॥ मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गंधवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ॥ समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥ राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ॥ तथेत्युक्ते निमिः प्राह माभून्मे देहबंधनम् ॥ ८ ॥ यस्य योगं न वाञ्छंति वियोगभयकातराः ॥ भजंति चरणांभोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहं नावरुरुत्सेहं दुःखशोकभयावहम् ॥ सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ॥ उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥

यज्ञ समाप्त हुआ और देवता आये, तब उन्होंने देवतानसे प्रार्थना की कि– ॥ ७ ॥ 'अगर आप प्रसन्न हुए हो और समर्थ हो तौ, इस राजाके शरीरको सजीवित करो' देवताओंने स्वीकार किया, तद राजा बोला कि– 'मैं देहका बंधन नहीं चाहता ॥ ८ ॥ भगवान्‌का ध्यान करनेवाले मुनिलोग मरनेके डरसे जिस शरीरको बिलकुल प्राप्त होना नहीं चाहते किंतु मोक्षकीही इच्छा रखते हैं, इसलिये मैंभी देहका बंधन नहीं चाहता हूं ॥ ९ ॥ देह कि–जो दुःख, शोक व भयका देनेवाला है और जैसे जलमें मछलीको सब ओरसे मृत्युही मृत्यु भासे है, वैसे जिसकी सब ओरसे मृत्यु देखनेमें आती है, उस देहको मैं प्राप्त होना नहीं चाहता' ॥ १० ॥ राजाके वचन सुन, देवता बोले कि–तब सब देहधारियोंके नेत्रोंपर इच्छानुसार देह विनाभी नि-

उसके बर्हि, बर्हिके कृतंजय, ॥ १२ ॥ उसके रणंजय, उसके संजय, उसके शाक्य, शाक्यके शुद्धोद, उसके लांगल, १३ ॥ उसके प्रसेनजित, उसके क्षुद्रक, उसके रणक, उसके सुरथ और सुरथके सुमित्र नाम पुत्र होगा ॥ १४ ॥ इस सुमित्र राजासे वंशका उच्छेद हो जायगा, ये बृहद्बलके वंशके राजाओंके नाम मैंने तुमसे कहे, महाराज ! इक्ष्वाकुवंशी राजाओंका यह वंश सुमित्र राजातक चलेगा फिर कलियुगमें सुमित्र राजासेही उच्छेद हो जायगा ॥ १५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ तेरहवें अध्यायमें इक्ष्वाकुके पुत्र निमिका वंश कहा

रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥ तस्माच्छाक्योऽथशुद्धोदो लांगलस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १३ ॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः ॥ १४ ॥ सुमित्रो नाम निष्ठांत एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रांतो भविष्यति ॥ यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १५ ॥ इति श्रीभा० महा० नवम० इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ॥ आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥ तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ॥ तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोऽपींद्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥ निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् ॥ ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥ ३ ॥ शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ॥ अशपत्पततादेहो निमेः पंडितमानिनः ॥ ४ ॥

जायगा जिसमें ब्रह्मवेत्ता जनकप्रभृति महात्मा प्रगट हुए हैं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इक्ष्वाकुके पुत्र निमिराजाने यज्ञ करनेके लिये वसिष्ठजीका वरण किया तद वसिष्ठजी स्वीकार कर, यज्ञका प्रारंभ कराते, बोले कि– ' इंद्र पहले मेरा वरण कर चुका है ॥ १ ॥ तासों इंद्रका यज्ञ पूर्ण करके मैं आऊंगा सो तबतक मेरी राह देखते रहना यह बात सुनकर, निमिराजा चुप हो गया और वसिष्ठमुनि इंद्रको यज्ञ कराने गये ॥ २ ॥ फिर ज्ञानमान् निमिराजाने जीवितको अस्थिर जान कर, वसिष्ठजी पीछे नहीं आये, उससे पहलेही दूसरे ऋत्विजोंका वरण करके यज्ञका प्रारंभ किया ॥ ३ ॥ इंद्रका यज्ञ पूर्ण करके

सारमें कौन है ? जो बुद्धिमान् पृथ्वीके रजकणकी गणना करसके, वहभी भगवान्के पराक्रमोंकी गणना नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ जिन भगवान्के मायाबलका अंत न तौ मैं जानता हूं और न तेरे अग्रज ये मुनि जानते हैं, तब जो दूसरे हैं वे तौ कहांसे जाने ? सहस्रमुखवाले आदिदेव शेषजीभी जिनके गुणोंका गान करते अबतक इनका पार नहीं पाये हैं ॥ ४१ ॥ येही अनंत भगवान् जिनपर कृपा करें और जो यदि निष्कपट होकर, सर्वात्मभावसे भगवान्के चरणका आश्रय करते हैं, वे पुरुष भगवान्की दुस्तर मायाको तिर जाते हैं. और भगवान्की मायाके वैभवकोभी जान लेते हैं; क्योंकि उनके कुत्ते और सियारके भक्ष्यरूप

नांतं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ॥ गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनाऽपि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१ ॥ येषां स एव भगवान्दययेदनंतः सर्वात्मनाऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ॥ ते दुस्तरामतितरंति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वसृगालभक्ष्ये ॥ ४२ ॥ वेदाहमंग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्गः ॥ पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हि ऋभुरंग उत ध्रुवश्च ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकुरैलमुचुकुंदविदेहगाधिरघ्वंबरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ॥ मांधात्रलर्कशतधन्वनुरंतिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥ ४४ ॥ सौभर्युतंकशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ॥ येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेंद्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥ ४५ ॥

शरीरमें 'मैं हूं' 'मेरा है' ऐसी बुद्धि नहीं होती ॥ ४२ ॥ इन परमेश्वरकी योगमायाको मैं जानता हूं और तुम जानते हो, तथा भगवान् महादेव और प्रल्हाद, मनु, मनुकी स्त्री, मनुके पुत्र, प्राचीनबर्हि, ऋभु, अंगराजा, ध्रुव, ॥ ४३ ॥ इक्ष्वाकु, पुरूरवा, मुचुकुंद, विदेह, गाधि, रघु, अंबरीष, सगर, गय, नाहुष आदि और मांधाता, अलर्क, शतधनु, अनु, रंतिदेव, भीष्म, बलि, अमूर्तरय, दिलीप, ॥ ४४ ॥ सौभरि, उतंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण औरभी जो विभीषण, हनूमान्, शुकदेव, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर, श्रुतदेव, आदि हैं, ये सब भगवान्की मायाको जानते हैं ॥ ४५ ॥

प्राप्त होवेंगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ (व्यासावतार कहते हैं.) कालकरके संकुचित बुद्धिवाले और अल्पायु मनुष्योंको अपने बनाये वेदका पार होना अति दूर है ऐसा विचार कर, सत्यवती नाम स्त्रीमें वेदव्यास अवतार धारण करके, भगवान् प्रतियुगमें वेदरूप वृक्षका शाखाभेदद्वारा विभाग करेंगे ॥ ३६ ॥ (बुद्धावतार कहते हैं.) जिनका योग लक्ष्यमें न आवे ऐसे, मयदैत्यके बनाये पुरोंमें बैठकर, लोकोंका नाश करते, वेदमार्गमें निष्ठावाले दैत्योंकी मतिको मोहित करनेवाला अतिलुभावना वेष बनाकर, बहुतसा

कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ॥ आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ॥ ३६ ॥ देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेनविहिताभिरदृश्यतूर्भिः ॥ लोकान् घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहुभाष्यत औपधर्म्यम् ॥ ३७ ॥ यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखंडिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ॥ स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगांते ॥ ३८ ॥ सर्गे तपोहमृषयो नव ये-प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ॥ अंते त्वधर्महरमन्युवशा सुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥ ३९ ॥ विष्णोर्नृवीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ॥ चस्कंभ यः स्वरंहसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकंपयानम् ॥ ४० ॥

पाखंडधर्मका उपदेश करेंगे ॥ ३७ ॥ (कल्किअवतार कहते हैं.) जब सत्पुरुषोंके घरोंमेंभी हरि भगवान्‌की कथा न होगी और द्विजलोग पाखंडी तथा शूद्र राजा होवेंगे और जब कहीं स्वाहा, स्वधा, वषट् ऐसी वाणी नहीं रहेगी, तब कलियुगके अंतमें भगवान् कल्किअवतार धारण कर, जगत्‌का पालन करेंगे ॥ ३८ ॥ सृष्टि रचनाके निमित्त तौ तप, मैं (ब्रह्मा) मरीचि आदि ऋषि और नौ प्रजापति, पालनके अर्थ धर्म यज्ञ, मनु, देवता और राजा, संहारके हेतु अधर्म, महादेव, सर्प और दैत्य आदि जो हैं, वे सब अनंतशक्ति भगवान्‌कीही मायाकी विभूतियां हैं ॥ ३९ ॥ अप्रतिहत अपने चरणके वेगसे अतीव कंपायमान सत्यलोक सहित संपूर्ण लोकको जिन त्रिविक्रम भगवान्‌ने धारण किया, उन विष्णुभगवान्‌के पराक्रमोंकी गणना करे ऐसा, इस सं-

खावेंगे. तब इनके मुखमें त्रिलोकीको देखकर, यशोदाजी शंकितचित्त होकर, श्रीकृष्ण भगवान्‌की ईश्वरताको जान जायगी ॥ ३० ॥ वरुणपाशके भयसे नंदरायजीको छुड़ावेंगे, बिलोंमें बंद कियेहुए गोपोंको व्योमासुरसे छुड़ावेंगे, दिनमें धंधेमें लगेहुए और रात्रिमें अतीव परिश्रमसे सोतेहुए व्रजवासियोंको वैकुंठलोक ले जायंगे ॥ ३१ ॥ जब ग्वाल यज्ञका भंग करेंगे; तब व्रजका नाश करनेके लिये इंद्र अतिवृष्टि करेगा. उस समय पशुओंके रक्षा करनेके लिये सातवर्षके हरि सात दिनतक श्रमरहित अपने हाथसे छत्राकके फूल (धरतीके) समान गोवर्धन पर्वतको लीलापूर्वक धारण करेंगे ॥ ३२ ॥ चंद्रमाकी किरणोंसे धवल वनमें क्रीड़ा करते,

नंदं च मोक्ष्यति भयाद्वरुणस्य पाशाद्गोपान्बिलेषु पिहितान्मयसूनुना च ॥ अह्न्यापृतं निशि शयानमतिश्रमेण लोके विकुंठ उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥ ३१ ॥ गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः ॥ धर्तोच्छिलींध्रमिव सप्तदिनानि सप्तवर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥ ३२ ॥ क्रीडन्वने निशिनिशाकररश्मिगौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन ॥ उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ ३३ ॥ ये च प्रलंबखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौंड्रकाद्याः ॥ अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदंतवक्रसप्तोक्षशंबरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥ ३४ ॥ ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः कांबोजमत्स्यकुरुकैकयसृंजयाद्याः ॥ यास्यंत्यदर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥ ३५ ॥

रासक्रीड़ामें उन्मुख, हरि मंजुलपदवाली आयत मूर्छनासे युक्त गानकरके उद्दीपन कियेहुए कामदेवरूप रोगसे आतुर व्रजांगनाओंको हर ले जाते हुए कुबेरके अनुचर शंखचूड़का सिर उड़ादेंगे ॥ ३३ ॥ जो प्रलंब, धेनुक, बकासुर, केशी अरिष्ट, मल्ल, कुवलयापीड़, कंस, कालयवन, भौमासुर, पौंड्रक आदि हैं और दूसरेभी शाल्व, द्विविद, बल्वल, दंतवक्र, सातबैल, शंबर, विदूरथ और रुक्मि वगैरः हैं तथा युद्धमें अपनी प्रशंसा करनेवाले संग्राममें धनुष, धारण करनेवाले जो कांबोज, मत्स्य, कुरु, कैकय और सृंजय आदि देशके राजा हैं, वे सब बलराम, भीम और अर्जुनके नामके मिषसे स्वयं श्रीकृष्णचंद्रके हाथ मारे जायंगे, अतएव वे सब भगवान्‌के धाम वैकुंठको

णके बढ़ेहुए हास्यके साथ उसके प्राणोंका शीघ्र नाश करेंगे ॥ २५ ॥ (राम-कृष्णअवतार कहते हैं.) दैत्योंकी सेनाके भारसे पीड़ायमान पृथ्वीका क्लेश मिटानेके लिये भगवान्, कि जिनके शोभाके अर्थ श्वेत और कृष्ण केश हैं तथा मनुष्यके जाननेमें जिनकी ईश्वरता नहीं आती ऐसे, कृष्णरूपसे अपनी कला बलदेवजीके साथ अवतार धारण कर, अपनी महिमाके सूचक अनेक कर्म करेंगे ॥ २६ ॥ जो श्रीकृष्णभगवान् ईश्वर न होवें, तो बचपनमें पूतनाका प्राणहरण, तीन महीनेकी अवस्थामें पांवसे गाड़ा उलट देना और रेंगते जाते आकाशसे बातें करते बहुत ऊंचे दो अर्जुनके वृक्षोंके बीचमें घुसकर, उनको समूल उखेड़ देना, यह

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ॥ जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबंधनानि ॥ २६ ॥ तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ॥ यद्रिंगतांऽतरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् ॥ २७ ॥ यद्वै व्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान्मालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ॥ तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन् ह्रदिन्याम् ॥ २८ ॥ तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ॥ उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितांतकालं नेत्रे पिधाय्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥ २९ ॥ गृह्णीत यद्यदुपबंधममुष्य माता शुल्बं सुतस्य न तु तत्तदमुष्य माति ॥ यज्जृंभतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शंकितमनाः प्रतिबोधिताऽऽसीत् ॥ ३० ॥

बात बने नहीं ॥ २७ ॥ व्रजके अंदर व्रजके पशु और उनके पालक यमुनाजीके ह्रद (कालीदह) का जहरीला जल पीकर, मर जायंगे, तब आप कृपादृष्टिरूप अमृतकी वृष्टिसे उन्हें पीछे सजीवित करेंगे. और उस ह्रदके जलको शुद्ध करनेके लिये अतितीक्ष्ण विषके प्रभावसे चंचल जीभवाले कालिय सर्पको यमुनाजीमें विहार करते भगवान् वहांसे निकाल देंगे ॥ २८ ॥ यह कर्मभी अलौकिकसाही है, कि- ग्रीष्मसंबंधी सूखा वन दवानलसे जलने लगेगा; तब रात्रिमें सोतेहुए व्रजको अंतकालका निश्चय हो जानेपर, नेत्र बंद करवाके, अतुलितपराक्रमवाले श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीसहित दवानलसे बचावेंगे ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णचंद्रकी माता यशोदाजी पुत्रको बांधनेके लिये जो जो रज्जु (रस्सी) लेंगी, वह सब बांधनेके लिये पूरी नहीं होवेगी. और भगवान् जंभाई

जो अपना नाम लेनेवाले महारोगीजनोंके रोगका शीघ्र नाश करते हैं, उन साक्षात् मूर्तिमान् कीर्तिस्वरूप धन्वंतरि भगवान्ने अवतार धारण करके, प्रथम दैत्योंके बंद कियेहुए अमर करनेवाला यज्ञका भाग संपादन किया और लोकमें आयुर्वेदकी प्रवृत्ति करी ॥ २१ ॥ (परशुरामअवतार कहते हैं.) नरककी पीड़ा भोगना चाहते हों ऐसे, पृथ्वीके कंटकके समान, ब्रह्मद्वेषी, वेदमार्गसे भ्रष्ट, जगतके नाशके निमित्त दैवने जिनको बढ़ाये ऐसे, क्षत्रियोंका महात्मा और उग्रवीर्य परशुरामजीने दीर्घ और तीक्ष्णधारवाले परशुसे इक्कीसबेर समूल नाश किया ॥ २२ ॥ (रामचंद्रअवतार कहते हैं.) हमपर कृपा करनेमें सुमुख, मायाके अ-

क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं माहात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ॥ उद्धंत्यसाववनिकंटकमुग्रवीर्यस्त्रिःसप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥ २२ ॥ अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ॥ तिष्ठन्वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन्विरुध्य दशकंधर आर्तिमार्च्छत् ॥ २३ ॥ यस्मा अदादुदधिरूढभयांगवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः ॥ दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥ २४ ॥ वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेंद्रवाहदंतैर्विडंबितककुब्जुष ऊढहासम् ॥ सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥ २५ ॥

धिपति, भगवान् रामचंद्रजी अपनी कलारूप भरत आदि भाइयोंके साथ इक्ष्वाकु राजाके वंशमें अवतार ले, पिताकी आज्ञामें स्थित हो, अपनी स्त्री (सीता) और भाई (लक्ष्मण) के साथ वनमें पधारे, जिनसे विरोध करके रावण मरणको प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ महादेव जैसे त्रिपुरको भस्म करना चाहते थे, वैसे वैरीके पुर (लंका) को दग्ध करना चाहते, जिन रामचंद्रजीको, भयसे कांपतेहुए और सीताके वियोगसे वृद्धिंगत (बढ़ेहुये) क्रोधके कारण अतीव रक्तदृष्टिके पड़नेसे जिसमेंके मगर, सांप और ग्राह तपायमान हो रहे थे ऐसे, समुद्रने तुरंत मार्ग दिया ॥ २४ ॥ वक्षःस्थलकी टक्कर लगनेसे टूटेहुए ऐरावत हाथीके दांतोंसे प्रकाशमान, दिशाओंको पालनेवाले और सेनाके बीच धनुषका टंकार करते विचरते तथा अपनी स्त्री सीताका हरण करनेवाले, राव-

(वामनअवतार कहते हैं.) अदितिके पुत्र बारह आदित्योंमें यज्ञके अधिष्ठाता विष्णु, सबसे छोटे होनेपरभी गुणोंसे अधिक हैं, क्योंकि उन्होंने चरणन्याससे सब लोक दबा लिये हैं, इन वामनमूर्ति भगवान्ने तीन पैग पृथ्वी मांगनेके बहानेसे बलिराजाकी सर्वभूमि हर लीनी. ऐसा करनेका कारण यह कि– धर्ममार्गसे चलतेहुए पुरुषको याचना विना समर्थ पुरुषभी पद-भ्रष्ट नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ जिस बलि राजाने भगवान्का चरणोदक सिरपर चढ़ाया तथा अपनी प्रतिज्ञा पालनेके सिवाय जिसने कुछभी करना न चाहा और जिसने भगवान्का तृतीयचरण रखनेके लिये सिर धरके शरीरभी हरिके अर्पण किया, उस

ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यादितेः सुतानां लोकान्विचक्रम इमान्यदथाधियज्ञः ॥ क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याञ्चामृते पथिचरन्प्रभुभिर्न चाल्यः ॥ १७ ॥ नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखाधृतवतो विबुधाधिपत्यम् ॥ यो वै प्रतिश्रुतमृतेन चिकीर्षदन्यदात्मानमंग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥ १८ ॥ तुभ्यं च नारद भृशं भगवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् ॥ ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं यद्वासुदेवशरणा विदुरंजसैव ॥ १९ ॥ चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो मन्वंतरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ॥ दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥ २० ॥ धन्वंतरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हंति ॥ यज्ञे च भागममृतायुरवावरुंध आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१ ॥

बलिराजाकी कामनाका विषय हे नारद ! इंद्रपद कदापि नहीं हो सकता ॥ १८ ॥ (हंसअवतार कहते हैं.) हे नारद ! तुम्हारी अतिशय वृद्धिंगत (बढ़ी हुई) भक्तिकरके प्रसन्न, हंस भगवान्ने तुमको योगका तथा आत्मरूपके प्रकाशक भागवतनाम ज्ञानका उपदेश किया. जिस ज्ञानको भगवान्के शरणागत भक्त, विना परिश्रम जान सकते हैं ॥ १९ ॥ (मन्वंतरअवतार कहते हैं.) मनुवंशके पालक जो भगवान् अपने सुदर्शन चक्रके समान अप्रतिहत प्रभावको दशोंदिशाओंमें धारण करते हैं, वे अपने चरित्रोंकरके सप्तलोकपर्यंत अपनी कमनीय कीर्तिका विस्तार करते दुष्ट राजाओंको दंड देते हैं ॥ २० ॥ (धन्वंतरिअवतार कहते हैं)

१ दोहा– सबते लघु है मांगिबो, यामें फेर न सार । बलिपै याचतही भये, बामन तन करतार ॥

मनुको जिसका दर्शन हुआ है ऐसा, पृथ्वीका आश्रयभूत, सकल जीवसमूहका आश्रय मत्स्यस्वरूप धारण करके, अतिडरावने समुद्रके जलमें मेरे मुखमेंसे गिरेहुए वेदोंको लेकर, प्रलयसमयमें विहार किया ॥ १२ ॥ (कच्छपअवतार कहते हैं.) अमृतकी प्राप्तिके लिये देवता और दैत्यपतियोंके क्षीरसमुद्रमें मथन करते मंदराचल तले चलागया, तब भगवान्‌ने कच्छपमूर्ति धारण करके, पीठसे पर्वतको धारण किया, जिस पर्वतके परिभ्रमरूप घर्षण (घसने) से खाज खुजानेके कारण आपको निद्राका आनंद प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ (नृसिंहअवतार कहते हैं.) देवतानके महाभयके नाश करनेवाले भगवान्‌ने चंचल भ्रुकुटि और

क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः॥ पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोद्रिपरिवर्तकषाणकंडूः ॥ १३ ॥ त्रैविष्टपोरुभयहासन्नृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ॥ दैत्येंद्रमाशु गदयाऽभिपतंतमाराहूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरंतम् ॥ १४ ॥ अंतःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण यूथपतिरंबुजहस्त आर्तः॥ आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेय ॥ १५ ॥ श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ॥ चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥ १६ ॥

दाढ़ोंकरके विकरालमुखवाला नृसिंहरूप धारण करके, समीपमें फिरतेहुए गदा लेआते हिरण्यकशिपुको जंघापर पटकके, नखोंसे विदारण किया ॥ १४ ॥ (हरिअवतार कहते हैं.) सरोवरके भीतर महाबली ग्राहने गजराजका पांव पकड़ लिया, तब आर्त गजराजने सूंड़में कमल लेकर, प्रार्थना की कि-हे आदिपुरुष ! हे सर्वलोकनाथ ! हे पवित्रकीर्ति ! हे केवल श्रवणमात्रसे मंगलनाम ! ॥ १५ ॥ मैं आपके शरण आया हूं, ऐसे गजराजके बचन सुन, अप्रमेय हरि भगवान्‌ने गरुड़के कंधेपर सवार हो, चक्रशस्त्र धारण कर, वहां जा, चक्रसे ग्राहके मुखको विदार कर, हाथसे सूंड़, पकड़, कृपा कर, ग्राहके मुखसे गजका उद्धार किया॥ १६॥

१ राग देस ॥ करुणाकर कुंजर टेरो, मेरो कैसे कटे डर लेरो ॥ नाम त्रिकूट सुभगगिरि सर विच गजको ग्राहने घेरो ॥ कमल फूलले सूंड़ उठाई, हरि रक्षक जग हेरो ॥ अतिआतुर होय चक्रचलायो, चलत पीत पट गेरो ॥ [illegible] उचेरो ॥ पुरुषोत्तम प्रभु करसे करिको, कर लीनो निज चेरो ॥

समीपमें सौतने जो बचनरूप बाण कहे, उनसे विंधाहुआ ध्रुव बालअवस्था होनेपरभी तप करनेको वनमें चला गया. वहां उसने भगवान्‌का आराधन किया तो प्रसन्न होकर, उसे ध्रुवपद दिया जिस उपरिस्थित ध्रुवपदकी अधःस्थित सप्तर्षि लोग स्तुति किया करते हैं ॥ ८ ॥ (पृथुअवतार कहते हैं.) राजा वेन उलटे रस्ते चलनेके हेतु ब्राह्मणोंके बचनरूप वज्रसे पुरुषार्थ और ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होकर, नरकमें गिरने लगा और ऋषियोंने प्रार्थना की, तब वेनके पुत्र हो, उसकी रक्षा करके, जगत्‌के अर्थ पृथ्वीका

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतंतम् ॥ त्रात्वाऽर्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥ ९ ॥ नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम् ॥ यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनंति स्वस्थः प्रशांतकरणः परिमुक्तसंगः ॥ १० ॥ सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ॥ छंदोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ ११ ॥ मत्स्यो युगांतसमये मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ॥ विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्म आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥ १२ ॥

दोहन कर, अन्न आदि सब द्रव्य उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ (ऋषभअवतार कहते हैं,) नाभिराजाके घर सुदेवीका पुत्र ऋषभअवतार हुआ, जिन समदृष्टि, स्वस्वरूपमें स्थित, प्रशांत इंद्रिय, सर्वतोमुक्तसंग, ऋषभदेवजीने जड़की नांई योगसंबंधी नित्यसमाधिका आचरण किया जिस आचरणको मुनिलोग परमहंसदशा कहते हैं ॥ १० ॥ (हयग्रीवअवतार कहते हैं.) वेही साक्षात् यज्ञपुरुष भगवान् मेरे यज्ञमें सुवर्णसी कांतिवाला वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवतामय, यहग्रीव अवतार धारण कर प्रगट हुए. इन भगवान्‌ने श्वांस लिया, तब इनकी नासिकामेंसे कमनीय वेदवाणी प्रगट हुई ॥ ११ ॥ (मत्स्यअवतार कहते हैं.) भावी वैवस्वत

---

१ बृहदारण्यकोपनिषदि–" एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोको व्याख्यानान्यनुमानानि प्रमाणभूतानि " अर्थ–ऐसा बृहदारण्यकोपनिषद्‌में कहा है कि–यह महान् ईश्वरके सहजस्वाभाविक श्वासही ए ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास (महाभारतादि) पुराण (अठारह १८पुराण), श्लोक, व्याख्यान, अनुमान, सब प्रमाणीभूत हैं अर्थात् ईश्वरके श्वासावेंसेही यह सम्पूर्ण (वाङ्मय)होता है. इससे जो आधुनिक कोई कहते हैं कि–वेद पौरुषये यानी मनुष्यकृत हैं तथा पुराण गप्पाष्टक हैं वे सब परास्त हुये.

प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ (दत्तात्रेयअवतार कहते हैं.) पुत्रकी कामनावाले अत्रिऋषिपर प्रसन्न होकर, भगवान्‌ने कहा कि-' मैंने तुमको मेरा शरीर दिया ' इसलिये उनके घर अवतार लिये भगवान्‌का दत्तात्रेय नाम हुआ. जिनके चरणकमलके परागसे पवित्र शरीरवाले यदु और सहस्रार्जुन आदि भोग और मोक्षरूप योगकी सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ (सनत्कुमारअवतार कहते हैं) विविधलोक रचनेकी इच्छासे मैंने सृष्टिके आदिमें जो अखंडतप किया, उस अपने तपके प्रभावसे सनत्कुमार, सनक, सनंदन और सनातन यह चतुर्मूर्ति अवतार हुआ. जिन्होंने पूर्वकल्पके प्रलयमें नष्टहुए आत्मतत्वका इस कल्पमें भले प्रकार उपदेश किया, जिसके

अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्टो दत्तो मयाहमिति यद्भगवान्स दत्तः ॥ यत्पादपंकजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥ ४ ॥ तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ॥ प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥ दृष्ट्वाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनंगपृतना घटितुं न शेकुः ॥ ६ ॥ कामं दहंति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहंतमुत ते न दहंत्यसह्यम् ॥ सोऽयं यदंतरमलं निविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥ ७ ॥ विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरंतिराज्ञो बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ॥ तस्मा अदाद्ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवंति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ ८ ॥

कहतेही मुनिलोगोंके मनमें तुर्त आत्माका साक्षात्कार हुआ ॥ ५ ॥ (नरनारायणअवतार कहते हैं,) धर्मकी स्त्री दक्षकी मूर्तिनाम कन्यामें असाधारण तपके प्रभाववाला नर नारायण अवतार हुआ. कामदेवकी सेनारूप अप्सरायें प्रभुके निकट भगवान्‌से प्रगट हुई आपके जैसी उर्वशी आदि अप्सराओंको देखकर, भगवान्‌का व्रतभंग करनेको समर्थ नहीं हुई ॥ ६ ॥ श्रीरुद्र आदि महात्मालोग रोषदृष्टिकरके कामदेवको भस्म कर देते हैं, परंतु जलातेहुए असह्य रोषको वे नहीं जला सकते. वह रोषभी जिनके भीतर प्रवेश करता अतीव डरपता है, तो फिर कामदेव तो उनके मनमें कैसे प्रवेश करे ? ॥ ७ ॥ (ध्रुवअवतार कहते हैं.) राजाके

१ यह कथा एकादशस्कंधमें होगी.

तुम श्रवण करो, जिनके श्रवण करनेसे कानोंके सब कषाय (मल) सूख जाते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते द्वितीयस्कंधे राम-श्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ सातवें अध्यायमें, ब्रह्माजीने नारदजीको कर्म, प्रयोजन और गुणोंके साथ भगवान्‌के लीलावतार कहे यह कथा होगी ॥ १ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि-(वराहअवतार कहते हैं.) जब अनंत भगवान्‌ने धरातलका पातालमेंसे उद्धार करना चाहा, तब सर्वयज्ञमय वराहमूर्ति धारण कर, महासागरके अंदर आयेहुए हिरण्या-

ब्रह्मोवाच ॥ यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनंतः ॥ अंतर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥ १ ॥ जातो रुचेरजनयत्सुयमान्त्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ॥ लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदाऽऽर्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥ ॥ २ ॥ जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ॥ ऊचे ययाऽऽत्मशमलं गुणसंगपंकमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥

क्षका, जैसे इंद्र पर्वतका विदारण करें, वैसे दंष्ट्राकरके विदारण किया ॥ १ ॥ (यज्ञअवतार कहते हैं) रुचि ऋषिके घर आकूतिके पुत्र हो, यज्ञ भगवान्‌ने दक्षिणा नाम स्त्रीमें सुयम नाम देवताओंको पैदा किया. और जब आपने त्रिलोकीके महासंकटका नाश किया, तब स्वायंभुव मनुने फिर हरि ऐसा नाम कहा ॥ २ ॥ (कपिलअवतार कहते हैं.) हे नारद ! कर्दमजीके घर देवहूती नाम कर्दमजीकी स्त्रीमें नौ बहनोंके साथ कपिलभगवान् प्रगट हुए उन्होंने अपनी माताको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया जिससे वह आत्माको मलिन करनेवाले गुणोंके संगरूप पंक (कीच) को इसी जन्ममें त्याग कर, कपिलदेवजीकी गति (मोक्ष) को

---

१ रागिनी काफी ताल जति ॥ आई छींक नाकते प्रगटे सूकर अतिलघुरूप । देखत गजसे होय गये हैं कीन्हो बृहत्स्वरूप ॥ जय जय सकल करत सुर नर मुनि जलमें कियो प्रवेश । जाय पताल बाट गहि लीन्ही धरणी रमा नरेश ॥ ले भुवकमल कुसुमकी नाई चले मनहुं गजराज। कछु डर नाहिंन जियमें डरपति अतिआनंदसमाज ॥

स्वरूपको ॥ ३८ ॥ हे नारद ! जब मुनिलोगोंके देह, इंद्रिया और मन शांत हो जाते हैं; तभी जान सकते हैं. और वही प्रकाशमान आत्मस्वरूप जब दुष्ट पुरुषोंके कुतर्कोंसे पराभव प्राप्त होता है; तब तिरोधान हो जाता है ॥ ३९ ॥ उन परमात्माका यह विराटपुरुष आदि अवतार है. काल, स्वभाव, कार्यकारणात्मक प्रकृति, मन, पंचमहाभूत, अहंकार, सत्व, रज, तम ये तीन गुण, इंद्रियां, विराट यानी समष्टिशरीर विराटका अभिमानी पुरुष, स्थावर जंगमात्मक व्यष्टिशरीर ॥ ४० ॥ मैं, महादेव, यज्ञ ये दक्ष आदि प्रजापति, तुम वगैरः मुनि, स्वर्गलोकके पालक, अंतरिक्षके पालक, मनुष्यलोकके पालक, पातालके

ऋषे विदंति मुनयः प्रशांतात्मेंद्रियाशयाः ॥ यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥ ३९ ॥ आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ॥ द्रव्यं विकारो गुण इंद्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥ ४० ॥ अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ॥ स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥ ४१ ॥ गंधर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ॥ ये वा ऋषीणामृषभाः पितॄणां दैत्येंद्रसिद्धेश्वरदानवेंद्राः ॥ अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्मांडयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥ ४२ ॥ यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोजः सहस्वद्बलवत्क्षमावत् ॥ श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥ ४३ ॥ प्राधान्यतो या नृप आमनंति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ॥ आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥

पालक ॥ ४१ ॥ गंधर्व, विद्याधर, चारणोंके स्वामी और जो यक्ष, राक्षस, उरग और नागोंके अधिपति हैं वे, जो ऋषियोंमें श्रेष्ठ हैं वे तथा पितृगणमें जो श्रेष्ठ हैं वे, दैत्यपति, सिद्धेश्वर, दानवाधिपति, औरभी, जो प्रेत पिशाच, भूत, कूष्मांड, जलजंतु, चौपाये और पक्षियोंके स्वामी हैं वे ॥ ४२ ॥ औरभी लोकमें जो कुछ ऐश्वर्यवाला, तेजवाला, ओज, सह और बलवाला तथा क्षमावाला, श्री, लज्जा, वैभव और बुद्धिवान् तथा अद्भुत वर्णवाला, वैसे रूपवान् तथा अरूपी है, वह सब परमेश्वरकी विभूति है ॥ ४३ ॥ हे नारद ! मुख्य मुख्य जो भूमा (स्वप्रकाश) भगवानके लीलावतार हैं उन सुंदर अवतारोंका मैं तुमसे वर्णन करता हूं, सो

भक्त्युद्रेकवाले हृदयसे ध्यान करता हूं, अतएव मेरी वाणी मिथ्या नहीं होती; न मेरे मनका संकल्प मिथ्या होता है और न मेरी इंद्रियां उलटे मार्गमें पड़ती हैं ॥ ३२ ॥ वेदमय, तपोमय और प्रजापति जिसको प्रणाम करते हैं ऐसे प्रजापतियोंके पति मैंने निपुणयोग धारण कर, एकाग्रचित्त हो ध्यान लगाया, परंतु जिससे मैं प्रकट हुआ हूं, उसे नहीं जानसका ॥ ३३ ॥ जैसे आकाश अपने अंतको नहीं पाता; वैसे जो आपही अपनी मायाके वैभवका पार नहीं पासकते, तब दूसरोंकी तौ बातही कौन ? उन परमात्माके शरणागत भक्तोंके संसारको छेदनहारे, परममंगल और कल्याणमय चरणको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३४ ॥

सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवंदितः पतिः ॥ आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ॥ ३३ ॥ नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमंगलम् ॥ यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वांतमथापरे कुतः ॥ ३४ ॥ नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ॥ तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥ ३५ ॥ यस्यावतारकर्माणि गायंति ह्यस्मदादयः ॥ न यं विदन्ति तत्वेन तस्मै भगवते नमः ॥ ३६ ॥ स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः ॥ आत्मन्यात्मानमात्मानं संयच्छति च पाति च ॥ ३७ ॥ विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् ॥ सत्यं पूर्णमनाद्यंतं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥ ३८ ॥

जिस परमात्माके परमार्थस्वरूपको न तौ मैं जानता हूं, न तुम जानते हो और न महादेव जानते हैं, तौ फिर मोहितबुद्धिवाले दूसरे देवता तौ कहांसे जाने ? आपन केवल अपने ज्ञानके अनुसार इतना जानते हैं कि-यह सब प्रपंच भगवान्‌की मायाकी रचना है ॥ ३५ ॥ जिनके अवतारके चरित्रोंको आपन वगैरः गाया करते हैं. परंतु जिन्हे यथार्थरीतिसे जान नहीं सकते; उन भगवान्‌को हम प्रणाम करते हैं ॥ ३६ ॥ वे ये अजन्मा आदिपुरुष कल्प कल्पमें आप आपके विषे, आपके द्वारा, आपको रचे हैं, पाले हैं. और संहार करे हैं- भावार्थ यह है कि-कर्ता अधिकरण, साधन और कर्म आपही हैं ॥ ३७ ॥ केवल, ज्ञानमय तत्वस्वरूप, विषयाकारशून्य, सर्वांतर्यामी, संदेहादिरहित, स्थिर, निर्गुण, जन्म-मरणरहित, पूर्ण, नित्य और अद्वितीय, आत्म-

आदि स्नेह, मधुर आदि रस, सुवर्णादि धातु, मिट्टी, जल, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चार होतोंका कर्म ॥ २३ ॥ ज्योतिष्टोम आदि नाम, स्वाहाकारादि मंत्र, दक्षिणा, व्रत, देवतानका उद्देश, बौधायन आदि कर्मपद्धतिके ग्रंथ, संकल्प, अनुष्ठानका प्रकार ॥ ॥ २४ ॥ विष्णुक्रम आदि गति, देवतानके ध्यान, प्रायश्चित्त और समर्पण यह सब सामग्री मैंने तैयार की ॥ २५ ॥ इस तरह विराट् पुरुषके अवयवोंसे यज्ञकी तैयारी कर, उन्ही यज्ञपुरुष परमेश्वरका उसी यज्ञद्वारा मैंने यजन किया ॥ २६ ॥ तदनंतर ये तेरे भाई जो नव प्रजापति हैं, इन्होंनेभी एकाग्रचित्त होकर, इंद्रादिरूपसे व्यक्त और स्वस्वरूपसे अव्यक्त पुरुष भगवान्का यजन

नामधेयानि मंत्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ॥ देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तंत्रमेव च ॥ २४ ॥ गतयो मयतश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम् ॥ पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥ २५ ॥ इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम् ॥ तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥ २६ ॥ ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव ॥ अजयन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥ २७ ॥ ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ॥ पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥ २८ ॥ नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ॥ गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥ २९ ॥ सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ॥ विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥ ३० ॥ इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि ॥ नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ॥ ३१ ॥ न भारती मेंऽग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ॥ न मे हृषीकाणि पतंत्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कंठ्यवता धृतो हरिः ॥ ३२ ॥

किया ॥ २७ ॥ फिर अपने अपने अवसरमें मनु और दूसरे ऋषि, पितृगण, देवता, दैत्य, और मनुष्योंने यज्ञोंकरके भगवान्का यजन किया ॥ २८ ॥ इन अधिष्ठानरूप भगवान् नारायणके विषे यह सब जगत् रहा है. यद्पि स्वयं आप निर्गुण हैं; तौभी सृष्टि आदिके निमित्त, मायाके अनेक गुण धारण करे हैं ॥ २९ ॥ उनकी प्रेरणासे मैं जगतको रचूं हूं. महादेव उनके वशमें रहकर, संहार करे हैं. और मायाके धारण करनहारे भगवान् विष्णुरूपसे जगत्का पालन करे हैं ॥ ३१ ॥ हे तात! जैसा तूने यह मुझसे प्रश्न किया; वैसा मैंने तुझसे कहा. [illegible] नहीं है ॥ ३१ ॥ हे नारद! मैंपरमेश्वरका

शित करते हैं, वैसे पुरुषरूप भगवान् विराट् देहको प्रकाशित करते ब्रह्मांडगोलको बाहर और भीतरसे प्रकाशित करते हैं, उनके कर्मफलका लेप नहीं है, तासों वे मोक्ष और निजानंदकेभी स्वामी हैं ॥ १६ ॥ हे नारद ! भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक जिनके अंशरूप हैं; उन भगवान्के अंशरूप लोकोंमें सर्वप्राणी हैं. तासों पुरुष भगवान्की यह महिमा अपार है ॥ १७ ॥ भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोकके ऊपरके महर्लोककेभी ऊपर जो जन, तप और सत्यलोक हैं, उनमें ईश्वरसंबंधी अमृत यानी नित्यसुख, क्षेम यानी पीड़ारहित सुख और अभय यानी मोक्ष ये क्रमसे रहे हैं इन तीन लोकोंमेंसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी जनलोकमें जाते हैं, वानप्रस्थ, तपलोकमें और संन्यासी सत्यलोकमें. ये तीनों लोक त्रिलोकीके बाहिर हैं. ब्रह्मचर्यव्रतरहित गृहस्थ तौ त्रि-

महिमैष ततो ब्रह्मन्पुरुषस्य दुरत्ययः ॥ पादेषु सर्वभूतानि पुंसाः स्थितिपदो विदुः ॥ १७ ॥ अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥ पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः ॥ अंतस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥ १८ ॥ सृती विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे ॥ यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥ १९ ॥ यस्मादंडं विराड् जज्ञे भूतेंद्रियगुणात्मकः ॥ तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥ २० ॥ यदास्य नाभ्यान्नलिनादहमासं महात्मनः ॥ नाविदं यज्ञसंभारान्पुरुषावयवादृते ॥ २१ ॥ तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ॥ इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥ २२ ॥ वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥ २३ ॥

लोकीके भीतरही रहता है ॥ १८ ॥ भोग और मोक्षके साधनरूप कर्म और उपासना ये दोनों दक्षिणायन और उत्तरायणमार्ग हैं. सो क्षेत्रज्ञ इन दोनों रस्ते चलता है. एकही जीव अवस्थाभेदसे दोनों मार्गोंके लिये अधिकारी है ॥ १९ ॥ जिस ईश्वरसे ब्रह्मांड तथा पंचमहाभूत, इंद्रियां और उनके विषय शब्दादिरूप विराट् प्रगट हुआ है; वह ईश्वर जैसे सूर्य अपने बिंबको प्रकाशित करता किरणोंद्वारा बाहरभी प्रकाश करता है; वैसे विराट् देहके तथा ब्रह्मांडगोलके बाहरभी उल्लंघन करके रहा है ॥ २० ॥ जब मैं इन महात्मा भगवान्के नाभिसंबंधी कमलमेंसे प्रगट् हुआ; तब विराट् पुरुषके अवयवोंके सिवाय कुछभी यज्ञकी सामग्री मुझे नहीं मिली ॥ २१ ॥ तो यज्ञकी सामग्री तैयार करनेके निमित्त विराटपुरुषके अवयवोंसेही हे नारद ! यज्ञके पशु, वनस्पति यानी यूप, दर्भ, यज्ञभूमि, अतीव गुणयुक्त वसंत आदि काल ॥ २२ ॥ हे सत्तम ! चमस आदि पात्र, व्रीहि आदि औषधि, घृत

विराट्का लिंग उत्पत्तिक्षेत्र है. संभोगजन्य सुखका उपस्थ इंद्रिय उत्पत्तिस्थान है ॥ ७ ॥ हे नारद ! यम, मित्र और मलत्याग-का विराट्की पायु उत्पत्तिस्थान है. हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरकका गुदा उत्पत्ति क्षेत्र है ॥ ८ ॥ पराभव, अधर्म और अ-ज्ञानका विराट्की पीठ उत्पत्तिक्षेत्र है. नद और नदियोंकी नाड़ियां उत्पत्तिभूमि हैं. पर्वतोंका हड्डियोंका समूह उत्पत्तिस्थान है ॥ ९ ॥ प्रधान, अन्नादिकोंके सार, समुद्र और जीवोंके लयका विराट्का उदर उत्पत्तिस्थान है. हृदय लिंगशरीरका उत्पत्तिस्थान है ॥ १० ॥ धर्मका, मेरा, तेरा, सनत्कुमारोंका, महादेवका, विज्ञानका, सत्वगुणका, विराट्का चित्त परमअयन है ॥ ११ ॥ मैं

पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ॥ हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ८ ॥ पराभू-तेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः ॥ नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥ ९ ॥ अव्यक्तरससिं-धूनां भूतानां निधनस्य च ॥ उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥ १० ॥ धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च विज्ञानस्य च ॥ सत्त्वस्य परस्यात्मापरायणम् ॥ ११ ॥ अहं भवान्भवश्चैव त इ-मे मुनयोऽग्रजाः ॥ सुरासुरनरा नागाः खरा मृगसरीसृपाः ॥ १२ ॥ गंधर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतग-णोरगाः ॥ पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ॥ १३ ॥ अन्ये च विविधा जीवा जलस्थल-नभौकसः ॥ ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितस्तनयित्नवः ॥ १४ ॥ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥ १५ ॥ स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ॥ एवं विरा-जं प्रतपंस्तपत्यंतर्बहिः पुमान् ॥ सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ॥ १६ ॥

तू, महादेव ये तेरे बड़े भाई मुनि, सुर, असुर, मनुष्य, नाग, पक्षी, चौपाये, सांप, बीछू, ॥ १२ ॥ गंधर्व, अप्सरायें, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग, पशु, पितृगण, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, ॥ १३ ॥ औरभी अनेकप्रकारके जल, थल और आकाशमें रहनेवाले जीव, ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु तारा, बिजलियां, स्तनयित्नु (कड़कड़ाहट शब्द) ॥ १४ ॥ तथा जो भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान हैं; वह यह सब विराट्पुरुषरूपही हैं. उससे भिन्न नहीं है. इस विराट्पुरुषकरके यह सकल जगत् व्याप्त है तथा जि-तने अंशमें जगत् है, उससे अधिक अंशमें वह रहा है ॥ १५ ॥ जैसे सूर्य स्वयम् अपने बिंबको तथा सृष्टिके पदार्थको प्रका-

भागवते द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ छठे अध्यायमें अध्यात्मादिभेदसे विराट्की विभूति कही जायगी- और पूर्वोक्त सब पुरुषसूक्तसे दृढ़ किया जायगा ॥ १ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि--वाणी और उसकी देवता अग्निका उत्पत्तिस्थान विराट्का मुख है, गायत्री आदि छंदोंका त्वचा आदि धातु उत्पत्तिस्थान है, देवान्न, पितृअन्न और मनुष्योंका अन्न इनका और मधुरआदि सबरसोंका जिव्हा उत्पत्तिस्थान है ॥ १ ॥ सब प्राणोंका और वायुका नासारंध्र उत्पत्तिस्थान है, अश्विनीकुमार, औषधी और सामान्य विशेष गंधका घ्राण इंद्रिय उत्पत्तिस्थान है ॥ २ ॥ रूप और

ब्रह्मोवाच ॥ वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छंदसां सप्तधातवः ॥ हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥ १ ॥ सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ॥ अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥ २ ॥ रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ॥ कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ॥ ३ ॥ तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् ॥ त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ॥ ४ ॥ रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः ॥ केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ॥ ५ ॥ बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ॥ सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् ॥ ६ ॥ अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानंदनिर्वृतेः ॥ ७ ॥

तेजका चक्षुइंद्रिय उत्पत्तिस्थान है. स्वर्ग और सूर्यका नेत्र उत्पत्तिस्थान है, दिशा और तीर्थोंके कान, आकाश और शब्दका श्रोत्र इंद्रिय, वस्तुओंके सारांशोंका और सौभाग्यका उत्पत्तिस्थान उनका शरीर है ॥ ३ ॥ स्पर्श, वायु और यज्ञ इनका त्वचा उत्पत्तिस्थान है, वृक्षोंका विराट्के रोम उत्पत्तिस्थान हैं, कि- जिन वृक्षोंसे यज्ञ सिद्ध हुआ करता है ॥ ४ ॥ विराट्के बाल मेघका, दाढ़ी मूछ बिजलीका, हाथ और पांवके नख पत्थर और लोहेका उत्पत्तिस्थान हैं. बहुधा पालन करनेवाले लोकपालोंका विराट्की भुजा उत्पत्तिस्थान है ॥ ५ ॥ विराट्के चरणका रखना जो है वह भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोकका, आश्रय है. लब्धवस्तुकी रक्षा, शरण, सर्वकामना और वरदान ये विराट्के चरणके आश्रित हैं ॥ ६ ॥ जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापति इनका

शरीरको काल, कर्म और स्वभावके अधिष्ठाता परमात्माने सचेतन किया ॥ ३४ ॥ वेही परमात्मा अंडको भेद कर, हजारों, जंघा, चरण,भुजा, नेत्र, मुख और मस्तकवाला स्वरूप धारण कर, उससे प्रगट हुए ॥ ३५ ॥ बुद्धिमान्लोग जिस शरीरके अवयवोंसे कटि कमर आदि नीचेके भागमें नीचेके अतल आदि सातलोकोंकी और जघन आदि ऊपरके भागमें भूरादि ऊपरके लोकोंकी कल्पना करते हैं ॥ ३६ ॥ विराट्पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, भुजासे क्षत्रिय, जंघासे वैश्य और चरणसे शूद्र पैदा हुए ॥ ३७ ॥ विराट्-

स एव पुरुषस्तस्मादंडं निर्भिद्य निर्गतः ॥ सहस्रोर्वंघ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥ ३५ ॥ यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयंति मनीषिणः ॥ कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥ ३६ ॥ पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ॥ ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥ ३७ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥ ३८ ॥ ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ॥ मूर्द्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥ ३९ ॥ तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ॥ जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघाभ्यां तु तलातलम् ॥ ४० ॥ महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ॥ पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१ ॥ भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥

के चरणोंसे भूर्लोक, नाभिसे भुवर्लोक, हृदयसे स्वर्लोक, वक्षःस्थलसे महर्लोक ॥ ३८ ॥ ग्रीवासे जनलोक, दोनों स्तनोंसे तपलोक तथा मस्तकोंसे सत्यलोककी कल्पना करते हैं. और ब्रह्मलोक (वैकुंठ) सनातन है. सृष्टिके अंतर्गत नहीं है ॥ ३९ ॥ विराट्की कटिसे अतललोक, ऊरुसे वितललोक, घुटनोंसे शुद्ध सुतल लोक, जंघासे तलातल लोक, ॥ ४० ॥ गुल्फों (गुड्डवों.) से महातललोक, चरणके अग्रभागसे रसातल लोक और चरणतलमें पाताललोककी कल्पना करते हैं. ऐसे विराट् सर्व लोकमय है ॥ ४१ ॥ अथवा चरणोंसे भूर्लोक, नाभिसे भुवर्लोक, मस्तकसे स्वर्लोक इसतरहभी लोकोंकी कल्पना है ॥ ४२ ॥ इति श्री-

नेवाली है. तथा ओज यानी इंद्रियबल, सह यानी मनोबल और बल यानी शरीरबलकी कारण है ॥ २६ ॥ काल, कर्म और स्वभावके प्रभावसे जो वायुभी क्षोभको प्राप्त हुई, तौ रूप, स्पर्श और शब्दगुणवाला तेज प्रगट हुआ ॥ २७ ॥ तेज जो क्षोभको प्राप्त हुआ; तौ रसगुणवाला जल उत्पन्न हुआ, जिसमें पूर्व पूर्वके रूप, स्पर्श और शब्द ये गुणभी आगये ॥ २८ ॥ जल जो क्षोभको प्राप्त हुआ, तौ उससे गंधगुणवाली पृथ्वी पैदा हुई, जिसमें रस, रूप, स्पर्श और शब्द चार गुण पूर्वकारणोंकेभी रहे हैं, यानी पृथ्वीमें पांचो गुण हैं ॥ २९ ॥ सात्विकाहंकारसे मन और चंद्रमा तथा दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि,

वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः ॥ उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥ २७ ॥ तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदंभो रसात्मकम् ॥ रूपवत्स्पर्शवच्चांभो घोषवच्च परान्वयात् ॥ २८ ॥ विशेषस्तु विकुर्वाणादंभसो गंधवानभूत् ॥ परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥ २९ ॥ वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नींद्रोपेंद्रमित्रकाः ॥ ३० ॥ तैजसात्तु विकुर्वाणादिंद्रियाणि दशाभवन् ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ ॥ श्रोत्रं त्वग्घ्राणदृग्जिह्वा वाग्दोर्मेंढ्रांघ्रिपायवः ॥ ३१ ॥ यदैतेऽसंगता भावा भूतेंद्रियमनोगुणाः ॥ यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥ ३२ ॥ तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ॥ सदसत्त्वमुपादाय चोभयंससृजुर्ह्यदः ॥ ३३ ॥ वर्षपूगसहस्रांते तदंडमुदकेशयम् ॥ कालकर्मस्वभावस्थो जीवो जीवमजीवयत् ॥ ३४ ॥

इंद्र, उपेंद्र, मित्र और प्रजापति ये दश देवता प्रगट हुए ॥ ३० ॥ राजसाहंकार जो क्षोभको प्राप्त हुआ, तौ उससे श्रोत्र (कान,) त्वचा (चमड़ी,) घ्राण (नाक,) चक्षु (नेत्र,) और जीभ ये पांच ज्ञानेंद्रियां और वाणी, हाथ, मेढ्र (लिंग,) पांव और पायु (गुदा) ये पांच कर्मेंद्रियां और ज्ञान शक्ति, बुद्धि तथा क्रियाशक्ति, प्राण ये प्रगट हुए ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मवेत्तानमें श्रेष्ठ नारद ! जब ये पंचमहाभूत, इंद्रियां और मनरूप गुणोंके कार्य शामिल न होनेसे शरीरका निर्माण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ३२ ॥ तब भगवानकी शक्तिकी प्रेरणासे परस्पर शामिल होकर, पूर्वोक्त पदार्थोंने गौण और प्रधानभावको स्वीकार कर, समष्टिव्यष्टयात्मक स्थूलशरीर प्रगट किया ॥ ३३ ॥ हजार वर्ष व्यतीत होनेके अनंतर जलमें पड़ेहुए उस अचेतन ब्रह्मांडरूप स्थूल-

यके, जन्ममरणरूप बंधनमें फंसाते हैं ॥ १९ ॥ हे नारद ! जीवोंके आवरण करनेवाले इन तीनगुणोंकरके जिनकी गति किसी प्रकार लिखी नहीं जाती ऐसे, ये वशीभूत मायावाले, भगवान् सबके और मेरेभी स्वामी हैं ॥ २० ॥ मायाके नियंता भगवान्‌ने आपके विषे अकस्मात् प्राप्त हुए, काल, जीवोंके अदृष्ट और स्वभावको अनेक होनेकी इच्छा करके अपनी मायासे अंगीकार किया ॥ २१ ॥ पुरुषके आश्रित कालके प्रभावसे गुणोंमें क्षोभ हुआ, स्वभावसे रूपांतर हुआ और जीवोंके अदृष्टसे महत्तत्वका प्राकट्य हुआ ॥ २२ ॥ रजोगुण और सत्वगुणसे वृद्धिंगत (बढ़ाहुआ) महत्तत्व जो विकारको प्राप्त हुआ तौ उस-

स एष भगवाँल्लिंगैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ॥ स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन्सर्वेषां मम चेश्वरः ॥ २० ॥ कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ॥ आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥ २१ ॥ कालाद्गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः ॥ कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२॥ महतस्तु विकुर्वाणाद्रजः सत्त्वोपबृंहितात् ॥ तमः प्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ २३ ॥ सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥ द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥ २४ ॥ तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ॥ तस्य मात्रागुणः शब्दो लिंगं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ २५ ॥ नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः ॥ परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥ २६ ॥

मेंसे पंचमहाभूत देवता और इंद्रियात्मक तमोगुणप्रधान अहंकार उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ वह अहंकार जो विकारको प्राप्त हुआ तौ उसके तीन भेद हुए, सात्विक अहंकार, राजस अहंकार और तामस अहंकार. हे नारद ! उनमें तामसाहंकारमें तौ महाभूत उत्पन्न करनेकी शक्ति है, राजसाहंकारमें इंद्रियां उत्पन्न करनेकी शक्ति है और सात्विकाहंकारमें देवता उत्पन्न करनेकी शक्ति है ॥ २४ ॥ तामसाहंकार जो विकारको प्राप्त हुआ, तौ उसमेंसे आकाश उत्पन्न हुआ. उसका सूक्ष्मरूप तथा दूसरे भूतोंसे अलग करनेवाला गुण शब्द है. यह शब्द द्रष्टा और दृश्यका ज्ञापक है ॥ २५ ॥ आकाश जो क्षोभको प्राप्त हुआ; तौ उससे स्पर्शगुणवाली पवन प्रगट हुई. कारणका गुण कार्यमें आता है; ऐसा नियम होनेसे आकाशका गुणशब्दभी उसमें आया. वायु शरीरको धारण कर-

कियेहुए पदार्थको प्रकाशित करते हैं, वैसे मैंभी उन स्वप्रकाश भगवान्से प्रकाशित कियेहुए जगत्को प्रकाशित करता हूं ॥ ११ ॥ जिन भगवान्की दुर्जयमायासे मोहित, ये तुझसे लोक, मुझे जगत्का कारण ठहराते हैं, उन वासुदेव भगवान्का प्रणामपूर्वक हम ध्यान करते हैं, ॥ १२ ॥ अपने कपटको जाननेवाले भगवान्की दृष्टि पड़तेही जो माया लज्जायमान हो जाती है, उस मायासे मोहित होकर, ये कुमतिलोग 'मैं मेरा' इस तरह बका करते हैं ॥ १३ ॥ हे नारद ! द्रव्य (उपादान कारण पंचमहाभूत) कर्म (जन्मका निमित्त) काल (क्षोभित करनेवाला) स्वभाव (परिणामका हेतु) और जीव (भोक्ता) ये सब तत्वसे विचा-

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवंति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥ विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ॥ विमोहिता विकत्थंते ममाहमिति दुर्धियः ॥ १३ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोस्ति तत्वतः ॥ १४ ॥नारायणपरा वेदा देवा नारायणांगजाः ॥ नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ १५ ॥ नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥ १६ ॥ तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ॥ सृज्यं सृजामि सृष्टोहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥ १७ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ॥ स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ १८ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ॥ बध्नंति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥ १९ ॥

रकर, देखते हैं; तौ वासुदेवसे भिन्न नहीं हैं ॥ १४ ॥ वेदोंका कारण नारायण हैं. देवता नारायणके अंगसे प्रगट हुए हैं, स्वर्ग आदि लोक नारायणके आनंदके अंशभूत हैं, यज्ञ उनकी प्राप्तिके साधन हैं, ॥ १५ ॥ योग, तप और ज्ञान येभी उसीकी प्राप्तिके साधन हैं और फलभी नारायणकेही आधीन है ॥ १६ ॥ उन द्रष्टा, नियंता, कूटस्थ और सबके अंतर्यामी भगवान्के रचेहुए इस जगत्को केवल उनकी दृष्टिकी प्रेरणाद्वारा मैं रचता हूं. ॥ १७ ॥ सृष्टि, स्थिति, संहारके निमित्त मायासे अंगीकार कियेहुए निर्गुण विभु भगवान्के सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं ॥ १८ ॥ ये पंचमहाभूत, देवता और इंद्रियोंके कारणरूप गुण अध्यात्म, अधिभूत व अधिदैवतपनमें अभिमान उत्पन्न करवायके, वस्तुतः नित्यमुक्त आत्माको मायाका विषय जीव बना-

यह तौ पीछे रहा, पर प्रथम मैं आपसे पूछता हूं कि- आपको विज्ञान देनेवाला कौन है ? आश्रय कौन है ? किसके अधीन हो ? आपका स्वरूप कैसा है ? आप इकलेही अपनी शक्तिको धारण कर, पंचमहाभूतोंकरके, जैसे मकड़ी आपही आप अपनी शक्तिसे जाला तनती है, वैसे विना परिश्रम अपने स्वरूपमेंही सब जीवोंको रचो हो तथा उनका पराभव नहीं होने देते पालन करते हो, ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे विभो ! इस जगत्में उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, स्थूल और सूक्ष्म संपूर्ण वस्तु जो नाम-रूप और गुणद्वारा जानी जा सकती हैं, उनमेंसे कोईभी वस्तु आपके सिवाय किसी दूसरेसे पैदाहुई हो ऐसे मैं नहीं मानता; किंतु सब

यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ॥ एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥ ४ ॥ आत्मन्भावयसे तानि न परा भावयन्स्वयम् ॥ आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥ ५ ॥ नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो ॥ नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ॥६॥ स भवानचरद्घोरं यत्तपः सुसमाहितः ॥ तेन खेदयसे नस्त्वं पराशंकां प्रयच्छसि ॥ ७ ॥ एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर ॥ विजानीहि तथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् ॥ यदहं चोदितः सौम्य परधर्मप्रदर्शने ॥ ९ ॥ नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः ॥ अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥ १० ॥ येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ॥ यथाऽर्कोऽग्निर्यथासोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११ ॥

आपहीसे पैदा होता है ऐसे मैं मानता हूं ॥ ६ ॥ परंतु आपनेभी एकाग्रचित्त होकर, जो उग्र तप किया, उससे हमको मोह होता है और शंका होती है कि- आपसे पर कोई दूसरा ईश्वर है ? ॥ ७ ॥ हे सर्वज्ञ ! हे सकलके ईश्वर ! यह जो मैंने आपसे प्रश्न किया है, उसका ऐसी रीतिसे समाधान करो कि-यह सब मेरी समझमें आ जावे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि-हे वत्स ! तैंने करुणाकरके संदेहपूर्वक यह बहुत अच्छा प्रश्न किया; क्योंकि-हे सौम्य! भगवान्के पराक्रम प्रकाश करनेके निमित्त तूने मुझे प्रेरणा की ॥ ९ ॥ हे नारद ! तू मुझे ईश्वर कहता है, यह तेरा कहना असत्य नहीं है; क्योंकि- जिसके प्रतापसे मेरा इतना प्रभाव बढ़ रहा है, उस परमेश्वरको तू नहीं जानता ॥ १० ॥ जैसे सूर्य, अग्नि, चंद्रमा, नक्षत्र, ग्रह और तारा चैतन्यरूप आत्मासे प्रकाशित

जो पुरुषरूप भगवान् पंचमहाभूतद्वारा अनेक शरीर रचकर, उनमें जीवरूपसे प्रवेश करते हैं तथा अंतःकरण सहित ग्यारह इंद्रियां व पंचमहाभूत इन सोलह मायाके कार्योंको अंतर्यामीरूपसे प्रकाशित करते हैं, वे भगवान् मेरी वाणीको अलंकृत (भूषित) करो ॥ २३ ॥ जिनके मुखकमलसे प्रगटहुए ज्ञानमय मकरंदका भक्तलोग पान करते हैं, उन वासुदेवमूर्ति व्यास भगवान्को मैं प्रणामकरता हूं ॥ २४ ॥ महाराज ! यही प्रश्न नारदजीने ब्रह्माजीसे किया. तब वेदमूर्ति ब्रह्माजीने जो साक्षात् हरि भगवान्ने आपको कहा था, वह नारदजीसे कहा ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपि-

भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ॥ भुंक्ते गुणान्षोडशषोडशात्मकः सोलंकृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥ २३ ॥ नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे ॥ पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखांबुरुहासवम् ॥ २४ ॥ एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते ॥ वेदगर्भोऽभ्यधात्सक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥२५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव नमस्तेस्तु भूतभावनपूर्वज ॥ तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥ यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ॥ यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥ २ ॥ सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ ३ ॥

कानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पांचवे अध्यायमें, नारदजीने सृष्टि आदि विषयमें प्रश्न किया, तब ब्रह्माजीने काल और कर्म आदि शक्तियोंसे विराट्सृष्टिरूप भगवान्की लीला कह सुनायी यह कथा होगी ॥ १ ॥ नारदजीने कहा कि– हे देवदेव ! हे जगत्पालक ! हे पूर्वज ! हमें वह साधन बताओ, कि–जिससे आत्मतत्वका बोध हो जाय ? ॥ १ ॥ हे प्रभो ! इस जगत्का प्रकाशक कौन है ? किसके आश्रय रहा है ? यह किसने रचा है ? किसमें लीन होता है ? किसके आधीन है ? तथा स्वरूप कैसा है ? सो यह सब आप मुझको यथार्थरीतिसे कहो ॥ २ ॥ आप यह सब जानते हो; क्योंकि आप भूत, भविष्य और वर्तमान सबके प्रभु हो. अतएव यह सब जगत् करस्थित आमलेकी तरह आपका जानाहुआ और निश्चय किया हुआ है ॥३॥

नके अर्पण किये विना कल्याणको प्राप्त नहीं होते. उन पुण्यश्लोक भगवान्को मेरा वारंवार प्रणाम है ॥ १७ ॥ किरात [भिल्ल] हूण, अंध्र, पुलिंद, पुल्कस, आभीर (अहीर), कंक, यवन, और खस आदि और इनके सिवाय जो दूसरे हैं, वे सब जिन् भगवानके भक्तोंका आश्रय लेकर, पवित्र हो जाते हैं. उन प्रभविष्णु भगवान्को मेरा प्रणाम है ॥ १८ ॥ धीर पुरुषोंके आत्मभावकरके उपासनीय, वेदत्रयीमय, धर्ममय, तपोमय, सबके अधीश्वर हरि कि जिनके स्वरूपका ब्रह्मा महेशादिक देव निष्कपट हो

किरातहूणांध्रपुलिंदपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खसादयः ॥ येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यंति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १८ ॥ स एष आत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ॥ गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिंगो भगवान्प्रसीदताम् ॥ १९ ॥ श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ॥ पतिर्गतिश्चांधकवृष्णिसात्त्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥ २० ॥ यदंघ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धियानुपश्यंति हि तत्त्वमात्मनः ॥ वदंति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुंदो भगवान्प्रसीदताम् ॥ २१ ॥ प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ॥ स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलाऽऽस्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ २२ ॥

कर, तर्क करते हैं. वे ये भगवान् हमपर कृपा करो ॥ १९ ॥ लक्ष्मीपति, यज्ञपति, प्रजापति, बुद्धिपति, लोकपति, पृथ्वीपति, अंधक, वृष्णि और सात्वतवंशीनके पति व सर्वआपदावोंमें रक्षा करनहारे, सत्पुरुषोंके पति, भगवान् मोपर कृपा करो ॥ २० ॥ जिनके चरणकमलके ध्यानरूप समाधिसे निर्मल बुद्धिद्वारा ज्ञानीलोग आत्मतत्वको देखते हैं और अपनी बुद्ध्यनुसार कहतेभी हैं, वे मुकुंद भगवान् मोपर कृपा करो ॥ २१ ॥ सृष्टिके आदिमें ब्रह्माजीके हृदयमें सृष्टिविषयक स्मृतिको विस्तारते जिन परमेश्वरकी शिक्षा आदि अंगयुक्त वेदलक्षणा वाणी ब्रह्माजीके मुखमेंसे प्रगट हुई, वे ज्ञानदेनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् मोपर कृपा करो ॥२२॥

१ शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां च यः । ज्योतिषामयनश्चैव वेदाङ्गानि षडेव तु ॥ १ ॥ अर्थ- शिक्षा १ कल्प २ व्याकरण ३ निरुक्त ४ छन्दोंका समूह ज्योतिष यही छह वेदांग हैं ॥ १ ॥

पुण हो ॥ १० ॥ सूतजीने कहा कि- भगवान्‌का गुणानुवाद कहनेके निमित्त ऐसा राजाका प्रश्न सुन, भगवान्‌का स्मरण करके, शुकदेवजी कहनेलगे ॥ ११ ॥ शुक मुनि बोले कि- प्रपंचकी उत्पत्ति स्थिति संहारकी लीलाके निमित्त रजोगुण आदि शक्तित्रय धारण कर, अलक्ष्यमार्गसे विराजमान, सब जीवोंके अंतर्यामी, अपरिमित महिमावाले, सर्वोत्तम पुरुषको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १२ ॥ सत्पुरुषोंके संकट काटनहारे और दुष्टोंका संहार करनेवाले, उन उन देवताओंके रूपसे उस उस फलके देनेवाले, परमहंसआश्रममें रहनेवाले पुरुषोंको आत्मतत्वके देनेवाले, परमेश्वरको मैं फिर वारंवार प्रणाम करता हूं ॥ १३ ॥ भक्तोंके पालक, भ-

सूत उवाच ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः ॥ हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ॥ गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामंतर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥ १२ ॥ भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाखिलसत्त्वमूर्तये ॥ पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥ १३ ॥ नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ॥ निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ १४ ॥ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वंदनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ॥ लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १५ ॥ विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्संगं व्युदस्योभयतोऽतरात्मनः ॥ विंदंति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६ ॥ तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मंत्रविदः सुमंगलाः ॥ क्षेमं न विंदंति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १७ ॥

क्तिरहित पुरुषोंसे अतिदूर, किसीकाभी ऐश्वर्य न तौ जिनके ऐश्वर्यके बराबर है और न अधिक है, अतएव जो अपने ऐश्वर्यसे अपने ब्रह्मस्वरूपमें रमण करते विराजते हैं. उन आपको मैं वारंवार प्रणाम करता हूं ॥ १४ ॥ जिनका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, दर्शन वंदन और पूजन लोकके कल्मष (पाप) शीघ्र दूर करता है. उन मंगलमय यशवाले आपको मेरा वारंवार प्रणाम है ॥ १५ ॥ विवेकी लोग, जिनके चरणकमलके भजनसे इस लोक तथा परलोकमेंसे अंतःकरणका संग छोड़, विनाश्रम, ब्रह्मगतिको प्राप्त होते हैं. उन पुण्यकीर्ति भगवान्‌को मेरा प्रणाम है ॥ १६ ॥ तपस्वी, दानी, यशस्वी, यागी, मंत्रवेत्ता तथा सदाचारवाले पुरुष जि

और हे विप्रो ! श्रीकृष्णचंद्रकी महिमा श्रवण करनेमें श्रद्धालु, उदारचित्त परीक्षितने यही हरिलीलालक्षण प्रश्न किया; जो आप मुझे-पूंछते हो ॥ ३ ॥ अपनी मृत्युका निश्चय कर, धर्म, अर्थ और कामसबंधी कर्मका त्याग कर, वासुदेव भगवान्में परमप्रेमसे भगवदात्मताको प्राप्त होकर पूंछा ॥ ४ ॥ परीक्षितने कहा कि-- हे निष्पाप ! ब्रह्मन् ! सर्वज्ञ आपका बचन बहुत उत्तम है. क्योंकि ज्यों ज्यों आप हरिभगवान्की कथा कहते हो; त्यों त्यों मेरा अज्ञान नाश होता चला जाय है ॥ ५ ॥ मैं फिर यह जानना चाहता हूं कि– भगवान् लोकपालोंकेभी तर्कना करनेमें न आवे ऐसे, इस जगत्को अपनी मायासे किसप्रकारसे रचते हैं ? ॥ ६ ॥

पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ॥ कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥ ३ ॥ संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ॥ वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवानघ ॥ तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥ ५ ॥ भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ॥ यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥ ६ ॥ यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छते पुनः ॥ यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् ॥ आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन्करोति विकरोति च ॥ ७ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्हरेरद्भुतकर्मणः ॥ दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥ ८ ॥ यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा ॥ बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥ विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा ॥ शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान् खलु ॥ १० ॥

अनंतशक्ति वे परपुरुष हरि जिस जिस शक्तिको अंगीकार करके, जिस प्रकारसे इस जगत्का पालन करते हैं और जिसप्रकारसे पीछा संहार करते हैं तथा क्रीड़ा करतेहुए भगवान् जिसप्रकारसे करते हैं और ब्रह्मादिरूप अपने आत्माको क्रीड़ा करवाते जिसप्रकारसे विविधरूप करते हैं ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! अद्भुतचरित हरि भगवान्की लीला ज्ञानी लोगोंकोभी बिलकुल अतर्क्यसीही भासे है ॥ ८ ॥ तथा अकेले वे भगवान् जन्म ले, अनेक कर्म करते बहुतसे मायाके गुणोंको क्रमसे धारण करते हैं. अथवा एक साथ धारण करते हैं ॥ ९ ॥ मेरे इस बातमें संदेह है, सो आप कृपाकर कहो. क्योंकि, आप शब्दब्रह्म और परब्रह्म दोनोंमें नि-

मनुष्योंके जो नेत्र भगवान्के स्वरूपका दर्शन न करें; उन्हें मोरके चंद्रमा समझना चाहिये. मनुष्योंके जो पांव हरि भगवान्के क्षेत्र या मंदिरमें चलकर न जाय; वे वृक्षके बराबर हैं ॥ २२ ॥ जिस मनुष्यको कभी भगवद्भक्तोंकी चरणरज न मिले; वह जीताही मुर्दा है. श्रीविष्णु भगवान्के चरणमें अर्पण कीहुई तुलसीकी सुगंध जिसने न ली; वह श्वास लेताहुआभी शव (मुर्दा) के समान है ॥ २३ ॥ उस हृदयको पत्थरके तुल्य कठोर समझना चाहिये; जिसमें भगवन्नाम लेनेसे विकार उत्पन्न न होवे, अर्थात् द्रवीभूत न हो जावे. जब हृदय द्रवीभूत होता है; तब नेत्रोंमें जल आ जाता है और शरीरमें पुलकावली हो जाती है ॥

बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥ पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ २२ ॥ जीवन् शवो भागवतांघ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ॥ श्रीविष्णुपद्यामनुजस्तुलस्याः श्वसन् शवो यस्तु न वेद गंधम् ॥ २३ ॥ तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ॥ न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥२४॥ अथाभिधेह्यंग मनोनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ॥ यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधुपृष्टः ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ॥ उपधार्य मतिं कृष्ण औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥ १ ॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबंधुषु ॥ राज्ये चाविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥ २ ॥

॥ २४ ॥ हे सूत ! भगवद्भक्तोंमें प्रधान आप हमारे मनके अनुकूल कहते हो; तासों आत्मविद्यामें निपुण शुकदेवजीने परीक्षितराजाके सुंदर रीतिपूर्वक प्रश्न करनेपर जो उसको कहा हो; वह आप हमें कहो ? ॥ २५ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकाया तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ चौथे अध्यायमें, परीक्षितने सृष्टिआदि हरि भगवान्की लीला पूंछी; तब ब्रह्मा और नारदजीके संवादसे शुकदेवजी उसका वर्णन करनेलगे. यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि– इसतरह आत्मतत्वका निश्चय करनेवाला शुकदेवजीका बचन सुन, देह, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, धन, बंधु और अखंडराज्य, इन सबमें बंधीहुई दृढ ममताको छोड़ कर, राजा परीक्षितने श्रीकृष्णभगवान्में दृढ बुद्धि लगायी ॥ १ ॥ २ ॥

सभा होती है, वहा जो कथा होतीं हैं; उन सबका परिणाम हरिकथामेंही रहता है ॥ १४ ॥ वह पांडववंशी महारथ राजा परीक्षित भगवान्का परमभक्त था. क्योंकि– जो बचपनमें खिलौनोंसे खेलता हुआभी श्रीकृष्णभगवान्की पूजा करना इत्यादि खेलही खेला करता था ॥ १५ ॥ और भगवान् शुकदेवजीभी भगवान्के परायणही थे. यह नियत है कि– जहां सत्पुरुषोंका समागम होता है; वहां भगवान्के गुणोंसे उदार महान् कथा हुआ करतीं हैं ॥ १६ ॥ भगवान्की कथासे जिसका क्षण व्यतीत होता है; उसकी आयु तो सफल है. और जिनका क्षण भगवान्की कथा विना व्यतीत होता है, उन पुरुषोंकी आयुको उदय होता

स वै भागवतो राजा पांडवेयो महारथः ॥ बालक्रीडनकैः क्रीडन्कृष्णक्रीडां य आददे ॥ १५॥ वैयासकिश्च भगवान्वासुदेवपरायणः ॥ उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६॥ आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ॥ तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥ १७ ॥ तरवः किं न जीवंति भस्त्राः किं न श्वसंत्युत॥ न खादंति न मेहंति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥ १८ ॥ श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ॥ न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥ बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ॥ जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥ २० ॥ भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुंदम् ॥ शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्कांचनकंकणौ वा ॥ २१ ॥

और अस्त होता यह सूर्य वृथाही हर लेजाता है ॥ १७ ॥ क्या वृक्ष नहीं जीते ? क्या धौंकनी श्वास नहीं लेतीं ? क्या इनके सिवाय गांवके पशु आहार विहार नहीं करते ? ॥ १८ ॥ इसीलिये जिनके कर्णमार्गमें गदाग्रज भगवान्का नाम नहीं आया, वह पुरुष पशु कुत्ते, विड्वराह (विष्टाके शुअर) ऊंट और गधोंके तुल्य है ॥ १९ ॥ जो पुरुषके कानरूप दोने हरि भगवान्के पराक्रमको नहीं सुनते; उन्हें बिल समझना चाहिये. हे सूत ! जो जीभ भगवान्की कथाका गान न करे; उस दुष्टिनीको मेंडककी जीभसी समझनी चाहिये ॥ २० ॥ पगड़ी और मुकुटसे सेवितभी जो मस्तक मुकुंदभगवान्को न नमें; उसे केवल भाररूप समझना चाहिये. सुंदर सुवर्णके कंकण पहनेहुएभी जो हाथ भगवान्की सेवा न करें; उन्हें मुर्देके हाथसे जानना चाहिये ॥ २१ ॥

धर्म की कामना हो; तौ उत्तमश्लोक भगवान्की. संतानवृद्धिकी इच्छा हौ;तौ पितृगणकी. रक्षाकी कामना हो; तौ यज्ञोंकी. बलकी कामना हो; तौ मरुद्गणदेवोंकी ॥ ८ ॥ राजकी कामना हो; तौ मह देवोंकी. अभिचार यानी शत्रुबधकी कामना हो; तौ निर्ऋतिकी. भोगकी इच्छा हो; तौ चंद्रमाकी और वैराग्यकी कामना हो; तौ प्रकृतिसे पर पुरुषकी उपासना करे ॥ ९ ॥ जो एकांतभक्त होवे तथा जिसके पूर्वोक्त और इनके सिवाय औरभी सब प्रकारकी कामना होवे; वैसेही जिसके मोक्षकी इच्छा होवे; वह उदारबुद्धिपुरुष तीव्रभक्तियोगसे पूर्णपुरुषोत्तम भगवान्की उपासना करे ॥ १० ॥ उन उन देवतानकी उपासना करनेवाले पुरुषोंके

धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तंतुं तन्वन्पितॄन्यजेत् ॥ रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥ ८ ॥ राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् ॥ कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥ अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १० ॥ एतावानेव यजतामिह निश्रेयसोदयः ॥ भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसंगतः ॥ ११ ॥ ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसंगः ॥ कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥ शौनक उवाच ॥ इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः ॥ किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥ १३ ॥ एतच्छुश्रूषतां विद्वन्सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ॥ कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥ १४ ॥

लाभ इतनाही है कि-जो भगवद्भक्तोंके संगसे भगवान्में अचलभाव होवे ॥ ११ ॥ राग द्वेषादि दोषका समुदाय जिसमें नहीं है ऐसा ज्ञान जिनसे प्राप्त होता है. मनकी प्रसन्नताका हेतु जो विषयोंमें वैराग्य वह जिनमें रहा है और मोक्षके लिये सब लोगोंके संमत पथ जो भक्तियोग वह जिनसे प्राप्त होता है; उन हरि भगवान्की कथाओंमें कौन आनंदीपुरुष प्रीति न करे ?॥ १२ ॥ शौनकने कहा कि-परीक्षित राजाने यह कथा सुनकर, फिर शब्दब्रह्ममें कुशल शुकदेवजीसे और क्या प्रश्न किया ? ॥ १३ ॥ हे विद्वन् ! हे सूत ! हम यह कथा सुनना चाहते हैं; सो आपको हमारे तईं कहना चाहिये. यह निश्चय है कि-जहां सत्पुरुषोंकी

कानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ तीसरे अध्यायमें, शुकदेवजीसे विष्णु भगवान्की भक्तिकी विशेषता सुननेसे विशेष भक्ति प्राप्त हुई; तासों परीक्षितने भगवान्के चरित्र सुननेमें आदर किया, यह कथा होगी ॥ १ ॥ अन्य देवतानकी सेवा पुत्रादिकोंकी सेवाके जैसे तुच्छ है. यह बात कहनेके लिये पूर्वप्रसंगका अनुवाद करते श्रीशुकदेवजी बोले कि--मनुष्योंमें जो बुद्धिमान् हैं, तत्रापि जिन मनुष्योंकी मृत्यु निकट आगयी है, उनके लिये ज्यों आपने पूंछा वैसेही मैंने कहा ॥ १ ॥ ब्रह्मतेजकी कामना होवे; तौ ब्रह्माकी उपासना करे, इंद्रिय चातुरीकी इच्छा हो, तौ इंद्रकी उपासना करे. प्रजाकी इच्छा हो; तौ दक्षादि प्रजापतियोंकी उपासना करे ॥ २ ॥ लक्ष्मीकी कामना हो; तौ दुर्गादेवीकी. तेजकी इच्छा हो; तौ अग्निकी. धनकी इच्छा हो;

श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ॥ नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥ १ ॥ ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ॥ इंद्रमिंद्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥ देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् ॥ वसुकामो वसून् रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥ ३ ॥ अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥ विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥ ४ ॥ आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत् ॥ प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥ ५ ॥ रूपाभिकामो गंधर्वान्स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीम् ॥ आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत् परमेष्ठिनम् ॥ ६ ॥ यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् ॥ विद्याकामस्तु गिरिशं दांपत्यार्थ उमां सतीम् ॥ ७ ॥

तौ वसुदेवतानकी. प्रभावकी इच्छा हो तौ महापराक्रमी पुरुष रुद्रगणकी उपासना करे ॥ ३ ॥ भक्ष्य भोज्यकी इच्छा हो; तौ आदितिकी. स्वर्गकी इच्छा हो; तौ द्वादश आदित्योंकी. राज्यकी इच्छा हो; तौ विश्वेदेवोंकी. प्रजाको स्वाधीन करनेकी इच्छा हो; तौ साध्य देवतानकी ॥ ४ ॥ आयुष्यकी इच्छा हो तौ अश्विनीकुमारोंकी. पुष्टिकी इच्छा हो; तौ पृथ्वीकी. जिस पुरुषको प्रतिष्ठाकी इच्छा होवे; वह लोकको माता द्यावाभूमिकी ॥ ५ ॥ रूपकी इच्छा हो; तौ गंधर्वोंकी. स्त्रीकी इच्छा हो; तौ उर्वशी अप्सराकी. सबके आधिपत्यकी इच्छा हो; तौ परमेष्ठी ब्रह्माकी ॥ ६ ॥ यशकी इच्छा हो; तौ यज्ञ भगवान्की. धनसंचयकी इच्छा हो; तौ वरुणकी. विद्याकी; इच्छा हो; तौ महादेवकी. स्त्री भर्तारके परस्पर प्रीतिकी इच्छा हो; तौ सती पार्वतीकी ॥ ७ ॥

कहे. पहले ब्रह्माजीने भगवान्की आराधना करके, ये मार्ग पूछे थे. तब भगवान्ने ब्रह्माजीसे ये मार्ग कहे ॥ ३२ ॥ संसारी जीवके मोक्षके वास्ते इन दोनों मार्गोंसे बढ़कर, दूसरा कोईभी कल्याणकारी मार्ग नहीं है. क्योंकि इन मार्गोंमें चलनेसे वासुदेव भगवान्में भक्तियोग प्रगट होता है ॥ ३३ ॥ [illegible] ब्रह्माजीने एकाग्रचित्तसे तीन बेर संपूर्ण वेदका विचार करके, निश्चय किया कि– जिससे भगवान्की भक्ति होवे; वही उत्तम मार्ग है ॥ ३४ ॥ यहां कोई शंका करे कि–अनुभव कियेहुए पदार्थमें प्रीति हुआ करती है. जिनका अनुभव नहीं ऐसे भगवान्में प्रीति किस प्रकारसे होवे ? तहां कहते हैं कि– बुद्धि आदि दृश्यपदार्थोंका प्रकाश उसके प्रकाशक स्वयंप्रकाश द्रष्टा अंतर्यामी विना संभवे नहीं. अतएव बुद्धि आदिके प्रकाशपरसे उसके प्रकाशक आत्माकी कल्पना

न ह्यतोऽन्यः शिवः पंथा विशतः संसृताविह ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥ ३३ ॥ भगवान् ब्रह्मकार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ॥ तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥ ३४ ॥ भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ॥ दृश्यैर्बुध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥ ३६ ॥ पिबंति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ॥ पुनंति ते विषयविदूषिताशयं व्रजंति तच्चरणसरोरुहांतिकम् ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे पुरुषसंस्थावर्णनन्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ ॥

कर सकते हैं; इस अर्थापत्तिप्रमाणसे तथा जैसे कुल्हाड़ा आदि काठ काटनेके साधन, काटनेवाले चेतनके कबजेमें रहकर, काम कर सकते हैं; वैसे बुद्धि, इंद्रिय आदिभी चेतनका आश्रय पाकर, अपना अपना व्यापार कर सकते हैं; इस अनुमान करानेवाली व्याप्तिसे ईश्वरका सब प्राणीनमें अनुभव किया जा सकता है ॥ ३५ ॥ महाराज ! इसलिये सदा सब प्रकारसे मनुष्योंको भगवान्काही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये ॥ ३६ ॥ सत्पुरुषोंके आत्माके वास्ते यह हरिकथा अमृतरूप है. सो जो लोग कानरूप दोनोंमें भरकर, इसे पीते हैं; यानी कानसे श्रवण करते हैं; वे विषयोंसे बिगड़ेहुए अपने अंतःकरणको पवित्र करते हैं. और उन भगवान्के चरणकमलके पास निवास करते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपि-

फिर ब्रह्मलोकमेंसे वह योगी पृथ्वी आदि आवरणोंका भेद करनेके लिये ' मैं इन पृथ्वी आदि आवरणोंका भेद कैसे करूंगा ' ऐसी शंकाको छोड़, प्रथम लिंगदेहसे पृथ्वीरूप हो जाता है, फिर उसी पृथ्वीरूपसे जलरूपको प्राप्त होकर, जलरूपसे यथेष्ट भोग भोग कर, धीरे धीरे अग्निरूप हो जाता है. फिर तेजरूपसे वायुरूपको प्राप्त हो कर, वायुके भोग भोगे. पीछे वायुरूपसे व्यापकताधर्मकरके परमात्माके स्वरूपको द्योतन करनेवाले आकाशके रूपको प्राप्त हो जाता है ॥ २८ ॥ फिर वह योगी घ्राणेंद्रियद्वारा गंधको प्राप्त होता है, जिव्हाद्वारा रसको प्राप्त होता है, दृष्टिद्वारा रूपको प्राप्त होता है, त्वचा इंद्रियद्वारा स्पर्शको प्राप्त होता है, श्रोत्र

ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोऽनलमूर्तिरत्वरन् ॥ ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिंगम् ॥ २८ ॥ घ्राणेन गंधं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ॥ श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥ २९ ॥ स भूतसूक्ष्मेंद्रियसंनिकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ॥ संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसंनिरोधम् ॥३०॥ तेनात्मनाऽऽत्मानमुपैति शांतमानंदमानंदमयोऽवसाने ॥ एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेंऽग ॥३१॥ एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च ॥ ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः ॥ ३२ ॥

इंद्रियद्वारा शब्दको प्राप्त होता है और उन उन कर्मेंद्रियोंद्वारा उन उन कर्मेंद्रियोंकी क्रियाको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ फिर वह योगी शब्दादिक तन्मात्राओंके लयके स्थान तामसाहंकारको प्राप्त होवे तथा दश इंद्रियोंके लयके स्थान राजसाहंकारको प्राप्त होवे वैसे मन और इंद्रियादिकनके देवतानके लयके स्थान सात्विकाहंकारको प्राप्त होवे, तदनंतर तीनप्रकारके अहंकारके साथ वह योगी महत्तत्त्वको प्राप्त होवे, तिसपीछे सर्वकार्योंका जिसमें लय है ऐसे प्रधानको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ तदनंतर प्रधानरूप वह योगी आनंदरूप हो, अंतमें निर्विकार आनंदमय परमात्माको प्राप्त होता है, महाराज ! जो पुरुष इस भगवतगतिको प्राप्त होवे, वह फिर इस संसारमें आसक्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ महाराज ! आपने वेदमें कहेहुए जो सनातन मार्ग पूंछे; वे दोनों मार्ग मैंने आपसे

रोंकी गति त्रिलोकीके भीतर और बाहिर दोनों जगह है. ये संसारी लोग विद्या (उपासना) तप (भगवद्धर्म) योग (अष्टांग)
और समाधि (ज्ञान) को सेवन करनेवाले पुरुषोंकी गतिको कर्मोद्वारा कभी नहीं पा सकते ॥ २३ ॥ आकाशमें ब्रह्मलोकके
मार्गसे तेजोमय सुषुम्नानाड़ीद्वारा कहीं आसक्त न होताहुआ योगी प्रथम अग्नि अभिमानी देवताको प्राप्त होता है. हे राजा! फिर
वह ऊपरको वर्तमान हरिसंबंधी तारामय शिशुमारचक्रको प्राप्त होता है, ॥ २४ ॥ सूर्यादि ग्रहोंके आश्रयरूप उस सुदर्शनचक्रको

वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ॥ विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति
चक्रं नृप शैशुमारम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ॥ नमस्कृतं
ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमंते ॥ २५ ॥ अथो अनंतस्य मुखानलेन दंदह्यमानं स निरी-
क्ष्य विश्वम् ॥ निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं यद्वैपरार्ध्यं तदु पारमेष्ठयम् ॥ २६ ॥ न यत्र शोको न जरा न
मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेगऋृते कुतश्चित् ॥ यच्चित्ततोऽदः कृपयाऽनिदंविदां दुरंतदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥ २७ ॥

उल्लंघ कर, रजोगुणरहित, अत्यंतसूक्ष्म लिंगशरीरद्वारा इकला वह योगी, ब्रह्मवेत्ता पुरुष जिसे नमस्कार करते हैं, ऐसे महर्लोकमें
जाता है. जहां कल्पपर्यंत आयुष्यवाले देवता क्रीड़ा करते हैं ॥ २५ ॥ फिर वह शेषजीके मुखकी अग्निसे जलतेहुए इस जगत्को
देखकर, सिद्धेश्वर जहां विमानोंमें बैठे फिर रहे हैं, ऐसे दो परार्द्धपर्यंत रहनेवाले उत्तम ब्रह्मलोकमें चला जाता है ॥ २६ ॥ जहां
न तो शोक है, न जरा (बुढ़ापा) है, न मृत्यु है, न पीड़ा है, न उद्वेग है, किंतु वहां उसको अज्ञानी लोगोंको अपार जन्म मर-
णादिक संबंधी वारंवार दुःख देखनेसे जो दया आती है उससे चित्तको दुःख होनेके शिवाय दूसरा कुछभी दुःख नहीं है ॥ २७ ॥

---

१ ब्रह्माजीकी आयुष्यका आधा भाग यानी ब्रह्माजीके पचास बरस. २ जो ब्रह्मलोकमें जाते हैं उनकी तीन प्रकारकी गति होती हैं. जो पुण्यके प्रभावसे जाते हैं. वे तो अनंतर पुण्यमार्गके पुण्यके प्रभावसे अधिकारी होते हैं. जो हिरण्यगर्भादिकनकी उपासना करके जाते हैं; वे ब्रह्माके साथ मुक्त होजाते हैं. जो भगवान्की उपासना करके, जाते हैं; वे अपनी इच्छासे ब्रह्मांडको भेद कर, विष्णुपदको प्राप्त होते हैं.

हादिकोंमें आत्मबुद्धिको तज कर, पूज्य विष्णु भगवान्के शुद्धस्वरूपका हृदयमें क्षणमें क्षणमें आलिंगन कर, उन्हींमें अनन्य प्रीतियुक्त हो, उन विष्णु भगवान्के परमपदकोही सबसे श्रेष्ठ मानते हैं ॥ १८ ॥ इसीलिये शास्त्रोक्त ज्ञानबलद्वारा जिनकी विषयवासना नाश हो गयी हो; उस ब्रह्मनिष्ठ मुनिको उपराम पाना चाहिये; और उसे देहत्याग किस प्रकारसे करना चाहिये. सो कहते हैं. योगीको चाहिये कि– अपने मूलद्वारको पांवकी एंड़ीसे रोक कर, श्वासको छः चक्रोंद्वारा श्रमरहित होकर, ऊंचा ले जावे ॥ १९ ॥ नाभि यानी मणिपूरचक्रमें स्थित पवनको हृदय यानी अनाहतचक्रमें ले जावे; फिर वहांसे उदान वायुके द्वारा उर यानी कंठसे नीचेके भाग विशुद्धिचक्रमें लेजावे फिर वहांसे वशीकृतचित्त मुनि सावधानी रखकर, बुद्धिद्वारा शनैः शनैः श्वासको अपने

इत्थं मुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरंधिताशयः ॥ स्वपार्ष्णिनापीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥ १९ ॥ नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ॥ ततोऽनुसंधाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥ २० ॥ तस्माद्भ्रुवोरंतरमुन्नयेत निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ॥ स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुंठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः ॥ २१ ॥ यदि प्रयास्यन्नृपपारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् ॥ अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेंद्रियैश्च ॥ २२ ॥ योगेश्वराणां गतिमाहुरंतर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनांतरात्मनाम् ॥ न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवंति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३ ॥

तालुमूलमें ले जावे ॥ २० ॥ फिर वहांसे उस पवनको दोनों भौंहनके बीच आज्ञाचक्रमें ले जावे. इस समयमें दो कानोंके छिद्र दो नाकके छिद्र, दो नेत्र तथा एक मुख इन सातों द्वारोंको बंद रक्खे, जिस योगीको किसी बातकी अपेक्षा न होवे; वह अकुंठदृष्टि योगी आधा मुहूर्त वहां आज्ञाचक्रमें ठहर, ब्रह्मरूपको प्राप्त हो, ब्रह्मरंध्रको भेद कर, देह और इंद्रियोंका त्याग करे ॥ २१ ॥ महाराज ! गुणोंके समुदायरूप इस ब्रह्मांडमें यदि योगीके ब्रह्मलोकमें अथवा अणिमादिक अष्टसिद्धिवाले सिद्धलोकोंके क्रीडास्थानमें जानेकी इच्छा होवे तो मन और इंद्रियोंके अपने साथ ले जावे ॥ २२ ॥ पवनके अंदर जिनका लिंगशरीर है ऐसे योगेश्व-

प्यमान कटाक्षद्वारा भक्तोंपर अत्यंत अनुग्रह सूचन करनहारे, ध्यानसे आविर्भाव हुए इन परमेश्वरका जबतक मन स्थिर रहे, तब-तक धारणासे ध्यान करना चाहिये ॥ १२ ॥ पांवसे ले हासपर्यंत गदाधर भगवान्‌के एक एक अंगका जुदा जुदा बुद्धिसे ध्यान करना. ज्यों ज्यों बुद्धि शुद्ध होती जाय त्यों त्यों जीते जीतेहुए अंगको छोड़ कर, दूसरे दूसरे अंगका ध्यान करना चाहिये ॥ १३॥ जबतक ब्रह्मादिकोंसे पर, जगदीश्वर, द्रष्टा इन परमेश्वरमें प्रेमलक्षणाभक्तियोग प्रगट न होवे; तबतक अपना नित्यकृत्य कर, उसके अनंतर नियम धारण कर, भगवान्‌के स्थूलस्वरूपका ध्यान करना चाहिये ॥ १४ ॥ महाराज ! जब यति इस शरीरका,

एकैकशोऽङ्गानि धियानुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ॥ जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्परं परं शुध्यति धीर्यथा यथा॥१३॥ यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन् विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ॥ तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥ १४ ॥ स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यतिर्यदा जिहासुरिममंग लोकम् ॥ काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥ १५ ॥ मनः स्वबुद्ध्यामलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ॥ आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशांतिर्विरमेत कृत्यात् ॥ १६ ॥ न यत्र कालोऽनिमिष परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ॥ न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥ १७ ॥ परं पदं वैष्णवमामनंति तद्यन्नेति नेतीत्यदद्‌दुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥ १८ ॥

त्याग करना चाहे; तब पवित्र क्षेत्र और उत्तरायण आदि कालमें मनको न लगावे; किंतु स्थिर और सुखकारी आसनपर बैठ, इंद्रियोंको वश कर, मनसे प्राणका नियमन करे ॥ १५ ॥ अपनी निर्मल बुद्धिसे मनको रोककर, उस बुद्धिको बुद्ध्यादिकके द्रष्टा क्षेत्रज्ञमें लीनकरे और क्षेत्रज्ञका आत्मामें लय करे, आत्माका परब्रह्ममें लय करके, धीर पुरुषको चाहिये कि–शांतिको प्राप्त होकर, यावत् कृत्यसे विरक्त हो जावे ॥ १६ ॥ जिस ब्रह्मस्वरूपमें देवताओंके परमप्रभु कालकाभी कुछ नहीं चलता, तब जगत्‌के प्रभु देवता तो वहां क्या कर सकते हैं ? जिस स्वरूपमें न तो सत्व, रज, वे तमोगुण समर्थ होते हैं और न अहंकार, महत्तत्व और प्रधान समर्थ होते हैं ॥ १७ ॥ सर्व अनात्मवस्तुको ' नेति नेति ' इस श्रुतिके विचारसे त्याग करनेकी इच्छावाले लोग दे-

नाश हो जाय ॥ ६ ॥ विषयकी चिंतासे जन्म-मरणरूप वैतरणीमें पड़ेहुए तथा अपने कर्मके लिये त्रिविधतापका सेवन करनेवाले जनको देखताहुआ कौन मनुष्य, कर्म जड़पुरुष विना इस परमेश्वरसंबंधी चिंताको त्यागकर, नाशवान् विषयोंका चिंतवन करे ?॥ ७॥ कितनेएक पुरुष अपने देहांतर्वर्ती हृदयके अवकाशमें प्रादेशमात्र प्रमाणसे विराजमान, चतुर्भुज तथा शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारणकरनेवाले परमेश्वरका धारणासे स्मरण करते हैं ॥ ८ ॥ कैसे हैं भगवान् कि–प्रसन्न जिनका मुख है, कमलसे दीर्घ जिनके नेत्र हैं, कदंबके केसरसे पीत पट ओढे, देदीप्यमान अमूल्य रत्नजटित कंचनके भुजबंध धारण किये, जगमगाते महारत्नोंके किरीट

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिंतामृते पशूनसतीं नाम युंज्यात् ॥ पश्यन् जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापान् जुषाणम् ॥७॥ केचित्स्वदेहांतर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसंतम् ॥ चतुर्भुजं कंजरथांगशंखगदाधरं धारणया स्मरंति ॥ ८ ॥ प्रसन्नवक्रं नलिनायतेक्षणं कदंबकिंजल्कपिशंगवाससम् ॥ लसन्महारत्नहिरण्मयांगदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुंडलम् ॥ ९ ॥ उन्निद्रहृत्पंकजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ॥ श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकुंधरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाचितम् ॥ १० ॥ विभूषितं मेखलयांगुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकंकणादिभिः ॥ स्निग्धामलाकुंचितनीलकुंतलैर्विरोचमानाऽननहासपेशलम् ॥ ११ ॥ अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभंगसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ॥ ईक्षेत चिंतामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते ॥ १२ ॥

और कुंडल जिनके शोभ रहे हैं ॥ ९ ॥ प्रफुल्लित हृदयकमलकी कर्णिकारूप स्थलमें योगेश्वर जिनके चरणपल्लवको धारण करते हैं, लक्ष्मीका जिनके चिन्ह है, कौस्तुभमणि जिनके गलेमें देदीप्यमान है, जिसकी शोभा कभी न कुम्हलाये ऐसी वनमाला पहिरे ॥ १० ॥ अमूल्य मेखला, अंगूठी, नूपुर और कंकण आदि आभूषण धारण किये, सच्चिक्कण, निर्मल और घूंघरवाले नीलबालोंकरके शोभायमान जो मुख तत्संबंधी हास्यकरके अतिसुंदर ॥ ११ ॥ उदार लीलासंबंधी हास्यपूर्वक अवलोकन करके देदी-

१ अंगुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते ॥ अर्थ–अंगूठेके और तर्जनीके बीचमें जो अंतर है वह प्रादेश कहलाता है. इसका विस्तार दशअंगुलका है.

शून्य स्वर्गादिक नाम सुनकर उन्हें प्राप्त होनेकी इच्छा करता है तथा मायिक कर्ममार्गमें चलनेसे मुझे यथार्थ सुख प्राप्त होगा. ऐसी वासनासे सोताहुआ मानों स्वप्न देखता हो, वैसे कर्म करके अनेक लोकोंमें भटकता फिरता है परंतु वह वहां अविनाशी आत्मसुखको प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥ इसीलिये ज्ञानवांन् पुरुषको चाहिये, कि नाममात्र सांसारिक पदार्थोंमें जिन जिन वस्तुओंकी केवल शरीरनिर्वाहके लिये आवश्यकता हो, उन्हींके वास्ते यत्न करे तथा उनमें सुख नहीं है ऐसा दृढ़ निश्चय कर उनमें आसक्त न होवे, जो शरीरके निर्वाहके लियेभी आवश्यक वस्तुओंका विना श्रम लाभ हो जाय, तौ उनमें परिश्रम देखताहुआ उनके लियेभी यत्न नहीं करे ॥ ३ ॥ जो पृथ्वी विद्यमान है, तौ फिर शय्याके लिये प्रयास क्यों करना चाहिये ? जो अपनी

अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ॥ सिद्धेऽन्यथाऽर्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ॥ ३ ॥ सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ॥ सत्यंजलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥ ४ ॥ चीराणि किं पथि न संति दिशंति भिक्षां नैवांघ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ॥ रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्कस्माद्भजंति कवयो धनदुर्मदांधान् ॥ ५ ॥ एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननंतः ॥ तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥ ६ ॥

भुजा तैयार हैं, तौ फिर तकियोंका क्या प्रयोजन है ? जो अंजलि विद्यमान है तौ फिर अनेक प्रकारके भोजनके पात्र रखनेसे क्या प्रयोजन है ? जो दिशा अथवा बल्कलरूप वस्त्र मौजूद हैं, तौ फिर रेशमी वस्त्रोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ४ ॥ क्या मार्गमें चीर नहीं पड़े हैं ? क्या दूसरोंको पालने वाले वृक्ष भिक्षा नहीं देते ? क्या नदियां सूख गयीं ? क्या गुफायें बंद हो गयीं ? क्या परमेश्वर शरणागतभक्तोंकी रक्षा नहीं करते ? फिर ज्ञानीलोग धनके दुष्ट मदसे अंध लोगोंका सेवन क्यों करें ? ॥ ५ ॥ इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त हो, अपनेही हृदयमें स्वयंसिद्ध, प्रिय, सत्यस्वरूप, आत्मा, अनंत और भजनीय गुणवाले भगवान्का निश्चितस्वरूप मनुष्यको उसके अनुभवसे आनंदयुक्त होकर, भजन करना चाहिये. जिससे जन्ममरणकी कारणरूप अविद्याका

चारण और अप्सरा ये उसके षड्जादि स्वरकी स्मृतियां, दैत्योंकी सेना पराक्रम कहलाता है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य साथल और शूद्र चरणके आश्रित हैं, तथा भिन्न भिन्न नामवाले देवगणसहित द्रव्यात्मक यज्ञक्रिया विराट्पुरुषका आवश्यक कर्म कहलाता है ॥ ३७ ॥ यह भगवान्के शरीरके अवयवोंका वर्णन जो मैंने तुमसे कहा, वह यह इतनाही है इसी भगवान्के स्थूल शरीरमें अपनी बुद्धिसे मुमुक्षुलोग मनकी धारणा करते हैं कि जिस स्वरूपसे बाहिर कुछभी नहीं है ॥ ३८ ॥ जैसे इकल्ला आत्मा स्वप्नप्रपंचका द्रष्टा है वैसे जो विराट्पुरुष सबकी बुद्धियोंकी वृत्तिद्वारा सबका अनुभव करनेवाला है, उस

ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विडूरुरंघ्रिश्रितकृष्णवर्णः ॥ नानाऽभिधाऽभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्मवितानयोगः ॥ ३७ ॥ इयानसावीश्वरविग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितो मया ते ॥ संधार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या नयतोऽस्ति किंचित् ॥ ३८ ॥ स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ॥ तं सत्यमानंदनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे महापुरुषसंस्थानुवर्णने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुरा धारणयात्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ॥ तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥ १ ॥ शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पंथा यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ॥ परिभ्रमंस्तत्र न विंदतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥ २ ॥

सत्य तथा आनंदघन ईश्वरका भजन करना चाहिये; और जिससे अपना पड़ना अर्थात् जन्म मरण होवे वैसी किसी वस्तुमें आसक्त न होना चाहिये ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ दूसरे अध्यायमें स्थूलस्वरूपकी धारणासे वशीकृत मनकी सबके साक्षी सर्वेश्वर विष्णु भगवान्में धारणा करनी यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–पहले ब्रह्माजीने इस प्रकार धारणा की थी, जिससे भगवान्ने प्रसन्न होकर, उनको प्रलयसमयमें नाश हुई सृष्टिकी स्मृति दी, जिसे पाकर, अमोघदृष्टि और निश्चयात्मक बुद्धिवाले ब्रह्माजीने पूर्वकल्पमें जैसा यह जगत् था वैसाका वैसा फिर पीछा रचा ॥ १ ॥ वेदकी कर्मफल बतानेकी यह रीति है कि, जिससे मनुष्य अर्थ-

अग्नि, इस विराट्का मुख कहलाता है ॥ २९ ॥ अंतरिक्ष नेत्र, सूर्य चक्षुइंद्रिय, रात दिन विष्णु भगवान्की पलकें, ब्रह्माका स्थान उस परमेश्वरका भ्रूविलास, जल तालु और रस जीभ कहलाती है ॥ ३० ॥ वेद विराट्का ब्रह्मरंध्र कहलाते हैं, यमराज दाढ़, पुत्रादिकनमें जो स्नेहका लेश है वह दांत, लोकोंको मोहित करनेवाली माया भगवान्का हास्य, अपार सर्ग जो हैं वह भगवान्का कटाक्ष कहलाता है ॥ ३१ ॥ लाज ऊपरका ओंठ, लोभ नीचेका ओंठ, धर्म स्तन, अधर्म पीठ, प्रजापति लिंग, मित्रावरुण

द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतंगः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च॥ तद्भ्रूविजृंभः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोस्य तालू रस एव जिह्वा ॥ ३० ॥ छंदांस्यनंतस्य शिरो गृणंति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ॥ हासो जनोन्मादकरी च माया दुरंतसर्गो यदपांगमोक्षः ॥ ३१ ॥ व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ॥ कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥ ३२ ॥ नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेंद्र ॥ अनंतवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः ॥ ३३ ॥ ईशस्य केशान्विदुरंबुवाहान्वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ॥ अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च सचंद्रमाः सर्वविकारकोशः ॥ ३४ ॥ विज्ञानशक्तिं महिमामनंति सर्वात्मनोऽतःकरणं गिरित्रम् ॥ अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ॥ ३५ ॥ वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ॥ गंधर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ॥ ३६ ॥

वृषण, समुद्र कुक्षि और पर्वत हड्डियोंका समूह कहलाता है ॥ ३२ ॥ महाराज! नदियां विराट्की नाड़ियां, वृक्ष रोम, अनंत पराक्रमवाली पवन श्वास, काल गति और संसार उसका खेल कहलाता है ॥ ३३ ॥ बादल परमेश्वरके केश कहलाते हैं. हे परीक्षित! संध्या उसके वस्त्र प्रधान उसका हृदय, चंद्रमा उसका सबविकारोंका आश्चर्यभूत मन कहलाता है॥ ३४ ॥ महत्तत्त्व उस सर्वात्माका चित्त, महादेव अंतःकरण यानी अहंकार, घोड़े, खच्चर, ऊंट, हाथी, विना नखके प्राणी, सब मृग और पशु ये उसकी कटिके पिछले भागमें मानेजाते हैं ॥ ३५ ॥ पक्षी उसकी विचित्र हाथकी कारीगरी, मनु बुद्धि, मनुष्य निवासस्थान, गंधर्व, विद्याधर,

परीक्षितने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! आपने चित्तकी धारणा कही, वह किसके विषे करनी ? कैसी करनी ? और किस प्रकारसे करनी ? कि जो धारणा मनुष्यके मनके मलका तुर्त नाश करे ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—आसनको जीत, प्राणको वश कर, संगको तज, इंद्रियोंको जीतकर, भगवान्‌के स्थूलस्वरूपमें बुद्धिद्वारा मनको लगावे ॥ २३ ॥ यह विराट् देह भगवानके स्थूलस्वरूपोंमें सबसे स्थूल है, जिस स्वरुपमें यह भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान कार्यरूप सब जगत् दीख पड़ता है ॥ २४ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्त्व इन सात आवरणोंवाले इस ब्रह्मांडरूप विराट्शरीरका जो नियंता पुरुष है, वही भगवान्

राजोवाच॥ यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता ॥ यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥ २२ ॥ श्रीशुकउ०॥ जितासनो जितश्वासो जितसंगो जितेंद्रियः॥स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया॥२३॥ विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् ॥ यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥ २४ ॥ आंडकोशे शरीरेस्मिन्सप्तावरणसंयुते ॥ वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः ॥ २५ ॥ पातालमेतस्य हि पादमूलं पठंति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ॥ महातलं विश्वसृजोथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ॥ २६ ॥ द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च॥ महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणंति ॥ २७ ॥ उरस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ॥ तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥ २८ ॥ इंद्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ॥ नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गंधो मुखमग्निरिद्धः ॥ २९ ॥

धारणाका विषय है ॥ २५ ॥ इस विराट्पुरुषके चरणमूलको पाताल कहते हैं, एंडी और चरणके ऊपरभाग (पौली) को रसातल कहते हैं, गुल्फ यानी टखना महातल, जंघा तलातल, ॥ २६ ॥ दोनों घुटने सुतल, दोनों साथलोंके नीचेके भाग वितल और ऊपरके भाग अतल. महाराज ! विराट्का जवन महीतल और नाभिरूप सरोवर नभस्तल कहलाता है ॥ २७ ॥ इस विराट्का वक्षःस्थल ज्योतिश्चक्र यानी स्वर्ग, गर्दन महर्लोक, मुख जनलोक, ललाट तपलोक और अनंत शिखावाले भगवान्‌के शिर सत्य लोक जाना गया है ॥ २८ ॥ इंद्रादिक देवता भुजा, दिशायें कान, शब्द श्रोत्रेंद्रिय, अश्विनीकुमार नाक, गंध घ्राण और प्रकाशमान

सात दिन जीनेकी अवधि है, सो इतने समयमें जो तेरे परलोकका साधन करना हो सो सब कर ले ॥ १४ ॥ जब मनुष्यका अंतसमय आवे, तब मरनेका डर छोड़ कर, असंगरूप शस्त्रसे देह और देहसंबंधी स्त्री पुत्रादिकोंमें रही जो लालसा उसे काट डारनी चाहिये ॥ १५ ॥ घरसे बाहिर निकल, धैर्य धारण कर, पवित्रतीर्थजलमें स्नान कर, पवित्र और एकांतस्थलमें विधिपूर्वक दाभ, अजिन (मृगछाला) और वस्त्रसे आसन जमाकर, उसपर बैठ ॥ १६ ॥ 'अ. उ, म्' इन तीन वर्णोंसे बनेहुए ब्रह्मवाचक उत्तम और शुद्ध 'ओं' कारका मनसे जप करना, तथा प्रणवका विस्मरण किये विना प्राणायामसे मनका निरोध करना

अंतकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ॥ छिंद्यादसंगशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम् ॥ १५ ॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलप्लुतः ॥ शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥ १६ ॥ अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् ॥ मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ १७ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥ १८ ॥ तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा ॥ मनो निर्विषयं युंक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥ पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥ १९ ॥ रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः ॥ यच्छेद्धारणया धीरो हंति या तत्कृतं मलम् ॥ २० ॥ यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः ॥ आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥ २१ ॥

॥ १७ ॥ बुद्धिही जिसके सारथि है ऐसे पुरुषको चाहिये, कि प्रथम तो मनद्वारा विषयोंमेंसे इंद्रियोंको पीछी फेरे, फिर कर्मोंकी वासनाओंसे विक्षिप्तचित्तको बुद्धिद्वारा भगवान्के स्वरूपमें लगावे ॥ १८ ॥ वहां समग्र स्वरूपसे मनको वियुक्त न करके एक एक अंगका ध्यान करे, फिर समाधि लगावे; तब निर्विषय मनको स्फुरत्परमानंदमात्र आकारवाला करके किसीका स्मरण न करे जिस स्वरूपमें मन प्रसन्न हो जाय, वही विष्णु भगवान्का परम पद है ॥ १९ ॥ धीरपुरुषको चाहिये कि रजोगुण और तमोगुणसे विक्षिप्त और मूढ़ अपने मनको धारणाद्वारा रोकरक्खे, जो धारणा रजोगुण और तमोगुणकृत मलका नाश करती है ॥ २० ॥ जिस धारणाके अभ्याससे सुखरूप विषयको देखनेवाले योगीका भक्तिलक्षणयोग तुर्त सिद्ध होता है ॥ २१ ॥

वानके गुणानुवादमें रमण करते हैं ॥ ७ ॥ यह सर्व वेदोंके तुल्य, श्रीमद्भागवतनाम पुराण द्वापर युगके आदिमें पिता वेदव्यास-जीसे मैंने पढ़ा ॥ ८ ॥ यदपि मैं निर्गुण ब्रह्ममें निष्ठावान् हूं, तथापि हे राजर्षि ! उत्तमश्लोक भगवान्की लीलासे मेरा मन खैंचा जानेके कारण मैंने यह आख्यान (भागवत) पढ़ा ॥ ९ ॥ अब यह आख्यान मैं तुझे कहूंगा; क्योंकि तूं भगवान्का परमभक्त है, जो मनुष्य इस भागवतमें श्रद्धा राखें, उनकी तुर्तही मुकुंदभगवान्में फलाभिसंधानरहित बुद्धि हो जाय ॥ १० ॥ महाराज !

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ अधीतवान् द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥ ८ ॥ परिनिष्ठितोपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया ॥ गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥ ९ ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् ॥ यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुंदे मतिः सती ॥ १० ॥ एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ॥ योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥ किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह ॥ वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥ १२ ॥ खट्वांगो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः ॥ मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥ १३ ॥ तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः ॥ उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम् ॥ १४ ॥

हरि भगवान्के नामका कीर्तन यही सकामपुरुषोंको मनवांछित फल देनेवाला, मुमुक्षुको मोक्षफल देनेवाला तथा योगी और ज्ञानी जनोंको योग और ज्ञानका फल देनेवाला है; क्योंकि इसमें किसी प्रकारका भय नहीं है यह निश्चय किया गया है ॥ ११ ॥ जो यहां असावधान पुरुषके असावधानीमें बहुतसे बरस चले गये तौ क्या ? और जानाहुआ एक मुहूर्त यानी दो घड़ी समयभी अच्छा, कि जिससे कल्याणके लिये यत्न करे ॥ १२ ॥ खट्वांगनाम राजऋषि अपनी आयुष्यकी दो घड़ी शेष रही ऐसा निश्चय कर, एक मुहूर्तमें यहांके सब संगका त्याग कर, मोक्षरूप हरि भगवान्को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ हे परीक्षित ! तेरे तौ अभीतक

१ यह राजा देवताओंके पक्षमें हो, दैत्योंको जीतलिया, तिससे प्रसन्न देवोंने ‘ वरदान मांगो ’ ऐसे इसे कहा. यह सुन, राजा बोला– अय महाराज ! पहले तो मेरी उमर कितनी रही ? यह बतावो. तब उन्होंने कहा– मुहूर्तमात्र रहगई है. तबतो वह राजा विमानपर सवार हो, अतिशीघ्र कर्मभूमि भरतखंडमें आय, मोक्षरूप हरिको प्राप्त हुवा.

॥ श्रीविघ्नहर्त्रे नमः ॥ ॥ प्रथम अध्यायमें कीर्तन श्रवणादिकोंसे भगवान्के स्थूलस्वरूपमें मनकी धारणा कही जायगी ॥ १ ॥
शुकमुनि बोले कि-महाराज ! आत्मवेत्तापुरुषोंके माननीय और श्रवण करने योग्य आदि विषयोंमें परमश्रेष्ठ यह प्रश्न आपने बहुत अच्छा किया; क्योंकि इससे जगतका कल्याण होगा ॥ १ ॥ हे राजेंद्र ! आत्मतत्वको न जाननेवाले, गृहासक्त गृहस्थी मनुष्योंके श्रोतव्यादिक विषय हजारों हैं ॥ २ ॥ इन मनुष्योंकी आधी आयु तो रात्रिमें नींद या मैथुनसे व्यतीत हो जाती है

ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप॥ आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥ श्रोतव्यादीनि राजेंद्र नृणां संति सहस्रशः ॥ अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ २ ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ॥ दिवा चार्थेहया राजन्कुटुंबभरणेन वा ॥ ३ ॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ॥ तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४ ॥ तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥ ५ ॥ एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ॥ जन्मलाभः परः पुंसामंते नारायणस्मृतिः ॥ ६ ॥ प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ॥ नैर्गुण्यस्था रमंते स्म गुणानुकथने हरेः ॥ ७ ॥

और आधी हे राजा ! दिनमें धनके अर्थ उद्यमसे या कुटुंबपोषणसे व्यतीत हो जाती है ॥ ३ ॥ देखो, स्त्री, पुत्र, शरीर आदि यह सब अपना परिकर स्थिर नहीं है तथापि यह मनुष्य गाफिल होकर, पिताआदिके दृष्टांतसे उनके मरणको देखताहुआभी नहीं समझता ॥ ४ ॥ हे राजा ! इसलिये जो मनुष्य अभय यानी मोक्षकी इच्छा करे, वह सर्वके आत्मा परमेश्वर हरिभगवान्का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करे ॥ ५ ॥ सांख्य, योग और स्वधर्माचरणसे यही मनुष्योंके उत्कृष्ट जन्मका फल है, कि अंतसमयमें नारायणकी स्मृति बनी रहे ॥ ६ ॥ महाराज ! विधिनिषेधसे निवृत्त मुनिलोग बहुतकरके निर्गुण ब्रह्ममें स्थित होकर, भग-

१ गृहस्थीके पांच हत्या सदा बनी रहें हैं जैसे ॥ कंडनी पेषणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी । पञ्चसूना गृहस्थस्य ताभिः स्वर्गं न विन्दति ॥ अर्थ घट्टी (चक्की), १ ऊखली २ चुल्हा ३ पनघरा ४ और बुहारी ५ इन्हीसे इसको स्वर्ग मिलना कठिन है. इस दोषनिवृत्तिके लिये पंचमहायज्ञ हैं.

॥ इति श्रीभागवते भाषाटीकासहितः प्रथमस्कंधः समाप्तः ॥

नुष्योंके बड़े बड़ेभी सब पाप, जैसे विष्णुके सन्निधानसे दैत्य नष्ट हो जाते हैं वैसे, तुर्त नष्ट हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ क्या अपनी फूफीके पुत्र पाण्डवोंको राजी रखनेके लिये उनके वंशवाले मुझको अपना बेटा समझकर, पांडवोंके प्यारे भगवान् श्रीकृष्णने मुझपर कृपा करी है ? ॥३५ ॥ श्रीकृष्णभगवान्की कृपा विना सम्यक् प्रकारसे सिद्ध, अतिउदारभावसे मनवांछित देनेवाले, अव्यक्तगति आपका दर्शन हम मनुष्योंको कहां ? तत्रापि जिनकी मृत्यु बिलकुल निकट आगयी है, उनको तौ आपका दर्शन कहां पड़ा है ? ॥ ३६ ॥ इस लिये योगीजनोंके परमगुरु आपसे मैं पूछता हूं कि– जिस मनुष्यका मृत्यु निकट आजाय, उसे मोक्षका

अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पांडुसुतप्रियः ॥ पैतृष्वस्रेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबांधवः ॥ ३५ ॥ अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ॥ नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥ ३६ ॥ अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ॥ पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ३७ ॥ यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥ ३८ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ॥ प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कंधे शुकागमनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ समाप्तोयं प्रथमस्कंधः ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ छ ॥ ॥

साधन कौन कृत्य करना आवश्यक है ? ॥ ३७ ॥ हे प्रभु ! मनुष्योंको क्या सुनना चाहिये ? क्या जपना चाहिये ? क्या करना चाहिये ? किसका स्मरण करना चाहिये ? वा किसका भजन करना चाहिये ? अथवा क्या न करना चाहिये ? सो आप हमें कहो ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! गृहस्थियोंके घरोंमें आपका ठहरना गोदोहनमात्र तौ कहीं होताही नहीं ॥ ३९ ॥ सूतजीने कहा कि–इस प्रकार राजाने मधुर वाणीसे बतलाकर, शुकदेवजीसे प्रश्न किया. तद धर्मके जाननेवाले भगवान् शुकदेवजीने पीछा कहा ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे दाधीचबलदेवात्मज रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ ॥

शाही जिनके वस्त्र (नग्न) हैं, कुटिल बाल जिनके विखर रहे हैं, लंबी जिनकी भुजायें हैं, उत्तम देवताकीसी जिनकी कांति है,
॥ २७ ॥ श्याम जिनका वर्ण है, सदा रमणीय तरुण अवस्थासंबंधी शरीरकी कांति और सुंदर मंदहास्यकरके स्त्रियोंको सुप्रिय
लगे ऐसे, गुप्त तेजवाले शुकदेवजीके लक्षणोंको जाननेवाले मुनि लोग उन्हें देखकर, अपने आसनोंसे उठकर, सन्मुख गये ॥२८॥
उस राजा परीक्षितने आयेहुए उन अतिथिरूप शुकदेवजीको शिरसे भेंट अर्पण करके, आत्मनिवेदन किया. तब अज्ञानी स्त्रियां
और बालक सब पीछे लौट गये. शुकदेवजी पूजा अंगीकार करके, बड़े आसनपर विराजे ॥ २९ ॥ ब्रह्मऋषि, राजऋषि और दे-

श्यामं सदाऽपीच्यवयोऽगलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ॥ प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्ल-
क्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥२८॥ स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसा जहार ॥ ततोनिवृ-
त्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥२९॥ स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षि-
देवर्षिसंघैः ॥ व्यरोचतालं भगवान्यथेंदुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥ ३० ॥ प्रशांतमासीनमकुंठमेधसं
मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ॥ प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृतांजलिर्नत्वा गिरा सूनृतयान्वपृच्छत ॥ ३१ ॥
अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबंधवः ॥ कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥ ३२ ॥ येषां
संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुद्ध्यंति वै गृहाः ॥ किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥ ३३ ॥ सान्निध्यात्ते
महायोगिन्पातकानि महांत्यपि ॥ सद्यो नश्यंति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥ ३४ ॥

वऋषियोंके समूहसे घिरेहुए वे सब महात्मानमें बड़े शुकदेवजी जैसे ग्रह नक्षत्र और तारामंडलसे घिराहुआ भगवान् चंद्रमा प्रका-
शता है, वैसे पूर्णरीतिसे प्रकाशने लगे ॥ ३० ॥ प्रशांत और अकुंठबुद्धि, विराजे हुए शुकदेवजीके निकट जाकर, मस्तकसे प्रणाम
कर, सावधान हो, हाथ जोड़, नमन करके, राजा परीक्षितने मधुरवाणीसे प्रश्न किया कि ॥ ३१ ॥ 'अहो ! हे ब्रह्मन् ! आज
तौ हम क्षत्रबंधु हैं, तौभी सत्पुरुषोंके सेवनीय हुए; क्योंकि आपने अतिथिरूपसे जो हमपर कृपा करी, उसके प्रभावसे हम आज
योग्य हुए ॥ ३२ ॥ जिनके केवल स्मरणमात्रसे मनुष्योंके घर तुर्त पवित्र हो जाते हैं, तौ फिर उनके दर्शन, स्पर्शन, चरण धो-
नेका जल और आसन आदिसे पवित्र होवें, इसमें तौ कहनाही क्या ? ॥ ३३ ॥ हे महायोगी ! आपके केवल सन्निधानमात्रसे म-

ग्रह करनेके सिवाय दूसरा कुछभी प्रयोजन नहीं है ॥ २३ ॥ हे विप्रो ! इसलिये विश्वासयुक्त होकर, मैं आपसे यह प्रष्टव्य अर्थ पूछता हूं, कि मनुष्योंको सर्व अवस्थामें, तत्रापि मृत्यु जब निकट आजाय, उस अवस्थामें क्या करना चाहिये ? सो आपलोग एकमत होकर, पापके संबंधसे रहित कर्तव्य कर्मका विचार करो ॥ २४ ॥ राजाका यह बचन सुनकर, वे सब परस्पर याग, योग तप और दान आदि विषयोंमें विवाद करने लगे. इतनेमें दैवयोगसे पृथ्वीपर विचरतेहुए निजलाभ करके संतुष्ट, अपेक्षारहित,

ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ॥ सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्राऽऽमृशताभियुक्ताः ॥ २४ ॥ तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ॥ अलक्ष्यलिंगो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥ २५ ॥ तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाहंसकपोलगात्रम् ॥ चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कुंबुसुजातकंठम् ॥ २६ ॥ निगूढजत्रुं पृथुतुंगवक्षसमावर्त्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ॥ दिगंबरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलंबबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥ २७ ॥

व्यासजीके पुत्र भगवान् शुकदेवजी वहां आ निकले. कैसे हैं शुकदेवजी कि जिनके आश्रम आदिका चिन्ह किसीके लक्ष्यमें नहीं आता है, अवधूतवेष धरे हैं, स्त्रियां और बालक जिन्हें घेर रहे हैं, ॥ ४५ ॥ सोलह वर्षकी जिनकी अवस्था है, सुकुमार जिनके हाथ, पैर, हृदय, भुजा, कंधे, कपोल और अंग हैं, सुंदर और आयत (बड़े) जिनके नेत्र हैं, ऊंची नासिका है, बराबर जिनके कान हैं, सुंदर भौंहयुक्त जिनका मुख है, शंखसा त्रिवलीवाला जिनका सुंदर कंठ है ॥ २६ ॥ मांससे हँसियोंकी हड्डियां जिनकी ढकीहुई हैं, विशाल और ऊंचा जिनका वक्षःस्थल, भँवरसहित गहरी जिनकी नाभि है, त्रिवलीकरके सुंदर जिनका उदर है, दि-

१ राग सारंग–यहि विधि राजा करो बिचार, राज साज सबहीको डार ॥ जीरन पट कोपीन तन धार, चलो सुरसरी शीश उधार ॥ पुत्र कलत्र देख सब रोवे, राजा तिनकी ओर न जोवे ॥ राजा चलत चले सब लोग, दुखित भये सब प्रीतिवियोग ॥ राजा गंगाके ढिग आई, कियो स्नान मृत्तिका लगाई ॥ करि संकल्प अन्न जल त्याग्यो, केवल हरिपदसों अनुराग्यो ॥ अत्रि वसिष्ठादिक तहँ आये, नारद आदि तहां मुनि धाये ॥ कुश आसन दे तेहिं बैठाये, यों कहि पुनि तिनको शिर नाये ॥ धन्य भाग तुमदर्शन पाये, मम उद्धार करन तुम आये ॥ तुम देखत हरिसुमिरण होई, और प्रसंग चले नाहिं कोई ॥ आज्ञा होय करों अब सोई, जाते मेरी सद्गति होई ॥ कोई कहै ज्ञान विस्तारो, कोई कहत यही निस्तारो ॥ कोई कहै मंत्रजप करना, कोई कहै बहुतविध बरना ॥ राजा कहेउ सप्त दिनमांही, हेतु अंत मोहिं सूझत नाहीं ॥ यहि अंतर शुक मुनि तहं आये, ठाढ़े भये सब मुनिसमुदाये ॥ करि प्रणाम नृप आसन दीन्हा, पुनि सन्मान ऋषिन सब कीन्हा ॥ शुकको रूप बरणि नहिं जाई, शुकके रह्यो कृष्णरस छाई ॥ शुककी महिमा शुकही जाने, सूरदास कहि कहा बखाने ॥

निश्चय कर, उत्तर दिशाकी ओर मुख कर, अपने पुत्रपर राजका भार धर, गंगाके दक्षिणतटपर पूर्वाभिमुख अग्रवाले दाभ बिछा-कर, उनपर बैठा ॥ १७ ॥ राजाधिराज राजा परीक्षित इसतरह अनशनव्रत धारण कर, बैठा. तब स्वर्गमें रहनेवाले देवता लोग प्रशंसा कर, पृथ्वीपर फूल बरसाने लगे और आनंदसे वारंवार दुंदुभि बाजने लगे ॥ १८ ॥ प्रजाके कल्याणकी ओर जिनका स्व-भाव और बल है, ऐसे, बड़े बड़े जो ऋषि आये थे, वे वाह ! वाह ! ऐसे अनुमोदन कर, उत्तमश्लोक भगवान्‌के गुणोंसे सुंदर जैसे हो वैसे यह बचन बोले कि– ॥ १९ ॥ हे राजर्षिवर्य ! आप जैसे भगवद्भक्तोंके मुखमेंसे ऐसे बचन निकले, यह कोई आश्च-

एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिवि देवसंघाः ॥ प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदामुहुर्दुंदुभयश्च नेदुः ॥ १८ ॥ महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ॥ ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥ १९ ॥ न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ॥ येऽध्या-सनं राजकिरीटजुष्टं सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥ २० ॥ सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य कलेवरं याव-दसौ विहाय ॥ लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥ २१ ॥ आश्रुत्य तदृषि-गणवचः परीक्षित्समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम् ॥ आभाषतैतानभिनंद्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि वि-ष्णोः ॥ २२ ॥ समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ॥ नेहाथवाऽमुत्र च कश्चनार्थ ऋ-ते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥ २३ ॥

र्यकी बात नहीं; क्योंकि जिन्होंने राजाओंके मुकुटोंकरके सेवित, उत्तम राजसिंहासनभी केवल भगवान्‌की सन्निधिकी कामनासे तुर्त त्याग दिया ॥ २० ॥ भगवद्भक्तोंमें मुख्य यह राजा परीक्षित अपने शरीरको त्याग कर, रजोगुण तथा शोकरहित उत्तम लो-कको प्राप्त होगा, तबतक हम सबलोग यहां बैठे रहेंगे ॥ २१ ॥ अमृत जिसमें द्रवीभूत होरहा है ऐसा, गंभीर अर्थयुक्त, पक्षपा-तशून्य, सत्य मुनिलोगोंका वचन सुन कर, उन्हें प्रणाम करके विष्णु भगवान्‌के चरित्र सुननेकी इच्छासे परीक्षितने युक्त बचन कहा ॥ २२ ॥ जैसे सत्यलोकमें मूर्तिमान वेद बिराजते हैं, वैसे आप सबलोग मूर्तिधर वेदरूपही सब दिशाओंसे यहां एकत्रित हुए हो और आपलोगोंका तो यह स्वभावही है, कि दूसरोंपर अनुग्रह करना, इसलिये आपके इस लोकमें तथा परलोकमें अनु-

और्व, कवष, अगस्त्य, भगवान् वेदव्यासजी, नारद ॥ १० ॥ और देवर्षि, ब्रह्मर्षि और राजर्षियोंमें श्रेष्ठ अरुण आदि ऋषि, आये. अनेक ऋषिश्रेष्ठ जो वहां इकट्ठेहुए उन सबनका पूजन करके राजाने शिरसे प्रणाम किया ॥ ११ ॥ वे सब सुखपूर्वक बैठगये, तब फिर प्रणाम कर, शुद्धचित्त राजा उनके आगे हाथ जोड़, खड़ा हो, अपने कर्तव्यविषयका निवेदन करने लगा ॥ १२ ॥ राजाने कहा कि–अहो ! हम राजाओंमें बड़े धन्य हैं, कि जिनपै आपसे महात्मा पुरुषोंने अनुग्रह किया. क्योंकि निंदितकर्म करनेवाला यह राजाओंका कुल, ब्राह्मणोंके चरण धोनेके जल डालनेकी जगहसेभी दूर रहनेके योग्य है ॥ १३ ॥ घरोंमें निरंतर आसक्त-

अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ॥ नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववंदे ॥ ११ ॥ सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ॥ विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ॥ राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टं वत गर्ह्यकर्म ॥ १३ ॥ तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ॥ निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥ १४ ॥ तं मोपयातं प्रतियंतु विप्रा गंगा च देवी धृतचित्तमीशे ॥ द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५ ॥ पुनश्च भूयाद्भगवत्यनंते रतिः प्रसंगश्च तदाश्रयेषु ॥ महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥ १६ ॥ इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ॥ उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥ १७ ॥

चित्त मुझ पापीपर कार्यकारणके नियामक भगवान्ही वैराग्यके कारण ब्राह्मणके श्रापरूपसे हुए हैं; कि जिस श्रापसे घरोंमें आसक्त यह पुरुष तुर्त डर जाता है ॥ १४ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह मैं परमेश्वरमें चित्त लगाकर, आपके और देवी गंगाके शरण आया हूं. सो जानो, ब्राह्मणका भेजा हुआ कपटी तक्षक सर्प चाहे मुझे भले डसे परंतु आपलोग भगवान्की कथाओंका पूर्णरीतिसे गान करो ॥ १५ ॥ फिर अनंत भगवान्में मेरी प्रीति होवे और भगवद्भक्तोंको सदा प्रसंग बना रहे और मैं जिस जिस योनिमें जाऊं, वहीं सर्वत्र महात्मा पुरुषोंमें मेरी मित्रता बनी रहे, मैं आप ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूं ॥ १६ ॥ वह धीर राजा ऐसा

करो. जिससे ब्राह्मण, देवता और गायनपर फिर ऐसी पापबुद्धि न होवे ॥ ३ ॥ राजा इस तरह विचार कर रहा था, इतनेमें शमीकके भेजेहुए शिष्यसे सुना कि– मुनिपुत्रके कहनेसे तक्षक सर्पसे मृत्यु होगी. इस तक्षकके विषरूप अग्निको राजाने बहुत अच्छा माना; क्योंकि आसक्त राजाके लिये यह वैराग्यका कारण हुआ ॥ ४ ॥ जिसका पहलेहीसे छोड़नेके निमित्त विचार कर रक्खा था, ऐसे इस लोकको छोड़कर, श्रीकृष्णचंद्रके चरणोंकी सेवाको बहुत अधिक मानता वह राजा अनशन व्रत धारण कर, गंगाके तीर जा, बैठा ॥ ५ ॥ जो गंगा शोभायमान तुलसीमिश्रित श्रीकृष्णभगवान्‌के चरणरजसंबंधी सर्वोत्तम जलको बहती हैं

स चिंतयन्नित्थमथाशृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ॥ स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ॥ ४ ॥ अथो विहायेममसुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् ॥ कृष्णांघ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥ या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णांघ्रिरेण्वभ्यधिकांबुनेत्री ॥ पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥ इति व्यवच्छिद्य स पांडवेयः प्रायोपवेशं प्रतिविष्णुपद्याम् ॥ दध्यौ मुकुंदांघ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसंगः ॥ ७ ॥ तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः ॥ प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनंति संतः ॥ ८ ॥ अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरंगिराश्च ॥ पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इंद्रप्रमदेध्मवाहौ ॥ ९ ॥ मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ॥ मैत्रेय और्वः कवषः कुंभयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ १० ॥

और जो बाहिर और भीतर लोकपालोंसहित सब लोकोंको पावन करती हैं उन गंगाका मरताहुआ मनुष्य कौन सेवन न करे ? ॥ ६ ॥ इस तरह वह परीक्षित गंगाके तीरपर अनशन व्रतका निश्चय कर, सब संग छोड़, उपशांत हो, अनन्यभक्तिसे मुकुंदभगवान्‌के चरणोंका ध्यान करने लगा ॥ ७ ॥ लोकको पवित्र करते महानुभाव मुनि शिष्योंसहित वहां आये. प्रायः सत्पुरुषलोग तीर्थयात्राके मिषसे स्वयं तीर्थोंको पवित्र करते हैं ॥ ८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शारद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इंद्रप्रमद, इध्मवाह, ॥ ९ ॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय,

भगवान्‌के भक्त समर्थ होने परभी चाहो कोई उनका तिरस्कार करे, श्राप दे, अवज्ञा करे, ठगाई करे, ताड़ना देवे, परंतु वे पीछा उसका कुछ नहीं करते ॥ ४८ ॥ इस तरह पुत्रके किये अपराधका महामुनि शमीकने बहुत पश्चात्ताप किया. राजाने उस क्षुद्रका अपराध किया था. परंतु उस अपराधका मुनिने कुछभी विचार नहीं किया ॥ ४९ ॥ जगत्‌में चाहो दूसरे लोग साधुलोगोंको सुख दुख देवें, परंतु वे उसका हर्ष शोक नहीं मानते; क्योंकि आत्मा सुखदुःखादिद्वंद्वधर्मसे रहित हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे रामस्थामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ उन्नीसवें अध्यायमें योगीजनोंसे

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हतापि वा ॥ नास्य तत्प्रतिकुर्वंति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥ ४८ ॥ इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ॥ स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिंतयत् ॥ ४९ ॥ प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वंद्वेषु योजिताः ॥ न व्यथंति न हृष्यंति यत आत्मा गुणाश्रयः ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे विप्रशापोपलंभनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ महीपतिस्त्वथ तत्कर्मगर्ह्यं विचिंतयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ॥ अहो मयानीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥ ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ॥ तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥ २ ॥ अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ॥ दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ ३ ॥

विराहुआ राजा गंगाकी तीरपर बैठा था. वहां शुकदेवजी पधारे; यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि— उदासचित्त वह राजा अपने कियेहुए उस निंदनीक कर्मका विचार करने लगा कि— अहो ! अनार्यकी तरह यह मैंने बहुत बुरा किया. जो गूढ़तेजवाले निरपराधी ब्राह्मणका अपराध किया ॥ १ ॥ मैंने यह ईश्वरका अपराध किया. इसका फल अतिकठिन दुःख मुझको शीघ्र अवश्य मिलना चाहिये. वहभी पुत्रादिद्वारा नहीं, किंतु साक्षात् मुझे मिलना चाहिये; कि जिससे मेरा पाप निवृत्त होजाय. और फिर ऐसा काम न करूं ॥ २ ॥ कोपयुक्त ब्राह्मणकुलरूप अग्नि मुझ पापीका राज, सेना, भरपूर भंडार, इन सबको भस्म

श्राप देनेके अयोग्य राजाको श्राप दिया सुन कर, उस ब्राह्मणने अपने पुत्रकी प्रशंसा नहीं की और कहा, कि– अरे मूर्ख ! तूने बहुत बुरा किया, थोड़ेसे अपराधपर इतना भारी दंड दिया ॥ ४१ ॥ अरे नादान ! ईश्वररूप राजाको साधारण मनुष्योंके बराबर नहीं गिनना चाहिये, क्योंकि जिस राजाके असह्य प्रभावसे रक्षित प्रजा निर्भय होकर, कल्याणको प्राप्त होती हैं ॥ ४२ ॥ विष्णुरूप राजा जो देखनेमें न आवे तौ यह सब लोग चोरप्राय होकर, भेड़के टोलेकी नाईं क्षणभरमें रक्षा विना नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥ स्वामी विनाके धनको लूटनेवाले चोर जो पाप करेंगे, वह पाप अपने किये विनाभी अपनको लगेगा, जिनमें चो-

निशम्य शप्तमतदर्हं नरेंद्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनंदत् ॥ अहो बताहो महदज्ञ ते कृतमल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥ ४१ ॥ न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ॥ यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विंदंति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥ ४२ ॥ अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथांगपाणावयमंग लोकः ॥ तदा हि चोरप्रचुरो विनंक्षत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ तदद्य नः पापमुपैत्य नन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुंपकात् ॥ परस्परं घ्नंति शपंति वृंजते पशून् स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ॥ ४४ ॥ तदार्यधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ॥ ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥ ४५ ॥ धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः ॥ साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ॥ क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ॥ ४६ ॥ अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ॥ पापं कृतं तद्भगवान्सर्वात्मा क्षंतुमर्हति ॥ ४७ ॥

रका भाग बहुत है ऐसे ये लोक आपसमें मारते हैं, गाली देते हैं, पशु, स्त्रियां और धन हर लेते हैं ॥ ४४ ॥ ऐसे होता है, तब मनुष्योंके वर्णाश्रमसहित वेदमय आर्यधर्म (सदाचारका) नाश हो जाता है, तदनंतर अर्थ और काम पुरुषार्थमें असक्तचित्त पुरुषोंका कुत्ते और बंदरोंकी नाईं वर्णसंकर हो जाता है ॥ ४५ ॥ धर्मका पालक, चक्रवर्ती, बड़ा यशस्वी, भगवान्‌का साक्षात् परम भक्त, अश्वमेधयज्ञ करनेवाला, मनुष्योंका पति, भूखा और प्यासा यह दीन राजऋषि अपने श्रापके योग्य नहीं है ॥ ४६ ॥ निरपराधी अपने सेवकोंका इस नादान बालकने अपराध किया है, सो सबके अंतर्यामी भगवान् क्षमा करनेको योग्य हैं ॥ ४७ ॥

वक्ष्यमाण वचन बोला कि ॥ ३२ ॥ अहो ! काकके समान इन दुष्ट राजाओंका अधर्म तौ देखो, कि दास जो अपने स्वामीका
बुरा करे, वह द्वारपाल कुत्तेके समान गिना जाता है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंने क्षत्रियको द्वारपाल बनाया है, सो द्वारपर रहनेवाला
वह उनके घरमें घुसकर भांडमें रहा अन्न खानेके किसतरह योग्य हो सकता है ? ॥ ३४ ॥ उलटे रस्ते चलनेवाले लोगोंको शिक्षा
देनेवाले श्रीकृष्णभगवान् दूर पधार गये, तौ क्या हुआ ? इन मर्यादा तोड़नेवाले पुरुषोंको आज मैं दंड देऊंगा, मेरा बल देखो
॥ ३५ ॥ रोषसे लाल नेत्र उस बालकने अपने बराबरके बालकोंको इस तरह कह, कौशिकी नदीके जलसे आचमन कर, वाणी-

अहो अधर्मः पालानां पीव्रा बलिभुजामिव ॥ स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणैः
क्षत्रबंधुर्हि द्वारपालो निरूपितः ॥ स कथं तद्गृहे द्वास्थ सभांडं भोक्तुमर्हति ॥ ३४ ॥ कृष्णे गते भगवति
शास्तर्युत्पथगामिनाम् ॥ तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो
वयस्यानृषिबालकः ॥ कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ॥ ३६ ॥ इति लंघितमर्यादं तक्ष-
कः सप्तमेऽहनि ॥ दंक्ष्यति स्म कुलांगारं चोदितो मे ततद्रुहम् ॥ ३७ ॥ ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो
गले सर्पकलेवरम् ॥ पितरं वीक्ष्य दुःखार्त्तो मुक्तकंठो रुरोद ह ॥ ३८ ॥ स वा आंगिरसो ब्रह्मन् श्रु-
त्वा सुतविलापनम् ॥ उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥ ३९ ॥ विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ व-
त्स कस्माद्धि रोदिषि ॥ केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥ ४० ॥

रूप वज्र चलाया, यानी श्राप दिया. ॥ ३६ ॥ कि–इस तरह मर्यादाको उल्लंघनेवाले, कुलमें अंगाररूप, मेरे पिताके द्रोही राजाको
आजसे सातवें दिन मेरी प्रेरणासे तक्षक सर्प काटेगा ॥ ३७ ॥ फिर वह बालक आश्रममें आ, पिताके गलेमें सांपका कलेवर
पड़ा देख, दुःखसे पीड़ित हो, मुक्तकंठ होकर, रुदन करने लगा ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस अंगिरागोत्री ब्राह्मणने पुत्रका विलाप
सुन, धीरे धीरे नेत्र उघाड़कर, देखा तौ अपने कंधेपर मराहुआ सर्प देखा ॥ ३९ ॥ उस सर्पको पटककर, अपने पुत्रसे पूंछा कि–
'हे वत्स ! तू रोता क्यों है ? तेरा किसने अपकार किया ?' ऐसे पूछनेपर उस बालकने सब वृत्तांत निवेदन किया ॥ ४० ॥

और प्यास लगी ॥ २४ ॥ कहीं जलाशयको न देखकर, एक आश्रमके अंदर घुसा, वहा नेत्र मूंदे शांत मुनिशमीकको बैठे देखा ॥ २५ ॥ इंद्रियां, प्राण, मन और बुद्धिको रोककर, जाग्रदादि तीनों अवस्थावोंसे पर तुरीया अवस्थाको प्राप्त हो, ॥ २६ ॥ ब्रह्मभूत और निर्विकार होकर, उपरामको प्राप्त हुए और विखरीहुई जटा व मृगचर्मसे ढकेहुए मुनिसे, प्यासके मारे जिसका तालु सूख रहाथा ऐसे, राजाने जलके लिये प्रार्थना करी ॥ २७ ॥ परंतु वहां राजाको तृणका आसन, बैठनेकी जगह, अर्घ, प्रियवचन आदि कुछभी नहीं मिला, तब अपना अपमानसा मानकर, राजाने क्रोध किया ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! भूंख और प्यासके

जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ ददर्श मुनिमासीनं शांतं मीलितलोचनम् ॥ २५ ॥ प्रतिरुद्धेंद्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ॥ स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥ २६ ॥ विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ॥ विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥ २७ ॥ अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घसूनृतः ॥ अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥ २८ ॥ अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ॥ ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च ॥ २९ ॥ स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ॥ विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥ ३० ॥ एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ॥ मृषा समाधिराहोस्वित्किंनु स्यात्क्षत्रबंधुभिः ॥ ३१ ॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः ॥ राज्ञाघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

आत्मा दुःखी होनेके कारण आगे कभी नहीं हुआ ऐसा ब्राह्मणके ऊपर मत्सर और क्रोध राजाको उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ उस क्रोधके आवेशसे राजा जाते समय अपने धनुषके अग्रसे मरेहुए सांपको उन ब्रह्मऋषिके गलेमें डाल, अपने पुरको चला आया ॥ ३० ॥ ये ऋषि सचमुच सब इंद्रियोंको वश कर, नेत्र मूंदि, समाधिमें बैठे हैं ? के 'क्षत्रियोंसे क्या होना है, ? ऐसा विचार कर, झूंठी समाधि लगाकर, बैठे हैं ?' इस बातका निश्चय करनेके लिये उसके गलेमें सांप डाला ॥ ३१ ॥ अत्यंत तेजस्वी उनका पुत्र शृंगी नाम ऋषि बालकोंके साथ खेल रहा था, वह वहा पिताको परीक्षित राजाने दुख दिया, यह समाचार, सुन कर यह

धी आधि (मनोव्यथा) को शीघ्र निवृत्त करता है ॥ १८ ॥ जब भक्तोंके संभाषणका प्रसंगभी ऐसा है, तौ जिन्हें बड़े गुणवाले होनेसे अनंत कहते हैं ऐसे, अनंतशक्ति, अविनाशी महत्पुरुषोंके असाधारण आश्रयरूप भगवान्‌के नाम लेनेवाले पुरुषोंकी मनोव्यथा दूर होवे, इसमें तौ क्या कहना ? ॥ १९ ॥ गुणोंकरके जिनके बराबर वा अधिक कोईभी नहीं ऐसे भगवान्‌का माहात्म्य सूचन करनेके वास्ते इतनाही बहुत है, कि प्रार्थना करतेहुए दूसरे ब्रह्मादिक देवतोंको छोड़कर, इच्छारहित जिन भगवान्‌के चरणरजकी लक्ष्मीजी सेवा करती हैं ॥ २० ॥ फिर जिन भगवान्‌के चरणनखसे निकलाहुआ ब्रह्माजीका अर्पण कियाहुआ अर्घका

कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ योऽनंतशक्तिर्भगवाननंतो महद्गुणत्वाद्यमनंतमाहुः ॥ १९ ॥ एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ॥ हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्यांघ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥ २० ॥ अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिंचोपहृतार्हणांभः ॥ सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुंदात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥ २१ ॥ यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु संगमूढम् ॥ व्रजंति तत्पारमहंस्यमंत्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ २२ ॥ अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ॥ नभः पतंत्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३ ॥ एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वने ॥ मृगाननुगतः श्रांतः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥ २४ ॥

जल, महादेवसहित जगत्‌को पावन करता है, उन मुकुंद भगवान्‌के सिवाय जगत्‌में दूसरा कौन भगवत्पदका अर्थ यानी सर्वैश्वर्यसंपन्न है ? ॥ २१ ॥ जिन भगवान्‌के विषे प्रीति करनेवाले धीरपुरुष तुर्त देहादिकोंमें बढ़ेहुए संगको छोड़कर, परमकाष्ठापन्न उस परमहंसपदको प्राप्त होते हैं, कि जिसमें अहिंसा और उपशम ये दोनों स्वाभाविक धर्म हैं ॥ २२ ॥ हे वेदमूर्ति ब्राह्मणो ! आपने जो मुझसे प्रश्न किया, उस विषयमें जहांतक मेरी बुद्धि पहुंचेगी वहांतक मैं आपको बराबर कहूंगा. जैसे पक्षी विशाल आकाशमें अपनी शक्तिके अनुसार उड़ते हैं, वैसे विद्वान् लोग अपनी शक्तिके अनुसार विष्णु भगवान्‌की लीलाका वर्णन करते हैं ॥ २३ ॥ एकसमय राजा धनुष उठाय, वनमें शिकार करताहुआ हरिणोंके पीछे दूर चला गया और थकगया, बहुत तेज भूंख

प्योंके मरणको निवृत्त करती है ॥ ११ ॥ जिसमें फलकेलिये संशय है ऐसे इस यज्ञकर्ममें धुएंसे धूसरवर्णशरीरवाले हमको आप गोविंदभगवान्के चरणकमलोंका मधुर मकरंद पिलाते हो ॥ १२ ॥ भगवद्भक्तके क्षणमात्र संगके बराबर न तौ हम स्वर्गको मानते हैं और न मोक्षको गिनते हैं, तब मनुष्योंकी तुच्छकामना जो राज्यादिक उनकी तौ बातही कौन ? ॥ १३ ॥ जिन अलौकिकगुणविशिष्ट भगवान्के गुणोंका बड़े बड़े योगेश्वर और महादेव व ब्रह्मादिकभी पार नहीं पाये, उन महत्तम पुरुषोंके परम आश्रयरूप भगवान्की कथासे, रसको जाननेवाला कौन पुरुष तृप्त होवे ? ॥ १४ ॥ तासों हे विद्वन् ! भगवद्भक्तोंमें मुख्य आप,

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ॥ आपाययति गोविंदपादपद्मासवं मधु ॥ १२ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३ ॥ को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ नांतं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्मसुख्याः ॥ १४ ॥ तन्नो भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकांतपरायणस्य ॥ हरेरुदारं चरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥ १५ ॥ स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ॥ ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेंद्रध्वजपादमूलम् ॥१६॥ तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ॥ आख्याह्यनंताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥ १७॥ सूत उवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ॥ दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥

महत्तम पुरुषोंके परम आश्रयरूप हरि भगवान्के विशुद्ध और उदार चरित हमें विस्तारपूर्वक कहो. क्योंकि हमारे श्रवण करनेकी इच्छा लग रही है ॥ १५ ॥ जिस शुकदेवजीके कहेहुए ज्ञानके साधनसे भगवान्का परमभक्त, महामति राजा परीक्षित मोक्षस्वरूप गरुड़ध्वज भगवान्के चरणकमलको प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ वह परमपवित्र, अति अद्भुत, योगनिष्ठासहित, अनंत भगवान्के चरित्रोंसे सुशोभित, भगवद्भक्तोंका अतिप्रिय, परीक्षितसंबंधी आख्यान हमें स्पष्टरीतिसे कहो ॥ १७ ॥ सूतजी बोले कि-अहो ! हम प्रतिलोमज होनेपरभी वृद्धपुरुषोंकी सेवासे आज [illegible] हुए हैं; क्योंकि महात्मापुरुषोंके साथ संभाषणका प्रसंग नीचकुलसंबं-

सदा उत्तमश्लोक भगवान्‌की वार्ता करते रहते हैं और भगवान्‌की कथारूप अमृतका पान करते रहते हैं और उनके चरणकमल-का स्मरण करते हैं, उनके अंतसमयमेंभी संभ्रम नहीं होता ॥ ४ ॥ जबतक महासमर्थ, चक्रवर्ती, अभिमन्युका पुत्र राजा परीक्षित इस पृथ्वीपर रहा, तबतक कलियुग चाहो सर्वत्र भले फैल जाओ, परंतु कुछभी कर नहीं सका ॥ ५ ॥ जिस दिन जिस क्षणमें भगवान्‌ने पृथ्वीका त्याग किया, उसी दिन उसी क्षणमें यह अधर्मका कारण कलियुग यहां प्रवृत्त हुआ ॥ ६ ॥ चक्रवर्ती राजा भ्रमरकीतरह सारग्राही था, इसलिये उसने कलियुगका वध नहीं किया, क्योंकि पुण्यका फल तो इस कलियुगमें संकल्पमात्रसे

तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोऽपीह सर्वतः ॥ यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥ यस्मिन्न-हनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ॥ तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥ ६ ॥ नानुद्वेष्टि कलिं स-म्राट् सारंग इव सारभुक् ॥ कुशलान्याशु सिद्ध्यंति नेतराणि कृतानि यत् ॥ ७ ॥ किंतु बालेषु शूरे-ण कलिना धीरभीरुणा ॥ अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्त्तते ॥ ८ ॥ उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पा-रीक्षितं मया ॥ वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥ ९ ॥ या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्म-णः ॥ गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥ १० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ॥ यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्त्यानाममृतं हि नः ॥ ११ ॥

मिलता है और पापका फल करनेहीसे मिलता है ॥ ७ ॥ दूसरा यह कलियुग अधीरपुरुषोंमें शूरवीर है, धीरपुरुषोंसे तो डर-पता रहता है, जो असावधान पुरुषोंमें वृक (भेंड़िया) की नाईं सावधान रहता है, वह धीरपुरुषोंका क्या करसक्ता है ? ॥ ८ ॥ परीक्षित राजाका उपाख्यान जो आपने मुझे पूंछा था, सो यह भगवान्‌की कथासे मिश्रित, पवित्र, परीक्षितका उपाख्यान आ-पसे मैंने वर्णन किया ॥ ९ ॥ वर्णन करने योग्य हैं अनेक चरित्र जिनके ऐसे भगवान्‌के गुण और कर्मविषयक जो जो कथायें हैं, उन्हीं कथाओंका सद्भावकी इच्छावाले पुरुषोंको सेवन करना चाहिये ॥ १० ॥ शौनकादिक ऋषि बोले कि-हे सूत ! हे सौम्य ! तू अनेक बरसोंतक जीता रह; क्योंकि तू हमको श्रीकृष्णभगवान्‌की निर्मलकीर्ति श्रवण कराता है, जो कीर्ति मरणधर्मा मनु-

ये तीन पाव नाश हो गये थे सो सात्वना देकर, उसके पांव पीछे साध दिये और पृथ्वीको सब प्रकारसे बढ़ायी ॥ ४२ ॥ वनमें प्रवेश करनेकी इच्छा करते राजा युधिष्ठिरकी दी हुई राजगद्दीपर अभी वह राजा परीक्षित विराजे है ॥ ४३ ॥ कुरुवंशी राजाओंकी संपदा करके देदीप्यमान, वह बड़भागी, महायशस्वी, चक्रवर्ती, राजऋषि अभी हस्तिनापुरमें विराजे हैं ॥ ४४ ॥ यह अभिमन्युका पुत्र राजा परीक्षित ऐसा प्रतापी है, कि जिसके पृथ्वीका पालन करते तुमने सत्र (याग) के लिये दीक्षा धारण करी है ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥

स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम् ॥ पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥ ४३ ॥ आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेंद्रश्रियोल्लसन् ॥ गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४४ ॥ इत्थंभूतानुभावोयमभिमन्युसुतो नृपः ॥ यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ॥ अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ १ ॥ ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ॥ न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥ २ ॥ उत्सृज्य सर्वतः संगं विज्ञाताजितसंस्थितिः ॥ वैयासकेर्जहौ शिष्यो गंगायां स्वं कलेवरम् ॥ ३ ॥ नोत्तमश्लोकवार्त्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ॥ स्यात्संभ्रमोऽतकालेपि स्मरतां तत्पदांबुजम् ॥ ४ ॥

अठारहवें अध्यायमें परीक्षितको ब्राह्मणके पुत्रने श्राप दिया. ऋषिपुत्रका दियाहुआ श्राप राजाके अनुग्रहरूप हुआ; क्योंकि उससे उसको वैराग्य उत्पन्न हुआ. यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि-- जो अश्वत्थामाके अस्त्रसे जलनेपरभी अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णभगवान्की अनुग्रहसे माताके उदरमें नहीं मरा ॥ १ ॥ और जो भगवान्में अपना अंतःकरण अर्पण करनेके कारण ब्राह्मणके कोपसे प्रगटहुए प्राणोंका नाश करनेवाले तक्षकरूप महाभयसे मोहित न हुआ ॥ २ ॥ और जिस राजाने सर्वसंगका त्यागकर, शुकदेवजीका शिष्य बनकर, भगवान्के तत्वको जानकर, गंगाके तटपर अपने शरीरका त्याग किया ॥ ३ ॥ ठीक है, जो लोग

जंगमात्मक जगत्में व्यापकताके कारण जो बाहिर और भीतर रहे हैं, वे यज्ञमूर्ति भगवान् इस ब्रह्मावर्तमें अपने आराधक लोगों-का कल्याण करते हैं तथा उनके अमोघ मनोरथ पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ सूतजीने कहा कि-इस तरह परीक्षितने आज्ञा की. तब वह कलि कांपताहुआ, दंड उठाये यमराजाके समान खड्ग उठाये उस राजासे यह बचन कहने लगा ॥ ३५ ॥ कलिने कहा कि-'हे चक्रवर्ती राजा ! आपकी आज्ञासे आप जहां आज्ञा करेंगे, वहीं मैं रहूंगा और वहांभी धनुष बाण लिये आपको देखता रहूंगा ॥ ३६ ॥ हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! इसलिये मुझे आप कोई स्थान बता देवें, कि जहां मैं आपकी आज्ञाका पालन करता नियमपूर्वक रहूं'

सूत उवाच ॥ परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ॥ तमुद्यतासिमाहेदं दंडपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३५ ॥ कलिरुवाच ॥ यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया ॥ लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥ ३६ ॥ तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ॥ यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥ ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ॥ द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्रा-धर्मश्चतुर्विधः ॥ ३८ ॥ पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ॥ ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पं-चमम् ॥ ३९ ॥ अमूनि पंचस्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ॥ औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥ ४० ॥ अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः कचित् ॥ विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥ ४१ ॥ वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति ॥ प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥ ४२ ॥

॥ ३७ ॥ सूतजीने कहा कि-इस तरह कलियुगने प्रार्थना की, तब उस कलियुगको राजाने द्यूत, मद्यपान, स्त्रियां और हिंसा ये चार स्थान दिये, कि जिनमें चारही प्रकारका अधर्म रहा है. द्यूतमें झूंठ, पानमें मद, स्त्रियोंमें संग और हिंसामें क्रूरता ॥ ३८ ॥ फिर उसने प्रार्थना की, तद प्रभु परीक्षितने उसे सुवर्ण दिया. जिस सुवर्णके देनेसे असत्य, मद, काम, रजोगुण और पांचवां बैर येभी दे चुका ॥ ३९ ॥ अधर्मका कारण वह कलियुग परीक्षितके दियेहुए इन पांचों स्थानोंमें उसकी आज्ञाके अनुसार रहने लगा ॥ ४० ॥ इस लिये जो पुरुष अपनी वृद्धि चाहे, वह इन पांच पदार्थोंका कभी सेवन न करे. तत्रापि धर्मशीलपुरुषको, लोकपति राजाको और धर्मोपदेश करनेवाले गुरुको तौ विशेषकर, इनका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥ बैलके तप, शौच और दया

यह सती पृथ्वीभी भगवान्‌के किये अपने त्यागके लिये एक अभागिनी स्त्रीके समान ' अब ब्राह्मणोंके अभक्त राजाओंका वेष धारण करनेवाले शूद्र मेरा भोग करेंगे ' ऐसे विचारसे नेत्रोंमें जल भर कर, शोक करती है ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ महारथ राजा परीक्षितने इस तरह धर्म और पृथ्वीको सांत्वना दे, अधर्मके हेतु कलियुगको मारनेके लिये तीक्ष्ण खड्ग उठाया ॥ २८ ॥ राजा मुझे मारना चाहता है ऐसे जान, भयसे विव्हल कलिने राजचिन्ह छोड़कर, अपना सिर राजाके चरणोंमें रख दिया ॥ २९ ॥ शरण देनेवाले, श्रेष्ठकीर्तिके पात्र, दीनवत्सल राजाने उसे चरणोंमें पड़ा देख, कृपा करके बध नहीं किया और हँसकर, यह वक्ष्यमाण बचन कहा ॥ ३० ॥ राजा बोला कि—अर्जुनके यशको धा-

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताधुना ॥ अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यंति मामिति ॥ २७ ॥ इति धर्मं महीं चैव सांत्वयित्वा महारथः ॥ निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥ २८ ॥ तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलांछनम् ॥ तत्पादमूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥ २९ ॥ पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः ॥ शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धांजलेर्वै भयमस्ति किंचित् ॥ न वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबंधुः ॥ ३१ ॥ त्वां वर्त्तमानं नरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ॥ लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च माया कलहश्च दंभः ॥ ३२ ॥ न वर्तितव्यं तदधर्मबंधो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ॥ ब्रह्मावर्ते यत्र यजंति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३३ ॥ यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यात्मूर्तिर्यजतां शं तनोति ॥ कामानमोघान् स्थिरजंगमानामंतर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥ ३४ ॥

रण करनेवाले हमारे आगे तूने हाथ जोड़ लिये, सो अब तुझे कुछभी भय नहीं है. परंतु हमारे देशमें तू एक अंशसेभी बसे मत, क्योंकि तू अधर्मका बंधु है ॥ ३१ ॥ तू जहां रहता है वहां राजाओंके शरीरोंमें यह अधर्मका समूह लोभ, झूंठ, चोरी, दुर्जनता, स्वधर्मका त्याग, अलक्ष्मी, कपट, कलह और दंभ ये सब प्रवृत्त हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ हे अधर्मबंधु ! धर्म और सत्यके वरतनेके योग्य यह ब्रह्मावर्तदेश कि जहां यज्ञके विस्तारको जाननेवाले मुनिलोग यज्ञोंद्वारा यज्ञपति भगवान्‌का यजन करते हैं. वहां तेरे रहनेका कुछ काम नहीं ॥ ३३ ॥ जैसे पवन प्राणरूपसे सर्वप्राणियोंके भीतर रहने पर बाहिरभी रहा है. वैसे स्थावर

स्तिक कहते हैं कि-सब जगत् कर्माधीन है और कर्म आत्माके आधीन होनेसे आत्माको सुख दुख देनेवाला आत्माही है. ज्योतिषी-लोग कहते हैं कि- सूर्यादिक ग्रह सुख दुख देते हैं. मीमांसक कहते हैं कि--कर्मही सुख दुख देनेवाला है. और लोकायतिक कहते हैं कि- स्वभावसे सुख दुख प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ कई ऐसा निश्चय कहते हैं कि-- मन वाणीसे अगोचर परमेश्वरहीसे सब कुछ होता है सो हे राजऋषि ! इसमें जो ठीक हो उसे तुम आपही अपनी बुद्धिसे विचार लो ॥ २० ॥ हे शौनक ! धर्मने ये वाक्य कहे. तब उस चक्रवर्ती राजाने मोहरहित होकर, एकाग्रचित्तसे निश्चय करके, पीछा कहा ॥ २१॥ परीक्षित्‌ने कहा कि-- हे धर्मज्ञ ! आप धर्मकी

अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ॥ अत्रानुरूपं राजर्षे विमृशस्व मनीषया ॥ २० ॥ एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड् द्विजसत्तम ॥ समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ॥ यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥ २२ ॥ अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ॥ चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥ २३ ॥ तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः ॥ अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसंगमदैस्तव ॥ २४ ॥ इदानीं धर्मपादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ॥ तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥ २५ ॥ इयं च भूर्भगवता न्यासितो-रुभरा सती ॥ श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥ २६ ॥

बात कहते हो. तासों बैलका रूप धारण किये आप धर्मही हो. क्योंकि अधर्मीको जो नरकादि स्थानकी प्राप्ति होती है. तो सूचना क-रनेवालाभी उस पदको प्राप्त होता है. ॥ २२ ॥ अथवा परमेश्वरकी मायाकी गति जीवोंके मन वाणीसे अगोचर है. यह बात नि-श्चित है ॥ २३ ॥ तप, शौच, दया और सत्य ये चार तेरे पांव हैं. उनमेंसे स्मय, संग और मद इन तीन अधर्मके चरणोंसे तुम्हारे तप, शौच व दयारूप तीन चरण तौ टूट गये ॥ २४ ॥ हेधर्म ! अब आपके चौथा चरण सत्य बाकी रहा है. जिससे तुम अपना निर्वाह करते हो. सो असत्यसे बढ़ाहुआ यह पापी कलि इसेभी लेलेना चाहता है ॥ २५ ॥ भगवान्‌ने भारी भार उतारकर, अपने श्रीमान् चरणचिन्होंसे जिसका मंगल किया है, ऐसी

परलोक सब नाश हो जाते हैं ॥ १० ॥ दुखी पुरुषोंका दुख मिटाना यही राजाओंका मुख्य धर्म है. इसीलिये इस नीच प्राणिद्रोहीका मैं बध करूंगा ॥ ११ ॥ हे चार पांववाले बैल ! तेरे तीन पांव किसने काटे ? श्रीकृष्णभगवान्के अनुचर राजाओंके देशमें तुम जैसे दुखी न होने चाहिये ॥ १२ ॥ हे बैल ! तेरा कल्याण होगा. निरपराधी व साधु तुम लोगोंको किसने विरूप किया. सो हमें कहो. इससे पांडववंशी हमारे यशमें दाग लगता है ॥ १३ ॥ जो निरपराधी जनको दुख देवे, उसको मेरा सब प्रकारसे भय होता है. तिससे साधु लोगोंका कल्याण होता है ॥ १४ ॥ निरपराधी जीवोंको जो जन निरंकुश होकर, दुख देवे, उसकी भु-

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्त्तानामार्तिनिग्रहः ॥ अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥ ११ ॥ कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद ॥ माभूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्त्तिनाम् ॥ १२ ॥ आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ॥ आत्मवैरूप्यकर्त्तारं पार्थानां कीर्त्तिदूषणम् ॥ १३ ॥ जनेऽनागस्यघं युंजन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ॥ साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥ १४ ॥ अनागःस्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरंकुशः ॥ आहर्त्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि सांगदम् ॥ १५ ॥ राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ॥ शासतोऽन्यान्यथा शास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥ १६ ॥ धर्म उवाच ॥ एतद्वः पांडवेयानां युक्तमार्त्ताभयं वचः ॥ येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥ १७ ॥ न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ॥ पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥ १८ ॥ केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ॥ दैवमन्येऽपरे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥ १९ ॥

जबंधसहित भुजा मैं काट लेता हूं. चाहो वह साक्षात् देवता क्यों न होवे ? ॥ १५ ॥ राजाका यही मुख्य धर्म है कि--स्वधर्ममें रहनेवालोंकी पालना करे. और जो विना आपदा स्वधर्मका त्याग करें, उनको शास्त्रके अनुसार दंड देवे ॥ १६ ॥ धर्मने कहा कि–जिनके गुणगणोंसे भगवान् श्रीकृष्णने दूत आदिका कार्य किया. उन पांडुवंशी तुम्हारे आर्तोंको अभयवचन कहना. यह उचितही है ॥ १७ ॥ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! जिस पुरुषसे जीवोंके क्लेशके हेतु होते हैं, हम तो उस पुरुषको नहीं जानते. क्योंकि वादियोंके वाक्य भिन्न भिन्न होनेसे हम मोहित हो रहे हैं ॥ १८ ॥ योगीलोग तो कहते हैं कि–आत्माको सुख दुख देनेवाला आत्माही है अथवा ना-

वैसे एक पांवसे कांपता दुख पा रहा था. तत्रापि एक शूद्र उसे ताड़ना दे रहा था ॥ २ ॥ और धर्मको पूर्ण करनेवाली अतिदीन गौको शूद्र लातें मार रहा था. और वत्सरहित वह दुर्बल गौ मुखमें आंसू भरे घासकी इच्छा करती थी ॥ ३ ॥ सुवर्णकी सामग्रीवाले रथपर बैठेहुए राजाने धनुष चढ़ाकर, मेघसी गंभीर वाणीसे उस शूद्रसे पूंछा कि– ॥ ४ ॥ मेरे शरणागत इस लोकमें अबलाको बलात्कारसे मारनेवाला ऐसा बली तू कौन है ? नटकीतरह वेष तौ तेरा राजाका सा है. और कर्म तेरा शूद्रका है ॥ ५ ॥ अर्जुनके साथ श्रीकृष्ण भगवान् दूर पधार गये, जिससे बिचारे निरपराधियोंको विजन स्थलमें तू मारता है. इसलिये तू अपराधी

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ॥ विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥ ३ ॥ पप्रच्छ रथमारूढः कार्त्तस्वरपरिच्छदम् ॥ मेघगंभीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥ ४ ॥ कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान् बली ॥ नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणा द्विजः ॥ ५ ॥ कस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गांडीवधन्वना ॥ शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन्वधमर्हसि ॥ ६ ॥ त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ॥ वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥ न जातु पौरवेंद्राणां दोर्दंडपरिरंभिते ॥ भूतलेऽनुपतंत्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥ मा सौरभेयात्रशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयम् ॥ मारोदीरंब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ ॥ यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यंते साध्व्यसाधुभिः ॥ तस्य मत्तस्य नश्यंति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥ १० ॥

है और इसी कारणसे तू बध करनेके योग्य है. परंतु एकवार तू कह कि–तू कौन है ? ॥ ६ ॥ कमलनालसा धवल, चरणहीन तू एक पांवसे चलता है, सो तू कह. तू कौन है ? हमको खेदयुक्त करता बैलके रूपसे तू कोई देवता तो नहीं है ? ॥ ७ ॥ पुरुवंशियोंके भुजदंडसे अच्छे प्रकार रक्षा कियेहुए इस धरातलमें तेरे सिवाय और किसी प्राणीके आंसू नहीं पड़ते ॥ ८ ॥ हे बैल ! तू शोच मत करे, इस शूद्रसे तू डरे मत, हे अंबा ! तू रोवे मत, तेरा कल्याण होगा. क्योंकि दुष्टोंको दंड देनेवाला मैं बैठा हूं ॥ ९ ॥ हे साध्वि ! जिस राजाके देशमें असाधु पुरुषोंसे सब प्रजा पीड़ित होती है. उस मत्त राजाके यश, आयु, ऐश्वर्य और

नसे विभूति पाकर, त्रिलोकीको उल्लंघन कर, शोभायमान हुई. फिर जब विभूतिका नाशकाल आया. तब गर्व करतीहुई मुझे त्याग कर, चलेगये ॥ ३४ ॥ जिन स्वतंत्र भगवान्‌ने दैत्यकुलमें प्रगटहुए राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणियोंरूप मेरे अतिभारको दूर किया. और पैर टूटनेके कारण दुःखसे पीड़ित तुम्हारे चारोंपांव पीछे सांधकर, तुमको संपूर्ण करनेके लिये जिन्होंने यदुकुलमें सुंदर शरीर धारण किया ॥ ३५ ॥ उन पुरुषोत्तम भगवान्‌के विरहको कौन सह सके ? जिन्होंने अपने प्रेमसहित अवलोकन, रुचिर मंदहास्य और मधुरभाषणसे सत्यभामा आदि स्त्रियोंकी गर्वसहित स्थिरताका हरण किया. और जिनके चरणचिन्हसे अलंकृत मेरे

यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतंत्रः ॥ त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदंगम् ॥ ३५ ॥ का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ॥ स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदंघ्रिविटंकितायाः ॥ ३६ ॥ तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ॥ परीक्षिन्नामराजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे पृथ्वीधर्मसंवादोनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ॥ दंडहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलांछनम् ॥ १ ॥ वृषं मृणालधवलं मेहंतमिव बिभ्यतम् ॥ वेपमानं पदैकेन सीदंतं शूद्रताडितम् ॥ २ ॥

रोम खड़े होते हैं. उन भगवान्‌के विरहको कौन सह सके ? ॥ ३६ ॥ पृथ्वी और धर्मके इस तरह बातें करते परीक्षितनाम राजऋषि प्राची सरस्वती पै आया ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ सत्रहवें अध्यायमें ऐसे पराक्रमी राजाकोभी वैराग्य हुआ. यह कहनेके लिये कलियुगको दंड दिया. यह कथा कही जायगी ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि—वहां राजाने अनाथकी तरह पीटेजाते गौका मिथुन (जोड़ा) देखा. और दंड हाथमें लिये राजाके चिन्हवाले एक शूद्रको देखा ॥ १ ॥ कमलके तंतुके समान श्वेतवरन बैल, मानों डरता मूतता हो,

पावोंसे आप विचरा करते हो ॥ २६ ॥ जिन भगवान्‌में सत्य, शौच, दया, क्षमा, त्याग, संतोष, सरलता, मनकी निश्चलता,
बाह्येंद्रियोंकी स्थिरता, स्वधर्म, समदृष्टि, तितिक्षा, उपराम, शास्त्रविचार, ॥ २७ ॥ ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शौर्य, प्रभाव, बल, स्मृ-
ति, स्वतंत्रता, कुशलता, कांति, धैर्य, कोमलता, ॥ २८ ॥ प्रतिभा शक्ति, बिनय, सुशीलता, मनोबल, कर्मेंद्रियोंका बल, ज्ञानें-
द्रियोंका बल, भोगके लिये योग्यता, गंभीरता, स्थिरता, श्रद्धा, कीर्ति, मान, गर्वका अभाव ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! ये उन चालीस
और इनके सिवाय दूसरेभी बड़े बड़े नित्य गुण, कि जिनकेलिये महत्ताकी इच्छावाले पुरुष आशा रखते हैं, वे कदापि नाश नहीं

सत्यं शौचं दया क्षांतिस्त्यागः संतोष आर्जवम् ॥ शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम्
॥ २७ ॥ ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ॥ स्वातंत्र्यं कौशलं कांतिर्धैर्यं मार्दवमेव च
॥ २८ ॥ प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ॥ गांभीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहं-
कृतिः ॥ २९ ॥ एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ॥ प्रार्थ्या महत्वमिच्छद्भिर्न वियंति स्म
कर्हिचित् ॥ ३० ॥ तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन सांप्रतम् ॥ शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलि-
नेक्षितम् ॥ ३१ ॥ आत्मानं चानुशोचामि भवंतं चामरोत्तमम् ॥ देवान्पितॄनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्त-
थाश्रमान् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपांगमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्नाः ॥ सा श्रीः स्ववा-
समरविंदवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥ ३३ ॥ तस्याहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदै-
र्भगवतः समलंकृतांगी ॥ त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदंते ॥ ३४ ॥

होते ॥ ३० ॥ गुणोंके पात्र और लक्ष्मीके निवास, उन भगवान्‌से रहित और पापी कलियुगकी जिसपर दृष्टि पड़ी है ऐसे, इस
लोकका अभी मैं शोच करती हूं ॥ ३१ ॥ मेरा और देवतानमें श्रेष्ठ तेरा तथा देवता, पितृ, ऋषि, साधुजन, वर्ण व आश्रम
इन सबका शोच करती हूं ॥ ३२ ॥ जिसके कटाक्षमोक्षकी कामनासे ब्रह्मादिक देवतोंने युगानुयुगतक तप किया है, वह भगव-
त्के शरणागत लक्ष्मी, अपना निवासस्थान कमलवन छोड़, जिन भगवान्‌के चरणलावण्यकी प्रेमसहित सेवा करती है ॥ ३३ ॥
उन भगवान्‌के कमल, वज्र, अंकुश और ध्वजाके चिन्हवाले लक्ष्मीमान् चरणोंसे अच्छे प्रकार शोभायमान अंगवाली मैं भगवा-

अथवा मेरे पांव नाश हो गये हैं, सो एक पांववाले मेरा तौ शोच नहीं करे है ? अथवा शूद्र तेरा भोग करते हैं सो तू अपने आत्माका शोच तौ नहीं करे है ? अथवा देवतोंके यज्ञके भाग बंद होगये उनका तू शोच करती है ? अथवा इंद्र बरसता नहीं उसका तू शोच करती है ?॥ २१ ॥ हे पृथ्वी ! अथवा पति स्त्रियोंकी रक्षा नहीं करते उनका तू शोच करती है ? अथवा राक्षसोंकी नाई पिता बालकोंको दुख देते हैं उनका तू शोच करती है ? अथवा देवी सरस्वती दुराचारी ब्रह्मकुलमें चली गयी उसका तू शोच करे है ? अथवा राजालोग ब्राह्मणोंके अभक्त हो गये उनका तू शोच करे है ? अथवा ब्राह्मणकुल नौकरी करने लगगये उनका तू शोच करे है ?

पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ॥ अथो सुरादीन् हृतयज्ञभागान्प्रजा उत स्विन्मघवत्यवर्षति ॥ २१ ॥ अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्त्तान् ॥ वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥ २२ ॥ किं क्षत्रबंधून्कलिनोपसृष्टान् राष्ट्राणि वातैरवरोपितानि ॥ इतस्ततो वाऽशनपानवासः स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥ २३ ॥ यद्वांऽब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ॥ अंतर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलंबितानि ॥ २४ ॥ इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं वसुंधरे येन विकर्शितासि ॥ कालेन वा ते बलिनां बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमंब सौभगम् ॥ २५ ॥ धरण्युवाच ॥ भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ॥ चतुर्भिर्वर्त्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥ २६ ॥

॥ २२ ॥ क्या तू कलियुगसे व्याप्त क्षत्रियोंका शोच करे है ? अथवा उनसे उजाड़ कियेहुए देशोंका तू शोच करे है ? अथवा निषेधके न करनेसे खाना, पीना, वस्त्र पहिरना, नहाना, मैथुन करना इनमें प्रवृत्त हुए जीवलोकका तू शोच करे है ? ॥ २३ ॥ हे अंबा ! हे धरती ! भारी भार उतारनेके लिये अवतार धारण किये हरि भगवान् तुझे त्यागकर, अंतर्धान होगये सो मोक्षसेभी अधिक सुख देनेवाले भगवान्के चरित्रोंका तौ तू स्मरण नहीं करे है ?॥ २४ ॥ हे वसुंधरा ! हे अंबा ! यह तेरे मनकी पीड़ाका कारण तू मुझे कह. जिससे तू अतिदुर्बल हो रही है. अतिबलवान् कालने देवतानके पूजित तेरा सौभाग्य आज क्यों हर लिया ? ॥ २५ ॥ पृथ्वीने कहा कि- हे धर्म ! आप जो मुझे पूछते हो सो आप सब जानतेही हो. क्योंकि लोकोंको सुख देनेवाले चार

रुष आदि खंडोंका विजय कर, सबसे कर लिया ॥ १३ ॥ जहां तहां भगवान्के माहात्म्यको सूचन करनेवाले, गायेजाते अपने महात्मा पूर्वजोंके यशको और अश्वत्थामाके अस्त्रके तेजसे बचायेहुए अपने आत्माको, यादव और पांडवोंके बीच परस्पर स्नेहको और उनकी भगवान्में भक्तिको श्रवण करते उदारचित्त परीक्षितने प्रीतिसे प्रफुल्लित नेत्र होकर, बहुत संतोषके साथ उन गानेवालोंको बहुत धन, वस्त्र और मोतियोंके हार दिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ अपने स्नेही पांडवोंके विष्णु भगवान्के सारथीपन, सभापतिपन, सेवा, सखाभाव, दूतपन, रात्रिमें खड्ग हाथमें लिये खड़ा पहरा देना, पीछे चलना, स्तुति करना, प्रणाम कर-

तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ॥ प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥ १४ ॥ आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ॥ स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १५ ॥ तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृंभितलोचनः ॥ महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ॥ १६ ॥ सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् ॥ स्निग्धेषु पांडुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविंदे ॥ १७ ॥ तस्यैवं वर्त्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ॥ नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत्तन्निबोध मे ॥ १८ ॥ धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् ॥ पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥ १९ ॥ धर्म उवाच ॥ कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायासि म्लायतेषन्मुखेन ॥ आलक्षये भवतीमंतराधिं दूरे बंधुं शोचसि कंचनांब ॥ २० ॥

ना आदि अनेक कार्य किये. यह बात सुनी और सुना कि— भगवान्को सबलोक प्रणाम करते थे. इस बातको सुन कर, राजा परीक्षित भगवान्के चरणारविंदकी अधिकतर भक्ति करने लगा ॥ १७ ॥ प्रतिदिन अपने पूर्वजोंकी वृत्तिके अनुसार चलतेहुए राजा परीक्षितके समीपमेंही जो एक आश्चर्यकी बात बनी. वह मैं कहता हूं. सो तुम मुझसे सुनो ॥ १८ ॥ एक पांवसे चलतेहुए धर्मने गौका रूप धारण किये, वत्सहीन माताकी तरह मुखमें आंसू भरे तेजहीन पृथ्वीको देखकर पूंछा, ॥ १९ ॥ धर्मने कहा— हे भद्रे ! तेरा शरीर प्रसन्न तो है ? मुझे तेरे कोई अंतरंग (भीतरकी) पीड़ा मालूम होती है. क्योंकि— तेरा तेज नाश हो गया है और कुछ मुख मलीन हो रहा है. हे अंबा ! तू किसी दूर बैठेहुए बंधुका शोच तो नहीं करे है ? ॥ २० ॥

या ? मारा क्यों नहीं ? और वह शूद्र कौन था ? जो राजाका चिन्ह धारण कर गौको, पावसे प्रहार करता था ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! यदि इसमें श्रीकृष्णभगवान्‌की कथाका भाग आता हो, अथवा भगवान्‌के चरणकमलसंबंधी मकरंदका स्वाद जाननेवाले सत्पुरुषोंकी कथाका आश्रय हो, तो यह कथा हमें कहो ॥ ६ ॥ क्योंकि जिससे आयुष्य वृथा व्यतीत हो जाय, ऐसी निकामी बातोंसे क्या ? हे सूत ! जो तुच्छ आयुवाले मरणधर्मा मनुष्य मोक्ष चाहते हैं, ॥ ७ ॥ उन पुरुषोंको भगवान् मृत्यु यहां (यज्ञमें) पशु मारनेके कर्मके लिये बुला लिया गया है सो जबतक मृत्यु यहां बैठा है, तबतक किसीका मृत्यु नहीं होगा

तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥ अथवाऽस्य पदांभोजमकरंदलिहां सताम् ॥ ६ ॥ किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ॥ क्षुद्रायुषां नृणामंग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ॥ ७ ॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥ ८ ॥ न कश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहांतकः ॥ एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः॥ अहो नृलोके पीयेत हरिलीलाऽमृतं वचः ॥ ९ ॥ मंदस्य मंदप्रज्ञस्य वयो मंदायुषश्च वै ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ यदा परीक्षित्कुरुजांगले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्त्तिते ॥ निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौंडिराददे ॥ ११ ॥ स्वलंकृतं श्यामतुरंगयोजितं रथं मृगेंद्रध्वजमाश्रितः पुरात् ॥ वृतोरथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ १२ ॥ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून् ॥ किंपुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ इसीलिये उत्तम मुनि लोगोंने भगवान् मृत्युको यहां बुला लिया है. अहो ! इस मर्त्यलोकमें हरि भगवान्‌की लीलारूप वचनामृत पिया जाता है, अर्थात् जीते रहें तो हरिकी कथा सुन सकते हैं ॥ ९ ॥ आलसी, मंदमति और अल्पायु पुरुषकी आयु रात्रिमें तो निद्रासे चली जाती है, और दिनमें निकम्मे घरके धंधोंसे चली जाती है ॥ १० ॥ यह सुनकर सूतजी बोले कि–अपनी सेनासे रक्षा किये जाते कुरुजांगल देशमें कलियुगका प्रवेश हुआ यह अनतिप्रिय बात सुन कर, युद्धमें निपुण राजापरीक्षितने धनुष उठाया ॥ ११ ॥ अच्छीतरह सिंगारेहुए श्याम घोड़ोंसे जुने, सिंहकी ध्वजावाले, रथमें बैठ, रथ, घोड़े, हाथी और प्यादलवाली चतुरंगिणी सेना साथ ले, पुरसे दिग्विजय करनेको निकला ॥ १२ ॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तरकुरु और किंपु-

धाम सिधारे ॥ ४९ ॥ अपनी अपेक्षा न करते पतियोंको जानकर, द्रौपदीभी वासुदेव भगवान्‌में एकाग्रबुद्धि लगाकर, भगवत्स्वरूपको प्राप्त हुई ॥ ५० ॥ भगवान्‌के प्यारे पांडवोंके अतिमंगलमय और पवित्र महाप्रस्थानको जो पुरुष श्रद्धासे सुने, वह भगवान्‌में भक्तिको प्राप्त हो कर, सिद्धिको प्राप्त होवे ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ सोलहवें अध्यायमें, कलियुगसे दुख दियेजाते पृथ्वी और धर्मके संवाद होते रक्षा करनेवाले राजा परीक्षितका आना, यह कथा होगी ॥ १ ॥ सूतजीने कहा कि–फिर परमभगवद्भक्त राजा परीक्षित श्रेष्ठ ब्राह्मणों-

द्रौपदी च तदाज्ञाय पतीनामनपेक्षताम् ॥ वासुदेवे भगवति ह्येकांतमतिराप तम् ॥ ५० ॥ यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पांडोः सुतानामिति संप्रयाणम् ॥ शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कंधे पांडवस्वर्गारोहणंनामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह ॥ यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥ १ ॥ स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ॥ जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयन्सुतान् ॥ २ ॥ आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गंगायां भूरिदक्षिणान् ॥ शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षिगोचराः ॥ ३ ॥ निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ॥ नृपलिंगधरं शूद्रं घ्नंतं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥ शौनक उवाच ॥ कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ॥ नृदेवचिन्नधृक् शूद्रः कोऽसौ गां यः पदाऽहनत् ॥ ५ ॥

की शिक्षाके अनुसार पृथ्वीका पालन करने लगा. हे शौनक ! प्रसूतिसमयमें ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मणोंने जैसा कहा था; यह राजा वैसाही बड़ा गुणवान् हुआ ॥ १ ॥ इसने उत्तरकी इरावती नाम कन्यासे विवाह किया, उसमें जनमेजय आदि चार पुत्र पैदा हुए ॥ २ ॥ कृपाचार्यजीको गुरु बनाकर, गंगाके तीरपर बहुत दक्षिणावाले तीन अश्वमेध यज्ञ किये, जिन यज्ञोंमें देवता प्रत्यक्ष आये ॥ ३ ॥ कहीं दिग्विजयमें इस वीरने पराक्रमसे कलियुगकोभी दंड दिया. जो शूद्र कलिराजाका वेष बनाकर, गौके मिथुनको लातोंसे मार रहा था ॥ ४ ॥ शौनकने कहा कि–राजा परीक्षितने दिग्विजयमें कलियुगको केवल दंडही क्यों दि-

किया ॥ ४२ फिर चीर वस्त्र पहन, अहारका त्याग कर, मौन रख, सिरके बाल खुले छोड़, अपने स्वरूपको जड़, उन्मत्त और पिशाचकी तरह दिखाता, ॥ ४३ ॥ किसीकी प्रतीक्षा न करता, घरसे बाहिर निकाला. बहिरेकी नाई किसी बातको न सुनता और हृदयमें परब्रह्मका ध्यान करता, वह राजा महात्मालोग जिसमें पहले गये हैं. ऐसी उत्तर दिशामें प्रवेश हुआ. कि जिस दिशामें गयाहुआ मनुष्य फिर इस संसारमें नहीं आता ॥ ४४ ॥ उसके छोटेभाईभी अधर्मके मित्र, कलियुगसे छुई हुई पृथ्वीमें प्र-

चीरवासा निराहारो बद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः ॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ ४३ ॥ अनवेक्षमाणो निरगादश्रृण्वन्बधिरो यथा ॥ उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ॥ हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्त्तेत यतो गतः ॥ ४४ ॥ सर्वे तमनुनिर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥ ४५ ॥ ते साधु कृतसर्वार्था ज्ञात्वात्यंतिकमात्मनः ॥ मनसा धारयामासुर्वैकुंठचरणांबुजम् ॥ ४६ ॥ तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ॥ तस्मिन्नारायणपदे एकांतमतयो गतिम् ॥ ४७ ॥ अवापुर्दुरवापांते असद्भिर्विषयात्मभिः ॥ विधूतकल्मषास्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥ ४८ ॥ विदुरोपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ॥ कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥ ४९ ॥

जाको देखकर, निश्चय ठान, सब उसके पीछे निकल गये ॥ ४५ ॥ अच्छीतरह जिन्होंने अर्थ धर्मादिक पुरुषार्थोंका सेवन किया है ऐसे, वे पांडव भगवान्के चरणकमलकोही एकांतशरण जानकर, मनसे उसीकी धारणा करने लगे ॥ ४६ ॥ उस ध्यानसे बढ़ी जो भक्ति, उससे विशेषकर शुद्ध है बुद्धि जिनकी ऐसे, वे पांडव कल्मषरहित लोगोंके निवासस्थान, सबसे पर उन नारायणके पदमें एकाग्रबुद्धि लगाकर, असत् और विषयीपुरुषोंको न मिले. ऐसी, उत्तम गतिको रजोगुणरहित अंतःकरणके द्वारा प्राप्त हुए ॥४७॥४८॥ आत्मज्ञानी विदुरजीभी श्रीकृष्ण भगवान्में चित्त लगाये प्रभासक्षेत्रमें देहका त्याग कर, पितृगणोंके साथ अपने

१ राग बिलवल ॥ हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरो, हरि चरणारविंद उरधरो ॥ हरिवियोग पांडव तजि राज, गये हिमालय सबही त्याग ॥ होजू कथा सुनहु चितधार ॥ सूर कहे भागवत अनुसार ॥

उतारा. उस शरीरको त्याग दिया ॥ ३५ ॥ श्रवण करने योग्य है श्रेष्ठ कथा जिनकी, ऐसे मुकुंद भगवान्‌ने जिस दिन इस पृथ्वी-
का अपने शरीरसे त्याग किया. उसी दिन अधर्मका हेतु कलियुग अज्ञानीलोगोंके चित्तमें प्रवृत्त होने लगा ॥ ३६ ॥ ज्ञानी यु-
धिष्ठिरने देश, नगर, घर और अंतःकरणमें लोभ, झूंठ, कुटिलता, हिंसा आदि अधर्मके समूह सहित कलियुगका फैलाव होता
देखकर, स्वर्गमार्ग जानेका वेष धारण किया ॥ ३७ ॥ अपने गुणोंकरके सर्व प्रकारसे समान पौत्र परीक्षितका, चक्रवर्ती राजा यु-
धिष्ठिरने समुद्रपर्यंत पृथ्वीका पति करनेको, हस्तिनापुरमें राज्याभिषेक किया ॥ ३८ ॥ वैसेही शूरसेनदेशके पति अनिरुद्धके पुत्र

यदा मुकुंदो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ॥ तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः
कलिरन्ववर्त्तत ॥ ३६ ॥ युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि ॥ विभाव्य लो-
भानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥ ३७ ॥ स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गु-
णैः ॥ तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिंचद्गजाह्वये ॥ ३८ ॥ मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ॥ प्रा-
जापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥ ३९ ॥ विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् ॥ निर्ममो
निरहंकारः संछिन्नाशेषबंधनः ॥ ४० ॥ वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ॥ मृत्यावपानं सो-
त्सर्गं तं पंचत्वे ह्यजोहवीत् ॥ ४१ ॥ त्रित्वे हुत्वाऽथ पंचत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः ॥ सर्वमात्मन्यजुह-
वीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥ ४२ ॥

वज्रका मथुरामें अभिषेक किया. फिर समर्थ राजा युधिष्ठिरने प्राजापत्या इष्टि करके आत्मामें अग्नियोंका आरोपण किया ॥ ३९ ॥
रेशमीवस्त्र और वलय आदि जो कुछ था. वह सब वहीं छोड़, अहंता ममताका त्याग कर, सब उपाधियोंसे मुक्त हो, ॥ ४० ॥
इंद्रियोंका मनमें लय किया. और मनका प्राणमें लय किया, प्राणका अपानमें लय किया, व्यापार सहित अपानका मृत्युमें लय
किया और मृत्युका पंचमहाभूतोंमें लय किया ॥ ४१ ॥ पंचमहाभूतोंका गुणत्रयमें लय कर, गुणत्रयका अविद्यामें लय किया.
फिर मननशील राजाने सर्वके आरोपकी हेतु अविद्याका जीवात्मामें लय किया. इस तरह शुद्ध आत्माका कूटस्थ ब्रह्ममें लय

नाश हो गये ॥ २९ ॥ भगवान्ने संग्रामके बीच जो गीताजीके ज्ञानका उपदेश किया था, वह काल, कर्म व भोगमें आसक्तिके कारण विस्मृत हो गया था. वह पीछा प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ ब्रह्मकी प्राप्ति होनेसे शोक और द्वैतका संदेह निवृत्त हुआ. द्वैतकी प्रतीति जो है, यही जन्म मरणका कारण है. अतएव महावाक्यसे हुआ जो अपरोक्षज्ञान उससे द्वैतबुद्धिका नाश होने पर अविद्याके कार्य शरीराभिमानको मिथ्या जानकर, पुरुष जन्ममरणरहित होजाता है, सो अर्जुनको यह बात प्राप्त हुई, यानी अज्ञान निवृत्त हुआ, तासों वह निर्गुण हुआ और निर्गुण होनेसे लिंगदेहका नाश हुआ और लिंगदेहके नाशसे स्थूलदेहमेंसे अ-

गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्द्धनि ॥ कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ॥ ३० ॥ विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः ॥ लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिंगत्वादसंभवः ॥ ३१ ॥ निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ॥ स्वः पथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥ पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ॥ एकांतभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥ ३३ ॥ ययाऽहरद्भुवो भारं तां तनूं विजहावजः ॥ कंटकं कंटकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ॥ ३४ ॥ यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः ॥ भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ॥ ३५ ॥

भिमानको त्यागकर, वह मुक्त हुआ ॥ ३१ ॥ भगवान्का निजधाम पधारना और यदुकुलका नाश सुनकर, निश्चलचित्त युधिष्ठिरने स्वर्गमार्गके लिये निश्चय किया ॥ ३२ ॥ कुंतीभी अर्जुनके मुखसे यदुवंशियोंका नाश और भगवान्का धाम पधारना सुनकर, एकांतभक्तिसे अधोक्षज भगवान्में चित्त लगाकर, संसारसे मुक्त हुई ॥ ३३ ॥ जैसे मनुष्य कांटा निकालतेसमय वह निकला, के तुर्त उसे निकालनेके लिये जिस कांटेको लेते हैं. उसेभी फेंक देते हैं. वैसे जिस शरीरसे अज भगवान्ने भूमिका भार उतारा, उस शरीरकाभी त्याग कर दिया. क्योंकि ईश्वरके तो पृथ्वीका भाररूप शरीर और यादवशरीर ये दोनों बराबर ही हैं ॥ ३४ ॥ जैसे नट मत्स्य आदि अनेक स्वांग धारण कर, पीछा उन्हें त्याग देता है. वैसे भगवान्ने जिस शरीरसे भूमिका भार

भरमें निकम्मे हो गये ॥ २१ ॥ महाराज ! अपने बांधवोंके पुरमें जिन सुहृदोंका आप कुशल पूंछते हो, वे सब ब्राह्मणोंके श्रापसे मोहित हो, वारुणी मदिरा पी कर, मदसे भ्रांतचित्त हो, मानों आपसमें न पहिँचानते हों, ऐसे आपसमें ऐरोंसे मुष्टमुष्टा लड़कर, नाशको प्राप्त होगये हैं. अब उनमेंसे कोई पांच चार जने बाकी रहे हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ प्रायः यह सब लीला उन्हीं भगवान् परमेश्वरकी है; क्योंकि वही जीवोंका आपसमें पालन और नाश करवाता है ॥ २४ ॥ हे राजा ! जैसे जलमें बड़े जलजंतु छोटे जलचरोंको खा जाते हैं, जैसे बलवान् दुर्बलको मारकर, खाजाते हैं और बड़े और बलवान् जैसे आपसमें एक दूसरेको खाजाते

राजंस्त्वयाऽभिसृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ॥ विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥ २२ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ॥ अजानतामिवान्योन्यं चतुष्पंचावशेषिताः ॥ २३ ॥ प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ॥ मिथो निघ्नंति भूतानि भावयंति च यन्मिथः ॥ २४ ॥ जलौकसां जले यद्वन्महांतोऽदंत्यणीयसः ॥ दुर्बलान्बलिनो राजन्महांतो बलिनो मिथः ॥ २५ ॥ एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः ॥ यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहार ह ॥ २६ ॥ देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ॥ हरंति स्मरतश्चित्तं गोविंदाभिहितानि मे ॥ २७ ॥ एवं चिंतयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ॥ सौहार्देनातिगाढेन शांतासीद्विमला मतिः ॥ २८ ॥ वासुदेवांघ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा ॥ भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥ २९ ॥

हैं ॥ २५ ॥ वैसे श्रीकृष्णने बड़े और बलवान् पांडवोंसे दुर्योधन व जरासंधादिकनको मरवाकर, यादवोंको आपसमें यादवोंसे मरवाकर, विभु भगवान्ने पृथ्वीके भाररूप राजाओंका संहार किया ॥ २६ ॥ देश व कालके उचित, अर्थसे युक्त, हृदयके तापको शांत करनेवाले भगवान्के वचनोंका जब मैं स्मरण करता हूं, तब वे मेरे चित्तका आकर्षण करते हैं ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके चरणकमलका इसतरह चिंतवन करते अर्जुनकी बुद्धि अतिगाढ़ सुहृदभावसे शांत और बैराग्ययुक्त हो गयी ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके चरणोंका ध्यान करनेसे प्राप्त हुई जो अतिवेगवाली भक्ति, उसके प्रभावसे अर्जुनकी बुद्धिके कामक्रोधादिक सब कषाय समूल

चरणकमलोंको मोक्षके अर्थ भजते हैं. उन मोक्षके देनेवाले परमेश्वरको मुझ कुमतिने अपना सारथि बनाया. जिस समय मेरे घोड़े थक गये और मैं रथसे उतर पृथ्वीपर खड़ा रहा. उस समय शत्रु रथपर बैठेहुए थे, परंतु जिन कृष्णके प्रभावसे मूढ़बुद्धि होनेके कारण किसीने मुझपर प्रहार नहीं किया ॥ १७ ॥ महाराज ! गंभीर, सुंदर व मंदहाससे शोभित भगवान्‌के परिहासके बचनोंका तथा प्रसंगपर हे पार्थ ! हे अर्जुन ! हे सखा ! हे कुरुनंदन ! इन माधव भगवान्‌के हृदयको स्पर्श करनेवाले मधुराक्षर बचनोंका मैं स्मरण करता हूं, तब ये मेरे मनको क्षोभित कर देते हैं ॥ १८ ॥ सोना, बैठना, चलना, बात करना और भोजन

नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनंदनेति ॥ संजल्पितानि नरदेवहृदिस्पृ-शानि स्मर्तुर्लुठंति हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋ-तवानिति विप्रलब्धः ॥ सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥ १९ ॥ सोऽहं नृपेंद्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥ अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमंगर-क्षन्गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥ तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपत-यो यत आनमंति ॥ सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥ २१ ॥

करने आदि कार्योंमें दोनोंकी एकसाथ प्रवृत्ति होनेसे कभी किसीसमय वैसे न बनता. तो हे वयस्य ! आप बड़े सच्चे हो, ऐसे कहकर, मैं ठट्ठा करता. तब जैसे मित्र मित्रका और पिता पुत्रका अपराध सहे, वैसे मुझ कुमतिके सब अपराधोंको जो अपने बड़प्पनसे सहन करते ॥ १९ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन प्यारे सखा सुहृद पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका वियोग होनेसे मेरा हृदय शून्य हो गया है. हे भाई ! भगवान्‌की स्त्रियोंकी रक्षा करता मैं मार्गमें आता था. वहां नीच गोपोंने मुझे स्त्रीकी नाई जीत लिया ॥ २० ॥ वही धनुष, वेही बाण, वही रथ, वेही घोड़े, वही मैं रथी, कि जिसे राजालोग प्रणाम करते थे. परंतु जैसे भस्ममें होमाहुआ द्रव्य, मायावी पुरुषसे पायीहुई वस्तु और ऊषरमें बोयाहुआ बीज, ये सब वृथा होते हैं. वैसे ये सब एक श्रीकृष्ण विना क्षण-

१ जयद्रथके युद्धमें अर्जुनके घोड़े थक गये. और उन्हें प्यास लगी. तब रथसे नीचे उतर, बाणसे पृथ्वीको भेद, उसमेंसे जल निकालकर घोड़ोंको जल प्याय, उस समय अर्जुन पृथ्वीपर खड़ाया. परंतु श्रीकृष्णके प्रभावसे उसपै किसीने शस्त्र नहीं चलाया.

अस्त्र दिये, और इसी शरीरसे स्वर्गमें मैंने आधा इंद्रासन पाया ॥ १२ ॥ तथा वहीं विहार करते मेरे गाडीव धनुषके चिन्हवाले भगवान्‌से प्रभावयुक्त किये हुए भुजदंडयुगलका शत्रुवधके लिये इंद्रसहित सब देवतोंने शरण लिया. हे युधिष्ठिर ! उन अंतर्यामी भूमा (स्वप्रकाश) भगवान्‌से मैं आज ठगा गया ॥ १३ ॥ जिन कृष्णकी सहायतासे मैं भीष्मआदि बड़े बड़े मगर मच्छ होने- के कारण तिरा न जासके और पार पाया न जासके ऐसे कुरुकुलके सेनारूप समुद्रको रथसे इकला पार होकर, गोधन कि जिसे शत्रु लेजाते थे, उसे पीछा ले आया और उनके सिरपरसे मैं प्रभावकी निशानीरूप पागें और मस्तकके मुकुट मणिरूप बहुत

तत्रैव मे विहरतो भुजदंडयुग्मं गांडीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ॥ सेंद्राः श्रिता यदनुभावितमाजमी- ढ तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥ १३ ॥ यद्बांधवः कुरुबलाब्धिमनंतपारमेको रथेन ततरेऽहमती- र्य सत्वम् ॥ प्रत्याहृतं बहु धनं च मया परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥ १४ ॥ यो भी- ष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमंडलमंडितासु ॥ अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्म- नांसि च दृशा सहओज आर्च्छत् ॥ १५ ॥ यद्दोःषु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्त्तशलसैंध- वबाह्लिकाद्यैः ॥ अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नोपस्पृशुर्नृहरिदासमिवाऽऽसुराणि ॥ १६ ॥ सौ- त्ये वृतः कुमतिनात्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्ममभवाय भजंति भव्याः ॥ मां श्रांतवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥ १७ ॥

द्रव्य ले आया ॥ १४ ॥ हे विभु ! बड़े बड़े उत्तम राजाओंके रथमंडलकरके शोभित, भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य और शल्य, आ- दिकी सेनाओंमें जिन कृष्णने सारथीरूपसे मेरे आगे चलनेवाले होकर, केवल दृष्टि करके महारथी शत्रुओंकी उत्साह आदि शक्ति, बल और शस्त्रादिककी कुशलता व आयु हर लीनी ॥ १५ ॥ जिन कृष्णकी भुजाओंमें स्थापित किये मुझपर द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, त्रिगर्तदेशका पति सुशर्मा, शल, सिंधुदेशका पति जयद्रथ और बाल्हिक, आदि राजाओंने अनेक अमोघ अस्त्र चलाये, परंतु जैसे प्रल्हादको दैत्योंके अस्त्र न छू सके, वैसे एकभी अस्त्र मेरा स्पर्श नहीं करसका ॥ १६ ॥ भक्तलोग जिनके

शसँन नाम नरकमें गिरते हैं, वहां नरकके अधिपति उन्हें मारकर, काट देते हैं ॥ २५ ॥ जो द्विज यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कामदेवसे मोहित होकर, अपनी जातिकी स्त्रीमें वीर्य पटकता है. अर्थात् उससे मैथुन करता है. वह पापी मरे पीछे लालाभक्ष नाम नरकमें पड़ता है, वहां उसे वीर्यकी नदीमें पटककर यमदूत वीर्यही पिलाते हैं ॥ २६ ॥ जो चोर राजा वा राजपुरुष अग्नि लगा देते हैं, विष पिला देते हैं, अथवा गाव या संघको लूट देते हैं. वे मरकर, सारमेयादन नाम नर-

यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतःकुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययंति ॥ २६ ॥ ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान्सार्थान्वा विलुंपंति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादंति ॥ २७ ॥ यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथंचित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥ २८ ॥ यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयं नीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिंचंति ॥ २९ ॥

कमें गिरते हैं. वहां यमके दूतरूप वज्रसी दाढ़ोंवाले सातसौ बीस ७२० कुत्ते उसे बड़े वेगसे फाड़ २ कर, खाते हैं ॥ २७ ॥ जो मनुष्य साक्षीमें अथवा धनके लेनदेनमें या दानमें किसीतरह झूंट बोलता है. वह मनुष्य आश्रयरहित अवीचिनाम नरकमें पड़ता है. वहां सौ योजन ऊंचे पर्वतके शिखरसे उलटे शिर उसे नीचे गिराते हैं. इस नरकमें पाषाणकी स्थली पानीसी प्रतीत होती है. इसीलिये इस नरकका अवीचि नाम पड़ा है. इस स्थलमें पड़नेसे तिल तिल जितने शरीरके टुकड़े हो जाते हैं. तथापि मरता नहीं अतएव उसे बारंबार शिखरपर चढ़ाकर, गिराते हैं ॥ २८ ॥ जिसने सोमपान किया है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य वा

इनकी स्त्रियां अथवा दूसराभी हरएक नियममें रहनेवाला मनुष्य प्रमादसेभी मद्यपान करे, वह अयःपान नाम नरकमें पड़ता है. वहां यमराजके दूत नरकसे त्रास खायेहुए इन लोगोंकी छातीपर पांव रखकर, उनके मुखमें अग्निसे पिघला हुआ लोहरस डारते हैं ॥ २९ ॥ आपही अपनेको उत्तम माननेवाला जो अधम मनुष्य विद्या, आचार और वर्णाश्रमके धर्मवाले उच्चवर्गके लोकोंका आदर नहीं करता, वह मनुष्य मरेपीछे क्षारकर्दमनाम नरकमें उलटे शिर गिराया जाता है. और उसे वहां अनंत वेदना भोगनी पड़ती हैं ॥ ३० ॥ जो मनुष्य नरबलि चढ़ाते हैं, और जो स्त्रियां इस मारेहुए पुरुषको खाती हैं . वे पशुकी मौत मरकर, रक्षो-

अथ च यस्त्विह वा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहुमन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरंता यातना ह्यश्नुते ॥ ३० ॥ ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजंते याश्च स्त्रियो नृपशून्खादंति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयंतो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदार्यासृक् पिबंति नृत्यंति च गायंति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः ॥ ३१ ॥ ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रंभकैरुपसृतानुपविश्रंभय्य जिजीविषून्शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयंति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुतृड्भ्यां चाऽभिहताः कंकवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुंडैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरंति ॥ ३२ ॥

गणभोजन नाम नरकमें पड़ती हैं यमके स्थानमें पूर्वमारित मनुष्योंके आकारवाले राक्षसरूप यमदूत उन्हें दुःख देते हैं और कसाइयोंकी भांति अपने शस्त्रोंसे काटकाट कर उनका रुधिर पीते हैं, नाचते हैं, गाते हैं और मनुष्योंको खाकर, वे जैसे राजी होते थे, वैसे राजी होते हैं ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य जंगलमें अथवा ग्राममें निरपराधी जीनेकी इच्छावाले प्राणियोंको विश्वासके साधनोंसे विश्वास देकर, शूल या दोरीआदिमें पोहकर, खिलौनाकी वस्तु मानकर, दुख देते हैं. वे मरणके अनंतर शूलप्रोत नाम नरकमें पड़ते हैं. वहां उन्हें यमदूत शूलआदिमें पोहकर, भूख व प्याससे महापीड़ा देते हैं. और तीक्ष्ण चोंचवाले कौआ और वटआदि पक्षी उन्हें चारों तर्फसे खोंटे दिया करते हैं जिससे ये पापी अपने पूर्वपापोंका स्मरण करते हैं ॥ ३२ ॥

सर्पादिकोंके समान क्रूर स्वभाववाले जो लोक यहां प्राणियोंको उद्वेग देते हैं. वे मरकर, दंदंशूक नाम नरकमें पड़ते हैं वहां पांच मुखवाले और सात मुखवाले सर्प झपट मारकर, चूहेकी नाईं उन्हें निगल जाते हैं ॥ ३३ ॥ जो लोक यहां गहरे गढ़े कोठी या गुफाआदिमें प्राणियोंको रोंक रखते हैं. वे मरकर अवटनिरोधन नाम नरकमें पड़ते हैं. वहां उन्हें ऐसेही गढ़ोंमें बंद करके विषवाले अग्नि और धूंएसे रोंक देते हैं ॥ ३४ ॥ जो गृहस्थी, अतिथि अथवा अभ्यागतोंपर बारंबार क्रोध करके मानों उन्हें

ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयंति नरा उल्बणस्वभावा यथा दंदशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दंदशूकाख्ये निपतंति यत्र नृपदंदशूकाः पंचमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसंति यथा बिलेशयान् ॥ ३३ ॥ ये त्विह वा अंधा वटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुंधंति तथाऽमुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुंधंति ॥ ३४ ॥ यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चाऽपि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुंडा गृध्राः कंककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयंति ॥ ३५ ॥ यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशंकी अर्थव्ययनाशचिंतया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽगेषु सूत्रैः परिवयंति ॥ ३६ ॥

भस्म करेगा ऐसे क्रूरदृष्टिसे देखता है. वह पर्यावर्तन नाम नरकमें पड़ता है. वहां वज्रसी चोंचवाले गिद्ध, कंक काक और बटआदि पक्षी बलात्कारसे इस क्रूरदृष्टि मनुष्यके नेत्रोंको उखेड़ देते हैं ॥ ३५ ॥ धनाढ्यपनका अभिमान रखनेवाला, घमंडी, कुटिलदृष्टिसे देखनेवाला, सबसे शंका रखनेवाला, धनके व्ययसे नाश होनेकी चिंतासे जिसका मुख व हृदय सूखा करता है ऐसा, जो मनुष्य निवृत्तिको न पाकर, यक्षके समान धनकी रक्षा करता है. वह मनुष्य मरनेपर सूचीमुख नाम नरकमें पड़ता

है. वहा धनके यक्षके समान यह पापी पुरुष कि-जिसके धन पैदा करने और बढ़ानेका पाप लगाहि रहता है उसके सब अंगोंको यमराज-के दूत दरजियोंके समान दोरोंसे बींधा करते हैं ॥३६॥ महाराज! इस प्रकारके नरक यमपुरीमें सैंकड़ों और हजारों हैं. उन सब नरकोंमें सब अधर्मीलोक कि-जिनमेंसे कितनेएकका मैं वर्णन करचुका हूं. और कितनेएकका नहीं किया. वे सब अनुक्रमसे पड़ते हैं. इसीप्रकार धर्मका अनुसरण करनेवाले लोक स्वर्गादिक लोकोंमें जाते हैं. और पुण्य व पाप इन दोनोंके शेष रहेहुए भागसे यहां मनुष्यलोकमें पुनर्जन्मके

एवंविधा नरका यमालये संति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशंति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे तउभयशेषाभ्यां निविशंति ॥ ३७ ॥ निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः एतावानेवांडकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥ ३८ ॥ श्रुत्वा स्थूलं यथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः ॥ स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥ ३९ ॥

वास्ते आते हैं. ॥३७॥ निवृत्तिधर्म पालनेसे जानेका जो मार्ग है वह तो मैं प्रथमही (द्वितीयस्कंधमें) कहचुका हूं ब्रह्मांड इतनाही है कि-जिसके अंतर्गत भेद पुराणोंमें चौदह प्रकारके कहलाते हैं. साक्षात् महापुरुष भगवान् नारायणकी मायाके गुणोंसे बनाहुआ जो स्थूलरूप है उसका वर्णन मैं आपसे कर चुका हूं. जो मनुष्य आदरभावसे इसप्रकारका पाठ करे, सुने, श्रवण करावे उसकी बुद्धि श्रद्धा व भक्तिसे शुद्ध हो जाती है. और ऐसे होनेसे परमात्माका सत्यस्वरूप कि-जो अत्यंतगूढ़ है वहभी जाना जा सकता है ॥३८॥ भगवान्‌के स्थूल व सूक्ष्मरूपका श्रवण कर, संन्यासीको चाहिये कि-प्रथम स्थूलरूपके ध्यानमें मनको

वश करै. और फिर धीरे धीरे बुद्धिद्वारा सूक्ष्मरूपमें ले जावै ॥ ३९ ॥ महाराज ! पृथ्वी, द्वीप, खंड, नदियां, पर्वत, आकाश समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, ज्योतिश्चक्र और दूसरेभी कितनेएक लोकोंकी स्थिति कि-जो सकल प्राणीमात्रके समूहकी स्था-

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ॥ गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पंचमस्कंधे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ समाप्तोऽयं पंचमस्कंधः ॥ ५ ॥

नरूप और परमेश्वरके अद्भुत स्थूल शरीररूप है, उसका मैंने आपसे वर्णन किया ॥४०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे दध्यङ् कुलोद्भव आसोपा बलदेवात्मज रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां नरकानुवर्णनंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६ ॥

इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकासहितः
पंचमस्कंधः समाप्तः

॥ श्रीविघ्नहर्त्रेनमः ॥ तहां इस पहिले अध्यायमें विष्णुजीके दूतोंने पापीको छुड़ाया. और उस पापीके पाप कहनेके लिये यमराजके दूतोंने धर्मादिकका लक्षण कहा यह कथा होगी. पूर्व कथाका अनुवाद करके राजा परीक्षितने प्रश्न किया कि–प्रथम आपने निवृत्तिमार्ग तो यथार्थ रीतिसे कहा कि–जिस मार्गसे योगकी प्राप्ति होती है. और योगसे ब्रह्माके लोककी प्राप्ति होती है और वहांसे ब्रह्माके साथ मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ हे मुने! स्वर्गादिसुखकी प्राप्तिका साधन प्रवृत्तिमार्गभी आपने कहा कि– जिस मार्गमें मायालिप्त पुरुषका वारंवार भोगार्थ देहारंभ होता है ॥ २ ॥ अधर्मही जिनके लक्षण हैं ऐसे अनेक नरकभी आपने वर्णन

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ ॥ निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ॥ क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥ १ ॥ प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ॥ योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥ २ ॥ अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः ॥ मन्वंतरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः ॥ ३ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च ॥ द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥ ४ ॥ धरामंडलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ॥ ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥ ५ ॥ अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ॥ नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ न चेदिहैवापचितिं यथांऽहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ॥ ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥ ७ ॥

किये और जिसमें पहिले स्वायंभुव नाम मनु हैं वह मन्वंतरभी आपसे कहा गया ॥ ३ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपादका वंश तथा चरित्रभी कहा गया. द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदी, बगीचे, वनस्पतिआदिका वर्णन किया ॥ ४ ॥ और जैसे विभु भगवान्‌ने इस जगत्‌को उत्पन्न किया है, वैसेही भाग, लक्षण और प्रमाणोंसे भूमिमंडल, ज्योतिश्चक्र और पातालतलका संस्थानभी कहा ॥ ५ ॥ हे महाभाग! अब इस संसारमें जैसे अनेक भयंकर वेदनावाले नरकोंमें यह मनुष्य न जाय वह मुझे कहो ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इहां मन, वाणी और कर्मसे कियेहुए पापोंका मन, वाणी, कर्मोंहीसे जो कदाचित् प्रायश्चित्त न करे तो,

जो मैंने तुमको क्रूर यातना कहीं हैं, उनमें वह पुरुष मर कर, निश्चय जाता है ॥ ७ ॥ इस वास्ते पहिलेही तुरत जीते जी पापोंकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्तमें यत्न करना चाहिये, जैसे कि–रोगोंके निदानका जाननेवाला वैद्य वात, पित्त, कफ अधिक अल्प देखकर, चिकित्सा करता है, वैसे पापोंका अधिक न्यून देखकर, जैसा पाप होवे वैसा प्रायश्चित्त कर, पापनिवृत्ति करनी चाहिये॥ ८ ॥

तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यताऽऽत्मना ॥ दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक्चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् ॥ करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥ ९ ॥ क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः ॥ प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुंजरशौचवत् ॥ १० ॥

तब राजा बोले कि– पापीको राजासे दंड मिलता है. वह देखनेसे और पापी नरकमें पड़ता है यह सुननेसे यह पुरुष जानता है कि–पाप मेरा शत्रु है. तौभी फिर पराधीन होकर, उसीको करता है तो, फिर प्रायश्चित्त कैसे ? ॥ ९ ॥ कभी पापसे हट जाता है और कभी पीछा पापको करता है, तो फिर हाथीको, न्हिलानेके समान उस प्रायश्चित्तको वृथा मानता हूँ ॥ १० ॥

---

१ यहां यह इतिहास है. जैसे कि–कोई एक वैद्यने अनेक औषधियोंकी दूकान खोल रक्खी थी इतनेमें कोई एक जिज्ञासु पुरुष फिरते २ आ निकला और देखता क्या है कि–हजारों मनुष्य इकठे हो रहे हैं. और वह अपने वैद्यकके घमंडसे चिल्ला २ कर, कहता है कि–मैं प्रत्येक पीड़ाकी औषधी करता हूं और यह मेरी दुकान चिकित्सालय है. यह सुनकर, उसजिज्ञासुने उस हकीमके पास जाकर, पूंछा कि–हे छोटे बड़े मनुष्योंकी पीड़ाके चिकित्सक ! आपके पास कोई पापरोगकीभी औषध है? यह सुनकर, वह वैद्य तो चुप रहगया. परंतु एक अवधूतने उत्तर दिया कि–हे जिज्ञासु ! पापरोगकी एक औषध मेरेपास लिखी है लेंकिन उसमें सब वस्तु कड़वी हैं तू उसे न पीसकेगा तब वह बोला–हे प्रियवर कड़वीही औषधियां गुणदायक होती हैं इसलिये आप मुझे शीघ्रही उसे दे दीजिये कि–मैं उसे पीकर, पापरोगसे निवृत्त होऊं. तब उस अवधूतने कहा कि–तू पहिले विरागरूप बीज ले और संतोषके पत्ते इकठे करके, विनयकी हरड़ तैयार कर, उसमें धर्मका बहेड़ा और आदरभावका आमलाभी मिलाले फिर श्रद्धाके इमामजिस्तेंमें कूटके, विचारकी हांड़ीमें भर और उसमें प्रेमका पानी डालकर, उत्सवकी आंच दे; जब उफान आवे तब छान कर, ईर्षा और द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोहरूप मैल निकाल, फेंक और आशाके प्यालेमें भरकर, भगवद्गुणानुवादरूप शहद मिलाले. फिर पापरूप रोगके कंठमें डाल. जिससे तू निरोग होवे निःसंदेह यह औषध पापरोगकी अकसीर है.

प्रायश्चित्त बतानेपरभी घबड़ायेहुए राजाको देखके, श्रीशुकदेवजी बोले कि–कर्मोंसे कर्म निर्मूल नहीं होते; क्योंकि अधिकारी अविद्वान् मिले. इसवास्ते मुख्य प्रायश्चित्त भगवद्भक्तिपूर्वक ज्ञानही है ॥ ११ ॥ हे राजन्! जैसे पथ्य अन्न खानेवाले पुरुषके व्याधि बाधा नहीं करती ऐसे नियम करनेवाला पुरुष धीरे धीरे कल्याणको प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥ धर्मज्ञ और श्रद्धायुक्त धीर पुरुष देह, वाणी और बुद्धिसे कियेहुए बड़े पापोंकोभी जैसे अग्नि बांसोंके बंशको बाल देता है. वैसे तप[१], (एकाग्रता) ब्रह्मचर्य[२] (अष्टांग), शम, (मनकारोंकना) दम, (इंद्रियोंका रोकना) त्याग, (दान) यम, (अहिंसादि) और नियम (जपादिक) से बाल देते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ कितनेएक वासुदेवके परा-

बादरायणिरुवाच ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यंतिक इष्यते ॥ अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ ११ ॥ नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवंति हि ॥ एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥ १२ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च ॥ त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥ १३ ॥ देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः ॥ क्षिपंत्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः ॥ १४ ॥ केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ॥ अघं धुन्वंति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥ १५ ॥ न तथा ह्यघवान् राजन्पूयेत तपआदिभिः ॥ यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥ १६ ॥ सध्रीचीनो ह्ययं लोके पंथाः क्षेमोऽकुतोभयः ॥ सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥ १७ ॥

यण भगवद्भक्त केवल भक्तिहीसे निःशेष पापका नाश करते हैं. जैसे सूर्य नीहार और अंधकारका नाश करते हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जिसने भगवत्परायण पुरुषकी सेवासे श्रीकृष्णमें प्राण लगा दिये हैं. वह जैसा पवित्र होता है. वैसा तो तपआदिसेभी पापी पवित्र नहीं होता ॥ १६ ॥ जिसमें कहीं भय नहीं ऐसा यही कल्याणके लिये सबसे उत्तम मार्ग है कि–जिसमें सुंदर

---

१ "मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तपः" इति स्मृतेः । अर्थ–मन और इन्द्रियोंको एक जगह रखना यही परम तप है. यह स्मृतिमें लिखाहै

२ स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥ १ ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥ २ ॥ अर्थ–स्मरण, (ध्यान) कीर्तन, ([illegible]ादिकहना) केलि, देखना, गुह्यभाषण, (छिपके बतलाना) संकल्प, (प्रतिज्ञा) अध्यवसाय, (यह काम निश्चय करना चाहिये) क्रियानिर्वृत्ति (संगम) ॥ १ ॥ बुद्धिमान् लोक यह आठप्रकारका मैथुन कहते हैं. और इससे विपरीत यानी इसको न करना यही अष्टलक्षण ब्रह्मचर्य है ॥ २ ॥

स्वभाववाले नारायणपरायण साधुपुरुष चलते हैं ॥ १७ ॥ हे राजेंद्र ! कियेहुए प्रायश्चित्तभी नारायणविमुखको पवित्र नहीं करते. जैसे मदिराके घटको नदियां ॥ १८ ॥ भगवत्‌गुणोंमें प्रीतिवाले जिन पुरुषोंने कृष्ण भगवान्‌के चरणकमलोंमें एक बेरभी मन लगा दिया है. वे स्वप्नमेंभी यमराजके दूतोंको नहीं देखते; क्योंकि उतनेहीमें उनके सब प्रायश्चित्त हो चुके ॥ १९ ॥ इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहते हैं वह मुझसे सुनो. जिसमें विष्णुपार्षद और यमदूतोंका संवाद है ॥ २० ॥ कन्नौजदेशमें एक दासीपति अजामिल नाम ब्राह्मण था. वह दासीके संबंधसे दूषित और आचारभ्रष्ट हो गया था ॥ २१ ॥ कैदी पकड़ने,

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ॥ न निष्पुनंति राजेंद्र सुराकुंभमिवापगाः ॥ १८ ॥ सकृन्मनः कृष्णपदारविंदयोर्निवेशितं तद्गुणरागियैरिह ॥ न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्स्वप्नेऽपि पश्यंति हि चीर्णनिष्कृताः ॥ १९ ॥ अत्र चोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥ २० ॥ कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः ॥ नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥२१॥ बंद्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः ॥ बिभ्रत्कुटुंबमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥२२॥ एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ॥ कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥ २३ ॥ तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः ॥ बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥ २३ ॥ स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ॥ निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥ २५ ॥ भुंजानः प्रपिबन्खादन्बालकस्नेहयंत्रितः ॥ भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमंतकम् ॥ २६ ॥

द्यूत (जुवां) खेलने और ठगाई व चोरीआदि निंदित वृत्तिको धारण कर, कुटुंबका भरण पोषण करताहुआ अपवित्र अजामिल देहधारियोंको पीड़ा देता था ॥ २२ ॥ ऐसे निवास करते और दासीके पुत्रोंको लड़ाते उस अजामिलके हे राजन्! बहुत काल यानी आयुष्यके अठासी ८८ वर्ष निकल गये ॥ २३ ॥ उस वृद्धके दश पुत्र थे. उनमेंसे जो सबसे छोटा था. उसका नाम नारायण था. और वह मातापिताको बहुत प्यारा था ॥ २४ ॥ वह अजामिल उस तुतराते बोलनेवाले बालकमें ऐसा बद्धहृदय था कि—उसकी क्रीड़ाको देख देखकर, वह बुढ्ढा बहुत प्रसन्न होता था ॥ २५ ॥ जब आप भोजन करता, खाता, पीता, तब उस

बालकको भी भोजन कराता, जल पिलाता; इसतरह बालकके स्नेहमें फँसाहुआ वह मूर्ख अजामिल आयेहुए कालको नहीं जान सका ॥ २६ ॥ इसतरह बर्तनेवाले उस मूर्खने मृत्युसमय प्राप्त होनेपर नारायण नाम बालक पुत्रमें बुद्धि लगायी ॥ २७ ॥ वह अजामिल अपनेको लेनेके लिये आये अत्यंतभयंकर तीन दूत कि-जिनके हाथोंमें पाश हैं, वक्र (टेढे) जिनके मुख हैं, रोमजिनके खड़े हैं ऐसे, उनको देखके, व्याकुलेंद्रिय होकर, दूर खेलमें आसक्त नारायणनाम पुत्रको दबीहुई वाणीसे पुकारने लगा ॥ २८ ॥ २९ ॥ महाराज! मरतेहुए अजामिलके किये हरि भगवान्‌के नामउच्चारणको सुनकर, भगवत्पार्षद तुरंत वहां आये; क्योंकि- वह

स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ॥ मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥ २७ ॥ स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान्भृशदारुणान् ॥ वक्रतुंडानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥ २८ ॥ दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ॥ प्लवितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेंद्रियः ॥ २९ ॥ निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ॥ भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसापतन् ॥ ३० ॥ विकर्षतोऽतर्हृदयाद्दासीपतिरजामिलम् ॥ यमप्रेष्यान्विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥ ३१ ॥ ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरःसराः ॥ के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥ ३२ ॥ कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ ॥ किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥ ३३ ॥ सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुंडलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥ सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥ धनुर्निषंगासिगदाशंखचक्रांबुजश्रियः ॥ ३५ ॥

उनके स्वामीका नाम था ॥ ३० ॥ हृदयमेंसे दासीपति अजामिलको खेंचतेहुए यमदूतोंको विष्णुदूत बलात्कारसे रोकने लगे ॥ ३१ ॥ रुकेहुए यमराजके मुख्य दूतोंने विष्णुपार्षदोंसे कहा कि-धर्मराजकी आज्ञाको पीछी फेरनेवाले तुम कौन हो? ॥ ३२ ॥ तुम किसके हो ? और कहांसे आये हो ? और किसवास्ते इसको लेजाते निषेध करते हो ? क्या तुम देव हो ? वा उपदेव हो? वा उत्तम सिद्ध हो? सबही पद्मकी पंखुरीकेसे नेत्रवाले, पीले रेशमी वस्त्र धरे, किरीट कुंडल और कमलमालासे शोभायमान, आप कौन हो? ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ आप सबही नवीन अवस्था धारण किये, सुंदर चतुर्भुज स्वरूप धरे, धनुष, भाथा, तरवार, गदा, शंख, चक्र

और कमलसे शोभ रहे हो ॥ ३५ ॥ दिशाओंकों अपनी कातिसे अंधकाररहित और प्रकाशित करतेहुए आप, धर्मराजके अनुचर हम लोगोंका निषेध किसवास्ते करते हो? ॥ ३६ ॥ शुकदेवजी बोले कि- वे ऐसे कह चुके तब वासुदेव भगवान्के आज्ञाकारी विष्णुपार्षदोंने हंसके मेघसी गंभीर वाणीसे उन यमदूतोंको कहा ॥ ३७ ॥ विष्णुदूत बोले कि-जो तुम धर्मराजकी आज्ञा पालनेवाले हो तो, धर्मका तत्त्व और जो धर्मका लक्षण है वह हमसे कहो ॥ ३८ ॥ दंड किस प्रकारसे दिया जाता है? और दंडका

दिशो वितिमिरा लोकाः कुर्वतः स्वेन रोचिषा ॥ किमर्थं धर्मपालस्य किंकरान्नो निषेधथ ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः ॥ तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ ३७ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ॥ ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥ ३८ ॥ कथंस्विद्ध्रियते दंडः किं वास्य स्थानमीप्सितम् ॥ दंडयाः किंकारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ॥ ३९ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥ ४० ॥ येन स्वधाम्न्यमीभावा रजःसत्त्वतमोमयाः ॥ गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यंते यथातथम् ॥ ४१ ॥

वांछित विषय क्या है? किस कर्मके करनेवाले दंडके पात्र होते हैं? यदि सबके सबही दंडनीय होते हैं तो, केवल मनुष्यही के, पशुभी. कदाचित् केवल मनुष्यही होते हैं तो, उनमें कौन कौन? ॥ ३९ ॥ तब यमदूत बोले कि-वेदमें कहा है वह तो धर्म और जो वेदविरुद्ध है वह अधर्म है. वेद साक्षात् नारायण हैं नारायणके निःश्वासमात्रसे आपही प्रकट हुए हैं. इस वास्ते वे साक्षात् नारायणही हैं. ऐसे हमने सुना है. ॥ ४० ॥ कदाचित् ऐसी शंका करे कि-नारायण कौन हैं? तब कहते हैं कि-जिन नारायणने अपने स्वरूपमें रजोगुण सत्वगुण और तमोगुणमय इन प्राणिओंका गुण, नाम, क्रिया और रूपसे यथावत् विभाग

१ तदेवोक्तं बृहदारण्यकोपनिषदि- "एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोको व्याख्यानान्यनुमानानि प्रमाणभूतानि" ॥ अर्थ-यही बृहदारण्यकोपनिषदमें कहा है कि-यह महान् ईश्वरके सहजस्वाभाविक श्वासही ये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास पुराण (१८) श्लोक, व्याख्यान, अनुमान सब प्रमाणीभूत हैं. अर्थात् ईश्वरके श्वासावोंसेही यह संम्पूर्ण (वाङ्मय) होता है, इससे जो आधुनिक कोई कहते हैं कि-वेद पौरुषेय यानी मनुष्यकृत हैं तथा पुराण गप्पाष्टक हैं वे सब परास्त हुए. २ सांत्वनादिक. ३ ब्राह्मणादिक. ४ अध्ययनादिक. ५ वर्णाश्रमादिक.

किया है, वही साक्षान्नारायण हैं ॥ ४१ ॥ तौभी इसने अधर्म किया. यह कैसे ज्ञात हुआ ? ऐसे कदाचित् शंका होय उसपर कहते हैं कि–सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, गायें, चंद्र, संध्या, रात, दिन, दिशा, जल, पृथ्वी, काल और धर्म ये सब प्राणीनके धर्म अधर्मके साक्षी हैं ॥ ४२ ॥ इन्हींसे अधर्म जाना जाता है. और अधर्मी दंड देनेका स्थान (पात्र) होता है.कर्म करनेवाले सब प्राणी अपने अपने कर्मोंके अनुसार दंडको प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ हे अनघो! कर्म करनेवालोंके शुभ और अशुभ कर्म बनतेही रहते हैं; क्योंकि इनके गुणोंका संग सदा बना रहता है. इसी वास्ते कर्म किये विना नहीं रह सकते ॥ ४४ ॥ जिस प्राणीने जितना जैसा धर्म वा अधर्म इहां किया होगा, वही प्राणी उतनाही और वैसाही उस धर्म अधर्मका फल परलोकमें निश्चय भोगेगा ॥ ४५ ॥ केवल सूर्यादिकही साक्षी होयं ऐसे नहीं हैं. किंतु अर्थापत्तिसेभी[1] ज्ञात होता है. हे देवप्रवरो ! इस जन्ममें गुणोंकी विचित्रताके लिये शांतपनसे घोरपनसे और मूर्खपनसे अथवा सुखसे वा दुःखसे और सुखदुःखके मिश्रपनसे जैसे प्राणिओंमें तीन प्रकार दिखाई देते हैं. वैसेही जन्मांतरमेंभी ऐसे तीन प्रकार होनेका अनुमान होता है ॥ ४६ ॥ जैसे वर्तमानकालके वसंतादिक ऋतु, भूतकालसंबंधी वसंतादिकके और भविष्यत्कालसंबंधी वसंतादिकके फूलफलादिकनके गुणोंको विदित करता है, यानी वर्तमान वसंतमें जैसे फल पुष्पादि हैं वैसेही भूत वसंतमें हुए. और

सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः संध्याऽहनी दिशः ॥ कंकुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः ॥ ४२ ॥ एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दंडस्य युज्यते ॥ सर्वे कर्मानुरोधेन दंडमर्हंति कारिणः ॥ ४३ ॥ संभवंति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ॥ कारिणां गुणसंगोऽस्ति देहवान्नह्यकर्मकृत् ॥ ४४ ॥ येन यावान्यथाऽधर्मो धर्मो वेह समीहितः ॥ स एव तत्फलं भुंक्ते तथा तावदमुत्र वै ॥ ४५ ॥ यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ॥ भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथाऽन्यत्रानुमीयते ॥ ४६ ॥ वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ॥ एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥ ४७ ॥

[1] 'पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्ते' अर्थात् रात्रौ भुंक्ते अर्थ–देवदत्त पुष्ट है और दिनको नहीं खाता तो अर्थापत्तिप्रमाणसे जाना जाता है कि– रात्रिमें खाता है, क्योंकि विना खाये पुष्ट होना बने नहीं.

भविष्यत्में होवेंगे. ऐसा अनुमान होता है. इसीतरह जो प्राणी वर्तमान जन्ममें शांत सुखी और धार्मिक है तौ, वह भूतमेंभी वैसाही था. और भविष्यत्मेंभी वैसाही होगा. इत्यादि अनुमान होते हैं यानी वर्तमान जन्मपरसेभी प्राणियोंके भूतजन्म और भविष्यत्जन्मकी परीक्षा होसक्ती है ॥ ४७ ॥ धर्म अधर्म जाननेका यह प्रकार अन्य लोकोंके वास्ते है. भगवान् अजन्मा यमराज तौ अपनी नगरीहीमें बैठे बैठे जीवोंके पूर्वजन्मको मनहीसे बराबर जानसकते हैं और भविष्यत् जन्मकी स्थितिकोभी भलीभांति विचार सकते हैं. देहस्थित अंतर्यामी जीवके गत आगत जन्मकी व्यवस्था जानते हैं और जीव तौ केवल वर्तमानजन्महीको जानसकता है ॥४८॥जैसे निद्रायुक्त मनुष्य स्वप्नसंबंधी देहकोभी जानता है. परंतु जाग्रत् शरीरको वा प्रथम स्वप्नसमयके शरीरको नहीं

मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति ॥ अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ॥ ४८ ॥ यथाज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि ॥ न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥ ४९ ॥ पंचभिः कुरुते स्वार्थान्पंच वेदाथ पंचभिः ॥ एकस्तु षोडशेन त्रीन्स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥ ५० ॥ तदेतत्षोडशकलं लिंगं शक्तित्रयं महत् ॥ धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥ ५१ ॥ देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते ॥ कोशकार इवाऽऽत्मानं कर्मणाऽऽच्छाद्य मुह्यति ॥ ५२ ॥

जानता वैसे जन्म होनेसे नष्टस्मृति यह जीव अपने पूर्वापर जन्मको नहीं जानता ॥ ४९ ॥ पांच कर्मेंद्रियोंसे आदानआदि चेष्टा करता है. और पांच ज्ञानेंद्रियोंसे शब्दस्पर्शआदि पांच विषयोंको जानता है. और सोलहवें मनके साथ सत्रहवां स्वयं इकल्ला जीव कर्मेंद्रिय, ज्ञानेंद्रिय और मन इन तीनोंके विषयोंका उपभोग करता है ॥ ५० ॥ त्रिगुणका कार्य, ज्ञानेंद्रिय कर्मेंद्रिय पांच शब्दादिक विषय और मनरूपअनादि यह लिंगशरीर जीवको हर्ष शोक भय और पीड़ा देनेवाली संसृति (जन्ममरण)को प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥ इस जीवको कर्म करनेकी इच्छा न होय तौभी यह लिंगशरीर बलात्कारसे इसको कर्म करा देता है; क्योंकि इस जीवने इंद्रियोंका जय नहीं किया. कोशकार नाम एक कीड़ा दर बनायके अंदर धुस जाता है. और फिर मार्ग नहीं जानता. ऐसे यह जीवभी कर्मोंसे आच्छादित होके, ऐसा मोहित हो जाता है कि-फिर कर्मोंसे छूटनेका उपाय नहीं जान सकता ॥ ५२ ॥

लिंगशरीर जीवको बलात्कारसे कर्म कराता है, उसमें अनुभव बताते हैं कि- कोईभी जीव कर्म किये बिना एक क्षणभी नहीं रहता. पूर्वजन्मके संस्कारसे उत्पन्न रागद्वेषादिक गुण इसको पराधीन पटकके बलात्कारसे कर्म कराते हैं. और कर्मोंके बससे तदनुरूप देह प्राप्त होता है सो कहते हैं. जीवात्मा पुण्यपापरूप प्रारब्धको पाकर, स्थूल सूक्ष्म शरीरको प्राप्त होता है. यद्यपि सबनके शुक्र शोणित सदृश हैं, तौभी कर्मोंकी वासनाके बलसे माता-पिताके सदृशही देह होता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ अब मुक्तिका प्रकार कहते हैं-अहंताममतारूप यह संसार प्रकृतिके संगसे पुरुषको हुआ है. सो वह संसार भगवद्भजनसे तुरत नाशको प्राप्त होता

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥ कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥ ५३ ॥
लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ॥ यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥ ५४ ॥
एष प्रकृतिसंगेन पुरुषस्य विपर्ययः ॥ आसीत्स एव न चिरादीशसंगाद्विलीयते ॥ ५५ ॥ अयं हि
श्रुतसंपन्नः शीलवृत्तगुणालयः ॥ धृतव्रतो मृदुर्दांतः सत्यवान्मंत्रविच्छुचिः ॥ ५६ ॥ गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुर्निरहंकृतः ॥ सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥ ५७ ॥ एकदाऽसौ वनं यातः पितृसंदेशकृद्द्विजः ॥ आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥ ५८ ॥ ददर्श कामिनं कंचिच्छूद्रं
सह भुजिष्यया ॥ पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥ ५९ ॥ मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं
निरपत्रपम् ॥ क्रीडंतमनुगायंतं हसंतमनयांऽतिके ॥ ६० ॥

है ॥ ५५ ॥ यह अजामिल प्रथम तौ शास्त्रसंपन्न, सत्स्वभाव, सदाचारवान्, गुणोंका भंडार, व्रतोंका धारण करनेवाला, कोमलस्वभाव, इंद्रियां जिसकी बस हैं ऐसा, सत्यवान्, मंत्रका जाननेवाला और पवित्र ॥ ५६ ॥ व गुरु, अग्नि, अतिथि और वृद्ध इनकी सेवा करनेवाला, निरभिमानी, प्राणीमात्रका सुहृद, साधु, मितभाषी और किसीकी निंदा करे नहीं ऐसा था ॥ ५७ ॥ एक समय यह ब्राह्मण पिताकी आज्ञा पाकर, वनमें गया. वहांसे फल, पुष्प, समिध और दर्भ लेकर, पीछा लौटा ॥ ५८ ॥ तौ वहां मदिरा पीनेके कारण मदसे जिसके नेत्र घूर्णित हो रहे हैं ऐसी एक दासीके साथ जातका शुद्र ऐसे एक कामी पुरुषको देखा ॥ ५९ ॥ वह मदोन्मत्त रांड कि-जिसकी कमरसे वस्त्र ढीला पड़ रहा था, उसके साथ क्रीड़ा करते और पीछे पीछे गाते--और, हँस-

ते आचारभ्रष्ट निर्लज्ज, पुरुषको राडके पास देखा ॥ ६० ॥ कामलिप्त उस कामीसे बाहुसे आलिंगन करीहुई रांडको देखके, ब्राह्मण कामवश हो गया. और तुरतही मोहित हो गया ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणने अपने ज्ञानके बलसे यथाशक्ति धैर्य रक्खा. और बुद्धिसे मनकोभी रोका, परंतु कामकंपित मनका समाधान नहीं करसका ॥ ६२ ॥ उस रांडके निमित्त कामके मिषरूप ग्रहका ग्रास होके, सुध भूल गया. और उसीका मनमें मनन करताहुआ स्वधर्मसे गिरगया ॥ ६३ ॥ जैसे वह रांड प्रसन्न होवे वैसेही गाँवके सुंदर सुंदर कामोंसे पिताके समग्र धनसे उसीको संतुष्ट करने लगा ॥ ६४ ॥ छिनाल रांडके कटाक्षोंसे विद्ध अजामिलने

दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरंभिताम् ॥ जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥ ६१ ॥ स्तंभयन्नात्मनाऽऽत्मानं यावत्सत्त्वं यथा श्रुतम् ॥ न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥ ६२ ॥ तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ॥ तामेव मनसा ध्यायन्स्वधर्माद्विरराम ह ॥ ६३ ॥ तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ॥ ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥ ६४ ॥ विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लंभिताम् ॥ विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्याऽपांगविद्धधीः ॥ ६५ ॥ यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ॥ बभारास्याः कुटुंबिन्याः कुटुंबं मंदधीरयम् ॥ ६६ ॥ यदसौ शास्त्रमुल्लंघ्य स्वैरचार्यार्यगर्हितः ॥ अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥ ६७ ॥ तत एनं दंडपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ॥ नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दंडेन शुध्यति ॥ ६८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे अजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥

मोटे कुलमेंसे ब्याही हुई और बाला अपनी भार्या ब्राह्मणीको थोड़ेही दिनमें त्याग दिया ॥ ६५ ॥ मंदबुद्धि यह अजामिल जहां तहांसे न्याय वा अन्यायसे धन लाय लायके, कुटुंबवाली रांडके कुटुंबको भरने लगा ॥ ६६ ॥ आर्योंके निंदनीय पापरूप जिसकी आयु है, ऐसे और पापसे अपवित्र यह अजामिल शास्त्रको उल्लंघके, बहुत कालतक स्वच्छंदचारी होकर, वर्ता है ॥ ६७ ॥ इसवास्ते प्रायश्चित्त नहीं कियेहुए इसपापी अजामिलको दंडपाणि यमराजके पास हम ले जाते हैं. जहां प्राणी दंडसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दूसरे अध्यायमें विष्णुपार्षद यमदूतोंको अद्भुत भगवन्नाममाहात्म्य सुनाकर, अजामिलको विष्णुलोकमें ले गये; यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–ऐसे न्यायनिपुण वे भगवत्पार्षद यमदूतोंका कथन सुनके तिनसे पीछे बोले ॥ १ ॥ विष्णुदूतोंने कहा कि– अहो ! बड़ा कष्ट है कि– धर्मके देखनेवाले यमराजादिकनकी सभामेंभी अधर्मका प्रवेश ?. कि– जहां अदंड्य और निष्पापोंको वे लोक वृथा दंड देते हैं ॥ २ ॥ जो प्रजाके पिता शिक्षक और साधु सम हैं. यदि उनमेंभी विषमता यानी अदंड्यको दंड

॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ॥ उपधार्याथ तान् राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥ १ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् ॥ यत्रादंड्येष्वपापेषु दंडो यैर्ध्रियते वृथा ॥ २ ॥ प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ॥ यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यांति शरणं प्रजाः ॥ ३ ॥ यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ॥ स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ४ ॥ यस्यांके शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ॥ स्वयं धर्ममधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥ ५ ॥ स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ॥ विश्रंभणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥ ६ ॥ अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ॥ यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥ ७ ॥

होगा तो फिर प्रजा किसके शरण जायगी ? ॥ ३ ॥ श्रेष्ठपुरुष जो आचरण करते हैं वही आचरण अन्य लोक करते हैं. और श्रेष्ठ जो प्रमाण करता है. उसीको लोक प्रमाण मानते हैं ॥ ४ ॥ ये लोक जिस पुरुषकी गोदीमें शिर धरके निश्चित होकर, सोये हैं; यदि वही पशुसमान पुरुष धर्माधर्मको नहीं जाने तो, विश्वासघातकीपनको आप प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ विश्वाससे निरंतर जिसने अपना आत्मा अर्पण कर दिया है और मित्रता कर रक्खी है और जो बेचेत है, ऐसे पुरुषका जगद्विश्वास्य और सदयपुरुषको द्रोह करना क्या उचित है ? ॥ ६ ॥ यहां अजामिल करोड़ों जन्मोंके पापोंका प्रायश्चित्त कर चुका, यद्यपि इसने परवश हो-

१ श्रवणेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः । पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥ १ ॥ अर्थ– पुरुष परवश होकेभी जिनका नाम लेके, सिंहसे डरे हुये मृगोंकी माफक सब पापोंसे उसी वखत छूटजाता है ॥ १ ॥

के, हरिभगवान्‌के मोक्षसाधनकारी नामका उच्चारण किया ॥ ७ ॥ तथापि इसीसे इस पापी अजामिलके पापोंका प्रायश्चित्त होगया. जब कि–'नारायण ! आ,' ये चार अक्षर इसने कहे तभीसे यह निष्पाप हो चुका ॥ ८ ॥ चोर, मदिरा पीनेवाला, मित्रद्रोही, ब्रह्मघातक, गुरुतल्पगामी (गुरुस्त्रीसंगी), स्त्रीहत्या करनेवाला, राजाका मारनेवाला, पिताका मारनेवाला, गौका मारनेवाला और[1] जो दूसरे पापी हैं ॥ ९ ॥ उन सब पापियोंके वास्ते उत्तम प्रायश्चित्त यही है कि–विष्णु भगवान्‌के नामोंका

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ॥ यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥ ८ ॥ स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ स्त्रीराजपितृगोहंता ये च पातकिनोऽपरे ॥ ९ ॥ सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ॥ नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥ न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ॥ यथा हरेर्नाम पदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलंभकम् ॥ ११ ॥ नैकांतिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ॥ तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥ १२ ॥

उच्चारण करना, कि–जिसके प्रभावसे नामोच्चारण करनेवाले पुरुष भगवान्‌को अपना कर लेते हैं ॥ १० ॥ वेदवेत्ता मनुआदि महात्माओंके कहेहुए व्रतादि प्रायश्चित्तोंसे मनुष्य वैसा शुद्ध नहीं होता है, जैसा हरिके नामपदउच्चारणसे होता है; क्योंकि नामके कहनेसे भगवद्गुणोंकाभी स्मरण होता है ॥ ११ ॥ जिसका प्रायश्चित्तके करनेपरभी जो फिर असत्‌मार्गमें मन दौड़े, तो वह पापोंका प्रायश्चित्त अत्यंतशोधक नहीं है, पापोंके अत्यंतनाशको चाहनेवाले पुरुषोंके पापोंका पूर्ण प्रायश्चित्त तो हरि

१ सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ १ ॥ अर्थ–हरि, ये दो अक्षर एकवारभी जिसने उच्चार किये उसने मोक्षके अर्थ जानेमें परिकर यानी फेंट बांधा ॥ १ ॥ २ अब इसमें ऐसी शंका होती है कि–प्रायश्चित्त किये बगर प्रायश्चित्त कैसे तहां कहते हैं कि–कर्मसंपूर्णतामें विष्णुनामस्मरणही मुख्य है. तद्यथा–यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ १ ॥ अर्थ–जिनके स्मरणसे तथा जिनका नाम कहनेसे तपयज्ञक्रियादिकोंमें जो कुछ कम होता है. वह पूरा हो जाता है. इससमय मैं उन अच्युत भगवान्‌की वन्दना करता हूं ॥ १ ॥

भगवान्‌का गुणानुवादही है; क्योंकि यह चित्तको शुद्ध कर देता है. फिर पाप होनेका संभवही नहीं ॥ १२ ॥ इसवास्ते निःशेष पापोंका प्रायश्चित्त कियेहुये इस अजामिलको आप इस मार्गसे मत ले जाओ; क्योंकि इसने मरणसमयमें भगवन्नाम लिया है ॥ १३ ॥ पुत्रादिकनके संकेतसे, गीत, आलाप पूरा करनेके लिये अवज्ञासेभी लियाहुआ भगवन्नाम निःशेष पापोंका नाशक जानो ॥ १४ ॥ प्रासाद-(महल)से पड़ता, मार्गमें डिगमगाता, भग्नगात्र (जिसके अंग टूट गये हों), सर्पसे काटाहुआ, ज्वरादिसे पीडित, दंड-(लकड़ी)से हत होताभी जो मनुष्य परवशतासेभी हरिका नाम उच्चारण करे तो, वह पीड़ाको नहीं पावे

अथैनं माऽपनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ॥ यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥ १३ ॥ सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ॥ वैकुंठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ १४ ॥ पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः ॥ हरिरित्यवशेनाऽऽह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥ १५ ॥ गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ॥ प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥ १६ ॥ तैस्तान्यघानि पूयंते तपोदानजपादिभिः ॥ नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशांघ्रिसेवया ॥ १७ ॥ अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ॥ संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ॥ १८ ॥

॥ १५ ॥ मोटे पापोंके मोटे प्रायश्चित्त और छोटे पापोंके छोटे प्रायश्चित्त यह व्यवस्था तारतम्य देखके, मन्वादिक महर्षियोंने कही है. परंतु भगवन्नाममें यह व्यवस्था नहीं है, स्मरणमात्रसे सर्वपाप नष्ट होते हैं जैसे मदिराके एक बिंदुमात्र पानसे मोटा पापी हो जाता है. ऐसे नामस्मरणसे महान्‌पाप निवृत्त हो जाते हैं ॥ १६ ॥ तप, दान, जपआदिसे केवल पापही नष्ट होते हैं, अधर्मसे उत्पन्न हुए ऐसे पापोंका सूक्ष्म संस्काररूप हृदय शुद्ध नहीं होता. सो वहभी भगवत्पादसेवनसे शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥ अज्ञानसे वा ज्ञानसे उच्चारण कियाहुआ उत्तमश्लोक भगवान्‌का नाम पुरुषके पापोंको भस्म करही देता है. जैसे अग्नि

---

१ विष्णोः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः । २॥ विष्णुके स्मरणमात्रकरके सब पापोसे छूट जाता है॥ हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥ १ ॥ अर्थ– दुष्टचित्त पुरुषोंसेभी स्मरण किये हुये हरि भगवान् पापोंको हरतेही हैं. जैसे विना इच्छासेभी स्पर्श कीहुई अग्नि जलायही देतीहै ॥ १ ॥

काष्ठको जानके, डाले तो और अजानके डाले तोभी जलाही देता है ॥ १८ ॥ जैसे अतिपराक्रमी औषध, यदृच्छासे (श्रद्धादि-बिना) अजानसे खानेवालेको भीआरोग्यादि अपना गुण करे. ऐसे नामात्मक मंत्रभी अपना गुण करताही है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! उन विष्णुपार्षदोंने भागवतधर्मका निश्चय करके, उस अजामिल ब्राह्मणको यमपाशसे निकालकर, मृत्युसे छुड़ा दिया ॥ २० ॥ ऐसे हटायेहुए यमदूतोंने यमके समीप जाके, हे अरिंदम! (शत्रुओंको दंड देनेवाले) जैसे यह वृत्तांत हुआथा. वैसे यम-राजको निवेदन किया ॥ २१ ॥ पार्षदोंके दर्शनसे जिसके हृदयमें उत्सव लग रहा है, ऐसा वह ब्राह्मण पाशसे मुक्त होकर,

यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ॥ अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मंत्रोऽप्युदाहृतः ॥ १९ ॥ श्री-शुक उवाच ॥ त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ॥ तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुच-न् ॥ २० ॥ इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमांतिके ॥ यमराज्ञे यथासर्वमाचचक्षुररिंदम ॥ ॥ २१ ॥ द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ॥ ववंदे शिरसा विष्णोः किंकरान्दर्शनोत्सवः ॥ २२ ॥ तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिंकराः ॥ सहसा पश्यतस्तस्य तत्रांतर्दधिरेऽनघ ॥ २३ ॥ अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥ २४ ॥ भ-क्तिमान्भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ॥ अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥ २५ ॥ अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ॥ येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायताऽत्मना ॥ २६ ॥

निर्भय हो गया. और पीछे प्रकृतिको प्राप्त होके, विष्णु भगवान्के अनुचरोंको शिरसे प्रणाम (वंदन) करने लगा ॥ २२ ॥ हे निष्पाप राजा ! महापुरुष भगवान्के भृत्य उस ब्राह्मणको बोलनेकी इच्छावाला जानके, उसके देखते २ वहीं अंतर्धान होगये ॥ २३ ॥ फिर वो अजामिल वेदत्रयप्रतिपाद्य और गुणोंका आश्रयरूप यमदूतोंका धर्म और भगवत्का कहाहुआ शुद्ध निर्गुण कृष्णदूतोंका धर्म सुनके, हरिभगवान्के माहात्म्य सुननेके प्रभावसे तुरंत भगवान्में भक्तिवाला हो गया. फिर तो अपने अशुभको याद करते २ उस ब्राह्मणको पश्चात्तापभी बड़ा भारी हुआ ॥ २४ ॥ २५ ॥ अहो ! जिसका मन वश नहीं ऐसे,

मुझको परमकष्ट हुआ. जिस मैंने शूद्रीमें पुत्ररूप आत्माको प्रगट करके ब्राह्मणपनभी डुबा दिया ॥ २६ ॥ धिक्कार है मुझको कि–जो मैं सत्पुरुषोंसे निंदनीय और कुलमें कज्जलरूप सती बिचारी बाला स्त्रीको छोड़के, मदिराकी पीनेवाली दुश्चारिणीके फंदमें फँसा ॥२७॥ और वृद्ध, अनाथ, बंधुरहित और तपस्वी मेरे मातापिताको कृतघ्नी मैंने नीचके जैसे क्षणभरमें छोड़ दिया. हाय ! हाय ! बड़ा अन्याय किया ॥२८॥ मैं स्पष्टरीतिसे बहुत बड़े भयंकर नरकमें पडूंगा. जहां धर्मके नाश करनेवाले कामी लोक यमयातनाको प्राप्त होते हैं ॥२९॥ अहो ! यह क्या स्वप्न था ? नहीं स्वप्न नहीं था. यह आश्चर्य तो मैंने प्रत्यक्ष यहीं जागते देखा है पाश हाथमें लिये जो पुरुष

धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ॥ हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥ २७ ॥ वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबंधू तपस्विनौ ॥ अहो मयाऽधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥ २८ ॥ सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ॥ धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विंदंति यमयातनाः ॥ २९ ॥ किमिदं स्वप्न आहोस्वित्साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन्पाशपाणयः ॥ ३० ॥ अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ॥ व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥ ३१ ॥ अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ॥ भवितव्यं मंगलेन येनाऽऽत्मा मे प्रसीदति ॥ ३२ ॥ अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ॥ वैकुंठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥ ३३ ॥ क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ॥ क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मंगलम् ॥ ३४ ॥ सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेंद्रियानिलः ॥ यथा न भूय आत्मानमंधे तमसि मज्जये ॥ ३५ ॥

मुझे खींचे वे कहां गये ? ॥३०॥ और पाशोंसे बांधके, नरकमें ले जातेहुए मुझको छुड़ानेवाले वे चार चारुदर्शन सिद्ध कहां गये ? ॥३१॥ यद्यपि मैं इस जन्ममें हतभाग्य हूं. तोभी जन्मांतरके पुण्य होने चाहिये. जिनसे उन उत्तम देवोंका दर्शन हुआ. और आगेभी मेरा शुभ होनेवाला है. जिससे दर्शन करनेसे मेरा आत्मा संतुष्ट हुआ है ॥३२॥ जो मेरे पूर्वपुण्य नहीं होते तो, अपवित्र, शूद्रीके पति, मरते हुए, मेरेकी जिव्हा वैकुंठ भगवानका नाम वश करके कैसे बोल सके? ॥३३॥ कहां तो कपटी, पापी, ब्राह्मणपनका नाश करनेवाला, निर्लज्ज मैं ? और कहां नारायण यह मंगल भगवानका नाम ? ॥३४॥ अब तो मैं चित्त, इंद्रिय और प्राणको जीतके, ऐसा यत्न

करूंगा कि-जैसे फिर मैं मेरे आत्माको गाढ़ नरकमें नहीं डुबाऊं ॥ ३५ ॥ अविद्या, काम और कर्मोंसे उत्पन्न इस बंधको काटके, सर्व प्राणियोंका सुहृद, शांत, जगत्का मित्र, दयालु व ज्ञानी होकर, स्त्रीरूप भगवान्की मायासे ग्रसेहुए मेरे आत्माको शीघ्र छुडाऊंगा. मैं नीच इस स्त्रीरूप मायाके वशी होकर, क्रीड़ामृगकी नाईं नाच रहा हूं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सत्यस्वरूप परमेश्वरमें बुद्धि लगाकर, देहआदिमें 'मैं और मेरारूप' जो मिथ्याबुद्धि हो रही है उसे त्यागकर, भगवान्के कीर्तनआदिसे शुद्ध भये हुए मेरे अंतःकरणको ईश्वरमें लगाऊंगा ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-साधुजनोंकी क्षणमात्रकी संगतिसे इसप्रकार उसे

विमुच्य तमिमं बंधमविद्याकामकर्मजम् ॥ सर्वभूतसुहृच्छांतो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ३६ ॥
मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्याऽऽत्ममायया ॥ विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥ ३७ ॥
ममाहमिति देहादौ हित्वाऽमिथ्याऽर्थधीर्मतिम् ॥ धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥ ३८ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ इति जातसुनिर्वेदः क्षणसंगेन साधुषु ॥ गंगाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबंधनः ॥ ३९ ॥
स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः ॥ प्रत्याहृतेंद्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥ ४० ॥
ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्याऽऽत्मसमाधिना ॥ युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥ ४१ ॥
यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः ॥ उपलभ्योपलब्धान्प्राग्ववंदे शिरसा द्विजः ॥ ४२ ॥ हित्वा कलेवरं तीर्थे गंगायां दर्शनादनु ॥ सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥ ४३ ॥

अच्छीतरह वैराग्य प्राप्त हो गया. तब वह सब पुत्रस्त्रीआदिमें बंधेहुए स्नेहरूप बंधनको छोड़कर, गंगातीरपर आया ॥ ३९ ॥ वहां उसने भगवान्के मंदिरमें बैठके, इंद्रियोंके समूहको वश कर, चित्तको एकाग्र कर, समाधि लगाकर, अपने मनको परमेश्वरमें लगाया ॥ ४० ॥ फिर देह व इंद्रियआदिसे मनको बिलगाकर, चित्तकी एकाग्रताके साथ अनुभवस्वरूप साक्षात् भगवत्धामरूप परब्रह्ममें लगाया ॥ ४१ ॥ जब परमेश्वरमें बुद्धि निश्चल ठहेर गयी. तब अपने आगे खड़े भगवत्पार्षदोंको देखा. और देखतेही उस ब्राह्मणने पहचानकर, शिरसे दंडवत् प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ दर्शन करतेही अपने शरीरको गंगाके तटपर त्यागकर, भगवा-

नके पार्षदोंके स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥४३॥ फिर वह ब्राह्मण चतुर्भुज स्वरूप धारण कर, भगवान्के पार्षदोंके साथ सुवर्णमय विमानमें बैठकर, आकाशमार्ग करके उस वैकुंठधामको गया कि–जहां लक्ष्मीके पति विष्णु विराजें हैं॥४४॥यह अजामिल महापापी था. यानी इसने अपना सब ब्राह्मणधर्म डुबा दिया था. दासी घरमें रख छोड़ी थी. और निंद्य कर्म करनेसे पतित हो गया था. अतएव इस हतव्रतको नरकमें डालनेके वास्ते दूत लेनेको आये थे. परंतु भगवन्नाम लेनेसे वह तुरंत पापोंसे मुक्त हो गया ॥ ४५ ॥ मुमुक्षु पुरुषोंके वास्ते पवित्रकीर्ति भगवान्के कीर्तनसे बढ़कर दूसरा कोईभी साधन कर्मबंधन काटनेवाला नहीं

साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिंकरैः ॥ हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥ ४४ ॥ एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ॥ निपात्यमानो निरये हतव्रतः सद्यो विमुक्तो भगवन्नामगृह्णन् ॥ ४५ ॥ नातः परं कर्मनिबंधकृंतनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ॥ न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥ ४६ ॥ य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्याऽनुकीर्तयेत् ॥ ४७ ॥ न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिंकरैः ॥ यद्यप्यमंगलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४८ ॥ म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ॥ अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे अजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

है; क्योंकि इस भगवान्के कीर्तनसे शुद्ध भये पीछे मन पीछा कर्मोंमें आसक्त नहीं होता. और अन्य प्रायश्चित्त कियेभी जांय. तथापि रजोगुण व तमोगुणसे मलिन भयाहुआ मन मलिनही रहता है. पर निर्मल नहीं होता. अर्थात् दूसरे प्रायश्चित्त पापशोधक है. परंतु मनके शोधक नहीं. और यह तौ मनकोही शुद्ध कर देता है. तब पापोंकी तौ बातही कौन ? ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य इस पापहर परमगुह्य इतिहासको भक्ति व श्रद्धाके साथ सुने वा कीर्तन करे ॥ ४७ ॥ वह नरकमें कभी नहीं जाता और यमदूत उसे देखभी नहीं सकते. चाहे कैसाही पापी क्यों न हो ? बेशक वह विष्णुलोक यानी वैकुंठमें विराजता है ॥ ४८ ॥ जब मरताहुआ महापापी अजामिलभी पुत्रके उपचारसे हरिके नामका उच्चारण कर, भगवद्धामको प्राप्त हो गया. तौ जो श्रद्धासे

भगवान्‌का कीर्तन करे, उसका कल्याण होवे, इसमें तौ कहनाही क्या ? ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामस्वामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॥ तीसरे अध्यायमें यमराजने वैष्णवोंके उत्कर्षका वर्णन किया. और अपने दूतोंको शांत करके, उन्हें वैष्णवोंका दास बनाया यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि–यमराज कि–जिनके स्वाधीनमें सब लोक हैं, उन्होंने अपने दूतोंकी वार्ता सुनकर, अपने दूत कि–जिनको इस प्रकार भगवान्‌के पार्षदोंने यमराजकी आज्ञा भंग करके, पीट कर, निकाल दिया था, उसने पीछा क्या कहा ? ॥ १ ॥ हे मुनि महाराज ! यमराजकी आज्ञाका भंग किसी ठौर भया, ऐसे मैंने नहीं सुना, इसवास्ते इस विषयमें हमलोकोंको संदेह है. सो आपविना दूसरा

॥ राजोवाच ॥ निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान्प्रति धर्मराजः ॥ एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥ १ ॥ यमस्य देवस्य न दंडभंगः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ॥ एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं न हि त्वदन्यस्त्विति मे विनिश्चितम् ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ॥ पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमिनीपतिम् ॥ ३ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ कति संतीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ॥ त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥४॥ यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दंडधारिणः ॥ कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥५॥ किंतु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ॥ शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मंडलवर्तिनाम् ॥६॥

कोई काट नहीं सकता ऐसा मुझे निश्चय है ॥ २ ॥ परीक्षित्‌का प्रश्न सुन, शुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! भगवान्‌के पार्षदोंने जिनका उद्यम प्रतिहत करदिया है, ऐसे यमदूतोंने अपने और यमपुरीके राजा यमराजसे विनती की ॥ ३ ॥ यमदूत बोले कि–हे प्रभु ! सात्विक, राजस और तामस कर्म करनेवाले जीवलोकको कर्मका फल देनेवाले न्यायाधीश इस जगत्‌में कितने हैं ? ॥४॥ जो जगत्‌में आज्ञा करनेवाले दंडधारी अध्यक्ष बहुत होवें तौ सुख और दुःख किसको तौ होना चाहिये और किसको न होना चाहिये ॥ ५ ॥ एक अध्यक्ष हां कहेगा तौ दूसरा ना कहेगा, तब इस व्यवस्थासे सुख के दुःख किसीको नहीं होगा. और सब अध्यक्ष एकमत हो जांय तौभी उनको परस्परकी इच्छासे संमति देनीही पड़ेगी, तासोंभी सुखदुःखकी व्यवस्था

नहीं रहेगी, कर्म करनेवाले बहुत लोगोंके अध्यक्षभी बहुत होवेंगे तौ पीछे खंडपति राजाओंके समान अध्यक्षपनभी केवल कहने मात्रका रह जायगा ॥ ६ ॥ हम तौ जानते हैं कि–राजाओंके सहित सर्वप्राणीमात्रके स्वामी, आज्ञा करनेवाले, शिक्षा देनेवाले और मनुष्योंके पुण्यपापका विवेचन करनेवाले, आप एकही हो ॥ ७ ॥ उन आपकी कीहुई आज्ञा अभी जगत्में नहीं चलती; क्योंकि चार अद्भुत सिद्धोंने आज्ञा तोड़ डारी ॥ ८ ॥ पापी अजामिलको आपकी आज्ञासे हम नरकोंमें लाते थे. वहां चार सिद्धोंने बलात्कारसे हमारे पाश काटकर, उसे छुड़ा दिया ॥ ९ ॥ यह वार्ता कहनेको यदि हमें आप योग्य मानते होवें तौ आप हमें कहें. वे कौन थे ? हम उन्हें आपके मुखसे जानना चाहते हैं. अजामिलने 'नारायण' इतना कहा. तहां तौ 'मत डरे'

अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ॥ शास्ता दंडधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥ ७ ॥ तस्य ते विहितो दंडो न लोके वर्ततेऽधुना ॥ चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलंभिता ॥ ८ ॥ नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ॥ व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ॥ ९ ॥ तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ॥ नारायणेत्यभिहिते माभैरित्याययुर्द्रुतम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ॥ प्रीतः स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादांबुजं हरेः ॥ ११ ॥ यम उवाच ॥ परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ॥ यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥ १२ ॥

ऐसे कहतेहुए वे तुर्त वहां आ उपस्थित हुए ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–प्रजानको दंड देनेवाले वे यमराज, इसप्रकार दूतोंके पूंछनेसे प्रसन्न होकर, भगवान्के चरणारविंदका स्मरण करते अपने दूतोंसे यह वचन बोले ॥ ११ ॥ यमराजने कहा कि–स्थावर और जंगम इन दोनोंका स्वामी हमसे बिलकुल जुदाही है. हम तो केवल जंगमोंके, तिनमेंभी केवल मनुष्योंके, तत्रापि (तहांभी) केवल पापियोंकेही स्वामी हैं. और वहभी हम पूर्वोक्त परमेश्वरके वश रहकर, आज्ञा चलाते हैं. जिनके अंशरूप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, संहार होते हैं. तथा नाकमें नाथसे बंधेहुए बैलके समान सर्वलोक जिनके वश हैं उन सर्वके स्वामी परमेश्वरमें तंतुओंमें कपड़ेके जैसे यह सबजगत् ओतप्रोत हो रहा है ॥ १२ ॥

बैलोंको जैसे बड़ी रज्जुसे नाथोंमें बांधकर, रक्खैं. ऐसे इन परमेश्वरने सब लोकोंको ब्राह्मणादि नामसे अपनी वेद-वाणीमें बांध रक्खा हैं. नाम और कर्मरूप बंधनोंसे बँधेहुए सबलोक भयके मारे उनके अधीन रहकर, कर्म करते हैं ॥ १३ ॥ हम (यम), इंद्र, निऋति, वरुण, चंद्रमा, अग्नि, शिव, पवन, सूर्य, ब्रह्मा, अदितिके पुत्र, विश्वेदेवता, वसु, साध्य, मरुद्गण, रुद्र-गण, सिद्धलोक और दूसरेभी भृगुआदि प्रजापति और देवोंके अधिपति, कि-जिनके रजोगुण व तमोगुणका स्पर्शभी नहीं है. और सत्वगुणही जिनमें प्रधान है, वेभी मायाके स्पर्शके हेतु इन परमेश्वरके कर्तव्य कृत्यको नहीं जान सकते. तब इनसे अन्य पुरुष

यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां बध्नाति तंत्यामिव दामभिर्गाः ॥ यस्मै बलिं त इमे नामकर्मनिर्बंधबद्धाश्चकिता वहंति ॥ १३ ॥ अहं महेंद्रो निर्ऋतिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिंचः ॥ आदित्यविश्वेवसवोऽथ साध्या मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥ १४ ॥ अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ॥ यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥ १५ ॥ यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वाऽसुभृतो विचक्षते ॥ आत्मानमंतर्हृदि संतमात्मनां चक्षुर्यथैवाऽऽकृतयस्ततः परम् ॥ १६ ॥ तस्याऽऽत्मतंत्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाऽधिपतेर्महात्मनः ॥ प्रायेण दूता इह वै मनोहराश्चरंति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥ १७ ॥ भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिंगानि महाद्भुतानि ॥ रक्षंति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥ १८ ॥

तौ न जाने, इसमें कहनाही क्या? ॥ १४ ॥ १५ ॥ रूप जैसे अपनेको देखनेवाली चक्षुको नहीं जान सकता. ऐसे प्राणीभी ये परमेश्वर कि जो सर्वजीवोंके अंतर्यामी और द्रष्टा हैं. उन्हें इंद्रियोंसे, मनसे, प्राणसे, हृदयसे के वाणीसे कथमपि (कोईतरहसे भी) नहीं जान सक्ते ॥ १६ ॥ ये जगत्के परमेश्वर हमसे बिलकुल जुदे हैं. इन स्वतंत्र, सर्वोत्कृष्ट, महात्मा और मायाके अधिपति परमेश्वर हरि भगवान्के मनोहर पार्षद जगत्में विचरा करते हैं और उनके रूप गुण और स्वभावभी बहुतकरके भगवान्के जैसेही होते हैं ॥ १७ ॥ जिनका दर्शन होना अतिदुर्लभ है ऐसे और देवतानसे पूजित, महाअद्भुत भगवानके पार्षद भगवानकी

भक्ति करनेवाले मनुष्योंको शत्रुओंसे, मुझसे और अग्निआदि सर्व उपद्रवोंसेभी बचाते हैं ॥ १८ ॥ इन्होंने अधर्मका पक्षपात किया ऐसे मत जानों; क्योंकि बड़े बड़े सिद्ध, मुख्य ऋषि और देवताभी जब साक्षात् भगवान्के नियत कियेहुए धर्मको नहीं जानते. तब मनुष्य, असुर, विद्याधर और चारणआदि तो कहांसे जान सकें ? ॥ १९ ॥ ब्रह्माजी, नारदजी, महादेवजी, सनत्कुमारजी, कपिलदेवजी, मनुजी, प्रल्हादजी, जनकजी, भीष्मजी, बलिजी, शुकदेवजी और हम (यम) ॥ २० ॥ हे दूतो ! ये बारह जनही गुप्त, शुद्ध और बहुत परिश्रमसे जाननेमें आते भगवद्धर्मको जानते हैं, कि–जिस धर्मके जाननेसे मोक्ष मिल जाता है.

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ॥ न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥ १९ ॥ स्वयंभूर्नारदः शंभुः कुमारः कपिलो मनुः ॥ प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥ द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ॥ गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ २१ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः ॥ भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ २२ ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ॥ अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ २३ ॥ एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ॥ विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥ २४ ॥ प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ॥ त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥ २५ ॥

॥ २१ ॥ इस लोकमें मनुष्योंका यही परमधर्म है कि– भगवान्के नाम लेनेआदिसे भगवान्में भक्तियोग प्राप्त हो जाय ॥ २२ ॥ हे पुत्रो ! हरि भगवान्के नामोच्चारणकी महिमा तो देखो, कि–अजामिलभी जिसके उच्चारणसे मृत्युपाशसे छूट गया ॥ २३ ॥ मनुष्योंका पाप दूर होनेके वास्ते इतनाही बहुत है कि–भगवान्के गुण, कर्म और नामका मनुष्य कीर्तन किया करे. क्योंकि अजामिल आप महापापी और मरनेके समय अस्वस्थ था, तोभी ‘ हे नारायण ! ’ इसप्रकार पुत्रको पुकारनेसे पापसे मुक्त हो गया. इतनाही नहीं किंतु मोक्षको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ जो वैद्य मृतसंजीविनी औषधीको नहीं जानते हैं. वे रोगकी नि-

त्तिके वास्ते सूंठ, मिर्च, पीपर और नींबआदि अनेक कडुई कसैली औषधियोंका उपयोग करनेको कहते हैं. ऐसे पूर्वोक्त बारह जनोंके शिवाय दूसरे ऋषि इस अत्यंतगुह्य नामके प्रभावको नहीं जानते. तासों दूसरे बड़े बड़े प्रायश्चित्त बतलाते हैं. अथवा सब लोक मायासे मोहित हैं. और फूलके समान ऊपरसे मधुर लगें ऐसे स्तुतिवाक्योंवाले वेदमेंही आग्रह बांधकर, जड़ बन रहे हैं. तथा यज्ञके जैसे बड़े बड़े कामोंमें लगेहुए हैं. उनको भगवन्नाम लेनेरूप छोटा प्रायश्चित्त बतावेंगे तौ उसमें उनकी श्रद्धा नहीं बँधेगी, इस हेतुसे उन लोकोंने बड़े बड़े प्रायश्चित्त बताये हैं. अथवा सिंह अपने आधीनमें होवे इतनेसे उस सिंहको कोई कुत्ते सियारआदि क्षुद्र जंतुओंके मारनेमें काम नहीं लाते. ऐसे पाप कि-जो अत्यंत तुच्छ है, उसके निवारणके वास्ते परममंगल भगवन्नामका उपयोग करना यह कोई ठीक नहीं, इस हेतुसे उन्होंने बड़े बड़े प्रायश्चित्त बताये हैं अथवा

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनंते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ॥ ते मे न दंडमर्हंत्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हंत्युरुगायवादः ॥ २६ ॥ ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ॥ तान्नोपसीदत हरेर्गदयाऽभिगुप्तान्नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दंडे ॥ २७ ॥ तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुंदपादारविंदमकरंदरसादजस्रम् ॥ निष्किंचनैः परमहंसकुलैरसङ्गैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥ २८ ॥

भगवत्नामका महात्म्य सबके जाननेमें अजाय तौ सबको मोक्ष हो जाय, यह होनाभी योग्य नहीं. इस हेतुसे उन्होंने बड़े बड़े प्रायश्चित्त बताये हैं ॥ २५ ॥ ऐसे विचारसे बुद्धिमान् मनुष्य तौ सर्वप्रकारसे भगवान्की भक्तिरूप उपायही करते हैं. ये मनुष्य मेरे दंडके योग्य नहीं हैं; क्योंकि उनके पापका लेशभी नहीं होता. और कदाचित् होवे तौभी भगवान्का कीर्तनही इस पापको दूर कर देता है ॥ २६ ॥ समदृष्टि होकर, जो साधु पुरुष भगवान्काही शरण ले लेते हैं, उनकी पवित्र कथाओंको देवता और सिद्धलोकभी गाया करते हैं. तासों भगवान्की गदा जिनकी रक्षा करती है, ऐसे पुरुषोंके तो तुम समीपभी मत जाओ; क्योंकि उनको दंड देनेके वास्ते हम तौ क्या वस्तु हैं ? कालभी समर्थ नहीं है ॥ २७ ॥ जो लोक, भगवान्के चरणकमलका मकरंदरूप रस कि-जिसका निष्किंचन और रसके स्वादको जाननेवाले परमहंस लोक निरंतर सेवन करते हैं, उस रससे

विमुख और नरकके मार्गरूप घरमें तृष्णा बांधकर, बैठेहुए हैं उन दुष्ट लोकोंको यहां लाओ ॥ २८ ॥ जिनकी जीभ भगवान-के गुण और नामका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त भगवान्के चरणारविंदका स्मरण नहीं करता, जिनका शिर एकबेरभी भगवान्को न नमा होवे. और जिन्होंने भगवद्व्रत धारण न किये होवें. उन्हें यहां लाओ ॥ २९ ॥ इसप्रकार दूतोंको समझा-कर, भगवानसे क्षमा माँगते हैं. हमारे दूतोंने अजामिलको दुःख देनेरूप जो अन्याय किया है उस विषयमें पुराणपुरुष नारायण भगवान् हमपर क्षमा करें. हम कि–जो अज्ञानी और हाथ जोड़कर, सन्मुख खड़े हैं. तिन निज दासोंपर महापुरुष भगवान्को क्षमा करनी उचित है. भूमा, पुरुष भगवान्को हम प्रणाम करते हैं ॥ ३० ॥ शुकदेवजीने कहा

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविंदम् ॥ कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥ २९ ॥ तत्क्षम्यतां स भगवान्पुरुषः पुराणो नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ॥ स्वानामहो न विदुषां रचितांजलीनां क्षांतिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥ ३० ॥ तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मंगलमंहसाम् ॥ महतामपि कौरव्य विद्ध्येकांतिकनिष्कृतम् ॥ ३१ ॥ शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ॥ यथा सुजातया भक्त्या शुद्ध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ॥ ३२ ॥ कृष्णांघ्रिपद्ममधुलिण्न पुनर्विसृष्टमायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ॥ अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुमीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥ ३३ ॥

कि– महाराज ! इसलिये तुम जानो, कि–विष्णु भगवानका कीर्तनही जगत्के बड़े बड़े पापोंका नाश करनहारा, महामंगलीक, अव्यभिचारी प्रायश्चित्त है ॥ ३१ ॥ भगवान्के उत्तम पराक्रमोंको निरंतर सुनने और कीर्तन करनेसे प्राप्त भयी दृढ़ भक्तिसे जैसा अंतःकरण शुद्ध होता है, ऐसा व्रतआदि प्रायश्चित्तोंसे नहीं होता ॥ ३२ ॥ भगवान्के चरणकमलके रसका जिसने स्वाद ले लिया है वह मनुष्य तो दुखदायी विषयसुख कि–जिन्हें प्रथमसेही तर्क कर रक्खे हैं. उनमें पीछी प्रीति नहीं करता.

और अभक्त मनुष्य तौ तृष्णासे पराभव पाकर, अपने पापोंकी निवृत्तिके वास्तेभी पीछा कर्मरूपही प्रायश्चित्त करता है. कि-जिससे फिर पापके मूलरूप विषयोंमें आसक्ति हुआ करती है ॥ ३३ ॥ हे राजा ! इसप्रकार अपने स्वामी यमराजके कहेहुए भगवानके माहात्म्यको सुनकर, यमदूतोंने वह बात विस्मयरूप नहीं मानी. किंतु सच्ची मानी और तबसे 'कदाचित् भगवद्भक्त हमें नहीं मार डारें ?' ऐसी शंकासे अब ये यमदूत भगवान्के भक्तके सामने देखनेमेंभी डरा करते हैं ॥ ३४ ॥ महात्मा अगस्त्य मुनिने मलयाचलमें बैठकर, भगवान्का पूजन करते समय लोकोंके विश्वास हो जानेके वास्ते बारंबार भगवान्के चरणोंका

इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिंकरास्ते ॥ नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशंकमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततःप्रभृति स्म राजन् ॥३४॥ इतिहासमिमं गुह्यं भगवान्कुंभसंभवः ॥ कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥ ॥राजोवाच ॥ देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ॥ सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायंभुवेंऽतरे ॥ १ तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन्यथा ॥ अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान्परः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ इति संप्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः ॥ प्रतिनंद्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥ ३ ॥

स्पर्श करते यह अजामिलका गुह्य इतिहास कहा है ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामशर्मविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ चौथे अध्यायमें प्रजानकी सृष्टिके वास्ते दक्षने तपसे और हंसगुह्य नाम स्तोत्रसे भगवानका आराधन किया यह कथा होगी ॥१॥ परीक्षितने कहा कि-हे भगवन् ! स्वायंभुव मन्वंतरमें देव, असुर, नर, नाग, मृग और पक्षियोंकी जो सृष्टि आपने संक्षेपसे कही उसका विस्तार मैं आपसे अच्छीतरह जानना चाहता हूं. ऐसेही ब्रह्माजीने जिस शक्तिसे जिस प्रकार सृष्टि रची. उसे तथा उसके प्रकारको और पीछेसे भयीहुई सृष्टिकोभी मैं जानना चाहता हूं ॥ १ ॥ २ ॥ सूतजीने कहा कि-हे मुनिश्रेष्ठो ! महायोगी शुकदेवजी इसप्रकारका राजाका प्रश्न सुनकर, उसका सत्कार करके बोले ॥ ३ ॥

शुकदेवजीने कहा कि–जब प्राचीनबर्हिराजाके पुत्र प्रचेता समुद्रमेंसे बाहिर निकले. तब पृथ्वीको उन्होंने वृक्षोंसे आच्छादित भयीहुई देखी ॥ ४ ॥ तपके प्रभावसे जिनका क्रोध बढ़ा है, ऐसे ये प्रचेता वृक्षोंपर क्रोध कर, सर्ववृक्षमात्रको भस्म करनेकी इच्छासे अपने मुखमेंसे वायु और अग्निको प्रगट करने लगे ॥ ५ ॥ हे परीक्षित् ! इस वायु और अग्निसे वृक्ष जलने लगे, तिन्हें देख कर, वनस्पतियोंके राजा चंद्रमाने उनका क्रोध शांत करनेके वास्ते इसप्रकार कहा– ॥ ६ ॥ हे महाभागो ! विचारे दीन वृक्षोंपर आपको क्रोध नहीं करना चाहिये. क्योंकि तुम तो प्रजाकी वृद्धि करनेवाले प्रजापति नियत हुए हो ॥ ७ ॥ अहो ! प्रजापति-

श्रीशुक उवाच ॥ यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ॥ अंतःसमुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥ ४ ॥ द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ॥ मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥ ४ ॥ ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह ॥ राजोवाच महान्सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥ ६ ॥ मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ॥ विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥ ७ ॥ अहो प्रजापतिपतिर्भगवान्हरिरव्ययः ॥ वनस्पतीनोषधींश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥ ८ ॥ अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ॥ अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥ ९ ॥ यूयं च पित्राऽन्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ॥ प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ ॥ १० ॥ आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ॥ पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥ ११ ॥ तोकानां पितरौ बंधुर्दृशः पक्ष्म स्त्रियः पतिः ॥ पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥ १२ ॥

योंकेभी पति, अविनाशी–और सर्वव्यापक भगवानने प्रजाओंके अन्नके सुभीतेके लिये वनस्पती और ओषधियोंको पैदा किया है ॥ ८ ॥ जंगम जीवोंका तो स्थावर अन्न है. पैरसे चलनेवाले जीवोंका पांवविनाके जीव अन्न हैं. हाथवालोंका हाथविनाके जीव अन्न हैं. और दो पैरवाले जीवोंका चार पैरवाले अन्न हैं ॥ ९ ॥ हे निष्पापो ! तुम्हारे पिताने और ब्रह्माजीने आज्ञाकी है कि–'तुम प्रजा रचो' फिर तुम प्रजाओंके अन्नरूप वृक्षोंको भस्म करना किसप्रकार चाहते हो ? ॥ १० ॥ जिस मार्गसे तुम्हारे पिता, पितामह और प्रपितामह चले हैं. उसी सत्पुरुषोंके मार्गमें चलो, इस देदीप्यमान क्रोधका त्याग करो ॥ ११ ॥ बालकोंके

रक्षक माता पिता हैं. नेत्रोंकी पालक पलकें हैं. स्त्रीका रक्षक पति है. भिक्षुकलोकोंका रक्षक गृहस्थाश्रमी है. अज्ञानियोंका पालक ज्ञानी है. और प्रजाओंका रक्षक राजा है ॥ १२ ॥ सर्वप्राणीमात्रमें अंतर्यामीरूपसे भगवान् रहे हैं. तासों सकलजगत् भगवद्रूप है, ऐसे जानों. ऐसे जाननेहीसे भगवान् तुमपर प्रसन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ देहमें अकस्मात् उत्पन्न भयेहुए भयंकर क्रोधको जो मनुष्य आत्मविचारके शांत करे, वह संसारसे बंधनसे मुक्त हो जाय ॥ १४ ॥ बस, बिचारे दीन वृक्ष बहुत दग्ध हो चुके. जो वृक्ष शेष बचे हैं, उनका और आपका भला होओ. इन वृक्षोंकी पोषण कीहुई इस उत्तम कन्याको अपनी स्त्री बओना ॥१५॥

अंतर्देहेषु भूतानामात्माऽऽस्ते हरिरीश्वरः ॥ सर्वं तद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥ १३ ॥
यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ॥ आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ॥ १४ ॥
अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ॥ वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥ १५ ॥
इत्यामंत्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ॥ सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥ १६ ॥
तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल ॥ यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥ १७ ॥ यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥ १८ ॥ मनसावसृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ॥ देवासुरमनुष्यादीन्नभस्थलजलौकसः ॥ १९ ॥ तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ॥ विंध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद्दुष्करं तपः ॥ २० ॥

महाराज ! इस प्रकार चंद्रमा उन्हे शांतकर तथा अप्सराकी वह रूपवती कन्या दे, वहांसे गया. और प्रचेतानने धर्मकी रीतिसे उस कन्याके साथ विवाह किया ॥ १६ ॥ उनके उस स्त्रीमें प्राचेतस दक्षनाम पुत्र हुआ. उसकी प्रजाकी रचनासे त्रिलोकी तमाम भरगयीं ॥ १७ ॥ कन्याओंपर परमदयालु दक्षने वीर्यसे और मनसे जिस प्रकार प्राणियोंको पैदा किया. वह मैं कहता हूं--सो सावधान होकर, सुनो ॥१८॥ प्रथम तौ दक्षने मनहीसे जल, स्थल और आकाशमें रहनेवाली अनेक प्रकारकी प्रजा तथा देवता, दैत्य और मनुष्यआदि पैदा किये ॥ १९ ॥ परंतु वह प्रजाकी सृष्टि बढ़ी नहीं. तिसे देखकर, वह प्रजापति विंध्यपर्वतके चरणके

जैसे तलेके पर्वतोंमें जा, दुश्चर तप करने लगा ॥ २० ॥ वहां पापोंको दूर करनेवाला, परम उत्तम एक अघमर्षण नाम तीर्थ है. उसमें तीनों समय स्नान कर, तपस्यासे हरिभगवान्‌को प्रसन्न करने लगा ॥ २१ ॥ और हंसगुह्यनाम स्तोत्रसे अधोक्षज भगवान्‌की स्तुति करने लगा. अब हरि भगवान् दक्षपर जिस प्रकार स्तुति करनेसे प्रसन्न हुए. वह मैं कहता हूं–सो सुनो ॥ २२ ॥ दक्षने स्तुति की कि– सफल सामर्थ्यवाले, जीव व मायाके नियंता, प्रमाणरहित, स्वयंप्रकाश और देहादिकको सत्य माननेवाले, जीव जिनके स्वरूपको नहीं जानते ऐसे सर्वोत्तम देवको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २३ ॥ रूपादिक विषय जैसे अपने मित्र

तत्राघमर्षणंनाम तीर्थं पापहरं परम् ॥ उपस्पृश्यानुसवनं तपसाऽतोषयद्धरिम् ॥ २१ ॥ अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवंतमधोक्षजम् ॥ तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यतो हरिः ॥ २२ ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबंधवे ॥ अदृष्टधाम्ने गुणतत्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयंभुवे ॥ २३ ॥ न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन्संवसतः पुरेऽस्मिन् ॥ गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥ २४ ॥ देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ॥ सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनंतमीडे ॥ २५ ॥ यदोपरामो मनसो नामरूपरूपस्य दृष्टस्मृतिसंप्रमोषात् ॥ य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥ २६ ॥

चक्षुआदि इंद्रियोंकी सहायताको और प्रकाशत्वको नहीं जानते ऐसे जीव इस शरीरमें रहनेपरभी अपने साथ रहनेवाले प्रपंचके द्रष्टा और सखारूप जिन अंतर्यामीकी मैत्री–(इंद्रियोंके प्रवर्तकत्वआदि) को नहीं जानता तिन परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २४ ॥ देह, प्राण, इंद्रियां, अंतःकरण, पंचमहाभूत और पंचमहाभूतोंके विषय ये सब आत्माको और अपने आत्माको जाननेवाली इंद्रियोंको और उनके नियंता देवोंको नहीं जानते और जीव तो इन तीनोंको तथा इनके मूलभूत गुणोंकोभी जानता है, तथापि अपना स्वरूप कि–जो सर्वज्ञ और अनंत है, उसे नहीं जानता. उस स्वरूपकी मैं स्तुति करता हूं-ईश्वर होनेसे सर्वज्ञ और अनंत कहा ॥ २५ ॥ नाम और रूपको पैदा करनेवाला मन जब समाधिअवस्थामें संसारके दर्शन

और स्मरणका नाश होनेसे शांत हो जाता है, तब जो परमात्मा केवल अपने स्वरूपसेही प्रतीत होते हैं. उन शुद्ध और शुद्ध मनमें प्रतीत होते परमात्माको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २६ ॥ यज्ञ करनेवाले लोग सामधेनीनामक पन्द्रह मंत्रोंसे प्रकाश्य अलौकिक अग्निको, जैसे अरणिमेंसे खैंच लेते हैं, ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष अपने गूढ़ आत्माको विचारसे हृदयमें स्थिर करके प्रकृति

मनीषिणोऽतर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ॥ वह्निं यथा दारुणि पांचदश्यं मनीषया निष्कर्षति गूढम् ॥ २७ ॥ स वै ममाशेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥ यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाऽक्षिभिर्वा मनसा वोत यस्य ॥ माभूत्स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत्स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥ २९ ॥

पुरुष, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच विषय, (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) तीन गुण, (सत, रज, तम) ग्यारह इंद्रियां (पांच कर्मेन्द्रियां पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन) और पंचमहाभूतोंमेंसे खैंच लेते हैं ॥ २७ ॥ सर्वप्रकारकी मायाका निषेध किया जाय तब कैवल्यसुखमें प्रतीत होते, सर्वनाम सर्वरूप और जिनकी मायाशक्तिका निरूपण नहीं हो सकता ऐसे, वे भगवान् मुझपर प्रसन्न होओ ॥ २८ ॥ वचनसे कहनेमें आता, बुद्धिसे निश्चय करनेमें आता, इंद्रियोंसे ग्रहण करनेमें आता और मनसे संकल्प

---

१ अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः ॥ तस्य या प्राङ्मुखी शाखा वोदीची वोर्ध्वगाऽपि वा ॥ १ ॥ अरणिस्तन्मयी प्रोक्ता तन्मय्येवोत्तराऽरणिः ॥ २ ॥ संसक्तमूलो यः शम्याः स शमीगर्भ उच्यते ॥ अलाभे त्वशमीगर्भादुद्धरेदविलम्बितः ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिरंगुष्ठ दैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् । चत्वार उच्छ्रये मानमरण्योः परिकीर्तितम् ॥ ॥ ४ ॥ इति कात्यायनः । अर्थ– जो पीपल शमीगर्भ और उत्तम भूमिमें उत्पन्न है उसकी जो शाखा पूर्वको तथा उत्तरको अथवा ऊपरको गई है ॥ १ ॥ उसकी अरणि तथा उत्तराऽरणि होती है ॥ २ ॥ शमीगर्भ किसे कहना सो लिखते हैं– जिस पीपलकी जड़ शमी (छिउकुरिमें) लगी है उसे शमीगर्भ कहते हैं. यदि ऐसा पीपल न मिले तो जो पीपल शमीगर्भ न हो उसीसे जल्दी अरणी बनानेके वास्ते लकड़ी लेने ॥ ३ ॥ अब अरणि और उत्तरारणिका प्रमाण लिखते हैं. चौविस २४ अँगूठे चौडाईमें तथा चार अँगूठे लंबाईमें लेना इतना प्रमाण अरणि और उत्तरारणिका कहा है. और क्षत्रियोंकी अरणि उत्तरारणिका चौंड़ाईमें छह अंगूठाभी प्रमाण कहा है ॥ ४ ॥ यह कात्यायनस्मृतिमें लिखा है.

करनेमें आता जो कुछ है, वह सब भगवान्का स्वरूप नहीं है; क्योंकि वह सब गुणोंकाही स्वरुप है, भगवान् तौ गुणोंके प्रलयसे और उत्पत्तिसे जाननेमें आते हैं. जो चैतन्यरुप अधिष्ठान न होवे तौ सृष्टि वा प्रलय होनेका संभवही नहीं है ॥ २९ ॥ जिसमें जगत् रहा है, वह ब्रह्म है. जिसमेंसे जगत् निकलता है वह ब्रह्म है. जिस साधनसे जगत् पैदा होता है वह ब्रह्म है. जिसका जगत् होता है वह ब्रह्म है. जिसके वास्ते जगत् होता है वह ब्रह्म है. जो करनेमें आता है वह ब्रह्म है. जो करता है वह ब्रह्म है. क्रियाके वास्ते किसीसेभी जो प्रेरित होता है, क्रियानके बिना जो संबंध और प्रकार है वो ब्रह्म है. सबका कारण है. सबसे पहले प्रसिद्ध है. प्रथमसे और पीछेसे पैदा भयेहुए सब पदार्थोंका यह मूल है इससे भिन्न जातिका कुछभी नहीं है. और सजातीयभी कुछभी नहीं है ॥ ३० ॥ जब सब ब्रह्मरुप और ब्रह्मही कारण है. तब मीमांसकआदि विवाद क्यों करते हैं कि– यह

यस्मिन्यतो येन च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च ॥ परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्ध तद्ब्रह्म तद्धे-तुरनन्यदेकम् ॥ ३० ॥ यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भवंति ॥ कुर्वंति चैषां मुहु-रात्ममोहं तस्मै नमोऽनंतगुणाय भूम्ने ॥ ३१ ॥ अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोरेकस्थयोर्भि-न्नविरुद्धधर्मयोः ॥ अवेक्षितं किं च न योगसांख्ययोः समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥ ३२ ॥

जगत् सदा ऐसाका ऐसाही रहता है, यह जगत् पैदा नहीं होता, तब कहते हैं कि–विवाद करनेवाले लोकोंमें जो कुछ विवाद है और एकमतता है, वह सब परब्रह्मकी माया और अविद्याआदि शक्तियोंमेंही कल्पित है. किंतु परब्रह्मके स्वरूपमें इनमेंसे कुछभी नहीं है. ब्रह्म-वेत्ता लोक समझातेभी हैं. तथापि ये विवाद करनेवाले लोक माया और अविद्याआदि शक्तियोंसेही वारंवार मोहित हो जाते हैं. ऐसे अनंत गुणवाले भूमा (स्वप्रकाश) भगवान्को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३१ ॥ योगशास्त्रमें कहा है कि–भगवान् सावयव हैं और सांख्य-शास्त्रमें कहा है कि–भगवान् निरवयव हैं. तो यह परस्पर विरुद्ध विवाद भगवान्के अवयवोंके विषयमेंही है. पर भगवान्के स्वरूपमें नहीं. विवादके विषय भिन्न भिन्न हैं परंतु विवाद एकही वस्तुमें समाया हुआ है. हां कहनेमें आता है वहभी भगवान्के अवयव संबंधी है और ना कहनेमें आता है, वहभी भगवान्के अवयव संबंधी है परंतु भगवान्के स्वरूपमें तौ किसी प्रकारका विवाद

हैही नहीं; क्योंकि भगवान् नहीं हैं ऐसे तो इन दोनों शास्त्रोंमेंसे कोईभी नहीं कहता. और यह विवाद भगवान्तक पहुँचही नहीं सक्ता; क्योंकि उसका विषय केवल अवयव हैं. भगवान्का स्वरूप इस विवादका विषय नहीं है. किंतु विवादके विषयका अधिष्ठान है. अधिष्ठान न होवे तौ अवयवोंकी कल्पना और अवयवोंका निषेधही नहीं होसक्ता. तासों जो स्वरूप इन दोनों विवादोंको आश्रय देनेवाला, दोनोंके अनुकूल, दोनोंसे भिन्न और दोनोंके सदृश है वही ब्रह्म है ॥ ३२ ॥ जो अनंत भगवान् स्वयं नामरूपरहित हैं, तौभी अपने चरणोंकी भक्ति करनेवालोंके ऊपर अनुग्रह करनेके वास्ते पृथक् २ जन्म धारण करके और कर्म करके नामरूपको ग्रहण करते हैं, वे परमेश्वर मुझपर प्रसन्न होओ ॥ ३३ ॥ वायु एकही है, परंतु जैसे भिन्न २ पुष्पादिक

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननंतः ॥ नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥ ३३ ॥ यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ॥ यथाऽनिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्षणे ॥ आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ३५ ॥ कृतपादः सुपर्णांसे प्रलंबाष्टमहाभुजः ॥ चक्रशंखासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥ ३६ ॥ पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ वनमालानिवीतांगो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥ ३७ ॥

पदार्थोंके संबंधके हेतु अनेक गंधवाली प्रतीत होती है, और जुदे २ रंगवाली धूलिके संबंधके हेतु अनेक रूपवाली प्रतीत होती है, ऐसे जो अंतर्यामी भगवान् एकही हैं तथापि जुदी २ उपासनाओंके मार्गोंसे और वैसे वैसे प्रकारकी वासनाओंके अनुसारसे लोकोंको भिन्न भिन्न देवतारूपसे प्रतीत होते हैं. वे ईश्वर मेरे मनोरथको पूर्ण करो ॥ ३४ ॥ शुकदेवजीने कहा कि—हे कुरुश्रेष्ठ ! इसप्रकार दक्षने स्तुति की, तब भक्तवत्सल भगवान्ने उस अघमर्षण नाम तीर्थमें स्तुति करते दक्षप्रजापतिको प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ ३५ ॥ ये भगवान् गरुड़के कंधेपर चरण धरे विराजे थे. लंबी आठ भुजा शोभ रही थीं, उनमें चक्र, शंख, खड्ग ढाल धनुष, बाण, पाश व गदा धरे थे ॥ ३६ ॥ पीले पट पहने, मेघसे श्यामवर्ण सप्रन्नमुख व प्रसन्ननयन, शरीरमें वनमाला पहिरे,

श्रीवत्स और कौस्तुभ रत्न लसाये ॥ ३७ ॥ बड़े किरीट और कुंडल धरे, मकराकृत कुंडल झलकाये, कटिमेखला (कड़गता), अंगूठियां वलय (कंकण), नूपुर और अंगद(बजुल्ला) की शोभा सजाये॥३८॥त्रिलोकीको मोहित करनेवाला रूप धारण किये, नारद और सुनंदनंदआदि पार्षदोंसे घिरेहुए, देवतानके यूथपतियोंसे स्तुति किये जाते, सिद्ध, गंधर्व और चारणोंसे गाये जाते, त्रिलोकीनाथके ॥ ३९ ॥ उस महाअद्भुत स्वरूपका दर्शन कर, दक्ष बहुत प्रसन्न हुआ. और साध्वसके साथ प्रजापति दक्षने पृथ्वीपर साष्टांग दंडवत् की ॥ ४० ॥ उस समय प्रवाहोंसे नदियोंके समान इंद्रियां बहुत आनंदसे भर जानेके हेतु वह कुछभी न बोल सका

महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुंडलः ॥ कांच्यंगुलीयवलयनूपुरांगदभूषितः ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत्त्रिभुवनेश्वरः ॥ वृतो नारदनंदाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥ स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगंधर्वचारणैः ॥ ३९ ॥ रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ॥ ननाम दंडवद्भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ॥ ४० ॥ न किंचनोदीरयितुमशकत्तीव्रया मुदा ॥ आपूरितमनोद्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥ ४१ ॥ तं तथाऽवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् ॥ चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ॥ यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥ ४३ ॥ प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः ॥ ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा भवो भवंतश्च मनवो विबुधेश्वराः ॥ विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥ ४५ ॥ तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाऽऽकृतिः ॥ अंगानि क्रतवो जाता धर्म आत्माऽसवः सुराः ॥ ४६ ॥

॥ ४१ ॥ इस प्रकार प्रणाम करते प्रजाकी इच्छावाले अपने भक्त प्रजापति दक्षसे सर्वप्राणीमात्रके चित्तको जाननेवाले भगवान्ने यह बचन कहा ॥ ४२ ॥ भगवान् बोले कि–हे महाभाग प्रचेतानके पुत्र दक्ष ! तुम तपके प्रभावसे सिद्धहुए हो; क्योंकि परिपूर्ण श्रद्धासे मेरेमें दृढ़ भक्तिको प्राप्त हुए हो ॥ ४३ ॥ हे प्रजानाथ ! तुम्हारा तप जगत्की वृद्धि करनेके वास्ते है. इसीसे मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, प्राणियोंकी वृद्धि होवे, यह मेरी इच्छा है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, महादेव, तुम प्रजापति, मनु और लोकपाल येसब जगतकी उत्पत्तिके हेतु मेरी विभूति प्रगट हुए हो ॥ ४५ ॥ तप यानी यमनियमआदिके साथ जो ध्यान है, वह मेरा

हृदय है. मंत्रका जप मेरा देहरूप है. क्रिया यह मेरी आकृति हैं. यज्ञ मेरे अंगरूप हैं.धर्म मेरा मनरूप है. देवता मेरे प्राणरूप हैं ॥ ४६ ॥ सृष्टिके पहले मैंही था, भीतर या बाहिर कुछभी नहीं था, चैतन्यमात्र, इंद्रियोंसे जाननेमें न आवे ऐसा और सब ओरसे मानों सो रहा हो ऐसा मेरा स्वरूपही उस समयमें था ॥ ४७ ॥ अनंत और अनंत गुणवाले मेरे स्वरूपमें जब ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ. उसी समयमें सर्वके आदि ब्रह्मा कि-जो अयोनिज कहलाते हैं वे उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ मेरी शक्तीसे उत्पन्न भये हुए और सृष्टि करनेका उद्यम करते ये बड़े देव ब्रह्माजी जब अपने आत्माको अशक्तके जैसा मानने लगे ॥ ४९ ॥ तव मेरे कहनेसे

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्किंचांतरं बहिः ॥ संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥ ४७ ॥ मय्यनंतगुणेऽनंते गुणतो गुणविग्रहः ॥ यदासीत्तत एवाद्यः स्वयंभूः समभूदजः ॥ ४८ ॥ स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ॥ मेनेऽखिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥ ४९ ॥ अथ मेऽभिहितो देवस्तपो तप्यत दारुणम् ॥ तव विश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥ ५० ॥ एषा पंचजनस्यांग दुहिता वै प्रजापतेः ॥ असिक्नीनाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥ ५१ ॥ मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ॥ मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥ ५१ ॥ त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया ॥ मदीयया भविष्यंति हरिष्यंति च मे बलिम् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः ॥ स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥

उन्होंने बड़ा विकट तप किया. और उस तपके प्रभावसे प्रथम उन्होंने तुम नौ ९ प्रजापतियोंको पैदा किया ॥ ५० ॥ हे प्रजापति ! इस पंचजन प्रजापतिकी कन्या असिक्नीको अपनी स्त्री ग्रहण कर ॥ ५१ ॥ मैथुन धर्मवाली इस स्त्रीमें मैथुन धर्मवाला तू अब इस प्रजाकी सृष्टिको फिर बहुत बढ़ावेगा ॥ ५२ ॥ अब तेरे पीछे होनेवाली सब प्रजा मेरी मायाके प्रभावसे मैथुनधर्महीसे उत्पन्न होगी. और मेरी इच्छाके अनुसार बर्तती मेरेको भेंटें अर्पण करेगी ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-त्रिलोकीके पालक हरि, दक्षप्रजापतिको इसप्रकार कहकर, उसके देखते २ स्वप्नमें देखेहुए पदार्थकी नाईं वहीं अंतर्धान हो गये ॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते महा० षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पांचवें अध्यायमें अपने पुत्रोंको नारदजीने कूटवचन कहकर, बिगाड़ दिया. यह सुनकर, दक्ष प्रजापतिने नारदजीको श्राप दिया-यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-भगवान्‌की मायासे उत्तेजन पायेहुए उस दक्षप्रजापतिने उस पंचजन प्रजापतिकी कन्या असिक्नीमें हर्यश्वनामक दश सहस्र पुत्र पैदा किये ॥ १ ॥ हे राजा ! एक आचार और एक स्वभाववाले ये दक्षके पुत्र प्रजाकी सृष्टि रचेनेके वास्ते पिताकी आज्ञासे पश्चिमदिशामें गये ॥ २ ॥ उस दिशामें मुनि और सिद्ध लोकोंसे सेवित " ना-

श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां स पांचजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ॥ हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद्विभुः ॥ १ ॥ अपृथक्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप ॥ पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥ २ ॥ तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिंधुसमुद्रयोः ॥ संगमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ ३ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥ ४ ॥ तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यंत्रिताः ॥ प्रजाविवृद्धये यत्तान्देवर्षिस्तान्ददर्श ह ॥ ५ ॥ उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ अदृष्ट्वांऽतं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥ ६ ॥ तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् ॥ बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥ ७ ॥ नदीमुभयतो वाहां पंचपंचाद्भुतं गृहम् ॥ क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयं भ्रमिम् ॥ ८ ॥

रायणसर " नाम तीर्थ है; कि-जहां सिंधुनदी और समुद्रका संगम होता है ॥ ३ ॥ उस तीर्थमें स्नान करनेहीसे उनके मनके मैल दूर होगये. और परमहंस धर्ममेंभी उनके मनमें विचार उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ पिताकी आज्ञासे उग्र तप करते और प्रजाकी वृद्धिके वास्ते उद्योग करते उन हर्यश्वोंको नारदजीने दर्शन दिया ॥ ५ ॥ फिर नारदजीने उन हर्यश्वोंसे कहा कि-ये हर्यश्वो ! तुम कि-जो प्रजाके पालक होनेपरभी अज्ञानी हो. वे पृथ्वीका अंत देखे विना प्रजाकी सृष्टि किसप्रकार करोगे १, ॥ ६ ॥ तथा एक पुरुषवाला देश २, और जिसमें निकलनेका मार्ग देखनेमें नहीं आता ऐसी गुफा ३, बहुतरूप धरनेवाली स्त्री ४, व्यभिचारिणीका पति पुरुष ५, ॥ ७ ॥ दोनों तर्फ बहनेवाली नदी ६, पचीस पदर्थोंसे अद्भुत प्रतीत होताहुआ वर ७, किसी समय विचि-

त्र कथा करताहुआ हंस ८, अपने आप फिरताहुआ और छूरे व वज्रोंसे बनाहुआ तीक्ष्ण चक्र ९, ॥ ८ ॥ और अपने सर्वज्ञ पिताकी आज्ञा १० इतने दश पदार्थोंको विना जाने तुम मूर्खलोक किसप्रकार सृष्टि रचोगे ? ॥ ९ ॥ शुकदेवजी बोले कि–ये हर्यश्व यह बात सुनकर, अपनी स्वतःसिद्धविचारवाली बुद्धिहीसे इन नारदजीके कूट वाक्योंका बिचार करने लगे ॥ १० ॥ हर्यश्वोंने विचार किया कि–अनादि और आत्माको जन्म देनेवाला जो लिंगशरीर है, वही पृथ्वीको स्थानीय है. इस जीवसंज्ञक लिंगशरीरका नाश देखे विना मोक्षमें उपयोगी न होवे ऐसे कर्म करनेसे क्या होना है ? १, ॥ ११ ॥ सर्वके साक्षी, स्वाश्रय और

कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ॥ अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ॥ वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विमम्रशुर्धिया ॥ १० ॥ भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबंधनम् ॥ अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ ॥ ११ ॥ एकएवेश्वरस्तुर्यो भगवान्स्वाश्रयः परः ॥ तमदृष्ट्वाऽभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १२ ॥ पुमान्नैवैति यद्गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा ॥ प्रत्यग्धामाऽविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १३ ॥ नानारूपाऽत्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता ॥ तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १४ ॥ तत्संगभ्रंशितैश्वर्यं संसरंतं कुभार्यवत् ॥ तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १५ ॥

सर्वसे पर इकले ईश्वर इस ब्रह्मांड अथवा देहरूप देशमें रहे हैं, उन नित्यमुक्त पुरुषको देखे विना उनके अर्पण नहीं किये जाते कर्म करनेसे क्या होगा ? २ ॥ १२ ॥ जैसे पातालरूप गुफामें गयाहुआ मनुष्य पीछा नहीं आता, ऐसे जिन स्वयंप्रकाश परब्रह्मको पहुंचकर, पुरुष पीछा नहीं आता, उन परब्रह्मरूप गुफाको विना जाने विनाशी स्वर्गादिकोंके साधनभूत. कर्म करनेसे क्या होना है ? ३ ॥ १३ ॥ अनेकप्रकारके रूप और गुणवाली अपनी बुद्धिही व्यभिचारिणी स्त्री है, उसके विवेकको पाये विना अशांत कर्म करनेसे यहां क्या होना है ४ ॥ १४ ॥ जीव कि–जो व्यभिचारिणी स्त्रीके पतिकी नाईं व्यभिचारिणी बु-

द्धिके दियेहुए सुखदुःखको भोगा करता है और उसके संगसे अपनी स्वतंत्रताको खो बैठा है, उसे जाने बिना बुद्धिके अविवेकसे प्राप्त भयेहुए कर्म करनेसे यहां क्या होना है? ५ ॥ १५ ॥ दोनों तरफ बहनेवाली जो नदी कही वह माया है क्योंकि वह माया, सृष्टि तथा प्रलय ये दोनों काम करती है. और अपने भीतर पड़ेहुए जीवोंके किनारे पहुचनेमें अर्थात् तप, विद्या-आदिकी प्राप्तिमें महाकष्ट यानी क्रोध, अहंकारआदिसे दारुण दुःख देती है.तासों इस मायाकी नहीं जाननेवाले असावधान पुरुषके मायिक कर्म करनेसे क्या हाना है ? ६ ॥ १६ ॥ कार्य और कारणोंसे बनेहुए शरीका अधिष्ठाता अंतर्यामी पुरुषही पचीस तत्त्वोंका आश्रयरूप घर है, उसे विना जाने मिथ्या स्वतंत्रता मानकर, करनेमें आतेहुए कर्मोंसे क्या होना है ? ७ ॥ १७ ॥ जो ईश्वरका प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र है, उसे हंसरूप समझना चाहिये; क्योंकि हंस

सृष्ट्यप्ययकरीं मायां वेलाकूलांतवेगिताम् ॥ मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १६ ॥ पंचविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् ॥ अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १७ ॥ ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बंधमोक्षानुदर्शनम् ॥ विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १८ ॥ कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् ॥ स्वतंत्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १९ ॥ शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् ॥ कथं तदनुरूपाय गुणविश्रंभ्युपक्रमेत् ॥ २० ॥ इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः ॥ प्रययुस्तं परिक्रम्य पंथानमनिवर्तकम् ॥ २१ ॥

जैसे दूध और पानीको जुदा जुदा कर देता है, तैसे यह शास्त्र जड़ और चैतन्यको जुदा जुदा कर देता है और बंध व मोक्ष-संबधी अद्भुत वार्तायें कहता है, ऐसे शास्त्रका अभ्यास किये विना बहिर्मुख कर्म करनेसे क्या होना है ? ८ ॥ १८ ॥ अपने आप फिरनेवाला जो चक्र कहा गया वह कालचक्र है क्योंकि वह सर्वजगत्को खैंचा करता है. यह तीक्ष्ण है और स्वतंत्र है उस कालचक्रको विना जाने घने विघ्नवाले कर्म करनेसे यहां क्या होना है? ९ ॥ १९ ॥ मनुष्य कि–जो केवल निवृत्तिकेही योग्य है, उसे शास्त्ररूप पिता निवृत्तिके लियेही आज्ञा करता है, उस आज्ञाको नहीं जाननेवाले मनुष्यको प्रवृत्तिमार्गमें विश्वास रखकर, सृष्टिआदिमें कैसे प्रवर्त्तना चाहिये ? १० ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! इस प्रकार निश्चय

करके, वे एकचित्तवाले हर्यश्व, नारदजीको प्रदक्षणाकर, मुक्तिके मार्गको सिधारे ॥ २१ ॥ और नारदजीभी स्वररूप ब्रह्ममें प्रत्यक्ष प्रतीत होते भगवान्‌के चरणारविंदमें अखंड चित्त रखकर, लोकोंमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ नारदजीने उत्तम शीलवाले पुत्रोंका नाश कर दिया- ये समाचार सुनकर, 'उत्तम प्रजा शोकका स्थान है' ऐसे शोक करता दक्षप्रजापति पश्चात्ताप करने लगा ॥ २३ ॥ फिर ब्रह्माजीने सांत्वना दी. तब दक्ष प्रजापतिने—अपनी स्त्री पांचजन्यामें फिर शबलाश्व नाम एकसहस्र पुत्र पैदा किये ॥ २४ ॥ प्रजाकी सृष्टिरचनाके वास्ते पिताने आज्ञा की. तब वे शबलाश्वभी नियम धारण कर, नारायणसर कि—जहां

स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदांबुजे ॥ अखंडं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥ २२ ॥ नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् ॥ अन्वतप्यत कः शोचन्सुप्रजास्त्वं शुचां पदम् ॥ २३ ॥ स भूयः पांचजन्यायामजेन परिसांत्वितः ॥ पुत्रानजनयद्दक्षः शबलाश्वान्सहस्रशः ॥ २४ ॥ तेऽपि पित्रा समादिष्टाः प्रजा सर्गे धृतव्रताः ॥ नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥ २५ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ जपंतो ब्रह्म परमं तेपुस्तेऽत्र महत्तपः ॥ २६ ॥ अब्भक्षाः कतिचिन्मासान्कतिचिद्वायुभोजनाः ॥ आराधयन्मंत्रमिममभ्यस्यंत इडस्पतिम् ॥ २७ ॥ ओं नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ॥ विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥ २८ ॥ इति तानपि राजेंद्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ॥ उपेत्य नारदः प्राह वाचःकूटानि पूर्ववत् ॥ २९ ॥

अपने बड़े भाई सिद्ध हुए थे वहां गये ॥ २५ ॥ नारायणसरमें नहानेसेही जिनके अंतःकरण निर्मल हो गये हैं, ऐसे वे शबलाश्व ॐकार मंत्रका जप करते भारी तप करने लगे ॥ २६ ॥ कितनेएक तौ महीनेतक केवल जल पीकर रहे. कितनेएक महीनेपर्यंत वायुका आहार करके रहे. और जो मंत्र अभी आगेही कहते हैं उस मंत्रका जप करते भगवान्‌का आराधन करने लगे ॥ २७ ॥ "ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने, विशुद्धसत्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि." अर्थ—महात्मा पुरुष नारायणको नमस्कार करते हैं. और शुद्ध सत्वगुणके आश्रयरूप उन परमहंस भगवान्‌का ध्यान धरते हैं ॥ २८ ॥ महाराज! इस प्रकार सृष्टि रचनेकी इच्छा करते उन शबलाश्वनाम दक्षके पुत्रोंके निकट आकर, नारदजीने पहलेकी भांति कूट वचन कहकर, उससे अधिकभी यह कहा कि—

॥ २९ ॥ हे दक्षपुत्रो मुझसे उपदेशके वचन सुनो. तुम कि–जो भाइयोंपर प्रीति रखनेवाले हो, वे भाइयोंके मार्गका अनुसरण करो ॥ ३० ॥ धर्मको जननेवाला जो भाई भाइयोंके मार्गका अनुसरण करता है. वह अपने पुण्यकी सहायतासे मरुतदेव कि–जो भाइयोंपर प्रीति रखनेवाले हैं, उनके साथ आनंदित रहता है ॥ ३१ ॥ सफल दर्शनवाले नारदजी इतना कहकर, वहांसे पीछे फिरे और शबलाश्वोंनेभी अपने बड़े भाई हर्यश्वोंके मार्गका अनुसरण किया ॥ ३२ ॥ अत्यंत उत्तम और अंतर्वृत्तिसे मिले ऐसे परब्रह्मके मार्गका अनुसरण करनेवाले वे शबलाश्व गयीहुई रात्रिकी नाईं अबतकभी पीछे नहीं आते हैं ॥ ३३ ॥ इस

दाक्षायणाः संश्रृणुत गदतो निगमं मम ॥ अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातृणां भ्रातृवत्सलाः ॥ ३० ॥ भ्रातृणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ॥ स पुण्यबंधुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥ ३१ ॥ एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ॥ तेऽपि चान्वगमन्मार्गं भ्रातृणामेव मारिष ॥ ३२ ॥ सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः ॥ नाद्यापि ते निवर्तंते पश्चिमा यामिनीरिव ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्काल उत्पातान्बहून्पश्यन्प्रजापतिः ॥ पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाश्रृणोत् ॥ ३४ ॥ चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः ॥ देवर्षिमुपलभ्याऽऽह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥ ३५ ॥ दक्ष उवाच ॥ अहो असाधो साधूनां साधुलिंगेन नस्त्वया ॥ असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥ ३६ ॥ ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ॥ विघातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ॥ ३७ ॥

समयमें बहुतसे उत्पात होते देखकर, दक्षप्रजापतिने पहलेके जैसे नारदजीने पुत्रोंका नाश किया यह बात सुनी ॥ ३४ ॥ पुत्रोंके शोकसे विराहुआ और क्रोधसे अधरपल्लव जिसका फरक रहा है ऐसा वह दक्षप्रजापति नादरजीसे मिल, क्रोध करके, बोला ॥ ३५ ॥ दक्षने कहा कि–अहो ! असाधु तू कि–जो सत्पुरुषकासा वेष धारण करता है तिसने हमारे पुत्रोंका बहुत बुरा किया. कि–इन स्वधर्ममें प्रवृत्त भयेहुये बालकोंको तूने भिखारियोंका मार्ग दिखाया ॥ ३६ ॥ तीन ऋणों–(देव-

१ ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ १ ॥ अर्थ–यज्ञ करनेसे देवऋण, पुत्र उत्पन्न करनेसे पितृऋण, विद्याभ्याससे ऋषिऋण विना दूर किये जो मोक्षका सेवन करता है यानी संन्यास ग्रहण करता है वह नरकको जाता है. ऐसा मनुजीनेभी कहा है ॥ १ ॥

ऋण, पितृऋण. ऋषिऋण) से उरिण नहीं भयेहुए और जिन्होंने कर्मसंबंधी विचारभी नहीं किया ऐसे मेरे पुत्रोंके दोनों लोकसंबंधी कल्याणका तूने नाश कर दिया ॥ ३७ ॥ इसप्रकार निर्दय और बालकोंकी बुद्धिको पलटनेवाला तू भगवान्‌की कीर्तिका नाश करनेवाला होकर, लाज छोड़, भगवान्‌के पार्षदोंके साथ फिरता है ॥ ३८ ॥ स्नेहको तोड़नेवाला और जो वैरी न होवें, उन्हें वैरी बनानेवाला एक तेरे सिवाय दूसरे भगवान्‌के भक्त तो प्राणियोंके ऊपर अनुग्रहही करते हैं ॥ ३९ ॥ स्नेहरूपी पाशको काटनेवाला एक उपशमही है, ऐसा तू मनमें धारता हो, तौभी तू कि–जो ज्ञानी न होतेभी ज्ञानियोंके ऐसा खोटा भेस

एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः ॥ पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥ ३८ ॥ ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ॥ ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरंकरमवैरिणाम् ॥ ३९ ॥ नेत्थं पुंसां विरागः स्यात्त्वया केवलिना मृषा ॥ मन्यसे यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृंतनम् ॥ ४० ॥ नानुभूय न जानाति पुमान्विषयतीक्ष्णताम् ॥ निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥ ४१ ॥ यन्नस्त्वं कर्मसंधानां साधूनां गृहमेधिनाम् ॥ कृतवानसि दुर्मर्ष विप्रियं तव मर्षितम् ॥ ४२ ॥ तंतुकृंतनयन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः ॥ तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद्भ्रमतः पदम् ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रतिजग्राह तद्बाढं नारदः साधुसंमतः ॥ एतावान्साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे नारदशापोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥

बनानेवाला है. उसके ऐसे ठगाई भरेहुए उपदेशसे पुरुषोंको वैराग्य कथमपि (कैसेभी) होगा नहीं ॥ ४० ॥ विषयोंका अनुभव किये विना, ‘ विषय दुःख देनेवाले हैं, ’ ऐसे मनुष्य जान नहीं सकता; इस वास्ते विषयोंको भोगे पीछे फेर उन विषयोंको खराब जानकर, जो वैराग्य उत्पन्न होता है, वैसा दूसरोंके भरमानेसे नहीं होता ॥ ४१ ॥ हम लोग जो कि कर्मकी मर्यादावाले सज्जन गृहस्थ हैं, तिनका तूने जो अत्यंतही बुरा किया. सो हमने एकबेर सहन किया रहा ॥ ४२ ॥ परंतु हे दुष्ट ! सत्यानाश करनेवाला तूने दूसरी वारभी हमारा बुरा किया. इसलिये तेरा लोकमें भटकते भटकते कहींभी ठिकानाही न रहेगा ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–सज्जन पुरुषोंसे मान पायेहुए नारदजीने इस दक्षके शापका स्वीकार किया. जिसका कारण यह है कि–सहनेवालेको शाप देनेका अपनमें सामर्थ्य रहतेभी सहन कर लेना. यही साधु पुरुषोंकी रीति है ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते

महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ छठे अध्यायमें दक्षने जो साठ कन्या उत्पन्न करीं. उन कन्याओंके जुदे जुदे वंश कहे जायंगे. जिनमें दितिके पुत्रसे विश्वरूपकी उत्पत्तिका वर्णन होगा ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि– फिर दक्षने असिक्नीनाम स्त्रीमें ब्रह्माजीके कहनेसे साठ कन्या उत्पन्न करीं. जो सब पिता दक्षमें बड़ा प्रेम रखती थीं ॥ १ ॥ उनमें दश कन्या तौ धर्मको दीनी, कश्यपजीको तेरह, चंद्रमाको सत्ताईस, भूतको दो, अंगिराको दो, कृशाश्वको दो और तार्क्ष्यनाम कश्यपजीको फिर चार ऐसे साठही कन्या दीनी ॥ २२ ॥ अब संतानसहित इनके नाम मैं कह-

श्रीशुक उवाच ॥ ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयंभुवा ॥ षष्टिं संजनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥ १ ॥ दश धर्माय कायेंदोर्द्विषट् त्रिणव दत्तवान् ॥ भूतांगिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः ॥ २ ॥ नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ॥ यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥ ३ ॥ भानुर्लंबा ककुज्जामिर्विश्वा साध्या मरुत्वती ॥ वसुर्मुहूर्ता संकल्पा धर्मपत्न्यः सुतान् शृणु ॥ ४ ॥ भानोस्तु देवऋषभ इंद्रसेनस्ततो नृप ॥ विद्योत आसील्लंबायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥ ५ ॥ ककुभः संकटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः ॥ भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नंदिस्ततोऽभवत् ॥ ६ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान्प्रचक्षते ॥ साध्योगणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥ ७ ॥ मरुत्वांश्च जयंतश्च मरुत्वत्यां बभूवतुः ॥ जयंतो वासुदेवांश उपेंद्र इति यं विदुः ॥ ८ ॥

ता हूं सो सुनो. जिनकी संतानपरंपरासे यह सब त्रिलोकी पूर्ण हुई है ॥ ३ ॥ धर्मकी स्त्रियां– भानु, लंबा, ककुभ्, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता और संकल्पा. अब इनके पुत्र सुनो ॥ ४ ॥ भानुके देवऋषभ और देवऋषभके हे राजा ! इंद्रसेन पुत्र हुआ. लंबाके विद्योत और विद्योतके स्तनयित्नु नाम पुत्र हुए ॥ ५ ॥ ककुभके संकट और संकटके कीकट और कीकटके पृथ्वीके दुर्गके अभिमानी देवता पुत्र हुए. जामिके स्वर्ग, स्वर्गके नंदि पुत्र हुआ ॥ ६ ॥ विश्वाके विश्वेदेवता पुत्र हुए. उनके कोई संतान नहीं हुआ. इसलिये ये अप्रज कहलाते हैं. साध्याके साध्य नाम देवगण पैदा हुआ. और उसके अर्थसिद्धि नाम पुत्र हुआ ॥ ७ ॥ मरुत्वतीके मरुत्वान् और जयंत दो पुत्र हुए. जयंत भगवान्‌का अंश है अतएव उसे उपेंद्रभी कहा करते हैं ॥ ८ ॥

मुहूर्तोंके मुहूर्तीके अभिमानी देवता पुत्र हुए जो प्राणीमात्रको अपने अपने कालसंबंधी फलको दिया करते हैं ॥ ९ ॥ संकल्पांके संकल्पनाम पुत्र हुआ. संकल्पके काम नाम पुत्र हुआ. वसुके आठ वसु पुत्र हुए. उनके नाम मैं कहता हूं सो सुनो ॥ १० ॥ द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु. द्रोणके अभिमतिनाम स्त्रीमें हर्ष, शोक और भयआदि पुत्र हुए ॥ ११ ॥ प्राणके ऊर्जस्वतीनाम स्त्रीमें सह, आयु और पुरोजव ये तीन पुत्र हुए. ध्रुवकी धरणीनाम स्त्रीमें अनेक प्रकारके पुरके

मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे ॥ ये वै फलं प्रयच्छंति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥ ९ ॥ संकल्पायाश्च संकल्पः कामः संकल्पजः स्मृतः ॥ वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः ॥ द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥ ११ ॥ प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ॥ ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥ १२ ॥ अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ॥ अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥ १३ ॥ स्कंदश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ॥ दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥ १४ ॥ वसोरांगिरसीपुत्रो विश्वकर्मा कृतीपतिः ॥ ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद्विश्वे साध्या मनोःसुताः ॥ १५ ॥ विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ॥ पंचयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥ १६ ॥

अभिमानी देवता पुत्र हुए. ॥ १२ ॥ अर्कके वासना नाम स्त्रीमें तर्षआदि पुत्र हुए. अग्निकी वसोर्धारा नाम स्त्रीमें द्रविणक आदि पुत्र, हुए ॥ १३ ॥ और अग्निके कृत्तिकाका पुत्र स्कंद नाम पुत्र हुआ. स्कंदके विशाखआदि पुत्र हुए. दोषके शर्वरी-नाम स्त्रीमें हरि भगवान्का अंशकला शिशुमार पुत्र हुआ ॥ १४ ॥ वसुके आंगिरसी नाम स्त्रीमें शिल्पविद्याका आचार्य विश्वकर्मानाम पुत्र हुआ. विश्वकर्माके चाक्षुष नाम पुत्र हुआ. और मनुके विश्वे और साध्या पुत्र हुए ॥ १५ ॥ विभावसुके उषा नाम स्त्रीमें व्युष्ट, रोचिष और आतप ये तीन पुत्र हुए. आतपके पंचायाम नाम (दिन) पुत्र हुआ. जिसमें ये सब जीव जंतु अ-

पने २ काममें लगे रहते हैं ॥ १६ ॥ भूतके दो स्त्रियां थीं, उनमेंसे सरूपा नाम स्त्रीके रुद्र नाम करोड़ों पुत्र हुए. एकादश रुद्रोंके नाम. रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, ॥ १७ ॥ अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान्. रुद्रके पार्षद जो महाभयंकर भूतविनायकआदि दूसरे हैं, वे दूसरी स्त्रीमें प्रगट हुए ॥ १८ ॥ प्रजापति अंगिराकी स्वधानाम स्त्रीने पित्रीश्वरोंको अपने पुत्र बनाकर, रक्खा. और सती नाम स्त्रीने अथर्वांगिरस नाम वेदको पुत्र किया ॥ १९ ॥ कृशाश्वके अर्चिनाम स्त्रीमें धूम्रकेश नाम पुत्र हुआ. और धिषणा नाम स्त्रीमें वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु ये पुत्र हुए ॥ २० ॥ तार्क्ष्यकी वि-

सरूपाऽसूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः ॥ रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥ १७ ॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ॥ रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूतविनायकाः ॥ १८ ॥ प्र-
जापतेरंगिरसः स्वधा पत्नी पितृनथ ॥ अथर्वांगिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत्सती ॥ १९ ॥ कृशाश्वो
ऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ॥ धिषणायां वेदशिरो देवलं वयुनं मनुम् ॥ २० ॥ तार्क्ष्यस्य
विनता कद्रूः पतंगी यामिनी इति ॥ पतंग्यसूत पतगान्यामिनी शलभानथ ॥ २१ ॥ सुपर्णाऽसूत
गरुडं साक्षाद्यज्ञेशवाहनम् ॥ सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥ २२ ॥ कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीं-
दोः पत्न्यस्तु भारत ॥ दक्षशापात्सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥ पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला
लेभे क्षयेऽर्दिताः ॥ २३ ॥

नता, कद्रू, पतंगी और यामिनी ये चार स्त्रियां थीं. तहां पतंगीके पतंग (परिंद) नाम पुत्र हुए. यामिनीके शलभ यानी टीड़ी पुत्र हुए ॥ २१ ॥ सुपर्णाके एक तौ साक्षात् यज्ञपति विष्णु भगवान्का वाहन गरुड़ नाम पुत्र हुआ. और दूसरा सूर्यका सारथि अनूरु (अरुण) नाम पुत्र हुआ. कद्रूके अनेक नाग पुत्र हुए ॥ २२ ॥ हे परीक्षित ! चंद्रमाके कृत्तिकाआदि सत्ता इस नक्षत्र स्त्रियां हैं. परंतु दक्षके श्रापसे क्षयरोग हो जानेके कारण वह सदा पीड़ित रहता है. इसलिये उसके एकभी पुत्र नहीं हुआ. दक्षने श्राप दिया, तब चंद्रमाने पीछी प्रार्थनाकी, फिर दक्षने प्रसन्न होकर, यह कहा कि– कृष्णपक्षमें जो तेरी

कला क्षीण हो जाती हैं, वो पीछी बढ़ जायंगी, इस प्रकार कला तो पीछी मिलगयीं, परंतु पुत्र नहीं हुए ॥ २३ ॥ अब ज-गत्की माता कश्यपजीकी स्त्रियोंके सुखकारी नाम मैं कहता हूं-सो तू सुन; कि-जिनसे यह सब जगत् पैदा हुआ है ॥ २४ ॥ कश्यपजीकी स्त्रियोंके नाम. अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि ॥ २५ ॥ महाराज ! तिमिके यादोगण (जलजंतु) पुत्र हुए. सरमाके श्वापद (कुत्ते) पुत्र हुए. सुरभिके भैंस, गाय और

शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शंकराणि च ॥ अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ॥ २४ ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥ मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ॥ २५ ॥ तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥ सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ॥ २६ ॥ ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥ दंदशूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ॥ २७ ॥ इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥ अरिष्टायाश्च गंधर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ॥ २८ ॥ सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकान् शृणु ॥ द्विमूर्धा शंबरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ॥ २९ ॥ अयोमुखः शंकुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः ॥ पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ॥ ३० ॥ धूम्रकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥ स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः किल ॥ वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥ ३१ ॥

दूसरेभी जो दो खुरवाले पशु हैं वे पैदा हुए ॥ २६ ॥ ताम्राके श्येन (बाज) गिद्धआदि पुत्र हुए. मुनिके अप्सराओंका गण पैदा हुआ. महाराज ! क्रोधवशाके सर्पआदि दंदशूक (पेटसे चलनेवाले) पुत्र हुए ॥ २७ ॥ इलाके ये सब वृक्ष पुत्र हुए. सुरसाके यक्ष पुत्र हुए. अरिष्टाके गंधर्व पुत्र हुए. काष्ठाके दो खुरोंवालोंके शिवाय दूसरे पशु पैदा हुए ॥ २८ ॥ दनुके इकसठ पुत्र हुए. उनमें जो मुख्य मुख्य हैं, उनके नाम मैं कहता हूं सो सुन. द्विमूर्धा, शंबर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, ॥ २९ ॥ अयोमुख शंकुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र और अनुतापन, ॥ ३० ॥ धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति और

दुर्जय, स्वर्भानुके सुप्रभा नाम कन्या थी. उसके साथ नमुचिने पाणिग्रहण किया और वृषपर्वाकी शर्मिष्ठानाम कन्याके साथ महाबली नहुषके पुत्र ययाति राजाने पाणिग्रहण किया ॥ ३१ ॥ वैश्वानर नाम दनुके पुत्रके चार कन्या अतिसुंदर रुपवतीं थीं उनके नाम उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा, कालका ॥ ३२ ॥ महाराज ! हिरण्याक्षने उपदानवीको ग्रहण किया क्रतुने हयशिराको ग्रहण किया. पुलोमा और कालका नाम वैश्वानरकी दो कन्याओंके साथ ब्रह्माजीके कहनेसे भगवान् कश्यप प्रजापतिने विवाह किया ॥ ३३ ॥ हे राजा ! उनके बड़े युद्धमें लड़नेवाले पौलोम और कालकेय नाम साठ हजार दैत्य पैदा

वैश्वानरसुता याश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः ॥ उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा ॥ ३२ ॥ उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप ॥ पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥ उपयेमेऽथ भगवान्कश्यपो ब्रह्मचोदितः ॥ ३३ ॥ पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः ॥ तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता ॥ जघान स्वर्गतो राजन्नेक इंद्रप्रियंकरः ॥ ३४ ॥ विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ॥ राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागताः ॥ ३५ ॥ अथातः श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः ॥ यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद्विभुः ॥ ३६ ॥ विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाऽथ सविता भगः ॥ धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः ॥ ३७ ॥ विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञाऽसूयत वै मनुम् ॥ मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ॥ स वै भूत्वाऽथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥ ३८ ॥

हुए. ये लोग यज्ञमें विघ्न किया करते थे. इसलिये जब तुम्हारे पिताके पिता अर्थात् तुम्हारे पितामह अर्जुन स्वर्गमें आये. तब इंद्रने कहा कि–' तुम इनको मारकर, हमारा भय दूर करो, इंद्रको प्रसन्न करनेके लिये तुम्हारे दादे अर्जुनने उनको मारा ॥ ३४ ॥ विप्रचित्तिके सिंहिका नाम स्त्रीमें राहु जिनमें सबसे बड़ा है ऐसे केतु नाम सौ और एक पुत्र उत्पन्न हुए. जो राहु ग्रहपनको प्राप्त हुआ है ॥ ३५ ॥ अब अदितिका वंश मैं कहता हूं सो क्रमसे सुनो. जिस वंशमें साक्षात् प्रभु नारायण भगवान्‌ने अपने अंशसे अवतार लिया है ॥ ३६ ॥ अदितिके ये बारह आदित्य पुत्र हुए. विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रम ॥ ३७ विवस्वान्‌के संज्ञानाम स्त्रीमें श्राद्धदेवनाम मनुपुत्र पैदा हुआ. और उसी महाभाग्यशा-

लिनीमें यमनाम पुत्र और यमी (यमुना) नाम कन्या यह मिथुन (जोड़ा) पैदा हुआ. वही वड़वा (घोड़ी) बनी तब इसमें पृथ्वीके ऊपर अश्विनीकुमार पुत्र हुए ॥ ३८ ॥ विवस्वान्‌केही छाया नाम स्त्रीमें शनैश्वर और सावर्ण नाम मनु ये दो पुत्र हुए. और तपतीनाम कन्या हुई. जो संवरण नाम पतिके साथ व्याही गयी ॥ ३९ ॥ अर्यमाके मातृका नाम स्त्रीमें चर्षणीनाम पुत्र हुए. इनकी मनुष्यजाति ब्रह्माजीने कल्पन की है ॥ ४० ॥ पूषाने ब्रह्मसमाजमें दांत दिखा २ कर, दक्षपर कोपित भयेहुए महादेवजीको हँसा था. तिससे इसके दांत महादेवजीके गणोंने तोड़ दिये. तबसे वह पिष्ट (चूर्ण) खाकर, अपना निर्वाह करता है.

छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णिं च मनुं ततः ॥ कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥ ३९ ॥ अर्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः ॥ यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥ ४० ॥ पूषाऽनपत्यः पिष्टादो भग्नदंतोऽभवत्पुरा ॥ योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास विवृतद्विजः ॥ ४१ ॥ त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचनानाम कन्यका ॥ संनिवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥ ४२ ॥ तं वव्रिरे सुरगणा स्वस्रीयं द्विषतामपिं ॥ विमतेन परित्यक्ता गुरुणांगिरसेन यत् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ॥ एतदाचक्ष्व भगवन् शिष्याणामक्रमं गुरौ ॥ १ ॥

और इसके कोई संतानभी नहीं है ॥ ४१ ॥ त्वष्टाके दैत्योंकी छोटी बहन रचना नाम स्त्री थी. इसमें उसके संनिवेश और विश्वरूप दो पुत्र हुए. ॥ ४२ ॥ यदपि वह अपने बैरी दैत्योंका दौहित्र था. तथापि जब गुरु बृहस्पतिजीने अवज्ञा करनेसे देवतानको त्याग दिया तब देवतानने आकर, विश्वरूपसे प्रार्थना की और उसे अपना पुरोहित बनानेको वरण किया ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥ ॥ सातवें अध्यायमें गुरुके परित्याग कियेहुए देवतानने प्रार्थना की तब विश्वरूप उनकी प्रार्थनासे देवतानका पुरोहित हुआ यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि-हे भगवन् ! बृहस्पतिजीने देवतानका परित्याग क्यों किया ? अपराध कियेविना गुरु शिष्यका त्याग नहीं

करता सो इन्होंने गुरुका क्या अपराध किया ? सो वो आप हमें कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! इंद्र त्रिलोकीके ऐश्वर्यके मदसे सत्पुरुषोंकी मर्यादाको उल्लंघ कर, बर्तने लगे तब बृहस्पति चुप होकर, अपने घर घर चले आये, इंद्र जब सभाके बीच राज्यसिंहासनपर बैठे थे उस समय मरुद्गण, वसुदेवता, रुद्र, आदित्य और ऋभुदेवता ॥ २ ॥ तथा विश्वेदेवता, साध्यदेवता और अश्विनीकुमार, उन्हें घेर रहे थे. सिद्ध, चारण, गंधर्व, और ब्रह्मवादी मुनि तथा ॥ ३ ॥ विद्याधर, अप्सरागण, किन्नर, पतग (पक्षी) उरग यानी पेटसे चलनेवाले सांपआदि, हे राजा ! इंद्रकी स्तुति और सेवा कर रहे थे ॥ ४ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लंघितसत्पथः ॥ मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥ २ ॥ विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ॥ सिद्धचारणगंधर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३ ॥ विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः ॥ निषेव्यमाणो मघवान्स्तूयमानश्च भारत ॥ ४ ॥ उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः ॥ पांडुरेणातपत्रेण चंद्रमंडलचारुणा ॥ ५ ॥ युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ॥ विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥ ६ ॥ स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ॥ नाभ्यनंदत संप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ ७ ॥ वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ नोच्चचालासनादिंद्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥ ८ ॥ ततो निर्गत्य सहसा कविरांगिरसः प्रभुः ॥ आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान् श्रीमदविक्रियाम् ॥ ९ ॥

तथा उनके पास सुंदर गान हो रहा था. और चंद्रमाके मंडलकासा सुफेद छत्र लगाहुआ था ॥ ५ ॥ औरभी महाराजोंके चामर और व्यजनआदि चिन्ह देदीप्यमान हो रहे थे. और आधे सिंहासनमें महाराणी इंद्राणी उनके साथ शोभ रहीं थीं ॥ ६ ॥ इस समयमें देवतानके और निजके परमाचार्य यानी सबके परमपूज्य गुरु बृहस्पति सभामें आये. उनका उठकर, सन्मुख जाने, आसन देने, आदिसे इंद्रने सत्कार नहीं किया ॥ ७ ॥ देवता और दैत्य जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे महामुनि बृहस्पतिको सभामें आये देखे, परंतु इंद्र अपने आसनसे किंचितमात्रभी चलायमान नहीं हुए ॥ ८ ॥ तब ‘ यह लक्ष्मीके मदका विकार हुआ है’

ऐसे जानकर, शीघ्र सभामेंसे पीछे लोटकर, समर्थ और महाविद्वान् बृहस्पति चुपचाप अपने घर चले आये ॥ ९ ॥ उसी समय गुरुका अपराध हुआ जानकर, सभाके बीचमें इंद्र महाराज अपने मुखहीसे अपने आत्माको धिक्कार देने लगे ॥ १० ॥ अहो! हाय? मुझ अल्पबुद्धिने ऐश्वर्यके अभिमानसे सभाके बीचमें गुरुका अपमान किया. यह बहुत बुरा किया ॥ ११ ॥ त्रिलोकीपतिकी राज्यलक्ष्मीकोभी कौन विद्वान् पुरुष चाहे ? कि-जिस लक्ष्मीसे मै कि-जो सत्वगुणी देवतानका अधिपति हूं वहभी आसुरी स्वभावको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ जो राजा सिंहासनपर बैठा होवे. वह किसीके सामने खड़ा न होवे ऐसे जो कहते हैं, वे य-

तर्ह्येव प्रतिबुद्ध्येंद्रो गुरुहेलनमात्मनः ॥ गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥ १० ॥ अहो बत ममासाधुकृतं वैऽदभ्रबुद्धिना ॥ यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥ ११ ॥ को गृध्येत्पंडितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ॥ ययाऽहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥ ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कंचन ॥ प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥ १३ ॥ तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि ह्यधः ॥ ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जंत्यश्मप्लवा इव ॥ १४ ॥ अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ॥ प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ॥ १५ ॥ एवं चिंतयतस्तस्य मघोनो भगवान्गृहात् ॥ बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥ १६ ॥ गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन्भगवान्स्वराट् ॥ ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभताऽऽत्मनः ॥ १७ ॥

थार्थ धर्मको नहीं जानते ॥ १३ ॥ उलटा मार्ग बतानेवाले और नरकमें नीचे पड़तेहुए, इन लोकोंका बचन जो मानते हैं. वे पत्थरकी नावमें बैठकर,पार उतरना चाहते हैं अर्थात् बूड़ जाते हैं ॥ १४ ॥ इसी लिये अब मैं शठताको त्याग, मस्तकसे उनके चरणोंको छूकर, महाबुद्धि और देवतानके आचार्य विप्र बृहस्पतिजीको प्रसन्न करूंगा ॥ १५ ॥ इंद्र महाराजने इसप्रकार विचार किया. इतनेमें बृहस्पति अपनी मायाके प्रभावसे घरमेंसेभी अदृश्य हो गये ॥ १६ ॥ इंद्रने बहुतसी युक्ति की. तथापि गुरुका पता नहीं लगा. तब चिंतामें पड़ेहुए इंद्र तथा देवता लोगोंने अपनी बुद्धिसे बहुत विचार किया परंतु किसीप्रकारसे सुख नहीं मिला ॥ १७ ॥

इस बातको सुनतेही मदोन्मत्त सारे दैत्य शुक्राचार्यकी संमतिसे शस्त्र ले, देवतानके ऊपर चढ़ आये ॥१८॥ दैत्योंके चलायेहुए तीक्ष्ण बाणोंसे देवतानके शिर, जंघा और बांह कट गयीं. और देवता छिन्न भिन्न हो गये. तब इंद्रको साथ ले, वे गर्दन नीची करके ब्रह्माजीके शरण गये ॥ १९ ॥ भगवान् ब्रह्माजी इसतरह दुखी देवतानको देखकर, अतिशयदयासे सांत्वना देते इसप्रकार बोले ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा कि–अहो ! अररर ! ! ! हे उत्तम देवताओ ! तुमने ब्रह्मवेत्ता और जितेंद्रिय ब्राह्मण (बृहस्पति) का ऐश्वर्यके मदसे अपमान किया. यह बहुत बुरा किया ॥ २१ ॥ हे देवता लोगो ! तुम समृद्धिवाले थे; और तुम्हारे स्वाभाविक शत्रु दैत्य तीक्ष्ण थे. तथापि

तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्व आश्रित्यौशनसं मतम् ॥ देवान्प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥ १८ ॥ तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नांगोरुबाहवः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेंद्रा नतकंधराः ॥ १९ ॥ तांस्तथाऽभ्यर्दितान्वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः ॥ कृपया परया देव उवाच परिसांत्वयन् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ॥ ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दांतमैश्वर्यान्नाभ्यनंदत ॥ २१ ॥ तस्यायमनयस्याऽऽसीत्परेभ्यो वः पराभवः ॥ प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥ २२ ॥ मघवन्द्विषतः पश्य प्रक्षीणान्गुर्वतिक्रमात् ॥ संप्रत्युपचितान्भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ॥ आददीरन्निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥ २३ ॥ त्रिविष्टपं किं गणयंत्यभेद्यमंत्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ॥ न विप्रगोविंदगवीश्वराणां भवंत्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वरूपं भजताऽऽशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवंतम् ॥ सभाजितोऽर्थान्स विधास्यते वो यदिक्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥ २५ ॥

उनके हाथसे जो यह तुम्हारा पराभव हुआ है, यह उसी अन्यायका फल है ॥ २२ ॥ हे इंद्र ! देखो ! तुम्हारे शत्रु प्रथम अपने गुरु शुक्राचायजीका अपराध करनेसे क्षीण हो गये थे; वेही अभी पीछे भक्तिपूर्वक शुक्राचार्यकी सेवा करनेसे उन्नतिको पाये हैं. शुक्राचार्यको अपना इष्टदेव माननेवाले ये लोग अभी तो हमारा स्थानभी ले सकते हैं ॥ २३ ॥ तब ये भृगुकुलके शिष्य और विचारको गुप्त रखनेवाले दैत्य स्वर्गको क्या वस्तु गिनें ? ब्राह्मण, गौ और भगवान्, इनका जिनपर अनुग्रह होता है, उन राजाओंका किसी प्रकारसे अकल्याण नहीं होता ॥ २४ ॥ इसलिये अब तुम त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप कि–जो तपस्वी और धैर्यवान्

हैं. उनका शीघ्र अनुसरण करो और जो तुम उनका सत्कार करोगे तथा यह दैत्योंका पक्षपात करैं, उसका सहन करोगे तो तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण हो जांयगे ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! इस प्रकार ब्रह्माजीका बचन सुनकर, तापरहित वे देवता विश्वरूप ऋषिके निकट जाकर, उनसे आलिंगन करके, यह वक्ष्यमाण बचन बोले ॥ २६ ॥ देवतानेने कहा कि–तुम्हारा कल्याण होवे. हम तुम्हारे आश्रयमें आज अतिथि बनकर, आये हैं. हे तात ! हम कि– जो तुम्हारे बड़े हैं, उनका इस समयमें जैसा चाहिये वैसा काम करो ॥ २७ ॥ हे विश्वरूप ! सुपुत्र पुत्रोंका यही

श्रीशुक उवाच ॥ त एवमुदिता राजन्ब्रह्मणा विगतज्वराः ॥ ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥ २६ ॥ देवा ऊचुः ॥ वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ॥ कामः संपाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥ २७ ॥ पुत्राणां हि परोधर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ॥ अपि पुत्रवतां ब्रह्मन्किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥२८॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ॥ भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात्क्षितेस्तनुः ॥ २९ ॥ दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्याऽऽत्माऽतिथिः स्वयम् ॥ अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चाऽऽत्मनः ॥ ३० ॥ तस्मात्पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभवम् ॥ तपसाऽपनयंस्तात संदेशं कर्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥ वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ॥ यथाऽञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥ ३२ ॥

धर्म है कि–आप पुत्रवान् यानी गृहस्थी होवें, तौभी अपने बड़े पुरुषोंकी सेवा करैं, तत्रापि (तहांभी) जो ब्रह्मचारी होवें उनके लिये तौ इससे बढ़कर दूसरा कोई धर्मही नहीं है ॥ २८ ॥ आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति है. पिता प्रजापतिकी मूर्ति है. भाई इंद्रकी मूर्ति है. माता साक्षात् पृथ्वीकी मूर्ति है ॥ २९ ॥ बहन दयाकी मूर्ति है. अतिथि साक्षात् धर्मकी मूर्ति है. पिता प्रजापतिकी मूर्ति है. और सर्वप्राणीमात्र विष्णुकी मूर्ति हैं ॥ ३० ॥ इसलिये दुःख पातेहुए हम कि–जो तुम्हारे बड़े और अतिथि हैं; उनको शत्रुओंका कियाहुआ पराभवरूप दुःख अपने तपके प्रभावसे दूर करो. हे तात ! तुमको हमारा कहना मानना चाहिये ॥ ३१ ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मण तुमको हम हमारे गुरु बनानेकी तुम्हारी प्रार्थना करते हैं कि–जिस उपायके द्वारा हम तु-

म्हारे मंत्रबलके प्रतापसे शत्रुओंको अनायासपूर्वक जीत लेंगे ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन् ! प्रयोजन सिद्ध करनेके वास्ते यविष्ठ यानी छोटेके चरणोंमें दंडवत् करना, यह कोई निंदित काम नहीं है. दूसरे विषयोंमें अवस्था बड़प्पनका कारण मानी जाती है. परंतु वेदविद्याके विषयमें अवस्थासे बड़प्पन नहीं गिना जाता ॥ ३३ ॥ शुकदेवजीने कहा कि-इसप्रकार देवतानने पुरोहित होनेके वास्ते प्रार्थना की. तब इन महातपस्वी विश्वरूपने प्रसन्न होकर, मधुरवाणीसे उनसे इसप्रकार कहा ॥ ३४ ॥ विश्वरूप बोले कि-यद्यपि पुरोहित बनना धर्मात्मा पुरुषोंसे धिक्कृत और ब्रह्मतेजका क्षयकारक है. तथापि आप लोकपालोंने उसके लिये प्रार्थना

न गर्हयंति ह्यर्थेषु यविष्ठांघ्र्यभिवादनम् ॥ छंदोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन्वयोज्यैष्ठ्यस्य कारणम् ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः ॥ स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥ ३४ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्च उपव्ययम् ॥ कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ॥ प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥ ३५ ॥ अकिंचनानां हि धनं शिलोंछनं तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ॥ कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥ ३६ ॥ तथाऽपि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ॥ भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ॥ पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥ ३८ ॥

कीहै, तो हे नाथो ! मैं कि-जो तुम्हारी शिक्षाका पात्र हूं, उससे उसका निषेध किसप्रकार किया जाय ? क्योंकि बड़ोंकी आज्ञा मानना, यही स्वार्थ कहलाता है ॥ ३५ ॥ शिलं (खेतमें जो कनी छोड़ दी जाती है उसका लेना) और उंछ (दूकानआदिमें जो दाने पड़े रहें उनको लेना) करना यही अकिंचन पुरुषोंका धन है और उसी धनसे मैं घरमें रहकर, साधुपुरुषोंका सत्कार करता हूं. तासों हे अधीश्वरो ! पुरोहितपन कि-जो अतिनिंदित है और जिससे दुर्बुद्धि पुरुष प्रसन्न होता है, वह मैं किसप्रकार करूं ? ॥ ३६ ॥ तथापि मैं आपको ना नहीं कहता. आप बड़ोंने यह कितना मांगा? आपकी समग्र प्रार्थनाको मैं मेरे प्राणोंसे और धनसे सिद्ध करनेको तैयार हूं ॥ ३७ ॥ शुकदेवजीने कहा कि-महातपस्वी और देवतानसे प्रार्थित विश्वरूप इसप्रकार स्वीकार

कर, बड़े उद्यमसे पुरोहितपन करने लगे ॥ ३८ ॥ यद्यपि दैत्योंकी लक्ष्मी शुक्राचार्यजीकी विद्यासे रक्षित थी तथापि उसे विश्वरूपने विष्णु भगवान्की नारायणकवचरूप विद्याके प्रभावसे दैत्योंसे छीनकर, पीछी इंद्रको दीनी ॥ ३९ ॥ उदारबुद्धि विश्वरूपने इंद्रको वह विद्या दी कि–जिसके प्रभावसे रक्षण और शक्ति पायेहुए इंद्रने दैत्योंकी सेनाओंको जीतकर, विजय पाया ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ आठवें अध्यायमें विश्वरूपने इंद्रको नारायणकवच दिया कि–जिससे रक्षित होकर, इंद्रने दैत्योंको जीता ॥ १ ॥ परीक्षितने

सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया ॥ आच्छिद्यादान्महेंद्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥ ३९ ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ॥ तां प्राह स महेंद्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ राजोवाच ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ॥ क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥ भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ॥ यथाऽऽततायिनः शत्रून्येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेंद्रायानुपृच्छते ॥ नारायणाख्यं वर्माऽऽह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ धौतांघ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ॥ कृतस्वांगकरन्यासो मंत्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ नारायणमयं वर्म सन्नह्येद्भय आगते ॥ ४ ॥

कहा कि–जिस विद्यासे रक्षित होकर, इंद्रने वाहनसहित सब शत्रुओंकी सेनाओंको क्रीड़ा करते हों ऐसे जीतकर, त्रिलोकीकी राज्यलक्ष्मीके भोग पाये ॥ १ ॥ हे भगवन् ! वह नारायणकवच मुझे कहो, कि–जिसप्रकार उस कवचसे रक्षित हो कर, संग्राममें आततायी शत्रुओंको जीतलिया ॥ २ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–पुरोहित कियेहुए विश्वरूपको इंद्रने पूंछा. तब विश्वरूपने जो नारायणकवच इंद्रको कहा वह मैं यहां कहता हूं–सो तुम सावधान होकर, सुनो ॥ ३ ॥ विश्वरूपने कहा कि–किसीप्रकारका भय प्राप्त होवे, तब हाथ पांव धोय, आचमनकर, पवित्र धारण कर, उत्तरदिशाके सन्मुख मुखकर, अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मंत्रसे

अंगन्यास तथा करन्यास कर, मौनधारण कर, पवित्र हो, नारायणकवचको बांधे ॥ ४ ॥ "ॐ नमो नारायणाय" इस अष्टाक्षर मंत्रके ॐ कारादिक अक्षरोंका अनुक्रमसे दो पांव, दो घुटने, दो जंघा, उदर, हृदय, वक्षःस्थल (सीना) मुख और मस्तकमें न्यास करना. अथवा पांवसे प्रारंभ करै सो उलटे क्रमसे इन अक्षरोंका उलटे क्रमके अनुसार इन अंगोंमें न्यास करै ॥ ५ ॥ फिर "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षर मंत्रके ॐकारसे संपुटित एक एक अक्षरका अंगुलियोंमें और अंगूठेके अग्र और पर्व–(पोर) में न्यास करना (दाहिने हाथकी तर्जनी यानी अँगूठेके पासकी अगुँलीसे प्रारंभ करै सो बायें हाथकी तर्जनीपर्यंत

पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोंकारादीनि विन्यसेत् ॥ ५ ॥ ओं नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ करन्यासं ततः कुर्याद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ प्रणवादियकारांतमंगुल्यंगुष्ठपर्वसु ॥ ६ ॥ ॐविष्णवेनमः ॥ न्यसेद्धृदय ओंकारं विकारमनुमूर्धनि ॥ षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया दिशेत् ॥ वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसंधिषु ॥ ७ ॥ मकारमस्त्रमुद्दिश्य मंत्रमूर्तिर्भवेद्बुधः ॥ सविसर्गं फडंतं तत्सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥८॥ आत्मानं परमं ध्यायेद्ध्येयं षड्शक्तिभिर्युतम् ॥ विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मंत्रमुदाहरेत् ॥ ९ ॥ ॐहरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्तांघ्रिपद्मः पतगेंद्रपृष्ठे ॥ दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान्दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥ १० ॥

आठ अंगुलियोंमें आठ अक्षरोंका और दो अँगूठोंके अग्र पर्व (पोर) में शेष रहे चार अक्षरोंका न्यास करै) ॥ ६ ॥ फिर "ॐ विष्णवे नमः" इस मंत्रके ॐकारको हृदयमें, विकारको मस्तकमें, षकारको भ्रुकुटिके मध्यमें, णकारको शिखामें, वेकारको नेत्रमें, नकारको सर्व संधियोंमें न्यास करना ॥ ७ ॥ फिर 'मः अस्त्रायफट्' ऐसा कहकर, दिग्बंधन करना. इस प्रकार करनेसे ज्ञानी पुरुष मंत्रमूर्ति हो जाता है ॥ ८ ॥ ध्यान करनेके योग्य, ऐश्वर्यादिक छः शक्तियोंसे युक्त और विद्या, तेज तथा तपरूप मूर्तिवाले परमात्माका ध्यान करना. तदनंतर इस वक्ष्यमाण नारायणकवचरूप मंत्रका उच्चारण करना ॥ ९ ॥ ॐगरुड़जीकी पीठपर चरण धरेहुए, अष्टसिद्धिसंपन्न और आठ भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, ढाल, तलवार, बाण और धनुष, पाश धारण किये

हरिभगवान् मेरी सर्व प्रकारकी रक्षा करें ॥ १० ॥ जलमें जलजंतुरूप वरुणकी पाशसे मत्स्यावतार मेरी रक्षा करें, मायासे बटुक बनेहुए वामन भगवान् स्थलमें रक्षा करें, सब ब्रह्मांड जिनके स्वरूपमें आ गया है, ऐसे त्रिविक्रम भगवान् अंतरिक्षमें मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ बन और संग्रामके मुखआदि संकटके स्थलोंमें असुर यूथपतियोंके वैरी नृसिंह भगवान् मेरी रक्षा करें कि-जिन भगवान्‌के भारी अट्टहास करनेके समय दिशायें गुंज उठीं और स्त्रियोंके गर्भ पड़ गये ॥ १२ ॥ अपनी दाढ़द्वारा पृ-

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ॥ स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥ ११ ॥ दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ॥ विमुंचतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १२ ॥ रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ॥ रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोव्याद्भरताग्रजोऽस्मान् ॥ १३ ॥ मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात् ॥ दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद्गुणेशः कपिलः कर्मबंधात् ॥ १४ ॥ सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ॥ देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनांतरात्कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥ १५ ॥ धन्वंतरिर्भगवान्पात्वपथ्याद्द्वंद्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा ॥ यज्ञश्च लोकादवताज्जनांताद्बलो गणात्क्रोधवशादहींद्रः ॥ १६ ॥

थ्वीका उद्धार करनेवाले और यज्ञरूप अवयववाले वराह भगवान् मार्गमें मेरी रक्षा करें. पर्वतोंके शिखरोंमें परशुराम मेरी रक्षा करें. प्रवासमें भरतके बड़े भाई राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥ अभिचारआदि समग्र उग्र धर्मसे और प्रमादसे नारायण मेरी रक्षा करें, गर्वसे नर भगवान् मेरी रक्षा करें, योगभ्रंशसे योगेश्वर दत्तात्रेय मेरी रक्षा करो. गुणोंके स्वामी कपिलदेव कर्मके बंधनसे रक्षा करें ॥ १४ ॥ कामदेवसे सनत्कुमार मेरी रक्षा करें, मार्गमें देवतानको नमस्कार न करनेरूप अपराधसे हयग्रीव मेरी रक्षा करें. भगवान्‌की पूजामें जो विघ्न होवें तिनसे नारदजी रक्षा करें. सर्व नरकोंसे कच्छप भगवान् रक्षा करें ॥ १५ ॥ कुपथ्यसे धन्वंतरि भगवान् रक्षा करें, द्वंद्व यानी सुख दुःख वा काम क्रोधादिकोंसे जितेंद्रिय भगवान् ऋषभ रक्षा करें. लोकापवादसे यज्ञ

भगवान् रक्षा करें. लोकसंबंधी उपघातसे बलदेवजी रक्षा करें. क्रोधवश सर्पोंके गणसे शेष भगवान् रक्षा करें. ॥ १६ ॥ अज्ञानसे भगवान् वेदव्यासजी रक्षा करें. प्रमादकारक पाखंडझुंडसे बुद्ध भगवान् रक्षा करें. धर्मकी रक्षाके वास्ते अनेक अवतार धारण करनहारे कल्कि भगवान् कालके मलरूप कलियुगसे रक्षा करें. ॥ १७ ॥ केशव भगवान् गदासे मेरी प्रातःकालमें रक्षा करें. वेणु धरनहारे गोविंद भगवान् संगवकालपर्यंत मेरी रक्षा करें. शक्ति धरनहारे नारायण पूर्वाण्हकालमें मेरी रक्षा करें.

द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्बुद्धस्तु पाखंडगणात्प्रमादात् ॥ कल्किः कलेः कालमलात्प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥ १७ ॥ मां केशवो गदया प्रातरव्याद्गोविंद आसंगवमात्तवेणुः ॥ नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्तिर्मध्यंदिने विष्णुररींद्रपाणिः ॥ १८ ॥ देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायं त्रिधामाऽवतु माधवो माम् ॥ दोषे हृषीकेश उताऽऽर्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥ १९ ॥ श्रीवत्सधामाऽपररात्र ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ॥ दामोदरोऽव्यादनुसंध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान्कालमूर्तिः ॥ २० ॥ चक्रं युगांतानलतिग्मनेमिभ्रमत्समंताद्भगवत्प्रयुक्तम् ॥ दंदग्धि दंदग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखो हुताशः २१ ॥

चक्र धारण करनहारे विष्णु भगवान् मध्यान्हमें मेरी रक्षा करें ॥ १८ ॥ उग्र धनुषवाले मधुहा भगवान् अपराण्हकालमें रक्षा करें. ब्रह्मा विष्णु और रुद्र इन तीनों मूर्तिवाले माधव भगवान् सायंकालमें रक्षा करे. इंद्रियोंके स्वामी भगवान् प्रदोषकालमें रक्षा करें. अर्धरात्रिसे पूर्वसमयमें और अर्धरात्रिके समयमें एक पद्मनाभ भगवान् मेरी रक्षा करें. ॥ १९ ॥ ईश्वर श्रीवत्सधामा भगवान् पीछली रातमें रक्षा करें. खड्ग धरनहारे जनार्दन भगवान् प्रत्यूषसमयमें रक्षा करें. दामोदर भगवान् प्रभातमें रक्षा करो. कालमूर्ति विश्वेश्वर भगवान् सर्वसंधियोंमें रक्षा करें ॥ २० ॥ हे प्रलयानलके जैसी तीक्ष्ण धारावाला चक्र ! तू भगवान्के छो

१ प्रातःकालो मुहूर्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेवतु ॥ इति स्मृत्युक्ते प्रातः कालानन्तरं मुहूर्तत्रयात्मके कालभेदे ॥ अर्थ–तीनमुहूर्त प्रातःकाल होता है और उस (प्रातःकाल) के अनन्तर उतनाहीं तीनमुहूर्त सङ्गव होता है, यह स्मृतिमें लिखा है ॥ १ ॥

ड़नेसे चारों तर्फ फिरकर, वायुसहित अग्नि जैसे तृणको भस्म कर देती है, ऐसे शत्रुओंकी सैन्यको शीघ्र भस्म कर भस्म कर ॥ २१ ॥ हे वज्रके से स्पर्शवाली चिनगारियोंवाली गदा ! कूष्मांड, वैनायक, यक्ष, राक्षस, भूत और ग्रहोंको तथा वैरियोंको चूर्ण कर, चूर्ण कर, पीस डार, पीस डार. तू भगवान्‌की अतिप्यारी है ॥ २२ ॥ हे शंख ! तू भगवान्‌के फूंकनेसे भयंकर शब्द करके शत्रुओंके हृदयोंको कंपायमान करता, राक्षस, प्रमथ, प्रेत, मातृगण, पिशाच, ब्रह्मराक्षस और दूसरेभी घोर दृष्टिवा-

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिंगे निष्पिंढि निष्पिढ्यजिताप्रियाऽसि ॥ कूश्मांडवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहां-श्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥ २२ ॥ त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृपिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ॥ दरेंद्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कंपयन् ॥ २३ ॥ त्वं तिग्मधाराऽसिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिंधि छिंधि ॥ चक्षूंषि चर्मन् शतचंद्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥ २४ ॥ यन्नो भयं ग्रं-हेभ्योऽभूत्केतुभ्यो नृभ्य एव च ॥ सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा ॥ २५ ॥ सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ॥ प्रयांतु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः ॥ २६ ॥ गरुडो भगवान्स्तोत्रस्तोभश्छंदोमयः प्रभुः ॥ रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥ २७ ॥ सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ॥ बुद्धींद्रियमनःप्राणान्पांतु पार्षदभूषणाः ॥ २८ ॥

लोंको भगा दे॥२३॥ हे तीक्ष्णधारावाला खड्ग ! तू भगवान्‌के हाथसे प्रेरित होकर, मेरे शत्रुओंकी सैन्यको काट काट. हे चंद्रमाकेसे सौ मंडलवाली ढाल ! तू पापी शत्रुओंके नेत्रोंको ढक दे. और दुष्ट दृष्टिवालोंकी दृष्टियोंको हर ले ॥ २४ ॥ ग्रह, केतु, मनुष्य, सरीसृप, दाढ़वाले जानवर और पाप कि-जिनसे हमको भय लगता है ॥२५॥ ये सब तथा जो हमारे कल्याणमें विघ्न करनेवाले हैं, वेभी भगवान्‌के नामरूप अस्त्रके कीर्तनसे शीघ्र नाश को प्राप्त हो जावें॥२६॥ वैदिक स्तोत्रोंसे स्तुति करवाते, वेदमय .और समर्थ गरुड़ भगवान् सब कष्टोंसे हमारी रक्षा करें विष्वक्सेन भगवान् अपने नामोंसे रक्षा करें॥२७॥ भगवान्‌के नाम, रूप, वाहन और आयुध सकल आपत्तियोंसे हमारी

रक्षा करें. भगवान्‌के उत्तम पार्षद हमारी बुद्धि, इंद्रिय, मन और प्राणकी रक्षा करें ॥ २८ ॥ वस्तुतः देखते हैं तो, यह सब चराचर जगत् भगवान्‌काही स्वरूप है. तो इस सत्यसे हमारे सब उपद्रवोंका नाश होवे ॥ २९ ॥ यदपि अभेद दृष्टिवालोंकी दृष्टिमें भगवान् भेदरहितही हैं. तथापि अपनी मायासे वे भूषण, आयुध और चिन्हनामक शक्तियोंको धारण करते हैं ॥ ३० ॥ यह वार्ता सत्य है तो इसी सत्य प्रमाणसे सर्वव्यापक और सर्वज्ञ हरि भगवान् अपने सर्वस्वरूपोंद्वारा सर्वकालमें और सर्व देशमें हमारी रक्षा करें ॥ ३१ ॥ नृसिंहजीके नामकी गर्जनासे लोकोंके भयको मिटानेवाले और अपने

यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ॥ सत्येनानेन नः सर्वे यांतु नाशमुपद्रवाः ॥ २९ ॥ यथै-कात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ॥ भूषणायुधलिंगाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥ ३० ॥ ते-नैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान्हरिः ॥ पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३१ ॥ विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधःसमंतादंतर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ॥ प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥ ३२ ॥ मघवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ॥ विजेष्यस्यंजसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥ ३३ ॥ एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ॥ पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्य-ते ॥ ३४ ॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ॥ राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥ ३५ ॥

प्रभावसे दिग्गज, विष, शस्त्र, जल, वायु, अग्निआदि सर्व पदार्थोंकी सामर्थ्यको गिल जानेवाले, प्रल्हाद अथवा नृ-सिंह भगवान् दिशाओंमें, कोणोंमें, ऊपर, तले, भीतर, बाहिर और चारों ओर हमारी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ विश्वरूपने कहा कि– हे इंद्र ! यह नारायणकवच (नारायणके नामका बख्तर) मैंने आपसे कहा है, कि– जिसको पहनकर, तुम बड़े २ दै-त्योंको अनायाससे जीत लोगे ॥ ३३ ॥ इस कवचको धारण करनेवाला पुरुष जिसके सामने आंख उठाकर देखे अथवा जिसको चरणसे छूवे, वह भयसे मुक्त हो जाय ॥ ३४ ॥ इस विद्याको जो मनुष्य धारण करे, उसके राजा, चोर और ग्रहआदि अथवा

व्याघ्रआदि किसीका भय न रहे ॥ ३५ ॥ पहले इस विद्याको धारण करनेवाले किसी कौशिकगोत्री ब्राह्मणने योगधारणासे मरु और धन्व यानी निर्जलदेश- (मारवाड़) में अपने देहका त्याग किया था ॥ ३६ ॥ एक दिन स्त्रियोंसे घिराहुआ गंधर्वोंका राजा चित्ररथ विमानमें बैठकर, आकाशमार्गसे जाता था. सो जहां उस ब्राह्मणका देह पड़ा था. उस स्थलपै आया ॥ ३७ ॥ तो तुर्त वह विमानसहित उलटेशिर नीचे आपड़ा, फिर बालखिल्य ऋषियोंके कहनेसे उस ब्राह्मणकी हड्डियां उठाय, प्राची अर्थात् पश्चिमवाहिनी सरस्वतीमें डाल, वहां स्नान कर, विस्मय करताहुआ वह गंधर्व अपने लोकको गया ॥ ३८ ॥ श्रीशुक-

इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन् द्विजः ॥ योगधारणया स्वांगं जहौ स मरुधन्वनि ॥ ३६ ॥ तस्योपरि विमानेन गंधर्वपतिरेकदा ॥ ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥ ३७ ॥ गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ॥ स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ॥ प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः ॥ तं नमस्यंति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ३९ ॥ एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे ष० नारायणवर्म नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्याऽऽसन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ॥ सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥ १ ॥

देवजी बोले कि- जो मनुष्य इस नारायणकवचको योग्यसमयमें आदरके साथ सुनै, अथवा धारण करै, उसे सर्व प्राणीमात्र प्रणाम करें. और वह आप सर्वभयमात्रसे मुक्त हो जाय ॥ ३९ ॥ विश्वरूपसे इसविद्याके पानेसे इंद्रने सब दैत्योंको संग्राममें जीतकर, त्रिलोकीके राज्यकी लक्ष्मीका भोग किया ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ नवमें अध्यायमें कोप कर, इंद्रने विश्वरूपको मारा. तब त्वष्टाने वृत्रको पैदा किया. और उससे भयभीत होकर, देवताननै भगवान्की स्तुति की. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इन विश्वरूपके

तीन शिर थे. उनमें एक तौ सोमपान करनेका, दूसरा सुरापान करनेका, तीसरा अन्न खानेका, ऐसे सुना है ॥ १ ॥ महाराज! यह विश्वरूप कि- जिनके बड़े देवता थे वह आप यज्ञमें देवतानको भाग देते. तब देवतानके भाग देनेके मंत्र तो प्रत्यक्ष रीतिसे विनयसहित ऊंचे स्वरसे बोलते ॥ २ ॥ और उनकी मा कि -जो दैत्यकी कन्या थी, उसके स्नेहके वश होनेके निमित्त दैत्यों-कोभी गुप्त रीतिसे भाग दिया करते ॥ ३ ॥ यह धर्मसंबंधी कपटरूप उनका अपराध देखकर, दैत्योंसे डरेहुए इंद्रने क्रोधसे शीघ्र उनके शिर उड़ा दिये ॥ ४ ॥ जो शिर सोमपान करनेका था. उससे कपिंजल (चातक) पक्षी पैदा हुआ. सुरापान

स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः ॥ अवदद्यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥ २ ॥ स एव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान्प्रति ॥ यजमानो वहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥ ३ ॥ तद्देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ॥ आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ॥ ४ ॥ सोमपीथं तु यत्तस्य शिर आसीत्कपिंजलः ॥ कलविंकः सुरापीथमन्नादं यत्स तित्तिरिः ॥ ५ ॥ ब्रह्महत्यामंजलिना जग्राह यदपीश्वरः ॥ संवत्सरांते तदघं भूतानां स विशुद्धये ॥ भूम्यंबुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥ ६ ॥ भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै ॥ ईरणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥ ७ ॥ तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः ॥ तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥ ८ ॥

करनेवाले मस्तकसे कलविंक (गरगवा) पक्षी पैदा हुआ. और अन्न खानेवाले शिरसे तीतर पक्षी पैदा हुआ ॥ ५ ॥ यदपि इस ब्रह्महत्याका पाप दूर करनेको इंद्र समर्थ थे. तथापि एक वर्षपर्यंत इस ब्रह्महत्याको उन्होंने धारण किया. और वर्ष पूरा हुआ. तब लोकापवाद टालनेके वास्ते उस ब्रह्महत्याके चार भाग करके पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियोंको पृथक् २ बांट दिया ॥ ६ ॥ उन भागोंमेंसे एक भाग तौ पृथ्वीने लिया, वो इस वरसे कि-जो मुझमें गढ़ा होवे, वह आपही भर जाय. मुझमें गढ़ा रहने न पावे. पृथ्वीपर जितना ऊषरभाग है, वह सब ब्रह्महत्याका रूप देखनेमें आता है ॥ ७ ॥ एक भाग वृक्षोंने लिया. वह इस वरसे लिया कि-हम कटनेपरभी पीछे उग जायं. इनमें जो गूंद व रस है, वह ब्रह्महत्याका स्वरूप देखनेमें आता है ॥ ८ ॥

एक भाग स्त्रियोंने लिया, वह इस वरसे कि-बालक जन्मे जबतक मैथुन किया जाय, तौभी गर्भको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचे. इनमें महीनेका महीने रजरूप हत्या दीख पड़ती है ॥ ९ ॥ एक भाग जलने लिया-वह इस वरसे कि, हमें कुएंआदिमेंसे साफ निकाल लेवें, यानी उसमें कुछभी बाकी न छोड़ें, तौभी हम पीछे उतनेही हो जायं, इसमें बबूले और फेनरूप ब्रह्महत्या दीख पड़ती है. जलमेंसे जो बबूले और फेन निकाल देते हैं. यह ब्रह्महत्या निकाली गयी ऐसे समझना चाहिये

शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः ॥ रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥ ९ ॥ द्रव्यभूयो वरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ॥ तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥ १० ॥ हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेंद्राय शत्रवे ॥ इंद्रशत्रो विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषम् ॥ ११ ॥ अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः ॥ कृतांत इव लोकानां युगांतसमये यथा ॥ १२ ॥ विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ॥ दग्धशैलप्रतीकाशं संध्याऽऽभ्रानीकवर्चसम् ॥ १३ ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥ १४ ॥

॥ १० ॥ फिर त्वष्टाके विश्वरूप नाम पुत्र मरजानेसे उन्होंने इंद्रका शत्रु उत्पन्न करनेके वास्ते "हे इंद्रशत्रो ! तू बढ़ और शीघ्र शत्रुको मार" इस अर्थवाला मंत्र पढ़कर, अग्निमें होम किया ॥ ११ ॥ उस होमके प्रभावसे दक्षिणाग्निमेंसे एक भयंकर रूपवाला पुरुष जैसे प्रलयकालमें लोकोंका काल उठा करता है, वैसे उठा ॥ १२ ॥ यह पुरुष, चलाया हुआ बाण जितने हाथ दूर पड़े, इतने हाथ प्रतिदिन चारों तर्फसे बढ़ता था. जैसे जलाहुआ पर्वत काला हुआ करता है, वैसे वह काला था. संध्यासमयके बादलकीसी उसकी कांति थी ॥ १३ ॥ दाढ़ी मूछ और शिरके बाल तपेहुए ताम्रकेसे लाल थे. नेत्र मध्यान्ह समयके सूर्यकेसे बड़े उग्र थे

१ "इन्द्रशत्रो विवर्द्धस्व" इस मंत्रके आदिके अक्षरमें उदात्त स्वर है इससे इधर बहुव्रीहि समास होनेसे प्रकृतिका पूर्वपद होगया यानी इस मंत्रका ऐसा अर्थ होगया कि-इन्द्रही उसके शत्रु होगये. वही श्रुतिने कहा है कि-"यदब्रवीत्स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्वेति तस्मादस्येन्द्रः शत्रुरभवदिति" ॥ अर्थ-स्वाहा 'इद्रशत्रुर्वर्द्धस्व' जिससे ऐसा कहा तिससे इसके इन्द्रही शत्रु होगये ॥ और ऐसेही पाणिनिशिक्षामेंभी कहा है "मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ १ ॥ अर्थ-स्वरसे अथवा अक्षरसे हीन और मिथ्याप्रयुक्त मंत्र जो अर्थको विचारके कहो उसको नहीं कहता किन्तु उससे विपरीतही होता है और वह वाणीरूप वज्र यजमानको मारता है जैसे स्वरके अपराधसे उलटा इन्द्रही शत्रु होगये ॥ १ ॥

अतिदेदीप्यमान तीन अनीवाले त्रिशूलमें, मानों पृथ्वी और अंतरिक्षको पोह लिया हो ऐसे प्रतीत होता था. नाचताहुआ पैरोंसे पृथ्वीको कंपायमान करता था. और गर्जना करता था ॥ १५ ॥ पर्वतकी गुफाकें समान गंभीर और भयंकर दाढ़ोंवाले बड़े मुखसे वह बारंबार जंभाई खाता था. उस समय मानों वह आकाशको पीता होवे, जीभसे नक्षत्रोंका चाटता होवे और त्रिलोकीको निगलता होवे, ऐसे दीखता था. इस पुरुषको देखकर, त्रसित भयेहुए सब लोक दशों दिशाओंमें भगने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥

देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ॥ नृत्यंतमुन्नदंतं च चालयंतं पदा महीम् ॥ १५ ॥ दरीगंभीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् ॥ लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥ १६ ॥ महता रौद्रदंष्ट्रेण जृंभमाणं मुहुर्मुहुः ॥ वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥ येनावृत इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ॥ स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥ १८ ॥ तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः ॥ स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः ॥ प्रत्यक्षमादिपुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ वाय्वंबराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजंतः ॥ हराम यस्मै बलिमंतकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥ २१ ॥

जिससे इस त्वष्टाके पुत्ररूप अंधकारने इन सब लोकोंको घेर लिया. तासों इस अत्यंतदारुण और पापी पुरुषका 'वृत्र' नाम पड़ा ॥ १८ ॥ अपनी बड़ी सेना इकट्ठी करके बड़े २ देवता लोग उसके ऊपर दौड़कर, आये. और अपने २ दिव्य अस्त्र व शस्त्रोंके समूहसे उसको मारनेलगे. तब वह देवतानके सब अस्त्र शस्त्र निगल गया १९ ॥ तब तेजहीन और खेदित सब देवता विस्मित होकर, एकाग्रचित्तसे अंतर्यामी भगवानेकी स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ देवतानने स्तुति की कि–वायु, आकाश अग्नि, जल,

१ और ऐसी श्रुतिभी है कि–स इमाँल्लोकानावृणोत्तद्वृत्रस्य वृत्रत्वम् ॥ अर्थ–उसने ये सब लोकोंको आच्छादित करदिया यही उस (वृत्रासुर) की वृत्रत्व है अर्थात् इससे उसका नाम वृत्र पड़ा. २ महाभये परित्राणमन्यतो न भवेदिति । हरिमेव प्रपद्यन्ते सुराः शरणमातुराः ॥ १ ॥ अर्थ–महाभय प्राप्त होनेपर हरिविना दूसरेसे रक्षण नहीं होवे . इस हेतुसे शरणातुर देवता हरिहीकी शरणको जाते हैं ॥

पृथ्वी, तीनों लोक, ब्रह्मादिक और हमभी भयभीत होकर, जिसकी आज्ञाके अनुसार चलते भेंटें देते हैं. वह कालभी जिससे डरता है. वे परमेश्वर हमारे रक्षक होवें ॥ २१ ॥ अहंकाररहित, शांत, अपने स्वरूपलाभसे पूर्णकाम और सम, ऐसे परमेश्वरको छोड़कर, जो पुरुष दूसरेका शरण लेता है, वह मूर्ख कुत्तेकी पूंछ पकड़कर, समुद्रको पार उतरना चाहता है ॥ २२ ॥ सत्यव्रत मनु जिनके बड़े शृंगमें पृथ्वीरूप अपनी नौकाको बांधकर, योग्यताके साथ संकटसे पार उतरे, वे मत्स्यावतार भगवान् हम कि—जो प्रभुके आश्रित हैं, उनकीभी इस वृत्रासुररूप अपार भयँसे अवश्य रक्षा करेंगे ॥ २३ ॥ प्रथम अतिप्रचंड पवनके झपाटेसे उठीहुई लहरोंके शब्दोंसे

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशांतम् ॥ विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलांगुलेनातितितर्ति सिंधुम् ॥ २२ ॥ यस्योरुशृंगे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाऽऽबध्य ततार दुर्गम् ॥ स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद्दुरंतात्त्राताऽऽश्रितान्वारिचरोऽपि नूनम् ॥ २३ ॥ पुरा स्वयंभूरपि संयमाम्भस्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ॥ एकोऽरविंदात्पतितस्ततार तस्माद्भयाद्येन स नोऽस्तु पारः ॥ २४ ॥ य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ॥ वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिंगं पृथगीशमानिनः ॥ २५ ॥ यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ॥ कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वाऽऽत्मसात्पाति युगे युगे च ॥ २६ ॥ तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ॥ व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा २७ ॥

महाविकराल प्रलयके जलमें कमलपरसे ब्रह्माजी गिर गये, उस समय वे इकल्लेथे, तौभी जिनकी सहायतासे संकटसे मुक्त हो गये. वे ईश्वर इस संकटमेंसे हमें तिरावें ॥ २४ ॥ जिन भगवान्ने किसीके सहाय विना अपनी मायासे हमको पैदा किया है. जिनकी अनुग्रहसे हम जगत्को रचतेहैं. जो प्रभु हमसे पहलेही अंतर्यामीपनसे काम करते हैं. तथापि जुदे२स्वामित्वका अभिमान रखनेवाले हम उनके स्वरूपको नहीं जानते ॥ २५ ॥ जो प्रभु प्रत्येक युगमें आप नित्य होनेपरभी देवता, ऋषि, पशु, पक्षी तथा मनुष्योंमें अपनीमायासे अवतार लेकर, उन२अवतारोंसे हमको अपने जानकर, शत्रुओंके महादुःखसे बचाते हैं ॥ २६ ॥ और जो प्रभु हमारे

आत्मारूप, इष्टदेव सर्वरूप, सर्वसे अन्य, सबके परम कारणरूप, प्रधानपुरुषरूप और शरणागतोंके रक्षक हैं, उन शरण देनेवाले परमेश्वरके हम सब शरण प्राप्त हुये हैं. ये महात्मा, हम कि-जो उन्हीं प्रभुके हैं, उनका कल्याण करेंगे॥ २७॥ शुकदेवजीने कहा कि-महाराज ! इसप्रकार देवताननें स्तुति की. तब, शंख, चक्र और गदा धरनहारे भगवान्ने प्रथम तो उनके हृदयमें दर्शन दिया. और फिर पश्चिमदिशामें बाहिर दर्शन दिया ॥ २८ ॥ श्रीवत्स और कौस्तुभ मणिके शिवाय बाकी सब भगवान्के समान चिन्हवाले सुनंदआदि सोलह पार्षद इन भगवान्का चारोंओर सेवन कर रहे थे. महाराज ! शरदृतुसंबंधी प्रफुल्लित कम-

श्रीशुक उवाच ॥ इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ॥ प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शंखचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥ आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ॥ पर्युपासितमुन्निद्रशरदंबुरुहेक्षणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा तमवनौ सर्व ईक्षणाह्लादविक्लवाः ॥ दंडवत्पतिता राजन् शनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥ ३० ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ॥ नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥ ३१ ॥ यत्ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ॥ नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥ ३२ ॥ ओंनमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममंगल परमकल्याण परमकारुणिक केवलजगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणाऽऽत्मयोगसमाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्घाटिततमःकपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥ ३३ ॥

लकेसे नेत्रवाले विष्णु भगवान्का दर्शन कर, उसके आनंदसे विव्हल भएहुए इन सब देवताननें प्रथम पृथ्वीपर दंडवत् प्रणाम किया. फिर धीरे २ उठकर, स्तुति की ॥ २९ ॥ ३० ॥ देवता बोले कि-आप कि-जो यज्ञरूप सामर्थ्यवाले, कालरूप, दैत्योंके ऊपर चक्र चलानेवाले और सुंदर अनेक नामवाले हो, उन्हें हम बारंबार प्रणाम करते हैं ॥ ३१ ॥ हे प्रभु ! आप कि-जो तीनों गुणोंके स्वामी हो, उनके तीनों गुणोंसे पर निर्गुण स्वरूपको जाननेके वास्ते सृष्टिमें उत्पन्न भयाहुआ अर्वाचीन कौन पुरुष समर्थ होवे ? ॥ ३२ ॥ हे भगवन् हे नारायण ! हे वासुदेव ! हे आदिपुरुष ! हे महापुरुष ! हे महाप्रभाव ! हे परममंगलरूप !

हे परमकल्याणस्वरूप ! हे महादयालु ! हे केवलरूप ! हे जगत्के आधार ! हे लोकके एकनाथ ! हे सर्वेश्वर ! हे लक्ष्मीपति ! स्वरूपके ध्यानरूप समाधिसे अच्छीतरह अभ्यास किये स्फुट भजनसे अज्ञानरूप कपाट जिसके खुल गये हैं, ऐसे चित्तरूप द्वारमें प्रत्यक्ष प्रतीत होतेहुए स्वरूपप्रकाशमें परमहंस संन्यासी लोकोंको जो स्वयमेव स्वरूपसुख प्राप्त होता है, उसके अनुभवरूप आप हो ॥ ३३ ॥ आपकी लीलाका प्रकार मानों समझमें न आवे ऐसा है; क्योंकि—आश्रयरहित, शरीरहीन और निर्गुण आप, हमारी सहायताकी अपेक्षा न रखते अपने निर्विकार स्वरूपसेही इस जगत्को रचते हो, पालते हो और लीन करते हो ॥ ३४ ॥ प्राकृत पुरुष जैसे घरआदि बांधकर, अपने कियेहुए शुभ और अशुभ कर्मका फल भोगते हैं वैसे आप सृष्टिआदि

दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥ ३४ ॥ अथ तत्र भवान्किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतंत्र्येण स्वकृतकुशलाऽकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समंजसदर्शन उदास्त इति ह वा व न विदामः ॥ ३५ ॥ नहि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणितगुणगण ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलांतःकरणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामंतर्धाय कोऽन्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥ ३६ ॥

रचकर, उसमें जीवरूपसे पड़कर, परतंत्रपनसे अपने कियेहुए पापपुण्यका फल भोगते हो. अहो स्वित्, आत्माराम, शांतिशील और अखंड चैतन्यरूप रहकर, साक्षी होकर, रहते हो यह हम नहीं जानते ॥ ३५ ॥ परंतु आपके स्वरूपमें इन दोनों बातोंका विरोध नहीं आता; क्योंकि अनंत गुणवाले और अतिगंभीर महिमावाले आपके ईश्वरस्वरूपमें संशय और विचारके संबंधमें आतेहुए कल्पित प्रमाण और उनको अवष्टंभ देनेवाले कुतर्कोंवाले शास्त्रोंसे व्याकुल भयेहुए अतःकरणोंमें भरेहुए दुराग्रहके कारण जो वाद करनेवाले हैं, उनके विवादकी जगहही नहीं है. आपका स्वरूप यदपि सर्वप्रपंचसे रहित और केवलही है, तथापि उसमें मायाको बीचमें राखें तौ, कौनसा विषय दुर्घटसा है ? जो वास्तविक रीतिसे कर्तृत्वआदि होवे तौ, विरोध

आवे. परंतु स्वरूपमें भेद नहीं होनेके कारण ऐसा कुछभी बिलकुल हैही नहीं ॥ ३६ ॥ जैसे एकही रज्जु-(रसरी) का टुकड़ा जुदे २ देखनेवालोंकी दृष्टिमें सर्पआदि भिन्न २ आकारसे प्रतीत होता है. ऐसे आपभी कि-जो एकहीहो, वे सम, विषम बुद्धिवालोंकी दृष्टिमें अनुग्रह और निग्रह करनेवालेआदि भिन्नभिन्न रूपसे प्रतीत होते हो ॥ ३७ ॥ जो आप अनेकरूपसे दीखते हो, वे सर्ववस्तुमात्रमें सत्स्वरूप, सर्वके ईश्वर और सर्वजगत्के करणोंकेभी कारणरूप हो. सबके अंतरयामी होनेके कारण सर्वविषयोंके प्रकाशपरसे प्रतीत होतेहुए जो आप हो, उन्हें श्रुतियां एकरूपसेही अवशेष रखती हैं, अर्थात् 'नेति नेति' इत्यादि श्रुतियोंके

समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखंडः सर्पादिधियाम् ॥ ३७ ॥ स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥ ३८ ॥ अथ ह वा व तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्पंदमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एकांतिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरंतरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणांबुजानुसेवां विसृजंति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥ ३९ ॥ त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दंडं दंडधर दधर्थ एवमेनमपि भगवन्जहि त्वाष्ट्रसुत यदि मन्यसे ॥ ४० ॥

निषेधसे अवशिष्ट आपका स्वरूप बोधित होता है ॥ ३८ ॥ इसीवास्ते हे मधुसूदन! आपकी महिमारूप अमृतरसके समुद्रका एकवार स्वादलियेहुए बिंदुमात्रसे मनमें टपकतेहुए अखंड सुखने जिनके इस लोकऔर परलोकसंबंधी अल्प और तुच्छ विषयसुख भुला दिये हैं, ऐसे स्वार्थमें कुशल और केवल आपकोही प्रियबंधु माननेवाले आपके परमभक्त सच्चे साधुलोग कि- जिनका मन सर्वप्राणीमात्रके प्रिय मित्र और सर्वके आत्मरूप आपमेंही निरंतर लग रहनेसे जो परमसुखके पात्र हो गये हैं, वे आपके चरणारविंदकी सेवाको किसप्रकार छोड़ सकें? कि- जिस सेवाके करनेसे यह संसारका फेरा टल जाता है ॥ ३९ ॥ हे त्रिविक्रम! हे

त्रिलोकीके आत्मा और आश्रयरूप ! हे त्रिलोकीके चलानेवाले ! हे त्रिलोकीको प्रिय लगे ऐसे प्रभाववाले ! हे दंडधर ! हे भगवन् ! यद्यपि दैत्य और दानव आपकी विभूति हैं, तथापि यह समय उनके उद्योगका नहीं हैं, ऐसे जानकर, अपनी मायासे सुरनरपशुमिश्रित और जलचरोंका अवतार धारण कर, अपराधके अनुसार आपने जैसे पहले उनको दंड दिया था, उसी तरह अबभी जो आपकी इच्छा होवे तौ, इस वृत्रासुरको मारो ॥ ४० ॥ हे तात ! हे पितामह ! हे अनघ ! हम कि– जो आपके और आपको प्रणाम करनेवाले तथा हृदयमें आपके चरणारविंदके ध्यानहीसे बँधीहुई सांकलवाले हैं और जिन्हें अपनी मूर्ति प्रकट करके, अपने बना लिये हैं, उनके अंतःकरणके तापको दयासहित, स्वच्छ, सुंदर और शीतल हास्यपूर्वक अवलो-

अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिंगविवरणेनाऽऽत्मसात्कृतानामनुकंपाऽनुरंजितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरसुखरसामृतकलया चांतस्तामनघार्हसि शमयितुम् ॥४१॥ अथ भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्यसकलजीवनिकायानामंतर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथा देशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलंभकतयाऽनुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद्विस्फुलिंगादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥ ४२ ॥

कनसे तथा मुखमेंसे निकलीहुई मधुर रसवाली वाणीरूप अमृतकी कलासे शांत करो ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! आप कि– जो सर्वजगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेमें निमित्तरूप होती हुई दिव्यमायासे विनोद करनेवाले हो, सब जीवसमूहके अंतःकरणोंमें ब्रह्मस्वरूप तथा अंतर्यामीस्वरूपसे और बाहर प्रधानरूपसे सर्वके मूलकारण होनेके हेतु देश, काल तथा देहकी अवस्थावोंका अनुभव करनेवाले हो. और बुद्धिआदि सकल पदार्थमात्रके साक्षी, निरंजनस्वरूप परमात्मा तथा परब्रह्म हो. उनके निकट हमें कौन कौन विषय प्रगट करना पड़े ? जैसे अग्निके समीपमें चिनगारियांआदिको प्रकाश करनेकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती ऐसे आपके समीपमें हमारा कार्य प्रगट करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ४२ ॥

इसीलिये शरणागतोंके अनेकप्रकारके दुःखोंसे होतेहुए संसारके परिश्रमको मिटानेवाली परमगुरु आपके चरणारविंदकी छायाके शरण हम जिस कार्यकी इच्छासे प्राप्त हुए हैं, उस कार्यको आप स्वयं सिद्ध करो ॥ ४३ ॥ हे ईश ! त्रिलोकीको निगलजाते इस वृत्रासुरको अब शीघ्र मारो. जो वृत्रासुर हमारे तेज, अस्त्र और आयुधोंको निगल गया है ॥ ४४ ॥ शुद्ध हृदयाकाशमें रहनेवाले, बुद्धिआदिके साक्षी, सदानंदरूप, मनोहरकीर्ति, अनादि, सत्पुरुषोंसे ग्रहण किये जाते और संसाररूप मार्गमें चलनेवाले पुरुषके शरण आनेपर अंतमें उत्तम फलरूप आप ईश्वरको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४५ ॥ शुकदेवजीने कहा कि—इसप्रकार देवता-

अतएव स्वयं तदुपकल्पयाऽस्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥ ४३ ॥ अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसंतं भुवनत्रयम् ॥ ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥ ४४ ॥ हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ॥ सत्संग्रहाय भवपांथनिजाश्रमाप्तावंते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैवमीडितो राजन्सादरं त्रिदशैर्हरिः ॥ स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तानभिनंदितः ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ॥ आत्मैश्वर्यस्मृतिःपुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥ ४७ ॥ किं दुरापं मयि प्रीते तथाऽपि विबुधर्षभाः ॥ मय्येकांतमतिर्नान्यन्मत्तो वांछति तत्ववित् ॥ ४८ ॥ न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ॥ तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ॥ ४९ ॥

नने स्तुति करके आदरके साथ भगवान्‌को प्रसन्न किया. तब भगवान्‌ने अपनी स्तुति सुनकर, उनसे ये वक्ष्यमाण वचन कहे ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि— हे सुरश्रेष्ठो ! मेरी स्तुतिसहित ब्रह्मविद्या कि— जिससे पुरुषोंके अपने ईश्वरांशपनका स्मरण और मेरी भक्ति उत्पन्न होती है, उससे प्रसन्न हुआ हूं ॥ ४७ ॥ हे देवश्रेष्ठो ! मैं प्रसन्न हो जाऊं, तब कोईभी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती तथापि मेरेमें अखंडित मन रखनेवाला तत्त्ववेत्ता पुरुष मेरेविना दूसरा कुछभी नहीं चाहता ॥ ४८ ॥ विषयसुखको यथार्थ रूप जाननेवाले अज्ञानी पुरुषको अपने साक्षात् कल्याणकी खबर नहीं रहती, तासों उन विषयसुखोंकी इच्छावाले पुरुषोंको उनका

इष्टदेवभी यदि विषयसुखही देवे तौ, उस देवकोभी अज्ञानीही समझना चाहिये ॥४९॥ यथार्थ कल्याणको जाननेवाला विद्वान्, अज्ञानीजनको कर्म करनेके वास्ते कभी उपदेश नहीं करता. क्योंकि जो उत्तम वैद्य होवे, वह कुपथ्य खाना चाहतेहुए रोगी-

स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ॥ न राति रोगिणोऽपथ्यं वांछतो हि भिषक्तमः ॥ ५० ॥
मघवन्यात भद्रं वो दध्यंचमृषिसत्तमम् ॥ विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥ ५१ ॥ स वा
अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ॥ यद्वा अश्वशिरो नाम तयोरमरतां व्यधात् ॥ ५२ ॥

को कभी कुपथ्य नहीं देता ॥ ५०॥ हे इंद्र ! अभी मैं तुम्हारे अभिप्रायका अनुसरण करके कहता हूं कि-सर्वऋषियोंमें उत्तम दधीचि ऋषिके निकट तुम जाओ. और जाकर, विद्या व्रत व तपसे दृढ़ भयाहुआ उनका शरीर मांगो, इसमें विलंब मत करो ॥ ५१ ॥ ये दधीचिमुनि शुद्ध और निर्विकार ब्रह्मको जान चुके हैं. और जानकर, उन्होंने घोड़ेके शिरशे अश्विनीकुमारोंको उस

---

१ एवं अत्र प्रसिद्धा कथा । निशम्याथर्वणं दक्षं प्रवर्ग्यब्रह्मविद्ययोः ॥ दध्यञ्चं समुपागम्य तमूचतुरथाश्विनौ ॥ १ ॥ भगवन्देहि नौ विद्यामिति श्रुत्वा स चाब्रवीत् ॥ कर्मण्यवस्थितोऽद्याहं पश्चाद्वक्ष्यामि गच्छताम् ॥ २ ॥ तयोर्निर्गतयोरेव शक्र आगत्य तं मुनिम् ॥ उवाच भिषजोर्विद्यां मा वदीरश्विनोर्मुने ॥ ३ ॥ यदि मद्वाक्यमुल्लंघ्य ब्रवीषि सहसैव ते ॥ शिरश्छिद्यां न सन्देह इत्युक्त्वा स ययौ हरिः ॥ ४ ॥ इन्द्रे गते तथाऽभ्येत्य नासत्यावूचतुर्द्विजम् ॥ तन्मुखादिंद्रगदितं श्रुत्वा तावूचतुः पुनः ॥ ५ ॥ आवां तव शिरश्छित्वा पूर्वमश्वस्य मस्तकम् ॥ संधास्यावस्ततो ब्रूहि तेन विद्यां च नौ द्विज ॥ ६ ॥ तस्मिन्निन्द्रेण संछिन्ने पुनः संधाय मस्तकम् ॥ निजं ते दक्षिणां दत्वा गमिष्यावो यथातथम् ॥ ७ ॥ एतच्छ्रुत्वा तथोवाच दध्यङ्ङाथर्वणस्तयोः ॥ प्रवर्ग्यं ब्रह्मविद्यां च सत्कृतोऽसत्यशंकितः ॥ ८ ॥ यहांपर ऐसी कथा प्रसिद्ध है. अर्थ- कोई समय अश्विनीकुमारोंने अथर्ववेद जाननेवाले, ब्रह्मविद्या तथा प्रवर्ग्यमें प्रवीण ऐसे दधीचि मुनिको देखा तो इनके पास आके, बोले ॥ १ ॥ कि-हे भगवन् ! हमको विद्या देव. यह सुनके, वो बोले कि-हम अभी नित्यकर्ममें लगे हैं सो पीछे तुमको विद्या कहेंगे अभी जावो ॥ २ ॥ उनके जातेही इन्द्र आके, उन मुनिसे बोले कि- हे मुने ! वैद्य अश्विनीकुमारोंको विद्या मत बतावो ॥ ३ ॥ यदि हमारी बात न मान, सहसा तुम उनसे विद्या कहोगे तो तुम्हारा शिर काट लेंगे इसमें सन्देह नहीं. ऐसा कहके, वह इन्द्र चले गये ॥ ४ ॥ इन्द्रके जानेपर अश्विनीकुमार आके, दधीचि मुनिसे बोले कि- हमको विद्या शिखावो तो उन मुनिने इन्द्रका कहाहुआ बचन कहा. उनके मुखसे इन्द्रका कहाहुआ बचन सुन, वे अश्विनीकुमार फिर बोले ॥ ५ ॥ कि- हम तुम्हारा शिर काटके पहले घोड़ाका शिर लगावेंगे तब तुम उसी शिरसे हमको विद्या कहो ॥ ६ ॥ जब वह शिर इन्द्र काट डालेंगे तब यह शिर लगाके, अपनी यही गुरुदक्षिणा देके जैसेके तैसे घर जायंगे ॥ ७ ॥ यह अश्विनीकुमारोंका बचन सुनके, असत्यशंकित और सत्कार कियेहुये दधीचि मुनि उनसे अथर्वण वेद प्रवर्ग्य और ब्रह्मविद्याको कहते भये ॥८॥

ब्रह्मविद्याका उपदेश किया है कि—जिस ब्रह्मविद्यासे अश्विनीकुमार जीवन्मुक्त हुए ॥ ५२ ॥ हे इंद्र! ये अथर्ववेदके जाननेवाले दधीचिमुनि अभेद्य और मद्रूप नारायणकवचकोभी जानते हैं. यह नारायणकवच दधीचिने त्वष्टा ऋषिको दिया. और त्वष्टाने विश्वरूपको दिया और विश्वरूपसे तुम उस कवचको प्राप्त हुए हो ॥ ५३ ॥ तुम मांगोगे, तब धर्मके जाननेवाले ये दधीचिमुनि अश्विनीकुमारोंके ऊपर प्रीतिके हेतु तुमको अपने अस्थि दे देवेंगे और अस्थियोंमेंसे विश्वकर्मा वज्रनामक उत्तम शस्त्र तुम्हे बनाय देगा ॥ ५४ ॥ हमारे तेजसे उन्नति पायेहुए तुम इस शस्त्रसे वृत्रासुरके शिरका हरण करोगे. इस वृत्रासुरके मरनेके अनंतर तुमको तेज, अस्त्र, आयुध और संपदा सब पीछे मिल जायगे (वृत्रासुर मार डारेगा ऐसी चिंता मत करो;) क्योंकि हमारे भक्तोंको कोईभी मार नहीं

दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं मदात्मकम् ॥ विश्वरूपाय यत्प्रादात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥ ५३ ॥ युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति ॥ ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ॥ ५४ ॥ येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेजउपबृंहितः ॥ तस्मिन्विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसंपदः ॥ भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसंति च मत्परान् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः ॥ पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवांतर्दधे हरिः ॥ १ ॥ तथाऽभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ॥ मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥ अपि वृंदारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् ॥ संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥

सकता. तासों तुम्हारा कल्याणही होगा ॥ ५५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानाम-भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ दशमें अध्यायमें दधीचिके अस्थिमेंसे बनाहुआ वज्र लेकर, देवतासहित इन्द्रने वृत्रासुर और उसके संबंधी दैत्योंके साथ युद्ध किया. यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—जगत्के पालक भगवान् इसप्रकार इंद्रको आज्ञा कर, देवतानके देखते वहीं अंतर्धान हो गये ॥ १ ॥ हे परीक्षित ! देवतानने महात्मा दधीचि ऋषिसे भगवानकी आज्ञाके अनुसार प्रार्थना की. तब प्रसन्न होकर हँसते २ महामुनि दधीचिजीने यह वक्ष्यमाण वचन कहा ॥ २ ॥ कि—हे देवो ! प्राणियोंका मरणसमयमें जो असह्य और जीवितका नाश करनेवाला दुःख होता है, उसे तुम नहीं जानते ? ॥ ३ ॥

जीना चाहतेहुए जीवोंके संसारमें सबसे अपना देह प्रिय है. तासों ऐसे देहको यदि स्वयं विष्णुभी आकर, मांगें; तो उस देहको कौन देनेको तैयार है ? ॥ ४ ॥ देवताननें कहा कि–हे ब्रह्मन् ! आपजैसे महात्मा पुरुष कि–जो प्राणियोंपर दया करनेवाले और यशस्वी पुरुषोंके प्रशंसा करनेके योग्य हैं, उनके कौन वस्तु परित्याग करनेको अशक्य है ? ॥ ५ ॥ स्वार्थपरायणलोक पराये संकटको नहीं जानता यदि, जानता होवे तौ, मांगे नहीं. और वैसेही जो मांगनेवालेके संकटको जानता होवे, वह समर्थ होनेपर नाहीं नहीं करे ॥ ६ ॥ दधीचिने कहा कि– इतनी तुम्हारेसे धर्मकी बात सुननेके

जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ ईहेप्सितः ॥ क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ किं नु तद्दुस्त्यजं ब्रह्मन्पुंसां भूतानुकंपिनाम् ॥ भवद्विधानां महता पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥ ५ ॥ ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटम् ॥ यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥ ६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ॥ एष वः प्रियमात्मानं त्यजंतं संत्यजाम्यहम् ॥ ७ ॥ योऽध्रुवेणाऽऽत्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ॥ ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥ ८ ॥ एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ॥ यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥ ९ ॥ अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः ॥ यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ॥ परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयन् जहौ ॥ ११ ॥

वास्तेही तुम्हें हमने जबाब दिया था. यह देह कि–जो किसीदिन मुझको छोड़कर, चला जायगा. उसका मैं स्वयं तुमको प्रसन्न रखनेके वास्ते त्याग करूंगा ॥ ७ ॥ हे देवो ! जो मनुष्य जीवोंपर दया रखकर, इस अध्रुव देहसे धर्म वा यशको संपादन न करै, वह पुरुष स्थावरोंकेभी धिक्कारनेके योग्य है ॥ ८ ॥ दूसरे जीवोंका दुःख देखकर, आप शोक करना और दूसरोंका हर्ष देखकर, आप प्रसन्न होना, इतनाही महात्मा पुरुषोंसे सेवित अविनाशी धर्म है ॥ ९ ॥ अहो ! अपने उपयोगसे रहित तथा श्वान और सियारआदिके काममें आनेवाले इन क्षणभंगुर धनपुत्रादिक और शरीरसे लोक परोपकार नहीं करते, यही बड़ी दीनता और कष्टकी बात है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इसप्रकार निश्चय कर, दधीचि ऋषिने परब्रह्म भगवा-

नमें अपने आत्माको एक करके देहको त्याग दिया ॥ ११ ॥ इंद्रियां, प्राण, मन और बुद्धिको नियममें रखकर, स्वरूपको देख-नेवाले और बंधनरहित भयेहुए, दधीचि महाराजको उत्तम योगके आश्रयसे देहत्याग होनेकीभी सुध न रही ॥ १२ ॥ फिर इन मुनिके अस्थियोंमेंसे विश्वकर्माने वज्र बनाया उस वज्रको उठाकर, उन्नति पायेहुये और भगवानके तेजवाले इंद्र ऐरावत हाथीपर सवार हुए ॥ १३ ॥ सब देवतालोग इनके चौतर्फ खड़े होगये. और मुनिलोग इनकी स्तुति करने लगे. उस समय हे

यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग् ध्वस्तबंधनः ॥ आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥ १२ ॥ अथेंद्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ मुनेः शक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसाऽन्वितः ॥ १३ ॥ वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेंद्रो पर्यशोभत ॥ स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥ १४ ॥ वृत्रमभ्यद्रवच्छेतुमसुरानीकयूथपैः ॥ पर्यस्तमोजसा राजन् क्रुद्धो रुद्र इवांतकम् ॥ १५ ॥ ततः सुराणामसुरै रणः परमदारुणः ॥ त्रेतामुखे नर्मदायामभवत्प्रथमे युगे ॥ १६ ॥ रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ॥ मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया ॥ नामृष्यन्नसुरा राजन्मृधे वृत्रपुरःसराः ॥ १८ ॥ नमुचिः शंबरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोंबरः ॥ हयग्रीवः शंकुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥

राजा ! अतिशोभा देते और त्रिलोकीको मानों हर्षित करते हों, ऐसे यह इंद्र ॥ १४ ॥ क्रोधयुक्त होकर, रुद्र जैसे कालके ऊपर दौडें, वैसे बड़े २ दैत्योंसे घिरेहुए उस वृत्रासुरपर बेगसे दौड़कर, गया ॥ १५ ॥ पहली चौकड़ीके त्रेतायुगके आरंभमें नर्मदाके तटपर देवतादैत्योंके साथ महादारुण संग्राम हुआ ॥ १६ ॥ रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार, पितृ, अग्नि, वायु, ऋभु, साध्य और विश्वेदेवोंसे घिरेहुए और अपनी मायासे शोभायमान होतेहुए वज्रधारी इंद्रको युद्धमें देखकर, हे राजा, वृत्रासुरआदि दैत्य सहन नहीं कर सके ॥ १७ ॥ १८ ॥ नमुचि, शंबर, अनर्वा, द्विमूर्द्धा, ऋषभ, अंबर, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति,

अयोमुख, पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल और दूसरेभी दैत्य और दानव तथा यक्ष व सुमाली, मालीआदि हजारों राक्षस कि–जो कंचनके कवचआदि अनेक प्रकारकी युद्धकी सामग्रीसे सजे भयेहुए थे, वे मृत्युभी जिसका सामना न कर सकै ऐसी, इंद्रकी मुख्य सैन्यको रोंककर, पीड़ित करने लगे किंचित्‌मात्रभी संभ्रम न करतेहुए, सिंहनाद करते मदोन्मत्त ये दैत्य गदा, परिघ, बाण, प्रास, मुद्गर, तोमर, ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ शूल, फरशी, खड्ग, शतघ्नी और भुशुंडीआदि शस्त्र और अस्त्रोंकी चारोंतर्फसे देवतानके ऊपर बर्सा करने लगे ॥ २३ ॥ एक बाणके पीछे दूसरा और दूसरेके पीछे तीसरा ऐसे

पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः ॥ दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥ २० ॥ सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ॥ प्रतिषिध्येंद्रसेनाग्रं मृत्योरपि दुरासदम् ॥ २१ ॥ अभ्यर्दयन्नसंभ्रांताः सिंहनादेन दुर्मदाः ॥ गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥ २२ ॥ शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुंडिभिः ॥ सर्वतोऽवाकिरन् शस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ न तेऽदृश्यंत संछन्नाः शरजालैः समंततः ॥ पुंखानुपुंखपतितैर्ज्योतींषीव नभो घनैः ॥ २४ ॥ न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् ॥ छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥ २५ ॥ अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृंगद्रुमोपलैः ॥ अभ्यवर्षन्सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥ २६ ॥ तानक्षतान्स्वस्तिमतो निशाम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः ॥ द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृंगैरविक्षतांस्तत्र सुरेंद्रसैनिकान् ॥ २७ ॥

पड़तेहुए बाणोंके समूहसे चारोंओर आच्छादित भयेहुए वे देवता बादलोंसे आच्छादित होकर, जैसे नक्षत्र अदृश्य हो जाते हैं. वैसे अदृश्य होगये ॥ २४ ॥ हलके हाथवाले अर्थात् फुर्तीवाले देवतानने आकाशमेंही उन शस्त्र और अस्त्रोंके हजारों टुकड़े कर दिये. जिससे वे शस्त्रअस्त्रोंके समूह देवतानकी सेनाके लोकोंके समीपभी न पहुँच सके ॥ २५ ॥ जब शस्त्र और अस्त्रोंका समूह क्षीण होगया. तब दैत्य, देवतानकी सेनाके ऊपर पर्वतोंके शिखर, वृक्ष और पत्थर इनकी बर्सा करने लगे. परंतु उन शिखरआदिको पहलेकी नाँई देवतानने काट, गिराया ॥ २६ ॥ शस्त्र तथा अस्त्रोंके समूह, वृक्ष, पत्थर और अनेक प्रकारके पर्वतोंके शिखरोंसे क्षतरहित खड़े

इंद्रकी सेनाके लोगोंको देखकर, वृत्रासुरकी सेनाके दैत्य त्रासको प्राप्त हुए ॥ २७ ॥ क्षुद्र पुरुषोंकी कहीहुई, दुष्ट और कठिन वाणियां जैसे बड़े पुरुषोंपर व्यर्थ चली जाती हैं, वैसे देवतानकी सेनाके लोक कि—जिनके उपर भगवान् अनुकूल हैं, उनपर दैत्योंने जितने २ प्रयास किये, वे सब व्यथ गये ॥ २८ ॥ शत्रुओंने जिनके धैर्यका नाश कर दिया है ऐसे और जिनका युद्ध करनेका गर्व जाता रहा ऐसे, हरि भगवान्‌के अभक्त वे दैत्य अपने परिश्रमको व्यर्थ गया देखकर, संग्रामके अंदर अपने स्वामीको

सर्वे प्रयासा अभवन्विमोघाः कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः ॥ कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रुक्षवाचः ॥ २८ ॥ ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः ॥ पलायनायाजिमुखे विसृज्य पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥ २९ ॥ वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ॥ पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥ ३० ॥ कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनामुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः ॥ हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्मयानर्वन् शंबर मे शृणुध्वम् ॥ ३१ ॥ जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न चेह कॢप्ता ॥ लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं कोनाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥ ३२ ॥

छोड़कर, भागनेका विचार करने लगे ॥ २९ ॥ महाउदारचित्त और महावीर, वृत्रासुर इस प्रकार अपने पक्षवाले दैत्योंको भागनेको तैयार हुए और दूसरे सब सैन्यको तीव्र भयसे प्रथमसेही भागाहुआ और टूटाहुआ देखकर, उस समयमें जैसे कहना चाहिये, ऐसा और वीरपुरुषोंको प्रिय लगे ऐसा वचन हँसकर बोला कि—हे विप्रचित्ति ! हे नमुचि ! हे पुलोमा ! हे मय ! हे अनर्वा ! हे शंबर ! मेरा वचन सुनो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जो जन्मेगा वह तो अवश्य मरेगा, इसमें कुछभी संदेह नहीं है. चाहे जहां जावे, परंतु इसका उपाय तो कहीं कोईभी नहीं है तब उस मरनेसे इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्ग मिलता होवे

ऐसे अतियोग्य मरणको कौन पुरुष न मागे? ॥ ३२ ॥ एक तौ योगमें प्रीति रख, प्राणायाम कर, परमात्माके ध्यानसे देहका त्याग करना; और दूसरा युद्धभूमिमें अग्रणी होकर, पीछा पांव न रखकर, देहका त्याग करना; ये दो मृत्यु शास्त्रमें योग्य कहे गयें हैं; सो ये दोनों अतिदुर्लभ हैं ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ग्यारहवें अध्यायमें इंद्रके साथ युद्ध करतेहुए वृत्रासुरने भक्ति और ज्ञानसे भगवत्संबंधी विचित्र बातें करीं यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज! इसप्रकार अपना स्वामी वृत्रासुर धर्मसहित वचन कहता था,

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ यद्ब्रह्मसंधारणया जितासुः ॥ कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ॥ नैवागृह्णन्भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥ विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभ ॥ कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥ दृष्ट्वाऽतप्यत संक्रुद्ध इंद्रशत्रुरमर्षितः ॥ तान्निवार्यौजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥ किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ॥ न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥ ४ ॥ यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ॥ अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद्ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ ५ ॥

तथापि त्रास पायेहुए और भागतेहुए उन मूर्ख दैत्योंने वह वचन नहीं माना ॥ १ ॥ कालका अनुसरण करनेवाले देवताननें अनाथकी भांति उस सेनाका नाश किया उससे वह सब सेना बिखरगयी. अपनी (दैत्योंकी) सेनाकी यह दशा देखकर, वृत्रासुरको महासंताप हुआ. फिर क्रोधसे भराहुआ और उस सेनाके संहारका सहन न करता वह वृत्रासुर देवतानको बलात्कारसे रोंक व झिड़क कर,यह वक्ष्यमाण वचन बोला ॥ २ ॥ ३ ॥ कि–इन दौड़ कर जाते, माताकी विष्ठारूप, दैत्योंको पीठपरसे मारनेमें तुम्हारा क्या पुरुषार्थ है ? डरेहुओंको मारनेका काम अपने आत्माको वीर माननेवाले पुरुषोंकी प्रशंसा करानेवाला तथा स्वर्गका देनेवाला नहीं है ॥ ४ ॥ हे क्षुद्रलोको ! तुम्हारे जो युद्ध करनेमें प्रीति और हृदयमें धैर्य होवे और संसारसंबंधी सुखोंमें इच्छा न

होवे तौ, क्षणमात्र मेरे सामने खड़ेरहो ॥ ५ ॥ इसप्रकार कहकर, क्रोधयुक्त और शरीरसे देवतानको भयभीत करतेहुए महाबलवान् इस वृत्रासुरने गर्जना की, कि-जिस गर्जनाको सुनकर, लोक मूर्छित होगये ॥ ६ ॥ इस वृत्रासुरके नादसे मूर्छित भयेहुए सब देवता जैसे वज्रके प्रहारसे गिर जायं, वैसे पृथ्वीपर पड़ गये ॥ ७ ॥ पृथ्वीको कंपायमान करताहुआ और त्रिशूल उठाकर, युद्धभूमिमें खड़ा भयाहुआ, वह मदोन्मत्त वृत्रासुर देवतालोगोंकी सैन्य, कि-जो आतुर और आंखें मूंदें पड़ी थी, उसे बाउला हाथी जैसे नलजातिघासके वनको मर्दन करै, वैसे बड़े ओजके साथ पांवोंसे मर्दन करने लगा ॥ ८ ॥ इस वृत्रासुरको देखकर,

एवं सुरगणान् क्रुद्धो भीषयन्वपुषा रिपून् ॥ व्यनदत् सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥ तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै ॥ निपेतुर्मूर्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥ ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं निमीलिताक्षं रणरंगदुर्मदः ॥ गां कंपयन्नुद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ७ ॥ विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ॥ चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥ ९ ॥ स इंद्रशत्रुः कुपितो भृशं तया महेंद्रवाहं गदयोरुविक्रमः ॥ जघान कुंभस्थल उन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप ॥ १० ॥ ऐरावतो वृत्रगदाऽभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ॥ अपासरद्भिन्नमुखः सहेंद्रो मुंचन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥ ११ ॥

अत्यंतक्रोधित भयेहुए और वज्र धरेहुए इंद्रने इस दौड़ते आतेहुए अपने शत्रुपर बड़ी भारी गदा चलायी. वृत्रासुरने आतीहुई उस असह्य वेगवाली गदाको लीलामात्रसे अपने बायें हाथसे पकड़ ली ॥ ९ ॥ अत्यंत कोपित भयेहुए और भयंकर पराक्रमवाले उस वृत्रासुरने युद्धके अंदर गर्जना करके, उस गदासे इंद्रके हाथीके कुंभस्थलमें प्रहार किया. महाराज ! इस वृत्रासुरके कामकी सब लोकोंने प्रशंसा की ॥ १० ॥ वृत्रासुरकी गदाके प्रहारसे जिसका मुख टूट गया है ऐसा, घूर्णित भयाहुआ ऐरावत हाथी रुधिरको उगलता वज्रसे ताड़ित कियेहुए पर्वतके समान अतिपीड़ित होकर; इंद्रसहित सात धनुष पीछा हटगया ॥ ११ ॥

जिनके बाहनको पीड़ा भई है ऐसे, अतिखिन्नचित्त इंद्रपर इस महात्मा वृत्रासुरने फिर दूसरी बेर गदा नहीं चलायी. फिर इंद्र अमृत बरसनेवाले अपने हाथके स्पर्शसे घायल हाथीकी पीड़ाको मिटाकर, वृत्रासुरके सोंहीं खड़े हुए॥ १२ ॥ हे राजेंद्र! इसप्रकार युद्धकी इच्छासे खड़े, वज्र धरे, अपने भाईको मारनेवाले अपने शत्रु इंद्रको देखकर, उनके अत्यंत क्रूर पापकर्मका स्मरण करते और शोक व मोहसे व्याप्त वृत्रासुरने हँसकर, यह वक्ष्यमाण वचन कहा॥ १३ ॥वृत्रासुर बोला कि–हे इंद्र! तू कि–जो ब्रह्महत्या करनेवाला गुरुहत्या करनेवाला तथा मेरे भाईको मारनेवाला शत्रु है, वह आज मेरे सोंहीं खड़ा भया यह बहुत अच्छा हुआ. हे महाअधम! अब थोड़ी देरमें

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुंक्त भूयः स गदां महात्मा ॥ इंद्रोऽमृतस्पंदिकराभिमर्शवीतव्यथक्षतवाहोऽवतस्थे ॥ १२ ॥ स तं नृपेंद्राऽऽहवकाम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ॥ स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः शोकेन मोहेन हसन्जगाद ॥ १३ ॥ वृत्र उवाच ॥ दिष्ट्या भवान्मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ॥ दिष्ट्याऽनृणोद्याहमसत्तम त्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाऽचिरात् ॥ १४ ॥ यो नोऽग्रजस्याऽऽत्मविदो द्विजातेर्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ॥ विश्रभ्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत्पशोरिवाऽकरुणः स्वर्गकामः ॥ १५ ॥ ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ॥ कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेहमस्पृष्टवह्निं समदंति गृध्राः ॥ १६ ॥ अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरंति मह्यम् ॥ तैर्भूतनाथान्सगणान्निशातत्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥ १७ ॥

मेरे त्रिशूलसे तेरा पत्थरकासा हृदय विदारकर, आज मैं भाईके ऋणसे उरिण होऊंगा. यह बहुत अच्छा हुआ॥ १४ ॥ जैसे स्वर्गकी इच्छा रखनेवाला निर्दय यजमान खड्गसे पशुका शिर उड़ा देता है, वैसे तूनेभी विश्वासघात करके ब्राह्मण, गुरु, आत्मवेत्ता, निर्दोष और दीक्षामें स्थित हमारे बड़ेभाईके शिर काटे हैं॥ १५ ॥ तू कि–जो लज्जा, लक्ष्मी, दया तथा कीर्तिसे रहित और अपने कार्यके हेतु राक्षसोंके धिक्कारने योग्य है, तिसके मेरे त्रिशूलसे विदीर्ण कियेहुए और अग्निका स्पर्शभी न मिले ऐसे, देहको गिद्धभी बड़ी कठिनताके साथ खायंगे॥१६॥ तू कि–जो पापी है, तिसका अनुसरण करनेवाले दूसरे जो मूर्खलोग इहां शस्त्र उठाकर, मेरे ऊपर प्रहार करते हैं, उन सबके कंठ तीक्ष्ण त्रिशूलसे काटकर, मैं आज भैरवआदि उग्र देवोंको उनके पार्षदोंके साथ बलिदान देऊंगा॥१७॥

अथवा हे इंद्र ! यदि तू यहां बलात्कारसे वज्रसे मेरा शिर उड़ा देगा, तौभी मैं कर्मबंधनसे मुक्त होकर तथा जीवजंतुओंको मेरे शरीरका बलिदान देकर, धीर लोकोंके स्थानको प्राप्त होऊंगा ॥ १८ ॥ हे देवराज ! मैं कि- जो तेरे सामने शत्रु खड़ा हूं, तिसपर इस अमोघ वज्रको क्यों नहीं चलाता ? जैसे कृपणके पास याचना व्यर्थ चली जाती है, ऐसे तेरा वज्र व्यर्थ चला जायगा, ऐसी शंका मत करे, यह वज्र गदाकी भांति व्यर्थ नहीं जायगा ॥ १९ ॥ निश्चय यह तेरा वज्र भगवान्के तेजसे और दधीचिमुनिके तपसे तीक्ष्ण भयाहुआ है और तुझे साक्षात् विष्णु भगवानने प्रेरणा की है. तासों इस वज्रसे तू

अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ॥ तत्रानृणो भूतबलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥ १८ ॥ सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं पुरःस्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ॥ मासंशयिष्ठा न गदेव वज्रं स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥ १९ ॥ नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा च ते जितः ॥ तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयंत्रितो यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ॥ २० ॥ अहं समाधाय मनो यथाऽऽह संकर्षणस्तच्चरणारविंदे ॥ त्वद्वज्ररंहो लुलितग्राम्यपाशो गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥ २१ ॥ पुंसां किलैकांतधियां स्वकानां याः संपदो दिवि भूमौ रसायाम् ॥ न राति यद्द्वेष उद्वेग आधिर्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः ॥ २२ ॥ त्रैवर्गिकायास विघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ॥ ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोऽन्यैः ॥ २३ ॥

मुझे मार- जिस पक्षमें भगवान् होवें, उसी पक्षमें विजय, लक्ष्मी और गुण रहा करते हैं ॥ २० ॥ मेरे स्वामी संकर्षण भगवानने जो उपदेश दिया है, उसीके अनुसार उनके चरणारविंदमें मन लगाकर, तेरे वज्रके वेगसे विषयभोगरूप पाश कट जानेपर, देहत्याग करके मैं योगीकी गतिको प्राप्त होऊंगा ॥ २१ ॥ संकर्षण भगवान् मुझे स्वर्गादिककी संपदा देवें, ऐसी शंका तू मत रख, परमेश्वर अपने अनन्य भक्तोंको स्वर्गकी, पृथ्वीकी कै पातालकी संपदा कभी नहीं देते; क्योंकि इन संपत्तियोंसे तो द्वेष, उद्वेग, आधि (मनकी पीड़ा) मद, कलह, व्यसन और परिश्रमही हुआ करता है ॥ २२ ॥ हे इंद्र ! हमारे स्वामी तो अपने भक्तको धर्म, अर्थ और कामसंबंधी परिश्रमको दूर कर देते हैं, और यह परिश्रम निवृत्त होवे, तभी भगवान्की कृपा भई ऐसा

अनुमान करना. परंतु ऐश्वर्यादिक मिलनेपरसे भगवानकी कृपा हुई नहीं जाननी, भगवानकी कृपा निरभिमान लोकोंपरही होती है, दूसरोंपर नहीं होती; क्योंकि भगवत्कृपा होनी अतिदुर्लभ है ॥ २३ ॥ ऐसे इंद्रको अपना अभिप्राय प्रगट दिखाकर, अब भगवानकी प्रार्थना करता है- हे भगवन् ! मैं फिरभी आपके चरणारविंदके आश्रयमें रहनेवाले दासोंकाभी दास होऊं मेरा मन आप कि-जो प्राणजीवन हो, उनके गुणोंका स्मरण करै. मेरी बाणी आपके गुण गाया करै और मेरा शरीर आपकी सेवा किया करै, ऐसी कृपा करो ॥ २४ ॥ हे सर्वसौभाग्यनिधि ! आपको छोड़कर, मैं स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक, चक्रवर्ती राज्य, पातालका राज्य,

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भविताऽस्मि भूयः ॥ मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीतवाक्कर्म करोतु कायः ॥ २४ ॥ न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समंजस त्वा विरहय्य कांक्षे ॥ २५ ॥ अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ॥ प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोरविंदाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ २६ ॥ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥ त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ २७ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अणिमाआदि सिद्धियां व मोक्ष कुछभी नहीं चाहता ॥ २५ ॥ उलूकआदिसे पीड़ित भयेहुए, विना परोंवाले, बच्चे जैसे माताको देखनेकी इच्छा करैं, भूखन मरतेहुए बछरे जैसे दूधकी इच्छा करैं और पति परदेश रहनेसे खिन्न भयीहुई स्त्री जैसे परदेश गयेहुए पतिको देखनेकी इच्छा करे, ऐसे हे कमलनयन ! मेरा मन आपके दर्शनकी इच्छा करता है ॥ २६ ॥ हे नाथ ! मैं कि-जो संसाररूप चक्रमें अपने कर्मोंसे भ्रमण करता हूं और आपकी मायाके कारण देह, पुत्र, स्त्रियां और घरमें आसक्त हो रहा हूं, उसकी अब आपके भक्तलोकोंके साथही तो मैत्री होवे, परंतु फिर दूसरी बेर देहादिकमें आसक्ति मत होवे ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवें अध्यायमें अतिखिन्न भयेहुए और वृत्रासुरसे उत्साहित कियेहुए इंद्रने महायुद्धमें वृत्रासुरका वध किया; यह कथा होगी ॥१॥ श्री-शुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! इसप्रकार युद्धमें देहत्याग करना चाहता और जीनेकी अपेक्षा मरणको अच्छा समझता, वृत्रासुर जैसे प्रलयके जलमें कैटभ दैत्य दौड़कर, विष्णु भगवानपर आया था, वैसे त्रिशूल उठाकर, इंद्रपर आया ॥ १ ॥ इस महावीर वृत्रासुरने प्रलयकालके सदृश भयंकर ज्वालावाला त्रिशूल इंद्रपर बड़े वेगसे चलाकर, गर्जना करी. और क्रोध करके बोला कि–हे दुष्ट ! मार लिया गया है ॥ २ ॥ ग्रह और उल्काकी भांति जिसके सन्मुख देखा न जासके ऐसा, वह त्रिशूल फिरताहुआ

ऋषिरुवाच ॥ एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ॥ शूलं प्रगृह्याभ्यपतत्सुरेंद्रं यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥ ततो युगांताग्निकठोरजिह्वमाविध्य शूलं तरसाऽसुरेंद्रः ॥ क्षिप्त्वा महेंद्राय विनद्य वीरो हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥ २ ॥ ख आपतत्तद्विचलद्ग्रहोल्कवन्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः ॥ वज्रेण वज्री शतपर्वणाऽच्छिनद्भुजं च तस्योरगराजभोगम् ॥ ३ ॥ छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रम् ॥ हनौ तताडेंद्रमथामरेभं वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥ वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत्सुरासुराश्चारणसिद्धसंघाः अपूजयंस्तत्पुरुहूतसंकटं निरीक्ष्य हाहेति विचुक्रुशुर्भृशम् ॥ ५ ॥ इंद्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ॥ तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६ ॥

चला आता था. उसे देखकर, किंचित्मात्रभी त्रास न खाकर, इंद्रने अपने सौ धारवाले वज्रसे यह त्रिशूल और सर्पराजके जैसी भुजा दोनों काट गिराये ॥ ३ ॥ जिसका एक हाथ कट कर, गिर गया है ऐसे, इस वृत्रासुरने क्रोधसे निकट जाकर, वज्रधर इंद्रकी ठोडीपर और उनके हाथीपर परिघका प्रहार किया, इस प्रहारसे उसी समय इंद्रके हाथमेंसे वज्र नीचे गिर गया ॥ ४ ॥ वृत्रासुरका यह अत्यंत बड़ा और अद्भुत काम देखकर, सुर, असुर, चारण और सिद्ध लोगोंके यूथ उसकी प्रशंसा करने लगे. और इंद्रके संकटको देखकर, अतिशय हाहाकार करने लगे ॥ ५ ॥ शत्रुके समक्षमें अपने हाथसे पड़ेहुए वज्रको इंद्रने लाजके

मारे पृथ्वीपरसे पीछा नहीं उठाया. तब वृत्रासुर बोला कि—हे इंद्र ! वज्र लेकर, मुझे मार, यह खिन्न होनेका समय नहीं है ॥ ६ ॥ शस्त्र धरकर, युद्ध करनेकी इच्छावाले देहाभिमानी लोक सदा विजयही पावें ऐसे नहीं होता; यह रीति है कि—कहीं तौ विजय हो जाता है और कहीं नहीं होता. सर्वत्र और सर्वदा विजय तौ एक नारायण भगवानकाही होता है, कि—जो नारायण उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयके स्वामी, सर्वज्ञ, नित्य और आदिपुरुष हैं ॥ ७ ॥ जालमें बँधेहुए पक्षियोंकी नांई परवश भयेहुए लोकपालोंसहित ये लोग जिनकी स्वाधीनतामें जीते हैं, वे कालरूप भगवान्‌ही जय और पराजयके कारण हैं ॥ ८ ॥ शरीरकी

युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां जयस्तदेकत्र न वै परात्मनाम् ॥ विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥ ७ ॥ लोकाः सपाला यस्येमे श्वसंति विवशा वशे ॥ द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥ ८ ॥ ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ॥ तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ॥ ९ ॥ यथा दारुमयी नारी यथा यंत्रमयो मृगः ॥ एवं भूतानि मघवन्नीशतंत्राणि विद्धि भोः ॥ १० ॥ पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेंद्रियाशयाः ॥ शक्नुवंत्यस्य सर्गादौ न विनायदनुग्रहात् ॥ ११ ॥ अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ॥ भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥ १२ ॥

शक्ति, मनकी शक्ति, इंद्रियोंकी शक्ति, प्राण, अमरपन और मरण इन सबका कारण कालही है. उसे नहीं जान कर, येह लोग अपने जड़ देहको इनका कारण मानते हैं ॥ ९ ॥ हे इंद्र ! जैसे काठकी पुतली और यंत्रका मृग नचानेवालेके तंत्रमें रहते हैं. ऐसे सकल प्राणीमात्र ईश्वरके तंत्रमें हैं, ऐसे तू जान ॥ १० ॥ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, इंद्रियां और अंतःकरण ये सब जिनके अनुग्रहविना इस जगत्‌को रचनेआदिके काम करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, उन्हीं प्रभुके तंत्रमें यह सब जगत् है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य इसप्रकार नहीं जानता है, वह अपने देहको स्वतंत्र करि मान बैठता है. प्रभु एक प्राणीसे दूसरे प्राणीको सरजाते हैं और एक प्राणीसे दूसरे प्राणीका नाश करवाते हैं; अर्थात् वस्तुतः यह सब वे प्रभु

आपही करते हैं ॥ १२ ॥ जैसे आपन दुःखकी इच्छा नहीं करते, तथापि दुःखके समय दुःख आपही आजाता है इसीप्रकार आयुष्य, लक्ष्मी, कीर्ति, ऐश्वर्य और दूसरेभी जो पुरुषोंके सुख हैं वे, अपने अपने समयपर स्वयमेव आ जाते हैं ॥ १३ ॥ अतएव यश, अपयश, जय, पराजय, सुख, दुःख और जीवित तथा मरणमें हर्ष के शोक नहीं करना चाहिये ॥ १४ ॥ सत्व, रज और तम ये प्रकृतिके गुण हैं. पर आत्माके गुण नहीं हैं. आत्मा तो केवल इनका साक्षी है, ऐसे जो जाने, वह हर्षशोकआदिके बंधनमें नहीं आता ॥ १५ ॥ हे इंद्र ! मैं हार गया हूं और मेरे हाथ तथा आयुध कट गये हैं, तथापि तेरा प्राण लेनेकी इच्छासे

आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः ॥ भवंत्येव हि तत्काले यथाऽनिच्छोर्विपर्ययाः ॥ १३ ॥ तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि ॥ समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥ १४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नाऽऽत्मनो गुणाः ॥ तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥ १५ ॥ पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे ॥ घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥ १६ ॥ प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ॥ अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् ॥ गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥ १८ ॥ इंद्र उवाच ॥ अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ॥ भक्तः सर्वात्मनाऽऽत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥ १९ ॥ भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ॥ यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥ २० ॥

यथाशक्ति प्रयत्न कियेही जाता हूं, उसे तू देख ॥ १६ ॥ यह युद्धरूप द्यूत(जुवां) है. इसमें बाणरूप पाशे हैं. वाहनरूप चौकठ है और प्राणरूप यहां मूठ धरी गयी है. अब इस द्यूतमें किसका जय होगा और किसका पराजय, यह जाननेमें नहीं आता ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि– इसप्रकार वृत्रासुरके बचन सुनकर, इंद्रने उसे निष्कपटभावसे आदर और मान दिया और पीछा वज्र हाथमें ले, गर्वरहित होकर, उसको हँसकर, कहा ॥ १८ ॥ इंद्र बोले कि–अहो हे दानव ! तू जीवन्मुक्त है और जगतके ईश्वर तथा प्रिय आत्मा भगवान्‌का सर्वप्रकारसे भक्त है; क्योंकि तेरी ऐसी 'बुद्धि है ॥ १९ ॥ तू लोगोंको मोहित करनेवाली भगवान-

की मायाको पार उतर चुका है; क्योंकि तू असुरभावको छोड़कर, महापुरुषपनको प्राप्त हुआ है ॥२०॥ तू कि- जो स्वभावसे रजोगुणी है तिसकी सत्वगुणमय वासुदेव भगवानमें दृढ़ बुद्धि भई. यह यथार्थमें बड़ी आश्चर्यकी बात है ॥ २१ ॥ मोक्षके अधिपति भगवानमें जिसकी भक्ति होवे, उसको स्वर्गआदि क्षुद्रसुखोंसे क्या प्रयोजन है ? अमृतके समुद्रमें विहार करता होवे, उसको गढ़ोंमें भरेहुए मैले जलसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि- महाराज ! इसप्रकार परस्पर धर्म जाननेकी इच्छासे वार्तालाप करते महापराक्रमी और युद्धके स्वामी इंद्र और वृत्रासुर युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ हे उत्तमराजा ! शत्रुओंको मारनेवाले वृ-

खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजःप्रकृतेस्तव ॥ वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥ २१ ॥ यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ॥ विक्रीडतोऽमृतांभोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणावन्योऽन्यं धर्मजिज्ञासया नृप ॥ युयुधाते महावीर्याविंद्रवृत्रौ युधां पती ॥२३॥ आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिंदमः ॥ इंद्राय प्राहिणोद्घोरं वामहस्तेन मारिष ॥ २४ ॥ स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् ॥ चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥ २५ ॥ दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः ॥ छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद्भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥ २६ ॥ कृत्वाऽधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् ॥ नभो गंभीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥ २७ दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्रयम् ॥ अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥ २८ ॥

त्रासुरने बांए हाथसे लोहेका भयंकर परिघ फिराकर, इंद्रके ऊपर चलाया ॥ २४ ॥ तब इंद्रने सौ धारवाले अपने व्रजसे उसका परिघ और करभके सदृश भुजा इन दोनोंको एक साथ काट गिराया ॥ २५ ॥ कटीहुई भुजाओंके मूलमेंसे जिसके रक्त बह रहा था, ऐसा वह वृत्रासुर, इंद्रके परकाटनेपर आकाशमेंसे गिरेहुए पर्वतके समान शोभा देने लगा ॥२६ ॥ फिर वृत्रासुर अपना ऊपरका होंठ आकाशमें और नीचेका होंठ धरतीपर धरकर, आकाशके समान गंभीर मुख, सर्पकीसी भयंकर जिव्हा ॥ २७ ॥ और कालकीसी दारुण दाढ़ोंसे मानों त्रिलोकीको निगल जाता हो ऐसे, दीखने लगा. बहुत बड़े कायवाला, वेगसे पर्वतोंको

१ हाथीकी सूंडके जैसा चूरीदार.

चलायमान करता ॥ २८ ॥ पावोंसे चलतेहुए पर्वतके समान अपने पैरोंसे पृथ्वीको चूर्ण करताहुआ यह वृत्रासुर इंद्रके प्रति पहुंचकर ,उसके ऐरावत हाथीके साथ उसे निगल गया ॥ २९ ॥ अजगर जैसे हाथीको निगल जाय, ऐसे महाबली और महाप्रतापी वृत्रासुर, इंद्रको निगल गया, उसे देखकर प्रजापति, देवता और बड़े बड़े ऋषि, खेदित होकर, हाय ! ! बहुत बुरा हुआ. ऐसे पुकारने लगे. वृत्रासुर इंद्रको निगल गया तथापि इंद्र उसके पेटमें जानेपरभी मरे नहीं. क्योंकि एक तो योगमायाका बल और दूसरे नारायणकवच धारण किये थे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर महासमर्थ इंद्रने वज्रसे उसका पेट चीर, बाहिर निकलकर, बड़े ब-

गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन्महीम् ॥ जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ॥ २९ ॥ महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ॥ वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ॥ ३० ॥ हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥ निगीर्णोऽप्यसुरेंद्रेण न ममारोदरं गतः ॥ महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥ ३१ ॥ भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद्विभुः ॥ उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृंगमिवौजसा ॥ ३२ ॥ वज्रस्तु तत्कंधरमाशुवेगः कृंतन्समंतात्परिवर्तमानः ॥ न्यपातयत्तावदहर्गणेन यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥ ३३ ॥ तदा च खे दुंदुभयो विनेदुर्गंधर्वसिद्धाः समहर्षिसंघाः ॥ वार्त्रघ्नलिंगैस्तमभिष्टुवाना मंत्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥ ३४ ॥ वृत्रस्य देहान्निष्क्रांतमात्मज्योतिररिंदम ॥ पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥ ३५ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे वृत्रवधोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥

लके साथ पर्वतके शिखरके समान इस शत्रुका शिर उड़ा दिया ॥ ३२ ॥ महावेगवाला वज्र वृत्रासुरको मारनेके वास्ते चारोंतर्फ फिरकर, उसका शिर करोंतीकी भांति काटता रहा, तब तीनसौ साठ ३६० दिनमें वृत्रासुरका शिर कटकर, नीचे गिरा ॥ ३३ ॥ इस समय आकाशमें दुंदुभि बाजे बजने लगे. और वृत्रासुरके वधका जिनमें वर्णन है ऐसे, मंत्रोंसे स्तुति करतेहुए गधर्व, सिद्ध और बड़े २ ऋषियोंके यूथ आनंदसे फूल बर्साने लगे ॥ ३४ ॥ हे शत्रुदमन ! वृत्रासुर मरा, तब उसके शरीरमेंसे जीवरूप तेज निकलकर, सब लोगोंके देखते नारायणमें लीन हो गया ॥ ३५ ॥ इति श्रीभा० म० षष्ठस्कंन्धे रामश्यामविर-

चितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ तेरहवें अध्यायमें वृत्रासुरके वधकी ब्रह्महत्या पीछे लगी, तब उसके भयसे अनेक दिनोंतक गुप्त रहेहुए इंद्रकी विष्णु भगवानने रक्षा की. यहकथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे दानी राजा ! वृत्रासुर मरा, तब एक इंद्रके शिवाय बाकी सब तीनों लोक और लोकपालोंका संताप दूर हुआ और इंद्रियोंको बड़ी शांति प्राप्त हुई ॥ १ ॥ देवता, ऋषि, पितृ, भूत, दैत्य और देवतानके अनुचर अपने २ स्थानको गये. तदनंतर ब्रह्मा, महादेव और इंद्रादिकभी अपने २ धामको सिधारे ॥ २ ॥ परीक्षितने पूंछा कि–हे मुनि ! इंद्रको शांति न मिलनेका कारण मैं सुनना

श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ॥ सपाला ह्यभवन्सद्यो विज्वरा निर्वृतें-द्रियाः ॥ १ ॥ देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ॥ प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेंद्रादयस्ततः ॥२॥ राजोवाच ॥ इंद्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ॥ येनाऽऽसन्सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽ-भवत् ॥३॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ॥ तद्वधायार्थयन्निंद्रं नैच्छद्भीतो बृ-हद्वधात ॥ ४ ॥ इंद्र उवाच ॥ स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ॥ विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क माज्म्र्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेंद्रमिदमब्रुवन् ॥ याजयिष्याम भ-द्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥ हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ॥ इष्ट्वा नारायणं देवं मो-क्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥

चाहता हूं, देवतानको सुख मिला, तब इंद्रके दुःख किस प्रकारसे रहा? ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–वृत्रासुरके पराक्रमसे उद्विग्न भयेहुए सब देवतानने और ऋषियोंने वृत्रासुरको मारनेके वास्ते इंद्रसे प्रार्थना की, तब ब्रह्महत्या लगनेके भयसे इंद्रने उसको मारना न चाहा और इस प्रकार कहा ॥ ४ ॥ इंद्र बोले कि–मुझे विश्वरूपको मारनेसे जो ब्रह्महत्या लगी थी, वह तो स्त्री पृथ्वी, जल और वृक्षोंने मुझपर अनुग्रह करके बांटली. परंतु वृत्रासुरके बधकी ब्रह्महत्याका पाप मैं किसप्रकार उतारूं? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इंद्रका यह वचन सुनकर, ऋषियोंने इंद्रसे कहा कि–हम आपको अश्वमेध यज्ञ करवा देंगे आप ब्रह्महत्यासे मत डरो ॥ ६ ॥ परमात्मा परमेश्वर नारायणका अश्वमेध यज्ञसे यजन करके, मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूटे जिसमें तो क्या ?

परंतु सब जगत्‌के बधके पापसेभी मुक्त हो जायगा ॥ ७ ॥ जिनके कीर्तनसे ब्रह्महत्या, पितृहत्या, गोहत्या, मातृहत्या और आचार्यहत्यासेभी शुद्ध होसकता है तथा चांडाल पुल्कस और चाहे जैसे पापी क्यों न होवें ? सब पवित्र हो जाते हैं ॥ ८ ॥ उन भगवान्‌की हमारे करायेहुए बड़े अश्वमेध यज्ञसे श्रद्धासहित पूजन करोगे तौ ब्राह्मणोंसहित सब स्थावर जंगमोंको मारनेका पापभी आपको नहीं लग सक्ता, तब दुष्टको दंड देनेका पाप तौ किस प्रकार लगेगा? ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–इस प्रकार ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे इंद्रने वृत्रासुरको मारा और उसको मारतेही ब्रह्महत्या इंद्रके पीछे लगी ॥ १० ॥ इस ब्रह्महत्याके

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाऽघवान् ॥ श्वादः पुल्कसको वाऽपि शुध्येरन्यस्य कीर्तनात् ॥ ॥ ८ ॥ तमश्वमेधेन महामखेन श्रद्धाऽन्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ॥ हत्वाऽपि सब्रह्मचराचरं त्वं न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ॥ ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥ १० ॥ तयेंद्रः स्मासहत्तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् ॥ ह्रीमंतं वाच्यतां प्राप्तं सुखयंत्यपि नो गुणाः ॥ ११ ॥ तां ददर्शानुधावंतीं चांडालीमिव रूपिणीम् ॥ जरया वेपमानांगीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥ १२ ॥ विकीर्य पलितान्केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् ॥ मीनगंध्यसुगंधेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥ १३ ॥ नभोगतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशांपते ॥ प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥ १४ ॥

संतापके हेतु इंद्रको सुख नहीं मिला; क्योंकि लज्जावान् पुरुष निंदाका पात्र होवे, तब उसे दूसरा कोईभी गुण सुख नहीं देता ॥ ११ ॥ चांडालीके समान रूपवाली, जराके कारण कांपती हुई, क्षयरोगके कारण कफसे लिपीहुई और रुधिरसे भरेहुए वस्त्रवाली ॥ १२ ॥ वह ब्रह्महत्या पीछे दौड़ती देखनेमें आयी. यह ब्रह्महत्या धौले बाल खुले छोड़कर, ‘ ठहेर ठहेर ’ ऐसे पुकारती आती थी. और मछलीकीसी दुर्गंधवाली श्वासकी वायुसे मार्गको दूषित करती थी ॥ १३ ॥ हे प्रजापति राजा ! वह इंद्र आकाश और सब दिशाओंमें फिर आये परंतु कहीं शरण नहीं मिला तब शीघ्र वह ईशानकोणकी तरफ मानससरोवरमें घुसे ॥ १४ ॥

वहां हजार वर्षपर्यंत गुप्त रीतिसे कमलनालके तंतुओंके भीतर बैठे रहे. और मनमें ब्रह्महत्यासे छुटकारा होनेका विचार करते रहे. अग्नि जलमें नहीं जा सकती, तासों यज्ञका भागभी उसे नहीं मिलता था ॥ १५ ॥ इंद्र जबतक कमलनालमें रहे तबतक विद्या, तप, योग और बलके प्रभावसे नहुषराजाने स्वर्गका राज्य किया, परंतु अंतमें संपदा और ऐश्वर्यके मदसे अंध होकर, उस राजाने इंद्राणीसे संभोग करनेके वास्ते प्रार्थना की, तब इंद्राणीने उपाय रचकर, उसे अजगरकी योनिमें पटक दिया ॥ १६ ॥

स आवसत्पुष्करनालतंतूनलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ॥ वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽतः सचिंतयन् ब्रह्मवधाद्विमोक्षम् ॥ १५ ॥ तावत्रिणाकं नहुषः शशास विद्यातपोयोगबलानुभावः ॥ स संपदैश्वर्यमदांधबुद्धिर्नीतस्तिरश्चांगतिमिंद्रपत्न्या ॥ १६ ॥ ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत ऋतंभरध्याननिवारिताघः ॥ पापस्तु दिग्देवतया हतौजास्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥ १७ ॥ तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ॥ यथावद्दीक्षयांचक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥ १८ ॥ अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ॥ अश्वमेधे महेंद्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥ १९ ॥

भगवानके ध्यानसे जिन्होंने पापका निवारण किया है ऐसे, वह इंद्र फिर ब्राह्मणोंके बुलानेसे स्वर्गमें गये मानससरोवरमें जबतक इंद्र रहे तबतक तो ईशानकोणके देवता श्रीरुद्र और विष्णुपत्नीने उनकी रक्षा की, तासों ब्रह्महत्या उनका पराभव नहीं कर सकी ॥ १७ ॥ हे राजा ! ब्रह्मर्षियोंने आकर, जिसमें भगवानका आराधन होता है ऐसे अश्वमेध यज्ञकी इंद्रको विधिसहित दीक्षा दी ॥ १८ ॥ सर्वदेवमयस्वरूपवाले परमात्माकी ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोग अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर, इंद्रसे पूजन करवाने लगे

१ इसकी ऐसी कथा है कि–जब इन्द्रने वृत्रासुरको मारा और उसकी हत्यासे पापी हो, ईशानकोणमें मानससरोवरके कमलवनमें जाछिपे. तब स्वर्गमें किसी राजाके न होनेसे बृहस्पतिने नहुषको लेजाय, स्वर्गका राजा बनाया कुछदिन बीतनेके बाद राजमद पाय, नहुषने इन्द्राणीसे कहला भेजा कि–अभी हम इन्द्र हैं तुम हमारे पास आवो. तब इन्द्राणीने दुःखी हो, बृहस्पतिको बुलाय, नहुषके समाचार कहे. सो सुन, गुरुने कहा कि–तुम नहुषके पास कहला भेजो कि-जो ब्राह्मणोंको कहार बनाय, पालकीमें बैठ, हमारे पास आवो तो हम तुम्हे स्वीकार करें तब इन्द्राणीने वैसाही किया उसने राजके मदसे मदांध हो, वैसाही किया. और जल्दीके मारे चलने परभी अगस्त्यमुनिसे ताकीद करा और कहा कि–"सर्प सर्प" यानी जल्दी २ चलो तब अगस्त्य जीने क्रोधकर, शाप दिया कि–तू सर्प हो. ऐसे नहुष स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ. और अजगरकी योनिको प्राप्त हुआ.

॥ १९ ॥ उससमय हे नृप ! वृत्रासुरकी ब्रह्महत्या कि- जो भारी पापकी पुंजरूप थी, वह सूर्यसे जैसे अंधकार निवृत्त हो जाता है, ऐसे इस यजनके प्रभावसे निवृत्त हो गयी ॥ २० ॥ मरीचिआदि ऋषियोंने विधिपूर्वक जो अश्वमेध यज्ञ करवाया, उसके प्रभावसे यज्ञके अधिपति पुराणपुरुष भगवान् प्रसन्न हुए. और उनकी कृपासे इंद्रका पाप निवृत्त हो जानेसे वह पीछे महापुरुष बन गये ॥ २१ ॥ इंद्रके विजयरूप और पापसे छुटकारा होनेरूप यह बड़ा आख्यान कि-जो पापोंका मिटानेवाला भगवानके कीर्तनवाला, भक्तिको बढ़ानेवाला, भक्तजनोंके वर्णनसे भराहुआ, इंद्रियोंकी शक्ति बढ़ानेवाला, शत्रुओंका पराजय करनेवाला तथा

स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ॥ नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥ २० ॥ स वाजिमेधेन यथोदितेन वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ॥ इष्ट्वाऽधियज्ञं पुरुषं पुराणमिंद्रो महानास विधूतपापः ॥ २१ ॥ इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ॥ भक्त्युच्छ्र्यं भक्तजनानुवर्णनं महेंद्रमोक्षं विजयं मरुत्त्वतः ॥ २२ ॥ पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वंत्यथो पर्वणि पर्वणींद्रियम् ॥ धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुंजयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम् ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे इंद्रविजयोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ॥ नारायणे भगवति कथमासीद्दृढा मतिः ॥ १ ॥ देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ॥ भक्तिर्मुकुंदचरणे न प्रायेणोपजायते ॥ २ ॥

धन, यश, कल्याण और आयुको देनेवाला है, उस आख्यानका जो ज्ञानीलोक प्रत्येक पर्वमें पाठ करें अथवा श्रवण करें, वे सर्वपापोंसे मुक्त हो जायँ ॥ २२ ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ चौदहवें अध्यायमें बड़े परिश्रमसे प्राप्त भयेहुए पुत्रके मरजानेसे राजा चित्रकेतुके स्नेहके कारण महाशोक हुआ. यह कथा होगी ॥ १ ॥ परीक्षितने कहा कि- हे ब्रह्मन् ! वृत्रासुर तो रजोगुण और तमोगुणस्वभाववाला तथा महापापी था, फिर इसकी नारायण भगवानमें दृढ़ बुद्धि किसप्रकार हुई ? ॥ १ ॥ शुद्ध सत्वगुणवाले देवता और निर्मल अंतःकरणवाले ऋषिलोगोंकीभी बहुधा मुकुंद भगवानके चरणमें भक्ति नहीं होती ॥ २ ॥

यह बात प्रसिद्ध है कि-पृथ्वीपर जितने रजके कण हैं, उतनेही अर्थात् असंख्यात इस संसारमें जीव हैं, उनमेंसे मनुष्यआदि थोड़े बहुत धर्मका आचरण करते हैं ॥ ३ ॥ धर्म पालनेवालोंमेभी कितनेएक उत्तम द्विजन्माही मोक्षकी इच्छावाले होंगे ओर मुमुक्षुलोगोंमेंभी हजारोंमें कोई एक घरआदिकी आसक्तिको छोड़कर, तत्त्वको जानता है ॥ ४ ॥ जीवन्मुक्तभी करोड़ों इकट्ठे हो जायं, तब उनमेंसेभी भगवत्परायण और शांत अंतःकरणवाला कोईएक कठिनतासे मिलेगा, तब यह वृत्रासुर कि-जो पापी और सब लोकोंको संताप देनेवाला था, उसकी बुद्धि भयंकर संग्रामके समयमेंभी भगवानमें किस

रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जंतवः ॥ तेषां ये केचनेहंते श्रेयो वै मनुजादयः ॥ ३ ॥ प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ॥ मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥ ४॥ मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ॥ सुदुर्लभः प्रशांतात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥ ५ ॥ वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ॥ इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत्संग्राम उल्बणे ॥ ६ ॥ अत्र नः संशयो भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो ॥ यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान्बादरायणिः ॥ निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनंद्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८॥ श्रीशुक उवाच॥ शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ॥ श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥ ९ ॥ आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ॥ चित्रकेतुरितिख्यातो यस्यासीत्कामधुङ्महीं ॥ १० ॥ तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ॥ सांतानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु संततिम् ॥ ११ ॥

कारणसे रही ॥ ५ ॥ हे प्रभु ! इस विषयमें हमें बड़ा संदेह है और सुननेका उत्साह है; क्योंकि वृत्रासुरने युद्धमें अपने पराक्रमसे इंद्रको प्रसन्न किया था, तासों वह इंद्रके भयसे भगवान्‌के शरण गया ऐसे नहीं कह सकते ॥ ६ ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा कि-इस प्रकार परीक्षित् राजाका श्रद्धासहित प्रश्न सुनकर, उनका सत्कार करके, शुकदेवजी बोले ॥ ८ ॥ कि-हे राजा ! जो मैं यह इतिहास कहता हूं, वो सावधान होकर सुनो, यह इतिहास मैंने व्यासजी, नारदजी और देवल इन तीनों महर्षियोंके मुखसे सुना है ॥ ९ ॥ महाराज ! शूरसेनदेशमें चक्रवर्ती चित्रकेतुनाम राजा हुआ था. उसकी यह पृथ्वी सर्व कामना पूर्ण करती थी ॥ १० ॥ उस राजाके करोड़ रानियां थीं. यह राजा शरीर और बलआदिसे पुत्र उत्पन्न करनेको समर्थ था, परंतु

इसके उन रानियोंमें पुत्र नहीं हुआ ॥ ११ ॥ रूप, उदारता, अवस्था, उत्तमकुलमें जन्म, विद्या, ऐश्वर्य और लक्ष्मीआदि सकलगुणसंपन्न था तथापि स्त्रियां बंध्या होनेसे उसके मनमें बड़ी चिंता रहती ॥ १२ ॥ इस चक्रवर्ती राजाको सर्वप्रकारकी संपदा, रूपवती स्त्रियां वा यह पृथ्वी इन पदार्थोंमेंसे कोईभी पदार्थ आनंदको देनेवाला नहीं था. अर्थात् राजाको कोई पदार्थ अच्छा नहीं लगता था ॥ १३ ॥ एक समय भगवान् अंगिराऋषि लोकोंमें विचरते २ यदृच्छासे इस राजाके घरमें चले आये ॥ १४ ॥ राजाने उठकर, सन्मुख जाने और भेंटें अपर्ण करनेआदि अनेक प्रकारसे विधिपूर्वक उनकी पूजा की. फिर अति-

रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः ॥ संपन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिंता वंध्यापतेरभूत् ॥ १२ ॥ न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ॥ सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवन्प्रीतिहेतवः ॥ १३ ॥ तस्यैकदा तु भवनमंगिरा भगवानृषिः ॥ लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥ १४॥ तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ॥ कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥ १५॥ महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ॥ प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ १६ ॥ अंगिरा उवाच ॥ अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथाऽऽत्मनः ॥ यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः ॥ १७ ॥ आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् ॥ राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥ १८ ॥

थिके योग्य सत्कार किये. पीछे मुनि सुखपूर्वक आसनपर विराजे. उस समय सावधान होकर, राजाभी उनके निकट बैठा ॥ १५ ॥ हे राजा ! समीपमें धरतीपर बैठे और विनयसे नम्रीभूत उस राजाका सत्कार कर, बतलाकर, अंगिराऋषि यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ १६ ॥ अंगिराने कहा कि—आपका और आपके राज्यके अंगोंका आरोग्य और कल्याण तो है ? जैसे महत्तत्वआदि सात प्रकृतिसे गुप्त रहकर, जीव उन्ही प्रकृतियोंके आधीन रहता है, ऐसे राजाभी अमात्य (मंत्री) आदि राज्यके सातों अंगोंसे रक्षित रहकर, उन्हींका अनुसरण करे तो, उसे राज्यका सुख मिलता है. जैसे राजाका सुख अमात्य

१ राजा, अमात्य, देश, कोश, (भंडार) दुर्ग, (किला) सेना, भृत्य ७ यही सात राज्यांङ्ग हैं.

आदिके आधीन है, ऐसे अमात्यआदिका सुखभी राजाके आधीन है ॥ १७ ॥ १८ ॥ अपनी रानियां, प्रजा, मंत्री, नौकर, व्योपारी, अमात्य पुरके लोक और देशके लोक, जागीरदार, ठाकुरलोग तथा पुत्र ये सब अपने वशवर्ती तो हैं ? ॥ १९ ॥ जिसका मन अपने स्वाधीनमें है, उसके ये पूर्वोक्त सब वशवर्तीही हैं और सब लोक तथा लोकपालभी आलस छोड़कर, उसे कर (राजदेय द्रव्य) देते हैं ॥ २० ॥ आप अपने चित्तमें प्रसन्न नहीं दीखते, सो यह अप्रसन्नता क्यों है? क्या यह अप्रसन्नता किसी दूसरेके निमित्त है ? अथवा अपने आपही है ? आपके कोई बातकी तृष्णा होवे ऐसे मुझे दीखता है, क्योंकि आपका

अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेयोऽथ मंत्रिणः ॥ पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥ १९ ॥ यस्याऽऽत्माऽनुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे ॥ लोकाः सपाला यच्छंति सर्वे बलिमतंद्रिताः ॥ २० ॥ आत्मना प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ॥ लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिंतया शबलं मुखम् ॥ २१ ॥ एवं विकल्पितो राजन्विदुषा मुनिनाऽपि सः ॥ प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥ २२ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ भगवन्किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः ॥ योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरंतःशरीरिषु ॥ २३ ॥ तथापि पृच्छतो ब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिंतितम् ॥ भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥ २४ ॥ लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसंपदः ॥ न नंदयंत्यप्रजं मां क्षुत्तृट्कामामिवापरे ॥ २५ ॥

मुख चिंतासे श्यामवर्ण और मलिन हो रहा है ॥ २१ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! यदपि अंगिराऋषि सर्वज्ञ हैं, तौभी उन्होंने इसप्रकार पूंछा, तब विनयसे नम्रीभूत और संतानकी इच्छावाले राजाने उनसे कहा ॥ २२ ॥ राजा चित्रकेतु बोला कि–हे भगवन् ! तप, ज्ञान और समाधिसे पापरहित भयेहुए योगियोंसे प्राणियोंके मनकी और बाहिरकी कौन बात छिपी हुई है ? ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तथापि आपने जानबूझकर पूंछा, है तो आपकी आज्ञाको शिरपर चढ़ाकर, अपनी चिंताकी बात आपसे कहता हूं ॥ २४ ॥ यदपि मेरे चक्रवर्ती राज्यका ऐश्वर्य और संपत्तियां लोकपाल देवतानकेभी प्रार्थनीय हैं, तथापि जैसे

भूंखे और प्यासे मनुष्यको चंदनआदि किसी अन्यपदार्थसे आनंद नहीं मिलता ऐसे मुझेभी ऐश्वर्यआदिसे आनंद नहीं मिलता ॥ २५ ॥ हे महाभाग ! इसलिये मैं कि- जो पुत्र न होनेसे मेरे पूर्वजोंके साथ नरकमें पड़ाहुआ हूं, उसका रक्षण करो. और प्रजाकी प्राप्ति होनेसे हम इस दुस्तर नरकमेंसे पार उतर जायं, ऐसा उपाय करो ॥ २६ ॥ शुकदेवजी बोले कि- इस प्रकार राजाने प्रार्थना की, तब दयालु और समर्थ ब्रह्माजीके पुत्र अंगिरा मुनिने त्वष्टा देवताका चरु तैयार करके, उससे त्वष्टा देवताका यजन किया ॥ २७ ॥ और फिर हे राजा ! कृतद्युति कि-जो राजाकी सब

ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सहगतं तमः ॥ यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद्विधेहि नः ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यर्थितः स भगवान्कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ॥ श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः ॥ ॥ २७ ॥ ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत ॥ नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद्विजः ॥ २८ ॥ अथाऽऽह नृपतिं राजन्भवितैकस्तवात्मजः ॥ हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥ २९ ॥ सापिऽतत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ॥ गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवाऽऽत्मजम् ॥ ३० ॥ तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ॥ ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥ ३१ ॥ अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत ॥ जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥ ३२ ॥

रानियोंमेंसे बड़ी पटरानी और श्रेष्ठ थी; उसे उस चरुका अवशिष्ट अन्न दिया ॥ २८ ॥ और कहा कि-हे राजा ! इस अन्नके खानेसे तुम्हारे एक पुत्र होगा और वह तुम्हारे हर्ष व शोकका देनेवाला होगा. इतना कहकर, अंगिराऋषि तो वहांसे चले गये ॥ २९ ॥ फिर कृतद्युति रानीके उस अन्न खानेके प्रभावसे चित्रकेतुराजाके वीर्यसे, कृत्तिकाके जैसे अग्निसे गर्भ रहा था, ऐसे तुर्त गर्भ रहगया ॥ ३० ॥ हे राजा ! शूरसेनदेशके स्वामी चित्रकेतुके वीर्यसे रहाहुआ वह कृतद्युतिका गर्भ, शुक्लपक्षके चंद्रमाके समान धीरे २ प्रतिदिन बढ़ने लगा ॥ ३१ ॥ समय आया, तब उससे कुमारका जन्म हुआ, कि-जिसे सुनकर,

१ शय्या वस्त्रं चन्दनं चारुहास्यं वीणा वाणी दृश्यते या च नारी ॥ न भ्राजन्ते क्षुत्पिपासातुराणां सर्वारम्भास्तंडुलाः प्रस्थमूलाः ॥ १ ॥ अर्थ शय्या, कपड़ा, चन्दन, उत्तम हास्य, वीणा, (सितार) वाणी, और देखनेयोग्य स्त्री ये सब पदार्थ भूंख तथा प्याससे आतुर पुरुषोंको नहीं प्रकाशित करते. क्योंकि-सम्पूर्ण कार्योंके आरंभमें एक प्रस्थभर चावल मुख्य हैं अर्थात् सब कार्य अन्नाधीन है अन्नविना कुछ नहीं हो सक्ता ॥ १ ॥

शूरसेनदेशके लोकोंको बड़ा आनंद हुआ ॥ ३२ ॥ प्रसन्न भयेहुए राजाने नहाय, पवित्रहो, शृंगार धरकर, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचनसहित जातकर्म संस्कार करवाया ॥ ३३ ॥ फिर उन ब्राह्मणोंको सुवर्ण, रूपा, वस्त्र, आभूषण, ग्राम, घोड़े, हाथी और साठ ६० करोड़ गैयां दीनीं ॥ ३४ ॥ कुमारके धन, यश और आयुकी वृद्धिके वास्ते उदारचित्त राजाने मेघके समान दूसरे प्राणियोंकोभी मनवांछित पदार्थ देनेरूप वर्षा करी ॥ ३५ ॥ निर्धन मनुष्यका बड़े कष्टसे मिलेहुए

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥ ३३ ॥ तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ॥ ग्रामान्हयान्गजान्प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥ ३४ ॥ ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥ ३५ ॥ कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ॥ यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥ ३६ ॥ मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ॥ कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥ ३७ ॥ चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ॥ न तथाऽन्येषु संजज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥ ३८ ॥ ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयंत्योऽभ्यसूयया ॥ आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरणेन च ॥ ३९ ॥ धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसंमताम् ॥ सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥ ४० ॥

धनमें जैसे स्नेह बढ़े, ऐसे इस राजाकाभी परिश्रमसे मिलेहुए कुवँरमें प्रतिदिन अतिशय स्नेह बढ़ने लगा ॥ ३६ ॥ कृतद्युति कि- जो उस कुवँरकी माता थी, उसके तौ मोह उत्पन्न करनेवाला पुत्रमें भारी स्नेह बढ़ा; और उसकी सपत्नियों-(सौतों)-के संतानकी इच्छासे भारी परिताप हुआ ॥ ३७ ॥ नित्य प्रति बालकको रमाते हुए चित्रकेतुराजाका इस पुत्रकी माता कृतद्युतिपर जैसा स्नेह रहा, वैसा दूसरी रानियोंपर नहीं रहा ॥ ३८ ॥ ईर्षासे और वंध्यापनके दुःखसे और राजाके अनादरसे अपने आत्माको धिक्कारतीं हुई वे स्त्रियां इस प्रकार परिताप करने लगा कि- ॥ ३९ ॥ पापिनी, वंध्या और उसीके निमित्त पतिके घरके असंमत स्त्रीको धि-

कार है. उत्तम प्रजावाली सपत्नियां वंध्या सपत्नीका दासीकी भांति तिरस्कार करतीं हैं ॥ ४० ॥ जिनको निरंतर मान मिलता होवे, ऐसी स्त्रियोंके अपने स्वामीकी सेवा करने और दासीपन करनेमेंभी किसी प्रकारकी हानि नहीं है परंतु आपन तौ दासियोंकी दासियोंके समान भाग्यहीन हैं ॥ ४१ ॥ इस प्रकार सपत्नीके पुत्र होनेसे सदा जला करतीं और राजाको जिनका जीवनभी अच्छा नहीं लगता था, ऐसी उन स्त्रियोंके मनमें भारी द्वेष उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ द्वेषसे बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण उन महाक्रूरहृदय रानि-

दासीनां कोनु संतापः स्वामिनः परिचर्यया ॥ अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥ ४१ ॥ एवं संदह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसंपदा ॥ राज्ञोऽसंमतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥ ४२ ॥ विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ॥ गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥ ४३ ॥ कृतद्युतिरजानंती सपत्नीनामघं महत् ॥ सुप्त एवेति संचिंत्य निरीक्ष्य व्यचरद्गृहे ॥ ४४ ॥ शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ॥ पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥ ४५ ॥ सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनम् ॥ प्राणेंद्रियात्मभिस्त्यक्तं हताऽस्मीत्यपतद्भुवि ॥ ४६ ॥ तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं घ्नंत्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ॥ प्रविश्य राज्ञी त्वरयात्मजांतिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥ ४७ ॥

योंने राजाके दुर्भावका सहन न करके कुवँरको विष दे दिया ॥ ४३ ॥ सपत्नियोंके इस महाअपराधको नहीं जानती, वह कृतद्युति, कुवँरको देख, सोता है ऐसे मनमें विचार कर, घरमें फिरने लगी ॥ ४४ ॥ बालकको सोये बहुत बेर होगयी है, ऐसे विचार कर, इस चतुर कृतद्युतिने धात्री (दायी) से कहा कि– हे भद्रे ! मेरे पुत्रको ले आ ॥ ४५ ॥ वह धात्री (दायी) सोयेहुय कुवँरके निकट गयी. वहां उसे,प्राण, इंद्रियां और चैतन्यसे रहित तथा जिसकी आंखोंमेंसे पुतलियां चली गयीं ऐसा देखकर, 'हाय ! मैं, मरी' ऐसे चिल्लाकर, धरतीपर गिर पड़ी ॥ ४६ बारंबार धमाधम छाती कूटती इस धात्रीका अत्यंत आतुरताभरा शब्द

सुनकर, कृतद्युति रानी जल्दी कुवँरके समीप गयी. वहां उसने तुर्त मरेहुए अपने पुत्रको देखा ॥ ४७ ॥ पुत्रको मृत देखतेही वृद्धिंगत (बढ़े हुए) शोकसे वह धरतीपर गिर पड़ी मूर्च्छा आगयी. और बाल व वस्त्र बिखर गये ॥ ४८ ॥ धात्रीका रुदन, सुन, राजाके अंतःपुरमें रहनेवाले लोक और नर नारी वहां आकर, एकसे दुःखसे रुदन करने लगे. और अपराध करनेवाली वे सपत्नियाभी झूंठमूंठ रोने लगीं ॥ ४९ ॥ अकस्मात् कुवँरका मरण हुआ सुनकर, अंधा भयाहुआ, वह राजा पड़ता, मार्गमें ठोकरें खाता और स्नेहके संबंधके हेतु वृद्धिंगत भयेहुए यानी बढ़ेहुये शोकसे अतीव मूर्च्छित होता, ब्राह्मणोंके साथ वहां आया.

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहांबरा ॥ ४८ ॥ ततो नृपांतःपुरवर्तिनो जना नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ॥ आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितांतकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन्पथि ॥ स्नेहानुबंधैधितया शुचा भृशं विमूर्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥ ५० ॥ पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहांबरः ॥ दीर्घं श्वसन्बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकंठो न शशाक भाषितुम् ॥ ५१ ॥ पतिं निरीक्ष्योरुशुचार्ऽर्पितं तदा मृतं च बालं सुतमेकसंततिम् ॥ जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं सती दधाना विललाप चित्रधा ॥ ५२ ॥ स्तनद्वयं कुंकुमगंधमंडितं निषिंचती सांजनबाष्पबिंदुभिः ॥ विकीर्य केशान्विगलत्स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥ ५३ ॥

और उसके अमात्य (मंत्री) लोकभी उसके वहां पीछे आये ॥ ५० ॥ केश और वस्त्र जिसके खुल गये हैं ऐसा, वह राजा चित्रकेतु, मरेहुए पुत्रके पैरोंमें गिर गया. और अश्रुके बिंदुओंसे जिसका कंठ रुक गया है ऐसा वह राजा, कुछभी बोल न सका. किंतु लंबी सांस लेने लगा ॥ ५१ ॥ कृतद्युतिरानी एकाएक पुत्रको मराहुवा देख तथा अपने पति चित्रकेतुको अतिबहुत शोकसे व्याप्त भया हुआ देखकर, लोकोंके और अमात्यआदि प्रकृतियोंके हृदय फट जायं, ऐसी रीतिसे विचित्र विलाप करने लगी ॥ ५२ ॥ केसरका अरगजा जिनपर लगाया हुआ है ऐसे स्तनोंको, अंजनसे श्याम भयेहुए अश्रुबिंदुओंसे न्हिलाती, यह

कृतद्युति जिनमेंसे फूलोंकी माला सरक २ कर, पड़ती जाती हैं ऐसी अपनी वेणीको खुली छोड़कर, टिटोड़ीकी भांति मुक्तकंठ होकर, ऊंचे स्वरसे विचित्र प्रकारसे शोक व विलाप करने लगी ॥ ५३ ॥ अरे विधाता ! तू अत्यंत मूर्ख दीख पड़ता है. क्यों-कि तू तेरी सृष्टिके, संभवे नहीं ऐसा अयोग्य काम करता है, बड़ोंके जीते छोटेका मरना यह अत्यंत विपरीत बात है. और जो अभी तेरी यही करनेकी इच्छा होवे तौ, तू सच्चा प्राणीमात्रका शत्रु है. दयालु नहीं है ॥ ५४ ॥ जो जीवोंके अपने २ कर्मके अनुसार जन्म, मरण होनेसे जन्म, मरणका क्रम नहीं रह सक्ता तौ, पीछे तेरा कामही क्या है ? क्योंकि जो कुछ होना है, वो अपने २ कर्मोंसे हो जावेगा. कदाचित् तेरेविना इकल्ले कर्मोंसे कुछभी न हो सक्ता हो तौ, पीछे अपनी सृष्टि बढ़ानेके वास्ते

अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ॥ परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृतिर्वि-पर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥ ५४ ॥ न हि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभिः ॥ यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥ ५५ ॥ त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ॥ अंजस्तरेम भवताऽप्रज दुस्तरं यद्ध्वांतं न याह्य-करुणेन यमेन दूरम् ॥ ५६ ॥ उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयंति नृपनंदन संविहर्तुम् ॥ सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान्परीतो भुंक्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥ ५७ ॥

यह स्नेहरूप पाश कि-जो तेरीही कीहुई है, उसे तूही काटता है, ऐसा दुःख देखकर, कोईभी प्राणी अपने पुत्रआदिपर स्नेह नहीं करेंगे, इससे तेरी सृष्टिमें हानि होगी ॥ ५५ ॥ पुत्रसे कहती है. हे तात ! मैं कि-जो अनाथ और दीन हूं, उसको तेरे लिये त्याग करना योग्य नहीं है. शोकसे तपायमान भयाहुआ यह तेरा पिता तेरे चरणमूलमें पड़ा है. इसके सन्मुख तौ देख. तू जीता रहता तौ तुझसे हम नरकको सहजमें तिर जाते कि-जो नरक अपुत्र मनुष्योंसे बड़ी कठिनतासे तिरा जा सकता है. अरे ! तू इस निर्दय यमराजके साथ दूर मत जा ॥ ५६ ॥ हे तात ! हे नृपनंदन ! उठ ये तेरे समान अवस्था-वाले तेरे मित्र तुझको खेलनेके वास्ते बुलाते हैं. तुझे बहुत बेर हुई, तू सो रहा है, तुझे भूंख बहुत लग गयी होगी, सो

स्तनपान कर और हम कि-जो तेरेही हैं, उनका शोक दूर कर ॥ ५७॥ हे पुत्र ! सुंदर हास्ययुक्त और आनंदभरी दृष्टिवाले तेरे मुखकमलको मैं अभागिन देख सकी नहीं. अरे ! मैं तेरी मनोहर वाणी नहीं सुनती. अरे रे ! परलोक कि-जहां गये पीछे पीछा नहीं आता, वहां तू चला गया है क्या ? निर्दय यमराज तुझे ले गया क्या ? ॥ ५८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-इसप्रकार कृतद्युतिरानीके मरेहुए पुत्रका विचित्र वचनोंसे विलाप करते, अतिदुःखित भयाहुआ राजा चित्रकेतुभी मुक्तकंठ होकर,रुदन करने लगा ॥ ५९ ॥ वे राजा रानी इस प्रकार विलाप करते थे, तहां इनका अनुसरण करनेवाले औरभी सब

नाहं तनूज ददृशे हतमंगला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ॥ किंवा गतोऽस्य पुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन न शृणोमि कलागिरस्ते ॥ ५८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलपंत्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ॥ चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकंठो रुरोद ह ॥ ५९ ॥ तयोर्विलपतोः सर्वे दंपत्योस्तदनुव्रताः ॥ रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥ ६० ॥ एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ॥ ज्ञात्वांऽगिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऊचतुर्मृतकोपांते पतितं मृतकोपमम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं बोधयंतौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥ कोऽयं स्यात्तव राजेंद्र भवान्यमनुशोचति ॥ त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतःपरम् ॥ २ ॥

नरनारी रोने लगे. और सब मनुष्य मूर्छितसे हो गये ॥ ६० ॥ इस प्रकार चित्रकेतुराजाको दुखित, मूर्छित और अनाथ जानकर, अंगिरामुनि, नारदजीके साथ वहां आये ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ पन्द्रहवें अध्यायमें अंगिरा और नारदजीने तत्वका उपदेश करके, चित्रकेतुका शोक मिटाया. यह कथा होगी. ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि-शव (मुर्दे) के समीपमें शव (मुर्दे) की नाई पड़ेहुए और शोकसे पराभव पायेहुए, चित्रकेतु राजाको प्रशस्त वचनोंसे ज्ञानका उपदेश करते अंगिरा और नारदजीने कहा कि- ॥ १ ॥ हे राजेंद्र ! तू जिसका शोक करता है, वह यह

तेरे क्या लगता है ? और इस सृष्टिमें तू इसके क्या लगता है ? पूर्वजन्ममें, इस जन्ममें और भविष्यजन्ममें तेरे और इसके कौन संबंध था ? और कौन है ? और कौन संबंध होगा ? ॥ २ ॥ जैसे प्रवाहके वेगसे धूलि जुदी पड़ जाती है और इकट्ठी हो जाती है. ऐसे कालके वेगसे प्राणीमात्र जुदे पड़ते हैं और इकठे होते हैं पूर्वजन्ममें जो प्राणी पिताआदिरूपसे इकठे थे, वेही मरणके अनंतर जुदे पड़कर, वर्तमानजन्ममें किसी समय तो उन्हींके और किसी समय दूसरोंके पुत्रादिक होते हैं और वेही फिर जन्मांतरमें उन्हींके अथवा दूसरोंके स्त्री-पुत्र और शत्रु, मित्रआदि होते हैं. तासों यह तेरा पुत्र और तू इसका पिता ऐसा नियम बिलकुल नहीं है ॥ ३ ॥ जैसे एक बीजमेंसे दूसरे बीज पैदा होते हैं और किसी समय नहींभी होते और किसी समय

यथा प्रयांति संयांति स्रोतोवेगेन वालुकाः ॥ संयुज्यंते वियुज्यंते तथा कालेन देहिनः ॥ ३ ॥ यथा धानासु वै धाना भवंति न भवंति च ॥ एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥ ४ ॥ वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ॥ जन्मसृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ्नैवमधुनाऽपि भो ॥ ५ ॥ भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हंत्यजः ॥ आत्मसृष्टैरस्वतंत्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥ ६ ॥ देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते ॥ बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥ ७ ॥

होकर, नष्टभी हो जाते हैं, इसी प्रकार किसी समय किसी प्राणीमेंसे दूसरे प्राणी पैदा होते हैं किसी समय पैदा नहीं होते और किसीसमय मरभी जाते हैं सो जैसे बीजमें पिता-पुत्रआदिका संबंध नहीं है, ऐसे प्राणियोंमेंभी पिता पुत्रआदिका संबंध नहीं है, तासों शोक न करना चाहिये. भगवान्की मायाकी प्रेरणासेही होना और न होना है, पर वास्तविक रीतिसे देखो तो कुछभी नहीं है ॥ ४ ॥ हे राजा ! हम, तू और वर्तमानकालके ये सब स्थावर-जंगम, जैसे जन्मसे पहले नहीं थे और मरणके अनंतर न रहेंगे, इसीतरह अभीभी नहीं हैं और मरणपदार्थ सर्वके साधारण है, तासों पुत्रका शोक करना अयोग्य है ॥ ५ ॥ अजन्मा ईश्वर यद्पि स्वयं निरपेक्ष है, तथापि बालककी नांई लीलापूर्वक रचेहुए परतंत्र प्राणियोंसे दूसरे प्राणियोंको रचते हैं, पालते हैं और संहार करते हैं ॥ ६ ॥ यह सब मायाकी सृष्टि है, तासों 'मैं इसका पिता और यह मेरा पुत्र ' इत्यादिक अभिमान

केवल प्रतीति मात्रके वास्ते है, जैसे एक बीजमेंसे दूसरा बीज होता है ऐसे माता पिताके देहसे पुत्रका देह होता है, तासों बीजमें जैसे पृथ्वीआदि मूलतत्त्व वोके वोही हैं, ऐसे शरीरमेंभी आत्मा वोका वोही है ॥ ७ ॥ जैसे जाति और आकृतिके विभागकी कल्पना एकही वस्तुमें भयीहुई है ऐसे देह और देहीके विभागकी कल्पनाभी एकही वस्तुमें अनादिकालीन अज्ञानसे भयीहुई है. वस्तुतः केवल ईश्वरही सबके कारण और परमसत्य हैं, तदतिरिक्त अनेक प्रकारकी जो कल्पना है, वह सब कल्पित है, तासों शोक करना योग्य नहीं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–इसप्रकार मुनियोंके वचनोंसे आश्वासन पायाहुआ राजा चि-

देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥ जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथावस्तुनि कल्पितः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच॥ एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ कौ युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ॥ अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥ १० ॥ चरंति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ॥ मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिंगिनः ॥ ११ ॥ कुमारो नारद ऋभुरंगिरा देवलोऽसितः ॥ अपांतरतमो व्यासो मार्कंडेयोऽथ गौतमः ॥ १२ ॥ वसिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणिः ॥ दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽऽरुणिः ॥ १३ ॥ रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतंजलिः॥ ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पंचशिरास्तथा ॥ १४ ॥

त्रकेतु दुःखसे मुरझायेहुए मुखको अपने हाथसे पोंछकर, इस प्रकार बोला कि– ॥ ९ ॥ ज्ञानसे परिपूर्ण और बड़े २ सब लोगोंके परमपूज्य आप अवधूतके वेषसे गुप्त रहकर, यहां पधारे हो सो आप कौन हो ? ॥ १० ॥ केवल भगवान्मेंही जिनका प्रेम है ऐसे, ब्राह्मणलोक मेरे जैसे अज्ञानियोंको ज्ञानका उपदेश करनेके वास्ते उन्मत्तकेसे बेषसे इच्छापूर्वक विचरते हैं ॥ ११ ॥ सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अगिरा देवल, असित, अपांतरतम, व्यास, मार्कण्डे, गौतम, ॥ १२ ॥ वसिष्ठ, परशुराम, कपिल, शुकदेवजी, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि, ॥ १३ ॥ लोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतंजलि, ऋषि वेदशिरा,

बोध्य, पंचशिरा, ॥ १४ ॥ हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव, ऋतध्वज ये और दूसरेभी बड़े २ सिद्ध लोग ज्ञानका उपदेश करनेके वास्ते ही विचरा करते हैं ॥ १५ ॥ मैं कि- जो गाढ़ अंधकारमें डूबाहुआ और ग्रामीण पशुके जैसा मूढ़ हूं, तिसे आपसे ज्ञान मिलेगा, सो आप ज्ञानरूप दीपकका प्रकाश करो ॥ १६ ॥ चित्रकेतुकी प्रार्थना सुनकर, अंगिराने कहा कि-हे राजा ! जिस समय तुम्हारे पुत्रकी इच्छा थी, उस समयमें पुत्रके देनेवाले हम अंगिरा हैं और ये साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी हैं ॥ १७ ॥ तुम कि-जो भगवान्‌के भक्त और शोक करनेके अयोग्य हो उन्हें इसप्रकार पुत्रके शोकसे महामोहमें बूड़ेहुए जानकर, ॥ १८ ॥

हिरण्यनाभः कौसल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ॥ एते परे च सिद्धेशाश्चरंति ज्ञानहेतवः ॥ १५ ॥ तस्मा-द्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू ॥ अंधे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥ १६ ॥ अंगिरा उवाच ॥ अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यंगिरा नृप ॥ एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥ १७ ॥ इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे ॥ अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥ १८ ॥ अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ॥ ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥ १९ ॥ तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः ॥ ज्ञात्वाऽन्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम् ॥ २० ॥ अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ॥ एवं दारागृहारायो विविधैश्वर्यसंपदः ॥ २१ ॥ शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ॥ मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥ २२ ॥

तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके वास्ते हम यहां आये हैं, क्योंकि ब्राह्मणोंको माननेवाले और भगवान्‌के भक्त जो तुम हो, तिनके मोह नहीं होना चाहिये ॥ १९ ॥ हम पहले तुम्हारे घर आये उसी समयमें तुम्हें उत्तम ज्ञान देनेका हमारा विचार था. परंतु उस समय संसारमें तुम्हारी आसक्ति देखकर, हमने तुमको पुत्रही दिया ॥ २० ॥ पुत्रवालोंको कैसा दुख होता है, वह अभी तुम्हारेही अनुभवमें आगया है, सो जैसे यह अभी दुखदाई दीख पड़ता है ऐसे स्त्री, घर, धन व अनेक प्रकारके ऐश्वर्यकी संपदा येभी दुखदायीही हैं ॥ २१ ॥ शब्दादिक विषय और राज्यसंबंधी विभूतियां स्थिर नहीं हैं. हे शूरसेनदेशके राजा ! पृथ्वी,

राज्य, सैन्य, कोश (भंडार) भृत्य (नौकर) अमात्य (मुसाहिब) और सुहृद लोग ये सब शोक, मोह, भय व पीड़ाके देनेवाले हैं. तथा गंधर्वनगरके समान हैं. स्वप्न, माया और मनोरथके समान मिथ्या प्रतीत होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ यानी केवल मनहीसे पैदा भयेहुए और सत्यता विना दीखनेवाले हैं, सत्य होवें तो, एक क्षणमें दीखकर, दूसरे क्षणमें उनकी बाढ़ न होना चाहिये. कर्मोंकी वासनाओंसे विषयोंका चिंतवन करनेवाले पुरुषके कर्म मनसे पैदा हुए हैं, तासों उन कर्मोंसे बनतेहुए पदार्थभी मनहीसे पैदा भयेहुए हैं ॥ २४ ॥ देहाभिमानवाले जीवके पंचमहाभूत, इंद्रियां और इंद्रियोंके देवतारूप यह देह-

सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः ॥ गंधर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥ २३ ॥ दृश्यमाना विनार्थेन न दृश्यंते मनोभवाः ॥ कर्मभिर्ध्यायतो नाना कर्माणि मनसोऽभवन् ॥ २४ ॥ अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ देहिनो विविधक्लेशसंतापकृदुदाहृतः ॥ २५ ॥ तस्मात्स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ॥ द्वैते ध्रुवार्थविश्रंभं त्यजोपशममाविश ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ एतां मंत्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ॥ यां धारयन्सप्तरात्राद्द्रष्टा संकर्षणं प्रभुम् ॥ २७॥ यत्पादमूलमुपसृत्य नरेंद्र पूर्वे शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ॥ सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥२८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥

ही अनेक प्रकारके क्लेश और संतापको पैदा करनेवाला कहा गया है, ममताके विषय दुखदायी है, और उनका मूल देहही है. ॥२५ ॥ अतएव अव्यग्र मनसे अपने स्वरूपका विचार कर, द्वैतवस्तुमें यह स्थिर हैं ऐसा जो विश्वास है, उसे छोड़कर, उपशमका आश्रय ले ॥ २६ ॥ नारदजीने कहा कि–यह मंत्रविद्या कि– जो परमकल्याणकी करनेवाली है, वह तू सावधान होकर, मुझसे ले जिस विद्याका सात रात्रिपर्यंत अखंड चिंतवन करनेसे तुझे शेष भगवान्के दर्शन होवेंगे ॥ २७ ॥ हे नरेंद्र ! महादेव, आदि पूर्व पुरुष जिनके चरणारविंदका शरण लेनेसे इस भ्रांतिरूप द्वैतभावको त्यागकर, जिसके समान अथवा जिससे अधिक कोई नहीं है ऐसे, ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हुये हैं, वे सर्वोत्तम शेष भगवान् तुमको अल्प समयमें मिलेंगे ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापु०

षष्ठस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ सोलहवें अध्यायमें उसके पुत्रके बोलनेसेही राजाको शोकरहित करकर, नारदजीने उसे शेष भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाली विद्याका उपदेश दिया; यह कथा होगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! फिर नारदजीने शोक करनेवाले संबंधी लोगोंको अपने योगबलसे मरेहुए राजकुमारको प्रत्यक्ष दिखाकर, उस बालकसे कहा ॥ १ ॥ नारदजी बोले कि–हे जीवात्मा ! तेरे माता, पिता, मित्र और बंधु कि– जो तेरे शोकसे बहुत व्याकुल हो गये हैं उन्हें तू देख ॥ २ ॥ इस तेरे शरीरमें प्रवेश कर, शेष रही हुई अपनी आयुको और पिताके

श्रीशुक उवाच ॥ अथ देवऋषी राजन्संपरेतं नृपात्मजम् ॥ दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ॥ सुहृदो बांधवास्तप्ताः शुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥ कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः ॥ भुंक्ष्व भोगान्पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥ ३ ॥ जीव उवाच ॥ कस्मिन् जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥४॥ बंधुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ॥ सर्व एव हि सर्वेषां भवंति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥ यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः ॥ पर्यटंति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥

दियेहुए भोगोंको संबंधी लोगोंके साथ रहकर, भोग और राज्यको अंगीकार कर ॥ ३ ॥ तब शरीरमें प्रवेश करके जीव बोला कि–मैं कि– जो कर्मोंके वश होकर, देव, पशु, पक्षी और मनुष्योंकी योनियोंमें भटका करता हूं, तिसके कौनसे जन्ममें यह तो माता और यह पिता हुआ था ? ॥ ४ ॥ मेरे मरनेसे मुझे पुत्र जानकर, शोक हुआ है तो, शत्रु जानकर. हर्ष क्यों नहीं करते ? क्योंकि संबंधी, सपिंड, शत्रु, मध्यस्थ, मित्र, उदासीन और द्वेषी अनुक्रमसे सब सबके परस्पर होते हैं. तासों पुत्रादिकका संबंध वोका वोही रहता है ऐसा कोई नियम नहीं है ॥ ५ ॥ जैसे सुवर्णआदि बेंचनेकी वस्तुआं वेकी वेही व्योपारी लोकोंमें चौतर्फ फिरा करती हैं, ऐसे जीवभी अनेक योनियोंमें वोका वोही फिरा करता है ॥ ६ ॥

१ अपमृत्युसे मरनेसे शेष आयु रही ऐसा कहा.

मनुष्योंमें जीतेहुए पशुआदि पदार्थका संबंधभी अनित्य देखनेमें आता है. क्योंकि बेंचनेआदिसे संबंध टूट जाता है. और जबतक जिसके संबंध रहता है, तबतकही उसका उसमें ममत्व रहता है ॥ ७ ॥ इसी प्रकार जिस देहमें जीव आया होवे उस देहमें वह जीव जबतक रहे तबतक उसका स्वत्व उसमें रहता है, मरनेके अनंतर नहीं रहता, तासों यह देह अब मेरी नहीं है. जबतक इस देहमें मेरी ममता थी, तबलों ये मुझको पुत्र समझते थे तौ भले. परंतु अब मेरे इस शरीरसे कुछभी संबंध नहीं तासों इनसेभी कुछभी संबंध नहीं अनेक योनियोंमें भटकनेवाला जीव वोका वोही रहता है और वस्तुतः वह अहंकाररहित है. जीव-नित्य, अपक्षय यानी घटावसे रहित, जन्मादिकसे शून्य और जन्मनेवाले देहादि पदार्थोंका आश्रय तथा स्वयंप्रकाश

नित्यस्यार्थस्य संबंधो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ॥ यावद्यस्य हि संबंधो ममत्वं तावदेव हि ॥ ७ ॥
एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः ॥ यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥
एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक् ॥ आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः ॥ ९ ॥
न ह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदोषयोः ॥ १० ॥
नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ॥ उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥ ११ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीर्य गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ॥ विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वा-ऽऽत्मस्नेहशृंखलाम् ॥ १२ ॥

है. यही प्रभु अपनी मायाके गुणोंसे अपने आत्माको जगत्‌रूप बनाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ इसके न तौ कोई अतिप्रिय है, न अप्रिय है. न अपना है और न पराया है. तासों मेरे किसके साथ रहना? किसे राजी रखना? और किसके सोहीं देखना? आत्मा तो संगरहित और अच्छा बुरा करनेवाले मित्र तथा शत्रुआदिकी विचित्र बुद्धियोंका साक्षी है. आत्मा सुख, दुःख कै राज्यआदि-कको भोगताही नहीं; क्योंकि यह कार्य और कारणका साक्षी है. किन्तु भोक्ता नहीं और स्वतंत्र है, किंतु देहादिकके परतंत्र नहीं. तासों मैं कि-जो ऐसा हूं उसके किसके साथ संबंध नहीं है ? तासों मेरा संबंध मानकर, किसीको शोक न करना चा-हिये ॥ १० ॥ ११ ॥ श्रीशुकमुनि बोले कि-इस प्रकार कह कर, जीव पीछा शरीरमेंसे निकल गया. तब उसके संबंधियोंने विस्मय

पाकर, अपने स्नेहरूप सांकलका ताड़ कर, शोकका परित्याग किया ॥ १२ ॥ उसके शरीरका दाह करनेके अनंतर उसकी पर-लोकसंबधी उचित क्रिया करके संबंधी लोगोंने दृढ़ स्नेह कि–जो शोक, मोह, भय और पीड़ा देनेवाला है, उसे छोड़ दिया ॥ १३॥ महाराज ! बालहत्या करनेवाली और हत्याके हेतु निस्तेज भयीहुई स्त्रियोंने अंगिरामुनिका वचन सुनकर, लज्जितहो, पुत्र-आदिकी कामना त्याग दी. और ब्राह्मणोंके कहनेके अनुसार यमुनाके तटपर जाकर, बालहत्याका प्रायश्चित्त किया ॥ १४ ॥ इस प्रकार अंगिरा और नारदजीके वचनसे जिसे ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐसा, वह चित्रकेतुराजा तलावके कीचमेंसे जैसे हाथी

निर्हृत्य ज्ञातयो ज्ञातेर्देहं कृत्वोचिताः क्रियाः ॥ तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ॥ १३ ॥ बालघ्न्यो व्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः ॥ बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ॥ यमुनायां महाराज स्मरंत्यो द्विजभाषितम् ॥ १४ ॥ स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ गृहांधकूपान्निष्क्रांतः सरः पंकादिव द्विपः ॥ १५ ॥ कालिंद्यां विधिवत्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ॥ मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववंदत ॥ १६॥ अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने ॥ भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥ १७ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ १८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय परमानंदमूर्तये ॥ आत्मारामाय शांताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥ १९ ॥ आत्मानंदानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ॥ हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥ २० ॥

निकले, ऐसे घररूप अंधकूपमेंसे बाहिर निकला ॥ १५ ॥ यमुनामें विधिपूर्वक स्नान कर, तर्पणआदि पवित्र क्रिया करनेके अनंतर मौनपूर्वक जितेंद्रियपन रखकर, अंगिरा और नारदजीके चरणोंमें उसने वंदन किया ॥ १६ ॥ फिर जितेंद्रिय और शरणागत भक्त चित्रकेतुको प्रसन्न होकर, नारदजीने इस विद्याका उपदेश किया ॥ १७ ॥ “ वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षणरूप आप भगवान्‌को हम ध्यानपूर्वक नमस्कार करते हैं ॥ १८ ॥ अनुभवरूप, परमानंदमूर्ति, आत्माराम, शांत और द्वैतदृष्टिसे रहित आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ १९ ॥ आत्मानंदके अनुभवहीसे मायासंबंधी राग द्वेषादिकोंको निराश करनहारे,

इंद्रियोंके स्वामी और जगत्‌रूप मूर्तिवाले महात्मा आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ २० ॥ मन व इंद्रियां जिन्हें न पहुंच कर, विरत्त हो जातीं हैं तब नामरूपरहित, चैतन्यमात्र और सर्वके कारणरूप जो एकही प्रकाशते हैं, वे देव हमारी रक्षा करें ॥ २१ ॥ यह जगत् जिनमें रहा है, जिनमें लय पाता है और जिनसे पैदा होता है तथा घटादिक पदार्थोंमें मिट्टीके समान जो सबमें अनुस्यूत हैं, उन परब्रह्मरूप आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ २२ ॥ मन, बुद्धि और इंद्रियां जिन्हें नहीं जानते तथा प्राण जिनका स्पर्श नहीं कर सकता और जो आकाशकी भांति भीतर और बाहिर सर्वत्र व्या-

वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह ॥ अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥ २१ ॥ यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ॥ मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥ २२ ॥ यन्न स्पृशंति न विदुर्मनोबुद्धींद्रियासवः ॥ अंतर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥ देहेंद्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरंति कर्मसु ॥ नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद्द्रष्ट्रपदेशमेति ॥ २४ ॥ ओं नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्त्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविंदयुगलपरम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ॥ ययावंगिरसा साकं धाम स्वायंभुवं प्रभो ॥ २६ ॥

प्त हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूं ॥ २३ ॥ देह, इंद्रियां, प्राण, मन और बुद्धि जिनके चैतन्यांशके आवेशसे अपने २ काममें प्रवृत्त हो सक्ते हैं और जैसे अग्निविना इकल्ला लोहा जला नहीं सकता, ऐसे सुषुप्ति और मूर्छाआदिमें जिनके चैतन्यांशविना ये देहादिक अपना२ व्यापार नहीं कर सक्ते और जो जाग्रत् आदि अवस्थामें द्रष्टानाम धरानेवाला; यह जीवभी जिन्हें नहीं जानता, उन सर्वेश्वर प्रभुको प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ हे सर्वेश्वर ! हे सर्वोत्कृष्ट ! आप कि–जो भगवान्, महापुरुष, महाप्रभाव, महाविभूतिके पति हो और सब बड़े २ भक्तलोकोंके समूह अपने हस्तकमलकी कलियोंसे जिनके दोनों चरणारविंदोंको लड़ाते हैं, ऐसे आपको प्रणाम करते हैं" ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि– हे राजा ! भक्तिमान् और शरण आये हुए, उस चित्रके-

तुको इसप्रकार विद्याका उपदेश कर, अंगिरा ऋषिके साथ नारदजी ब्रह्मलोकको सिधारे ॥ २६ ॥ तदनंतर चित्रकेतुने सात दिनतक केवल जलका आहार कर, सावधान रह, नारदजीके कहनेके अनुसार उस विद्याका योग्यरीतिसे अनुष्ठान किया ॥ २७ ॥ महाराज ! सात रात्रि पूरी हुई तब अनुष्ठान की जाती उस विद्याके प्रभावसे उसे मुख्य फलके अंतर्गत विद्याधरोंका आधिपत्य मिला कि- जो फिर कदापि खंडित नहीं हुआ ॥ २८ ॥ फिर कितनेएक दिनोंमें विद्याके प्रभावसे जहां मन जाय वहां और उतने समयमें पहुंचनेकी गति मिली. तब चित्रकेतु शेष भगवान्‌के चरणोंके निकट गया ॥ २९ ॥ कमलनालके समान गौरवर्ण, नील

चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ॥ धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥ २७ ॥ ततश्च सप्तरात्रांते विद्यया धार्यमाणया ॥ विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृप ॥ २८ ॥ ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः ॥ जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणांतिकम् ॥ २९ ॥ मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्किरीटकेयूरकटित्रकंकणम् ॥ प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं तं ददर्श सिद्धेश्वरमंडलैः प्रभुम् ॥ ३० ॥ तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः स्वच्छामलांतःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ॥ प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः प्रहृष्टरोमाऽनमदादिपूरुषम् ॥ ३१ ॥ स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ॥ प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवाशकत्तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥ ३२ ॥ ततः समाधाय मनो मनीषया बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ॥ नियम्य सर्वेंद्रियबाह्यवर्तनं जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥ ३३ ॥

वस्त्र धरे, प्रसन्नमुख, अरुणनेत्र, बड़े २सिद्धलोगोंके मंडलसे वेष्टित, मुकुट, भुजबंध, कटिमेखला तथा कंकणसे देदीप्यमान शेष भगवान्‌के दर्शन किये ॥ ३० ॥ उनके दर्शनसे सब पाप जिसके निवृत्त होगये हैं ऐसा वह स्वच्छ और निर्मल अंतःकरणवाला राजा चित्रकेतु, भक्तिकी वृद्धिके हेतु स्नेहके अश्रु डालता, पुलकितगात्र होकर, शेषजीके शरण गया और प्रणाम करता चरणोंमें गिरा ॥ ३१ ॥ भगवान्‌के चरणकमलके आसनरूप शेष भगवान्‌को प्रेमाश्रुके बिंदुओंसें बारंबर भिगोताहुआ वह चित्रकेतु प्रेमके हेतु सर्व अक्षरोंका उच्चारण रुक जानेसे बहुत बेरतक उनकी स्तुति नहीं कर सका ॥ ३२ ॥ फिर बुद्धिद्वारा मनको स्थिर करनेसे जिसे

वाणी प्राप्त हुई है ऐसा वह चित्रकेतु सब इंद्रियोंकी बहिर्वृत्तिको रोंककर, जगत्गुरु शेषभगवान् कि– जिनका स्वरूप भक्तिशास्त्रमें जैसा कहा है ऐसा शोभरहा था, उनकी स्तुति करने लगा ॥ ३३ ॥ चित्रकेतुने कहा कि–आप यदपि अजित हो, तथापि समदृष्टिवाले जितेंद्रिय पुरुषोंने आपको जीत लिया है और आप कि– जो निष्काम भक्तोंको अपना स्वरूप देनेवाले और महादयालु हो, तिन्होंने इन भक्तलोगोंको जीत लिया है ॥ ३४ ॥ हे भगवन्! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयआदि जो हैं, वे आपकी लीला हैं. जगत्के सरजनहारे ब्रह्मादिक तो आपके अंशकेभी अंश हैं, और ये जुदी २ ईश्वरताके अभिमानसे सृष्टिआदि कार्यो-

चित्रकेतुरुवाच ॥ अजित जितः सममतिभिः साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ॥ विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ॥ ३४ ॥ तव विभवः खलु भगवन् जगदुदयस्थितिलयादीनि ॥ विश्वसृजस्तेंऽशांशास्तत्र मृषा स्पर्धंते पृथगभिमत्या ॥ ३५ ॥ परमाणुपरममहतोस्त्वमाद्यंतांतरवर्ती त्रयविधुरः ॥ आदावंतेऽपि च सत्त्वानां यद्ध्रुवं तदेवांतरालेऽपि ॥ ३६ ॥ क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैरांडकोशः ॥ यत्र पतत्यणुकल्पः सहांडकोटिकोटिभिस्तदनंतः ॥ ३७ ॥ विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ॥ तेषामाशिष ईश तदनुविनश्यंति यथा राजकुलम् ॥ ३८ ॥

में वृथा स्पर्धा (डाह) रखते हैं॥ ३५ ॥ परमसूक्ष्म और परममहान् कार्यके आदिमें, मध्यमें और अंतमें रहनेवाले आपही हो. और आपके आदि अंत और मध्य कुछभी नहीं हैं. जो तत्त्व कार्यके आदिमें और अंतमें होगा. वही मध्यमें होगा और वही अविनाशी कहा जायगा॥ ३६ ॥ एकएकसे दश २ गुणे बड़े पृथ्वीआदि आवरणोंसे घिराहुआ यह ब्रह्मांड और ऐसेही करोड़ों दूसरे ब्रह्मांड, आपके स्वरूपमें परमाणुकी भांति घूमते फिरते हैं, अतएव आप अनंत कहलाते हो ॥ ३७ ॥ हे ईश ! विषयोंकी तृष्णा रखनेवाले जो नरपशु आपकी विभूतिरूप इंद्रादिकदेवोंकी उपासना करते हैं, किंतु आप कि–जो सर्वके कारणरूप हो, तिनकी उपासना नहीं करते, उनके सुख, राजाके नाशके पीछे जैसे उनके सुख नष्ट हो जाते हैं, ऐसे उन देवतानके नाशके पीछे नष्ट हो जाते हैं॥३८॥

हे परमेश्वर ! विषयकी कामनाभी जो आपमें अर्पण की जाय, तौ भूनेहुए बीज जैसे दूसरे बीजको उत्पन्न नहीं कर सक्ते, वैसे वे कामनाभी दूसरे देहको उत्पन्न नहीं कर सकतीं; क्योंकि निर्गुण और ज्ञानमय आपके स्वरूपमें जीवके गुणोंके हेतुही सुख दुःखादि द्वंद्वके समूह होते हैं. इसीलिये निर्गुण स्वरूपका कामनासे भजन किया जाय तौभी, उससे शनैःशनैः (धीरे २) निर्गुणपन प्राप्त हो जाता है ॥ ३९ ॥ हे अजित ! निष्किंचन और आत्माराम सनकादिक मुनिभी मोक्ष-के वास्ते जिसका सेवन करते हैं ऐसा, निर्दोष वैष्णवधर्म आपने कहा, तभीसे आपकी सबसे उत्कृष्टता है ॥ ४० ॥ वैष्णवधर्म निर्दोष इसलिये है कि-जैसे दूसरे सकाम धर्ममें 'तू मैं और मेरा तेरा' ऐसी विषम बुद्धि रहती है, ऐसी इस धर्ममें नहीं रहती. शत्रुवध-

कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहंति यथा करंभबीजानि ॥ ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वंद्वजालानि ॥ ३९ ॥ जितमजित तदा भवता यदाह भागवतं धर्ममनवद्यम् ॥ निष्किंचना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥ ४० ॥ विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ॥ विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥ ४१ ॥ कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ॥ स्वद्रोहात्तव कोपः परसंपीडया च तथाऽधर्मः ॥४२॥ न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ॥ स्थिरचरसत्त्वकदंबेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥ ४३ ॥ न हि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ॥ यन्नाम सकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥ ४४ ॥

आदि कामनारूप विषमबुद्धिसे जो धर्म रचा गया होवे, वह तौ रागद्वेषादिकसे अशुद्ध, नाशवान्, फलवाला व अधर्मके बड़े भागवाला होता है, ॥ ४१ ॥ अपने और पराये द्रोहवाले धर्मके पालनेसे अपना तथा पराया क्या भला होना है? और क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? इस धर्मकी रीतिके अनुसार शरीरको बहुत कष्ट देनेसे आत्मारूप आप परमेश्वरका कोप होता है, और दूसरेका पीड़न होनेसे अधर्म और आत्मपीड़न दोनों होते हैं ॥ ४२ ॥ आपका विचार कि-जिसमेंसे वैष्णवधर्म निकला है, उसने परमार्थको बिलकुल नहीं छोड़ा है. क्योंकि स्थावर-जंगम प्राणियोंमें समबुद्धि रखनेवाले वैष्णव इसी धर्मका सेवन करते हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! आपके दर्शनसे मनुष्योंके सकल पातकोंका नाश हो जाय यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है. क्योंकि चांडालभी यदि एकवारभी आपके नामका

श्रवण करे तो, संसारसे मुक्त हो जाय ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! अभी हमारे मनके मैल आपके दर्शनसे धो गये हैं. आपके भक्त नारदजीने जो कहा, उसमें फरक क्यों पड़े ? ॥ ४५ ॥ हे अनंत ! लोकोंका सर्व आचरण, आप कि–जो जगत्के आत्मा हो, उनके जाननेमें है. सूर्यके निकट जैसे खद्योतोंको प्रकाश करनेकी कोई आवश्यकता नहीं, ऐसे आप परमगुरुके पास लोकोंको कुछभी विज्ञापन करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ४६ ॥ सर्वजगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्वामी और अपक्व योगीजन भेददृष्टिके हेतु जिनके तत्त्वको नहीं जानते ऐसे, परमशुद्ध, आपको नमस्कार करता हूं ॥ ४७ ॥ जिनके श्वास लेनेके पीछे

अथ भगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ॥ सुरऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥ ४५ ॥ विदितमनंतसमस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ॥ विज्ञाप्यं परमगुरोः किंयदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥ ४६ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ॥ दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥ ४७ ॥ यं वै श्वसंतमनु विश्वसृजः श्वसंति यं चेकितानमनु चित्तय उच्चकंति ॥ भूमंडलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संस्तुतो भगवानेवमनंतस्तमभाषत ॥ विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यन्नारदांगिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ॥ संसिद्धोऽसि तया राजन्विद्यया दर्शनाच्च मे ॥ ५० ॥ अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ॥ शब्दब्रह्म परंब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥ ५१ ॥

प्रजापतिभी श्वास लिया करते हैं. जिनके जाननेके पश्चात् ज्ञानेन्द्रियां जान सक्तीं हैं. और जिनके शिरपर यह सकल भूमंडल सरसोंके दानेकी तुल्य प्रतीत होता है, उन हजार मूर्द्धावाले भगवान् आपको नमस्कार करता हूं ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि–हे कुरुकुलधर ! विद्याधरोंके पति चित्रकेतुने इसप्रकार स्तुति की. तब प्रसन्न होकर, शेष भगवान्ने यह वचन कहा ॥ ४९ ॥ शेषजी बोले कि– हे राजा ! नारद और अंगिराऋषिने तुझे मेरे संबंधमें जिस विद्याका उपदेश किया, उस विद्याके प्रभावसे और मेरे दर्शनसे तू कृतार्थ हुआ ॥ ५० ॥ जो सब स्थावर-जंगम हैं, वे मैंही हूं. स-

बका भोक्ता और सर्वका कारणभी मैंही हूं. वेद और परब्रह्म ये दोनों मेरेही नित्य स्वरूप हैं ॥ ५१ ॥ ज्ञानीको ऐसा विचार रखना चाहिये कि-' मैं जगत्‌में व्याप रहा हूं. और जगत् मुझमें व्याप रहा है तथा दोनोंमें परमात्मा व्याप रहे हैं और परमात्मामें यह जगत् और मैं ये दोनों कल्पन किये गये हैं ' ॥ ५२ ॥ जैसे सोयाहुआ पुरुष स्वप्नअवस्थामें पर्वत, वनआदि रूप अन्यप्रदेशस्थ जगत्‌को अपने आत्मामेंही देखता है और जागनेपर अपने आत्माको एकदेशमें स्थित मानता है अर्थात् जैसे स्वप्नमें स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाका तथा जाग्रतमें जाग्रतअवस्थाका अनुभव करता है ॥ ५३ ॥ ऐसे बुद्धिकी जाग्रत्‌आदि प्रसिद्ध तीनों अवस्थाभी केवल मानलेनेमात्र और मायिक हैं और उनका द्रष्टा आत्मा उन अवस्थाओंसे रहित है, ऐसे

लोके विततमात्मानं लोकं चाऽऽत्मनि संततम् ॥ उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥ ५२ ॥
यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चाऽऽत्मनि ॥ आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥ ५३ ॥
एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चाऽऽत्मनः ॥ मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥ ५४ ॥
येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदाऽऽत्मनस्तदा ॥ सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥ ५५ ॥ उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः ॥ अन्वेति व्यतिरिच्येत तज्ज्ञानं ब्रह्म तत्परम् ॥ ५६ ॥

शोचना चाहिये ॥ ५४ ॥ सोयाहुआ पुरुष जिस रूपसे उस अवसरमें अपने अज्ञानको और निर्गुणसुखको जानता है वह आत्मा ब्रह्म मैं हूं, ऐसे तू जान ॥ ५५ ॥ सुषुप्तिसंबंधी अज्ञान और सुख उस समयमें न जाने गये हों तो, जागनेके अनंतर मैं सुखपूर्वक सोया था, मुझे किसी बातकी खबर नहीं रही, इस प्रकार अज्ञानका और सुखका स्मरण न होना चाहिये. जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थावोंका अनुभव करनेवाला आत्मा एकही है; क्योंकि जाग्रतमें स्वप्न व सुषुप्ति नहीं होती, तथापि जो मैं स्वप्न देखता था और पीछे घोर निद्रामें सो रहा था, वही म हूं, ऐसा अनुसंधान रहता है, जाग्रतसे स्वप्न अवस्था जुदी पड़ती है और स्वप्न अवस्थासे जाग्रत् जुदी पड़ती है. पर उनका जाननेवाला आत्मा इन दोनों अवस्थाओंमें एकही है. ऐसे सुषुप्ति अवस्थामें स्वप्न या जाग्रत् कोईभी नहीं होती, परंतु उनका द्रष्टा आत्मा अखंडित रहता है. इसतरह तीनों अवस्थाओंमें

प्रकाशकतासे अनुस्यूत और तीनोंसे जुदा जो ज्ञान है वही मैं हूं. और जो मैं हूं, वह परब्रह्म रुप हूं,ऐसे तू जान ॥ ५६ ॥ जो यह मेरे ब्रह्मस्वरूपको विस्मृत हो जाता है, तो वह निजस्वरूपसे अलग पड़जाता है और अलग हुआ, कै जीवके बारंबार जन्म-मरणरुप संसार होता है ॥ ५७ ॥ यह मनुष्यका शरीर कि-जिसमें शास्त्रसंबंधी ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान दोनों होनेका संभव है उसे पाकर, जिसने अपना स्वरुप नहीं पहिचाना, उसे कहींभी शांति नहीं मिलती ॥ ५८ ॥ प्रवृत्तिमें क्लेश तथा फलका विपरीतपन है. और निवृत्तिमें अभय यानी मोक्ष है, ऐसे स्मरण रखकर, ज्ञानी पुरुषको संकल्पसे निवृत्त रहना चाहिये

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ॥ ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥ ५७ ॥ लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसंभवाम् ॥ आत्मानं यो न बुद्ध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥५८॥ स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलविपर्ययम् ॥ अभयं चाप्यनीहायां संकल्पाद्विरमेत्कविः ॥ ५९ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दंपती क्रियाः ॥ ततोऽनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥ ६० ॥ एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ॥ आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥ ६१ ॥ दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ॥ ज्ञानविज्ञानसंतुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥ ६२ ॥ एतावानेव मनुजैर्योगनैपुण्यबुद्धिभिः ॥ स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥ ६३ ॥ त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥ ६४ ॥

नरनारीके मिथुन, सुखकीप्राप्ति और दुखकी निवृत्तिके वास्ते व्यापार करते हैं. परंतु उन क्रियाओंसे दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ६० ॥ इस प्रकार पंडितपनका अभिमान रखनेवाले लोग सुखदुःखके विषयमें भूल खाते हैं, महाराज ! सूक्ष्म आत्मस्वरुप तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण है, ऐसे जानकर ॥ ६१ ॥ विवेकके बलसे इस लोकके और परलोकके विषयोंको छोड़कर, ज्ञानसे और अपरोक्षज्ञानसे संतुष्ट रहकर, मनुष्यको मेरी भक्ति करनी चाहिये ॥ ६२ ॥ योगमें अतिनिपुणतावाली जिनकी बुद्धि है ऐसे मनुष्योंने सब प्रकारसे इतनाही परमपुरुषार्थ कहा है कि-परब्रह्मका एकरुपसे दर्शन हो जाय ॥ ६३ ॥ हे राजा ! जो तू सावधान होकर, श्रद्धापूर्वक मेरे इस वचनको धारण करेगा तो, ज्ञान और विज्ञानको प्राप्त होकर, शीघ्र तू

मोक्षको प्राप्त होवेगा ॥ ६४ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–जगत्के गुरु और आत्मा शेष भगवान् चित्रकेतुको इसप्रकार आश्वासना देकर, उसके देखते २ वहांसे अंतर्धान होगये ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचिताया तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सत्रहवें अध्यायमें अमोघ सिद्धिको पाकर, आकाशमार्गसे फिरताहुआ वह चित्रकेतु महादेवजीका उपहास करनेसे पार्वतीके श्रापके हेतु दूसरे जन्ममें वृत्रासुर हुआ. यह कथा होगी ॥ १ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–जिस दिशामें शेष भगवान् अंतर्धान हुए थे, उस दिशाको प्रणाम कर, चित्रकेतु विद्याधर आकाशमें घूमने लगा ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ॥ पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चांतर्दधे हरिः ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतश्चांतर्हितोऽनंतस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ॥ विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥ स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहतबलेंद्रियः ॥ स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥ कुलाचलेंद्रद्रोणीषु नानासंकल्पसिद्धिषु ॥ रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन्हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥ एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता ॥ गिरिशं ददृशे गच्छन्परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥ आलिंग्यांकीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि ॥ उवाच देव्याः शृण्वत्या जहासोच्चैस्तदंतिके ॥ ५ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ॥ आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥

लाखों वर्षपर्यंत उसकी इंद्रियोंकी सामर्थ्य हटी नहीं. उस महायोगीकी मुनि, सिद्ध और चारण स्तुति करते थे ॥ २ ॥ विद्याधरोंकी स्त्रियोंके पास भगवान्के यशका गान कराता यह चित्रकेतु संकल्पमात्रहीसे जिनमें अनेक सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं ऐसी प्रख्यात कुलाचलपर्वतोंकी गुफाओंमें विहार करताथा ॥ ३ ॥ एकदिन वह चित्रकेतु विष्णु भगवान्के दियेहुए दिव्य विमानमें बैठा जाता था, वहां सिद्ध और चारणोंसे घिरेहुए महादेव उसके देखनेमें आये ॥ ४ ॥ उस समय महादेव मुनियोंकी सभाके बीच पार्वतीको गोदीमें ले, भुजासे उनका आलिंगन कर, विराजे थे, इन महादेवके समीप खड़े रहकर, चित्रकेतु पार्वतीके सुनते ऊंचे स्वरसे हँसा और बोला ॥ ५ ॥ चित्रकेतुने कहा कि–ये महादेव जगत्के गुरु और मनुष्योंके साक्षात् धर्मके वक्ता और

मुख्य कहलाते हैं, सो सभाके बीचमें स्त्रीको साथ लेकर, बैठे हैं ॥ ६ ॥ जटाधारी, तीव्र तप करनेवाले, ब्रह्मवादियोंकी सभाके पति, ये महादेव पामर पुरुषकी नाईं लाज त्यागकर, स्त्रीको गोदीमें लेकर, बैठे हैं ॥ ७ ॥ प्रायः पामरजीवभी स्त्रियोंको एकांतमेंही गोदीमें लेते हैं. परंतु ये महादेव तौ बड़े नियमोंके धारण करनेवाले हैं, ये सभाके बीचमें स्त्रीको गोदीमें लेकर, बैठते हैं; बड़ी आश्चर्यकी बात है ॥ ८ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! अतिगंभीर बुद्धिवाले महादेव तौ यह वचन सुनकरभी, सभामें हँसकर, चुप रहगये. तब उनका अनुसरण करनेवाले सभासदभी चुप होगये ॥ ९ ॥ महादेवके प्रभावको नहीं

जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादी सभापतिः ॥ अंकीकृत्य स्त्रियं चाऽऽस्ते गतह्रीः प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥ प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति ॥ अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप ॥ तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥ ९ ॥ इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् ॥ रुषाऽऽह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने॥ १० ॥ पार्वत्युवाच ॥ अयं किमधुना लोके शास्ता दंडधरः प्रभुः ॥ अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥ ११ ॥ न वेद धर्मं किल पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रा भृगुनारदाद्याः ॥ न वै कुमारः कपिलो मनुश्च ये नो निषेधंत्यतिवर्तिनं हरम् ॥ १२ ॥ एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मंगलमंगलं स्वयम् ॥ यः क्षत्रबंधुः परिभूय सूरीन्प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दंड्यः ॥ १३ ॥

जाननेवाला और जितेंद्रियपनका अभिमान रखनेवाला यह चित्रकेतु इसप्रकार अतीव असंबद्ध भाषण करने लगा तब पार्वतीने क्रोध करके, उस शठको इस प्रकार कहा ॥ १० ॥ पार्वती बोलीं कि–क्या अभी जगत्में हमारेजैसे दुष्ट और निर्लज्ज लोकोंको शिक्षा देनेवाला, प्रतिकूल विचार करनेवाला और दंड देनेवाला यह चित्रकेतु प्रभु नियत हुआ है ? ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, प्रजापति, नारदादि, सनत्कुमार, कपिल और मनु इनको तौ धर्मकी खबरही नहीं है कि–जो शास्त्रविरुद्ध चलनेवाले महादेवको मना नहीं करते ॥ १२ ॥ आप नीच क्षत्रिय होनेपरभी धृष्टतासे विद्वानोंको मूर्ख बनाकर, जगत्के गुरु, धर्ममूर्ति और ब्रह्मादिकभी जिनके चरणारविंदका ध्यान

करते हैं ऐसे, महादेवको शिक्षा देता है, तासों यह चित्रकेतुही शिक्षाके योग्य है ॥ १३ ॥ अपने आत्माको उत्तम मानकर, अकड़ बनाहुआ, यह चित्रकेतु साधुलोकोंसे सेवित भगवत्‌चरणारविंदके निकट रहनेके योग्यही नहीं है ॥ १४ ॥ तासों हे कुमति ! पुत्र ! चित्रकेतु ! तू असुर संबंधी महानीच योनिमें जा, कि-जिससे पीछा महात्मालोगोंका अपराध न करै ॥ १५ ॥ शुकदेवजीने कहा कि-महाराज ! इसप्रकार श्राप दियाहुआ वह चित्रकेतु विमानमेंसे उतर, शिर झुंकाकर, पार्वतीसे क्षमा मांगने

नायमर्हति वैकुंठपादमूलोपसर्पणम् ॥ संभावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥ १४ ॥ अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ॥ यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः ॥ प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत॥ १६॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ प्रतिगृह्णामि ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाऽम्बिके ॥ देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥ १७ ॥ संसारचक्र एतस्मिन् जंतुरज्ञानमोहितः ॥ भ्राम्यन्सुखं च दुःखं च भुंक्ते सर्वत्र सर्वदा ॥ १८॥ नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात्सुखदुःखयोः ॥ कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥ १९ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्कः शापः कोन्वनुग्रहः ॥ कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥ २० ॥ एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया ॥ एषां बंधं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥ २१ ॥

लगा॥ १६ ॥ चित्रकेतु बोला कि-हे अंबा ! आपके श्रापको मैं शिरपर चढ़ाता हूं, क्योंकि देवता मनुष्यको जो वचन कहैं, वह उसे उसके प्रारब्धसेही प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ अज्ञानसे मोहित होकर, इस संसाररूप चक्रमें फिरताहुआ जीव सर्वकालमें और सर्वदेशमें सुख और दुःखको भोगाही करता है ॥ १८ ॥ सुख और दुःखका कर्ता आप या दूसरा कोईभी नहीं है. जो मूर्ख होता है, वही अपने आत्माको अथवा दूसरेको कर्ता मानता है ॥ १९ ॥ इस संसाररूप गुणोंके प्रवाहमें श्राप, अनुग्रह, स्वर्ग, नरक, सुख और दुःख क्या हैं ? कुछभी नहीं ॥ २० ॥ बंधनसे रहित एक परमेश्वरही अपनी मायासे प्राणियोंको तथा उनके

बंध, मोक्ष, सुख और दुःखको रचता है ॥ २१ ॥ सर्वमें समान और निर्लेप परमेश्वरके प्रिय, अप्रिय, ज्ञाति, बंधु अपना या पराया कोईभी नहीं है. इनके सुखमें प्रीति नहीं, तब प्रीतिसे होनेवाला रोष तो कैसे हो सके ? ॥ २२ ॥ तथापि इन प्रभुकी मायाकी सृष्टिरूप पापपुण्यआदि कर्मही प्राणियोंको सुख, दुःख, हित, अहित, बंध, मोक्ष, मरण और जन्मरूप संसार देनेको समर्थ होते हैं ॥ २३ ॥ तासों यह जो मैं क्षमा मांगता हूं, वह शापसे मेरा छुटकारा होनेके वास्ते नहीं, किंतु मेरा कहना योग्य होनेपरभी आप अयोग्य मानती हो उसके लिये क्षमा मांगता हूं ॥ २४ ॥ शुकदेवजीने कहा कि-हेअरिंदम ! राजा !

न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो न ज्ञातिबंधुर्न परो न च स्वः ॥ समस्य सर्वत्र निरंजनस्य सुखेन रागः कुत एव रोषः ॥ २२ ॥ तथाऽपि तच्छक्तिविसर्ग एषां सुखाय दुःखाय हिताहिताय ॥ बंधाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥ २३ ॥ अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि ॥ यन्मन्यसे असाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिंदम ॥ जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥ २५ ॥ ततस्तु भगवान् रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् ॥ देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ महात्म्यं भृत्यभृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥ २७ ॥ नारायणपराः सर्वे न कुतश्च न बिभ्यति ॥ स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥ २८ ॥ देहिनां देहसंयोगाद्द्वंद्वानीश्वरलीलया ॥ सुखं दुःखं मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥ २९ ॥

इसप्रकार पार्वती और महादेवसे क्षमा मांगकर, वह राजा चित्रकेतु विमानमें बैठकर, विस्मयपूर्वक उन दोनोंके देखते, वहांसे रवाना हुआ ॥ २५ ॥ फिर देवता, ऋषि, दैत्य, सिद्ध और पार्षदोंके सुनते भगवान् महादेवने पार्वतीसे कहा ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले कि-हे सुश्रोणी ! भगवान् कि-जिनके कर्म बड़े अद्भुत हैं, उनके निःस्पृह और महात्मा दासानुदासोंकी महिमा तुमने देखी ? ॥ २७ ॥ स्वर्ग, मोक्ष और नरकमेंभी तुल्य प्रयोजन देखनेवाले भगवद्भक्त किसीसे नहीं डरते ॥ २८ ॥ प्राणियोंके देहके संयोगके हेतु होतेहुए सुख, दुःख, मरण, जन्म, शाप और अनुग्रहआदि द्वंद्व ईश्वरकी

मायासेही होते हैं ॥ २९ ॥ इन द्वंद्वोंमें जो इष्ट और अनिष्टकासा गिना जाता है, वह सब जुदापन स्वप्न अवस्थामें भयेहुये पदार्थोंकी भांति और मालामें सर्पादिककी भ्रांतिके, समान केवल अज्ञानकृत है ॥ ३० ॥ वासुदेव भगवान्‌की भक्ति करनेवाले और ज्ञान तथा वैराग्यका बल रखनेवाले, लोगोंके कोईभी पदार्थ विशिष्ट बुद्धिसे आश्रय लेनेके योग्य नहीं है ॥ ३१ ॥ मैं, ब्रह्मा, सनत्कुमार, नारद, ब्रह्माके पुत्र, मुनि और देवता ये सब भगवान्‌के अंशके अंशरूप हैं, तथापि जुदी २

अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ॥ गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥ ३० ॥ वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद्व्यपाश्रयः ॥ ३१ ॥ नाहं विरिंचो न कुमारनारदो न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ॥ विदाम यस्येहितमंशकांशका न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥ ३२ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥ ३३ ॥ तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः ॥ सर्वत्र समदृक् शांतो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥ ३४ ॥ तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु ॥ महापुरुषभक्तेषु शांतेषु समदर्शिषु ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाऽभिभाषितम् ॥ बभूव शांतधी राजन्देवी विगतविस्मया ॥ ३६ ॥

ईश्वरताका अभिमान रखनेवाले होनेके कारण भगवान्‌के अभिप्रायकोभी नहीं जानते, तब उनके स्वरूपको तो कैसे जान सकें ? ॥ ३२ ॥ भगवान्‌के प्रिय, अप्रिय, अपना या पराया कोईभी नहीं है. भगवान् आपही सर्वप्राणीमात्रके आत्मा होनेके कारण सर्वप्राणीमात्रके प्रिय हैं ॥ ३३ ॥ सब ठौर समदृष्टिवाला, शांत और महाभाग यह चित्रकेतु भगवान्‌का प्रियसेवक है और मैंभी भगवान्‌का प्यारा हूं, तासों इसपर मुझे क्रोध नहीं आया ॥ ३४ ॥ इसलिये शांत समदर्शी और भगवान्‌के भक्त-महात्मा, पुरुषोंके विषे कुछभी विस्मय नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥ शुकदेवजी बोले कि-महाराज ! इस प्रकार महादेवका

वचन सुनकर, पार्वती शांत हुई. और उनका विस्मय निवृत्त हुआ ॥ ३६ ॥ यद्यपि महावैष्णव चित्रकेतु, पार्वतीको पीछा श्राप देनेको समर्थ था, तौभी उसने पार्वतीका श्राप शिरपर चढ़ाया; क्योंकि, साधुपुरुषोंका इतनाही लक्षण है ॥ ३७ ॥ दानवी योनिपनका श्राप पायाहुआ यह चित्रकेतु,त्वष्टा देवताकी दक्षिणाग्निमेंसे उत्पन्न हुआ. सो वह, वहां वृत्रासुरके नामसे विख्यात हुआ. और इस जन्ममें ज्ञान और विज्ञानसे संपन्न हुआ ॥ ३८ ॥ असुरजातिमें उत्पन्न भयेहुए वृत्रासुरकी बुद्धि भगवान्में रहनेका कारण जो तुमने मुझसे पूंछा, वह सब मैंने आपसे कहा ॥ ३९ ॥ महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र इतिहास

इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलंतमः ॥ मूर्ध्ना संजगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥ ३७ ॥ जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः ॥ वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥ ३९ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ॥ महात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बंधाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥ य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ॥ इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् ॥ अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥ सिद्धिर्भगस्य भार्याऽग महिमानं विभुं प्रभुम् ॥ आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥

और वैष्णवोंका माहात्म्य सुननेसे मनुष्य संसारके बंधनसे छूट जाता है ॥ ४० ॥ भोरमें उठ, मौन रख, भगवान्का स्मरण करता जो मनुष्य श्रद्धासे इस इतिहासका पाठ करै, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ अठारहवें अध्यायमें अदितिके पुत्र त्वष्टाके वंशके प्रसंगसे विश्वरूपका आख्यान कहकर, अब अदितिके बाकीके पुत्रोंके वंशकी और अदितिके पुत्र मरुद्गणोंकी कथा कही जायगी ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–अदितिके पांचवें पुत्र सविताकी स्त्री पृश्निमें गायत्री, व्याहृति, वेदत्रयी, अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य और पंचमहायज्ञोंके देवता ये पुत्र हुए ॥ १ ॥ महाराज ! भगके सिद्धि नाम स्त्रीमें महिमा, विभु और प्रभु

ये तीन पुत्र तथा अच्छे नियम धारण करनेवाली, आशिष नाम एक कन्या हुई ॥ २ ॥ अदितिके सातवें पुत्र धाताके कुहू नाम स्त्रीमें सायंनाम पुत्र हुआ. सिनीवालीमें दर्श, राकामें प्रातर, अनुमतिमें पूर्णमास नाम पुत्र हुआ. विधाताके क्रिया नाम स्त्रीमें पुरीष्य नाम अग्नि पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ वरुणकी चर्षणीनाम स्त्रीमें भृगु कि-जो पहले ब्रह्माजीके पुत्र हुए थे वही पीछे पैदाहुए. और महायोगी वाल्मीक कि-जो वल्मीक (सर्पोंकी बांबीमेंसे) निकले कहलाते हैं येभी वरुणके पुत्र हैं. ॥ ४ ॥ मित्र और वरुण इन दोनोंने उर्वशी अप्सराके समक्षमें स्खलित भयाहुआ वीर्य घड़ेमें रक्खा. उसमेंसे अगस्त्य और

धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ॥ सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ ३ ॥ अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनंतरः ॥ चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ ४ ॥ वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ॥ अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥ ५ ॥ रेतः सिषिचतुः कुंभे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् ॥ रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥ पौलोम्यामिंद्र आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतम् ॥ जयंतमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥ ७ ॥ उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ॥ कीर्तौ पत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्याऽऽसन्सौभगादयः ॥ ८ ॥ तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः ॥ पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथैवावततार ह ॥ ९ ॥ अथ कश्यपदायादान्दैतेयान्कीर्तयामि ते ॥ यत्र भागवतः श्रीमान्प्रह्लादो बलिरेव च ॥ १० ॥

वसिष्ठ ये दो पुत्र पैदा हुए ॥ ५ ॥ अदितिके दशवें पुत्र मित्रके रेवती नाम स्त्रीमें अरिष्ट उत्सर्ग और पिप्पल ये तीन पुत्र हुए ॥ ६ ॥ ग्यारहवें पुत्र इंद्रके पौलोमी नाम स्त्रीमें जयंत, ऋषभ और मीढुष ये तीन पुत्र हुए. ऐसे हमने सुना है ॥ ७ ॥ बारहवें पुत्र उरुक्रमदेव कि-जिन्होंने मायासे वामनरूप धरा था, उनके कीर्ति नाम स्त्रीमें बृहत्श्लोक नाम पुत्र हुआ. और उसके सौभगआदि पुत्र हुए ॥ ८ ॥ महात्मा वामनजीने कश्यपजीकी स्त्री अदितिके उदरसे जन्म लेकर, जो जो चरित्र गुण व पराक्रम किये, वे पीछेसे (अष्टमस्कंधमें) कहे जायंगे ॥ ९ ॥ अब कश्यपजीके पुत्र दैत्योंके विषयमें मैं तुम्हें कहता हूं सो सुनो,

जिन दैत्योंमें श्रीमान् प्रल्हाद और बलि ये दोनों बड़े भगवद्भक्त हुए ॥ १० ॥ दितिके हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ये दो पुत्र हुए. जिन्हें सब दैत्य और दानव बंदन किया करते थे ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुके जंभ दानवकी कन्या कयाधू नाम स्त्रीमें, संन्हाद, अनुह्राद, ह्राद और प्रन्हाद ये चार पुत्र हुए. और इनके सिंहिका नाम बहन हुई. यह सिंहिका विप्रचित्नाम दानवसे व्याही गयी. इसमें विप्रचित्के राहुनाम पुत्र हुआ ॥ १२ ॥ १३ ॥ यह राहु अमृत पीता था, उस समय भगवान्ने चक्रसे उसका शिर उड़ा दिया. संह्रादके कृति नाम स्त्रीमें पंचजन नाम पुत्र हुआ ॥ १४ ॥ न्हादके धमनी नाम स्त्रीमें वातापि और

दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववंदितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी ॥ जंभस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥ १२ ॥ संह्रादं प्रागनुह्रादं ह्रादं प्रह्लादमेव च ॥ तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽगृहीत् ॥ १३ ॥ शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ॥ संह्रादस्य कृतिर्भार्याऽसूत पंचजनं ततः ॥ १४ ॥ ह्रादस्य धमनिर्भार्याऽसूत वातापिमिल्वलम् ॥ योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलम् ॥ १५ ॥ अनुह्रादस्य सूर्म्यायां बाष्कलो महिषस्तथा ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः ॥ १६ ॥ बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ॥ तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥ बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ॥ यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥ १८ ॥ मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ॥ त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इंद्रेण सात्मताम् ॥ १९ ॥

इल्वल नाम पुत्र हुए. जिनमें इल्वलने अतिथि भयेहुए. अगस्त्यमुनिको भोजन करानेके वास्ते वातापिको मेष बनाकर, पकाया ॥ १५ ॥ अनुन्हादके सूर्पानाम स्त्रीमें बाष्कल और महिष ये दो पुत्र हुए. प्रन्हादके विरोचन नाम पुत्र हुआ. विरोचनके अपनी रानीमें बलि नाम पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ बलिके अशनानाम स्त्रीमें बाणआदि सौ पुत्र हुए, इस बलिराजाका कीर्तिभराहुआ प्रभाव पीछे (अष्टमस्कंधमें) कहा जायगा ॥ १७ ॥ बाणासुरने महादेवजीका आराधन किया, जिससे यह महादेवजीके गणोंमें मुख्य हुआ. जिस बाणासुरके निकट अद्यापि महादेव पुरका पहरा देनेको विराजे हैं ॥ १८ ॥ उनचास मरुत् (वायु)

देवताभी दितिके पुत्र हैं, वे सब प्रजारहित हैं. और इंद्रने उन्हें देवता बना लिया है ॥ १९ ॥ परीक्षितने पूंछा कि–हे गुरु! ये मरुद्गण जन्मसंबधी आसुरभावको त्याग कर, इंद्रसे देवतापनको किसप्रकार प्राप्त किये गये ? और उन्होंने ऐसा क्या सत्कर्म किया ? ॥ २० ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मन् ! यह बात जाननेके वास्ते मेरे साथ ऋषियोंकीभी इच्छा है सो यह कथा आपको कहनी चाहिये ॥ २१ ॥ सूतजीने कहा कि– हे शौनक ! आदरभरा, अल्पअक्षर और बहुल अर्थवाला यह परीक्षिद्राजाका वचन सुन, आनंदित चित्तसे उसका सत्कार कर, सर्वज्ञ शुकदेवजीने यह वचन कहा ॥ २२ ॥ शुकदेवजी बोले कि–इंद्रके पक्षमें रहकर, विष्णुने जिसके पुत्रोंका वध किया है ऐसी और शोकसे प्रदीप्त भयेहुए क्रोधसे जलती दिति विचार करने लगी ॥ २३ ॥ कि–भाइयोंको मरानेवाले, विषयसुखमें आसक्त, क्रूर पापी और कठिनहृदय इंद्रको मरवाकर, कब मैं सुखपूर्वक सोऊंगी ? ॥ २४ ॥ राजाधिराज ! कहलाने परभी जो देह अंतमें कीट, विष्ठा वा भस्मरूप हुआ करता है, उस देहके लिये प्राणियोंसे द्रोह करनेवाला पुरुष क्या अपने स्वार्थको जानता है ? नहीं जानता. क्योंकि ऐसे करनेसे नरककी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ इन देहादिक पदार्थोंको नित्य माननेवाले और उच्छृंखल चित्तवाले इंद्रके मदका नाश करै ऐसा पुत्र मुझे जिस उपा-

राजोवाच ॥ कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ॥ इंद्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधु कृतं हि तैः ॥ २० ॥ इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ॥ परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ तद्विष्णुरातस्य स बादरायणिर्वचो निशम्याऽऽदृतमल्पमर्थवत् ॥ सभाजयन्सन्निभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ॥ मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलंती पर्यचिंतयत् ॥ २३ ॥ कदा नु भ्रातृहंतारमिंद्रियाराममुल्बणम् ॥ अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥ २४ ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽऽसीद्यस्येशाभिहितस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ २५ ॥ आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ॥ मदशोषक इंद्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥ २६ ॥

यसे प्राप्त होवे ऐसा उद्योग मुझे करना चाहिये, इस अभिप्रायसे वह दिति अपने पति कश्यपको बारंबार प्रसन्न करने लगी. हे राजा ! सेवा, स्नेह, नम्रता, जितेंद्रियपन उत्तमभक्ति, कोमल तथा मनोज्ञ भाषण, विनय, सुंदर मंदहास्य और कटाक्षसहित अवलोकनआदि उपायोंसे मनके अभिप्रायको जाननेवाली दितिने कश्यपजीके मनको वश किया ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ इस प्रकार कश्यपमुनिने विद्वान् होनेपरभी इस चतुर स्त्रीके वश्य होकर, उसका मनोरथ पूर्ण करनेको स्वीकार किया, यह होना

इति भावेन सा भर्तुराचचारासकृत्प्रियम् ॥ शुश्रुषयाऽनुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥ २७ ॥ भक्त्या परमया राजन्मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ॥ मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापांगवीक्षणैः ॥ २८ ॥ एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया ॥ बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥ २९ ॥ विलोक्यैकांतभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ॥ स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥ ३० ॥ एवं शुश्रूषितस्तात भगवान्कश्यपः स्त्रिया ॥ प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनंद्य च ॥ ३१ ॥ कश्यप उवाच ॥ वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिंदिते ॥ स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥ ३२ ॥ पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ॥ मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥ ३३ ॥ स एव देवतालिंगैर्नामरूपविकल्पितैः ॥ इज्यते भगवान्पुंभिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ॥ ३४ ॥

स्त्रीचरित्रके सामने कुछ आश्चर्य थोड़ाही है ? ॥ २९ ॥ क्योंकि पूर्वसमयमें प्राणियोंको असंग रहते देखकर, मैथुनद्वारा सृष्टि बढ़ानेके वास्ते ब्रह्माजीने अपने आधे शरीरकोही स्त्रीरूप बनाया था, कि–जिस स्त्रीसे पुरुषोंकी बुद्धि हरण की गयी ॥ ३० ॥ इस प्रकार हे तात ! स्त्री दितिने जिनकी सेवा की है ऐसे कश्यपजीने हँसकर तथा बहुत प्रसन्न होकर और सत्कारकरके, यह वक्ष्यमाण वचन दितिसे कहा ॥ ३१ ॥ कश्यपजी बोले कि– हे वामोरु ! हे अनिंदिते ! वर मांग, मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं. पति प्रसन्न होनेपर स्त्रीका कौन मनोरथ पूर्ण नहीं होता ? ॥ ३२ ॥ स्त्रियोंके तौ पतिही परम इष्टदैवत कहलाता है. लक्ष्मीके पति विष्णु भगवान् तौ सर्वप्राणियोंके मानसिक पति हही ॥ ३३ ॥ इन्हीं भगवान्को जुदे २ नामरूपसे कल्पन कीहुई इंद्रादि

देवतानकी मूर्तियोंके रूपसे पुरुष पूजते हैं. और स्त्रियां पतिरूपसे पूजतीं हैं ॥ ३४ ॥ अतएव हे सुमध्यमे ! कल्याणकी इच्छावाली पतिव्रता स्त्रियां एकभावसे पतिरूप परमात्माकाही पूजन करतीं हैं ॥ ३५ ॥ हे प्रिये ! तूने ऐसे भावसे भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की, इसलिये असती स्त्रियोंको अतिदुर्लभ ऐसे तेरा मनोरथ पूर्ण करूंगा ॥ ३६ ॥ दितिने कहा कि– हे ब्रह्मन् ! यदि आप मुझे वर देते हो तौ मैं कि–जिसके पुत्र मरगये हैं सो इंद्रको मारनेवाला अमर पुत्र मांगती हूं, क्योंकि मेरे पुत्रोंको इंद्रने मरवाया है ॥ ३७ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–दितिका वचन सुनकर, अतिखिन्न भयेहुए कश्यप मुनि पश्चात्ताप करने लगे; कि–

तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ॥ यजंतेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ॥ ३५ ॥ सोऽहं त्वयाऽर्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ॥ तत्ते संपादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ दितिरुवाच ॥ वरदो यदि मे ब्रह्मन्पुत्रमिंद्रहणं वृणे ॥ अमृत्युं मृतपुत्राऽहं येन मे घातितौ सुतौ ॥ ३७ ॥ निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ॥ अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥ ३८ ॥ अहो अर्थेंद्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ॥ गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥ ३९ ॥ कोऽतिक्रमोऽनुवर्तंत्याः स्वभावमिह योषितः ॥ धिङ्मां बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेंद्रियः ॥ ४० ॥ शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥ ४१ ॥ न हि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामंजसा स्वाशिषाऽऽत्मनाम् ॥ पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नंत्यर्थे घातयंति च ॥ ४२ ॥

अहो ! आज मुझपर बड़ा अधर्म आ पड़ा ॥ ३८ ॥ अहो ! आज विषयोंमें आसक्त और स्त्रीरूप मायासे वशीभूत भया हुआ मैं दीन अवश्य नरकमें पडूंगा ॥ ३९ ॥ स्त्री कि–जो अपने स्वभावके अनुसारही चलती है उसका क्या दोष है ? परंतु स्वार्थको न जाननेवाला मैं कि–जो अजितेंद्रिय हूँ तिसे धिक्कार है ॥ ४० ॥ स्त्रियोंका मुख तौ शरदऋतुके कमलके जैसा प्रफुल्लित होता है. और वचन कानके लिये अमृततुल्य होता है, परंतु हृदय छूराकी धारके समान तीक्ष्ण होता है. स्त्रियोंके चरित्रको कौन जान सकता है ? ॥ ४१ ॥ अपने स्वार्थमें तत्पर रहनेवाली स्त्रियोंके वस्तुतः कोईभी प्यारा नहीं है. क्योंकि ये

स्वार्थ के वास्ते पतिको, पुत्रको और भाईकोभी मरवा डालतीं हैं ॥ ४२ ॥ मैं देनेके वास्ते प्रतिज्ञा कर चुका. इसलिये मेरा वचनभी असत्य न होना चाहिये और इंद्र वधके योग्य नहीं इसलिये इस विषयमें कछुक प्रपंच करना चाहिये ॥ ४३ ॥ हे कुरुनंदन ! ऐसा विचार करके, कोपित भयेहुए और अपने आत्माको धिक्कारतेहुए कश्यपमुनिने दितिको इसतरह कहा ॥ ४४ ॥ कश्यपजी बोले कि–हे दिति ! यह व्रत जो तू एक वर्षपर्यंत अखंड धारण करेगी तौ तेरे इंद्रको मारनेवाला पुत्र होगा. और

प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ॥ वधं नार्हति चेंद्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥ ४३ ॥ इति संचित्य भगवान्मारीचः कुरुनंदन ॥ उवाच किंचित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥ ४४ ॥ कश्यप उवाच ॥ पुत्रस्ते भविता भद्रे इंद्रहा देवबांधवः ॥ संवत्सरं व्रतमिदं यद्यंजो धारयिष्यसि ॥ ४५ ॥ दितिरुवाच ॥ धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि यानि मे ॥ यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नंति यानि तु ॥ ४६ ॥ कश्यप उवाच ॥ न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ॥ न छिंद्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमंगलम् ॥ ४७ ॥ नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न संभाषेत दुर्जनैः ॥ न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥ ४८ ॥

उसमें कुछभी फरक पड़ जायगा तौ वह पुत्र इंद्रका बंधु हो जायगा ॥ ४५ ॥ दिति बोली कि– हे ब्रह्मन् ! मैं एक वर्षपर्यंत अखंड व्रत धारण करूंगी. सो उस व्रतमें जो जो कर्म करने चाहिये और जो जो न करने चाहिये और जो कार्य निषिद्ध न होवें, वे सब कहो ॥ ४६ ॥ कश्यपजी बोले कि–किसी प्राणीकी हिंसा न करनी, किसीको गाली न देनी, असत्य भाषण नहीं करना, नख और रोम नहीं काटना, अमंगलिक वस्तुका स्पर्श नहीं करना, ॥ ४७ ॥ जलमें पैठकर, स्नान न करना, क्रोध न करना, दुर्जनसे संभाषण नहीं करना, विना धोया वस्त्र नहीं पहिरना, पहनीहुई माला नहीं पहनना ॥ ४८ ॥

१ प्रपंच यह कि–वैष्णवव्रतका उपदेश करूं कि–जिससे दितिका चित्त शुद्ध होनेसे इंद्रके ऊपरका क्रोध शांत हो जाय और उससे पुत्र होवे वह असुर होवे तथा बहुत दिन व्रत धारणा करनेंसे भूलपड़ जानेके हेतु इंद्रकाभी वध न होवे और मेरा वचन झूंठा न पड़े.

उच्छिष्ट, भद्रकालीका नैवेद्य, मांससहित, शूद्रका लायाहुआ और रजस्वलाका देखाहुआ अन्न नहीं खाना. अंजलिसे जल नहीं पीना ॥ ४९ ॥ जूंठे मुंह, जलका आचमन लिये विना, संध्याके समय, केश खुले छोड़कर, शृंगार विना किये, वाणीको नियममें विना राखे और शरीरको वस्त्रसे विना ढके, बाहिर नहीं जाना ॥५०॥ पांव विना धोये, सावधानता विना राखे, भीने पांव, उत्तरकी ओर शिर रखकर, पश्चिमकी तर्फ मस्तक रखकर, दूसरोंके साथ नग्न होकर और संध्याकालमें नहीं सोना ॥ ५१ ॥ धुलेहुए वस्त्र पहन, निरंतर पवित्र रह, सकलमंगल पदार्थोंसे युक्त रह, प्रातःकालमें भोजन किये पहले गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मी और भगवान्‌की

नोच्छिष्टं चंडिकाऽन्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ॥ भुंजीतोदक्यया दृष्टं पिबेदंजलिना त्वपः ॥ ४९ ॥
नोच्छिष्टास्पृष्टसलिला संध्यायां मुक्तमूर्धजा ॥ अनर्चिताऽसंयतवाङ्नासंवीता बहिश्चरेत् ॥ ५० ॥
नाधौतपादाऽप्रयता नार्द्रपान्नो उदक्शिराः ॥ शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च संध्ययोः ॥ ५१ ॥
धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमंगलसंयुता ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्रान् श्रियमच्युतम् ॥ ५२ ॥
स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गंधबलिमंडनैः ॥ पतिं चाऽऽर्च्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥ ५३ ॥
सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ॥ धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥ ५४ ॥ बाढमि-
त्यभिप्रेत्याथ दिती राजन्महामनाः ॥ काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चांजो दधार सा ॥ ५५ ॥ मातृष्वसु-
रभिप्रायमिंद्र आज्ञाय मानद ॥ शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥ ५६ ॥ नित्यं वनात्सुमन-
सः फलमूलसमित्कुशान् ॥ पत्रांकुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥ ५७ ॥

पूजा करनी ॥ ५२ ॥ चंदन, पुष्प, नैवेद्य और आभूषणसे सौभाग्यवती स्त्रियोंकी पूजा करनी, पतिका पूजन कर, हृदयमें उसका ध्यान करना ॥ ५३ ॥ जो तू पुत्र देनेवाला यह व्रत एक वर्षपर्यंत अखंड धारण करेगी तो तेरे इंद्रको मारनेवाला पुत्र होगा ॥ ५४ ॥ शुकदेवजीने कहा कि–महाराज ! प्रसन्न भयीहुई दितिने यह सर्व वार्ता अंगीकार करके, कश्यपजीसे गर्भ धारण किया. और वह अखंड व्रत पालने लगी ॥ ५५ ॥ हे मानद ! महाज्ञानी इंद्र अपनी मौसी दितिका यह अभिप्राय जानकर, उसके आश्रममें आ, परमभक्तिसे उसकी सेवा करने लगे ॥ ५६ ॥ सदा वह समय समयपर वनमेंसे फूल, फल,

मूल, समिध, दर्भ, पत्ते, अंकुर, मृत्तिका और जल ला दिया करें ॥ ५७ ॥ महाराज ! व्रत धारण करती उस दितिका छिद्र देखताहुआ वह कपटी इंद्र मृगकासा वेष धर जैसे शिकारी रहे, वैसे रहकर, उसकी सेवा करने लगा ॥ ५८ ॥ हे राजा ! स्वार्थमें तत्पर इंद्रके दितिका छिद्र देखनेमें न आया तब उनके मनमें बड़ी चिंता हुई कि-इस प्रसंगमें अब मेरा कल्याण किस-प्रकार होगा ? ॥ ५९ ॥ एक दिन व्रतसे दुबली और दैवसे मोहित भयीहुई दिति जूंठे मुंह जलका आचमन लिये विना और पांव विना धोये, संध्याके समयमें सो रही ॥ ६० ॥ यह अवसर मिल गया, तब योगेश्वर इंद्र, निद्रासे बेभान भयीहुई

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप ॥ प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥ ५८ ॥ नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ॥ चिंतां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥ ५९ ॥ एकदा सा तु संध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ॥ अस्पृष्टवार्यधौतांघ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥ ६० ॥ लब्ध्वा तदंतरं शक्रो निद्राऽपहृतचेतसः ॥ दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥ ६१ ॥ चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ॥ रुदंतं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान्पुनः ॥ ६२ ॥ ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्रांजलयो नृप ॥ नो जिघांससि किमिंद्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥ ६३ ॥ माभैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ॥ अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतांगणान् ॥ ६४ ॥ न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकंपया ॥ बहुधा कुलिशः क्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥ ६५ ॥

दितिके उदरमें अपनी योगमायाके बलसे घुसे ॥ ६१ ॥ वहां जाकर, उन्होंने अपने वज्रसे सुवर्णकेसे तेजवान् गर्भके सात टुकड़े कर दिये और ये सातों टुकड़े रुदन करने लगे तब, 'रोमत रोमत' ऐसे कहकर, फिर उन सातोंके प्रत्येकके सात सात टुकड़े किये ॥ ६२ ॥ इसप्रकार विदीर्ण किये जाते वे सब हाथ जोड़कर, बोले कि-हे इंद्र ! तू हमें क्यों मारता है ? हम तो तेरे भाई मरुत् देवता हैं, ॥ ६३ ॥ इंद्रने अपने सच्चे भक्त और पार्षद इन मरुत् देवतानसे कहा कि-'तुम डरो मत, तुम, मेरे भाई हो' ॥ ६४ ॥ शुकदेवजीने कहा कि-भगवान्की कृपासे अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जैसे तुम बच गये, ऐसे यह दितिका गर्भभी वज्रसे

बहुत प्रकारसे कटनेपरभी नहीं मरा ॥ ६५ ॥ यह पुरुष भगवान्का एकबारभी पूजन करै तो भगवान्के पार्षदपनको प्राप्त हो जाता है, तब दितिने तौ एकवर्षमें कुछ दिन शेष रहे इतने समयतक भगवान्की पूजा की, उसका फल विना लगे कैसे रहे ? ॥ ६६ ॥ इंद्रके साथ वे पचास मरुत् देवता पैदाहुए, कि-जिनको उनकी माताके दोषको मिटाकर, इंद्रने सोमपान करनेवाले देवता बना लिया ॥ ६७ ॥ वह अनिंदित दिति उठकर, इंद्रके साथ अग्निकेसे तेजवाले पचास पुत्रोंको देखकर, अतिप्रसन्न हुई ॥ ६८ ॥ फिर दितिने इंद्रसे कहा कि-हे तात ! देवतानके त्रास देनेवाले पुत्रकी इच्छासे मैं यह अतिकठिन व्रत करती थी.

सकृदिष्ट्वाऽऽदिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ॥ संवत्सरं किंचिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥ ६६ ॥ सजूरिंद्रेण पंचाशद्देवास्ते मारुतोऽभवन् ॥ व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥ ६७ ॥ दितिरुत्थाय ददृशे कुमाराननलप्रभान् ॥ इंद्रेण सहितान्देवी पर्यतुष्यदनिंदिता ॥ ६८ ॥ अथेंद्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् ॥ अपत्यमिच्छंत्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥ ६९ ॥ एकः संकल्पितः पुत्रः सप्तसप्ताभवन्कथम् ॥ यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥ ७० ॥ इंद्र उवाच ॥ अंब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोंऽतिकम् ॥ लब्धांतरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥ ७१ ॥ कृत्तो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्त कुमारकाः ॥ तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे ॥ ७२ ॥ ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ॥ महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषंगिणी ॥ ७३ ॥ आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ॥ ये तु नेच्छंत्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥ ७४ ॥

॥ ६९ ॥ सो मैंने तो एक पुत्रका संकल्प किया था, फिर ये उनचास पुत्र कैसे हुए? हे पुत्र ! यदि तू जानता हो तौ सत्य कह, झूंठ मत बोले ॥ ७० ॥ तब इंद्रने कहा कि-हे माता ! स्वार्थमेंही बुद्धि रखनेवाला और धर्मको नहीं जाननेवाला मैं तेरे अभिप्रायको जानकर, तेरे पास आ रहा. सो जब मुझे अवसर मिला, तब मैंने तुम्हारे गर्भको काट दिया ॥ ७१ ॥ मैंने गर्भके सात टुकड़े किये तौ उनमेंसे सात पुत्र पैदा हुए. और उनकेभी सात सात टुकड़े किये तौभी वे नहीं मरे ॥ ७२ ॥ फिर, यह बड़ा आश्चर्य देखकर, मैंने निश्चय किया कि-भगवान्की पूजाका यह कोई प्रासंगिक फल है ॥ ७३ ॥ निष्काम रह कर,

भगवान्‌का आराधन करनेवाले जो लोग मोक्षकीभी इच्छा नहीं रखते वे स्वार्थमें कुशल कहलाते हैं ॥ ७४ ॥ अपने स्वरूपके देनेवाले और आत्मरूप भगवान्‌का आराधन करके कौन पंडित पुरुष विषयका सुख मांगे ? जो सुख नरकमेंभी मिल सकता है ॥ ७५ ॥ हे माता ! मैं कि-जो मूर्ख हूं, तिसके इस दुर्जनताकी आप क्षमा करो. गर्भ मरणसे बचा यह बहुत अच्छा हुआ॥७६॥ शुकदेवजीने कहा कि-फिर शुद्धभाव देखकर, प्रसन्न भयीहुई उस दितिने अज्ञा दी तब वह इंद्र मरुत् देवोंके साथ उसे प्रणाम कर, स्वर्गको सिधारे॥ ७७ ॥ इस मंगलरूप मरुत्‌देवोंके जन्मके विषे आपने जो मुझे पूंछा वह सब मैंने आपसे कहा अब और क्या कहें ?॥७८॥ इति श्रीभा-

आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ॥ को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥ ७५ ॥ तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ॥ क्षंतुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥७६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इंद्रस्तयाऽभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ॥ मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥ ७७ ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ मंगलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥ ७८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन्भवता यदुदीरितम् ॥ तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ॥ आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमंत्र्य च ॥ २ ॥

गवते महापुराणे षष्ठस्कंधे रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ उन्नीसवें अध्यायमें, कश्यपजीने दितिसे जो भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये व्रत कहा, उसीका लोककल्याणार्थ विस्तार कहा जायगा ॥ १ ॥ परीक्षितने पूंछा कि-हे ब्रह्मन् ! आपने जो पुंसवन व्रत कहा, उसकी विधि जानना मैं चाहता हूं. कि-जिससे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥ शुकदेवजीने कहा कि- मार्गशिर महीनेके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके दिनसे स्त्रीको चाहिये कि-पतिकी आज्ञा ले, सर्व कामना पूर्ण करनहारे इस व्रतका मरुत् देवोंके जन्मकी कथा सुनकर, तथा ब्राह्मणोंको इसकी विधि पूंछकर, प्रारंभ करे ॥ २ ॥

स्नान कर, दांत स्वच्छ कर, यानी दातून कर, शृंगार धारण करके, दो धोये वस्त्र पहिरना. प्रातःकालमें भोजन किये पहले लक्ष्मीजीके साथ भगवान्‌की पूजा करना ॥ ३ ॥ और प्रार्थना करनी कि–हे पूर्णकाम ! आप कि–जो लक्ष्मीके पति सर्वसिद्धियोंके निवासरूप और अपेक्षारहित हो तिन्हें मैं प्रणाम करती हूं ॥ ४ ॥ कृपा, वैभव, तेज, महिमा, सामर्थ्य और दूसरेभी सब उत्तम ईश्वरके गुण यथार्थ रीतिसे आपमें रहे हैं, तासों आप भगवान् और प्रभु हो ॥ ५ ॥ हे विष्णुपत्नी ! हेमहामाया ! हे परमेश्वरकेसे लक्षणवाली ! हे महाभागे ! हे जगत्‌की माता लक्ष्मी ! मुझपर प्रसन्न हो. मैं तुझे प्रणाम करती हूं ॥ ६ ॥ इन मंत्रोसे

स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालंकृतांबरे ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवंतं श्रिया सह ॥ ३ ॥ अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोस्तु ते ॥ महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥ यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिमौजसा ॥ जुष्ट ईशगुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान्प्रभुः ॥ ५ ॥ विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ॥ प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥ ॐनमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सहमहाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति ॥ अनेनाहरहर्मंत्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगंधपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपाहरेत् ॥ हविःशेषं तु जुहुयादनले द्वादशाऽऽहुतीः ॥ ॐनमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥ ७ ॥

स्तुति करनी. फिर ॐ महापुरुष भगवान्‌को नमस्कार करती हूँ. महापुरुष, बड़े प्रभाववाले और बड़ी विभूतिके पति आपको बड़ी २ विभूतियोंके साथ बलि देती हूं. इस मंत्रसे प्रतिदिन आवाहन, अर्घ्य पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, चंदन, पुष्प, धूप दीप, नैवेद्यआदि उपचार सावधानीके साथ भगवान्‌के अर्पण करना. फिर "ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा" इस मंत्रसे अग्निमें उपहारसे शेष रहे हुए पदार्थसे बारह आहुती देना ॥ ७ ॥

जो सर्व संपत्तियोंकी इच्छा होवे तो वर देनेवाले और सकल मनोरथ पूर्ण करनहारे लक्ष्मी और भगवान्की भक्तिपूर्वक प्रतिदिन पूजा करनी ॥ ८ ॥ मनको भक्तिसे नम्र रखकर, इस मंत्रका जप करके पृथ्वीमें दशबेर दंडवत् नमस्कार करना. फिर इस स्तोत्रसे स्तुति करनी ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मी ! नारायण ! आप जगत्के स्वामी और परमकारणरूप हो. यह लक्ष्मी सूक्ष्म प्रकृति और टालनेपरभी न टले ऐसी मायाशक्तिरूप है ॥ १० ॥ इनके अधीश्वर परमपुरुष आपही हो. आप सर्व यज्ञरूप हो. और लक्ष्मी यज्ञकी भावना रूप है, लक्ष्मी क्रियारूप है और आप फलके भोक्ता हो ॥ ११ ॥ लक्ष्मी गुणोंकी प्रकटतारूप है और

श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ॥ भक्त्या संपूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसंपदः ॥ ८ ॥ प्रणमेद्दंडवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ दशवारं जपेन्मंत्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ ९ ॥ युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ॥ इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥ १० ॥ तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः ॥ त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥ ११ ॥ गुणव्यक्तिरियं देवी व्यंजको गुणभुग्भवान् ॥ त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेंद्रियाशया ॥ नामरूपे भगवति प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥ १२ ॥ यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ॥ तथा म उत्तमश्लोक संतु सत्या महाशिषः ॥ १३ ॥ इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह ॥ तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् ॥ १४ ॥ ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥ १५ ॥

आप गुणोंको प्रकट करनेवाले तथा गुणोंके भोक्ता हो. आप सब जीवोंके आत्मा हो. और लक्ष्मी शरीर, इंद्रिय और अंतःकरणरूप है. लक्ष्मी नामरूपात्मक है और आप उनके प्रकाशक तथा आधाररूप हो ॥ १२ ॥ हे उत्तमश्लोक ! आप दोनों वर देनेवाले, जगत्के प्रभु हो, इस सत्यसे मेरे सब बड़े मनोरथ सफल होवें ॥ १३ ॥ इसप्रकार वर देनेवाले और लक्ष्मीके निवासरूप भगवान्की लक्ष्मीजीके साथ स्तुति करनेके अनंतर नैवेद्यादिक उठाकर, आचमन कराकर, पूजा करनी ॥ १४ ॥ फिर भक्तिसे नम्र भयेहुए चित्तसे स्तोत्रका पाठ करके स्तुति करनी. फिर पूजनमें जो पदार्थ अवशेष रहे उसे सूंघकर, फिर

पीछी भगवान्‌की पूजा करनी ॥ १५ ॥ पतिको परमेश्वर जानकर, परम भक्तिपूर्वक उसकी प्रिय पदार्थोंसे सेवा करनी. पतिकोभी चाहिये कि-प्रेम रखकर, अपनी स्त्रीके छोटे मोटे सब कामोंमें सहायता देवे ॥ ॥ १६ ॥ स्त्री और पुरुषमेंसे एक जन यह व्रत करे तो यह व्रत दोनोंका किया समझा जाय, इसलिये जितने दिन स्त्री रजस्वला होनेआदि कारणोंसे पूजा करनेमें अयोग्य रहे, इतने दिन सावधानीके साथ पतिको यह काम करना चाहिये ॥ १७ ॥ यह विष्णु भगवान्‌का व्रत करे तब उद्यापन किये विना किसी प्रकारसे अधबिचमें खंडित नहीं करना. ब्राह्मणोंकी और पति-पुत्रावाली स्त्रियोंकी चंदन, पुष्प, बलि और अ-

पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ॥ प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः ॥ विभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥ १६ ॥ कृतमेकतरेणापि दंपत्योरुभयोरपि ॥ पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥ १७ ॥ विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्नविहन्यात्कथंचन ॥ विप्रान्स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गंधबलिमंडनैः ॥ अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥ १८ ॥ उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ॥ अद्यादात्मविशुध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥१९॥ एतेन पूजाविधिना मासान्द्वादशहायनम् ॥ नीत्वाऽथोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥ २० ॥ श्वो भूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ पयःशृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ॥ पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाऽऽहुतीः पतिः ॥ २१ ॥ आशिषः शिरसाऽऽदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ॥ प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुंजीत तदनुज्ञया ॥ २२ ॥

लंकारसे पूजा करनी तथा भक्तिपूर्वक नियम रखकर, नित्य प्रति भगवान्‌की पूजा करनी ॥ १८ ॥ भगवान्‌की मूर्तिको उसके स्थानमें विराजमान कर, उसके आगे जो नैवेद्य धरा होवे वह आप स्वयं खाना. क्योंकि उससे अंतःकरण शुद्ध होता है. और सर्वमनोरथ सिद्ध होते हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकारकी पूजाकी रीतिसे बारह और अधिकमास होवे तौ तेरह महीना यानी बराबर एकवर्ष पूर्ण करके पतिव्रता स्त्रीको चाहिये कि-अंतके दिन यानी कार्तिकमास (मार्गशिर मास)की अमावास्याके दिन उपवास करे ॥ २० ॥ प्रातःकालमें जलसे आचमन ले, पूर्वोक्तरीतिसे श्रीकृष्ण भगवान्‌की पूजा कर, 'पार्वण स्थालीपाक 'की रीतिके अनुसार दूधमें पकायेहुए घृतसहित चरुसे पतिको बारह आहुति देनी चाहिये ॥ २१ ॥ प्रसन्न भयेहुए ब्राह्मणोंके दियेहुए आ-

शीर्वादोंको शिरपर चढाय, भक्तिपूर्वक प्रणाम कर,उनकी आज्ञा ले इस चरुका अवशेष खाना ॥ २२ ॥ आचार्यको आगेकर, मौन धारण कर, बंधुजनोंके साथ रहकर, उत्तम पुत्र देनेवाले और सौभाग्य बढानेवाले इस चरुका शेष भाग स्त्रीको खिलाना ॥ २३ ॥ यह व्रत विधिपूर्वक करनेसे पुरुषको भगवान्‌से मनवांछित फल मिलता है. और स्त्री यह व्रत करै तो उसे सौभाग्य, लक्ष्मी, प्रजा, यश और घर मिलता है. तथा पति जिरंजीव रहे ॥ २४ ॥ कन्या यह व्रत करै तो उसे सर्वलक्षणसंपन्न वर मिले. विधवा यह व्रत करै तो उसके पाप निवृत्त हो जांय और उत्तम गति मिले-जिसकी संतान मरजाती हो,उस स्त्रीकी संतान जीतीरहे, निर्धन

आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बंधुभिः ॥ दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजास्त्वं सुसौभगम् ॥ २३॥ एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ॥ स्त्रीत्वे तदास्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥ २४ ॥ कन्या च विंदेत समग्रलक्षणं वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ॥ मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्र्यम् ॥ २५ ॥ विंदेद्विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयावींद्रियकल्पदेहम् ॥ एतत्पठन्नाभ्युदये च कर्मण्यनंततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥ २६ ॥ तुष्टाः प्रयच्छंति समस्तकामान्होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च ॥ राजन्महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे पुंसवनव्रतकथनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ समाप्तोऽयं षष्ठस्कंधः ॥

होतो उसे धन मिले. और कुरूप होवे वह सुंदर रूपवती हो जाय जो रोगी यह व्रत करै तौ रोगसे मुक्त हो जाय और उसकी इंद्रियां और शरीर समर्थ हो जाय. शुभ कार्यमें इस अख्यानका पाठ करै तौ पितृ और देवतानको अनंत तृप्ति मिले ॥ २५ ॥ २६ ॥ होम पूर्ण होवे उस समय इसका पाठ करै तो अग्नि, लक्ष्मी और भगवान् प्रसन्न होकर, सर्व मनोरथ पूर्ण करते हैं. हे राजा ! यह पवित्र और बड़ी मरुत् देवोंके जन्मकी कथा तथा दितिका कियाहुआ बड़ा व्रत, ये दोनों मैंने आपको कह सुनाये ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे दध्यङ्कुलोद्भव आसोपा बलदेवात्मज रामश्यामविरचितायां तत्वदीपिकानामभाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीभागवते भाषयासहितः षष्ठस्कंधः समाप्तः ॥

33x2/x9½